वर्ष २] १ अगस्त १६३४ ई० [अंक १-२

ॐ

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ का

❋ पाक्षिक मुख-पत्र ❋

जैन दर्शन

श्री जैनदर्शनमिति प्रथितोऽम्बरस्मिन्नभोभवन्निखिल दर्शन पक्षदोषः ।
स्याद्वाद भानुकलितो बुधचक्रवन्द्यो, भिन्द्यन्तमो विमतिजं विजयाय भूयात् ॥

ऑन० सम्पादक—
पं० चैनसुखदास जैन न्यायतीर्थ
पं० अजितकुमार जैन शास्त्री, पं० कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री ।

नये पुराने ग्राहकों से—

१. आगामी पर्युषण (१५ सितंबर) पर दर्शन का "स्याद्वाद अंक" प्रगट होगा, जो लगभग १०० पृष्ठों का होगा। तैयारी हो रही है।

२. जिन ग्राहकों का वार्षिक मूल्य समाप्त हो चुका है उनसे सनम्र प्रार्थना है कि वे इस वर्ष का मूल्य ३) निम्नलिखित पते पर मनीआर्डर द्वारा तुरन्त भेजने की कृपा करें। वी० पी० का इन्तज़ार न करें। वी० पी० द्वारा मंगाने में ३=) की जगह ३।=) में पड़ेगा।

३. नये ग्राहकों से प्रार्थना है कि वे भी ३) मनिआर्डर द्वारा ही भेज कर ग्राहक श्रेणी में नाम शीघ्र लिखालें। अन्यथा फिर विशेषांक का मिलना कठिन होगा, क्योंकि वह अधिक संख्या में छाप कर नहीं रक्खा जायगा।

विनीत:—प्रकाशक "जैन दर्शन", बिजनौर (यू० पी०)

एक वर्ष का मूल्य ३) ———— इस अंक का मूल्य ।)

वार्षिक अधिवेशन

मिति आषाढ़ कृष्ण ५ दीतवार तदनुसार ता० १-७-३४ ई० को पाठशाला भवन में श्री दिगम्बर जैन महापाठशाला जयपुर का ४९ वाँ वार्षिक अधिवेशन श्रीमान् मुंशी प्यारेलाल जी साहब B. A. भूतपूर्व मेम्बर स्टेट कौंसिल जयपुर के सभापतित्व में सानन्द सम्पन्न हुआ। जिसमें जयपुर के लगभग सभी गण्य मान्य प्रतिष्ठित सज्जन महोदय ५०० के क़रीब उपस्थित थे। प्रथम ही श्री सरस्वती जी का पूजन हुआ। इसके बाद पं० जवाहरलाल जी शास्त्री और विद्यार्थी आनन्दीलाल का भाषण हुआ। तदनन्तर मंत्री प्रबन्धकारिणी समिति ने वार्षिक रिपोर्ट सुनाई और पाठशाला के आय-व्यय का हिसाब दिखलाते हुए कहा कि इस वर्ष खर्च लगकर ११२०=)॥। की बचत रही। ख़र्च रु० ६२२३॥=)। लगा। उपस्थित जनता ने रिपोर्ट सुनकर अत्यन्त हर्ष प्रकट किया। इसके बाद श्रीमान् दुलीचंद जी साह B. A. के प्रस्ताव और नेमीचन्द जी साहब मथुरा वालों के अनुमोदन करने पर नवीन प्रबन्धकारिणी समिति का सर्वसम्मतिसे निर्वाचन हुआ, जिनके अध्यक्ष मुंशी प्यारेलालजी साहब ही नियुक्त किये गये। तदनन्तर सभापति महोदय ने अपने कर कमलों द्वारा उत्तीर्ण विद्यार्थियों को पारितोषिक वितीर्ण किया। इसके बाद श्री भगवान महावीर की जयध्वनि के साथ सभा विसर्जित की गयी और विद्यार्थियों को मोदक वितीर्ण किये गये।

कस्तूरचन्द शाह मंत्री

आवश्यक्ता

सुन्दर, शुद्ध लिखने वाले एक शास्त्र लेखक की आवश्यक्ता है; जिन भाइयों के ध्यान में हो अथवा जो सज्जन लिखे शास्त्रों के विक्रेता हों वे हमारे साथ पत्रव्यवहार करें।

—अजितकुमार जैन,
चूड़ी सराय मुलतान सिटी।

पता चाहिये

श्रीयुत् भाई प्रकाशचन्द्र जी विद्यार्थी इंदौर ने अप्रैल में जैनदर्शन मंगाने के लिये २) का मनीआर्डर भेजा था, किन्तु ठीक पूरा पता ज्ञात न होने के कारण पत्र उनके नाम चालू न होसका। इसकी सूचना हम गत वर्ष २२ वें अङ्क में भी प्रकाशित कर चुके हैं। अभी उनका पत्र आया था, किन्तु उस पर भी उनका पूरा पता नहीं था। हमने अंबरीबाग के पते से पत्र भेजकर उनका पता जानना चाहा, किन्तु कुछ उत्तर न आया। अतः वे स्वयं अथवा इन्दौर के कोई अन्य सज्जन कृपाकर उनका पूरा पता लिख भेजें। —अजितकुमार जैन,
चूड़ीसराय मुलतान सिटी।

मुफ्त मंगालें

१. जगदुद्धारक भ० महावीर, आलोचनापाठ समाधिमरण, जैनधर्म या सार्वधर्म, ये तीनों पुस्तकें मात्र तीन पैसे के टिकिट पोष्ट व्यय के लिये भेजकर मंगालें।

—श्री महावीर दि० जैन ग्रन्थमाला,
जुमेराती बाज़ार, भोपाल।

२. बालकों के डिब्बा रोग, पसली आदि शीत सम्बन्धी बीमारी के लिये अचूक दवाई और बालकों के सूका रोग निवारण मंत्र हम से डाक व्यय के लिये =)॥ के टिकिट भेजकर मंगालें।

आयुर्वेद भूषण वि० उत्तमचन्द्र जैन, विशारद
मु० पो० लखनादौन (छिंदवाड़ा)।

सूचना

सर्वसाधारण से प्रार्थना है कि वे अपने यहाँ के विवाह योग्य जैन लड़कों की सूची निम्न प्रकार बनवा कर निम्न पते पर शीघ्र भेजने की कृपा करें:—१. नम्बर, २ नाम लड़का, ३. उम्र, ४. पिता का नाम, ५ गोत्र, ६. योग्यता, ७. पूरा पता, ८. विशेष। —जम्बूप्रसाद जैन,
गढ़ी पुख्ता (मुज़फ़्फ़रनगर) यू०पी०।

श्री जिनाय नमः
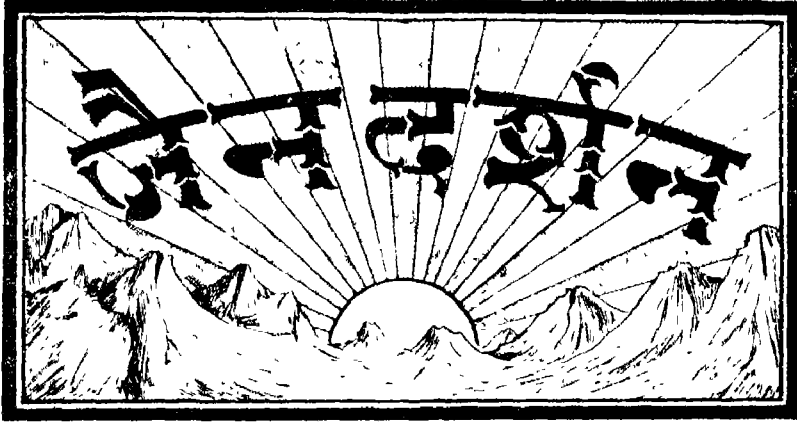
वर्ष २ { बिजनौर, श्रावण कृष्णा ७—श्री 'वीर' नि० सं० २४६० { अङ्क १-२

नव वर्षाभिनन्दन !

[लेखक—पं० कल्याणकुमार जैन 'शशि' रामपुर स्टेट !

स्वागत ! जय जय जय !

खिलो पुनः शत दल पर भर कर नव उल्लास-विजय !

स्वागत ! जय जय जय !

रश्मि-राशि सम उद्गम-उज्ज्वल,

ओत प्रोत हो नव जाग्रति-बल,

काल निशा तम-तोम-व्योम पर हो फिर अरुणोदय !

स्वागत ! जय जय जय !

बढ़ना ज्योति तान निरन्तर

गति में तनिक न आये अन्तर

प्रियवर ! भरना पुनः विश्व में निर्मल प्रेम-प्रणय !

स्वागत ! जय जय जय !

जैन धर्म से जग हो पूरित

लाञ्छन साहस युत हो चूरित

प्राप्त हमें गौरव अतीत हो फिर से महिमा-मय !

स्वागत ! जय जय जय !

उत्पत्तिवाद !

[लेखकः—पं० श्री प्रकाश जैन, न्यायतीर्थ]

यह दृश्यमान जगत क्या है? इसकी उत्पत्ति कैसे हुई? यह प्रत्येक विचारशील मनुष्य के लिये स्वाभाविक प्रश्न है। तार्किक मस्तिष्क अपने जीवन में अनेक बार इस सृष्टि के रहस्य को समझने की चेष्टा किया करता है। फिर भी यथार्थ में यह समस्या अभी तक हल नहीं हुई। ऐसे दार्शनिक बहुत ही कम हुये हैं, जिन्होंने इस विषय पर पूर्ण प्रकाश डालनेका सच्चा श्रेय प्राप्त किया है।

पाश्चात्य दार्शनिक संसार की भांति भारतीय-दर्शन शास्त्रों में भी सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक मत हैं। न्याय, सांख्य और वेदान्त दर्शन के प्रवर्तक आचार्यों ने इस विषय में खूब ऊहापोह किया है। भारतीय दर्शनों में सृष्टि की उत्पत्ति सम्बन्ध में तीन सिद्धान्त अधिक प्रसिद्ध हैं—आरम्भवाद, परिणामवाद और विवर्तवाद। न्याय, वैशेषिक और पूर्व मीमांसा का मत आरम्भ-वाद है; सांख्य और योग परिणामवाद को स्वीकार करते हैं; वेदान्त का सिद्धान्त विवर्तवाद है।

इन सिद्धान्तों में कौन त्रुटिपूर्ण है, कौन अधिक पुष्ट है, किसमें क्या कमी है—इत्यादि बातों पर प्रकाश डालने के पूर्व इनका संक्षेप में उल्लेख कर देना आवश्यक प्रतीत होता है।

आरम्भवाद—वैशेषिक दर्शन के आचार्य महर्षि कणाद ने इसको जन्म दिया। इनका कहना है कि जैसे कटक के नष्ट हो जाने पर उसकी मूल उत्पादक सामग्री स्वर्ण से कुण्डलादिक तैयार कर लिये जाते हैं, उसी प्रकार सृष्टि के नष्ट होने पर अवशिष्ट रहे पंच तत्वों के परमाणुओं से, जो हमेशा जैसे के जैसे अपने अविनश्वर स्वरूप में अवस्थित रहते हैं, नवीन सृष्टि का आरम्भ होता है। अर्थात्—प्रलयकाल में इस सृष्टि का विभाग होते होते अन्त में केवल परमाणु ही परमाणु रह जाते हैं। इस अवस्था में ये अत्यन्त भिन्न भिन्न रहते हैं। फिर इनमें परस्पर संयोग होने पर अणु, द्व्यणु, इत्यादि उत्पन्न होकर स्कन्ध की उत्पत्ति होती है और फिर उससे सब दृश्यमान वस्तुओं का निर्माण होता है।

न्याय सिद्धान्त में कार्य और कारण का भेद स्वीकार किया गया है। तदनुसार परमाणु कारण और समुत्पन्न वस्तुएं कार्य हैं। जो ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करते हैं, उनका कहना है कि परमाणु सृष्टि का उपादान कारण है और ईश्वर निमित्त कारण है। सर्व प्रथम ईश्वर की इच्छा से दो परमाणु मिलते हैं और तब वे अणु कहलाते हैं। जब तीन अणु मिलते हैं तब वे दिखाई देने लगते हैं। तदनन्तर परस्पर मिलते मिलते संसार की सब वस्तुओं के रूप में आते हैं।

परमाणु अपने स्वरूप में नित्य हैं और एक दूसरे से मिल जाने पर अनित्य या नाशवान अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं।

परमाणुओं के परस्पर मिलने से संसार की सब वस्तुओं की उत्पत्ति मानने के कारण इस मत का नाम परमाणुवाद या आरम्भवाद पड़ा।

परिणामवाद—परिणाम का अर्थ है रूपान्तर होना। जैसे दुग्ध का परिणाम दही होता है। एक ही वस्तु अन्य रूप में परिणत होकर दूसरी सी दिखाई देने लगने के कारण परिणत हुई कहलाती है। तात्विक वस्तु सभी अवस्थाओं में रहती है। जैसा कि कहा भी है—

यस्तात्विकोऽन्यथाभावः परिणाम उदीरितः।

गुण परिणामवाद या सत्कार्यवाद को स्थापित करने के कारण सांख्य कार्य और कारण में अभेद की व्यवस्था देते हैं। यही कारण है कि प्रकृति के सर्वत्र सर्वदा विद्यमान होने से सांख्य किसी भी वस्तु का कहीं पर भी अभाव स्वीकार नहीं करते। महर्षि कपिल के सिद्धान्तानुसार प्रकृति का संक्षेप में परिणाम इस प्रकार है—

प्रकृति में तीन गुण हैं—सत्व, रज और तम। इन तीन गुणवाला होना ही प्रधान का स्वरूप है। प्रलयकाल में, जब सृष्टि का आविर्भाव प्रारम्भ नहीं होता, ये तीनों शक्तियाँ साम्यावस्था में अवस्थित रहती हैं। प्रकृति में इन तीनों का कार्य सर्वदा होता रहता है। कभी सत्वगुण, रज और तम को दबाकर प्रधान बन जाता है; कभी रजोगुण, सत्व और तम से आगे बढ़ जाता है और कभी तमोगुण सत्व और रज से प्रबल हो जाता है। जब तक इन तीनों गुणों में विषमता बनी रहती है सृष्टि का कार्य—किसी पदार्थ का आविर्भाव और किसी पदार्थ का तिरोभाव—होता रहता है। आचार्य कपिल ने प्रकृति को स्वतन्त्र माना है, सांख्यशास्त्र के अनुसार प्रकृति के विकास के लिये पुरुष का संयोग ही पर्याप्त है। पुरुष का संयोग होने से प्रकृति में एक प्रकार का क्षोभ होता है और इसके होने से प्रकृति का विकास होने लगता है—मूल प्रकृति की साम्यावस्था नष्ट होकर गुणों का विस्तार होना प्रारम्भ हो जाता है। सेश्वरसांख्यों का कथन है कि यह कार्य ईश्वर की इच्छा से होता है। सृष्टि-विधान में प्रकृति स्वतन्त्र नहीं है, जैसी ईश्वर की इच्छा होती है उसे वैसा ही करना पड़ता है।

विकास आरम्भ से पूर्व की दशा प्रकृति की अव्यक्त अवस्था है। इसी सूक्ष्म और चारों ओर अखण्डित भरे हुए एक ही निरवयव मूल द्रव्य से सारी व्यक्त सृष्टि की उत्पत्ति हुई है। प्रकृति में सत्वगुण के प्रधान होने के कारण विकासके समय सर्वप्रथम महान् (बुद्धि) का आविर्भाव होता है ‡।

---

‡ सांख्यों ने जो सर्व प्रथम बुद्धि का विकास माना है, यह बड़ा महत्वपूर्ण विचार है, क्योंकि जिस प्रकार मनुष्य के किसी काम को प्रारम्भ करने के पूर्व तद्विषयक बुद्धि या इच्छा उत्पन्न होती है, उसी प्रकार प्रकृति भी अपनी साम्यावस्था भङ्ग करके व्यक्त सृष्टि के निर्माण—अपना विस्तार—करने का निश्चय पहले कर लिया करती है। इसीलिए सांख्यों ने यह निश्चय किया है कि प्रकृति में सर्वप्रथम 'व्यवसायात्मिक बुद्धि' गुण उत्पन्न हुआ करता है। इतना अन्तर अवश्य है कि मनुष्य सचेतन होने के कारण अपनी बुद्धि को जान सकता है। प्रकृति जड़ है अतः उसे स्वयं अपनी बुद्धि का कुछ भी ज्ञान नहीं होता। अतः हम इसे अस्वसंवेद्य बुद्धि कह सकते हैं। यदि जड़ पदार्थों में इसे न

इस समय प्रकृति एक ही बनी रहती है। बुद्धि का परिणाम है अहङ्कार *। अहङ्कार के उत्पन्न होते ही प्रकृति की एकता छूट जाती है, अनेकत्व आजाता है, निरवयव में सावयवत्व की उत्पत्ति हो जाती है। परन्तु अब भी सूक्ष्मता बनी रहती है। हम कह सकते हैं कि वैशेषिकों के सूक्ष्म परमाणु का यहाँ ही से आरम्भ होता है। इस प्रकार इस अहङ्कार या भेद-भावना के विकास के पश्चात् इस से पाँच तन्मात्राएं (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध के सूक्ष्म तत्व) उत्पन्न होती हैं। ये आठ प्राकृतिक तत्व माने गये हैं। अर्थात् ये आठों ऐसे तत्व हैं जो दूसरों को भी उत्पन्न करते हैं। इनके अतिरिक्त १६ विकार—पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (श्रोत, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और घ्राण), पांच कर्मेन्द्रियाँ (हस्त, पाद, वाणी, गुदा और उपस्थ), एक मन और पाँच महा भूत (आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी) और उत्पन्न होते हैं। इनमें के पाँच महाभूत पाँचों तन्मात्राओं से उत्पन्न होते हैं †। अर्थात् तन्मात्राएं इन स्थूल भूतों की आदिम स्वरूप हैं, उनका चरम विकास पञ्च महाभूतों में समाप्त होता है।

यह सब विकास पुरुष के समक्ष होता है। यह पुरुष उदासीन, निर्गुण और अकर्ता है, केवल प्रकृति के विकारों को तमाशे की भाँति देखता रहता है। साक्षी होने के कारण उसमें सुख दुःख का अनुभव कह सकते हैं। पुरुष अनेक हैं, प्रकृति की भाँति एक नहीं। प्रत्येक पुरुष और प्रकृति का जब संयोग होता है, तब प्रकृति अपने गुणों का जाला उस पुरुष के सामने फैलाती है और पुरुष उसका उपभोग करता रहता है। जिस पुरुष का ज्ञान विषद हो जाता है, उस पुरुष के साथ प्रकृति का संसर्ग विच्छेद हो जाता है और प्रकृति को लीलाओं के समाप्त होजाने पर उसे कैवल्य पद प्राप्त हो जाता है।

इस विकास के क्रम को संक्रम और इसके विपरीत नष्ट-प्रलय होने के क्रम को प्रतिसंक्रम कहते हैं।

शंकराचार्य को छोड़कर वेदान्त के आचार्य—रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्काचार्यादि—का यह मत है कि ईश्वर में चित् और अचित् दो तत्व हैं। उसके चित तत्व का परिणाम चेतन पदार्थ हैं और अचित् तत्व का परिणाम जड़ पदार्थ हैं ×।

माना जाया तो लोहचुम्बक का आकर्षण और अपसारण आदि केवल जड़ सृष्टि में ही दृष्टिगोचर होने वाले गुणों का मूल कारण ठीक ठीक नहीं बताया जा सकता। —श्री लोकमान्यतिलक

* इस अहङ्कार को भी अस्वसंवेद्य कह सकते हैं।

† पाँचों तन्मात्राएं भिन्न भिन्न निरिन्द्रिय सृष्टि के और मन सहित ग्यारह इन्द्रियाँ सेन्द्रिय सृष्टि के मूल तत्व हैं। यह मान्यों की उत्पत्ति विचारणीय है, जिस पर हम किसी स्वतन्त्र लेख में प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे।

× वेद संहिता, उपनिषद् और स्मृति-ग्रन्थों में भी प्रकृति को मूल न मानकर परब्रह्म को मूल माना है और सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न आश्चर्यजनक विचित्र कल्पनाएं की गई हैं। जैसे—"हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्" अर्थात् पहले हिरण्यगर्भ, और फिर इस आदि ब्रह्मा से सब सृष्टि हुई।

विवर्तवाद—विवर्तका अर्थ है कल्पित कार्य। मूल वस्तु जब कुछ की कुछ भासने लगती है तब उसे विवर्त कहते हैं। जैसा कि लिखा भी है—"अतात्विकोऽन्यथाभावो विवर्तः स उदीरितः"।

अर्थात् अतात्विक वस्तु विवर्त है। जैसे :—अन्धकार में रज्जु सर्प दिखलाई देने लगती है। यद्यपि रज्जु सर्प नहीं है, तथापि अज्ञान से भ्रम हो जाने के कारण सर्प का श्रद्धान करा देती है। यह रज्जु सर्प का विवर्त या कल्पित रूप है। इसी प्रकार इस जगत् में—"एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" अर्थात् एक ब्रह्म ही ब्रह्म है, ब्रह्म के अतिरिक्त यहाँ और कुछ नहीं है। अज्ञानतिमिराच्छन्न होने के कारण मनुष्य उसे नहीं देख रहे हैं, इस ब्रह्ममय जगत में जो अन्य वस्तुओं का श्रद्धान कर लिया जाता है, वह ब्रह्म का विवर्त्त है, कल्पितरूप है। इसको मानना विवर्तवाद है।

इस सिद्धान्त में कार्यकारण का बाधकृत अभेद माना गया है। अर्थात् कार्य का नाश होने पर एक सिर्फ़ कारण ही अवशिष्ट रह जाता है।

शुद्ध ब्रह्म तत्व एक ही है, जगत इसका विवर्त है, इसलिए मिथ्या है। इस जगत का आरोप ब्रह्म में अज्ञान से हुआ है, अज्ञान का नाश होने पर इस कल्पना का भी अन्त हो जाता है और ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है। अनादि शुद्ध ब्रह्म के साथ प्रकृति का अनादि कल्पित तादात्म्य है। माया के द्वारा ईश्वर कुम्भकार की तरह जगत् का निमित्त कारण है और तमः प्रधानं प्रकृति के द्वारा वह मृत्तिका की तरह उपादान कारण है। शुद्ध ब्रह्म न किसी का उपादान कारण है और न निमित्त। उसका सृष्टि रचना से कोई सम्बन्ध नहीं है।

अद्वैत वेदान्त में भी कई मत हैं। जैसे—अवच्छेदवाद, आभासवाद, प्रतिबिम्बवाद, एक जीववाद, नानाजीववाद आदि। यहां इनके सम्बन्ध में असम्बद्ध होने के कारण विशेष विवेचन करना अनुचित है।

इन सब मतों में सिद्धान्त क्रमशः विकास की ओर बढ़ते गये हैं। न्याय—न्याय और वैशेषिक दर्शन की अपेक्षा सांख्य के तथा सांख्य की अपेक्षा वेदांत के सिद्धांत अधिक गम्भीर एवं महत्वपूर्ण हैं। उत्तरोत्तर विचार संवर्धन के कारण ये दर्शनकार अपने विचारों को अधिक पुष्ट बना सके हैं और सूक्ष्म दृष्टि से प्रपञ्च के मूलतत्वों को अधिक से अधिक छानबीन कर सके हैं। जब सब से पहले महर्षि कणाद ने आरम्भवाद का सिद्धान्त स्था-

अथवा सब से पहले पानी उत्पन्न हुआ और फिर इससे सृष्टि हुई; इस पानी में एक अण्डा उत्पन्न हुआ और उसमे ब्रह्मा उत्पन्न हुआ तथा ब्रह्मा से अथवा मूल अण्डे से ही सारा जगत् उत्पन्न हुआ। अथवा वही ब्रह्मा जो पुरुष था आधे हिस्से से स्त्री हो गया। अथवा पानी उत्पन्न होने से पहिले ही पुरुष था। अथवा पहले परब्रह्म से तेज, पानी और पृथिवी यही तीन तत्व उत्पन्न हुए और पश्चात् उनके मिश्रण से सब पदार्थ बने; इत्यादि। इन विभिन्न मतों के होते भी वेदान्तसूत्रों में अन्तिम निर्णय किया गया है कि मूल ब्रह्म से ही आकाशादि पंच महाभूत हुए हैं। प्रकृति महत आदि का भी उपनिषदों में उल्लेख है। अतः कहना पड़ता है कि वेदान्त वाले चाहे स्वतन्त्र प्रकृति को न मानें, किन्तु शुद्ध ब्रह्म में मायात्मक प्रकृतिरूप विकार का दृग्गोचर होना स्वीकार कर लेने के कारण आगे उनका और सांख्यों का बहुत कुछ साम्य हो ही जाता है। —श्री लोकमान्य तिलक की गीता से।

पित किया, लोगों ने समझा कि गवेषणा का अन्त हो चुका, वास्तव में सृष्टि के मूल कारण परमाणु ही हैं; परन्तु इसके भी आगे विश्लेषण-पथ में प्रवृत्त होकर महर्षि कपिल ने बतलाया कि इस सृष्टि का आरम्भ परमाणुओं से नहीं हुआ है; जो परमाणुवाद मान रहे हैं, वे अभी इसके उद्गमस्थान की खोज नहीं कर सके हैं। इस दृश्य जगत् का आदि कारण 'प्रधान' है। हम जो प्रकृति तत्व बतला रहे हैं उसी में विकार उत्पन्न होने से इस जगत् का विकास हुआ है। प्रकृति की साम्यावस्था के भङ्ग होने पर महत्तत्व और अहङ्कार की आवश्यक उत्पत्ति के बाद परमाणुओं का विकास हुआ है।

अर्थात् जहां से सांख्यों ने तन्मात्राओं के विकास की कल्पना की है, वहाँ ही परमाणुओं का आविर्भाव हुआ है। इसी प्रकार वेदांत के आचार्यों ने भी इससे भी आगे कल्पना करने का प्रयास किया और विवर्तवाद का प्रचार किया। सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रकृति के स्थान में अविद्योप कल्पित माया का अभिषेक किया और 'पुरुष' के स्थान में ईश्वर की कल्पना कर डाली। इन्हों ने सांख्य सिद्धान्त में दोष दिखलाया कि जड़ प्रकृति चैतन्य की सहायता के बिना रचना के कार्य में प्रवृत्त नहीं हो सकती। क्योंकि सांख्यों के द्वारा कल्पित पुरुष सर्वथा अकर्ता माना गया है और यही कहा गया है कि प्रकृति पुरुष के सामने अपनी शक्ति से संसार रचना का तमाशा दिखाती है, पुरुष इस सम्बन्ध में निर्लेप है। वेदान्तियों का मत है कि 'माया' ब्रह्म की अनिर्वचनीय शक्ति है, जिसे चाहे तो प्रकृति भी कह सकते हैं। इस प्रकृति के दो भेद हैं—एक परा और दूसरी अपरा। इनमें परा प्रकृति सब भूतों की योनि है, परमात्मा इसी में गर्भबीज धरता है और इसीसे सृष्टि की उत्पत्ति होती है। बुद्धि, अहङ्कार, आकाश आदि उत्पन्न चीजों की गणना अपरा प्रकृति में है।

इस उल्लेख से आपको यह स्पष्ट विदित हो गया होगा कि इन आचार्यों ने कल्पना करने में कमाल कर डाला है और प्रकृति तथा पुरुष के स्थान में एक केवल ब्रह्म ही की सत्ता स्वीकार करके प्रकृति के सृष्टि रचना के निमित्त प्रवर्तने में आने वाले दोषों का भी निवारण करने की चेष्टा की है। विचार करने से ज्ञात होगा कि इस कल्पना को करके वेदान्तियों ने सांख्य के विचारों को उच्च श्रेणी पर पहुँचा दिया या यों भी कह सकते हैं कि जो त्रुटियाँ सांख्य के भी विचारों में रह गई थीं वेदान्त ने उनका संशोधन कर दिया। उदाहरण के लिये समझ लीजिए—सांख्यों ने प्रकृति को स्वतन्त्र सत्ता वाली माना है, वेदान्त ने उसे माया का रूप देकर मनोमय सत्ता वाली सिद्ध कर दिया और यह भी बतलाने की चेष्टा की है कि माया न सत्य है और न असत्य है, वह अनिर्वचनीय है। अविद्या इसका मूल कारण है, अतः संसार की सत्ता स्वप्न वत् है। अविद्या का नाश होते ही इस जगत् से सम्बन्धविच्छेद हो जाता है और ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है।

मैं समझता हूं अब विचारशील पाठकों को वेदान्त के सिद्धान्तों की गम्भीरता का परिज्ञान होगया होगा। वेदान्त के अद्वैत सिद्धान्तकी प्रशंसा अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने भी की है। प्लोटिनस, पारमीनिडिज़, प्लेटो, कान्ट, फिक्टे, हेगिल, हरेक-

लिटीज, ब्रूनो, स्पिनोजा आदि भी 'अद्वैतवाद' के ही पक्षपाती हैं। यद्यपि इनमें कोई भी वेदान्त को पराकाष्ठा को नहीं पहुँचा है।

भारतीय दार्शनिकों की भाँति पाश्चात्य विज्ञान वेत्ताओं ने भी एतद्विषयक गवेषणा में कुछ कमी नहीं उठा रक्खी। वहाँ भी सबसे पहले यूनान में ईस्वी सन् पूर्व ४२० में वहाँ के प्रसिद्धतम दार्शनिक डिमाक्रिटस के मस्तिष्क से परमाणुवाद का ही जन्म हुआ था। इसके पश्चात् डाल्टन आदि अनेकों विद्वान् इसके मानने वाले हुए। इनके सिद्धान्तानुसार जगत् का उपादान परमाणु-पुञ्ज है। परमाणु की स्थापना करते समय पदार्थ-विश्लेषण का नियम विशेष रूप से काम में लाया गया है। इस नियम के अनुसार हम संसार के किसी भी पदार्थ का विश्लेषण कर सकते हैं। विभाग करते समय हम उस पदार्थ को क्रमशः लघु, लघुतर भागों में विभक्त करते हुए अन्त में एक ऐसी अवस्था पर पहुँचेंगे कि जिससे आगे उसका विभाग कर सकना असम्भव हो जायगा। इस अवस्था तक पदार्थ का स्वरूप बना रहता है; उसमें किसी प्रकार की गड़बड़ी नहीं होती। किन्तु यदि इससे भी आगे विश्लेषण पथ में पैर बढ़ाया जाय तो पदार्थ का अपना स्वरूप ही लुप्त हो जायगा और दो भिन्न भिन्न तत्त्वों के अणु रह जायेंगे, जिनके कि सम्मिश्रण से उसकी रचना या स्वरूप प्रस्तुत हुआ है। जैसेः—जल का यदि वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाय तो उसके लघुतमअंश जलीय परमाणु [वैज्ञानिक जिसे मालीक्यूल्स (Malecules) कहते हैं] की उपलब्धि होगी। यदि इनका विभाजन किया जाय तो जलीय परमाणुओं का भी विश्लेषण होकर दो भिन्न भिन्न तत्त्वों के तीन परमाणुओं की प्राप्ति होगी, जिनमें दो हाइड्रोजन और एक आक्सीजन का होगा। यह विश्लेषण की चरम सीमा है। परमाणुवादियों के मत में ऐसे ही परमाणुओं से भौतिक तत्त्वों की उत्पत्ति हुई है।

आप लोग पूर्व में न्यायदर्शन के परमाणुवाद का सिद्धान्त पढ़ चुके हैं। पाश्चात्यदार्शनिकों का 'परमाणुवाद' महर्षि कणाद के सिद्धान्त से प्रायः मिलता जुलता है। इसमें पूर्व और पश्चिम का कोई विशेष अन्तर प्रतीत नहीं होता। इतनी अधिक समानता के होते हुए भी इन दोनों में एक बहुत विषम अन्तर है। पश्चिम का परमाणु अपने में ही समाप्त हो जाता है, प्रकृति निर्माण में वह निरपेक्ष माना गया है। परन्तु परमाणु जड़ पदार्थों के अवयव हैं, उनमें निरपेक्ष क्रिया का होना असंभव है; फिर आदि क्रिया कैसे हुई ? इस शंका का कोई समुचित उत्तर देने का प्रयास परमाणुवाद ने नहीं किया। एक यह भी इसमें बड़ी भारी त्रुटि थी कि परमाणु चाहे जितना ही सूक्ष्म क्यों न हो, उसमें आकार और विस्तार अवश्य रहेंगे; जिसमें आकार और विस्तार हैं उसके खण्ड अवश्य हो सकते हैं, क्योंकि आकार वाली वस्तु का अखण्ड होना कल्पनातीत है। और यदि इस दोष के परिहारार्थ उसमें खण्डों की कल्पना कर ली जाय तो वह सब से सूक्ष्म या प्रपञ्च का उपादान सिद्ध हो सकेगा। यही कारण प्रतीत होता है कि आधिभौतिक शास्त्रों का यह परमाणुवाद अधिक प्रसार न पा सका और जिस प्रकार भारतीय परमाणुवाद का कपिल के प्रकृतिवाद ने अपूर्णत्व सिद्ध कर दिया उसी

प्रकार पाश्चात्य दार्शनिक संसार में भी इस परमाणुवाद की प्रसिद्ध सृष्टि शास्त्रज्ञ डार्विन के उत्क्रान्तिवाद या विकासवाद (Evolution theory) ने जड़ उखाड़ दी।

परमाणुवाद से आगे विज्ञान के गवेषणा पथ पर प्रवृत्त होने पर पहले परमाणुवाद के स्थान में शक्तिवाद की स्थापना हुई और परमाणुओं का परस्पर मिश्रण उनकी शक्ति के आधार पर माना जाने लगा। परन्तु यह सिद्धान्त भी अधिक महत्वपूर्ण नहीं जँचा और वैज्ञानिकों ने समय समय पर द्रव्याक्षरत्ववाद, गुणवाद, उत्पत्तिवाद, विकासवाद, उत्क्रान्तवाद, परिस्थितिवाद आदि सिद्धांतों का आविष्कार किया †। इन सब मतों में प्रकृति में शक्ति की कल्पना करके, या द्रव्य में शक्तियाँ निश्चित करके, या आकस्मिक भेद स्वीकार करके या परिस्थितियों को कारण मानकर के सृष्टि का विकास स्वीकार किया गया है। ये सभी सिद्धान्त बहुत कुछ गवेषणा के बाद ही स्वीकार किये गये हैं। इस समय डार्विन और लाह्मास के सिद्धान्तों ने अधिक सम्मान पाया है। अन्य सिद्धान्तों का भी पर्याप्त प्रचार है। फिर भी एक सच्चे वैज्ञानिक के लिये ये सभी विचारणीय हैं, उसके लिये अभी कुछ अन्तिम निर्णय नहीं है।

डार्विन और लाह्मास के सिद्धान्तों पर दृष्टि डालने से दिखाई देता है कि प्राणियों की योनियाँ अनियत हैं। डार्विन के अनुसार विकास आकस्मिक होता है और लाह्मास का कहना है कि यह सब कुछ बाह्य परिस्थियों पर निर्भर है। ऐसा मानने के कारण ही इनके सिद्धान्तों का नाम आकस्मिक भेदवाद और परिस्थितिवाद है।

लाह्मास के सिद्धान्तानुसार जड़-जगत् का विकास एक 'नेबुला' से हुआ है। इसका मत है कि 'नेबुला' का उत्पादक द्रव्य पहले से ही रहता है। यह विकास कार्य में स्वतन्त्र और उच्छृंखल है। परन्तु इसकी आदि गति में कारण क्या है, इसका कोई समुचित उत्तर लाह्मास ने नहीं दिया, जिसकी कमी को 'हक्सले' आदि सभी इस सिद्धांत के अनुयायी विद्वानों ने अनुभव किया है। 'नेबुला' से जगत् का विकास 'सौरमण्डल' की गति के, कालक्रम में परिवर्तन होते रहने के कारण तीव्रता न रहने से शैत्य से ठोस हो जाने पर ग्रह और उप ग्रहों का आविर्भाव होकर हुआ है।

कुछ दार्शनिक ऐसे भी हैं, जिन्हों ने इस प्रक्रिया का दूसरी तरह से उल्लेख किया है। इनके अनुसार यह विकास स्वतन्त्ररूप से नहीं हो रहा है, किन्तु उसके पीछे ईश्वर नामक एक चेतन सत्ता का हाथ है और प्रति समय उसके नियन्त्रण में ही विकास प्रक्रिया का संचालन हो रहा है। इसे हम सापेक्ष विकास या सेश्वर विकास कह सकते हैं। इसके अतिरिक्त सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में और भी अनेकों मत हैं, जिनको व्यर्थ समझ कर या विस्तारभय से यहाँ लिखना उचित नहीं समझा है।

जिन मतों का ऊपर संकेत किया गया है, वे भी वास्तव में पूर्ण नहीं हैं। जब हम तर्क की

† लेख के बहुत विस्तृत हो जाने के भय से इन सब सिद्धान्तों पर विवेचन नहीं करना ही उचित समझा गया है।

कसौटी पर इनकी जाँच करने लगते हैं तो अनेकों दोष इनमें दृष्टिगोचर होने लगते हैं। विकासवाद को ही ले लीजिए। विकासवादियों को विकास का आदिम-क्रम अवश्य ही स्थापन करना होगा और इस समस्या को हल करने के लिए उनको किसी मूल तत्व का आश्रय लेना अनिवार्य होगा। इस बात को अस्वीकार करने का सामर्थ्य विकास-वादियों की कल्पनाओं में नहीं है। विकास का वह मूल आदिम क्रम कहाँ से आया? इसका समुचित उत्तर देने का आजतक भी किसी वैज्ञानिक ने सफल प्रयास नहीं किया। इसी लिए कहा जाता है कि इतनी अधिक छानबीन हो चुकने पर भी अभी सृष्टि का वास्तविक रहस्य पूर्ण रूपसे विदित नहीं हो सका है। परमाणु, प्रकृति या ईश्वर के आदि कारणत्व की कल्पना कर लेने पर भी, उसको अनादि स्वीकार किये बिना निर्वाह नहीं होता। इनको अनादि मानने की चर्चा करते ही सृष्टि प्रक्रिया के सम्पूर्ण सिद्धान्त अस्थिर से हो जाते हैं।

जैन सिद्धान्त में भी इस प्रपञ्च को अनादि माना गया है। जैनियों का सिद्धान्त है कि इस संसार का न कोई कर्ता है और न कोई हर्ता ❀। जड़ पुद्गलों के परस्पर के संयोग से यह अनादि काल से इस रूप में ही चला आरहा है। इसका प्रारम्भ कब हुआ इस विषय में जैनसिद्धान्त में सर्वथा मौनावलम्बन किया है।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में इंगलैंड के प्रसिद्ध विद्वान्—हर्बर्ट स्पेन्सर महोदय ने अपनी 'अज्ञेय मीमांसा' नामक पुस्तक में इस विषय पर अच्छा विचार किया है। इस संसार की उत्पत्ति कैसे हुई? संसार है क्या? उसका कोई आदि कारण है या नहीं? यदि है तो उसके क्या लक्षण हैं? इत्यादि प्रश्नों पर अपने सिद्धांत निश्चित करने के पूर्व उन्होंने अन्य वैज्ञानिकों के (१) संसार स्वयं सत्ता वाला है, (२) संसार अपने आप उत्पन्न हुआ है, (३) संसार को किसी दूसरी शक्ति ने उत्पन्न किया है, इन तीनों सिद्धान्तों पर तार्किक युक्तियों द्वारा विचार-विनिमय किया है। जब तर्क से तीनों ही सिद्धान्त सिद्ध न हो सके—'संसार क्या वस्तु है' इत्यादि का तर्क से संतोषजनक निर्णय न हुआ—तब उन्होंने निश्चय किया कि सब धर्मों का अन्तिम तत्व अन्धकारमय होने के कारण अज्ञेय है।

अतः हमें कहना पड़ता है कि यह सृष्टि-तत्व वास्तव में अज्ञेय है—इसके रहस्य को हम ठीक ठीक समझ नहीं सकते, इसके सम्बन्ध में तात्विक निर्णय कर सकना हमारी बुद्धि से परे की बात है। सम्भवतः जैनियों के अनादि सिद्धान्त का भी अन्तरङ्ग रहस्य यही होगा।

❀ जैनसिद्धान्त में भी प्रलय का उल्लेख है। किन्तु वहाँ खण्ड प्रलय स्वीकार किया गया है, सार्वभौमिक प्रलय नहीं। एक बात यह भी है कि जैनी लोग पृथिवी द्रव्यों का भी अत्यन्त विनाश हो जाता है, यह स्वीकार नहीं करते।

जाति-भेद का विष

[लेखक :—श्री पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री बनारस सिटी]

जैन समाज की वर्तमान जातियां कब से प्रचलित हुईं ? और कैसे प्रचलित हुईं ? इन प्रश्नों पर प्रकाश डालना, इस लेख का विषय नहीं है। किन्तु इन जातियों ने कलह और विद्वेष से जर्जरित जैन समाज के वक्षस्थल पर जो हुरदंग मचाना प्रारंभ किया है उसकी ओर, हम समाज प्रेमियों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं।

किसी समय जैनधर्म सार्वभौम धर्म था। चारों वर्णों में उसको मानने वालों की यथेष्ट संख्या थी। हमारा अनुमान है कि उस समय जैनधर्म के मानने वालों का वह बृहत् समुदाय 'जैन समाज' के नाम से नहीं पुकारा जाता था। कारण, 'समाज' शब्द से एक ऐसे समुदाय का बोध होता है जिसके अन्तर्गत मनुष्यों में रोटी बेटी व्यवहार प्रचलित हो; और रोटी-बेटी व्यवहार का आधार केवल समान धर्मता कभी भी नहीं रही है। परम्परा से समधर्मी और समकर्मी मनुष्यों में ही उक्त व्यवहार होता आता है। किसी पौराणिक उपाख्यान में यदि उक्त नियम का उल्लंघन पाया जाता है तो उसे अपवाद ही कहा जायेगा, सामाजिक प्रथा नहीं। अस्तु—

योग्य धर्म प्रवर्तकों के, धर्माचार्यों के और धर्म प्रचारकों के न रहने से धीरे धीरे जैनधर्म की सार्वभौमता लुप्त होती गई और अन्त में केवल वैश्य वर्ण में ही उसके मानने वालों की परिमित संख्या शेष रह गई। उसेही आज हम 'जैनसमाज' के नाम से पुकारते हैं क्योंकि सब का धर्म और कर्म समान है। उस समाज * में आज बहुत सी अन्तर्जातियाँ मौजूद हैं। यद्यपि एक दो जाति को छोड़कर शेष सब जातियों का धर्म और कर्म समान है, फिर भी उनमें बेटी व्यवहार आमतौर से नहीं होता है। कोई २ धर्म-भीरु रोटी-व्यवहार में भी धर्म डूबने का स्वप्न देखा करते हैं।

सामाजिक सिद्धान्तों की पर्यालोचना करने से हम इसी नतीजे पर पहुँचते हैं कि, जाति भेद समाज का जीवन है, वह किसी न किसी रूप में समाज में सर्वदा से रहा है और सर्वदा रहेगा। अतः उस को मिटाने के लिये अपनी शक्ति और सामर्थ्य का उपयोग करना हमारी दृष्टि में निष्फल है। किन्तु इस जाति भेद की विकराल दंष्ट्रा में जो भयङ्कर विष उत्पन्न हो रहा है यदि उसकी ओर अभी से ध्यान न दिया गया तो यह जाति भेद, मोक्ष जाने के लिये उत्सुक समस्त समाज को यमराज का मेहमान बनाने में कोई कमी न करेगा।

यह विष क्या है ?

पाठक जानने के लिये उत्सुक होंगे कि यह

* यहाँ पर हमारा आशय केवल दि० जैनसमाज है। —लेखक।

विष क्या बला है ? किन्तु इसको जानने के लिये उत्सुक होने की आवश्यकता नहीं है। कारण, आज समाज के अधिकांश महानुभाव—सेठ, पंडित, विद्यार्थी, अध्यापक—सभी तो उससे परिचित होते जाते हैं। उस विष को 'जातीय पक्षपात' कहते हैं। जो इस विष के शिकार बनते हैं वे हर तरह से अपने सजातीय भाइयों को लाभ पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं। पाठकगण ! यदि आप किसी मनुष्य में उक्त हरकत देखें तो समझ लीजिये कि उसे जाति भेद की विकराल दंष्ट्रा ने डस लिया है।

प्रवचन वात्सल्य और स्वजातीय पक्षपात !

मोक्षमार्ग के प्रकरण में सम्यग्दर्शन का नाम अवश्य पढ़ा या सुना होगा। और सम्यग्दर्शन के आठ अङ्गों में प्रवचन वात्सल्य का नाम तो भुलाये भी नहीं भूलता है। कारण, रक्षाबन्धन का त्यौहार प्रवचन वात्सल्य अङ्ग का पालन करने वाले श्री विष्णुकुमार मुनि की स्मृति को प्रति वर्ष ताज़ा बना देता है। सहधर्मी भाइयों के साथ क्रियात्मक रूप से—कोरे बातूनी जमा खर्च से नहीं—वात्सल्य भाव का निर्वाह करने वाले धर्मप्रेमी वात्सल्य अङ्ग के पालक, धारक और प्रभावक कहे जाते हैं। उनके इस सत्कार्य का सुफल भी जैनदर्शन में साधारण नहीं बतलाया है, वे जैनधर्म के सूत्रधार, जैनतीर्थ के प्रवर्तक और जिनमार्गरतों के मार्गदर्शक तीर्थङ्कर-पद को अलंकृत करके निर्वाण-लाभ करते हैं। किन्तु इस जातीय प्रेम से कौन से इहलौकिक और पारलौकिक सुख की प्राप्ति होती है ? यह हम आजतक भी नहीं जान सके। पण्डितवर आशाधर जी ‡ ने भी जैनमात्र के साथ ही सहानुभूति और सत्प्रेम-प्रदर्शन का समर्थन किया है, पर आज कल का तो वातावरण ही निराला है। सहधर्मी वात्सल्य का स्थान स्वजातीय पक्षपात को मिलने लगा है, अमृत का स्थान विष को दिया जाता है।

यह विष कैसे फैला ?

समाज में यह विष कैसे फैला ? आजसे लगभग १९ वर्ष के पहले जब शिक्षण प्राप्त करने के लिये मैं ने काशी के विद्यालय में प्रवेश किया तब पहली बार मुझे मालूम हुआ कि जैन समाज में भी बहुतसी जातियाँ हैं। मेरी बाल्यावस्था को भी मेरी इस अज्ञानता का दोष दिया जा सकता है, किन्तु मेरी समझ के अनुसार इस अज्ञानता का मुख्य कारण था—मेरे नगर में केवल एक अग्रवाल जाति का पाया जाना। यदि अन्य स्थानों की तरह मेरी जन्मभूमि के आसपास भी अन्य जैन जातियों का वासस्थान होता तो विद्यालय में उस समय मुझे अचरज में न पड़ना पड़ता, जब प्रथम परिचय में ही मेरे समवयस्क एक छात्र ने मुझ से मेरी जाति पूछी, और मैं ने कुछ चकितसा होकर अपने को 'जैनी' बतलाया।

उक्त घटना के बाद कई वर्ष तकके अपने अध्ययन काल में, मुझे जाति भेद की उतनी उत्कट गन्ध नहीं मिली जितनी आज अध्यापन काल में मिल रही है। इस विषय में आज समाज का वातावरण कैसा है ? अधिकारपूर्वक मैं यह नहीं बतला सकता, किन्तु प्रति वर्ष चारों ओर से आने वाले अपने विद्यार्थियों के साथ बात चीत करने से मैं ने यही निश्चित किया है कि समाज की मनोवृत्तियां

‡ वरमेकोऽप्युपकृतो जैनो वरं नान्ये सहस्रशः। —सागार धर्मामृत।

दूषित हो चली हैं और इस विष का असर सर्वत्र फैलता जाता है। समाज के विद्यालय तो उसके केन्द्र कहे जाने लगे हैं, जहाँ अमृत के साथ विष को घूंट भी पिलाई जाती है या दूषित मनोवृत्ति के कारण स्वयं छात्र उसका पान करते हैं। आज इस विष का प्रसार शिक्षा-संस्थाओं के द्वारा हो सकता है किन्तु उसका 'श्रीगणेश' जातीय सभाओं से ही हुआ है। कारण, जिन जातियों की अपनी सभा स्थापित हैं उन जाति वालों में ही मुझे इस विष की उत्कट गन्ध मिली है।

जातीय-सभाएं !

हम जातीय सभाओं के वहीं तक समर्थक हैं जहाँ तक वे अपनी जाति का सुधार करते हुए, अन्य जैन जातियों के साथ सद्भाव और सत्प्रेम का जनता में प्रचार करती हैं। किन्तु यदि वे सभाएं अपनी २ जाति में पारस्परिक असहभाव और अहंमन्यता को प्रोत्साहन देती हैं, जैसा कि, एक दो जातीय सभाओं के अधिवेशनों में हमने देखा है तो हम ही क्यों, कोई भी धर्मप्रेमी उनके अस्तित्व को जैन समाज के लिये लाभदायक नहीं स्वीकार कर सकता। यदि कोई महाशय इन जातीय सभाओं का विषमय फल देखना चाहें तो उन प्रान्तों में जाकर देखें जहां अनेक जैन जातियों का पास ही पास निवास स्थान है। उदाहरण के लिये मैं बुन्देलखण्ड या उत्तरीय मध्यप्रान्त का नाम उपस्थित करता हूँ। वहां के अधिवासी अपने मित्रों के मुख से मैं ने सुना है कि, जातीय-सभाओं की स्थापना के पूर्व, उस प्रान्त में बसने वाली परवार, गोलापूर्व, गोलालारे आदि जातियों में खूब स्नेह था, प्रत्येक गाँव में तीनों जातियों की सम्मिलित पञ्चायत थी। तीनों अपने को एक ही वृक्ष की शाखाएँ समझते थे। किन्तु जब से दूसरों की देखा देखी तीनों ने अपनी २ सभाएं स्थापित कीं, पुराना शताब्दियों का सत्प्रेम हवा हो गया, पञ्चायती सत्ता शिथिल होगई, तू और मैं का भाव उत्पन्न होगया, परस्पर में एक दूसरे को शंका की दृष्टि से देखने लगे। यदि आज इन भिन्न २ सभाओं के स्थान में समस्त प्रान्त की एक ही सभा होती तो आज उस प्रान्त में 'त्रिवेणी' की एक ही धार बहती होती और उसके संगम तट पर वात्सल्य-जल में स्नान करने के अभिलाषियों का प्रति समय मेला लगा रहता, जिसमें अन्य प्रान्तों के अधिवासी भी अपना रोग दूर कर सकते। किन्तु—

'बीति ताहि बिसारदे, आगे की सुधि लेऊ'

जो होना था सो हो चुका, 'अब पछताए होत का' क्योंकि—'गया वक्त फिर हाथ आता नहीं', अब तो आगे का प्रबन्ध करना चाहिये।

क्या उपाय किया जाये ?

जिन जातीय सभाओं ने समाज में इस विष वृक्ष के बीज बोये थे, पारस्परिक मत भेद असहिष्णुता, कलह आदि के कारण आज उनकी सत्ता छिन्न भिन्न हो चुकी है, अनेक जातीय सभाएं मर चुकीं, कुछ अभी सांस लेरही हैं, और कुछ जीवित हैं, किन्तु उनका जीवन मृत्यु के द्वार तक पहुँचना ही चाहता है। अतः अब उस ओर लक्ष्य देने की विशेष आवश्यकता नहीं है। अब तो, उन मृत और मरणोन्मुख जातीय सभाओं के समाधि-स्थल पर

प्रान्तीय-सभाओं का सुन्दर भवन निर्माण करना चाहिये और उनका मुख्य उद्देश जैनसमाज की अन्तर्जातियों में फैली हुई फूट और बैर को हटा कर पारस्परिक प्रेम, सद्भाव और सहानुभूति का प्रचार करना, होना चाहिये।

दूसरा उपाय

जातीय-सभाओं के लगाये हुए विष वृक्ष को संवर्द्धन और संरक्षण करने का दोष समाज की शिक्षा संस्थाओं पर लगाया जाता है। हम अपने अनुभव के आधार पर इतना कह सकते हैं कि इस दोषारोपण में कुछ सत्यता का अंश अवश्य है। किन्तु लोहा और लुहार दोनों में ही खोट है। समाज समझती है या उसे समझाने वाले समझाते हैं कि सब दोष संस्थाओं के कार्य कर्त्ताओं का ही है। परन्तु समय और परिस्थिति के प्रभाव ने उसके छात्रों की मनोवृत्तियों को कितना दूषित कर दिया है, समाज और उसे समझाने वालों को शायद इस बात का पता नहीं है। मुसलमान, हिन्दू शासक को और हिन्दू, मुसलमान शासक को आज जिस दृष्टि से देखते हैं, ठीक वही दृष्टि, छात्रों की अपने से अन्य जातीय कार्यकर्त्ता के प्रति रहती है। यदि कोई अध्यापक अन्य जातीय छात्रों के साथ ही साथ अपने सजातीय छात्र के प्रति भी उचित और आवश्यक सद्व्यवहार करता है तो छात्र उसे भी पक्षपात का रूप देते हैं। कक्षा में किसी दिन अपने सजातीय छात्र से पाठ न पूछना भी पक्षपात समझा जाता है। त्रैमासिक आदि परीक्षाओं में अपने परिश्रम और बुद्धिबल पर अधिक नम्बर पाना भी उसके सजातीय अध्यापक का पक्षपात कहा जाता है। जीवन भर अन्य जातीय छात्रों को मनसा, वाचा, कर्मणा सहायता पहुँचाने वाला अध्यापक या कार्यकर्ता यदि किसी समय उचित और आवश्यक समझ कर, अपने सजातीय छात्र को भी उसी तरह सहायता पहुँचा देता है तो यह भी पक्षपात कहा जाता है। और आश्चर्य तथा खेद तो इस बात पर है कि सहायता पाने वाले छात्र ही कृतघ्नता को धता बता कर उक्त बातों का विरोध करते हैं। ऐसी विकट परिस्थिति मौजूद है, जिसमें से होकर, शिक्षा संस्थाओं के अध्यापकों तथा कार्यकर्त्ताओं को अपना मार्ग तय करना होता है। इस परिस्थिति को उत्पन्न करने में तथा मनोवृत्तियों को दूषित करने में भारत के राजनैतिक और सामाजिक वातावरण ने भी कम हाथ नहीं बटाया है। किन्तु उधर भी कुछ नेता इस रोग का उन्मूलन करने में जुटे हुए हैं। हमें भी अर्थात् शिक्षा संस्थाओं के अध्यापक और कार्यकर्ता गण को भी समाज से इस रोग का उन्मूलन करने के लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिये। उन्हें यह भूल जाना चाहिये कि हम अग्रवाल हैं, पद्मावती पुरवाल हैं, परवार हैं या गोलालारे हैं। जाति आदि पूछी जाने पर उनके मुख से, बिना किसी हिचकिचाहट के एक ही उत्तर निकलना चाहिये कि, हम जैन हैं। जैन छात्र मात्र हमारे बच्चे हैं, उनमें जो योग्य होनहार परिश्रमी और बुद्धिमान हैं वे किसी भी जाति के हों—हमें पुत्र वत प्रिय हैं, उनका सुख हमारा सुख है और उन का दुःख हमारा दुःख है। यदि आज थोड़े से भी शिक्षक उक्त भावना को अङ्गीकार करके कार्य क्षेत्र में जुट जाएँ और लांछन तथा दोष की पर्वाह

न करके अपने निश्चित पथ का अनुसरण करते चले जायँ तो शिक्षा संस्थाओं का दूषित वातावरण कुछ वर्षों में ही शुद्ध और पवित्र बन सकता है। जैन समाज और जैनधर्म की रक्षा के नाम पर, समाज के प्रत्येक व्यक्ति से—विशेषतः अध्यापक, छात्र और सम्पादक वर्ग से—हम अपील करते हैं, कि वे इस संक्रामक विष का शमन करने के लिये, अपने स्वार्थों, परम्परा गत भावनाओं और दूषित मनोवृत्तियों का बलिदान करें और समाज में सच्चे वात्सल्य का प्रसार करके प्रातः स्मरणीय श्री विष्णु कुमार मुनि की पवित्र स्मृति में सच्ची श्रद्धाञ्जली देकर कल्याण-मार्ग के सेवक बनें।

दार्शनिक की महत्ता !

[१]

विश्व के मूल तत्व हैं कौन
परस्पर क्या उनका संबन्ध
क्रिया-गति कैसी करते नित्य
चेतना जड़ तत्वों के स्कन्ध—

[२]

अन्त औ आदि द्वंद्व का तत्व
प्रलय सृष्टि का सारा सार
दिखाते प्रकट खोलकर तथ्य
तत्व वेत्ता के मथित विचार

[३]

दार्शनिक प्रकृति तत्व को देख
हमें बतलाता उसका मर्म
मोह तम से आवृत संसार
जानता सत् शिव सुंदर धर्म

[४]

विश्व की जटिल समस्या कौन
समाहित कर सकता साधार
दार्शनिक यदि नहिं होता कौन
बताता निःश्रेयस का द्वार

[५]

दुःखमय क्षणभंगुर संसार कौन साधन से होगा पार
प्रतिक्षण जीवन का यह लक्ष्य दार्शनिकता का उत्तम द्वार

—चैनसुखदास जैन

जैनधर्म और ईश्वरवाद

[लेखकः—पं० जगन्मोहन लाल जी]

अधिकांश जनता का विश्वास है कि सृष्टि को संचालन करने वाला ईश्वर है, क्यों कि बिना संचालक के सृष्टि का इतना बड़ा कारबार कैसे चल सकता है। उक्त विषय को लेकर सन् १९३० और १९३१ को 'माधुरी' में काफ़ी लेख पक्ष और प्रतिपक्ष में प्रकाशित हुए थे। इस लेख के लिए मुझे जिसने प्रेरित किया है वह था श्री विद्येन्द्र शास्त्री साहित्याचार्य द्वारा लिखित 'माधुरी' अप्रैल १९३१ का 'ईश्वर और अनीश्वर-वाद' नाम का लेख।

यह लेख उक्त लेखक ने श्रीयुत् हैगड़े महोदय द्वारा लिखित 'ईश्वरवाद की समालोचना' की प्रत्यालोचना के रूप में लिखा था और हैगड़े महोदय केसाथ ही साथ जैनधर्म पर भी कुछ आक्षेप किए थे। प्रस्तुत लेख में यह विचार करना है कि उक्त आक्षेप उचित हैं या अनुचित, और अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार 'युक्तिवाद' द्वारा विद्वान् लेखक महोदय ईश्वर को सृष्टिकर्त्ता सिद्ध कर सके हैं या नहीं।

यद्यपि दर्शनशास्त्र का विषय सर्वसाधारण जनता के लिए रुचिकर नहीं हुआ करता तथापि कर्तव्यवश ऐसे लेखों का लिखना असंगत नहीं कहा जा सकता और 'जैनदर्शन' पत्र के उद्देश्यानुसार तो यह सर्वथा सुसंगत होगा, फिर भी विषय को सरल बनाने की यथासंभव चेष्टा की जावेगी।

लेखक महोदय यद्यपि लेख के प्रारम्भ में यह बात लिख चुके हैं कि "किसी सिद्धान्त को मान कर उसे तर्क सम्मत सिद्ध करना जल्प और वितण्डा है और वह तत्वनिर्णय का उपाय नहीं है", फिर भी आपने ईश्वर को सृष्टिकर्ता सिद्ध करने के लिए सर्व प्रथम वेदों की प्रमाणता का आश्रय लिया है। जिसके लिए कहा जा सकता है कि आपने सर्वप्रथम वेदोक्त सिद्धान्त को अपना सिद्धान्त बना लिया है और पश्चात् उसे तर्क सम्मत सिद्ध करने का उद्योग किया है। आपका यह प्रयास आपके लेखानुसार जल्प और वितण्डा के लक्षण में ही समाविष्ट होता है और इसी लिए आपके ही कथनानुसार आपका संपूर्ण लेख तत्व निर्णायक नहीं कहा जा सकता।

वेद की प्रमाणता की व्यापकता में आपने यह युक्ति दी है—"अब जैनी भाई भी वेद में से अपने तीर्थङ्करों के नामों का निर्देश करने लग गए हैं। क्या इसका यही कारण नहीं है कि वेद को प्रमाण मानने वाले मनुष्यों की एक बड़ी संख्या है और यदि उनके तीर्थङ्कर देवों के नाम और पते उसमें निकल आवें तो उनके सम्प्रदाय को प्रामाणिकता और पुष्टि मिलेगी।"

लेखक का भाव यह है कि जैन लोग भी हृदय से वेदों को प्रमाण ज़रूर मानते हैं अन्यथा उसमें तीर्थङ्करों का नाम क्यों ढूँढते।

पर लेखक की यह कल्पना भ्रान्त है; वेदों में तीर्थङ्करों के नाम निर्देश दिखलाने का यह तात्पर्य नहीं है, बल्कि जो लोग तीर्थङ्करों के अस्तित्व से या उनकी महत्ता से अनभिज्ञ हैं और वेदों को प्रमाण मानते हैं उन्हें उनके द्वारा प्रमाण माने हुए आगम का प्रमाण देकर तीर्थङ्करों के अस्तित्व और उनकी महत्ता को प्रामाणिक मान लेने के लिए बाध्य किया जाता है।

फिर भी यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि जैनधर्म के सिद्धान्त के अनुकूल जो २ विषय वेद, स्मृति, पुराण, कुरान, इञ्जील आदि धर्मपुस्तकों में कहीं भी लिखे हों जैनधर्म उन्हें प्रमाण मानता है। वेदानुयायी लोगों को भी यह कहना होगा कि वेदानुकूल तत्व जहां भी मिलते हों वे प्रमाण हैं, परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि ऐसा मानने से विरुद्ध सिद्धान्त भी प्रामाणिकता की श्रेणी में आगए।

कोई भी वादी, प्रतिवादी के आगम को प्रमाण न मानते हुए भी प्रतिवादी के लिए, प्रतिवादी के ही माने हुए प्रमाण को उपस्थित कर देता है ताकि प्रतिवादी भी वादी के उन सिद्धान्तों से सहमत हो जावे जिन्हें कि वह अब तक अपने दुराग्रह से प्रामाणिक नहीं मानता था। ऐसा प्रसङ्ग दर्शन शास्त्रों में जगह २ आया है; अतएव यह नहीं कहा जा सकता कि वेदानुयायियों के लिए वेद प्रमाण उपस्थित कर देने मात्र से जैन लोग वेद को प्रमाण मानने वालों की संख्या के अन्तर्गत हो गए।

अब हम आपकी दूसरी युक्ति उपस्थित करते हैं। श्री हैगड़े महोदय ने आपके सामने प्रश्न उपस्थित किया था कि "सब वस्तुओं का कर्त्ता ईश्वर है और ईश्वर भी एक वस्तु है, अतः उसका भी एक कर्त्ता होना चाहिए"। इसके उत्तर में साहित्याचार्य जी का कथन है कि—

"(२) ईश्वरास्तित्व मानने वालों का यह सिद्धान्त नहीं है कि सब वस्तुओं का कर्त्ता ईश्वर है, या वस्तु है इसलिए उसका कर्त्ता ईश्वर है किन्तु सिद्धान्त यह है कि सब जन्य वस्तुओं का कोई न कोई कर्त्ता है और चूँकि हम इसके कर्ता हो नहीं सकते, इसलिए अस्मदाद्यतिरिक्त कर्ता ईश्वर सिद्ध होता है।"

—माधुरी पेज ३४९।

उक्त लेख के अनुसार लेखक ने ईश्वर तथा आत्मा और आकाश को नित्य माना है। यथार्थ में इस अनुमान का मूल किसी युक्ति पर नहीं है, बल्कि लेखक की मान्यता पर है। लेखक ने बिना किसी युक्ति के निर्णय कर लिया है कि ये तीन वस्तु जन्य नहीं हैं और शेष जन्य हैं; इसलिए तीन के लिए कर्त्ता न ढूंढा जावे और शेष को ईश्वर निर्मित मान लिया जावे। लेख में कोई युक्ति, कोई अनुमान नहीं है जिससे यह सिद्ध किया गया हो कि ये तीन जन्य नहीं हो सकते और इनके सिवाय पर्वत, नदी, समुद्र, शरीर, वृक्ष आदि अवश्य जन्य हैं और जब तक यह बात सिद्ध नहीं की जा सकती तब तक उस असिद्ध हेतु के आधार पर ईश्वर निर्मितता नहीं सिद्ध होती।

ईश्वर की नित्यता के सम्बन्ध में लेखक का कथन है कि—

"(३) जब तक यह सिद्ध न कर दिया जावे कि वस्तुमात्र अनित्य हैं तब तक ईश्वर का कर्त्ता ढूंढना बालू में से तेल निकालना है......... जैन सिद्धान्त में भी परमाणु, अलोकाकाश, सिद्धशिला आदि कई बातें नित्य हैं; वे सभी वस्तु होने से अनित्य हो जावेंगी, इत्यादि......।"

जिस तरह ईश्वर को अनित्य सिद्ध करने के लिए लेखक प्रतिवादी को मैदान में बुलाते हैं उसी प्रकार आपको भी ईश्वर को नित्य सिद्ध करने और तदातिरिक्त (आकाश आत्मा को छोड़कर क्योंकि लेखक इन्हें नित्य मानता है) पदार्थों को अनित्य (जन्य) सिद्ध करने के लिए मैदान में बुलाया जाता है।

जैन सिद्धान्त में वर्णित नित्य पदार्थों का उदाहरण देकर आपने हमें प्रेरणा की है कि हम भी आपसे यह प्रश्न करें कि जिस तरह वेदों में जैन तीर्थङ्करों के नाम निर्देश मात्रसे आपने जैनों को वेद प्रमाण मानने वालों की संख्या में परिगणित किया है उसी प्रकार क्या हम भी आपकी गणना जैन सिद्धान्त को प्रमाण मानने वालों में कर सकते हैं? यदि नहीं तो आप भी नित्य पदार्थ ढूंढने के लिए जैन शास्त्रों में क्यों घुसने चले हैं।

जैन सिद्धान्त उन्हें इस प्रकार का नित्य नहीं मानता जैसाकि आप मानते हैं। जैन सिद्धान्त स्कंध से परमाणुओं का पैदा होना और परमाणुओं से स्कंध आदि कार्य होना मानता है। अलोकाकाश और सिद्धशिला आदि भी सर्वथा नित्य नहीं माने जाते, बल्कि अपेक्षाकृत नित्य हैं और इसी प्रकार अपेक्षाकृत नित्य पृथ्वी, पर्वतादिक भी हैं जिन्हें आप सर्वथा अनित्य मानते हैं।

आगे चलकर आपने लिखा है कि—

"(४) यदि आप ऐसा अनुमान करें कि सर्वं जन्यं वस्तुत्वात् अर्थात् सब अनित्य हैं वस्तु होने से, तो भी काम नहीं चल सकता, क्योंकि इस अवस्था में दृष्टांत नहीं मिल सकता और दृष्टान्त के बिना केवल प्रतिज्ञा मात्र से साध्य सिद्धि नहीं हो सकती।"

यद्यपि यह अनुमान न ईंगड़े महाशय का है और न जैनसिद्धान्त में वर्णित है, तथापि लेखक ने उसकी कल्पना करके खण्डन किया है जो बड़ा ही विचित्र है। सभी दार्शनिक यह बात मानते हैं कि साध्य की सिद्धि में सद्धेतु ही प्रयोजक है न कि दृष्टान्त, पर लेखक दृष्टांत के अभाव में साध्य को असिद्ध कर रहे हैं और हेतु का कुछ भी खण्डन नहीं करते हैं।

आपने अपने प्रतिपक्षी की ओर से आशंका की है और उसका उत्तर निम्न प्रकार दिया है:—

"ईश्वर अनित्य है वस्तु होने से" इस अनुमान में पक्ष यदि असिद्ध है तो हेतु आश्रयासिद्ध है, और पक्ष यदि सिद्ध है तो जिस प्रमाण से आपने धर्मी ईश्वर सिद्ध किया है उससे वह नित्य और अर्वज्ञ ही सिद्ध होगा।"

यद्यपि जैन सिद्धान्त किसी भी वस्तुको सर्वथा नित्य या अनित्य नहीं मानता बल्कि वे दोनों अपेक्षाकृत वस्तु में पाए जाते हैं तथापि उपर्युक्त खण्डन सर्वथा निःसार है। क्योंकि यहाँ पर ईश्वर "विकल्प सिद्ध धर्मी" कहा जा सकता है, इसलिए पहिले पक्ष का उत्तर गलत है। द्वितीय पक्ष भी

असिद्ध है, क्योंकि जिस प्रमाण से ईश्वर की सत्ता सिद्ध होगी उससे ईश्वर नित्य ही सिद्ध होगा इसका क्या नियम है। आपकी तरह प्रतिवादी भी कह सकता है कि धर्मीग्राहक प्रमाण द्वारा अकर्ता और अनित्य ही ईश्वर सिद्ध होता है; तब क्या निर्णय होगा? अतः दोनों पक्ष युक्तिशून्य हैं। यह ऐसी ही बात है कि यदि धूम से अग्नि सिद्ध हो जावे तो फिर वह उपलों की ही है यह स्वतः सिद्ध हो जावेगा। भला ऐसी पोच बातों के लिए युक्तिवाद में क्या स्थान है?

'सृष्टि को ईश्वर ने कब बनाया' आप लिखते हैं कि इसका उत्तर 'दर्शनशास्त्र' नहीं देगा; इसका उत्तर तो 'इतिहास' देगा, पर महाशयजी इतिहास तो अकर्ता ही सिद्ध कर रहा है, कर्तृत्व के लिए तो इतिहास में कोई प्रमाण नहीं है। यदि होता तो आप उसे बिना उपस्थित किए कैसे रहते और ऐसी दशा में दर्शनशास्त्र के विवाद का मूल्य ही क्या था?

हेगड़े महाशय के इस आक्षेप का कि "ईश्वर सर्वव्यापक होकर जगत्कर्त्ता नहीं हो सकता" आपने यों खण्डन किया है—

"क्या कर्ता होने के लिए एक देशीय होना चाहिए, यदि ऐसा ही है तो जितने एक देशीय पदार्थ हैं वे सब जगत्कर्ता होने चाहिए"।

कितना भ्रमपूर्ण उत्तर है! हेगड़े महाशय ने यह नहीं लिखा कि "जो २ एकदेशीय हैं वे २ जगत्कर्त्ता हैं", तब उन पर यह आक्षेप कैसे लाद दिया गया, यह समझ में नहीं आता। बल्कि उसका यह भाव स्पष्ट है कि ईश्वर यदि सर्वव्यापक है तो क्रिया नहीं कर सकता। क्योंकि क्रिया का अर्थ है प्रदेश संचालन। जबकि वह व्यापक है तब खाली स्थान तो है नहीं, तब प्रदेश संचालन कैसे करेगा और बगैर क्रिया के कर्त्ता कैसे होगा। इससे सीधा भाव झलक जाता है कि यदि आप को कर्ता मानना इष्ट है तो व्यापक ईश्वर, कर्त्ता हो नहीं सकता। इस वाक्य से यह नियम नहीं निकाला जा सकता कि सब एकदेशीय जगत्कर्त्ता हो जावेंगे या एकदेशीय मान लेने पर वह जगत्कर्ता है ऐसा मानने को हम तैयार हैं। बल्कि "ईश्वर जगत्कर्त्ता नहीं हो सकता" इसमें अनेक युक्तियों के साथ २ यह भी एक युक्ति है कि व्यापकता के कारण क्रिया के अभाव होने से भी कर्त्ता सिद्ध नहीं होता।

आगे चलकर साहित्याचार्य जी लिखते हैं कि "जगत् के उपादान कारण हैं अनन्त अनेक परमाणु। उनमें एकदेशीय ईश्वर गति नहीं दे सकता, अतएव वह सर्वव्यापक ही हो सकता है"। परन्तु ऐसा कहने के पहिले यह सिद्ध कर लेना जरूरी था कि उन परमाणुओं को गति देने वाला कोई है। तब वह एकदेशीय है या सर्वदेशीय, यह प्रश्न उठ सकता था। अभी तो सामान्यतया जगत्कर्तृत्व भी सिद्ध नहीं हुआ तब विशेष प्रश्न कैसे उठाया जा सकता है।

शास्त्रीजी ने अपने पक्ष की पुष्टि में एक विचित्र युक्ति दी है जो यथार्थ में हास्यास्पद है। आप लिखते हैं—

"आप पूंछ सकते हैं कि शराब जैसी धर्म कर्म नाश करने वाली वस्तु ईश्वर ने क्यों उत्पन्न की? इस सम्बन्धमें मैं आपसे पूंछता हूँ कि शराब धर्म कर्म नाश करने वाली है यह आपने किस प्रमाण से

हिस्टीरिया

[लेखक—वैद्यराज पं० शङ्करलाल जैन, सम्पादक "वैद्य" मुरादाबाद]

हिस्टीरिया इस समय का एक नवीन रोग है। इसके विषय में विद्वानों के भिन्नभिन्न मत हैं, प्राचीन आर्षग्रन्थों में इसका स्पष्टरूप से वर्णन नहीं है, किंतु आधुनिक ग्रन्थों में इसका नाम देखा जाता है। इसको बहुत से वैद्य योषापस्मार (स्त्रियों का एक प्रकार का मृगी का रोग) कहते हैं और बहुत से वैद्य इसको गर्भाशयोन्माद कहते हैं। तथा कितने ही वैद्य इसको आक्षेपवात या वायुका आक्षेप एवं कोई कोई वैद्य इसको तन्द्रा रोग कहते हैं। मूर्ख और गंवार लोग इसको भूतबाधा कहते हैं।

यह एक प्रकार का मानसिक रोग है, इस रोग का आदि कारण मन का दुख या क्षोभ है। मनवाही स्रोतों के खराब होने से यह रोग उत्पन्न होता है। विशेषकर स्त्रियों के ही यह देखा जाता है। किसी किसी के मत से पुरुषों के होना भी संभव है। इसके लक्षणों को देखने से यह बड़ा ही भयङ्कर मालूम होता है, परन्तु वास्तव में उतना भयङ्कर नहीं है। इसकी मारात्मक या असाध्य रोगों में गणना नहीं है। उत्तम चिकित्सा होने से यह बहुत शीघ्र आराम हो जाता है।

यह अपने कारणों से उत्पन्न नहीं होता, बल्कि दूसरे विकारों को अपना कारण बनाकर प्रगट होता है। इसके बहुत से लक्षण मृगी-रोग से मिलते हैं। परन्तु मृगी के समान इसमें रोगी को जल में डूबने या आग में गिरने का भय नहीं होता, और न इसमें मृगी के समान बुद्धि का नाश ही होता है। मृगी की अपेक्षा इसका आक्रमण बहुत देर रहता है। किसी रोगी को आध घन्टे में, किसी को एक घन्टे में, किसी को दो तीन घन्टे में और किसी २ को ३–४ प्रहर तक में होश होता है। किसी को दिन में ८-४ बार वेग होता है, किसी को ८ दिन में एक बार और किसी को एक महीने में

[शेषांश पृष्ठ १८]

जाना। धर्म और अधर्म का निर्णय किस युक्ति से किया। शास्त्र या शब्द प्रमाण के सिवा इन विषयों में अन्य प्रमाण चल ही नहीं सकता, तो फिर जिस शास्त्र के आधार से आप इसे प्रमाण मानते हैं उसी शास्त्र के आधार पर ईश्वर को (जगत्कर्त्ता) मानने में आपको क्यों संकोच होता है?"

इस सम्बन्ध में इतना कह देना ही उचित है कि शराब कैसी है यह बात केवल शास्त्र या शब्द प्रमाण द्वारा ही जानी जा सकती है, यह बात नहीं है। प्रत्यक्षगत शराब की हानियाँ प्रत्येक व्यक्ति के अनुभव में सदा आती हैं। फिर जगत्कर्तृत्व प्रतिपादक आगम ही उसे बुरी नहीं बताते, बल्कि अकर्तृत्व प्रतिपादक आगम भी उसे धर्मकर्म नाशक बतलाता है। तीसरी बात यह है कि यह तो प्रकारान्तर से केवल 'आगमवाद' है, 'युक्तिवाद' तो नहीं है, तब आपने जो प्रतिज्ञा की थी कि हम 'युक्तिवाद' से ईश्वर को जगत् का कर्त्ता सिद्ध करेंगे वह कहां ठहरती है? [अपूर्ण]

एक बार इसका वेग होता है । स्त्रियों के आर्त्तव की प्रवृत्ति के समय इसका वेग अधिकता में होता है।

सामान्य लक्षण—इसका वेग होते ही रोगी बेहोश हो जाता है, पर मृगी के समान जहाँ तहाँ नहीं गिर पड़ता, तथापि इसमें और मृगी रोग में बहुत कुछ समानता पायी जाती है। मूर्छित होने पर सम्पूर्ण शरीर और हाथ पाँव अकड़ जाते हैं, हाथों की मुट्ठी बंध जाती हैं, दाँतों की बत्तीसी बंद हो जाती है, बोला नहीं जाता और श्वास की गति अति तीव्र हो जाती है। तथा अन्ननालि में संकोच, पेट में अफारा या वायु का गोला ऊपर को चढ़ता मालूम होता है। शिर में दर्द, सन्धिस्थान की पीड़ा, मूत्र का कठिनता से उतरना इत्यादि लक्षण होते हैं।

होश में आने से पहले कोई रोगी रोता है, कोई हंसता है, कोई चिल्लाता है और कोई प्रलाप या वृथा बकवाद करता है। किसी के सम्पूर्ण शरीर में कंप होता है, किसी के उन्माद रोग के समान और किसी के भूतभ्रमित रोगी के समान लक्षण होते हैं।

हिस्टीरिया की मूर्च्छा की चिकित्सा—हिस्टीरिया रोगी की मूर्च्छा को दूर करने के लिये या उसके दांतों को खोलने के लिये व्याकुल होना या बलप्रयोग करना अनुचित है। यदि मूर्छित हुए बहुत देर हो जाय तो भी कोई भय की बात नहीं है। क्योंकि कुछ समय के बाद अपने आप होश हो जाता है। इसलिये मूर्च्छा को दूर करने के लिये सदैव साधारण चिकित्सा करनी चाहिए।

मूर्च्छा को दूर करने के लिये रोगी के मुख पर ३-४ बार शीतल जल के ज़ोर २ से छींटे दे। जो इस प्रकार करने से मूर्च्छा दूर न हो तो नीचे लिखे प्रयोगों में से एक दो प्रयोग सेवन कराके मूर्च्छा को दूर करने का प्रयत्न करे :—

१. सोंठ, मिरच और पीपल यह प्रत्येक औषधि १-१ रत्ती अथवा आधा आधा रत्ती लेकर एकत्र बारीक पीसकर एक काग़ज़ में रखकर उसकी फूंकनी सी बनाकर रोगी की नाक में लगा कर फूंक दें। इसके प्रयोग से रोगी शीघ्र आरोग्य हो जाता है।

२ नवसादर और चूना दोनों को बराबर भाग लेकर एक शीशी में भर कर और उसका मुंह अच्छी तरह बंद करके थोड़ी देर तक रखा रहने दे। फिर शीशी का मुंह खोलकर इस प्रकार रोगी के सामने रखे कि जिससे उसकी तीक्ष्ण हवा रोगी की नासिका में पहुँच जाय अथवा इसको हाथ में लेकर रोगी को थोड़ी देर सुंघावे। किन्तु इसका बहुत देर तक नहीं सुंघाना चाहिए।

३. काली मिरचों के चूर्ण को तुलसी के पत्तों के रस में मिला कर नास देने से मूर्च्छित रोगी तत्काल चैतन्य होता है।

४. लोंग को दूध में अथवा घी में घिसकर नेत्रों में आँजने से अथवा लोंग और त्रिकुटे के चूर्ण को दाँतों के ऊपर या मसूड़ों के ऊपर घिसने से मूर्च्छा दूर होती है।

५. मोर की पूंछ की धूनी देने से अथवा पूंछ के चांद को जलाकर उसकी राख चाशनी में मिला कर रोगी के दाँतों के ऊपर घिसने से दाँत खुल जाते हैं, और मूर्च्छा दूर होती है।

६. प्याज़ को पत्थर पर छेत कर नाक के

सामने रखने से हिस्टीरिया की मूर्च्छा दूर होती है।

७. मरुए के बीज, संहजने के बीज, वायविडङ्ग और कालीमिरच, सबको समान भाग लेकर बारीक पीसकर मूर्च्छित रोगी को सुंघावे, इससे शीघ्र ही हिस्टीरिया रोगी सावधान होता है। यदि इन उपायों से अथवा इसी प्रकारके अन्य उपायों से भी मूर्च्छा दूर न हो तो रोगी को कुछ समय तक बिना किसी उपचार के ही पड़ा रहने दे। कुछ देर में अपने आप मूर्च्छा दूर हो जाती है। जब मूर्च्छा दूर हो जाय तब उसको थोड़ा शीतल जल पिलावे। यदि रोगी को निद्रा आती हो तो उसको सुखपूर्वक शयन करने दे।

हिस्टेरिया रोग की चिकित्सा

१. एक तोला बालछड़ लेकर एक छटाँक जल में रात्री को भिगो देवे, फिर प्रातःकाल जल को वस्त्र में छान कर और उसमें १ तोला मिश्री मिला कर पान करे। इससे कुछ दिनों में हिस्टेरिया रोग दूर होता है।

२. हरे चिरचिटे की जड़ ४ रत्ती और काली मिरच ४ रत्ती दोनों को एकत्र जल में पीस कर प्रातःकाल ७ दिन तक पीने से हिस्टेरिया रोग में विशेष लाभ होता है।

३. दो रत्ती हींग आग पर भून कर घी में मिलाकर नित्य प्रति नियमित रूप से सेवन करने से थोड़े समय में ही हिस्टेरिया रोग और उसकी मूर्च्छा दूर होती है।

४. बच, तज और बालछड़ प्रत्येक औषधि १॥-१॥ माशे लेकर सबको एकत्र पीसकर चाशनी में मिला कर सबेरे और शाम के समय कुछ दिनों तक चाटने से हिस्टेरिया रोग दूर होता है।

५. जस्त की भस्म १ रत्ती और पीपल का चूर्ण २ रत्ती, दोनों को एकत्र चाशनी में मिलाकर सेवन करने से हिस्टेरिया रोग शान्त होता है।

६. मकरध्वज या रस सिन्दूर आधी रत्ती और उत्तम कस्तूरी आधी रत्ती दोनों को शहद में मिला कर प्रातःकाल और संध्या के समय बालछड़ के भीगे जल के साथ अथवा त्रिफले के जल के साथ सेवन करने से हिस्टेरिया रोग दूर होता है।

७. दशमूल की प्रत्येक औषधी और हल्दी, धमासा, शतावर, बाराहीकंद, प्रत्येक ५-५ तोला लेकर सब को १५ सेर पानी में पकावे। जब ६ सेर जल बाकी रह जाय, तब उतार कर वस्त्र में छान ले, फिर उस में २॥ सेर गुड़ तथा महुए के फूल, नागरमोथा, फूल प्रियंगू, मजीठ, बायविडंग, सुगंधबाला या खस, मुलैठी और लोध प्रत्येक २-२ तोला लेकर कूट कर मिलादे। फिर बर्त्तन का मुंह अच्छी तरह बंद करके २० दिन तक रखदे। पश्चात् इसको निकाल कर इसमें से २॥ तोला प्रातः काल और २॥ तोला संध्या के समय पान करे। इसके सेवन से दो महीने में हिस्टेरिया रोग दूर होता है। तथा मन्दाग्नि, पेट का अफारा, कफ के रोग, हृदय रोग, वायु के विकार, मस्तिष्क के रोग और मानसिक रोग दूर होते हैं। मूत्र साफ़ उतरता है।

इसके अतिरिक्त लशुनासव, कुमार्यासव, अभयासव, कनकासव, कुम्कुमासव, दुराल आसव आदि और भी बहुत से आसव तथा समस्त वातनाशक औषधिएँ हिस्टेरिया रोग में हितकर हैं।

जैनधर्म का मर्म और पं० दरबारीलाल जी !

[लेखक—पंडित राजेन्द्रकुमार जैन, न्यायतीर्थ]

भगवान पार्श्वनाथ से पूर्व जैनधर्म का अस्तित्व !

पं० दरबारीलाल जी भगवान पार्श्वनाथ से पूर्व जैनधर्म का अस्तित्व अन्धकार में बतलाते हैं। आपका कहना है कि जिस प्रकार भगवान पार्श्वनाथ का अस्तित्व ऐतिहासिक प्रमाणों से निश्चित है उसही प्रकार उनसे पूर्व तीर्थङ्करों का नहीं। आज तक एक भी ऐसा ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिला जिससे भ० पार्श्वनाथ से पहिले तीर्थङ्करों का भी अस्तित्व स्वीकार किया जा सके।

विद्वान् लेखक की बात को यदि ध्रुव सत्य भी स्वीकार कर लिया जाय तब भी इससे यह परिणाम नहीं निकलता कि भगवान पार्श्वनाथ से पहिले जैनधर्म का अस्तित्व अनिश्चित है। ऐसी सैकड़ों बातें मिलेंगी जिनके समर्थक स्वतंत्र ऐतिहासिक प्रमाण नहीं किन्तु फिर भी उनको साम्प्रदायिक मान्यता से ही सत्य स्वीकार किया जाता है। अभी थोड़े ही समय की बात है कि मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त जैन नहीं माना जाता था और न इस विषय की जैन कथाओं को ही सत्य समझा जाता था किन्तु समय ने पलटा खाया और मौर्य सम्राट जैन माना जाने लगा तथा इस विषयक जैन कथायें भी सत्य स्वीकार की गईं। प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् मि० स्मिथ ने लिखा है कि मुझे अब विश्वास हो चला है कि जैनियों के कथन बहुत करके मुख्य २ बातों में सत्य हैं और चन्द्रगुप्त वास्तव में राज्य त्याग कर जैन मुनि हुए थे ‡। श्री जायसवाल * और मि० टामस † ने भी ऐसा ही

‡ I am now disposed to believe that the tradition probably is true in it's main line and that Chandragupta really abdicated and became a Jain ascetic

—V Smith E H I P. 146

* My studies have compelled me to respect the historical data of Jain writings, & I see no reason why we should not accept the Jain claim that Chandragupta at the end of his reign accepted Jainism and abdicated and died as a Jain ascetic.

—J B. O R. S Vol. III

अर्थात्—मेरे अध्ययन ने मुझे जैन ग्रन्थों के ऐतिहासिक कथनों को स्वीकार करने के लिए बाध्य किया है। कोई कारण नहीं कि हम जैनियों के इस कथन को कि चन्द्रगुप्त अपने राज्य के अन्तिम भाग में जैनी हो गया था और उसने जिन दीक्षा ले मुनिवृत्ति से अपने शरीर को छोड़ा था, विश्वास न करें।

† That Chandragupta was a member of a Jaina Community, is taken by their

लिखा है। दूर जाने की ज़रूरत नहीं स्वयं पं० दरबारीलालजी उत्तराध्ययन सम्बन्धी साम्प्रदायिक विवेचन को सत्य स्वीकार कर चुके हैं‡। इन सब बातों से तात्पर्य केवल इतना ही है कि किसी भी विषय के सम्बन्ध में जैन मान्यता को एक दम अविश्वसनीय कह देना ठीक नहीं।

शिलालेख आदि ऐतिहासिक सामिग्री को भी एक दम सत्य स्वीकार नहीं कर लिया जाता है किन्तु इनकी भी परीक्षा होती है। यदि ये परीक्षा में निर्दोष ठहरते हैं तो इनको सत्य स्वीकार किया जाता है। यही बात जैन कथा या अन्य साम्प्रदायिक बातों के सम्बन्ध में हो सकती है। हमारा कर्तव्य है कि हम इनकी भी परीक्षा करें और यदि ये हमको असम्भवता, परस्पर विरोध, अप्राकृतिकता और अन्य प्रमाणों के प्रतिकूल आदि दोषों से रहित प्रतीत हों तो हम इनको भी सत्य स्वीकार करें। जब तक जैन पुराणों के कथनों में इस प्रकार की बातें नहीं मिलतीं तब तक इनकी सत्यता में संदेह करना बुद्धिमानी का कार्य नहीं।

जैनधर्म उप सम्प्रदायों में विभाजित है और ऐसी बहुतसी बातें भी हैं जिनके सम्बन्ध में एक उप सम्प्रदाय दूसरे उप सम्प्रदाय से एक मत नहीं है। ऐसा होने पर भी ये सब चौबीस तीर्थङ्करों के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। इन्हों ने केवल चौबीस तीर्थंकरों को ही स्वीकार नहीं किया, किंतु उनका वर्णन भी प्रायः एकसा किया है। अतः जैनियों की इस मान्यता को कभी भी अनैतिहासिक स्वीकार नहीं किया जा सकता। जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान् डा० जैकोबी ने भी जैनियों के इस प्रकार के विवेचन में सत्यता की संभावना स्वीकार की है*। बरदाकान्त M. A. आदि अन्य प्रसिद्ध विद्वान भी जैनियों की इस मान्यता को स्वीकार कर चुके हैं†।

---

writers as a matter of course and treated as a known fact, which needed neither argument nor demonstration. —Jainism or early faith of Ashoka p 23

अर्थात्—चन्द्रगुप्त जैन थे यह जैन लेखकों ने एक स्वयं सिद्ध और सर्व मान्य बात के रूप में लिखा है। इसके लिए उन्हें कोई युक्ति या प्रमाण उपस्थित करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई।

‡ जैन जगत वर्ष ७ अङ्क ९—१०

* There is nothing to prove that Parsva was the founder of Jainism. Jaina tradition is unanimous in making Rishabha the first tirthankara (as its founder) there may be something historical in the tradition which makes him the first tirthankara. —Indian Antiquary Vol IX. P. 163

अर्थात—पार्श्वनाथ को जैनधर्म का संस्थापक सिद्ध करने के लिए प्रमाण का अभाव है। जैन मान्यता ऋषभदेव को अविरोध जैनधर्म का संस्थापक स्वीकार करती है। जैनियों की इस मान्यता में ऐतिहासिक सत्य की संभावना है।

† लोगों का यह भ्रमपूर्ण विश्वास है कि पार्श्वनाथ जैनधर्म के संस्थापक थे। किन्तु इसका प्रथम प्रचार ऋषभदेव ने किया था, इसकी पुष्टि में प्रमाणों का अभाव नहीं है। —बरदाकान्त मुख्योपाध्याय M. A.

वर्तमान चौबीस तीर्थंकरों में से भगवान ऋषभ देव आदि तीर्थंकर हुए हैं। इस कल्पकाल में सर्व प्रथम आप ही ने जनता को धर्म और कर्म का ज्ञान दिया था। आपके पिता का नाम श्री नाभिराय और माता का श्री मरु देवी था। आप ही के पुत्र भरत के नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष हुआ है। भगवान ऋषभ देव के सम्बन्ध में जैन पुराणों में इन सब बातों का स्पष्ट वर्णन मिलता है *।

जैन पुराणों के अतिरिक्त जैनेतर पुराण भी आपके सम्बन्ध में इसही प्रकार का वर्णन करते हैं †।

---

* हरिवंश पुराण सर्ग ८ श्लोक ५५, १०४ व सर्ग ९ श्लोक २१

† अग्नींध्र सूनोर्नाभेस्तु ऋषभोऽभूत् सुतो द्विजः। ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्र शताग्रजः ॥३९॥
सोभि षिच्यर्षभः पुत्रं महा प्राव्राज्य मास्थितः। तपस्तेपे महाभागः पुलहाश्रम शंसयः ॥४०॥
हिमाव्हं दक्षिणं वर्षं भरताय पितादृदौ। तस्मात्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः ॥४१॥
—मार्कण्डेय पुराण अध्याय ५० पृष्ठ १५० ।

हिमाव्हयं तु यद्वर्षं नाभे रासीन्महात्मनः। तस्यर्षभोऽभवत्पुत्रो मेरु देव्या महा द्युतिः ॥३७॥
ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्रः शताग्रजः। सोऽभिषिच्यर्षभः पुत्रं भरतं पृथिवी पतिः ॥३८॥
—कूर्म पुराण अध्याय ४१ पृष्ठ ६१ ।

जरा मृत्यु भयं नास्ति धर्मा धर्मौ युगादिकम्। नाधर्मं मध्यमं तुल्या हिमाद्देशात्तु नाभितः ॥१०॥
ऋषभो मरु देव्यां च ऋषभात भरतो भवत्। ऋषभोदत्त श्री पुत्रे शाल्य ग्रामे हरिं गतः ॥११॥
भरताद् भारतं वर्षं भरता सुमति स्त्वभूत् ॥१२॥
—अग्निपुराण अध्याय १० पृष्ठ ६२ ।

नाभि स्त्व जनयत्पुत्रं मरु देव्यां महा द्युतिः। ऋषभं पार्थिव श्रेष्ठं सर्वं क्षत्रस्य पूर्वजम् ॥५०॥
ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्र शताग्रजः। सोऽभिषिच्याथ भरतः पुत्रं प्राव्राज्यमास्थितः ॥५१॥
हिमाव्हं दक्षिणं वर्षं भरतायन्य वेदयत्। तस्माद् भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः ॥५२॥
—वायु महा पुराण पूर्वार्ध अध्याय ३३ पृष्ठ ५१ ।

नाभिस्त्वं जनयत्पुत्रं मरु देव्यां महा द्युतिम् ॥५९॥
ऋषभं पार्थिवं श्रेष्ठ सर्व क्षत्रस्य पूर्वजम्। ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्र शताग्रजः ॥६०॥
सोऽभिषिच्यर्षभः पुत्रं महाप्राव्राज्य मास्थितः। हिमाव्हं दक्षिणं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः ॥६१॥
—ब्रह्माण्ड पुराण पूर्वार्धे अनुषङ्ग पाद अध्याय १४ पृ० २४ ।

नाभेर्मरु देव्यां पुत्रमजनय ऋषभनामानं तस्यभरतो। पुत्रश्च तावदग्रजः तस्य भरतस्य पिता ऋषभः—
हेमाद्रेर्दक्षिणं वर्षं महद् भारतं नाम शशास ॥
[शेष पृष्ठ २५ पर देखो] —वाराह पुराण अध्याय ७४ पृष्ठ ४९ ।

इससे प्रगट है कि जहाँ तक भगवान ऋषभदेव के वंश परिचय का सम्बन्ध है वहाँ तक भारतीय साहित्य एक मत है। भगवान ऋषभदेव के वंश परिचय के साथ उनके आदि जैन तीर्थङ्कर होने का समर्थन भी भारतीय साहित्य से होता है ‡। इससे यह भी प्रगट है कि भगवान ऋषभदेव के वंश परिचय के समान उनके आदि जैन तीर्थंकर होने के सम्बन्ध में भी उपलब्ध भारतीय साहित्य एक मत है।

प्रश्न—भगवान ऋषभदेव के अस्तित्व के सम्बन्ध में यदि उपलब्ध भारतीय साहित्य को एक मत कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं किन्तु उनके आदि जैन तीर्थङ्कर होने के सम्बन्ध में यह बात स्वीकार नहीं की जा सकती। जिन भगवान ऋषभदेव को जैन साहित्य आदि जैन तीर्थङ्कर बतलाता है, उन्हीं को भागवत पुराण आदि में विष्णु का आठवाँ अवतार स्वीकार किया गया है ×। फिर इसमें अविरोध कैसा?

उत्तर—जिस भागवत में भगवान ऋषभदेव को विष्णु का आठवाँ अवतार माना है उसही में यह भी लिखा है कि इनही की शिक्षा को लेकर कलयुग में अमुक २ व्यक्ति जैन धर्म का प्रचार करेंगे +। इससे यह तो प्रमाणित है कि भ० ऋषभदेव को विष्णु का अष्टम अवतार

[अत्र नाभेः सर्गं कथयामि]

नाभेर्निसर्गं वक्ष्यामि हिमाङ्केस्मिन्नि बोधतः। नाभिस्त्वं जनयत्पुत्रं मरु देव्यां महामतिः ॥१९॥
ऋषभं पार्थिवः श्रेष्ठं सर्वं क्षत्रस्य पूजितं। ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरः पुत्र शताग्रजः ॥२०॥
सोऽभिषिच्याप्य ऋषभो भरतं पुत्र वत्सलः। ज्ञान वैराग्य माश्रित्य जितेन्द्रिय महोरगान् ॥२१॥
सर्वात्म नात्म निस्थाप्य परमात्मा नमीश्वरम्। नग्नो जटो निराहारो चीरी ध्वांत गतो हि सः॥२२॥
निराशस्त्यक्त संदेहः शैवमाप परं पदम्। हिमाद्रे दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत् ॥२३॥
तस्मात्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः।

—लिङ्ग पुराण अध्याय ४७ पृष्ठ ६८।

नते स्वस्ति युगावस्था क्षेत्रेष्वष्ट सुसर्वदा। हिमाह्वयं तुवै वर्षं नाभेरासीन्महात्मनः ॥२७॥
तस्यर्षभो भवत्पुत्रो मेरु देव्यां महा द्युति। ऋषभाद्भरतो जज्ञे ज्येष्ठः पुत्र शतस्य सः ॥२८॥

—विष्णु पुराण द्वितीयांश अध्याय १ पृष्ठ ७७ वैंकटेश्वर छापा बम्बई का।

नाभेः पुत्रश्च ऋषभः ऋषभाद्भरतो भवत्। तस्य नाम्ना त्विदं वर्षं भारतं चेति कीर्त्यते ॥५७॥

—स्कन्ध पुराण माहेश्वर खण्ड के कौमार खण्ड अध्याय ३७।

‡ भागवत स्कन्ध २ अध्याय ७ श्लोक १०।

इसके अर्थ में वेदभाष्यकार पं० ज्वालाप्रसाद जी मिश्र ने निम्नलिखित शब्द लिखे हैं:—"………ऋषियों ने नमस्कार कीनो, स्वस्थ शान्त इन्द्रिय सब संग त्यागे ऋषभदेव जी भये जिनसे जैनमत प्रगट भयो"।

× भागवत प्रथम स्कन्ध अध्याय तीन श्लोक १३।

+ भागवत स्कन्ध ५ अध्याय ६ श्लोक ८–११।

लिखने वाली भागवत ही जैनधर्म और भगवान ऋषभदेव की शिक्षा में भिन्नता नहीं मानती। जिस महा पुरुष ने जैनधर्म स्वरूप ही शिक्षा दी है वही जैन तीर्थङ्कर है। चाहे ऐसे महापुरुष का एकादि शास्त्र किसी भी नामान्तर से भले ही स्मरण करलें। इससे प्रकट है कि भारतीय साहित्य केवल भ० ऋषभदेव के वंश परिचय के सम्बन्ध में ही एक मत नहीं है अपितु उनके जैन तीर्थङ्कर होने के सम्बन्ध में भी एक मत है।

प्रकृत पुराण चाहे वे जैन हैं या जैनेतर आज से दो हज़ार वर्ष के भीतर के ही हैं, फिर भी इनका आधार अति प्राचीन है *। यदि यह कहा जाय कि इनका आधार वैदिक साहित्य है तब भी कोई अत्युक्ति नहीं। पुराणों में ऐसी अनेक कथायें मिलती हैं जो वेदों और ब्राह्मणों में पहिले से ही मौजूद हैं। पुराणों के वर्तमान रूप में बाहिरी (शाब्दिक) अंतर तो अवश्य हैं किन्तु भीतरी बातें (भाव) प्राचीन हैं †। पुराण शब्द का उल्लेख भी वेद, ब्राह्मण, सूत्र और स्मृति साहित्य में मिलता है ‡। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में तो पौराणिक घटनाओं

---

* The puranas undoubtedly reach back to great antiquity and are rooted in Vedic literature; many a legend, already familiar from Rgvedic hymns and from the Brahamanas, reappears in the puranas.

† Even the latest production of this literature have the external form and the archaic frame of the oldest Puranas.

—History of Indian Literature V. I. P. 518. by Vinternity.

‡ ऋचः सामानि छंदांसि पुराणं यजुषा सह।

—अथर्व ११, ७, २४।

स बृहतीं दिश मनुव्य चलत् तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च।

—अथर्व १५, १, ६, १०-११।

अरेऽयस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरस इतिहासः पुराणं विद्या···

—श० का० १४ अ० ६ ब्रा ६ कं० ११।

इतिहास पुराणं पंचमं वेदानां वेद।

—छां० ३० प्र० ७ सनत्कुमार नारद सम्वाद।

अरेऽस्य महतो भूतस्य निः श्वसितमेतदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरस इतिहासः पुराणम्।

—बृ० ३ अ० २ ब्रा० ४ मं० १०।

स्वाध्यायं श्रावयेत मित्रे धर्मशास्त्राणि चैवहि। आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानि खिलानि च॥

—मनु० अ० ३ श्लो० २३२।

पुराणं मानवो धर्मः सांगो वेदश्चिमित्सतम्। आज्ञा सिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः॥

—मं० भा०।

विशेषकर भविष्यत् पुराण की एक घटना विशेष का उल्लेख भी मिलता है × । ऐतिहासिक विद्वानों ने इस धर्मसूत्र का समय ईसवी सन् से पाँच सौ चार सौ वर्ष प्राचीन स्वीकार किया है + । इससे प्रगट है कि वर्तमान पुराण कवियों के मस्तिष्क की केवल उपज मात्र ही नहीं हैं अपितु प्राचीन साहित्य के आधार से रचे गये शास्त्र विशेष हैं । यही बात जैन पुराणों के सम्बन्ध में है; जैन महापुराणकार आचार्य जिनसेन ने भी प्राचीन पुराणकारों का स्मरण किया है * । समय की प्राचीनता एवं पौराणिक शैली के विवेचन से संभव है ये किसी अंशविशेष में चलित भी हो गये हों; अतः हम आँखों पर पट्टी बाँधकर एक दम इनको मानने की सलाह भी नहीं देते, किन्तु इसका यह तात्पर्य भी नहीं है कि एकदम इनके प्रतिकूल जहाद का झण्डा फहरा दिया जाय और इनके किसी अंश विशेष को भी सत्य स्वीकार न किया जाय । हमारा कर्तव्य तो यह होना चाहिये कि हम इनकी परीक्षा करें और जहाँ तक हमको इनका कथन निर्दोष प्रतीत हो वहाँ तक हम इनको सत्य स्वीकार करें ।

ऐसी अवस्था में जहां कि किसी विषय विशेष के सम्बन्ध में पुराणों में विरोध प्रतीत नहीं होता या जिसका प्रतिपादन पुराणमात्र एक स्वर से करता है इन सबका एक ही प्राचीन आधार है । भारतीय साहित्य के विशेषज्ञ डा० विन्टरनिटो ने भी इस विषय में ऐसा ही स्वीकार किया है † ।

भगवान ऋषभदेव के सम्बन्ध का पौराणिक विवेचन अचलित एवं एक रूप है । अतः इसका आधार भी एक एवं प्राचीन अवश्य स्वीकार करना होगा । इससे प्रगट है कि भगवान ऋषभदेव सम्बन्धी पौराणिक विवेचन को किसी भी प्रकार काल्पनिक एवं मिथ्या स्वीकार नहीं किया जा सकता !

इन सब बातों के अतिरिक्त भगवान ऋषभदेवके अस्तित्व के सम्बन्ध में ऐतिहासिक प्रमाणों का

× Apastambiya Dharamsutra contains not only two quotations from the Puranas but also a third quotation from Bhawisyat Purana.

+ As there are good grounds for assigning the above mentioned Dharamsutra to the fifth or fourth century B. C.

* आदि पुराण की प्रशस्ति श्लोक ४१, ५१ ।

† In the numerous cases in which the puranas agree with each other with the Mahabharata, more or less literally, it is more probable that they all are derived from the same old source, than that one work is dependent on the other. This old source was on the one hard oral tradition. Comprising Brahaman tradition reaching back to the Vedic times, as well as the hard peotry handed down in the circles of the Kastriyas and on the other hand it was a certain definate texts probably far less in the bulk than our present Puranas. —History of Indian Literature p. 521.

भी अभाव नहीं है। ऐतिहासिक प्रमाण जिनको हम यहाँ उपस्थित करेंगे निम्न प्रकार हैं:—

(१) उपलब्ध शिलालेख।

(२) भगवान ऋषभदेव की मूर्तियाँ।

(३) भ० पार्श्वनाथ से प्राचीन साहित्य।

भ० ऋषभदेव के सम्बन्ध में अनेक शिलालेख उपलब्ध हुए हैं किन्तु इन सबमें खण्डगिरि उदयगिरि की हाथी गुफा का शिलालेख विशेष महत्वशाली है। इसके निर्माता सम्राट् खारवेल हैं। आपने यह शिलालेख अपनी अनेक स्थानों की विजय एवं अपने अनेक महत्वशाली कार्यों के बाद लिखाया है। यह शिलालेख प्रायः पांच गज लम्बा और दो गज़ चौड़ा है। इसमें सत्तरह पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पंक्ति में तकरीबन एकसौ अक्षर हैं। सम्राट् खारवेल कलिङ्ग देश का अधिपति था। इसके समकालीन मगधेश का नाम पुष्यमित्र था। मगधेश पुष्यमित्र के पूर्वज भी मगध के अधिपति रह चुके हैं। पुष्यमित्र से तीनसौ वर्ष पूर्व मगध का बागडोर नन्दराज, नन्दवर्द्धन के हाथ में थी। इसही समय मगध और कलिङ्ग में एक युद्ध भी हुआ था और इसमें मगधेश की विजय हुई थी। इस विजय के उपलक्ष में मगधेश नन्दराज कलिङ्ग से एक अग्रजिन की मूर्ति भी ले गया था। सम्राट् खारवेल को इन सब बातों का पता था। महाराज खारवेल एक तो वैसे ही सम्राट् होना चाहते थे और दूसरे कलिङ्ग से इस प्रकार अग्रजिन की मूर्ति का जाना भी आपको खटक रहा था; अतः आपने मगध पर चढ़ाई करदी। इस युद्ध में महाराज खारवेल को सफलता मिली और फिर वे इस विजय के उपलक्ष्य में अग्रजिन की उसही मूर्ति को जिसको नन्दराज कलिङ्ग से ले गये थे वापिस कलिङ्ग ले आये।

इस घटना का वर्णन प्रस्तुत शिलालेख की ग्यारहवीं पंक्ति में मौजूद है। महाराज खारवेल ने प्रस्तुत शिलालेख ईसवी सन् से १७० वर्ष पूर्व लिखाया था। महाराज नन्दराज का समय प्रस्तुत शिलालेख से भी ३०० वर्ष प्राचीन है। इस प्रकार प्रस्तुत शिलालेख से कलिङ्ग में अग्रजिन की पूजा आज से चौबीस सौ वर्ष प्राचीन प्रमाणित होती है। किन्हीं २ विद्वानों का तो यह अभिमत है कि अग्रजिन की यह मूर्ति कलिङ्ग में कलिङ्गाधिपति के पूर्वजों से चली आरही थी। इन विद्वानों ने यह परिणाम संभवतः अग्रजिन शब्द के साथ कलिङ्ग शब्द से निकाला है*। बात भी सत्य प्रतीत होती है। यदि प्रस्तुत मूर्ति का कलिङ्ग की वंश परम्परा से सम्बन्ध न होता तो प्रस्तुत शिलालेख में उसको कलिङ्ग जिन शब्द से स्मरण न किया गया होता। कोई भी वस्तु किसी भी देश या जाति के नाम से उसही समय उल्लिखित हुआ करती है जब उसके साथ उसका सम्बन्ध कुछ समय का होजाता है। कुछ भी सही, हाथी गुफा के इस शिलालेख से यह बात तो अवश्य माननी पड़ती है कि भगवान महावीर के निर्वाण के साठ वर्ष बाद कलिङ्ग में भगवान ऋषभदेव की अग्रजिन के रूप में पूजा होती थी।

पं० दरबारी लाल जी ने इस शिलालेख

---

* नन्दराजनीतं च कलिंग जिनं संनिवेसं ...।

—हाथी गुफालेख पंक्ति १२ वीं बिहार ओरिसा जनरल जि० ४ भाग ४।

के सम्बन्ध में निम्नलिखित वाक्य लिखे हैं :—

"महावीर और बुद्ध के समय में मनुष्यों की मूर्तियाँ बनती थीं, इसको प्रमाणित करने के लिए अभी काफ़ी गुञ्जायश है। महावीर के बाद जब महावीर की मूर्ति बनी तभी जैन शास्त्रों के कल्पित और अकल्पित पात्रों की मूर्तियाँ बनने लगीं। यह मूर्ति-निर्माण पुराना होने पर भी महावीर से पुराना नहीं है जिससे चौबीस तीर्थङ्करों की मान्यता महावीर से पुरानी साबित हो सके। हाथी गुफा का शिलालेख महावीर से पुराना नहीं है और न उसमें उल्लिखित नन्दराजा महावीर से पुराना है। जब महावीर के सामने तीर्थङ्करों की मूर्तियाँ साबित नहीं हैं तब महावीर इस कल्पना का विरोध कैसे करते"।

हाथी गुफा का प्रस्तुत शिलालेख एवं उसमें उल्लिखित नन्दराजा अवश्य महावीर के बाद के हैं, किन्तु इन दोनों में अन्तर केवल साठ वर्ष का है। अतः विचारणीय केवल इतना ही रह जाता है कि क्या इस समय में अग्र जिनकी कल्पना की गई और फिर उनकी मूर्ति का निर्माण हुआ ?

विवादस्थ विषय के सम्बन्ध में जहाँ दरबारी लाल जी भगवान ऋषभदेव की कल्पना और फिर मूर्ति निर्माण को स्वीकार करते हैं वहीं हमारी मान्यता इससे विपरीत है। हमारा कहना है कि भगवान महावीर के समय में भी चौबीस तीर्थङ्करों की मान्यता थी और उनकी मूर्तियों का सद्भाव भी आज ही की तरह था।

पं० दरबारीलाल जी का कर्तव्य तो यह था कि वह अपने इन विचारों के समर्थन में युक्ति उपस्थित करते, ताकि उनके सम्बन्ध में विचार किया जा सकता, किन्तु उन्हों ने ऐसा नहीं किया है। अस्तु ! जहां कि भगवान महावीर के पश्चात भ० ऋषभदेवकी कल्पना और फिर उनकी मूर्ति-निर्माण के सम्बन्ध में प्रमाणों का अभाव है वहीं इसके विपरीत निम्नलिखित बातें मौजूद हैं :—

१. भगवान महावीर के शासन में उनके निर्वाण काल के बासठ वर्ष तक केवल ज्ञानियों का समय रहा है। विवादस्थ समय भी भ० महावीर के निर्वाण के साठ वर्ष बाद का है, अतः वह भी केवलज्ञानियों का ही समय कहना चाहिये। भगवान महावीर के समान इनके सम्बन्ध में भी कल्पना की बात स्वीकार नहीं की जा सकती, क्योंकि ये तीर्थङ्कर न होने पर भी सर्वज्ञ तो थे ही। दूसरी बात यह है कि इस समय तक वीर के उपदेश में रञ्चमात्र भी विकारों का प्रवेश नहीं हो पाया था। एक तो भगवान महावीर को ही अभी थोड़ा समय हुआ था, दूसरे भगवान महावीर के समान केवलज्ञानी भी मौजूद थे; अतः इस समय के जैन शासन और वीरकाल के जैनशासन में कोई भेद नहीं रह जाता। ऐसे समय में जो भी बातें हुईं वे अवश्य वीरोपदेशित ही हुईं, क्योंकि नवीन कल्पना को तो स्थान नहीं था और बिना आधार के हो नहीं सकती थीं। हाथी गुफा के शिलालेख में वर्णित अग्रजिन की मूर्ति के निर्माण एवं उसकी प्रतिष्ठा के समय का निश्चय न सही, शिलालेख से यह तो निःसन्देह मानना ही पड़ता है कि इस समय अग्रजिन के रूप में ऋषभ भगवान की पूजा होती थी। अतः इसको भी वीरकाल की ही मान्यता स्वीकार करना पड़ता है। इस सम्बन्ध में दरबारी-

लाल जी का कहना है कि चौबीस तीर्थङ्करों की कल्पना यदि महावीर के समय में हुई होती तो उन्होंने इसका विरोध किया होता, समुचित नहीं। यह बात भी तो इसही प्रकार घटित होती है कि चौबीस तीर्थङ्करों की कल्पना नहीं थी, किन्तु यह एक ध्रुव सत्य था; अतः महावीर ने इसका विरोध नहीं किया। महावीर का इसका विरोध न करना कोई ऐसी तर्क नहीं है जिससे इसको वास्तविक स्वीकार किया जासके। प्रत्युत यह तो इसकी वास्तविकता को ही प्रमाणित करता है।

२. वास्तविकता के अस्तित्व में प्रतिकृति की तरफ रुचि नहीं होती; अतः जब तक महावीर रहे तबतक तो उनकी मूर्ति-निर्माण की बात ही पैदा नहीं होती। भ० महावीर के बादभी ६२वर्ष तक साक्षात केवलियोंका समागम रहा है, अतः ऐसी परिस्थिति में भी यह आवश्यकता युक्ति युक्त नहीं जँचती। प्रस्तुत मूर्ति महावीर के ६० वर्ष बाद मौजूद थी यह तो एक ऐतिहासिक सत्य है तथा उसका निर्माण काल एवं प्रतिष्ठा काल अभी तक अनिश्चित है। अतः उपर्युक्त परिस्थिति में इसका निर्माण एवं प्रतिष्ठा काल भी महावीर से पूर्व ही जंचता है।

३. किसी भी मान्यता का उद्गम एवं उसके व्यवस्थित स्वरूप में आने के लिये सदियों की आवश्यक्ता हुआ करती है। बुद्ध की मूर्ति-निर्माण को ही इसके सम्बन्ध में दृष्टान्त के रूप में लिया जासकता है। इसको ठीक २ व्यवस्था एवं इसके प्रचलित रूप में आने में भी कई सौ वर्ष लगे थे। भगवान ऋषभदेव यदि कल्पित व्यक्ति होते तो उनकी कल्पना और फिर उनकी मूर्ति निर्माण आदि बातें भी सदियों में ही विकसित हो सकती थीं। प्रस्तुत परिस्थिति इसके प्रतिकूल है, अतः यह दृष्टि भी काल्पनिकता के प्रतिकूल है।

४. सनातनियों ने अवतारों की गणना में ऋषभावतार को कृष्ण और राम के अवतार के पहिले गिनाया है *। ऋषभदेव यदि काल्पनिक व्यक्ति होते और इनकी कल्पना का समय महावीर के बाद का होता तब तो इनका नाम बुद्धावतार के बाद और कलकी अवतार के पहिले मिलना चाहिये था। इससे भी यह परिणाम निकलता है कि सनातनी भी वर्तमान पुराणों के आधार परम्परा से ऋषभदेव के समय को कृष्ण और राम से पूर्व ही स्वीकार करते चले आ रहे हैं।

५ जिनके साथ कलिङ्ग शब्द के आधार से कतिपय विद्वानों की मान्यता को यदि स्थान दिया जाये तब तो प्रस्तुत मूर्ति का अस्तित्व निःसन्देह महावीर के समय में भी मानना पड़ता है।

इन सब बातों के आधार से हम कह सकते हैं कि प्रस्तुत शिलालेख भगवान ऋषभदेव की मान्यता को महावीर काल में भी निःसन्देह प्रमाणित करता है।

* हंसाय मत्स्य रूपाय वाराह तनु धारिणे। नृसिंहाय ध्रुवेज्याय सांख्य योगेश्वराय च ॥ ५३ ॥
सनत्सनाय कूर्माय पृथवेहत सुखात्मने। नाभेयाय जगद्धात्रे विधात्रेंत कराय च ॥ ५४ ॥
भार्गवेन्द्राय रामाय राघवाय परायच। कृष्णाय वेद कर्त्रे च बुद्ध कल्कि स्वरूपिणे ॥ ५५ ॥
—नारदीय पुराण-अवतार वर्णन।

प्रस्तुत शिलालेख के अतिरिक्त भगवान ऋषभ देव की मूर्तियाँ भी उनके अस्तित्व को भगवान महावीर तो क्या भगवान पार्श्वनाथ से भी प्राचीन प्रमाणित करती हैं।

वैसे तो भगवान ऋषभदेव की हज़ारों प्राचीन मूर्तियाँ उपलब्ध हैं किन्तु यहाँ हम केवल दो स्थानों की ही मूर्तियों को लेंगे।

इन दोनों स्थानों में पहिला स्थान मथुरा है और दूसरा मोहन जो दारू। कुछ समय हुआ जब मथुरा में कङ्कालोटीले की खुदाई हुई थी। इसमें भगवान ऋषभदेव की अनेक मूर्तियाँ निकली हैं। इनमें से कुछ कनिष्क के समय की भी हैं। ये सब अभी तक मथुरा के अजायबघर में सुरक्षित हैं। ऐतिहासिक विद्वानों ने इसका समय ईसवी सन् १५० निश्चित किया है।

इसही प्रकार मोहनजो दारू की खुदाई में भी अनेक मोहरें आदि निकली हैं। इनमें से प्लेट नं० २ की सील नं० ३, ४, ५ पर ध्यानावस्था की खड्गासन मूर्तियाँ हैं। इनके नीचे बैल का चिह्न है। ध्यान के मुख्य दोनों आसनों में पद्मासन का उल्लेख तो अन्य सम्प्रदाय के शास्त्रों में भी मिलता है किन्तु खड्गासन के सम्बन्ध में यह बात नहीं देखी गई। खड्गासन का वर्णन तो ख़ासतौर से जैन शास्त्रों में ही मिलता है। राय बहादुर प्रो० चन्दा ने भी इसको जैनियों का ही स्वीकार किया है †।

प्रस्तुत सीलों में उल्लिखित ध्यानस्थ मूर्तियाँ जहाँ खड्गासन में हैं वहीं इनके नीचे भगवान ऋषभदेव की अन्य मूर्तियों की तरह बैल का चिह्न भी है। यह बात यहीं तक नहीं है किन्तु सीलस्थ मूर्तियों की आकृति आदि अन्य बातें भी भगवान ऋषभदेव की कुशान कालीन मथुरा वाली मूर्ति से मिलती हैं। प्रो० चन्दा ने इसके सम्बन्ध में निम्नलिखित वाक्य लिखे हैं :—

A Standing image of Jaina Rishabha in Kayotsarga posture on the steb showing four such images assignable to the second century A D. in the Curzon museum of archaeology mathura, is reproduced in Fig 12 . . . Among the Egyptian sculptures of the time of the early dynasties there are standing statuettes with armas hanging on two sides. But though these early Egyptian status & the archaic Greek Kouroi show nearly the same pose They lack the feeling of abandon that characterizes the standing figures on the Indus seals and images of Jinas in the Kayotsarga

† The Kayotsarga posture is peculiarly Jain. It is posture not of sitting but of standing. In the Adi Purana Book XVIII Kayotsarga posture is described in connection with the penances of Rishabha or Brashabha.

अर्थात्—कायोत्सर्ग आसन ख़ासतौर से जैनियों का है। यह बैठे हुए का आसन नहीं है, किन्तु खड़े का है। आदि पुराण अ० १८ में ऋषभ या वृषभ के सम्बन्ध में इसका उल्लेख मिलता है।

—Modern Review August 1932.

posture. The name Rishabha means bull and the bull is theemblem of Jina Rishabha. The standing deity figured on seals three to five (plate II E G. H.) with a bull in the fore ground may be the mot type of Rishabha

-Modern Review Aug 1932

अर्थात्—ईसवी सन् की दूसरी शताब्दी की मथुरा की ऋषभदेव की खड्गासन मूर्ति को जो कि सार मूर्तियों के समान है यहाँ दिये देते हैं। इजिपशियन की भी प्राचीन मूर्तियाँ हैं जिनके दोनों हाथ लटक रहे हैं। इजिपशियन की ये प्राचीन मूर्तियाँ और ग्रीक की मूर्तियाँ एक जैसी हैं किन्तु इनमें वैराग्य की दृष्टि का जो कि मोहनजोदारो और मथुरा की जैन मूर्तियों में पाई जाती है अभाव है। ऋषभ का अर्थ बैल है और बैल ऋषभजिन का चिन्ह है। प्लेट नं० २ की तीन से पाँच नम्बर तक की सीलों पर खड़ी हुई मूर्तियाँ जो कि बैल से सहित हैं ऋषभ की नकल हैं।

इन सब बातों के आधार से हम इस बात को बलपूर्वक कह सकते हैं कि ये मूर्तियाँ भगवान ऋषभ देव की हैं। इन सीलों का निर्माण समय पुरातत्व वेत्ता विद्वानों ने ईसवी सन् से तीन हज़ार वर्ष प्राचीन निश्चित किया है। यह वह समय है जिसको ऋग्वेद का प्रारम्भकाल कहना चाहिये। ऐसी अवस्था में यह किस प्रकार स्वीकार किया जा सकता है कि आज की दो तरह भगवान पार्श्वनाथ से पूर्व भी भगवान ऋषभदेव की पूजा नहीं होती थी।

इसके सम्बन्ध में तीसरी साक्षी वैदिक साहित्य की है। वैदिक साहित्य में ऋग्वेद को सबसे प्राचीन माना जाता है। ऋग्वेद में भगवान ऋषभदेव का उल्लेख मिलता है*।

इसके सम्बन्ध में दो बातें विशेष विचारणीय हैं—एक इसके सम्बन्ध में पं० दरबारीलाल जी के आक्षेप और दूसरी प्रस्तुत अर्थ से ऋग्वेद के वर्तमान भाष्यों की असमानता।

पं० दरबारी लाल जी ने इसके सम्बन्ध में निम्नलिखित आक्षेप उपस्थित किये हैः—

"जैन समाज में एक तरह के प्रमाण प्रचलित हैं कि जैन तीर्थङ्करों के नाम वेदों तथा प्राचीन पुस्तकों में पाये जाते हैं। परन्तु मेरे खयाल से यह कोई प्रबल प्रमाण नहीं है, क्योंकि अभी इतना निर्णय करना बाकी है कि जैनधर्म के नाम वेदों में गये हैं या वेदों में आये हुए उन व्यक्तियों के नामों को जैनियों ने अपना कर उन्हें जैन पुरुष के रूप में चित्रित किया है"।

लेखक महोदय ने उद्धृत वाक्यों की दूसरी लाइन के नाम पर एक फुटनोट भी दिया है और वह यह है कि "मोक्षमार्ग प्रकाश में जो वैदिक प्रमाण उद्धृत किये गये हैं वे वेदोंमें नहीं पाये जाते, न मालूम ये कहाँ से आगये हैं"।

मोक्षमार्ग प्रकाश में जिन वेद मंत्रों का उल्लेख है वे वर्तमान वेदों में नहीं मिलते, यह मिथ्या है। हाँ उनमें से कुछ मंत्र मौजूदा वेदों में नहीं मिलते। मोक्षमार्ग प्रकाश में "ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदा स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्ट नेमिः स्वस्तिनो बृहस्पतिर्द-

* ऋषभं मा समानानां सपत्नानां विषासहिम्। हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपितं गवाम्॥ ऋग्वेद

धातु " आदि वेदमंत्र मिलते हैं तथा यह वर्तमान यजुर्वेद अध्याय २५ मं० १९ में मौजूद है। उपलब्ध वेद सम्पूर्ण वेद नहीं, किन्तु उसका एक भाग है। ऋग्वेद की २१ सामवेद की १००० यजुर्वेद की १०१ और अथर्ववेद की ९ शाखायें हैं *। या यों कहिये कि इतनी २ शाखाओं को मिलाकर पूर्ण रूपसे एक २ वेद होता है। आज किसी भी वेद की सम्पूर्ण तो क्या आधी या चौथाई शाखायें भी नहीं मिलतीं; किसी के भाग विशेष में जो वस्तु नहीं मिलती वह उसके सम्पूर्ण रूप में नहीं है यह नहीं कहा जा सकता। मकान के किसी खास कमरे में कोई वस्तु नहीं मिलती, फिर भी वह उसके दूसरे कमरे में मिल जाया करती है। जब तक कि वेदों की सम्पूर्ण शाखायें नहीं मिल जातीं और मिलने पर भी उनमें मोक्षमार्गप्रकाश में उल्लिखित वेदमंत्र नहीं मिलते, तब तक यह कह बैठना कि मोक्षमार्ग प्रकाश में लिखे हुए वेदमन्त्र अमुक २ वेदों में नहीं मिलते बुद्धिमानी का कार्य नहीं। वेदों की दूसरी शाखाओं की बात तो दूर है अभी तो ऐसी बातें मालूम हुई हैं जिनको वैदिक धर्मावलम्बियों ने उपलब्ध वेदों में से ही दूर करने का प्रयत्न किया है। ऋग्वेद अष्ट० ८ अध्याय ७ वर्ग २४ में "मुनयोवातवसनाः" ऐसा पाठ था। यह पाठ वैदिक साहित्य के विशेषज्ञ पाश्चात्य अनुसन्धान कर्ताओं ने स्वयं देखा है। डा० अल्बर्ट वेबर ने तो इसका अपनी कृतियों में उल्लेख भी किया है †। यही नहीं, सुना गया है कि इण्डिया आफ़िस लण्डन की लायब्रेरी के ऋग्वेद में यह पाठ अभी तकभी मौजूद है। इन सब बातों के होने पर भी भारतीय ऋग्वेद की प्रतियों में यह पाठ अभी तक हमारे देखने में नहीं आया।

ऋग्वेद की भारतीय प्रतियों में तो यह बदला हुआ ही मिलता है। यह पाठ कब और कैसे बदला गया आदि बातों के सम्बन्ध में अभी विशेष अनुसन्धान की आवश्यक्ता है फिर भी जहाँ तक पाठ बदलने की बात है वहां तक तो यह निश्चित है।

* एक शतमध्वर्यु शाखाः सहस्रवर्त्मा सामवेदः एक विंशतिधा बाह्वृच्यं नवधाऽथर्वणो वेदः।

—महाभाष्य पतञ्जलि मुनि।

† डाक्टर साहब के History of Religions in India नामक लेख के जो Indian Antiquary, July 1901. Vol. 30 में मौजूद है, कुछ वाक्यों से जिन को हम पाठकों के सुभीते के लिये नीचे उद्धृत किये देते हैं, स्पष्ट है :—

The Digambars appear to be the more ancient, for not only in the Rik Sanhita (136-2) is mentioned of "Wind Girdled Bachhanters – Munayah Vatavasanah" but they also appear to be referred to in the well known accounts of Indian "Gem-no-sophists" of the time of Alexander the Great.

अर्थात—दिगम्बर लोग (श्वे० से) बहुत प्राचीन मालूम होते हैं, क्योंकि न केवल ऋक् संहिता में इनका वर्णन 'मुनयो वातवसनाः'—अर्थात् पवन ही है वस्त्र जिनका ऐसे मुनि—इस तरह आया है, बल्कि सिकन्दर के समय के हिन्दोस्तान के जैन मुनियों का जो प्रसिद्ध इतिहास है उससे भी यही प्रगट होता है।

ऐसी परिस्थिति में मोक्षमार्ग प्रकाश के वैदिक उल्लेखों को मिथ्या नहीं कहा जासकता।

भगवान ऋषभदेव यदि वैदिक महापुरुष होते और वेदों से इनके नाम को लेकर जैनधर्म में उन्हें स्थान दिया गया होता तो वैदिक साहित्य में इनका जीवन वैदिक ढंग का मिलना चाहिये था। जो महापुरुष जिस सम्प्रदाय का होता है उसका जीवन भी उसही ढङ्ग का हुआ करता है। इसके अतिरिक्त उनके वैदिक जीवन के चिह्न उनके जैन जीवन में भी मिलने चाहिये थे। किसी भी महापुरुष को कहीं से भी लेकर कहीं भी रक्खा जाय वहां उसके नाम के साथ उसके जीवन की कुछ न कुछ बातें अवश्य आया करती हैं। बजाय इसके कि भगवान ऋषभदेव के जैन जीवन में उनके वैदिक जीवन के चिह्न मिलते यहाँ तो उनके वैदिक जीवन में जैन जीवन के चिह्न मिलते हैं। जैनजीवन की बातों का मिलना तो दूर रहा, यहां तो इतना भी मिलता है कि भगवान ऋषभदेव की शिक्षायें ही जैनधर्म हैं। इसका स्पष्टीकरण हम पहिले कर चुके हैं। इन सब बातों के आधार से यह नहीं कहा जा सकता कि जैनियों ने ऋषभ नाम वैदिक साहित्य से लिया है! इससे तो यही सिद्ध होता है कि जिसने भी ऋषभदेव के जीवन को लिखा है उसने अपनी स्मरण परम्परा के आधार से ही लिखा है। ऐसा करते समय वह अपनी साम्प्रदायिकता को भी नहीं भुला सका है; अतः उसने उसका समावेश भी ऋषभ जीवन के साथ कर दिया है। साम्प्रदायिकता का उल्लेख रहते हुए भी उनके जीवन की बातें निःसन्देह उनको जैन तीर्थङ्कर प्रमाणित करती हैं।

यदि थोड़ी देर के लिए यह भी स्वीकार करलें कि जैनियों ने ऋषभ नाम वैदिक साहित्य से ही लिया है तब भी हमारी तो कोई हानि नहीं होती। हम तो वैदिक साहित्य से ही इस बात को प्रमाणित कर चुके हैं कि वैदिक ऋषभ भी जैन तीर्थङ्कर ही है। हमारी सम्पत्ति वहां थी, हमने उसको लेलिया; किन्तु ऐसी अवस्था में भी ऋषभ का अस्तित्व तो वैदिककाल से पूर्व ही स्वीकार करना पड़ता है। कौन कह सकता है कि जिसका उल्लेख वेदों में मौजूद है वह वैदिककाल से प्राचीन नहीं है।

यह बात दरबारीलाल जी के प्रतिकूल ठहरती है, क्योंकि इससे उनकी यह मान्यता कि ऋषभदेव की कल्पना महावीर के बाद की है, खंडित होती है। अतः किसी भी दृष्टि से देखें भगवान ऋषभ की प्राचीनता निःसन्देह स्वीकार करनी पड़ती है।

ऋग्वेद के विवादस्थ मंत्र के सम्बन्ध में दूसरी आपत्ति ऋग्वेद के विवादस्थ मंत्र के प्रस्तुत अर्थ के साथ इस मंत्र के प्राचीन अर्थों की भिन्नता की है।

ऋग्वेद या उसके अन्श विशेष के प्राचीन भाष्यों में सब से प्राचीन भाष्य सर्वानुक्रमणिका पर षट्गुरुशिष्य की वेदार्थदीपिका है। इसका समय ईसवी सन् की बारहवीं शताब्दी है †। इसी वेद पर एक भाष्य चतुर्वेद भाष्यकार सायणाचार्य का भी मिलता है। भाष्यकार सायण का समय

† He flourished, as he tells us himself (see page 168 verses 13-14) in the latter half of the twelvth century. Introduction of Sarvanukramanika by Dr. A. A Macdonell.

ईसवी सन् की चौदहवीं सदी है। यद्यपि इस मंत्र के हमारे और सायण के अर्थों में अन्तर है, फिर भी सायण "ऋषभ" को ऐतिहासिक पुरुष स्वीकार करता है। सायण ने इस मंत्र की भूमिका स्वरूप वाक्यों में और मंत्र के भाष्य स्वरूप वाक्यों में क्रमशः वैराजस्य शक्करस्य वा ऋषभाख्यस्य और ऋषभ ऋषभवत् प्रशस्तं शब्द लिखे हैं। भूमिका वाले शब्दों में ऋषभ के साथ वैराग शब्द का प्रयोग किया है। इससे प्रगट है कि सायण ऋषभ को व्यक्ति विशेष होने के साथ उनको एक महापुरुष भी स्वीकार करता था। षट्गुरु शिष्य ने भी वेदार्थ दीपिका में ऐसा ही प्रगट किया है ‡। इससे प्रगट है कि मंत्रस्थ ऋषभ से जहां तक व्यक्ति विशेष से तात्पर्य है वहाँ तक तो हम में और प्राचीन भाष्यकारों में कोई विरोध नहीं है।

अर्थ भेद के सम्बन्ध में बात यह है कि आज तक जितने भी ऋग्वेद के भाष्यकार हुए हैं उन्होंने षट्गुरु शिष्य का शब्दशः अनुकरण किया है। षट्गुरु शिष्य ने जितनी बातें जिस २ रूप से स्पष्ट की हैं उतनी ही और उसही ढंग से ये लोग भी कर सके हैं। षट्गुरु शिष्य को जो बात अज्ञात थी या जिसका अर्थ वह नहीं कर सका था उसको ये लोग भी वैसा ही छोड़ गये हैं। षट्गुरु शिष्य मंत्रस्थ ऋषभ को व्यक्ति विशेष स्वीकार करते थे किन्तु फिर भी वे इसके सम्बन्ध में कोई विशेष निर्णय न कर सके और यह कह कर छोड़ गये कि नात्र कैश्चिन्निरणामि +।

षट्गुरु शिष्य के इस प्रकार के विवेचनसे मंत्र के देवता और ऋषि में परिवर्तन हो जाने की बहुत कुछ संभावना है। सायण की देवता और ऋषि सम्बन्धी मान्यता को यदि बदल दिया जाय और ऋषभ को ऋषि के स्थान पर देवता स्वीकार कर लिया जाय तो फिर हमारे और सायण के अर्थ में कोई अन्तर ही नहीं रह जाता।

यहां देवता से तात्पर्य किसी देव विशेष से नहीं है किन्तु मंत्र के वाच्य से है *। देवताके संबंध में यह एक वैदिक मान्यता है। इसही प्रकार ऋषि से तात्पर्य मंत्र के निर्माता से है †।

सायण ऋषभ को इस मंत्र का ऋषि मानता है और हम उनको इसका देवता स्वीकार करते हैं! सायण की प्रस्तुत मान्यता के अनुसार उसका अर्थ भी ठीक नहीं बैठता। सायण ने मंत्र के भाष्य में ऋषभ का अर्थ ऋषभवत् किया है। इस मंत्र सम्बन्धी यदि सायण की मान्यता को माना जाता है तो यह बात ठहरती है कि इस मंत्र का निर्माता है; अतः जो कुछ भी कह रहा है वह ऋषभ ही कह रहा है। ऋषभ को ही इस मंत्र का कहने वाला मानने पर "ऋषभवत" इसका समन्वय ठीक नहीं बैठता। सायण के अर्थ के अनुसार तो इसको यों कहना

---

‡ ऋषभो नाम। वैराजोऽयं शाक्करोवा। —सर्वानु० P. 164. C. P. London.

+ सर्वानुक्रमणिका P. 164. Clander Press London.

* "या तेनोच्यते सा देवता"। —कात्यायन सर्वानुक्रमणिका पेज १।

† "यस्यवाक्यं स ऋषिः"। —कात्यायन सर्वानुक्रमणिका पेज १।

चाहिये कि ऋषभ ही कह रहा है कि मुझे ऋषभ की तरह करो, कोई भी व्यक्ति अपने सम्बन्ध में अपने ही समान होने की इच्छा प्रगट करे, यह बात किसी भी तरह युक्तियुक्त स्वीकार नहीं की जा सकती। ऐसा भी संभव नहीं कि उसही वाक्य में वह अपने लिए उत्तम पुरुष (First person) और अन्य पुरुष (Third person) दोनों का ही प्रयोग करे। इस मन्त्र की सायण की मान्यता में यदि थोड़ासा अन्तर कर दिया जाता है और ऋषभ को ऋषि के स्थान पर देवता स्वीकार कर लिया जाता है तो ये सब आपत्तियाँ दूर हो जाती हैं। प्रस्तुत मंत्र का स्पष्ट अर्थ ऋषभ को नमस्कार या उससे प्रार्थना हो जाता है। सायण से प्राचीन एवं उसके भाष्य के आधारभूत षट् गुरुशिष्य के इसके सम्बन्ध में अनिश्चित होने से सायण की प्रस्तुत मान्यता में इस विपर्यास की संभावना का बहुत कुछ स्थान है।

कुछ भी कहो सम्बन्ध ऋषभ से तात्पर्य ऋषभ नाम के महापुरुष विशेष से है, यह तो हर हालत में प्रमाणित है। जब तक ऋषभ नाम के किसी अन्य महापुरुष का संकेत भी न मिले तब तक यह कैसे कहा जा सकता है कि इन महापुरुष से तात्पर्य भगवान ऋषभदेव से नहीं है।

श्रीयुत् विरूपाक्ष M. A. वेदतीर्थ आदि अजैन विद्वानों ने इस मंत्र को भगवान ऋषभदेव के सम्बन्ध में प्रयुक्त हुआ स्वीकार किया है *। इन सब बातों के आधार से यह निश्चित है कि वेद भी भगवान ऋषभदेवके अस्तित्वको प्रमाणित करते हैं।

जैन एवं जैनेतर पुराण जिसके सद्भाव को एक स्वर से स्वीकार करते हों हज़ारों वर्ष के शिला-लेखों में जिसका नाम हो, पांच हज़ार वर्ष पूर्व भी जिसकी मूर्तियाँ आज ही की तरह पुजती हों, और वेदों में भी जिसका उल्लेख हो ऐसा महापुरुष भगवान ऋषभदेव काल्पनिक व्यक्ति है और उसकी कल्पना भगवान महावीर के बाद की है यह बात किसी भी दृष्टि से सत्य प्रमाणित नहीं होती।

[क्रमशः]

---

* जैन पथप्रदर्शक, वर्ष ३ पृ० १०६।

चाह

[लेखक—पं० नाथूराम डोंगरीय जैन, न्यायतीर्थ]

[१]

अन्तस्थल को निखिल जनों के रश्मि जाल ज्यों तीक्ष्ण बनी—
कौन बनाती तम, वृद्ध को—नव बाला सी बनी ठनी ?

[२]

रजनी में जब शरद काल की
ज्योत्स्ना मन शीतल करती,
तब वियोग में बड़वानल सी
छिपकर कौन जला करती ?

[३]

भोले मानव फंस जाते हैं,
क्यों जग के जंजालों में ?
तड़फाता है कौन प्रेमियों—
को लाकर निज चालों में ?

[४]

किसके विवश अनल में जाकर ये पतंग जल जाते हैं ?
अलि पंकज सकुचाने पर क्यों अपनी जान गंवाते हैं ?

[५]

व्याप रही हैं चाह, दाह,
कैसी इन सारी बातों में।
मेचक में ज्यों चित्र बना,
या तम अँधयारी रातों में ॥

[६]

सतत राशियां आशाओं की
लगा, उन्हें बिखरा जातीं।
जीवन नौ लय कर अनत में,
फिर सगर्व यों इठलातीं—

[७]

तोषित कब हो सकता जिस पर मेरी किंचित् दृष्टि रही ?
रत्नाकर अगणित सरितों का पय पी आखिर रहा वहीं ॥

[८]

अग्नि अनंत तृणों को पाकर
शांत नहीं होने पाती।
मानव को यह विश्व संपदा
तृण सम ही है रह जाती ॥

[९]

जो विरक्त हो जाते मुझ से,
मुक्ति उन्हें मिल जाती है।
दुखी जनों को फिर भी उनकी,
"चाह" बनी रह जाती है ॥

[१०]

यद्यपि जगती पर पावक सी—दाहक मैं कहलाती हूं।
पावक जल कर भस्म बने, पर मैं न कभी जल पाती हूं ॥

[११]

माया-अभ्र पटल दिखला कर,
जन-मयूर हर्षाती हूँ।
नन्ही सी हूँ फिर भी जग को
कैसा नाच नचाती हूं ॥

[१२]

जग में व्यापक रानी हूँ मैं,
अन्तस्थल में मेरा वास।
अजर अमर मम शासन है जब
एक दृष्टि रखती हूँ पास ॥

पुस्तक-समालोचना !

ज्ञान प्रदीपिका तथा सामुद्रिक शास्त्रम्—अनुवादक और सम्पादक, ज्योतिषाचार्य पं० राम व्यास पाण्डेय। प्रकाशक, बा० निर्मल कुमार जैन, मन्त्री जैन सिद्धान्त भवन, आरा। मू० १) रुपया।

श्री जैन सिद्धान्त भवन आरा के संस्थापक स्वर्गीय दानवीर बा० देवकुमार जी की स्मृति में, उनके सुपुत्र बा० निर्मलकुमारजी ने एक ग्रंथमाला संचालित की है; प्रस्तुत पुस्तक उक्त ग्रन्थमाला का द्वितीय पुष्प है। इसमें ज्ञान-प्रदीपिका तथा सामुद्रिक शास्त्र नामक दो ज्योतिष विषयक ग्रंथों का संकलन है। ज्ञान प्रदीपिका ज्योतिष के उस भाग से संबंध रखती है जिसमें प्रश्न करने की लग्न पर से फल बताया जाता है। उसमें २७ काण्ड हैं। प्रारंभ के चार काण्डों में ग्रहों और राशियों का परस्पर में सम्बन्ध, नव ग्रहों का स्वरूप और उनका वर्ण, राशियों की स्थिति आदि ज्योतिष विषयक बातें बतलाई गई हैं। प्रश्न करते समय ग्रहों और राशियों की स्थिति देखकर, मनुष्य और पशुओं की जाति, चोरी गई वस्तु की प्राप्ति-अप्राप्ति, चोर का स्त्री या पुरुष होना, व्याधि और मृत्यु, मृत्यु के बाद किस योनि में जन्म हुआ है, विवाह, जय-पराजय, दाम्पत्य जीवन, पुत्रोत्पत्ति, वृष्टि आदि विषयक प्रश्नों का उत्तर देने की बड़ी स्पष्ट और सरल रीति शेष काण्डों में बतलाई गई है।

सामुद्रिक शास्त्र में, पुरुष और स्त्रियों के शरीर में पाये जाने वाले चिन्हों पर से उनका शुभाशुभ फल बतलाया गया है। जैसे—हथेली में बहुत रेखायें हों तो मनुष्य दुःखी, कम हों तो निर्धन होता है। × × आंखें लाल हों तो धनवान और राजा, और मांस हीन हों तो दुखी जानना चाहिये। × × × जिसके हाथ में मछली की रेखा हो वह धर्म निष्ठ, भोगवान और अनेक पुत्रों वाला होता है। × × जिसकी अनामिका अंगुली पृथ्वी से नहीं छूती, ऊपर ही रहती है, उस स्त्री के पति का शीघ्र ही नाश होता है और वह स्वयं नष्ट हो जाती है, इत्यादि।

बहुत से पुरुष और स्त्रियां ज्योतिषी को हाथ दिखाकर अपना शुभाशुभ जानने के लिये बहुत उत्सुक रहते हैं। उनसे हमारा निवेदन है कि वे इस पुस्तक को अवश्य खरीदें और अपने तथा अपने सम्बन्धियों के शुभाशुभ जानकर अपनी उत्सुकता को शान्त करें।

आरा की जिस प्रति पर से इस ग्रन्थ का संपादन किया गया है उस प्रति में ग्रन्थकर्त्ता के सम्बन्ध में थोड़ा सा भी संकेत नहीं है। फिर भी मंगलाचरण से ग्रन्थकर्ता के जैन होने में कोई संदेह नहीं रहता।

अन्त में ग्रन्थ के सम्पादन तथा अनुवाद के संबंध में कुछ शब्द लिखना अनुपयुक्त न होगा। मूल ग्रन्थ के संपादन में भाषा सम्बन्धी बहुतसी अशुद्धियां रह गई हैं, कहीं २ पर कुछ श्लोक या उसके एक दो पाद, सन्देह सूचक चिन्ह लगाकर यों ही छोड़ दिये गये हैं। संपादकजी मूल प्रति का अत्यन्त अशुद्ध होना तथा पाठ शुद्ध करने का कोई

भी साधन न होना उसका कारण बतलाते हैं। पं० भुजबली जी शास्त्री के 'विशेष वक्तव्य' से मालूम हुआ कि, कारञ्जा की ग्रन्थ नामावली में ज्ञान प्रदीपिका का नाम दृष्टिगत हुआ। ग्रन्थ भण्डार के प्रबन्धक को दो पत्र दिये, पर उत्तर तक नदारद। शास्त्र भण्डारों के प्रबन्धकों की इस जड़ता पर क्या कहा जाये। संसार के बड़े से बड़े पुस्तकालय को पत्र देने से तुरन्त उत्तर मिलता है और कुछ शर्तों पर ग्रन्थ भी भेज दिया जाता है। किन्तु अक्षर-शत्रु हमारेप्रबन्धकों की तो बात ही निराली है। अस्तु—

भाषा की दृष्टि से अनुवाद अच्छा हुआ है। किन्तु मूल के साथ उसका मिलान करने पर बहुत सी त्रुटियां दृष्टिगत होती हैं, जिन्हें हम अनुवादक महोदय की लापरवाही का परिणाम कह सकते हैं। जैसे—ज्ञा० प्र० के १-६ श्लोक में आये हुए 'मृगादि नररूपाणि' का अर्थ 'मृग तथा नर आदि रूप' किया गया है, किन्तु उसका आशय 'मृग, शशक आदि पुरुष के रूपों' से है। इसी तरह श्लोक नं० ७ में 'कालदेश स्वभावतः' का अर्थ 'सन्ध्या का कालादेश', नं० ८ में 'स्वप्न' का 'शयन', नं० ९ में 'जातकर्म' का 'जन्म, कर्म' और शल्य का हड्डी अर्थ किया है जो अशुद्ध है। जैन पारिभाषिक शब्दों का ज्ञान न होने से, 'न्यग्रोध परिमण्डला' का 'वट के पत्ते के समान मण्डल वाली' अर्थ कर दिया है। ऐसी अशुद्धियों के रहते हुए भी ग्रन्थ महत्वपूर्ण है। उसके महत्व को विद्वान अनुवादक ने स्वयं स्वीकार किया है। छपाई, कागज़ आदि उत्तम और आकर्षक है। ज्योतिष और वैद्यक विषयक जैनग्रन्थों के प्रकाशन की ओर लक्ष्य देकर ग्रन्थमाला के संचालकों ने प्रशंसनीय कार्य किया है और इसके लिये वे बधाई के पात्र हैं। सब लोगों को ग्रन्थ की कम से कम एक २ प्रति खरीद कर संचालकों का उत्साह बढ़ाना चाहिये।

"परम पूज्य तीर्थंकर-निर्वाण भूमि और उनके प्रति दिगम्बर जैनियों का कर्तव्य !

कैसा प्रलय का समय था वह ? पंद्रह जनवरी का दिवस था, दिन के २॥ बजे उत्तर बिहार प्रान्त में हा हाकार मच गया। ज़मीन काँपने लगी। मकान गिरने और उनके नीचे मनुष्य दबकर मरने लगे, केवल २॥ मिनट में ही अनेक नगर मिट्टी में मिल गये। हज़ारों स्त्री पुरुष बच्चे काल के गाल में चले गये। ज़मीनें फट गईं। घर तालाब बन गये और तालाब बालू के टीले हो गये। इस प्रलयकारी भूकम्प से हमारे पावापुरी आदि निर्वाण क्षेत्र भी जर्जरित हो गये। मंदिर, धर्मशाला, आदि की कोई भी इमारत ऐसी नहीं बची जिसमें लम्बी चौड़ी दरारें नहीं पड़ गई हों! बल्कि कई जगह के तो मन्दिर आदि गिर भी गये हैं। जो मन्दिर आदि की इमारतें नहीं गिरी हैं, उनकी हालत इतनी खराब हो रही है कि यदि शीघ्र ही उनकी मरम्मत कराने का प्रबन्ध नहीं

होगा तो वे कब धराशायी हो जायं इसका कुछ अनुमान नहीं है। फिर उस समय इन इमारतों का पुनः निर्माण लाखों व्यय कर देने पर भी ऐसा नहीं हो सकेगा।

इनकी मरम्मत कराने में पचासों हज़ार का खर्च है जिसकी पूर्ति बिना समाज की सहायता के करना कमेटी की शक्ति के बाहर है। इसीलिये हम बराबर समाज का ध्यान इस ओर आकर्षित कर रहे हैं, किंतु खेद है कि अभी तक समाज ने हमारी प्रार्थना पर कुछ ध्यान नहीं दिया है।

अब भी समय है। चेतो, और द्रव्य द्वारा सहायता देकर के इन पूज्य तीर्थ क्षेत्रों का जीर्णोद्धार कराओ! नहीं तो फिर हमारे और आपके लिये कुछ न होगा। जब तक इमारतें खड़ी हैं थोड़ी ही लागत से उनकी मरम्मत हो सकती है गिर जाने पर लाखों की नौबत पहुँचेगी। तब आप ही लोग पछतायेंगे, लेकिन—

"तब पछताये होत का
जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत"

उत्तर बिहार प्रान्त के निवासियों को गृहों का पुनः निर्माण कराने के लिये सरकार और कांग्रेस दोनों उद्योग कर रहे हैं और इसके लिये करोड़ों का फण्ड भी एकत्र हो चुका है। सनातनियों के मन्दिर भी बनवाये जाने लगे हैं। श्वेताम्बर सम्प्रदाय की इमारतों का जीर्णोद्धार भी प्रारंभ हो गया है। इन लोगों में से कई एक ने तो पचासों हज़ार का चन्दा दिया है। वास्तव में धर्म प्रेम और तीर्थभक्ति कहते भी इसी को हैं कि जब आवश्यकता पड़ी तभी हज़ारों की रकमें दे डालीं।

एक अभागा दिगम्बर जैन समाज ही ऐसा है जिसके तीर्थक्षेत्रों की मरम्मत का अभी तक कुछ प्रबन्ध नहीं हुआ, हो भी कहां से। इस कार्य के लिये ज़रूरत है रुपयों की। और उसको देने के लिये दिगम्बर जैनसमाज के धनाढ्य नेताओं ने अभी तक अपनी मुट्ठी ढीली नहीं की, यद्यपि हम जनवरी से ही इसके लिये बार बार काग़ज़ी पुकार से आप लोगों को इस कार्य्य के लिये आह्वान कर रहे हैं।

यह ध्यान रहे कि यह जीर्णोद्धार कार्य दिगम्बर जैन समाज को ही कराना पड़ेगा, चाहे अब करावे या कुछ काल पीछे। फ़र्क इतना ही रहेगा कि इस समय यह कार्य पचास साठ हज़ार में ही हो जायगा और देर होने से इसके लिये कितने ही लाख खर्च करने पड़ेंगे। इसीलिये हम समाज से निवेदन करते हैं कि अन्य समाजों की तरह हमारे दिगम्बर भाई भी इस जीर्णोद्धार कार्य के लिये यथेष्ट द्रव्य देने में आगा पीछा न करें। जहां तक हो सके शीघ्रातिशीघ्र अच्छी से अच्छी तायदाद में रुपया प्रदान करके अपनी तीर्थभक्ति और दानशीलता व त्यागवृत्ति का परिचय देवें।

निवेदक—
निर्मलकुमार जैन, मंत्री
बि० प्रा० दि० जैन० तीर्थक्षेत्र कमेटी, देवाश्रम, आरा।

नव वर्षारंभ !

बड़े हर्ष की बात है कि जैनदर्शन निर्विघ्नतया अपना प्रथम वर्ष समाप्त कर द्वितीय वर्ष में पदार्पण कर रहा है। विगत शैशव काल में इसने अपनी क्षमतानुसार जो कुछ समाज सेवायें की हैं वह पाठकों से छिपी नहीं हैं। हम यहाँ यह स्पष्ट कह देना अपना कर्तव्य समझते हैं कि जैनदर्शन को विद्वान और योग्य लेखकों का पर्याप्त सहयोग नहीं प्राप्त होने से जैसा चाहिये वैसा काम नहीं हो सका। आर्थिक संकट का सामना तो जैन समाज के प्रत्येक पत्र को करना पड़ता है तब यह बात जैनदर्शन के लिए ही अपवाद स्वरूप कैसे हो सकती है ? बात यह है कि हमारी समाज के धनीमानी विद्वानों का ध्यान इन सामाजिक पत्रों की तरफ़ बिल्कुल नहीं जाता; यही कारण है कि कोई भी पत्र वास्तविक यथेष्ट समाज सेवा नहीं कर सकता। पत्रों के लिये धन तो फिर भी मिल जाता है, पर योग्य लेखों का मिलना बहुत कठिन है। जैन समाज में विद्वान तो हैं पर वे अपनी विद्वत्ता को अपने ही तक सीमित रखना चाहते हैं। अपने ज्ञान का कोई सर्वाङ्गीण उपयोग करना ही नहीं चाहते अथवा नहीं जानते। प्रायः जैन विद्वानों के जीवन का बहुभाग आलस्य में ही व्यतीत होता है। भौतिक जीवन के निर्वाह के लिये वे जो कुछ करते हैं वह ही उनके जीवन का परमोद्देश्य हो जाता है। पर विद्वान बनने का उपयोग इतना ही नहीं है, ज्ञान को केवल आजीविका का साधन बना लेना उसका मूल्य नहीं समझना है। जैन विद्वानों के प्रति जैन समाज का जो ऋण है उसको किस रूप में चुकाना है, यह विचार प्रत्येक विद्वान को करना चाहिये। हमारे सौभाग्य से इस समय जैन समाज में न्याय, दर्शन और साहित्य के अच्छे २ विद्वान मौजूद हैं। अगर वे थोड़ा सा समय जैनदर्शन को देने की कृपा करें तो यह बहुत कुछ समाज और देश की सेवा कर सकता है। आशा है विद्वान लेखक इस नम्र प्रार्थना पर ध्यान देकर अपनी बहुमूल्य रचनाओं द्वारा जैनदर्शन को अवश्य अवश्य अनुग्रहीत करेंगे।

'जैन दर्शन' की आर्थिक परिस्थिति ठीक रखने के लिए प्रत्येक जैन बन्धु से हमारा निवेदन है कि वह स्वयं इसका ग्राहक बने और अपने मित्रों तथा प्रेमियों को ग्राहक बनने की प्रेरणा करे। इस वर्ष से जैन दर्शन का प्रत्येक अङ्क संग्रह करने योग्य बनाने की ओर भी अधिक चेष्टा की जायगी। विद्वानों और सर्व साधारण के मनन करने योग्य अच्छे २ दार्शनिक साहित्यिक और कला सम्बन्धी लेख रहा करेंगे। अनावश्यक और अनुपयोगी लेखों को

बिलकुल स्थान न दिया जायगा। अतः प्रत्येक समाज हितैषी का कर्तव्य है कि वह हर तरह "जैन दर्शन" की सहायता कर पुण्यभागी व यशस्वी बनें।

सामयिक पत्र

वर्तमान युग में सामयिक पत्रों की कितनी आवश्यकता है, यह लिखने की ज़रूरत नहीं। इस युग को यदि हम पत्रों का युग कहें तो कुछ अत्युक्ति न होगी। उस देश और समाज को निर्जीव ही समझना चाहिए जहाँ के सामयिक पत्रों की अवस्था संतोषप्रद नहीं है। जब हम योरुप तथा भारतेतर एशिया महाद्वीप स्थित देशों के पत्रों की तरफ़ ध्यान देते हैं तो हमको मालूम होता है कि वहां के पत्र-संसार ने कैसी आश्चर्यजनक उन्नति की है पर भारत की दशा तो बिलकुल निराली है और जैन समाज का तो कहना ही क्या है। हमारी समाज के पत्रों की जो दुर्दशा है उस को प्रगट करते हुए हमें लज्जा का अनुभव होता है। बहुत से पत्र संपादक तो यह भी नहीं जानते कि संपादक का उत्तरदायित्व क्या है और संपादन-कला किस चिड़िया का नाम है। उन्हें तो केवल अपना नाम हासिल करना है और इस के द्वारा उनका जो कुछ स्वार्थ साधन हो जाय वह ही उनका खास उद्देश्य है। पाश्चात्य देशों में संपादक का स्थान बहुत ऊंचा और आदरणीय माना जाता है। इसका कारण केवल यही है कि वहां के संपादक लोग अपना कर्तव्य समझते हैं। जो समाज की निष्पक्ष सच्ची सेवा करना चाहता है और उस सेवा करने का तरीका भी जानता है ऐसे ही विद्वान् लेखक को संपादक होना शोभा देता है। यह नोट लिखने से हमारा यह ही आशय है कि जैन समाज के पत्र समाज के प्रति अपना कर्तव्य समझें और वैर भाव को छोड़कर समाज सेवा करने में अग्रसर हों।

एक महारथी चल बसा !

श्रीमान् तीर्थभक्त शिरोमणि ला० देवीसहाय जी रईस फ़ीरोज़पुर के स्वर्गारोहण का समाचार पढ़कर किस सज्जनको दुख न होगा। श्रीमान् ला० देवीसहाय जी का जीवन आदर्श एवं अनुकरणीय जीवन था। वे शुद्ध तेरहपंथ आम्नाय के स्तम्भ थे; दिगम्बर जैन समाज के गणनीय नायक थे। शास्त्रानुसार सद्गृहस्थ आचार के शुद्ध परिपालक थे। उनका अधिक समय देवपूजन, शास्त्रस्वाध्याय, त्रिकाल सामायिक आदि में व्यतीत होता था। शरीर त्याग समय संन्यास ले चुके थे। उदारचित्त थे तथा दीनबन्धु थे।

खुले हाथ से दान करने में उनकी समता केवल स्वर्गीय श्रीमान सेठ माणिकचन्द्र जी से की जा सकती है। जिस तरह सेठ माणिकचन्द्र जी अपनी हैसियत का ख़याल न करके खुले हाथ से दान कर गये, ठीक वही रूप ला० देवीसहाय जी में था। तीर्थक्षेत्र कमेटी के लिये चंदे के समय जब श्रीमान स्व० ला० जम्बूप्रसाद जी ने पचास हज़ार रुपये दान किये उस समय आपने भी दिल खोल पचास हज़ार रुपये ही लिखाये जो उनकी हैसियत से बहुत ज़्यादा थे। इसके सिवाय २५-३० हज़ार रुपया वे तीर्थक्षेत्र कमेटी को और भी दे चुके थे।

सोनागिर क्षेत्र के मन्दिरों में उपद्रव सुनकर बिना किसी प्रेरणा के समस्त मन्दिरों में लोहे के जंगले आपने चढ़वा दिये। आपका धर्मादा प्रायः एक हज़ार रुपया मासिक निकलता रहता था। इतने पर भी मानकषाय से वे दूर थे।

उनके गुप्त हितकर कार्य अनेक ऐसे हैं जो जन साधारण की दृष्टि में नहीं आ सकते। उनके एक मात्र सुपुत्र श्रीमान् ला० *महावीरप्रसाद जी* अपने पिता जी के अनुरूप हैं। धार्मिकप्रेम, विनीतभाव, सामाजिक हित उनके हृदय में निवास किये हुए हैं। आशा है कि आप भी अपने पिताजी का विमल यश बढ़ायेंगे।

श्रीमान ला० देवीसहाय जी के वियोग से जैन समाज की असीम क्षति हुई है। उनकी आत्मा को शान्ति प्राप्त हो ऐसी भावना है।

विदुषी का वियोग !

श्रीमान मित्रवर पं० शान्तिराज जी न्याय काव्यतीर्थ नागपुर की धर्मपत्नी सौ० श्रीमती चिन्न-ाा देवी काव्यतीर्थ का स्वर्गवास न केवल श्रीमान पं० शान्तिराज जी को दुख का कारण है किन्तु एक गणनीय आदर्श विदुषी महिला का वियोग होना जैनसमाज के लिये भी महान दुख का कारण है। धर्म के प्रभाव से उनकी आत्मा शान्ति लाभ करे ऐसी भावना है।

बनेड़े के राजकुमार

बनेड़ा राज्य के राजकुमार जो कि अभी अविवाहित हैं और जिनकी आयु २५ वर्ष की है अभी विलायत से बैरिस्टरी पास करके आये हैं। यह एक शिक्षाप्रद उदाहरण है जो कि हमारे धनिक महानुभावों को आचरण में लाना चाहिये। हमारे अधिकांश श्रीमान लोग अपने सुपुत्रों को शिक्षा से दूर रख कर अशिक्षा का भार उनके ऊपर लाद देते हैं। इस कारण वे व्यावहारिक और पारमार्थिक शिक्षण से प्रायः कोरे रहते हैं। यही बात है कि वे धार्मिक प्रचार और सामाजिक सेवा में अपने पदानुसार अग्रेसर नहीं हो पाते। समय की माँग है कि अब हमारा धनिकवर्ग अपनी संतान को धार्मिक शिक्षा में निपुण कराके आवश्यक व्यवहार शिक्षा में भी कुशल बनावे।

श्वे० पं० रामकुमारजी से—

अभी १९ जुलाई के श्वेताम्बर जैन में न्यायतीर्थ, विद्याभूषण, हिन्दीप्रभाकर आदि अनेक पदालंकृत प्रियमित्र पं० रामकुमार जी ने एक कविता द्वारा हमको कुछ सम्मतिरूप उपदेश देने का प्रयास उठाया है जिसके लिये आपको धन्यवाद है।

आप यदि इसको गद्यरूप लिखते तो एक तो आप अपना भाव विशदरूप से बतलाने में अधिक सफल होते, दूसरे *कविता* का आप सरीखे विद्वान द्वारा अपमान भी न होता। केवल तुक मिला देना कविता नहीं होती। आपने कविता को कल्पित स्वरछन्द में खींचतान कर गढ़ डाला है; जैसे कि—

> चिरकालीन मौ को आज विसर्जित करके,
> अपनी छाती पर ही क्या न मूंग दलते हैं।
> दोनों ही तो पहिये अहो एक रथ के हैं,
> क्या सूखे रेते में से निकलेगा पानी।
> स्थानकवासी श्वेताम्बर एवं च दिगम्बर,
> तीनों तब मिलकर सुख पूर्वक आगे बढ़ते,
> हमने जो कुछ कहा मात्र स्नेही के नाते—इत्यादि

स्नातक, न्यायतीर्थ, विद्याभूषण, हिन्दी प्रभाकर आदि उपाधिधारक विद्वान् की कविता क्या ऐसी होनी चाहिये इस बात का निर्णय स्वयं आप ही करें। अस्तु—

आप विद्वान हैं प्रथम ही आप हमारी पुस्तक का तथा अपने आधुनिक एवं प्राचीन ग्रन्थों का अवलोकन करें पीछे पूर्वा पर सोच विचार कर लिखें तो ठीक रहेगा। जिस बात को आप एक इञ्च चाहते हैं उसको हम एक गज़ चाहते हैं; इस कारण आप भ्रम में न रह समस्त साहित्य का ध्यान से अवलोकन करके फिर जो कुछ आपका अभिप्राय हो युक्तिपूर्वक रखने की कृपा करें। निराधार लिखने से कुछ सार प्रगट नहीं होता।

चेलोपसृष्टमुनिरिव !

श्वेताम्बर जैन पत्रमें (१२ जुलाई) श्रीमान् यति बालचन्द्र जी खामगाँव ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार के १०२ वें श्लोक के '*चेलोपसृष्टमुनिरिव गृही तदायाति यतिभावं*' इन दो पादों का भाव "*इस पद्यमें यह स्पष्ट है कि वस्त्रधारी भी मुनि होते थे यह समन्तभद्र को मान्य है*" इत्यादि प्रगट किया है।

ऐसी मोटी ग़लती यदि कोई सामान्य पुरुष करता तो किसी तरह क्षम्य होती, किन्तु अपने नाम के साथ *आचार्य* शब्द का प्रयोग करने वाले यति बालचन्द्र जी की यह ग़लती अक्षम्य है। जहाँ उन्हों ने '*चेलोत्क्षेपण मुनिरिव*' अशुद्ध पद लिख कर ग़लती की है वहीं उससे भी अधिक ग़लती उसका अर्थ समझने में की है। वे यदि रत्नकरण्डकी भाषाटीका का भी आश्रय लेते तो '*वस्त्रधारी मुनि की भांति सामायिक में स्थित गृहस्थ यति भाव को प्राप्त हो जाता है*' ऐसा ग़लत अर्थ कदापि न करते। यति जी को इस पद्य का अर्थ करते समय स्वामी समन्तभद्र के प्रयुक्त शब्द '*उपसृष्ट*' का ध्यान रखना चाहिये जिसका कि अर्थ 'उपसर्ग किया हुआ' है। उक्त पादों का अर्थ यह है कि—

"जिस प्रकार ध्यानावस्थित किसी साधु पर कोई मनुष्य (उनके आचरण के विरुद्ध) कपड़ा डालकर उपसर्ग करे, उसी प्रकार सामायिक करता हुआ गृहस्थ होता है।"

अब यतिजी को मालूम हुआ होगा कि "महाव्रती साधु के शरीर पर वस्त्र परकृत उपसर्ग अवस्था में ही हो सकता है" ऐसा उक्त श्लोक का भाव है।

—अजितकुमार जैन

समाचार-संग्रह !

—श्री आचार्य शान्तिसागर जी (दक्षिण) का चातुर्मास उदयपुर में हुआ है।

—आचार्य शान्तिसागर (छाणी) का चातुर्मास सागवाड़ा में हुआ है।

—आचार्य सूर्यसागर जी का चातुर्मास चौरासी (मथुरा) में हुआ है।

—मुनि श्री पायसागर जी ने गलगले (दक्षिण) में चातुर्मास किया है।

—श्री ऐलक चन्द्रसागर जी महाराज का चातुर्मास धामपुर (ज़िला बिजनौर) में हुआ है।

—श्रीमान बाबा भागीरथ जी वर्णी चौमासे में बड़ागांव पो० खेखड़ा (मेरठ) में ठहरेंगे।

—शिमला में दि० जैन धर्मशाला तीन मंजली बन गई है जिसमें ठहरने के लिये २२ कमरे तथा एक बड़ा व्याख्यानभवन है। व्याख्यान-भवन के किराये की आय पाँच हज़ार रुपये वार्षिक होगी जिससे धर्मशाला का खर्च तथा अन्य धार्मिक कार्य हो सकेंगे।

—स्थानकवासी मुनि श्री मिश्रीलाल जी ने स्थानकवासी दो आचार्य संघों को एक करने के लिये उपवास धारण किया हुआ है। पानी के सिवाय आप कुछ नहीं लेते। आज (१-८-३४ को) उनका १७४ वां उपवास है। यदि १८८ वें दिन तक उनका उद्देश सफल न हुआ तो फिर वे आजन्म निर्जल उपवास करेंगे। आगरा निवासी श्रीमान सेठ अचलसिंह जी उनका उद्देश सफल कराने का प्रयत्न कर रहे हैं। दिगम्बर समाज को भी इस कार्य में यथासंभव सहायता करनी चाहिये।

—संपादक।

—श्रीमान सेठ गरीबदासजी सिंघई जबलपुर का स्वर्गवास होगया है। आप जबलपुर के जैन समाज में तथा परवारजाति में अच्छे प्रभावशाली महानुभाव थे। शोक !

—जैन समाज में इस समय शिक्षित लोग ३३ प्रति सैकड़ा हैं।

—डेरागाज़ीखान में तीर्थभक्तशिरोमणि ला० देवी सहाय जी के स्वर्गगमन समाचार सुन कर एक शोक सभा हुई जिसमें उनकी जीवनी पर प्रकाश डालते हुए उनकी तीर्थभक्ति की सराहना की गई। तथा उनकी आत्मा को शान्ति प्राप्ति के लिये श्री जी से प्रार्थना की गई। पाठशाला का कार्य भी बन्द रहा। एक शोक प्रस्ताव पासकर उनके कुटुम्बियों के साथ समवेदना प्रकट करने के लिये उनके घर भेज दिया गया।

—दिल्ली में ता० २९-७-३४ को प्रो० धर्मचन्द्र जी B. S. C. पधारे। आपके व्याख्यानों का आम जनता पर विशेष प्रभाव पड़ा। आपने यहां का जलवायु उत्तम देखकर यहां एक विद्यालय खोलने का वचन दिया, जिसमें न्यायतीर्थ तथा शास्त्री कक्षा पास छात्र विद्याध्ययन कर समाज की योग्य सेवा कर सकेंगे। स्थान का प्रबन्ध हो चुका है। आशा है कि विद्वान उपदेशक यहां पधार कर जनता को धर्म का लाभ कराते रहेंगे। —किशोरीलाल जैन

—ग्वालियर निवासी सेठ माधोराम व नाथूराम जी ने २०००) रु० धर्मशाला के वास्ते और एक मकान व एक नया रथ बनवाकर श्री जैनमंदिर को दान किया जिसके लिए यहां की जैनसमाज उनको कोटिशः धन्यवाद देती है। —मैनेजर

वर्ष २] १६ आगस्त १९३४ ई० [अंक ३

ॐ

❀ श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुख-पत्र ❀

ऑन० सम्पादक—

पं० चैनसुखदास जैन न्यायतीर्थ

पं० अजितकुमार जैन शास्त्री पं० कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री

ग्राहकों से—

"जैन दर्शन" के जिन बहुत से ग्राहकों का वार्षिक मूल्य गत जौलाई मास में समाप्त हो गया है उन सब से निवेदन है कि वे ता० ५ सितम्बर तक निम्न पते पर अपना अपना वार्षिक मूल्य ३) रु० मनिआर्डर से भेजने की कृपा करें। अन्यथा दर्शन का आगामी अङ्क—स्याद्वाद अङ्क—ग्राहकों की सेवा में वी० पी० खर्च सहित ३।) की वी०पी० द्वारा भेजा जायगा। ऐसा करने से ग्राहकों को व्यर्थ ही ।) की हानि होगी और ऑफिस को परेशानी उठानी पड़ेगी। अतएव साग्रह निवेदन है कि ३) मनीआर्डर से भेजकर अपना ।) का लाभ करें और हमें परेशानी से बचाने की कृपा करें। —प्रकाशक "जैनदर्शन" बिजनौर (यू०पी०)।

एक वर्ष का मूल्य ३) —— इस अंक का मूल्य ≈)

प्राप्ति-स्वीकार

१—भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ को निम्न प्रकार सहायतार्थ द्रव्य प्राप्त हुआ है। दानी महानुभावों को हार्दिक धन्यवाद।

१०) सेठ छोटेलाल मूलचन्द जी, महू।
५) ला० बलवन्तराय गार्गीय जैन, खेरी।
(विवाह के उपलक्ष में)

२—"जैन दर्शन" की सहायतार्थ निम्न सहायता प्राप्त हुई है: दानी महानुभावों को हार्दिक धन्यवाद :—

७६) ला० विशम्भर दास शान्ति सरूप जी जैन रईस, खतौली।
५०) ला० चन्डीप्रसाद जी, धामपुर (बिजनौर)
५०) रा० ब० ला० हुलाशराय जी, जैन रईस सहारनपुर।
२५) सेठ भाग चन्द्र जी सोनी, अजमेर।
२५) ला० गेंदा लाल जी जैन, खतौली।
२) बा० सुमेर चन्द जी, अम्बाला छावनी।

—मैनेजर।

आवश्यक सूचना

चौ० धर्मचन्द्र जी के सम्बन्धमें कभी २ कोई २ भाई हमसे अनेक प्रकार की बातें मालूम करते हैं अतः यहाँ हम इतना नोट कर देना आवश्यक समझते हैं कि चौधरी जी का संघसे कोई सम्बन्ध नहीं है। जो भी उनके सम्बन्ध में जो कुछ भी मालूम करना चाहें वह स्वयं उनसे करें।

—प्रधान मंत्री

विद्वानों की आवश्यक्ता है

पर्यूषणपर्व के लिए विद्वानों की मांगें संघ के कार्यालय में आरही हैं: अतः संघ को कुछ समाज सेवी विद्वानों के सहयोग की आवश्यक्ता है, जो पर्यूषण के दिनों में बाहर जाकर जनता को धर्म लाभ करा सकें। आने जाने का मार्ग व्यय यदि स्थानीय पञ्चायत न देगी तो वह संघ की तरफ़ से भेंट कर दिया जायगा। जो भाई समय देना चाहें वे सूचित करें। सूचना मिलने पर तदनुसार व्यवस्था करदी जायगी। प्रधान मंत्री

भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ, अंबाला छावनी।

'दर्शन' का आगामी अंक

"स्याद्वाद अंक" होगा, जो लगभग १०० पृष्ठ का होगा। उसके तैयार होने में प्रेस अधिक समय लेगा, इस कारण वह ता० १ सितंबर को न प्रगट होकर, दशलाक्षणी पर्व पर, लगभग ११—१२ सितंबर को प्रगट होगा। पाठक महानुभाव १ सितंबर के अंक का इन्तज़ार न करें। —प्रकाशक

भाद्रपद आगया ! इसलिये

"जैन दर्शन" के साथ नोटिस व अपील आदि कोइपत्र बटवाने के इच्छुक ता० ५ सितंबर तक अपनी २ अपीलें १०००—१००० प्रति निम्न पते पर भेजकर ५) बटाई चार्ज मनीआर्डर से भेज दें। भाद्रपद में केवल आगामी अंक ही प्रगट होगा। हम अपने यहाँ हर प्रकार की छपाई का भी उचित लागत में अच्छा प्रबन्ध कर देंगे।

—प्रकाशक "जैनदर्शन" बिजनौर।

ॐ

* श्री जिनाय नमः *
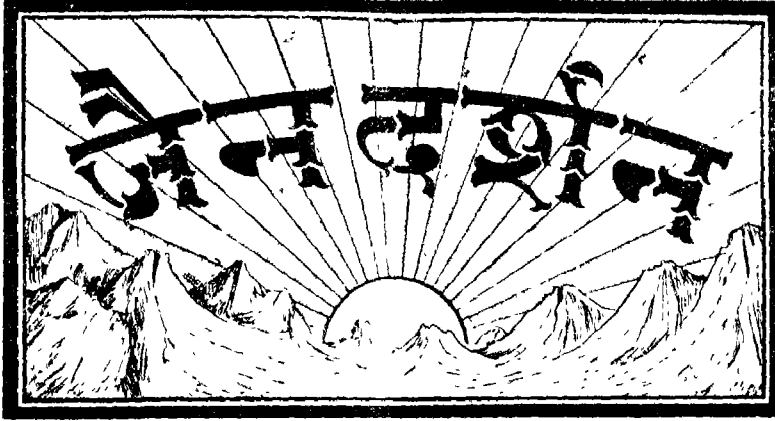
श्री जैनदर्शनमिति प्रथितोग्ररश्मिर्भस्मीभवन्निखिल दर्शन पक्षदोषः ।
स्याद्वाद भानुकलितो बुधचक्रवन्द्यो, भिन्द्यात्तमो विमतिजं विजयाय भूयात् ॥

वर्ष २ { बिजनौर, श्रावण शुक्ला ६—श्री 'वीर' नि० सं० २४६० { अङ्क ३

प्रकृति रहस्य

ले०—पं० चैनसुखदास जैन न्यायतीर्थ

[१]

नभमण्डल में यह ग्रहमण्डल, क्योंकर ऐसे फिरता है ?
उपग्रह ग्रहपति चन्द्र दिवाकर, क्यों ऐसे चढ़ गिरता है ?

[२]

क्या हैं ये सब ? कौन कहाँ है ?
कैसे इनका पिण्ड बना ?
विविध कौतुकों का संग्रह यह !
विधि ने कैसा जाल तना ?

[३]

कैसे बीज बना औ अंकुर !
भू-मण्डल जल नभ ऐसे ?
इन द्वन्दों में कौन प्रथम था ?
हे प्रभुवर ! जानें कैसे ?

[४]

रस पहले था या फल पहले, गंध पुष्प औ औष्ण्य हुताश !
यह दुरूह सन्दर्भ प्रकृति का, इनका हो कैसे प्रतिभास ?

[५]

अद्रि शिलोच्चय कैसे बनता ?
कैसे होता वसुधा कम्प ?
कैसे ध्वनि प्रकाश, वायु में,
औ ईथर में करता कम्प ?

[६]

बीज वृक्ष की जटिल समस्या।
आदिनादि का विस्तृतवाद ॥
हमें बताता प्रकृति तत्व तो।
सचमुच है अन्तर्हित नाद ॥

[७]

ये रहस्य अज्ञेयवाद हैं, पर दर्शन विज्ञान प्रकाश !
कभी कभी धुंधलासा इनका, कर देता जगमें आभास ॥

उपासना का अभिनय

[लेखक—श्रीमान् पं० चैनसुख दास जैन न्यायतीर्थ]

भगवन् ! तेरी सेवा का व्रत बहुत कठिन है । जगत् के प्रलोभनों से प्रेरित होकर उपासक के रूप में उपासना भूमि के रङ्ग मञ्च पर मैं अनेक बार आया । आपको देखते ही मेरे अङ्गोपाङ्ग ताण्डव नृत्य में घूमने लगते थे, जैसे मेरे प्रत्येक शरीर का अणु सेवा व्रत का अनुभव कर रहा हो । दर्शक लोग मेरे इस अभिनय को देख कर बड़े प्रसन्न होते और उपासक के महान् पद द्वारा मेरा अभिवादन करते । मैं उनकी मधुर वाणी को सुन कर बड़ा प्रसन्न होता । मैं अनुभव करता कि सच-मुच मैं उपासक हो गया हूँ । "जगत् की प्रसन्नता से तेरी उपासना का कोई तादात्म्य नहीं है" इस आध्यात्मिक रहस्य का ज्ञान मुझे न था । मैं नहीं जानता था कि तेरी सेवा का व्रत बहुत कठिन है ।

मैं भक्तों की वन्स मोर की ध्वनि को सुन कर उन्मत्त हो जाता, इस ध्वनि के उन्माद ने मेरे और तेरे अन्तर को और भी अधिक बढ़ा दिया; पर मैं इस सूक्ष्म रहस्य को न समझ सका । मैं भी मोहोन्मत्त हो अज्ञान की ओर खिचा जा रहा था । समझता था जीवन सफल हो रहा है; पर यह तो आत्मवंचना थी । संसार प्रसन्न हो रहा था, किन्तु तुम्हारी उदा-सीनता का मुझे पता न था । जहाँ से पारितोषिक की आशा, थी वहाँ तो कृपा का लेश भी न था । बाहर की तरफ़ से आने वाली निःसार करतल ध्वनि में क्या था ?

इस अभिनय में अनेक युग बीत गए, पर तुम्हारे बिठाने योग्य एक मनोहर उच्च और पवित्र आसन का निर्माण मैं न कर सका । मद मत्सर काम और स्वार्थ के राक्षस इस देवासन के निर्माण में बाधक थे । मैं तुम्हें निमंत्रण देता, पर स्वागत की योग्यता न थी । तुम्हारे गीत गाता था, किन्तु तुमसे बहुत दूर रह कर । शायद तुममें तन्मय होने का वह ढोंग था । तुम्हारे पास रह कर भी मैं तुम्हें न पा सकता था । क्योंकि मेरा विवेक अन्धकार में आवृत्त था । पर आश्चर्य है कि दुनियाँ मुझे त्यागी, तपस्वी और उपासक कहती थी ।

इस विडम्बना में धीरे धीरे जीवन समाप्त हुआ । मैंने विचारा कि उपासक के लिये देवदूत आवेंगे पर राक्षसों ने आकर कहा चलो । मैं उन्हें देखकर भयभीत हो गया । मैंने कहा—मैं उपासक हूं, तुम मुझे ग़लती से लेने आये हो । मैं तुम्हारे साथ न चलूंगा । यम किंकर भयङ्कर मुंह बनाकर बोले—चुप दंभी ! जीवन भर उपासना का अभि-नय खेल कर भी देवदूतों की आशा करता है । मैंने कहा—सारा जीवन उपासना में व्यतीत किया है । मुझे घसीटते हुए उन्होंने कहा—अरे मूर्ख ! भावोपासक के लिये देवदूत आते हैं । द्रव्य पूजक के लिये नहीं ।

योग और योगांग ।

(लेखक—प्रो० ओमप्रकाश जैन, न्यायतीर्थ, जयपुर)

मनुष्य के हृदय में शान्ति की अभिलाषा जन्म से ही उत्पन्न होने लगती है। मानव समाज का प्रत्येक प्राणी अहर्निश सुखप्राप्ति के लिये सचेष्ट रहता है। परन्तु, सांसारिक वातावरण के अशान्त होने के कारण इस विश्व-वन में उसे कहीं सुख का चिह्न भी दिखाई नहीं देता, ऐसा दर्शनशास्त्रों का मत है; फिर भी यह निश्चित है कि यदि मनुष्य अपनी चञ्चल प्रवृत्तियों पर आधिपत्य करले और अपने सांसारिक कर्तव्यों का यथोचित पालन करता रहे तो उसे कदापि दुःख के अनुभव करने का अवसर प्राप्त न होगा और वह अपनी भावनाओं के अनुकूल शान्ति का भी उपभोग करता रहेगा। विद्वानों का कथन है कि मानवजीवन की सफलता इसी प्रकार अपनी चित्तवृत्तियों के निरोध का अभ्यास बढ़ाने में तत्पर रहते हुए निष्काम कर्म करने में है। यही जीवनविकास और आत्मोत्थान का सर्वश्रेष्ठ सरल उपाय है। इसी के द्वारा हमारी आत्मशक्ति और प्राणों की वृद्धि होती है। यह समझ लेने की बात है कि जब आहार-विहार में थोड़ा थोड़ा संयमका अभ्यास बढ़ाने और स्वास्थ्य के साधारण नियमों का पालन करने से ही अपने शरीर में बहुत कुछ परिवर्तन हो जाता है, तब योगसाधन जैसे सर्वोच्च संयमपूर्ण मार्ग का अवलम्बन करने से तो अवश्य ही हमारी आत्मशक्ति में असाधारण वृद्धि होगी, इसमें सन्देह नहीं।

जो लोग यह समझे हुए हैं कि योगाभ्यास हमारे लिये कोई उपयोगी वस्तु नहीं, इसके अपनाने से हमें कोई लाभ नहीं, यदि यह लाभप्रद भी हो तो उन्हीं के काम की चीज़ है जो संसार से विरक्त हो गये हैं और संसार के कार्यों से जिनका अब सम्पर्क नहीं रहा है, वे अवश्य ही भ्रम में हैं। योग किसी मनुष्य विशेष की सम्पत्ति नहीं है, वह तो मनुष्यमात्र के अपनाने की वस्तु है। उस पर जैसा संन्यासियों का अधिकार है, गृहस्थ भी तदनुरूप उसके अभ्यास के पात्र हैं। इसके सम्बन्ध में छोटे बड़े का प्रश्न भी कुछ महत्व नहीं रखता। बाल-वृद्ध स्त्री और पुरुष सभी इसके अभ्यास के अधिकारी हैं। हाँ! उनमें कुछ योग्यता का होना अवश्य अपेक्षित है। मुझे तो यह भी मिथ्या प्रतीत होता है कि योगाभ्यास से हमें कुछ भी लाभ नहीं है। क्योंकि कोई भी विचारशील योगाभ्यास के जो चमत्कार वर्तमान में देखे जा रहे हैं, और प्राचीन साहित्य में जो इसके लाभों का विस्तृत वर्णन किया गया है, उसका अवलोकन कर इसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता। प्राचीन कालमें योगाभ्यास के कारण ही अनुपम शांति रही।

आध्यात्मिक युग में हमारे पूर्वज, जिनको आधुनिक सभ्यता के पक्षपाती मनुष्य चाहे असभ्य ही क्यों न मानते रहें, योग के चमत्कारपूर्ण साधनों में वे हमसे अवश्य ही कोसों आगे बढ़े हुए थे। योगाभ्यास उनका नित्यकर्म था। उन्हें

अच्छी तरह प्रतीति हो गई थी कि शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति का योगाभ्यास के अतिरिक्त अन्य कोई प्राकृतिक साधन नहीं है। इसी कारण उन्होंने योगमार्ग का आश्रय लिया और इस पथ में अधिक से अधिक आगे बढ़ने का प्रयास किया। इस विश्व शान्ति के अनुपम मार्ग का दृढ़ता से अवलम्बन किये रहने का परिणाम यह निकला कि आध्यात्मिक उत्कर्ष पर से दृष्टि उठाकर उन्होंने भौतिक उन्नति करने का संकल्प भी नहीं किया। उनके विचारों में आध्यात्मिक शक्ति संवर्धन के समक्ष भौतिक उन्नति का कुछ भी महत्व प्रतीत नहीं हुआ। परन्तु ज्यों ज्यों आर्यों की सभ्यता का ह्रास हुआ, उनका तत्वज्ञान लुप्त होने लगा; सभ्यता की घुड़ दौड़ में प्राचीन संस्कृति और विद्याओं का क्रम इतस्ततः छिन्न भिन्न हो गया। सामयिक अशांति के कारण लोगों ने योगाभ्यास की क्रियाओं की ओर भी विशेष ध्यान नहीं दिया। ऐसा होने पर जड़वाद का प्रचार होते होते एक वह समय भी आ पहुँचा जिसे व्यतीत हुए अधिक काल नहीं हुआ—जब कि लोगों ने योग को निकृष्ट वस्तुओं में समझ लिया। अस्तु !

योग के इस अपकर्ष काल में भी इन दिनों में अनेक ऐसे दिव्य पुरुषों का जन्म हुआ है, जिन्होंने अपने जीवन में योगाभ्यास से अधिक आनन्द प्राप्त किया है और योग के अद्भुत चमत्कारों का संसार को परिचय कराया है। अनेकों महानुभावों ने तो योग साधन से ऐसी अद्भुत शक्तियाँ भी प्राप्त की हैं, जिनका होना ही जन साधारण की दृष्टि में आश्चर्य की बात है।

आधुनिक युग में होने वाले योगियों में स्वामी रामतीर्थ, विवेकानन्द, दयानन्द आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। चाहे हमारा इनके साथ कितना ही मतभेद क्यों न हो, योगाभ्यास के लिये हम इनकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। इन सब महानुभावोंने योगाभ्यास में उत्कर्ष प्राप्त करने के कारण ही जनता पर अपना आधिपत्य स्थापित किया था और अपने सिद्धान्तों का संसार में इतनी अधिक मात्रा में प्रचार बढ़ाया था। एकाग्रचित्त हो योगाभ्यास में रत रहने के कारण ही स्वामी रामतीर्थ को सिंह जैसे भयानक और हिंसक जन्तु भी कुछ हानि न पहुँचा सके। उनमें भय न होकर उनके आन्तरङ्गिक प्रेमभाव प्रकट हो गया या यों भी कह सकते हैं कि उनका सच्चा प्रेम एक आत्मतत्व से ही रहा। वे उसे ही पूर्ण बनाने की साधना में संलग्न रहे। जैसे संसार के सभी विषयों से उन का राग और द्वेष नष्ट हो गया हो। विवेकानन्द और दयानन्द की प्रभावशालिनी भाषण शक्ति का भी योगसाधन के अतिरिक्त अन्य कोई कारण नहीं हो सकता। इनके अतिरिक्त और भी अनेकों ऐसे दृष्टान्त हैं, जिनसे योगाभ्यास के चमत्कारों का परिचय मिलता है। जिन (योगाभ्यास से संभाव्य) कार्यों को आधुनिक विज्ञान ने भी असम्भव उद्घोषित किया है उन सबमें योगाभ्यासी कृतकार्य हो सका है, इस बात को आप मिथ्या न समझिए, इसका सजीव प्रमाण दो-तीन वर्ष पूर्व आप लोगों ने प्रायः सभी प्रसिद्ध पत्रों में पढ़ा होगा, जो कलकत्ता प्रयोगशाला की एक आश्चर्यपूर्ण घटना का उल्लेख था। इसमें बताया गया था कि यहाँ जिन योगी महानुभाव का, यदि मैं भूल नहीं रहा हूं तो गोविन्द स्वामी का परीक्षण किया

गया था; उन्होंने बड़े बड़े वैज्ञानिकों की उपस्थिति में अपने केवल प्रबल योगाभ्यास के कारण ऐसे २ तीक्ष्ण विषों, वस्तुओं, कील कांटों आदि को भी उदरसात् कर लिया, जिनके पेट में चले जाने पर मनुष्य कभी नहीं बच सकता। वैज्ञानिकोंका कहना है कि जिस तेज से तेज विष को उन्होंने पिया, उसमें तांबे का पैसा भी पड़कर क्षणमात्र में तरल होजाता है, और मनुष्य जैसा प्राणी तो पीते ही मर सकता है। इस अद्भुत कार्य को देखकर सभी उपस्थित वैज्ञानिकों ने महदाश्चर्य प्रकट किया और योग की चमत्कार युक्त शक्ति की मुक्त कंठ से प्रशंसा की। इसके सम्बन्ध में विश्व प्रसिद्ध श्री रमण के यह शब्द थे— 'यह शख्स संसार के वैज्ञानिकों को चैलेञ्ज देरहा है"। आश्चर्य करने की बात नहीं है। कई योगविज्ञान के आचार्यों ने अपने इसी योग विज्ञान के द्वारा दूरस्थ देश में सांप के काटे हुए को सूचनामात्र से ही उसके विष उतार देने का श्रेय भी प्राप्त किया है। ऐसी स्थिति में योग साधन या अपनी बढ़ी हुई इच्छा शक्ति द्वारा अनेक प्रकार के रोगों की सुगमता से चिकित्सा भी की जाती है। यह कोई बड़े महत्व की बात नहीं। इत्यादि अनेकों दृष्टान्तों के आश्चर्योत्पादक होते हुए भी योगशास्त्र बतलाता है "ये तो सब योग के बाह्य स्थूल रूप हैं; इसकी विशेषताएँ तो वे हैं जिनसे अन्तस्तत्त्व का साक्षात्—प्रकट रूप में—प्रतिभास हो जाता है"। हम लोग तो इस विषय पर ठीक ठीक विवेचन भी नहीं कर सकते, इसका योगियों और साधकों को ही अनुभव होसकता है, क्योंकि यह तर्क का विषय नहीं, इसका तो ज्ञान अनुभव और साधन गम्य है।

योग साधन से होने वाली शान्ति अलौकिक है—वर्णनातीत है। विद्वानों का कथन है कि "योगसाधन वर्तमान संसार के अशान्त वातावरण की निर्दोष चिकित्सा है"। इतिहास के पन्ने उलटने से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में जो शान्ति का साम्राज्य रहा उसका योगसाधन ही प्रधान कारण था। क्योंकि यह निश्चित है कि यदि मनुष्य मोहजन्य वासनाओं से विरक्ति प्राप्त करता रहे—अशान्ति उत्पन्न करने वाले संसार के अनावश्यक कार्यों में हाथ न बढ़ाकर अपना कर्त्तव्य सावधानी से करता रहे और अवशिष्ट समय को अपने चरित्र के निरीक्षण या योगाभ्यास द्वारा अपने आत्मिक उत्थान में लगा देवे, तो यह निश्चित है कि वे अवश्यही अनुपम सुख और शांति के पात्र होंगे। क्यों कि मोह के कारण ही चिन्ता की उत्पत्ति होती है—अनावश्यक संकल्प ही दुःखों के कारण हैं। जब चिन्ता की उत्पत्ति हो जाती है, तब शान्ति का क्रम छिन्न भिन्न हो जाता है और इसी का नाम दुःख है। योग शास्त्रियों का कहना है कि यदि मन की चंचलता पर पूर्ण आधिपत्य रक्खा जाय, चित्त की वृत्तियों को इधर उधर प्रवृत्त होने से रोक कर एक विषय पर लगा दिया जाय, तो यह सम्भव नहीं कि अशान्ति की सृष्टि हो। इससे अच्छी तरह समझ में आजाता है कि मनोयोग को स्थिर न रखने के कारण ही हमारा जीवन अशान्त हो जाता है। दर्शनशास्त्रों में सुख तथा शान्ति के उपायों का वर्णन करते हुए ऐसे ही साधनों का उल्लेख किया गया है जिनसे चित्त एकाग्र होता है, संकल्प-विकल्पों की उत्पत्ति रुककर मन किसी

एक विषय की चिन्तना में प्रवृत्त हो जाता है। उपरोक्त कथन से इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि सांसारिक कार्यों में भी सफलता की प्राप्ति के लिए चित्त की वृत्तियों का निरोध कर मानसिक एकाग्रता प्राप्त करना आवश्यक है। इसके लिए वशीकरण, दृष्टिबन्ध, सम्मोहन आदि इच्छाशक्ति या मैस्मरेज़म के द्वारा सम्पन्न होने वाले कार्यों से बढ़कर और असन्दिग्ध प्रमाण क्या होंगे ?

योगसाधन को अति कठिन विषय मानने की आवश्यकता नहीं, अभ्यास करते रहने वाले साधकों को यह दुःसाध्य नहीं प्रतीत होता। ज्यों ज्यों इसका अभ्यास बढ़ाया जाता है, त्यों त्यों शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उत्कर्ष प्राप्त होता जाता है। इसके अभ्यास के लिए ईश्वर को ध्येय बनाया जाय यह भी आवश्यक नहीं है। अधिकारी के भेद से इसके प्रकार और ध्येय अनेक हो सकते हैं। साधारण से साधारण मनुष्य भी अपनी योग्यतानुसार इससे बहुत कुछ लाभ उठा सकता है। वैज्ञानिकों का मत है "प्रत्येक सभ्य और उन्नत व्यक्ति में स्वभावतः कुछ न कुछ योगसाधना प्रायः काम करती रहती है"। इसके थोड़े से अधिक अभ्यास और वैराग्ययुक्त हो जाने पर हम सामाजिक पापों से सरलता से छुटकारा पा सकते हैं—समाजसुधार और देशोन्नति में पूर्ण सहायता ले सकते हैं। यदि हमारा अभ्यास सुदृढ़ हो जाय तो पूर्णोन्नत और जीवनमुक्त भी हो सकते हैं। परन्तु यह सब तभी सम्भव है जब योगमार्ग में अभ्यास को क्रमशः उन्नत बनाते रहें। जब हम इस मार्ग का अवलम्बन कर लेंगे तब सात्विक विषयों में प्रवृत्त रहने के कारण मन स्वयं शुद्ध और निवृत्तिमार्ग परायण हो जावेगा और उस समय पूर्व की क्लिष्टवृत्तियों* का अपने आप निरोध हो जायगा और जहाँ साधारण मनुष्य की बुद्धि थक जाती है, कल्पनाशक्ति व्यर्थ हो जाती है, उन विषयों तक योग हमें पहुँचा देगा।

जैन शास्त्रों में योग की बहुत प्रशंसा की गई है। योगदर्शन के समान जैन सिद्धान्त में भी इस विषय का विवेचन किया गया है। कई शास्त्रों के विस्तृत प्रकरण इसी विषय पर लिखे गये हैं †। जैनशास्त्रों से भी यही प्रकट होता है कि हम उत्कृष्ट ध्यान द्वारा वह ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं जिससे संसार के गम्भीर और सूक्ष्मतम विषयों का विशद प्रतिभास हो सकता है; इन्द्रिय और मन के अगोचर अति सूक्ष्म तत्वों का निर्मल ज्ञान सम्भव है। ज्यों ज्यों ध्यान अधिक स्थिर होता जाता है त्यों त्यों आत्मशक्ति समृद्ध होती जाती है और ज्ञान अधिक निर्मल होता जाता है। ऐसे आत्मिक ज्ञान की प्रकृष्ट, प्रकृष्टतर और प्रकृष्टतम अवस्था को, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान कहते

* क्लिष्ट और अक्लिष्ट भेद से चित्त की वृत्तियाँ दो प्रकार की मानी गई हैं। जिनसे धर्म अधर्म या कर्म अकर्म की उत्पत्ति होकर क्लेश पहुँचता है वह क्लिष्ट और इसके विपरीत अक्लिष्ट कहलाती हैं। अक्लिष्ट वृत्ति के संस्कारों द्वारा क्लिष्ट वृत्ति के संस्कार अपने आप नष्ट हो जाते हैं।

† पाठक उपलब्ध मुद्रित ग्रन्थों में देखना चाहें तो ज्ञानार्णव और तत्व भावना के प्रकरण देखें। ज्ञानार्णव में योग का विषय भी स्पष्ट किया गया है।

हैं। केवलज्ञान उत्कृष्ट ध्यान * के फल की चरम सीमा है। इस की प्राप्ति हो जाने पर सम्पूर्ण पदार्थ हस्तामलकवत् प्रतिभासित होनेलगते हैं।

वैशेषिक और नैयायिकों के युक्त और युञ्जान योगी भी अपना उत्कृष्टज्ञान इसी विधि से प्राप्त करते हैं। इनमें युक्त योगी को सर्वदा भान रहता है और युञ्जानयोगी चिन्तवन करके सब पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करता है।

बौद्धों की मानी हुई चिन्तामयी भावना भी योगाभ्यास ही का पुष्ट प्रमाण है।

वेदान्त सम्मत परब्रह्म की प्राप्ति भी योग के उत्कर्ष को प्राप्त हुए योगी के ही होती है।

इसीप्रकार सभी दार्शनिकों ने उत्कृष्ट आत्मिक ज्ञान और बल की प्राप्ति किसी न किसी प्रकार योग के अभ्यास से ही स्वीकार की है। अस्तु, अब हम इस विषय पर कुछ अधिक न लिख कर अपने प्रकृत विषय 'योगाङ्ग' पर आते हैं।

योग शब्द के अनेक अर्थ हैं; पर हम यहाँ चित्त की वृत्तियों के निरोध को ही योग कहेंगे। चित्त की वृत्तियों का निरोध दो प्रकार से हो सकता है—एक तो किसी निश्चित विषय से मिला देने से और द्वितीय विकल्प शून्य समाधि धारण कर लेने से ‡। विभिन्न शास्त्रों में अनेक योगों † का उल्लेख किया गया है, परन्तु हम इस प्रकरण में आवश्यक होने से अष्टांग योग पर ही विचार प्रगट करेंगे। जिस प्रकार हस्तादि किसी अवयव के न होने पर शरीर सर्वाङ्ग परिपूर्ण नहीं कहलाता, उसी प्रकार आगे लिखे जाने वाले आठों अंगों में से किसी एक के भी अभाव से योग पूर्ण नहीं हो सकता। वे आठ अंग ये हैं:—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इनमें आदि के पांचों योग के बहिरंग साधन हैं और अन्त के तीन अन्तरंग साधन हैं। अन्तिम साधन समाधि की सिद्धि के लिये इन सब का विधान किया गया

---

* जैन सिद्धान्त में चार प्रकार के ध्यान बताये गये हैं—आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान। इनमें आदि के दो ध्यानों से आत्मोत्थान नहीं होता; ये संसार बन्ध के कारण हैं। अन्त के दो ध्यानों से आत्मा के परिणाम विशुद्ध होते हैं। शुक्लध्यान अन्तिम ध्यान है। इस को पूर्णता हो जाने के साथ ही साथ आत्मा में अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य प्रकट हो जाते हैं और "नास्ति योगात् परं बलम्" को चरितार्थ करते हैं। इसकी प्राप्ति तबतक नहीं हो सकती जबतक मनुष्य अपने को योगद्वारा इस योग्य न बना ले। मन, वचन और काय के प्रदेशों की क्रिया का नाम योग है। इस क्रिया के रुक जाने पर ही ध्यान होता है।

‡ ध्यान को किसी एक विषय विशेष से मिला देने के अर्थ में 'युजिर योगे' ऐसी व्युत्पत्ति की गई है और जहाँ योग शब्द का समाधि अर्थ अपेक्षित है वहां 'युज् समाधौ' इस प्रकार सिद्धि की गई है। चित्तवृत्ति का किसी कर्म से मेल और अत्यन्त सम्बन्ध विच्छेद दो भिन्न भिन्न मार्ग होने के कारण दोनों ही अर्थ ठीक प्रतीत होते हैं। योग की क्रिया दृष्टि से पहिला अर्थ संगत है और उद्देश्य की दृष्टि से द्वितीय अर्थ अविरुद्ध है।

† जैसे:—कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्ति योग, ध्यान योग, मन्त्रयोग, हठयोग, राजयोग आदि आदि। योगाङ्ग का सम्बन्ध राजयोग से है, यही योग उत्कृष्ट है।

है। जिनकी पूर्व संस्कारों के द्वारा योग में प्रवृत्ति है, जो आगे बढ़ चुके हैं, उनके लिए इन आठों अंगों के अभ्यास की कोई विशेष आवश्यकता नहीं। किन्तु जिन्होंने अभी इस मार्ग में प्रवेश नहीं किया है, जिनके संस्कार दृढ़ नहीं हैं, जो चित्त की वृत्ति को रोकने के लिए चेष्टा करते हैं, किन्तु स्मृति अनुभूत पदार्थों को याद दिला कर जिन्हें अपने स्थान से च्युत करा देती है उन साधकों के लिये यह अष्टाङ्ग योग सुगममार्ग है, जिसमें क्रमशः पद बढ़ाते हुए साधक योगमार्ग के अन्तिम स्थान समाधि पर पहुँच सकता है। यह क्रम वास्तव में वैज्ञानिक है, अच्छी तरह सोच विचार कर निश्चित किया गया है। संसार जाल में अधिकता से फँसे हुए मनुष्य के लिए भी बन्धन मुक्त होजाने का यह अच्छा उपाय बताया गया है*।

जब तक मनुष्य का संसार के पदार्थों में राग बन्धन ढीला न हो जाय, तब तक किसी भी योग के अभ्यास का अधिकारी नहीं, क्योंकि मोहजन्य संकल्पों के रहते हुए चञ्चल मन उनके विषयभूत पदार्थों में प्रवृत्त हुए बिना नहीं रहता। इसलिए सर्वप्रथम यम और नियम के अभ्यास का विधान किया गया है†। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच यम हैं तथा शौच, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान, ये पाँच नियम कहलाते हैं। इनमें यमों का सम्बन्ध समाज और साधक व्यक्ति दोनों से है, क्योंकि इस यम॰ योग का पालन नहीं करने वाला व्यक्ति अपनी आत्मा को ही गिराकर नहीं रह जाता, प्रत्युत सामाजिक अशान्ति में भी बहुत बड़ा हाथ बटाता है। इसलिए उसे अपनी आत्मा के पतन रूप पाप का फल भोगना तो अनिवार्य हो ही जाता है, किन्तु समाज के व्यक्तियों के प्रति किये हुए हानि रूप पापाचार का भी परिपाक अवश्य ही सहन करना पड़ता है। नियम केवल व्यक्ति तक ही सीमित हैं; इनका प्रभाव केवल इनके पालन करने वाले व्यक्ति पर ही पड़ता है। इसलिए नियमों की अपेक्षा यम आरम्भिक साधक के लिये अधिक आवश्यक गुण हैं। सम्भवतः इसी अभिप्राय से नियम के पहिले यम का नामोल्लेख किया गया है।

जब मनुष्य का यम और नियम के अभ्यास से संसार के पदार्थों से राग बन्धन ढीला हो जाता है—विभाव परिणति हटकर स्वभाव की ओर रुचि होने लगती है—तभी मनुष्य किसी रूपमें योगाभ्यास

* जैनसिद्धान्त में ध्यान और अपने आत्मिक उत्थान का जो क्रम बतलाया गया है वह इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है। अपने अभ्यास को क्रमशः बढ़ाने के लिए अनेक यम नियमों का उल्लेख बड़ी ही बुद्धिमत्ता से किया गया है। मेरा विश्वास है कि जैनसिद्धान्त के अनुसार अपने को उन्नत बनाने वाला मनुष्य यदि अपने पूर्व के कर्तव्यों का विधिवत् पालन करता रहे, तो वह कभी भी अपने पद से नहीं गिर सकता। श्रावक के बारह व्रतों (५ अणुव्रत, तीन गुणव्रत और ४ शिक्षाव्रत) को पालन करने वाले के लिये आगे के मार्ग में कठिनता नहीं होती।

† *जैनग्रन्थों में भी यम और नियमों का उल्लेख किया गया है। जिन व्रतों का आजन्म पालन किया जाय* वे यम, और जो व्रत नियमित समय के लिए ग्रहण किये जायं वे नियम कहलाते हैं। प्रकृत विषय में वर्णित अहिंसादि यम और शौचादि नियम जैनग्रन्थों से मिलते हुए ही हैं।

का अधिकारी बनता है। इसलिए योग का तीसरा अंग 'आसन' बतलाया गया है। आसन बैठने के ढङ्ग को कहते हैं *। जिस स्थिति में सुख पूर्वक रहें और मनकी चंचलता पर अपना पूरा अधिकार रहे, वही आसन यहां अपेक्षित है। आसन अनेक प्रकार के बताये गए हैं ‡। उनमें पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, स्वस्तिकासन आदि को योगी लोग अधिक काम में लाते हैं। आसन योग साधन की आधारशिला है। जबतक आसनों का अभ्यास ठीक न होगा, योग में अनेक बाधायें आती रहेंगी। इनका पूर्ण अभ्यास होजाने पर योगी पर बाह्यपरिस्थितियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता †। गर्मी, सर्दी, वर्षा आदि का ध्यान करने वालों पर कुछ भी असर नहीं होता। स्वामी रामतीर्थ पहाड़ की बर्फ़ मय चट्टानों पर ध्यान लगाते थे।

योग का चौथा अङ्ग है प्राणायाम। प्राण वायु के संयम (भीतर खींची हुई वायु को भीतर ही कुछ समय तक रोक रखने) को प्राणायाम कहते हैं। आसनों के ठीक हो जाने पर प्राणायाम का अभ्यास किया जाता है। प्राणायाम के अभ्यास से प्राणों पर पूरा अधिकार हो सकता है। और प्राणों पर अधिकार हो जाने पर ज्ञानक्रिया के अधिकतर हमारे वश में हो जाने पर ध्यान एकाग्र करने में सुभीता हो जाता है *। प्राणायाम का अभ्यास प्राणवायु के पूरक, कुम्भक और रेचक द्वारा बढ़ाया जाता है †। नासिका के दाहिने या बायें छिद्र से

* "स्थिर सुख मासनम्।" अर्थात् जिससे मन स्थिर रहे और शरीर की स्थिति सुखदायक हो वह आसन कहलाता है। जैन ग्रन्थों में भी अनेक प्रकार के आसनों का उल्लेख किया गया है। जैसे:—पर्यंक आसन, वज्रासन, वीरासन, सुखासन, कमलासन, कायोत्सर्गासन, पद्मासन आदि। इनमें प्रत्येक आसन का फल और उपयोग अपेक्षा भेद से भिन्न-भिन्न वर्णन किया गया है।

‡ चौरासी लाख योनियों की कल्पना करने से आसनों के भी इतने ही भेद किये गये हैं। इनमें मुख्य आसन चौरासी ही हैं। इन सबका फल भिन्न भिन्न है। उदाहरण के लिये 'मयूरासन' समझ लीजिए। इस आसन का अभ्यास करने वाले व्यक्ति की पाचन शक्ति बहुत तेज़ हो जायगी। क्योंकि मयूर का शरीर संगठन ही इस भांति का है जिसके कारण उसकी उदराग्नि तीव्र है। इसी प्रकार अन्य के सम्बन्ध में भी समझ लीजिए।

† इनका अभ्यास किसी अनुभवी सद्गुरु की अध्यक्षता में ही करना चाहिए; अवसर आने पर बिना किसी गुरु के बहुत अधिक हानि होना सम्भव है।

* प्राणायाम के अभ्यास की प्रक्रिया जैनशास्त्रों में भी लिखी गई है, पृथ्वी मण्डल, जल मण्डल, पवन मण्डल और अग्निमण्डल की पहचान करके शुभाशुभ की भी रीति बतलाई गई है। परन्तु यह आवश्यक नहीं बतलाया गया कि प्राणायाम के बिना ध्यान हो ही नहीं सकता। इसका अभिप्राय यह है कि प्राणायाम के अभ्यास के बिना आत्मबल से ही आत्मध्यान हो जाता है। जब आकुलता नहीं रहती तब मन स्वयं रुक जाता है।

† प्राणायाम की ठीक प्रक्रिया किसी अभ्यस्त गुरु से ही सीखना चाहिए; अपने आप प्राणायाम करने लग जाने से बहुत अधिक हानि की सम्भावना है। क्योंकि प्राणायाम में प्राणवायु को उदर रोक कर विभिन्न नाड़ियों में फैलाया जाता है। यदि इसे वापिस समेटते समय वायु कहीं अटकी रह गई—न निकल सकी या किधर की किधर

प्राणवायु को भीतर खींचना पूरक कहलाता है। घट के समान प्राणवायु को उदर में भरके रोकना कुम्भक है। कुम्भक द्वारा रोकी हुई वायु को नासिका के बायें या दाहिने छिद्र द्वारा बाहिर छोड़ देना रेचक कहा जाता है। यह प्राणायाम जितने अधिक समय तक किया जायगा, योगाभ्यास के लिए वह उतना ही विशेष सहायक होगा। प्राणायाम के सम्बन्ध में यह बात विशेषरूप से ध्यान में रखने की है कि नासिका के जिस छिद्र से पूरक किया गया हो, रेचक उसी से न करना चाहिए; दूसरे छिद्र से ही रेचक करना लाभप्रद है। तदनन्तर जिससे पूर्व में रेचक किया था उसी से पूरक करना चाहिए और दूसरे-जिनसे पहिले पूरक किया था-से रेचक करना चाहिये। अर्थात् यदि इड़ा नाड़ी (बायें छिद्र) से पूरक किया हो तो पिङ्गला नाड़ी (दाहिने छिद्र) से रेचक करना चाहिए और यदि पिङ्गला से पूरक किया हो तो इड़ा से रेचक करना उचित है। जिस नाड़ी से रेचक किया हो उससे पूरक करने में हानि नहीं है, परन्तु जिस नाड़ी से पूरक किया हो उससे रेचक भूलकर भी न करना चाहिये। यह प्राणवायु को वश में करने का क्रम धीरे धीरे ही बढ़ाना चाहिये। अभ्यास में शीघ्रता करने से कुछ भी लाभ नहीं होता, प्रत्युत श्वास, खांसी आदि रोग उत्पन्न होकर साधक जीवन दुःखमय बना देते हैं। प्राणायाम के कई प्रकार हैं। चतुष्पाद प्राणायाम में पूरक, कुम्भक और रेचक की मात्रा १, ४, २ होती है। अर्थात् जितनी देर पूरक हो उससे चौगुना समय कुम्भक में लगाना चाहिए और दुगुना रेचक में। किन्तु कुम्भक में यदि किञ्चित् भी घबराहट होने लगे तो फौरन रेचक या पूरक करने लग जाना चाहिये। प्राणायाम से भाव विशुद्ध होते हैं और आत्मिक शक्ति प्रबल हो जाती है। प्राणायाम के अभ्यास करने वाले अनेकों ऐसे महानुभाव देखे गए हैं—जो अपनी छाती पर बड़ा भारी पत्थर रखकर तुड़वाते हैं, लोहे के तीक्ष्ण कीलों वाले तख्ते पर सोकर अपने सीने पर कई मनुष्यों को खड़ा कर लेते हैं, मनुष्यों से भरी हुई गाड़ी को अपनी छाती पर होकर उतार देते हैं और इनके अतिरिक्त अन्य भी ऐसे कौतूहल दिखाते हैं जो आश्चर्यपूर्ण होते हैं *। प्राणायाम का स्वास्थ्य से भी घनिष्ट सम्बन्ध है। इसका अधिक अभ्यास करने वालों का स्वास्थ्य विशेष सुन्दर देखा जाता है। लगातार प्राणायाम करने वाले पुरुषों के श्वास, संग्रहणी, डिस्पेप्सिया आदि भयंकर रोग भी नहीं रहने पाते। एक बार

हो गई तो जन्मपर्यन्त दुःख भोगना पड़ता है। इसलिये हमने यहां, मूलबन्ध, उड्डियानबंध, जालंधर बन्ध आदि का उल्लेख नहीं किया है।

* ये सब कार्य प्राणायाम के विशेष अभ्यास से होते हैं। जिनका अभ्यास सुदृढ़ होगया है, उनका शरीर प्राणायाम करने पर इतना कठिन हो जाता है कि वह इन सब कार्यों को सहन कर सकता है। इसमें न तो लोहे के तीक्ष्ण कीले प्रवेश पाते हैं और न पत्थरों का सीने पर बोझ मालूम होता है। इस क्रिया में किञ्चित भी त्रुटि हो जाय—भरी हुई प्राणवायु में थोड़ी सी अन्दर चली जाय या उसमें से बाहर निकल जाय—तो साधक की मृत्यु सहज है।

समाचार मिला था कि प्राणायाम के कुछ महीनों लगातार अभ्यास से ४० वर्ष का पुराना 'दमा' रोग बिलकुल जाता रहा। प्राणायाम का प्रकरण बहुत लम्बा है; स्थानाभाव से इसे हम यहीं ही समाप्त करते हैं।

प्राणायाम के बाद योग का पाँचवाँ अंग है प्रत्याहार। बाहिरी विषयों से इन्द्रियों को खींच कर उनकी विषयाशक्ति का विरोध करना प्रत्याहार कहलाता है। प्रत्याहार के सिद्ध हो जाने पर इन्द्रियां वशीभूत हो जाती हैं और मनोहर से मनोहर विषय की ओर भी प्रवृत्त नहीं होतीं। इसका अभ्यास प्राणायाम के बाद ही किया जाता है, क्यों कि प्राणायाम के पहिले ऐसा होना कष्ट साध्य है। जब प्राणायाम द्वारा ज्ञान तन्तुओं पर आधिपत्य हो जाता है, तभी इन्द्रियों का बस में आना सुगम है। योगी की उत्कृष्टता इसी में है कि इन्द्रियां बिना इच्छा के विषयों में प्रवृत्त ही न हों, इच्छा न रहते हुए भी प्रवृत हो जाने पर हठ पूर्वक इन्द्रियों का दमन करना योगी की विशेषता को द्योतित नहीं करता। जिस प्रकार कछुवा अपने हस्त पादादि अंगों को अपने भीतर सिकोड़ लेता है, उसी प्रकार श्रोत्रादि सब इन्द्रियों की प्रवृत्ति को आत्म रूप में लीन कर लेना ही योगी के लिए वास्तविक प्रत्याहार है।

इस प्रकार इन पांचों योग के बहिरङ्ग साधनों का तो संक्षेप में उल्लेख समाप्त होगया। इनके द्वारा योगसाधन की बाहिरी तैयारी की जाती है— इससे शरीर और इन्द्रियों को योग के अनुकूल बनाते हैं—क्यों कि शरीर का योग से घनिष्ट संबंध है। अब आगे अन्तरङ्ग साधनों पर कुछ लिखेंगे।

धारणा योग का छठा अंग है। जिसका ध्यान किया जाय उस विषय में निश्चल रूप से मन को लगा देने का नाम धारणा है। इससे मन विषयान्तर में नहीं जाता और एक मात्र लक्ष्यभूत वस्तु में अवस्थित रहता है। प्रत्याहार का पूर्णरूप से अभ्यास हो जाने पर ही धारणा का होना सम्भव है। विचारने से ज्ञात होगा कि योग का वस्तुतः आरम्भ यहीं ही से होता है। इसके पूर्व हमने योग साधन की तैयारियां की थीं, परन्तु वास्तविक योगाभ्यास में कुछ भी प्रवृत्त नहीं हुए थे। धारणा में ध्यान का अभ्यास किया जाता है। ध्यान का अभ्यास स्थूल से स्थूल और सूक्ष्म से सूक्ष्म किसी पदार्थ के—जिसमें अपना ध्यान अच्छी तरह लग सके—आश्रय से किया जासकता है। नासिका का अग्रभाग ध्यान स्थिर करने के लिए अधिक उपयोगी समझा जाता है। मैसमेरेज़िम का आरम्भ इसी योगाङ्ग से होता है। इसके साधक सफ़ेद पटल पर काला बिन्दु बना कर अपनी धारणा शक्ति को बढ़ाने का अभ्यास करते हैं।

इस धारणा से स्मृति का असाधारण विकास होता है। अमरीका में एक योगी ने अपनी विशिष्ट धारणाशक्ति से जो योग साधन की विशेषता बतलाई, वह वास्तव में आश्चर्य की बात है। जब योगी को परीक्षा के लिये एक जनरल मरचेन्ट की दूकान पर ले गये, जहाँ कि एक बड़ी लम्बी पंक्ति अलमारियों की लगी हुई थी और अलमारियों में नियमानुसार शीशे के किवाड़ थे, जिनसे अलमारी में रक्खी हुई प्रत्येक वस्तु बाहर से दिखाई देती थी। योगी को कहा गया कि प्रत्येक वस्तु पर दृष्टि

डाला; उसने देखना शुरू किया और बराबर अन्त तक की अलमारियों को देख डाला। जब समस्त वस्तुएँ देख डाली गईं तब उससे कहा गया कि जो चीजें तुमने देखी हैं उनका अलमारीवार विवरण लिखादो। कुछेक पुरुषों को लिखने के लिये बिठला दिया गया। बालो ने प्रारम्भ से अन्त तक की वस्तु के नाम लिखा दिये और जाँच करने पर वह सूची ठीक पाई गयी। भारत में भी ऐसे बहुत से महात्मा हुए हैं जिनकी स्मरणशक्ति आश्चर्यजनक थी। इस सम्बन्ध में श्रीमद्राजचन्द्र का नामोल्लेख ही पर्याप्त है। इनके आगे और महानुभावों का परिचय देना, जो अपनी बढ़ी हुई शक्ति से शताअवधान करते हैं, कोई विशेष महत्व नहीं रखता। इन प्रत्यक्ष उदाहरणों से यह अच्छी तरह समझा जा सकता है कि योगाङ्गों के अभ्यास से मनुष्यकी कितनी उन्नति होती है।

जब धारणा का अभ्यास ठीक हो जाता है तब ध्यान किया जाता है। यह योग का सातवाँ अङ्ग है। धारणा के विषय भूत पदार्थ में एकाग्रता का होना ध्यान कहलाता है *। यह वास्तविक योग की द्वितीय अवस्था है। इसमें ध्येय विषय का ज्ञान अनवरत रूप से होता रहता है। इसमें ध्यान का अभ्यास दृढ़ होना चाहिए जिससे अन्यान्य पदार्थों में प्रवृत्ति न हो। यह ध्यान दो प्रकार का हो सकता है—सरूप और अरूप। किसी मूर्ति, बिन्दु, ज्योति आदि स्थूल पदार्थों के आश्रित ध्यान स्वरूप ध्यान कहलाता है, और मूर्ति आदि से परे शुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्मा या परमात्मा का चिंतवन अरूप ध्यान है। मन की शान्ति और अरूप ध्यान की सुलभता के लिये सरूप ध्यान किया जाता है। दर्शन शास्त्रों में ध्यान की बड़ी महिमा है। जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिये सदा और सब कार्यों में ध्यान की बहुत आवश्यकता है। ध्यान ही एक ऐसी वस्तु है जिससे सुदूरस्थ पदार्थ भी प्रगट रूप में प्रतिभासित हो सकता है और एक के अन्तरङ्ग के भाव दूसरे को विदित हो सकते हैं। ध्यान से मनुष्य अपने को जैसा चाहे वैसा ही बना सकता है और जो चाहे सो प्रगट रूप में देख सकता है। कहा भी है कि "तमस्युपरते स्वांते तेजः पुंजं ददर्शसः" अर्थात् "ध्यान के अभ्यास से सब तम का नाश हो जाने के बाद हृदय में तेज पुंज का अनुभव होने लगता है"। यह तेज का पुंज ही क्यों दिखता है, इसका उत्तर यह है कि योगी प्रारम्भ से इसे ही देखने की चेष्टा करता है। यदि उसकी भावना अन्य किसी पदार्थ को देखने की हो तो यह निश्चित है

* तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्। अर्थात् धारणा के विषयभूत पदार्थ में एकतानता का ज्ञान—लगातार एक रूपसे उसी पदार्थ का ज्ञान—ध्यान कहलाता है।

जैन सिद्धान्त मे भी ध्यान का वर्णन किया गया है और ध्यान के चार भेद बतलाये हैं—पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत। यह विवेचन बड़ा ही वैज्ञानिक है। साधक के लिये क्रमशः बढ़ने पर किसी भी प्रकार की बाधा उपस्थित न हो, इसका पूरा ध्यान रक्खा गया है। योगदर्शन मे जो स्थूलध्यान, ज्योतिर्ध्यान, बिन्दुध्यान और ब्रह्मध्यान ये ध्यान के चार भेद किये गये हैं, उसी प्रकार जैनग्रंथों मे पिण्डस्थ ध्यान की पार्थिवी, आग्नेयी, वायु, जल और तत्र रूपवती इन पांच धारणाओं का वर्णन मिलता है।

कि वह उसे भी प्रकट रूप में देखने लगेगा। मानस पूजा के लिये कहा जाता है कि पूजक, धूप, दीप, गन्धाक्षतादि सामग्रीके बिना केवल काल्पनिक भावना से ही धूप दीपादि का अर्पण होते हुए स्पष्ट रूप में देख लेता है और सुगन्धित द्रव्यों की सुगन्ध से मस्त तक हो जाता है। यह सत्य और अनुभव सिद्ध बतलाया जाता है। जहाँ तक मैं समझता हूँ इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है। भावना का प्रकृष्ट रूप ऐसा हो सकता है। जब ध्यान से आत्म-साक्षात्कार माना गया है, तब ऐसा हो जाना क्या असम्भव है?

दर्शन शास्त्रों का मत है कि "षट्चक्र-भेद", जिससे अतुल आत्म-शक्ति और अनुपम एकाग्रता प्राप्त होती है, इसी ध्यान पर निर्भर है। हमारे लिये खेद का विषय है कि हम ऐसे सर्वगुण सम्पन्न ध्यान को भूले हुए हैं जो अपनी दिनचर्या में इस के लिये कुछ भी समय नहीं रखते। वास्तव में बिना ध्यान का जीवन ही हमारे पतन का कारण हुआ है। अस्तु–

योग का आठवाँ और अन्तिम अङ्ग है समाधि। यह योगाभ्यास की अन्तिम सीमा है। ध्यान करते समय जब चित्त ध्येयाकार में ही परिणत हो जाता है, तब उस अवस्था को समाधि कहते हैं। इस अवस्था में मन ध्येय वस्तु के स्वरूप को पहुँच कर अन्य सब प्रकार की चिन्तन क्रिया को भूल जाता है तथा संकल्प-विकल्प रहित होकर केवल ध्येयवस्तु के स्वरूप में लीन हो जाता है। और ज्यों ज्यों अधिक लीन होता जाता है, त्यों त्यों उत्कृष्ट अवस्था को पहुँचता जाता है। अन्तमें ध्याता अपने आपको भी भूलकर ध्येयाकार परिणत हो जाता है। इसीलिए ऐसा समझना चाहिए कि जब तक ध्याता, ध्यान (ध्यान करने की शक्ति) और ध्येय ये तीनों अलग अलग प्रतीत होते रहें, तब तक ध्यान कहलाता है, और जब इन तीनों की स्वतन्त्र सत्ता मिट जाय—केवल ध्येय ही अवशिष्ट रह जाय—तब वह समाधि समझी जाती है। धारणा, ध्यान और समाधि इन तीनों के समूह को संयम कहते हैं *। उत्कृष्ट योगी इस समाधि को धारण कर कई महीने और कई वर्ष व्यतीत कर देते हैं। इस समय में भी कई ऐसे योगियों का परिचय पढ़ने को मिला है, जिन्हों ने कई महीनों और वर्षों समाधि लगाकर वैज्ञानिक संसार को आश्चर्य में डाल दिया है। अनेक योगी ऐसे भी देखे गये हैं जो समाधि की अवस्था में श्वास भी नहीं

* संयम की बहुत विशेषताएँ बतलाई गई हैं। योगदर्शन के तृतीय पाद में इनका वर्णन किया गया है। योगदर्शन का मत है कि इस संयम की शक्ति द्वारा ही महर्षिगण त्रिकालदर्शी हुआ करते थे। इसी शक्तिसे योगियों ने महत्वपूर्ण वैज्ञानिक भारतीय दर्शन सिद्धान्तों की रचना की है। जैन सिद्धान्त में जिस प्रकार योगी को ऋद्धियों की प्राप्ति होने पर वह दूसरे के मन अभिप्राय, अन्तर्धान होने की शक्ति, मरण का ज्ञान आदि जान लेता है उसी प्रकार यहाँ भी बतलाया गया है कि किसी भी जीव का वाक्य सुनकर, उस वाक्य के शब्द, अर्थ और ज्ञान पर संयम किया जाय तो योगी समझ सकता है कि–अमुक जीव, अमुक अभिप्राय से यह शब्द बोला है। यदि चित्त वासनाओं का संयम किया जाय, तो पूर्वजन्म का ज्ञान हो जाता। रूप का संयम करने से अन्तर्धान होने की शक्ति आजाती है, आदि-आदि।

लेते देखे गये। कर्नल अलकाट ने एक घटना का उल्लेख किया है, जो यदि सत्य है तो वास्तव में सबके लिए विस्मयप्रद है। उन्हों ने लिखा है—"एक योगी पैंतालीस वर्ष तक समाधि में रहा। समाधि की अवस्था में इसका शरीर बिलकुल जीवन-हीन मालूम होता था। इसमें चेतनता उत्पन्न करने के लिये इसे सब तरह की शारीरिक पीड़ाएं पहुँचायी गयीं, परन्तु सब व्यर्थ हुईं; किन्तु ज्यों ही उसे एक स्त्री ने छुआ, वह अपनी पूर्वावस्था में आगया"।

योगशास्त्रका मत है कि पूर्वोक्त समाधि, समाधि की प्रथम अवस्था है, जिसे हम साधारण समाधि कह सकते हैं। इसके आगे समाधि के दो भेद और किये जा सकते हैं; जिन अवस्थाओं को सम्प्रज्ञात योग और असम्प्रज्ञात योग कहते हैं। साधारण समाधि अवस्था के बाद में सम्प्रज्ञात योग की अवस्था आती है, जिसे सविकल्प-समाधि सबीज-समाधि या सालम्बन-समाधि भी कहते हैं। इसमें और साधारण समाधि में भेद इतना ही है कि समाधि में अन्य विषयों का चिन्तन न होने से उनका स्वरूप विदित नहीं होता और सम्प्रज्ञात काल में साक्षात्कार का उदय होने से पूर्वावस्था के अगम्य विषयों का भी प्रतिभास होने लगता है। इस से भी आगे की अवस्था असम्प्रज्ञात योग की अवस्था है, जिसे निर्विकल्प समाधि, निर्बीज समाधि या निरालम्बन समाधि भी कहते हैं। इस में वृत्तियों को रोकने वाला कोई आलम्बनरूप ध्येय नहीं रह जाता। सम्प्रज्ञात समाधि स्वरूपावस्थान का कारण है। इस दशा में समाधि अनुभूत होती है। परन्तु विकल्प शून्य और चिरस्थायी नहीं होती। तीसरी समाधि विकल्प शून्य और चिरस्थायी होती है, जिससे नित्य और विशुद्ध आत्म-तत्व का केवलज्ञान मात्र उदित रह जाता है। क्योंकि इस दशा में बाह्य वृत्तियों का संसर्ग न रहने के कारण आत्मा में किसी भी पदार्थ का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता।

इस प्रकार यह योगाभ्यास का संक्षेप में वर्णन समाप्त हुआ। मैं समझता हूं पाठकों को इससे यह अच्छी तरह प्रतीत हो गया होगा कि योगाभ्यास मनोलय का बहुत उत्तम साधन है। इसी से शुद्धात्म की प्राप्ति होती है, ज्ञान का विकास होता है, मोह जन्य आवरण दूर हटता है। कहां तक कहें, योगाभ्यास से इहलौकिक और पारलौकिक दोनों ही जगह के कार्यों में सफलता मिलती है। यह योगाभ्यास सर्व-मत-सम्मत-अविरुद्ध सिद्धान्त है। कोई भी उत्कृष्ट पद योगाभ्यास के बिना शास्त्रों में सुलभ नहीं बताया गया। जितने भी मतों के प्रवर्तक, महत्वपूर्ण सिद्धान्तों के आविष्कर्ता और वैज्ञानिक ग्रन्थों के रचयिता हुए हैं, उन सबने योग का पूरा-पूरा अभ्यास किया था। जैन-सिद्धान्त में योग को बहुत महत्व प्राप्त हुआ है। जितने भी धर्मोपदेशक हुए हैं वे सब योगी हुए। धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति करने वाले तीर्थङ्कर उत्कृष्ट योगी होते हैं। योग साधन के कारण ही उन्हें इस पद की प्राप्ति होती है।

विविध-विषय

[१]

श्री० के० वसवराजजी अरस एम० ए०, एलएल० बी० का भाषण* ।

श्रवण बेलगुल के भट्टारक श्रीमान् चारुकीर्ति पण्डिताचार्यवर्य स्वामी जी के समक्ष होने वाले इस पञ्चकल्याणक महोत्सव में मेरा भी सम्मिलित होना मेरे लिये बड़े हर्ष की बात है। आज की जैन महासभा का अध्यक्ष होने के लिये जब मुझ से कहा गया, तब ऐसे सुसमय में अपने से जितना बने उतना धार्मिक सेवा में हाथ बटाना अपना परम-कर्तव्य समझ कर, मैं ने स्वीकार कर लिया। इसके अतिरिक्त स्वीकारता के लिये एक यह भी हुआ कि मेरी पूज्य माता जी शुद्ध जैन क्षत्रिय वंशोत्पन्न कवि सार्वभौम श्री मंगरसजी के वंश में पैदा हुई थीं। इस पवित्रधर्म के प्रति बाल्यकाल से ही मेरा प्रेम और भक्ति है।

जैन भाइयों ! "अहिंसा परमो धर्मः" इस सिद्धान्त को आचरण में लाओ, जितना बन सके दूसरे प्राणियों की हिंसा से बचो। यह नियम जैन धर्म के समान और किसी धर्म में नहीं है। इस अहिंसाधर्म के आचरण का उपदेश करके ही जैन धर्म ने दुनियाँ में विशेष कीर्ति प्राप्त की है। इसी विशेषता के कारण अनेक जगह जैनधर्म का 'अहिंसाधर्म' के नाम से उल्लेख किया गया है। पुराने ज़माने में अनेक राजा महाराजाओं ने इस धर्म को धारण करते हुए अनेक जिनचैत्यालय बनवाये थे। क्रमेण लोगों में समय के परिवर्तन से भक्ति और श्रद्धा कम होते हुए जैनधर्म क्षीणता को प्राप्त हुआ। अब तो बहुत से जिन मन्दिर जो विच्छिन्न दशा में हैं। उनकी रक्षा करना भी जैनों के लिये मुश्किल हो रहा है। ऐसी अवस्था में प्रत्येक जैन को धर्म में भक्ति और श्रद्धा रखते हुए समाजोत्थान में प्रवृत्त होना चाहिए।

मैं ने कलकत्ता, बम्बई, मूडबद्री और अपनी मैसूर संस्थान के यात्रा स्थानों को देखा हूँ। इनके देखने से मेरे हृदय में यह बात निश्चित हुई है कि जो चतुर्विंशति तीर्थंकर मनुष्य जन्म पाकर मुक्त हुए, उनके जीवन में ज्ञान ही की विशेषता थी। केवल इसी के कारण वे अब भी लोक पूजनीय हैं। अतः मानव जन्म सार्थक करने के लिये, प्रत्येक

---

* श्रीमान् वसवराज जी अरस मैसूर नरेश के भानजे हैं। आपके पूर्वज जैनधर्मावलम्बी क्षत्री थे। अतः आपकी भी जैनधर्म पर अधिक श्रद्धा है। मैसूर प्रान्त में शालिग्राम नाम का एक छोटा सा शहर है। वहाँ पर तीन महीने पहले जिन बिम्ब प्रतिष्ठा हुई थी। ता० १४—५—३४ को प्रातः काल आम सभा थी, जिसके अध्यक्ष का स्थान श्री वसवराज जी अरस ने सुशोभित किया था। आपने उस समय जो भाषण दिया था, उसका भाव "जैन दर्शन" के पाठकों के हितार्थ यहां दिया जाता है। यह पूरा "विवेकाभ्युदय" (कनड़ी मासिक पत्र) में छपा है।

अनुवादक—मा० वर्द्धमान हेगड़े।

व्यक्ति को उन महात्माओं को आदर्श रखते हुए, उनकी पवित्र मूर्तियों के दर्शन और पूजन भक्ति पूर्वक करके पुण्य संपादन करना चाहिए—ऐसी मेरी अभिलाषा है।

---

[२]

उत्तम स्वास्थ्य।

(१) जिनका स्वास्थ्य उत्तम होता है, वे कभी दूसरों का बुरा नहीं चाहते।

(२) जिनका स्वास्थ्य अच्छा होता है, वे हल्के, ओछे, और चिड़चिड़े स्वभाव के नहीं होते।

(३) जिनका स्वास्थ्य अच्छा होता है, वे बड़े २ संकटों के आजाने पर भी अपने स्वभाव को नहीं बदलते।

(४) जिनका स्वास्थ्य अच्छा होता है, वे दूसरों के साथ कभी वैर नहीं करते।

(५) जिनका स्वास्थ्य अच्छा होता है, वे कभी अपनी निष्फलता प्रगट नहीं करते।

(६) जिनका स्वास्थ्य अच्छा होता है, वे दूसरों का उपहास और तिरस्कार नहीं करते।

(७) जिनका स्वास्थ्य अच्छा होता है, वे अपनी मान, प्रतिष्ठा और बड़ाई की इच्छा नहीं करते।

(८) जिनका स्वास्थ्य अच्छा होता है, वे कभी अत्याचार पूर्ण कार्यों का चिंतवन नहीं करते।

(९) जिनका स्वास्थ्य अच्छा होता है, वे भिन्नता और भेदभाव को भूलकर सबके साथ अभिन्नता से बर्ताव करते हैं।

(१०) जिनका स्वास्थ्य अच्छा होता है, वे अपने और दूसरों के ऊपर विश्वास रखते हैं।

(११) जिनका स्वास्थ्य अच्छा होता है, वे कदापि अधीर, निराश और भयभीत नहीं होते।

—सम्पादक "वैद्य"

जैनधर्म का मर्म और पं० दरबारीलाल जी !

[लेखक—पंडित राजेन्द्रकुमार जैन, न्यायतीर्थ]

[२]

भगवान अनन्तनाथ और भगवान नेमिनाथ का अस्तित्व भी ऐतिहासिक दृष्टिसे भुलाया नहीं जासकता। म० बुद्धके समयमें अनन्त जिन शब्द का उल्लेख मिलता है। पं० दरबारीलाल जी म० बुद्ध के समय में अनन्त जिन शब्द के प्रयोग को तो स्वीकार करते हैं, किंतु आप इसका सम्बन्ध भग० अनन्तनाथ से स्वीकार नहीं करते *। आपने इसके सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें लिखी हैं :—

"विकारों पर विजय प्राप्त करने वाले को जिन कहते हैं। जिन की मात्रा होती है। जैसे जैनधर्म में चतुर्थ गुणस्थान से भी जिन कहा जाता है, किन्तु पूर्ण जिन या अनन्त जिन तेरहवें गुणस्थान में माना जाता है, उसी प्रकार दूसरे सम्प्रदाय में भी पूर्णविजयी को अनन्त जिन कहते हैं। अनन्तजिन यह नाम नहीं है, किन्तु जिनत्व की पूर्णता का पद है"।

जिनत्व की पूर्णताके अर्थ में जिस प्रकार जिनेश्वर, जिननाथ, जिनपति और जिनराज आदि शब्दों का प्रयोग होता है उसही प्रकार अनन्त जिन का नहीं। यदि ऐसा होता तो इसही अर्थ में इसही शब्दका दूसरे स्थानोंपर भी प्रयोग मिलना चाहिये था। यह कैसे हो सकता है कि किसी शब्द का किसी अर्थ में प्रयोग होता हो और वह केवल एक ही स्थान पर हुआ हो।

दूसरी बात यह है कि पूर्णता से तात्पर्य किसी वस्तु के पूर्ण प्रकर्ष से है, किन्तु अनन्तता का यह भाव नहीं। अनन्तता से तात्पर्य तो अमर्यादितपने से है; जो वस्तु किसी काल या अवस्था से मर्यादित नहीं है वह अनन्त कहलाती है। अतः पूर्णता और अनन्तता में अन्तर भी है। जो वस्तु पूर्ण है वह अनन्त भी हो सकती है और नहीं भी, इसही प्रकार अनन्त भी पूर्ण ही हो यह भी नियम नहीं। संसारी आत्मा की कषाय है, वह किसी समय विशेष में पूर्ण हो जाया करती है, किन्तु फिर भी वह अनन्त नहीं है। इसही प्रकार यह भूतकाल की दृष्टि से अनन्त है, किन्तु फिर भी यह सदैव पूर्ण नहीं रहती! दूर जाने की ज़रूरत नहीं, स्वयं जिनके सम्बन्ध में ही यह बात घटित नहीं होती। क्षायिक सम्यक्त्वी जिन कहलाता है तथा उसकी इस अवस्था का कभी भी नाश नहीं होता, क्योंकि जिस प्रकार औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन होकरके भी छूट जाया करते हैं उस प्रकार क्षायिक नहीं। यह तो सादि और अनन्त है। इससे प्रगट है कि क्षायिक सम्यक्त्वी जिनका जिनत्व अनन्त है किन्तु फिर भी यह पूर्ण नहीं। जब कि अनन्त के साथ पूर्णता की व्याप्ति ही ठीक नहीं बैठती, तब यह कैसे स्वीकार किया जासकता है कि विवादस्थ शब्द में जिनके साथ अनन्त का प्रयोग उसकी पूर्णता के अर्थ में हुआ है।

---

* जैन जगत वर्ष ८ अंक ८।

संज्ञा शब्दों के इस प्रकार के प्रयोग आज भी होते हैं। खानअब्दुल गफ़्फ़ारखाँ को सीमाप्रान्त का गाँधी और श्री जवाहरलाल को अपने समय का नेपोलियन कहा जाता है। वास्तव में बात यह है कि जो व्यक्ति प्रसिद्ध हो जाता है और जिसका व्यक्तित्व शंका रहित मान लिया जाता है उसके नामकी पूजा भी उसके गुणों के समान ही होती है। किसी अन्य व्यक्ति को भी यदि उस ही के समान असाधारण व्यक्तित्व वाला मान लिया जाता है तो उसके साथ भी उस नाम का समन्वय होने लगता है। यही बात है जो आज खान अब्दुल गफ़्फ़ार खाँ को सीमाप्रान्त का गाँधी और श्री. जवाहरलाल को अपने समय का नेपोलियन कहा जाता है। मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि जब अजमेर शास्त्रार्थ के बाद स्वामी दर्शनानन्द जी कासगञ्ज आये थे और उनसे किसी सनातनी विद्वान का शास्त्रार्थ हुआ था उस समय उन्हों ने उससे कहा था कि तुम भी गोपालदास बनना चाहते हो। इसका तात्पर्य केवल इतना ही है कि गोपाल दास की तर्कणा शक्ति का प्रभाव दर्शनानन्द पर पड़ चुका था और जिसको वह समझते थे कि यह भी अपनी तर्क को अकाट्य समझता है उसके सम्बन्ध में वह इस प्रकार का प्रयोग कर देते थे।

ठीक ऐसी ही परिस्थिति विश्वादस्थ शब्द के संबंध में है। यहाँ भी जब उपक—व्यक्ति विशेष—के प्रश्न पर बुद्ध ने उत्तर दिया है तब फिर उपक ने कहा है कि इस प्रकार तो तुम अनंत जिन हो। उपक बुद्ध के उत्तर में यह बात पाता है कि वह अपने को जिस ढंग का वर्णन करता है उस प्रकार का व्यक्तित्व तो अनन्त जिन का था; अतः बुद्ध की बात पर विश्वास न लाता हुआ हास्यरूप में कह देता है···।

इससे अनन्त जिन शब्द का संज्ञा शब्द होना और भी शङ्का रहित होजाता है। म० बुद्ध भगवान महावीर के समकालीन थे, अतः प्रगट है कि प्रस्तुत वार्तालाप भगवान महावीर के समय में अनन्त जिन की मान्यता को प्रमाणित करता है।

ऋग्वेद निःसन्देह भ० पार्श्वनाथ से पूर्व का है। अनेक विद्वानों ने इसके काल निर्णय के सम्बन्ध में गवेषणायें की हैं और वे सब इस निर्णय पर पहुँचे हैं। ऋग्वेद में अरिष्टनेमि का वर्णन है। इसके समर्थन में हम मंडल १० सूक्त १७८ के १ मंत्र को उपस्थित करते हैं *। यह तार्क्ष्य सूक्त का पहिला मंत्र है। तार्क्ष्य सूक्त ऋग्वेद का एक प्रसिद्ध सूक्त है; अनेक कार्यों के प्रारंभ में शान्ति के हेतु इसके पाठ का विधान है †। इस मंत्र की व्याख्या ब्राह्मण ‡, निरुक्त + और अनुक्रमणिका × आदि प्राचीन शास्त्रों में मिलती है। भाष्यकार सायण ने भी इस पर भाष्य किया है ÷।

---

* त्यमूषुवाजिनं देवजूतं सहावानं तरुतारं रथानाम्।
अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्य मिहाहुवेम ॥ —मंडल १० सू० १७८ मंत्र १

† ऐतरेय ब्राह्मण अध्याय २० खण्ड २।

‡ ऐतरेय ब्राह्मण अध्याय १८ खण्ड ६।

\+ यास्क निरुक्त अ० १० खण्ड १२।

× मण्डल १० सम्बन्धी, कात्यायन सर्वानुक्रमणिका।

÷ इस ही मंत्र का सायणभाष्य पृ० ६७८ नि० ८।

अरिष्टनेमि और तार्क्ष्य क्रमशः इस मंत्र के ऋषि और देवता हैं। इस मंत्र के अर्थ के सम्बन्ध में मत-भेद केवल मंत्रस्थ दो पदों के अर्थ के सम्बन्ध में है—एक अरिष्टनेमि और दूसरा तार्क्ष्य। प्राचीन भाष्यकारों में से ऐतरेय ब्राह्मण और यास्काचार्य का निरुक्त तो इन दोनों पदों के संबंध में मौन है। मंत्र के अन्य पदों को स्पष्ट करते समय इन्होंने इन दोनों पदों को ज्यों का त्यों लिख कर छोड़ दिया है। इसका क्या कारण है, इस पर हम अगाड़ी चलकर विचार करेंगे।

विवादस्थ पदों पर प्रकाश डालने वालों में से कात्यायन, षट्गुरु शिष्य और सायण मुख्य हैं। प्राचीनता की दृष्टि से इन तीनों में कात्यायन का प्रथम स्थान है। इसके बाद षट्गुरु शिष्य और फिर सायण का स्थान है। कात्यायन शौनक के शिष्यों में से है। शौनक अथर्व वेद के पद पाठकार हैं; प्रचलित अथर्व इनही की शाखा का है। शौनक का ठीक २ समय क्या है इस बात का निर्णय तो हम इस ही लेख के अगले हिस्से में करेंगे, किन्तु यह निश्चित है कि यह भ० महावीर के बाद के नहीं हैं। षट्गुरु शिष्य ईसा की बारहवीं और सायण ईसा की चौदहवीं सदी के हैं। ऐसी अवस्था में विवादस्थ पदों के अर्थों के सम्बन्ध में यदि कोई विशेष महत्व दिया जा सकता है तो वह कात्यायन को ही दिया जा सकता है। कात्यायन ने मंत्रस्थ अरिष्टनेमि को पुरुष विशेष स्वीकार किया है * और उसको तार्क्ष्य का पुत्र लिखा है। अरिष्टनेमि के सम्बन्ध में षट्गुरु शिष्य की मान्यता भी ऐसी ही है †। सायण ने इसके अनेक अर्थ किये हैं; इनमें से एक अर्थ में इसको व्यक्ति विशेष भी स्वीकार किया है ‡। इसके अतिरिक्त भाष्यकार सायण ने इस ही मंत्र की भूमिका स्वरूप कुछ वाक्य लिखे हैं। इनमें अरिष्टनेमि को व्यक्ति विशेष और विवादस्थ मंत्र का ऋषि स्वीकार किया है ×। सायण ने अरिष्टनेमि शब्द के व्यक्ति विशेष के साथ अन्य अर्थ क्यों किये इसका खुलासा अभी हम तार्क्ष्य शब्द के सम्बन्ध में निर्णय करते समय करेंगे। यहां तो केवल इतना ही कहना है कि विवादस्थ मंत्र से जहां तक अरिष्टनेमि के व्यक्ति विशेष होने का सम्बन्ध है वहां तक तो ये सब एक मत हैं।

सायण ने तार्क्ष्य शब्द का अर्थ गरुड़—पक्षी-विशेष—किया है किन्तु उसका यह कथन कात्यायन और षट्गुरु शिष्य की मान्यता के प्रतिकूल है। कात्यायन ने अरिष्टनेमि शब्द के अर्थ को प्रगट करने के लिये तार्क्ष्य लिखा है। इससे यही

* त्यमूष्वरिष्ट नेमिस्तार्क्ष्यस्तार्क्ष्यं। —सर्वानुक्रमणी मंडल १० सूक्त १७८।

† अरिष्टनेमिर्नाम तार्क्ष्यपुत्रः तार्क्ष्यं देवता।

—वेदार्थदीपिका पेज १६५, Clarindon Press London.

‡ अरिष्टनेमिं अहिंसितरथं यद्वा नेमिर्नमनशीलायुधं अहिंतायुधं अथवा–उपभाराजवके जन्यशब्दः अरिष्टनेमेर्मम जनकं। —सायणभाष्य म० १० सूक्त १७८ मं० १।

× तार्क्ष्यपुत्रस्य अरिष्टनेमेरार्षं तार्क्ष्यं देवतात्मकम्।

—सायण भाष्य मं० १० सू० १७८ मंत्र १ का पहिला कथन।

भाव निकलता है कि कात्यायन अरिष्टनेमि को ही तार्क्ष्य मानता है। षट्गुरु शिष्य ने भी इस पद को कात्यायन की मान्यता के अनुसार ही स्पष्ट किया है। वह लिखता है कि "अरिष्टनेमिनाम तार्क्ष्य पुत्रः"। तार्क्ष्य शब्द के तार्क्ष्य और तार्क्ष्यपुत्र ये दोनों ही अर्थ होते हैं; अतः तार्क्ष्य से ये दोनों ही अर्थ लिए जा सकते हैं। जबकि इस शब्द के दोनों ही अर्थ होते हैं तब कोई कारण प्रतीत नहीं होता जिससे कात्यायन के तार्क्ष्य से भी तार्क्ष्यपुत्र अर्थ न समझा जाय और प्रस्तुत शब्द के सम्बन्ध में इन दोनों व्यक्तियों को एक मत न माना जाय।

सायण इन दोनों ही विद्वानों से सदियों बाद का है, अतः कोई कारण नहीं कि तार्क्ष्य शब्द के सम्बन्ध में इसकी मान्यता को अप्रमाण न माना जाय।

इसके अतिरिक्त एक विशेष बात और भी है और वह यह है कि स्वयं सायण ने ही अपने ऐतरेय ब्राह्मण के अर्थ में तार्क्ष्य शब्द का ही अर्थ महर्षि विशेष स्वीकार किया है †। सायण यदि तार्क्ष्य शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में भ्रान्तिरहित होता तो वह इसही शब्द के अर्थ को द्विविध रूप से न करता। सायण का तार्क्ष्य शब्द का महर्षि विशेष अर्थ करना भी इसके अर्थ के सम्बन्ध में कात्यायन और षट्गुरु शिष्य का समर्थन ही करना है।

ये लोग भी तार्क्ष्य का अर्थ अरिष्टनेमि मानते हैं तथा इनको विवादस्थ मंत्र का ऋषि विशेष स्वीकार करते हैं; तब यह बात तो सुतराँ प्रमाणित हो जाती है कि ये दोनों भी तार्क्ष्य को ऋषि विशेष स्वीकार करते हैं।

सायण तार्क्ष्य शब्द का अर्थ पक्षी विशेष भी करता है और साथ ही उसको अरिष्टनेमि का पिता भी लिखता है। ये दोनों बातें सत्य नहीं हो सकतीं, पुरुष विशेष का पिता तो पुरुष ही हो सकता है; अतः इस दृष्टि से भी सायण का प्रस्तुत अर्थ त्रुटिपूर्ण है।

सायण की मान्यता के अनुसार तार्क्ष्य शब्द का अर्थ यदि पक्षी विशेष ही स्वीकार कर लिया जाय तो विवादस्थ मंत्र के अन्य पदों का अर्थ भी उसके सम्बन्ध में घटित नहीं होता। विवादस्थ मंत्र में "तरुतारं रथानाम्" पद आया है। इसका अर्थ प्राणियों का तारने वाला है *। पक्षी विशेष के सम्बन्ध में यह बात किसी भी प्रकार स्वीकार नहीं की जा सकती। किन्तु यही बात अरिष्टनेमि के सम्बन्ध में बिलकुल ठीक बैठती है। भगवान अरिष्टनेमि प्राणियों को संसार समुद्र से पार करने वाले थे, यह एक सर्व सम्मत बात है। विवादस्थ मंत्र में अन्य भी ऐसे पद हैं जिनका समन्वय पक्षी विशेष के अर्थ में नहीं होता, किन्तु व्यक्ति विशेष के ही अर्थ में होता है।

तार्क्ष्य जिनको अरिष्टनेमि का पिता लिखा है कौन व्यक्ति हैं इनका विशेष परिचय क्या है इत्यादि बातों के सम्बन्ध में ये सब पुस्तकें मौन हैं। हाँ कात्यायन की सर्वानुक्रमणिका की एक प्राचीन

† तार्क्ष्योह्वयेन महर्षिणा दृष्टं तार्क्ष्यम्। —ऐतरेय ब्राह्मण अ० १८ खंड ६।

* (क) "तरुतारम्" तारयितारम् रथानाम् रंहितृणाम् भूतानाम्। —दुर्गाचार्य निरुक्त टीका पेज ७४७

(ख) एषहीमान् लोकान सद्यस्तरतीति। —ऐतरेय ब्राह्मण अ० १८ खंड ६

पुस्तक पर तार्क्ष्य के आगे आदित्य लिखा है † । कुछ भी सही, अरिष्टनेमि का व्यक्ति विशेष होना तो हर अवस्था में प्रमाणित है। इन सब बातों के आधार से हम यह कह सकते हैं कि तार्क्ष्य शब्द के सम्बन्ध में सायण की मान्यता मिथ्या है।

सायण की तार्क्ष्य शब्द सम्बन्धी भ्रान्ति ने ही उसको अरिष्टनेमि शब्द के अन्य अर्थ करने को बाध्य किया है। जब मनुष्य किसी एक बात के सम्बन्ध में गलती कर बैठता है तब उसको उसे ठीक करने के लिए अन्य बातों के सम्बन्ध में भी ऐसा ही करना पड़ता है। कहा भी जाता है कि एक झूठ को छिपाने के लिए अनेक झूठ बोलने पड़ते हैं। तार्क्ष्य शब्द के सम्बन्ध में सायण की स्मरणधारा जब पूर्व मान्यता के अनुसार न रही और उसको इसके अर्थ के सम्बन्ध में संदेह हो गया तब उसने कहीं तो इसका अर्थ अपने पूर्व आभास के अनुसार किया और कहीं नवीन कल्पना के आधार पर। सायण ने प्रस्तुत शब्द का अर्थ जहां अपने पूर्व स्मरण के आभास के आधार पर किया है (जैसे ऐतरेय ब्राह्मण में) वहां तो यह प्राचीन मान्यता के अनुकूल रहा है और जहाँ नवीन कल्पना के आधार पर किया है वहाँ यह मिथ्या हो गया है; जैसे विवादस्थ मंत्र के सम्बन्ध में। किसी श्लोक या मंत्र के एक शब्द के अर्थ बदल देने पर और शेष पदों के अर्थ को ज्यों का त्यों रखने पर श्लोक या मंत्र की संगति ठीक नहीं बैठा करती, ऐसा ही विवादस्थ मंत्र के सम्बन्ध में हुआ है। तब सायण ने इस आपत्ति को दूर करने के लिए मंत्रस्थ दूसरे पदों के अर्थों को भी बदलने की चेष्टा की है। इस ही का परिणाम अरिष्टनेमि शब्द के अन्य अर्थ हैं।

इससे प्रगट है कि जहां तक अरिष्टनेमि शब्द के अर्थ की मान्यता की बात है वहां तक इसका वही अर्थ माना जा सकता है जो कि प्राचीन परम्परा के अप्रतिकूल है और वह है व्यक्ति विशेष।

विवादस्थमंत्र के अन्यपद व्याख्या के योग्य थे, अतः भिन्न २ शास्त्रकारों ने उनकी व्याख्या की; किन्तु विवादस्थ दो पद—एक अरिष्टनेमि और दूसरा तार्क्ष्य—इतने साधारण थे कि इनके सम्बन्ध में वैदिक साहित्य के प्राचीनतम शास्त्रकारों ने खुलासा करना आवश्यक नहीं समझा। जिस समय विवादस्थ मंत्र का निर्माण हुआ था, उस ही के कुछ समय बाद को रचना ऐतरेय ब्राह्मण की है। यह सब महाभारत के पास का ही समय है। भगवान नेमिनाथ भी इसही समय के महापुरुष हैं। अतः ब्राह्मणकार इस बात को भले प्रकार जानते थे कि प्रस्तुत "अरिष्टनेमि" शब्द से मंत्रकार का अभिप्राय उस युग के प्रसिद्ध महापुरुष अरिष्टनेमि से था तथा इनके सम्बन्ध में एक अक्षर भी लिखना बिलकुल व्यर्थ था; अतः उन्हों ने इसको भी अन्य मंत्रस्थ संज्ञा शब्दों की तरह ज्यों का त्यों लिख दिया। यास्क इनके बाद के वैदिक विद्वान हैं किन्तु फिर भी वे वैदिक शब्दों के अर्थ के सम्बन्ध में बहुश्रुत एवं माननीय समझे जाते हैं। इनको भी प्रस्तुत शब्द का संज्ञा शब्द होना विदित मालूम पड़ता है, अतः इन्हों ने भी इसको ज्यों का त्यों लिख दिया है। यास्क ने अन्य संज्ञा शब्दों के सम्बन्ध में भी अधिकतर ऐसा ही किया है।

† तार्क्ष्यः आदित्यः Marg. Note. W. I. सर्वानु० edited by A. A. Macdonell.

वैदिक निरुक्तकार और ब्राह्मणकार का प्रस्तुत शब्द को ज्यों का त्यों ही छोड़ देना इसके संज्ञा शब्द होने के सिवाय अन्य किसी बात का समर्थन नहीं करता।

उपर्युक्त विवेचन से प्रगट है कि विवादस्थ मंत्र का ऋषि और देवता दोनों ही अरिष्टनेमि है। किसी भी वैदिक मंत्र के सम्बन्ध में एक ही महा पुरुष को ऋषि और देवता स्वीकार करना विरोध की बात नहीं। अन्य मंत्रों से भी इसही प्रकार की व्यवस्था मिलती है। षट्गुरु शिष्य ने तो अपनी वेदार्थदीपिका में इसको विधिरूप से लिखा है *। अतः अब विवादस्थ मंत्र का निम्नलिखित अर्थ ही निर्बाध कहा जा सकता है :—

"बलवान, देवों के द्वारा परुरूप से जाने गये या देवों के द्वारा समान प्रीति को प्राप्त हुए, प्राणियों को तारने वाले, सेनाओं के विजेता उस प्रसिद्ध तार्क्ष्य अरिष्टनेमि को आत्म कल्याण के लिए आह्वानन करते हैं"।

इससे प्रगट है कि ऋग्वेद का प्रस्तुतमंत्र अरिष्टनेमि के ऐतिहासिक अस्तित्व का निसन्देह प्रमाणित करता है।

इस मंत्र के अतिरिक्त अन्य मंत्रों में भी नेमि या अरिष्ट नेमि का उल्लेख मिलता है †।

पुराण साहित्य भी नेमिनाथ के पवित्रनाम से अछूता नहीं है। स्कन्ध पुराण में नेमिनाथ को शिवके रूपमें स्पष्ट रूप से स्मरण किया गया है ‡।

इन सब बातों की उपस्थिति में कोई बात नहीं रह जाती, जिससे भगवान नेमिनाथ को ऐतिहासिक महापुरुष स्वीकार न किया जाय।

[अपूर्ण]

---

* संवादेषु च सर्वेषु स ऋषिर्यस्य वाक्यं तत्।
आत्मस्तवेषु स ऋषिर्देवता स एवोच्यते ॥ —वेदार्थ दीपिका पेज १७, London Press.

† (क) तवारथं वयमद्या हुवेमस्तो मरश्विन। सुविताय नव्यम्।
अरिष्टनेमि परिध मियानं विधामेपं वृजनं जीरदानम् ॥ —अथर्व का० २० सू० १४३ मं० १०

(ख) स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पूषा विश्वदेवाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमि स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु ॥ —यजु० अ० २५ मं० १९।

(ग) वाजस्यनु प्रसव आवभूवेमाचविश्वा भुवनानि सर्वतः।
सनेमिराजा परियाति विद्वान् प्रजां पुष्टिवर्धयमानो अस्मै स्वाहाः ॥ —यजुर्वेद अ० ९ मं० २५।

‡ मनोभीष्टार्थ सिद्ध्यर्थं ततः सिद्धमवाप्तवान्।
नेमिनाथ शिवेत्येवं नामचक्रेशवामनः ॥ —अ० १६ श्लोक ९६।

प्रतिभा से !

[ले०—श्री पं० "आनन्द" उपाध्याय, जयपुर]

[१]

अहे ! अलौकिक-सुखद, शान्ति की अनुपम धारा।
कवि-मानस में बहता पुण्य प्रवाह तुम्हारा॥
अखिल-अवनि आश्चर्य सुधारस बरसानी हो।
कवि-कुल मुक्ताहार, जयति जन-कल्याणी हो॥

[२]

उषः काल में बालारुण ज्यों किरण जाल फैलाता।
दिव्यालोक तुम्हारा त्यों ही निखिल-तत्व बतलाता॥
विश्व-विदित-माहात्म्य, प्रेमरस उमगानी हो।
दीप्त-दिव्यता धार, जयति जग-कल्याणी हो॥

[३]

मनुज-हृदय के सूक्ष्म भाव का चित्र बनाती।
विविध-कल्पना-रंग तूलिका उसे सजाती॥
गौरव-गरिमा-अतुल अमरता वरदानी हो।
अखिल विश्व-शृङ्गार जयति जग-कल्याणी हो॥

[४]

लोकोत्तरकवि, कर्मवीर अरु दार्शनिक सारे।
बनते हैं, पाकर सब कृपा--कटाक्ष तुम्हारे॥
नित्य--नव्यता--द्वार जगति जय कल्याणी हो।
विपुल-भाव-भण्डार, जयति प्रतिभा-रानी हो॥

[५]

सरस-सुनहले भाव हृदय में शीघ्र जगाओ।
अनुरंजित हो स्वामिनि ! मन मानस में आओ॥
कविता--कामिनि--हार, प्रवीणा--वीणा--वानी।
अतुल सौख्य--विस्तार, जयति प्रतिभा-महारानी॥

* पुस्तक-समालोचना *

संक्षिप्त जैन इतिहास द्वि० भाग-द्वि०खंड—यह ग्रंथ सौ० सवितावाई स्मारक ग्रंथमाला का चौथा पुष्प है, जैनविजय प्रेस सूरत से प्रकाशित हुआ है, पृ० संख्या १८० तथा मूल्य १=) है, छपाई, सफाई, कागज़ साधारणतया अच्छे हैं। इसके लेखक वीर के सम्पादक श्रीमान् बा० कामता प्रसाद जी हैं।

इस पुस्तक में ईसवी सन् से २५० वर्ष पूर्व से लेकर सन् १३०० तक का जैन इतिहास संक्षेपरूप से संकलित है। विद्वान लेखक ने अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थों का अध्ययन करके निचोड़रूप में इस उपयोगी पुस्तक का निर्माण किया है। स्थान स्थान पर टिप्पणियां भी बहुत प्रामाणिक एवं उपयोगी दी हैं। श्रीमान् बा० कामताप्रसाद जी अपने इस प्रयत्न में बहुत कुछ सफल हुए हैं। जैनधर्म और जैन समाज के लिये उनकी यह सेवा प्रशंसनीय एवं आदरणीय है। ऐसे साहित्यिक कार्य ही सामाजिक अभ्युदय के बलवान सहायक एवं छिपे हुए धार्मिक गौरव के प्रकाशक होते हैं।

पुस्तक में यदि उपयोगी खास खास शिलालेखों की प्रतिलिपि तथा पुरातन मंदिर आदि के चित्र भी होते तो बहुत अच्छा होता। अस्तु—लेखक व प्रकाशक महानुभाव धन्यवाद के पात्र हैं। प्रत्येक साहित्य प्रेमी महानुभाव को तथा प्रत्येक पुस्तकालय को यह पुस्तक मंगा रखनी चाहिये।

दिगम्बरमत समीक्षा—यह पुस्तक वृद्ध वीर स्मारक ग्रन्थमाला जोधपुर स्टेट से ६८ पृष्ठों में चार आने मूल्य पर अभी प्रकाशित हुई है। इसके लेखक श्रीमान् स्थानकवासी पण्डित मुनि मिश्री मल्ल जी हैं। स्थानकवासी दो आचार्यों के संघों में ऐक्यभाव लाने के लिये अनशन करने वाले मुनि मिश्रीमल्ल जी ही इसके निर्माता हैं अथवा ये मिश्री मल्ल जी कोई अन्य मुनि हैं यह पता नहीं। जिनको परिचय हो वे कृपया सूचित करें।

लेखक ने इस पुस्तक में श्वेताम्बर प्राचीन और दिगम्बर अर्वाचीन, पतितपावन श्रीमन्महावीर स्वामी को मांसाहारी बतलाना अन्याय है, शूद्रों को मुक्ति न मानना जैनत्व से हाथ धोना है, मुक्ति ममत्व त्याग में है न कि वस्त्रत्याग में, स्त्री को अवश्य मुक्ति होती है, तथा-दिगम्बर पंथ में अनुचित बातें; ऐसे ६ प्रकरण रक्खे हैं। पुस्तक में यद्यपि अपने प्रकरणों का समर्थन करने के लिये पर्याप्त युक्तियों का अभाव है किन्तु अनेक बातें विचारणीय भी हैं। कतिपय बातें ऐसी हैं जो भ्रमपूर्ण हैं; अतः उनका समाधान करना आवश्यक है। किन्तु यह अवश्य है कि यदि कटुता और छल को दूर रख कर ऐसी पुस्तकों की रचना हो तो वे जनसमुदाय के लिये लाभदायक अवश्य होती हैं।

समय मिलने पर निकट भविष्य में हम इसका उत्तर लिखेंगे।

—अजितकुमार

श्रीमान् पं० दरबारी लाल जी का निष्पक्ष भाव

गत १६ जुलाई के जैन जगत् में *साम्प्रदायिक पक्षपात* शीर्षक लेख द्वारा अपनी सफ़ाई देते हुए पंडित दरबारीलाल जी ने अपनी बातों का समर्थन किया है। आपने प्रथम ही अपना महिमा गान करके श्वेताम्बरीय सूत्रग्रन्थों की दिगम्बरीय ग्रन्थों से प्राचीनता बतलाते हुए अपने निष्पक्ष भाव का समर्थन किया है। श्वेताम्बरीय सूत्र ग्रंथों के विषय में स्वयं प्राचीन श्वेताम्बर ग्रन्थकारों का क्या मत है यह बात हम पाठक महानुभावों के समक्ष रखते हैं जिससे कि वे स्वयं पं० दरबारीलाल जी की स्वच्छ निष्पक्ष भावना की परीक्षा कर लेवें।

सामाचारी शतक में प्रसिद्ध श्वेताम्बर विद्वान् श्री समय सुन्दर गणी ने आचारांग आदि सूत्रग्रंथों की रचना के विषय में लिखा है कि—

"श्री देवर्द्धिगणीक्षमाश्रमणेन श्री वीरादशीत्यधिक नवशत (९८०) वर्षे जातेन द्वादशवर्षीय दुर्भिक्षवशात् बहुतर साधु व्यापत्तौ बहुश्रुत विच्छित्तौ च जातायां·········· भविष्यद्भव्य लोकोपकाराय श्रुतभक्तये च मृतावशिष्ट तदाकालीन सर्वसाधून् वलभ्यामाकार्य तन्मुखाद् विच्छिन्नावशिष्टान् *न्यूनाधिकान् त्रुटिताऽत्रुटितानागमालापकान्* अनुक्रमेण *स्वमत्या संकलय्य* पुस्तकारूढ़ाः कृताः। ततो मूलतो गणधरभाषितानपि तत्संकलनानंतरं सर्वेषामपि आगमानां कर्ता श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण एव जातः।"

अर्थात्—श्री देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण ने वीर संवत के ९८० वें वर्ष में बारहवर्षी दुष्काल के कारण साधुओं तथा बहुश्रुत विद्वानों के स्वर्गवास हो जाने पर भावी जनता के उपकार के लिये तथा शास्त्रभक्ति के अर्थ श्री संघ के आग्रह से उस समय के बचे हुए समस्त साधुओं को वल्लभीपुर में बुला कर उनके मुख से अवशिष्ट रहे *न्यून अधिक, त्रुटित अत्रुटित* आगम के पाठ अनुक्रम से *अपनी बुद्धिद्वारा संकलन* करके पुस्तकारूढ़ किये। इस कारण प्रारम्भ में सूत्र गणधर भाषित होने पर भी *संकलन हो जाने पर सूत्रग्रन्थों के कर्ता देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण ही हुए हैं।*

श्री समयसुन्दर गणी के इस उल्लेख से इतना स्पष्ट झलक जाता है कि सूत्रग्रंथों की रचना वल्लभीपुर में श्री देवर्द्धिगणी क्षमा श्रमण ने वीर सं० ९८० तदनुसार विक्रम सं० ५१० में की थी। तत्कालीन साधुओं को जैसी कुछ न्यून अधिक, टूटी फूटी जिनवाणी याद थी उसके आधार पर देवर्द्धिगणी

जी ने अपनी बुद्धि से आचारांग आदि श्वे० सूत्र ग्रन्थ बनाये थे।

उधर दिगम्बरीय ग्रंथरचना का ऐतिहासिक समय विक्रम सं० से पहले का निश्चित होता है क्योंकि श्री कुन्दकुन्द आचार्य का समय विक्रम की प्रथम शताब्दी विश्वस्त प्रमाणों से सिद्ध हो चुका है। श्री पुष्पदन्त भूतबलि आचार्य ने उससे पहले षट्खण्डागम ग्रंथ की रचना की थी। उस षट्खण्ड आगम के आद्य तीन खण्डों पर कुन्दकुन्दाचार्य ने टीका लिखी है।

इस प्रकार दिगम्बरीय ग्रन्थों का रचना समय श्वेताम्बर ग्रंथों की अपेक्षा लगभग पाँचसौ वर्ष पहले का सिद्ध होता है। फिर भी पं० दरबारीलाल जी श्वेताम्बर भाइयों की मान्यता का समर्थन करते हुए श्वेताम्बरीय ग्रन्थों की प्राचीनता का समर्थन करते हैं। इस दशा में हमारे पाठक महानुभाव इस बात का स्वयं निर्णय करलें कि कौन अन्धश्रद्धालु हैं? कौन साम्प्रदायिक पक्षपात का दोषी है और कितना कौन किस कारण निष्पक्ष है?

भाषा की दुहाई देकर सुनिश्चित ऐतिहासिक समय को पं० दरबारीलालजी उलट नहीं सकते। यह बात तो ग्रंथकार की इच्छा तथा उसके भाषाज्ञान पर निर्भर है। आज दिन भी पांच सौ वर्ष पुरानी हिंदी भाषा में ग्रन्थरचना की जा सकती है। संभव है कि श्री देवर्द्धिगणी जी तथा उनका सहायक साधुजन संस्कृत भाषा तथा सुधरी प्राकृत भाषा के प्रेमी न हों अथवा वे कथित अर्द्धमागधी भाषा के विद्वान हों उतना निपुणता उनको अन्य भाषाओं को न हो, इत्यादि अनेक कारण हो सकते हैं।

तथा—अनेक श्वेताम्बर आचार्यों ने यह अभिप्राय प्रगट किया है कि आगम ग्रन्थ पहले संस्कृत भाषा में थे जो कि नष्ट हो गये। पीछे बाल, स्त्री एवं मूर्ख पुरुषों के समझने के लिये उनको प्राकृत (अर्द्धमागधी भाषा) में रचना की गई, जैसे आत्माराम जी आचार्य ने लिखा है—

स्त्री वृद्ध मूर्खाणां नृणां चारित्र कांक्षिणाम्।
उच्चारणाय तत्वज्ञैः सिद्धान्तः प्राकृतः कृतः॥

—तत्व निर्णयप्रासाद पृ० ४१२

इस दशा में श्वेताम्बरीय सूत्र ग्रंथों की शाब्दिक रचना भी अर्वाचीन सिद्ध होती है।

श्री सिद्धसेन दिवाकर के समय के विषय में अभी तक एक निश्चित ऐतिहासिक विश्वस्त मत नहीं पाया जाता। श्रीमान् स्व० डा० सतीशचन्द्रजी विद्याभूषण आदि अनेक इतिहास वेत्ता विद्वान् उनको छठी शताब्दी का विद्वान् मानते हैं। किन्तु यह तो निश्चित है कि वे श्री समन्तभद्राचार्य से पीछे के विद्वान् हैं, क्योंकि उनके न्यायावतार ग्रंथ में समन्तभद्राचार्य विरचित रत्नकरंड का ९ वाँ पद्य उद्धृत पाया जाता है। इसके सिवाय सिद्धसेन दिवाकर वराहमिहिर के समकालीन थे जिसका कि समय छठी शताब्दी निश्चित की गई है। तथा—सबसे मुख्य बात यह है कि सिद्धसेन को श्वेताम्बर सम्प्रदाय का विद्वान बतलाना भी निर्भ्रान्त नहीं, क्योंकि यह एकान्त बात उनके ग्रन्थों से सिद्ध नहीं होती; एवं जिनसेनाचार्य आदि अनेक दिगम्बरीय ग्रंथकारों ने भी उनको सम्मान के साथ स्मरण किया है। सेनान्त नाम भी दिगम्बर सम्प्रदाय के सेनसंघीय मुनियों के प्रायः दृष्टिगोचर होते हैं।

इत्यादि प्रमाणों की उपस्थिति में पं० दरबारीलाल जी ने जो सिद्धसेन दिवाकर को श्वेताम्बरीय शास्त्ररचना (वि० सं० ५१०) से कई शताब्दी पहले का विद्वान बतलाया है उसमें कुछ ऐतिहासिक सार नहीं, क्योंकि जब सिद्धसेन दिवाकर वि० सं० ५१० से पीछे हुए हैं तब यदि उनके किसी ग्रन्थ में श्वे० आगमों का उद्धरण पाया जावे तो उससे श्वे० आगमों की प्राचीनता किस प्रकार सिद्ध हो सकती है ?

तत्वार्थाधिगम भाष्य श्री उमास्वामि कृत ही है, यह बात विचारणीय है। संभव है *हिमवंत थेरावली* के समान ही इस भाष्य के विषय में कृति की गई हो। पं० दरबारीलाल जी निर्भ्रान्तरूप से उस भाष्य को उमास्वामि रचित मानें, यह उनकी निजी सम्मति है। उसको सर्वसम्मत बनाने के लिये वे कोई बलवान हेतु उपस्थित नहीं कर सकते। यह भाष्य यदि सचमुच उमास्वामि का स्वोपज्ञ होता तो सर्वार्थ सिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक आदि में उसका उल्लेख अवश्य पाया जाता।

आप लिखते हैं कि "भावसंग्रह के लिखे अनुसार श्वेताम्बर ग्रन्थ वि० सं० १३६ में बन गये थे" यह लिखना भी आपका ग़लत है। आचारांग आदि श्वे० सूत्र ग्रन्थ वि० सं० १३६ में लिखे गये, यह बात भावसंग्रह में कहीं भी नहीं है। भावसंग्रह के २११ वें श्लोक का सम्बन्ध आप अपनी कल्पना के साथ न जोड़ कर उसके एक पद्य पहले २०९ वें श्लोक के साथ जोड़ें तो आपका पूर्वोक्त मत दूर हो जायगा।

"दिगम्बरीय ग्रंथों की शाब्दिक योजना प्राकृत भाषा में होने से दिगम्बरीय ग्रंथ अर्वाचीन हैं और श्वेता० ग्रन्थ अर्द्धमागधी (जिसको कि असंस्कृत प्राकृत भाषा कहा जा सकता है) भाषा में होने के कारण प्राचीन हैं।" इतिहास फिर चाहे इसके विपरीत ही क्यों न कहे पं० दरबारीलालजी का यह कहना श्वेताम्बर सम्प्रदाय के साथ गाढ़ मैत्री का अनुचित फल है। वे चाहे अपनी दूध से धुली हुई निष्पक्षता के लिये कितनी ही दुहाई क्यों न दें, अपनी ऐतिहासिक सत्यता को असत्य कह देना और अन्य की अर्वाचीनता को कोरी मानसिक कल्पना के सहारे प्राचीन बतला देने का नाम शुद्ध निष्पक्षता नहीं।

आप जब भगवान मल्लिनाथ को स्त्री पुरुष नपुंसक में से किसी भी रूप में मानते ही नहीं, उनकी सत्ता से आपको सर्वथा इनकारी है, आपके अपने कल्पित इतिहास में २२ तीर्थङ्करों का अस्तित्व ही नहीं, फिर भी १९ वें तीर्थंकर को आप श्वेताम्बरीय मान्यता अनुसार (जो कि द्रव्यानुयोग—करणानुयोग से किसी भी तरह सिद्ध नहीं हो सकता) स्त्रीरूप में *मल्लिकुमारी* ही बतलाते हैं सो क्यों ? द्रौपदी का पति एक अर्जुन न होकर श्वेताम्बरीय मान्यतानुसार पाँचों ही पांडव पति थे, आपके इस अभिप्रायका क्या कारण ? क्या इस प्रकार और भी किसी सती कुलीन स्त्री के अनेक पति थे ? जिस समय आप इसका स्पष्ट साधार उत्तर देंगे उस समय आपकी उज्ज्वल निष्पक्षता प्रगट होजायगी। जिस बातको आप ऐतिहासिक रूप में सर्वथा स्वीकार नहीं करते, उस बात को भी आप श्वेताम्बरीय ग्रन्थों को तो सत्य कहें और दिगम्बरीय ग्रंथों को असत्य बतलावें, आपकी यह निष्पक्षता पूर्ण

निष्पन्नता (शास्त्ररचना समय सम्बन्धी) से भी अधिक उन्नत है।

हमको यदि दिगम्बरीय ग्रंथों के प्रतिपादन का पक्ष है तो उसके दो कारण हैं—एक तो ऐतिहासिक सत्यता, दूसरे सैद्धान्तिक सचाई। ऐतिहासिक सचाई पहले प्रकरण में परख लीजिये—सैद्धान्तिक सचाई की परीक्षा यहां कर लीजिये। श्वेताम्बरीय कर्मसिद्धान्तानुसार श्री मल्लिनाथ तीर्थङ्कर का स्त्रीरूप होना, राजीमती (भगवान नेमिनाथ की वाग्दत्ता वधू) का मुक्त होना आदि असत्य सिद्ध होता है। कर्मसिद्धान्त की सचाई स्वीकार करते हुए श्वेताम्बरीय विद्वान भगवती मल्लिकुमारी की बात को कभी सत्य नहीं कह सकते। ये कथाएं स्त्री मुक्ति की कल्पना को ऐतिहासिक रूप देने के लिये उलटी पलटी गई हैं। इस बात पर अवसर पाकर फिर कभी प्रकाश डालेंगे।

"पांचपति आदि की बातों पर मैंने ऐतिहासिक दृष्टि से और धार्मिक दृष्टि से सयुक्तिक विवेचन किया है।" पं० दरबारीलाल जी यदि अपने इस लिखने पर दृढ़ विश्वास रखते हों तो कृपया उन युक्तियों को प्रगट करें, जिससे उनकी सचाई आज़माई जा सके। उन अकाट्य युक्तियों को हमने देखा नहीं, इस कारण उनके प्रगट करने का कष्ट आप अवश्य स्वीकार करें।

अन्त में आपने श्वेताम्बरीय ग्रंथों में मांसभक्षण विधान का निराकरण करने का प्रयास उठाया है। इस विषय में यहाँ पर हमको अपनी पोज़ीशन स्पष्ट कर देना आवश्यक है। तदनुसार हमारा यह मत है कि भगवान महावीर स्वामी कैवल्य दशा में न तो रोगी थे और न कभी उन्हों ने किसी भी प्रकार का भोजन किया था तथा न कोई श्वेताम्बर साधु ही मांसभक्षक हुआ है। किन्तु कतिपय श्वेताम्बरीय ग्रंथकार ऐसे हुए हैं जिन्हों ने शिथिलाचार पुष्ट करने के लिये आचारांग, भगवतीसूत्र, कल्पसूत्र आदि ग्रंथों में साधु के लिये तथा भगवान के लिये वैसा अनुचित विधान लिख दिया है। अथवा किसी अन्य मांस लोलुपी व्यक्ति ने उन ग्रन्थों में मिलाने का यह निन्द्य उद्यम किया है। अतः उन मांसभक्षण विधायक वाक्यों को धार्मिक पवित्रता क़ायम रखने के लिये श्वेताम्बर ग्रन्थों से एक दम तुरन्त निकाल देना चाहिये। उनके वाक्यों का अर्थान्तर करके परदा डालने का परिश्रम करना व्यर्थ एवं हानिकारक है।

कल्पसूत्र, भगवतीसूत्र, आचारांगसूत्रके वाक्य मांसभक्षण विधान करते हैं। इस बात को न केवल वे शब्द या हम कहते हैं किन्तु उनके मान्य टीकाकार श्री विनयविजय, अभयदेवसूरि, शीलाचार्य आदि पुरातन श्वेताम्बरीय प्रामाणिक आचार्य भी उन शब्दों का अर्थ मांसपरक करते हैं। प्रसिद्ध स्थानकवासी विद्वान शतावधानी पं० मुनि रत्नचन्द्र जी ने भी *रेवती दान समालोचना* शीर्षक लेखद्वारा जैनप्रकाश में आचारांग सूत्र के मांसविधान को क्षेपक बतलाया है। तीसरे—श्रीमान् (श्वेताम्बर) बा० गणपतिराय जी बी० ए० वकील ने भी अपनी *संतपरीक्षा* पुस्तक में उक्त श्वेताम्बरीय आगम ग्रन्थों में स्पष्ट मांसभक्षण विधान का होना बतलाया है। इसकारण जिनका यह मत है कि श्वेताम्बरीय सूत्र ग्रंथों में मांसविधान नहीं, वे भूलभुलैय्या में चक्कर लगा रहे हैं। अतः

इस बात का अभी से सुधार होना अति लाभदायक है।

उक्त श्वेताम्बरीय प्राचीन अर्वाचीन प्रामाणिक विद्वानों के विरुद्ध पं० दरबारीलाल जी श्वेताम्बर ग्रन्थों की अयुक्त सिफ़ारिश करते हैं, उसका कुछ मूल्य नहीं। वे ऐसी सिफ़ारिश से उल्टा उन ग्रंथों का अहित साधन करते हैं।

पं० दरबारीलाल जी अपनी इस अवस्था में भी हमारे ऊपर साम्प्रदायिक पक्षपात, साम्प्रदायिक मद का भार लाद कर आप इस भार से हलके होना चाहते हैं, यह उनका असह्य साहस है; यह भार उनके शिर पर कितना भारी है, इस बात का अन्दाज़ा पाठक महानुभाव इस लेख का अवलोकन करके स्वयं लगा सकते हैं।

—अजितकुमार जैन

हृदय-विदारक घटना !

गत आषाढ़ शुक्ला अष्टमी की रात्रि में, दस बजे के लगभग, किसी आततायी ने झांसी ज़िले के साढ़ूमर गांव के निवासी सेठ चन्द्रभान जी को अपनी गोली का निशाना बना डाला। उस समय सेठ जी अपने बैठकखाने में बही खाता देख रहे थे। खुली हुई खिड़की से गोली दगी और सब शान्त हुआ। सन्देह में, पुलिस ने दो आदमियों को गिरफ्तार किया है।

सेठ जी एक धर्मिष्ठ व्यक्ति थे, सुना है कि, कुछ दिनों से आपने दो प्रतिमायें भी धारण करली थीं। दानी भी कहे जाते थे। आपके एक भाई स्व० सेठ लखमीचन्द जी ने एक पाठशाला स्थापित की थी, जो अब तक बराबर काम करती आती है। परवार—समाज में आपका घराना बहुत प्रतिष्ठित माना जाता है। बुन्देलखण्ड प्रान्त के तो आप सिर मौर ही थे। एकबार महासभा के सभापति भी हुए थे। ऐसे व्यक्ति की हृदय-विदारक मृत्यु में कुछ रहस्य अवश्य ही होना चाहिये।

आये दिन समाचारपत्रों में ज़मींदार और किसानों के पारस्परिक मुठभेड़ के समाचार प्रकाशित होते रहते हैं। ज़मींदार एक कौड़ी भी नहीं छोड़ना चाहता, क्योंकि उसे सरकारी लगान भरने और ऐश आराम से जीवन बिताने के लिए काफ़ी रुपया चाहिये और किसान एक कौड़ी भी देना नहीं चाहता, क्योंकि वह कंगाल है—न उसके पास पहिनने को कपड़ा है और न भरपेट खाने को अन्न। इस परिस्थिति में अपवाद भी हो सकते हैं, और वह हैं भी, किन्तु साधारण दशा ऐसी है। उसी के फल स्वरूप, अनेक ज़मींदार अपने किसानों के हाथों अपनी जान खो चुके हैं। शायद सेठ जी की मृत्यु का भी यही कारण हो! अस्तु, यह हमारा अनुमान मात्र है। हम सेठ जी की मृत्यु से दुखी हैं और उनकी विधवा पत्नी तथा बाल-पुत्र के साथ हार्दिक समवेदना प्रगट करते हैं।

ज़मींदारों को, विशेषतया बुन्देल खण्ड के ज़मींदारों को इस घटना से कुछ शिक्षा ग्रहण करना चाहिये, क्यों कि 'लीडर' पत्र के सम्वाददाता के कथनानुसार बुन्देल खंड प्रान्तमें, एक वर्ष में, इस ढङ्ग की यह तीसरी घटना है। स्वर्गगत सेठ जी के पुण्य प्रताप से उनका पुत्र चिरायु हो, यही हमारी शुभ कामना है। —कैलाशचन्द्र शास्त्री

समाचार-संग्रह

संघ का प्रचारकार्य

गत जौलाई मास में संघ के प्रधान मंत्री पं० राजेन्द्रकुमार जी के मेरठ और धामपुर में पबलिक व्याख्यान हुए हैं। आपके इन व्याख्यानों का जैनाजैन जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा है। इस ही माह में आपने सहारनपुर की दयासिन्धु पाठशाला में भी एक व्याख्यान दिया। सहारनपुर की यह पाठशाला अच्छा कार्य कर रही है। इसके मुख्य संचालक श्री जयचन्द्र जी दयासिन्धु और चौ० महावीरप्रसादजी हैं। आपही महानुभाव बिना किसी स्वार्थ बुद्धि के केवल धार्मिक भावसे इसके पठनपाठन और निरीक्षण का कार्य करते हैं। इसमें तकरीबन पचास बालक पढ़ते हैं। उन बालकों को जो शहर के भिन्न २ स्कूलों में शिक्षा पाते हैं शाम को २-३ घन्टा धार्मिक शिक्षा दी जाती है। मंत्री महोदय के आगमन के उपलक्ष्य में विद्यार्थियों को पारितोषिक भी वितीर्ण किया गया था। —मंत्री उपदेशक विभाग।

धामपुर में जैनधर्म की जागृति

इस साल यहाँ ऐलक श्री चन्द्रसागर जी महाराज का चातुर्मास होने से धर्म का लाभ हो रहा है। आपका समय धर्मध्यान में व्यतीत होता है। दोपहर के दो बजे से प्रतिदिन शास्त्र सभा होती है, जिसमें स्त्री पुरुष और अन्य मति भी आते हैं और धर्म का लाभ उठाते हैं। ता० २९ जौलाई को श्रीमान् पण्डित राजेन्द्रकुमार जी न्याय तीर्थ शास्त्रार्थ संघसे पधारे थे। आपका आम व्याख्यान ता० ३० जौलाई को दोपहर के ढाई बजे से जैन युवकमण्डल की ओर से ऐलक श्रीचन्द्रसागरजी महाराज की उपस्थिती में हुआ। आपने धर्म और मूर्तिपूजा को बड़े प्रभावशाली शब्दों में दर्शाया और मूर्तिपूजा को साबित किया, जिसका प्रभाव जैन अजैन जनता पर अच्छा पड़ा। मण्डल की ओर से आपको धन्यवाद दिया गया। इसके पश्चात् सभा जैनधर्म की जय के साथ समाप्त हुई। सर्वसज्जनों से प्रार्थना है कि ऐलक श्री चन्द्रसागर जी महाराज का दर्शन करके धर्म का लाभ उठाने के लिये धामपुर अवश्य पधारें।

—मंत्री जैन युवकमण्डल, धामपुर।

कवि सम्मेलन

जैन युवकमण्डल धामपुर की ओर से गत वर्षों की भाँति इस साल भी ता० २४-८-३४ को रक्षा बन्धन का उत्सव पर्व मनाया जायगा। यज्ञोपवीत संस्कार, पूजन, शास्त्रसभा और कवि सम्मेलन भी होगा। सर्वसज्जनों से प्रार्थना है कि निम्न-लिखित समस्याओं की पूर्ति करके भेजने की व स्वयं पधारने की कृपा करें :—

समस्या हिन्दी

१. अहिंसा व्रतधारी के
२. सब की
३. आग में पंकज फूल रहो है

समस्या उर्दू

सितम के ज़ेर आयेंगे, किसी को जो सतायेंगे

नोट—कवितायें ता० २३-८-३४ तक ला० राजेन्द्रकुमार जी जैन प्रधान जैन युवकमण्डल धामपुर के पते से आनी चाहियें।

कविता का विषय धार्मिक, अहिंसा, भक्ति, प्रेम, वीररस, तीर्थङ्करके जीवन पर होना चाहिये।

—मन्त्री जैन युवकमंडल धामपुर।

धन्यवाद

जैन स्कूल मुज़फ्फ़रनगर में श्रीमती चैनमाला जी धर्मपत्नी ला० धर्मदास जी रईस खतौली के दान द्रव्य से एक कमरा लगभग ११००) की लागत का बनवाया गया है तथा एक कमरा ला० प्रिया लाल जी रईस मुज़फ्फ़रनगर ने बनवाया है और एक कमरा ला० हुश्यार सिंह जी रईस भी बनवा रहे हैं। इनके अलावा एक एक कमरा बनवाने का वचन ला० शेरसिंह जी रईस सरधना और बा० सुमेर चन्द्र जी डिप्टी इन्सपेक्टर आफ़ स्कूल्स ने दिया है। स्कूल कमेटी की तरफ़ से उक्त महानु भावोंको धन्यवाद है। —समन्दर लाल जैन, मुख्तार

पर्यूषणपर्व में धर्मलाभ

व्याख्यान वाचस्पति पण्डित देवकीनन्दन जी सिद्धान्तशास्त्री (प्रधान धर्माध्यापक श्री महावीर ब्र० आश्रम कारंजा) ने इस वर्ष देहली पधारने की स्वीकारता प्रदान की है। अतएव आप का शास्त्रोपदेश पर्युषणपर्व में प्रति दिवस मध्याह्न के १ बजे से श्री दिगम्बर जैन मन्दिरजी कूचासेठ के विशाल भवन में होगा। समस्त भाई बहिनों से प्रार्थना है कि धर्मलाभ उठावें। —महबूबसिंह

आनरेरी मजिस्ट्रेट हुए

श्रीमान् न्यायालङ्कार पं० मक्खनलाल जी शास्त्री, मोरेना को ग्वालियर रियासत की ओर से सैकेंडक्लास मैजिस्ट्रेटी के अधिकार प्राप्त हुए हैं। बधाई! ६ मास तक की सज़ा क़ैद और २००) तक का जुर्माना करने का अख़्तियार आपको मिला है।

मोरेना की जैन सिद्धान्त प्रचारिणी सभा तथा जैन पञ्चायत व जैन मित्रमंडल ने अपने २ जलसे करके आपको बधाई दी है।

चातुर्मास

मुनि चन्द्रसागर जी, श्रुतसागरजी और मल्लिसागर जी का चातुर्मास कुचामन में होगा।

की बनी है और जो कुछ नाम मात्र के लिये लकड़ी लगाई गयी है, उस पर वार्निश की जगह किसी मसाले का लेप लगा दिया गया है, जिससे आग लगने का डर कुछ भी नहीं रहा।

—लंडन में एक बहुत बड़ी तिजोरी तैयार हुई है। इस तिजोरी के लिये ढक्कन या पल्ले का वज़न २० टनके करीब है। इसमें जो ताला लगा है, उसके भीतर १० लाख अलग २ पुर्ज़े हैं!

—लन्दन में प्रथम बार ३६ मंज़िल वाला १ होटल बनने वाला है। इसका कुल खर्चा २,२५००० पौन्ड होगा। १११ फीट लम्बा होगा और इसमें २००० आदमी एक ही समय में आ सकेंगे।

क्षमा प्रार्थना

डाकखाने की अव्यवस्था से मैटर अत्यधिक देर में मिलने के कारण यह अंक कुछ लेट प्रगट हो रहा है; आशा है पाठक महानुभाव अवश्य क्षमा करेंगे। —प्रकाशक

भूल सुधार

मैटर के ठीक समय पर न मिल पाने के कारण ही "दर्शन" की पृष्ठ संख्या छापने में भी कुछ गड़बड़ी हो गई है—पृष्ठ ६१ से ६४ तक न छप कर ७७ से ८० तक के पृष्ठ अधिक छप गये हैं। इस कारण पाठक महानुभाव ६१ से ६४ तक के पृष्ठ न देखकर कुछ भ्रम में न पड़ें। —प्रकाशक

REGD. NO. A. 2379

शान्तिचन्द्र जैन ने "चैतन्य" प्रिंटिंग प्रेस, बिजनौर में छापकर प्रकाशित किया।

वर्ष २] १६ सितम्बर १९३४ ई० [अंक ४-५

ॐ

जैनदर्शन का स्याद्वादाङ्क

स्याद्वाद वारिधि न्याय वाचस्पति स्वर्गीय पं० गोपालदास जी बरैया।

[अपने समय के सबसे बड़े जैन तत्ववेत्ता]

ऑन० सम्पादक—

पं० चैनसुखदास जैन न्यायतीर्थ

पं० अजितकुमार जैन शास्त्री पं० कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री

एक वर्ष का मूल्य ३)] [इस अंक का मूल्य १)

प्रकाशकीय निवेदन

१. "दर्शन" के 'स्याद्वादांक' का मैटर बहुत देर में पहुँचने के कारण हम इसको भरसक यत्न करने पर भी इससे पूर्व आपके पास नहीं पहुँचा सके, इसका हमें अतीव दुःख है।

२. यह अङ्क चूंकि रात्रिदिन काम कराके अति शीघ्रता में तैयार कराया गया है, इस कारण इसमें संशोधन व छपाई सम्बन्धी त्रुटियों का हो जाना स्वाभाविक है—आशा है पाठकगण उन्हें सुधार कर पढ़ेंगे।

३. श्री० दे० भू० कु० भूषण ब्रह्मचर्याश्रम की रक्षाबंधन की अपील हमें बहुत देर से मिली थी। इसी कारण गत अंक में नहीं बांटी जा सकी—पाठक अब सम्हाल लें।

४. इस अंक के साथ दि० जैन शास्त्रार्थ संघ अम्बाला छावनी व स्याद्वाद विद्यालय काशी व अयोध्या तीर्थक्षेत्र व दि० जैन हाई स्कूल पानीपत की अपीलें और मूर्तिपूजा की उपयोगिता, यह पांच फोड़पत्र और बाँटे जा रहे हैं—पाठक इन्हें भी सम्हाल लें।

५. क्षमावणी के दिन हम प्रत्येक पाठक के सन्मुख उपस्थित नहीं हो सकेंगे, इस कारण आज ही, अब तक बन पड़ी त्रुटियों, भूलों, अशुद्धियों, लापरवाहियों, गर्ज जिस किसी भी कारण से "जैनदर्शन" के पाठकों का मन हमारे कारण दुखा हो, उन सब ही की, हम अपने सहृदय पाठकों से बहुत ही नम्रता के साथ क्षमा चाहते हैं। आशा है क्षमाशील पाठक हम पर क्षमाभाव धारण करने की कृपा अवश्य करेंगे।

—शान्तिचन्द्र जैन (प्रकाशक व मुद्रक)

'दर्शन' के प्रेमियों का आवश्यक कर्त्तव्य है कि

वे अपनी पंचायतों में 'दर्शन' की ग्राहक वृद्धि व आर्थिक सहायता के लिये जोरदार अपील अवश्य रखें।

—प्रकाशक।

* विषय-सूची *

❀ चित्र-सूची ❀

———❀———

स्वर्गीय ला० अर्हद्दास जी जैन रईस, पानीपत।

[श्री० भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ के संस्थापकों में से एक]

ॐ

* श्री जिनाय नमः *

श्री जैनदर्शनमिति प्रथितोग्ररश्मिर्भस्मीभवन्निखिल दर्शन पक्षदोषः ।
स्याद्वाद भानुकलितो बुधचक्रवन्द्यो, भिन्दन्तमो विमतिजं विजयाय भूयात् ॥

वर्ष २ { बिजनौर, भादों शुक्ला ६—श्री 'वीर' नि० सं० २४६० { अङ्क ४-५

स्याद्वाद-स्तवनम्

जयतु विजय पदममलः स्याद्वादोऽलङ्घ्य शासनो भुवने ।
विश्व-विवादो येन निरस्यते वस्तुतत्त्वयोगेन ॥१॥
नित्यानित्य विवादम् भिन्न भिन्न प्रवाद मखिलं यः ।
परिहरति युक्ति योगैः सः स्याद्वादः सदा जयतु ॥२॥
विज्ञाय वस्तुतत्वं, कर्म मुमुक्षुर्यतस्तरति नित्यम् ।
भव-पाथोधिमगाधं स्याद्वादो बाध विरहितो जयतु ॥३॥
मिथो-विवादं बहुशः कुर्वन्तो व्यर्थमेव लोकेऽस्मिन् ।
येन हि संगच्छन्ते सः स्याद्वादोऽभिवन्द्यतेऽस्माभिः ॥४॥
निःश्रेयस पदमचलं येन विनानैव लभ्यतेसद्भिः ।
सततं स चिन्तनीयः स्याद्वादोऽपक्षपातेन ॥५॥

—चैनसुखदास जैन ।

स्याद्वाद और सप्तभंगी

[लेखक—श्रीमान् पं० कैलाशचन्द्र जी जैन शास्त्री, बनारस]

संसार में समय २ पर कुछ ऐसे महापुरुष जन्म लेते हैं जो इस दृश्यमान जगत के मायाजाल में न फंस कर, उसके भीतर छिपे हुए सत्य का रहस्योद्घाटन करने के लिए, अपने जीवन को उत्सर्ग कर देते हैं। सत्य को जानना और जनता में उसका प्रचार करना ही उनके जीवन का एक मात्र उद्देश होता है। किन्तु उनमें से बिरले ही महापुरुष पूर्ण सत्य तक पहुँचने में समर्थ होते हैं—अधिकाँश व्यक्ति सत्यके एक अंश को ही पूर्ण सत्य समझ, भ्रम में पड़ जाते हैं और अपने लक्ष्य से भ्रष्ट हो जाते हैं।

इस प्रकार संसार में दो तरह के उपदेष्टा पाये जाते हैं—एक पूर्णदर्शी और दूसरे अपूर्ण दर्शी या एकाँश दर्शी। पूर्ण दर्शी के द्वारा प्रकाशित सत्य ही अनेकान्तवाद के नाम से ख्यात होता है, क्यों कि जो पूर्ण है वह अनेकान्त है और जो अनेकान्त है वही पूर्ण है—पूर्णता और अनेकान्तता का अभेद्य सम्बन्ध है। इसके विपरीत, एकांश दर्शी जिस सत्यांश का प्रकाशन करता है वह एकान्त है, अतः अपूर्ण है—सत्य होते हुए भी असत्य है। कारण सत्य के एक अंश का दर्शी मनुष्य तभी आंशिक सत्यदर्शी कहा जा सकता है जब वह उसे आंशिक सत्य के रूप में स्वीकार करे। यदि कोई मनुष्य वस्तु के एक अंश को ही पूर्ण वस्तु सिद्ध करने की धृष्टता करता है तो, न तो वह सत्यदर्शी है और न सत्यवादी ही कहा जा सकता है।

सत्य का जानना जितना कष्टसाध्य है उसका प्रकाशित करना भी—अधिक नहीं तो—उतना ही कठिन अवश्य है। इस पर भी यदि वह सत्य अनेकान्त रूप हो—एक ही वस्तु में अस्ति-नास्ति, नित्य-अनित्य, एक-अनेक आदि विरोधी कहे जाने वाले धर्मों को स्वीकार करता हो, भिन्न २ धर्मों और दर्शनों में पाये जाने वाले सत्य के छिन्न भिन्न अंशों का सुन्दर रूप में समन्वय करने में तत्पर हो, तो वक्ता की कठिनाईयां और भी अधिक बढ़ जाती हैं। उक्त कठिनाईयों के होते हुए भी, यदि सत्य को प्रकाशित करने के साधन पर्याप्त हों तो उनका सामना किसी तरह किया जा सकता है। किन्तु साधन भी पर्याप्त नहीं हैं। कारण, शब्द एक समय में वस्तु के एक ही धर्म का आंशिक व्याख्यान कर सकता है।

सत्य को प्रकाशित करने के एक मात्र साधन शब्द की इस अपरिहार्य कमज़ोरी को अनुभव करके, *पूर्णदर्शी महापुरुषों ने स्याद्वाद का आविष्कार किया।*

शब्द की प्रवृत्ति वक्ता के आधीन है। इसलिये वक्ता वस्तु के अनेक धर्मों में से किसी एक धर्म की मुख्यता से वचन प्रयोग करता है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वह वस्तु सर्वथा उस एक धर्म

स्वरूप ही है। अतः यह कहना बेहतर होगा कि यहाँ पर विवक्षित धर्म की मुख्यता और शेष धर्मों की गौणता है। इसीलिए गौण धर्मों का द्योतक "स्यात" शब्द समस्त वाक्यों के साथ गुप्त रूप से सम्बद्ध रहता है। "स्यात" शब्द का अभिप्राय "कथंचित" या "किसी अपेक्षा से" है। जैसा कि स्वामी समन्तभद्र के इस वाक्य से प्रगट है—

"स्याद्वादः सर्वथैकान्तत्यागात् किंवृत्तचिद्विधिः"

"आप्तमीमांसा"।

भगवान महावीर ने अपने अनुपम वचनों के द्वारा पूर्ण सत्य का उपदेश किया और उनका उपदेश संसार में "श्रुत" के नाम से ख्यात हुआ। भगवान् महावीर के उपदेश का प्रत्येक वाक्य "स्यात्" "कथंचित्" या किसी अपेक्षा से होता था, क्योंकि उसके बिना पूर्ण सत्य का प्रकाशन नहीं हो सकता। अतः उनके उपदेश "श्रुत" को आचार्य समन्तभद्र ने स्याद्वाद * के नाम से सम्बोधित किया है।

श्रुत ❀ उपदेश या वाक्य तीन प्रकार का होता है; स्याद्वाद श्रुत, नयश्रुत और मिथ्याश्रुत।

स्याद्वादश्रुत ‡—एक धर्म के द्वारा अनन्त धर्मात्मक वस्तु का बोध कराने वाले वाक्य को कहते हैं। यह वाक्य अनेक धर्मात्मक वस्तु का प्रतिपादन करता है, इसलिए इसे सकलादेश † भी कहते हैं। और अनेक धर्मात्मक वस्तु का ज्ञाता ही ऐसे वाक्य का प्रयोग कर सकता है इसलिए उसे प्रमाण वाक्य ÷ भी कहते हैं। क्योंकि जैन दर्शन में अनेक धर्मात्मक वस्तु का सच्चा ज्ञान ही प्रमाण × कहा जाता है।

नयश्रुत—अनेक धर्मात्मक वस्तु के एक धर्म का बोध कराने वाले वाक्य को कहते हैं। इसे विकलादेश ‡ या नयवाक्य भी कहते हैं। ऐसे वाक्य के

---

* "स्याद्वाद केवलज्ञाने सर्वतत्त्वप्रकाशने।
भेदः साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत्" ॥ —"आप्तमीमांसा"

❀ "इह त्रिविधं श्रुतं—मिथ्याश्रुतं, नयश्रुत, स्याद्वादश्रुतम्" (न्यायावतार टी० पृ० ९३)

‡ "सम्पूर्णार्थविनिश्चायि स्याद्वादश्रुत मुच्यते"। —न्यायावतार, कारि० ३०।

"निर्दिश्यमानधर्मव्यतिरिक्ताशेषधर्मान्तर संसूचकेन स्याता युक्तो वादोऽभिप्रेतधर्म वचन स्याद्वादः"।

—"न्यायावतार" टी० पृ० ९३

† "स्याद्वादः सकलादेशः"। —'लघीयस्त्रय'।

"अनेकान्तात्मकार्थ कथनं स्याद्वादः"। लघीयस्त्रय, स्वोपज्ञभाष्य।

एकधर्म बोधन मुखेन तदात्मकानेकाशेष धर्मात्मक वस्तु विषयक बोधजनक वाक्यत्वं सकलादेशत्वम्"।

—सप्त भंगी तरंगिणी पृ० १९

"एक गुण मुखेनाशेष वस्तुरूप संग्रहात् सकलादेशः"। —राजवार्तिक पृ० १८१

÷ "सकलादेशः प्रमाण वाक्यम्"। —श्लोक वार्तिक पृ० १३७

× "अर्थस्यानेकरूपस्य धीः प्रमाणं"। —अष्टशती (कारिका १०६ में)

‡ "विकलादेशो नय वाक्यम्"। —श्लो० वा० पृ० १३७

प्रयोग करने वाले वक्ता का ज्ञान "नय" कहलाता है, क्योंकि वस्तु के एकांश ग्राही ज्ञान को नय+ कहते हैं।

मिथ्याश्रुत—वस्तु में किसी एक धर्म को मान कर, अन्य प्रतिपक्षी धर्मों का निराकरण करने वाले वाक्य को कहते हैं। ऐसे वाक्य के प्रयोग करने वाले वक्ता का ज्ञान "दुर्नय" † कहलाता है।

यहां एक प्रश्न होसकता है—क्या ज्ञान एकांश-ग्राही और शब्द अनेक धर्मात्मक वस्तु का वाचक होसकता है? विचार करने पर दोनों ही बातें असंगत जान पड़ती हैं—न तो ज्ञान एकांशग्राही हो सकता है और न एक शब्द एक समय में अनेक धर्मात्मक वस्तु का वाचक।

प्रमाण और नय

प्र०—अनेक धर्मात्मक वस्तु के ज्ञान को प्रमाण कहते हैं और एक धर्म के ग्रहण करने वाले ज्ञान को नय कहते हैं। तब आप ज्ञान का एकांशग्राही होना कैसे अस्वीकार करते हैं?

उ०—प्रमाण और नय की व्यवस्था सापेक्ष है। प्रमाण के दो भेद हैं—स्वार्थ और परार्थ। मति-ज्ञान स्वार्थ प्रमाण है। इन्द्रिय और मन की सहायता से जो ज्ञान होता है उसे मतिज्ञान कहते हैं। यथार्थ में कोई भी इन्द्रिय-जन्य ज्ञान पूर्ण वस्तु को विषय नहीं कर सकता। चक्षु रूप के द्वारा वस्तु को जानती है, रसना रस के द्वारा और घ्राण गन्ध के द्वारा। फिर भी जैनदर्शन में इन ज्ञानों को प्रमाण याने अनेक धर्मात्मक वस्तु का ग्राही कहा जाता है, इसका कारण ज्ञाता की दृष्टि है। एक धर्म को जानते हुए भी ज्ञाता की दृष्टि, वस्तु के अन्य धर्मों की ओर से उदासीन नहीं हो जाती है। कारण, बुद्धिमान ज्ञाता जानता है कि इन्द्रियों में इतनी शक्ति नहीं है कि वे एक समय में वस्तु के अनेक धर्मों का प्रतिभासन करा सकें। यदि ज्ञाता इन्द्रियों की इस अशक्ति को ध्यान में न रखकर, इन्द्रिय वस्तु के जिस धर्म का बोध कराती है केवल उसी एक धर्म को पूर्ण वस्तु समझ लेता है तो उसका ज्ञान अप्रमाण कहा जाता है।

जब ज्ञाता शब्दों के द्वारा दूसरों पर अपने ज्ञान को प्रकट करने के लिए तत्पर होता है तब उसका वह शब्दोन्मुख अस्पष्ट* ज्ञान स्वार्थ ×श्रुत प्रमाण कहा जाता है। और ज्ञाता जो वचन बोलता है वे वचन परार्थश्रुत कहे जाते हैं। श्रुत प्रमाण के ही भेद नय‡ कहाते हैं।

\+ "तदंशधीर्नयो धर्मान्तरापेक्षी"। अष्टशती (कारिका १०६ में)

"नयो ज्ञातुरभिप्राय:"। —लघीयस्त्रय

† "दुर्णयस्तन्निराकृति:"। —अष्टशती (कारिका १०६ में)

* जैन दर्शन में इन्द्रियजन्य ज्ञान को अस्पष्ट कहा जाता है।

× "प्राङ् नामयोजनाच्छेषं श्रुतं शब्दानुयोजनात्"। —"लघीयस्त्रय"

"न केवलं नामयोजनात्पूर्वं यदस्पष्ट ज्ञान मुपजायते तदेव श्रुतं, किन्तु शब्दानुयोजनाच्च यदुपजायते तदपि संगृहीतं भवति"। "न्यायकुमुदचन्द्रोदय"

‡ "श्रुतं स्वार्थं भवति परार्थं च, ज्ञानात्मकं स्वार्थं, वचनात्मकं परार्थं, तद्भेदा नया:"। —"सर्वार्थसिद्धि"

जिस प्रकार एक इन्द्रिय एक समय में वस्तु के अनेक धर्मों का बोध नहीं करा सकती, उसी प्रकार एक शब्द एक समय में वस्तु के अनेक धर्मों का बोध नहीं करा सकता। इस लिए वक्ता किसी एक धर्म का अवलम्बन लेकर ही वचन व्यवहार करता है। यदि वक्ता एक धर्म के द्वारा पूर्ण वस्तु का बोध कराना चाहता है तो उसका वाक्य प्रमाण वाक्य कहा जाता है। और यदि एक ही धर्म का बोध कराना चाहता है—शेष धर्मों में उसकी दृष्टि उदासीन है—तो उसका वाक्य नय वाक्य कहा जाता है।

प्रमाण वाक्य और नय वाक्य

जैसे प्रमाण और नय की व्यवस्था सापेक्ष है, ज्ञाता की दृष्टि पर निर्भर है, उसी तरह प्रमाण वाक्य और नयवाक्य की व्यवस्था भी सापेक्ष है—वक्ता की विवक्षा पर अवलम्बित है। इस अपेक्षा वाद को यदि दूर कर दिया जाय तो प्रमाणवाक्य किसी भी हालत में नहीं बन सकता। प्रमाण वाक्य की कल्पना तो दूर की बात है। यथार्थ में प्रमाण का विषय वचन के अगोचर है—अवक्तव्य है। अथवा हम उसे अवक्तव्य भी नहीं कह सकते, क्योंकि अवक्तव्य भी वस्तु का एक धर्म है। अतः यह कहना बेहतर होगा कि प्रमाण मूक है और उसका विषय स्वसंवेद्य है। कैसे ? सुनिए—

वस्तु, परस्पर विरोधी कहे जाने वाले अनेक धर्मों का अखण्ड पिण्ड है जो प्रमाण का विषय है। संसार में एक भी ऐसा शब्द नहीं मिलता, जो उस अनेक धर्मों के पिण्ड को—जैसे ज्ञान एक समय में एक साथ जान लेता है उस तरह—एक समय में एक साथ प्रतिपादन कर सके। सत शब्द केवल अस्तित्व धर्म का ही प्रतिपादन करता है। द्रव्य शब्द केवल द्रव्य की ओर ही संकेत करता है—पर्याय की ओर से उदासीन है। इसी लिये यह संग्रह नय के विषय कहे जाते हैं। इसी तरह घट पट आदि शब्द भी घटत्व पटत्व की ओर ही संकेत करते हैं, शेष धर्मों के प्रति मूक हैं। इसी से इन्हें व्यवहार नय का विषय कहा जाता है। अधिक क्या कहें—जितना भी शब्द व्यवहार है वह सब नय है। इसी से सिद्धसेन दिवाकर ने नयों के भेद बतलाते हुए कहा है * "जितना वचन व्यवहार है और वह जिस २ तरह से होसकता है वह सब नयवाद है"। श्रुतज्ञान से अतिरिक्त अन्य ज्ञानों का स्वार्थ प्रमाण यानी मूक कहा जाना भी उक्त समस्या पर अच्छा प्रकाश डालता है। वचनव्यवहार, जो नयवाद है, श्रुत प्रमाण में ही होता है। इसी लिए नयों को श्रुत प्रमाण के भेद कहा जाता है।

आचार्य समन्त भद्र ने आप्तमीमांसा में केवल नय सप्त भङ्गी का ही वर्णन किया है। प्रमाण सप्त भङ्गी का वर्णन नहीं किया। और अन्त में लिख दिया—एकत्व † अनेकत्व आदि विकल्पों में भी, नयविशारद को उक्त सप्त भंगी की योजना उचित रीति से कर लेनी चाहिए। इसी तरह सिद्धसेन दिवाकर ने सम्मति तर्क के नयकाण्ड में नयसप्त भंगी का ही वर्णन किया है। स्याद्वाद और सप्त भंगीवाद की जो कुछ रूपरेखा वर्तमान में उपलब्ध है उसका श्रेय इन्हीं दोनों आचार्यों को प्राप्त है।

* "जावइया वयणवहा तावइया चेव होंति णयवाया"। ३–४७ सम्मतितर्क।

† एकानेक विकल्पादावुत्तरत्रापि योजयेत्। प्रक्रियां भङ्गिनी मेनां नयैर्नयविशारदः ॥ २३ ॥

अतः उक्त दो महान् आचार्यों के द्वारा प्रमाण सप्त भंगी का वर्णन न किया जाना रहस्य से खाली नहीं कहा जा सकता। किन्तु एक बात अवश्य है। दोनों आचार्यों के ग्रन्थों का सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करने पर प्रमाण सप्त भंगी के बीज भूत * वाक्यों का कुछ आभास सा होता है। अकलंक देव सरीखे प्रमाणनयविशारद की दृष्टि से यह विशकलित वाक्यांश कैसे छिप सकते थे। हमारा मत है कि उपलब्ध दि० जैन साहित्य में प्रमाण सप्तभंगी का सर्व प्रथम स्पष्ट निर्देश करने का श्रेय भट्टाकलंक को ही प्राप्त है।

प्रमाण वाक्य और नय वाक्य में मौलिक भेद

प्रमाण वाक्य और नयवाक्य के प्रयोग में ज्ञाता की विवक्षा के अतिरिक्त भी कोई मौलिक भेद है या नहीं ? इस प्रश्न के समाधान के लिए जैनाचार्यों के द्वारा दिये गये उदाहरणों पर एक आलोचनात्मक दृष्टि डालना आवश्यक है।

दिगम्बराचार्यों में—अकलंक देव राजवार्तिक† में और विद्यानन्दि श्लोकवार्तिक ‡ में "प्रमाण सप्त भंगी" और "नय सप्त भंगी" का पृथक २ व्याख्यान करते हैं। किन्तु दोनों वाक्यों में एक ही उदाहरण "स्यादस्त्येव जीवः" (किसी अपेक्षा से जीव सत्स्वरूप ही है) देते हैं।

किन्तु लघीयस्त्रय के स्वोपज्ञ भाष्य × में वे ही अकलंक देव दोनों में जुदे २ उदाहरण देते हैं। प्रमाणवाक्य का उदाहरण—स्याज्जीव एव (स्यात् जीव ही है) और नय वाक्य का उदाहरण—स्यादस्त्येव जीवः (स्यात् जीव सत्स्वरूप ही है) है। आचार्य प्रभाचन्द्र* भी दोनों वाक्यों में एक ही उदाहरण देते हैं—"स्यादस्ति जीवादिवस्तु" (जीवादि वस्तु कथंचित सत्स्वरूप हैं)।

आचार्य कुन्दकुन्द ने पञ्चास्तिकाय तथा प्रवचनसार में एक २ गाथा देकर सात भंगों के नाम मात्र गिना दिए हैं। दोनों ग्रन्थों में भंगों के क्रम में तो अन्तर है ही, इसके अतिरिक्त एक दूसरा भी अन्तर है। पञ्चास्तिकाय में "आदेसवसेण" लिखा हुआ है जब कि प्रवचनसार में "पज्जाएण दु केणवि" पाठ दिया गया है। प्रवचनसार के पाठ से दोनों टीकाकारों ने एवकार (ही) का ग्रहण किया है। आचार्य अमृतचन्द्र उदाहरण देते हुए, पञ्चास्तिकाय की टीका में "स्यादस्ति द्रव्यं" (स्यात् द्रव्य है) लिखते हैं और प्रवचनसार की टीका में "स्या-

* तत्वज्ञानं प्रमाणं ते युगपत् सर्व भासनम्।
क्रम भावि च यज्ज्ञानं स्याद्वाद नय संस्कृतम् ॥ १०१ ॥ "आप्तमीमांसा"
नयानामेक निष्ठानां प्रवृत्तेः श्रुतवर्त्मनि।
सम्पूर्णार्थ विनिश्चापि स्याद्वाद श्रुत मुच्यते ॥ ३० ॥ "न्यायावतार"

† देखो—राजवार्तिक, पृ० १८१। ‡ देखो—श्लोक वार्तिक पृ० १३८

× स्याज्जीव एव इत्युक्ते नैकान्त विषयः स्याच्छब्दः, स्यादस्त्येव जीव इत्युक्ते एकान्तविषयः स्याच्छब्दः।
—न्यायकुमुद चन्द्रोदय लि० पृ० २२३

* देखो—प्रमेयकमल मार्तण्ड पृ० २०६।

दस्त्येव" (कथंचित है ही) लिखते हैं। आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने दो ग्रन्थों में भिन्न २ दृष्टियों से क्यों व्याख्यान किया, इस प्रश्न का समाधान अमृतचन्द्र ने नहीं किया। उनके बाद के द्वितीय टीकाकार जयसेन ने इस रहस्य को खोला है। वे लिखते हैं†—"स्यादस्ति" यह वाक्य सकल वस्तु का बोध कराता है, अतः प्रमाण वाक्य है। और "स्यादस्त्येव द्रव्यं" यह वाक्य वस्तु के एक धर्म का वाचक है, अतः नयवाक्य है। वे और भी लिखते हैं‡—पञ्चास्तिकाय में "स्यादस्ति" आदि प्रमाण वाक्य से प्रमाण सप्तभंगी का व्याख्यान किया। यहां "स्यादस्त्येव" वाक्य में जो एवकार ग्रहण किया है वह नयसप्तभंगी को बतलाने के लिये कहा गया है।

सप्तभंगी तरंगिणी के कर्ता भी दोनों वाक्यों में एक ही उदाहरण देते हैं—"स्यादस्त्येव घटः" (घट कथंचित् सत्स्वरूप ही है)।

यह तो हुआ दिगम्बराचार्यों के मतों का उल्लेख, अब श्वेताम्बराचार्यों के मत भी सुनिए।

अभयदेव सूरि लिखते हैं*—"स्यादस्ति" (कथंचित है) प्रमाण वाक्य है। "अस्त्येव" (सत्स्वरूप ही है) दुर्नय है। "अस्ति" (है) सुनय है किन्तु व्यवहार में प्रयोजक नहीं है। "स्यादस्त्येव" (कथंचित् सत्स्वरूप ही है) यह सुनय वाक्य ही व्यवहार में कारण है।

वादिदेव सूरि † ने "स्यादस्त्येव सर्वं" (सब वस्तु कथंचित् सत्स्वरूप ही हैं) एक ही उदाहरण दिया है।

मल्लिषेण सूरि ने भी वादिदेव का ही अनुसरण किया है ‡।

आचार्यों के उक्त मत दो भागों में विभाजित किये जा सकते हैं—प्रथम, जो दोनों वाक्यों के प्रयोगों में कोई अन्तर नहीं मानते हैं; दूसरे, जो अन्तर मानते हैं। अन्तर मानने वालों में लघीयस्त्रय के कर्ता अकलङ्कदेव, जयसेन तथा अभयदेव सूरि का नाम उल्लेखनीय है। किन्तु इन अन्तर मानने वालों में भी परस्पर में मतैक्य नहीं है। अकलङ्कदेव प्रमाणवाक्य और नयवाक्य दोनों में स्यात्कार और एवकार का प्रयोग आवश्यक समझते हैं। किन्तु जयसेन और अभयदेव स्यात्कार का प्रयोग तो आवश्यक समझते हैं, पर एवकार का प्रयोग केवल नयवाक्य में ही मानते

† स्यादस्तीति सकलवस्तु ग्राहकत्वात् प्रमाणवाक्यं, स्यादस्त्येव द्रव्यमिति वस्त्वेक देशग्राहकत्वान्नयवाक्यम्"।

—पञ्चास्तिकाय टीका पृ० ३२।

‡ पूर्वं पञ्चास्तिकाये स्यादस्तीत्यादि प्रमाण वाक्येन प्रमाण सप्तभंगी व्याख्याता, अत्र तु स्यादस्त्येव यदेवकार ग्रहणं तन्नय सप्त भंगी ज्ञापनार्थ मिति भावार्थः।

—प्रवचनसार टीका पृ० १६२

* "स्यादस्ति" इत्यादि प्रमाणं, "अस्त्येव" इत्यादि दुर्नयः, "अस्ति" इत्यादिकः सुनयो न तु संव्यवहाराङ्गम्, "स्यादस्त्येव" इत्यादिस्तु नय एव व्यवहारकारणम्"।

—"सम्मतितर्क" टीका पृ० ४४६

† देखो—प्रमाण नय तत्वालोक, परिच्छेद ४, सू० १५ तथा परि० ७, सू० ५३।

‡ देखो —स्याद्वाद मंजरी पृ० १८९।

हैं। अकलङ्कदेव के मत से यदि जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, घट, पट आदि वस्तु वाचक शब्दों के साथ स्यात्कार और एवकार का प्रयोग किया जाता है तो वह प्रमाण वाक्य है। और यदि अस्ति, नास्ति, एक, अनेक आदि धर्मवाचक शब्दों के साथ उनका प्रयोग किया जाता है तो वह नयवाक्य है। इसके विपरीत जयसेन और अभयदेव के मत से किसी भी शब्द के साथ वह शब्द धर्मवाचक हो या धर्मिवाचक हो, यदि एवकार का प्रयोग किया गया है तो वह नयवाक्य है और यदि एवकार का प्रयोग नहीं किया गया—केवल स्यात् शब्द का प्रयोग किया गया है—तो वह प्रमाण वाक्य कहा जाता है।

उक्त दो मतों में दो प्रश्न पैदा होते हैं—

१. प्रश्न—क्या धर्मिवाचक शब्द सकलादेशी और धर्मवाचक शब्द विकलादेशी होते हैं?

२. प्रश्न—क्या प्रत्येक वाक्य के साथ एवकार का प्रयोग आवश्यक है?

प्रश्नों पर विचार

विद्यानन्दि स्वामी ने प्रथम प्रश्न पर प्रकाश डालते हुए लिखा है*—किसी धर्म के अवलम्बन बिना धर्मी का व्याख्यान नहीं हो सकता। जीव शब्द भी जीवत्वधर्म के द्वारा ही जीववस्तु का प्रतिपादन करता है। विद्यानन्दि के मत से समस्त शब्द किसी न किसी धर्म की अपेक्षा से ही व्यवहृत होते हैं। आश्चर्य है, अकलङ्कदेव भी राजवार्तिक† में इसी मत का समर्थन करते हैं।

दूसरे प्रश्न पर अनेक आचार्यों ने प्रकाश डाला है। प्रायः अधिकांश जैनाचार्य वाक्य के साथ एवकार का प्रयोग उतना ही आवश्यक समझते हैं जितना स्यात्कार का। अतः यद्यपि भिन्न २ आचार्यों के मतों पर निर्भर रहकर न तो उक्त दोनों प्रश्नों का ही ठीक समाधान हो सकता है और न प्रमाणवाक्य और नय वाक्य का निश्चित स्वरूप ही निर्धारित होता है, फिर भी वस्तु विवेचन के लिए इस पर विचार करना आवश्यक है।

यह सत्य है कि प्रत्येक शब्द वस्तु के किसी न किसी धर्म को लेकर ही व्यवहृत होता है। किन्तु कुछ शब्द वस्तु के अर्थ में इतने रूढ़ हो जाते हैं कि उनसे किसी एक धर्म का बोध न होकर अनेक धर्मात्मक वस्तु का ही बोध होता है। जैसे, जीव शब्द जीवनगुण की अपेक्षा से व्यवहृत होता है, किन्तु जीव शब्द के सुनने से श्रोता को केवल जीवनगुण का बोध न होकर अनेक धर्मात्मक आत्मा का बोध होता है। इसी तरह पुद्गल, काल, आकाश आदि वस्तुवाचक शब्दों के विषय में भी समझना चाहिए। संसार में बोलचाल के व्यवहार में आने वाले पुस्तक, घट, वस्त्र, मकान आदि शब्द भी वस्तु का ही बोध कराते हैं। ऐसी दशा में यदि अकलङ्कदेव के मत के अनुसार धर्मीवाचक शब्दों को सकलादेशी और धर्मवाचक शब्दों को विकलादेशी कहा जाय तो कोई बाधा दृष्टिगोचर नहीं होती। किन्तु यहाँ पर भी हमें सर्वथा एकान्तवाद से काम नहीं लेना चाहिये, धर्मीवाचक शब्द सकलादेशी ही होते हैं और धर्मवाचक शब्द विकलादेशी ही होते हैं, ऐसा एकान्त मानने से सत्य का

* देखो—श्लोक वार्तिक पृ० १३७, कारिका ५६।

† देखो—राजवार्तिक पृष्ठ १८१, वार्तिक १८।

अपलाप होगा। कारण, वक्ता धर्मिवाचक शब्द के द्वारा वस्तु के एक धर्म का भी प्रतिपादन कर सकता है और कभी एक धर्म के द्वारा पूर्ण वस्तु का भी बोध करा सकता है। क्योंकि शब्द की प्रवृत्ति वक्ता के आधीन है। जीव शब्द केवल जीवन गुण का भी बोध करा सकता है और अस्ति शब्द अस्तित्व गुण विशिष्ट पूर्ण वस्तु का भी प्रतिपादन कर सकता है। अतः "धर्मि वाचक शब्द सकलादेशी ही होते हैं और धर्म वाचक शब्द विकलादेशी ही होते हैं" यह कहना असंगत जान पड़ता है, जैसाकि हम पहिले विद्यानन्दि का मत बतला आये हैं, दोनों शब्द दोनों का प्रतिपादन कर सकते हैं।

क्या प्रत्येक वाक्य के साथ एवकार का प्रयोग आवश्यक है ?

दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न एवकार के विषय में है। एवकार वादियों का मत है कि—शब्द के साथ एवकार (हिन्दी में उसे "ही" कहते हैं) यदि न लगाया जाये तो सुनने वाले को निश्चित अर्थ का बोध नहीं होता। जैसे—किसी ने कहा "घट लाओ"। सुनने वाले के चित्त में यह विचार पैदा होता है कि घट पर कोई खास ज़ोर नहीं दिया गया है, अतः यदि घट के बदले लोटा ले जाऊँ तब भी काम चल सकता है। किन्तु यदि "घट ही लाओ" कहा जाये तो श्रोता को अन्य कुछ सोचने की जगह नहीं रहती और वह तुरन्त घट ले आता है। अतः निश्चित पदार्थ का बोध कराने के लिए प्रत्येक वाक्य में अवधारण होना चाहिए।

इस मत पर टीका टिप्पणी करने से पहिले, प्रमाण वाक्य और नयवाक्य के विषय में, हम पाठकों को एक बात बतला देना आवश्यक समझते हैं। प्रमाण वाक्य में वस्तु के सब धर्मों की मुख्यता रहती है और नयवाक्य में जिस धर्म का नाम लिया जाता है केवल वही धर्म मुख्य होता है और शेष धर्म गौण समझे जाते हैं *। दोनों वाक्यों के इस आन्तरिक भेद को, जिसे समस्त जैनाचार्य एक स्वर से स्वीकार करते हैं, दृष्टि में रखकर "प्रमाण वाक्य में एवकार का प्रयोग होना चाहिये या नहीं" इस प्रश्न की मीमांसा करने में सरलता होगी।

"स्यादस्त्येव जीवः" (स्यात् जीव सत् ही है) एवकार वादियों के मत से यह प्रमाण वाक्य है। अतः इसमें सब धर्मों की मुख्यता रहनी चाहिए। किन्तु विचार करने से इस वाक्य में सब धर्मों की मुख्यता का सूक्ष्म सा भी आभास नहीं मिलता। कारण, एवकार अर्थात् "ही" जिस शब्द के साथ प्रयुक्त होता है केवल उसी धर्म पर ज़ोर देता है और शेष धर्मों का निराकरण करता है इसी से संस्कृत में उसे अवधारणक और अन्य व्यवच्छेदक के नाम से पुकारा जाता है। जब वक्ता सत पर ज़ोर देता है तब केवल सत धर्म की ही प्रधानता रह जाती है। शेष धर्मों की प्रधानता को एवकार निगल जाता है। इसी से स्वामी विद्यानन्दि ने लिखा है †—"स्यात्कार के

---

* "विधिर्विषक्त प्रतिषेध रूप प्रमाण मत्रान्यतरत्प्रधानम्।
गुणो परो मुख्यनियाम हेतुर्नयः सदृष्टान्त समर्थनस्ते" ॥　—वृहत्स्वयंभूस्तोत्र ॥

† "न हि स्यात्कारप्रयोगमन्तरेणानेकान्तात्मकत्वसिद्धिः; एवकार प्रयोगमन्तरेण सम्यगेकान्तावधारणसिद्धिवत्"। —युक्त्यनुशासन टीका पृ० १०५

बिना अनेकान्त की सिद्धि नहीं हो सकती, जैसे एवकार के बिना यथार्थ एकान्त का अवधारण नहीं हो सकता"। एवकार को हटाकर यदि "स्यादस्ति जीवः" कहा जाए तो किसी एक धर्म पर ज़ोर न होने से सब धर्मों की प्रधानता सूचित होती है और इस दशा में हम उसे प्रमाण वाक्य कह सकते हैं।

शायद यहां पर आपत्ति की जाये कि एवकार के न होने से सुनने वाले को निश्चित धर्म का बोध नहीं होगा। अतः श्रोता अस्तित्व धर्म के साथ नास्तित्व आदि धर्मों का भी ज्ञान करने में स्वतंत्र होगा। यह आपत्ति हमें इष्ट ही है। प्रमाण वाक्य से श्रोता को वस्तु के किसी एक अंश का भान नहीं होना चाहिए। यह कार्य तो नय वाक्य का है। अतः प्रमाण वाक्य और नयवाक्य के लक्षण की रक्षा करते हुए, हम इसी निर्णय पर पहुँचते हैं कि दोनों वाक्यों का आन्तरिक भेद वक्ता की विवक्षा पर अवलम्बित है। और बाह्य भेद एवकार के होने, न होने से जाना जा सकता है।

जो आचार्य प्रमाण वाक्य और नय वाक्य के प्रयोग में कोई अन्तर नहीं मानते हैं उनके मत से वस्तु के समस्त गुणों में काल, आत्मा, अर्थ, गुणि-देश, संसर्ग, सम्बन्ध, उपकार और शब्द की अपेक्षा अभेद विवक्षा मानकर एक धर्म को भी अनन्तधर्मात्मक वस्तु का प्रतिपादक कहा जाता है।

यह तो हुआ वाक्यों का शास्त्रीय विवेचन, साधारण रीति से सम्पूर्ण द्वादशांग * वाणी प्रमाण श्रुत है और उसका प्रत्येक अङ्ग नयश्रुत है। या प्रत्येक अङ्ग प्रमाण श्रुत है और उस अङ्ग का प्रत्येक श्रुत स्कन्ध नयश्रुत है या सम्पूर्ण ग्रन्थ प्रमाणश्रुत है और उसका प्रत्येक वाक्य नयश्रुत है। इसी तरह वक्ता एक वस्तु के विषय में जितना विचार रखता है वह पूर्ण विचार प्रमाण है और उस विचार का प्रत्येक अंश नय है।

इस तरह प्रमाण और नय की व्यवस्था सापेक्ष समझनी चाहिये।

सप्त भंगी वाद

वस्तु और उसके प्रत्येक धर्म की विधि, प्रतिषेध सापेक्ष होने के कारण, वस्तु और उसके धर्म का प्रतिपादन सात प्रकार से हो सकता है। वे सात प्रकार निम्न लिखित हैं:—

१. स्यादस्ति कथंचित है।
२. स्यात् नास्ति ,, नहीं है।
३. स्यादस्ति नास्ति ,, है और नहीं है।
४. स्यादवक्तव्यम् ,, अवाच्य है।
५. स्यादस्ति अवक्तव्य, च ,, है और अवाच्य है।
६. स्यान्नास्ति अवक्तव्यं, च ,, नहीं है और अवाच्य है
७. स्यादस्ति, नास्ति, अवक्तव्यं, च—कथंचित है, नहीं है, और अवाच्य है।

इन सातों प्रकारों के समूह को सप्तभंगी कहते हैं। इन सात वाक्यों का मूल विधि और प्रतिषेध है †। इसलिए आधुनिक विद्वान इसे विधि प्रतिषेध मूलक पद्धति के नाम से भी पुकारते हैं।

उपलब्ध समस्त जैन वाङ्मय में, आचार्य कुन्द

* "प्रत्यक्षादि प्रमाणाविरुद्धानेकात्मक वस्तु प्रतिपादकः श्रुतस्कन्धात्मकः स्याद्वादः" ॥

—अष्ट सहस्री टिप्पण पृ० ११७

† विधि कल्पना (१) प्रतिषेध कल्पना (२) क्रमतो विधि प्रतिषेध कल्पना (३) सह विधि प्रतिषेध कल्पना,

कुन्द के पञ्चास्तिकाय और प्रवचनसार में सब से प्रथम सात भंगों का उल्लेख पायाजाता है। जैनेतर दर्शनों में—वैदिक दर्शन में यद्यपि अनेकान्तवाद के समर्थक अनेक विचार मिलते हैं और इसी लिए सत-असत-उभय और अनिर्वचनीय भंगों का आशय भिन्न २ वैदिक दर्शनों में देखा जाता है; फिर भी उक्त सात भंगों में से किसी भी भंग का सिलसिलेवार उल्लेख नहीं है। बौद्धदर्शन में तो स्थान २ पर सत, असत्, उभय और अनुभय का उल्लेख मिलता है जो चतुष्कोटि के नाम से ख्यात है। माध्यमिक दर्शन का प्रतिष्ठापक आर्य नागार्जुन उक्त चतुष्कोटि से शून्य * तत्व की व्यवस्थापना करता है।

जैनों की आगमिक पद्धति में वचनयोग के भी चार ही भेद किये गये हैं—सत्य (सत्), असत्य (असत्), उभय और अनुभय। जैन आगमिक पद्धति में तथा बौद्ध दर्शन में जिसे अनुभय के नाम से पुकारा गया है, जैन दार्शनिक पद्धति में उसे ही अवक्तव्य या अवाच्य का रूप दिया गया है। अतः सप्त भंगी के मूल स्तम्भ उक्त चार भंग ही हैं, जिन्हें जैनों की आगमिक पद्धति तथा जैनेतर दर्शनों में स्वीकार किया गया है। शेष तीन भंग, जो उक्त चार भंगों के मेल से तैयार किये गये हैं, शुद्ध जैन दार्शनिक मस्तिष्क की उपज हैं।

इस सप्त भंगी को सुनकर यदि साधारण जन हंसें तो कोई आश्चर्य नहीं, इसके आन्तरिक रहस्य को समझने में शंकराचार्य जैसे विद्वानों ने धोखा खाया है। प्रतिदिन बोल चाल की भाषा में हम जो शब्द-व्यवहार करते हैं वह उसी का दार्शनिक विकास है जो विद्वानों को भी भ्रम में डाल देता है। यहां हम गुरु शिष्य के प्रश्नोत्तर के रूप में उस पर कुछ प्रकाश डालते हैं—

सप्त भंगी के मूल-आधार चार भंगों का स्पष्टीकरण

गु०—एक मनुष्य अपने सेवक को आज्ञा देता है—"घट लाओ" तो सेवक तुरन्त घट ले आता है और जब वस्त्र लाने की आज्ञा देता है तो वह वस्त्र उठा लाता है, यह आप व्यवहार में प्रति दिन देखते हैं, किन्तु क्या कभी आपने इस बात पर विचार किया है कि सुनने वाला घट शब्द सुनकर घट ही क्यों लाता है, और वस्त्र शब्द सुनकर वस्त्र ही क्यों लाता है?

शि०—घट को घट कहते हैं और वस्त्र को वस्त्र कहते हैं, इस लिये जिस वस्तु का नाम लिया जाता है सेवक उसे ही ले आता है।

गु०—घट को ही घट क्यों कहते हैं? वस्त्र को घट क्यों नहीं कहते?

शि०—घट का काम घट ही दे सकता है—वस्त्र नहीं दे सकता।

गु०—घट का काम घट ही क्यों देता है? वस्त्र क्यों नहीं देता?

(४) विधि कल्पना, सह विधि प्रतिषेध कल्पना (५) प्रतिषेध कल्पना, सहविधि प्रतिषेध कल्पना (६) क्रमाक्रमाभ्यां विधि प्रतिषेध कल्पना (७)। —"अष्टसहस्री" पृ० १२५

* न सन्नासन्न सदसन्न चाप्यनुभयात्मकम्।
चतुष्कोटि विनिर्मुक्तं तत्वं माध्यमिका विदुः॥ —"माध्यमिक कारिका"

शि०—यह तो वस्तु का स्वभाव है। इसमें प्रश्न के लिए स्थान नहीं है।

गु०—क्या तुम्हारे कहने का यह आशय है कि घट में जो स्वभाव है वह वस्त्र में नहीं है। और वस्त्र में जो स्वभाव है वह घट में नहीं है।

शि०—हां प्रत्येक वस्तु अपना जुदा २ स्वभाव रखती है।

गु०—ठीक है, किन्तु अब तुम यह बतलाओ कि क्या हम घट को असत कह सकते हैं?

शि०—हां घड़े के फूट जाने पर उसे असत् कहते ही हैं।

गु०—टूट फूट जाने पर तो प्रत्येक वस्तु असत् कही जाती है। हमारा मतलब है कि क्या घट के मौजूद रहते हुए भी उसे असत कहा जासकता है?

शि०—नहीं, कभी नहीं। जो "है", वह 'नहीं' कैसे हो सकता है?

गु०—किनारे के पास आकर फिर बहाव में बहना चाहते हो। अभी तुम स्वयं स्वीकार कर चुके हो कि प्रत्येक वस्तु का स्वभाव जुदा २ होता है और वह स्वभाव अपनी ही वस्तु में रहता है, दूसरी वस्तु में नहीं रहता।

शि०—हां, यह तो मैं अब भी स्वीकार करता हूँ। क्यों कि यदि ऐसा न माना जायगा तो आग पानी हो जायगी और पानी आग हो जायगा। कपड़ा मिट्टी हो जायेगा और मिट्टी कपड़ा बन जायेगी। कोई भी वस्तु अपने स्वभाव में स्थिर न रह सकेगी।

गु०—यदि हम तुम्हारी ही बात को इस तरह से कहें, कि प्रत्येक वस्तु अपने स्वभाव से है और परस्वभाव से नहीं है, तो तुम्हें कोई आपत्ति तो नहीं है?

शि०—नहीं, इसमें किसको आपत्ति हो सकती है।

गु०—अब फिर तुमसे पहिला प्रश्न किया जाता है, क्या मौजूद घट को असत कह सकते हैं?

शि०—(चुप)

गु०—चुप क्यों हो? क्या फिर भी भ्रम में पड़ गये?

शि०—परस्वभाव की अपेक्षा से मौजूद घट को भी असत कह सकते हैं।

गु०—अब रास्ते पर आए हो। जब हम किसी वस्तु को सत कहते हैं तो हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि उस वस्तु के स्वरूप की अपेक्षा से ही उसे सत कहा जाता है। परवस्तु के स्वरूप की अपेक्षा से दुनिया की प्रत्येक वस्तु असत है। देवदत्त का पुत्र दुनिया भरके मनुष्यों का पुत्र नहीं है और न देवदत्त संसार भर के पुत्रों का पिता है। यदि देवदत्त अपने को संसार भरके पुत्रों का पिता कहने लगे तो उस पर वह मार पड़े जो जीवनभर भुलाये से भी न भूले। क्या इससे हम यह नतीजा नहीं निकाल सकते हैं कि देवदत्त पिता है और नहीं भी है। अतः संसार में जो कुछ "है", वह किसी अपेक्षा से नहीं भी है। सर्वथा सत या सर्वथा असत कोई वस्तु हो नहीं सकती। इसी अपेक्षावाद का सूचक "स्यात्" शब्द है जिसे जैन तत्वज्ञानी अपने वचन व्यवहार में प्रयुक्त करता है। उसी को दार्शनिक भाषा में "स्यात सत्" और "स्यात् असत्" कहा जाता है।

हम ऊपर लिख आये हैं कि शब्द की प्रवृत्ति वक्ता के अधीन है; अतः प्रत्येक वस्तु में दोनों धर्मों के रहने पर भी वक्ता अपने २ दृष्टिकोण से उनका उल्लेख करते हैं। जैसे—दो आदमी सामान खरीदने के लिये बाज़ार जाते हैं; वहां किसी वस्तु को एक अच्छी बतलाता है, दूसरा उसे बुरी बतलाता है। दोनों में बात बढ़ जाती है। तब दुकानदार या कोई राहगीर उन्हें समझाते हुए कहता है—भई, क्यों झगड़ते हो? यह चीज़ अच्छी भी है और बुरी भी है। तुम्हारे लिये अच्छी है और इनके लिये बुरी है। अपनी २ निगाह ही तो है। यह तीनों व्यक्ति तीन तरह का वचन व्यवहार करते हैं-पहिला विधि करता है, दूसरा निषेध और तीसरा दोनों।

वस्तु के उक्त दोनों धर्मों को यदि कोई एक साथ कहने का प्रयत्न करे तो वह कभी भी नहीं कह सकता। क्योंकि शब्द एक समय में एक ही धर्म का कथन कर सकता है। ऐसी दशा में वस्तु अवाच्य कही जाती है। उक्त चार वचन व्यवहारों को दार्शनिक भाषा में "स्यात् सत्", "स्यात् असत्", 'स्यात् सदसद्' और स्यादवक्तव्य कहते हैं। सप्तभंगी के मूल यही चार भंग हैं। इनही में से चतुर्थ भङ्ग के साथ क्रमशः पहिले दूसरे और तीसरे भङ्ग को मिलाने से पांचवाँ, छठा और सातवां भङ्ग बनता है। किन्तु लोक व्यवहार में मूल चार तरह के वचनों का ही व्यवहार देखा जाता है।

सप्तभंगी का उपयोग

सप्तभंगीवाद का विकास दार्शनिकक्षेत्र में हुआ था, इसलिए उसका उपयोग भी वहीं हुआ हो तो कोई आश्चर्य नहीं है। उपलब्ध जैन वाङ्मय में, दार्शनिक क्षेत्र में सप्तभंगीवाद को चरितार्थ करने का श्रेय स्वामी समन्तभद्र को ही प्राप्त है। किन्तु उन्हों ने "आप्तमीमांसा" में अपने समय के सदैकान्तवादी सांख्य, असदैकान्तवादी माध्यमिक, सर्वथा उभयवादी वैशेषिक और अवाच्यैकान्तवादी बौद्ध के दुराग्रह वाद का निराकरण करके मूल चार भंगों का ही उपयोग किया है और शेष* तीन भंगों के उपयोग करने का संकेत मात्र कर दिया है। "आप्तमीमांसा" पर "अष्टशती" नामक भाष्य के रचयिता श्री अकलंक देव ने उस कमी को पूरा कर दिया है। उनके मत से, शंकर का अनिर्वचनीय वाद सदवक्तव्य, बौद्धों का अन्यापोहवाद असदवक्तव्य, और योग का पदार्थवाद सदसदवक्तव्य कोटि में सम्मिलित होता है। †

सात भंगों में सकलादेश विकलादेश का भेद।

सप्त भंगीवाद के सकलादेशित्व और विकलादेशित्व की चर्चा हम "प्रमाण वाक्य और नय-वाक्य" में कर आए हैं और यह भी लिख आये हैं कि इसमें श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों एक मत हैं। किन्तु श्वेताम्बर साहित्य में एक ऐसे मत का उल्लेख मिलता है जो सात भंगों में से सत्,

* "शेष भंगाश्च नेतव्या यथोक्त नय योगतः"। —"आप्तमीमांसा"

† विशेष जानने के लिए देखो—"अष्टसहस्री" पृ० १३९

असत् और अवक्तव्य—इन तीन भंगों को सकलादेशी तथा शेष चार भंगों को विकलादेशी स्वीकार करता है। विशेषावश्यक भाष्यकार + इसी मत के पोषक जान पड़ते हैं। किन्तु उनका यह स्वतंत्र मत है या उन्होंने अपने पूर्ववर्ती किसी आचार्य से लिया है, इस विषय में हम अभी कुछ नहीं कह सकते। सन्मति तर्क के टीकाकार अभयदेव सूरि × उक्त मत का उल्लेख "इति केचित्" के नाम से करते हैं। वे लिखते हैं—"उक्त तीन भंग गौणता और प्रधानता से सकल धर्मात्मक एक वस्तु का प्रतिपादन करते हैं; इस लिए सकलादेश हैं। और शेष चार भंग भी यद्यपि सकलधर्मात्मक वस्तु का प्रतिपादन करते हैं फिर भी सांश वस्तु के बोधक होने से विकलादेश कहे जाते हैं" ऐसा किन्हीं का मत है।

मालूम नहीं, इस मत के अनुयायी प्रमाण सप्तभङ्गी और नयसप्तभङ्गी को मानते थे या नहीं? दिगम्बराचार्यों में से किसी ने भी इस मत का उल्लेख तक नहीं किया है। किंतु एक मत का उल्लेख अवश्य मिलता है जो उक्त मत से बिल्कुल विपरीत है। विद्यानन्दि तथा सप्तभंगी तरंगिणी के कर्ता ने उसका निराकरण किया है। विद्यानन्दि लिखते हैं*—"कोई विद्वान अनेक धर्मात्मक वस्तु के प्रतिपादक वाक्य को सकलादेश और एक धर्मात्मक वस्तु के प्रतिपादक वाक्य को विकलादेश कहते हैं, किन्तु ऐसा मानने से प्रमाण सप्तभंगी और नय सप्तभंगी नहीं बन सकती। कारण, तीन भङ्ग—सत्,असत और अवक्तव्य—वस्तुके एक धर्मका ही प्रतिपादन करतेहैं, अतः वे विकलादेश कहे जायेंगे, और शेष चार भङ्ग अनेक धर्मात्मक वस्तु का प्रतिपादन करते हैं, इसलिए सकलादेश कहे जायेंगे। सात भङ्गों में से तीन को नयवाक्य और शेष चार को प्रमाणवाक्य मानना सिद्धान्त विरुद्ध है।

भंगों के क्रम में भेद

सप्तभङ्गी के विषय में एक अन्य बात भी ध्यान देने योग्य है; वह है भङ्गों के क्रम में मतभेद का होना। कुछ ग्रन्थकार† "अवक्तव्य" को तीसरा

+ "एते त्रयः सकलादेशाः। चत्वारोऽपि विकला देशाः प्रोच्यंते"। वि० भा० गा० २२३२

× "एते च त्रयो भंगाः गुणप्रधान भावेन सकलधर्मात्मकैकवस्तुप्रतिपादकाः स्वयं तथा भूताः सन्तो निरवयव प्रतिपत्ति द्वारेण सकलादेशाः, वक्ष्यमाणास्तु चत्वारः सावयव प्रतिपत्ति द्वारेण अशेष धर्माकान्तं वस्तु प्रतिपादयन्तोऽपि विकलादेशा" इति केचित् प्रतिपन्नाः। —सन्मति तर्क टीका पृ० ४४५, पं० ३०

* अनेकात्मकस्य वस्तुनः प्रतिपादनं सकलादेशः। एक धर्मात्मक वस्तु कथनं विकलादेशः इत्येके। तेषां सप्तविध प्रमाण नय वाक्य विरोधः। सत्त्वासत्त्वा वक्तव्य वचनानां सैकैक धर्मात्मक जीवादि वस्तु प्रतिपादन प्रवणानां सर्वदा विकला देशत्वेन नयवाक्यतानुषंगात्। क्रमार्पितो भय सदवक्तव्या सद वक्तव्यो भयावक्तव्य वचनानां वाऽनेक धर्मात्मक वस्तु प्रकाशिना सदा सकलादेशत्वेन प्रमाण वाक्यता पत्तेः नच त्रीण्येव नयवाक्यानि चत्वार्येव प्रमाण वाक्यानीति युक्तं, सिद्धान्त विरुद्धत्वात्। —श्लोकवार्तिक पृ० १३७ पङ्क्ति १३–१७।

† सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम, अ० ५, सू० ३१, पृ० ४०६, पं० २०, तथा पृ० ४१० पं० २९। विशेषा० भा० गा० २२३२। प्रवचनसार पृ० १६१। तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृ० १८१।

और "स्यात् सदसद्" को चतुर्थ भङ्ग स्वीकार करते हैं और कुछ ‡ "स्यात् सदसद्" को तीसरा और अवक्तव्य को चतुर्थ भङ्ग पढ़ते हैं। इस क्रम भेद में दोनों सम्प्रदायों के आचार्य सम्मिलित हैं। कुछ आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में दोनों पाठों को स्थान दिया है। अकलंकदेव राजवार्तिक में दो स्थलों पर सप्त भंगी का वर्णन करते हैं और दोनों पाठ देते हैं। उक्त दोनों क्रमों में से मूल क्रम कौनसा है, यह बतलाने में हम असमर्थ हैं। कारण, सात भंगों का सर्व प्रथम उल्लेख करने वाले आचार्य कुन्दकुन्द हैं और उन्होंने अपने दो ग्रन्थों में दोनों पाठों को स्थान दिया है। ग्यारहवीं शताब्दी तक के विद्वानों ने इस क्रम भेद के विषय में एक भी शब्द नहीं लिखा है। बारहवीं शताब्दी के एक श्वेताम्बर विद्वान् ने इस ओर ध्यान दिया है। वे लिखते हैं *—कोई २ इस (अवक्तव्य) भङ्ग को तीसरे भंग के स्थान में पढ़ते हैं और तीसरे को इसके स्थान में। उस पाठ में भी कोई दोष नहीं है, क्योंकि वस्तु विवेचन में कोई अन्तर नहीं पड़ता"।

यथार्थ में विधि और प्रतिषेध को क्रम से और एक साथ कथन करने की अपेक्षा से तीसरे और चौथे भङ्ग की सृष्टि हुई है। पहिले दोनों का एक साथ कथन करके बाद को क्रम से कथन किया जाये, या पहिले क्रम से उल्लेख करके पीछे एक साथ किया जाये तो वस्तु विवेचन में कोई अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता। किन्तु अवक्तव्य को चतुर्थ भंग पढ़ने का ही अधिक प्रचार पाया जाता है। सप्त भंगी वाद के खण्डन में लेखनी चलाने वाले शंकराचार्य और रामानुज ने भी इसी पाठ को स्थान दिया है।

उपसंहार

स्याद्वाद और उसके फलितार्थ सप्त भंगीवाद के विषय में जैनाचार्यों के मन्तव्यों का दिग्दर्शन कराकर हम इस निबन्ध को समाप्त करते हैं। बौद्ध तथा वैदिक शास्त्रकारों ने अपने ग्रन्थों में स्याद्वाद के खण्डन पर लेखनी चलाई है। उसका भी समावेश हो जाने से इस लेख का कलेवर बहुत बढ़ जाता। अतः हम उस विषय पर किसी पृथक लेख में विचार करेंगे।

‡ प्रमाणनय तत्त्वालोक, परि० ४, सू० १७—१८। स्याद्वाद मंजरी पृ० १८९। नयोपदेश पृ० १२। पञ्चास्तिकाय पृ० ३०। आप्तमीमांसा, कारिका १४। तत्त्वा० राज० पृ० २४, वा० ५। तत्त्वा० श्लोक० पृ० १२८। सप्त भंगी त० पृ० २। प्रमेयकमल० पृ० २०६। इनमें से कुछ प्रमाण "सन्मति तर्क" के टिप्पण पृ० ४४२ से लिये गये हैं। —लेखक

* "अयं च भंगः कैश्चित्तृतीय भंग स्थाने पठ्यते, तृतीयश्चैतस्य स्थाने। नचैवमपि कश्चिद्दोषः, अर्थ विशेषस्या भावात्"। —रत्नाकरावतारिका परि० ४ सू० १८।

अनेकान्त, स्याद्वाद और सप्तभंगी, नय और प्रमाण का पारस्परिक सम्बन्ध

[लेखक—श्री पं० राजेन्द्रकुमार जी जैन, न्यायतीर्थ, अम्बाला छावनी]

जगत का प्रत्येक पदार्थ अनेकान्तात्मक—अनेक धर्मात्मक—है, एक साथ परस्पर विलक्षण अनेक अर्थ क्रिया करने से, देवदत्त के समान। जिस समय देवदत्त को मामा कहा जाता है उसही समय पिता, चाचा, बाबा, नाना और भाई भी! ये सब बातें एक दूसरे से भिन्न हैं। जो मामा से तात्पर्य है वही चाचा आदिक से नहीं। इससे देवदत्त का एक साथ परस्पर विलक्षण अनेक अर्थ क्रिया करना तो निसन्देह है। इसही प्रकार उसका मामा, पिता, बाबा, नाना और पुत्र आदि अनेक धर्मात्मक होना भी शङ्का रहित है। ऐसा भी कोई पदार्थ नहीं जो एक साथ परस्पर विलक्षण अनेक कार्य तो करता हो किन्तु अनेक धर्मात्मक न हो। अतः एक साथ परस्पर विलक्षण अनेक अर्थ क्रियाकारित्व और अनेक धर्मात्मक की व्याप्ति–अविनाभाव–माननी पड़ती है।

एक साथ परस्पर विलक्षण अनेक अर्थ क्रिया कारित्व जगत के प्रत्येक पदार्थ में मिलता है। ऐसा कोई पदार्थ नहीं, चाहे वह जड़ हो या चेतन, मूर्त हो या अमूर्त, सक्रिय हो या निष्क्रिय, जिसमें एक साथ परस्पर विलक्षण अनेक अर्थ क्रिया कारित्व न मिलता हो। अतः कहना चाहिये कि जगत का प्रत्येक पदार्थ अनेकान्तात्मक—अनेक धर्मात्मक—है, एक साथ परस्पर विलक्षण अनेक अर्थ क्रिया-कारी होने से।

इन धर्मों को, जिनका समुदायस्वरूप जगत का प्रत्येक पदार्थ है, स्थूलरीति से दो भेदों में विभाजित कर सकते हैं। एक सामान्य और दूसरा विशेष। सामान्य गुणों से तात्पर्य उनसे है जो बिना किसी भेदोपभेद के सम्पूर्ण द्रव्यों में पाये जाते हैं। इसही प्रकार विशेष गुण से तात्पर्य उनसे है जो सब द्रव्यों में नहीं रहते किन्तु खास २ द्रव्य में रहते हैं।

अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व और प्रदेशवत्व आदि सामान्य गुण हैं†।

जिससे द्रव्य का कभी भी नाश नहीं होता उस शक्ति का नाम अस्तित्वगुण है, जिससे द्रव्य में प्रति समय परिणमन होता रहता है उस शक्ति को द्रव्यत्व कहते हैं, जिससे द्रव्य में प्रति समय कुछ न कुछ अर्थ क्रिया होती रहती है उसको वस्तुत्व कहते हैं, जिससे द्रव्य किसी न किसी प्रमाण का विषय होता रहता है उसको प्रमेयत्व कहते हैं, जिससे द्रव्य में न्यूनता और अधिकता नहीं आती उसको अगुरुलघुत्व कहते हैं, और जिससे द्रव्य का

---

* धर्म, गुण और शक्ति ये एकार्थवाचक हैं; अतः इनमें से किसी से भी वही तात्पर्य समझना चाहिये। —लेखक

† अस्तित्वं, वस्तुत्वं, द्रव्यत्वं, प्रमेयत्वं, अगुरुलघुत्वं, प्रदेशवत्व······सामान्यगुणाः। —आलापपद्धति गुणाधिकार।

ला० शिब्बामल जी जैन रईस, अम्बाला-छावनी।

[जैनधर्म की प्रभावना के अनन्य उपासक और उसके लिये हजारों रुपया दान करने वाले]

कुछ न कुछ आकार बना रहता है उसको प्रदेशत्व गुण कहते हैं। नाश का न होना, प्रति समय कुछ न कुछ अर्थ क्रिया करना, प्रति समय परिणमनशील रहना, सदा ज्ञेय बने रहना, कम और अधिक न होना और किसी न किसी आकार में रहना ये ऐसी बातें हैं जो प्रत्येक द्रव्य में पाई जाती हैं; अतः अस्तित्वादिक द्रव्य के सामान्यगुण कहे जाते हैं।

इसही प्रकार रूप, रस, गंध और स्पर्श, चेतना, सुख और बल, वर्तनाहेतुत्व, गतिसहकारित्व, स्थितिसहकारित्व और अवकाशदान आदि भी हैं* किन्तु इनमें इतनी विशेषता है कि ये सामान्य गुणों की तरह सब द्रव्यों में नहीं रहते। रूपादिक चार पुद्गल में मिलते हैं, आत्मा आदिक में नहीं। इस ही प्रकार चेतनादिक आत्मा में। यही बात वर्तना हेतुत्व आदि के सम्बन्ध में है। इसही दृष्टि से ये विशेष गुण कहलाते हैं।

इनही सब बातों को यदि दूसरे शब्दों में कहना चाहें तो यों कह सकते हैं कि इनही गुणों का समुदाय द्रव्य है †। ये गुण अनेक हैं, अतः इनका समुदायस्वरूप द्रव्य भी अनेकान्तात्मक या अनेकान्त कहा जाता है।

समान गुण समुदायों में समानता लाते हैं और असमानोंसे असमानता आती है। असमान—विशेष—गुणों को छः भेदों में विभाजित किया गया है; अतः समुदाय भी इतने ही प्रकार के हैं। इन्हीं को द्रव्य के छः भेद कहते हैं।

इनही गुणों में एक अस्तित्व गुण भी है, अतः द्रव्य का कभी भी नाश नहीं होता और यह नित्य कहलाता है। अस्तित्वगुण के समान द्रव्य में एक द्रव्यत्व गुण भी है, अतः प्रति समय इसमें परिणमन—तबदीलियां—होती रहती हैं और यह अनित्य कहलाता है। ये दोनों ही बातें द्रव्य में ही होती हैं तथा प्रति समय होती हैं अतः समुदाय दृष्टि से द्रव्य नित्यानित्य है ‡।

गुण समुदाय में जितने भी गुण हैं वे सब सत् स्वरूप हैं तथा यही बात सम्पूर्ण समुदायों में है, अतः इस दृष्टि से ये सब एक हैं। किन्तु द्रव्यों में कुछ गुण ऐसे भी हैं जिनसे एक द्रव्य दूसरे द्रव्य से भिन्न ही रहता है, अतः इस दृष्टि से ये अनेक हैं, समुदाय दृष्टि से द्रव्य एकानेक है + ।

इसही प्रकार अपने निजरूप की दृष्टि से प्रत्येक द्रव्य सत् स्वरूप है किन्तु दूसरे पदार्थ का स्वरूप उसमें नहीं रहता। अतः वह असत् भी है। समुदाय दृष्टि से द्रव्य सदा सत् स्वरूप है ×।

---

* ज्ञानदर्शन सुख वीर्याणि, स्पर्शरसगन्धवर्णाः, गति हेतुत्वं, स्थिति हेतुत्वमवगाहन हेतुत्वं वर्तना हेतुत्वं ··· विशेषगुणः। —आलापपद्धतिगुणाधिकार

† गुणसमुदायो द्रव्यं।

‡ नित्यं तत् प्रत्यभिज्ञानान्नाकस्मात्तदविच्छिदा। क्षणिकं कालभेदात्ते बुद्ध्यसंचर दोषतः।

—आप्तमीमांसा, अ० ३ का० ५६

+ सत्सामान्यात्तु सर्वैक्यं पृथग्द्रव्यादि भेदतः।
भेदाभेद विवक्षायामसाधारण हेतुवत ॥ —आप्तमी०, अ० २ का० ३४।

× सदेव सर्वं को नेच्छेत् स्वरूपादिचतुष्टयात्। असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते॥—आप्तमी० अ० १ का० १५

इसही प्रकार अन्य धर्म भी घटित कर लेना चाहिये। दृष्टान्त के लिए यों समझियेगा कि एक दवाई की गोली है और वह पचास औषधियों को कूट पीट करके तय्यार की है। इसमें नमक, मिर्च और खटाई आदि वस्तुएँ भी हैं। नमक की दृष्टि से गोली नमकीन है, खटाई की दृष्टि से खट्टी और मिर्च की दृष्टि से चर्परी। यदि इन सब दृष्टियों को भुला दिया जाय और गोली के संबन्ध में कहाजाय तो उसको नमकीन, चर्परा और खट्टा सबही कहना होगा। इसही प्रकार द्रव्य है, अन्तर केवल इतना है कि यहां औषधियों का समुदाय है और द्रव्य में गुणों का। गोली की तरह द्रव्य में भी जबतक एक २ गुण पर दृष्टि रहती है तब तक वह भी एक रूप ही मालूम होती है और जब इसही को द्रव्य दृष्टि बना दिया जाता है तब वही अनेक धर्मात्मक मालूम पड़ने लगती है।

इनही सब बातों को सामने रखते हुए किसी किसी आचार्य ने एक और अनेक, नित्य और अनित्य और सत् और असदादि धर्मात्मक को ही अनेकान्तात्मक कहा है। अनेक धर्मात्मक को अनेकान्त कहना या अनेक परस्पर विरोधी धर्मात्मक को, इसमें अन्तर केवल शब्दों का ही है अर्थ तो दोनों ही दृष्टियों में वही है।

अनेकान्त और वस्तुस्वरूप

वस्तु स्वरूप का विवेचन करते समय यदि अनेकान्तात्मकत्व को भुलादिया जाय तो वस्तु स्वरूप का निर्णय करना ही असम्भव हो जाता है। दृष्टान्त के लिए वैशेषिक दर्शन को ले लीजियेगा। वैशेषिक दर्शन ने द्रव्य और गुण इन दोनों को भिन्न २ स्वीकार किया है× और परस्पर में इनका सम्वाय सम्बन्ध स्वीकार किया है। गुणों को द्रव्य से यदि सर्वथा भिन्न मान लिया जाता है तो फिर द्रव्य का अस्तित्व ही नहीं रहता। वैशेषिक दर्शनकार कणाद ने जब भी जिस किसी द्रव्य को समझाया या उसका लक्षण किया है वह गुणों के द्वारा ही। आत्मा का लक्षण ज्ञानाधिकरण है। हमने माना कि आत्मा ज्ञान का अधिकरण है किन्तु फिर भी उसका निजरूप क्या है? पृथ्वी घटका अधिकरण है, किन्तु फिर भी उसका स्वतंत्र अस्तित्व और निजरूप तो है। घट का अधिकरण कह कर ही तो पृथ्वी को नहीं समझाया जासकता। यह तो उसकी तरफ केवल संकेत मात्र कहा जा सकता है।

दूसरी बात यह है कि ऐसी परिस्थिति में गुण गुणी भाव भी ठीक नहीं बैठता। गुण द्रव्य से भिन्न है और उसका उसके साथ सम्वाय सम्बन्ध है यह बात भी कैसे मानी जा सकती है। जिस प्रकार गुणद्रव्य से भिन्न है उसही प्रकार सम्वाय भी तो इन दोनों से भिन्न है* फिर भी यह अमुक गुण का अमुक द्रव्य के ही साथ सम्बन्ध करेगा, इसको भी बिना नियामक के कैसे स्वीकार किया जा सकता है? वैशेषिक दर्शन की इस मान्यता के सम्बन्ध में इस प्रकार की आपत्तियाँ आज से सैकड़ों वर्ष पूर्व भी उपस्थित की जाचुकी हैं। आचार्य विद्यानन्दि ने भी इस प्रकार की आपत्ति ज्ञान और परमात्मा के सम्बन्ध में उपस्थित की है†। वैशेषिक दर्शन के

× वैशेषिक दर्शन अ० १ सूत्र ८—९

* वैशेषिक दर्शन अ० ७ आ० २ सूत्र २७।

† आप्तपरीक्षा कारिका ६२-५।

साहित्य में इनका सन्तोषजनक कोई उत्तर नहीं मिलता, यही बात दूसरे दर्शनों के सम्बन्ध में है। इनसे स्पष्ट है कि अनेकान्तात्मकत्व ही वस्तु का स्वरूप है। इसको वस्तुस्वरूप से अलग करना वस्तु स्वरूप को ही छोड़ देना है।

अनेकान्त और स्वामी शङ्कराचार्य

स्वामी शङ्कराचार्य अद्वैतवाद के एक प्रतिष्ठित आचार्य हुए हैं। आपने अपने वेदान्तसूत्र के शङ्कर-भाष्यमें अनेकान्त पर आपत्तियाँ उपस्थित की हैं ‡। आपका कहना है कि एक पदार्थ में परस्पर विरोधी दो धर्मों का रहना असम्भव है। यदि ऐसा स्वीकार किया जायगा तो पदार्थ व्यवस्था संदिग्ध भी हो जायगी। जो जिस रूप है वही उससे विपरीत भी है, अतः पदार्थ स्वरूप का निर्णय ही नहीं हो सकेगा.........। किसी भी पदार्थ में यदि सत् और असत् या नित्य और अनित्य धर्मों का रहना असम्भव होता तो उसही पदार्थ में इनका प्रतिभास नहीं होना चाहिये था। जिस पदार्थ में हम सत्व को पाते हैं, उसही में असत्व को भी; इसही प्रकार नित्यानित्यत्व का। दृष्टान्त के लिये घट को ही ले लीजियेगा; यह अपने स्वरूप की दृष्टि से सत् है, यदि ऐसा न होता तो घट है ऐसा ज्ञान भी नहीं होना चाहिये था, घट घट है किन्तु कपड़ा नहीं अतः इसमें कपड़े का अभाव भी स्वीकार करना पड़ता है, और इसही लिये इसको कपड़े की दृष्टि से असत् भी स्वीकार किया जाता है। यदि वस्तु को अपने स्वरूप की दृष्टि से सत् और दूसरे के स्वरूप की दृष्टि से असत् स्वीकार नहीं किया जायगा तो किसी भी विशेष पदार्थ में प्रवृत्ति नहीं हो सकती +। जिस प्रकार अपने स्वरूप की दृष्टि से सत्व उसी पदार्थ का धर्म है, उसही प्रकार दूसरे पदार्थ की दृष्टि से असत्व भी। यदि ऐसा न होता तो उसमें इन दोनों बातों का व्यवहार भी नहीं हो सकता था; सत्व के समान असत्व का भी व्यवहार होता है, अतः पदार्थ को उस रूप भी माना जाता है।

पदार्थ को जिस दृष्टि से सत् स्वरूप माना जाता है उसही दृष्टि से यदि असत् स्वरूप माना जाता तब तो शङ्कर का कथन ठीक भी हो सकता था, किन्तु ऐसा है नहीं। यहाँ जिस दृष्टि से सत् स्वरूप माना गया है, उस दृष्टि से वह सत् ही है। इसही प्रकार जिस दृष्टि से असत् है उस दृष्टि से वह असत् ही है। अतः असंभवता की कोई बात ही नहीं रहती। यही बात नित्यानित्यत्व के सम्बन्ध में है। जिस दृष्टि से हम पदार्थ को नित्य स्वीकार करते हैं उससे वह नित्य ही है, इसही प्रकार जिससे पदार्थ को अनित्य माना जाता है, उसमें वह अनित्य ही है। यदि नित्य

‡ नायमभ्युपगमो युक्त इति। कुतः। एकस्मिन्न संभवात्। नह्येकस्मिन्धर्मिणि युगपत्सदसत्त्वादि विरुद्ध धर्म समावेशः संभवति शीतोष्णवत्। य एते सप्तपदार्थाः निर्धारिता एतावन्त एवं रूपाश्चेति ते तथैव वा स्युर्नैव वा तथा स्युः। इतरथा हि तथा वा स्युर तथा वेत्यनिर्धारित रूप ज्ञानं संशय ज्ञानवद् प्रमाणमेव स्यात्।

—वेदान्तसूत्र शङ्करभाष्य अ० २ सूत्र ३३।

+ स्वरूपादिभिरिव पररूपादिभिरपि वस्तुनोऽसत्वानिष्टौ प्रतिनियत स्वरूपाभावाद्वस्तु प्रतिनियम विरोधात्।

—अष्टसहस्री पे० १२६।

वाली दृष्टि से अनित्य और अनित्य वाली दृष्टि से नित्य माना जाता तब तो यहाँ असंभवता का स्थान हो सकता था। पदार्थ में सत्व और असत्व की तरह नित्यानित्यत्व भी स्पष्ट झलकते हैं। कोई भी पदार्थ किसी भी साधन से नष्ट नहीं किया जा सकता, बड़े २ वैज्ञानिकों ने इसके सम्बन्ध में परीक्षण किये हैं, किन्तु फिर भी वे इस कार्य में असफल ही रहे हैं, अतः पदार्थ की नित्यता तो निःसन्देह है, किन्तु यह मूल पदार्थ की ही दृष्टि से, नकि उसकी अवस्थाओं की दृष्टि से; अवस्थाओं में तो परिवर्तन होते ही रहते हैं। अतः पदार्थ को द्रव्य की दृष्टि से नित्य और पर्याय की दृष्टि से अनित्य माना जाता है। ये दोनों ही बातें पदार्थ में हो हैं, अतः पदार्थ हो नित्यानित्यात्मक हैं।

आचार्य समंतभद्र ने इसही बात को एक सुवर्ण के दृष्टान्त के द्वारा वर्णन किया है*। आपका कहना है कि तीन मनुष्य थे, इनमें से एक टूटे सोने को चाहता था, दूसरा सोने के घड़े को, और तीसरा सिर्फ सोने को। अपने इच्छित पदार्थ की खोज में ये तीनों ही निकले और एक दरबार में पहुँचे। यहाँ एक सोने का घड़ा रक्खा हुआ था, किन्तु इन तीनों के पहुँचते ही कुछ ऐसी घटना हुई जिससे वह टूट गया। ज्यों ही घड़ा टूटा, इन तीनों ही व्यक्तियों को तीन प्रकार के विचार हुये। जिसको सुवर्ण घट की आवश्यकता थी, उसको दुःख हुआ, जो सुवर्ण के टुकड़े चाहता था वह सुखी हुआ, और जो सुवर्ण चाहता था, वह न सुखी हुआ और न दुःखी। इन तीनों मनुष्यों के भाव निष्कारण नहीं, अतः उस सुवर्ण पिण्ड में तीन प्रकार की बात माननी पड़ती है, सुवर्णरूप में नित्यता, घट रूपमें नाश और टुकड़े रूपमें उत्पाद। घट का नाश और टुकड़ों का उत्पाद भिन्न २ बातें नहीं, अतः इन तीनों ही बातों को एक समय में ही मानना पड़ता है। जिस प्रकार यह पदार्थ सुवर्ण रूप से ध्रुव रहता है, और दूसरी दृष्टियों से कार्य—इसही प्रकार संसार के अन्य पदार्थ भी। अतः पदार्थों का नित्यानित्यत्व किसी भी प्रकार असम्भव नहीं माना जा सकता, यही बात दूसरे प्रकार के धर्मों के सम्बन्ध में है।

इनके सम्बन्ध में एक बात यह भी विचारणीय है कि इस प्रकार के धर्मों का अस्तित्व एक पदार्थ में असम्भव क्यों समझा जाय? खर विषाण के समान तुच्छ स्वरूप होने से या परस्पर में विरोध से, जहां तक पहिली बात का सम्बन्ध है, इसको तो स्वामी शङ्कराचार्य भी नहीं मानते। अतः इनके सम्बन्ध में दूसरी बात ही विचारणीय रह जाती है, परस्पर विरोध के सम्बन्ध में पहिली बात तो यह है कि वह इनके सम्बन्ध में घटित नहीं होता, विरोध तो उन पदार्थों में होता है, जिनका एक स्थान पर अस्तित्व न रहता हो, इन धर्मों का तो एक पदार्थ में अस्तित्व है, अतः यहां तो विरोध की गुंजायश नहीं। दूसरी बात यह है कि यदि विरोध माना भी जाय तो वह कौनसा माना जाय?

विरोध के तीन प्रकार हैं—एक परस्पर परिहार

* घटमौलि सुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम्। शोक प्रमोद माध्यस्थं जनो याति सहेतुकम्।

—आप्तमीमांसा ५९

स्थिति लक्षण, दूसरा सहानवस्थान और तीसरा वध्यघातक—इन धर्मों का परस्पर परिहार स्थिति लक्षण विरोध मानने से तो इन दोनों का एक जगह अस्तित्व ही सिद्ध होगा, क्योंकि यह आम्रफल में रूप और रस की तरह विद्यमान दो धर्मों का ही होना है, इसमें तो बात केवल इतनी ही है कि एक धर्म दूसरे धर्म रूप नहीं हो जाता, नकि यह कि ये धर्म एक स्थान पर नहीं रहते। अतः इनके मानने से तो कोई लाभ नहीं होसकता।

वध्यघातक विरोध भी यहां घटित नहीं होता, यह तो सर्प और नौले की तरह निर्बल और सबल का हुआ करता है। प्रस्तुत दोनों धर्मों में इस बात का अभाव है। अतः यहाँ इस विरोध को भी स्थान नहीं। सहानव स्थान विरोध से तात्पर्य एक स्थान पर दो या अधिक के न रहने से है। यदि प्रस्तुत धर्म भी—सदसद् नित्यानित्य—एक पदार्थ में न रहते होते तब ही इस बात की आशंका हो सकती थी। इन धर्मों का एक ही पदार्थ में सद्भाव हम पूर्व ही प्रमाणित कर चुके हैं, अतः इन धर्मों के सम्बन्ध में इस विरोध का भी स्थान नहीं है।

विरोध के अभाव में इस दृष्टि से भी असंभवता की बात उपस्थित नहीं होती है, अतः स्पष्ट है कि अनेकान्त के सम्बन्ध में शङ्कर की इस आपत्ति में कुछ भी तथ्य नहीं है।

संशय वहां होता है जहां दो धर्मों या दो पदार्थों में से किसी एक के भी सम्बन्ध में निश्चय न हो, किन्तु यहाँ इस प्रकार की परिस्थिति नहीं है। यहां तो दोनों ही बातों का निश्चय है। एक दृष्टि से पदार्थ के सत् का और दूसरी दृष्टि से उसके असत् का, इसही प्रकार नित्यानित्यत्व का। यहां तो इस प्रकार की प्रतीति होती है कि पदार्थ सत् भी है और असत् भी है, किन्तु संशय इससे विपरीत हुआ करती है, संशय में तो इस ढङ्ग की प्रतीति होती है कि पदार्थ सत् है या असत् है। पदार्थ सत् भी है, और असत् भी है और पदार्थ सत् है या असत् इन दोनों प्रतीतियों में महान अन्तर है—पहिली निश्चय रूप हैं और दूसरी अनिश्चय। अतः अनेकान्त के सम्बन्ध में शङ्कर की संशयवाली आपत्ति भी मिथ्या है।

स्वामी शंकराचार्य के अतिरिक्त अन्य विद्वानों ने भी इसके सम्बन्ध में आपत्तियां उपस्थित की हैं। इन सबकी आपत्तियों को यदि संग्रह रूपसे कहें तो यों कहना चाहिये कि अनेकान्त विरोधी विद्वानों ने इसके सम्बन्ध में निम्नलिखित दूषण उपस्थित किये हैं:—

(१) संशय (२) विरोध (३) व्यतिकर (४) शङ्कर (५) वैय्यधिकरण (६) उभयदोष (७) अनवस्था (८) अभाव।

इनमें से पहिले दो के सम्बन्ध में तो हम शङ्कर के मत का उल्लेख करते समय प्रकाश डाल चुके हैं।

व्यतिकर से तात्पर्य एक दूसरे का एक दूसरे में चला जाना है, कहा भी जाया करता है कि तुम पर मेरी वस्तु चली गई है और मुझ पर तुम्हारी आगई है। अनेक धर्मात्मक वस्तु के अनेक धर्मों में यदि इस प्रकार का आदान प्रदान होता, एक धर्म की बातें दूसरे में और दूसरे की उसमें आ जाती होतीं, तब तो प्रस्तुत तत्त्व में इस दूषण की सम्भावना की जा सकती थी।

अनेकान्त अनेक धर्मों का समुदाय स्वरूप है, किन्तु उसके सम्पूर्ण धर्म अपने २ रूप में ही रहते हैं, एक दूसरे में एक दूसरे का गमनागमन नहीं होता, स्वयं गुण को तो निर्गुण माना गया है, अतः प्रगट है कि अनेकान्त के सम्बन्ध में व्यतिकर की बात बिलकुल मिथ्या है। यही बात शंकर के सम्बन्ध में है, शंकर दोष की संभावना भी उसही समय हो सकती थी, जबकि सब धर्म एक रूप हो जाते होते। नित्यानित्यत्व और सदासत् आदि में कोई अन्तर ही न रहता होता।

व्यतिकर की समीक्षा करते हुये हम स्पष्ट कर चुके हैं कि अनेकान्त का हर एक धर्म अपने रूप में ही रहता है। ऐसी परिस्थिति में यह बात कैसे मानी जा सकती है कि इन सब धर्मों का एकीकरण भी हो जाया करता है। अतः शंकर की बाधा भी निराधार है। पदार्थ को अनेक धर्मात्मक मान कर भी धर्मों का यदि भिन्नाधार स्वीकार किया गया होता तब तो यह दूषण आसकता था। यहां तो सब धर्मों का एक ही आधार है, अतः वैयधिकरण की बात भी मिथ्या है।

निरपेक्षसत्व को और असत्व को या भेद और अभेद को स्वीकार नहीं किया गया, और न ऐसी प्रतीति ही होती है। अतः निरपेक्षसत्व और असत्व के पक्ष में जो दूषण आ सकते थे उनको यहां स्थान नहीं है। अतः अनेकान्त के सम्बन्ध में उभय दोष की बात भी मिथ्या है।

जिस दृष्टि से धर्मों में भेद माना जाता है उसही दृष्टि से यदि अभेद भी माना जाता और इसही प्रकार अभेद वाली दृष्टि से भेद भी, तब तो कहीं भी रुकावट नहीं आ सकती थी और इस प्रकार अनवस्था दूषण आ सकता था, किन्तु वस्तु स्थिति इससे विपरीत है। यहाँ तो जिस दृष्टि से भेद है उससे भेद ही है, इसही प्रकार जिससे अभेद है उससे अभेद ही है। यहां तो अनवस्था की कल्पना को ही स्थान नहीं है, अतः इसके सम्बन्ध में अनवस्था दूषण की बात भी मिथ्या है।

अनेकान्त के सम्बन्ध में ये सब दूषण घटित हो जाते तब यह बात कही जा सकती थी कि अनेकान्त ठीक नहीं बैठता, अतः इसका अभाव ही मानना चाहिये। किन्तु परिस्थिति बिलकुल विपरीत है। यहां तो एक भी दूषण तथ्यपूर्ण प्रमाणित नहीं हुआ है और इसकी प्रतीति निर्बाधित हो रही है, अतः इसके सम्बन्ध में अभाव की बात भी मिथ्या है। इन सब बातों के बल पर यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि जिसने भी अनेकान्त के खण्डन के लिये प्रयत्न किया है वह ही इसमें असफल रहा है।

स्याद्वाद

वस्तु अनेक धर्मात्मक है, यह तो अब एक स्वयं सिद्ध बात है; इस अनेकात्मक वस्तु का किसी धर्म विशेष की दृष्टि से कथन करना स्याद्वाद है। दृष्टान्त के लिये यों समझियेगा कि एक मनुष्य है जो चाचा, मामा, पिता और भाई आदि है, किन्तु फिर भी उसको किसी खास समय किसी सम्बन्ध विशेष से ही पुकारा जाता है। उसका भानजा ही उसको मामा कह सकता है, या यों कहियेगा कि भानजे के सम्बन्ध से वह मामा है, इस ही प्रकार पुत्र के सम्बन्ध से पिता, पिता के सम्बन्ध से पुत्र, और भतीजे के सम्बन्ध से वह चाचा है। यदि किसी समय इसको पिता, चाचा, मामा और

भाई, इनमें से किसी एक नाम से पुकारा जाता है तो इसका यह तात्पर्य होता है कि उसमें अनेक सम्बन्ध हैं, किन्तु फिर भी उसको अमुक सम्बन्ध की दृष्टि से ही उल्लेख किया जा रहा है। इस ही का नाम स्यात् (दृष्टि विशेष से) वाद (कथन करना) स्याद्वाद है। यही बात जगत के सम्पूर्ण पदार्थों में घटित करनी चाहिये। जगत में जब २ जिस २ पदार्थ को खास २ धर्म की दृष्टि से वर्णन किया जाता है वह सब स्याद्वाद है। सिद्धात्मा को मुक्त, पुद्गल को मूर्त, आत्मा को चेतन, वस्तु को सत्, किसी को छोटा, किसी को बड़ा, किसी को ज्ञानवान, किसी को धनवान, किसी को निर्धन, किसी को जाता, किसी को आता, किसी को रूपवान, किसी को बदसूरत आदि जितने भी वर्णन किये जाते हैं ये सब किसी न किसी खास गुण की दृष्टि से हैं। अतः यह सब कथन स्याद्वाद है। दृष्टि विशेष को छोड़ दिया जाय और इस प्रकार के कथनों को एकान्ततः समझ लिया जाय तो फिर वस्तु का यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता। सिद्धात्मा ही है, इसही को यदि एकान्ततः मुक्त मान लिया जाय तो फिर इनको ज्ञान से भी मुक्त मानना पड़ेगा, और ऐसा करने पर मुक्त और संसारीपने की बात तो दूर रही, वह आत्मा ही न रह सकेगी। अतः इसको किसी दृष्टि विशेष से ही मुक्त मानना पड़ता है। इस ही को यदि ज्ञान की दृष्टि से देखा जाय तो यही अमुक्त है। इसही प्रकार पुद्गल को भी केवल रूपादि की दृष्टि से मूर्त बतलाया जाता है, उसमें अन्य ऐसे भी गुण हैं जो इस प्रकार के नहीं हैं। अतः यदि इसको दूसरी दृष्टि से विवेचन किया जाय तो फिर इसको मूर्त नहीं कह सकते। इसही प्रकार शेष बातों के सम्बन्ध में घटित कर लेना चाहिये। इसही दृष्टि विशेष को व्यक्त करने के लिये शब्द के साथ कथंचित शब्द का प्रयोग किया जाता है। कहीं इस प्रकार के शब्द का प्रयोग भी नहीं होता, किन्तु फिर भी उससे दृष्टि विशेष को दूर नहीं किया जा सकता। सूक्ष्म रीति से पर्यालोकन से तो प्रत्येक शब्द ही इस ढङ्ग का प्रतीत होता है। जितने भी संज्ञा शब्द हैं वे सब धातुओं से बने हैं, तथा क्रिया वाचक शब्द का नाम धातु है। क्रिया गुण में होती है, अतः संज्ञा शब्द भी गुण का ही कथन करेगा। इस दृष्टि से प्रत्येक शब्द ही स्याद्वाद रूप ठहरता है। ऐसी अवस्था में यदि किसी शब्द के साथ कथंचित शब्द का प्रयोग न किया जाय तब भी यह दृष्टि स्वयं समझ लेना चाहिये।

सप्तभंगी

वस्तु में परस्पर विरोधी दो धर्मों की दृष्टि से, अस्ति, नास्ति, उभय, अनुभय, अस्ति अनुभय, नास्तिअनुभय, और अस्तिनास्ति अनुभय ये सात धर्म हैं। सिद्धात्मा कर्मों से रहित है, अतः वह मुक्त है। यही सिद्धात्मा ज्ञानादिक गुणों से सहित है अतः अमुक्त भी है। जिस समय मुक्त है, उसही समय अमुक्त भी है क्योंकि इसकी कर्म रहित अवस्था और ज्ञान सहित अवस्था में समय भेद नहीं है। यह तो हर समय उभयरूप है।

मुक्त और अमुक्त सिद्धात्मा को एक साथ नहीं कह सकते, जब मुक्त कहेंगे तब अमुक्त अंश छूट जाता है और जब अमुक्त कहते हैं, तब मुक्तांश छूट जाता है। ऐसा कोई भी उपाय नहीं जिससे इसको एक साथ उभयरूप कहा जासके। अतः यह

इस दृष्टि से अवक्तव्य है *। इसही प्रकार अवक्तव्य के समय अमुक्त भी है। अतः यह अमुक्त और अवक्तव्य भी है। इसकी अवक्तव्य अवस्था में इसको मुक्त और अमुक्तत्व भी रहता है। अतः यह उभय और अनुभय दोनों रूप भी है।

इसही प्रकार नित्यानित्य, भिन्नाभिन्न, एकानेक और सदासत आदि में घटित कर लेना चाहिये। इसी प्रकार इनसे अधिक धर्मों का अस्तित्व ठीक नहीं बैठता, अतः वस्तु में किसी भी बात के विधि प्रतिषेध रूपसे इस प्रकार सात ही धर्म माने गये हैं, यह सातों ही बातें किसी न किसी दृष्टि से ही हैं। अतः इनके वर्णन का नाम भी स्याद्वाद है। ये सात हैं अतः इनके वर्णन के स्याद्वाद भी सात ही हो सकते हैं। इनहो सात स्याद्वादों का नाम सप्तभंगी है। यदि इसही को दूसरे शब्दों में कहना चाहें तो यों कह सकते हैं कि इस प्रकार के सात स्याद्वाद या सप्तभंगी एक ही बात है। इसके दो भेद हैं—एक प्रमाण सप्तभंगी और दूसरा नय सप्तभंगी, जहाँ एक गुण के द्वारा सम्पूर्ण वस्तु का कथन किया जाता है, वहाँ प्रमाण सप्तभंगी होती है; जैसे वस्तु सत् है, वस्तुमें अनेक गुण हैं, या यों कहियेगा कि अनेक गुणों का समुदाय ही वस्तु है, इनही में से एक गुण सत् भी है।

जब सत् गुण के द्वारा उससे अभिन्न देश समस्त समुदाय का कथन किया जाता है और इसके आधार से विधि प्रतिषेध स्वरूप सप्तभंगी की कल्पना होती है, उस समय यह प्रमाण सप्तभंगी कहलाता है।

जिस समय किसी गुण विशेष के द्वारा उसही गुण का कथन किया जाता है, उस समय नय सप्तभंगी कहलाती है। जैसे वस्तु में सत् है। यहाँ सत् से तात्पर्य वस्तु से नहीं है। किन्तु वस्तु के एक गुण से है। अतः यह उससे भिन्न है। इसके आधार से जो सप्तभंगी की कल्पना होती है वह नय सप्तभंगी कहलाती है।

इसही को दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि जिस सप्तभंग का आधार प्रमाण ज्ञान है, वह प्रमाण सप्तभंगी है, और जिसका आधार नय ज्ञान है—वह नय सप्तभंगी है।

इससे प्रगट है कि स्याद्वाद और सप्तभंगी में अंश और अंशी का सम्बन्ध है। स्याद्वाद अंश है और सप्तभंगी अंशी है। स्याद्वाद और सप्तभंगी ये शब्दरूप हैं। अतः वाचक है। अनेकान्त पदार्थ स्वरूप है, अतः वाच्य है। अतः स्याद्वाद, सप्तभंगी और अनेकान्त में वाच्य वाचक का सम्बन्ध है।

स्याद्वाद और स्वामी दयानन्द

किसी भी विषय पर आपत्ति करना कोई हानि की बात नहीं, किन्तु उसको बिना समझे उस पर लेखनी चला देना लेखनी का दुरुपयोग है। स्वामी दयानन्द की स्याद्वाद विषयक आपत्ति इसही ढंग की है। प्रथम तो स्याद्वाद पर आपत्ति उपस्थित करना ही व्यर्थ है, क्योंकि स्याद्वाद शब्द स्वरूप है तथा शब्द के सम्बन्ध में आपत्ति से कुछ लाभ हो नहीं सकता, आपत्ति तो स्याद्वाद के वाच्य अनेकान्त पर उठानी थी। यदि अनेकान्त खण्डित है तो स्याद्वाद स्वयं खण्डित हो जाता है और यदि अनेकान्त अखण्डित है तो

* जिस समय अवक्तव्य है उसही समय मुक्त भी, अतः यह अवक्तव्य और मुक्त भी है।

फिर स्याद्वाद का कोई बाल भी बांका नहीं कर सकता। यदि थोड़ी देर के लिए इस बात को भी छोड़ दिया जाय और स्याद्वाद को ही बाधा का स्थान समझ लिया जाय तब भी यह तो हर हालत में मानना ही होगा कि इस पर आपत्ति उपस्थित करने से पूर्व इसको समझ लेना अनिवार्य है। स्वामी दयानन्द ने स्याद्वाद नहीं समझा, इसके समर्थन में हम उनके ही वाक्य जिनको उन्हों ने सत्यार्थप्रकाश में स्याद्वाद के पूर्वपक्ष के रूप में लिखा है उपस्थित करते हैं :—

"अब जो बौद्ध और जैनी लोग सप्तभंगी और स्याद्वाद मानते हैं सो यह है कि "सन् घटः" इसको प्रथम भंग कहते हैं, क्योंकि यह घट अपनी वर्तमानता से युक्त अर्थात् घड़ा है, इसने अभाव का विरोध किया है। दूसरा भङ्ग "असन् घटः" घड़ा नहीं है। प्रथम घड़े के भाव से इस घड़े के असद्भावसे दूसरा भङ्ग है। तीसरा भङ्ग यह है कि 'सन्नसन्न घटः' अर्थात् यह घड़ा तो है किन्तु पट नहीं, क्योंकि उन दोनों से पृथक होगया। चौथा भंग "घटोऽघटः" जैसे "अघटः पटः" दूसरे पट के अभाव की अपेक्षा अपने में होने से घट अघट कहाता है युगपद् उसकी दो संज्ञा अर्थात् घट और अघट भी है। पाँचवाँ भंग यह है कि घट को पट कहना अयोग्य अर्थात् उसमें घटपन वक्तव्य है और पटपन अवक्तव्य है। छठा भंग यह है कि जो घट नहीं है वह कहने योग्य भी नहीं और जो है वह है और कहने योग्य भी है और सातवां भंग यह है कि जो कहने को इष्ट है परन्तु वह नहीं है और कहने के योग्य भी घट नहीं, यह सप्तम भंग कहाता है" *।

इससे विद्वान पाठक समझ गये होंगे कि अभी स्वा० दयानन्द स्याद्वाद से कितने दूर थे। अभी उनको स्याद्वाद समझने के लिए कितने परिश्रम की आवश्यक्ता थी। इसके दो ही कारण हो सकते हैं—एक स्वामी दयानन्द के दार्शनिक ज्ञान की निर्बलता और दूसरा उनको स्याद्वाद विषयक साहित्य का न मिलना। कुछ भी सही, यह तो निश्चित है कि स्वामीजी ने बिना समझे ही इस पर लेखनी चलादी है। स्वामी जी के अनुयायी आर्य-समाजियों का कर्तव्य है कि वे स्वामी जी की इस त्रुटि को शीघ्र दूर करदें, अन्यथा जब तक यह सत्यार्थप्रकाश में रहेगी तब तक स्वामी जी का दार्शनिक ज्ञान दार्शनिक संसार के उपहास का ही कारण बना रहेगा।

स्वामी जी ने सप्तभंगी का जिस रूपसे प्रतिपादन किया है वह सोलह आने मिथ्या है। जैन दर्शन इस रूपसे सप्तभंगी को नहीं मानता। जैन दर्शन यह नहीं बतलाता कि प्रथम घट के भाव से इस घड़े के असद्भाव से दूसरा भंग है, तीसरा भंग यह है कि सन्नसन्न घटः अर्थात् यह घड़ा तो है किन्तु पट नहीं है, क्योंकि उन दोनों से पृथक हो गया और चौथा भंग घटोऽघटः जैसे अघट पट दूसरे पट के अभाव की अपेक्षा अपने में होने से घट अघट कहाता है युगपत् उसकी दो संज्ञा अर्थात् घट और अघट भी है.........आदि सप्तभंगी का स्वरूप है। स्याद्वाद और सप्तभंगी का वास्तविक

* सत्यार्थप्रकाश, एडीशन १६, समुल्लास १२, पृष्ट ४३९।

स्वरूप क्या है, इसको हम पूर्व ही बतला चुके हैं। अतः वहीं से देख लेना चाहिये।

जहाँ तक स्वामी जी के स्याद्वाद खण्डन के समाधान का प्रश्न है वहाँ तक तो इसके सम्बन्ध में एक शब्द भी लिखना व्यर्थ है। जो जिस को समझा ही नहीं है वह उसका खण्डन ही क्या कर सकता है। स्वामी जी ने स्याद्वाद के खण्डन के रूप में जो कुछ भी लिखा है वह तो केवल उनके स्याद्वाद विषयक मिथ्याज्ञान का ही खण्डन है न कि स्याद्वाद सिद्धान्त का। फिर भी स्वामी जी के स्याद्वाद समीक्षा विषयक कुछ वाक्य बड़े ही मनोरंजक हैं। स्वामी जी ने लिखा है कि "यह कथन एक अन्योन्याभाव में साधर्म्य और वैधर्म्य से चरितार्थ हो सकता था। इस सरल प्रकरण को छोड़ कर कठिन जाल रचना केवल अज्ञानियों के फंसाने के लिए होता है"।

इससे एक बात तो यह निकलती है कि स्वामी जी ने स्याद्वाद के विशेष विवेचन की तरह उसके शब्दार्थ के समझने की भूल की है। यदि ऐसा होता तो वह इसही पर आपत्ति उपस्थित करते न कि वस्तु स्वरूप पर। स्याद्वाद वस्तु स्वरूप नहीं किन्तु उसके कथन की एक प्रणाली विशेष है।

दूसरी यह है कि भले ही वह स्याद्वाद को न समझे हों, किंतु फिर भी उन्होंने इसका खंडन योग्य नहीं पाया। स्याद्वाद को तो उन्होंने माना है केवल इसका अन्तर्भाव अन्योन्याभाव में बतलाया है।

स्याद्वाद अन्योन्याभाव में आता है या नहीं, इसके सम्बन्ध में तो इतना ही लिख देना पर्याप्त होगा कि स्याद्वाद शब्द स्वरूप है और अन्योन्याभाव दो पदार्थों का एक दूसरे में अभाव; इनका एकीकरण कैसे हो सकता है।

इसही को यदि स्याद्वाद के वाच्य के पक्ष में घटित किया जायगा तब तो यह अनेकान्तात्मकत्व का समर्थक ही ठहरेगा। घट में पट का अभाव है, इसको अन्योन्याभाव कहते हैं। किंतु यही—घट में पटाभाव—घट का स्वभाव ही ठहरता है, क्योंकि अभाव भी तो दूसरे भावरूप ही हुआ करता है। यदि अभाव को शून्य रूप माना जायगा तब तो घट में पटाभाव की प्रतीति ही असंभव हो जायगी। इससे प्रगट है कि स्वामी जी भी स्याद्वाद के असफल समीक्षकों में से एक हैं। अब स्वामी जी के ही भक्त बतलावें कि स्याद्वाद का विवेचन अज्ञानियों के फंसाने के लिए है या उसके निराकरण की चेष्टा। इस बात का निर्णय हम उनपर ही छोड़ते हैं।

नय और प्रमाण

जिन गुणों का समुदाय आत्म द्रव्य है उनमें से एक चैतन्यगुण भी है। अन्यगुणों की भांति इसमें भी प्रति समय परिणमन होता रहता है। चैतन्य के इस परिणमन का नाम उपयोग है। इसके दो भेद हैं—एक साकारोपयोग और दूसरा निराकारोपयोग। जिसमें अपने अतिरिक्त अन्य पदार्थ भी प्रतिभासित हों उसको साकारोपयोग कहते हैं; इसही प्रकार जिसमें केवल अपना ही प्रतिभास होता हो उसको निराकारोपयोग कहते हैं। साकारोपयोग का दूसरा नाम ज्ञान और निराकारोपयोग का दूसरा नाम दर्शन है।

पदार्थ अनेक धर्मात्मक हैं, इसका विवेचन हम अनेकान्त के प्रकरण में कर चुके हैं, अतः यह समु-

दाय या अंश दोनों ही प्रकार से ज्ञान में प्रतिभासित हो सकता है। जब ज्ञान में पदार्थ पूर्ण रूप से प्रतिभासित होता है उस ज्ञान को प्रमाण ज्ञान कहते हैं। इसके विपरीत जब आँशिक रूपसे प्रतिभासित होता है उस समय उसको नय कहते हैं। इसही को दूसरे ढङ्ग से कहें तो यों कह सकते हैं कि वस्तु के एक देश को जानना नय है और उसके सकलदेश को जानना प्रमाण है। इससे प्रगट है कि दृष्टि विशेष से वस्तु के ज्ञान को नय ज्ञान कहते हैं और दृष्टि निरपेक्ष वस्तु के ज्ञानको प्रमाण ज्ञान कहते हैं।

नय के उतने ही भेद हैं जितनी कि दृष्टियाँ हैं या जितनी दृष्टियों से पदार्थ को जान सकते हैं उतने ही नयके भेद हैं, किन्तु फिर शास्त्रकारों ने इनको दो, तीन और सात आदि भेदों में विभक्त किया है। इसही प्रकार प्रमाणके भी अनेक भेदोपभेद हैं। इनमें प्रत्यक्ष और परोक्ष ये दो मुख्य हैं। इनके उत्तरोत्तर अनेक भेद हैं। नय न प्रमाण है और न अप्रमाण, क्योंकि यह न परपदार्थ को ग्रहण करती है और न मिथ्या प्रतीति ही है, किन्तु पदार्थ के एक देश को ग्रहण करती है। अतः यह प्रमाण का एक देश है। यही नय और प्रमाण का पारस्परिक सम्बन्ध है। जिस प्रकार अनेकान्त और स्याद्वाद का वाच्यवाचक संबन्ध है, उसही प्रकार अनेकान्त और नय प्रमाण का ज्ञान ज्ञेय सम्बन्ध है। नय और प्रमाण ज्ञानस्वरूप है और अनेकान्त ज्ञेयस्वरूप है—अनेकान्त जाना जाता है और नयप्रमाण जानते हैं।

इस प्रकार इन पाँचों में से अनेकान्त ज्ञेय और वाच्य है। स्याद्वाद और सप्तभंगी वाचक है और नय प्रमाण ज्ञानस्वरूप हैं।

जैनागम का अलंकार (स्याद्वाद)

[१]

विविध—विरोधाक्रान्त—विश्वको बतलाया सद्‌ज्ञान।
इससे पाया युक्तिवाद ने लोकोत्तर—सन्मान॥

[२]

सम्प्रदायिता के विष को—
कर दूर, सुधा बरषाया।
दुखाकुल—संसृति के
जीवों को सन्मार्ग दिखाया॥

[३]

आग्रह का कर अंत,
समन्वित करके सब राद्धान्त।
सार्वधर्म बन गया विश्व में,
स्याद्वाद सिद्धान्त॥

[४]

वाङ्मय—निखिल बिना जिसके—कहलाता मिथ्याज्ञान।
जिसके बिना पदार्थ मर्म का नहिं हो सकता भान॥

[५]

निष्कलंक जैनागमका जो,
अलङ्कार कहलाता।
विविध—विरोध अवस्कर
जिसकी धारा में बह जाता॥

[६]

जिसका पुण्य—पियूष शान्ति का—
दान हमें करता है।
आत्मिक ज्वाला जाल जलाकर,
जीवन रस भरता है॥

[७]

आत्म—राज्य के विकट मार्ग को, दिशा सदा बतलाता।
इसीलिए ऋषि तपोधनों को इसका तथ्य सुहाता॥

[८]

क्रिया—काड आचार ज्ञान सब—
तब तक निष्फल होना।
जबतक स्याद्वाद—सिन्धु का,
बहता विमल न सोना।

[९]

ब्राह्मण*, वेद ‡—चतुष्टय में औ,
आरण्यक × में मिलते।
स्याद्वाद के पावन दर्शन,
इस बिना तत्व न खिलते॥

[१०]

कपिल कणाद अक्षपादादिक व्यास जैमिनी सारे।
इसका कर उपयोग विजेता बन सकते, नहीं हारे॥

—श्री प्रकाश जैन।

---

* ऐतरेय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण, ताण्ड्यब्राह्मण और गोपथब्राह्मण।

‡ ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। × ऐतरायारण्यक और तैतरेयारण्यक।

स्याद्वाद और अनेकान्त

[ले०—श्रीमान् तर्करत्न पं० माणिकचन्द्र जी न्यायाचार्य]

मुमुक्षु जीवों को आराधने योग्य और सम्यग्ज्ञान का अनन्तवां भाग श्रुतज्ञान है। श्रुतज्ञान में भी अनभिलाप्य ज्ञान का अनन्तवां भाग शब्द द्वारा प्रतिपाद्य होता है। क्षपकश्रेणी में कर्मों का समूल चूल नाश करने में जो शुक्ल ध्यान होता है, वह श्रुतज्ञान की ही अंश उपांशों को जानने वाली पर्यायों का पिंड है। मति, अवधि और मनः पर्ययज्ञान कर्मक्षय करने में समर्थ कारण नहीं हैं। हां! श्रुतज्ञानरूप सहस्रधार खड्ग ही घाति कर्मशत्रुओं का नाश कर कैवल्य साम्राज्य लक्ष्मी का अव्यवहितरूप से सम्पादन करता है।

इसही कारण नय, उपनय, स्याद्वाद, अनेकान्त-पद्धति, सप्तभंगी आदि द्वारा श्रुतज्ञान की आराधना करना मोक्षपुरुषार्थ का बीज है। श्रुतज्ञान अंशी होकर प्रमाण है। नय, उपनय ये श्रुतज्ञान के अंश हैं।

वस्तु के कतिपय धर्मों को शब्द द्वारा समझने समझाने वाले प्रतिपाद्य, प्रतिपादकों के ज्ञान का बीज स्याद्वाद वाङ्मय है। स्याद्वाद और अनेकान्त का इतिहास अनादि है। एकान्तों पर इनकी दिग्विजय भी सनातन है। अनेकान्त का क्षेत्र व्यापक है जबकि स्याद्वाद का प्रतिपाद्य विषय व्याप्य है। अर्थात् बहुभाग अनन्तानंत अनेकान्तों में संख्यात संख्या वाले शब्दात्मक स्याद्वादों की प्रवृत्ति नहीं भी है। अनेकान्त वाच्य है, स्याद्वाद वाचक है। इनका कर्णधार श्रुतज्ञान है। भव्य मुमुक्षु सम्यग्ज्ञानी आत्मा इन धर्म वैभिव्यों और विविध वचन कलाओं का प्रभु है। अनन्त धर्मों का अविष्वग्भाव पिण्ड हो रही वस्तु के अनुजीवी गुण, प्रतिजीवीगुण, आपेक्षिकधर्म, पर्याय शक्तियां, एवं पर्याय, अविभाग प्रतिच्छेद, सप्तभंगी विषय नाना स्वभाव आदि अनेक वृत्तिमान् धर्मों को अनेकान्त कहते हैं। एक वस्तु में विरोध रहित अनेक विधि, निषेधों की कल्पना करना सप्तभंगी है।

वस्तु के स्वभाव हो रहे भाव और अभाव ये दो धर्म ही शेष पाँच भङ्गों के व्यवस्थापक हो जाते हैं। सर्वत्र अनेकान्त का साम्राज्य है। किन्तु स्याद्वाद प्रक्रिया आपेक्षिक धर्मों में प्रवर्तती है। अनुजीवी गुणों में नहीं। पुद्गल रूपवान् है, आत्मा ज्ञानवान है, मोक्ष में अनन्तसुख है। ऐसे स्थलों पर सप्तभंगी का प्रयोग करना अनुचित है। सम्यक् एकान्त तथा मिथ्या एकान्त और सम्यक् अनेकान्त तथा मिथ्या अनेकान्त के समान सप्तभंगी के भी समीचीन सप्तभंगी और मिथ्या सप्तभङ्गी ये दो भेद होते हैं।

स्यात् के साथ अवधारण करने वाला एवकार भी लगा हुआ है।

अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावों से घट को अस्ति कहते हैं। उसी समय पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावों करके घट का नास्तित्व भी प्रस्तुत है।

अनुजीवी, प्रतिजीवी हो रहे भाव, अभाव

दोनों का बल समान है। यदि भाव पक्ष को सामर्थ्यशाली और अभावपक्ष को निर्बल माना जायगा तो निर्बल द्वारा बलवान की हत्या करने पर साङ्कर्य दोष हो जाने के कारण वस्तु स्वयं का भी रक्षण नहीं रख सकेगी। शनैः शनैः भोजन करने पर मध्य में अदर्शन और अरसन के व्यवधान पड़ रहे जाने जा रहे हैं। भोज्य से अतिरिक्त व्यञ्जनों का अरसन भी तत्कालीन व्यवहृत हो रहा है।

गोल पंक्ति में लिखे हुए अक्षरों के ऊपर छेदों की गोल पंक्ति वाली चालनी के रख देने पर व्यवहित हो रहे अक्षर नहीं बांचे जाते हैं। किन्तु उन अक्षरोंके ऊपर चलनीको शीघ्र घुमा देने या डुलादेने से वे अक्षर व्यक्त, अव्यक्त पढ़ लिये जाते हैं। यहां चलनी के घुमाने पर शुक्ल पत्र के ऊपर लिखे हुए काले अक्षरों की शीघ्र शीघ्र आभा पड़ जाने से पत्र की शुक्लता में कुछ कालापन और अक्षरों के कालेपन में भूरेपन की आभा पड़ जाती है। चक्र में अनेक लकीरों को कई रंगों से लम्बा खींचकर पुनः उसको शीघ्र घुमा देने पर आभाओं का साङ्कर्य निरखिये। साथ ही मध्य में रीते अन्तरालों को भी देखते जाइये। चौकी पर धरे हुए भूषण को देखते समय सिंह, सर्पादि का अभाव ही उसका निर्भय कर रहा है। अन्यथा सिंह, सर्प, विष आदि के सद्भाव की प्रतीति हो जाने पर भूषण, भोजनादि को छोड़कर हठा, वसपिना, तृष्णा पुरुष न जाने कहां भागता फिरेगा। यों जगत् के सभी व्यवहार लुप्त हो जायंगे, शून्यवाद छाजायेगा।

अतः भाव अभाव स्वभावों से गुम्फित हो रही वस्तु माननी पड़ती है। यों स्वकीय देश, देशान्श, गुण, गुणान्शों से अस्तित्व स्वरूप और अन्यदीय देश, देशांश, गुण, गुणान्शों करके नास्ति स्वरूप हो रहे पदार्थों में स्वभावभूत आपेक्षिक धर्मों और सप्तभंगी विषयक कल्पित धर्मों का अवलम्ब लेकर १ स्यादस्ति, २. स्यान्नास्ति, ३. स्यादवक्तव्य, ४. स्यादस्तिनास्ति, ५. स्यादस्त्यवक्तव्य, ६. स्यान्नास्त्यवक्तव्य, ७. स्यादस्तिनास्ति अवक्तव्य, ये सात वाक्य बना लिये जाते हैं।

यह अस्तित्वधर्म उस अस्तित्व से न्यारा है, जो कि अस्तित्व, वस्तुत्वादि छः सामान्य गुणों में अनुजीवी होकर पढ़ा गया है। अस्तित्व के समान नित्यत्व, एकत्व, महीयस्त्व, पृथुत्व आदि धर्मों का आलम्बन पाकर शब्द मुद्रा करके अगणनीय संख्यात सप्तभङ्गियां हो सकती हैं। और ज्ञानमुद्रा से अनन्ती सप्तभङ्गियाँ समझली जाती हैं।

सकलादेश और विकलादेश द्वारा प्रमाण सप्तभङ्गी और नय सप्तभङ्गी का प्ररूपण हो जाता है, यह स्याद्वाद का चमत्कार है। अब अनेकान्त के विवरण को यों परखिये—

पुद्गल में केवलज्ञान, या आकाश में रूप, अथवा मुक्त जीवों में मिथ्याज्ञान आदि स्थलों पर ही विरोध दोष माना जाता है। किन्तु अग्नि में शीतलता, जल में उष्णता, सूर्य का पश्चिम में उदय होना, विष भक्षण से आरोग्य होना, एक ज्ञान में प्रामाण्य और अप्रामाण्य दोनों का होना आदि विरोधी सारिखे दीख रहे विषयों में विरोध नहीं है। देखिये—

एक देवदत्त में पितापन, पुत्रपन, भानजापन, भतीजापन, भाईपन आदि धर्म अविरोध रूप से वर्त रहे हैं। संयोगसम्बन्ध से पर्वत में अग्नि है, किन्तु निष्ठत्व सम्बन्ध से अग्नि में वही॰

पर्यंत ठहरता है। स्वनिष्ठविषयिता निरूपित विषयता सम्बन्ध से अर्थ में ज्ञान निवास करता है, साथ ही स्वनिष्ठविषयता निरूपित विषयिता सम्बन्ध से ज्ञान में अर्थ ठहर जाता है। जन्यत्व-सम्बन्ध से बेटे का बाप है। उसी समय जनकत्व सम्बन्ध से बाप का बेटा है। समवाय सम्बन्ध से डालियाँ वृक्ष हैं, तद्वैव समवेतत्व सम्बन्ध से वृक्ष में डालियां हैं।

यों धर्मी का धर्म बन जाना और धर्म का धर्मी बन जाना जैन सिद्धान्त अनुसार कोई विरोध नहीं रखता है। अग्नि में दाहकत्व पाचकत्व, स्फोटकत्व, शोषकत्व, प्रकाशकत्व, धर्मों के साथ ही शैत्यसम्पादकत्व धर्म भी है। अग्नि से भुरसे हुए को अग्नि से ही सेंका जाता है। "विषस्य विष मौषधं" "गर्मी का इलाज गर्मी ही है" जल से सींचने पर तो घाव में चौगुनी दाह बढ़ती है। जलकी जमाई हुई बर्फ के टुकड़े २ में गर्मी घुसी हुई है, समुद्र में बड़वानल है।

एक कच्चे और पके चने या चावल में मध्य केन्द्र से लेकर ऊपर तक पचासों पर्तों तक न्यारे न्यारे अनेक स्वाद हैं। साथ हाथ की लाठी को मध्य में पकड़ कर बालक भी उठा सकता है। इसके अष्टमांश भाग को पकड़ कर युवा पुरुष उठा लेता है। किन्तु अन्तिम मात्र आधा इञ्च भाग को पकड़ कर तो कोई बड़ा पहलवान् भी नहीं उठा सकता। यहां लाठी के सर्व अवयवों में अनेक नाम पर्याय शक्ति के न्यारे न्यारे अनेक वस्तुभूत धर्म वर्त रहे मानने पड़ते हैं।

ढाई द्वीप में सभी क्षेत्रों की अपेक्षा सुदर्शन मेरु उत्तर दिशा में है। इस सिद्धान्तानुसार सूर्य का पश्चिम् में उदय होना अबला, बालक सभी समझ जाते हैं। अष्ट सहस्री में एक स्थान पर लिखा हुआ है कि—अनेक जीव विष की "मरण करा देना" शक्ति का ज्ञान रखते हुए भी उसकी कुष्ट दूर करने की शक्ति का परिज्ञान नहीं कर पाते हैं। एक लौकिक दृष्टांत है कि—"किसी प्रसिद्ध नगर में एक धुरन्धर वैद्य रहता था। वहां अनेक वैद्य, हकीमों, डाक्टरों से निराश होकर एक उदुंबर कुष्ट रोगी आया। धुरन्धर वैद्य महाराज प्रत्येक रोगी को देखकर औषधि का परचा लिख दिया करते थे। रोगी स्वेच्छापूर्वक बाज़ार से दवाई ख़रीद कर इष्ट सिद्धि कर लेते थे। यह कुष्ट रोगी भी प्रसिद्ध वैद्य जी के पास चिकित्सा कराने के लिये उपस्थित हुआ। वैद्य जी ने कष्टसाध्य रोग का निदान कर और काकतालीयन्याय के समान असम्भव नहीं किन्तु अशक्य, अद्वेत औषधि का सेवन पत्र पर लिख कर रोगी को दे दिया और कह दिया कि इस रोग का इलाज अतीव कठिन है, तुम कुछ दिन में मर जाओगे। दुःख पीड़ित दरिद्र रोगी भी हताश होकर शीघ्र मृत्यु को चाहता हुआ बन को ओर चल दिया। वहां पहुँच कर देखता है कि एक नर कपाल में तत्कालवर्षा के भरे हुए पानी को काला भुजङ्ग पी रहा है। कोढ़ी ने मृत्यु का बढ़िया उपाय समझ कर खोपड़ी के विषमय जल को धाय कर पीलिया। उसी समय से वह रोगी चङ्गा होने लगा। और कुछ ही दिनों में हृष्ट, पुष्ट, बलिष्ट, गर्विष्ट होकर, अनुभवी वैद्य जी के निकट आया, और कहने लगा कि आपने मेरी चिकित्सा करने की उपेक्षा की थी। किन्तु मैं आपके सामने निरोग, बलवान खड़ा हुआ हूं। कहो तो तुम्हें ही पटक

मारूं ! वैद्यजी ने कहा कि तुम्हारे रोग की केवल एक ही औषधि थी जो कि मैं ने परचे में लिखदी थी। उस दवाई का मिलना शक्यानुष्ठान नहीं समझ कर हमने तुम्हारी चिकित्सा करने का निषेध कर दिया था। वैद्य ने उस भूतकुष्ट रोगी से अपनी औषधि का लिखा हुआ पत्र निकलवाया। उस परचे में ज़हरीले काले प्रचन्ड सर्प के द्वारा मनुष्य खोपड़ी में पिये गये तत्कालीन वर्षा के पानी पी लेने का औषधि सेवन लिखा पाया गया"।

यों अनेकान्त का साम्राज्य सर्वत्र छा रहा है। संखिया, हरताल आदि अनेक विषों की औषधियां बनाई जाती हैं।

वस्तु में रक्खे हुए अनेकान्त रत्नों का स्याद्वाद कोट द्वारा रक्षण करते हुए जिज्ञासु सैनिकों करके एकान्त दृष्टियों का निराकरण कर तत्त्व ज्ञान प्राप्त कर लिया जाता है।

निरन्श परमाणु भी सान्श है। परमाणु आप ही अपना आदि भाग है और स्वयं ही अपना पूरा मध्य भाग है। तथा स्वयं पूरा शरीर ही उसका अन्त है। यों एक परमाणु में अनन्तानंत परमाणु प्रविष्ट होकर संयुक्त हो रहे हैं। किन्तु परमाणु भी एकान्त रूप से निरन्श नहीं है। चौकोर बरफी के समान छह पहलों को धारण करने वाले परमाणु के, शक्ति की अपेक्षा, छः मूर्त्त अन्श हैं। यद्यपि बरफी के प्रत्यक्ष में आठ कोने दीखते हैं। तथापि बरफी स्थूल है, परमाणु अति सूक्ष्म है। बरफी के एक कोने से दूसरी बरफी के कोने भले ही मिल जायँ, किन्तु अन्य बरफी को अखंडभीत नहीं मिड़ सकती है। अतः कोनों को उपमान न समझकर बरफी के पहलों को परमाणु के अन्शों का दृष्टांत मान लेना चाहिये। बरफी की चौरस भीतें छः हैं। यदि बरफी के सभी ओर अन्य बरफियां रखदी जावें तो मध्यवर्ती बरफी की एक एक ओर की भीतों को छूती हुई छः बरफियां सन्सर्ग करेंगी। ठीक इसी प्रकार अत्यन्त छोटे परमाणु की चारों दिशाओं में चार और ऊपर नीचे इस प्रकार छः परमाणुयें न्यारे न्यारे छः अंशों में संबंधित हो जावेंगी। तभी मेरु और सरसों की समानता का दोष प्रसङ्ग भी निवृत्त होसकेगा। अतीव अणीयान् पदार्थ भी निरंश होकर सांश है।

प्रदेशों की अपेक्षा भिन्न २ क्षेत्रों में वर्त रहा आकाश पदार्थ कल्पित सांश है। साथ ही अखन्ड द्रव्य हो रहा आकाश निरंश भी है। चौकोर बरफ़ी के समान जैसा परमाणु है, ठीक उसी प्रकार आकाश द्रव्य भी छः पहल वाला, पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, ऊर्ध्व, अधः इन छहों ओर से एक सा चौकोर होरहा अखण्ड द्रव्य है। सबसे छोटे परमाणु और सब से बड़े आकाश की व्यञ्जनपर्याय सदृश है। इसी बात को श्री वीरनन्दि सिद्धान्त चक्रवर्ति ने आचारसार ग्रन्थ के तृतीयाधिकार में यों लिखा है कि—

"अणुश्च पुद्गलोऽभेद्यावयवः प्रचय शक्तितः।
कायश्च स्कन्ध भेदोत्थश्चतुरस्रस्त्वतीन्द्रियः॥
व्योमामूर्त्तं स्थितं नित्यं, चतुरस्रं समं घनम्।
भावावगाह हेतुश्चानंतानन्त प्रदेशकम्॥"

एक बार मैं गुरुवर्य पं० गोपालदास जी के साथ दक्षिण देश की यात्रा को गया था। वहाँ श्री बाहुबलिस्वामी की अत्यन्त छोटी मूर्ति के दर्शन किये। और साथ ही जैनबद्री में श्री बाहु-

[स्याद्वादांक]

विद्वत्शिरोमणि पं० माणिकचन्द्र जी, न्यायाचार्य ।

[उद्भट विद्वान व जैन सिद्धान्त के अपूर्व मर्मज्ञ और आदर्श व्याख्याता]

बलि स्वामी की बृहदाकार शान्त रसमय मूर्ति का दर्शन कर कृतार्थ हुआ।

उस समय परमाणु का लघु शरीर और ठीक उसी के समान आकृति वाले आकाश का महा परिमाण दृष्टान्त रूपेण स्मरण पथ पर आ गया था।

लोक में सर्प नकुल का, सिंह गाय का, भेड़िया बकरी का विरोध माना जाता है। किन्तु सच पूंछो तो इनमें भी एकान्त रूपसे विरोध नहीं है। सर्कस के तमाशे में भले ही इनका विरोधाभाव भयमूलक होवे, किन्तु क्षमाशील मुनिमहाराज के निकट या समवशरण में इनका सख्यभाव है। यह बात केवल आगमाश्रित ही नहीं है। प्रत्युत युक्तिसिद्ध और अनुभव प्रसिद्ध भी है।

कतिपय प्रमाणज्ञानों में भी अप्रमाणता अनुप्रविष्ट हो रही है और मिथ्या ज्ञानों में भी प्रमाणपना घुस रहा है। श्री समन्तभद्राचार्य ने—

"भावप्रमेयापेक्षायां, प्रमाणाभास निह्नवः।
बहिः प्रमेयापेक्षायां, प्रमाणं तन्निभंन्नते॥"

इस कारिका द्वारा उक्त प्रामाण्य, अप्रामाण्य के अनेकान्त को पुष्ट किया है। स्व को जानने में सभी मिथ्याज्ञान प्रमाण हैं।

ठूंठ में हुए पुरुष या स्थाणु के संशय ज्ञान में ठूंठ में हो रहे घोड़ा या हाथी के संशयज्ञान की अपेक्षा प्रमाणता का विशेष अंश माना जावेगा। अधखुली आँख के पलक में स्वल्प अंगुली गाड़ने पर एक चन्द्रमा में हुए दो चन्द्रमा के विपर्यय ज्ञान में लोटे को घोड़ा जानने वाले विपर्यय ज्ञान की अपेक्षा प्रमाणपन का अंश अप्रमाणता के साथ अधिक माना जावेगा। परीक्षकों को न्याय उचित बात स्वीकार कर लेना चाहिये। यह तो हुई मिथ्या ज्ञानों में प्रमाणपन के साङ्कर्य की बात।

अब बहुत से सर्वाङ्ग रूपेण प्रसिद्ध हो रहे प्रमाणों म भी अप्रमाणपन की झलक निरखियेगा—

मतिज्ञान और श्रुतज्ञान अपने २ विषयों में एक देश से अविसंवाद रखते हैं। अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान तो अपने नियत विषयों में पूर्णरूपण सम्वादी हैं। हां! केवलज्ञान सम्पूर्ण वस्तुओं को जानने में परिपूर्ण विशद है। इस कारण परिपूर्ण रूपसे प्रमाणपन का अधिकारी है। इस प्रकार पांचों ज्ञानों में तीन ढंग से प्रमाणपना प्रसिद्ध हो रहा है। भले ही केवलज्ञान सब को जानता है। फिर भी रसनाइन्द्रिय जनित प्रत्यक्ष से जैसे लड्डू के रस का अनुभव होता है वैसा केवलज्ञान से नहीं। केवलज्ञान की विषयता से इन्द्रियजन्य प्रत्यक्षों की विषयता बाल बाल न्यारी बची हुई है।

जैन न्याय का यह अखंड सिद्धान्त है कि— "यावन्ति कार्याणि तावन्तः स्वभावभेदाः वस्तुनि सन्ति" जितने भी छोटे बड़े कार्य जिस अर्थ से होते हैं उतने वस्तुभूत स्वभाव उस पदार्थ में अनिवार्य विद्यमान हैं। मनःपर्यय और अवधि ज्ञान में भी देशघाति प्रकृतियों का उदय कुछ बिगाड़ कर देता है। तभी तो "यथायत्राविसंवादस्तथा तत्र प्रमाणता" यह सिद्धान्त जागरूक हो रहा है। सफल प्रवृत्ति जनकत्व, निर्बाधत्व, समारोपविरोधकत्व इनमें से कोई भी अविसंवाद जहां जैसा जितने परिमाण में घटित होगा वहां उतने परिमाण में प्रमाणपना माना जावेगा। प्रतिपत्ति, प्रवृत्ति, प्राप्ति की एक अधिकरणता या प्रमाणा-

न्तरों की प्रवृत्ति अथवा ज्ञेय में अभीष्ट अर्थ क्रिया कारित्व इन संवादों से भी प्रामाण्य व्यवस्थित हो रहा है।

प्रायः मतिज्ञान, श्रुतज्ञानों में अप्रमाणपन की पोल चल रही है। जिस ज्ञान में जितनी पराधीनता होगी उतना ही वह मन्द होगा। चाक्षुष प्रत्यक्ष को ही लीजिए—किसी वृक्ष को एक कोस दूर से देखा जाय छोटा दीखेगा। जितना जितना वृक्ष के निकट पहुँचते जायेंगे उतना उतना बड़ा दीखता जायगा।

वृक्ष की ठीक लम्बाई, चौड़ाई कहां से दीखती है, इसका निर्णय करना कठिन है। यों तो इनमें से सभी प्रत्यक्ष अपने द्वारा ठीक ठीक जानने का दावा बखान रहे हैं। आखिर वृक्ष की यथार्थ लम्बाई, चौड़ाई किसी न किसी प्रत्यक्ष से दीखती ज़रूर है। अथवा क्या सूर्य विमान के गड़बड़ प्रत्यक्षों के समान ये प्रत्यक्ष भी होवें? वास्तविक इसकी परीक्षा दुःसाध्य है। इसी तरह दूर से वृक्ष का रूप काला दीखता है, निकट से हरा दीखता है, मध्यस्थानों से देखने पर हरे और काले रंगका मिश्रण तारतम्य रूप से प्रतीत हो रहा है। वृक्ष का ठीक रूप किस स्थान से दीखा है—इसका निर्णय कौन करे? एक शुक्ल वस्त्र को घाम में, छाया में, दीपक के प्रकाश में, बिजली के प्रकाश में, अंधेरिया में देखने पर अनेक ढङ्गों के शुक्ल रूप दीखते हैं, भले ही बिजली आदि निमित्तों से वस्त्र के शुक्ल रूप में कुछ आक्रान्ति हो गई होय। फिर भी इस बात का निर्णय करना शेष रह जाता है कि वस्त्र का असली वर्ण किस प्रकाश में दीखा था। न्यारी न्यारी आँखें भी रूप के देखने में बड़ी गड़ बड़ मचा देती हैं।

घड़ी बनाने वाले या चित्र दिखाने वाले पुरुषों के पास एक प्रकार का कांच होता है। उस कांच के द्वारा दशगुना या हज़ार गुना लम्बा, चौड़ा पदार्थ देखलिया जाता है। सूक्ष्म कीटों को देखने वाले यन्त्र से तो एक बाल भी मोटी रस्सी के समान दीख जाता है। इसी प्रकार चक्षु इन्द्रिय में प्रतिविम्बित हो रहा पदार्थ भी यथायथं एक लाख गुना प्रतिभास जाता है। इससे चक्षु के अप्राप्यकारिपन का निराकरण नहीं हो जाता है। हां यथार्थ ग्रहण को धक्का अवश्य लग जाता है।

सैकड़ों दर्पणों में से सम्भवतः कोई एक दर्पण ही शुद्ध होता होगा जो कि प्रतिविम्ब्य पदार्थ का ठीक ठीक प्रतिविम्ब लेता होय। इसके विपरीत किसी दर्पण में लम्बा, किसी में चौड़ा, किसी में पीला किसी में लाल इत्यादि विकृत रूप से मुख दीखते हैं। इसी तरह बालक, कुमार, युवा, वृद्ध, बीमार, निर्बल, सबल, घी खाने वाला, रूखा खाने वाल, बैल, गृद्ध, बिल्ली, उल्लू आदि जीवों की आंखों में भी प्रतिविम्ब पड़ने का अवश्य अन्तर होगा। यदि ऐसा न होता तो भिन्न भिन्न नम्बरों के चश्मे अनेक तादृश मनुष्यों को क्यों अनुकूल पड़ते हैं? बताओ—मोतियाबिन्दु रोगवाले का चश्मा किसी निरोग विद्यार्थी को उपयुक्त नहीं होता है। बात यह है कि पदार्थों के ठीक २ लम्बाई, चौड़ाई, रंग और विन्यास का चाहे जिसकी आँखों से यथार्थ निर्णय होना कठिन है।

इधर सभी बालक, वृद्ध, रोगी, अपने अपने ज्ञान को ठीक मान बैठे हैं। बड़े मोटे अन्तर के

देखने पर तो बाधायें उपस्थित करते हैं। परन्तु छोटे अन्तरों पर तो किसी का लक्ष्य भी नहीं पहुँच पाता है। यदि हम केवल वृक्ष या शुक्ल वस्त्र अथवा मुख का ही ज्ञान करलेते तो ठीक भी था। किन्तु आंखों को बुरी आदतें पड़ी हुई हैं। अंट, संट, सद्भूत, असद्भूत विशेषणों का अवगाह कर चट विशिष्ट बुद्धियों को उपजा देती है। चाक्षुष प्रत्यक्ष में उन लम्बाई, चौड़ाई, रङ्ग, चपटापन, आदि अवास्तविक सूक्ष्म अंशों का भी प्रतिभास हो चुका है—जोकि यथार्थ नहीं है।

यही ढङ्ग रसना इन्द्रिय में भी समझ लेना। अधिक भूख लगने पर जो घेवर का स्वाद आता है वह तृप्त होने पर नहीं। उस एक ही पदार्थ को खाते खाते मध्य में स्वाद लेने की अनेक न्यारी न्यारी अवस्थायें गुज़रती हैं। एक तोले वज़न वाले मोटे कौर के मात्र ऊपरले कागज समान पतले भाग का ही जिह्वा से स्वाद आता है। बहुभाग तो यों ही गटक कर पेट में ढकेल दिया जाता है।

यों सूक्ष्मता से विचारने पर एक ही वस्तु में भिन्न भिन्न परिस्थिति के हो जाने पर दशों प्रकार के स्वाद अनुभूत हो रहे हैं। पेड़ा खाने के पीछे सेव फल का वैसा मीठा स्वाद नहीं आता है जैसा कि पेड़ा खाने के पहिले आसकता है, भले ही जीभ को खुरच लिया जाय। बहुत से पुरुषों का कहना है कि—बाल्यावस्था में फल, दुग्ध, चणक, मिष्टान्न आदि के जैसे स्वाद आते थे वैसे युवा अवस्था में आते ही नहीं हैं। कुमार अवस्था के से स्वाद बूढ़े पन में नहीं मिलते हैं।

यद्यपि उस उस अवस्था की लार, दांतों से पीसना, चबाना, उदराग्नि सन्दीपन, बुभुक्षा आदि से भी स्वाद लेने में अन्तर पड़ जाता है। फिर भी कहना यही है कि फल आदि के ठीक रस का ज्ञान किस अवस्था में हुआ था ? सो समझाओ।

एक ही पदार्थ को खाकर जबकि बालक, युवा, रोगी, आदि सभी ने अपने रासन प्रत्यक्षों में स्वाद के अनेक विशेष अंशों को जान लिया है, तब ऐसी दशा में सबके रासन मतिज्ञानों को सर्वाङ्ग रूप से प्रमाण नहीं कहा जा सकता है।

स्पर्शन इन्द्रिय से उत्पन्न हुआ सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष भी मोटे मोटे अंशों में प्रमाण है। ज्ञात कर लिये गये सूक्ष्म अंशों में नहीं। तर्जनी अंगुली के ऊपर मध्यमा अंगुली को चढ़ालो, फिर अग्रिम दो पोटराओं की बीच संधि में किसी चने बराबर एक गोली को चौको या दूसरे हाथ की हथेली पर धर कर डुलावो, तुम को दो गोली मालूम पड़ेंगी।

हम लोगों को आपेक्षिक ज्ञान अधिक होते हैं। ज्वरी पुरुष को वैद्य का शरीर शीतल प्रतीत होता है। जबकि वैद्य को ज्वरी का हाथ उष्ण ज्ञात हो रहा है। ठण्डे पानी में अंगुली डालकर कुछ उष्ण जल में अंगुली डाल देने से उष्ण स्पर्श का प्रतिभास होता है। साथ ही अधिक गर्म जल में अंगुली डुबोकर पुनः उसी किञ्चित् गर्म जल में अंगुली डाल देने से शीतस्पर्श ज्ञात होता है।

अधिक मिरच खाने वाले को स्वल्प मिरच पड़े व्यञ्जन में चिरपरा स्वाद नहीं आता है। किन्तु दूध पीने वाले बालक का उस स्वल्प मिरच वाली तरकारी से पूरा मुँह झुलस जाता है।

हम लोगों के शरीरमें अन्तरङ्ग बहिरङ्ग कारणों से पदार्थ के स्पर्श को जानने की न्यारी न्यारी

परणतियां होती रहती हैं। कहना तो यही है कि समय की परिणति ने सम्बन्धित वस्तु के स्पर्श को ठीक ठीक जान लिया है—इसका निर्णय, उपाय हमारे पास नहीं।

घ्राण इन्द्रिय जन्य ज्ञान में भी यही टंटा लग रहा है। दूर से, समीप से और अतिशय निकट से उसी गन्ध का ज्ञान होने में जो विशेषतायें बिना बुलाये अंटसंट झलक रही हैं। वे अयथार्थ ज्ञानांश हो रहीं उस अवयवी ज्ञान की प्रामाणिकता में टोटा डाल देती हैं। एक ही गन्ध द्रव्य में नाना व्यक्तियों को भिन्न भिन्न प्रकार की वासें आरही हैं। श्लेष्म रोगी को तो गन्धज्ञान में बहुत चूक हो जाती है। कोई कोई पुरुष तो हींगड़ा, कालानमक, लहसुन, मूंग आदि की गन्धों में सुगन्ध या दुर्गन्धपने का ही निर्णय अपने विचार अनुसार कर बैठे हैं, जो कि एक दूसरे से विरुद्ध पड़ता है। तभी तो गोम्मटसार में अनुकूल वेदन और अनुकूल वेदन का लक्ष्य कर सुगंध और दुर्गन्ध को पुण्य, पाप दोनों में गिनाया है। लेकिन सुगन्ध और दुर्गन्धका निर्णय किसकी नाक से कराओगे।

शब्द के श्रवण प्रत्यक्ष में भी ऐसी पोलें चल रही हैं। दूर, निकटवर्ती शब्दों के सुनने में अनेक अन्तर पड़ जाते हैं। बहिरङ्ग कारणों के समान अन्तरङ्ग क्षयोपशम, शल्य, संकल्प, विकल्प, प्रसन्नता, दुःख, रोग आदि की अवस्थाओं में भी अनिवार्य अनेक प्रकार छोटे, बड़े विसंवाद हो जाते हैं।

श्रुतज्ञान में भी अनेक स्थलों पर पोलम्पोल मच रही है। किसी वस्तु का श्रुतज्ञान करते समय ही इष्ट को अनिष्ट और अनिष्ट को इष्ट समझ लिया जाता है। जब सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष का यह हाल है। तो बिचारे परोक्ष श्रुतज्ञानों में तो और भी झंझटें पड़ेंगी।

किसी मनुष्य ने सहारनपुर में यों कहा कि बम्बई में दो पहलवानों की भिड़ी (कुश्ती) हुई। एक मल्ल ने दूसरे को गिरा दिया। दर्शकों में से प्रधान धनिक ने विजेता मल्ल को एक हज़ार रुपये परितोष (इनाम) में दिये। यहाँ विचारिये कि श्रुतज्ञान करने वाला श्रोता पुरुष यदि कहे हुए शब्दों के मात्र वाच्य अर्थ का ही ज्ञान कर लेता तो उतना श्रुतज्ञान सर्वाङ्गीण ठीक मान लिया जाता। किन्तु सहारनपुर में वक्ता के सन्मुख बैठा हुआ श्रोता उसी समय अपनी कल्पना से लम्बे, चौड़े अखाड़े तो गढ़ लेता है। एक मल्ल को काला दूसरे को गोरा मान लेता है। दर्शक लोग कुर्सी पर बैठे हुए हैं, कोट, पतलून, पगड़ी, अंगरखा आदि पहने हुए हैं। प्रधान पुरुष रत्नों के अलंकारों से मण्डित हो रहा मध्य में सिंहासन पर बैठा हुआ है। हज़ार रुपयों में सौ, सौ रुपयों के दश नोट थे। विजेता मल्ल प्रसन्नतावश इधर, उधर उछलता फिरा होगा, इत्यादि बहुतसी ऊट पटाँग बातों को भी साथ ही साथ उसी श्रुतज्ञान में जानता रहता है, जो कि झूंठी हैं। श्रोता भी बिचारा क्या करे ? झूंठी कल्पनाओं के बिना उसका काम ही नहीं चल सकता है। लड़ने वाले मल्ल अमूर्त्त तो हैं नहीं। अतः उनकी काली, गोरी, मोंछवाली या बिना मोंछ वाली मूर्त्ति को अपने मन में गढ़ लेगा। आकाश में तो कोई भिड़ी होती नहीं है, अतः अखाड़े को भी

कल्पना करेगा। बिचारे देखने वाले पुरुष कहां बैठे होंगे। अतः कुरसी, मूंढा, दरी, चटाई आदि को भी अपने श्रुतज्ञान में झलकायेगा। बात यह है कि एक छोटे से श्रुतज्ञान में चौगुनी, अठगुनी बातें सच्ची, झूंठी घुस बैठती हैं। महापुराण को सुनकर भरत और बाहुबलि के युद्ध में भी बहुतसी असद्भूत बातें जोड़ली जाती हैं। भले ही चक्रवर्ती का मुंह पश्चिम की ओर हो, किन्तु श्रोताओं के ज्ञान में पूर्व, दक्षिण की ओर भी जाना जाचुका है। ऐसी कल्पित कितनी कितनी ग़लतियोंको भगवान् जिन-सेनाचार्य कहाँ तक कंठोक्त कह कर सुधरवा सकेंगे।

सहारनपुर में एक बत्तड़ आदमी है। उसको ज़रा सा छेड़ देने पर घंटों तक कानों को चैन नहीं लेने देता है। प्रत्येक शहर में एक दो आदमी और प्रत्येक मोहल्ले में दो, चार स्त्रियां ऐसी होती होंगी, जो बातें करती नहीं अघाती हैं। वे "तुम कहां से आ रहे हो" इतना प्रश्न करते ही अपना अत्यावश्यक कार्य छोड़कर खाने, पीने, अदालत, सुनार, मकान आदि की बातें बना कर आकाश, पातालीय कुलावे जोड़कर दिमाग़ खाली कर लेते हैं।

एक दिन उन गप्पाष्टकी महाशय ने मुझ से जयजिनेंद्र किया। मैं ने उनसे, आप अच्छे हैं? ऐसा प्रश्न कर दिया। मेरे इतने कहने पर ही उन्होंने अपना व्याख्यान शुरू कर दिया। ऐसे जीव अपना हर्जा उठा कर या सुनने वाले को कुछ घूस देकर भी अपनी बातें सुनाने की खुजली मिटाने के लिये उत्सुक रहा करते हैं। मुझे विद्यालय जाने की जल्दी पड़रही थी, किन्तु बावदूक महाशय की व्यर्थाव्यर्थ वाग्धारा कथमपि नहीं टूटी। वहीं एक दूसरे मेरे मिलने वाले ने कहा—आपने कहाँ बरों के छत्तेपर हाथ डाल दिया, वह तो सबका कपार चाट जाता है। जल्दी मचाने पर भी मुझे उस दिन पौन घंटे का विलम्ब हो गया। यहाँ मुझे यही कहना है कि—यही गपोड़बाज़ी की इल्लत हमारे अनेक शब्द जन्य शाब्दबोधों में भरी हुई है। एक शब्द सुनते ही शाब्दबोध करने वाला न जाने कितने लम्बे, चौड़े संकल्प विकल्पों की डांकगाड़ी छोड़ देता है, जिनके कि विशेष्य विशेषण बहुभाग झूठे हैं।

पदार्थ के अन्यून और अनतिरिक्त ज्ञान को सम्यग्ज्ञान माना गया है। तभी तो दो अंगुली को एक समझना और एक चन्द्रमा को दो समझना विपर्यय नामका मिथ्याज्ञान है। कहे हुए से अधिक को याथातथ्य रहित जान लेना सम्यग्ज्ञान नहीं है।

तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म कल्याणक अवसर पर इन्द्र आता है। पतितपावन भगवान को सुमेरु पर्वत पर ले जाता है। इस कथन की कितने आकार प्राकार की सूतें, मूर्तें बनाकर श्रोताजन श्रुतज्ञान कर बैठते हैं। इसके लिखने के लिये बीसों पत्र चाहियें। भले ही सुमेरु पर्वत का चित्र खींचना त्रिलोकसार से विरुद्ध पड़ जाय! इसको कोई परवा नहीं है। जैसे पहिले कोई पहाड़ या जलाशय देखा सुना है। उससे मिलती, जुलती आकृति गढ़ली जाती है। फिर विचारे संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय ज्ञानों को ही क्यों मिथ्यापन की गाली सुनाई जा रही है। कतिपय सत्यज्ञानों में भी तो कलियुगी बाबाजियों के समान पोलें चल रही

हैं। उक्त सम्पूर्ण बातों का निर्णय श्रीविद्यानन्द स्वामी ने "तत्प्रमाणे" इस सूत्र के भाष्य में बहुत अच्छा कह दिया है—

"प्रमाण व्यवहारस्तु, भूयः संवादमाश्रितः।
गंधद्रव्यादि वद्भूयो विसंवादं तदन्यथा"॥

प्रमाणपने का व्यवहार बहुभाग संवाद से सम्बन्ध रखता है। और जिस ज्ञान में बहुभाग या तीखे अंशों में विसंवाद है उस प्रमाण में अप्रमाणपन का व्यवहार करना चाहिये। जैसे कपूर, केसर, कस्तूरी आदि में रूप रस आदि के होने पर भी गन्ध की प्रधानता हो जाने से उनको गन्ध द्रव्य कहा जाता है। नींबू, नोन, मिरच आदि को रस द्रव्य माना जाता है। उसी प्रकार बहुभाग या तीक्ष्ण प्रमाणपन के अंश पाये जाने से समीचीन ज्ञान को प्रमाण कह दिया जाता है।

मति आदि ज्ञानों में भी संवाद के अनुसार जितनी प्रमाणता बांट में आवे, उतनी सन्तोष पूर्वक लेना; अधिक के लिये हाथ पसारना अन्याय है।

लेखनी (नेज़ा क़लम) की ऊपर की छाल सभी चिकनी, कड़ी होती है। किन्तु अक्षर लिखने के लिये चाकू से जितना तिल बराबर छिला भाग उपयोगी है, वह करण है, शेष बहुभाग उस लेखनी का सहायक है। सर्प के अगले पच्चीसवें हिस्से में आँख, कान आदि प्रत्युपयोगी पांचों इन्द्रियां बनी हुई हैं, शेष चौबीस भाग सर्प का अत्यल्प प्रयोजन को साधने वाला निठल्ला पुछल्ला लगा हुआ है। इसके लिये हम क्या करें?

एक ही ज्ञान के प्रमाणपन, अप्रमाणपन का विवेचन बहुत अच्छा शङ्कासमाधान पूर्वक श्लोकवार्तिकालङ्कार में लिखा हुआ है। विज्ञ पुरुष उस का पर्यालोचन करें।

निष्कर्ष यह है कि विरोधी सारिखे दीख रहे अनेक धर्मों को भी वस्तु झेल रही है तो अविरोधी अनन्तानन्त धर्मों के धारण की तो बात ही क्या है? एक पदार्थ जितने कार्यों को करता है, उतने स्वभाव प्रत्येक न्यारे २ उसमें मानने पड़ते हैं। एक युवती के मृतशरीर को देख कर साधु, कामुक और कुत्ते का निर्वेद, इन्द्रिय लोलुपता और भक्ष्यपन ये तीन कल्पनायें भी युवती शरीर में वस्तुभूत विद्यमान हो रहे तीन स्वभावों के अनुसार ही हुई हैं। ऐसे तीन क्या, तीन सौ, तीन लाख, तीनों अनन्तों परिमाण को लिये हुए स्वभाव वस्तु में विद्यमान हैं। नीलांजना के नृत्य में भगवान् आदीश्वर को वैराग्य और शेष राजाओं को रागभाव उत्पन्न करा देने की दोनों निमित्त शक्तियां विद्यमान हैं। यों अनेक स्वभावों के मानने पर ही पदार्थों में नवीन नवीन अर्थ क्रियायें बन सकती हैं। अर्थ क्रियाओं के नहीं होने से तो पदार्थ अवस्तु हो जायगा, जो कि इष्ट नहीं है।

मुख से जितने लाखों, करोड़ों प्रकार के शब्द निकलते हैं, कण्ठ, तालु आदि में ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, उदात्त, अनुदात्त आदि को बनाने की अनेक शक्तियाँ माननी पड़ेंगी। व्याकरण शास्त्र अनुसार अवर्ण के भले ही अठारह भेद हों, किन्तु सङ्गीत शास्त्रानुसार अवर्ण के सा, रे, ग, म, प, ध, नी, यों निषाद, ऋषभ आदि के मन्द, मन्दतर, मन्दतम भेदों की विवक्षा से सैकड़ों भेद हो जाते हैं। बीच बीच में श्वास लेने से भी शब्द के उच्चारण में अन्तर

पड़ जाता है। कई दिनों तक भी श्वासोच्छ्वास नहीं लेने वाले देवों के यहाँ तो अवर्ण के हज़ारों भेद हो जाते हैं। बात यही कहना है कि इन कार्यों के सम्पादन की न्यारी न्यारी शक्तियां तालु आदि में माननी पड़ेंगी। खेत की एक डली मिट्टी लाखों बनस्पतियों को उपजाने की शक्ति रखती है। यों अनेकान्त के परिवार का कुछ दर्शन हो जाता है।

छः स्थानों में पड़ी हुई हानि, वृद्धि अनुसार अनन्तानन्त अविभाग प्रतिच्छेदों के अविष्वग्भाव समुदाय को एक पर्याय कहते हैं। कालत्रयवर्ती अनन्तानन्त पर्यायों का ऊर्ध्वांश समुदाय एक गुण है। अनन्तानन्त गुणों का तादात्मक तिर्यगंश पिंड हो रहा एक द्रव्य है। व्यक्तिरूप से अनन्तानन्त द्रव्यों का संयुक्त संयोगात्पोयस्त्व नाम का समूह लोक है। क्षेत्र प्रत्यासत्ति अनुसार एक अलोकाकाश में अनन्तानन्त लोक समान टुकड़े हो सकते हैं।

एक बात यह और कहनी है कि "परिस्थितियों के वश पड़ा हुआ कोई धर्म अन्तरङ्ग, बहिरङ्ग कारणों के अनुसार विलक्षण स्वभावों को धार लेता है"। अखंड ब्रह्मचारिणी सीता का ब्रह्मचर्य उसके नौ भङ्गों द्वारा पालन किये जाने से अथवा सत्य, अचौर्य आदि धर्मों के सहचार से संख्यात गुणा बढ़ गया था। एक जीव केवल ब्रह्मचारी है, दूसरा ब्रह्मचारी और सत्यव्रती है, और तीसरा व्यक्ति ब्रह्मचारी और सत्यव्रती हो रहा, अनेक आपत्तियों के पड़ने पर भी अपने धर्म से नहीं विचलित होता है। इनके उत्तरोत्तर प्रकृष्ट ब्रह्मचर्य गुणों में आनुषंगिक अनेक धर्मों का सद्भाव मानना पड़ेगा।

जन्म कल्याणक के समय इन्द्र भगवान को देखता है और हज़ार नेत्र से देखने पर भी परितृप्त नहीं होता है। यहाँ भी भावों में स्वभाव और उन स्वभावों में स्वभावान्तर तथा स्वभावान्तरों में अनेक न्यारे न्यारे धर्म ओत, प्रोत प्रविष्ट हो रहे हैं। इनमें उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य पाये जाते हैं।

तात्पर्य यह है-कि "जो जिस विषय का रीता (दरिद्री) होता है वह उस पदार्थ को अनन्य चित्त होकर घण्टों निरखता रहता है। अज्ञ श्रोता विचक्षण विद्वान् के मुंह की ओर ताकता रह जाता है। पुत्र रहित सेठानी, पुत्र सहित पिसनहारी की ओर टूंकती रहती है। निर्धन मनुष्य सेठ को एक टक लगाकर देखता रहता है। इसी प्रकार नीरोग को रोगी, रण्डुवा विवाहित को, प्रजा राजा को, विधवा स्त्री सुहागिन को, निर्बल दांत वाला या पोपला आदमी दृढ़ दांत वाले को तत्परता पूर्वक निरखते रहते हैं। प्रथम तो इन्द्र के पुत्र ही नहीं है; दूसरे भगवान् की वात्सल्यमय बालमूर्ति में वैराग्य छटा ओत पोत उट्टङ्कित हो रही है। जिन तीर्थङ्कर महाराज से असंख्यात जीवों का उद्धार होना है, एक भवतारी और वैराग्य का परम अभिलाषुक सम्यग्दृष्टि सौधर्म इन्द्र, उस शांत, वैराग्य, वात्सल्य, लावण्य से भर पूर हो रहे जिनेन्द्र मुख को निरखता रहता है। आत्मा के भाव मुख पर अवश्य आते हैं "वक्त्रं वक्ति हि मानसम्"। मुझे यह कहना है कि "ज्ञानत्रय और तीर्थङ्करत्व से अविनाभाव रखने वाली अनेक पुण्य प्रकृतियों का उदय, परमोत्कृष्ट शारीरिकशक्ति नरकों में भी थोड़ी देर के लिये दुःख मिटाने वाला अचिन्तनीय सामर्थ्य आदि अनेक स्वभावों से

तीर्थङ्कर बालक की मुखाकृति इतनी प्रेक्षणीय हो गई है कि "इन्द्र भी रिक्त, मुग्ध पुरुष के समान घण्टों निरखता रहता है। इसी प्रकार एक दोष के साथ दूसरे दोषों में समानाभिहार हो जाने पर दोषों में भी कई धर्म पैदा हो जाते हैं"। अष्टसहस्री में एक स्थल पर लिखा हुआ है कि "चौर पारदारिक से अचौरपारदारिक निराला ही है"। असली चोर या डाकू पराई बहन, बेटी के हाथ नहीं लगाते हैं, किन्तु केवल माता या बहिन कह कर माल या गहना झपट लेते हैं। इसी प्रकार अजघन्य परदारा सेवी पुरुष पर-स्त्री के माल या गहने को नहीं चुराता है प्रत्युत स्वयं धन दे देता है। हां! कोई कोई जघन्य दोनों दोषों से लीन रहते हैं। चौथे प्रकार के सज्जन पुरुष तो दोनों से रीते हैं। जिस प्रकार एक गुणकी आभा दूसरे गुण पर पड़ जाती है और एक दोष का प्रभाव अन्य दोषों पर असर कर जाता है उसी प्रकार सांसारिक मनुष्यों में दोषों के प्रभाव गुणों पर और गुणों का प्रभाव दोषों पर भी आक्रान्त हो जाते हैं। तभी तो--

"मरदुव जियदिव जीवो, अपदाचारस्य णिच्छिदा हिंसा"। जीव जीवो या मरा यत्नाचार रहित प्रवर्तने वाले को हिंसा जरूर लगेगी। ईर्यासमिति का पालन कर रहे मुनी को कुलिङ्ग जीव की मृत्यु हो जाने पर भी उस हिंसा को निमित्त लेकर स्वल्प भी बंध नहीं होता है।

श्लोकवार्तिककार ने "असदभिधानमनृतम्" इस सूत्र के भाष्य में किसी सत्य को असत्य और असत्य को सत्य घोषित किया है।

"तेन स्वपर सन्ताप, कारणं यद्वचोङ्गिनां।
यथा दृष्टार्थमप्यत्र, तदसत्यं विभाव्यते॥
मिथ्यार्थ मपि हिंसादि, निषेधे वचनं मतं।
सत्यं तत्सत्सु साधुत्वादहिंसाव्रत शुद्धिदम्"॥

यों अनेकान्त का चाहे जितना विस्तार बढ़ाया जा सकता है। उक्त विवेचन वस्तु के अनन्तानन्त धर्मों के प्रबोध पर पहुँचने में उपयोगी समझ कर किया गया है।

आज कल प्रत्यक्ष प्रमाण और युक्तियों से सिद्ध हो रहे पदार्थों को नत मस्तक मानने वाले परीक्षकों के युग में स्याद्वाद और अनेकान्त की सिद्धि करना कोई कठिन नहीं है। स्याद्वाद सिद्धांत और अनेकान्त प्रक्रिया किसी न किसी ढंग से प्रायः सबको मानने पड़ते हैं।

अलं पल्लवितेन—

सार्धं श्री द्वादशाङ्गाम्बुनिधि सुमथनोत्नत्यभाङ् मन्थतुल्यश्रीमत्तत्त्वार्थशास्त्राभि लुठनज निजानेक रत्नाद्युपज्ञम्।

सत्याङ्कस्यात्प्रमाणैवकृत्ति नयचत्रः सप्तभङ्गैर्भवैर्वोजितैकान्त प्रवादानधिगमज सुदृक् लब्धये स्यात्छुरुताद्धिः॥

स्याद्वाद-महत्ता !

[ले०—श्रीमान् पं० "आनन्द" उपाध्याय, जयपुर]

[१]

विश्व-शान्तिका अनुपम साधन,
स्याद्वाद मौलिक-सिद्धान्त।
जगति-तत्व आलोकित करता,
हो जाते जब तार्किक भ्रान्त॥

[२]

वैज्ञानिक-विश्लेषण द्वारा,
प्रकृति-तत्व ज्यों मिलता है।
नित्य अनित्य वाद भी त्यों ही,
स्याद्वाद से खिलता है॥

[३]

वीर-वदन-हिमवन से इसका,
धारावाहिक पुण्य-प्रवाह—
बहता आता संसृति-पथ में,
जिसका है साहित्य अथाह॥

[४]

जब ऐकान्तिक जग के सारे,
कम्पित वसुधा करते थे।
अहम्मन्यता के भावों से—
लड़ लड़ कर जब मरते थे॥

[५]

भूमण्डल पर विविध धर्म का,
घटाटोप जब छाया था।
ले अवतार वीर-प्रभु ने तब,
सच्चा मार्ग बताया था॥

[६]

पारस्परिक-ऐक्य संस्थापक,
वीर-प्रभु तब यों बोले।
तत्कालीन सभय जनता के,
हृदय कपाटों को खोले॥

[७]

ओ ऐकान्तिक! लड़ते हो क्यों?
वस्तु कथंचिन्नित्य कहो।
पक्षपात का गन्ध हटाकर,
आत्मिक सुख में मग्न रहो॥

[८]

द्रव्य सदा अविनाशी जग में,
क्षण क्षण में पर्याय विनाश।
बौद्ध-सांख्य एकान्तवाद से—
करते हैं इनका प्रतिभास॥

[९]

स्यात्अस्ति अरु स्यात् नास्ति है,
उभयरूप है वस्तु विधान।
अवक्तव्य अरु अस्ति नास्त्युभय,
प्रामाणित करते विद्वान्॥

[१०]

जीवन में प्रति पल होता है,
इनका व्यवहारिक उपयोग।
अवलम्बन जो वस्तु सिद्धि में,
दार्शनिक करता उपभोग॥

[११]

भारतीय हृदयों में गूंजे, स्याद्वाद का प्रबल निनाद।
भव्य मनोरथ सफल सदा हो, फैले अनेकान्त सम्वाद॥

स्याद्वाद का जैनधर्म में स्थान व उसके क्रियात्मक उपयोग का अभाव।

[ले०—श्रीमान् पं० वंशीधर जी व्याकरणाचार्य न्यायतीर्थ न्याय व साहित्य शास्त्री]

स्याद्वाद का अर्थ।

"स्याद्वाद" इस शब्द के अन्तर्गत दो शब्द है—स्यात् और वाद। स्यात् का अर्थ अपेक्षा सहित (दृष्टिकोण सहित) तथा वाद शब्द का अर्थ सिद्धान्त या मत होता है। इस प्रकार स्याद्वाद का अर्थ सापेक्ष सिद्धान्त समझना चाहिये।

स्याद्वाद की परिभाषा।

अपने व दूसरे के विचारों, वचनों व कार्यों में अपेक्षा या दृष्टिकोण का ध्यान रखना ही स्याद्वाद की परिभाषा है।

स्याद्वाद की आवश्यक्ता।

मनुष्य के जितने विचार, वचन व कार्य हैं उनका कोई न कोई दृष्टिकोण अवश्य होना चाहिये, उसी के आधार पर उनकी उपयोगिता या अनुपयोगिता समझी जा सकती है। हम अपने विचारों वचनों व कार्यों को दृष्टिकोण के अनुकूल बनायेंगे तो वे लाभप्रद होंगे, दृष्टिकोण के प्रतिकूल बनायेंगे या उनका कोई दृष्टिकोण नहीं रक्खेंगे तो वे लाभप्रद तो होंगे ही नहीं, बल्कि कभी २ हानिप्रद हो सकते हैं। इसी प्रकार दूसरों के विचारों, वचनों व कार्यों को उनके दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर देखेंगे तो हम उनकी सत्यता (उपादेयता) या असत्यता (अनुपादेयता) का ज्ञान कर सकेंगे। यदि दूसरे के विचारों वचनों व कार्यों को उनके प्रतिकूल दृष्टिकोण से देखेंगे या बिना दृष्टिकोण के देखेंगे तो हम उनकी सत्यता या असत्यता का ज्ञान नहीं कर सकेंगे। इसलिये हमको स्याद्वाद या सापेक्ष सिद्धान्त के अपनाने की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि जीवन की स्थिरता के लिये भोजन की।

स्याद्वाद का विकास

यों तो वस्तुयें तथा उनके विचारक अनादि हैं तो स्याद्वाद भी अनादि ही कहा जायगा, लेकिन आवश्यकता के आधार पर ही किसी भी वस्तु का विचार किया जाता है।

इसी स्याद्वाद को ही ले लें—विचार करने पर मालूम पड़ता है कि जितना भी लोकव्यवहार है उसका आधार स्याद्वाद ही है, पर जन साधारण तो स्याद्वाद का नाम तक नहीं जानते, और ऐसे मनुष्यों की भी कमी नहीं है जो स्याद्वाद को जान करके भी अपनाना नहीं चाहते, इतने पर भी उनका व्यवहार अव्यवस्थित या बन्द नहीं हो जाता। इसका आशय यही है कि जब जिस वस्तु की आवश्यकता बढ़ जाती है उसके जाने बिना हमारा कार्य नहीं चलता है, तब उसके जानने की लोगों के हृदय में भावना पैदा होती है और तभी से उसका विकास माना जाता है। स्याद्वाद के विकास का विचार इसी आधार पर किया जाता है।

प्रायः सभी मतों के अनुसार पौराणिक दृष्टि से सृष्टि के आदि* भाग में जीवन सुख और शान्ति के साम्राज्य से परिपूर्ण था। शनैः शनैः सुख और शान्ति में विकृति पैदा हुई अर्थात् लोगों के हृदयों में अनुचित पापवासनाओं का अंकुर जन्मा, वहीं से धर्मतत्व प्रकाश में आया। तात्पर्य यह कि अनुचित पापवासनाओं से लोगों को अनुचित पापों में प्रवृत्ति होने लगी उसको हटाने के लिये तात्कालिक महापुरुषों ने पापप्रवृत्ति के त्यागरूप व्यवस्था बनाई, उसी को धर्म का रूप दिया गया।

सुख और शान्ति के सहायक नियम या धार्मिक नियम वैसे वैसे ही बढ़ते गये जैसे जैसे उनके प्रतिबन्धक निमित्तों का प्रादुर्भाव होता गया। इसके अतिरिक्त विविध लोगों की विवेक बुद्धि ने भी काम किया जिससे देश काल के अनुसार नाना प्रकार के धार्मिक नियम बने, और उनकी उपादेयता के लिये भिन्न भिन्न प्रकार से उनका महत्व दर्शाया गया। तात्पर्य यह कि धीरे २ धर्मों में विविधता पैदा हुई। इस धर्म विविधता के कारण भिन्न भिन्न समष्टियों की रचना हुई। उन समष्टियों में काल क्रम से अपने को सत्यमार्गानुगामी और दूसरों को असत्यमार्गानुगामी ठहराने की कुत्सित ऐकान्तिक भावनायें जाग्रत हुईं। यहीं से दर्शन शास्त्र का कलेवर पुष्ट हुआ, जिसके बल पर लोगों ने स्वपक्षपुष्टि और परपक्ष-खण्डन में कालयापन करना प्रारम्भ किया, जिससे विरोध रूपी अन्धकार से लोक व्याप्त हो गया। उसका अन्त करने के लिये स्याद्वाद रूपी सूर्य का उदय हुआ।

स्याद्वाद की जैनधर्माङ्गता।

स्याद्वाद तत्व का विकास उन महापुरुषों की तर्कणा शक्ति का फल है जिन्होंने समय और परिस्थिति के अनुसार निर्मित धार्मिक नियमों के परस्पर समन्वय करने की कोशिश की थी, तथा इसमें उनको आश्चर्यजनक सफलता भी मिली थी। परलोक हित भावना में स्वार्थवासना का समावेश हो जाने से उसकी धारा एक देश में ही रह गई। वे महापुरुष जैन थे, इसलिये कालान्तर में स्याद्वाद जैनधर्म का मूल बन गया, दूसरों को स्याद्वाद के नाम से घृणा होगई।

जैनाचार में स्याद्वाद

इसके विषय में अमृतचन्द्र सूरि ने हिंसा के विषय में स्याद्वाद का जो भावपूर्ण चित्रण किया है वही पर्याप्त होगा। वे कहते हैं—

"कोई मनुष्य हिंसा नहीं करके अर्थात् प्राणियों को नहीं मार करके भी हिंसा के फल को पाता है, जबकि दूसरा मनुष्य हिंसा करके भी हिंसा के फल को नहीं पाता। एक मनुष्य को अल्प हिंसा महान् फल देती है जबकि दूसरे मनुष्य को अधिक हिंसा भी अल्प फल देती है। समान हिंसा करने वाले दो पुरुषों में से एक को वह हिंसा तीव्र फल देती है और दूसरे को वही हिंसा मंद फल देती है।

*—प्रायः सभी मत सृष्टि का उत्पाद और विनाश मानते हैं, जैनमत ऐसा नहीं मानता—उसके अनुसार जगत् अनादि निधन है, पर उसमें सुख और शान्ति की वृद्धि और हानि रूप से परिवर्तन माना गया है। इसलिये जैनमतानुसार जिस समय सुख और शान्ति में हानि का रूप नहीं दिखाई दिया था उसको सृष्टि का आदि भाग समझना चाहिये। —लेखक

किसी को हिंसा करने के पहिले ही हिंसा का फल मिल जाता है और किसी को हिंसा करने के बाद हिंसा का फल मिलता है। किसी ने हिंसा करना प्रारम्भ किया, लेकिन बाद में बन्द कर दिया तो भी हिंसा करने के भाव हो जाने से हिंसा का फल मिलता है। किसी समय हिंसा एक करता है, उसका फल अनेक भोगते हैं। किसी समय हिंसक अनेक होते हैं और फल एक को भोगना पड़ता है। किसी की हिंसा हिंसा का अल्प फल देती है किसी को वही हिंसा अहिंसा का अधिक फल देती है। किसी को अहिंसा हिंसा का फल देती है, किसी की हिंसा अहिंसा के फल को देती है।

इस प्रकार विविध प्रकार के भङ्गों से दुस्तर हिंसा आदि के स्वरूप को समझाने के लिये स्याद्वाद तत्व के वेत्ता ही समर्थ होते हैं।" *

राजनैतिक दण्ड व्यवस्था भी इसी आधार पर बनी हुई है जिससे हिंसा आदि के विषय में स्याद्वाद का स्वरूप अच्छी तरह समझ में आ सकता है।

जैन संस्कृति में स्याद्वाद का व्यावहारिक उपयोग और उसकी सफलता

समय समय पर जैन संस्कृति में बहुत से परिवर्तन हुए होंगे, परन्तु भगवान् महावीर से ले कर आज तक जितने परिवर्तन हुए वे ऐतिहासिक कहे जा सकते हैं।

जैनियों के बाह्याचार पर भगवान् महावीर के बाद से विक्रम की १५ वीं १६ वीं शताब्दी तक उत्तरोत्तर अधिक प्रभाव पड़ता गया। इसका कारण यह है कि यद्यपि भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध ने वैदिक क्रियाकाण्ड का अन्त कर दिया था, पर इस तरह की भावनायें कुछ लोगों के हृदय में बनी रही थीं जिनके आधार पर ब्राह्मण संस्कृति का उत्थान हुआ। इधर जैनधर्म और बौद्ध धर्म की बागडोरें ढीली पड़ीं, जिससे ब्राह्मण संस्कृति को बढ़ने का अच्छा मौका मिला और उसका धीरे २ व्यापक रूप बन गया। यहाँ

* अविधायापि हि हिंसां हिंसा फल भाजन भवत्येकः। कृत्वाप्यपरो हिंसां हिंसा फल भाजनं न स्यात् ॥ ५१ ॥
एकस्याल्पा हिंसा ददाति काले फलमनल्पम् । अन्यस्य महाहिंसा स्वल्पफला भवति परिपाके ॥ ५२ ॥
एकस्य सैव तीव्रं दिशति फलं सैव मन्दमन्यस्य । व्रजति सहकारिणोरपि हिंसा वैचित्र्यमत्र फल काले ॥ ५३ ॥
प्रागेव फलति हिंसाऽक्रियमाणा फलति २ च कृतापि । आरभ्य कर्तुमकृताऽपि फलति हिंसानुभावेन ॥ ५४ ॥
एकः करोति हिंसां भवन्ति फल भागिनो बहवः । बहवो विदधति हिंसां हिंसा फल भुग्भवत्येकः ॥ ५५ ॥
कस्यापि दिशति हिंसा हिंसाफलमेकमेव फल काले । अन्यस्य सैव हिंसा दिशत्य हिंसा फलं विपुलम् ॥ ५६ ॥
हिंसाफलमपरस्य तु ददात्य हिंसा तु परिणामे । इतरस्य पुनर्हिंसा दिशत्यहिंसा फलं नान्यत् ॥ ५७ ॥
इति विविधभंगगहने सुदुस्तरे मार्गमूढदृष्टीनाम् । गुरवो भवन्ति शरणं प्रबुद्ध नय चक्र संचाराः ॥ ५८ ॥

—पुरुषार्थ सिद्धयुपाय।

कारण है कि जैनधर्म उससे अछूता न रह सका।

मेरा तो विश्वास है और सिद्ध भी किया जा सकता है कि बौद्ध धर्म के तत्कालीन महापुरुषों ने बौद्धधर्म के बाह्यरूप में रंचमात्र परिवर्तन नहीं किया, इसीसे वह भारत से लुप्त हो गया। किन्तु जैनी स्याद्वाद के महत्व को समझते थे, उनको देश काल की परिस्थिति का अच्छा अनुभव था, इस लिए उन्होंने समयानुसार जैनधर्म की सत्ता क़ायम रखने के लिये ब्राह्मण संस्कृति को अपनाया।

उस समय ब्राह्मण संस्कृति का इतना अधिक प्रभाव था कि सभी लोगों का झुकाव उस तरफ होगया था। इसलिये जैनाचार्यों को लिखना पड़ा कि "जिस लोकाचार से सम्यक्त्व की हानि या व्रत दूषित नहीं होते हैं वह लोकाचार जैनधर्म वाह्य नहीं कहा जा सकता *।" इस प्रकार उस समय जो जैनधर्म से विमुख हो रहे थे उनको स्थिरता करते हुए जैनाचार्यों ने जैनधर्म की सत्ता क़ायम रक्खी थी जिसका फल यह है कि आज भी भारत वर्ष में जैनी लोग विद्यमान हैं। अन्यथा बौद्धों की तरह जैनी भी आज दूसरे धर्म का बख़्तर पहिने दिखाई देते।

आधुनिक भूलें।

ऊपर के कथन से स्पष्ट हो जाता है कि पूर्व पुरुषों ने वस्तु व्यवस्था में अपना सिद्धान्त व अपना आचार व्यवहार स्याद्वाद की सहायता से निश्चित किया था।

तात्पर्य यह कि किसी भी सिद्धान्त का साधक तर्क है—स्याद्वाद सहायक और विश्वास उसका आधार है। इन तीनों का आश्रय ले करके जिन लोगों ने वस्तुव्यवस्था के सिद्धान्त स्थिर किये थे या जो आज करते हैं उनका ऐसा करना असंगत नहीं कहा जायगा। बल्कि जिसका हृदय तर्क स्याद्वाद और विश्वास से व्याप्त होगा उसके द्वारा की गई वस्तु व्यवस्था आदरणीय समझी जायगी। जैन सिद्धान्त की सत्यता या उपादेयता इसलिये नहीं है कि वह सर्वज्ञभाषित है, किन्तु इसलिये है कि उसका मूल तर्क, स्याद्वाद और विश्वास है। सर्वज्ञ तो सिद्धान्त की अविरोधता से सिद्ध किया जाता है। हेतु का साध्य उसी हेतु का हेतु नहीं माना जाता।

इसलिये जो लोग पूर्व पुरुषों के किसी भी सिद्धान्त को तर्क, स्याद्वाद और विश्वास के बिना मिथ्या सिद्ध करने की कोशिश करते हैं वे स्वयं भूल करते हैं और जो किसी सिद्धान्त को तर्क स्याद्वाद और विश्वास के आधार पर परीक्षा करना पाप समझते हैं वे भी भूल करते हैं। दोनों ही स्याद्वाद के रहस्य से अनभिज्ञ हैं।

इसी प्रकार जो आचरण या व्यवहार आज संक्लेश-वर्धक, लोकानुपयोगी, लोकनिन्दनीय हों वे भले ही किसी समय शान्तिवर्धक, लोकोपयोगी व लोकप्रशंसित रहे हों, आज उनको मिथ्या या अनुपादेय समझा जायगा। इससे विपरीत जो आचार या व्यवहार आज शान्तिवर्धक, लोकोपयोगी व लोक प्रशंसित हों वे भले ही किसी समय संक्लेशवर्धक, लोकानुपयोगी व लोकनिन्दनीय रहे हों, आज उनको सत्य या उपादेय ही समझा

* सर्वमेव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः। यत्र सम्यक्त्वहानिर्न यत्र न व्रत दूषणम्॥
—यशस्तिलक चम्पू उत्तरार्द्ध उपासकाचार प्रकरण।

जायगा। इसलिये जो लोग परिस्थिति का अध्ययन किये बिना ब्राह्मण संस्कृति के अपनाने में तात्कालीन जैनाचार्यों की भूल बतलाते हैं वे स्वयं भूल करते हैं। और जो आज की परिस्थिति का अध्ययन किये बिना उस ज़माने की संस्कृति को आज की संस्कृति बनाना चाहते हैं वे भी भूल करते हैं—दोनों ही स्याद्वाद के रहस्य से अनभिज्ञ हैं। इतना ही नहीं, स्याद्वाद के रहस्य को हम लोग इतना भूल गये कि "मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना" की लोकोक्ति जैनियों के अन्दर ही अन्दर चरितार्थ हो रही है। प्रत्येक जैनी इच्छानुकूल अपनी समझ के अनुसार अपने आचार व व्यवहार को ही धर्म समझने लगा है। उसके सामने दूसरों के उपदेशों का कुछ महत्व नहीं, जब तक कि वे उसकी इच्छा के अनुकूल न हों।

स्याद्वाद के उपयोग की कमी का फल।

जहाँ जैनधर्म में स्याद्वाद का अधिक से अधिक उपयोग किया गया है वहीं उसके उपयोग में कमी भी रह गई है। स्याद्वाद का उद्देश्य संपूर्ण धर्मों का समन्वय करके मनुष्य समाज में शान्ति स्थापित करना था, लेकिन दूसरी धार्मिक समष्टियाँ स्वार्थवासना की पूर्ति के लिये स्वधर्म प्रेमी होती हुई भी परमधर्मासहिष्णु व हटग्राही बन गई थीं, इसलिये उस उद्देश की पूर्ति में तो स्याद्वादी असफल ही रहे। इसके अतिरिक्त जैनियों में भी स्वार्थवासना आने लगी थी जिससे जैनी भी स्वधर्मप्रियता के साथ साथ परधर्मासहिष्णुता व हटग्राहिता के शिकार होगये, जिससे धीरे २ स्याद्वादी जैनी भी सम्प्रदायवादी बने। स्याद्वाद का महत्व एक सांप्रदायिक पुष्टि से अधिक न रह सका। दूसरों की दृष्टि में जैनधर्म एक सम्प्रदाय समझा जाने लगा। इधर जैनियों ने भी पक्षपुष्टि में अपनी शक्ति का उपयोग करना प्रारम्भ किया, जिससे जैनाचार्य जैसा कि ऊपर स्याद्वाद का उपयोग बतला आये हैं उसके अनुसार सम्प्रदाय रूप से ही जैनधर्म को कायम रख सके। उसका परिणाम यह हुआ कि आज जब साम्प्रदायिकता मनुष्य समाज का रक्त-शोषण कर रही है उसमें जैनी भी कम भाग नहीं ले रहे हैं। तात्पर्य यह कि स्याद्वादी होकरके भी जैनियों ने स्याद्वाद का क्रियात्मक उपयोग करना नहीं सीखा, जिससे स्याद्वाद के द्वारा मनुष्य समाज का जो कुछ हित हो सकता था वह न तो हुआ और न हो रहा है।

हमारा कर्तव्य।

इस भयानक किन्तु विचारशील युग में हमारा कर्तव्य है कि अपने जीवनको लोकोपयोगी बनावें। यदि हम अपने जीवन को लोकोपयोगी नहीं बना सकते तो विश्वास रखना चाहिये कि हम परलोक के लिये भी कुछ नहीं कर रहे हैं। स्याद्वाद सिद्धान्त के अधिकारी रहने मात्र से हम स्याद्वाद का असर दूसरों पर नहीं डाल सकते। कार्यों का ही दूसरों पर असर हुआ करता है। हम अपने लोकोपयोगी कर्तव्य को स्याद्वाद के द्वारा निर्धारित कर उसी के लिये जीवन समर्पित करदें; उसके द्वारा हमारे जीवन को शान्ति ही न होगी बल्कि ऊपर से धर्म धर्म चिल्लाने की भारत की कुप्रवृत्ति नष्ट होगी एवं जैनधर्म की लोकोपयोगिता मनुष्य समाज में क्रियात्मक चमत्कार दिखला देगी।

स्याद्वाद !

[ले०—पं० सुमेरचन्द्र जी "मेरु" सहारनपुर]
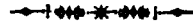
जैनधर्म के जीवन धन ! हे स्याद्वाद ! ओ तत्व निधान !
प्राच्य धर्म की विश्वभूति के विश्रुत तुम सर्वस्व महान !

जननी जिनवाणी की मञ्जुल मौलिकता के शुचि आधार !
तुम्हीं जगत के पूर्ण हितैषी मिथ्या मत को प्रबल कुठार ॥
आर्हत मत की सबल नीति के एक मात्र प्रिय तथ्य विचार ।
स्वागत सुन्दर सरल तुम्हारा सुषमा युत हो हृद्य अपार ॥

हे दर्शन के प्राण ! जागते छेड़ो तुम फिर अपनी तान !
जैनधर्म के जीवन धन ! हे स्याद्वाद ! ओ तत्व निधान !

न्याय भंग के मुकुर विलक्षण तुम में है वैशिष्ट्य भरा ।
तर्कशास्त्र का अनुपम अंकुर तुमने जगमें किया हरा ॥
देख ओज हो अस्त व्यस्त कर गये धरा से सभी त्वरा ।
पा अनुभूति विभूति विश्व की तुमने आगे चरण धरा ॥

तव मञ्जु मनोहर तरल प्रभा में हम सब गावें नवरस गान ।
जैनधर्म के जीवन धन ! हे स्याद्वाद ! ओ तत्व निधान ॥

नीराजन हित खड़ी हुई है संसृति हिय में भर उत्साह ।
विस्मृत पथ हैं भ्रान्त दार्शनिक ढूंढ न पाई किंचित् थाह ॥
सत्य पिपासु तड़प रहे हैं स्याद्वाद की केवल चाह ।
एक बार वह रूप दिखाओ दिव्य ज्ञान का बहे प्रवाह ॥

सिहर उठे ब्रह्माण्ड एक दम भूल जाँय सब मिथ्या मान ।
जैनधर्म के जीवन धन ! हे स्याद्वाद ! ओ तत्व निधान !

मानस में उत्ताल तरंगें बहती हैं भरभर उल्लास ।
कहाँ छिपे हो किस प्रदेश में कैसा है यह नीरस हास ॥
शान्ति सदन में क्रान्ति मची है शान्ति हुई है पूर्ण उदास ।
भ्रान्ति मिटाओ जग को आकर जैन रूप का करो विकास ॥

सप्तभंग नय उपनय पद्धति नाम तुम्हारा विदित जहान ।
जैनधर्म के जीवन धन ! हे स्याद्वाद ! ओ तत्व निधान ॥

वेदान्त सूत्र के व्याख्याकार और सप्तभंगीवाद !

(अनु०—श्री पं० खुशालचन्द्रजी शास्त्री, स्या० वि०, काशी)

शङ्कराचार्य वेदान्तसूत्र की व्याख्या में लिखते हैं *—"जैनों का सप्तभंगीवाद असंगत है, क्योंकि एक ही पदार्थ में अस्तित्व (सद्भाव) और नास्तित्व (अभाव) दो विरोधी धर्म नहीं रह सकते, जैसा कि अनुभव से मालूम होता है कि एक ही समय में एक वस्तु में गर्मी और सर्दी नहीं पाई जाती।"

"तीसरे भङ्ग "अस्ति नास्ति" ("है" और "नहीं भी है") का परिणाम अनिश्चित ज्ञान होता है, जोकि वस्तु के जानने में संशय ज्ञान से अधिक सहायक नहीं कहा जा सकता है। इस भङ्ग के अनुसार जीवादि सात तत्त्व हो भी सकते हैं और नहीं भी हो सकते। ऐसी दशा में जबकि आपके सिद्धान्त के अनुसार वस्तु का स्वरूप अनिश्चित है तब उसमें जनता की निःसंशय प्रवृत्ति कैसे हो सकती है? शायद आप कहें कि यह तीसरा भङ्ग वस्तु को अनेक स्वभाव वाली बतलाता है और इस लिए उसके जानने में सहायक है तो इसे हम स्वीकार नहीं कर सकते, क्योंकि वस्तुओं के स्वरूप की सिद्धि के लिए उनका अन्य व्यावर्तक होना ज़रूरी है किन्तु तीसरा भङ्ग वस्तु के निश्चित स्वरूप को न बतलाकर जानने वाले को संशय में डाल देता है। ऐसी दशा में यह भङ्ग ज्ञान का हेतु नहीं कहा जासकता। अतः इस भङ्ग के अनुसार प्रमाण--ज्ञान, प्रमेय--पदार्थ, प्रमाता—आत्मा, और प्रमिति—ज्ञान का फल, सबही अनिश्चित रह जाते हैं। तब ऐसी परिस्थिति में जैनों के तीर्थङ्कर "वस्तु के निश्चित स्वरूप के उपदेष्टा" कैसे कहे जा सकते हैं? और उनके उपदेश का अनुसरण करने वाले जन अनिश्चित वस्तु में कैसे प्रवृत्ति कर सकते हैं। क्योंकि जनता की प्रवृत्ति निर्णीत पदार्थों में ही होती है, अनिर्णीत में नहीं। अतः उस व्यक्ति के, जो कि अनिश्चितता का उपदेश देता है, उपदेश का वही मूल्य समझा जायेगा, जो एक शराबी या पागल के प्रलाप का होता है।"

"चतुर्थ भङ्ग बतलाता है कि वस्तु अवक्तव्य है, कही नहीं जा सकती। किन्तु यह केवल गोरखधन्धा है। यदि वस्तु अवक्तव्य है तो उसका किसी भी शब्द से कथन नहीं किया जा सकता। किन्तु जैनग्रन्थों में सप्त तत्त्व और पञ्चास्तिकाय आदि का वर्णन पाया जाता है। अतः वस्तु का वर्णन करके भी उसे अवक्तव्य कहना हास्यास्पद है। इस पर भी यदि जैन कहें कि व्याख्यान करने से वस्तु का निश्चित ज्ञान होता भी है और नहीं भी होता है और उनके निश्चित ज्ञान का फल सम्यग्दर्शन तथा "न जानने" का फल मिथ्यादर्शन है भी और नहीं भी है। तब आपका यह कथन एक विद्वान का वक्तव्य न कहलाकर, पागल का प्रलाप ही

* देखो—ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य, २ अध्याय, २ पाद, सूत्र ३३।

कहा जायगा। और भी, यदि आप के स्याद्वाद के अनुसार स्वर्ग और मोक्ष हैं भी और नहीं भी हैं तथा नित्य भी हैं और अनित्य भी हैं, तब इस अनिश्चित दशा में कोई भी मनुष्य स्वर्ग और मोक्ष जाने के लिए प्रयत्न न करेगा और आपके शास्त्रों में जीव अजीव आदि का जो स्वरूप बतलाया गया है वह भी अनिश्चित समझा जायगा। अतः एक वस्तु में सत्ता और असत्ता दो धर्म एक साथ नहीं रह सकते। यदि वस्तु सत् है तो असत् नहीं हो सकती, और यदि असत् है तो सत् नहीं हो सकती। इसलिए जैनों का स्याद्वाद असंगत है"।

रामानुज और सप्त भङ्गी।

वेदान्त सूत्र के दूसरे टीकाकार रामानुज लिखते हैं—"जैन लोग सब वस्तुओं को द्रव्य और पर्याय वाली मानते हैं। प्रत्येक वस्तु द्रव्यदृष्टि से स्थायी, एक, नित्य और पर्याय दृष्टि से अस्थायी अनेक और अनित्य है। उनके मत के अनुसार पदार्थ की विशेष अवस्था को पर्याय कहते हैं और वे पर्यायें अस्ति तथा नास्ति स्वभाव वाली हैं। तथा नित्य और अनित्य भी हैं। इस विषय में आचार्य बाद-रायण बतलाते हैं कि जैनों का उक्त सिद्धान्त असम्भव है क्योंकि एक ही पदार्थ में एक ही समय में दो विरोधी धर्म नहीं रह सकते—जैसे प्रकाश और अन्धकार। जैनमत के अनुसार द्रव्य और पर्याय दो भिन्न २ वस्तु हैं तथा भिन्न २ स्व-भाव वाली हैं। अतः यह सिद्ध नहीं हो सकता कि द्रव्य, पर्याय द्वारा जाना जाता है; क्योंकि एक वस्तु अपने से भिन्न स्वभाव वाली वस्तु के साथ नहीं रह सकती। नित्यता जिसमें कि प्रति समय उत्पाद और व्यय का होना माना जाता है—इस परिवर्त्तन शीलता में कैसे ठहर सकती है? विभिन्न धर्म होने के कारण वस्तुओं में भेद पाया जाता है, तब उसी वस्तु में उसी काल में अभिन्नता कैसे बन सकती है? जैसे कि घोड़े और भैंसे का स्वभाव एक ही पशु में एक ही समय में नहीं पाया जा सकता। शायद जैन हम अद्वैतवादियों से पूछें कि "परब्रह्म" जो एक है, वह एक ही समय में सर्वमय कैसे हो जाता है? इसका उत्तर—समस्त जड़ तथा चेतन जगत् ब्रह्म का शरीर है और ब्रह्म सर्वमय और सर्व शक्तिमान है। यद्यपि शरीर—जगत और आत्मा—ब्रह्म दोनों मिले हुए हैं तथापि दोनों के वैयक्तिक धर्म सर्वथा भिन्न हैं; इसलिए शारीरिक परिणमन का ब्रह्म पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। किंतु आपके जीवादि ६ द्रव्य न तो एक द्रव्य ही हैं और न एक पर्याय ही हैं, अतः उनका एक द्रव्यादिपना उन्हें एक, अनेक, अवक्तव्य आदि सिद्ध करने में सहायक नहीं हो सकता। यदि आप कहें—उक्त ६ द्रव्य एक अनेक होते हुए भी अपनी २ पर्याय और स्वभाव को नहीं छोड़ते हैं, तो हम कह सकते हैं कि ऐसी दशा में आप अपने सप्तभङ्गी वाद से विरोध दोष को दूर नहीं कर सकते, क्योंकि जो सत् है वह असत् नहीं हो सकता। तथा जो वस्तुएं एक दूसरे के अभाव स्वरूप पड़ती हैं वे वास्तविक सिद्ध नहीं हो सकतीं। अतः जैनों का सप्तभंगीवाद युक्तिसिद्ध नहीं है"।

आलोचना

इस तरह वेदान्त सूत्र के कर्ता और टीकाकार "असंभव होने से" यह हेतु देकर स्याद्वाद और सप्त भंगी को अप्रमाण सिद्ध करना चाहते हैं। पर वे असंभव दोष को विस्तार पूर्वक नहीं बतलाते,

केवल इतना ही लिखते हैं कि, वस्तु में परस्पर-विरोधी धर्म नहीं पाये जाते, अर्थात्—अस्तित्व और नास्तित्व परस्पर विरोधी होने के कारण एक ही वस्तु में नहीं पाये जा सकते। अतः ऐसा मानने वाला दर्शन मिथ्या है। पर जैनमत के अनुसार प्रत्येक वस्तु—जोकि द्रव्य और पर्याय की मिली हुई दशा का नाम है—में, भिन्नता होने पर भी एकता पाई जाती है। पर शंकराचार्य, आदि के आक्षेपों से यह मालूम होता है कि वे स्याद्वाद सिद्धान्त का खण्डन न करके यह सिद्ध करना चाहते हैं कि, सत्य वही है जिसके गुण दोषों को समझ कर तुलनात्मक अध्ययन कर सके।

यहां प्रकरण वश हमें ब्रेडले (Bradley) के "वस्तु स्वभाव" के विरुद्ध किये गये वाद-विवाद की स्मृति आजाती है। यद्यपि वह हीगल (Hegel) द्वारा कहे गये "भिन्नता में भी एकता होती है" इस सिद्धान्त को मानता है तो भी वह भिन्नता और एकता विषयक बाल्यावस्था के विचारों को नहीं भूलता है। ब्रेडले के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति या वस्तु भिन्न होने पर भी एक है और एकता सदा भिन्नता के साथ रहने वाला, किन्तु, परिवर्तनशील धर्म है। इसलिए इस धर्म में पारस्परिक और आभ्यन्तर विरोध की प्रतीति होती है। कारण हम नहीं जानते हैं कि भिन्नता और एकता का विरोध किस तरह दूर किया जाये और उन्हें किस तरह परस्पर में सम्बद्ध किया जाय। अतः वह इस सिद्धान्त को दुरूह बतलाते हैं। किन्तु हम कह सकते हैं कि यद्यपि स्याद्वाद और हीगलवाद (Hegeliaudoctrine) में सदृशता तो है पर हीगलवाद पूर्ण स्याद्वाद नहीं है; साथ ही साथ स्याद्वादी वास्तविकता पर ज़ोर देते हैं क्योंकि "रूप" जिसे ब्रेडले दूषित बताता है उसी से जैन वस्तु की वास्तविकता को सिद्ध करते हैं। × × ×

अस्तु, अब हम टीकाकारों के द्वारा किये गये आक्षेपों पर विचार करते हैं। शंकराचार्य मुख्यता से तीन दोष उपस्थित करते हैं—(१) अनेकान्त वाद की असंभवता, (२) व्यवहार में असफलता, और (३) जैनदर्शन की अन्य मान्यताओं के साथ उसका विरोध।

"अस्तित्व और नास्तित्व एक ही वस्तु में नहीं माने जा सकते, जैसे कि सर्दी और गर्मी; क्योंकि आपस में विरोधी धर्म या स्वभाव एक जगह एक ही समय में नहीं पाये जाते।" यह आक्षेप ऊपर से देखने में उत्तर देने के लिए कठिन सा मालूम पड़ता है, पर भिन्न २ दृष्टियों से विचार करने पर निर्मूल सिद्ध होता है। व्यावहारिक बातों में भी हम दो विरोधी धर्मों को एक साथ देखते हैं; जैसे—पेड़ की डालें हिलती हैं पर तना स्थिर रहता है, अतः हम कह सकते हैं कि पेड़ हिलता भी है और नहीं भी हिलता। एक ही मनुष्य किशोर का पुत्र हो सकता है और इन्दु का पिता। यहां पर यह प्रश्न नहीं उठता कि, एक ही व्यक्ति पिता और पुत्र कैसे हुआ? क्योंकि पितापना और पुत्रपना दो विरोधी धर्म एक ही व्यक्ति में पाये जाते हैं। इसी प्रकार से एक सत्ता अपनी अवान्तर सत्ता की अपेक्षा से बड़ी होती है। पर वही सत्ता अपने से बड़ी महासत्ता की अपेक्षा छोटी भी हो सकती है। अतः भिन्न २ दृष्टियों से एक वस्तु में अनेक विरोधी धर्म रह सकते हैं। इसलिये जब यह बात साधारण लोग भी समझते हैं तब समझ में नहीं

आता कि शङ्कराचार्य जैसे प्रखर विद्वान ने सप्तभङ्गी और स्याद्वाद के प्रधान कारण 'दृष्टिभेद' को समझे बिना ही असंभव दोष की कल्पना कैसे कर डाली ?

शायद वे कहें कि उस दशा में वस्तु का निश्चित ज्ञान नहीं हो सकेगा पर इस विषय में इतना कह देना ही पर्याप्त है कि यदि शङ्कराचार्य 'निश्चित' शब्द का अर्थ 'किसी अपेक्षा के बिना सर्वदा रहने वाली स्थिति' मानते हैं तो अनिश्चितता स्याद्वाद का एक प्रशंसनीय गुण ही कहा जायगा। स्याद्वाद की आलोचना करते हुए, उनने शिष्ट जनों के द्वारा न कहे जाने योग्य बहुत से अपशब्द कहे हैं, उन पर हम विचार नहीं करना चाहते; क्योंकि सम्भव है कि उस समय के वाद-विवाद की शैली का यह भी एक अङ्ग रहा हो !

द्वितीय आक्षेप में वे कहते हैं कि, प्रत्येक धार्मिकवाद का एक व्यावहारिक अङ्ग अवश्य होता है जिसे कि सारे भारतीय दार्शनिक मानते हैं। उत्तर में हम निवेदन करते हैं कि, तत्वविचार में भेद रहने पर भी सारे दार्शनिक यह मानते ही हैं कि आध्यात्मिकज्ञान, आचरण द्वारा उच्चतम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करने का एक साधन मात्र है और जैनदर्शन मोक्षमार्ग का उपदेशक होने से उक्त सिद्धान्त का पोषक ही नहीं, पालक भी है; अतः द्वितीय आक्षेप भी निर्मूल है।

तीसरा दोष देते हुए वे कहते हैं कि, स्याद्वादके अनुसार पञ्चास्तिकायों की संख्या ५ भी हो सकती है और ४ या ६ भी हो सकती है। पर इस शंका का जैन नैयायिकों की दृष्टि में कोई मूल्य नहीं है, क्योंकि जब जीवत्व आदि जाति की अपेक्षा पञ्चास्तिकायों में भेद-विवक्षा की जाती है तब वे पांच होते हैं, जब महासत्ता की विवक्षा होती है तब एक है, और जब जीव तथा अजीव इन दो विवक्षाओं से विचार करते हैं तब दो होते हैं। अतः ज्ञाता की दृष्टि की अपेक्षा से पञ्चास्तिकायों में संख्या भेद संभव है। आगे चलकर वे लिखते हैं कि, आपके सिद्धान्त के अनुसार स्वर्ग और मोक्ष नित्य भी हैं और अनित्य भी हैं इत्यादि। इसका हम यही उत्तर देते हैं कि, यदि आप दोनों विकल्पों को न मानकर एक को ही मानेंगे तो निम्न प्रकार से दोष आवेंगे :—यदि मोक्ष सर्वदा से है और सर्वदा रहेगा तो संसार कब और कैसे हुआ ? यदि कुछ समय के लिये होता है और नष्ट हो जाता है तो उसकी प्राप्ति के लिए तपस्या वग़ैरह अच्छे कार्य करने तथा उनका उपदेश देने से क्या लाभ है ? मनुष्य अपूर्ण है और पूर्ण बनने की कोशिश करता है, यह कल्पना मात्र नहीं है किन्तु बुद्धिमत्ता से पूर्ण विचारधारा है। अतः संसार जितने अंश में मोक्ष को अन्तिम लक्ष्य मान कर उसे पाने के लिये प्रयत्न करता है उतने अंश में मोक्ष सत्य-वास्तविक और स्थायी है और अन्तिम लक्ष्य होने पर भी, उसकी प्राप्ति सुनिश्चित न होने के कारण वा हम लोगों के प्रत्यक्ष न होने से असत्य-अवास्तविक और अस्थायी है।

चतुर्थ भङ्ग अवक्तव्य में दूषण देते हुए भी शङ्कराचार्य दृष्टि-भेद को भूल गये हैं। वस्तु के समस्त-गुण एक साथ, एक समय में नहीं कहे जा सकते, इसलिए वस्तु अवक्तव्य है और क्रमशः उनका कथन किया जाता है, अतः वक्तव्य है।

रामानुज की विचारशैली का हम दूसरा ही

ढंग देखते हैं। यह प्रतीत होता है कि वे प्रतिवादी के सिद्धान्त को स्वीकार सा करते हैं। वे द्रव्य और पर्याय के भेद को मानते हुए यह स्वीकार करते हैं कि स्याद्वाद की भित्ति द्रव्य और पर्याय की नींव पर आश्रित है। और वादी का इस प्रकार इतनी दूर तक प्रतिवादी के सिद्धान्त को स्वीकार कर लेना, यह सिद्ध करता है कि वह उससे सहमत है। यदि वह खंडन करना चाहते हैं तो उन्हें सिद्ध करना चाहिये था कि, प्रत्येक वस्तु में दो दृष्टि द्रव्य और पर्याय की अपेक्षा से नहीं होती हैं। "नैकस्मिन्नसंभवात्" यह हेतु—जो कि उनने अपने पक्ष की सिद्धि के लिए दिया है—जब ठीक सिद्ध नहीं होता तब वे कहते हैं कि, अस्तित्व और नास्तित्व एक पदार्थ में केवल द्रव्य दृष्टि से सिद्ध नहीं हो सकते। जैनदर्शन स्वयं ही इसे स्वीकार नहीं करता है। किन्तु जब आप दोनों दृष्टियों से विचार करेंगे—जैसा कि एकान्त नित्यता को दूर करने के लिए आवश्यक है—तब वस्तु में दोनों धर्म अवश्य पाये जायेंगे।

स्याद्वाद का खंडन करते समय, रामानुजाचार्य को यह स्मरण अवश्य आया होगा कि, इस खण्डन का वेदान्त के सिद्धान्त पर क्या प्रभाव पड़ेगा, क्योंकि वेदान्त स्वयं, ब्रह्म को एक और अनेक स्वीकार करता है। अतः यदि सचाई एक और अनेक के मिश्रित स्वरूप में निहित है तो वेदान्त स्वयं अनेकान्त का पोषक होगा। किन्तु यह निश्चित है कि, रामानुज ने अपने सिद्धान्त पर दृढ़ रहके, और शंकराचार्य की तरह अनेक को माया मात्र न कहके, वास्तविकता को ही स्वीकार किया है। ऐसी दशा में, जैन पूछते हैं कि, जब ब्रह्म सर्वमय है तो एक कैसे हो सकता है? वे समाधान करते हैं कि, सारा जड़ और चेतन मय संसार समूह रूप से ब्रह्म का शरीर है और शरीर तथा शरीरधारी के धर्म अलग २ होने के कारण कोई कठिनाई नहीं पड़ती है। पर यह उत्तर सर्वथा असंगत है। कारण, यदि भिन्न २ धर्म वाले—शरीर और आत्मा—दोनों वास्तविक हैं तो उन्हें ब्रह्म का परिणाम मान लेना, उनके सिद्धान्त—एकान्त—को सिद्ध नहीं करता। क्योंकि प्रतिवादी पूछेगा कि, परिणाम या शरीर वास्तविक है या अवास्तविक? यदि, अवास्तविक है तो उनके विषय में कुछ कहना भी व्यर्थ है क्योंकि यह तो शंकराचार्य के मायावाद का ही फिर से कथन हुआ। यदि वास्तविक है तो, उन्हें स्याद्वाद दृष्टि को अवश्य अपनाना पड़ेगा। अर्थात्—आत्मा की अपेक्षा ब्रह्म एक है और परिणाम या शरीर की अपेक्षा अनेक हैं।

अतः वेदान्त सूत्र के कर्ता तथा टीकाकारों का असम्भव दोष के द्वारा स्याद्वाद—अनेकान्तवाद को पागल का प्रलाप आदि बतलाना, उनकी ना समझी का सूचक है।*

* प्रो० चक्रवर्ती के अंग्रेजी पंचास्तिकाय के Philosophical Introduction के कुछ भाग का स्वतंत्र अनुवाद।

[स्याद्वादांक]

सेठ भागचन्द्र जी सोनी, अजमेर।

[जैनधर्म की सेवार्थ लाखों रुपया दान करने वाले सोनी वंश के नायक।]

अनेकान्तवाद !

[लेखक—श्री सुमेरुचन्द्र जी दिवाकर बी० ए०, न्यायतीर्थ, शास्त्री ।]
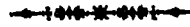
जैन दर्शन में अनेकान्त पद्धति को बहुत ऊंचा स्थान दिया गया है। आचार्य अमृतचन्द्र ने उसे 'परमागमस्य जीवम्'-परमागम का प्राण प्रतिपादन करके उसके महत्व को चरम सीमा तक पहुँचा दिया है। इस सिद्धान्त की ओर यद्यपि प्राचीन जैनेतर भारतीय विद्वानों का ध्यान जैसा चाहिए वैसा नहीं गया और न उन लोगों ने इसके प्रति समुचित सन्मान का भाव प्रदर्शित किया, किन्तु अर्वाचीन पंडित इसके महत्व को समझने लगे हैं। कोई २ विख्यात विद्वान् तो यहां तक कहने लगे हैं कि अनेकान्तवाद जैनधर्म की विश्व के लिए सबसे बड़ी देन (Contribution) है। फिर भी सर्वसाधारण के हृदय में इस सिद्धात के प्रति उपेक्षा का भाव विद्यमान् है। अतएव इस विषय पर प्रकाश डालना अतीव आवश्यक है।

अनेकान्तवाद एक मनोहर, सरल एवं कल्याणकारी शैली है, जिससे एकान्त रूप से कहे गये सिद्धान्तों में पाया जाने वाला विरोध दूर होकर उनमें अभूतपूर्व मैत्री का प्रादुर्भाव होता है। अनेकांत अनेक और अन्त शब्दों के योग से बना है जिसका अर्थ होता है अनेक धर्मात्मक। इस कारण यह दृष्टि वस्तु में अनेक धर्मों (Attributes) को अंगीकार करती है। जो २ पदार्थ हमारे ज्ञानगोचर होता है वह सब अनेक धर्म समुदायात्मक है—अनेकान्त दृष्टि एक धर्म को प्रधान कर देती है और अन्य सब को गौण। जैसे ग्वालिन दही मथन करते समय रस्सी को एक ओर से खेंचती है और दूसरी ओर से ढीला कर देती है। जैसाकि पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय में कहा गया है—

एकेनाकर्षन्ती श्लथयन्ती वस्तुतत्व मितरेण ।
अंतेन जयति जैनी नीतिर्मंथान नेत्रमिव गोपी ॥

अर्थात्—ग्वालिन जैसे मथन करने की रस्सी को कभी एक तरफ़ और कभी दूसरी तरफ़ खैंचती है ऐसे ही जिनेन्द्र की अनेकांत पद्धति भी कभी वस्तु के एक धर्म को मुख्य बनाती है और कभी दूसरे को; ऐसी स्याद्वाद पद्धति जयवंत हो।

एकान्त दृष्टि एक धर्म को ग्रहण कर अन्य धर्म का परित्याग करती है * इस कारण—

एकान्तवाद द्वारा वस्तु तत्व का निर्दोष निरूपण नहीं हो पाता। इसके सिवाय पारस्परिक विरोध भी दृढ़ हो जाता है। उदाहरणार्थ एक वस्त्र को लीजिये, बौद्ध सिद्धान्त 'सर्वं क्षणिकं सत्वात्' के व्यापक नियमानुसार उस वस्त्र को सर्वथा क्षणिक कह देगा। सांख्य दर्शन उसी वस्त्र को ठीक बौद्ध दर्शन से विपरीत प्रतिपादन करेगा कि वह सर्वथा अविनाशी तथा नित्य है। उपरोक्त दृष्टिबिन्दुओं में जब पारस्परिक विरोध है तब तत्व का क्या स्वरूप होना चाहिए ? अनेकान्त का विष्य-

* 'धर्मान्तरादानोपेक्षा हानि लक्षणत्वात् प्रमाणनय दुर्णयानां प्रकारान्तराभावात्' अर्थात् अन्य धर्मका ग्रहण उपेक्षा और हानि करना प्रमाण, नय तथा दुर्नय (नयाभास) का स्वरूप है, अन्य स्वरूप नहीं है। —अष्टशती।

आलोक ही इस विषय को प्रकाशित करने में समर्थ हो सकता है तथा ऐसी व्यवस्था देता है जो दोनों सिद्धान्तों की घातक नहीं होती। अनेकान्तवाद दो दृष्टियों से तत्व-व्यवस्था करता है। उसमें से द्रव्य-दृष्टि (Substantial point of view) द्रव्य अर्थात् substance को लक्ष्य-बिन्दु में रखकर वस्तु को नित्य बताती है, कारण द्रव्य का कभी नाश नहीं होता। पर्याय दृष्टि (Modal point of view) पर्यायों—अवस्थाओं (modifications) को ध्यान में रखते हुए उसे अनित्य बताती है। जब पर्यायार्थिक नय—पर्याय दृष्टि—से हम वस्त्र पर विचार करते हैं तो वह हमें नश्वर प्रतीत होने लगता है, कारण वह वस्त्र जो कुछ समय पूर्व नवीन कहलाता था वही जीर्ण-शीर्ण अवस्था को प्राप्त होकर पुरातन कहलाने लगता है। वस्तु नवीन से पुरातन क्षण क्षण में होती जाती है। जब तक यह परिवर्तन सूक्ष्म रहता है तब तक यह हमारी समझ में नहीं आता, किन्तु जब वह स्थूल होजाता है तब हमारी चर्मेन्द्रियों का विषय भी हो जाता है। अतएव पर्याय दृष्टि की मुख्यता से विचारने पर बौद्ध दर्शन द्वारा मान्य क्षणिकत्व वस्तु का अंग सिद्ध होता है।

अब हम यदि उस वस्त्र पर द्रव्य दृष्टि से विचारते हैं तो उसे विनाश रहित पाते हैं; कारण जिस द्रव्य (substance) से अथवा जिन परमाणुओं (Atoms) से वह बना है वे नश्वर नहीं हैं। उनके आकार (form) में परिवर्तन भले ही हो, किन्तु द्रव्य का नाश कभी भी नहीं होता। क्योंकि सत् * का नाश और असत् का उत्पाद नहीं होता, इस कारण पर्याय दृष्टि की मुख्यता से जो वस्त्र अनित्य है वही द्रव्य दृष्टि की प्रधानता से नित्य एवं स्थायी है। ये दोनों धर्म—नित्य और अनित्य—वस्तु के अंश हैं। पूर्ण वस्तु नित्यानित्यात्मक है।

कोई २ महाशय यह कह उठते हैं कि "नैकस्मिन् संभवात्" इस सूत्र द्वारा शंकराचार्य ने अनेकान्तवाद को सदोष बताया है, क्योंकि नित्यत्व और अनित्यत्व तो परस्पर विरुद्ध धर्म हैं। शीतोष्ण की भाँति वे दोनों एक जगह नहीं पाए जा सकते। इस आक्षेप के प्रतिवाद में एक अर्वाचीन वैदिक विद्वान ने लिखा है कि यदि श्री शंकराचार्य ने अनेकांत वाद को ठीक २ समझा होता तो उन्हें उस पर आक्षेप करने का मौका ही न आता। विरुद्ध-धर्मों का एक जगह पाया जाना कोई नवीन बात नहीं है। यह तो प्रति दिन सब के अनुभव में आती है। कौन नहीं जानता है कि एक ही मनुष्य में अपने पिता की अपेक्षा 'पुत्रपना' और अपने पुत्र की अपेक्षा 'पितापना' जैसे विरुद्ध धर्म पाए जाते हैं। हां! विरोध की शंका तब उचित हो सकती थी जब कि एक ही दृष्टि से परस्पर विरुद्ध धर्मों का निरूपण किया जाता। यहाँ अनेकांत दृष्टि में द्रव्यार्थिक नय से वस्तु को नित्य कहा जाता है और पर्यायार्थिक नय से उसे अनित्य कहते हैं। अतः अनेकांतवाद को विरोधमूलक बताना युक्तिसंगत नहीं है। वह तो विरोध का परम शत्रु है। इसीलिये अनेकांत प्रधानी श्री अमृतचन्द्रसूरि ने कहा है कि—

"सकलनय विलसितानां *विरोधमथनं* नमाम्यनेकान्तम् ॥" अर्थात् संपूर्ण नयों के विलास के

* नासतोविद्यते भावोनाभावो विद्यते सतः—गीता।

विरोध का नाश करने वाले अनेकान्त को मैं नमस्कार करता हूँ।

वस्तु को अनेकांतात्मक न मानकर यदि सर्वथा नित्य स्वीकार किया जाय तो क्या बाधा आयेगी, इस पर समंतभद्राचार्य कहते हैं—

नित्यत्वैकान्त पक्षेपि विक्रिया नोपपद्यते।
प्रागेव कारकाभावः क्व प्रमाणं क्व तत्फलम्॥

अर्थात् सर्वथा नित्यत्व पक्ष को मानने पर पदार्थों में हलन चलन आदि रूप विक्रिया होना असंगत होगा, पहले ही कारण का अभाव हो जायगा, इससे प्रमाण और उसका फल कहाँ रहेंगे?

पुण्य पाप क्रिया न स्यात् प्रेत्यभावः फलं कुतः।
बंधमोक्षौ च तेषां न येषां त्वं नासि नायकः॥

अर्थात्—भगवन! जिनके आप स्वामी नहीं हैं उनके यहां पुण्य और पापरूप क्रिया नहीं होगी। जन्मान्तर में उत्पत्ति नहीं होगी; इससे सुख दुःखादि का अनुभव नहीं बन सकेगा तथा बंध और मुक्ति की व्यवस्था भी न बन सकेगी।

सर्वथा अनित्य पक्ष अङ्गीकार करने पर क्या बाधा आती है इस पर हेमचन्द्राचार्य कहते हैं—

कृत प्रणाशाकृत कर्म भोगभव प्रमोक्ष स्मृति भङ्ग दोषान्। उपेक्ष्य साक्षात् क्षणभंगमिच्छन्नहो महा साहसिकः परस्ते॥

अर्थात्—पूर्व कृत कर्मों का बिना फल भोगे हुए नाश हो जाना स्वयं न किए गए कर्मों का फल भोगना, संसार का अभाव, मोक्ष का अभाव तथा स्मरण का नाश, इन अनुभव सिद्ध दोषों की उपेक्षा करके क्षणिकत्व को अङ्गीकार करने वाला दार्शनिक हे भगवन् बहुत अधिक साहसी है।

स्वामी समन्तभद्र तो कहते हैं कि क्षणक्षयैकान्त पक्ष को स्वीकार करने पर बड़ी ही उपहासपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो जायगी। क्योंकि—

हिनस्त्यनभिसंधातृन हिनस्त्यभिसंधिमत्।
बध्यते तद्द्वयापेतं चित्तं बद्धं न मुच्यते॥

अर्थात्—(क्षणिक पक्ष अङ्गीकार करने पर) हिंसा का अभिप्राय न रखने वाला तो हिंसा करेगा; और हिंसा का संकल्प करने वाला हिंसा न कर सकेगा। हिंसा का संकल्प करने वाला तथा हिंसा करने वाला न बंधकर अन्यही बंधनको प्राप्त होगा; जो बद्ध है उसकी मुक्ति न होकर अन्य की ही मुक्ति होगी।

इस प्रकार आचार्य का अभिप्राय है कि क्षणिकैकान्त सिद्धान्तानुसार बड़ी विचित्र हास्यास्पद दशा हो जायगी।

इस तरह तथा और भी अनेक युक्तियों के आधार पर मनन करने से भलीभांति निश्चय हो जाता है कि अनेकान्त का आश्रय लिए बिना तत्व व्यवस्था नहीं हो सकती।

कोई दार्शनिक वैशेषिक की तरह मानते हैं कि दीपक सदृश कुछ पदार्थ क्षणिक हैं और आकाश के तुल्य कुछ पदार्थ नित्य हैं। इस धारणा का निराकरण करते हुए स्याद्वादमञ्जरी में लिखा है कि—

आदीपमाव्योम सम स्वभावं स्याद्वाद मुद्रानति भेदि वस्तु। तन्नित्यमेवैकमनित्यमन्यदिति त्वदाज्ञाद्विषतां प्रलापाः॥

अर्थात्—दीपक से लेकर आकाश पर्यन्त समस्त पदार्थ समान स्वभाव के धारण करने वाले हैं। कारण सब ही स्याद्वाद की मर्यादा का उल्लङ्घन नहीं करते हैं, तथापि उनमें दीपक आदि अनित्य

ही हैं और आकाश आदि कुछ पदार्थ नित्य ही हैं। इस प्रकार भगवन्! आपकी आज्ञा से विद्वेष रखने वालों का प्रलाप है। इस कारण एक ही पदार्थ में नित्य अनित्य दोनों धर्मों को मानना श्रेयस्कर है। उपरोक्त दोनों धर्मों का यदि हम एक साथ वर्णन करना चाहें तो यह असंभव है। जिस समय हम नित्य धर्म का उच्चारण करेंगे उसी समय अनित्य का उच्चारण नहीं होसकेगा; अथवा अनित्य धर्म को कहते समय नित्यधर्म को नहीं कह सकेंगे। अतएव 'सहवक्तुमशक्तेः'—एक साथ में उभय धर्मों का प्रतिपादन करना शब्दों की सामर्थ्य के बाहर है; इस कारण 'अवक्तव्य' नाम का एक भेद और निकल आता है। इस आपेक्षिक अर्थात् कथंचित् अवक्तव्यत्व के द्वारा 'तत्वमनिर्वचनीयं' का सिद्धान्त भी युक्तियुक्त सिद्ध किया जासकता है। उपरोक्त तीन भेदों के पारस्परिक संयोग से गणित शास्त्र के Law of Permutation and Combination के अनुसार सात भङ्ग—भेद—उत्पन्न होते हैं। जैसे नमक, मिर्च, खटाई इन मूल पदार्थों के संयोग से निम्नलिखित सात स्वाद उत्पन्न होंगेः—नमक, मिर्च, खटाई, नमक + मिर्च, नमक + खटाई, मिर्च + खटाई तथा नमक + मिर्च + खटाई। इसी प्रकार (१) नित्य (२) अनित्य (३) अवक्तव्य (४) नित्यानित्य (५) नित्य अवक्तव्य (६) अनित्य अवक्तव्य (७) नित्यानित्य अवक्तव्य। इन सात भेदों में प्रत्येक भेदके साथ स्यात् अथवा कथंचित शब्द जोड़ दिया जाता है, जिसका अर्थ होता है एक दृष्टि से न कि सर्वथा। जैसे स्यात् नित्य का अर्थ है कि वस्तु द्रव्य दृष्टि से नित्य है। इस 'स्यात्' शब्द से यह द्योतित होता है कि वस्तु का अन्य धर्म गौण कर दिया गया है।

यह जैनग्रन्थों में 'सप्तभंगी न्याय' के नाम से कहा जाता है। इस संबंध में यह बात स्मरण रखने योग्य है कि उपरोक्त सप्तभंगी नित्य धर्म को लेकर निरूपण की गई है। इसी प्रकार एक, अनेक, सत् असत् आदि धर्मों की अपेक्षा से पृथक २ सप्तभंगी होती हैं। इस भाँति अनन्त धर्मों की अपेक्षा से उतनी ही सप्तभंगी होंगी।

इस अनेकान्त सिद्धान्त पर सयुक्तिक विषद विवेचन अष्टसहस्री आदि महान ग्रन्थों में किया गया है। यहां संक्षेप में प्रकृत विषय पर प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है।

इस सिद्धान्त के सम्बन्ध में कोई २ विद्वान यह शिकायत करते हैं कि जब यह प्रणाली सब एकान्तों के विरोध को दूर कर उन में भ्रातृभाव उत्पन्न करती है तो फिर जैन ग्रन्थों में जैनेतर सिद्धान्तों का क्यों खण्डन किया गया है। इस शंका का उत्तर सीधा है, अनेकांत एकांतरूप से माने गए धर्म की कमज़ोरी को बताता है कि सत्य के अंश को पूर्ण सत्य मान लेना सत्यता की सीमा के बाहर है। इस कारण सत्य प्रकाशक सिद्धान्त के लिए यह आवश्यक है कि वह विकृत सत्य को दूर कर यथार्थता को प्रगट करे। जैसे, सर्वथा नित्य तत्व को मानना युक्ति तथा अनुभव के विपरीत है, इस कारण अनेकान्त शैली को नित्यैकान्त का निरसन कर यह बताना पड़ता है कि नित्य धर्म मानने वालों की कुशल अनित्य धर्म अङ्गीकार किए बिना नहीं हो सकती।

यह अनेकान्त पद्धति मतभेद सहिष्णुता के

उदार पाठ को सिखाती है। धर्म के नाम पर जो महान विषमता की दीवार एक दूसरे के बीच में खड़ी हो गई है वह इस विज्ञान के द्वारा दूर हो जाती है। यदि हम दूसरों के दृष्टिबिन्दुओं को समझने की चेष्टा करें तो दार्शनिक एकता के साथ २ लौकिक जीवन में भी एकता उत्पन्न हो सकती है। यह एकता ऐसी नहीं होगी जिसमें प्रत्येक का व्यक्तित्व (Individuality) नष्ट हो जावे। यह व्यक्तित्व के रक्षण के साथ २ समष्टि के भाव को उत्पन्न कर Unity in Diversity अर्थात् विविधता में एकता के सिद्धान्त को चरितार्थ करेगी।

प्रत्येक विचारशील का कर्तव्य है कि अनेकान्त के माहात्म्य को समझे, अन्य को समझावे तथा तदनुकूल आचरण करे। इसी में निखिल विश्व का कल्याण है।

स्याद्वाद

[१]

निशा में दशों दिशा के बीच, फैल जाता है जब तम तोम।
उसे लय कर, ज्यों दिव्य प्रकाश, दिवाकर द्वारा करता व्योम ॥

[२]

तथा मिथ्यात्व प्रसृत जब विश्व,
तत्त्व को करने में पहिचान।
वस्तुतः हो जाता असमर्थ,
दूर करने इसके अज्ञान ॥

[३]

जैन दर्शन तब निर्मल ज्योति,
दिखाता स्याद्वाद के ओर।
तत्त्वविद् होते पुलकित देख-
विवश हो, जैसे चन्द्र चकोर ॥

[४]

तत्त्व विषयक बातें हैं बहुत, एक का मुख्य शेष का गौण।
न होता स्याद्वाद, तो तत्त्व-कथन पथ यह दिखलाता कौन ?

[५]

सामने इसके टिकता नाहिं
हठी एकान्तवादि का ज्ञान।
सिंह का लख जिमि प्रखर प्रताप,
स्यार का हो जाता मुंह म्लान ॥

[६]

जयतु ! जिन मुख निर्गत अवदात,
परिष्कृत स्याद्वादमय बैन।
विश्व में मङ्गल मय हो, दिव्य-
"जैनदर्शन" की यह प्रिय दैन ॥

—नाथूराम डोंगरीय जैन, न्यायतीर्थ।

भगवान महावीर और स्याद्वाद !

[लेखक—श्री० बाबू कामताप्रसाद जी जैन, एम० आर० ए० एस०]
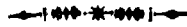
वस्तु अनेक गुणों वाली है और मनुष्य की शक्ति परिमित है। मनुष्य चाहे भी कि वह अपनी अल्प मति से वस्तु के जितने गुणों को समझा है उतने सब गुणों को एकसाथ एक समय में कह दे, परन्तु तो भी वह अपनी इस इच्छा को फलवती बनाने में असफल रहेगा। मनुष्य की ज़बान एक वक्त में एक ही बात को कह सकती है। विष को ही लीजिये। हर कोई जानता है कि संखिया प्राणशोषक है, किन्तु इसके साथ ही कोढ़ रोग को नष्ट करने के लिये वैद्य लोग रोगी पुरुष को संखिया ही खिलाते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि संखिया प्राणनाशक अवश्य है परन्तु साथ ही प्राणरक्षक भी है। संखिया के इन दोनों गुणों का अपेक्षित विवेचन करना ही उसका सत्य निरूपण है और यही स्याद्वाद है। स्याद्वाद वस्तु के यथार्थ निरूपण के लिये एक अत्यन्त आवश्यक नियम है। वह मतमतान्तरों के एकान्त पक्षीय दूषण को मेटने के लिये अद्वितीय है। जहाँ जैनेतर दर्शन वस्तु का निरूपण एकपक्षी करते हैं वहां जैनदर्शन में उसका निरूपण सर्व संभवित अपेक्षाओं द्वारा किया जाता है। जैनदर्शन में निरीह 'ही' को ही स्थान नहीं है, बल्कि वह 'भी' का साथ लेकर चलता है। जैनों का स्याद्वाद यह नहीं कहेगा कि संखिया प्राणशोषक ही है, बल्कि वह कहेगा कि संखिया प्राणशोषक है और प्राण रक्षक भी है। इसी लिये हम कहते हैं कि स्याद्वाद वस्तु को ठीक ठीक बतलाता है।

अच्छा! तो इस सिद्धांत का निरूपण पहले पहले किसने किया? बहुत से विद्वान् कहते हैं कि अन्तिम जैन तीर्थङ्कर भ० महावीर ने ही इस स्याद्वाद् सिद्धान्त को पहले-पहले ढूंढ निकाला था, किंतु जैन मान्यता इससे सहमत नहीं है। जैन मान्यता कहती है कि स्याद्वाद् सिद्धान्त एक प्राकृतिक नियम है—तात्विक दृष्टि से उसके आदि अन्त का पता लगाना कठिन है। हां, प्रकृति की अव्यक्त गोद में से निकाल कर उसे बाह्य जगत में व्यक्त करने का सत् प्रयत्न प्रत्येक तत्ववेत्ता—प्रत्येक तीर्थङ्कर—समय समय में करते रहते हैं। इस कल्पकाल में सबसे पहले इस सिद्धांत का निरूपण पहले जैनतीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव ने किया था और अन्तिम तीर्थङ्कर भ० महावीर ने भी उसका विवेचन दार्शनिक मतभेद की भित्ति को नष्ट भ्रष्ट करके दर्शन समन्वय के लिये—जनता को वस्तु का यथार्थ रूप सुझाने के लिये—उसे एकान्त के गहन अन्धकार से निकालने के लिये किया था।

वैदिक साहित्य में ऐसे उल्लेख मिलते हैं जिनसे स्याद्वाद सिद्धांत का अस्तित्व भगवान् महावीर के पहले प्रमाणित होता है।

ऋग्वेद के नादसीय सूक्त में 'सृष्टि के मूल कारण ब्रह्म को सत् असत् से भिन्न बतलाते हुए अन्यत्र उसको सत् भी कहा है और असत् भी बतलाया है' ज़ाहिरा यह कथन विरुद्ध सा प्रतीत होता है, किंतु इसकी उत्पत्ति अपेक्षावाद के

सिद्धान्तानुसार भलीभांति हो सकती है +। अतः यह स्पष्ट है कि वैदिक काल में स्याद्वाद का प्रचार था। उपाध्याय यशोविजय का निम्न वाक्य भी इसी बात का द्योतक है:—

"ब्रुवाणा भिन्न भिन्नार्थान् नय भेद व्यपेक्षया।
प्रतिक्षिपेयुर्नो वेदाः स्याद्वादं सार्वतान्त्रिकम्"॥
—नयोपनिषत्।

अर्थात्—'अपेक्षाकृत भेद को लेकर पदार्थका भिन्न २ रूप से प्रतिपादन करने वाले, वेद (उपनिषद् आदि) भी स्याद्वाद के प्रतिषेधक नहीं हैं।'

किन्तु जैनों के अतिरिक्त किसी भी अन्य प्राचीन भारतीय दर्शन ने स्याद्वाद सिद्धान्त के प्रतिपादन करने का दावा नहीं किया है। जैनधर्म में ही उसका ठीक-सा निरूपण मिलता है और वह निस्सन्देह खास उसी की चीज़ है। यह बात दूसरी है कि मध्यकालीन दार्शनिक ग्रन्थों में कहीं उसके दर्शन हो जायं। 'महाभारत' (अ० २ पाद २ श्लोक० ३३-३६) में जैनों की आलोचना की गई है और उसके टीकाकार नीलकण्ठ निम्नलिखित पद द्वारा जैनों को स्याद्वाद सिद्धान्तज्ञ नाम से पुकारते हैं:—

'सर्वं संशयितमिति स्याद्वादिनः सप्तभंगीनयज्ञाः।'

अतएव उपर्युक्त वैदिक उल्लेखों से भ० महावीर के पहले से स्याद्वाद सिद्धान्त का प्रचलित होना प्रमाणित है।

बौद्ध साहित्य से भी यही बात स्पष्ट होती है। 'दीघनिकाय सामञ्ञफलसुत्त' में उन मतप्रवर्तकों के नाम मिलते हैं जो म० बु० के पहले से विद्यमान थे। इनमें एक संजय वेरत्थीपुत्र भी था, जिसकी शिक्षा जैन सिद्धान्त स्याद्वाद का विकृतरूप है*। आज यह सर्वमान्य है कि जैनधर्म भ० महावीर के पहले से विद्यमान था। संजय उस प्राचीन जैनधर्म के उपासक एक समय रहे प्रतीत होते हैं। बौद्ध ग्रंथों में इन संजय के शिष्य मौद्गलायन और सारिपुत्र लिखे मिलते हैं †। ये दोनों व्यक्ति संजय को छोड़कर बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गए थे। किन्तु संजय का फिर क्या हुआ? यह पता नहीं चलता। इधर जैनों की 'धर्मपरीक्षा' (अ० १८ श्लो० ६८—६९) से प्रगट है कि मौद्गलायन भ० पार्श्वनाथ की शिष्य परंपरा का एक साधु था, जो जैन मुनिपद से भ्रष्ट होकर बौद्ध हो गया था। 'धर्मपरीक्षा' में मौद्गलायन को बौद्धधर्म का एक खास प्रवर्तक लिखा है ×। अतएव बौद्धों के उपर्युक्त शास्त्रोक्त मौद्गलायन को एक समय जैन मुनि मानना उचित है और तब उनके गुरु संजय का जैन होना भी आवश्यक है। जैन 'महावीर चरित' में भी संजय नामक एक जैन मुनि का उल्लेख है, जिसकी कुछ शंकायें भ० महावीर के दर्शन करने से दूर होगई थीं। उधर बौद्ध शास्त्र में संजय की जो शिक्षायें दी हैं ‡ वे स्याद्वाद सिद्धान्त से मिलती

+ "दर्शन और अनेकान्तवाद" पृ० १३३-१३५।

* Dialogues of the Buddha (S. B. B., Vol. II.) —Samannaphala-Sutta.

† महावग्ग १—२३, २४.

× भगवान पार्श्वनाथ, पृष्ठ ११०—११२.

‡ संजय की शिक्षा का सादृश्य यूनानी तत्ववेत्ता पैर्हो (Pyrrho) के सिद्धांतों से है, जिसने जैन मुनियों (Gymnosophists) के निकट से शिक्षा ग्रहण की थी। अतः संजय को जैनमुनि मानना उचित है।

जुलती है। इससे अनुमान होता है कि इस सिद्धांत का संजयने तेईसवें तीर्थङ्कर श्री पार्श्वनाथ जी की शिष्य परम्परा के किसी आचार्य से सीखा था; किन्तु उसे ठीक ठीक न समझ सकने के कारण वह उसका प्रतिपादन विकृत रूप में करने लगा और सशङ्क हो गया। अंततः उसकी शंकाओं की निर्वृत्ति तीर्थङ्कर महावीर के निकट से होगई। इस दशा में बौद्ध शास्त्रों में संजय का उपरान्त विशेष हाल न मिलना स्वाभाविक है, क्योंकि तब वह फिर से जैन मुनि होगया था। इस उल्लेख से भ० महावीर द्वारा स्याद्वाद सिद्धांत को पुनः एक नया जीवन मिला व्यक्त होता है। मालूम होता है कि प्रभु महावीर ने अपने सिद्धान्त निरूपण में स्याद्वाद पर ही विशेष शक्ति व्यय की थी। आचार्यवर्य्य श्री समन्तभद्रस्वामी भ० महावीर की इसी विशेषता को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि—

बहुगुणसंपदसकलं परमतमपि मधुरवचनविन्यासकलम्।
नयभक्त्यवतंसकलं तव देव मतं समन्तभद्रं सकलम्॥१४३॥

भावार्थ—हे वीर भगवान! आपका मत अनेक नय व भंगों से भले प्रकार सिद्ध होता है। वह पूर्णतः जीव का हितकारी है—इस आत्मा को सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा कर देने वाला है। इसलिये ग्रहण योग्य यथार्थ है। आपके अनेकांतमत से विरुद्ध एकांत मत शब्द रचना में कैसे भी सुन्दर हों परन्तु वे आत्मा को पूर्ण मोक्षमार्ग बताने के लिए असमर्थ हैं।

निस्सन्देह स्याद्वाद सिद्धांत जैनदर्शन में भ० महावीर से बहुत पुराना है; हाँ, भ० महावीर द्वारा उसका पुनः निरूपण खास तौर से हुआ था और उपरान्त के श्री समन्तभद्रादि जैनाचार्यों ने उसे और भी खूब विस्तृत और पल्लवित किया था।

स्याद्वाद और समन्तभद्र

[लेखक—श्री० पंडित श्रीप्रकाश जैन, न्यायतीर्थ, जयपुर]

पदार्थों की सत्ता अनादि है, वस्तु के आश्रित धर्म गुण भी अनादि हैं, सत्य भी अनादि है, इसलिए स्याद्वाद का उपयोग भी अनादि काल से होता चला आया है। किन्तु इसको सिद्धान्त रूप में स्थिर करके, सत्यासत्य निर्णय के लिये उपयोग करने का सर्वप्रथम उपदेश किसने दिया? इसका निश्चयात्मक उत्तर जैनागम के गम्भीर अध्ययन से ही मिल सकता है। हमारे युग की धर्म प्रवृत्ति के परम्परारूप से आदिकारण भगवान् आदिनाथ और उनके पश्चात् होने वाले अन्य बाईस तीर्थङ्करों और आचार्यों ने जनता के समक्ष स्याद्वाद का महत्व बतलाया, किन्तु उन्हीं की सन्तति हमारे लिये भी अनेकान्त की विशेषता समझाने में सहायक हुई—यह नहीं कहा जा सकता। इसलिए वर्तमानकाल में अनेकान्त सिद्धान्त * के प्रकाशक या आदि संस्थापक और अपेक्षाभेद से प्रवृत्त होने वाली सप्तभङ्गी प्रक्रिया के स्वरूप को विशदतया समझाने वाले भगवान् महावीर ही माने जा सकते हैं †।

भगवान महावीर का जन्म और तत्कालीन भारत की दशा

भगवान् महावीर के जन्मकाल में वैदिक कर्मकाण्ड का कितना अधिक प्रचार था और महात्मा बुद्ध किस अमन्दगति से अपने सिद्धान्तों को जनसाधारण तक पहुँचा देने की कोशिश कर रहे थे, यह किसी भी इतिहासज्ञ से छिपा हुआ नहीं है। यज्ञों में पशु हिंसा का उस समय सब से प्रबल प्रचार था, वैदिक क्रिया-कांड का आतंक सर्वत्र छाया हुआ था; इन निरपराध पशुओं पर किये जाने वाले अत्याचार और पाखण्डवाद का नामावशेष करने के लिये ही भगवान् महावीर का अवतार हुआ था।

स्याद्वाद तत्वज्ञान का प्रचार और उसका प्रभाव।

ऐसी परिस्थिति में भगवान महावीर जैनधर्म का पुनः प्रचार बढ़ाने के लिये सचेष्ट हुए। विश्वकल्याण के लिए उनका जन्म हुआ था, इसलिए सर्व-मत-सम्मत उपदेश देना ही उनके जीवन का

---

* स्याद्वाद, अनेकान्तवाद, अपेक्षावाद, कथंचिद्वाद, ये सब एकार्थवाची हैं। प्रस्तुत लेख में भी इन सब को एक ही तात्पर्य में प्रयुक्त हुए समझना चाहिए।

† इससे यह असन्दिग्ध है कि भगवान् महावीर के पूर्व अपेक्षावाद का कार्यरूप में उपयोग हुआ है, किन्तु किसी भी दार्शनिक ने इसे सिद्धान्तरूप में नहीं अपनाया। भगवान् महावीर ने सर्वमत अविरुद्ध व्यापकसिद्धान्तों की नींव डालने के लिये इसका अवलम्बन अनिवार्य समझा और इसी स्याद्वाद के आश्रय से जैनतत्वज्ञान के भव्य-भवन का निर्माण किया।

प्रधान ध्येय था। इस समय तत्वज्ञान सम्बन्धी गुत्थियां सुलझाने के लिये और पाखण्डवाद को भ्रमपूर्ण सिद्ध करने के लिये अपेक्षावाद से अतिरिक्त अन्य कोई उपयुक्त साधन अवशिष्ट नहीं रह गया था। भगवान् महावीर ने सम्पूर्ण दर्शनों के अन्तस्तत्व को हृदयंगम करके उन सबके समन्वयात्मक लोक और शास्त्र से अविरुद्ध अनेकान्त आलोक से जगत् को प्रकाशित किया। स्याद्वाद से वस्तु तत्व का निरूपण किया और अपेक्षाभेद से प्रत्येक पदार्थ के यथार्थ रहस्य को समझाया। आपके इस सत्योपदेश का जनता पर अधिक से अधिक गहरा प्रभाव पड़ा। लोगों ने एकान्त पक्ष छोड़ दिया, हठग्राहिता को अलाञ्जलि दे दी और अपने किये हुए पापकृत्यों पर पश्चात्ताप किया। इतिहासज्ञों का कहना है कि भगवान् महावीर के उपदेश से अद्भुत जागृति हुई और एक विशिष्ट क्रान्ति का जन्म हुआ। भारत नवीन स्थिति में परिवर्तित हो गया। कर्मकाण्ड और यज्ञयाग का विधान पोथियों तक ही सीमित रह गया। तामसिक तपस्याओं, धर्मगुरुओं के अहम्मन्यभावों और स्त्री तथा शूद्र जाति की अत्यधिक अवहेलनाओं का सर्वनाश हुआ। आत्मचिन्तन की ओर लोगों का ध्यान गया और जनता सब प्राणियों को अपने ही समान देखने लगी। इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं है कि इस समय पूर्व के किसी एक भी पाखण्ड का प्रकट रूप में प्रचार न रह गया।

भगवान महावीर का उपदेश यथार्थ था, किन्तु दर्शनमोहनीय के उदय से अभव्यों की रुचि नहीं हुई

भगवान् महावीर सत्योपदेश देते थे, उन्हों ने जो उपदेश दिया वह यथार्थ था। वे वीतराग थे, उनका व्याख्यान किसी व्यक्ति विशेष के लिये नहीं, किन्तु प्रत्येक भव्यात्मा के लिये होता था—उनके उपदेश का जनसाधारण अधिकारी था। जिन्हों ने उनका उपदेश सुना, वे सरल परिणामी होगये। अभव्यों के दर्शन मोहनीय का उदय था; उन्हें इस संसार के दारुण-दुःख ही सहते रहना था, इसलिए यह सुअवसर उनके लिये मङ्गलप्रद नहीं हुआ। और जो अपने एकान्तदर्शन के पक्षपाती थे, मिथ्यान्धकार ने जिन का साथ नहीं छोड़ा था, वे भी कल्याणमार्ग दर्शक के रूपमें उन्हें देख ही कैसे सकते थे?

भ० महावीर के पश्चात्

भगवान् महावीर के निर्वाण-गमन के पश्चात् एकान्तियों के लिये कोई विशेष प्रतिबन्ध नहीं रहा। इन्होंने अपने एकान्ततत्वोपदेश कार्य को पुनः प्रारम्भ कर दिया और संलग्न होकर अनवरत परिश्रम करने लगे। इधर जैनों में इस समय कोई प्रभावशाली व्याख्याता नहीं हुआ। एकान्तियों के शक्तिभर प्रयत्न से अनेकान्त का प्रचार क्षीण होता गया, किन्तु पूर्व में अनेकान्तवाद की छाप संपूर्ण दार्शनिकों के हृदय पर लग चुकी थी; इसलिए एकान्त का पक्ष लेने वाले दार्शनिकों के ग्रंथों में भी अर्थरूप में उसका उपयोग होने लगा और हुआ।

आगे शिष्य परम्परा में

भगवान् महावीर के ही उपदेशामृत के प्रभाव से आगे शिष्य-परम्परा में भी बहुत कुछ ज्ञान जागृत हुआ। उनके पश्चात् होने वाले प्रतिभाशाली आचार्यों ने स्याद्वाद को दर्शन संसार का

अमूल्य रत्न समझा और इससे प्रत्येक वस्तु को समन्वित करने का उद्योग किया। शिष्य-परम्परा में स्याद्वाद तत्वज्ञान का प्रचार करने वाले अनेक आचार्य हुए, जिनमें दिगम्बर सम्प्रदाय में विक्रम की तीसरी शताब्दी तक कुन्दकुन्द, उमास्वामि, पूज्यपाद आदि मुख्य माने गये हैं। इनमें स्याद्वाद प्रचार के लिये स्वामी समन्तभद्र का नामोल्लेख सबसे अधिक महत्व रखता है। स्याद्वाद विद्या का स्वरूप मुख्य रूप से स्वामी समन्तभद्र ने ही द्योतित किया है; इसलिए प्रस्तुत लेख में पाठकों को हम उन्हीं का सविशेष परिचय देने का प्रयास करेंगे।

स्वामी समन्तभद्र

स्वामी समन्तभद्र के विचार

स्वामी समन्तभद्र विचारशील उद्भट तार्किक थे। तर्क की कसौटी पर समीचीन सिद्ध हुए बिना किसी भी बात को सत्य स्वीकार कर लेना इनके मत के विरुद्ध था। परीक्षा प्रधानी होने के कारण ही उनके हृदय-सागर में यह विचार तरंगित हुआ कि हम जिनेन्द्र का स्तवन क्यों करते हैं? उनके उपकार स्मरण का अभिप्राय क्या है? यही कि वे सर्वज्ञ हैं, वीतराग होते हैं, कल्याणप्रद उपदेश देते हैं, सत्य-तत्व निरूपण करतेहैं और युक्ति तथा शास्त्रसे अविरुद्ध वचन कहते हैं। इनके अतिरिक्त और कोई ऐसा कारण विशेष विदित नहीं होता, जिससे कि वे हमारे स्तुत्य सिद्ध हों। परन्तु बहुत कुछ विचार करने पर यह निश्चित हो जाता है कि इन सबका मूलाधार अनेकान्त का उपयोग ही है। अपेक्षाभेद से वस्तु के प्रत्येक धर्म पर विचार करना ही पदार्थों का यथार्थ निरूपण है और ऐसा करने से ही वचनों की युक्ति और शास्त्र से अविरुद्धता है। वीतरागता और सर्वज्ञता का भी किसी अपेक्षा से अनेकान्त का आश्रय ही प्रधान कारण सिद्ध हो जाता है। प्रत्येक वस्तु अनेक धर्मात्मक है। जिसमें सामान्य और विशेष या द्रव्य और पर्याय की अपेक्षा से अनन्त धर्म (स्वभाव) पाये जाते हैं, वही पदार्थ कहलाता है। किन्तु इन सब धर्मों का सच्चा ज्ञान स्याद्वाद का अवलम्बन किये बिना नहीं हो सकता। इसलिए कहा जासकताहै कि स्याद्वाद ही जिनेन्द्र की विशेषता है, उनके तत्वोपदेश की सम्पत्ति है।

प्रत्येक जैनाचार्य का कर्त्तव्य

अतएव यदि कोई भ० महावीर के सच्चे शिष्य होने का और उनके तत्वोपदेश के प्रसार करने का वास्तविक गौरव प्राप्त करना चाहता है तो उसका प्रधान कर्तव्य यही है कि वह अनेकान्त तत्वज्ञान की विशेषता का जनता को परिचय दे, प्रत्येक बात में अपेक्षावाद का आश्रय लेना अनिवार्य है—इसे समझादे। स्वामी समन्तभद्र ने इस सत्य को समझा और अच्छी तरह मनन किया। अन्त में उनका यह निश्चय दृढ़ हो गया कि अनेकांत तत्वज्ञान के उद्धारमें अपना सर्वस्व लगा देना ही प्रत्येक जैनाचार्य के जीवन का सदुपयोग है। अतः मुझे भी अपने जीवन में वस्तु-तत्व का एकान्तसे समर्थन करने वाले तत्वज्ञानाभिमानियों को यह अच्छी तरह सूचित कर देना चाहिए कि तुम्हारा ज्ञान अपूर्ण है, अपेक्षाभेद से पदार्थ के प्रत्येक धर्म पर विचार न करने के कारण त्रुटिपूर्ण है। एक धर्म पर ध्यान देने से पदार्थ के एक ही गुण का ज्ञान हो सकता है, सम्पूर्ण स्वभावों का नहीं। और जब किसी एक धर्म विशेष पर ही दृष्टि

रक्खेंगे तब पदार्थ एक धर्मात्मक ही सिद्ध होगा, अनेक धर्मात्मकता की तो चर्चा भी अपने अनिष्ट साधन में सहायक हो जायगी। जो एकान्त के ही अवलम्बन से इष्ट सिद्धि की आशा करेंगे, उन्हें निःश्रेयस का स्वप्न भी दिखाई नहीं देगा। मोक्ष मार्ग न सम्यकदर्शनात्मक ही है, न सम्यक् ज्ञान-मय ही, और न केवल सम्यक् चारित्र रूप ही। किंतु वह इन तीनों के समुदायात्मक है। इन तीनों के सम्पन्न हो जाने पर ही जीव मुक्त होता है। यदि इन तीनों में से किसी एक को भी अनावश्यक समझ लिया जाय तो काम नहीं चल सकता। जो दार्शनिक पदार्थों को केवल सत्स्वरूप ही मानते हैं, उनके लिये वस्तु को अपेक्षाभेद से असदात्मक भी स्वीकार करना अनिवार्य है और जो वस्तु को केवल असत्स्वरूप ही मानते हैं, उनका भी पदार्थों को किसी अपेक्षा से सत्स्वरूप माने बिना काम नहीं चल सकता। क्योंकि पदार्थ न केवल सत् रूप ही है और न केवल असदात्म ही; किन्तु वह उभयधर्म विशिष्ट है। घड़े के फूट जाने पर उसका घटरूप में अवस्थान नहीं रहता, किन्तु मृद्रूप से उसकी स्थिति अवश्य ही बनी रहती है। स्याद्वाद की इस सूक्ष्मता पर जो सज्जन ध्यान नहीं देते, उनके सिद्धान्त प्रत्यक्षादि प्रमाणों से प्रगट रूप में विरुद्ध प्रतिभासित होने लगते हैं और स्याद्वाद के समक्ष नहीं टिकते।

भावैकान्त में दोष

भावैकान्तवादी ※ सम्पूर्ण पदार्थों को भावात्मक ही मानते हैं, किसी भी वस्तु का अभाव स्वीकार नहीं करते। अतः उनके मत में प्रागभाव, प्रध्वंसा-भाव, अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभाव इन चारों ही प्रकार के अभावों के लिये कोई आश्रय नहीं रह जाता। इस सिद्धान्त में चारों प्रकार के अभावों के लिये स्थान न रहने से चार दोष उपस्थित होते हैं। वर्तमान पर्याय का पूर्व पर्याय में अभाव प्रागभाव

※ सांख्य भावैकान्तवादी है। वह सम्पूर्ण पदार्थों या, प्रकृति आदि पच्चीस तत्वों का, केवल भाव ही स्वीकार करता है। सत्कार्यवाद स्वीकार करने के कारण उसके मतसे किसी भी पदार्थ का अभाव नहीं है। स्वामी समन्तभद्र कहते हैं—

"भावैकान्तेपदार्थानामभावानामपह्नवात्। सर्वात्मकमनाद्यन्तमस्वरूपमतावकम्" ॥

अर्थात्—भावैकान्तवादी सांख्य के मत में अभाव के लिये कोई आश्रय न रहने के कारण इतरेतराभाव या अन्योन्याभाव के अभाव में प्रकृति आदि पच्चीस तत्व एक ठहरेंगे और भिन्न-भिन्न वर्णन में विरोध आवेगा। अत्यन्ता-भाव के अभाव में प्रकृति और पुरुष में भेद सिद्ध न हो सकेगा, तब इन दोनों के भिन्न-भिन्न लक्षण अयुक्त सिद्ध होंगे। प्रागभाव के अभाव में प्रकृति महान्, महान् से अहङ्कार, अहङ्कार से षोडशक गण आदि की उत्पत्ति असंगत प्रतीत होती है; इसलिए इनके अनादित्व का प्रसंग आ जायगा। प्रध्वंसाभाव के निह्नवपक्ष में किसी भी तत्व का विनाश असम्भव है। इसलिए प्रलयवर्णन की असम्भवता का प्रसंग आजायगा। इसी प्रकार वेदान्ती जो सत्तामात्र परब्रह्म को और विज्ञानाद्वैतवादी (बौद्ध) ज्ञानमात्र एक तत्व को मानते हैं और भेदभाव को अविद्या या भ्रमरूप अवस्तु स्वीकार करते हैं, उनकी भी यह कल्पना—सर्वथा भावात्मक एक तत्व—किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं हो सकती, स्याद्वाद से विचार करने पर उनके लिये भी कथंचित् अभावात्मकतत्व मानना अनिवार्य सिद्ध हो जाता है।

कहलाता है। इनके न स्वीकार करने से कार्यात्मक द्रव्य के अनादित्व का प्रसंग आ जाता है ※। आगामी पर्याय में वर्तमान पर्याय का अभाव प्रध्वंसाभाव कहलाता है; यदि इसको न माना जाय तो द्रव्य की किसी भी पर्याय का विनाश नहीं माना जा सकता, कार्यद्रव्य की अनन्तता का प्रसंग आ जाता है †। एक द्रव्य की वर्तमान पर्याय में समान जातीय दूसरे द्रव्यको—एक पुद्गल द्रव्यकी वर्तमान अवस्था में दूसरे पुद्गल द्रव्य की—वर्तमान पर्याय का अभाव होना अन्योन्याभाव बतलाया गया है; इसको न मानने से उन सब की एकता का प्रसंग आ जायगा ×। एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य का अभाव—पुद्गल में चेतन का न होना—अत्यन्ताभाव कहा गया है; इसको स्वीकार न करने से सम्पूर्ण पदार्थों की एकात्मकता का प्रसंग आ जायगा +। सर्वथा भावैकान्त पक्ष में ये दोष उपस्थित हुए बिना नहीं रह सकते, जिनको स्वीकार करना इसके पक्षपातियों के लिये भी इष्ट नहीं।

अभावैकान्त में दोष

जो भावैकान्त में दोष उपस्थित हो जाने से अभावैकान्त को मानते हैं, किसी को भी भावात्मक स्वीकार नहीं करते, उनके मत में प्रमाण की व्यवस्था भी उचित प्रतीत नहीं होती—उसके भी अभाव का प्रसङ्ग आजाता है। जब प्रमाण की व्यवस्था नहीं बनती, तब तो अपने इष्ट का साधन और परपक्ष दूषण भी नहीं हो सकता *। इसलिए अभावैकान्त पक्ष भी ठीक नहीं।

उभयैकान्त पक्षमें दूषण

जो इन दोनों ही पक्षों में दोष देखकर उभयैकान्तपक्ष स्वीकार करते हैं, वे भी विचारशील नहीं हैं, क्योंकि एकान्तपक्ष में सहानवस्थान विरोध प्रत्यक्ष ही है †। और दोनों पक्षों में आने वाले दोष भी आये बिना नहीं रहेंगे।

अवाच्यतैकान्त में दोष

जो इन तीनों ही पक्षों में दोष आजाने से वस्तु के स्वरूप को सर्वथा अवाच्य कहते हैं—अवाच्यतैकान्त का अवलम्बन करते हैं, वे 'वस्तुका स्वरूप अवाच्य है' ऐसा भी नहीं कह सकते ‡।

इससे स्पष्ट है कि भाव, अभाव, उभय और अवाच्य ये चारों ही एकान्त श्रेयस्कर नहीं, इनके स्वीकार करने पर अनेक दोष आये बिना नहीं रहते। किन्तु यदि विधि और प्रतिषेध का आश्रय कर स्याद्वाद से इनपर विचार किया जाय तो कोई भी दोष उपस्थित नहीं होसकता—विरोध के लिये

※ "कार्यद्रव्यमनादि स्यात् प्रागभावस्य निह्नवे।"

† "प्रध्वंसस्य च धर्मस्य प्रच्यवेऽनन्ततां व्रजेत्।"

× "सर्वात्मकं तदेकं स्यादन्यापोहव्यतिक्रमे।"

+ "अन्यत्र समवाये न व्यपदिश्येत सर्वदा।"

※ "अभावैकान्तपक्षेपि भावापह्नववादिनाम्। बोधवाक्यं प्रमाणं न केन साधन दूषणम् ॥"

भा०—अभावैकान्तवादी माध्यमिक (बौद्ध) हैं। किन्तु उनके अभावैकान्त में नैरात्म्य का साधन और परार्थ का दूषण नहीं बन सकता; यदि इसे स्वीकार करेगा तो भावपक्ष की सिद्धि हो जायगी।

† "विरोधान्तोभयैकात्म्यं स्याद्वाद न्याय विद्विषाम्।"

‡ अवाच्य मित्यत्र च वाच्यभावादवाच्य मेवेत्ययथा प्रतिज्ञम्।
स्वरूप तश्चेत्परूपवाचि स्वरूप वाचीति वचो विरुद्धम् ॥२९॥"

कोई स्थान ही नहीं रह जाता। स्याद्वादी कहेगा--वस्तु कथंचित (स्वद्रव्य,क्षेत्र,काल, भाव की अपेक्षा) भावस्वरूप है, कथंचित् (पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा) अभाव स्वरूप है, कथंचित् (क्रमार्पित उभयधर्म की अपेक्षा से) उभय स्वरूप है, कथंचित् (सहार्पित उभयधर्म की अपेक्षा से) न कही जा सकने के कारण अवाच्य है, कथंचित् (स्वद्रव्यादि चतुष्टयापेक्षया और उभयधर्मापेक्षया) भावावक्तव्य रूप है, कथंचित् (परद्रव्यादि चतुष्टयापेक्षया और उभय धर्मापेक्षया) अभावावक्तव्य रूप है और कथंचित् (क्रमार्पित उभयधर्मापेक्षया और युगपत् उभयधर्मापेक्षया) भावाभावावक्तव्य है।

इसी तरह और भी जितने एकान्त पक्ष हैं, वे सब अपूर्ण हैं, विचार करने पर उन सब में अनेक दोष दिखाई देते हैं। अद्वैत एकान्त, पृथक्त्व एकान्त, नित्यैकान्त, अनित्यैकान्त, सदेकान्त, असदेकान्त आदि किसी भी एकान्त का अवलम्बन करके हम अपने विचारों को सुव्यवस्थित नहीं बना सकते। विचार शील महानुभाव समझ सकते हैं कि जैनों का स्याद्वाद सिद्धांत ही वस्तुतत्व निर्णय के लिए एक ऐसा साधन है, जिसे हम व्यवस्थित कह सकते हैं। स्याद्वादी भी वस्तु तत्व को नित्य, अनित्य, एक, अनेक, सत, असत आदि धर्मविशिष्ट मानते हैं, किन्तु कथंचित् रूप से। स्याद्वाद के अनुयायी इन सब का समन्वय करके अपना सिद्धान्त निश्चित करते हैं और किसी एक धर्म विशेष का कथन करते समय उस धर्म को प्रधान और अन्य सब धर्मों को गौण मानकर विवक्षानुसार विधि या प्रतिषेधात्मक वाक्य से उसका विवेचन करते हैं *। यदि यहाँ पर शङ्का की जाय कि नित्यैकान्तादि नयों को जैनों ने मिथ्या (झूँठे) माना है, और उन सबके समन्वय से अपना सिद्धान्त बना लिया, इसलिए मिथ्या नयों का समूहात्मक जैनों का सिद्धान्त भी असत्य ही होना चाहिए। यह भी ठीक नहीं है; क्योंकि जैनों के नय सापेक्ष हैं, अन्य सिद्धान्तों की भांति निरपेक्ष नहीं, अतः सत्य हैं †। दो परस्पर विरुद्ध बातें एक सत्य को कहती हैं, अतः एक असत्य कथंचित् सत्य है, सर्वथा नहीं। यही बात जैनों के सिद्धान्त में भी है। जो नय अनपेक्ष होकर स्वपर का विघात करने वाले थे, वे ही सापेक्ष होकर, एक धर्म अपने से अतिरिक्त अन्य सब धर्मों से उपेक्षा न धारण कर उनकी भी कथंचित् अपेक्षा रखता हुआ, अपना और दूसरों का उपकार करने वाले हो जाते हैं ×। जैसे—स्वचतुष्ट की अपेक्षा से पदार्थ सत्स्वरूप हैं और परचतुष्टय की अपेक्षा से असदात्मक हैं, महासामान्य की अपेक्षा से सब पदार्थ एक रूप हैं और अपने अपने स्वरूप की अपेक्षा से भिन्न २ हैं, प्रत्यभिज्ञायमान होने के कारण सब द्रव्य नित्य भी हैं और कालभेद से प्रतीयमान होने के कारण अनित्य भी हैं। इसी प्रकार पदार्थ में जितने भी

* "नियम्यतेऽर्थो वाक्येन विधिना वारणेन वा।"

† "मिथ्यासमूहो मिथ्या चेन्न मिथ्यैकान्तताऽस्ति नः। निरपेक्षा नयाः मिथ्या सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत् ॥"

× "य एव नित्यक्षणिकादयो नया मिथोऽनपेक्षाः स्वपरप्रणाशिनः।
त एव तत्वं विमलस्य ते मुनेः परस्परेक्षाः स्वपरोपकारिणः ॥"

धर्म हैं उन सब का अपेक्षाभेद से प्ररूपण करना ही स्याद्वाद है और किसी भी धर्म का ठीक-ठीक विवेचन करने के लिये उस पदार्थ के अन्य धर्मों की उपेक्षा न करके उनके भी अस्तित्व का संकेत करते हुए कथन करना ही सप्तभङ्गी प्रक्रिया है। इसी सप्तभङ्गी प्रक्रिया को प्रत्येक पदार्थ में और पदार्थ के प्रत्येक धर्म में एकानेकादि विकल्पों में लगाने की आज्ञा दी गई है *। इसके सातों ही भङ्ग नय की अपेक्षा से कथंचित् ही माने जाते हैं, सर्वथा रूप से नहीं।

अब हम यह बतला देना आवश्यक समझते हैं कि स्वामी समन्तभद्र ने इस स्याद्वाद सिद्धान्त को केवल तात्त्विक विषयों में ही नहीं लगाया; वरन् वे परीक्षा प्रधानी थे, किसी भी बात को युक्तियुक्त सिद्ध हुए बिना स्वीकार कर लेना उनके मन्तव्य के विरुद्ध था, अतएव उन्हों ने इस अपेक्षावाद से लौकिक चर्चाओं का भी समाधान किया। व्यावहारिक विषयों में उन्हों ने अनेकान्त का जो उपयोग किया है, वह बड़ा ही सुंदर है। दैव तथा पुरुषार्थवाद के सम्बन्धमें जो निर्णय दिया है वह भी युक्ति संगत है। दैव और पुरुषार्थ की चर्चाएं आजकल भी प्रायः चला ही करती हैं, इसलिए इस सम्बन्ध में स्वामी समन्तभद्र के विचारों को यहाँ लिख देना असंगत न होगा।

दैव और पुरुषार्थ का निर्णय

दैव और पुरुषार्थ में कहाँ दैव का प्राबल्य माना जाय और कहाँ पुरुषार्थ की प्रधानता स्वीकार की जाय? एक दिनभर परिश्रम करने वाले मनुष्य के पास पाँच पैसे नहीं जुड़ते और ऐसा भी अवसर उपस्थित होजाता है जब कि वह बिना भोजन किये ही अपने कई २ दिन व्यतीत करता है और ऐसे भी अनेकों बताये जा सकते हैं जो अपने जूतों की सफ़ाई के लिये ही बहुतसा द्रव्य प्रति दिन व्यय कर डालते हैं। कुछ समझ में नहीं आता, दैव और पुरुषार्थ दोनों ही के आश्चर्यजनक कौतुक होते हैं। दैवके पक्षपाती कहतेहैं "दैवं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम्" अर्थात् सब जगह भाग्य से ही फल मिलता है। यदि भाग्य अनुकूल नहीं होता, तो शक्तिभर प्रयास करने पर भी सफलीभूत नहीं हो सकते। जैसा होनहार होता है, वैसी ही बुद्धि हो जाती है, वैसा ही काम बन आता है और सहायक भी तदनुरूप ही मिलते हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि भाग्य ही सिद्धि-प्रदाता है। किन्तु पुरुषार्थ के पक्षपाती इससे विपरीत ही शिक्षा देते हैं। उनका कहना है कि पुरुषार्थ के आगे भाग्य का कोई मूल्य नहीं। दैव से ही सफलता मिलती है, ऐसा विचारने वाले कायर हैं। भाग्यवादियों का भाग्य भी उद्योग ही का साथ देता है। उद्योग के अभाव में कोई भी अभीष्ट सिद्ध नहीं होता। हमने कभी भी उद्योग को निष्फल नहीं देखा। विफलता त्रुटियों का ही परिणाम है। भाग्य से सिद्धि मानने वाले स्वयं अन्धे हैं, और दूसरों को भी अन्धा बना देना चाहते हैं। इसी लिए हम कह सकते हैं—पुरुषार्थ ही भाग्य की कुञ्जी है। इन दैव और पुरुषार्थ पर परस्पर विरुद्ध दोनों मतों पर गम्भीर विचार कर स्वामी समन्तभद्र ने स्याद्वाद का उपयोग किया और कहा— यदि हम दैव से ही अर्थसिद्धि मानलें तो दैव की

* "एकानेकविकल्पादावुत्तरत्रापि योजयेत्। प्रक्रियां भङ्गिनीमेनां नयैर्नयविशारदः॥"

उत्पत्ति पुरुषार्थ पूर्वक मानने की क्या आवश्यकता है? क्योंकि पहिले जन्म में किये हुए शुभाशुभ कर्म ही दैव रूप में परिणत होकर इष्ट और अनिष्ट फल देते हैं, ऐसा कहा गया है। यदि दैव ही को सर्वसर्वा माना जाय तो सब जगह ही पुरुषार्थ को निष्फल कहना पड़ेगा, जो प्रत्यक्ष-विरुद्ध है *। तथा पुरुषार्थ की महत्ता स्वीकार किये बिना कभी मोक्षादि पुरुषार्थ के बिना कभी भी सिद्ध न हो सकने वाले कार्यों की सिद्धि नहीं हो सकती। क्योंकि कर्मों का क्षय दैव से नहीं पुरुषार्थ द्वारा—तपश्चरणादि से विभाव पर्यायों पर विजय प्राप्त कर लेने पर—ही हो सकता है। ऐसी ही बात पुरुषार्थ के सम्बन्ध में भी है। यदि पुरुषार्थ से ही सफलता मानें तो पुरुषार्थ को दैव पूर्वक मानना अनुचित है। यदि केवल पुरुषार्थ की ही आवश्यकता समझी जाय तब तो कोई भी पुरुषार्थ निष्फल नहीं होना चाहिए; सम्पूर्ण उद्योग करने वालों को अवश्य ही सफलता मिल जानी चाहिए †। किन्तु ऐसा तो कभी देखा जाता नहीं, इसलिए उभय पक्षों के तथ्य को ध्यान में रखकर कहना पड़ता है कि दोनों ही प्रधान हैं। इतर निरपेक्ष किसी एक से काम नहीं चल सकता। इष्टसिद्धि के मार्ग में दोनों ही का सहयोग अपेक्षित है। कहां दैव का प्राबल्य है और कहां पुरुषार्थ की प्रधानता? इसके लिये तो हम यहां निर्णय कर सकते हैं कि—जहां बिना कुछ उद्योग किये कार्य हो जाय उसे दैविक समझना चाहिए और जहाँ ऐसा न हो, बहुत कुछ परिश्रम करने के पश्चात् इष्ट या अनिष्ट की प्राप्ति हो उसके लिये समझना चाहिए कि यह हमारे उद्योग का परिणाम है ×। मैं समझता हूँ, स्वामी समन्तभद्र के इस निर्णय की कौन बुद्धिमान प्रशंसा न करेगा।

इसी अनेकान्तवाद का पक्ष लेकर स्वामी समन्तभद्र ने सर्वथैकान्तवादियों से वाद करने का दृढ़ निश्चय किया। उन्होंने अपना वादक्षेत्र भी सीमित नहीं रक्खा। वे अपनी जन्म-भूमि में ही वाद-विवाद नहीं करते रहे, वरन् उन्होंने 'वाद' के लिये अखिल भारत को अपना लीलास्थल बनाया। उनके 'वाद' प्रारम्भ का यह उद्देश्य न था कि किसी पर विजय प्राप्त की जाय, किसी को हराया जाय। उनकी तो यही शुभ भावना थी कि पक्षपात न हो, साम्प्रदायिकता का समूल नाश हो, सन्मार्ग का प्रचार हो। इसके लिये उन्होंने इसकी भी प्रतीक्षा करना आवश्यक न समझा कि कोई मुझे वाद के लिये निमन्त्रण दे। उनके लिये तो यही प्रधान कर्तव्य था कि जहां भी एकान्त का अधिक प्रचार दिखाई दे, वहीं जाकर अपने स्याद्वादतत्वज्ञान को समझावें। इस स्याद्वाद सूर्य के समक्ष, एकान्त तिमिर की सत्ता न रहती देख जो लोग इनके विरोध में उपस्थित होते उनसे इनका शास्त्रार्थ होता, और युक्तिहीन होने के कारण वे लज्जित होकर चुप हो जाते। स्वामी जी के

* "दैवादेवार्थसिद्धिश्चेद्दैवं पौरुषतः कथम्। दैवतश्चेदनिर्मोक्षः पौरुषं निष्फलं भवेत् ॥"

† "पौरुषादेव सिद्धिश्चेत् पौरुषं दैवतः कथम्। पौरुषाच्चेदमोघं स्यात् सर्वप्राणिषु पौरुषम् ॥"

× "अबुद्धिपूर्वापेक्षायामिष्टानिष्टं स्वदैवतः। बुद्धिपूर्वव्यपेक्षायामिष्टानिष्टं स्वपौरुषात् ॥"

स्याद्वाद वाक्प्रहार से कुत्सित मतों का प्रभाव बहुत कुछ अंशों में कम हो गया *।

वाद के लिये घूमना इनका नित्य कर्म था †। प्रायः सभी प्रसिद्ध देशों और नगरों में आपने भ्रमण किया और वहाँ के सभी विद्वानों को शास्त्रार्थ के लिये आह्वान (Challenge) किया। जिसके समक्ष धूर्जटि सरीखे प्रसिद्ध विद्वानों की ही जिह्वा अपने पास कोई युक्तियुक्त उत्तर न होने के कारण बोलने के लिये उठाई हुई भी तालु स्थान में ही लगी रह जाती थी, ऐसे अनेकान्तवादी से वाद करने के लिये साधारण विद्वानों की तो शक्ति ही क्या थी जो खड़े होते ‡। स्याद्वाद तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिये इन्हों ने अनेक राजसभाओं में भी पुकार-पुकार कहा कि यदि किसी एकान्त के पक्षपाती को अपने तत्त्वज्ञान का अभिमान है, तो वह सम्मुख उपस्थित होवे; हम शास्त्रार्थ के लिये तैयार हैं *। पण्डितों से भरी हुई राजसभा में से कोई भी विद्वान् इनसे शास्त्रार्थ करने के लिये खड़ा नहीं होता और सबके सब इस समन्तभद्र महावादी के प्रस्तुत होने पर नीचा सिर करके ज़मीन कुचरने लगते +। जो बिना कुछ सोचे समझे एकान्त पक्ष से अपना मत प्रगट कर भी देते, वे अनेक युक्तियों द्वारा पराजित होकर अपने किये हुए पर बहुत मूर्खता प्रकट करते।

हम पूर्व में लिख चुके हैं कि स्वामी समन्तभद्र ने यह अच्छी तरह समझ लिया था कि वीतराग भगवान् की विशेषता युक्ति और शास्त्र के अविरुद्ध वाणी या ज्ञान है और वह अनेकान्तात्मक है। इसलिए अनेकान्त की प्रसंशा ही उनका सच्चा स्तवन होसकता है। इस विचार को स्वामी जी ने अपने जीवन की घटनाओं से दृढ़ भी बना दिया है। शिवपिण्डी को नमस्कार करने के लिये आग्रह करने पर उन्हों ने चौबीस तीर्थङ्करों की जो स्तुति की—स्वयम्भू स्तोत्र का पाठ किया—वह अनेकांत

---

* जैन ग्रन्थों में स्वामी जी के वचनों की बहुत अधिक प्रशंसा की गई है। वादशक्ति के संबंध में—यद्वचोवज्रपातेन निर्भिन्नाः कुमताद्रयः, वाग्वज्रनिपात पाटित प्रतीपराद्धान्तमहोघ्र कोटयः, यदीयवाग्वज्रकठोरपाश्चूर्णीचकार प्रतिवादि शैलान्, कुवादिविद्याजयलब्धकीर्त्तयः, दुर्वादिवादकण्डूनां शमनैकमहौषधिः इत्यादि जैनाचार्यों के उद्गार आपकी लोकोत्तर प्रतिभा के उत्कर्ष को और भी अधिक प्रमाणित कर देते हैं।

† वादार्थं विजहार संप्रतिदिनं शार्दूल विक्रीडितम्।

‡ अवटुतटमटति झटिति स्फुटपटुवाचाटधूर्जटेर्जिह्वा।
वादिनि समन्तभद्रे स्थितवति सति का कथाऽन्येषाम्॥

* राजन्! यस्यास्ति शक्तिः स वदतु पुरतो जैननिर्ग्रन्थवादी।

+ श्री मत्समन्तभद्राख्ये महावादिनि चागते।
कुवादिनोऽलिखन् भूमिमंगुष्ठैरानताननाः॥

इसका प्रधान कारण यही था कि–उन्हें पक्का विश्वास हो गया था कि इस स्याद्वादी सत्यप्रवक्ता के समक्ष हमारे मिथ्या सिद्धान्तों की दाल न गल सकेगी। इसीलिए प्रतिपक्षी विद्वान् इन्हें देखते ही किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाते थे।

सिद्धांत की प्रशंसासे ही परिपूर्ण है। आप्तमीमांसा में सर्वज्ञ की विशेषता बतलाने में भी स्याद्वाद के स्वरूप का ही विवेचन किया गया है और युक्त्य-नुशासन में भी आपके ये ही विचार विकसित हुए हैं।

स्तुतिग्रन्थों की विशेषता

स्वामी समन्तभद्र के उपलब्ध ग्रन्थों में अधिक के स्तुतिरूप होने में भी कुछ विशेषता अवश्य ही होनी चाहिए। विद्वान् समझ सकते हैं कि स्तुति ग्रन्थों की रचना के और भी लाभ दृष्टि में रक्खे गये होंगे, किन्तु इसमें ये भाव भी अवश्य ही होने चाहिएं कि अनेकान्त की प्रशंसात्मक स्तुति ही जिनेन्द्रभगवान् की विशेषताओं का वर्णन है, सत्योपदेष्टा का स्तवन इसी रूपमें होना चाहिए। यही अर्हत की उपासना का अनावृतरूप है, इत्यादि। आपने इसके अतिरिक्त अपनी स्तुतियों से यह भी प्रमाणित किया है कि यह मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह सर्वज्ञ भगवान का ही उपदेश है, उन्हीं का यह मत है और मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वे उन्हीं के वाक्य हैं।

अन्तिम निवेदन

अब हम अन्त में यह बतला देना आवश्यक समझते हैं कि जिस अनेकान्ततत्वज्ञान का स्वामी समन्तभद्र ने प्रचार बढ़ाया, वह केवल जैनों के ही उपयोग में लाने की वस्तु नहीं, वरन् प्रत्येक विचार-शील मनुष्य इसे काम में ले सकता है। सभी जैना चार्यों की यही इच्छा रही है कि प्रत्येक मनुष्य हमारे स्याद्वाद सिद्धान्त को समझे और इसके द्वारा अपने जीवन की समस्याओं पर विचारकर कृतकार्य होवे। जितने भी समाज, सम्प्रदाय, दल-बन्दियां और मतभेद दिखलाई देते हैं, उन सबकी उद्भूति एकान्त के अनुचित पक्षपात का ही फल है। एक पक्ष के आग्रह के कारण लोगों में अहं-भाव और रागद्वेषादि परिणाम उत्पन्न होते हैं। किन्तु जिन्हें पक्षविशेष से कोई प्रयोजन नहीं, उनका मन सब विषयों में राग और द्वेष इन दोनों ही के न रह जाने के कारण समान रहता है *। ऐसे ही महानुभाव किसी भी विषय के तथ्य को पहिचान सकते हैं। अपेक्षावाद के निरुपद्रव साम्राज्य में किसी भी प्रकार के विरोध का उप-स्थित होना असम्भव है। पक्षपात एक प्रकार के अपराध का अपराध है, जो इसे करता है वह सच्चे तत्वज्ञान से अवश्य ही वंचित रह जाता है। हमारे पिता को यदि कोई चाचा और कोई बाबा के नाम से सम्बोधित कर रहा है तो हमें आपत्ति उपस्थित करने की आवश्यकता ही क्या है? क्यों कि वे अपेक्षा भेद से चाचा भी हैं और बाबा भी। वे पिता ही हैं—हमारे इस विचार की कौन बुद्धि-मान प्रशंसा करेगा। हमारी यह ज़िद जिस प्रकार प्रत्यक्ष में भ्रमपूर्ण सिद्ध है, वैसे ही सम्पूर्ण एकान्त पक्षों को समझ लीजिए।

हमारे समाज में भी जो लड़ाइयां और कलह उत्पन्न हुई हैं, वे सब एकान्त के अनुचित पक्षपात का ही दुष्परिणाम हैं। यदि हम अपेक्षा भेद से काम लेते, प्रत्येक चर्चा पर विभिन्न दृष्टियों से विचार करते, सामयिक विचार प्रवाह को ध्यान में रख-

* "एकान्तधर्माभिनिवेशमूला—रागादयोऽहंकृतिजा जनानाम्।
एकान्त हानाच्च स यत्तदेव, स्वाभाविकत्वाच्च समं मनस्ते॥"

कर अपनी कार्यप्रणाली का निर्वाचन करते तो यह स्वप्न में भी सम्भव नहीं था कि हम अपने औद्धत्य-पूर्ण कार्यों के कारण सभ्यता से इतने तिरस्कृत किये जाते और इस भयङ्कर परिणाम का मुखावलोकन करते। किन्तु इष्ट मार्ग के विपरीत चलने में हमने क्या कुछ कमी रक्खी ? स्याद्वाद के उपासक कहलाकर भी एकान्त-पक्ष पिशाच की ही पूजा की। दलबन्दियों में लगकर विद्वेष के बीज को अंकुरित किया। इसके अतिरिक्त एकान्त-ग्रह के वशीभूत होकर हमसे जितनी भी कुचेष्टाएं बन पड़ीं सब कर डालीं। यदि हमसे बन पड़ा तो अपने भाइयों का जिनसे हमारा बहुत कुछ भला हो होने की संभावना थी और चाहे जिनका अन्तरङ्ग हमारे उत्थान के सत्प्रयत्न में ही संलग्न था, उनके भी सर्वस्व अपहरण करने, उनको नीचा दिखाने और पूर्ण कष्ट पहुँचाने के लिये केवल अपने पक्षको प्रबल सिद्ध करने के भ्रमपूर्ण विचार से हमने अपनी सामर्थ्य होते हुए कुछ उठा नहीं रक्खा। वर्तमान में इसी दुःसह आताप के परिपाक से हम सन्तप्त हैं। अब इस समय हमारा सहायक और हो ही कौन सकता है ? अब भी हमारे लिये समय है, स्याद्वाद सन्देश सुनाता है कि तुम अपेक्षावाद से अपना मार्ग निर्धारित करने पर अब भी जीवन सुख से बिता सकते हो। इस बात पर दृढ़ विश्वास करलो कि कोई भी मनुष्य अपना जीवनकाल सुखपूर्वक तभी व्यतीत कर सकता है जब कि वह स्याद्वाद का आश्रय लेकर अपनी दैनिकचर्या निर्धारित करे और जीवन के प्रति क्षण में अपेक्षावाद का उपयोग करे।

समय की गति को देखते हुए कहा जा सकता है कि अब मतमतान्तरों के खण्डन-मण्डन का समय नहीं, किसी से द्वेष बढ़ाने की आवश्यकता नहीं। इस समय तो अनेकान्त तत्वज्ञान को जनता के समक्ष प्रगट करना और उसकी महत्ता से प्रत्येक विचारशील को परिचित कर देना ही जैनों का आद्य कर्तव्य है। और इससे भी आगे बढ़कर यदि कोई जैनों का आवश्यक कर्तव्य अवशिष्ट रह गया है तो, वह है सामाजिक शांति-स्थापन या समाजसुधार। इस सामाजिकशांति के लिये किसी पक्षविशेष को ग्रहण कर पार्टीबन्दी के कार्य में जुटने की आवश्यकता नहीं। किन्तु इस समय तो समाज की प्रत्येक आवश्यकता को ध्यान में रखकर अपेक्षा भेद से काम लेना ही समाज सुधार में सहायक होगा। इस कलह के समय में जो स्वयं पक्षपात से मुक्त होकर शांति स्थापन के लिये चेष्टा करेगा, जनता को स्याद्वाद का गूढ़ रहस्य समझाकर उसका पक्षपातपूर्ण दुराग्रह छुड़ादेगा, जो यह भी बतलाने का सत्प्रयत्न करेगा कि स्याद्वाद का उपयोग सिद्धान्त शास्त्रों और न्यायग्रन्थों तक ही सीमित नहीं, इसका क्षेत्र बड़ा ही विस्तृत है, जीवन के क्षण-क्षण में होने वाली घटनाओं में स्याद्वाद का उपयोग किया जा सकता है और सफलता प्राप्त की जा सकती है, वही स्याद्वाद की दृष्टि से सच्चा समाज-सुधारक कहा जा सकेगा और अनेकान्त के प्रचारक होने का सुयश लाभ कर सकेगा। इस समय का हितोपदेष्टा भी हम उसे ही कहेंगे। जैनाचार्यों ने अपने ग्रन्थों में प्रत्येक कार्य में स्याद्वाद के उपयोग करने की आज्ञा दी है—जो ऐसा नहीं करता उसे स्याद्वादी (जैनी) कहलाने का अधिकार भी नहीं बताया।

❀ स्याद्वादांक ❀
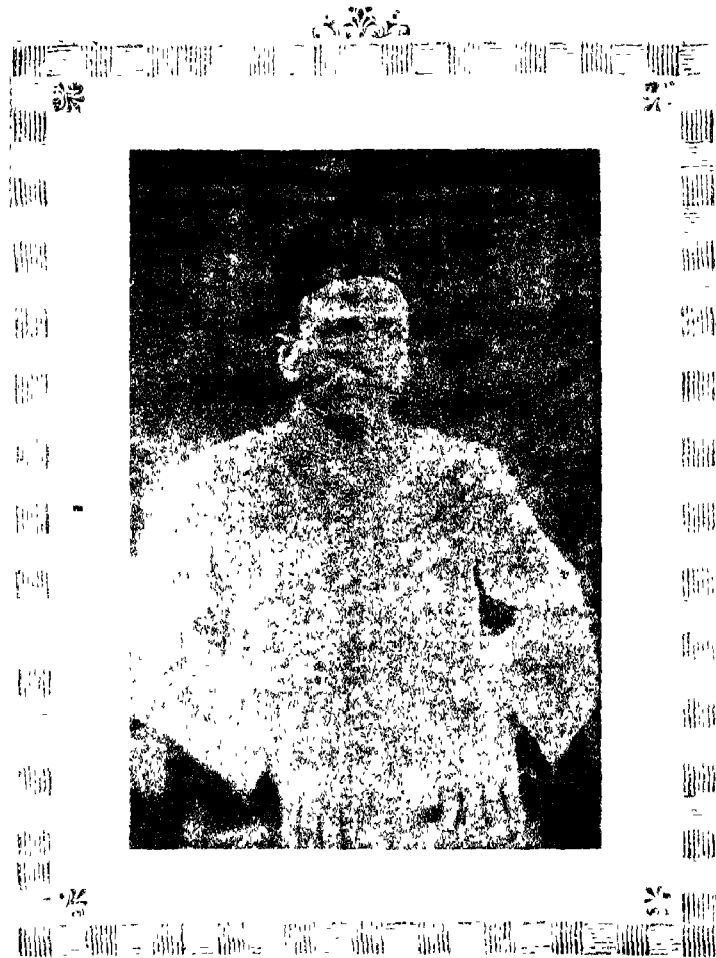
साहू प्यारेलाल जी जैन रईस, धामपुर ।

स्याद्वादांक

का अपलाप करदें, तो संसार का व्यवहार तक नहीं चल सकता; वस्तु का निर्णय तो बहुत दूर की बात है। उदाहरणार्थ-यदि हम किसी मनुष्य को 'मामा' कहते हैं, तो क्या वह संसार के सभी मनुष्यों का मामा है? उत्तर में कहना पड़ेगा कि नहीं। किन्तु किसी की अपेक्षा से वह चाचा भी है, किसी की अपेक्षा से भाई भी है आदि। इसी प्रकार एक अखण्ड अनन्त धर्म रूप वस्तु को भी किसी एक धर्म की मुख्यता से उस एक रूप कहना अयुक्त है, किन्तु भिन्न भिन्न अपेक्षाओं से उसे नाना रूप ही मानना सर्वथा न्याय संगत है।

इतनी प्रारम्भिक भूमिका के बाद अब मैं अपने विषय पर आता हूँ, और भिन्न भिन्न दर्शनों के ग्रन्थों का अवतरण देकर यह दिखाने का यत्न करता हूँ, कि भारतीय प्रसिद्ध जैनेतर विद्वानों ने भी "स्याद्वाद" का अपने यहां कहां तक उपयोग किया है।

नित्यानित्य विचार

जैन दर्शन की दृष्टि से प्रत्येक वस्तु द्रव्य अपेक्षा नित्य एवं पर्याय अपेक्षा अनित्य है। पर्याय-उत्पाद और व्यय स्वभाव वाली होती है जोकि वस्तु में अनित्यता सिद्ध करती है, साथ ही उत्पाद व्यय से वस्तु में हमें उसकी स्थिति का—ध्रुवता का—भी प्रत्यक्ष अनुभव होता है। यही स्थिरता—ध्रुवता—वस्तु में नित्य धर्म का अस्तित्व सिद्ध करती है। इस प्रकार संक्षेप में वस्तु उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य युक्त हुआ करती है, जैसा कि उमास्वामि ने कहा है—"उत्पादव्यय ध्रौव्य युक्तं सत्"।

पतञ्जलि महाभाष्य

महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य के पशपशाह्निक में जैन दर्शन के उक्त सिद्धान्त का निम्नलिखित शब्दों में कितना अच्छा विवेचन किया है:—

द्रव्यं नित्यमाकृतिरनित्या, सुवर्णं कयाचिदाकृत्या युक्तंपिंडो भवति, पिण्डाकृतिमुपमृद्य रुचकाः क्रियन्ते, रुचकाकृति मुपमृद्य कटकाः क्रियन्ते, कटकाकृति मुपमृद्य स्वस्तिकाः क्रियन्ते, पुनरावृत्तः स्वर्णपिण्डः पुनरपरयाऽऽकृत्या युक्तः खदिरांगार सदृशे कुण्डलेभवतः। आकृतिरन्याचान्याचभवति, द्रव्यं पुनस्तदेव, आकृत्युपमर्दैन द्रव्यमेवावशिष्यते*।

मीमांसा श्लोकवार्तिक

मीमांसा दर्शन के उद्भट विद्वान् कुमारिलभट्ट ने भी पदार्थों के इस उत्पाद व्यय ध्रौव्यरूप को स्वीकार किया है; देखिए—

१—वर्द्धमानकभंगेच, रुचकः क्रियते यदा।
तदापूर्वार्थिनः शोकः, प्रीतिश्चाप्युत्तरार्थिनः॥
२—हेमार्थिनस्तुमाध्यस्थ्यं तस्माद्वस्तुत्रयात्मकम्।
नोत्पादस्थितिभंगाना, मभावे स्यान्मतित्रयम्॥
३—न नाशेन बिना शोको, नोत्पादेन बिना सुखम्।
स्थित्या विना न माध्यस्थ्यं तेनसामान्य नित्यता॥

—मीमांसा श्लोकवार्तिक पृष्ठ ६१९ श्लोक सं० २१, २२, २३।

कुमारिलभट्ट का उक्त सिद्धान्त जैनदर्शन के तो अनुकूल है ही, साथ ही वह वर्णनशैली में भी स्वामी समन्तभद्राचार्य का कितना अधिक अनुकरण करता है, यह देवागमस्तोत्र के निम्नलिखित श्लोकों से स्पष्ट विदित हो जाता है। पाठकों को

* आवश्यक निवेदन—यहां पर भी एवं आगे भी लेख विस्तार भय से मैं किसी भी उद्धरण का अर्थ नहीं दूँगा। पाठक स्वयं ही समझने का यत्न करें। —लेखक

इस बात का ध्यान रहे कि कुमारिलभट्ट से स्वामी समन्तभद्र पांच शताब्दी पूर्व हो चुके हैं। इससे निश्चित है कि स्वामी समन्तभद्र के समन्त—भद्र—स्याद्वाद का प्रभाव उस समय के सभी दर्शनों पर पड़ा था। अस्तु, वे श्लोक ये हैं—

१-घटमौलि सुवर्णार्थी, नाशोत्पादस्थिति स्वयम्।
शोक प्रमोदमाध्यस्थ्यं, जनोयाति सहेतुकम्॥५९॥
२-पयोव्रतो न दध्यत्ति, न पयोत्ति दधिव्रतः।
अगोरस व्रतो नोभे, तस्मात्तत्वं त्रयात्मकम्॥६०॥
—देवागम स्तोत्र।

गंभीर निरीक्षण से पाठक यह अनुभव किए बिना न रहेंगे कि स्वामी समन्तभद्र के सूत्रात्मक श्लोकों की व्याख्या रूप ही कुमारिलभट्ट ने व्याख्यान किया है।

सत्—असत्—विचार

सम्पूर्ण चेतन और अचेतन पदार्थ, स्वरूप से स्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव से सत् हैं और पररूप से पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से असत् स्वरूप हैं। जैसे घट अपने, द्रव्य पुद्गल मृत्तिका, क्षेत्र, इस स्थान, काल वर्तमान एवं भाव लाल काला आदि की अपेक्षा से तो 'है'—सत् स्वरूप है—और वही पर से—अन्य पटादिक के द्रव्य क्षेत्र काल भाव से—'नहीं' है, असत्रूप है। दोनों में से किसी एक रूप मानने से वस्तु या तो सर्वात्मक हो जायगी, अथवा लोक व्यवहार का अभाव हो जायगा। इसलिए दोनों रूप ही वस्तु को मानना आवश्यक है। इसी लिए श्री समन्तभद्राचार्य ने कहा है कि—

सदेव सर्वं कोनेच्छेत्, स्वरूपादिचतुष्टयात्।
असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते॥ १५॥

इस श्लोक का अन्तिम चरण बहुत महत्व का है; आचार्य कहते हैं कि यदि उभयात्मक वस्तु न मानोगे, तो पदार्थ की व्यवस्था ही नहीं हो सकती है।

वैशेषिक दर्शन।

महर्षि कणादने अन्योन्याभाव के निरूपण में भी उक्त उभयरूप वस्तु को ही स्वीकार किया है—

सच्चासत्। यच्चान्यदसदतस्तदसत्।

—वैशेषिक दर्शन अ० ९ आ० १ सू० ४, ५

उपस्कार—······यत्र सदेव घटादि असदितिव्यवह्रियते, तत्र तादात्म्याभावः प्रतीयते। भवति हि असन्नश्वो गवात्मना। असन् गौरश्वात्मना, असन् पटो घटात्मना इत्यादिः। पृ० ३१३।

भाष्य—तदेवं रूपान्तरेण सदप्यन्येन रूपेणासद् भवतीत्युक्तम्॥ पृ० ३१५।

न्याय दर्शन।

गौतम ऋषि के न्याय सूत्रों पर अनेकों प्राचीन एवं अर्वाचीन टीकायें उपलब्ध हैं। जिसमें वैदिक वृत्ति में "कर्म से उत्पन्न होने वाला फल उत्पत्ति के पूर्व सत् है अथवा असत्?" इस प्रश्न के उत्तर में लिखा है कि—

'उत्पादव्यय दर्शनात्' —न्या० ४-१-४९

व्याख्या—प्राङ् निष्पत्तेः सदसदितिचानुवर्तते फल सम्बन्धात् पूर्ववत् निष्पत्तेः प्राक् फलं कार्यं, सदसदिति वेदितव्यम्। कुतः 'उत्पाद व्यय दर्शनात्'। तदुत्पत्ति विनाशयोरुपलभ्यमानत्वात्। चेदुत्पत्तेः प्राक् कार्यमसद्भवेत्—न जातूत्पद्येत। असतः शश शृंगादेरुत्पत्त्यदर्शनात्। सच्चेत न कदाचिद्विनश्येत्। पुरस्तात् सतः पश्चादपि सत्व-

नियमेन विनाशासंभवात् । उत्पद्यते विनश्यतिच कार्यं, तस्मात् भवति प्रतिपत्तिर्नूनं मेतदुत्पत्तेः प्राक् नासदस्ति,नापिसत्,किन्तु सदसदिति ॥४६॥

वैदिकी वृत्ति ॥

पाठक स्वयं अनुभव करेंगे कि कितने उत्तम प्रकार से वृत्तिकार ने सत्-असद्-उभयात्मक वस्तु को स्वीकार किया है, जोकि जैन दर्शन के बिलकुल अनुरूप ही है।

भेदाभेद विचार

द्रव्य से पर्याय, गुण से गुणी अथवा धर्म से धर्मी कथंचित् अपने संज्ञा लक्षणादि से भिन्न हैं, और आधारादि की अपेक्षा अभिन्न हैं। यह जैन-दर्शन का प्रसिद्ध कथन है। इसीको स्वामी समन्त भद्र ने कहा है—

प्रमाणगोचरौ सन्तौ, भेदाभेदौ न संवृतो।
तावेकत्राविरुद्धौते गुण मुख्य विवक्षया ॥ ३६ ॥

एक वस्तु में किसी दृष्टि से भेद एवं किसी दृष्टि से अभेद प्रमाण सिद्ध ही हैं, काल्पनिक नहीं। हां, इनमें कभी कोई प्रधान, तो दूसरा गौण हो जाता है।

वेदान्त दर्शन ।

व्यास प्रणीत ब्रह्म सूत्रों पर भास्कराचार्य रचितभाष्य में भेदाभेद का विचार करते हुए "युक्तेः शब्दान्तराच्च" (२—१—१८) सूत्र पर लिखा है कि—

अवस्था तद्वतोश्च नात्यन्त भेदो नहि शुक्ल पटयोर्धर्म धर्मिणो रत्यन्तभेदः, किन्तु एकमेव वस्तु, नहिनिर्गुणं नाम द्रव्यमस्ति, नहि निर्द्रव्यो गुणोऽस्ति, तथोपलब्धेः, उपलब्धिश्च भेदाभेदव्यवस्थायां प्रमाणं, प्रमाणव्यवहारिणाम्। तथा कार्य कारणयोर्भेदाभेदावनुभूयेते, अभेदधर्मश्च भेदो यथा महोदधेरभेदः स एव तरंगाद्यात्मना वर्तमानो भेद इत्युच्यते। नहि तरंगादयः पाषाणादिषुदृश्यन्ते। तस्यैव ताः शक्तयः, शक्ति शक्तिमतोश्चानन्यत्व-मन्यत्वं चोपलभ्यते। पृ० १०१

अद्वैतवाद

अद्वैत जैसे अभिन्नवाद में भी भेदाभेद की चर्चा का स्पष्ट वर्णन देखने में आता है। विद्यारण्य स्वामी अपने ग्रन्थ में कार्य कारण का विचार करते हुए लिखते हैं कि—

स घटो नोमृदो भिन्नो, वियोगे सत्यनीक्षणात्।
नाप्यभिन्नः पुरा पिण्ड दशायामन वेक्षणात् ॥

—श्लोक ३५।

कितने स्पष्ट शब्दों में भेदाभेद को स्वीकार किया है।

सामान्य-विशेष विचार

यद्यपि सांख्य, अद्वैतवादी एवं और भी अनेक मत सामान्यरूप ही पदार्थ को स्वीकार करते हैं, और बौद्धादिक विशेषरूप ही पदार्थ को स्वीकार करते हैं, किन्तु अनुभव, तर्क एवं आगम बताता है कि यथार्थ में पदार्थ सामान्य विशेषात्मक उभयरूप हैं। एक रूप मानने पर दोनों का ही अभाव सिद्ध हो जाता है। इसीलिए आचार्यों ने पदार्थ को सामान्य विशेषात्मक उभयरूप माना है—

सामान्य विशेषात्मातदर्थो विषयः।

—परीक्षामुख अ० ४ सू० १।

अर्थात्—सामान्य विशेषात्मक पदार्थही प्रमाण का विषय है।

इसी बात का उल्लेख पातञ्जलि भाष्य में भी है। जैसे—

सामान्य विशेषात्मनोर्थस्य।

—समाधिपा० सू० ७।

सामान्य विशेष समुदायो द्रव्यम्।

—(विभू० सू० ४४)।

कुमारिलभट्ट ने भी सामान्य विशेषरूप वस्तु को स्वीकार किया है। यथा—

सर्व वस्तुषु बुद्धिश्च, व्यावृत्त्यनुगमात्मिका।
जायते द्व्यात्मकत्वं न, बिना सा च न सिद्धयति ॥५॥

अन्योन्यापेक्षिता नित्यं, स्यात्सामान्य विशेषयोः।
विशेषाणाञ्च सामान्यं, तेचतस्य भवन्ति हि ॥ ६ ॥
निर्विशेषं हि सामान्यं भवेच्छश विषाणवत्।
सामान्यरहितत्वाच्च, विशेषास्तद्वदेवहि ॥ ७ ॥
तदनात्मकरूपेण, हेतू वाच्याविमौ पुनः।
तेन नात्यन्तभेदोपि, स्यात्सामान्य विशेषयोः ॥८॥

—(पृ० ५४६, ४७, ४८)।

इन उद्धरणों से यह बिलकुल स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि जैनदर्शन के स्याद्वाद-मार्तण्ड की प्रखर किरणें सर्व ही दर्शनों में निराबाध रूपसे प्रकाशित हो रही हैं।

स्याद्वाद संशयवाद अथवा छलमात्र नहीं है ।

(ले०—श्री. पं० भंवरलाल जी जैन न्यायतीर्थ, जयपुर)

जैनों का स्याद्वाद न्याय पदार्थ को जानने के लिए एक निर्दोष साधन है, इसके बिना हमें पदार्थ का केवल एक पक्षीय ज्ञान होता है; सम्यक्ज्ञान नहीं होसकता। यह वस्तु का सब अपेक्षाओं (By all view points) से विचार कर प्रतिपादन करता है। "ही" के एकान्त आग्रह का निराकरण कर यह बतलाता है कि पदार्थ ऐसा भी है। विभिन्न धर्मों की अपेक्षा से पदार्थ का प्रतिपादन करना ही स्याद्वाद न्याय है।

इस बात को मानने से कोई इन्कार न करेगा कि यह विश्व-प्रकृति अनेकान्तात्मक अर्थात् अनेक धर्मात्मक है। इस ब्रह्माण्ड को छोटी से छोटी वस्तु को लेकर जब हम बड़ी से बड़ी वस्तु का विचार करते हैं तो हमें निस्सन्देह कहना पड़ता है कि उसके गुणों की कोई संख्या नहीं है। पदार्थ के कुछ स्थूल गुण तो हमारे अनुभव में आजाते हैं, किन्तु उन सूक्ष्म गुणों की कोई संख्या नहीं जो हमारी मनुष्य बुद्धि के बाहर हैं। मनुष्य की बुद्धि परिमित है, उसके द्वारा अपरिमित गुणवाली वस्तु को एक साथ कैसे जाना जा सकता है? तो भी स्याद्वाद हमें एक ऐसा मार्ग बताता है जिससे हम वस्तु को निर्दोषतयः जान सकें।

यदि प्रत्येक युग के दर्शनाचार्यों ने स्याद्वाद को वास्तविक अर्थ में अपनाया होता तो साम्प्रदायिकता की सृष्टि न होती, क्योंकि स्याद्वाद मनुष्य को विशाल बुद्धि देता है और साम्प्रदायिकता संकीर्ण बुद्धि का फल है। वस्तु विवेचन करने के लिए उदारबुद्धि से काम लेना स्याद्वाद कहलाता है। वस्तुतः स्याद्वाद केवल जैनदर्शन की ही वस्तु नहीं है, वरन किसी न किसी रूप में वह आपको हर दर्शन में मिलेगी; तो भी स्याद्वाद का सैद्धान्तिक स्वरूप जैनदर्शन ने ही प्रकट किया है, इसलिए वह केवल जैनदर्शन की ही वस्तु मानी जाने लगी। तब साम्प्रदायिकता के पक्षपात ने स्याद्वाद पर भी आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। संसार में ऐसा कोई सम्प्रदाय, दर्शन और सिद्धान्त न मिलेगा जहां स्याद्वाद का उपयोग न हुआ हो। सांख्य, पातञ्जलि, न्याय, वैशेषिक, मीमांसक और वेदान्तवादियों ने अपने अपने दर्शनों में आवश्यकतानुसार इसका यथेच्छ उपयोग किया है। फिर भी मनुष्य में पक्षपात की कमज़ोरी बनी ही रहती है, इसलिए वह एक वस्तु का उपयोग करता हुआ भी उसकी सत्ता से इन्कार करने को तैयार हो जाता है।

जैनेतर दर्शनों में जगह जगह स्याद्वादका उपयोग किया गया है, परन्तु इन पंक्तियों का ध्येय इस बात को बताने का नहीं है। मैं तो इस लेख में केवल यह बताना चाहता हूँ कि स्याद्वाद पर जो जैनेतर दार्शनिक व्यर्थ का दोषारोपण करते हैं वह बिलकुल युक्तिहीन और साम्प्रदायिक पक्षपात का फल है। स्याद्वाद पर किये गये आक्षेपों के निराकरण करने से पहिले स्याद्वाद का स्वरूप बता देना उचित जान पड़ता है।

स्याद्वाद का अर्थ है "अपेक्षा (view point) से वस्तु का प्रतिपादन करना"। मेरा चाकू तेज़ है इस का अर्थ यह कभी न होगा कि संसार का कोई चाकू उससे तेज़ नहीं है। इसलिए अन्य तेज़ चाकुओं की अपेक्षा कुन्द भी है, अतः एक ही समय में मैं अपने चाकू को तेज़ और कुन्द परस्पर विरोधी धर्म-वाला कह सकता हूँ। कहने में यह बात असंगत सी जान पड़ती है कि एक ही चाकू एक ही समय में तेज और कुन्द दोनों है। किन्तु अपेक्षावाद इस प्रकार की असंगति को दूर करने का ही उपाय है। इसी प्रकार 'स्याद्स्त्येव जीवः' अर्थात् कथञ्चित् जीव है ही, इसका अर्थ हुआ कि स्वद्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा से जीव का अस्तित्व है। किन्तु यदि पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा से विचार करें तो हमको कहना पड़ेगा कि 'स्यान्नास्त्येवजीवः' अर्थात् परद्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा से जीव नहीं है। जिस प्रकार प्रत्येक पदार्थ में अस्ति और नास्ति दो धर्म माने जाते हैं, इसही तरह एक अवक्तव्य धर्म भी वस्तु में रहता है। इन्हीं तीन धर्मों के द्वारा बने हुए तीन भंगों से ही शेष चार भंगों का भी निर्माण होकर सप्तभंगी हो जाती है। कहीं भी तीन वस्तुओं से एक एक, दो दो और तीन के मिलने से सात भेद हुए बिना न रहेंगे। रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग में भी इसी तरह सात भेद बनजाते हैं। कई विद्वानों का मत है कि प्रारम्भ में ये तीन ही भङ्ग थे, फिर इनके सात भंग बने हैं, किन्तु ये सात भंग कब से बने इस विषय को स्याद्वाद के प्ररूपण करने वाले जैनागम का अध्ययन करने से ही जान सकते हैं, क्योंकि यह इतिहास का विषय है।

शब्द के द्वारा पदार्थ के दो धर्मों को एक साथ नहीं कहा जासकता क्योंकि शब्द धातुओं से बनते हैं और धातुएं क्रिया की वाचक हैं और क्रिया एक समय में एक ही होती है दो नहीं, इसलिए जब दो धर्मों का एक साथ प्रतिपादन करने का समय उपस्थित होता है तब यह कहा जाता है कि पदार्थ अवक्तव्य है, इस प्रकार स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्तिनास्तिच, स्यादवक्तव्य एव, स्यादस्तिचावक्तव्यश्च, स्यान्नास्तिचावक्तव्यश्च, तथा स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्यश्च, ये सात भंग हो जाते हैं। पदार्थ के प्रत्येक धर्म के साथ ये सात भंग लगेंगे। किन्तु जब किसी एक धर्म का प्रतिपादन किया जाता है उस समय अन्य सब धर्मों का निषेध न कर केवल उनकी उपेक्षा करदी जाती है। उपेक्षा करने का यही प्रयोजन है कि उस समय हमें उन धर्मों का प्रतिपादन नहीं करना है। संसार में अनेक वाद प्रचलित हैं; जैसेः—नित्यानित्यवाद, भिन्नाभिन्न वाद, सदसद् वाद, दैव-पुरुषार्थवाद, इत्यादि इन सब वादों पर यदि सप्त भंगी न्याय से विचार किया जाय तो कोई बाधा नहीं आती, क्योंकि पदार्थ में ये सभी धर्म रहते हैं। अनेकधर्मात्मक पदार्थ को सर्वथा एकान्तात्मक कह देना हठ करना है। इसलिए जैन सिद्धान्त की यह आज्ञा है कि उसको अनेक दृष्टियों से देखा जाय। यहां तक कि अनेकान्त भी सर्वथा अनेकान्तात्मक नहीं है, कथञ्चित् वह भी एकान्तात्मक है, किन्तु उस एकान्तात्मक का अर्थ है सम्यक्-एकान्त। आचार्य समन्तभद्र ने अरहनाथ तीर्थङ्कर की स्तुति करते हुये अपने स्वयम्भू स्तोत्र में कहा है कि—

अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः प्रमाण नय साधनः।
अनेकान्तः प्रमाणात्ते तदेकान्तोऽर्पितान्नयात् ॥

भगवान समन्तभद्र ने अपने आप्तमीमांसा नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ में इस स्याद्वाद का बहुत ही सुन्दर विवेचन किया है। ऐसा सर्वाङ्ग सुंदर स्याद्वाद का व्याख्यान इनके सिवाय किसी भी प्राचीन आचार्य के ग्रन्थ में नहीं मिलता। यह स्याद्वाद जैनदर्शन का जीव है। इसही लिए जैनेतर भारतीय दर्शन ग्रन्थों में जैनों का उल्लेख स्याद्वाद के नाम से मिलता है।

यदि मनुष्य के हृदय में सम्प्रदायगत पक्षपात का विष न हो तो इस प्रकार के सर्वोपयोगी स्याद्वाद की महत्ता को मानने से वह कभी इन्कार नहीं कर सकता, किंतु जिस प्रकार एक हेयोपादेय शून्य मनुष्य पक्षपात के आधीन होकर दूसरों के जलाशयों के मीठे पानी को भी पीना नहीं चाहता अथवा आवश्यक्ता पड़ने पर पीकर भी उसकी प्रशंसा करना उचित नहीं समझता, इसी प्रकार वस्तु विवेचन की इस शुद्धप्रणाली का उपयोग करते हुए भी कुछ जैनेतर भारतीय दार्शनिकों ने इस पर बहुत आक्षेप किये हैं। और की बात तो जाने दीजिए; वेदान्तसूत्र के निर्माता महर्षि व्यास ने भी अपने बादरायण सूत्रों में 'एकस्मिन्नसंभवात्' इत्यादि सूत्रों द्वारा इसके खण्डन करने की चेष्टा की है। तदनुसार वेदान्त के अद्वितीय विद्वान श्री शङ्कराचार्य ने भी अपने शांकर भाष्य में इस पर कुछ कम आक्रमण नहीं किया! स्वयं स्याद्वाद का उपयोग करते हुए भी उसका खण्डन करें, यह बहुत आश्चर्य की बात है। इस अनेकान्तवाद के सम्बन्ध में भी अनेकों ने तो यह कह डाला है कि स्याद्वाद केवल संशयवाद (संशयहेतु) अथवा छलमात्र है; इसमें किसी वस्तु का निश्चयात्मक ज्ञान नहीं होता। पर जब संशय और छल के लक्षणों पर विचार किया जाता है तो स्याद्वाद को संशयवाद अथवा छलमात्र बताने वालों पर हंसी आती है। इस लेख में यही बताया जायगा कि स्याद्वाद संशयवाद न होकर पदार्थ के निर्बाध संशय रहित ज्ञान कराने का कारण है। स्याद्वाद निश्चयात्मक है, जब कि संशयवाद संदेहात्मक है। इन दोनों को एक मानना मिथ्याज्ञान और सम्यक्ज्ञान को एक बता देना है। संशय से तो किसी वस्तु का निश्चय नहीं होता, पर स्याद्वाद तो किसी अपेक्षा से वस्तु का अथवा वस्तु के किसी भी अंश का निश्चयक होगा। भट्टाकलङ्क देव ने लिखा है कि 'संशयो हि निर्णय विरोधी' अर्थात् संशय निर्णयका विरोधी है। संशय * का अर्थ है 'विरुद्ध अनेक कोटि का स्पर्श करने वाला ज्ञान'। अक्षपाद के न्यायदर्शन में कहा है कि—

'समानानेक धर्मोपपत्तेर्विप्रतिपत्तेरुपलब्ध्यनुपलब्ध्य व्यवस्थातश्च विशेषापेक्षो विमर्शः संशयः' अर्थात् समान और असमान धर्म के उपलब्ध होने से अथवा विरुद्ध कोटिद्वय उपस्थित होने से उपलब्धि और अनुपलब्धि की व्यवस्था न होने पर जो सामान्य विशेष की स्मृतिपूर्वक ज्ञान होता है वही संशय है। जैसे यह सीप है या चांदी अथवा आत्मा नित्य है या अनित्य। स्याद्वाद में संशय का यह लक्षण बिलकुल घटित नहीं होसकता, क्योंकि यह तो संशय को दूर करने के लिए उपयुक्त होता

* विरुद्धानेक कोटि स्पर्शि ज्ञानं संशयः। —न्याय दीपिका।

है। 'आत्मा कथंचित् नित्य है' इसमें कोटि द्वयात्मक ज्ञान नहीं होता, किंतु एक कोटि का निश्चयात्मक ज्ञान होता है। हां अवश्य ही इसमें अन्य धर्मों का निषेध नहीं किया जाता। संशय उत्पन्न होने पर उसको दूर करने के लिए सप्त भंगी का अवतार होता है जैसे प्रथम भंग के पहिले जब यह संशय होता है कि 'स्याद्घटः अस्त्येव वा न वा' तो इसके निराकरण करने के लिए 'स्यादस्त्येवघटः' इस पहिले भंग का जन्म होता है। इसी प्रकार द्वितीय तृतीयादि भंगों का जन्म उनके पहिले उत्पन्न हुए संशयों का निराकरण करने के लिए होता है। सप्त भंगी का लक्षण ही आचार्यों ने यह बताया है कि—'प्रश्नवशादेकत्र वस्तुन्यविरोधेन विधि प्रतिषेध कल्पना सप्त भंगी' अर्थात् प्रश्न के वश से एक किसी घटादि वस्तु में अविरोध रूप से विधि तथा प्रतिषेध की जो कल्पना होती है उसको सप्तभंगी कहते हैं। इसलिए सप्तभंगी का प्रादुर्भाव, सात प्रकार के जो प्रश्न उत्पन्न होते हैं उनके निराकरणार्थ, होता है। यदि यह कहा जाय कि प्रश्न सात ही क्यों होते हैं, छह या आठ क्यों नहीं होते तो इसके उत्तर में यही कहदेना पर्याप्त होगा कि जिज्ञासा अर्थात् जानने की इच्छा सात ही प्रकार की होती है और यह इसलिए कि संशय सात प्रकार का होता है। पदार्थों के विषयीभूत धर्मों की संख्या सात ही है, न अधिक, न कम। अतः संशय भी सात ही होते हैं जैसा कि सप्तभंगी तरंगिणी में कहा है—

भंगास्सत्वादयस्सप्त संशयास्सप्त तद्गताः।
जिज्ञासास्सप्त सप्तस्युः प्रश्नास्सप्तोत्तराण्यपि ॥

अतः यह निर्विवाद है कि सप्तभंगी का अवतार संशयों के निराकरणार्थ होता है। अब तार्किक लोग स्वयं विचार सकते हैं कि स्याद्वाद क्या संशयवाद अथवा संशय का हेतु हो सकता है।

जैसे स्याद्वाद को संशयवाद बताया जाता है वैसे कुछ लोग इसपर छल का कलंक मढ़ कर भी स्याद्वाद को बदनाम करना चाहते हैं। किन्तु छल के लक्षणों को देखते हुए यह कहना बिलकुल युक्तिसंगत नहीं है। 'वचनविघातोर्थ विकल्पोपपत्त्या छलम्' यह छल का लक्षण बताया गया है। इसका आशय है कि वादी के द्वारा अभिप्रेत अर्थ से उलटे अर्थ की कल्पना करने की युक्ति से वादी के द्वारा कहे गये वचन का विघात कर देना अर्थात् उसको दोषी बता देना छल है। इस छल के तीन भेद हैं—वाक्छल, सामान्यछल और उपचार छल। छल के तीनों भेदों के लक्षणों तथा उदाहरणों को देखते हुए कौन बुद्धिमान यह कह सकता है कि स्याद्वाद वास्तव में छलमात्र है। न्यायदर्शन में इन छलों के लक्षण इस प्रकार बताये गये हैं—

'अविशेषाभिहितेर्थे वक्तुरभिप्रायादर्थान्तर कल्पना वाक्छलम्' अर्थात् सामान्य शब्द को वक्ता के अभिप्राय के विरुद्ध ले जाना वाक्छल है। जैसे किसी के यह कहने पर कि 'अहा! सैन्धव की पूंछ कैसी सुन्दर है' यह कह देना कि क्या नमक के भी पूंछ होती है? सैंधव शब्द के दो अर्थ होते हैं—एक नमक और दूसरा घोड़ा। वक्ता ने सैन्धव शब्द को घोड़े के अर्थ में प्रयुक्त किया था। किन्तु छलवादी जान बूझ कर उस अर्थ को भुला देता है और केवल नमक वाले अर्थ को लेकर कहता है कि नमक के पूँछ कहाँ होती है? प्रकृत में स्यादस्ति इत्यादि सातों भंगों में कोई दो अथवा अनेक

अर्थ नहीं होते और न स्याद्वाद का प्रयोग करने वाला उनमें से किसी एक अर्थ को लेकर किसीको धोका देना चाहता है । अतः वाक् छल का यहाँ कोई प्रसंग नहीं है ।

'सम्भवतोर्थस्याति सामान्य योगादसद् भूतार्थ कल्पना सामान्यछलम्' । अर्थात् प्रशंसावाद वा प्रायोवाद से कहे हुए वचन को हेतुपरक वा नियमपरक लेजाना सामान्य छल है । जैसे किसी के यह कहने पर कि 'भारतीय धर्मात्मा होते हैं' यह व्याप्ति बना लेना कि जो जो भारतीय होते हैं वे सभी धर्मात्मा होते हैं । यहां वक्ता का आशय भारतीयों को धर्मात्मा बतलाकर उनकी प्रशंसा करने का था । उसके कहने की यह इच्छा न थी कि जो जो भारतीय होते हैं, वे सभी धर्मात्मा होते हैं, किन्तु वक्ता के इस अभिप्राय को न लेकर भारतीय धर्मात्मा होते हैं, इस प्रशंसापरक वाक्य को हेतुपरक बतलाकर छलवादी श्रोता वक्ता के वाक्य को सदोष सिद्ध करना चाहता है । स्याद्वाद में इस छल के दूसरे भेद की भी संभावना नहीं है, क्योंकि स्याद्वादी किसी प्रशंसापरक या प्रायोवादपरक वाक्य को हेतुपरक व नियमपरक नहीं बताता ।

तीसरे छल का लक्षण है कि 'धर्मविकल्प निर्देशेऽर्थसद्भाव प्रतिषेध उपचार छलम्' अर्थात् उपचार से कहे हुए शब्द को मुख्य अर्थ में लेकर दूषण देना उपचार छल है । जैसे किसी के उपचार से यह कहने पर कि 'ओ ! तांगा इधर आना' यह दूषण देना कि तांगे वाला इधर आसकता है न कि तांगा ! यहाँ वक्ता का अभिप्राय तांगे वाले मनुष्य को बुलाने का है न कि तांगे को । क्योंकि बिना मनुष्य के अकेला तांगा तो कभी आ नहीं सकता । वक्ता ने तांगे में तांगे वाले का उपचार कर तांगे शब्द का प्रयोग किया था । उपचार का प्रयोजन तांगे को किराये करने का था । किन्तु छलवादी श्रोता इस उपचरित अभिप्राय को न लेकर तांगे के मुख्य अर्थ को लेता है; इसलिए यह उपचार के सम्बन्ध में छल हुआ ।

स्याद्वाद सिद्धान्त में इस उपचार छल की भी कोई संभावना नहीं है, क्योंकि स्यादस्ति इत्यादि वाक्यों में कोई मुख्य और उपचरित अर्थ की संभावना नहीं है और न स्याद्वादी उपचरित अर्थ को बाधित कर किसी मुख्य अर्थ का प्रयोग करता है । इस तरह तीनों ही छलों का स्याद्वाद से कोई सम्बन्ध नहीं है । इसलिए जैनों का 'स्याद्वाद' जैसे 'संशयवाद' नहीं है वैसे ही 'छलमात्र' भी नहीं है ।

स्याद्वाद पर लोक मत—

श्रीयुत महामहोपाध्याय सत्य सम्प्रदायाचार्य पंडित स्वामी राममिश्र जी शास्त्री भूतपूर्व प्रोफेसर संस्कृत कालेज बनारस कहते हैं कि—............"स्याद्वाद" जैनधर्म का एक अभेद्य क़िला है, जिसके अन्दर वादी प्रतिवादियों के मायामय गोले प्रवेश नहीं कर सकते ।.........

सप्तभंगी में एवकार का प्रयोग

[ले०—श्री० पं० कैलाशचन्द्र जी जैनदर्शन शास्त्री, न्यायतीर्थ, जयपुर]

जैनों के प्रसिद्ध सप्तभंगी न्याय में प्रत्येक भंग के साथ एवकार का भी प्रयोग किया जाता है। एवकार के प्रयोग बिना वक्ता के अभिलषित अर्थ की सिद्धि नहीं हो सकती। जैसे प्रथम भङ्ग में स्यादस्त्येव घटः अर्थात् कथंचित् (स्वद्रव्य क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से) घट है ही, ऐसा है। यदि इसमें एवकार का प्रयोग न किया जाय तो घड़े का स्वरूपादिकों के द्वारा जिस प्रकार अस्तित्व होता है वैसे नास्तित्व भी हो सकेगा। अर्थात् स्वचतुष्टय के द्वारा घट के अस्तित्व के समान नास्तित्व का प्रसङ्ग आये बिना न रहेगा। अतः इस आपत्ति* के परिहार के लिये एव का प्रयोग अवश्य ही करना चाहिए। ऐसा करने से इस वाक्य का यह अर्थ होगा कि स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से तो पदार्थ का अस्तित्व ही है, नास्तित्व नहीं।

ऐसे ही अवशिष्ट छह भंगों में भी एवकार का प्रयोग करना चाहिए।

यदि यह कहा जाय कि जिस शब्द के अनेक अर्थ होते हैं, उनके साथ एवकार का प्रयोग करने पर भी अनिष्ट अर्थ की निवृत्ति नहीं होती; जैसे 'गौः एव'। गो × शब्द के साथ एवकार का प्रयोग कर देने पर भी गो शब्द का वाच्य यहाँ क्या है, इसका ज्ञान नहीं होता और 'गामानय' अर्थात् गाय को लाओ; यहाँ एवकार के नहीं होने पर भी प्रकरणादि के द्वारा अनिष्टार्थ की निवृत्ति होकर अभिलषितार्थ की सिद्धि हो जाती है। इसलिए अन्य निवृत्ति के लिये एवकार की आवश्यकता बिलकुल नहीं है। इसके अतिरिक्त यहां यह प्रश्न भी उपस्थित होता है कि अन्य निवृत्ति करने वाले एवकार को भी दूसरे एवकार की आवश्यकता है या नहीं? यदि कहा जाय—है, तब तो उस दूसरे एवकार को भी एक तीसरे एवकार की आवश्यक्ता होगी और इस तरह अनवस्था † आए बिना न रहेगी।

यदि दूसरा पक्ष स्वीकार कर यह कहा जाय कि एवकारान्तर के बिना भी एवकार का प्रयोग अन्य निवृत्ति कर देगा; तब तो जैसे एवकार का प्रयोग दूसरे एवकार के बिना ही प्रकरणादि द्वारा अन्य निवृत्ति कर देता है, वैसे अन्य शब्द भी एवकार के प्रयोग बिना अन्य निवृत्ति कर सकेंगे; और इस तरह 'कथंचित् घटः अस्त्येव' इस वाक्य में एवकार की बिलकुल आवश्यकता नहीं है।

उत्तर—ऐसा मानने में शब्दाम्नाय पद्धति में

* "वाक्येऽवधारणं तावदनिष्टार्थनिवृत्तये कर्तव्यमन्यथाऽनुक्तसमत्वात्तस्य कुत्रचित् ॥"
—सप्तभंगी तरंगिणी

× गो शब्द के पृथ्वी, स्वर्ग, वाणी, इन्द्रिय आदि दश अथवा ग्यारह अर्थ होते हैं।

† अप्रमाणिकाऽनन्तपदार्थ परिकल्पना विश्रान्त्यभावोऽनवस्था।

विरोध आवेगा। बात यह है कि जो शब्द अपने अनवधारित स्वार्थमात्र में संकेतित हैं, वे अवधारण की विवक्षा में एवकार की अपेक्षा अवश्य रक्खेंगे; जैसे घड़ा ही लाओ। किन्तु जो केवल अवधारण मात्र में संकेतित हैं, उनको अवधारण ज्ञान कराने में एवकारान्तर की आवश्यकता नहीं; जैसे चकार को समुच्चय के ज्ञान कराने में दूसरे चकार की ज़रूरत नहीं है।

यदि यह कहा जाय कि एवकार तो निपात है और निपात केवल अर्थ के द्योतक होते हैं, वाचक नहीं—तब एवकार को अवधारणार्थ का वाचक कैसे कहा जा सकता है। तो यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि व्याकरणों में निपातों को वाचक और द्योतक दोनों माना * है।

कुछ लोग ऊपर वाले प्रश्न का समाधान इस तरह भी करते हैं कि निपात द्योतक हैं और द्योतक को द्योतकान्तर की आवश्यकता नहीं होती। अतः एवकार को एवकारान्तर की भी आवश्यकता न होगी; जैसे कि एक प्रदीप को दूसरे प्रदीप की जरूरत नहीं होती। और घटादि पद तो वाचक हैं, अतः उन्हें अपने अवधारण के लिये एवकार की अपेक्षा होगी ही। इस पर यदि यह कहा जाय कि द्योतक को भी दूसरे द्योतक की अपेक्षा के उदाहरण मिलते हैं; जैसे 'एवमेव' ‡ अर्थात् ऐसा ही। इस उदाहरण को देखकर प्रत्येक द्योतक को अपने द्योत्य अर्थ में दूसरे द्योतक की आवश्यकता मानना होगा और इस तरह अनवस्था आए बिना न रहेगी—तो इसका उत्तर यह है कि उक्त दृष्टान्त में एव शब्द स्वार्थ वाचक है, इसलिए उसको अन्य निवृत्ति में द्योतक की अपेक्षा हुई है। निपातों को व्याकरण में वाचक भी माना है, यह पहिले ही कह चुके हैं। यदि निपातों को वाचक न माना जाय तो 'उपकुम्भम्' † इत्यादि स्थलों में उप शब्द के साथ कुम्भ शब्द का समास न हो सकेगा। क्योंकि द्योतक के साथ समास नहीं हो सकता, यह व्याकरण का नियम है।

इस सम्बन्धमें अन्यापोहवादी बौद्धों का कहना है कि जितने भी शब्द हैं वे सब अन्य निवृत्ति को ही कहते हैं, स्वार्थ को नहीं। तब घटादि पदों के ही द्वारा घटेतर पदार्थों की व्यावृत्ति का ज्ञान हो जाने से उसके लिये अलग अवधारण (एवकार) की क्या आवश्यकता है। किन्तु यह कहना ठीक नहीं, क्योंकि घटादि शब्दों का विधिरूप अर्थ भी अनुभव सिद्ध है। यदि शब्दसे विधिरूप अर्थज्ञान को अनुभवसिद्ध स्वीकार न किया जाय तब तो अन्य व्यावृत्ति शब्द भी अन्य व्यावृत्ति को न कहेगा। यदि यह अन्य व्यावृत्ति शब्द भी तदन्यव्यावृत्ति रूपसे ही वस्तु का ज्ञान कराता है, यह कहा जाय तो अनवस्था आए बिना न रहेगी। इसलिए 'स्यादस्ति घटः' इस वाक्य में अवधारणार्थ एवकार का प्रयोग करना आवश्यक है।

यह एवकार तीन प्रकार का होता है। अयोगव्यवच्छेद बोधक, अन्य योगव्यवच्छेद बोधक और अत्यन्तायोगव्यवच्छेद बोधक। जो एवकार

---

* द्योतकाश्चभवन्ति निपाताः।

‡ यहाँ एवम् इस मात्र निपात को एवकार की आवश्यकता है, दोनों ही द्योतक हैं। इसलिए द्योतक को द्योतकान्तर की ज़रूरत हो गई।   † 'उप' निपात है।

विशेषण के साथ लगता है; वह अयोग व्यवच्छेदक * होता है; जैसे 'शङ्खः पाण्डुर एव' अर्थात् शङ्ख सफ़ेद ही होता है। यहाँ शङ्ख विशेष्य है और पाण्डुर विशेषण। अयोग व्यवच्छेदक एवकार का अर्थ है कि जहाँ शंखत्व रहेगा वहाँ पाण्डुरत्व का अयोग अर्थात् अभाव नहीं रह सकता। शंख में पाण्डुरत्व के अयोग का व्यवच्छेद है, इसलिए यह अयोग व्यवच्छेद कहलाता है। जो एवकार विशेष्य के साथ प्रयुक्त होता है, वह अन्य योग व्यवच्छेदक कहलाता है; जैसे 'पार्थ एव धनुर्धरः' अर्थात् अर्जुन ही धनुर्धारी है। इसका यह अर्थ हुआ कि अर्जुन जैसा धनुर्धारी और कोई नहीं है। अन्ययोग व्यवच्छेदक ‡ एवकार का मतलब है कि विशेष्य से भिन्न पदार्थों में विशेषण का तादात्म्यादि सम्बन्ध न होना। प्रकृत में पार्थ विशेष्य है और धनुर्धर विशेषण है। धनुर्धरत्व रूप विशेषण पार्थ (अर्जुन) को छोड़कर अन्यत्र नहीं रहता।

जो एवकार क्रिया के साथ लगता है उसे 'अत्यन्ता योग व्यवच्छेदक' कहते हैं; जैसे 'नीलं सरोजं भवत्येव' अर्थात् नील कमल होता ही है। यहाँ भवति क्रिया के साथ में एवकार का प्रयोग हुआ है। अत्यन्तायोग व्यवच्छेद † एवकार का मतलब है कि विशेष्य में विशेषण का अत्यन्त अयोग नहीं है। अन्य विशेषण के समान इस विशेषण का भी विशेष्य के साथ सम्बन्ध है। 'नील कमल होता ही है' का अर्थ हुआ कि कमल नीला भी होता है और भिन्न तरह का भी।

'स्यादस्त्येव घटः' इस उदाहरण में यद्यपि एवकार क्रिया संगत है, फिर भी वह अत्यन्तायोगव्यवच्छेदक नहीं है क्योंकि यहाँ अत्यन्तायोग व्यवच्छेदक एवकार मान लेने से किसी घट में अस्तित्व का अभाव भी माना जा सकेगा। जैसे कोई कमल नीला नहीं होता और फिर भी 'नीलं सरोजं भवत्येव' ऐसा प्रयोग सम्भव है। वैसे किसी घट में अस्तित्व न होने पर भी 'स्यादस्त्येव घटः' यह प्रयोग हो सकेगा। किन्तु तब तो विवक्षित अर्थ की सिद्धि न हो सकेगी। इसलिए यहाँ एवकार क्रिया संगत होने पर भी अयोगव्यवच्छेदक ही है, अन्यायोगव्यवच्छेदक नहीं। कई स्थलों में क्रिया संगत एवकार भी अयोगव्यवच्छेदक ही होता है; जैसे 'ज्ञानमर्थं गृहणात्येव' अर्थात् ज्ञान पदार्थ को ग्रहण करता ही है, यदि इस दृष्टांत में एवकार को अत्यन्तायोगव्यवच्छेदक माना जाय तब तो ज्ञान पदार्थ को ग्रहण करता है; इस प्रयोग की जगह ज्ञान चांदी को ग्रहण करता है ऐसे प्रयोग का प्रसंग आवेगा, क्योंकि सब ज्ञान चांदी को ग्रहण नहीं कर सकते, कोई एक ज्ञान चांदी का ग्राहक होता है। इसलिए यहाँ अत्यंतायोगव्यवच्छेदबाधक एवकार निर्बाधित है। इस तरह स्यादस्ति घटः, स्यान्नास्ति घटः, स्यादस्तिनास्ति घटः, स्यादवक्तव्यो घटः, स्यादस्त्यवक्तव्यो घटः, स्यान्नास्त्यवक्तव्यो घटः, स्यादस्तिनास्ति च अवक्तव्यश्च घटः, इन सातों भंगों में प्रत्येक भंग के साथ एवकार का प्रयोग होना चाहिए।

* अयोगव्यवच्छेदो नाम उद्देश्यतावच्छेदक समानाधिकरणाभावा प्रतियोगित्वम्। —सप्तभङ्गी तरङ्गिणी

‡ अन्य=विशेष्य को छोड़कर अन्य पदार्थ के साथ, योग=विशेषण के तादात्म्यादि सम्बन्ध का व्यवच्छेद करने वाला विशेष्यभिन्नतादात्म्यादि व्यवच्छेदः। —"सप्तभंगी तरङ्गिणी।"

† "उद्देश्यतावच्छेदक व्यापका भावप्रतियोगित्वम्।" —"सप्तभंगी तरङ्गिणी।"

स्याद्वाद ही धार्मिक असहिष्णुता की महौषधि है

[लेखक—श्री० पं० मिलाप चन्द्र जी जैन न्यायतीर्थ, जयपुर ।]

संसार के धर्माचार्यों का अभिमत है कि इह-लौकिक तथा पार-लौकिक उत्थान एवं जगत्-शान्ति के लिए धर्म परमावश्यक है। वस्तुतः धर्म का विकास मानव समाज की उन्नति के लिए ही है, इससे प्राणी यथेष्ट शान्ति को प्राप्त करता है एवं अपनी मनोनीत सिद्धि तक पहुँच जाता है। परन्तु इस सम्बन्ध में यदि इतिहास का अवलोकन किया जाता है तो मालूम होता है कि बजाय शान्ति के धर्म के नाम पर संसार में जितनी अशान्ति व अज्ञान फैला है उतना अन्य किसी से नहीं। दुनिया के धर्मों का इतिहास हत्या, रक्तपात और मनुष्य की रक्तपिपासा का इतिहास है। इसी धर्म के नाम पर हज़ारों बड़े २ युद्ध हुए। संख्याहीन मनुष्यों का रक्तपात हुआ। हज़ारों गाँव जला दिये गए, एवं लाखों सतियों का सतीत्व अपहरण किया गया। केवल एक ही देश में नहीं, किन्तु कोई ऐसा देश नहीं मिलेगा जिसमें धर्म के नाम पर भीषण से भीषण अत्याचार न हुए हों। योरुप की इनक्वीज़ीशन (Inquisition) नामक धार्मिक अदालत एवं स्टार चैम्बर न्यायालय (Court of Star Chamber) की रोमाञ्चकारी घटनाओं को सुन कर कौन ऐसा सहृदय व्यक्ति होगा जिसका हृदय काँप न उठे। "रैक", "कालर आफ टॉरचर" तथा "स्कैवेंजर्स रोटर" जैसे भीषण यन्त्र जिस सभा में बेगुनाह अपराधियों को बलात् अपराध स्वीकार कराने में प्रयुक्त किये जाते थे और तत्पश्चात वे जीते जी प्रज्वलित अग्निकुण्ड में होम दिये जाते थे या कभी २ भोंथरी तलवार से उनका नामावशेष कर दिया जाता था। लॉण्टी ने लिखा है कि अकेले टॉर्कीटेडा नामक राजा ने अपने राज्य-शासन के १८ वर्ष के समय में एक लाख चौदह हज़ार चारसौ एक कुटुम्बों का सर्वनाश किया। कहाँ तक कहा जाय, केवल इन दोनों धार्मिक अदालतों से क़रीबन एक करोड़ मनुष्यों ने मृत्यु की सज़ा पाई। यह केवल योरुप का इतिहास है। हिन्दुस्तान में भी धर्म के नाम पर जो घोर संग्राम और भयंकर मनुष्यहिंसा व पशुहिंसा हुई वह भी योरुप से कम नहीं है। इन धर्म के नाम पर होने वाले अत्याचारों का वर्णन सुन एक दफ़ा तो शैतान की आत्मा भी दहल उठती है। यदि इन हृदय विदारक अत्याचारों का पूर्णतः वर्णन किया जाय तो दो चार बड़े पोथे ही नहीं अपितु एक ख़ासा स्वतन्त्र साहित्य तय्यार हो सकता है। अस्तु-यह सब लिखने का आशय यही है कि मत-सहिष्णुता (स्याद्वाद) के अभाव के कारण ही संसार को यह सब भीषण दृश्य देखने पड़े हैं।

ऐसी परिस्थिति का अनुशीलन करते हुए यह कैसे कहा जा सकता है कि धर्म विश्वशान्ति का कारण हो सकता है? लेकिन नहीं, यदि हम बुद्धिपूर्वक विचार करें तो कहना होगा कि संसार में यदि शान्ति का साम्राज्य हो सकता है तो केवल एक धर्म से; यदि वह पारस्परिक

सहानुभूति सीख सकता है तो केवल एक धर्म से और यदि वह करुणावत्सल हो सकता है तो केवल एक धर्म से। संसार में होने वाले यह भीषण अत्याचार धर्म के प्रतिफल नहीं, अपितु आज तक, जो धर्मों में एक अपूर्णता रहती आई है, उसी के परिणाम हैं। यदि दुनियाँ में एक धर्म का साम्राज्य होता तो यह भीषण अत्याचार कभी न होते, सर्वत्र शान्ति का झण्डा फहराया करता, एवं विश्व आज एक और ही किसी प्रौढ़तम अवस्था में होता। परन्तु दुर्भाग्यवश नाना धर्मों के होने से सम्प्रदायवाद का प्रपंच संसार में फैला और वही इन सबका कारण हुआ। वस्तुतः धार्मिक संकीर्णता ऐसी ही है, वह मनुष्य के हृदय में निवास करने वाले सहानुभूति, प्रेम और शान्ति के विचारों को समूलतः नष्ट कर देती है, एवं उसके हृदय को कुटिलता, निष्ठुरता तथा उद्दण्डता के भावों का निवास स्थान बना देती है। भूतकाल में इसी सम्प्रदायवाद का दौर दौरा रहा और इसी के फल स्वरूप भीषण से भीषण अत्याचार दुनियाँ को सहने पड़े तथा अब भी जबतक संकीर्णतावाद का अस्तित्व है, जगत् में शान्ति की आशा करना पत्थर पर अंकुर उगाने के समान है। यदि संसार विश्वशान्ति का इच्छुक है तो संकीर्णतावाद को तिलाञ्जली देते हुए किसी एक धर्म को ऐसा रूप देने की आवश्यकता है, जो सब धर्मों को आपस में किसी समझौते पर पहुँचाने में समर्थ हो।

किन्तु अब सब से कठिन बात यह रह जाती है कि दुनियाँ का कौनसा ऐसा धर्म है, जो सब धर्मों को एक्य-सूत्र में पिरोकर जगत् कल्याणकारी हो सकता है। भिन्न भिन्न धर्मों के निरीक्षण से ज्ञात होता है कि उनमें से किसी एक का सार्वजनिक धर्म हो जाना बिल्कुल ही असम्भव है। वे इतने विरोधात्मक हैं कि उनमें परस्परमें मेल होना किसी भी तरह सम्भव नहीं। यह तो कभी नहीं कहा जा सकता कि वे बिलकुल निराधार हैं; तत्तत् कालीन परिस्थिति एवं तत्तदपेक्षया सभी धर्म बिलकुल साधार हैं। चार्वाक, जिसके कि सिद्धांतों को आज दुनियाँ घृणा की दृष्टि से देखती है, यदि तत्कालीन परिस्थिति यहाँ विद्यमान होती तो वह एवं उसके सिद्धांत कभी घृणित न समझे जाते। जिस समय कि दुनियाँ शरीर के सम्बन्ध में लापर्वाह हो चुकी थी और अध्यात्मवाद के कृत्रिम पाखंड ने उसको और भी विमूढ़ बना दिया था, उस समय "ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्" के सिद्धान्त ने ही उन लोगों को "शरीर माद्यं खलु धर्मसाधनम्" की तरफ़ ऋजु किया*। यदि उस समय इस सिद्धान्त का प्रचार न होता तो जनसमाज की क्या गति होती, यह हर कोई जान सकता है। इसलिए यह तो निश्चित है कि तत्तत्कालीन परिस्थिति के अनुसार सभी धर्म किसी न किसी अपेक्षा ठीक हैं; ताहम भी वे सब धर्म परस्पर विरोधात्मक होने से सर्वमान्यधर्म होने की क्षमता नहीं रखते। विरोध भी थोड़ा बहुत नहीं, अपितु रात दिन का है—जहाँ साँख्य वस्तु को कूटस्थ नित्य बतलाता है वहां बौद्ध क्षणिकवाद को ही

* चार्वाक मत के प्रादुर्भाव का कारण यही है, यह निर्णीत सिद्धान्त नहीं है।

—चैनसुख दास (सम्पादक)

आलाप लगाता है। जहाँ नैयायिक प्रभृति ईश्वर को सर्वव्यापी सिद्ध करते हैं, वहीं सांख्य "ईश्वरासिद्धेः" की तर्क से समूलतः ईश्वर को असिद्ध कर डालता है, एवं जहाँ सर्वज्ञत्व एवं परलोकास्तित्व का विधान किया जाता है वहीं चार्वाक इन सबके ताने २ बखेर डालता है।

जब इस प्रकार परस्पर में विरोध है तब किस प्रकार किसी एक समझोते पर पहुंचना सम्भव हो सकता है, कदापि नहीं। अतः यह कहना अनुचित न होगा कि किसी भी धर्म के आंशिक सिद्धांत पारस्परिक उलझनों को सुलझाने में समर्थ नहीं हैं और इसीलिए वे जगत्‌हितैषी भी नहीं हैं।

यह सब उलझनें यदि सुलझ सकती हैं तो केवल एक ऐसे सिद्धान्त से, जो किसी भी विषय पर एक दृष्टिकोण (One point of view) से विचार न कर विविध दृष्टिकोणों (By all points of view) से विचार करता है; क्योंकि भिन्न २ अवस्थाओं व व्यवस्थाओं में वस्तुओं के भिन्न २ रूप होते हैं, अतः उनका कथन एकान्त से हो नहीं सकता, अनेकान्त ही उनकी संगत व्याख्या कर सकता है। बहुत छानबीन करने पर स्याद्वाद ही केवल एक ऐसा सिद्धान्त प्रतीत होता है जो उपरोक्त गुण से पूर्णतः अलंकृत है। यह सिद्धांत किसी वस्तु के लिए यह नहीं कहता कि यह एकान्ततः ऐसा ही है और अतः यह एकान्त विश्वास का निषेध कर सर्वाङ्ग वस्तु के वास्तविक स्वरूप का निश्चय कराता है। एकान्ती जो कुछ भी कथन करते हैं, एक नय की सर्वथा प्रधानता को लेकर। वे उसके विविध दृष्टिकोणों से उसका विचार नहीं करते—अतः यही बात उनको जनसमाज के प्रति हितेच्छु होने से रोकती है, परन्तु इसके प्रतिकूल स्याद्वाद जिसका कि विविध दृष्टिकोणों से विचार करना ही ख़ास उद्देश्य है, वास्तविक शान्ति का कारण हो जाता है। जहाँ सांख्य वस्तु के कूटस्थ नित्यत्व को स्वीकार करता है एवं जहाँ बौद्ध बिलकुल ही इसके प्रतिकूल क्षणिकवाद को अपना सिद्धान्त मानता है वहाँ स्याद्वादी कहते हैं कि वस्तु यदि सर्वथा नित्य ही है तो उसमें पर्याय-परिवर्तन किस तरह होता है; कूटस्थ नित्य में तो कभी विकार नहीं होता, और यदि वस्तु सर्वथा क्षणिक ही है तो "यह वस्तु वही है जो पहले देखी थी" ऐसा प्रत्यभिज्ञान न होना चाहिए; किन्तु प्रत्यभिज्ञान तो अबाधरूप से होना देखा जाता है। इस तरह यह दोनों ही कल्पनाएं तर्क की कसौटी पर ठीक नहीं उतरतीं। पर स्याद्वाद सिद्धान्त इस विषय का अच्छा निरूपण करता है—वह प्रतिपादन करता है कि वस्तु नित्य भी है और अनित्य भी। अर्थात् नय विवक्षा से वस्तु में अनेक स्वभाव हैं और वे परस्पर में बिलकुल विरोधात्मक हैं, जैसे कि—अस्ति-नास्ति, एक-अनेक, भेद-अभेद, नित्य-अनित्य। परन्तु स्याद्वाद इस विरोध को समूलतः दूर कर देता है; क्योंकि एक ही पदार्थ कथञ्चित् स्वचतुष्टय (द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव) की अपेक्षा अस्तिरूप है, एवं कथञ्चित् परचतुष्टय की अपेक्षा नास्ति रूप भी। समुदाय की अपेक्षा एकात्मक है, एवं गुण पर्यायापेक्षया अनेकात्मक है। कथञ्चित् संज्ञा संख्यालक्षणापेक्षया भेदात्मक है एवं कथञ्चित् सत्त्व की अपेक्षया अभेदात्मक है। कथञ्चित् द्रव्य की अपेक्षा वस्तु नित्य भी है

एवं पर्यायोंकी अपेक्षा अनित्य भी। इस प्रकार स्याद्वाद अनंत धर्मवाली वस्तु के लिए कभी भी "ही" शब्द का प्रयोग नहीं करता, क्योंकि वस्तु के किसी एक धर्म को किसी विशेष अर्थ में ही सत्य कह सकते हैं सर्वथा नहीं। प्रत्येक वाक्य की सत्यता केवल अवस्थापन्न है; क्योंकि कोई वाक्य ऐसा नहीं है जो सत्य ही हो, और न कोई ऐसा ही वाक्य है जो सर्वथा असत्य ही हो, अपितु सभी वाक्य किसी एक अर्थ में सत्य हैं और दूसरे अर्थ में असत्य। वाक्य को सत्य ही मान बैठना या असत्य ही, यही झगड़े का कारण है। आजतक जो भीषण अत्याचार हुए हैं वे सब इसी एकान्त दृष्टि के प्रतिफल हैं। अगर वहां हम इस अनेकान्त जैसे सिद्धान्त का उपयोग करते तो कभी इतनी अशान्ति न होती।

स्याद्वाद की इतनी उपयोगिता दर्शाना कोरी कल्पना मात्र नहीं है। व्यावहारिक जीवन में भी हमें अनेक ऐसे दृष्टान्त मिलते हैं जिनसे यह बात सिद्ध हो जाती है कि अपेक्षाभेद के बिना समझे बहुत सी असुविधाएं उत्पन्न हो जाती हैं।

कुछ दिनों पहिले मैंने एक इङ्गलिश की पुस्तक में एक कहानी पढ़ी थी। उस कहानी का भाव यह है कि—योरुप के किसी नगर में चौराहे पर एक विशाल मूर्ति खड़ी थी। मूर्ति का एक हिस्सा चांदी का बना हुआ था और दूसरा सोने का। संयोगवश एक दिन ऐसा हुआ कि एक ही समय दोनों तरफ से दो अश्वारोही योद्धा आए। उनमें से प्रथम जोकि मूर्ति के सुवर्ण भाग की तरफ था, बोला—'अहा कैसी अच्छी सुवर्ण की मूर्ति है' पर दूसरा, जिसने कि मूर्ति के रजत भाग को देखा था, बोला कि मूर्ति सुवर्ण की नहीं है, चांदी की है। पर पहिला कब मानने वाला था। उसने कहा अरे बेवकूफ़! यह तो सुवर्ण की है, चांदी की नहीं। इस प्रकार बहुत देर तक तो उनमें परस्पर वाग्युद्ध होता रहा, पर दोनों ही अपनी बात पर दृढ़ रहे। इसका फल यह हुआ कि बात बढ़ते २ दोनों में मल्लयुद्ध होने की नौबत आ गई और अन्त में दोनों बहुत देर तक लड़लेने के पश्चात् बेहोश होकर गिर पड़े। भाग्यवश उधर से एक कोई अच्छा चिकित्सक आ निकला, जिसने उन दोनों मूर्च्छितों को देखकर कुछ उपचार किया, जिससे दोनों की बेहोशी दूर हुई; पर ज्योंही वे उठे-एक कहने लगा कि मूर्ति सुवर्ण की है एवं दूसरा कहने लगा कि चांदी की; फिर दोनों लड़ने लगे। जब उस विवेकी वैद्य ने इन दोनों की लड़ाई का कारण समझा, तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह उनको इस प्रकार लड़ते हुए देखकर बोला कि अरे भले आदमियो! तुम मूर्ति का दूसरा हिस्सा क्यों नहीं देखते? क्यों मूर्ति के एकान्त ज्ञान के पीछे पड़कर अपने समय और शक्ति का दुरुपयोग कर रहे हो? तब उसने उन दोनों के हाथ पकड़ कर दोनों को मूर्ति के दोनों हिस्सों को दिखलाया। बस फिर क्या था; दोनों अपनी भयङ्कर भूल पर पश्चाताप करने लगे।

स्याद्वाद की उपयोगिता का यह कैसा अच्छा उदाहरण है—इससे पाठक समझ गए होंगे कि संसार के विविध विरोधों का कारण केवल वस्तु का एकांश ज्ञान है। इसी से मत असहिष्णुता पैदा होती है और उसी के फल स्वरूप संसार में भीषण रक्तपात तक भी होने लगता है और कोई

इसकी यदि अव्यर्थ औषधि हो सकती है तो वह केवल एक स्याद्वाद है। यह हमें बतलाता है कि कभी किसी वस्तु पर एक दृष्टिकोण से विचार न कर, विविध दृष्टिकोणों से ही उसका विचार करो। इसी से तुम वस्तु के वास्तविक स्वरूप का निश्चय कर सकोगे।

वस्तुतः स्याद्वाद एक ऐसी अद्भुत और अनूठी वस्तु है, जिससे प्रत्येक प्रकार का धार्मिक वाद विवाद व व्यावहारिक कलह आसानी से दूर हो सकती है। बस यही सिद्धान्त जैनधर्म का सर्वस्व है। यदि जैन सिद्धान्त से इस बहुमूल्य सिद्धान्त को पृथक् कर दिया जाय तो जैनधर्म में कोई खास विशेषता बाकी न रह जायगी। स्याद्वाद जैन सिद्धान्त का बीज या जीव मूल है, जैसा कि अमृतचन्द्र सूरि ने कहा है—

परमागमस्य बीजं निषिद्ध जात्यन्ध सिन्धुरविधानम्
सकल नय विलसितानां विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम्

अर्थात्—जिस प्रकार शरीर जीव सहित ही कार्यकारी होता है, जीव बिना मृतक शरीर किसी काम का नहीं होता, उसी प्रकार स्याद्वाद जैन सिद्धान्त का जीव है, यदि उसको हटा दिया जाय तो जैनधर्म किसी काम का नहीं रह जायगा।

उपरोक्त कथन से यह निश्चित हो जाता है कि स्याद्वाद सिद्धान्त सब सिद्धान्तों का Compromise कर सकता है और वह जब इसमें समर्थ है तो यह भी निश्चित ही है कि वह विश्व-शान्ति का भी साधन हो सकता है। यदि संसार सच्चे सुख का इच्छुक है और यदि वह शान्ति और आनन्द का अनुभव करना चाहता है तो उसे जैन धर्म के स्याद्वाद सिद्धान्त-रूपी परम शान्त सरोवर में डुबकियाँ लगानी चाहियें। उसकी मनः कामना अवश्य पूरी होगी।

स्याद्वाद को न्याय के ढांचे में ढालने वाले आद्य-विद्वान

[ले०—पण्डित अजितकुमार जी जैन शास्त्री, मुलतान]
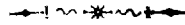
'राजन् यस्यास्ति शक्तिः स वदतु पुरतो जैन निर्ग्रन्थवादी' इस वाक्य को अपने सच्चे स्वाभिमान के साथ विद्वानों से पूर्ण काशीनरेश की राजसभा में कहने वाले स्वामी समन्तभद्राचार्य का जीवन भी एक आदर्श विश्व-विजेता का जीवन है। जैनसिद्धान्त की सत्यता सिद्ध करने के लिये उनको जिस जिस प्रान्त में अजैन उद्भट विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ करने पड़े उनमें समन्तभद्राचार्य ने प्रभावशाली विजय प्राप्त की; कहीं भी ज़रासी खम नहीं खाई, सर्वत्र प्रतिवादियों को नतमस्तक किया।

समन्तभद्राचार्य के समय में यह एक प्रथा प्रचलित थी कि प्रायः प्रत्येक नगर में किसी एक सार्वजनिक स्थानपर एक नगाड़ा रक्खा रहता था। जब कोई बाहर का आया हुआ विद्वान् वहां पर अपने मत का प्रचार करना चाहता था तब वह उस नगाड़े को बजाता था। उस नगाड़े का बजाना शास्त्रार्थ के लिये खुला निमन्त्रण (अल्टीमेटम) समझा जाता था। तदनुसार नगाड़े का शब्द सुन कर नगरनिवासी विद्वान् उस स्थान पर एकत्र हो जाते थे जिनके साथ उस नगाड़ा बजाने वाले विद्वान को शास्त्रार्थ करना पड़ता था। यदि वह शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त करता था तो उसके सामने उन विद्वानों को नतमस्तक होकर उसके मन्तव्य की सचाई स्वीकार करनी पड़ती थी। भारतवर्षके प्रायः सभी विद्याप्रधान नगरों में पहुँच कर स्वामी समन्तभद्राचार्य ने नगाड़े बजाकर वहां के विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त करके जैनधर्म का प्रचार किया था। इसी कारण इतिहासखोजी विद्वान श्रीमान् रामस्वामी आयंगर ने समन्तभद्राचार्य को एवरफॉर्चूनेट (Ever Fortunate) यानी सदा भाग्यशाली लिखा है।

करहाटक नगर की राजसभा में पहुँच कर राजा के समक्ष स्वामी समन्तभद्रने अपनी विद्वत्ता का परिचय निम्नलिखित श्लोक बोलकर दिया:—

पूर्वं पाटलिपुत्र मध्य नगरे भेरी मया ताडिता,
पश्चान्मालव सिन्धु ठक्कविषये कांचीपुरे वैदिशे।
प्राप्तोहं करहाटकं बहुभटं विद्योत्कटं संकटं,
वादार्थी विचराम्यहं नरपते शार्दूलविक्रीडितम्॥

यानी—मैंने शास्त्रार्थ करने के लिये पहले पटना नगर में भेरी बजाई थी; फिर मालवा, सिंध, पञ्जाब, कांचीपुर, भेलसा नगर में शास्त्रार्थ के लिये नगाड़ा बजाया। अब विद्वानों से परिपूर्ण इस करहाटक नगर में आया हूँ। हे राजन्! शास्त्रार्थ करने के लिये मैं शेर के समान घूम रहा हूँ।

शिवकोटि राजा के आग्रह से शिवपिंडी को वंदना करते हुए जिस समय समन्तभद्राचार्य ने अपने आत्मिक तेज से शिवपिंडि से चन्द्रप्रभु तीर्थङ्कर की प्रतिमा प्रगट करदी, उस समय अपने भस्मक रोग का परिचय देते हुए समन्तभद्र स्वामी ने जो श्लोक कहा था उसका चतुर्थ चरण यही था कि 'राजन् यस्यास्ति शक्तिः स वदतु पुरतो जैननिर्ग्रन्थ

वादी।' यानी—हे राजन्! मैं निर्ग्रन्थ जैनवादी हूं, मेरे विरुद्ध शास्त्रार्थ करने की जिसमें शक्ति हो वह मेरे सामने आजावे। इत्यादि स्वाभिमान पूर्ण वाक्य तो स्वयं समतन्भद्राचार्य के थे, किन्तु अन्य विद्वानों ने समन्तभद्राचार्य की प्रशंसा में जो वाक्य लिखे हैं वे भी इनसे कुछ कम नहीं हैं।

भगवज्जिन सेनाचार्य ने आदिपुराण में लिखा है—

नमः समन्तभद्राय महते कविवेधसे।
यद्वचो वज्रपातेन निर्भिन्नाः कुमताद्रयः॥

अर्थात्—महान कवि विधाता समन्तभद्र स्वामी के लिये नमस्कार है; जिनके वचनरूपी वज्रपात से कुमतपर्वत छिन्न भिन्न हो गये।

हनुमत चरित्र में लिखा है—

जीयात्समन्तभद्रोऽसौ भव्यकैरवचन्द्रमाः।
दुर्वादिवादकंडूनां शमनैक महौषधिः॥१९॥

यानी—भव्यजीवरूपी कमलों को विकसित करने के लिये चन्द्रमा तुल्य श्री समन्तभद्राचार्य जयशाली रहें, जोकि प्रतिवादियों का वाद (शास्त्रार्थ करना) रूपी खुजली को दूर करने के लिये अमोघ औषधि के समान हैं।

श्वेताम्बर आचार्य श्री हरिभद्रसूरि ने अनेकान्त जयपताका की स्वोपज्ञ टीका में 'आह च वादि मुख्यः समन्तभद्रः' इस वाक्यद्वारा समन्तभद्राचार्य को वादिमुख्य (वादियों में प्रधान) शब्द से अलंकृत किया है।

स्वामी समन्तभद्र केवल तार्किक विद्वान ही न थे, किंतु वे एक गणनीय वैयाकरण, कवि, सिद्धान्त चक्रवर्ती भी थे—इस बातका उल्लेख जहां भगवज्जिनसेनाचार्य, पूज्यपाद आचार्य आदि प्रख्यात विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में बड़े आदर के साथ किया है वहीं श्री समन्तभद्राचार्य विरचित रत्नकरंड श्रावकाचार, गंधहस्तिमहाभाष्य, जिनशतक आदि ग्रन्थ भी उस उल्लेख की पुष्टी करते हैं। भगवज्जिनसेनाचार्य लिखते हैं—

कवीनां गमकानां च वादीनां वाग्मिनामपि।
यशः सामन्तभद्रीयं मूर्ध्नि चूड़ामणीयते॥

यानी—कवियों, गमकों, वादियों तथा वाग्मी विद्वानों में समन्तभद्राचार्य का यश सबसे उन्नत है।

श्री पूज्यपाद आचार्य ने जैनेन्द्र व्याकरण में "चतुष्टयं समन्तभद्रस्य" इस सूत्र द्वारा व्याकरण विषय में समन्तभद्राचार्य के ज्ञान का उल्लेख किया है।

इस प्रकार श्री समन्तभद्राचार्य का यशोगान अनेक प्रसिद्ध विद्वानोंने बड़े आदर के साथ अपने ग्रंथों में किया है। समन्तभद्राचार्यकी सब से बड़ी महिमा निम्नलिखित गाथा से प्रगट होती है, जिसके अनुसार वे भविष्य काल में तीर्थङ्कर होंगे। गाथा यह है—

अट्ठ हरी णव पडिहरि चक्कि चउक्कं च एय बलभद्दो
सेणिय समन्तभद्दो तित्थयरा हुंति णियमेण।

यानी—इस अवसर्पिणी युग के आठ नारायण, नौ प्रतिनारायण, चार चक्रवर्ती, एक बलभद्र, श्रेणिक राजा और समन्तभद्र ये २४ पुरुष नियमसे भविष्य युग में तीर्थंकर होंगे।

इसी प्रकार हस्तिमल्ल कवि ने विक्रान्त कौरव नाटक में भी उल्लेख किया है—

श्री मूलसंघव्योमेन्दुर्भारते भावितीर्थकृत्
देशे समन्तभद्राख्यो मुनिर्जीयात्पदर्द्धिकः।

यहां इतना विशेष और लिखा है कि समन्त-

भद्राचार्य को पद ऋद्धि (सैकड़ों कोस पैदल चलने पर भी पैरों में थकावट न आना ऐसा अतिशय) भी प्राप्त थी।

समन्तभद्राचार्य में ये दोनों अतिशय विद्यमान थे, यह बात आश्चर्यजनक नहीं। क्योंकि जैनधर्म का अक्षुण्ण प्रभाव प्रसार करने के लिये जो वे पैदल भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में केवल दिन के समय चलकर साधुचर्या से पर्यटन करते थे, इस कारण तो उनको पदऋद्धि अवश्य होनी चाहिये और जिस अदम्य उत्साह तथा असाधारण उद्योग के साथ भारतवर्ष में जैनधर्म का व्यापक प्रचार करके प्रभावना अंग (षोडशकारण भावनाओं में से एक) का आदर्श उपस्थित किया, एवं भस्मक रोग के आक्रमण के समय भी अनेक विपत्तियों का धीर वीरता से सामना करते हुए जो अपने सम्यग्दर्शन गुणको रंचमात्र भी मलिन नहीं होने दिया, यह उनकी दर्शनविशुद्धि भावना का परिचायक है।

इसके सिवाय वे अनुपम, असाधारण जिनवर भक्त भी थे। वर्तमान प्रचलित स्तुति पद्धति के आदि सूत्रधार थे। स्तुतिनिर्माण का शिलारोपण समन्तभद्राचार्य ने ही किया था। श्वेताम्बरसम्प्रदाय के नेता श्री मलयगिरिसूरिने आवश्यकसूत्र की टीका में श्री समन्तभद्राचार्य का परिचय देने के लिये 'आद्यस्तुतिकारोऽप्याह' (अर्थात्—आद्य स्तुति रचयिता भी ऐसा कहता है) वाक्य लिखकर स्तुति निर्माण करने वालों में समन्तभद्राचार्य को सबसे प्रथम कवि बतलाया है। श्वेताम्बर प्रख्यात विद्वान् श्री हेमचन्द्राचार्य ने भी समन्तभद्र स्वामी को सिद्धहेम शब्दानुशासन में 'स्तुतिकारोऽप्याह' वाक्य से याद किया है। इन उल्लेखों को पढ़कर तथा स्वयम्भूस्तोत्र आदि में उनके बनाये हुए स्तोत्रों का अनुपम भाव अवगत करके यह बात कहनी पड़ेगी कि श्री समन्तभद्राचार्य सरीखा अर्हन्तभक्त भी कोई नहीं हुआ। उनकी स्तुतियों में जो असाधारण भक्तिभाव पाया जाता है वह किसी भी कवि की स्तुति में उपलब्ध नहीं होता। अतः स्वामी समन्तभद्र की अर्हद्भक्ति भावना भी असाधारण थी।

इस प्रकार दर्शनविशुद्धि, सतत ज्ञानोपयोग, अर्हन्त भक्ति, धर्मप्रभावना, इन चार भावनाओं का विकास श्री समन्तभद्र में बहुत उत्कट रूप से था। अतएव उन्होंने तीर्थङ्कर प्रकृति का उपार्जन किया, यह एक स्वाभाविक बात है। पञ्चम कालीन इतर साधुओं को यह सौभाग्य और गौरव प्राप्त नहीं है।

समन्तभद्राचार्य ने अपनी स्तुतियों में भक्तिमार्ग की अनेक उलझनों को सुलझा दिया है, अनेक बलवती शंकाओं का सरलरूप में बहुत अच्छा समाधान कर दिया है; इस बात के ४-६ उदाहरण पाठक महानुभावों के सामने रखकर आगे बढ़ेंगे।

श्री वासुपूज्य तीर्थंकर की स्तुति करते हुए समन्तभद्राचार्य दो प्रबल शंकाओं का समाधान करते हैं। देखिये—

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे, न निन्दया नाथ विवान्तवैरे। तथापि ते पुण्य गुण स्मृतिर्नः, पुनातु चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः ॥ ५७ ॥ पूज्यं जिनं त्वार्च्चयतो जनस्य, सावद्यलेशो बहु पुण्य राशौ। दोषायनालं कणिका विषस्य न दूषिका शीतशिवाम्बुराशौ ॥ ५८॥

अर्थात्—हे भगवन् आप में रागभाव का अभाव है, अतः आप अपनी पूजा से प्रसन्न हो कर कुछ दे नहीं देंगे, और आप में द्वेषभाव नहीं, इस

कारण यदि आपकी निंदा की जावे तो कुपित होकर आप किसी का कुछ बिगाड़ नहीं करेंगे। यह सब कुछ ठीक है, किंतु फिर भी आपके पवित्र गुणों का स्मरण चित्त को दुर्वासनाओं से अवश्य हटा देता है। अतः आपका स्तवन निरर्थक नहीं, किन्तु पुण्य का कारण है।

आपके स्तवन पूजन करने में कुछ आरम्भ अवश्य होता है, किन्तु वह हानिकारक इस कारण नहीं कि पुण्य कर्म की बहुलता में वह कुछ कार्यकारी नहीं रहता, जिस तरह कि शीतल और मिष्ट समुद्र-जल को एक विष की बूंद खराब नहीं कर सकती।

वीतराग भगवान अपने पुजारी के ऊपर प्रसन्न नहीं होते, अतः पूजा स्तवन के बदले में कुछ नहीं दे सकते; फिर उनकी भक्ति से क्या लाभ ? तथा—पूजनादि भक्ति कार्यों में पापोत्पादक आरंभ होता है, फिर पूजनादिक से क्या लाभ ? इन दो शंकाओं का समाधान श्री समंतभद्राचार्य ने ऊपर के दोनों श्लोकों में कैसे अच्छे ढंग से कर दिया है।

श्री अनन्तनाथ भगवान की स्तुति में लिखते हैं कि—

सुहृत् त्वयि श्रीसुभगत्वमश्नुते द्विषंस्त्वयि प्रत्ययवत्प्रलीयते
भवानुदासीनतमस्तयोरपि प्रभो परंचित्रमिदं तवेहितम् ॥

यानी—जो पुरुष आपका भक्त बन जाता है वह शुभकर्म संचित करके भाग्यशाली हो जाता है और जो आपसे द्वेष करता है वह क्विप् प्रत्यय के समान अशुभकर्मबन्ध के कारण नष्ट हो जाता है। किन्तु आप अपने पुजारी एवं निन्दक, दोनों ही से पूर्णतया उदासीन रहते हैं। इस तरह हे भगवन्! आपकी चेष्टा बहुत अद्भुत है। ६९॥

वीतराग भगवान की उदासीनता रहने पर भी उनकी भक्ति किस प्रकार कार्यकारी है इस बात का गूढ़ विवेचन इस पद्य में किया है।

स्तुति क्या वस्तु है और उसको हम कर सकते हैं या नहीं ? यदि नहीं कर सकते तो फिर स्तुति करने से लाभ ही क्या है ? इत्यादि बातों का स्पष्ट विवेचन करते हुए समन्तभद्राचार्य लिखते हैं कि—

गुणस्तोक सदुल्लंघ्य तद्बहुत्वकथा स्तुतिः
आनंत्यात्ते तथा वक्तुमशक्यास्त्वयि सा कथम्। ८६।
तथापि ते मुनीन्द्रस्य, यतो नामापि कीर्तितम्
पुनाति पुण्यकीर्तेर्नस्ततो ब्रूयाम किंचन। ८७।

अर्थात्—हे भगवन्! थोड़ी सी बातको बढ़ा कर बहुत कहना ही 'स्तुति' है (जैसे—रोटी मिल जाने पर भिक्षुक अन्नदाता कह दिया करते हैं), किंतु आपके जब कि गुण अनंत हैं जिनका कि नाममात्र कहना भी हमारी शक्तिसे बाहर है फिर आपकी स्तुति हम से किस तरह हो सकती है ? यानी हमसे आपके अनंत गुणों की स्तुति किसी प्रकार नहीं हो सकती।

फिर भी हे नाथ! आपके कतिपय गुणों का नाममात्र कथन भी आत्मा को पवित्र बना देता है, अतः मैं कुछ कहता हूँ।

इन श्लोकों का यदि विशद विस्तृत भाव लिखा जावे तो भक्तिभाव विषयक अपूर्व अभिप्राय इनसे प्रगट होता है। ऐसे अनेक अनुपम पद्य स्वयम्भू-स्तोत्र में विद्यमान हैं।

इस तरह स्वामी समन्तभद्राचार्य जहाँ जैन कवियों में आद्यस्तुतिकार हुए हैं वहीं वे अनुपम स्तुतिकार भी हुए हैं, यह बात स्वयमेव माननी पड़ेगी।

भक्ति विषयक साहित्यनिर्माण के वे मार्गदर्शक हुए हैं।

समन्तभद्राचार्य की कविता में तार्किक विषय मुख्य पाया जाता है। यद्यपि भक्ति, सिद्धान्त आदि विषयोंपर भी जहाँ उन्होंने लेखनी चलाई है उन विषयों के गूढ़ रहस्य बहुत अच्छे ढङ्ग से प्रगट कर दिये हैं, उनमें कुछ कमी नहीं रक्खी, किंतु तार्किक-पद्धतिको उन्होंने अधिकतर काममें लिया है—यही कारण है कि स्तोत्रों में भी उन्होंने न्यायविषय को, स्याद्वाद सिद्धान्त को, प्रमाण नय की जटिलताओं को भर दिया है। केवल स्वयंभूस्तोत्र को पूर्णभाव सहित पढ़ लेने वाला व्यक्ति एक अच्छा तार्किक विद्वान् बन सकता है।

वास्तव में समन्तभद्राचार्य जैन न्यायग्रन्थ रचना में भी सर्व प्रथम विद्वान हुए हैं। उभय सम्प्रदायों में ऐसा कोई विद्वान् नहीं हुआ जिसने समन्तभद्राचार्य से पहले किसी न्यायग्रंथ की रचना की हो, जैनसिद्धान्त को न्यायग्रंथों के अभेद्य कोट द्वारा सुरक्षित करने का प्राथमिक सौभाग्य समन्तभद्राचार्य को ही प्राप्त है।

स्याद्वाद और वैदिक साहित्य

[लेखक—वेदविद्याविशारद श्रीमान् पं० मंगलसेन जी, अम्बाला छावनी ।]
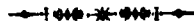
वैदिक साहित्य भारत के प्राचीन साहित्य में से है। इसका निर्माण काल क्या है, इसका निर्णय तो हम आगे चलकर करेंगे। अभी तो हमको केवल इतना ही देखना है कि इससे किन किन ग्रन्थों का ग्रहण किया जाता है। वैसे तो सैकड़ों ग्रन्थ मिलेंगे जिनका उल्लेख वैदिक साहित्य के नाम पर किया जा सकता है, किन्तु मुख्य रूप से इससे वेद, ब्राह्मण और उपनिषद् साहित्य का ही ग्रहण होता है। वेद से तात्पर्य मंत्रभाग से है। ब्राह्मण साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जो वैदिक क्रियाकाण्ड के सम्बन्ध में एवं उनके अर्थों के सम्बन्ध में वर्णन करता है तथा जो शतपथ और ऐतरेयादि के नाम से प्रचलित है। आरण्यक ‡ साहित्य भी इसही का एक भाग विशेष है। किन्हीं २ विद्वानों ने ब्राह्मण साहित्य को दो भागों में विभाजित किया है—एक कर्मकाण्डविषयक और दूसरा ज्ञान काण्ड विषयक। कर्मकाण्ड विषयक साहित्य से ये प्रचलित शतपथ और ऐतरेयादि का ग्रहण करते हैं तथा ज्ञानकाण्ड विषयक साहित्य से इनका अभिप्राय उपनिषद् साहित्य से है। इस प्रकार ये आरण्यक साहित्य की भाँति उपनिषद् साहित्य को भी ब्राह्मणसाहित्य का ही अंश विशेष स्वीकार करते हैं। उपनिषद् साहित्य को ब्राह्मण साहित्य का एक भाग विशेष ही स्वीकार किया जाय या स्वतंत्र माना जाय, किन्तु यह तो निश्चित है कि इससे तात्पर्य आध्यात्मिक साहित्य से है।

अब देखना यह है कि भारत के इस प्राचीन साहित्य में स्याद्वाद का उल्लेख या इस शैली का अनुकरण अथवा इसका अस्तित्व कहाँ तक मिलता है। वेदों में सबसे प्राचीन ऋग्वेद को माना जाता है। ऋग्वेद काल में स्याद्वाद शैली मौजूद थी, इस का स्पष्ट उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। ऋग्वेद मं० १ सूक्त १६४ मंत्र ४६ में बतलाया गया है कि एक ही सत् को विद्वान भिन्न २ प्रकार से वर्णन करते हैं *। इसही के सम्बन्ध में उल्लेख करते हुए निरुक्तकार यास्क ने भी यही बात स्वीकार की है †।

एक ही वस्तु का भिन्न २ दृष्टियों से भिन्न भिन्न प्रकार वर्णन करना स्याद्वाद है तथा यही बात ऋग्वेद के प्रस्तुत मंत्र में बतलाई गई है। इससे ऋग्वेद कालमें वस्तुतत्व के विवेचन

‡ आरण्यक साहित्य ब्राह्मण साहित्य से भिन्न है। ब्राह्मण चार प्रकार का है और आरण्यक के दो भेद हैं। आरण्यक और ब्राह्मणों का विषय भी भिन्न भिन्न है।—सम्पादक

* इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥ —ऋग्वेद मं० १ सू० १६४ मंत्र ४६

† एकमात्मानं बहुधा मेधाविनो वदन्ति—निरुक्त अ० ७ खं० १८

⊛ स्याद्वादांक ⊛

वेदविद्याविशारद पं० मंगलसैन जी, जैन ।

[वैदिक साहित्य के अपूर्व अभ्यासी व अन्य धर्मावलम्बियों के आक्षेपों के समाधान में सदा तत्पर रहने वाले]

की त्रुटियाँ प्रतीत होती हैं, तब भी यह बात ठीक नहीं बैठती, क्योंकि उपनिषद्‌कारों ने तो इस प्रकार के वर्णन एक ही स्थल पर किये हैं। कंठोपनिषद् ३—२० में एक ही स्थान पर पुरुष विशेष को छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा बतलाया है। इसही प्रकार का उल्लेख श्वेताश्वतरोपनिषद् में है। उद्धरण हम पूर्व ही उपस्थित कर चुके हैं। इन सब बातों के आधार से यह तो कहना ही पड़ता है कि उपनिषदों के इन विवेचनों का कारण एकान्ततः उनके रचयिताओं के ज्ञान की न्यूनता ही नहीं थी! दूसरे पक्ष में ये सब ही विवेचन ठीक बैठ जाते हैं। जो व्यक्ति क्रियावान है वही किसी समयविशेष में क्रिया रहित भी हो सकता है। इसही प्रकार जब वह अपनी आँखों आदि से कार्य करता है उसको उस समय आँखों वाला और जब वह इनसे कार्य नहीं करता उस समय उसको इनसे हीन कह दिया जाया करता है। अन्य भी व्याख्यायें हैं जिनके अनुसार ये सब ही विवेचन ठीक २ घटित हो जाते हैं। कुछ भी सही, कोई भी व्याख्या सही, यहाँ तो हमारा इतना ही प्रयोजन है कि वैदिक साहित्य में भी स्याद्वाद—दृष्टिविशेष—शैली के स्पष्ट उदाहरण मिलते हैं और यह बात इन उल्लेखों से निस्सन्देह माननी पड़ती है।

अब विचारणीय केवल इतना ही रह जाता है कि इसका सैद्धान्तिक सम्बन्ध किस दर्शन से है और इसको किसने किससे लिया है।

वैदिक साहित्य में सर्व प्रथम वेदों की रचना हुई है, उनके बाद ब्राह्मणों की और फिर उपनिषदों की। वेदों की रचना का काल महाभारत का काल है। समय की गणना के हिसाब से इसको आजसे पाँच हज़ार वर्ष पूर्व तक का स्वीकार किया जा सकता है। वैदिक सूक्तों या मंत्रों की रचना भिन्न २ काल में हुई है। कुछ मंत्रों की रचना तो संहिता काल के उपरान्त तक होती रही है। इसके पश्चात् इनको संहिता का रूप दिया गया है और ये सब मंत्र ऋग्वेद आदि के विभागों में विभाजित किये गये हैं।

जितना भी ब्राह्मण और उपनिषद् साहित्य मिलता है वह सब संहिता काल के बाद का है। इसके अनेक कारण हैं, किन्तु उनमें से यहाँ हम केवल एक का ही उल्लेख करेंगे। वेदों में शाखा भेद हुआ है, जिसही के परिणाम स्वरूप आज भिन्न २ वेद की भिन्न २ शाखायें मिलती हैं। सामवेद की १००० शाखा तक का उल्लेख मिलता है*। यह शाखा भेद संहिता काल के पश्चात ही हुआ है यह एक सर्व मान्य बात है। आज जितना भी ब्राह्मण और उपनिषद् साहित्य मिलता है वह सब शाखा भेद से सम्बन्धित है। एक भी ऐसा ब्राह्मण या उपनिषद् नहीं जिसका सम्बन्ध शाखा भेद से न हो। अतः वर्त्तमान ब्राह्मण और उपनिषद् साहित्य को एक स्वर से संहिताकाल के बाद का ही मानना पड़ता है।

मंत्रों को संहिता का रूप कृष्ण द्वैपायन ने दिया था। इसही कारण से ये वेद व्यास कहलाये और आजतक इनके नाम के साथ वेदव्यास शब्द

* एक शतमध्वर्यु शाखाः सहस्रवर्त्मा सामवेदः एक विंशतिधा बाह्वृच्यं नवधाऽथर्वणोवेदः।

—महाभाष्य पातञ्जलि।

का उल्लेख मिलता है। कहीं २ तो इनको वेदव्यास नाम से ही स्मरण किया गया है। इन्होंने ही वेदान्त सूत्र का निर्माण किया है। संहिताकार कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास ने अपने वेदान्तसूत्र में अनेकान्त वाद का खण्डन किया है। इससे यह तो प्रमाणित है कि अनेकान्तवाद—स्याद्वाद—आपकी मान्यता के प्रतिकूल था। यदि ऐसा न होता तो इन्होंने अपने सूत्र में उसके खण्डन की चेष्टा न की होती। क्या कोई अपनी ही मान्यता का स्वयं खंडन किया करता है? कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास ब्राह्मणकार और उपनिषद्कारों से प्राचीन होने के साथ ही वैदिक मंत्र निर्माताओं के समकालीन भी हैं। अतः यह तो निःसन्देह मानना पड़ता है कि स्याद्वाद का दार्शनिक सम्बन्ध वैदिक सम्प्रदाय से नहीं है।

डा० मैक्समूलर ने पाश्चात्य साहित्य में वैदिक देवताओं—इन्द्र, मित्र और वरुणादि—के नामों के मिलने से वेदों को उससे प्राचीन स्वीकार किया है। इसही प्रकार जैन देवियों—श्री, ह्री, धी और कीर्ति आदि—के नाम भी मोहन जो दारू की सीलों पर अंकित मिले हैं। इन सीलों के अतिरिक्त कुछ सीलें ऐसी भी हैं जिनपर स्पष्ट जिनेश या जिनेश्वर शब्द मिलता है †। इन सीलों का निर्माणकाल आज से पाँच हज़ार वर्ष प्राचीन है, अतः इस दृष्टि से जैनधर्म को भी ऐतिहासिक दृष्टि से इनसे प्राचीन मानना पड़ता है।

ऋग्वेद का रचनाकाल इससे पूर्व किसी भी अवस्था में स्वीकार नहीं किया जासकता, ऋग्वेद में औषधियोंके वर्णन करते हुए लिखा है कि "जो औषधियाँ तीन युग पूर्व उत्पन्न हुई थीं"। इससे प्रगट है कि जिस समय इस मंत्र की रचना हो रही थी उस समय तीन युग व्यतीत हो चुके थे। अतः यह कथन चतुर्थयुग–कलयुग–के प्रारम्भ का मानना पड़ता है। कलयुग के प्रारम्भ को आज से करीब पांच हज़ार वर्ष का ही समय व्यतीत हुआ है; ऐसी अवस्था में यह कैसे स्वीकार किया जा

† A close and careful examination of the South Indian pottery marks would also seem to show that signs associated with Tantrik cults were used there, for these marks, when deciphered according to my Syllabary give the names of the well known Tantrik devies Kli, Sri, Hri, etc.

× × × ×

It is interesting to note that the Puranas and the Jain religious books both assign high places to these gods.

+ × × ×

The names Kli, Sri, Hri moreover constantly appear at the beginning of sentences in the Jain works. .. ..and in other works also From the Jain religious texts it would seem that Hri enjoyed much popularity. It may also be noted that the inscription on the Indus seal No. 449 reads, according to my decipherment Jinesvara or Jinesah. —Indian Historical Quarterly, Vol. VIII No. 2 Supplement.

सकता है कि ऋग्वेद का रचनाकाल आज से पांच हज़ार वर्ष से भी प्राचीन है।

इन सब बातों से प्रगट है कि जिस समय वैदिकमंत्रों की रचना हुई थी उस समय जैनधर्म इस भूमण्डल पर मौजूद था। स्याद्वाद का सिद्धान्त जैनधर्म का सिद्धान्त है तथा रहा है। वैदिक विद्वानों ने इसका खण्डन किया है अतः जहां कहीं भी वैदिक साहित्य में इसकी आभा या उल्लेख मिलता है वह वैदिक साहित्य पर जैनधर्म का ही प्रभाव है।

स्याद्वाद पर श्रीमान् बहुश्रुत डा० भगवानदास जी के विचार।

एक जैन विद्वान साधु के मुख से एक श्लोक सुना, बहुत प्रिय लगा, याद कर लिया।

कला बहत्तर पुरुष की, वामें दो सरदार।
एक जीवकी जीविका, एक जीव उद्धार॥

"यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः" का यही आशय है। "या लोकद्वय साधनी चतुरता सा चातुरी चातुरी"—जिससे दीन और दुनिया दोनों बनै, वही सच्चा धर्म मज़हब। "साध्नोति शुभान् कामान् इति साधुः"। दीन और दुनिया दोनों के साधने का एक मुख्य उपाय, व्यवहार में भी और शास्त्र में भी, कठिनता को सरल करने का विशिष्ट प्रकार, विरोध परिहार है। मेल बढ़ाना, वरोध घटाना, बुद्धि साम्यकरना, भाव वैषम्य हटाना, समन्वय की ओर ध्यान रखना, यह शांति सुख का बड़ा साधन है।

शास्ति यत्साधनोपायं बाधनाऽऽपायमेव च।
सर्वेषां पुरुषार्थानां तच्छास्त्रमभिधीयते॥

जो सब पुरुषार्थों के, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष के, अभ्युदय—निःश्रेयश के, जीव की जीविका और जीवके उद्धार के, साधन का उपाय और उनके बाधनों का अपाय, प्रतीकार बतावै, वही सच्चा शास्त्र। परस्पर मेल बढ़ाना यह इन साधनों में उत्तम उपाय कहा। व्यवहार शोधन के लिये शास्त्र बनता है। सो जैन शास्त्र का मूल सिद्धांत "स्याद्वाद" ऐसा ही साधु उपाय है।

स्याद्वाद का सीधा साधा अर्थ, "एवम् अपि स्यात् अन्यथा अपि स्यात्" यों भी हो सकता है, त्यों भी हो सकता है। "यों ही" कहने से विवाद उठता है। "यों भी" कहने से सम्वाद होता है। दोनों पक्षों पर ध्यान रख कर, दोनों से काम लेने से, पक्षी आकाश में उड़ता है। केवल पूर्वपक्ष, केवल उत्तर पक्ष से काम नहीं चलता। "पक्षप्रतिपक्षाभ्यां निर्णीतः अर्थः सिद्धान्तो भवति" इसका अर्थ यों समझना चाहिये कि वाद-प्रतिवाद दोनों में जो तथ्य अंश है उसको मिला देने से सिद्धान्त निश्चित होता है। अमृतचन्द्र सूरि जैन विद्वान का उत्तम श्लोक है—

एकेनाकर्षन्ती, श्लथयन्ती वस्तु तत्त्व मितरेण।
अन्तेन, जयति जैनी नीतिर्मन्थान नेत्रमिव गोपी॥

जैसे मथानी से लपेटी रस्सी के दोनों टोकों को पकड़कर, गोपालिका एक बेर एक टोंके को, दूसरी बेर दूसरे को खींचती है, और इस तरह दूध-दही

के सार मक्खन को निकाल लेती है, इसी तरह "जैनी" नीति भी पक्ष प्रति पक्ष से जगत् को मथकर तत्त्व वस्तु को निर्णय कर लेती है। "जयति इति जिनः" विरोध परिहार के अन्य सब प्रकारों को जीतने वाली, मेल मिलाप, समन्वय बढ़ाने वाली, श्रेष्ठ, इसलिये "जैनी"। "जो आप कहते हो वह भी ठीक है, इस दृष्टि से; जो यह दूसरे सज्जन कहते हैं वह भी ठीक है, इस दूसरी दृष्टि से"। "प्रस्थान भेदाद् दर्शनभेदः"। "देश कालनिमित्तानां भेदैर्धर्मो विभिद्यते"। जो ही जैनमत का "स्याद्वाद", वही वेदान्तमत का "अनिर्वचनीयतावाद"। शब्दों का भेद है, अर्थ का नहीं *। एकपक्षिकता, एकदेशिकता छोड़ो। उभय पक्षों के बीच का रास्ता पकड़ो। इसी में कल्याण है। "आश्रयेत् मध्यमां वृत्तिं"। "तस्माद् विद्वान् भवति नातिवादी"। "अति सर्वत्र वर्जयेत्"।

स्याद्वाद पर लोकमत

[प्रेषक—श्री० पं० पन्नालाल जी जैन, काव्यतीर्थ, भाण्डेर]

भारतीय विद्वानों की सम्मतियां

[१]

विश्वबंधु महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी—

"यह सच है कि मैं अपने को अद्वैतवादी मानता हूँ, लेकिन मैं द्वैतवादी का भी समर्थन करता हूं। सृष्टि में प्रति क्षण परिवर्तन होता है, इसलिए सृष्टि असत्य—अस्तित्व रहित—कही जाती है, लेकिन परिवर्तन होने पर भी उसका एक रूप ऐसा है जिसे स्वरूप कह सकते हैं। उस रूप से "वह है" यह भी हम लोग देख सकते हैं, इसलिए वह सत्य भी है। उसे सत्यासत्य कहो तो मुझे कुछ भी उज्र नहीं। इसलिए यदि मुझे अनेकान्तवादी या स्याद्वादी माना जाय तो भी इसमें मेरी कोई हानि नहीं होगी। जिस प्रकार मैं स्याद्वाद को

---

* वेदान्त के अनिर्वचनीयतावाद और जैनों के स्याद्वाद को एक मानना उचित नहीं, क्योंकि अनिर्वचनीयतावाद में पदार्थ को सत, असत् और उभय किसी भी रूप नहीं माना जाता। सत्रूप मानने से पदार्थज्ञान अभ्रांत हो जायगा। असत् मानने से आकाश-पुष्प के समान वस्तु, प्रतिभास और प्रवृत्ति का विषय भी नहीं हो सकेगी। उभयरूप स्वीकार करने से तो दोनों दोष आये बिना नहीं रहेंगे। इसके अतिरिक्त सत् और असत् का एकात्म्य भी नहीं हो सकता। इसलिये बुद्धि-संदर्शित जितना भी पदार्थ है, उसको सत्, असत् और उभय कुछ भी न कह कर केवल अनिर्वचनीय ही कहना चाहिए। किन्तु स्याद्वाद सिद्धान्तानुसार पदार्थ कथंचित् अनिर्वचनीय होकर भी कथंचित् सत्, कथंचित् असत् और कथंचित् उभयरूप भी है। *सर्वथा अनिर्वचनीय मानने से तो 'सर्वमवाच्यं तत्वम्'* इस प्रकार का वचन भी नहीं बोला जा सकता।

—चैनसुखदास (सम्पादक)

जानता हूँ, उसी प्रकार मैं उसे मानता हूँ.........
मुझे यह अनेकान्तवाद बड़ा प्रिय है।"

[२]

आचार्य आनन्दशंकर ध्रुव जी प्रोवाइस चांसलर हिन्दु विश्वविद्यालय काशी—

"जैनधर्म में अहिंसा तत्व जितना रम्य और भक्ति मार्ग जितना स्तुत्य है उससे कहीं अधिक सुन्दर 'स्याद्वाद' सिद्धान्त है।"

[३]

प्रोफेसर फणि भूषण अधिकारी एम० ए० (एक व्याख्यान से)—

"स्याद्वाद व अनेकान्त वस्तुस्वरूप को यथार्थ बतलाता है। बहुत से अजैन विद्वानों ने इस स्याद्वाद को ठीक न समझ कर खण्डन किया है; परन्तु यह स्याद्वाद बिलकुल सत्य है, यह श्री जिनेन्द्र की अमूल्य शिक्षा है। यही सर्वज्ञता का प्रमाण है। इसने एकान्तवाद में भूलने वालों की बड़ी सेवा की है।"

[४]

महा महोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा० एम० ए० डी० लिट० एल० एल० डी० वाइस चांसलर प्रयाग विश्व विद्यालय—

"जबसे मैं ने शङ्कराचार्य द्वारा जैनसिद्धान्त का खण्डन पढ़ा है तब से मुझे विश्वास हुआ कि इस सिद्धान्त में बहुत कुछ है, जिसे वेदान्त के आचार्यों ने नहीं समझा और जो कुछ मैं अब तक जैनधर्म को जान सका हूँ उससे मेरा यह दृढ़ विश्वास हुआ है कि यदि वे (शङ्कराचार्य) जैनधर्म को उसके असली ग्रन्थों से देखने का कष्ट उठाते तो उन्हें जैनधर्म के विरोध करने की कोई बात नहीं मिलती।"

[५]

प्रोफ़ेसर बी० एल० आत्रेय एम० ए० काशी—

"जैनियों का अनेकान्तवाद और नयवाद एक ऐसा सिद्धान्त है जो कि सत्य की खोज में पक्षपात रहित होने की प्रेरणा करता है, जिसकी आवश्यकता सब धर्मों को है।"

[६]

श्री महाराजासाहब मैसूर श्रवण बेलगोल में श्री बाहुबलि स्वामी महामस्तकाभिषेक के शुभ अवसर पर अपने व्याख्यान में कहते हैं—

"......जैनधर्म ने सब धर्मों के मेल को और सब तत्वज्ञानों की भिन्न २ अपेक्षाओं को अपने सार्वधर्म और उसके अनेकान्तवाद में रख दिया है।"

[७]

पूना के प्रसिद्ध डाक्टर भण्डारकर एम. ए. सप्त भंगी प्रक्रिया के विषय में लिखते हैं—

"इन भङ्गों के कहने का मतलब यह नहीं है कि प्रश्न में निश्चयपना नहीं है या एक मात्र संभव रूप कल्पनाएँ करते हैं। जैसा कुछ विद्वानोंने समझा है, इस सबसे यह भाव है कि जो कुछ कहा जाता है वह सब किसी द्रव्य, क्षेत्र, कालादि की अपेक्षा से सत्य है।"

[८]

श्री गंगाप्रसाद मेहता एम० ए० काशी—

"जैनधर्म के तत्वज्ञान में स्याद्वाद नामक एक

बड़ा सिद्धान्त है; स्याद्वाद का अर्थ यही ज्ञानात्मक निष्पक्षता है, जिसके बिना कोई भी वैज्ञानिक तथा दार्शनिक अन्वेषण सफल नहीं हो सकता। कितनेही स्थानोंपर स्याद्वाद पर जो आक्षेप किए हैं वे बिना समझे किये हैं। स्याद्वादी जिस अपेक्षा से आस्तिकवाद मानते हैं उसी अपेक्षा से नास्तिक वाद नहीं मानते। यह ध्यान में रखने से आपस के मत भेद के झगड़ों का नाश हो जाना संभव है। यह सिद्धान्त जैनधर्म की महत्वपूर्ण गवेषणा का फल है।

[९]

प्रसिद्ध एडवोकेट डाक्टर ए० सी० बोस देहली लिखते हैं—

"स्याद्वाद ऐसा बढ़िया सिद्धान्त है कि इसमें असत्य का पता नहीं लगता"।

[१०]

श्रीयुत् सरकार महोदय एम० ए०—

"स्याद्वाद जैनदर्शन ने भीतर और बाहर, आधार और आधेय, धर्म और धर्मी, कारण और कार्य, अद्वैत और विचित्र, दोनों को ही यथास्थान स्वीकार किया है। इस प्रकार पूर्वी और पश्चिमी दर्शनों के जुदे २ स्थानों में स्याद्वाद का मूल सूत्र स्वीकृत होने पर भी स्याद्वाद को स्वतन्त्र दार्शनिक मतवाद का उच्चासन देने का गौरव केवल 'जैनदर्शन' को ही मिल सकता है।"

[११]

साहित्य महारथी हिन्दी सम्राट् श्री महावीर प्रसाद जी द्विवेदी "प्राचीन जैन लेख संग्रह" की समालोचना में अपने पत्र 'सरस्वती' में लिखते हैं—

"प्राचीन ढर्रे के हिन्दू धर्मावलम्बी बड़े २ शास्त्री तक अब भी नहीं जानते कि जैनियों का "स्याद्वाद" किस चिड़िया का नामहै। धन्यवाद है जर्मनी, फ्रांस और इङ्गलैण्ड के कुछ विद्यानुरागी विशेषज्ञों को जिनकी कृपा से इस धर्म के अनुयायियों के कीर्ति कलाप की खोज की ओर भारत वर्ष के इतर जनों का ध्यान आकृष्ट हुआ। यदि ये विदेशी विद्वान् जैनों के धर्म ग्रन्थों की आलोचना न करते, उनके प्राचीन लेखकों की महत्ता प्रगट न करते तो हम लोग शायद आज भी पूर्ववत अज्ञान के अन्धकार में ही डूबते रहते।

[१२]

हिन्दी यूनिवार्सिटी बनारस के दर्शनशास्त्रके प्रोफेसर श्री० फणिभूषण अधिकारी एम० ए०—

"जैनधर्म में इस स्याद्वाद शब्द द्वारा जो सिद्धान्त झूल रहा है उसको न समझ कर उसके सामने और किसी बात का इतना दोषपूर्ण तथा हेर फेर वाला अर्थ नहीं समझा गया है। यहाँ तक कि विद्वान् शङ्कराचार्य भी इस दोष से मुक्त नहीं हो सकते कि उन्हों ने इस सिद्धान्त के प्रति अन्याय किया है। यह बात अल्प योग्यता वाले पुरुषों में क्षम्य हो सकती थी, किन्तु यदि मुझे कहने का अधिकार है तो मैं भारत के इस महान् विद्वान् में सर्वथा अक्षम्य ही कहूँगा। यद्यपि मैं इस महर्षि को अतीव आदर की दृष्टि से देखता हूं। ऐसा जान पड़ता है कि उन्हों ने इस धर्म के (जिसके लिए अनादर से विवसन समय अर्थात् नग्न लोगों का सिद्धान्त

ऐसा नाम वे रखते हैं) दर्शनशास्त्र के मूलग्रन्थों के अध्ययन करने की परवाह न की।"

पाश्चात्य विद्वानों की सम्मतियाँ

[१]

संस्कृतज्ञ प्रोफेसर डाक्टर हर्मन जैकोबी एम० ए०, पी० एच० डी० बर्लिन-जर्मनी—

"जैनधर्म के सिद्धान्त प्राचीन भारतवर्ष के तत्वज्ञान और धार्मिक पद्धति का अध्ययन करने वालों के लिये बड़े महत्व की वस्तु है।"

"इस स्याद्वाद से सर्व सत्य विचारों का द्वार खुल जाता है।"

[२]

जेकोस्लोविया राज्य के एलची परटोल्ड खानदेश के धूलिया शहर के व्याख्यान में कहते हैं—

"............धर्म के तुलनात्मक विज्ञान में जैनधर्म को मात्र इतना ही महत्व है ऐसा ही नहीं किन्तु इस दृष्टि से जैनों के तत्वज्ञान, नीति ज्ञान और तर्क विद्या को भी उतना ही महत्व है........"

"द्रव्य का सम्पादन करने के लिए जैनधर्म में योजित एक स्याद्वाद का ही स्वरूप देख लेना काफ़ी होगा कि जो आधुनिक पद्धति के साथ मिलता जुलता है। निःसंशय जैनधर्म धर्म विचार की परम श्रेणी है........."

[३]

इन्डिया आफ़िस लाइब्रेरी के चीफ़ लाइब्रेरियन डा० थामस एम० ए०, पी० एच० डी०—

"न्यायशास्त्र में जैन न्याय का स्थान बहुत ऊँचा है। इसके कितने ही तत्व पाश्चात्य तर्क शास्त्रों के सिद्धान्तों से बिल्कुल मिलते जुलते हैं। स्याद्वाद का सिद्धांत बड़ा गम्भीर है; वह वस्तु की भिन्न २ स्थितियों पर अपना अच्छा प्रकाश डालता है।"

[४]

पाश्चात्य विद्वान मि० सर विलियम हैमिल्टन—

"मध्यस्थ विचारों के विशाल मंदिर का आधार जैनों का यह अपेक्षावाद ही है"।

❋ चित्र परिचय ❋

१. स्व० गुरुवर्य्य पं० गोपालदास जी— जैन सिद्धान्त विद्यालय मोरेना के संस्थापक स्व० गुरुवर्य्य पं० गोपाल दास जी वरैया के नाम से कौन अपरिचित है? आपकी प्रखर वाग्मिता और पांडित्य ने बड़े २ अन्य धर्मी विद्वानों के छक्के छुड़ा दिये थे। जैन समाज में आज जैन सिद्धान्त के जो कुछ विद्वान नज़र आते हैं वे पूज्य पंडित जी के ही परिश्रम का सुफल है। उनका जैन समाज पर वह असीम ऋण है जिससे वह कभी भी उऋण नहीं हो सकता। आज यदि वे जीवित होते, तो क्या समाज की यह दशा होती?

*२. स्व० लाला अर्हदास जी—*आप पानीपत के निवासी थे। जैन हाईस्कूल पानीपत के संस्थापन और संचालन में आपका प्रमुख हाथ था। लखपति होते हुए भी सामाजिक और धार्मिक उत्सवों पर आर्यसमाजी ढङ्ग से आप नगरकीर्तन करते थे। सिवहारा के रथोत्सव में आपका आकर्षक भजनोपदेशको ढङ्ग मैंने स्वयं देखा है। पानीपत में

एकबार आर्य समाजियों के साथ आपका शास्त्रार्थ भी हुआ था। संघ के आप आजीवन सदस्य थे और उसके संस्थापन में भी आपका हाथ था।

३. *लाला शिब्बामल जी*—आप अम्बाला छावनी के निवासी हैं। अम्बाला छावनी तथा उसके आस पास के इलाक़े के जैनों में जो कुछ धर्म प्रेम पाया जाता है उसमें आपका बहुत बड़ा हाथ है। आपकी वजह से अम्बाला में दो चार विद्वानों का जमघट बना ही रहता है। लक्षाधीश होने पर भी लोगों के घर जाकर बच्चों को धार्मिक शिक्षा लेने के लिए पाठशाला में भेजने का अनुरोध करना, आपके धर्म प्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण है। सत्तर वर्ष की उम्र होने पर भी हृदय में युवकों का सा उत्साह है। दान देना दिलाना तो आपकी आदत है। अभी गत वर्ष ही आपने संघ को पाँच हजार रुपया दिया था। अपने छोटे पुत्र स्वर्गीय प्रकाश चन्द्र की स्मृति में शिब्बामल प्रकाशचन्द्र के नाम से आपने एक ट्रस्ट फंड स्थापित किया है, जिसके ब्याज से प्रति वर्ष अनेक छात्रों को स्कालर्शिप दी जाती है, हज़ारों ट्रैक्ट और पैम्फ्लैट्स् छपाकर तथा खरीद कर वितरण किये जाते हैं। स्व० विदुषी चम्पावती आपकी ही सुपुत्री थीं, उसे पढ़ाने लिखाने के लिये आपने क्या २ नहीं किया, किन्तु काल की गति विचित्र है। उस बहन के नाम से भी एक ट्रस्ट फण्ड है जिसके ब्याज से विधवाओं तथा छात्राओं को सहायता दी जाती है। संघ के आप 'जीवन' (संरक्षक) हैं, और आप की अभिलाषा है कि आपके जीवन काल में ही संघ एक स्थायी और आदर्श संस्था बन जाये और विधर्मियों के आक्रमण से सर्वदा जैनधर्म की रक्षा करता रहे।

४. *न्यायाचार्य पं० माणिक चन्द्र जी*—आपके नाम से समाज के सभी व्यक्ति परिचित हैं। आप उद्भट विद्वान् होने के साथ ही साथ जैन सिद्धान्त के मर्मज्ञ और आदर्श व्याख्याता हैं। आपकी भाषण शैली अपूर्व है। आजकल आप श्री जम्बू विद्यालय सहारनपुर में प्रधानाध्यापक हैं। चावली निवासी पं० नरसिंहदास जी प्रतिष्ठाचार्य आपके ही बड़े भाई हैं।

५. *सेठ भागचन्द्र जी सोनी*—अजमेर के ख्यातनामा स्वर्गीय रा० ब० सेठ टीकमचन्द जी सोनी से विरला ही मनुष्य अपरिचित होगा। सेठ भागचन्द जी उनही के सुपुत्र हैं। अभी आप युवक हैं। सामाजिक और धार्मिक कार्यों में आपका उत्साह प्रशंसनीय है। केशरिया जी तीर्थक्षेत्र के झगड़े में आपने बहुत परिश्रम किया है।

६. *साहू प्यारे लाल जी*-संयुक्त प्रान्त के बिजनौर ज़िले में धामपुर एक प्रसिद्ध व्यापारी मंडी है। साहू साहिब वहीं के निवासी हैं। आपकी फ़र्म 'ख्यालीमल प्यारे लाल' के नाम से प्रसिद्ध है। आप चार भाई थे, जिन में से एक का स्वर्गवास होगया। सब भाइयों में खूब स्नेह है और सब मिल कर खूब दान धर्म करते हैं। धामपुर में आपकी ओर से एक औषधालय भी है। संघ पर आपकी सदैव कृपा रहती है। और उसके कार्यों में सदैव योगदान करने से पीछे नहीं हटते।

७. *वेद विद्या विशारद पं० मंगल सैन जी*—आप अलीगढ़ ज़िले के निवासी हैं। बहुत वर्षों से जैन पाठशाला अम्बाला में अध्यापन का कार्य करते हैं। वृद्धावस्था के कारण अब आपने अध्यापन कार्य से विश्राम ले लिया है, किन्तु वैदिक साहित्य के अध्ययन का व्यसन उनका पिण्ड अब भी नहीं छोड़ता। वे सचमुच 'वेद विद्या विशारद' हैं। उनके कमरे में वैदिक साहित्य का भण्डार भरा पड़ा है। वेदों तथा सत्यार्थ प्रकाश के पुराने से पुराने संस्करण मौजूद हैं। उनके वेतन का बहुभाग पुस्तक संग्रह में ही व्यय हुआ है। समाजी विद्वानों को 'दयानन्द शताब्दी' के अवसर पर अनेक रजिस्टर्ड चैलेञ्ज पत्र आपने दिये, किंतु उत्तर नदारद। अब भी आपका लिखित वाद-विवाद चलता ही रहता है। आपकी सेवायें अपूर्व हैं, किन्तु समाज का उधर ध्यान नहीं। —कैलाशचन्द्र।

स्याद्वाद सिद्धान्त

स्याद्वाद का स्वरूप

धर्म अथवा धर्मी के सर्वथैकान्त का त्याग कर जो कथंचित् एकान्त का विधान किया जाता है वही स्याद्वाद कहलाता है। आचार्य समन्तभद्र * ने भी स्याद्वाद का यही लक्षण बतलाया है। यह लक्षण सकलादेश † और विकलादेश ‡ पर बनने वाली प्रमाण सप्तभङ्गी और नय सप्तभङ्गी दोनों में संघटित हो जायगा। भगवान् समन्तभद्र ने पहले से ही सकलादेश और विकलादेश को ध्यान में रखकर स्याद्वाद का उक्त निर्दोष लक्षण बनाया है। उन्हों ने अपने देवागम स्तोत्र में प्रधानतया यद्यपि नय सप्तभङ्गी का ही वर्णन किया है, किंतु जगह २ पे प्रमाण सप्तभङ्गी का सङ्केत किये बिना भी नहीं रहे हैं। देवागम स्तोत्र के आधार पर ही भट्टाकलङ्क देवने अपने ग्रन्थों में प्रमाण और नय सप्तभंगी का वर्णन किया है। यह उनकी अपनी कल्पना नहीं है। बहुतसे आधुनिक विद्वान् स्याद्वाद का जो यह लक्षण बताते हैं कि विवक्षित एक धर्म को प्रधान कर अन्य सम्पूर्ण अविवक्षित गुणों को गौणता से देखना ही स्याद्वाद है, वह ठीक नहीं है क्योंकि यह लक्षण अव्यापक है। सकलादेश पर बनने वाली प्रमाण सप्तभङ्गी में इस लक्षण की संगति नहीं बैठ सकती। प्रमाण सप्तभङ्गी में किसी धर्म अथवा गुण को प्रधान नहीं बताया जाता, अपितु धर्मी को मुख्य बनाया जाता है। हमें प्रयोजन वश कभी धर्म की विवक्षा होती है और कभी धर्मी की। धर्मी की विवक्षा से प्रमाण सप्तभङ्गी और धर्म की विवक्षा से नय सप्तभंगी बनती है।

दोनों सप्तभङ्गियों के पृथक पृथक उदाहरण भी हो सकते हैं और एक भी। प्रभाचन्द्र, विमलदास आदि विद्वानों ने दोनों के एक ही उदाहरण दिये हैं, पर भट्टाकलङ्क देव ने अपने ग्रन्थों में किसी जगह एक × उदाहरण देकर दोनों का स्वरूप समझा दिया है और किसी जगह ÷ भिन्न उदाहरणों से काम लिया है। 'स्यादस्त्येव जीवः' अर्थात्

* स्याद्वादः सर्वथैकान्त त्यागात् किंवृत्त चिद्विधिः। —राजवार्तिक

† एक गुण मुखेनाऽशेष वस्तुरूप संग्रहात् सकलादेशः तत्रादेशवशात् सप्तभङ्गी प्रतिपदम्। ,,

‡ निरंशस्याऽपि गुणभेदादंश कल्पना विकलादेशः तत्राऽपितथा सप्तभंगी। ,,

× राजवार्तिक। ÷ लघीयस्त्रय का भाष्य।

कथंचित् जीव सत्स्वरूप ही है, यह प्रमाण और नय दोनों सप्त भङ्गियों का उदाहरण बन सकता है। जब एक अस्तित्व गुण की मुख्यता से समस्त जीवरूप पदार्थ का प्रतिवाद न करना वक्ता को अभीष्ट होता है तब यही प्रमाण सप्तभंगी का उदाहरण बन जाता है और जब केवल अस्तित्वादि धर्म को कहना ही कर्ता को अभिलषित होता है तब यह नय सप्तभंगी का उदाहरण हो जाता है। जीव में अनेक गुण हैं; अस्तित्व गुण की प्रधानता से अभेदवृत्ति ÷ अथवा अभेदोपचार से जब निरंश समस्त जीव पदार्थ कहा जाता है तब सकलादेश कहलाता है।

"स्याज्जीव एव" कथंचित् जीव ही है यह प्रमाण वाक्य का और "स्यादस्त्येव जीवः" किसी अपेक्षा जीव सत् स्वरूप ही है यह नय वाक्य का पृथक २ उदाहरण भी हैं, किन्तु अकलङ्कदेव के इस मत को सप्तभङ्गी तरङ्गिणी के कर्ता पंडित विमल दास ने अपने ग्रंथमें स्वीकार नहीं किया, ऐसा जान पड़ता है। सारांश यह है कि अधिकांश विद्वानों ने प्रमाण और नयवाक्य के अलग २ उदाहरण होना आवश्यक नहीं समझा।

स्याद्वाद की महत्ता

जैन वाङ्मय में स्याद्वाद का स्थान बहुत ऊंचा है। आचार्य अमृतचन्द्र के शब्दों में हम इस अनेकान्तता या पर्याय स्याद्वाद को जैनागम का जीव अथवा बीज कह सकते हैं। जिस तरह जीव के बिना निष्प्राण शरीर किसी काम का नहीं इसी तरह स्याद्वाद के बिना परमागम भी बिलकुल निष्फल निकम्मा और निःसार है। स्याद्वाद जैन दर्शन की विशेषता है, इसीलिए जैनी स्याद्वादी के नाम से व्यवहृत होते हैं। भगवान् महावीर ने इस विशेषता का आविष्कार कर संसार में फैली हुई मत असहिष्णुता को नामावशेष करना चाहा था, पर मनुष्य जाति के दुर्भाग्य से इसमें पूर्ण सफलता न मिल सकी। मेरे कहने का आशय यह नहीं है कि सबसे पहले भगवान महावीर ही इस सिद्धान्त के प्रवर्तक हुए। मैं केवल यह कहना चाहता हूँ कि सम्प्रदायवाद को नष्ट करने के लिये उन्होंने तत्कालीन जनता को स्याद्वाद सिद्धान्त का स्वरूप समझाकर क्लेशों से उन्मुक्त होने का मार्ग बतलाया।

दुनियां में एकान्त पक्ष को लेकर अनेक सम्प्रदाय बने हुए हैं, वे अपनी मान्यता को सत्य और दूसरों के सिद्धान्तों अथवा अभिमतों को असत्य घोषित करते हैं; इसका कारण है उदार दृष्टी का अभाव। विचारों में उदारता का न रहना ही साम्प्रदायिकता है। साम्प्रदायिकता मनुष्य के लिए एक बड़ा भारी कलंक है। यह कलंक मनुष्य को इतना अन्धा बना देता है कि वह सत्य को असत्य और असत्य को सत्य सिद्ध करने की चेष्टा करता है। सम्प्रदायवाद में गुण ग्रहण करने की बुद्धि नष्ट हो जाती है। मनुष्य इतना पतित हो जाता है कि उसे दूसरों के गुण ग्रहण करने में सङ्कोच होने लगता है। अपनी बुरी से बुरी बात को अच्छी बतला कर उसका समर्थन करना और दूसरों की भली से भली बात का खण्डन करने

÷ अभेदवृत्ति अथवा अभेदोपचार आदि का विवेचन राजवार्तिक और सप्तभंगी तरंगिणी आदि ग्रन्थों से जानना चाहिए।

को तैयार हो जाना मतान्ध मनुष्यों का काम है। स्याद्वाद ऐसी मतान्धता, सम्प्रदायवाद और स्वपक्षपात को कभी स्वीकार नहीं करता। सच्चा स्याद्वादी वह है जो गुणों को ग्रहण कर दोषों को छोड़ देने की शिक्षा देता है। गुण ग्रहण की बुद्धि का उत्पन्न हो जाना ही स्याद्वाद का फल है और यही इसकी महत्ता है।

स्याद्वाद और धर्म का सम्बन्ध

स्याद्वाद को बिना समझे कोई धर्म को नहीं समझ सकता, अतः धर्मात्मा बनने वाले को पहले स्याद्वादी बनना चाहिए। धर्म तब पाखण्ड का रूप धारण करलेता है जब उसका स्याद्वाद के द्वारा उचित संस्कार नहीं करवाया जाता है। धर्म भी कथंचित् अधर्म हो जाता है और अधर्म भी कथंचित् धर्म हो जाता है। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने अपने पुरुषार्थ सिद्धयुपाय में स्याद्वाद का आश्रय लेकर जो हिंसा का सुन्दर विवेचन किया है उसको पढ़ने से मालूम होता है कि अहिंसा भी कथंचित् हिंसा और हिंसा भी कथंचित् अहिंसा हो जाती है। एक धीवर जो प्रातः काल से संध्या समय तक नदी के किनारे बैठा है और संयोग वश जिसके एक भी मछली हाथ नहीं लगी वह भी हिंसक है और हल लेकर खेती करने वाला किसान लाखों जीव मारने पर भी अहिंसक ही बना रहता है।

इसी प्रकार असत्य चोरी आदि पापों में भी स्याद्वाद का सम्बन्ध अवश्य लगा लेना चाहिए। पाप और पुण्य की व्याख्या में भी स्याद्वाद का आश्रय लिये बिना काम नहीं चलेगा। हमारे आचार्यों ने कर्तव्य और धर्म के विधानों में स्याद्वाद का बहुत अधिक उपयोग किया है। झूंठ बोलना पाप है, पर किसी जगह वह पुण्य भी हो जाता है, अतः कहना चाहिए झूंठ कथंचित् पाप भी है और पुण्य भी है। आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने कहा है कि ऐसा असत्य भी न बोलना चाहिए जो दूसरों की विपत्ति का कारण हो।

अपनी शक्ति का अतिक्रम करके जो त्याग और तप किया जाता है वह धर्म नहीं है, इसलिए कथंचित् त्याग और तप भी अधर्म हुआ। यदि हम उपवास की प्रतिज्ञा कर अन्नका एक भी कण खालें तो पापी कहलावेंगे, किन्तु एकाशन के नाम से डेढ़ सेर अन्न खाजाने पर भी धर्मात्मा ही कहलाते रहेंगे। मुनि के लिए थोड़ा परिग्रह रखना भी पाप है, किन्तु यदि परिमाण कर श्रावक ने लाखों की सम्पत्ति रखली है तो भी वह परिग्रहाणु व्रती कहलावेगा। अतः परिग्रह रखना भी कथंचित् पाप और कथंचित् धर्म कहलावेगा। कहने का आशय यही है कि धर्म भी अपेक्षा भेद के बिना नहीं चलता। केवल काक मांस का त्याग करने वाला भील मर कर देव हो जाता है, किन्तु वर्षों तप करने वाले द्वीपायन मुनि मर कर सातवें नरक पहुँचते हैं, आदि घटनाएं धर्म में स्याद्वाद लगाये बिना समझ में नहीं आवेंगी।

स्याद्वाद को बिना समझे और क्या कहें कोई सम्यग्दृष्टी भी नहीं बन सकता। पदार्थों को एकान्त दृष्टि से देखने वाला मिथ्यादृष्टि होता है। जो अपने जीवन में स्याद्वाद का उपयोग करना नहीं जानता, वह सम्यग्दर्शन को कैसे पा सकता है। जिस तरह स्याद्वाद के बिना ज्ञान कुज्ञान कहलाता है और चारित्र कुचारित्र नाम पाता है,

इसी तरह इसके बिना श्रद्धान कुश्रद्धान कहावेगा। सम्यक्त्व के आठ अङ्गों में पहले निःशङ्कितत्व अङ्ग तत्व को अनेकान्तात्मक समझे बिना नहीं हो सकता। आचार्य अमृतचन्द्र ने कहा है—सकल मनेकान्तात्मकमिदमुक्तं वस्तुजात मखिलज्ञैः किमु सत्यमसत्यं घेति जातु शङ्का न कर्तव्या अर्थात् तत्त्व को अनेकान्तात्मक समझ कर उसमें यह शङ्का न करना कि यह सत्य है या असत्य, यही सम्यक्त्व का बीज पहला निःशङ्कित अङ्ग है।

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से भी धर्म का बहुत सम्बन्ध है। भिन्न भिन्न आचार्यों ने श्रावकों के मूल गुणों का भिन्न भिन्न तरह से प्रतिपादन किया है, इसका कारण भी अपेक्षावाद ही है। श्री समन्तभद्राचार्य * सोमदेव × और महापुराणकार ‡ ने मूलगुणों के भिन्न २ लक्षण बतलाये हैं। सात शीलों के क्रम में जो मत-विभिन्नता पाई जाती है, इसका कारण भी अपेक्षा भेद के अतिरिक्त और क्या हो सकता है? आचार्य अमृतचन्द्र ने स्याद्वाद को इसीलिये परमागम का बीज अथवा जीव बतलाया है कि उसको जाने बिना परमागम में जो जगह २ अपेक्षाभेद से काम लिया गया है उसका समन्वय नहीं कर सकेंगे। चारों ही अनुयोगों में आचार्यों में जो परस्पर मत विभिन्नता देखी जाती है उसका कारण केवल अपेक्षा भेद ही है; इस लिये धर्मात्मा बनने के लिए स्याद्वादी बनना आवश्यक है।

स्याद्वाद की व्यावहारिक उपयोगिता

जब तक किसी सिद्धान्त का व्यवहार में उपयोग नहीं होता; तब तक उसकी ग्राह्यता स्वीकार नहीं की जा सकती। केवल विचारों और ग्रन्थों में ही रह जाने वाले सिद्धान्त से संसार को कोई लाभ नहीं हो सकता। जब सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानमय विचारों का चरित्र के रूप में उपयोग करते हैं तभी आत्मा को निर्वाण की प्राप्ति होती है। केवल भोजन के विचार ही हमारी क्षुधा शान्त नहीं कर देते। त्रिरत्नात्मक मुक्तिमार्ग मानने का यही आशय है कि यथार्थ विचारों को जीवन में उतार कर उनका व्यावहारिक उपयोग करो।

अधिकांश जनसमुदाय यह समझे हुए है कि स्याद्वाद केवल शास्त्रों की वस्तु है। किंतु ऐसी बात नहीं है। यदि यह केवल ग्रंथों की ही चीज़ होती तब तो इसका जगद् कल्याण से क्या सम्बन्ध था। शास्त्रों ने तो सिर्फ स्याद्वाद का स्वरूप और लक्षण बतलाया है। स्याद्वाद की व्याख्या करने वाले महर्षियों की यह आज्ञा है कि मानव जीवन को सफल और शांतिमय बनाने के लिए जीवन के प्रत्येक विभाग में स्याद्वाद का उपयोग करने की आवश्यकता है। अगर हम दुःखी हैं तो इसका कारण केवल यही हो सकता है कि हम जीवन में स्याद्वाद का उपयोग नहीं करते। वैयक्तिक, कौटु-

* मद्यमांस मधुत्यागैः सहाणुव्रत पञ्चकम्। अष्टौमूल गुणानाहु गृहिणां श्रमणोत्तमाः॥ —समन्तभद्राचार्य

× मद्यमांस मधुत्यागैः सहोदुम्बर पञ्चकैः। अष्टा वेते गृहस्थानां मुक्ता मूल गुणाः श्रुतौ॥ —सोमदेव

‡ हिंसाऽसत्य स्तेयादब्रह्म परिग्रहाच्च बादर भेदात्। घृतान् मासान्मद्याद् विरतिर्गृहिणोऽष्ट संत्यमी मूलगुणाः।

—महापुराणकार

क्तिक, सामाजिक और राष्ट्रीय अशान्ति का कारण केवल 'ही' के आग्रह के सिवाय और कुछ नहीं हो सकता। इस आग्रह का न होना ही स्याद्वाद कहलाता है। यदि विश्वशान्ति का कोई एकमात्र कारण हो सकता है तो वह स्याद्वाद ही है। इस समय संसार में जो सर्वत्र अशांति और आकुलता का साम्राज्य नज़र आता है, इसका कारण यह है कि मनुष्य सिर्फ़ अपनी ही आँखों से देखना जानता है। यदि मानव समाज स्याद्वादकी विशाल और उदार दृष्टि से देखना सीख जाय तो संसार में अधिकांश दुःखों की कमी हो जाय।

जिसके हृदय में स्वार्थ होता है वह स्याद्वाद को न पहचानेगा। इसलिए स्याद्वादी बनने के लिए स्वार्थ को हटाकर हृदय को पवित्र बनाना चाहिए। जब अपने स्वार्थ को लेकर मनुष्य बात करता है तब वह दूसरों को बिलकुल भूल जाता है। यह भूल ही कलह का कारण है। स्याद्वाद दृष्टि प्राप्त हो जाने के बाद ऐसी भूल नहीं हो सकती। लाखों स्याद्वादी भी एक जगह बिना किसी प्रकार की असुविधा के शांतिपूर्वक रह सकते हैं, किन्तु परस्पर लड़ने वाले दो एकान्ती भी एक जगह शांतिसे नहीं रह सकते। इसका अर्थ यह हुआ कि शांति के उपासकों को चाहिये कि पहले वे स्याद्वाद की उपासना करें। पारस्परिक वैमनस्य और अनेकता का विचार छोड़कर निज और पर की उन्नति में लग जाना ही स्याद्वाद की व्यावहारिक उपयोगिता है। थोड़े से मतभेद के कारण हम जो एक दूसरे की वैयक्तिक हानि करने को तैयार हो जाते हैं, यह स्याद्वाद सिद्धान्त के उपयोग न करने का ही फल है।

जैनों में स्याद्वाद के उपयोग की कमी

इस समय हमारा समाज अनैक्य के प्रज्वलित अग्निकुण्ड में जल रहा है। अपने को स्याद्वाद के लोकोत्तर सिद्धान्त के अनुयायी बतलाने वालों की यह दशा देखकर किसको दुःख न होगा। स्याद्वाद के उपदेष्टा भगवान महावीर के उपासकों में भी स्याद्वाद का व्यावहारिक उपयोग न हो यह लज्जा की बात है। स्वार्थ और मत विभिन्नता से जो अशांति पैदा होती है उसकी अव्यर्थ औषधि केवल स्याद्वाद है, यह हम पहले कह चुके हैं। यदि हम लोग अपने प्रत्येक अनैक्य का कांटा स्याद्वाद के द्वारा निकाल डाला करें तो हमें कभी स्वप्न में भी अनैक्य का विचार न हो। उदारदृष्टि से वैयक्तिक सामाजिक और धार्मिक विवादों का बहुत जल्दी निबटारा हो सकता है। दुःख है कि इस समय जैनसमाज के स्याद्वाद का उपयोग केवल शास्त्रोंमें ही हो रहा है। वह दिन जैनसमाज के सौभाग्य का दिन होगा जब वह पारस्परिक कलह और अशान्ति को मेटने के लिये स्याद्वाद का उपयोग करना सीखेगी। हम समस्त विरोधों का मथन करने वाले अनेकान्तवाद को बार २ नमस्कार करके भगवान् महावीर से यह वरदान माँगते हैं कि वे हमें स्याद्वाद का उपयोग करने की बुद्धि प्रदान करें। —चैनसुखदास जैन।

स्याद्वादांक

इस समय सामयिक पत्र, ज्ञान प्रचार के सर्वादरणीय साधन बन रहे हैं। किसी भी सिद्धान्त अथवा विचार को विश्व विस्तृत बनाने के लिए सामयिक पत्रों से अधिक और कोई उत्तम साधन न मिल सकेगा। थोड़े खर्च और थोड़े समय में अपने विचारों को दूर दूर तक केवल पत्रों द्वारा ही पहुँचाया जा सकता है। यही कारण है कि पत्र संसार उन्नति की घुड़दौड़ में सबसे आगे है। पत्रकार कला में नित नये मनोमोहक और उपयोगी परिवर्तन होते जा रहे हैं। विशेषाङ्कों को निकाल कर जनता के सामने किसी विषय की पूर्ण सामग्री उपस्थित करदेना आज कल के सामयिक पत्रों की एक खास विशेषता है। एक ही विषय पर विभिन्न विद्वानों के विचारों को एकत्रित कर उसका एक सर्वाङ्ग सुन्दर संग्रह बना देने से विद्वानों के सिवाय साधारण जनता को जो अपार लाभ होता है उसके लिए हमें इस विशेषाङ्क निकालने की पद्धति का आविष्कार करने वाले विद्वानों का कृतज्ञ होना चाहिए। 'दर्शन' के संचालकों ने भी यही सोचकर कि स्याद्वाद जैसे जटिल विषय को, साधारण जनता को समझाने के लिए इस विषय पर एक विशेषाङ्क निकाल देना बहुत उपयोगी होगा, यह स्याद्वादाङ्क प्रकाशित किया है। इस प्रयत्न में हम कहां तक सफल हुये हैं, इसके निर्णय का भार हम अपने प्रेमी पाठकों पर ही छोड़ते हैं। किन्तु हम यहां इतना कह देना अवश्य उचित समझते हैं कि यदि हमें विद्वानों का और भी सहयोग प्राप्त होता तो इस विषय में इससे भी अधिक सफलता मिल सकती थी।

पत्रों में यदि मनोरंजन के साधन न रहें तो साधारण पाठक उन्हें पढ़ना पसन्द न करेंगे। इस लिये पाठकों के मनोरंजनार्थ पत्रों में कुछ चित्ताकर्षण की सामग्री भी अवश्य रहना चाहिए। इस आवश्यक बात का हमें भी प्रारम्भ से ही ख़याल रहा है। सो भी स्याद्वाद जैसे गहन विषय के विशेषाङ्क को मनोरञ्जक बना देना कोई साधारण बात नहीं है। क्योंकि दर्शन का विषय स्वभावतः ही रूखा है। गणित, दर्शन, न्यायादि विषयों के रूखे होने के कारण ही साधारण लोग उन्हें बहुत कम पढ़ते हैं—यह केवल विद्वानों के ही काम के हैं। इसलिये यहां यह लिख देना भी अनुचित न होगा कि स्याद्वाद भी विशेषकर विद्वानों के ही काम का होगा। पत्रकार की सफलता केवल इसी में नहीं है कि वह अपने पत्र को मनोरञ्जक बनावे। उसे विद्वानों के आत्म-रञ्जन का भी अवश्य ही ध्यान रखना होता है। हम यह कह सकते हैं कि चाहे स्याद्वादांक से मनोरञ्जन न हो, पर आत्मरञ्जन अवश्य होगा। इस स्याद्वादांक के लेखों में प्रायः सभी विद्वान् लेखकों ने स्याद्वाद पर दार्शनिक दृष्टि से विचार किया है। हमने जैन समाज के भिन्न भिन्न विद्वानों को विभिन्न विषयों पर लेख भेजने के लिए प्रार्थना की थी, जिनमें कुछ ऐसे विषय भी थे कि यदि उन पर लिखा जाता तो अवश्य ही 'स्याद्वादाङ्क' में जन साधारण के लिए भी पठनीय लेख मिल सकते, पर अधिकांश विद्वानों ने दार्शनिक दृष्टि से ही अपने २ लेख लिख कर भेजे हैं। इसके अतिरिक्त कठिन से

कठिन विषय को चित्ताकर्षक बना देना हरएक लेखक का काम नहीं है। विद्वान होते हुए भी हमारी समाज में लेखकों की दरिद्रता है, यह बात इच्छा न होते हुए भी कहनी पड़ती है। यही सब कारण हैं, जिनसे हम स्याद्वादाङ्क को जैसा चाहिये वैसा न बना सके।

स्याद्वादाङ्क निकालने का विचार होते ही जैन समाज (मुख्यतः) के प्रायः सभी प्रतिष्ठित विद्वानों से स्याद्वाद पर अपने २ लेख भेजने के लिये सानुरोध प्रार्थना की गई थी। हमारी विनम्र प्रार्थना पर बहुत से विद्वानों ने जब कोई ध्यान ही नहीं दिया तब उन्हें याद दिलाने के लिए रिमाइन्डर दिए गये। पर दुःख है कि अनेक शास्त्री और न्यायतीर्थ पंडितों ने लेख भेजना तो दूर रहा, पत्र और रिमाइन्डरों की पहुंच तक देने की कृपा नहीं की, इसका कारण हमारे अनुभव में तो अकर्मण्यता और आलस्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। स्याद्वादाङ्क के निकलने में जो इतना दीर्घ और असह्य विलम्ब हो गया है इसका कारण भी समय पर लेखों का न मिलना ही है; और इसी कारण स्याद्वादाङ्क निकालने के समय परिवर्तन की बार २ सूचनायें देनी पड़ीं। स्याद्वादाङ्क को सर्वाङ्ग सुन्दर और संग्रह करने योग्य बनाने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक और उचित था कि इसके निकालने में कोई ऐसी शीघ्रता न की जाय जिससे हमें अच्छे २ लेखों और संग्रह करने योग्य सामग्री से वञ्चित होना पड़े। इसी लिये संग्रहणीय लेखों की प्रतीक्षा किया जाना उचित समझा गया। किन्तु इतने पर भी लिखते हुए दुख होता है कि कई लेखकों ने वादे कर करके भी लेख भेजने की कृपा नहीं की। फिर भी यह कहना पड़ेगा कि इतनी प्रतीक्षा का फल अच्छा ही हुआ है—जैनसमाज के लब्ध प्रतिष्ठ और समादरणीय विद्वान् श्रीमान् पंडित माणिकचन्द्र जी न्यायाचार्य जैसों के लेख का मिलना भी इसी प्रतीक्षा का फल है। जिन २ विद्वान लेखकों ने अपनी २ रचनायें भेजकर दर्शन पर जो दयादृष्टि दिखलाई है "जैन दर्शन" के संचालक उनके अत्यन्त आभारी और कृतज्ञ हैं। हमें आशा है भविष्य में भी वे इसी तरह अपनी उत्तमोत्तम रचनाओं द्वारा "जैन दर्शन" की सेवा कर उसकी उन्नति में विशेष सहायक बनेंगे।

—चैनसुख दास जैन।

* शुभ-कामना *

[लेखक—कवि शिरोमणि श्रीमान् पं० स्वरूपचन्द्र जी जैन 'सरोज', कानपुर]

विजय पताका सदा जैन दर्शन फहरावै।
अघ अनीति अन्याय, और आतंक मिटावै॥
अपनावै सब विश्व, विश्व को यह अपनावै।
दम्भ द्रोह को हटा, मार्ग सच्चा दिखलावै॥
स्याद्वाद गूंजे प्रबल, घर घर देश विदेश में।
विद्युत सा बस वेग हो, "स्याद्वाद" संदेश में॥

समाचार संग्रह

—श्री ऋषभदेव को कमेटी—श्री ऋषभदेव (केशरियानाथ) की कमेटी में दि० जैन समाज को ओर से श्रीमान् सेठ भागचन्द्र जी सोनी अजमेर, सेठ सुन्दरलालजी ठोल्या जयपुर, सेठ लक्ष्मीचन्द्र जो तथा सेठ भंवरलाल जी डूमड़ मेवाड़ और श्वे० समाज की ओर से श्रीमान् से० साराभाई डाह्या भाई, सुरपति सिंह जी अजीमगञ्ज, सेठ नन्दलाल जी और सेठ लक्ष्मीलाल जी चातुर नियुक्त हुए हैं।

—ऊण (इन्दौर) गांव में जमीन से अनेक प्रतिमाएं निकली हैं तथा यहां पहाड़ी पर अनेक जीर्ण मंदिर हैं। इस क्षेत्र का उद्धार होना चाहिये।

—जैनमन्दिर सरकार के हाथ में—जाखलौन से ४ मील दूरी पर चान्दपुर में एक बड़ा तथा ४-५ छोटे प्राचीन मन्दिर हैं जो जैनियों की लापरवाही से सरकार के हाथ में चले गये हैं। उनका उचित प्रबन्ध समाज को अपने हाथ में लेना चाहिये।

—जैन वनिताश्रम, आगरा एक जाली संस्था साबित हुई है। इसी कारण इसके संचालक मि० फूल चन्द्र जैन को सरकारी अदालत से तीन मामलों में ६-६ मास की सज़ा हुई है।

—धामपुर में जैन युवक मंडल की ओर से रक्षाबन्धन के दिन सलूनों पूजन व कवि सम्मेलन लगभग ६०० मनुष्यों की उपस्थिति में बड़ी धूम धाम से मनाया गया। जिन महानुभावों ने स्व-रचित कवितायें उत्सव में स्वयं पढ़ीं व बाहर से हमारे पास भेजी थीं उनका मंडल हृदय से आभारी है।

—आनरेरी मजिस्ट्रेट हुए-श्रीमान् सिंघई भगवानदास जी सर्राफ़ ललितपुर आनरेरी मजिस्ट्रेट हुए हैं। आप म्यूनीसिपिल कमिश्नर भी हैं। बधाई!

—देवगढ़ को दान-पूज्य ब्रह्मचारी कन्हैयालालजी इन्दौर ने श्री देवगढ़ जी जीर्णोद्धार के लिए सौ रुपये की सहायता पहुँचाई है। इस सहायता के लिए उक्त ब्र० जी को अनेक साधुवाद हैं।

—हस्तलिखित शास्त्र शुद्धतापूर्वक व सुन्दर जिन्हें लिखाना हों वे निम्न पते पर पत्र व्यवहार करें:— —ज्यो० र० पं० रामलाल जी पञ्चरत्न,

जैनपाठशाला, रामपुर स्टेट।

आवश्यकता

सेठ लक्ष्मीचंद जी भेलसा वालों की ग्रंथमाला के लिए प्राचीन जैन ग्रंथों और विशेषतः धवलादि सिद्धान्त ग्रंथों के संशोधन व प्रकाशन कार्य में सहायतार्थ एक संस्कृत और प्राकृत के ज्ञाता तथा हिन्दी और अंग्रेज़ी के जानकार विद्वान की आवश्यकता है। वेतन योग्यतानुसार ४०) से २००) मासिक तक। इच्छुक विद्वान् अपना पूरा परिचय व प्रमाणपत्र भेजकर पत्र व्यवहार करें।

—प्रोफ़ेसर हीरालाल जैन

किङ्ग एडवर्ड कालेज अमरावती (बरार)

लाभ उठाइये

अम्बाला छावनी में "उग्रसैन दि० जैन पवित्र औषधालय" लाला सोहनलाल उग्रसैनजी के स्मरणार्थ, ला० त्रिलोक चन्द्र जी जैन ने क़रीब १० वर्ष से क़ायम कर रखा है। इस में सब प्रकार के रोगों का इलाज मुफ़्त किया जाता है। जिस भाई को अपने रोग की निवृत्ति के लिये औषधी की आवश्यकता हो वह अपना तमाम हाल व पूरा पता लिख कर निम्न पते से औषधियाँ मँगा सकते हैं। इसमें दो चतुर वैद्य कार्य कर रहे हैं।

—विशम्भरदास जैन, मंत्री।

REGD. NO. A. 23

उर्दू-अंगरेज़ी जैन साहित्य !

यदि आप अंगरेज़ी या उर्दू में जैनधर्म का अध्ययन या प्रचार करना चाहते हैं तो कृपया विद्यावारिधि बैरिस्टर चम्पतराय जी द्वारा रचित निम्न लिखित पुस्तकों को खरीदिये :—

1	The Key of Knowledge 3rd Edn	Price Rs	10 0 0
2	The Confluence of Opposites 2nd Edn.	,,	2 8 0
3.	The Jain Law.	.	7 8 0
4.	What is Jainism (Essays and Addresses)	,,	2 0 0
5	The Practical Dharma 2d Edn.	,,	1 8 0
6.	The Sanyas Dharma	,	1 8 0
7	The House Holder's Dharma	,,	0 12 0
8.	Jain Psychology	,,	1 0 0
9.	Faith, Knowledge and Conduct	.	1 8 0
10.	The Jain Puja (with Hindi Sanskrit Padaya)	,,	0 8 0
11	Rishabh Deo—The Founder of Jainism	,	4 8 0
12	,, (Ordinary Binding	.	3 0 0
13.	Jainism, Christianity and Science	,	3 6 0
14.	Lifting of the Veil	,,	3 6 0
15	,, (Ordinary Binding)		2 0 0
16	Jainism and World Problems	,	1 0 0
17	Right Solution.	,,	0 4 0
18.	Glimpses of a Hidden Science in original Christian Teachings	,,	0 4 0
19.	Jaina Psychology	.	0 4 0
20.	Jaina Logic or Nyaya	.	0 2 0
21	Jaina Penance	,	2 0 0
22.	जवाहराते इस्लाम प्रथम भाग उर्दू	,,	0 8 0
23.	जवाहराते इस्लाम दूसरा भाग उर्दू	,,	0 8 0
24.	इत्तहादुल मुख्वालफ़ीन उर्दू	,,	1 0 0
25.	जैन लॉ	,,	1 0 0
26.	आत्मिक मनोविज्ञान	,,	0 8 0
27	श्रद्धा ज्ञान और चारित्र	,,	0 8 0

विशेष के लिये कृपया पत्र लिखिये।

सब प्रकार के पत्र व्यवहार का पता :—

मैनेजर—दि० जैन शास्त्रार्थ संघ, अम्बाला-छावनी।

वर्ष २] १ अक्टूबर १९३५ ई० [अंक ६

ॐ

❀ श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुख-पत्र ❀

[स्याद्वादाङ्क का परिशिष्टाङ्क]

ऑन० सम्पादक—

पं० चैनसुखदास जैन न्यायतीर्थ

पं० अजितकुमार जैन शास्त्री पं० कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री

प्राप्ति-स्वीकार

१—भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ को निम्न प्रकार सहायतार्थ द्रव्य प्राप्त हुआ है। दानी महानुभावों का हार्दिक धन्यवाद :—

१०) दि० जैन पंचान सोरम, मार्फत पं० परमानन्द जी (दशलाक्षणी पर्व में)।

५) ला० फतूमल चतरसैन जी सरधना।

३) ला० महावीर प्रसाद जगतप्रसाद जी सहारनपुर (विवाह समय)

२) ला० मम्मन लाल जी, मुजफ्फरनगर।

२) ला० मुख्तार सिंह B. A. C. T. मुजफ्फरनगर (रक्षा बन्धन के उपलक्ष में)

१) श्री शंकर सा पासुसा जैन औरंगाबाद (दशलाक्षणी पर्व में)

२—"जैन दर्शन" की सहायतार्थ निम्न सहायता प्राप्त हुई है; दानी महानुभावों को हार्दिक धन्यवाद :—

५) सेठ हज़ारीलाल किशोरी लाल जी गिरीडीह (मृत्युसमय)

५) श्री० शोबाई जैन (स्त्रीसमाज गया) (दशलाक्षणीपर्व)

५) ला० गिरनारीलाल फ़तेहचन्द जी टीकरी।

५) ला० शंकर लाल परशादी लाल जी [illegible] (सहारनपुर)।

—मैनेजर।

एक वर्ष का मूल्य ३)] [इस अंक का मूल्य ≡)

आवश्यक सूचना

गत वर्ष कार्तिक बदी ५ सं० १९९० को आगरा जैन समाज ने अखिल भारतवर्षीय वनिताश्रम और भारतवर्षीय जीव दया प्रचारिणी सभा की बदनामी सुनकर उनके हिसाब किताब और कार्य के सम्बन्ध में जाँच करने के लिये २ कमेटियां बनाई गीं वनिताश्रम जांच कमेटी की रिपोर्ट प्रकाशित हो चुकी है, जिसके आधार पर आश्रम के संचालक फूलचन्द्र जी पर सरकार की तरफ से मुकद्दमा भी चलाया गया। इस मुकद्दमे का फैसला ता० ५ सितम्बर १९३४ को सिटी मजिस्ट्रेट आगरा की अदालत से होगया और फूलचन्द को तीन मामलों में ६—६ महीनों की सख्त सजा कर दी गई।

जीव दया प्रचारिणी सभा के मंत्री पं० बाबूराम जी ने हिसाब आदि जांच नहीं करने दिया। कई बार सभापति व मंत्री को रजिस्ट्री पत्र देने पर भी कागज़ात नहीं दिखलाये, बल्कि वे सिर पैर की बातें पत्रों में छपवाकर जनता में भ्रम फैलाया है-फिर भी जांच कमेटी अपना काम कर रही है और उसकी रिपोर्ट से बड़ा भारी भण्डा फोड़ होने वाला है। इस समय हम इतना ही कहना चाहते हैं कि पं० बाबूराम जी ने जिन जिन स्थानों पर हिसाबन्दी की रिपोर्ट छपाई है उन उन स्थानों पर कमेटी तहकीकात कर रही है—अबतक जो समाचार मिले हैं उनसे हम इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि अधिकांश कथन झूठे हैं व तिल को ताड़ करके दिखलाया गया है। इस विषय में कमेटी ने जो सबूत इकट्ठे किये हैं वे समयानुसार समाज के सामने उपस्थित किये जायेंगे।

इस विज्ञप्ति द्वारा जनता को सूचित करते हैं कि वह पं० बाबूरामजी की रिपोर्ट के आधार पर जाकर सभा की सहायतार्थ जो द्रव्य निकालें वह तब तक न भेजें जब तक कि सभा का कार्य सुचारु रूप से व्यवस्थित न हो जावे। इस समय सभा का कोई कोषाध्यक्ष भी नहीं है—पं० बाबूराम ही उसके मंत्री-कोषाध्यक्ष सब कुछ हैं। अतएव जो कोई सज्जन अथवा पंचायत द्रव्य निकाले वह अपने ही यहां जमा रक्खें, क्योंकि इस समय उनके धन का सदुपयोग होने की कम सम्भावना है।

भवदीय—

मैम्बर्स—जांचकमेटी श्री जीवदया प्रचारिणी सभा

बेलनगंज, आगरा।

कमण्डल मुफ्त मंगालें।

इस साल धामपुर में श्री १०५ ऐलक चन्द्र सागर जी महाराज का चातुर्मास बहुत आनन्द के साथ हो रहा है। महाराज के आहारदान के उपलक्ष में साहु प्यारेलाल जी धामपुर वालों ने कलई के कमण्डल देने निश्चय किये हैं जिस किसी जगह जैन ब्रह्मचारियों व आर्यिकाओं को कमंडलों की ज़रूरत हो, वे नीचे लिखे पते से मंगालें :—

साहु स्यादूमल प्यारेलाल जैन,

धामपुर (बिजनौर) यू० पी०।

आवश्यका।

कैराना दिगम्बरजैन कन्या पाठशाला के वास्ते एक अध्यापिका की आवश्यता है। अध्यापिका जो जैन धर्मावलम्बी हो और द्रव्यसंग्रह तक की शिक्षा देने की योग्यता रखती हो। वेतन १५) रु० से २०) रु० माहवार तक योग्यतानुसार दिया जावेगा। रहने को मकान बिना किराये दिया जावेगा। प्रार्थना-पत्र निम्न पते पर आने चाहियें :—

पता—सैक्रेटरी जैन सभा,

कैराना (मुजफ्फरनगर) यू० पी०।

ॐ

* श्री जिनाय नमः *
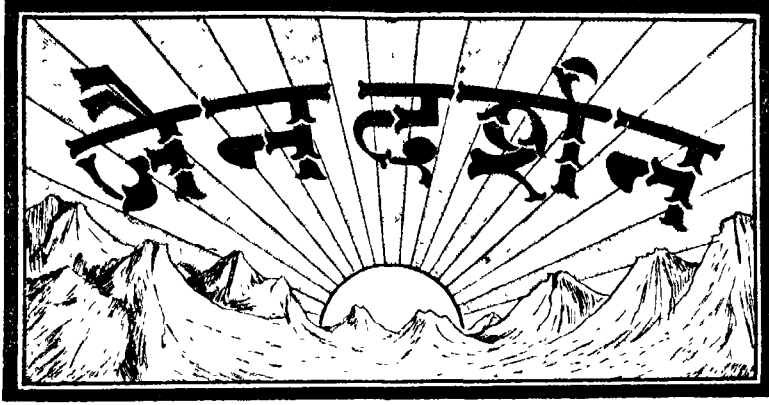
श्री जैनदर्शनमिति प्रथितोऽमरश्मिर्भर्स्मीभवन्निखिल दर्शन पक्षदोषः ।
स्याद्वाद भानुकलितो बुधचक्रवन्द्यो, भिन्दन्तमो विमतिजं विजयाय भूयात् ॥

वर्ष २ { बिजनौर, असौज कृष्णा ८—श्री 'वीर' नि० सं० २४६० { अङ्क ६

युवकों के प्रति !

आशाकेन्द्र ! विश्व के विभूति के सदन तुम,
अलस-विवशता में समय गमाओ ना ।
बन के विवेकशील करो दृढ़ता से काम,
विघ्नों की विचित्र यन्त्रणाओं से अघाओ ना ॥
चाहे कितने ही क्यों न स्वार्थ के प्रलोभन हों,
किन्तु तुम अपने सुलक्ष्य को भुलाओ ना ।
हारो ना कभी भी प्रतिकूलता विभीषिका से,
पथ के कुटिल कंटकों से भी रिसाओ ना ॥

—चैनसुखदास जैन ।

हमारी आधुनिक दशा और हमारा कर्त्तव्य

[ले०—श्री० बाबू उग्रसैन वकील, एम० ए० एलएल० बी०]

प्यारे पाठकों! यह जागृति का युग है, सोनेका समय नहीं है, प्रत्येक ओर से उन्नति २ तथा संगठन की गूंज कानों में आरही है, परन्तु जैनसमाज अभी कुछ सुखचैन की नींद में सोती ही दृष्टिगोचर हो रही है। जहाँ सारे विश्व में आज वीर युवकों के हृदय में संगठन का संचार हो रहा है, आपस की फूट, लड़ाई, झगड़े, व्यर्थ वितंडावाद आज हमारी शक्ति तथा बल को दिन प्रति दिन हीन और क्षीण बना रहे हैं। हम अहिंसा के पुजारी और अनेकान्तवाद के उपासक होते हुवे भी छोटी २ साधारण बातों के लिये झगड़ रहे हैं—लाखों रुपया बरबाद कर चुके हैं और कर रहे हैं। चाहिये तो यह था कि हम अपने परम अहिंसाधर्म का प्रचार कर विश्वभर में शान्ति स्थापित करने में तथा अनेकान्तवाद द्वारा भिन्न २ धर्मों तथा मत-मतान्तरों द्वारा उत्पन्न हुवे भेदभावों तथा मिथ्या कल्पनाओं को मिटाकर संसार में ऐक्यता का बीजारोपण करने में अग्रसर (Pioneers) होते, परन्तु खेद है कि आज हम आप ही ईर्षा द्वेष तथा कलह के शिकार बने हुवे रसातल को जारहे हैं।

"इस घर को आग लग गई
घरके चिराग़ से।"

यह सब क्यों है? इसका उत्तर यदि हम अपने हृदय में शान्तिपूर्वक टटोलें तो बड़ा सहज और सरल है। हम अपने धर्म को भुला बैठे हैं। यह जगत प्रसिद्ध बात है, कि धर्म उसकी रक्षा करता है जो धर्म की रक्षा करता है। जो धर्म को बिसारता है, धर्म उसको ठुकराता है। समाजके शिक्षित विभाग ने तो धर्म को ढकोसला कह कर वैसे ही तिलाञ्जली दे दी है। स्थितिपालक दलने उसके वास्तविक मर्म और रहस्य को गौण करते हुवे उसको रूढ़ियों तथा बाहरी टीपटाप के बन्धनों में ऐसा दृढ़ जकड़ा है कि उसका वास्तविक स्वरूप ही लोपसा हो गया। उसकी कोई भी तो झलक हमारे आचरण में तथा हमारी दैनिक क्रियाओं में नज़र नहीं आती। मिथ्यात्व, अज्ञान और मोह का प्रबल साम्राज्य छा रहा है, आज हम इच्छाओं के दास बने हुवे हैं, जड़वाद के उपासक हैं, शारीरिक विषय लालसाओं तथा वासनाओं की पूर्त्ति के लिये मारे २ भ्रमते फिरते हैं, स्थितिकरण का नाम मात्र नहीं, वात्सल्यभाव काफ़ूर हो गया है, भाई २ से झगड़ता है, व्यर्थ व्यय तथा झूठी और थोथी दिखावट में ही प्रभावना अङ्ग का पालन समझ लिया गया है। कहने को तो हम कहते ही हैं और हमारे शास्त्रों में लिखा भी है कि "समस्त जीव परस्पर समान हैं, जैनधर्म आत्मा का निजधर्म है, प्राणीमात्र इसका अधिकारी है, जैनधर्म पतितोद्धारक है, समस्त ही जीव इसे सुनकर इसे धारण कर सकते हैं" परंतु हम जरा देखें तो सही कि हम ने आधुनिक समय में इस क्षेत्र में क्या कुछ किया है, कोई ठोस और अमली कार्य भी हमारी ओर से हुवा या नहीं। कोई प्रचार का कार्य नहीं—जहां

निद्रा को त्यागो, कटिबद्ध होकर कार्य क्षेत्र में उतरो, आलस्य और प्रमाद को तजो, धर्म और जाति के प्रति अपने कर्त्तव्य को समझो, उस पर आरूढ़ हो जावो। यदि कुछ भी सेवा धर्म तथा जाति की करना चाहते हो तो अपने जीवन में संयम को प्रथम स्थान दो, संयम और शुद्ध चारित्र की इसके लिए बड़ी भारी आवश्यकता है। आत्मबल और साहस उत्पन्न करो और फिर धर्म को मिथ्या रूढ़ियों की श्रृङ्खलाओं से और जाति को कुरीति के जकड़े हुये बन्धनों से छुड़ाने का भरसक प्रयत्न करो, संकुचित विचारों को छोड़ो और यदि जैनधर्म को विश्व धर्म बनाने को ज़रा भी दिल में इच्छा रखते हो, तो लकीर के फ़कीर न बनो। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को विचार कर संसार में जैनधर्म के अकाट्य सिद्धान्त अहिंसा का प्रचार करो। स्याद्वाद का सिंहनाद बजा कर जगत् के सर्व मत मतान्तरों के द्वेषमूलक भेद भाव को मिटा कर सब व्यापी शान्ति को स्थापित करो, और अपनी बिखरी हुई शक्तियों को एकत्रित कर अज्ञान और मोह को दूर करके ज्ञान सूर्य का प्रकाश करो।

पाखण्डवाद का प्रहार

[१]

जब संप्रदायिता की अशांति कोलाहल करती थी महान।
एकांत परस्पर कर विवाद नहीं पा सकते थे सत्यज्ञान ॥
तब जिनने मोह विलास नाश स्याद्वाद बताया सत्यधाम।
उन धर्मवीर महावीर प्रभू को मेरा है शतशः प्रणाम ॥

[२]

स्याद्वाद बिना यह लोक शोक का ओक * बना रहता सदैव।
स्याद्वाद सुधा का रस अनूप पाकर पा सकता दुःख नैव ॥
यह गौरवमय आनन्दकन्द नैकान्तवाद है तत्वसार।
इसके बिन है सब ज्ञान भार यह है पावन निर्वाण-द्वार ॥

[३]

अबतक जिनने सत्यार्थज्ञान पाकर पाया निज आत्मतत्व।
उन सबने जाना था महान स्याद्वाद कथा का निखिलतत्व ॥
'ही' छोड़ गहा 'भी' का विचार यह दुःख द्वन्द्व का मुक्तिद्वार।
मंगलमय शासन यह अशेष पाखण्डवाद का है प्रहार ॥

—भ्रमर

* घर

स्व० ब्रह्मचारी ज्ञानानन्द जी के संस्मरण

[लेखक—श्री पं० कैलाशचन्द्र जी जैन, शास्त्री]

त्याग से ज्ञान की शोभा है और ज्ञान से त्याग की शोभा है। आचरणहीन ज्ञान और ज्ञानहीन आचरण, दोनों ही निष्फल हैं। जहां ज्ञान है और ज्ञान का फल सदाचरण भी विद्यमान है, वहां अकर्मण्यता का क्या काम ? सच्चे ज्ञानी सर्वदा कर्म में तत्पर रहते हैं। उनके जीवन का उद्देश महान होता है और मार्ग में आने वाली विघ्न-बाधाओं की पर्वाह न करके, वे अपने महान उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आ-जीवन प्रयास करते हैं। स्व० ब्रह्मचारी ज्ञानानन्द जी भी ऐसे ही कर्मठ व्यक्तियों में से एक थे।

× × ×

समय बीत जाता है और समय के साथ ही साथ अनेक घटनाएं भी अतीत के गर्भ में विलीन हो जाती हैं, किन्तु उनकी सुखद या दुखद स्मृतियां भुलाये भी नहीं भुलातीं। निमित्त मिलते ही हृदय के चित्रपट पर मूक फिल्मों के पात्रों की तरह, उनकी क्रियाएं प्रारम्भ हो जाती हैं, जिनके अनुभवन में मनुष्य तल्लीन हो जाता है—अपनी सुध बुध खो बैठता है—और क्षण भर के लिये सुदूर अतीत का अतिथि बन जाता है। आज मेरी भी वैसी ही दशा है। अतीत जीवन की स्मृतियों ने, सन् ३४ से खींचकर मुझे सन् १५ में ला पटका है अर्थात्—

आज से १९ वर्ष पूर्व—

भादों का महीना था और कृष्णा चतुर्थी का दुःखद प्रभात। दुःखद इसलिये कि, उस दिन स्नेहमयी जननी, जन्म-भूमि और बाल्य-सखाओं से बिछुड़ कर मैं सुदूर पूर्व में पहुँच गया था। यद्यपि अपनी स्नेहशीला जननी और जन्मभूमि की सुखद गोद से मैं द्वितीया को ही विदा ले चुका था और इसलिये उसी को 'दुर्दिन' कहना चाहिये, किन्तु अपने घर से बनारस तक के सुविस्तृत रेल पथ में चहल पहल जो थी, जंकशन स्टेशनों पर रेलों की खड़खड़ा-हट और इञ्जिनों की भकभकाहट देखते ही बनती थी और रेलों की 'घुड़दौड़' के उस तमाशे में क्या 'खोमचे' और 'दही-बड़े' वालों की 'चाट' को कभी भुलाया जा सकता है। सचमुच, यदि रेलों के उस तमाशे में यह 'चाट' वाले न हों तो खेल का मज़ा ही किरकिरा हो जाये। स्यात् कुछ पाठक मेरी इस बात से सहमत न हों किन्तु मेरा 'बाल हृदय' तो उसके विरुद्ध एक भी शब्द नहीं सुनना चाहता—बाल-हठ ही जो ठहरी। हां तो, इस 'आनन्द की पगडण्डी' पर मैं अकेला ही नहीं जा रहा था, साथ में मेरे बड़े भाई भी थे, जो प्रत्येक स्टेशन पर मेरे लिए मुक्तहस्त से पैसों की बरसा करते जाते थे। फिर भला प्रियजनों के विछोह का अनुभव होता तो कैसे होता। इस विवरण को पढ़ कर पाठक स्यात् मुझे स्वार्थी और 'पेटू' समझें, किन्तु बात ऐसी नहीं है। मैं सच कहता हूँ कि, जब २ स्टेशनों की चहल पहल बीत

जाती थी और रेलगाड़ी 'भक भक' करती हुई अपने गन्तव्य-पथ पर चलने लगती थी तब २ मेरा बाल्य हृदय मार्ग से एक दम उड़कर घर के आंगन में जा कर ही विश्राम लेता था। किन्तु वह वहां पूरा विश्राम भी न ले पाता था कि झट अगला स्टेशन आ जाता था और मैं उसे देखने में व्यस्त हो जाता था। मेरी दशा उस बच्चे के समान थी जो गोद का खिलौना फूट जाने पर सुस्त पड़ जाता है और नया मिलने पर फिर प्रसन्न हो उठता है। सुख दुःख की 'आंख मिचौनी' का यह खेल तब तक चलता रहा जब तक मेरी लम्बी यात्रा समाप्त न हुई। काशी के स्याद्वाद विद्यालय में पैर रखते ही मेरा मोहजाल छिन्न भिन्न हो गया और जीवन में पहिली बार मैंने अपने को 'अकेला' अनुभव किया।

हां, तो! भादों का महीना था और कृष्णा चतुर्थी का दुःखद प्रभात। मैंने अपने भाई के साथ स्याद्वाद विद्यालय के सुन्दर सुविस्तृत भवन में पदार्पण किया। उस समय प० उमराव सिंह जी धर्माध्यापक और सुप्रिन्टेन्डेन्ट थे। जाते ही उनसे भेंट हुई। उन्होंने मुझे सिर से पैर तक देखा और मेरा म्लान मुख देख कर हंस पड़े। वे—जैसा कि मुझे आगे चलकर मालूम हुआ—फूल से भी कोमल और पत्थर से भी कड़े थे। उनकी कर्तव्य-निष्ठा अद्भुत थी। एक बार जिस कार्य को करने का संकल्प कर लेते थे उसे करके ही छोड़ते थे। उनकी एकान्त कर्तव्यनिष्ठा ने ही उनके जीवन में कई बार दुःखद प्रसंग उपस्थित किये—जैसाकि मैं आगे लिखूँगा।

सामाजिक संस्थाओं के संचालन के लिए अधिकारियों की नहीं—निस्स्वार्थ सेवकों की आवश्यकता है। शिक्षा संस्थाओं के जीवन-स्वरूप छात्रों के लिये शासक की नहीं, कर्तव्यनिष्ठ पितृ तुल्य गुरू की आवश्यकता है। पं० उमराव सिंह जी में दोनों गुण मौजूद थे, वे निस्स्वार्थ सेवक भी थे और कर्तव्यनिष्ठ गुरु भी। उन्होंने अपने जीवन के थोड़े से कार्य-काल में जो कुछ किया वह जैन संस्थाओं के इतिहास में सर्वदा स्मरणीय रहेगा।

संस्थाओं के लिए लक्ष्मी पुत्रों की जेबसे रुपया निकलवा लेना कितनी टेढ़ी खीर है? इसका उत्तर भुक्तभोगी ही दे सकते हैं। किन्तु स्याद्वाद विद्यालय में जो धनिक जन पधारते थे उनमें से बिरले ही अपनी भरी पाकेट लेकर लौटते थे। जिस दिन मैं विद्यालय में प्रविष्ट हुआ उसी दिन छपरा के सेठ केदारमल दत्तूमल ने एक हजार रुपया ध्रौव्यकोष में दान दिया था। यह सब पं० उमरावसिंह की कर्तव्य-निष्ठा ही का सुफल था। विद्यालय में प्रविष्ट हुए, मुझे तीन दिन बीत चुके थे। ये तीन दिन मुझे तीन वर्ष से भी अधिक लम्बे मालूम पड़े। घर की अविकल स्मृति ने मुझे विकल कर रक्खा था। भूख और प्यास हवा हो गई थी। मेरे भाई अभी ठहरे हुए थे। वे जब २ घर जाने का नाम लेते थे मेरी आंखों के आगे विस्तृत अन्धकार छाजाता था, जिसमें अपने उद्धार का मुझे कोई मार्ग नहीं सूझ पड़ता था। आखिर दूसरा उपाय न देखकर, मुझे उनसे अपने साथ घर लौटा ले जाने का अनुरोध करना पड़ा, किन्तु वे किसी तरह मेरे प्रस्ताव से सहमत न हो सके। अन्त में, मेरे शोकाश्रुपूर्ण म्लान मुख ने मेरे सहोदर के स्नेही हृदय पर विजय पाई—वे मुझे घर ले चलने के लिये सहमत हो

गये। घर पहुँचने की कल्पना से, मेरे सुस्त शरीर में उत्साह की बिजलीसी दौड़ गई, हृदय आनन्द से नाच उठा, मानों—जन्म के अंधे को दो आँखें मिल गई। अब हम दोनों भाई विद्यालय के अधिकारियों तथा विद्यार्थियों की आंखों से बचकर वहां से निकल भागने का उपाय सोचने लगे, उसी तरह जिस तरह गत युग में संभवतः अकलंक और निकलंक ने सोचा था। अन्त में, बहुत देर दिमाग़ लड़ाने के बाद, सन्ध्या को विद्यालय की प्रार्थना के बाद भाग चलने का प्रोग्राम तय किया गया। कारण, प्रार्थना के समय छात्रों की हाज़िरी ली जाती थी और उस समय पं० उमराव सिंह जी स्वयं उपस्थित रहते थे। अतः हम लोगों को आशा थी कि प्रार्थना में उपस्थित रहने से अधिकारी हमारी ओर से निश्चिन्त हो जायेंगे और फिर रात भर कोई ख़बर न लेगा।

सन्ध्या आई, प्रार्थना के बाद मेरे भाई अपना 'बोरिया' 'बधना' उठाकर विद्यालय से रवाना हुए। आंख बचा कर, उछलते हुए हृदय से उनके पीछे २ मैं भी 'एक, दो, तीन' होगया। अभी हम विद्यालय के फाटक से कुछ ही पग जाने पाये थे कि, मार्ग में एक 'यमदूत' से भेंट होगई। स्यात् मेरी भाव भंगी से उसे मुझ पर कुछ शक हुआ और उसने तुरन्त पूछा—कहां जा रहे हो? मैं कुछ सक पकाया। किन्तु मामला बिगड़ते देख कर फौरन उत्तर दिया—भाई को पहुँचाने जा रहे हैं। काम बन गया। हम लोग आगे बढ़े और तेज़ सा इक्का किराये करके स्टेशन पर पहुँच ही तो गये। वहां कुलियों से पूछने पर मालूम हुआ कि, रात में कोई भी गाड़ी पश्चिम की ओर नहीं जाती। बना बनाया खेल बिगड़ता देख कर मैं फिर अधीर हो उठा। किन्तु सन्तोष के सिवा उस अधीरता का दूसरा इलाज भी तो नहीं था। लाचार होकर, मुसाफिर खाने में एक ओर को बिस्तर बिछाकर मैं अपने भाई के साथ लेट गया। भाई तो लेटते ही कुम्भकर्ण से बाज़ी जीतने की तैयारी करने लगे और चिंताओं के आघात-प्रतिघात से क्लान्तहृदय में भी करुणामयी निद्रादेवी का आह्वान करने लगा। वे आई अवश्य, किन्तु कुछ अनमनी सी होकर। अचानक किसी के पुकारने का शब्द सुन कर मेरी तन्द्रा भङ्ग होगई। भाई भी जाग गये। मैंने धड़कते हुए हृदय से आंख खोल कर देखा तो मुंह से एक हलकी सी बेबसी की चीख निकल गई। पं० उमराव सिंह जी के दो 'यमदूत' मुझे सशरीर पकड़ने के लिये मुंह बाये खड़े थे। उन्होंने आगा देखा न पीछा, झट से मुझे पकड़ ही तो लिया।

पाठक! अपने व्यथित हृदय की उस समय की करुण कहानी लिखकर, अपना और आपका समय नष्ट करना नहीं चाहता; कारण, स्टेशन के उन बाबुओं की तरह—जो मेरा करुण क्रन्दन सुन कर उस समय वहां उपस्थित हो गये थे और आते ही जिन्होंने 'यमदूतों' की ओर से पैरवी करना शुरु करदिया था—शायद आप भी मेरे साथ सहानुभूति प्रदर्शित करना उचित न समझें। अतः बस, इतना ही जान लीजिये कि, दोनों 'यमदूतों' ने पकड़ कर मुझे इक्के में सवार करा दिया और दूर ही से अश्रुपूर्ण नेत्रों से मेरे प्रिय भाई ने मुझे बिदा किया। लगभग १५ दिन तक मेरा चित्त विक्षिप्त रहा। इस बीच में जब कभी मैं अधिक उद्विग्न हो जाता

था तो पण्डित जी अपने पास बैठाकर 'मर्यादा' और 'सरस्वती' की फ़ाईलों के चित्रों से मेरा अनुरंजन करते थे।

यदि पं० उमराव सिंह उस समय मेरी ओर से उदासीन हो जाते और मुझे मेरे भाई के साथ भाग जाने का अवसर देते तो आज मेरे प्रारम्भिक जीवन की यह घटना मेरे ही अन्तस्तल के स्मृति-मन्दिर में विलीन हो जाती। शिक्षा संस्थाओं के कर्ता-हर्ताओं में से कितने माई के लाल पं० उमराव सिंह की तरह अपने कर्तव्य का पालन करते हैं?

× × ×

आर्यसमाज के विख्यात गुरुकुल काँगड़ी के वार्षिक समारोह पर प्रति वर्ष 'सर्व धर्म सम्मेलन' की आयोजना की जाती है। उस वर्ष जैनधर्म की ओर से निबन्ध पढ़ने के लिये पं० उमराव सिंह जी उसमें सम्मिलित हुए थे। जिन्हें आर्यसमाज की शिक्षा-संस्थाओं को—खास कर गुरुकुल काँगड़ी को—देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ है वे बतला सकते हैं कि, उनकी कार्यप्रणाली कितनी आकर्षक और उपयोगी होती है? उनके विद्यार्थियों का शारीरिक, मानसिक और नैतिक बल स्पर्द्धा के योग्य होता है। पं० उमरावसिंह जी ने यह सब देखा, उनके हृदय पर वहाँ की शिक्षा प्रणाली का बहुत कुछ असर पड़ा और वे बहुत से मनसूबे बांधकर वहां से बनारस लौटे। विद्यालय की साप्ताहिक सभाओं में अकसर उनके भाषण होते थे, उनमें उनकी आन्तरिक भावनाओं का अस्पष्ट निर्देश पाया जाता था। विद्यार्थियों के प्रति उनका जितना अनुराग था, विद्यार्थियों का भी उनके प्रति उससे कम अनुराग नहीं था। सन् १६ के मध्य में जब प्रबन्धकारिणी समिति के अधिकारी और पण्डित जी के बीच में लम्बा झगड़ा हुआ था तब विद्यार्थियों ने उनका खूब साथ दिया था। किन्तु इस घटना के कुछ ही समय बाद समय ने पलटा खाया और विद्यार्थी मंडल उनसे इतना नाराज़ हो गया कि उस व्यवहार से दुःखी होकर उन्हें काशी को छोड़ना पड़ा।

पं० उमराव सिंह विद्यार्थियों के सच्चे हितैषी थे, इसमें तो कोई शक नहीं। आजकल के अभिभावकों में जिस बात की कमी पाई जाती है वह उनमें कूट २ कर भरी थी। विद्यार्थियों के आचरण पर उनकी कड़ी निगाह रहती थी। रात्रि में वे स्वयं छात्राश्रम का चक्कर लगाते थे। इतना ही नहीं, इस कार्य के लिये गुप्त रूप से उन्होंने कुछ विद्यार्थी भी नियुक्त कर रक्खे थे—जो समय २ पर उन्हें ऐसी सूचनाएं देते थे। उनकी इस सतर्क दृष्टि और कार्य प्रणाली ने विद्यार्थियों में असन्तोष का भाव उत्पन्न कर दिया था। नीतिकारों का मत है कि, 'सोलहवें वर्ष में पदार्पण करते ही पुत्र के साथ मित्र का सा व्यवहार करना चाहिये'। पं० उमराव सिंह जी ने इस नीति की सर्वथा उपेक्षा की—छोटे और बड़े के भेद को भुला कर उन्होंने सबके साथ एक सा ही व्यवहार रक्खा। उनकी रीति उस डाक्टर के समान थी जो रोगी की नाड़ी देखे बिना ही उस पर औषधी का प्रयोग करता जाता है।

अष्टमी या पड़वा का दिन था। विद्यालय की छुट्टी थी। उस रोज़ पं० उमरावसिंह जी की ओर से एक सूचना इस आशय की प्रकाशित हुई कि आज

दोपहर को सभा होगी; कोई विद्यार्थी शहर न जाये। न मालूम क्यों? इस सूचना ने आग में घी का काम किया! जगह २ विद्यार्थियों की गोष्ठी होने लगी। कुछ विद्यार्थी सूचना की उपेक्षा करके बाज़ार भी चले गये। नियत समय पर सभा हुई। विद्यार्थियों ने अपने व्याख्यानों के द्वारा पण्डितजी पर खूब ही वाग्बाण चलाये। अन्त में दुःखी मन और खिन्न बदन से पण्डित जी ने भी कुछ कहा। सभा भंग हुई, पण्डित जी ने विद्यालय छोड़ने का पक्का इरादा कर लिया। छात्रों ने सुना तो 'सन्न' रह गये। उन्हें इस दुष्परिणाम की आशा न थी। छात्रों की ओर से कुछ प्रतिनिधि अनुनय-विनय करने के लिए पण्डित जी के पास गये, किन्तु सब व्यर्थ। उन्हों ने कहा—"जिनकी सेवा के लिए मैं यहां रहता हूं उन्हें जब मेरी सेवा ही स्वीकार नहीं तो मेरा रहना निष्फल है।"

पं० उमरावसिंह जी अपने तथा अपने छोटे भाई के खर्च के लिये विद्यालय से केवल २५) रु० मासिक लेते थे। उक्त घटना ने उनके इस अवैतनिक समाज सेवा के भाव को भी गहरा धक्का पहुंचाया। उन्हों ने संकल्प किया कि, अब मैं पूरा वेतन लेकर ही समाज सेवा का कार्य करूँगा। मेरी समझ के अनुसार यह पण्डित जी का नैतिक पतन था। विपत्तियां ही मनुष्यता की कसौटी हैं। विपत्ति में भी जो अपने विचारों पर दृढ़ रहता है वह सच्चा मनुष्य है। अस्तु, उन्हों ने स्याद्वाद विद्यालय से अपना पुराना नाता तोड़ दिया और ७०) मासिक पर भारतवर्षीय दि० जैन महाविद्यालय के प्रधानाध्यापक होकर मथुरा चले गये। उन्हें मथुरामें कार्य करते हुए अभी कुछ मास ही बीते थे कि उनके सप्तम प्रतिमा धारण करने के समाचार मैंने 'पत्रों' में पढ़े। कहावत प्रसिद्ध है कि, 'यदि सुबह का भटका हुआ मनुष्य सन्ध्या तक अपने ठिकाने पर पहुँच जाये तो उसे भटका हुआ नहीं कहते'। पं० उमरावसिंह के जीवन में भी यही हुआ, वे गिरे अवश्य, किन्तु जल्दी ही संभल गए, और वह भी इस उन्नत रूपमें। पतन और उत्थान के इस सिलसिले में, लोगों ने देखा कि, पं० उमरावसिंह अपने योग्य वेष 'सप्तमप्रतिमा' और सार्थक नाम 'ज्ञानानन्द' को धारण करके दूने उत्साह से कार्यक्षेत्र में उतरे हैं।

सप्तमप्रतिमा उनका योग्य वेष कैसे थी? इस प्रश्न के समाधान के लिये उनके प्रारम्भिक जीवन की एक घटना का उल्लेख करना आवश्यक है, जो पाठ पढ़ाते समय उन्हों ने एक बार स्वयं बतलाई थी। १९ वर्ष की अवस्था में उनकी सहधर्मिणी का शरीरान्त हो गया। घर वालों ने दूसरा विवाह करना चाहा तो छिपकर काशी या मोरेना विद्याध्ययन के लिये जा पहुँचे और 'स्यात' फिर घर नहीं गये। यह तो हुई उनकी स्त्री-विरक्ति की बात, अब सादगी का भी हाल सुन लीजिये। उनके कोट के बटन खोगये थे या टूट गये थे। वे बाज़ार से नये बटन खरीद कर लाये थे। बटन फैशनेबुल तो न थे, पर थोड़े चिलकदार अवश्य थे। किसी ने अचानक टोक दिया—पण्डित जी बटन तो बड़े बढ़िया लाये हो। पण्डित जी ने उसी समय उन बटनों का परित्याग कर दिया। अपने फैशनेबुल रंगढंग के कारण एक बार इन पंक्तियों के लेखक को भी उनका कोप भाजन बनना पड़ा था। मेरे स्नेही पिता जी ने मुझे एक बढ़िया विलायती

डोरिये का कुर्ता सिला दिया था। वह कम्बख्त कुर्ता एक दिन मैला हो गया और उसे धोबी का मेहमान बनना पड़ा। धोबी कुर्ता तो लेकर ले आया, किन्तु धुलाई में झगड़ा करने लगा। बात पण्डित जी के कानों तक पहुँची या कम्बख्ती का मारा मैं ही ले गया। कुर्ते को देखते ही भड़क उठे और बोले, ऐसा बढ़िया कुर्ता क्यों सिलाकर लाया है? जान बचाना मुश्किल हो गया। ऐसे सादगी-पसन्द और स्त्री विरक्तों के लिये 'संयम को सोपान' नहीं है तो क्या 'नारि मुई घर सम्पति नासी' वालों के लिये है?

ज्ञानानन्द! सचमुच वे कार्यतः ज्ञानानन्द थे। रातदिन ज्ञानाभ्यास करते रहते थे। उनके रात्रिमें अध्ययन करने से मुझे बड़ी चिढ़ थी। बात यह थी कि उन दिनों मुझे खूब नींद आती थी और इस लिये जो खूब सोते थे तथा मुझे सोने में सहायता देते थे वे मेरे अत्यन्त स्नेह भाजन थे। किन्तु जो न स्वयं सोते थे और न दूसरों को सोने देते थे, जैसे कि पं० उमरावसिंह, वे मेरे आन्तरिक कोप के ही नहीं, बल्कि घृणा के भी पात्र थे। रात्रि में जब कभी मेरी नींद खुल जाती और मैं उन्हें पढ़ते हुए देखता तो मुझे उनकी इस बेवकूफी पर हंसी आये बिना न रहती। मैं सोचता—यह कितने बेवकूफ हैं जो इतना पढ़ लिख कर भी इस सुहावनी रात में जो केवल सोने के लिये ही बनाई गई है, पुस्तकों में सिर खपाते हैं। जब मैं इतना पढ़ जाऊँगा तो सोने के सिवाय दूसरे काम को हाथ भी न लगाऊँगा। मैं और भी सोचता, अमीर उमराव तो लम्बी तानकर सोते हैं। यह कैसे उमराव हैं जो रातों जगते हैं? उनके 'उमरावसिंह' नाम के प्रति मेरे शयन-प्रिय बालहृदय में जो विद्रोह उत्पन्न हो गया था वह तब शान्त हुआ जब हमारे उदासीन पण्डितजी ने अपने वेष के साथ ही साथ उसे भी बदल डाला और ब्रह्मचारी ज्ञानानन्द के नाम से ख्यात हुए।

[शेष फिर]

* वीर शासन *

[लेखक—श्री० पं० नाथूराम जी डोंगरीय जैन, न्यायतीर्थ]

[१]

पक्षपात का जहाँ कहीं भी,
पाया जाता लेश नहीं ।
पहुंचाई जाती न भूलकर,
दीन दुखी को ठेस कहीं ॥

[२]

जिसकी पावन धर्म धरा प्रिय !
हरी-भरी-सी रहती है ।
करुणा कलित मनोरम सरिता,
जहाँ निरन्तर बहती है ॥

[३]

शान्ति-सुधा के रम्य निर्झरने,
झरते रहते नित्य जहाँ ।
करते शिव-पथ-पथिक कल्पतरु,
छाया में विश्राम जहाँ ॥

[४]

विश्व प्रेम का सुखद जहां पर,
मलय-समीरण बहता है ।
ज्ञान-ज्योत्स्ना का अनंतवर—
उदय निरन्तर रहता है ॥

[५]

जहां आत्म-गौरवताहरगिज़—
नहीं भुलाई जाती है ।
हँस कर दे सर्वस्व धर्म की—
शान बढ़ाई जाती है ॥

[६]

अञ्जन जहां निरंजन होते !
दादुर सुर हो जाते हैं !!
भक्त भील श्वपचादिक भी सुर-
अर्चनीय बन जाते हैं !!!

[७]

दे दो इसी वीर शासन का, व्यथित-विश्व को फिर संदेश ।
लेकर शरण सुखी हो पीड़ित, नामशेष हो जाएँ क्लेश ॥

जैनधर्म और ईश्वरवाद

[ले०—श्री० पं० जगन्मोहनलाल जी शास्त्री]

[अंक २ से आगे]

पण्डित विद्येन्द्र शास्त्री ने, हिंसा आदि पापों के सम्बन्ध में भी अपने कुछ विचार इसी प्रसङ्ग में प्रकट किए हैं। आपका कथन है कि हिंसा एकान्ततः पाप नहीं और न अहिंसा एकान्ततः पुण्य। कभी २ हिंसा पुण्यरूप हो जाती है और अहिंसा पापरूप। उदाहरणार्थ आप लिखते हैं कि "हिन्दुओं में गोघात महापाप है, इसलिए हिन्दू राज्यों में गोमांस बेचना या गोघात करना अत्यन्त निषिद्ध है। इसके विरुद्ध अंग्रेज़ लोग इसे पाप नहीं गिनते। अब समझिये किसी हिन्दू राज्य में वायसराय आए और उन्हों ने चोफ और मटन की इच्छा की। उस समय यदि वह हिन्दू राजा उस मांस विशेष के द्वारा उनकी तृप्ति करता है तो मेरे विचार में वह पाप का भागी कदापि नहीं है। क्योंकि वायसराय राज्य में रोज़ रोज़ नहीं आया करते। ज़्यादा से ज़्यादा एक सप्ताह की तो बात है—बहुत हुआ पांच सात गाएं नष्ट होंगी। इसके विपरीत यदि वह राजा ऐसा न करे तो वायसराय उसे अपना अपमान समझेंगे और परिणाममें राज्य छिन सकता है। गवर्नमेन्ट की तरफ़ से बूचड़खाने बन सकते हैं इत्यादि.........।"

मेरा अनुमान है कि विद्वान् शास्त्री जी के ऊपर लिखे मन्तव्यको कोई भी विद्वान् धार्मिक दृष्टि से या नैतिक दृष्टिसे उचित नहीं कह सकता। और यदि शास्त्री जी ही स्वयं अपने उक्त लेख पर पुनः विचार करें तो उन्हें स्वयं लज्जित होना होगा।

उक्त विचारों में हद दर्जे की कायरता ने प्रवेश कर लिया है; यही कारण है कि गोघात (जिसके मुताबिक महापाप हिन्दू धर्ममें दूसरा नहीं बताया) आपकी दृष्टि में पाप ही नहीं रह जाता।

मेरा तो उक्त उदाहरण पर यह मन्तव्य है कि उक्त हिन्दू राजा को यदि उस में कुछ भी धार्मिक भावना या स्वाभिमान की मात्रा है तो हरगिज़ ऐसा नहीं करना चाहिए। संभवतः लेखक राज्य छिन जाने के भयसे अपने महाप्रभु को प्रसन्न करने के लिए अपने धर्म का बलिदान कर देना (वह भी अपने स्वार्थको धक्का न पहुँचा कर अन्य मूकप्राणियों के महान् बधसे) उचित समझते हैं। परन्तु विचार कीजिए इससे अधिक कायरता और क्या हो सकेगी?

बूचड़खाने खुलजाने की बात भी युक्तिसंगत नहीं है, बल्कि इसके विरुद्ध यों हो सकता है कि यदि वह हिन्दूराजा वायसराय की इच्छा रहने पर भी उनके लिए गोमांस का प्रबन्ध न करे और उन्हें बतला देवे कि मेरे हिन्दू धर्म के यह विरुद्ध कार्य है इसलिए मैं उक्त वस्तु के द्वारा आपका सत्कार नहीं कर सकता तो वायसराय जो एक महान् पद पर आरूढ़ है नाराज़ न होकर प्रसन्न ही होंगे और

यदि उक्त राज्य में बूचड़खाना खुलवाने की इच्छा भी रखते होंगे तो इस घटना से वे समझ जावेंगे कि इन हिन्दू राज्यों में ऐसा नहीं किया जा सकता। बल्कि यदि वह हिन्दू राजा कायरतावश अपने हिन्दुत्व का बलिदान यदि उक्त समय पर कर देवे और गोमांस से उनका सत्कार करे तो वायसराय यदि वे वहां बूचड़खाना खुलवाना किन्हीं कारणों से पसन्द करते हैं तो अवश्य खुलवादेंगे और ऐसे समय उस हिन्दू राजा का विरोध करना निराधार होगा, क्योंकि वह स्वयं गोघात वायसराय के भोजन के लिए करा चुका है। फिर भी यदि वह विरोध करेगा तो इस पाखण्डपूर्ण कार्य को वे कभी अङ्गीकार नहीं कर सकते।

आगे चलकर आप लिखते हैं कि एकान्त अहिंसा में अननुष्ठान लक्षणअप्रामाण्य आजाता है। क्योंकि प्रत्येक अनुष्ठान में कुछ न कुछ प्राणिघात हो जाना अनिवार्य है। समाधान यह है कि जैन-धर्म के अहिंसा सिद्धान्तका आप मनन कीजिए—जैनधर्म ने प्राणिबध हो जाने को हिंसा या न होने को अहिंसा नहीं माना, बल्कि परिणामों के ऊपर हिंसा और अहिंसा अवलम्बित है। हिंसा का अभिप्राय करके किसी पर आघात करने वाला हिंसक है, चाहे प्राणिघात न भी हुआ हो। इसी प्रकार हिंसा का अभिप्राय न रखकर आपरेशन करने वाला डाक्टर प्राणिघात हो जाने पर भी हिंसा का भागी नहीं होता। राज्य कानून के अनुसार भी यही व्यवस्था है। ऐसी अवस्था में जैसे अहिंसा-वादी डाक्टर को आपरेशन कर देने में अननुष्ठान प्रसङ्ग नहीं आता, इसी प्रकार क्रोधादि कषाय रहित स्वार्थ वासनाहीन संयमी पुरुष के भी अनुष्ठान करने में पाप संचय नहीं होता। यही बात झूठ चोरी आदि के विषय में समझिए।

आपने लिखा कि "अचेतन बिना चेतन की सहायता के कुछ कर नहीं सकता, यह संसार में देखा जाता है। कर्म अचेतन हैं—वे स्वयं कुछ कर नहीं सकते। अतः फलोत्पत्ति के लिए चेतन की अपेक्षा करते हैं। उसका फलदाता जीवात्मा हो नहीं सकता, अतः अतिरिक्त चेतन ईश्वर-सिद्ध है। ईश्वर की इच्छा न बुरे काम के करवाने में है न भले। यह तो मनुष्य की इच्छा है, फल देना ईश्वर का काम है।"

उक्त उद्धरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि लेखक महोदय केवल इसलिये ईश्वर को फलदाता मानना चाहते हैं कि कर्मफल दाता अचेतन कर्म नहीं बनता, और न साधारण जीवात्मा। इस युक्ति के सिवाय और कोई तर्क इस लेख भर में आपके पास नहीं है जिससे आप ईश्वर को कर्त्ता सिद्ध करते हों या कर सकते हों।

अब यह विषय मुख्यतया विचारणीय है कि क्या बगैर चेतनाधिष्ठितता के अचेतन कार्य नहीं करते? अवश्य करते हैं, प्राकृतिक सम्पूर्ण कार्य बगैर किसी की प्रेरणा के होते हुए देखे जाते हैं। ग्रीष्म काल के संताप से जलाशयों के जल से वाष्प बनती है, वही मेघों का रूप धारण कर लेती है, पश्चात् वही मेघमाला जल बरसाती है। अग्नि दाहक शक्ति रखती है, अग्नि की दाहकता से उन पदार्थों में जो अग्नि के समीप प्राप्त होते हैं स्वयं-क्रिया होने लगती है। सम्पूर्ण पदार्थ रक्खे २ स्वयमेव जीर्ण हो जाते हैं, उन्हें जीर्णता-प्राप्ति में चेतन सहायक की आवश्यकता नहीं होती।

रक्खा हुआ दूध समय पर स्वयं फट जाता है। कोई चेतन प्रयोग द्वारा ही उसे फाड़ता हो यह बात नहीं है। प्रत्येक मनुष्य प्रयत्न करता है कि मैं सदा युवा बना रहूँ, परन्तु यह शरीर उस चेतन के प्रयत्न के विपरीत बाल से युवान और युवान अवस्था से क्रमशः वृद्ध दशा को प्राप्त होता है। अन्त में अनेक उपाय करने पर भी स्थिर नहीं रहता, नष्ट हो जाता है। ये ही वे कार्य हैं जो अचेतन द्वारा स्वयमेव होते जाते हैं, बल्कि चेतना का प्रयत्न वहां निरर्थक जाता है।

जिस तरह मनुष्य नशीली वस्तु खा लेता है, उसे उस का फल कोई जज देने नहीं आता, वह मनुष्य स्वयं उस नशीली वस्तु के प्रभाव से बेहोश हो जाता है और सुधि बुधि भूल जाता है, इसी प्रकार जीवात्मा जब अपने अच्छे व बुरे परिणामों के द्वारा कर्म बंध कर लेता है तब उन बंधे हुए अचेतन कर्मों में उसके परिणामों का ऐसा प्रतिबिम्ब पड़ता है कि परिपाक काल में वे कर्म उसे उसी रूप परिणामों को पैदा करा देते हैं। उदाहरणार्थ एक मनुष्य ने अपने अभिमान वश किसी पर क्रोध किया उसे अचेतन कर्म परमाणुओं ने घेर लिया और वे आत्मा से संबंधित होगए। उनमें वैसे ही क्रोधावेश पैदा करने की शक्ति उसी मनुष्य की चेतना के परिणामों द्वारा उत्पन्न होगई। समय पा कर फल के पाक के समान कर्म परमाणु भी कुछ समय बाद अपना पाक काल या उदय काल प्राप्त करते हैं और उस समय उस आत्मा में फिर क्रोध भाव पैदा करा देते हैं। उस समय यदि उसके अकारण क्रोध पर कोई पुरुष प्रहार कर देता है, तो यही उसके कर्म का फल हो जाता है। इस उदाहरण में कर्मों में शक्ति पैदा करने के लिए निमित्त वह जीवात्मा स्वयं हो जाता है और फल प्राप्ति में निमित्त कोई अन्य जीवात्मा भी बन जाता है। तब यह कहना असंगत हो जाता है कि "फलदाता जीवात्मा तो हो नहीं सकता"। सारांशतः यह समझिए कि अचेतन स्वयं भी कार्य करते हैं और कहीं २ जीवात्माओं के ही निमित्त को पाकर कार्य करते हैं। दोनों दृश्य कारणों का निषेध करके अदृश्य चेतन ईश्वर की कल्पना कर लेना निराधार है। जब जगत् के सम्पूर्ण कार्यों में आपको सहायक की ज़रूरत न दीखने पर भी मालूम होती है तब उस ईश्वर की बग़ैर सहायक के चलने वाली कार्यकारिणी शक्तिपर कैसे विश्वास हो जाता है।

इच्छादि शक्तियों का आधार ईश्वर है और आधार बनने के लिए आप साकारता की आवश्यकता नहीं देखते। पर यह आपकी निजी कल्पना मात्र है, युक्ति संगत नहीं। उदाहरण के लिए आपने विद्युत् को निराकार माना, परन्तु विद्युत् निराकार तो नहीं। प्रकाशमान् विद्युत् का आकार मूर्ख से विद्वान् तक सब देखते हैं। विद्युत् पकड़ी जाती है, बन्द की जाती है, उसके बल से अनेक कारखाने चल रहे है, उसके फोटो उतारे जाते हैं। इतने पर भी यदि वह निराकार है तो बतलाइए साकारता के और कौन से चिन्ह हैं? इन्हीं लक्षणों से तो पदार्थ साकार कहे जाते हैं। ईश्वर को भी साकार मानना होगा। इस का यह अर्थ कदापि नहीं लेना होगा कि मैंने यह कह कर ईश्वर की सत्ता तो स्वीकार करली। ईश्वर को साकार मान लेने पर साकार वस्तुओं के समान जन्म–विनाशादि धर्म

मानने होंगे, जिससे कि सृष्टि साधकता में अनेक बाधायें सामने खड़ी हो जावेंगी।

आपने कर्मबंध के अनादि मानने पर उससे छुटकारा पाने में आपत्ति बतलाई, क्योंकि अनादि भाव नित्य होते हैं। पर समाधान इस प्रकार है—कर्म एक हमेशा से जीव के साथ बंधा आ रहा हो, यह बात नहीं है। एक छूटते हैं दूसरे बँधते हैं। समय समय जीवात्मा कर्म-फल भोगता है और उस भोगने के समय अपने अच्छे व बुरे भावों के अनुसार नए कर्म बांध लेता है; यही क्रम अनादि से चला आ रहा है। बीज वृक्ष संतान की तरह इसे अनादि कहा गया है। सर्वथा नित्यता इस रीति पर प्राप्त नहीं होती है। बीज वृक्ष की संतान अनादि से चली आरही है, पर यदि किसी समय पर विशेष प्रयोग द्वारा बीज या वृक्ष जला दिए जाते हैं तो वही संतान-परम्परा भविष्य के लिए टूट जाती है। यही बात जीव कर्म के सम्बन्ध में है। जब जीवात्मा शुभ अशुभ परिणाम न करके—राग द्वेष परिणाम न करके—साम्य भाव से अपने कर्म के फल को सह लेता है, तब नए कर्म नहीं बंधते। इसे संवर तत्त्व कहते हैं। जब नए नहीं बंधते और पुराने समय २ पर आकर अपना फल देकर छूटते जाते हैं जिसे निर्जरा तत्त्व कहते हैं, तब ऐसा होते २ सम्पूर्ण कर्म कुछ ही समय में आत्मा में जो पहिले के बंधे हुए थे दूर हो जाते हैं। उसी को मोक्ष कहते हैं-यही आत्मा के मुक्त हो जाने का मार्ग है।

"विज्ञान ने भी स्वीकार कर लिया है कि नियमित कार्य यों ही नहीं होरहे; इनके पीछे किसी नियन्ता का हाथ है" ऐसा लिखकर भी आपने इसका कोई प्रमाण उपस्थित नहीं किया—कदाचित् यह स्वीकार भी कर लिया जावे तो यह उस वैज्ञानिक के वैज्ञानिक ज्ञान की कमज़ोरी है। किसी वैज्ञानिक ने यदि अपनी कमज़ोरी के कारण ऐसा कह भी दिया हो तो इसका यह अर्थ नहीं होता कि सृष्टि-कर्तृत्व विज्ञान से सिद्ध हो गया।

आगे चल कर आपने बतलाया है कि ईश्वर जीव और जगत्कारण अनादि हैं, ईश निमित्त नहीं हैं। सृष्टि के प्रारम्भ में अमैथुनी सृष्टि हो जाती है, बाद में मैथुनी सृष्टि होती है। अभी भी स्वेदज मैथुन से उत्पन्न नहीं होते। काल को कारण हम भी मानते हैं, पर बग़ैर चेतन के अचेतन काल कार्य नहीं कर सकता। आपका उक्त कथन प्रतिज्ञा मात्र है, उसे सिद्ध करने के लिए उसमें हेतुवाद का नाम निशान भी नहीं है। जिनकी मैथुनी सृष्टि होने का नियम है उनकी अमैथुनी सृष्टि भी हुई होगी, यह कभी नहीं माना जा सकता। वर्तमान में जो स्वेदज मैथुन से उत्पन्न नहीं होते, उनकी उत्पत्ति का यही नियम सदा रहा है और रहता है। यदि ऐसा न होता तो वर्तमान में भी कभी २ गर्भ जन्म वाले जीव अमैथुन सृष्टि वाले तथा स्वेदज आदि भी कभी कभी मैथुनज सृष्टि वाले देखे जाते, परन्तु ऐसा नहीं होता, तब निर्हेतुक आपका यह कथन नहीं माना जा सकता कि सृष्टि के प्रारंभ में ऐसा हुआ होगा। सृष्टि का प्रारम्भ हुआ था पहिले यही असत् कल्पना है, निराधार है। फिर उसे पुष्ट करने के लिए अमैथुनी सृष्टि की कल्पना मैथुनज प्राणियों के लिए करना तो अत्यन्त निराधार है।

काल को कारण मान कर भी चेतन नियन्ता

को आवश्यकता बतलाना भी एक प्रतिज्ञा मात्र है, यह बात हम पहिले लिख चुके हैं और सिद्ध कर चुके हैं कि बगैर चेतन की सहायता के भी अचेतन कार्य करते हैं और कहीं पर यदि चेतन की सहायता पाकर करते हैं तो वे चेतन जीवात्मा हैं, जोकि दृश्यमान हैं न कि अदृश्यमान परमात्मा।

आपने अन्त में एक प्रश्न उपस्थित किया है कि ज्ञानादिक जीव के ही भाव हैं तो उनकी वर्तमान में अप्रकटता के कारण क्या हैं? अथवा यदि अज्ञानादिक भाव जीव के अनादि से हैं तो उनका नाश क्यों कर होगा; क्योंकि अनादि भाव नित्य हुआ करते हैं, यदि उनका नाश होगा तो जीवका भी नाश हो जावेगा, तब मुक्ति और तदर्थ उपदेशादिक व्यर्थ होंगे। अचेतन यदि चेतन पर प्रभाव डाल सकते हैं तो ईश्वरत्व प्राप्ति के बाद भी डाल सकेंगे, इत्यादि।

आपके इन उचित प्रश्नों का समाधान यद्यपि पूर्व में आचुका है किन्तु फिर भी स्पष्ट कर देना अनुचित न होगा; इसलिए फिर भी लिखता हूँ। ज्ञानादिक जीव के ही भाव हैं पर वे संसारी जीवों के पूर्ण रूप में व्यक्त नहीं हैं, अपूर्ण रूपमें हैं। अपूर्ण ज्ञान को ही अज्ञान शब्द द्वारा कहा जाता है। वर्तमान में उनकी अप्रकटता का कारण अचेतन कर्म का सम्बन्ध है जो कि अनादि से है। अनादि भाव नित्य हुआ करते हैं, यह बात एकान्ततः ठीक नहीं है। बीजवृक्ष संतान, पिता पुत्र संतान, दिन रात्रि की सन्तान अनादिसे चली आती है, परन्तु कभी न कभी और किसी न किसी रूपमें उनका अन्त होता ही है। दिन और रात्रि का प्रति दिन अन्त होता है और उत्पत्ति होती है। सम्बन्ध जिन पदार्थों का होता है उनका विच्छेद अवश्यंभावी है। अचेतन कर्म भी सन्तान परम्परा से एक बंधता है फिर दूसरा बंधता है। पहिला छूटता है तीसरा बंधता है। दूसरा छूटता है, यही क्रम अनादि से जारी है। इसलिए सम्बन्ध कर्म का नित्य सम्बन्ध नहीं है। हाँ यह कहा जा सकता है कि ऐसी ही सन्तान सदा चली जानी चाहिए। पर कहीं ऐसा ही होता रहेगा, और कहीं न होगा। जैसे अग्निसंपर्क से बीजवृक्ष दोनों जलकर भस्म हो जाते हैं और सन्तान परम्परा जो अनादि से आरही थी सदा के लिए नष्ट हो जाती है, इसी प्रकार जीव के क्रोधादिक भाव तथा अज्ञानादिक भाव तथा उनको पैदा करने वाले अचेतनकर्म इनमें बीज वृक्षवत् सम्बन्ध है। अज्ञानभाव से अचेतनकर्म बंधता है और उस कर्म से पुनः अज्ञान भाव होता है। जब तप आदि विशेष प्रयोग से दोनों को दग्ध कर दिया जाता है, तब जीव अपने ज्ञानादिक पूर्ण गुणों को प्रकट पाता है। वह अज्ञानभाव और तदुत्पादक कर्म की सन्तान परम्परा सदा के लिए नष्ट हो जाती है जिससे फिर सम्बन्ध हो जाने की आशङ्का ही नहीं रह जाती। यही कारण है कि ईश्वरत्व प्राप्ति के पश्चात् पुनः कर्मबन्ध कभी नहीं होता और जीवात्मा सदा अपनी पूर्ण निर्विकार दशा में बना रहता है। जीवत्वभाव जीव में अज्ञान भाव की तरह अचेतन आदि के संसर्ग से नहीं आया, जिससे यह शंका की जा सके कि वह भी नष्ट हो जावेगा।

मैं समझता हूं कि आपके सम्पूर्ण प्रश्नों का समाधान इस लेख में आ चुका है। मुझे दृढ़

आशा है कि यदि आप मत-पक्षपात का परित्याग कर यथार्थ विचार करेंगे तो स्पष्ट होजावेगा। ईश्वर को कर्ता मान लेना केवल भक्तिमार्ग वालों का कार्य है। ईश्वर-स्तुति में ऐसा कहा जासकता है, क्योंकि स्तुति तथा भक्ति अविद्यमान व विद्यमान गुणों का विवेक नहीं करने देती, जिस रीति से अपने इष्ट को श्रेष्ठ से श्रेष्ठ प्रशंसा हो सके उसी रीति के वाक्यों का प्रयोग स्तुति स्वयं करा लेती है। लक्षण भी स्तुति का यही है कि—"अप्रस्तुत प्रशंसा स्तुतिः"।

परन्तु वास्तविक विचार किया जावे तो सृष्टिकर्त्ता कह देने से ईश्वर में कोई गुण प्राप्त नहीं होता, बल्कि उसे कर्त्ता बना देना दोषास्पद है। यदि इसे सिद्ध कर देने की आवश्यकता होगी तो फिर किसी अंक में इस पर प्रकाश डाला जावेगा।

प्रायश्चित्त चूलिका के कर्त्ता श्री गुरुदास।

[ले०—श्रीमान् पं० के० भुजबली जी शास्त्री, आरा]

पाठकों को विदित होगा कि प्रायश्चित्त-चूलिका नामक एक सटीक ग्रन्थ "माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला" बम्बई से प्रकाशित हो चुका है। इस ग्रन्थमाला के सुयोग्य मन्त्री पण्डित नाथूराम जी प्रेमी इसकी भूमिका में "दासेन श्री—गुरोर्दध्यो भव्याशय विशुद्धये" प्रायश्चित्तचूलिका की प्रशस्ति के इस श्लोकांश के आधार पर ग्रन्थकर्ता के नाम को इस प्रकार सन्दिग्ध बतलाते हैं—मूल कर्त्ता का नाम बिल्कुल अपरिचितसा और विलक्षणसा मालूम होता है। बल्कि हमें तो इसके नाम होने में सन्देह होता है। 'दासेन' और "श्री—गुरोः" ये दो पद अलग अलग पड़े हुए हैं और इनका अर्थ यही होता है कि श्री गुरु के दास ने बनाया। आश्चर्य नहीं जो टीकाकार को मूलकर्त्ता का नाम न मालूम हो और उन्होंने साधारण तौर से यह लिख दिया हो कि यह श्री गुरु एक दास का बना हुआ है और मैं इसकी वृत्ति रचता हूँ"। परन्तु प्रेमी जी की यह धारणा भ्रान्त है। क्योंकि जैन सिद्धान्त भवन में स्थित अमुद्रित योगसार के अन्तिम १५६ श्लोक में प्रायश्चित्त चूलिका के प्रशस्तिगत श्लोक के समान ही "दासस्य श्रीगुरोर्मे शमसुखकृदसौ मानसेस्तात्सदैव" इस प्रकार अपना नाम निर्देश कर "श्री गुरुदासो नन्द्यान्मुग्धमतिः श्री सरस्वती सूनुः" इस प्रकार प्रशस्ति में और भी खुलासा कर दिया गया है कि श्री गुरुदास ही इसके प्रणेता हैं।

प्रेमी जी की एक दूसरी बात तो मुझे और भी खटकती है। वह यह है कि "चूलिका" की प्रशस्ति में श्री गुरुदास जी ने लिखा है—"तस्यैवाऽनूदिता वृत्तिः श्री नन्दि गुरुणा हि सा" इस श्लोकगत "श्री नन्दि गुरुणा" को देख कर प्रेमी जी वृत्तिकार का नाम ही श्री नन्दिगुरु मानते हैं। वास्तव में बात ऐसी नहीं है। यह उक्ति श्री गुरुदास जी की है और गुरुदास जी के गुरु श्री नन्दी जी हैं, क्योंकि इस योगसार की प्रशस्ति के श्लोक में भी श्री गुरुदास जी ने अपने गुरु महाराज को "श्री नन्दी गुरुपदाब्जषट् चरणः" यह लिख कर याद किया है। श्री नन्दी गुरु में 'गुरु' यह नामगत शब्द नहीं है, बल्कि गुरुदास जी के 'गुरु' श्री नन्दी जी हैं, यही द्योतन कर रहा है। आशा है कि प्रेमी जी इस पर पुनर्विचार करेंगे।

इस योगसार के आदिम और अन्तिम भाग नीचे दिये जाते हैं:—

आदिम भाग

भद्रम्भूरिभवाम्भोधिशोषिणी दोषमोषिणी।
जिनेशशासनायालं कुशासन विशासिने ॥ १ ॥
संयमोद्दाममाराम श्रीगुरोः पादपङ्कजम्।
वन्देदेवेन्द्र वृन्दोद्यन्मौलिमाला कराचिंतम् ॥ २ ॥

योगीन्द्रो रुद्रयोगाग्निदग्धकर्मेन्धनोऽगिनाम् ।
विश्वशो विश्वदृश्वास्तु मंगलं मंगलार्थिनाम् ॥३॥
सद्वाग्वृत्तपदन्यासस्वालङ्कारहारिणी ।
सन्मार्गाङ्गी सदैवास्तु प्रसन्ना नः सरस्वती ॥४॥

अन्तिम भाग

अज्ञानाद्यन्मयाबद्धमागमस्य विरोधकृत् ।
तत्सर्वमागमाभिज्ञाः शोधयन्तु विमत्सराः ॥१५२॥
भद्रं भूतिभृतां भूरि भव्याम्भोजैकभास्वताम् ।
शासनाय जिनेशानामाशापाशविपाशिने ॥१५३॥
संयमोत्तमपीयूषपानसंशान्तदुःसहः ।
मोहहाला हलाग्निभ्यः श्रीगुरुभ्यो नमोनमः ॥१५४॥
त्रैलोक्यसार रत्नाय मोक्षलक्ष्मी विधायिने ।
संसारोत्तरणो नित्यं नमः संयम हेतवे ॥१५५॥

तीर्थेशाश्चक्रनाथाः खचरहलधरायं गणेन्द्रामुनीन्द्राः ।
ध्यानाब्धि संनिगाह्यप्रचुरगुणमणिव्रातमव्यप्रदेशाम् ॥
यातायास्यन्तियान्तिप्रवरशिवसुधादानभूभोगतृप्ताः ।
दासस्यश्रीगुरोर्मेशमसुखकृद्मौमानसेस्तात्सदैव १५६

विपुलवाङ्मयवारिधितत्त्वसन् ।
मणिमयूखलवांशकलाकृतेः ॥
स्मरणमात्रमिदं गदितं मया ।
किमिह दृष्टमहो न महात्मभिः ॥१५७॥

नानोपदेशकोशोऽयं सरस्वत्या मदर्पितः ।
भव्यैराधीयमानोपि सर्वदास्त्वक्षयं स्थितिः ॥१५८॥
श्री नन्दनन्दिवत्सः श्रीनन्दीगुरुपादाब्जषट्चरणः ।
श्रीगुरुदासो नन्द्यान्मुग्धमतिः श्री सरस्वतीसुनुः ॥

प्रो० आइन्स्टाइन और उनका सिद्धान्त ।

[लेखकः—श्रीमान् प्रोफेसर घासीराम जी एम० एस० सी०, एफ० पी० एस० (लण्डन)]
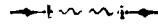
कौन नहीं जानता ? विज्ञान के अनन्य ज्ञाता, भौतिक शास्त्र के उद्भट पण्डित, प्रोफेसर अलबर्ट आइन्स्टाइन का नाम कौन नहीं जानता ? जिसने अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य द्वारा संसार के समस्त गणितज्ञों को नत मस्तक कर दिया, बड़े २ धुरन्धर विद्वानों का गर्व चूर्ण कर दिया, जिसकी गवेषणाओं ने वैज्ञानिक संसार में एक अजीब हलचल मचादी, इङ्गलैण्ड जैसे अभिमानी देश ने जिसे एक स्वर से "The braniest man in the world" स्वीकार किया—ऐसे मां सरस्वती के सपूत को आज कौन नहीं जानता ? विद्यामंदिर के इस अनोखे पुजारी का गृहस्थ जीवन कैसा है प्रथम उसकी ही एक झलक हम यहां पाठकों के सन्मुख प्रस्तुत करते हैं।

प्रो० आइन्सटाइन, यहूदी जाति के तिलक, स्विटजरलैण्ड के प्रकृतिरम्य सुदेश में सन १८७९ में उत्पन्न हुए थे, किन्तु आपने अपनी उच्च शिक्षा जर्मन देश की उर्वराभूमि में प्राप्त की और अनेक वर्षों तक बर्लिन विश्व विद्यालय के भौतिक विज्ञान के अधिष्ठाता पद को सुशोभित करते रहे। जब से जर्मनी देश में नाजीदल का प्रबल, नष्टभ्रष्टकारी आन्दोलन प्रारम्भ हुआ है, यहूदी होने के कारण आइन्सटाइन जैसे विद्वान् को भी जातिमद अहंकारियों द्वारा अपमानित होकर जर्मनी देश छोड़ना पड़ा—यह जरमनी का हतभाग्य है।

बर्लिन नगर की एक कलरव हीन शांत कुटीर में प्रो० आइन्सटाइन निवास करते थे। वही पुराना कमरा, जिसमें किसी प्रकार की सजावट नहीं है, केवल विद्यार्थी जीवन का लिया हुआ जीर्णशीर्ण थोड़ासा फर्निचर और दो तीन सादे चित्र उन न्यूटन, मैक्सवेल, फैराडे प्रभृति दिग्गज विद्वानों के, जिन्हों ने सत्य की खोज में अपने जीवन को समर्पण कर दिया था। जिन्हें आइन्सटाइन के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ है उनका कहना है कि वे नाटे कद के एक दुबले पतले व्यक्ति हैं, किन्तु उनके विस्तीर्ण ललाट और चमकती आंखों में बुद्धि की अप्रतिम प्रतिभा दिखाई देती है। छोटे और सादे भवन की चार दीवारों के अन्दर प्रो० आइन्सटाइन ने रात्रिदिवस अटूट परिश्रम कर विश्वनिर्माण की जिन गुत्थियों को समझाया है, उससे आज वैज्ञानिक जगत् चकित है। जब आइन्सटाइन अपने कार्य्य में लग जाते हैं उन्हें न अपने तन बदन की सुध रहती है, न खान पान की—उनके लिए रात्रिदिवस का कोई अन्तर नहीं रहता, केवल उनके सन्मुख ढेर के ढेर कागज़ पड़े रहते हैं जिन पर असंख्य अंकों की राशि दिखाई देती है। केवल उनकी आज्ञाकारिणी पत्नी उनके अमूल्य जीवन की सम्हाल करती रहती है।

आइन्सटाइन का ज्ञान संसार को उनके निर्णीत सिद्धान्त 'सापेक्षवाद' अथवा 'स्याद्वाद' (Relativity) के द्वारा हुआ—जिस सिद्धान्त

को संसार के केवल मुट्ठीभर आदमी समझते हैं। साधारण जनता केवल इतना जानती है कि आइन्सटाइन वह महान आत्मा है जिसने विश्वनिर्माण के विषय को विशेषरूप से समझा है। बड़े २ धुरंधर वैज्ञानिक भी जब इस सिद्धान्त का हृदयङ्गम न कर सकने के कारण आइन्सटाइन की खिल्ली उड़ाया करते हैं तो सर्वसाधारण का तो कहना ही क्या है। [ठीक इसी प्रकार जैनियों के सापेक्षवाद (स्याद्वाद) को न समझ सकने के कारण शङ्कराचार्य्य ने जैनाचार्यों की हंसी की है]।

श्रीमती आइन्सटाइन से अनेक व्यक्ति यह प्रश्न किया करते थे कि उसके पतिने जो खोज की है वह क्या है। बहुत अधीर होकर उसने एक दिन प्यारे पति से पूछने का साहस किया और कहा—लोग मुझसे पूछा करते हैं 'सापेक्षवाद' क्या है? बताओ इसका मैं क्या उत्तर दूं? संसारके महान् विचारक आइन्सटाइन ने तुरंत उत्तर दिया—"जब कोई मनुष्य किसी सुन्दर बालिका से घण्टों बात चीत कर चुकता है तो उसको सारा समय केवल एक क्षणसा प्रतीत होता है, किन्तु यदि उसी मनुष्य को केवल एक पल के लिए भी गरम तवे पर बैठना पड़े, तो एक पल ही घन्टों से अधिक प्रतीत होगा। यही सापेक्षवाद * है।"

यही सिद्धान्त है जिसकी खोज में आइन्सटाइन ने अपने जीवन के पचास वर्ष लगा दिए, यही सिद्धान्त है जिसने आइन्सटाइन के नाम को सदा के लिए अमर कर दिया, यही सिद्धान्त है जो गणितशास्त्र की अटूट शृङ्खलाओं से जकड़ा हुआ है। इस सिद्धान्त के आधार पर आइन्सटाइन ने विश्व का साइज़ (परिमाण) निर्धारित किया है। विश्व की तोल और उसके अन्तरगत पाए जाने वाले पुद्गल परमाणुओं की संख्या का पता लगाया है। सापेक्षवाद द्वारा निकाले गये कुछ परिणामों को यहां पर अङ्कित किया जाता है—

(१) निश्चयात्मक सत्यका मनुष्य को ज्ञान नहीं हो सकता, जो भी हमारा ज्ञान है वह सापेक्ष्य है व्यवहारिक है। वैज्ञानिकक्षेत्र से इसका हम एक उदाहरण पेश करतेहैं--अनुमान कीजिए कि पृथ्वी की सतह पर एक स्थिर विद्युत् पिण्ड है उसके चारों ओर एक विद्युत् क्षेत्र होगा। यदि उस क्षेत्रमें कोई दूसरा उसी प्रकार का विद्युत् पिण्ड रखा जावे तो परस्पर एक दूसरे को दूर ढकेलने की कोशिश करेंगे, किन्तु स्थिर विद्युत् पिण्ड के चारों ओर कोई चुम्बकीय आकर्षण का क्षेत्र नहीं होता अर्थात् यदि उस क्षेत्र में कोई चुम्बक पाषाण लाया जावे तो उस पर कोई प्रभाव न पड़ेगा, किन्तु पृथ्वी अपनी धुरी पर बड़ी तेज़ी से घूम रही है। इस कारण किसी दूरवर्ती नक्षत्र पर रहने वाले वैज्ञानिक को यह दिखलाई देगा कि वही विद्युत् पिण्ड जो पृथ्वी पर स्थिर है बड़े वेग से चल रहा है और चूंकि चलते हुए विद्युत् पिण्ड के चारों ओर चुम्बकीय आकर्षण का क्षेत्र अवश्य रहता है, इसलिये बड़ा विकट प्रश्न यह हो जाता है कि एक ही साथ एक विद्युत् पिण्ड चुम्बकीय आकर्षण का क्षेत्र उत्पन्न भी कर रहा है और नहीं भी उत्पन्न कर रहा है। इसका समाधान केवल

* आइन्सटाइन के सापेक्षवाद की यदि यही व्याख्या है तब तो जैनों के स्याद्वाद सिद्धान्त के साथ इसकी तुलना करना उचित न होगा। —चैनसुख दास।

इसही दृष्टि से किया जाता है कि पृथ्वी पर के मनुष्य की अपेक्षा चुम्बकीय क्षेत्र नहीं है और दूसरे नक्षत्र वाले मनुष्य की अपेक्षा है। वास्तव में है या नहीं, केवल सर्वज्ञ ही जाने--आइन्सटाइन ने विज्ञान की भाषा में सर्वज्ञ को Universal observer कहा है।

आइन्सटाइन के इस नयवाद को एक और उदाहरण से इस प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं कि--उत्तरी भारत की अपेक्षा गोदावरी नदी दक्षिण में है किन्तु लङ्का में रहने वालों की अपेक्षा उत्तर में है। गोदावरी नदी कहां है, इसका उत्तर यदि निरपेक्षवाद से देना चाहें तो उत्तर होगा--अवक्तव्यम। आइन्सटाइन के ही शब्दों में :—

Is it really true that a moving rod becomes shortened in the direction of its motion? It is not altogether easy to give a plain answer. I think we often draw a distinction between what is TRUE and what is REALLY TRUE. A statement which does not profess to deal with any thing except appearances may be TRUE a statement which is not only true but deals with the realities beneath the appearances is REALLY TRUE.

भावार्थ—क्या यह सत्य है कि गतिमान दण्ड की लम्बाई कम हो जाती है? इस प्रश्न का आसानी से उत्तर नहीं दिया जा सकता है। सत्य और निश्चयात्मक सत्य में अन्तर है। व्यावहारिक दृष्टि से किसी बात का ऊपरी वर्णन सत्य हो सकता है, किन्तु निश्चयात्मक सत्य वह है जो सत्य तो हो हो किन्तु साथ २ वस्तु के छिपे हुए वास्तविक तथ्य का उद्घाटन करे।

(२) सापेक्षवाद के अनुसार क्षेत्र अथवा काल की गणना आपेक्षिक है। इसका निम्न उदाहरण से स्पष्टीकरण हो जायगा :—

"A fast moving traveller lives more slowly His cycle of digestion and fatigue, the development of his body from youth to age, the watch which ticks in his waistcoat pocket all these must be slowed down in the same ratio. If the speed of his travel is very great, we may find that, whilst the Stay-at-home individual has aged 70 years, the traveller has aged one year."

अर्थात्--"यदि कोई प्राणी किसी ऐसे नक्षत्र पर स्थिर है जो पृथ्वी से अधिक तेज़ चल रहा हो, उस प्राणी के शरीर में सब कार्य अधिक धीमी गति से होंगे, एकबार का भोजन हजम होने में अधिक समय लगेगा और काम करने से उनको थकान भी उतनीही कम होगी, बचपन से बुढ़ापे की ओर भी वह बहुत आहिस्ता २ बढ़ेगा; उसकी जेब घडी भी उसी अनुपात से धीमे २ चलेगी। यदि उस ग्रह की गति जिस पर वह विद्यमान है काफ़ी तीव्र हुई तो स्थिर मनुष्य की अपेक्षा ७० वर्ष उसके जीवन का एक ही वर्ष होगा"। जैनशास्त्रों में जो भिन्न २ देवों की आयु, शरीर विकाश, श्वासोच्छ्वासकी अवधि, भूख लगने का समय (कई २ हज़ार वर्ष) आदि में जो विभिन्नता बतलाई जाती है क्या उसका यही तो कारण नहीं है कि उन देवों के विमान भिन्न २ सापेक्ष्य गति से चलते हों? मनन करने का विषय है।

(३) क्या पृथ्वी सूर्य्य की परिक्रमा करती है अथवा स्थिर है ? सापेक्ष्यवाद के अनुसार कोई निश्चित उत्तर नहीं दिया जासकता। हम Denton की पुस्तक "Relativity and Commonsense" से यहां कुछ उद्धृत करते हैं :—

"The Relative motion of the members of the solar system may be 'explained' on the older geo-centric mode and on the other introduced by the Copernicus Both are legitimate and give a correct description of the motion but the Copernican is by far the simpler. Around a fixed earth the sun and moon describe almost circular paths but the paths of Sun's planets and of their satellites are complex curly lines difficult for the mind to grasp and awkward to deal with in calculation while around a fixed sun the more important paths are almost circular.

भावार्थ—"सूर्यमंडल के भिन्न २ ग्रहों में जो आपेक्षिक गति है उसका समाधान पुराने अचला पृथ्वी के आधार पर भी किया जा सकता है और कोपरनिकस के उस नए सिद्धान्त के अनुसार भी जिसमें पृथ्वी को चलती हुई माना जा रहा है। दोनों ही सिद्धान्त सही हैं और जो कुछ खगोल में हो रहा है उसका ठीक २ विवरण देते हैं, किन्तु पृथ्वी को स्थिर मान लेने पर गणित की दृष्टि से कई कठिनाईयाँ उत्पन्न होती हैं—सूर्य और चन्द्रमा की कक्षा तो अवश्य गोलाकार रहती है, किन्तु सूर्य के अन्य ग्रहों का मार्ग बड़ा जटिल हो जाता है जिसका सरलता से हिसाब नहीं लगाया जा सकता (इसी हिसाब को जैनाचार्यों ने आसानी से लगाया है जिसको देख २ कर जर्मनी के बड़े बड़े विद्वान् Dr. Schubring प्रभृति शत-मुख से प्रशंसा कर रहे हैं), किन्तु सूर्य को स्थिर मान लेने पर सब ग्रहों की कक्षा गोलाकार हो जाती है जिसकी गणना बड़ी सुगमता से हो सकती है ।"

आइन्सटाइन के अनुसार संसार का कोई भी वैज्ञानिक प्रयोग इस विषय के निश्चयात्मक सत्य का पता नहीं लगा सकता ।

(४) द्रव्य, क्षेत्र और काल में अविनाभाव सम्बन्ध है । एक के बिना दूसरे का ज्ञान नहीं हो सकता । यदि लोक का सारा द्रव्य शून्य में विलीन हो जाय तो क्षेत्र और काल का भी ज्ञान लोप हो जाय ।

(५) लोक परिमित है—लोक के परे अलोक अपरिमित है । लोकके परिमित होने का कारण यह है कि द्रव्य अथवा शक्ति लोक के बाहर नहीं जा सकती । लोक के बाहर उस द्रव्य का अभाव है जो गति में सहायक होता है । (क्या यह पूर्ण जैन दर्शन वाद नहीं है ?)

लोक का व्यास एक अरब ६ करोड़ ८० लाख "प्रकाश वर्ष" (एक प्रकाश वर्ष उस दूरी को कहते हैं जो प्रकाश की किरण १८६००० मील प्रति सैकंड के हिसाब से एक वर्ष में तय करती है)

लोक का तोल पाँच के आगे ५० शून्य लगाने से जो संख्या बनती है लगभग उतने मन।

लोक के परमाणुओं की संख्या १२९ के आगे ७७ बिन्दु लगाने से जो ८० अंक प्रमाण की जो संख्या बने वह ।

आइन्सटाइन का सापेक्षवाद विज्ञान का विचित्र सिद्धान्त है जिसे जैनियों को विशेष रूप से मनन करना चाहिए। इस लेख के पढ़ने पर जो शंकाएँ उत्पन्न हों उन्हें "जैनदर्शन" में प्रकाशित कराने पर लेखक सहर्ष उत्तर देने को प्रस्तुत है।

प्राप्ति-स्वीकार और समालोचना

शास्त्रार्थ पानीपत भाग १, २—प्रकाशक, मंत्री चम्पावती जैन पुस्तकमाला, प्रकाशन विभाग श्री० भा० दि० जैन शास्त्रार्थसंघ, अम्बाला छावनी। प्रत्येक भाग का मूल्य दस आने। प्रकाशक से प्राप्त।

गत नवम्बर मास में, 'क्या ईश्वर सृष्टिकर्ता है' और 'क्या जैन तीर्थङ्कर सर्वज्ञ थे' इन विषयों पर पानीपत की जैन समाज और आर्यसमाज में लिखित शास्त्रार्थ हुआ था। यह उस ही की शब्दशः 'ट्रू कापी' प्रकाशित की गई है। इसके पढ़ने से पता चलता है कि इस शास्त्रार्थ में केवल पुरानी शास्त्रीय युक्तियों और प्रमाणों का ही अवलम्बन नहीं लिया गया, किन्तु जैनधर्म की प्राचीनता के विषय में आधुनिक इतिहास लेखकों के मन्तव्यों का, तथा सृष्टि कर्तृत्व वाद के विषय में पाश्चात्य वैज्ञानिकों के अन्वेषणों का भी सहारा लिया गया है, जिससे इसकी उपयोगिता और महत्व बढ़ गया है। प्रथम भाग में 'ईश्वर का सृष्टिकर्तृत्व' और द्वितीय भाग में 'जैन तीर्थंकरों की सर्वज्ञता' पर शास्त्रार्थ है। प्रत्येक जैन पुस्तकालय तथा मन्दिर में इसकी एक प्रति अवश्य रहनी चाहिये और प्रत्येक भाई को इसे आद्योपान्त पढ़ जाना चाहिये।

'आलाप पद्धति' (*हिन्दी अनुवाद सहित*)—अनुवादक, स्व० श्री न्या० वा० पं० हजारीलाल जी न्यायतीर्थ, संपादक व संशोधक पं० फूलचन्द्र जी सिद्धान्त शास्त्री, प्रकाशक श्री सकल दि० जैन पंचान नाते पुते (सोलापुर) मूल्य १।) रुपया।

'आलाप पद्धति' आचार्य देवसेन की अत्युत्तम कृति है। इसमें प्रमाण, नय, निक्षेप, द्रव्य, गुण, पर्याय आदि का थोड़े से शब्दों में जानने योग्य निरूपण किया गया है। इसे द्रव्यानुयोग का शब्द-कोष कहा जाये तो कोई अत्युक्ति न होगी। प्रकृत पुस्तक उसी का सरल अनुवाद है। अनुवाद अच्छा हुआ है। बीच २ में भावार्थ के द्वारा खुलासा भी किया गया है। स्वाध्याय-प्रेमियों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिये। समय को देखते हुए, खुले पत्रे न रखकर यदि इसे पुस्तकाकार छपाया जाता तो अच्छा रहता।

प्रवचन पुष्प—संग्रह कर्ता और अनुवादक—बा० कामता प्रसाद जैन एम० आर० ए० एस०। प्रकाशक—श्री मंगल किरन जैन, महीपुर प्रेस, सहारनपुर।

इस छोटी सी पुस्तिका में अपभ्रंश भाषा के महाकवि पुष्पदन्त की कुछ सुन्दर सूक्तियों का संग्रह, हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित किया गया है। सूक्तियां तथा उनका अनुवाद दोनों ही मधुर हैं। छपाई भी उनही के अनुरूप है। मूल्य सवा आना है।

आवश्यक निवेदन !

१. पं० राजेन्द्रकुमार जी के भ्रमण में रहने और उस हालत में भी अस्वस्थ हो जाने के कारण उनका चालू लेख "जैनधर्म का मर्म और पं० दरबारीलाल जी" प्राप्त न होने से इस अङ्क में प्रगट नहीं किया जासका है। पाठक धैर्य रखें; उनके स्वस्थ होते ही पुनः प्रगट किया जायगा।

२. सम्पादकीय लेख व अन्य लेखादि डाक की अव्यवस्था से ४ तारीख की दोपहर तक भी प्राप्त न हो पाने से प्रकाशित नहीं किये जा सके। पाठक क्षमा करें। —प्रकाशक

सूचना

स्याद्वादाङ्क में प्रकाशनार्थ भेजे गये जो लेख प्रकाशित नहीं हुए हैं उन में से जो सज्जन अपने लेखों को वापिस मंगाना चाहें उन्हें पोस्टेज भेज देना चाहिए; लेख भेज दिये जावेंगे।

—सम्पादक

पावागिरि-सिद्ध-क्षेत्र

[लेखकः—कविवर पं० विष्णुराम गिरिधरलाल सनावद्या "सुमनाकर"]

होलकर राज्यान्तर्गत 'ऊन' नामक एक प्राचीन कस्बा है। इसकी मनुष्य संख्या १८६९ तथा घर संख्या अनुमानतः ५०० के लगभग है। यहाँ पर १०—११ प्राचीन देवालय हैं, जिनमें २—३ ठीक हालत में हैं। शेष सभी प्रायः बहुत ही बिगड़ी हुई अवस्था में हैं। कहते हैं कि पहिले यहां पर ९९ मन्दिर, ९९ बावड़ी तथा ९९ कुए थे। १०० में एक एक कमी होने के कारण ही इस ग्राम का नाम 'ऊन' (अर्थात् कम) पड़ा। इस दन्त कथा के अनुसार यह नाम बहुत ही सार्थक मालूम होता है। इसके प्रमाण स्वरूप यहां पर बहुत से नष्ट प्रायः मन्दिरों के चिन्ह आज भी मालूम होते हैं। जिससे पूर्वकाल में अधिक मन्दिरों का होना निर्विवाद सत्य है। अस्तु—यूं तो यहाँ पर इन मन्दिरों को देखने के लिये बहुधा यात्री लोग आते रहते हैं, परन्तु किसी का भी ध्यान इनके जीर्णोद्धार की ओर नहीं गया था। हाल ही में जब बड़वानी निवासी सेठ मोतीलाल जी जैन ऊन आये थे। उस समय मैं ने उनको ले जाकर यहां का एक प्रसिद्ध मन्दिर दिखलाया। आप उसे देख कर बहुत ही प्रसन्न हुए। और उन्होंने मन्दिरों के लिये प्रयत्न करने का अभिवचन दिया। आप जब बड़वानी लौटकर गये, तब यह हाल सब आपने सुसारी निवासी सेठ हरसुखजी जैन को कहे। आपको इस धार्मिक भावना से वे भी बहुत प्रसन्न हुए। पश्चात् आप दोनों महानुभावों ने अपनी ओर से मन्दिर की सफ़ाई के हेतु श्रीयुत पं० चेतन लाल जी जैन को ऊन भेजा।

पं० चेतनलाल जी ने आते ही मन्दिर की सफ़ाई का काम प्रारम्भ कर दिया। आप लगातार ५—६ दिन तक मन्दिर की सफ़ाई करते रहे। अनन्तर एक दिन रात्रि के समय आपको 'स्वप्न' आया कि "आप खोदो, हम बाहिर आना चाहते हैं"। उसी अनुसार प्रातः काल ही जमीन को खोदा गया तो वास्तव में "श्री महावीर स्वामी" की बिलकुल ही सर्वाङ्ग पूर्ण एक प्रतिमा प्राप्त हुई, जिस पर खुदे हुए शिलालेख से मालूम होता है कि सं० १२५२ माह सुदी ५ को प्रतिष्ठित की गई है। और भी ४ खड्गासन प्रतिमाएँ तथा एक चरण पादुका 'महावीर स्वामी' के पास ही मिली हैं, जो सभी अखण्डित हैं। शुद्धात्मा पं० चेतन लाल जी का स्वप्न आज जैनसमाज के सन्मुख मूर्तिमंत खड़ा है। पं० चेतनलाल जी वास्तव में सदाचारी पुरुष हैं! ऐसे शुद्ध हृदयी सदाचारी पुरुषों के लिये ही आज जैन समाज प्रशंसा के योग्य है। इन मूर्तियों को देखने के लिये इन्दौर से जैन जाति भूषण हजारीलाल जी मंत्री, विद्यावारिधि पं० खूबचन्द जी जैन शास्त्री, न्यायालंकार पं० बन्सीधर जी जैन, तथा काव्यतीर्थ पं० मुन्नालाल जी जैन शास्त्री प्रभृति २७—२८ महानुभाव ऊन पधारे थे। आप लोग मूर्तियों को देखकर बहुत ही

प्रसन्न हुए। एवम् बड़ी श्रद्धापूर्वक पूजन किया गया। पश्चात् आप लोगों ने यहां के सभी मन्दिर देखे। निर्वाण कांड गाथा नं० १३—

पावा गिरवर सिहरे सुवण्ण भद्दाइ मुणिवरा चउरो।
चलणाणई तडग्गे णिव्वाण गया णमो तेसिं॥

के अनुसार आप सभी महानुभावों ने यहां को नदी, नदी किनारे के मन्दिर आदि चिन्ह प्रमाण स्वरूप देखकर यही सिद्ध किया कि इस स्थान को "पावागिरि सिद्ध क्षेत्र" मानने में कोई भी सन्देह नहीं है। उस पर से यहां पर "पावागिरि सिद्ध क्षेत्र" क़ायम हो गया है। लोनाटा निवासी सेठ चम्पालाल जी दशरथ सा जी जैन ने लगभग ३५००) खर्च कर एक अच्छी धर्मशाला भी बनवा दी है। इससे अब जैन भाइयों को यात्रा के समय ठहरने का उत्तम प्रबन्ध हो गया है। मन्दिरों के जीर्णोद्धार होने की आवश्यकता है। यदि प्रारंभ में दस पन्द्रह हज़ार रुपये मन्दिरों के जीर्णोद्धार में व्यय कर दिये जांय तो लाखों रुपये लागत के मन्दिर बच सकते हैं; एवम् तीर्थ में धन व्यय करने वाले महानुभाव अक्षय पुण्य के भागी हो सकते हैं। यह क्षेत्र बावन गजा (बड़वानी) और सिद्धवर कूट के बीच में है। खरगोन से १० मील तथा जुलवान्मा से १७ मील है। दोनों ओर से यात्री को सवारी के लिये मोटर मिल सकती है। आशा है, कि जैन समाज अपने इस प्राचीन 'सिद्ध क्षेत्र' के जीर्णोद्धार में तन, मन, धन से सहयोग देगी तथा मेरी नम्र प्रार्थना पर ध्यान देकर दर्शनार्थ एक बार 'ऊन' अवश्य ही पधारेगी। जो महानुभाव यथाशक्ति कुछ सहायता भेजना चाहें वे रावराजा, सर, सेठ हुकुमचन्द जी जैन "राज्य भूषण" इन्दौर के पते पर सहर्ष भेज सकते हैं।

समाचार संग्रह

दशलाक्षणी पर्व

धामपुर—में इस वर्ष श्री ऐलक चन्द्रसागर जी महाराज के मौजूद रहने और जैन नवयुवक मंडल के सद् प्रयत्न से दशलाक्षणी पर्व विशेष आनन्द के साथ समाप्त हुआ।

मंडल ने अपने ही यहां नहीं वरन् सिवहारा, नहटौर और नजीबाबाद भी पहुँचकर वहां के जलयात्रोत्सवों में ट्रैक्ट आदि वितरण करा कर खूब धर्मप्रचार किया।

कासगंज—में श्री० पंडित मंगलप्रसाद जी ललितपुर के पधारने से इस वर्ष धर्म-चर्चा का खूब आनन्द रहा।

जैन ईश्वरवादी हैं

जब्बलपुर २७ सितम्बर—स्थानीय दिगम्बर जैनसमाज की ओर से पंडित मक्खनलाल चतुर्वेदी की अध्यक्षतामें सभा हुई। श्री पं० राजेन्द्रकुमार जी ने भाषण करते हुए कहा कि जैनी नास्तिक नहीं हैं—वे ईश्वरवादी हैं। उनके इस भाषण को लोगों ने बहुत पसन्द किया। पर्यूषण पर्व के अन्त में बिमान निकाला गया।

ईश्वर का कोई अस्तित्व है या नहीं?

जबलपुर कान्फ्रेंस में मज़ेदार बहस

परसों स्थानीय श्री० दिगम्बर जैन असोसियेशन की ओर से श्री० माखनलाल चतुर्वेदी के सभापतित्व में एक विराट् सार्वजनिक सभा हुई, जिसमें 'ईश्वर का कोई अस्तित्व है या नहीं' इस विषय पर मनोरंजक वाद विवाद हुआ।

वाद विवाद में इतनी सरगर्मी बढ़ गई कि पुलिस को शान्ति-रक्षा करनी पड़ी। बहुमत ईश्वर के अस्तित्व के पक्ष में रहा।

दिगम्बर जैनमुनि की मृत्यु

बहुत लम्बी बीमारी के बाद कल सुबह जब्बलपुर विक्टोरिया अस्पताल में दिगम्बर जैन मुनि मुनीन्द्र सागर उर्फ़ मुन्नालाल जी का स्वर्गवास हो गया। आपने अपनी मृत्यु के कुछ दिन पूर्व ही नग्न रहना छोड़ा था।

श्वे० मुनियों की घोर तपस्या

९१ और ६० दिन का उपवास

कुचेरा (मारवाड़) में श्वेताम्बर जैन मुनि श्री सुन्दरलाल जी व मुनि श्री मांगीलाल जी महाराज के क्रमशः ९१ और ६० दिन के उपवास की समाप्ति गत मिति भादवा सुदी १५ को हुई।

महाराज श्री के इस अपूर्व व्रत के उपलक्ष में मेवाड़ के प्रायः ४५० ग्रामों में धर्म के नाम पर होने वाली हिंसा राज्य की ओरसे बन्द करदी गई।

शोक !

श्री० जयप्रकाश जी का स्वर्गवास

शोक है कि ता० २१-९-३४ को बाबू ज्योतीप्रसाद जी जैन सम्पादक "जैन प्रदीप" देवबन्द के कनिष्ठ भ्राता श्री जयप्रकाशजी का स्वर्गवास हो गया।

आप एक मिलनसार, हंसमुख और नम्र स्वभावी युवक थे। आपकी मृत्यु से सारे ही नगर ने हार्दिक शोक का अनुभव किया। हम भी मृत आत्मा की सद्गति के लिये भावना करते हुए कुटुम्बियों के साथ सम्वेदना प्रगट करते हैं।

आपकी स्मृति को स्थाई रखने के लिए श्री० बा० ज्योतिप्रसाद जी ने ५००) का दान देकर "श्री जयप्रकाश पारितोषिक फण्ड" की स्थापना की है।

—प्रकाशक।

शान्तिचन्द्र जैन ने "चैतन्य" प्रिन्टिङ्ग प्रेस, बिजनौर में छापकर प्रकाशित किया।

वर्ष २] १६ अक्टूबर १९३४ ई० [अंक ७

ॐ

❀ श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुख-पत्र ❀

ऑनि० सम्पादक—

पं० चैनसुखदास जैन न्यायतीर्थ

पं० अजितकुमार जैन शास्त्री पं० कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री

अब "दर्शन" मुलतान से छपेगा !

अतएव

ग्राहक तथा पाठक महानुभाव आइन्दा से हर प्रकार का पत्र-व्यवहार

श्री० मैनेजर महोदय

श्री अकलंक प्रेस, मुलतान (पंजाब)

के पते पर ही करने की कृपा करें।

साथ ही "दर्शन" बिजनौर से प्रकाशित होने के इस १। वर्ष के समय में बन पड़ी हर प्रकार की त्रुटियों पर क्षमा धारण करें। निवेदक :—

शान्तिचन्द्र जैन (प्रकाशक व मुद्रक)
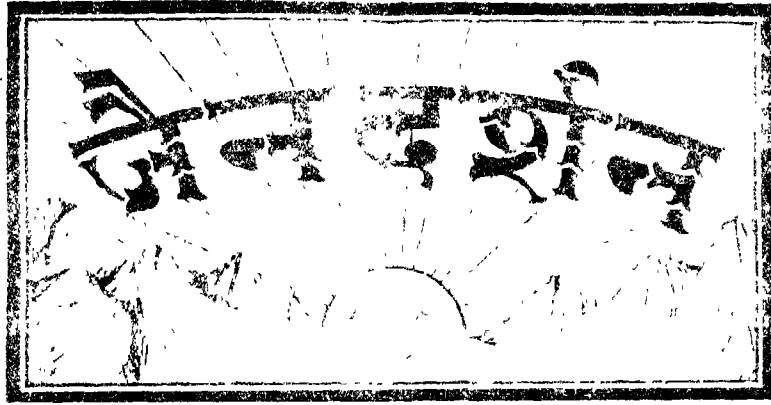
एक वर्ष का मूल्य ३)] [इस अंक का मूल्य =)

ॐ

"श्री जिनाय नमः"

श्री जैनदर्शनमिति प्रथितम[illegible]मखिल दर्शन पक्षदोषः ।
स्याद्वाद भानुकलितो बुध [illegible] [illegible] विमलीकरणाय भूयात् ॥

वर्ष २ { बिजनौर, आसोज शुक्ला ९ —श्री 'वीर' नि० सं० २४६० } अङ्क [illegible]

कर्तव्य की वेदी पर—

धरम की परम पुनीत दिव्य वेदी पर,
[illegible] का बलिदान यदि हो होजाने दो ।
दुख बाध आवीं जो सतावीं घोर यातनाएँ,
उन्हें निज-पथ में सहर्ष तुम आने दो ॥
लौकिक विभूति यदि होवी प्रतिकूल निज—
लक्ष्य के समागम में उन्हें दूर जाने दो ।
हार कर बार बार होवो ना हताश कभी,
बन के उदार तुच्छता को नश जाने दो ॥

—चैनसुखदास जैन ।

समाचार संग्रह

प्राप्ति-स्वीकार

दशलाक्षणी पर्व के उपलक्ष में श्री० लाला कुन्दनमल चंदनमलजी सेठी, सुजानगढ़ (बीकानेर) ने 'दर्शन' की सहायतार्थ ५) भेजे हैं। एतदर्थ धन्यवाद।

—प्रकाशक।

लाभ लिया

जैन नवयुवक मण्डल द्वारा स्थापित सर्वोपयोगी वाचनालय भेलसा से गत ६ मास में १०५८ पुरुषों ने वाचनालय में आकर ४२१ व मनुष्यों ने पुस्तकें घर ले आकर लाभ लिया। वाचनालय में जैन साहित्य की कमी है। दानी महाशयों को इस की पूर्ति का ध्यान देना चाहिये।

—मंत्री।

१०००) का आदर्श दान

बुन्देलखण्डान्तर्गत ललितपुर निवासी श्रीमान मन्नूलाल जी सुपुत्र स्वर्गीय सिंघई मूलचन्द जी का ध्यान अपनी समाज के पूंजीविहीन भाइयों की ओर गयाहै और उनको उन्नत रूपमें सहायता के लिए आपने एक हजार रुपयों की रकम प्रदान की है। यद्यपि आपकी यह रकम बहुत ही कम है परन्तु फिर भी आपने यह दान करके अन्य धर्मात्मा परोपकारी श्रीमानों को एक ऐसा मार्ग बतला दिया कि जिसकी इस समय बड़ी भारी ज़रू थी। आशा है कि हमारे धर्मात्मा भाई इस का को जल्दीही बढ़ा देंगे, जिससे दीन दुखी आब वृद्ध सभी का संकटमय समय दूर हो जाय समर्थ होकर समाज की वृद्धि करें।

—नाथूराम सिं० जै

दशलाक्षणी पर्व

भेलसा—इस वर्ष यहां उदासीन आश्रम, इं के ब्रह्मचारी नन्हेंलाल जी के पधारने से शास्त्र का विशेष आनन्द रहा। ४ दिन व्याख्यान स भी हुई। इस वर्ष हर भाई को स्वाध्याय के उत्साहित करने को एक स्वाध्याय मण्डल स्थापना हुई व हर चौदस को शंका-समाधान मीटिंग होना तय हुआ।

—हल्लीराम जै

ललितपुर—प्रभातफेरी, हारमोनियम साथ पूजनपाठ, तत्त्वार्थसूत्र-विवेचन, भजन, उपदेश, महिला सभा, शास्त्रसभा, समयानु व्याख्यान व उपदेश आदि का खूब आनन्द रहा इस वर्ष दशलाक्षणी पर्व "वीर नवयुवक मण्ड की ओर से सोनटोरिया नामक पहाड़ी पर भोजन पूर्वक मनाया गया और कई वर्ष से आया आपसी वैमनस्य भी दूर किया गया।

—मं

आत्म-तत्व !

[लेखक—श्री० पण्डित श्रीप्रकाश जैन, न्यायतीर्थ]

संसार में हमें दो प्रकार के पदार्थ उपलब्ध होते हैं—सजीव और निर्जीव। जिनमें चेतना विद्यमान होती है-स्वाभाविक ज्ञान दर्शनात्मक शक्ति रहती है, वे सब जीव हैं और जो इनसे विपरीत होते हैं—जिनमें चेतनाशक्ति निहित नहीं होती, वे सब निर्जीव हैं। इन्हीं को हम चेतन और जड़, जीव और पुद्गल, पुरुष और प्रकृति, आत्मा और अनात्मा या और भी इन्हीं के पर्यायवाची शब्दों द्वारा कह सकते हैं। निर्जीव या पुद्गल पदार्थ स्थूल होते हैं, अतः उनका ज्ञान हमें इन्द्रियों की सहायता से हो जाता है अर्थात् हम उन्हें प्रकट रूप में देख लेते हैं। जीवात्मा या चेतना ऐसी नहीं है, वह सूक्ष्म मानी गयी है, अतः इन्द्रियों के द्वारा हम उसका साक्षात्कार नहीं कर सकते। दर्शन शास्त्री कहते हैं कि इन्द्रिय प्रत्यक्ष की सहायता से आत्मदर्शन असम्भव है, क्योंकि इन्द्रियां दृश्य पदार्थ को ही विषय करती हैं और आत्मा की सत्ता दृश्य जगत् से सूक्ष्म है। इसलिए शरीरस्थ चेतना अनुमान का विषय है और उसका ज्ञान अनुभवगम्य है।

भारतीय दार्शनिकों के अन्य परोक्षपदार्थों की भांति आत्मा के सम्बन्ध में भी विभिन्न मत हैं। आत्म तत्व है या नहीं? यदि है तो वह क्या वस्तु है? इत्यादि विषयों पर चिन्तनशील विद्वान् चिरकाल से ही विचार करते आये हैं, अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार प्रायः उन सभी ने इसके सम्बन्ध में अपने २ विचार भी प्रकट किये हैं, किंतु उन सब के विचार एक से नहीं हैं। इसको समझने के लिये हम कह सकते हैं कि पूर्वीय और पाश्चात्य विद्वानों में दो मत हैं—एक आत्म सत्तावादी और दूसरा अनात्मवादी। प्रायः पाश्चात्य दार्शनिक और भारतीय दार्शनिकों में केवल चार्वाक दर्शनकार ही ऐसा है जो किसी आत्म-तत्व की सत्ता स्वीकार करना अभीष्ट नहीं समझता। उसका कहना है कि "हमारा आदि और अन्त इसी शरीर तक है, इससे पहले हम कुछ न थे और इसके बाद भी कुछ न रहेंगे। अकस्मात् पैदा हो गए और अकारण मर जायँगे। हमारे इस दृश्यमान शरीर के अतिरिक्त अन्य किसी स्वतन्त्र आत्मा की सत्ता सम्भव ही नहीं; जैसे गुड़ और जौ के सम्मिश्रण से मादकता की उत्पत्ति हो जाती है—उन दोनों में स्वतन्त्र रूप से यह शक्ति विद्यमान न था, परन्तु संयोग से उत्पन्न हो गई। वैसे ही भौतिक परमाणु यद्यपि भिन्न २ रहते हुए चेतना के अधिष्ठान नहीं हैं, तो भी उनका परस्पर संयोग हो जाने पर वे चेतना शक्ति को उत्पन्न कर देते हैं और यही चेतना हम लोगों के अहङ्कार का आधार है। कहा जा सकता है कि शरीर ही आत्मा है। इसी के आश्रय से 'मैं गोरा हूं' 'मैं स्थूल हूँ' इत्याद्यात्मक अहंकार का उदय होता है। शरीर से भिन्न किसी स्वतन्त्र आत्म-तत्व की सत्ता स्वीकार करके उसके जन्म मरण की कल्पना करना भ्रम है। मृत्यु समय

जब हम इस शरीर को दग्ध करते हैं, तब यह हमारे समक्ष थोड़ी सी मिट्टी में परिणत होजाता है, ऐसा प्रत्यक्ष देखकर भी इसके आवागमन का विचार करना क्या आकाश-कुसुम की सुगंध से अधिक महत्त्व रखता है?"

परन्तु चार्वाक का यह विचार अपना अधिक महत्त्व नहीं रखता। विचार करने पर आत्म-तत्त्व की सत्ता में कोई सन्देह नहीं रह जाता। आत्म-तत्त्व की असत्ता को सिद्ध करने के लिये जितनी तर्कणाएँ की जाती हैं, उनसे कहीं अधिक युक्तियां हमें उसके अस्तित्व को प्रमाणित करने वाली भी मिलती हैं। जन्मान्तर की स्मृतियां आत्म-तत्त्व की सिद्धि के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। 'मैं हूं' यह प्रत्येक शरीरधारी की अहम्मन्यता का भाव भी शरीर से विलक्षण स्वतन्त्र आत्म-तत्त्व के अस्तित्व को सरलता से सूचित कर देता है। इसलिए इस दृश्यमान जगत् से सूक्ष्मतर आत्मिक जगत् की सत्ता असन्दिग्ध है और हमारे उक्त कथन को सत्य प्रमाणित करने के लिये मैं आत्मा को कैसे जानूं? उसका साक्षात्कार कैसे करूं? उसके सामने कैसे पहुँचूं? इत्यादि प्रत्येक मुमुक्षु के हृदय में बार बार उत्पन्न होने वाली भावनाएं ही प्रबल प्रमाण हैं।

चार्वाक ने आत्म-तत्त्व की सत्ता स्वीकार क्यों नहीं की? क्या वास्तव में आत्मतत्त्व के अस्तित्व का उसे भान न हुआ इसलिए, या अन्य किसी सामयिक प्रतिकूलता को ध्यान में रखकर? चार्वाक के जीवनकाल की ओर ध्यान देकर और तत्कालीन वातावरण का परिचय पाकर हम कह सकते हैं कि अपने ज़माने को सुधारने के लिए चार्वाक ने जो कुछ भी किया वह ठीक ही किया। किन्तु जिस परिस्थिति में और जिस दृष्टिकोण से उसने अपने इस विचार को प्रचारित किया, उससे यह कभी भी सिद्ध नहीं हो सकता कि चार्वाक का अन्तरङ्ग भी आत्म तत्त्व की सत्ता को काल्पनिक मानता था। अस्तु इन बातों की चर्चा छोड़ कर यदि हम केवल उसके सिद्धान्तों की ही आलोचना करें तो प्रकट हो जायगा कि "चार्वाक के सिद्धान्त में अधिक गम्भीरता नहीं है, अनुभव की कमी है। वह पुनर्जन्म नहीं मानता, धर्माधर्म भी नहीं मानता, कर्मफल की व्यवस्था भी नहीं मानता। उसमें उच्छृङ्खलता अधिक है और विवेकशीलता कम, इसीलिए उसका विचारतल कुछ उथला हो गया है।" जैसे "श्राता केवल दूसरे से सुनकर किसी पर चोरी का दोषारोपण करता है। जब सूक्ष्म परीक्षा का अवसर आता है, तो वह गड़बड़ा जाता है, उसके अज्ञान का पर्दा खुल जाता है, वह असत्यवादी कहलाता है और अपयश का पात्र बनता है। द्रष्टा स्वयं अपनी आंखों से किसी की चोरी देखकर ही उस पर दोषारोपण करता है, इसीलिए कड़ी जिरह होने पर भी न तो वह गड़बड़ाता है और न असत्यवादी ही सिद्ध होता है। इन दोनों के दोषारोपण में तुल्यता थी, फिर भी एक झूंटा कहलाया और दूसरा नहीं।"

ठीक यही भेद इन्द्रिय ज्ञान और आत्मिक ज्ञान में है। इन्द्रियजन्य ज्ञान हमें धोखा देने वाला है, इसलिए विश्वसनीय नहीं; किन्तु आत्मिकज्ञान अन्तर्हित पदार्थ का साक्षात्कार करके हमें कुछ उत्तर देता है, अतः वह अविश्वास के योग्य नहीं, श्रद्धातव्य है। चार्वाक दर्शनकी रचना

भी इन्द्रियजन्य ज्ञान के आधार पर हुई है, अतः वह प्रमाण के द्वारा परीक्षा किये बिना सच्चा नहीं कहा जा सकता। चार्वाक का कहना है—भस्म हुए देह का पुनरागमन नहीं हो सकता। ठीक है, आत्म तत्ववादी भी भस्मीभूत देह का पुनरागमन नहीं स्वीकार करते। वे तो जीवात्मा—जो देह से भिन्न है—अपने शुभाशुभ कर्मों का प्रत्येक जन्म में फल भोगता रहता है, ऐसा कहते हैं।

यदि यहाँ यह प्रश्न उपस्थित किया जाय कि देह के अतिरिक्त अन्य किसी आत्मा की सत्ता सन्दिग्ध है तो उत्तर दिया जा सकता है कि देह में चैतन्य कहाँ से आया? देह के उपादान भूत चतुष्क (पृथ्वी, जल, तेज और वायु) तथा शुक्र और रज में तो यह शक्ति देखी नहीं जाती। यह शक्ति पूर्व में न रहती हुई भी पीछे उनमें उत्पन्न हो जाती है, यह भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि अचेतन से चेतन की उत्पत्ति असिद्ध है। यदि चार्वाक के कथनानुसार ऐसा मान भी लिया जाय कि 'देह ही चैतन्यात्मक है', तो बाल्य में अनुभव किये हुए का युवावस्थामें और तरुणावस्थामें अनुभव किया हुआ वृद्धावस्था में स्मृति, प्रत्यभिज्ञान आदि के प्रतिकारण नहीं स्वीकार किया जा सकता। क्योंकि शरीर के अवयवादि के परिवर्त्तन से देह के परमाणु इक-दम बदल जाते हैं; यहाँ तक कि हमारे शरीरस्थ हाड़ वगैरह भी कुछ काल बाद दूसरे ही होते हैं। इस समस्या को हल करने के लिये यदि ऐसा कहा जाय कि संस्कार परम्परा से पूर्वशरीर के परमाणुओं का ज्ञान उत्तरोत्तर शरीर में होता रहता है अर्थात् पूर्वशरीर के परमाणु उत्तर शरीर के प्रति कारण हैं; कारण ने जिस वस्तु का अनुभव किया उससे संपन्न होने वाला कार्य भी उसका स्मरण करलेगा, ऐसी कल्पना भी उचित प्रतीत नहीं होती, अनेक संस्कार और उनका उत्तरोत्तर संक्रमण मानने की अपेक्षा एक ज्ञानदर्शनात्मक स्वतन्त्र चेतनात्मा की सत्ता स्वीकार कर लेना ही अधिक श्रेयस्कर है। यदि ऐसा न मानाजाय तो माता के द्वारा अनुभूत पदार्थों का बच्चे को भी अवश्य ही स्मरण होना चाहिये। तथा शरीर ही के चैतन्य मानलेने पर, मृत शरीर में वह कहाँ चला जाता है, इसके लिये भी कोई उचित उत्तर नहीं रह जाता।

[शेषमग्रे]

वरनार्ड पेलिसी *

[लेखक :—श्री० पं० भंवरलाल जी जैन न्यायतीर्थ]

जो मनुष्य अपने कर्तव्य में लगातार असफल होने पर भी हतोत्साह और अधीर नहीं होता वही सच्चा वीर है। उन्हीं लोगों ने संसार में विजय प्राप्त की है जिन्हों ने आपदाओं का असह्य आताप सहते हुए भी अपने कर्तव्य से मुंह नहीं मोड़ा है। जगत के इतिहास में ऐसे ही नररत्नों का नाम अजर अमर हुआ है जिन्हों ने कठिनाइयोंकी कुछ भी पर्वाह न कर अपने उद्देश की प्राप्ति के लिए सर्वस्व का बलिदान कर दिया। जिन लोगों ने विपदाओं को ही अपना सच्चा मित्र समझ कर उनसे साहस और दृढ़ता का पाठ पढ़ा है वे ही सच्चे कर्मवीर और जगत के लिए पथ-प्रदर्शक हैं। दुनियाँ के इतिहास में इस प्रकार के वीरों की कमी नहीं है, जिन्होंने युद्धभूमि में अपने अपूर्व रणकौशल से शत्रुपक्ष को पराजित कर युद्ध विजेता की महान कीर्ति को प्राप्त किया है और न ऐसे बुद्धि-वीरों की कमी है जिन्हों ने अपनी अप्रतिम प्रतिभा से बृहस्पति तुल्य विद्वानों को भी परास्त कर अमर यश प्राप्त किया है। पर हां ऐसे वीरों की संख्या आप को इतिहास में अधिक न मिलेगी, जिन्हों ने विपदाओं के भयङ्कर तूफ़ान के बीच में खड़े होकर अपने उद्देश की पूर्ति में पूर्णतया सफलता प्राप्त की हो। सफल होते हुए आगे बढ़ना कुछ अधिक प्रशंसा की और आश्चर्यकारी बात नहीं है; किंतु विफल होने पर भी जीवन तक अपने काम में हतोत्साह न होना एक अवश्य ही आश्चर्यकारी और स्तुति योग्य बात है। इन पंक्तियों में हम एक ऐसे ही वीर योद्धा का, 'दर्शन' के पाठकों से, परिचय कराना चाहते हैं जिसने आपदाओं के अथाह प्रवाह के बीच में खड़े होकर ही साहस और धैर्यपूर्वक अपने उद्देश्य को पूरा किया था।

फ्रान्सनिवासी वरनार्ड पेलिसी (Bernard Pelissy) का नाम पाठकों ने अवश्य सुना होगा। यही पहला व्यक्ति था, जिसने मीनाकारी सहित चीनी के बरतन बनाने की रीति ढूंढ निकाली थी। आपको अपनी इस खोज में जो अथक परिश्रम करना पड़ा वह हमारे लिए अवश्य ही अनुकरणीय और आदरणीय है। पेलिसी का जन्म फ्रान्सदेश के एक प्रसिद्ध ग्राम में सन् १५१० ई० में हुआ था। इसका पिता बरतन बनाने वाला Glass Blower एक गरीब कुम्भकार था। यद्यपि गरीब होने के कारण इसका पिता इसे नहीं पढ़ा सका था किन्तु फिर भी इसने अपने ही चातुर्य और अदम्य परिश्रम से पढ़ना लिखना सीख लिया। अपने बाप के काम को भी यह भले प्रकार जान गया था। Painting (बरतन वगैरह रंगना) के काम में भी इसने बहुत निपुणता प्राप्त करली थी। और इसी व्यवसाय से वह अपनी आजीविका भी पैदा करता रहा। कहने का आशय यह है कि वह

* एक इंग्लिश पुस्तक के आधार पर।

स्वयं ही अपने प्रयत्न से अपने व्यवसाय में एक कुशल कारीगर बन गया।

एक समय इस 'पेलिसी' ने अपने ग्राम के नज़दीक एक आदमी के पास एक ऐसा प्याला देखा जो जड़ाऊ (Decorated with enamel) के साथ साथ सुन्दर भी था। यह प्याला 'पेलिसी' को बहुत पसन्द आया और तभी से उसने यह दृढ़ विचार कर लिया कि मैं इसी तरह के इससे भी अच्छे सुन्दर बरतन बनाऊंगा। बस अपने दृढ़ विचार के अनुसार 'पेलिसी' ने अपनी स्त्री की इच्छा न होने हुए भी इस कार्य का प्रारम्भ करदिया। यहां यह कह देना अप्रासंगिक न होगा कि इस कला काआविष्कार पहले ही होचुका था किन्तु उस समय इसका जानने वाला कोई भी न था और पेलिसी को ही फिर इसका नया आविष्कार करना पड़ा। इस कार्य में उसको जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा वे अवश्य ही हम भारतीय नवयुवकों को बहुत कुछ शिक्षा दे सकती हैं। एक बार की विफलता पर जो लोग मैदान छोड़कर भाग जाते हैं उन्हें 'पेलिसी' की जीवनी पढ़कर अवश्य शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। हमारे लिखने का उद्देश्य भी यही है। अस्तु—मीनाकारी करने का मसाला किन किन वस्तुओं से तैय्यार होता है यह बात जानने में 'पेलिसी' को बहुत कठिनाई हुई। यहां तक कि इसी चिन्ता में इसको अपनी आजीविका का द्वार भी बन्द करना पड़ा। इस काम के लिए जो जो वस्तुएं उपयुक्त और आवश्यक जान पड़ीं, उन्हें खरीदा। यह न जानने से कि इन पदार्थों को कितना जलाना चाहिए, इसको कई दफा आवश्यकता से अधिक वस्तुएं खरीदनी और जलानी पड़ीं। जहां एक पैसा खर्च होना चाहिए वहां एक रुपया खर्च करना पड़ा। यही इसकी कठिनाइयों के बढ़ जाने का भी कारण हुआ। उसको मसाले के लिये आवश्यक पदार्थों के अतिरिक्त ईन्धन में भी बहुत सा रुपया खर्च करना पड़ा, क्योंकि उन दिनों ईन्धन सस्ता नहीं था। लिखने का तात्पर्य यह है कि शक्ति से बहुत अधिक खर्च होजाने के कारण पेलीसी की आर्थिक दशा बिलकुल खराब होगई। यहाँ तक कि ठीक समय पर भोजन न मिलने के कारण स्त्री और बच्चों की भी दशा दयनीय और शोचनीय हो गई। उसकी स्त्री हर समय उसके इस कार्य का विरोध करती, किन्तु वह धुन का पक्का था, इसलिये किसी के कहने पर कोई ध्यान नहीं देता। पर जब आर्थिक दुर्दशा ने सीमा का उल्लंघन करदिया तब विवश हो इसको अपना कार्य स्थगित कर कुछ रुपया कमाने के लिये बाध्य होना पड़ा। कुछ दिनों के बाद जब कई चीज़ों के खरीदने के लिये फिर इसके पास पर्याप्त द्रव्य होगया तो इस विफलता के वीर ने पुनः उसी उत्साह से अपने कार्य को प्रारम्भ कर दिया। पर सफलता ऐसे ही नहीं मिलती। उसका प्रसन्न होना बहुत कठिन है। बार बार कोशिश करने पर भी वैसा प्याला न बन सका। पर्याप्त धन व्यय कर देने पर भी कुछ फल नहीं मिला। इस सफलता देवी की आराधना में इसको दस वर्ष जैसा दीर्घ काल व्यतीत कर देना पड़ा, किंतु फिर भी सफलता का दिव्य प्रकाश दिखाई न दिया। तो भी इस वीर पेलिसी ने स्काट लैण्ड के बादशाह जानब्रूस के समान अपने उत्साह को न छोड़ा। कठिनाइयों का

शान्तिपूर्वक स्वागत करते हुए अपने कार्य को चालू रक्खा। "परिश्रम का फल अवश्य मिलता है" इस सनातन सत्य को चरितार्थ करते हुए उसने अपनी कोशिश में अब कुछ आंशिक सफलता प्राप्त की, किंतु पूर्णरूप से नहीं। अब तक तो इसने अपने मित्र के चूल्हे से ही काम लिया था पर अबतो इसको स्वयं अपना चूल्हा बनाने के लिए बाध्य होना पड़ा। पर हाय ! सबसे ज़्यादा कठिनाई तो यह थी कि अब उसके पास कुछ भी न था जिससे कि वह अपने कार्य में आसानी से सफल होता। अस्तु--चूल्हे के लिए ईंटों का प्रबन्ध तो कर लिया, लेकिन उन्हें घर तक कौन लावे ? किराये के लिए तो एक भी पैसा न था। निदान अपनी ही पीठ पर रखकर 'पेलिसी' को ईंटें लानी पड़ीं और उनके द्वारा चूल्हा तैय्यार हो जाने पर अपना काम फिर दुगने उत्साह से प्रारम्भ करदिया। लगातार कई दिन व्यतीत हो जाने पर फिर भी मसाला तो तैयार नहीं हुआ, परन्तु ईन्धन अब सब जल चुका था। अभागे पेलिसी को सफलता ने अब भी दर्शन नहीं दिये। इस अवस्था में जबकि इसके पास एक भी पैसा न था, कोई मदद करने वाला भी नहीं मिला। ठीक ही है 'ऋण भी धनवानों ही को मिलता है, गरीबों को नहीं'। इस असहाय ग़रीब को कौन ऋण देता। आखिरकार इसने अपने बाग के डंडों Polings को तोड़ा और चूल्हे के हवाले किया, लेकिन नतीजा फिर भी कुछ नहीं निकला। अब तो वह भी कुछ उदास होने लगा। स्त्री और बच्चे तो पहले ही दुःखी थे। यही समय है जबकि मनुष्य घबरा कर पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं और अपने कार्य में बुरी तरह विफल होते हैं। परन्तु यह वीर साहसी अपने घर की कुर्सियां फूंक देने पर भी हतोत्साह नहीं हुआ। यहां तक कि सारा घर लकड़ी की चीज़ों (furniture) से खाली हो गया और ईन्धन की आवश्यकता ज्यों की त्यों बनी रही ! अब तो मनुष्य उसे पागल समझने लगे। सभी की दृष्टि में वह गिर चुका था, स्त्री और बच्चे भी उसे बेवकूफ़ समझने लगे, किन्तु वह इन बाधाओं से तनिक भी विचलित न हो सका। इसने समझ लिया कि मनुष्य और विपदाओं में एक घनिष्ठ सम्बन्ध है। आपदाओं का स्वभाव है कि अच्छे मनुष्यों से अपनी मित्रता बाधें, लेकिन जो व्यक्ति इनसे प्रेम कर लेता है और समझता है कि ये मेरे कार्य को दृढ़ बनाने के लिए ही हैं तो उस मनुष्य का यह विपदायें कुछ नहीं बिगाड़ सकतीं। यही कारण था कि पेलिसी ने इनसे मित्रता जोड़ी और अपने कार्य में सफलता प्राप्त की।

अन्त में कोई भी साधन के अवशिष्ट न रहने पर उसने अपने घरके लकड़ी के आंगन को तोड़ २ कर जला डाला और इसी साहस का यह फल हुआ कि उसने सफलता देवी के दर्शन किये। अब तो सभी उसके मित्र बन गये और इच्छित द्रव्य देने को तैय्यार हो गए। और सब उसके प्रयत्न की प्रशंसा करने लगे। पहले जो उसकी निन्दा करते थे वे ही अब स्तुति करने लगे। कहने लगे कि पेलिसी के समान धुन का पक्का कौन हो सकता है, जिसने अपने कार्य की सफलता के लिए सारे घर को स्वाह कर दिया। किन्तु पेलिसी का कहना था कि मुझे इतनी आपत्तियों का सामना करना पड़ा जिनका वाणी से वर्णन नहीं किया जासकता।

उस आपत्ति काल में सहायता मिलना तो दूर किनार लोग मुझे बुरी तरह से घृणा की दृष्टि से देखते थे।

वास्तव में पेलिसी अपने सोलह वर्ष के अथाह परिश्रम से इतना प्रसिद्ध और सर्वप्रिय बन गया कि उस समय जबकि रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ड के झगड़ों के कारण निर्दोष मनुष्य भी मारे जाते थे उसकी रक्षा हुई। यह सब उसके धैर्य का ही प्रतिफल था। उसने इतनी विपदाओं के आने पर भी उनका स्वागत ही किया और पथ से विचलित न हुआ। उसने तो हमेशा विपदाओं के लिये यही समझा, जैसा कि एक कवि लिखता है—

पत्थर तुम मुझे बनाओ,
दृढ़ता का पाठ पढ़ाओ।
साहस सुकर्म सिखलाओ,
पथ उन्नति का दिखलाओ॥
हां हो प्यारी विपदाओं! आती हो आओ आओ!!

वीर अकलंक!

[ले०—श्री० पं० सुमेरुचन्द जी जैन "मेरु" सहारनपुर]

[१]

जयति जयति वह भव्य वीरवर,
जागृत जिसने लोक किया।
बौद्ध वाद का मिथ्या अभिमत,
जिसने अस्त समस्त किया॥

[२]

पितृ मातृ का प्रेम तोड़ कर,
त्याग गेह का सौख्य ललाम।
बन्धु साथ ले पाटलिपुर में,
पढ़ कर विज्ञ हुये निष्काम॥

[३]

वादार्थी विचरामि सदा हम,
यह आवाज़ उठाई थी।
कर विपत्ति का स्वागत सुन्दर,
धार्मिक ज्योति जगाई थी॥

[४]

वीरोचित दाक्षिण्य कलानिधि,
उच्चाशय के प्रियतम आर्क।
विश्वसूत्र के शाश्वत शासक,
वीर सरणि के शुभ आलोक॥

[५]

जैन धर्म के प्रबल प्रचारक,
स्वार्थ त्याग की मञ्जुल मूर्ति।
विकट विरागी परम साहसी,
तुमने की आवश्यक पूर्ति॥

[६]

दृढ़ प्रतिज्ञ शास्त्रार्थ संघ के,
जैन तत्व के प्राज्ञ महान।
सेवक सच्चे बने धरम के,
आत्म बन्धु का कर बलिदान॥

[७]

आशा मंदिर के प्रिय चन्द्रिर,
जगतीतल के शुचि आदर्श।
आवो हे अकलंक महाप्रभु,
करना है बहु दिव्यामर्श॥

[८]

जैन तरणि के कर्णधार बन,
तरणी तीर लगा जाओ।
कर्मठता के दृढ़ परिचायक,
सोये सिंह जगा जाओ॥

कर्तृत्ववाद पर विचार।

[लेखक—श्री० पं० मिलापचन्द जी जैन न्यायतीर्थ]

सम्प्रदाय का विष अथवा मतान्धता हमें किसी विषय का यथार्थ निर्णय नहीं करने देती। जिस सम्प्रदाय में हम जन्म धारण कर लेते हैं वह ही हमारा सिद्धान्त बन जाता है। और जब कभी किसी विषय पर विचार करते हैं तब युक्तियों को भी उधर ही दौड़ाना चाहते हैं जिधर सम्प्रदायान्ध होकर हम स्वयं दौड़ रहे हैं। इसे ही हठवाद या दुराग्रह कहते हैं। इसी भयङ्कर हठ ने संसार में नाना धर्मों की सृष्टि कर मनुष्य जीवन को हठी, संशयाकुल, एवं संकटापन्न बना डाला है। चाहिये तो था यह कि जिधर युक्तियाँ हों वहीं हमारा भी मत होता। यदि संसार ऐसा करने लगे तो उसको सत्य धर्म की प्राप्ति सरलता से हो सकती है, और वह उन व्यर्थ की यातनाओं और पीड़ाओं से बच सकता है जो केवल सम्प्रदायवाद के कारण आजाती हैं। अनेकान्त अथवा स्याद्वाद ऐसे रोगों की अव्यर्थ परमौषधि है, पर दुःख है कि उसका समुचित उपयोग नहीं किया जाता।

ईश्वर कर्तृत्ववाद भी इसी साम्प्रदायिक पक्षपात का फल है; हम निष्पक्ष दृष्टि से इस छोटे से लेख में यह दिखलाने की चेष्टा करेंगे कि यह जगत् किसी का बनाया हुवा नहीं है—अपने निमित्त और उपादानों से यह स्वयं ही बनता और बिगड़ता है। आशा है पाठक इसे ध्यानपूर्वक पढ़कर मनन करेंगे।

दुनियाँ के अन्य हिन्दु, मुसलमान, ईसाई आदि धर्मों के साथ जैनधर्म का स्थूल मतभेद ईश्वर सृष्टि कर्तृत्ववाद को लेकर है। जैनी ईश्वर को इस विषम, विचित्र और त्रुटिमय संसार का कर्ता नहीं मानते, जबकि हिन्दु मुसलमान आदि धर्मों के मानने वाले ईश्वर को समस्त पदार्थों का हर्ताकर्ता मानते हैं। इस निबन्ध में यह दिखलाना है कि निष्कर्मा अशरीरी और सदानन्दमय ईश्वर इस विषम संसार का कर्ता किसी प्रकार नहीं हो सकता, किन्तु अपने ही उपादान और निमित्त कारण से यह स्वयं बन जाता है। प्रत्येक कार्य के लिए उपादान और निमित्तकारण की आवश्यक्ता है, पर हर कार्य के लिए कर्ता मानना आवश्यक नहीं है। वृक्षरूप कार्य के लिए केवल उसके उपादान—बीज—और निमित्त—पृथ्वीजल आदि—कारणों की आवश्यक्ता है। उसके लिए कर्ता की कल्पना करना बिलकुल व्यर्थ है। यदि हम दुनियाँ के प्रत्येक पदार्थ की तरफ़ सूक्ष्मदृष्टि से देखें तो हमें भलीभांति मालूम हो जायगा कि इस विषम सृष्टि के निर्माण में ईश्वर का कुछ भी हाथ नहीं है। रागद्वेष रहित अशरीरी ईश्वर को इस सृष्टि का कर्ता मानना उसमें रागद्वेष, पक्षपात, अदया और अविचारिता आदि दोषों का समावेश कर उसको कलङ्कित करना है। जब इस विषय को पक्षपातहीन होकर युक्तियों से सोचा जाता है तब यह कर्तृत्ववाद का विचार हृदय से अवश्य ही दूर हो जाता है।

यह आवश्यक नहीं है कि कर्ता के साथ कार्य

की व्याप्ति अवश्य मानी जाय। किसी भी दर्शनाचार्य ने कर्त्ता और कार्य की व्याप्ति नहीं मानी और यदि मानी हो तो वह तर्क सिद्ध नहीं है। जब तर्क पद्धति से इस विषय का विचार किया जाता है तब कर्त्ता और कार्य की व्याप्ति सिद्ध न होकर कारण और कार्य की व्याप्ति सिद्ध होती है। कार्य के साथ कर्त्ता की व्याप्ति मानने से दृष्ट का नाश और अदृष्ट की कल्पना करनी पड़ती है, जो कि न्याय-शास्त्रियों के लिये एक बड़ा भारी दोष है; कार्यों के दृष्ट कारणों को न मान कर अदृष्ट ईश्वर की कल्पना करना बुद्धिमानों के लिये बिलकुल अनुचित है। यह आवश्यक नहीं है कि कार्य निर्माण के लिये कारणों का संयोजन करने वाला कोई अवश्य होना ही चाहिए। क्योंकि संयोजन कर्त्ता के बिना भी केवल प्रकृति की विचित्र शक्ति से ही सारे कार्य अपने २ उपादान और निमित्त कारणों के मिलने से अपने आप ही उत्पन्न हो जाते हैं। वस्तुओं की अनन्त शक्तियों पर निगाह डालने से हमें ज्ञान पड़ेगा कि प्रकृति के लिये कुछ भी बन जाना अशक्य नहीं है। पुद्गल-जड़ पदार्थ Matter की करामातों को देख कर तो हमें आश्चर्य चकित होना पड़ता है। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि आदि भूतों के द्वारा आपस के मिलने से अभी जो कुछ हो रहा है उसको सारा संसार आश्चर्य की नज़रों से देख रहा है। पर इसमें ईश्वर की करामात कुछ भी नहीं है। संसार अनादि है। संसार में कोई वस्तु ऐसी नहीं है जिसका कभी नाश हो सके और न किसी वस्तु की कभी नवीन उत्पत्ति होती है। *इस दुनिया में जितनी वस्तुएं हैं वे उतनी ही* रहेंगी, न उनसे कम होंगी और न ज़्यादः। विज्ञान ने भी इस बात को अच्छी तरह सिद्ध कर दिया है कि—Nothing can be destroyed and nothing can be produced। जब कि संसार में न कोई वस्तु नवीन उत्पन्न होती है और न कोई नष्ट होती है तो फिर ईश्वर का इस में कर्तृत्व ही क्या है। ईश्वर कर्तृत्ववादियों को भी लाचार होकर यह तो मानना ही पड़ता है कि परमाणु आकाश, प्रकृति आदि पदार्थ तो नित्य हैं। अब जो अन्य पदार्थों के निमित्त से वस्तु की अनेक अवस्थाएं या हालतें हो जाती हैं उनमें परमात्मा का कर्तृत्व मानना केवल मूर्खता है। हम लोग भोजन करते हैं वह हमारे उदर में जाकर अनेक प्रकार के परिवर्तनों के बाद हड्डी, रक्त, मज्जा आदि रूप स्वयं ही परिणत होजाता है; क्या इसमें किसी अन्य का भी कर्तृत्व है। पृथ्वी के संयोग से अन्य पदार्थ भी पृथ्वीरूप परिणत हो जाते हैं। वहां उनको कोई पृथ्वीरूप करने नहीं बैठता। ज़मीन में मुर्दे शरीर को मिट्टी रूप कौन बना देता है? क्या वर्ष दो वर्ष बाद खोद कर देखने से कोई मुर्दा अपने असली स्वरूप में मिलता है? कभी नहीं—वहाँ उसकी यह हालत कौन कर देता है? केवल ज़मीन के मेल से उसकी ऐसी अवस्था हो जाती है। जल और बीज का संयोग पाकर पृथ्वी के परमाणु ही वृक्षरूप हो जाते हैं; इसके लिए किसी कर्त्ता की कल्पना करना पदार्थ विज्ञान को न समझना है। ऐसे ही संसार के जड़पदार्थ, जैसे २ उनके उपादानकारण हैं उन्हीं के मुताबिक निमित्त कारणों के मिलने से, अपने आप बन जाते हैं—*विरागी ईश्वर की इसमें कुछ भी करामात नहीं* है। गेहूँ के उपादान से गेहूँ, जौ के उपादान से

जौ और चावल के उपादान से चावल ही बनेगा, अन्य पदार्थ नहीं। बिना उपादान से कोई वस्तु नहीं बन सकती। बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज, यह अवस्था अनादि कालसे चली आरही है। कोई बीज बिना वृक्ष के नहीं बन सकता और न कोई वृक्ष बिना बीज के बन सकता है। यदि इनमें किसी एक को ईश्वर ने बनाया है तो बतलाना चाहिए कि पहले बीज को बनाया या वृक्ष को। यदि कहा जाय कि बीज को पहले बनाया तो सवाल उपस्थित होता है कि बीज तो बिना वृक्ष के होता ही नहीं, ईश्वर ने उसे किस प्रकार बना दिया। यह बात बिलकुल असंभव और युक्ति-बाधित है कि बिना वृक्ष के बीज उत्पन्न हो जाय। यही दोष पहले ईश्वर द्वारा वृक्ष को बना हुआ मानने से भी आजाता है। ईश्वर सचमुच किसी नये बीज और वृक्ष को यदि बना सकता है तो उसने आजकल अपना यह काम क्यों छोड़ दिया है? क्या आजकल भी कोई नया बीज या वृक्ष बिना वृक्ष या बीज के उत्पन्न हो जाने वाला हमें देखने को मिलता है?

इस विज्ञान-प्रधान युग में इस सृष्टि का किसी को कर्ता मान लेना प्रकृति के अनेक आश्चर्यकारी कार्यों को देखते हुए भी उनकी तरफ़ से अपनी आँखें मूंद लेना है। भौतिक विज्ञान ने संसार में इतनी जो महान उन्नति की है इसका कारण जड़ पदार्थों की अनन्त शक्तियों पर विश्वास करना है। आजकल संसार में जो हम अनेक तरह के आविष्कार देख रहे हैं जैसे—टेलीग्राफ़ (Telegraph) वायरलेस टेलीग्राफ़ (Wireless Telegraph) लाउडस्पीकर (Loudspeaker) और एरोप्लेन (Airoplane) आदि, क्या इनमें भी कुछ ईश्वर की करामात है? क्या ये सब जड़पदार्थों की अनन्त शक्तियों के कार्य नहीं हैं? यदि इन सब का आविष्कार भी ईश्वर ने ही किया है तो इस युगके पहले उसने इन आविष्कारों को क्यों नहीं किया। सच बात तो यह है कि जड़पदार्थ में अनन्तगुण विद्यमान हैं और बाह्यनिमित्त कारणों के मिलने से उन्हीं से अनेकानेक कार्य होते रहते हैं। मेरे खयाल से भारत की अवनति के कारणों में कर्तृत्ववाद का अन्धविश्वास भी एक कारण है, क्योंकि जब हम दूसरों की सहायता पर बैठे रहते हैं तब अपनी शक्ति का कुछ भी उपयोग नहीं कर सकते। यह बात इतिहास से भी प्रमाणित की जा सकती है कि कर्तृत्ववाद से हमारा अनिष्ट हुआ है।

एक ज़माना गुज़र चुका है जबकि लोग प्रत्येक पदार्थ में ईश्वर की सत्ता मानते थे। ऐसे लोगों का यह विश्वास था कि चांद, सूर्य, अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी, दीपक, सांप आदि पदार्थों में ईश्वर की विशिष्ट सत्ता है। इसी लिए इनके प्रकाश आदि कार्य हो रहे हैं। इनमें ईश्वर की सत्ता माने बिना, ये विशिष्ट कार्य किस प्रकार हो सकते हैं। इस सिद्धांत को सिद्ध करने के लिए ही भक्त प्रहलाद आदि की कथाएं घड़ ली गईं और हर पदार्थ में ईश्वर का अंश माने जाने लगा। यह विश्वास बिलकुल ही बद्धमूल हो गया कि संसार में विशिष्ट शक्ति वाले जितने भी पदार्थ हैं उनमें अवश्य ही ईश्वर का विशिष्टांश है। शायद इसी विचार से ईश्वर के सृष्टि कर्तृत्ववाद का जन्म हुआ है। पदार्थ विज्ञान की अनभिज्ञता ही कर्तृत्ववाद का मूल उत्पादक है। बात यह है कि जो लोग

वस्तु विज्ञान से अनभिज्ञ थे, उन्होंने सूर्य चन्द्र आदि प्रकाशमय पदार्थों को देखकर यह कल्पना की कि इनका बनाने वाला कोई एक विशिष्ट शक्तिमान है—ये अपने आप नहीं बन सकते। इसी प्रकार दुनियाँ के अन्यान्य पदार्थ भी किसी विशिष्ट शक्तिशाली—ईश्वर—के द्वारा बनाए हुए हैं। किन्तु ऐसे लोगों ने इस बात का विचार नहीं किया कि सूर्य चन्द्रादि पदार्थों का कर्ता मानने की आवश्यकता नहीं है। अगर अनादि पदार्थों का कर्ता मानना भी आवश्यक समझा जाय तो फिर ईश्वर का भी कोई कर्ता मानना पड़ेगा और उस कर्ता का भी कर्ता मानना आवश्यक हो जायगा। इस प्रकार अनन्त ईश्वरों की कल्पना करनी पड़ेगी और तर्क शास्त्रका अनवस्था नामका महान दोष आजायगा। इस दोष से बचने के लिए ही कर्तृत्ववादियों ने ईश्वर को अनादि माना है, पर जब वे सूर्य चन्द्रादि अनादि पदार्थों का कर्ता मान रहे हैं तब उन्हें ईश्वर का भी कर्ता मानना ही पड़ेगा; अन्यथा वे किसी भी अनादि पदार्थका कर्ता नहीं मान सकते। अन्य अनादि पदार्थों के सम्बन्ध में जो प्रश्न और समाधान किए जावेंगे सब ईश्वर के सम्बन्ध में भी लागू होंगे। इसलिए किसी भी अनादि पदार्थ के कर्ता मानने की आवश्यकता नहीं है। अब रही सादि पदार्थों के कर्तृत्व की बात सो इसका समाधान भी इस प्रकार है कि—

सादि पदार्थों के दो भेद हैं—एक शरीरधारी कर्ता के द्वारा बनाये हुए और दूसरे अपने उपादान और निमित्त कारणोंसे स्वयं बने हुए। पहले प्रकार के पदार्थों के उदाहरण कागज़, कुर्सी, कलम, दावात, आदि और दूसरे प्रकार के पदार्थों के उदाहरण वृक्ष लता टीले नदी नाले वर्षा भूकम्प विद्युत्पात आदि हैं। इन दोनों प्रकार के पदार्थों में केवल प्रथम प्रकार के पदार्थ ही कर्ता—शरीर धारी कर्ता—के द्वारा बनाये हुए हैं। जिनका बनाने वाला शरीरधारी मनुष्य है वे ही वस्तुएँ कर्ता की बनाई हुई मानी जा सकती हैं अन्य नहीं। दूसरे प्रकार के पदार्थ तो किसी के द्वारा बनाये हुए नहीं हैं। वृक्ष लता वर्षा आदि अपने २ उपादान और निमित्त कारणों से स्वयं बन जाते हैं, यह पहले दिखलाया जा चुका है। वर्षा कैसे होती है इस बात को स्कूल में पढ़ने वाले छात्र भी जानते हैं। गर्मी से भूतल पर रहने वाला पानी भाप होकर आसमान में चला जाता है और फिर वही जल मानसून (Monsoon) हवा के संयोग से, जल हो कर पृथ्वी पर बरस जाता है; इसे ही वर्षा कहते हैं। अब बतलाइये इसमें ईश्वर का क्या काम है? जो लोग ईश्वर इन्द्र आदि को वर्षा का बरसाने वाला मानते हैं वे बिलकुल ही प्राकृतिक विज्ञान से अनभिज्ञ हैं। संसार के सादि अकृत्रिम जितने भी पदार्थ हैं वे सब इसी प्रकार अपने आप बन गये हैं। समुद्र, पहाड़, नदी, नाले आदि किस प्रकार अपने आप बन जाते हैं, यह बात विज्ञानकी प्रथम पुस्तक पढ़ने वाला छात्र भी जानता है। इस प्रकार सादि और अनादि किसी भी वस्तुका बनाने वाला ईश्वर नहीं हो सकता। ईश्वर को कर्ता सिद्ध करने के लिए कुछ लोग यह अनुमान कहते हैं कि—"सृष्ट्यादिकं कर्तृजन्यं कार्यत्वात् घटवत्" अर्थात् सृष्टिकर्ता के द्वारा बनाई हुई है क्योंकि कार्य है; जैसे घड़ा। किन्तु यह अनुमान जैन न्यायानुसार अनुमान बाधित और नैयायिक मतानुसार प्रकरण-

सम है। इस अनुमान को बाधित करने वाला अनुमान यह है कि—"सृष्ट्यादिकं कर्तृ अजन्यं शरीरा जन्यत्वात् आकाशवत्" अर्थात् सृष्टि कर्ता के द्वारा बनाई हुई नहीं है, क्योंकि किसी शरीरधारी के द्वारा बनाई हुई नहीं है, जैसे आकाश। मुक्तावलीकार विश्वनाथ पञ्चानन आदि कहते हैं कि—इस अनुमान से कर्तृत्वसाधक अनुमान सत्प्रतिपक्ष नहीं होसकता, क्योंकि इसमें कोई अनुकूल तर्क नहीं है अर्थात् यह हेतु अप्रयोजक है। व्यभिचार की शङ्का उठाने पर अनुकूल तर्क का न होना ही हेतु का अप्रयोजकपना है। यदि हम यह कहें कि शरीराजन्यत्व रह कर भी कर्तृ अजन्यत्व का अभाव रह सकता है तो तुम्हारे पास इसका क्या उत्तर है। हमारे कर्तृत्व साधक अनुमान में इस प्रकार की अप्रयोजकता नहीं है, क्योंकि यहाँ अनूकूल तर्क मिलता है। यह नहीं कहा जा सकता कि कार्यत्व रहकर भी कर्तृजन्यत्व न रहे, क्योंकि ऐसा करने से कार्य कारण भाव के भङ्ग का प्रसङ्ग आ जाता है। कर्ता और कार्य की व्याप्ति जगत् प्रसिद्ध है।

किन्तु इस तरह अनुमानबाधित अथवा सत्प्रतिपक्ष हेतु की निर्दोषता सिद्ध करना युक्ति संगत नहीं है। हम पहले कह चुके हैं कि कर्ता और कार्य की व्याप्ति न्याय संगत नहीं है। कुछ वस्तुओं में (जो कि शरीरधारी के द्वारा बनाई जाती हैं) कार्य और कर्ता का अन्वय देखकर सर्वोपसंहार से कार्य-कर्ता की व्याप्ति बना डालना किसी तरह उचित नहीं है। कार्य और कारण की व्याप्ति ही न्यायसङ्गत है, इसलिए कर्तृत्व साधक अनुमान अनुमान-बाधित अथवा सत्प्रतिपक्ष अवश्य है।

कणाद और गौतम आदि दार्शनिकों ने ईश्वर में ज्ञान के अतिरिक्त इच्छा और प्रयत्न नाम के दो गुण और माने हैं। कर्तृत्ववाद को सिद्ध करने के लिए ही इन आचार्यों को ईश्वर में इन दोनों गुणों की कल्पना करनी पड़ी है। पर ऐसी असंभव और युक्तिहीन कल्पना करने पर भी कर्तृत्ववाद के समर्थन में ये सफल न हो सके। क्योंकि जैसे ईश्वर के साथ कार्य का अन्वयव्यतिरेक नहीं बन सकता वैसे उसकी इच्छा और प्रयत्न के साथ भी अन्वयव्यतिरेक न बनेगा। ईश्वर की इच्छा को नित्य और व्यापक मानकर जगत् के कार्यों के साथ व्यतिरेक किस तरह सिद्ध किया जा सकता है। देश व्यतिरेक और काल व्यतिरेक व्यापक और नित्य पदार्थों में बन सकना असंभव है और ईश्वर की इच्छा को अनित्य मान लेने से तो अनेक दोषों का सम्पात हो जायगा। हम स्थानाभाव से उन समस्त दोषों को दिखलाने में असमर्थ हैं। लिखने का आशय इतना ही है कि नित्य और अनित्य ईश्वरेच्छा से भी कर्तृत्ववाद को सिद्ध नहीं किया जा सकता।

हम सृष्टि की विषमता और विचित्रताओं का यदि विवेकपूर्ण बुद्धि से अध्ययन करें तो जान पड़ेगा कि यह कर्तृत्ववाद का विचार केवल कल्पनामात्र है।

स्त्रियों के आभूषण !

[लेखिका—श्रीमती अनुपमकुमारी जैन, जयपुर]

इस समय नारी जीवन की कई एक समस्याओंमें आभूषण पहनना भी एक बहुत बड़ी समस्या है। आभूषणों का क्रमिक इतिहास तो मुझे ठीक २ मालूम नहीं, पर हां हमारे देश में इन के पहनने का रिवाज बहुत अर्से से है। शुरू ही शुरू में स्त्रियाँ, जब चाँदी और सोना बहुत कम मिलता था, वृक्षों के पत्ते फूल वगैरह के गहने बना कर पहना करती थीं। अब भी देहातों में बहुत सी लड़कियाँ बबूलकी सूखी फलियों की फोलरी, नीम की सीकों के छल्ले और डाभके गजरे व पूंछा बना कर पहनती हैं। इस समय जिन देशों में अधिक स्त्रियाँ पढ़ी लिखी हुई हैं वहां ज़ेवर पहनना एक असभ्यतापूर्ण और भद्दा काम समझा जाता है। हिन्दुस्तान में भी कई एक प्रान्तों में जहां स्त्री-शिक्षा का थोड़ा बहुत प्रचार है यह प्रथा उठती जा रही है। पर अफ़सोस राजपूताना आदि प्रान्तों में यह प्रथा नष्ट होने के बदले और भी अधिक बढ़ती हुई दिखाई देती है। जिनमें हमारी मारवाड़ी बहिनें तो इस प्रथा की पूरी तरह शिकार बन चुकी हैं। नित नये २ फैशन के आभूषण निकलते हैं। इस समय प्रचलित गहनों की संख्या १५० से भी ऊपर है। हर साल लाखों रुपयों का हवन हो जाता है।

वर्तमान समय में प्रायः सारे ही स्त्री संसार में परिवर्तन और एक नये जीवन की लहर दिखलाई पड़ती है। न मालूम हमारी समाज की महिलायें ही उन्नति के इतनी पीछे क्यों हैं? सुधार का नाम तो उनके कानों को सुहाता ही नहीं। उलटे किसी अच्छी बात के कहने वाले को दो चार और खरी खोटी सुना देती हैं। स्त्रियों की इस अधोगति का कारण है उनकी अगाढ़ अज्ञानता। शायद पुरुषों का कुटिल स्वार्थ भी महिला समाज की उन्नति में बाधक रहा हो। खैर, इन बातों का निर्णय इस छोटे से लेख में करना उचित नहीं। मैं यहां संक्षेप रूप में यही बतला देना चाहती हूँ कि आभूषणों की प्रथा से न तो उस स्त्री समाज को कोई लाभ है जो स्वयं बड़े चाव से इनको धारण करती है और न उस पुरुष समाज को जो स्त्रियों को चाँदी और सोने के भार से लदी हुई देखना पसन्द करते हैं।

आप किसी भी दृष्टि से विचार कीजिए। यदि आप की दृष्टि निर्दोष और निष्पक्ष है तो दीख जायगा कि ज़ेवर पहनना देश और समाज के हित के पूर्णतया विरुद्ध है। इस समय पैसे का सवाल बहुत ही विकट हो रहा है। हमारा वह काम जिस में करोड़ों रुपया फिजूल खर्च हो जाता हो देश के लिए कितना घातक है। जिन प्रान्तों में ज़ेवर पहिनने का रिवाज है, वहां के लोग अच्छी तरह जानते हैं कि उनको ज़ेवर बनाने में कितना अधिक रुपया खर्च करना पड़ता है। बड़े २ राजनैतिक कहते हैं कि जब हमारे देश के लाखों बच्चे और विधवाओं को भर पेट खाने को भी नहीं मिलता तो हमें क्या अधिकार है कि इतना ज़ेवर हम

शरीर पर लादे रहें। यदि यही रुपया हम लड़कियों की शिक्षा, बच्चों के पालन-पोषण, विधवाओं की सहायता तथा कई एक सामाजिक त्रुटियों को दूर करने के लिए खर्च करें तो देश और समाज का कितना हित हो। बहुत से लोग बचत के लिहाज़ से गहना बनाना ठीक समझते हैं। उनका कहना है कि जेवर पहिनने से जेवर के रूप में हमारे पास अच्छी रकम इकट्ठी हो जाती है जो आपत्ति के समय बहुत काम दे सकती है। पर आभूषण बनाने वाले जानते होंगे कि इनके बनाने में कितनी आर्थिक क्षति उठानी पड़ती है। पहले तो आभूषण बनाते समय बहुत सा भाग सुनार ही के यहां रह जाता है। यदि हम दस तोले की रक़म बनाते हैं तो सुनार हमें कठिनता से नौ तोला असली सोना देगा। फिर आभूषण व्यवहार करने से क्षीण हो जाते हैं। जब हम किसी पुराने गहने को बाज़ार में बेचते हैं तो हमें उसकी मुशकिल से आधी क़ीमत मिलती है। रकम के रुकी रहने और ब्याज का नुकसान अलग उठाना पड़ता है। यदि यही रुपया हम बैंक में जमा करादें तो उसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहेगी। थोड़े से वर्षों में मूल धन की दुगुनी रकम प्राप्त हो जायगी। अतः आर्थिक दृष्टि से जेवर पहनने में बहुत हानि है।

शारीरिक दृष्टिसे तो गहना धारण करना महान् बेवकूफी है। गहनों के कारण स्त्रियों के शरीर पर एक अस्वाभाविक दबाव पड़ता है जिससे खून की गति ठीक २ नहीं हो सकती। हमारे शरीर का स्वास्थ्य और सौन्दर्य रक्त की गति के ऊपर ही निर्भर है। यदि खून की गर्दिश ठीक नहीं होती है तो इसका असर तन्दुरुस्ती और सुन्दरता पर बहुत बुरा पड़ता है। बहुतसी स्त्रियां अपने बालों को कसकर शिर में बोर डाल लिया करती हैं. इससे उनकी दिमाग़ की शक्ति को बड़ा धक्का पहुँचता है। एक विद्वान डाक्टर का कहना है कि स्त्रियों में शिर दर्द और गोभे का रोग इसी का परिणाम है। गहनों का प्रेम भी अजीब है। जो स्त्रियाँ अपने घर का छोटे से छोटा काम करने के लिये भी नाक भौं सिकोड़ती हैं वे अपने हाथों और पैरों में हथकड़ी और बेड़ी की तरह गहनों का बोझ लाद कर बड़े गर्व के साथ मार्ग में चलती हैं। अनपढ़ स्त्रियों के साहित्य में एक पुराणी बात है—एक बार एक स्त्री ने अपने पति से नाराज़ होकर चक्की पीसना छोड़ दिया। पति को पड़ोस की दूसरी स्त्री से मालूम हुआ कि उसकी स्त्री गले में ज़ेवर पहनने के लिये उससे रुठ गई है। पति ने भी स्त्री से चाल चली। एक लोहे की दुसेरी को सोने कीसी करवा कर और उसके उसी तरह की दोनों तरफ़ जंजीर लटका कर अपनी स्त्री को देदी और कहा, लो,आजही सुनार के यहाँ से बनवाकर लाया हूँ। कैसा चमकता हुआ सोना है? इतना भारी जेवर तो किसी भी स्त्री के पास नहीं देखोगी। अब इस को पहन कर चक्की पीसना। प्रसन्न होकर दूसरे दिन से वह स्त्री हमेशा से भी दुगुना आटा पीसने लगी। अलंकार की खुशी में दुसेरी की छाती पर पड़ने वाली चोटें तो उसके लिए कोमल फूलों के आघात के समान थीं। स्त्रियों को जितनी मुहब्बत जेवर से है, शायद उतनी अपने किसी प्यारे प्रेमी से भी नहीं होती होगी।

आभूषण नैतिक पतनका भी एक खास कारण है। प्रायः बदमाश और गुण्डे स्त्रियों को गहनों के

लोभ से ही पकड़ कर ले जाते हैं और फिर वहां उनका धर्म व धन दोनों ही बुरी तरह नष्ट होता है। कभी २ चोर या डाकू राह में जाते समय ज़ेवर पहनने वाली स्त्रियों की बड़ी दुर्दशा करते हैं। गहनों के जल्दी में नहीं खुलने के कारण उनके पैर व कानों तक को काट लिया जाता है। हम हिन्दू मुसलमानों के दंगे में देखते हैं कि ज़ेवर से अलंकृत हिन्दू बहिनों को कितना बेइज़्ज़त होना पड़ता है। हर साल कई बच्चे आभूषणों के कारण अपनी जान तक खो बैठते हैं। बड़े २ शहरों में प्रति दिन ऐसी घटनायें होती रहती हैं। थोड़े दिन हुए एक गाँव में एक १५ वर्ष के लड़के ने एक सुनार के दश वर्ष के बच्चे को एक छोटे से गहने के लोभ से फांसी लगा कर मार दिया था। इसी तरह जयपुर में भी एक प्रतिष्ठित घराने की औरत को कुछ दिनों पहले बड़ी बुरी तरह बेइज़्ज़त होना पड़ा था।

जिसके हृदय में कुछ भी समझ है वह बहुत जल्दी इस नतीजे पर पहुंच सकता है कि आभूषणों की प्रथा कैसी विनाशक और भयंकर है। गहनों के कारण स्त्रियों की स्वतंत्रता में भी बहुत बाधा पड़ती है। उनको बाहर आने जाने में भी बड़ा संकोच करना पड़ता है। हमारे देश में इसीलिए स्त्रियों को रेल की सफ़र में साथ लेजाना खतरनाक समझा जाता है। हमारे घर में भी कभी चोर आते हैं तो उनकी सबसे पहले गहनों के ऊपर नज़र जाती है। यदि वह हमारे गहनों का एक डिब्बा भी उठा ले जाय तो ज़िन्दगी भर की सारी कमाई चली जाती है। आपने अंग्रेज़ों के बंगले देखे होंगे--उनके घरों में काठ के फ़र्नीचर और मामूली सजावट के अतिरिक्त ऐसी कोई वस्तु नहीं रहती जिसके चोरी जाने से उनको बहुत कुछ नुक़सान उठाना पड़े।

कौटुम्बिक दृष्टी से भी अलंकार धारण करना बुराई से खाली नहीं है। जिस घर में कमाने वाला एक और खाने वाले दश होते हैं उसमें ऐसे खर्च के लिए घर के मालिक को बुरी तरह पिस जाना पड़ता है। बहुत से ऐसे केस देखे गए हैं कि जब स्त्रियां अपने घर के पुरुष को ज़ेवर के लिए अधिक तंग करती हैं तो विवश होकर उसको आत्मघात कर लेना पड़ता है। सामाजिक दृष्टि से भी जेवर पहनना अनर्थ का मूल है। एक स्त्री को गहने पहने हुए देखकर दूसरी स्त्री के मन में भी वैसे ही भाव पैदा होते हैं। स्त्रियां आंख मीचकर एक दूसरी का अनुकरण करने लग जाती हैं और इस तरह समाज में अँध अनुकरण की प्रवृत्ति फैलती है। मतलब यह है कि जेवर पहनना शारीरिक, आर्थिक, नैतिक, सामाजिक, कौटुम्बिक, राजनैतिक आदि सभी दृष्टियों से बुरा है।

बहुत से लोग गहनों को सौन्दर्य के लिए पहनना उचित बताते हैं पर जिस देश में जितना अधिक गहना पहनने का रिवाज है उस देश की स्त्रियां उतनी ही कम सुन्दर होती हैं। एक प्रसिद्ध विद्वान् लिखता है कि गहने पहनने से स्वास्थ्य और सौन्दर्य दोनों ही नष्ट होते हैं। जेवर नहीं पहनने वाली स्त्रियों में एक स्वाभाविक सौन्दर्य होता है जो बहुत ही भला मालूम होता है। इसके लिए आप पाश्चात्य और पूर्वीय सौन्दर्य की तुलना कीजिए। कई महानुभाव इस फ़िक्र में हैं कि यदि हमारी गृह देवियाँ गहना धारण करना

छोड़ देंगी तो यह पहचानना भी मुश्किल हो जायगा कि सधवा कौन है और विधवा कौन है। कम से कम सोहाग के गहने पहनना तो ज़रूरी हैं ही। इसके लिए एक महिला लिखती है—कि यह भी खूब है कि सधवापन को सिद्ध करने के लिए ही हम अपने नाक कान इत्यादि अंगों का खून कर डालें। यदि ऐसा ही है तो हम गले में हरी, लाल और काली तख्ती क्यों न लटका लिया करें और समाजको घोषित करदें कि हरी से कुमारी लाल से सधवा और काली से विधवा समझा करें। बीसों लटकन और कई सेर बोझ लादने की क्या ज़रूरत? और फिर पुरुषों को भी विवाहित और विधुरपने को सिद्ध करने के लिए कोई ऐसा ही स्वांग रचना चाहिए।

आभूषणों के कारण स्त्री केवल मनोरंजन और भोग की वस्तु समझी जाती है। सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में उसका कोई महत्व नहीं गिना जाता। जिस समय से हमारे देश में यह रीति चली है तब से पुरुषों की यही नीति रही है कि स्त्रियों को आभूषणों का बहुत बड़ा प्रलोभन देकर जिस किसी तरह पशुओं के समान एक घररूपी बाड़े में बांध रक्खें। आभूषण सचमुच पुरुषों के द्वारा दिया हुआ एक मीठा ज़हर है जिस को हमारी बहिनें शौक से पी पी कर इतनी बेसुध और अचेत हो गई हैं कि न उनको अपने स्वाभिमान और आपे का खयाल है और न आत्मगौरव की चिन्ता। तथा अब उस ज़हर को पीने का ऐसा व्यसन चढ़ गया है कि किसी के लाख समझाने पर भी उनको इसकी बुराइयाँ नज़र नहीं आतीं।

अन्त में मैं गहनों के प्रेमी महानुभावों से यही प्रार्थना करती हूँ कि जो स्त्रियों को समाज का शुष्क और जर्जरित अङ्ग न रखकर उन्नत एवं जीवित दशा में देखना चाहते हैं उनको इस आदर्श का जल्दी से जल्दी परित्याग कर देना चाहिए।

जैनदर्शन में स्याद्वाद की महत्ता

[ले०—श्री० पं० नाथूराम जी डोंगरीय जैन न्यायतीर्थ, राघौगढ़]

बहुत प्राचीन समय से लेकर अब तक अनेक अजैन विद्वानों को स्याद्वाद की वास्तविकता का ज्ञान न होने से भ्रम हुआ है। यही कारण है कि जिससे अनेक विद्वानों ने उसे शब्द-जाल कहा और अनेकों ने उसके खण्डन करने का भी कष्ट उठाया। अस्तु, हमें देखना यह है कि वास्तव में स्याद्वाद है क्या चीज़? क्यों जैनाचार्यों ने अपने दर्शन में उसे मुख्यता से आश्रय दिया और खण्डन करने वाले विद्वानों को कहां तक सफलता मिली?

संसार में जितने भी चराचर पदार्थ विद्यमान हैं उन सबमें अनेक गुण या स्वभाव रहा करते हैं, वे कभी नष्ट नहीं होते। ऐसा होने पर भी प्रत्येक पदार्थ परिवर्तनशील है, उसकी अवस्थाएं बदलती रहती हैं। हां, यह दूसरी बात है कि किसी किसी पदार्थ में विसदृश (असमान) परिवर्तन न होकर समान परिवर्तन ही होता रहे और सूक्ष्मता के कारण हमारी दृष्टि में न आसके, किन्तु इतने मात्र से यह नहीं कहा जा सकता कि पदार्थ में परिवर्तन हुआ ही नहीं, अन्यथा प्राचीनता और नवीनता का व्यवहार ही न हो सकेगा। जैसे इस इमारत में लगा हुआ खम्भा या यह इमारत सौ वर्ष पुरानी है और वह दूसरी इमारत नई है अथवा चन्द्रकान्त बीस वर्ष का है और जगदीश तीस वर्ष का है। यदि उक्त पदार्थों में या व्यक्तियों में समान परिवर्तन नहीं हुआ होता तो बीस वर्ष बड़ा या सौ वर्ष पुराना है, यह व्यवहार कैसे हो सकता? अस्तु इन भिन्न २ पदार्थों के गुणों और उनकी अवस्थाओं को हम विभिन्न दृष्टिकोणों से देखते और जानते रहते हैं; ऐसा होने पर भी हम अपनी अल्पज्ञता के कारण वस्तु की पूर्णता को नहीं जान सकते। हमें जो कुछ भी वस्तु के संबंध में ज्ञान होगा वह अंशरूप ही होगा, क्योंकि पूर्णता का ज्ञान तो सर्वज्ञ को ही हो सकता है। अब, जबकि हम किसी खास दृष्टिकोण से पदार्थ को देख कर उसका ज्ञान करते हैं तब उस दृष्टिकोण से भिन्न दृष्टि द्वारा भी पदार्थ जाना और देखा जा सकता है, इस विषय में हठात् यह नहीं कहा जासकता कि जिस एक दृष्टिकोण से हमने पदार्थ देखा है उससे भिन्न दृष्टिकोण के द्वारा पदार्थ देखा ही नहीं जा सकता और यदि कोई देखता है (भिन्न दृष्टि द्वारा) तो उसका ज्ञान मिथ्या है; अर्थात् एक ही पदार्थ उसके गुण और अवस्था के अनुकूल अनेक दृष्टियों से देखा और जाना जासकता है। दृष्टांत के लिये मनुष्यों को ही ले लीजियेगा—एक ही मनुष्यको जब हम द्रव्य दृष्टि से देखते हैं तब जीव कहते हैं अजीव नहीं, शारीरिक अवस्था की दृष्टि से देखने पर मनुष्याकृति होने से मनुष्य कहते हैं पशु नहीं, और जब कौटुम्बिक सम्बन्ध दृष्टिमें रखते हैं तब कोई उसे पिता कहता है तो कोई पुत्र, स्त्री पति कहती है और स्त्री का भाई बहनोई, दामाद श्वसुर कहता है और

उसका श्वसुर दामाद; इस प्रकार एक ही मनुष्य अपनी अवस्था और गुणों के भेद से विभिन्न दृष्टि-कोणों द्वारा देखा गया, जाना गया और व्यवहारमें लाया गया। यदि कोई हठात् यह कहने की चेष्टा करे कि उक्त मनुष्य तो पिता ही है या पुत्र ही है और कुछ नहीं और यह कह कर उन लोगों से लड़ता फिरे जो इसे अपनी २ रिश्तेदारी के संबंध से दामाद आदि कहते हैं तब तो उसकी मूर्खता और हठग्राहिता ही कहलावेगी; तथा वह असत्यता की दलदल में फंसे बिना कैसे रह सकेगा ? क्योंकि स्पष्टतः वह मनुष्य किसी का पिता है और किसी का दामाद—सब लोगों का नहीं। मनुष्य की तरह एक पका आम भी रस की दृष्टि से मीठा और रूप की दृष्टि से जब पीला कहा जा रहा हो, तब दूसरा व्यक्ति स्पर्श की दृष्टि से कोमल और गंध की दृष्टि से सुगंधित भी कह सकता है। क्योंकि यह सब आम के ही गुण हैं और विवक्षा के भेद से भिन्न २ कहे जा रहे हैं। अब कोई एक गुण को पकड़ कर इतर गुणोंका निषेध करने लगे तो हठी क्यों न कहा जायगा ? उक्त पदार्थों के समान प्रत्येक पदार्थ में अनेक गुण और अवस्थाएं विद्यमान हैं और इन अनेक गुण तथा अवस्थात्मक वस्तुओं का सत्यज्ञान तब तक नहीं हो सकता जब तक कि हम उन्हें विभिन्न दृष्टिकोणों से नहीं देख लेते। इसी परस्पर सापेक्ष अनेक दृष्टिकोणात्मक ज्ञान का नाम स्याद्वाद है जिसे अनेकान्तवाद भी कहते हैं।

इस स्याद्वाद के द्वारा यद्यपि वस्तुओं के समस्त गुणों और उनकी अनन्त अवस्थाओं का ज्ञान प्रत्यक्ष रूप से नहीं हो सकता, तो भी यह सांकेतिक रूप से उनकी पूर्णता का ज्ञान अवश्य करा देता है, क्योंकि स्याद्वाद किसी एक दृष्टिकोण के द्वारा किये गये आंशिक ज्ञान को ही पूर्ण ज्ञान न कह कर यह भी प्रगट कर देता है कि इससे भिन्न दृष्टिकोणों द्वारा भी इसी वस्तु को देखा तथा जाना जा सकता है; और वे सब दृष्टिकोण अविरोध रूप से यदि परस्पर में सापेक्ष होते हुये निष्पक्ष हैं तो सत्य हैं *। स्याद्वाद में जो स्यात् शब्द है वह अन्य दृष्टि-कोणों की सापेक्षता सिद्ध करने के लिए है, जिसका अर्थ होता है कि कथंचित् रूप से वस्तु का स्वरूप एसा भी है न कि सर्वथा रूप से। हम जिस समय किसी एक दृष्टिकोण से पदार्थ को देखते हैं उस समय दूसरे दृष्टिकोण गौण हो जाते हैं; किन्तु उनका निषेध नहीं किया जा सकता। इसी ज्ञानात्मक अथवा शब्दात्मक निष्पक्षता को जैना-चार्यों ने स्याद्वाद या अनेकान्तवाद के नाम से प्रगट किया है।

---

* नाना स्वभाव संयुक्तं द्रव्यं ज्ञात्वा प्रमाणतः। तच्च सापेक्ष सिद्धयर्थं, स्यान्नय मिश्रितं कुरु ॥

—आलाप पद्धती (देवसेनेन)

सर्वथा नियम त्यागी यथा दृष्टमपेक्षकः। स्याच्छब्दस्तावके न्याये नान्येषामात्म विद्विषाम् ॥ १०२ ॥

—वृहत्स्वयंभूस्तोत्र।

वाक्येष्वनेकान्त द्योती गम्यं प्रति विशेषणम्। स्यान्निपातोऽर्थ योगित्वात्तव केवलि नामपि ॥ १०३ ॥

स्याद्वादः सर्वथैकांत त्यागात् किंवृत्तचिद्विधिः। सप्त भंग नया पेक्षो हेयादेय विशेषकः ॥ १०४ ॥

—आप्त मीमांसायाम्।

पुरुषार्थ सिद्धयुपाय नामक ग्रन्थ में श्री अमृत चन्द्राचार्य इसी अनेकान्त वाद को मंगलाचरण में नमस्कार करते हुए लिखते हैं :—

परमागमस्य बीजं निषिद्ध जात्यंध सिंधुरविधानम्
सकल नय विलसितानाविरोधमथनं नमाम्यनेकांतम्

अर्थात्—जो समीचीन आगम का बीज है, जन्मांध पुरुषों के द्वारा किये गए ऐकांगिक हस्ति-विज्ञान के समान हठवाद (एकान्तवाद) का निषेध करने वाला तथा सम्पूर्ण सापेक्ष दृष्टिकोणों के ज्ञान से युक्त और इसीलिये जो वस्तु के स्व-रूप में विरोध को दूर करने वाला है ऐसे अनेकान्त-वाद या स्याद्वाद को मैं नमस्कार करता हूँ।

उक्त श्लोक का भावार्थ निम्नलिखित हस्ति-विज्ञान के दृष्टांत से स्पष्ट हो जायेगाः—

कुछ जन्म से अंधे मनुष्यों के मन में यह इच्छा हुई कि हम हाथी को देखें और जानें। अतः उनको किसी सूझते सज्जन ने हाथी के पास पहुँचा दिया और कहा कि देखलो हाथी ऐसा होता है! अँधे तुरन्त ही आकर हाथी से चिपट पड़े, किसी ने टांग पकड़ी तो किसी ने कान, कोई पेट टटोलने लगा तो कोई पूंछ पकड़ कर ही रह गया; तात्पर्य यह कि उन अंधों ने हाथी के एक २ अंग को पकड कर उसे ही पूर्ण हाथी समझ कर उसके विषय में भिन्न २ कल्पनायें करलीं। अवसर आने पर जब बात चीत का सिलसिला चला तो टांग पकड़ने वाला बोला कि "*हाथी खम्भे के समान होता है*"। "आप क्या कहते हैं? हाथी तो पंखे की तरह होता है" दूसरा बोला। तब तीसरा बिगड़ कर कहने लगा "तुम लोग क्यों झूठ बोलते हो क्या हाथी रस्से की तरह नहीं होता" पूंछ पकड़ने वाला बोला। तब पेट पकड़ने वाला चट से बोल उठा "तुम झूठों के भी दादा निकले, हाथी तो मकान की दिवाल जैसा होता है"। इस प्रकार अपनी २ की गई कल्पनानुसार वे सब अंधे आपस में झगड़ने लगे। तब किसी सूझते ने आकर समझाया कि तुम लोग क्यों झगड़ रहे हो? मालूम होता है कि तुमने हाथी के एक २ अंग को ही पूर्ण हाथी समझ लिया है, किन्तु बात ऐसी नहीं है। इन सब अंगों के मिला देने पर ही पूर्ण हाथी का ज्ञान होसकेगा।

यह एक दृष्टांत है जो अल्प ज्ञानियों के वस्तु विज्ञान की जाति को बतलाता है। यदि हम अपने किसी एक दृष्टिकोण द्वारा किये गये वस्तु विज्ञान को ही वस्तु के पूर्ण रूप का ग्रहण करने वाला कह कर अपना पक्ष सत्य, और अन्य के द्वारा किये गये भिन्न दृष्टिकोण के विज्ञान को असत्य सिद्ध करने की चेष्टा करें तो उन अंधों जैसे भ्रम के गहरे गढ़े में पड़े बिना नहीं रह सकते। ऐसा करने में वस्तु के स्वरूप की तो कोई हानि हो ही नहीं सकती, किन्तु हमें ही वस्तु का वास्तविक ज्ञान नहीं होगा, जबकि हम हठी होकर अपने एक दृष्टिकोणात्मक विज्ञान को सत्य और अन्य के सत्य विज्ञान को, जोकि भिन्न दृष्टि द्वारा किया गया है और सत्य है, असत्य सिद्ध करने की कोशिश करते हैं। उक्त हठवाद या अन्य निरपेक्ष एकांग वस्तु विज्ञान को ही जैन दर्शन में एकांत-वाद के नाम से कहा गया है। जहाँ एकांतवाद वस्तु के किसी गुण या अवस्था पर दृष्टिपात करके केवल उसे ही सत्य और दूसरे के द्वारा भिन्न दृष्टि-कोणों से देखे गये वस्तु के अन्य यथार्थ गुणों, अवस्थाओं, और उनके ज्ञानों को असत्य सिद्ध

करने का हठ करता है वहीं स्याद्वाद वस्तु को अनेक दृष्टिकोणों से देखने और उनके विषय का निष्पक्ष होकर सत्य कहने की उदारता दिखाता है, क्योंकि वस्तु का स्वरूप ही अनेकान्तात्मक (अनेक गुणात्मक) है।

इस समय संसार में जितने भी मत या संप्रदाय दृष्टिगोचर हो रहे हैं उन सब की सृष्टि किसी न किसी खास दृष्टिकोण की प्रधानता ले कर ही हुई है। विद्वान् ऋषियों और महार्षियों ने अपने २ दृष्टिकोण के द्वारा पदार्थों में उनके किसी खास अंश को ग्रहण करके ही अपना मत या दर्शन स्थापित किया है और सबने ही अपने २ दृष्टिकोणात्मक ज्ञान को सत्य बतलाया है। उन सब दर्शनों में विभिन्न दृष्टिकोणों के कारण आकाश और पाताल जैसा अंतर दिखाई देता है—जहाँ बौद्ध दर्शन में निरन्वय क्षणिक और शून्यवाद मिलता है तो सांख्य दर्शन में सर्वथा कूटस्थ नित्यवाद दिखाई देता है, कहीं अद्वैत वादों में ब्रह्माद्वैत के दर्शन होते हैं तो कहीं ज्ञानाद्वैत, शब्दाद्वैत, और चित्राद्वैत के। इन दर्शनों में पूर्व और पश्चिम जैसी विषमता को देख कर किसी विद्वान् को यही कहना पड़ा कि—

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना,
नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितम् गुहायाम्,
महाजनो येन गतः स पन्थाः॥

अर्थात्—तर्क शास्त्र तो व्यवस्थित नहीं है—किसी विषय के अनुकूल तर्कों के (युक्तियों के) मिलने पर भी उसके प्रतिकूल युक्तियां भी मिल ही जाती है और वेदादि शास्त्रों की श्रुतियाँ भी एक दूसरे के विरुद्ध अर्थ को बतलाने वाली हैं तथा न कोई ऐसे मुनि ही हैं कि जिनका वचन प्रमाण मान लिया जाय; कोई कुछ कहता है तो कोई कुछ; वास्तव में धर्म किसे कहना चाहिये इस बात का निश्चय ही नहीं हो पाता; इसलिये जान पड़ता है कि वास्तविक धार्मिक तत्त्व किसी पर्वत की कंदरा में जाकर छिप गया है आदि २। उपर्युक्त दर्शनों के परस्पर विरुद्ध पक्षपात एवं हठपूर्ण सिद्धान्तों को देख और सुनकर चार्वाक का उक्त कथन कोई आश्चर्यजनक नहीं कहा जा सकता। किन्तु इस विरुद्ध वातावरण का अन्त भी किसी प्रणाली द्वारा हो सकता है या नहीं, इस प्रश्न पर भी गंभीरता पूर्वक विचार करना चाहिये। क्योंकि चार्वाक की भाँति अधीरता दिखाने से भी तो तत्त्वों का वास्तविक ज्ञान नहीं हो सकता। अस्तु, अब हम एक दृष्टांत द्वारा और भी विभिन्न दर्शनों की परिस्थिति को स्पष्ट करके यह दिखाने का प्रयत्न करेंगे कि किस प्रणाली से अनेकता में एकता स्थापित हो सकती है। किसी भव्यभवन का (जिसकी रचना चारों ओर भिन्न २ प्रकार की है) कई चित्रकार (फ़ोटोग्राफ़र) चित्र (फ़ोटो) ले रहे हैं—कोई सामने से, कोई बग़लों से, कोई कोनों से और कोई पीछे से। उन सब चित्रकारों के चित्रों में विचित्रता या विभिन्नता का होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि सामने का चित्र कुछ और ही होगा और कोनों या बग़लों से लिया गया कुछ और ही, यद्यपि वे सब चित्र हैं एक ही मकान के। ऐसे में यदि वे सब चित्रकार अपने २ चित्र को ही सही और दूसरों के चित्रों को ग़लत सिद्ध करने की कोशिश करें तब तो उन की सत्यता स्वयं ही नष्ट होजायगी, क्योंकि दूसरी

ओर से लिये गये दूसरों के चित्र भी सही हैं। इसलिये यदि वे चित्रकार "हमारा ही चित्र सही है और तुम्हारा ग़लत है", ऐसा न कहकर हठग्राहिता और पक्षपात को छोड़कर यह कहने लगें कि "हमारा भी चित्र सही है और तुम्हारा भी" तब तो सबके सब सत्यमार्ग पर आजायं और किसी प्रकार का विवाद या विषमता भी उत्पन्न न हो। इन चित्रकारोंके चित्रोंकी भाँति विभिन्न दर्शनकारोंके दर्शन भी विभिन्नता का लिए हुए हैं और वे दर्शनकार अपने ही दर्शन या सिद्धान्त को जो कि एकांगिक हैं सत्य कहते हैं और स्वयं भिन्न २ दृष्टिकोणों से अन्य दर्शनकारों के द्वारा ग्रहण किये पदार्थ के स्वरूपों को असत्य ठहराते हुए असत्य के गहरे गर्त्त में जा गिरते हैं। इन सब दर्शनों की विषमता का अन्त बिना स्याद्वाद सिद्धांत को उदार प्रणाली के नहीं हो सकता, क्योंकि स्याद्वाद न्याय एक ही पदार्थ में एक दूसरे के प्रतिपक्षी धर्मों को अविरोध रूपसे स्वीकार करता है और वह भी दृष्टिकोणों की भिन्नता से सच्चाई को लिए हुए। मान लीजिये एक दर्शन सम्पूर्ण पदार्थों को केवल कूटस्थ नित्य और दूसरा केवल क्षणिक कह कर, दोनों परस्पर में एक दूसरे को असत्य ठहराने की चेष्टा कर रहे हैं, तो स्याद्वाद कहता है कि पदार्थ कथंचित् (किसी दृष्टि से) नित्य हैं और कथंचित् अनित्य भी हैं। जैसे जीव अनेक शरीरों के बदलते रहने पर भी कभी नष्ट नहीं होता, अतः नित्य है और चूंकि कभी मनुष्य होता है तो कभी पशुपक्षी, इसलिये अवस्थाओं के बदलते रहने से अनित्य भी है। इस प्रकार अनेक दृष्टि से निष्पक्ष होकर स्याद्वाद परस्पर विरुद्ध दो बातों को युक्ति और प्रमाण की सत्यता के साथ एक ही वस्तु में सिद्ध कर देता है जिसका कि खण्डन हो सकना सम्भव नहीं है, क्योंकि वस्तु का स्वरूप ही वैसा प्रतीत होता है।

जैन आचार्यों ने वस्तुस्वरूप को निष्पक्ष होकर सत्यता के साथ प्रगट करने के कारण ही स्याद्वाद को अपना सिद्धान्त स्वीकार किया और उसे निम्न शिक्षा के साथ व्यक्त किया है—

"अपने अपूर्ण और आंशिक दृष्टिकोण द्वारा ग्रहण किये गये वस्तुओं के गुणों और अवस्थाओं को ही पूर्ण सत्य समझकर इतर दृष्टि कोणात्मक ज्ञान को वा गुणों और अवस्थाओं को असत्य मत कहो, अन्यथा तुम भी असत्यता के गर्त्त में जा गिरोगे, क्योंकि वस्तु का स्वरूप ही कथंचित एक और कथंचित अनेक रूप है।

श्री हेमचन्द्राचार्य जिनेन्द्र महावीर स्वामी की प्रशंसा करते हुए प्रभावोत्पादक शब्दों में कहते हैं—

"अन्योन्य पक्ष प्रतिपक्ष भावात्, यथा परे मत्सरिणः प्रवादाः। नयानशेषानविशेष मिच्छन्, न पक्षपाती समयस्तथा ते ॥"

अर्थात् आपका सिद्धान्त निष्पक्ष है, क्योंकि आप यह सिद्ध कर देते हैं कि किस तरह एक ही वस्तु असंख्यों दृष्टिकोणों से देखी जा सकती है, और वह उन लोगों के समान नहीं है जो कि एक दूसरे से परस्पर में केवल मतभेद होने के कारण मात्सर्य करते हैं।

उक्त श्लोक का उपर्युक्त अर्थ करते हुए एक बार हिन्दू विश्व विद्यालय बनारस के दर्शन शास्त्र के प्रोफेसर श्री फणि भूषण अधिकारी M. A. ने स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस के वार्षिकोत्सव के अवसर पर कहा था—"स्याद्वाद का अर्थ यही

ज्ञानात्मक निष्पत्तता है जिसके बिना कोई भी वैज्ञानिक और दार्शनिक खोज सफल नहीं हो सकती, परन्तु हम लोग अपने २ मतों का उत्कर्ष सिद्ध करने की अतिशय उत्सुकता में इन बातों को भूल जाते हैं तथा शीघ्र ही हम अपने को ऐसी अनिवार्य परिस्थिति में पाते हैं कि जिसमें हमारे ही सिद्धान्त एक दूसरे के प्रतिकूल जानपड़ते हैं...। इस विश्व में भिन्न २ रचना व वर्तमान उन्नत अवस्था के कारण अत्यन्त विभिन्नतायें हैं, इसलिए एक ही दृष्टि द्वारा स्पष्टीकरण कैसे हो सकता है? एक ही दृष्टिकोण के अंतर्गत उसे पूर्णतया कैसे लाया जा सकता है? विश्व का कार्यक्रम स्पष्टतया बहुसंख्यक है, इसलिए उसे एक संख्यक (अद्वैतात्मक) मानना अपर्याप्त होगा। यह सत्य है कि मानुषी बुद्धि विभिन्नताओं के अंतर्गत ऐक्य ढूँढ निकालेगी; हम लोग अनैक्य में ऐक्य ढूंढे बिना रह ही नहीं सकते।"

आगे चल कर आप कहते हैं कि—"स्याद्वाद से जो स्वयं इतना अमूल्य है यह ज्ञानात्मक शिक्षा मिलती है। उसे अच्छी तरह समझने से उसमें नैतिक शिक्षा भी मिलती है, जिसका संकेत अब मुझे करना चाहिये—जो ज्ञानात्मक निष्पत्तता स्याद्वाद से सैद्धान्तिक बातों के विषय में मिलती है वह व्यावहारिक बातों के विषयों में भी लागू हुए बिना नहीं रह सकती। कम से कम होना तो चाहिये यदि हम उस सिद्धान्त के के भाव के यथार्थतया अनुकूल हों। हम लोग एक दूसरे के प्रति केवल मतभेद की अपेक्षा चाल व्यवहार भिन्नता के विषय में अधिक असहिष्णुता बताते हैं और जब ये मतभेद धर्म संबंधी होते हैं तो हम लोगों का धार्मिक हठी हो जाना संभव है; हम लोग अपने धर्म की परवाह करने की अपेक्षा अपने २ मान्य मतों के पीछे अधिक लड़ते हैं। यह असहिष्णुता का भाव मनुष्यों के एक दूसरे के प्रति उनके जीवन पर्यंत झगड़ों में कूट २ कर भरा रहता है और धर्म के नाम पर जितना अधिक रुधिर बहाया गया है उस सबके लिए उत्तरदायी है।... ....धर्म का यथार्थ भाव एकता उत्पन्न करने के लिए है, पार्थक्य के लिए नहीं। हम यहाँ सत्य की अपेक्षा उसकी छाया के लिए अधिक लड़ते हैं।"

वास्तव में उक्त प्रोफ़ेसर सा० के कथनानुसार हम लोगों की मनोवृत्तियां सांप्रदायिकता के रंग में रंगी रहती हैं जिनसे कि हम अपने ज्ञान चक्षुओं पर पक्षपातपूर्ण जिस रंग का चश्मा लगा लेते हैं उसी रंग मय सब कुछ दिखाई देने लगता है जो कि वास्तव में भ्रम है।

अब हम जैन दर्शन में स्याद्वाद का उपयोग जिस सप्तभंगी की प्रणाली द्वारा किया गया है उस का संक्षेप में दिग्दर्शन कराते हैं, जिस पर पाठकों को गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिये। सप्तभङ्गी का स्वरूप श्री अकलंक देव ने निम्न प्रकार किया है:—

"प्रश्न वशादेकस्मिन्नेव वस्तुन्यविरोधेन विधि प्रतिषेध कल्पना सप्तभंगी"

—तत्वार्थ राजवार्तिक अ० १ सूत्र ६ वा० ५

अर्थात् एक ही वस्तु में प्रश्न के वश से युक्तिपूर्वक प्रत्यक्षादि प्रमाणों से विरोध रहित विधि रूप और निषेध रूप कल्पना करने को सप्तभंगी कहते हैं। वे सात भंग ये हैं--१. विधि कल्पना २.

प्रतिषेध कल्पना ३. क्रमशः विधि प्रतिषेध कल्पना ४. सह विधि प्रतिषेध कल्पना च ५. विधि कल्पना सह विधि प्रतिषेध कल्पना ६. प्रतिषेध कल्पना सह विधि प्रतिषेध कल्पना ७ क्रमाक्रमाभ्यां विधि प्रतिषेध कल्पना। —अष्ट सहस्री पृ० १२५

इन सात भंगों को हम प्रत्येक वस्तु के गुण या धर्म पर घटित कर सकते हैं। मान लीजिये—हमें वस्तु के अस्तित्व धर्म पर ही ये सात भंग घटित करना हैं तो इस प्रकार करेंगे—१. वस्तु स्वरूप से है २. पर रूप से नहीं है ३. वस्तु स्वरूप से है पर रूप से नहीं है (इस भङ्ग में क्रम से दोनों बातें कही गई) ४. किन्तु जब हमारी इच्छा यह होती है कि हम दोनों बातों (भंगों) को एक साथ कहें, किन्तु वचनों द्वारा एक साथ नहीं कह सकते, इस लिए दो बातों को एक साथ प्रगट करने की इच्छा में अनिर्वचनीय या अवक्तव्य शब्द द्वारा प्रगट करते हैं कि वस्तु किसी रूप से अनिर्वचनीय भी है। ५ जब हमारी इच्छा वस्तु के अस्तित्व प्रगट करने के साथ २ उसकी अनिर्वचनीयता के भी प्रगट करने की हो, तब कहना पड़ेगा कि वस्तु स्वरूप से होते हुए भी अनिर्वचनीय है। ६ इसी तरह जब हमारी विवक्षा वस्तु को दूसरी वस्तुओं के स्वरूप से रहित कहने के साथ २ अनिर्वचनीय कहने की भी हो तब कहेंगे कि वस्तु पर रूप से नहीं होते हुए अनिर्वचनीय भी है। ७. किन्तु हमारी इच्छा जब तीनों बातों को प्रगट करने की हो तब कहेंगे कि वस्तु स्वरूप से है और पररूप से नहीं है, ऐसा होते हुए भी अनिर्वचनीय है। उपर्युक्त सात भंगों में स्यात् या कथंचित् शब्द भी जोड़ना चाहिये जिसके जोड़ने का प्रयोजन यह होता है कि जिस बात को हम प्रगट कर रहे हैं उसके सिवाय और भी बातें या गुण इसी पदार्थ में विद्यमान हैं किन्तु वे इस समय गौण हैं, क्योंकि हमारी इच्छा अभी इसी बात को प्रगट करने की है, शेष को नहीं। यदि हम वस्तु के एक धर्म को प्रगट करते समय उसे कथंचित् रूप से प्रगट न करके सर्वथा रूप से (सर्व-दृष्टि कोणों से) प्रगट करने का हठ करेंगे अर्थात् इसमें तो केवल यही धर्म है ऐसा कहेंगे तो शेष सम्पूर्ण धर्मों (वस्तु के स्वभावों) का निषेध हो जाने से वस्तु की व्यवस्था ही न बन सकेगी, जैसा कि आगे चल कर दृष्टान्त से स्पष्ट हो जावेगा। इसी अभिप्राय को स्वामी समन्तभद्राचार्य ने वस्तु के सद्धर्म को लेकर आप्त मीमांसा में प्रगट किया है। *

उपर्युक्त सप्तभंगी को ऊपरी दृष्टि से देखने पर कुछ विरोध सा अवश्य दिखाई देता है; जैसे, जो सत् है वही असत् कैसा ? जो नित्य है वही अनित्य क्यों ? जो एक है वही अनेक किस तरह ? किन्तु इन प्रश्नों पर गंभीरतापूर्वक विचार करने से विरोधादिक की कोई बात ही न मिलेगी, क्योंकि युक्तिपूर्वक एक ही वस्तु में अविरोध रूप प्रतिषेधरूप और विधिरूप कल्पना करने को ही तो सप्तभंगी कहते हैं जिसका स्पष्टीकरण निम्न प्रकार है:—सुवर्ण द्रव्य स्वद्रव्य क्षेत्रकाल भावादिक की अपेक्षा है

* कथंचित्ते सदेवेष्टं, कथंचिदसदेव तत् । तथोभय मवाच्यं च नय योगान्न सर्वथा ॥ १४ ॥
सदेव सर्वं को नेच्छेत् , स्वरूपादि चतुष्टयात्। असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते ॥ १५ ॥
क्रमार्पित द्वया द्वैतं सहा वाच्यमशक्तितः। अवक्तव्योत्तराः शेषाः त्रयो भंगाः स्वहेतु तः ॥ १६ ॥

और चांदी लोहा पीतलादि की अपेक्षा नहीं है अर्थात् सोना तो सोना है लोहा पीतलादि नहीं है। पाठक सोचें कि इस "है" और "नहीं है" में कौनसा विरोध है? एक ही सोने में स्वरूप की अपेक्षा सत्व और चांदी आदि की अपेक्षा असत्व भी रहता है। यदि सोने में सर्व दृष्टियों से सत्व या अस्तित्व मान लिया जावे तब सोना ही चांदी भी, पीतल भी लोहा भी मनुष्य भी और सब कुछ हो जायगा। फिर अमुक द्रव्य अमुक ही है और अमुक नहीं, इसकी व्यवस्था कैसे होगी, जबकि एक वस्तु में अन्य वस्तुओं का अभाव न माना जायगा? इस तरह सारी वस्तु व्यवस्था ही नष्ट होजायगी और उनका समीचीन व्यवहार भी फिर कैसे चलेगा? अतः उक्त दोनों बातों को जोकि एक दूसरे की प्रतिपक्षी हैं, एक ही वस्तु में मानना ही पड़ता है और उनमें परस्पर में अविनाभावी संबंध हैं अर्थात् एक धर्म न माना जाय तो दूसरा भी फिर टिक नहीं सकता—रहेंगे तो दोनों ही, जैसा कि ऊपर कहा गया है। इसमें यह न समझना चाहिये कि तब तो हमें सोने को सोना कहते समय यह भी कहना चाहिये कि यह चांदी नहीं है, पीतल नहीं है आदि। किंतु बात यह है कि यह सब व्यवहार हमारी इच्छा पर निर्भर है, यदि हमारी इच्छा दोनों धर्मों को कहने की हो तो दोनों ही कह सकते हैं और एक को कहने की हो तो एक भी, परन्तु जिस धर्म का हम मुख्यता से प्रतिपादन करते हैं उस समय शेष धर्मों या भङ्गों की गौणता हो जाती है, निषेध नहीं। अस्तु, सोने में दो बातें सिद्ध हुईं, एक तो स्वरूप से सत्व और दूसरे पररूप से असत्व, अब यदि हमारी इच्छा यह हो कि हम दोनों बातों को एक साथ कहदें, किन्तु बचनों से एक साथ दो बातों का कथन न हो सकने से हमें यही कहना पड़ेगा कि सोना कथंचित् अनिर्वचनीय भी है अर्थात् सोने में एक गुण ऐसा भी है जो वचनों के द्वारा नहीं कहा जा सकता। यदि हम सोने को बिलकुल ही अनिर्वचनीय मान लेंगे तब तो वह अनिर्वचनीय शब्द द्वारा भी नहीं कहा जा सकेगा। इस तरह तीन भंग सोने में सिद्ध हो गये।

उपर्युक्त तीन भङ्गों को यदि पृथक् २ या दो २ को अथवा सबको मिला कर व्यवहार किया जावे तो अधिक से अधिक सात भङ्ग ही हो सकेंगे। पृथक २ तो तीन हैं ही, अब दो २ को मिला कर क्रमशः कहा जाय तो पहिले और दूसरे को मिला कर कहना पड़ेगा कि सोना स्वरूप से तो है और पर (चांदी आदि) की अपेक्षा नहीं है, अतः यह चौथा भङ्ग हुआ जिसे कथंचित्सत्वासत्व के नाम से कहते हैं। इसी प्रकार यदि हम पहिले और तीसरे भङ्ग को मिलाकर कहना चाहें तो क्रमशः यही कहेंगे कि सोना स्वरूप से है और अनिर्वचनीय भी है (इस भङ्ग द्वारा सोने के अस्तित्वके साथ २ हम उस अनिर्वचनीयता को भी प्रगट करना चाहते हैं जिसे दो समान धर्मों के कथन करने की इच्छा में वाचनिक असमर्थता के कारण नहीं कहा जा सका, अतः अनिर्वचनीय शब्द द्वारा ही व्यक्त किया)। यह पांचवां भङ्ग कथंचित्सत्वावक्तव्य नाम का हुआ। ऐसे ही यदि दूसरे और तीसरे भङ्ग को क्रमशः कथन करने की इच्छा है तो यही कहना पड़ेगा कि सोना चांदी पीतलादि नहीं है और अनिर्वचनीय भी है (इस भङ्ग द्वारा पररूप

के निषेध करने के साथ २ अनिर्वचनीयता को भी प्रगट किया गया,; यह छठवाँ भङ्ग कथंचित् अस्त्वावक्तव्य नाम का हुआ। किन्तु जब हम तीनों भङ्गों को (पहिले दूसरे और तीसरे को मिला कर क्रमशः) कहना चाहें तो ऐसा कहेंगे कि सोना स्वरूप से है पर रूप से नहीं है और अनिर्वचनीय भी है; यह सातवाँ भङ्ग हुआ। इस प्रकार वस्तु के प्रत्येक गुण के उसके प्रतिपक्षी धर्म को लेकर अनिर्वचनीयता के साथ सात २ भङ्ग ही हो सकते हैं। यथा हरीश सतीश और जगदीश ये तीन व्यक्ति हमारे सामने पृथक् २ या मिलकर उपस्थित हों तो अधिक से अधिक ७ प्रकार से ही हो सकेंगे—१. हरीश २. सतीश ३. जगदीश ४. हरीशसतीश ५. हरीश जगदीश ६. सतीश जगदीश और ७ वें हरीश सतीश जगदीश; इन सात से अधिक प्रकारान्तर हो ही नहीं सकता। यदि उक्त क्रमके विरुद्ध (जैसे हमने ऊपर हरीश और सतीश इन दोनों का चौथा भङ्ग या प्रकार बनाया वैसे ही) कोई पहिले हरीश को तो पीछे रखदे और सतीश को जो कि दूसरा है पहिले रखदे अर्थात् आगे का पीछे और पीछे का आगे करके रखदे और कहे कि यह सतीश और हरीश का आठवां भङ्ग बन गया, तब कहना पड़ेगा कि आगे पीछे बदल कर भी हमारी दृष्टि में आवेंगे वही हरीश और सतीश नाम के दो व्यक्ति; उन दोनों की स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। अतः यह आठवां काल्पनिक भङ्ग उपर्युक्त चौथे भंग में ही गर्भित हो गया। इसी तरह और भी आगे पीछे रखकर बनाये जाने वाले प्रकारान्तर उक्त सप्त भंग में ही सम्मिलित हो जायंगे तथा यही बात उक्त सत्वधर्म की सप्तभंगी में भी लागू होगी, चाहे विधि कल्पना को पीछे रखदें या प्रतिषेध कल्पना को; बदल कर रख देने पर भी अर्थ और अभिप्राय उक्त सप्तभंगी के अतिरिक्त न हो सकने से कल्पित अष्टमादि भंग उन्हीं में गर्भित हो जायंगे।

सप्तभंगी को ऊपर संक्षेप में वस्तु के अस्तित्व धर्म पर घटित किया गया है; इससे यह सिद्ध है कि जिस एक दृष्टिकोण से पदार्थ देखा जा रहा है वह इतर दृष्टिकोणों से निरपेक्ष न होना चाहिये, क्योंकि पदार्थ का स्वरूप अनेक स्वभाव और अवस्थात्मक है तथा उसे किसी खास दृष्टिकोण के अंतर्गत पूर्णतया नहीं लाया जा सकता, अतः एक दृष्टिकोण से होने वाला ज्ञान अंश रूप से ही वस्तु के वास्तविक रूप का द्योतक होगा। इसी आंशिक ज्ञान को, जो कि एक स्वभाव का निश्चयात्मक और इतर स्वभावों को गौण करने वाला है, जैन दर्शन में नय और पूर्ण ज्ञान को प्रमाण कहा गया है; इससे वे आंशिक ज्ञान परस्पर में सापेक्ष होने ही चाहियें। इसी बात को पंचाध्यायीकार ने भी पञ्चाध्यायी में स्पष्ट किया है*।

* सत्यं यावदनन्ताः सन्ति गुणा वस्तुनो विशेषाख्याः।
तावन्तो नय वादाः वचो विलासा विकल्पाख्याः॥ ५८९॥
अर्पितनिरपेक्षा मिथ्यास्त एव सापेक्षका नयाः सम्यक्।
अविनाभावत्वे सति सामान्य विशेषयोश्चसापेक्षात्॥ ५९०॥

—पञ्चाध्यायी।

जब कि नयात्मक आंशिक दृष्टिकोण प्रमाणात्मक दृष्टि की अपेक्षा करता है तब प्रमाणात्मक दृष्टिकोण नयात्मक दृष्टिकोण की भी अपेक्षा अवश्य करेगा। इसलिये जैन दर्शन में अनेकांतवाद भी सर्वथा रूपसे (सर्व दृष्टिकोणों से) स्वीकार न कर कथंचित् रूप से ही स्वीकार किया गया है क्यों कि जब प्रमाणात्मक दृष्टि से पदार्थ देखा जायगा तब नयात्मक दृष्टियां गौण हो जायँगी और इसी प्रकार नयात्मक दृष्टि से देखने पर प्रमाणात्मक दृष्टियां। इसलिये वस्तुएं कथंचित् एकांत और कथंचिदनेकांत रूप हैं।*

हम पहिले इस बात को कह चुके हैं कि वस्तु के सत्व या अस्तित्व स्वभाव की भांति वस्तु में होने वाले अन्य गुणों की भी उनके प्रतिपक्षी धर्मों को लेकर अनिर्वचनीयता के साथ २ सप्तभंगियां बन सकेंगी; जैसे सोना द्रव्य दृष्टि से कभी नष्ट नहीं होता, अतः नित्य है और चूंकि उसकी अवस्थाएं (हालतें) बदलती रहती हैं—कभी कान का कुंडल मिटकर हाथ का कड़ा बनता है तो कभी कड़ा गले का हार—इसलिये अनित्य भी है आदि।

इससे यह न समझना चाहिये कि उल्टी सीधी चाहे जैसी कल्पना कर लेना भी सप्तभंगी हो जायगी (चाहे वह कल्पना पदार्थ में घटित हो या न हो) जैसे अग्नि ठंडी भी है और गर्म भी, आदि। किन्तु कल्पना युक्तिपूर्वक वस्तु की यथार्थता की प्रतिपादक और विरोध रहित होना चाहिये; जैसे अग्नि के विषय में १. अग्नि गर्म है २. अग्नि ठंडी नहीं है, आदि २ की गई कल्पना भिन्न २ दृष्टिकोणों से अविरुद्ध और सत्य ठहरेगी। इसी भांति एक अनेक भेद अभेद आदि गुणों में भी अविरुद्ध कल्पनाएं होती रहेंगी और वे सबकी सब उपर्युक्त प्रणाली के अनुसार वस्तु स्वरूप की यथार्थता को दिखलावेंगी †।

अब हम स्याद्वाद (अनेकांत वाद) के अभाव में एकांतवादके द्वारा की गई वस्तु की व्यवस्था में, जो कि हठपूर्वक केवल एक स्वभाव रूप ही पदार्थों को सिद्ध करने का प्रयास करते हैं, कुछ दोष दृष्टांत के रूप में उपस्थित करते हैं। यदि सांख्य मतानुसार सम्पूर्ण पदार्थ सर्वथा नित्य ही हैं और अनित्य नहीं ऐसा मान लिया जाय तब जीवन और मरण कैसे होगा? संसार में परिवर्तन भी फिर कैसे हो सकेगा तथा पदार्थों में क्रियायें भी फिर न हो सकेंगी और न प्राचीनता व नवीनता का व्यवहार ही; इतना ही नहीं अब घट पैदा हुआ और अब नष्ट हो गया यह बात भी न बन सकेगी। यहां तक कि जिस हिंसा को सम्पूर्ण दर्शन एक स्वर से पाप कहते हैं उनसे भी डरने की फिर क्या आवश्यकता रहेगी जब कि जीव सर्वथा नित्य है और वह अवस्था रूप से भी नष्ट नहीं होता? इसी प्रकार बौद्ध मतानुसार यदि पदार्थों को सर्वथा

* अनेकांतोऽप्यनेकांतः प्रमाण नय साधनः। अनेकांतो प्रमाणान्ते तदेकान्तोऽर्पितान्नयात् ॥

—वृ० स्वयंभूस्तोत्रे स्वामी समंतभद्रः।

† एकानेक विकल्पादावुत्तरत्रापि योजयेत्। प्रक्रियां भंगिनीमेनां नयैर्नय विशारदः ॥ २३ ॥

—आप्तमीमांसा

क्षणिक (क्षण भर में समूल नष्ट हो जाने वाले) मान लें तब भी हिंसा से डरने की कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि जो हिंसा करता है उसका तो अभिप्राय नहीं है कि मैं हिंसा करूँ और जिसका अभिप्राय था वह पहिले ही नष्ट हो चुका तथा जो हिंसा कर रहा है; वह क्षण भर बाद नष्ट होजावेगा तब पाप का बंध किसी दूसरे को ही होगा व क्षणभर बाद उसके भी नष्ट हो जाने पर फल कोई दूसरा ही भोगेगा तब तो यह बड़े मज़े की बात रहेगी। यह तो हुई सैद्धान्तिक दोष की बात; लौकिक दृष्टि से भी विचार कीजियेगा—आज हम १०००) रु० सेठ बुद्धमल जी से ले आये; उक्त सिद्धान्तानुसार क्षणभर में नष्ट हो गये तथा सेठ जी भी चल बसे; फिर २ वर्ष या कुछ दिन बाद उस क़र्ज़ को कौन और क्यों चुकाता है ? क्योंकि क़र्ज़ के लेने और देने वाले तो उसी समय नष्ट हो चुके। इसी तरह आप वही हैं जो कल पार्क में मिले थे और मैं भी वही हूँ आदि २ सम्पूर्ण व्यवहार भी नष्ट हुआ, तब हम आपको और आप हम को कैसे पहिचान सकेंगे ? ये कुछ दोष हैं जो एकान्त पूर्वक पदार्थों को सर्वथा नित्य और अनित्य मानने में आही जाते हैं। इसी प्रकार और भी सर्वथा एक या अनेक भेद या अभेदादि रूप वस्तुओं के मानने में बहुत से दोष आते हैं जिनसे कि न तो वस्तु की यथार्थ व्यवस्था ही होसकती है और न उसका समीचीन व्यवहार ही तथा एकान्त रूप से जो ज्ञान होगा वह भी मिथ्या ही होगा। इसलिए लाचार होकर हमें स्याद्वाद या अनेकान्तवाद की शरण लेनी ही पड़ती है क्योंकि सम्पूर्ण पदार्थ ही अनेकान्तात्मक हैं। अनेकान्तवाद के द्वारा ही वस्तु की ठीक व्यवस्था हो सकती है और उसका समीचीन व्यवहार भी, क्योंकि वस्तु की प्रतीति ही वैसी होती है।

स्याद्वाद के उक्त सिद्धान्त को समझनेमें बड़े २ विद्वान् तक चक्कर खा जाते हैं और वे उसे न समझ सकने के कारण अपने मन में भ्रमपूर्ण कल्पनाएँ कर बैठते हैं तथा उसे शब्द जाल आदि २ कह कर मन को संतोष कर लेते हैं। ऐसे लोगों से हमारी नम्र प्रार्थना है कि वे इसे गंभीरता पूर्वक मनन करें और यदि वे ऐसा करेंगे तो उन्हें एक ऐसी कसौटी प्राप्त होगी जिस पर विश्व के बड़े से बड़े सिद्धांत कस कर वे खोटे खरे की परीक्षा कर सकेंगे।

समुद्रान्योक्ति !

[लेखक—पं० केशरलाल जी जैन, दर्शन-शास्त्री]

मा कुरु गुरुता गर्वं लघु-
रन्यो नास्ति सागर त्वत्तः।
जल संग्रह मन्यस्मात्त्वयि
सति कुर्वन्ति पोतस्थाः ॥

सम्पत्ति का सच्चा उपयोग परोपकार करना है। जो सम्पत्तिशाली होकर भी अपने धन का परोपकार में सदुपयोग नहीं करते उनका धनी होना व्यर्थ है। धनको एकत्रित करने वाले को अपेक्षा भी वह मनुष्य अधिक प्रसंशा के योग्य है जो उसका वास्तविक उपयोग करना भी जानता है। सचमुच ही इस मायामय संसार के हर ज़माने में ऐसे महापुरुषों की कमी होती है जो लक्ष्मी-पुत्र होकर लक्ष्मीपति भी हों। बल्कि इस के विपरीत दुनिया में ऐसे मनुष्य बहुत अधिक मिलते हैं जो अपनी थोड़ी सी सम्पत्ति पर फूले नहीं समाते और अभिमान में उन्मत्त रहते हैं। यदि अगाध समुद्र की जल राशि के समान किसी के पास विशाल सम्पत्ति भी हो तो भी उससे क्या लाभ, जब तक कि उससे दूसरों की आवश्यकता पूरी न की जाय। इसी उपर्युक्त आशय को ध्यान में रख कर एक कवि कह रहा है कि—

हे समुद्र तुम अपनी विशालता, अगाधता और बड़प्पन का अभिमान मत करो। तुम कहते हो मैं बहुत बड़ा हूँ, पर सच बात तो यह है कि संसार में तुम्हारे समान और कोई छोटा है हो नहीं। यह बात ठीक है कि तुम अगाध जल राशि के संग्रह हो, किन्तु इससे क्या हुआ? तुम्हारे ही निकट में प्रति समय रहने वाले ये नाविक तुम्हारी उपस्थिति में भी दूसरों से जल-संग्रह करते हैं, क्या यह उचित है? केवल संग्रह करने से कोई बड़ा नहीं होता—बड़प्पन का कारण तो त्याग और दान है। क्या यह लज्जा की बात नहीं है कि तुम्हारे ही पास रहने वाले नाविकों को प्यास बुझाने के लिये कहीं अन्यत्र जाना पड़े।

तृषां धरायाः शमयत्यशेषां,
यः सोम्बुदो गर्जति गर्जतूच्चैः।
यस्त्वेष कस्यापि न हन्ति तृष्णां,
सकिं वृथा गर्जति निस्त्रिपोऽब्धिः ॥ २ ॥

अगर कोई काम करके उसका बखान भी करे तो कोई हानि नहीं, यद्यपि उचित बात यही है कि कुछ काम किया जाय, बखान नहीं, पर जो वर्षते हैं वे गर्जते नहीं और जो गर्जते हैं वे वर्षते नहीं, यह बात बिलकुल सच है। "थोथा चना बाजे घना" वाली कहावत भी प्रसिद्ध है। जो काम करके बातें बनावे उसका कहना संसार को सत्य हो सकता है, किन्तु जो काम कुछ भी नहीं करे और व्यर्थ का गर्जन तर्जन करता रहे, संसार उसको कैसे बरदाश्त कर सकता है? कुछ भी हो, विश्वमें अधिकांश जन इसी प्रकार के मिलेंगे जो बिना कुछ किये ही ऐसा करने के अभ्यासी हैं। ऐसे ही लोगोंको लक्ष्यकर एक कवि समुद्र के लिये कह रहा है।

यह समुद्र बड़ा निर्लज्ज है। यह व्यर्थ ही गर्ज रहा है। अगर किसी की पिपासा शान्त कर

गर्जता तो किसी तरह उचित भी हो सकता था, किन्तु यहां तो वह कहावत चरितार्थ हो रही है कि लेने देने को कुछ नहीं पर बोलने को सबसे आगे। जो समुद्र पिपासाकुलों की प्यास को नहीं मिटा सकता उसका इस प्रकार गर्जने का क्या अधिकार है? हां जो पृथ्वीकी सम्पूर्ण तृष्णाको बुझाता है वह जीवनदाता मेघ यदि गर्ज रहा है तो कोई हानि नहीं। उसका गर्जना तो बहुत कुछ अंशों में उचित और सार्थक है। इसीलिये उसकी गर्जनाको सुनकर सारा स्थावर जंगम संसार हर्षोन्मत्त हो जाता है।

आदाय वारि परितः सरितां मुखेभ्यः
किंतावदर्जित मनेन दुरर्णवेन।
क्षारीकृतं च बडवा दहने हुतं च
पाताल कुक्षि कुहरे विनिवेशितं च ॥

यदि किसी ने सब ओर से धन एकत्रित कर लिया तो इससे क्या? अगर उस एकत्रित धनका कोई उपयोग न किया जाय या उसका दुरुपयोग कर दिया जाय अथवा उस ज़मीन में गाड़ दिया जाय, तो धनका उपार्जन करना बिलकुल व्यर्थ है। इसी आशय को लेकर कवि समुद्रान्योक्ति से कहता है कि—

नदियों के मुंह से अथवा अन्य जलाशयों से चारों ओर से जल ग्रहण कर इस दुष्ट समुद्र ने क्या किया, सिवाय इसके कि उस सारे जल को खारा बना डाला अथवा बड़वाग्नि में जला दिया और पाताल के गहरे गड्ढे में रख दिया। अगर यह ही जल नदियों या अन्य जलाशयों में रहता तो कुछ इसका उपयोग भी होता किन्तु समुद्र में आजाने के बाद से तो वह बिलकुल किसी भी काम का न रहा।

यद्वीचीभि, स्पृशसि गगनं यच्च पाताल मूलं,
रत्नै रुद्दीपयसि पयसा यत्पिधत्ते धरित्रीम्।
धिक् सर्वं तत्व जलनिधे यद्विमुच्याश्रुधारा-
स्तीरे नीर ग्रहण रसिकैरध्वगैरुज्झितोऽसि ॥

हे समुद्र! अपनी विशाल तरंगों द्वारा तेरा आकाश को छूना बिलकुल व्यर्थ है और तुम जो अपने रत्नों से पाताल मूल को उद्भासित करते हो उससे भी कोई लाभ नहीं और सारी पृथ्वी को तुमने जो अपने जलके द्वारा आवृत कर रक्खा है वह भी फ़िज़ूल है क्योंकि तुम्हारे पास आये हुए पिपासाकुलित पथिक केवल रोकर बिना जल लिये ही वापिस लौट जाते हैं। इसलिये तुम्हारा सारा वैभव किसी भी काम का नहीं है। जो धनी अपनी गगनस्पर्शी अट्टालिकाओं के द्वारा आकाश को छूलेता है और अपनी विशाल धन राशि को ज़मीन में गाड़कर पाताल मूल को भी उद्दीपित कर देता है और पृथ्वी पर भी अपना बहुतसा साम्राज्य फैला देता है तो उससे क्या लाभ? जब कि अर्थी उसके पास आकर बिना अपना मनोरथ पूरा किये ही चला जाता हो।

ग्रावाणो मणयो हरिर्जलचरो लक्ष्मीपयो मानुषी,
मुक्तौघाः सिकताः प्रवाल लतिकाः शैवालमम्भःसुधा
तीरे कल्प महीरुहाः किमपरं नाम्नापि रत्नाकरो
दूरे कर्णरसायनं निकटस्तृष्णापिनो शाम्यति ॥

समुद्र की दूर से बड़ी २ तारीफ़ें सुनी जाती हैं क्योंकि उसमें पत्थरों की जगह मणियें, जलचरों के स्थान में हरि और जलकन्या के स्थान में लक्ष्मी रहती है। मोतियों का समूह ही जहाँ बालुका है, प्रवाल लता ही जहाँ शैवाल है, अमृत ही जहाँ जल है, तीर पर जहाँ कल्पवृक्ष हैं, और तो क्या

जिसका नाम भी रत्नाकर अर्थात् रत्नों का ख़ज़ाना है, इस तरह जब दूर से प्रशंसा सुनते हैं तो कान तृप्त हो जाते हैं किन्तु कभी समीप आने का अवसर प्राप्त हो तो और क्या कमसे कम प्यास भी नहीं बुझती। यह ही बात धनिकों के सम्बन्ध में भी है। दूर से उनकी कथा बड़ी रोचक और मनोहर मालूम होती है, लेकिन भाग्यवश कभी उनके पास जाने का काम पड़ जाय तो और क्या कहें प्रसन्नता से वे बात भी नहीं करते।

संघ का प्रचार कार्य

संघ के महामंत्री पं० राजेन्द्रकुमार जी ४ सितम्बर को अम्बाला से चलकर ५ की दुपहर को स्यालकोट पहुँचे। यहां ५ की रात को और ६ की शाम को आपके दो भाषण हुए। प्रभाव अच्छा रहा। ९ व १० सितम्बर को आप फ़िरोज़ाबाद रहे। यहां ९ की दुपहर को आपका जैनधर्म की प्राचीनता पर एक प्रभावशाली भाषण हुआ। बाद को दो घन्टे शंका समाधान हुआ। रात्रि को जैन कर्म सिद्धान्त पर भी आपका एक प्रभावक व्याख्यान हुआ। १० की सबेरे जैनमन्दिर में आप की एक शास्त्र सभा हुई। इन सब हो का प्रभाव अच्छा रहा। इसके बाद आप कानपुर चले गये। यहां पर ११ की रात्रि और १२ के सबेरे इस प्रकार आपकी दो शास्त्र सभायें हुईं। उपस्थिति अच्छी थी, प्रभाव भी अच्छा पड़ा। इसके बाद आप १२ की दुपहर को पञ्जाब मेल से जबलपुर के लिये रवाना होगये। यहां आप १३ से १ अक्तूबर तक ठहरे। यहां प्रति दिन दुपहर के १० से १२॥ बजे तक आप तत्त्वार्थ सूत्र पढ़ते थे और रात्रि को १॥ घण्टा दशलाक्षिणी पर आपका विवेचन होता था। इसी बीच में एक दिन तारनपंथी चैत्यालय में भी आपका भाषण हुआ था। प्रभाव अच्छा रहा। जबलपुर की तारन समाज ने आपको एक अभिनन्दन पत्र भी भेंट किया है। दशलाक्षणी के बाद जैन बोर्डिंग में ईश्वरवाद पर आपका एक सार्वजनिक भाषण हुआ। आज की सभा के सभापति मध्यप्रान्त के प्रसिद्ध नेता पं० माखनलाल जी चतुर्वेदी सम्पादक कर्मवीर थे। उपस्थिति भी अच्छी और शिक्षित वर्ग की थी। व्याख्यान १॥ घन्टे तक हुआ। बाद में एक विद्वान ने ईश्वर के कर्तृत्व वाद पर कुछ शंकायें उपस्थित कीं, जिनका उनको समुचित उत्तर दे दिया गया। अन्त में सभापति महोदय ने भी आपकी विद्वत्ता और शान्त शैली की प्रशंसा की। जबलपुर में आपका एक भाषण स्त्री समाज में भी हुआ था। इसी बीच में आप दो दिन पनागर और एक दिन शाहपुरा भी गये थे। यहां भी आपके व्याख्यान हुए। पनागर के सरकारी स्कूल में आपका एक पब्लिक व्याख्यान हुआ। इन दोनों स्थानों पर आपके आने से वर्षों की दलबन्दियां दूर हो गईं और सबमें प्रेमभाव होगया। पनागर में आपने नवयुवक मण्डल की स्थापना और एक रात्रि की पाठशाला

का भी प्रबन्ध कराया है। पाठशाला के सम्बन्ध में शाहपुरा वालों ने भी आपको वचन दिया है। जबलपुर में आपके पधारने से यहां की समाज विशेषकर नवयुवकों में विशेष जागृति हुई है। करीब १०० भाइयों ने स्वाध्याय के नियम लिये और ४० ने नियमपूर्वक पढ़ना स्वीकार किया है। यहां पर भी एक रात्रि पाठशाला खोली गई है। जबलपुर की समाज ने सैकड़ों मनुष्यों की उपस्थिति में आपको एक अभिनन्दनपत्र भेंट किया और ५००) रुपये संघ की सहायतार्थ प्रदान किए। संघ की सहायतार्थ २५) रु० पनागर जैन समाज से भी प्राप्त हुए हैं। यहां से [illegible] अक्तूबर को चल कर एक दिन आप कटनी ठहरे। रात्रि को आपकी एक शास्त्र सभा हुई। दूसरे दिन वीर मण्डल और स्त्री समाज में आपके भाषण हुए। आज आपने जैन विद्यालय, वीर सेवकदल और उनके खेलों का निरीक्षण भी किया। ३ ता० की शाम को बम्बई मेल से आप बनारस के लिए रवाना हो गये। यहां आपने स्याद्वाद महाविद्यालय में एक भाषण दिया और जैन धर्म के सम्बन्ध में क्वीन्स कालिज के रजिस्ट्रार से भेंट की। आशा है सन् ३६ में परीक्षा प्रारंभ हो जायगी। बनारस से चल कर एक दिन आप घर ठहरे और फिर ८ अक्तूबर को अम्बाला पहुंच गये।

निवेदक—

मंत्री—उपदेशक विभाग

लन्दन मे नग्नसभा

योरुप में दिनों दिन नग्नता का प्रचार बढ़ता जा रहा है। अभी हाल ही में लन्दन के नज़दीक एक बगीचे में एक नग्न स्त्री पुरुषों की सभा हुई थी, जिसमें अनुमानतः २०० स्त्री, पुरुष और बालक सम्मिलित थे। इनमें कुछ युवतियाँ और कुछ बालिकाएं भी थीं। सबसे छोटा बालिका की अवस्था केवल छह वर्ष की थी, जिसे उसके माँ बाप ले गये थे। पुरुषों की संख्या स्त्रियों से अधिक थी। स्त्रियाँ पुरुषों से लगभग आधी संख्या में थीं। इसके अतिरिक्त नम्कन फार्मिष्ट पादरी लोग, सालीसीटर, डाक्टर, अध्यापक गण, बैंक के कलर्क, शिल्पी, सिविलकर्मचारी तथा अन्य कई व्यवसाय करने वाले लोग भी उपस्थित थे। सभापति महोदय ने नग्न खड़े होकर शान्ति स्थापित करने के लिए मेज़ को बड़े ज़ोर से मारा और महिलाओं और सज्जनों कहकर एक क्षण पर्यन्त अपने चारों ओर दूब पर नग्न बैठे हुए २०० नर नारियों का निरीक्षण किया। सभापति महोदय ने नग्नता के विरुद्ध जो बुरे भाव फैले हुए हैं, उनके विरोध में बहुत कुछ कहा। उस समय एक मनुष्य ने (धूप में तपने के कारण जिसके शरीर पर केवल चमड़ा ही रह गया था और जो केवल एक आँख का चश्मा लगाये हुए था) कहा—सुनो! सुनो!!

नेशनल सन तथा एयर एसोसियेशन की मन्त्रि महोदया श्रीमती लिली बड़ी शान्ति से सभापति के दूसरे आसन पर विराजमान थीं। जिस समय सभापति महोदय अपना व्याख्यान दे रहे थे, उस समय जापानी लोग धूप का चश्मा लगाये दूब पर लेटे हुए धूप खा रहे थे अर्थात् वे सब नग्न बैठे थे। उक्त वाटिका में शारीरिक व्यायाम का सामान भी लगा हुआ था। जब भाषण समाप्त हुआ, तब उसका भी प्रयोग किया गया।

REGD. NO. A. 2379

उर्दू-अंगरेज़ी जैन साहित्य !

यदि आप अंगरेज़ी या उर्दू में जैनधर्म का अध्ययन या प्रचार करना चाहते हैं तो कृपया विद्यावारिधि बैरिस्टर चम्पतराय जी द्वारा रचित निम्न लिखित पुस्तकों को खरीदिये :—

			Price Rs.
1.	The Key of Knowledge 3rd Edn.	Price Rs.	10 0 0
2.	The Confluence of Opposites 2nd Edn.	"	2 8 0
3.	The Jain Law.	"	7 8 0
4.	What is Jainism (Essays and Addresses)	"	2 0 0
5.	The Practical Dharma 2d Edn.	"	1 8 0
6.	The Sanyas Dharma	"	1 8 0
7.	The House Holder's Dharma	"	0 12 0
8.	Jain Psychology	"	1 0 0
9.	Faith, Knowledge and Conduct	"	1 8 0
10.	The Jain Puja (with Hindi Sanskrit Padaya)	"	0 8 0
11.	Rishabh Deo—The Founder of Jainism	"	4 8 0
12.	" (Ordinary Binding)	"	3 0 0
13.	Jainism, Christianity and Science	"	3 6 0
14.	Lifting of the Veil	"	3 6 0
15.	" [Ordinary Binding]	"	2 0 0
16.	Jainism and World Problems	"	1 0 0
17	Right Solution.	"	0 4 0
18.	Glimpses of a Hidden Science in original Christian Teachings	"	0 4 0
19.	Jaina Psychology	"	0 4 0
20.	Jaina Logic or Nyaya	"	0 2 0
21	Jaina Penance.	"	2 0 0
22.	जवाहराते इस्लाम प्रथम भाग उर्दू	"	0 8 0
23.	जवाहराते इस्लाम दूसरा भाग उर्दू	"	0 8 0
24.	इत्तहादुल मुखालफ़ीन उर्दू	"	1 0 0
25.	जैन लॉ	"	1 0 0
26	आत्मिक मनोविज्ञान	"	0 8 0
27.	श्रद्धा ज्ञान और चारित्र	"	0 8 0

विशेष के लिये कृपया पत्र लिखिये।

सब प्रकार के पत्र व्यवहार का पता :—

मैनेजर—दि० जैन शास्त्रार्थ संघ, अम्बाला—छावनी।

शान्तिचन्द्र जैन ने "चैतन्य" प्रिंटिङ्ग प्रेस, बिजनौर में छापकर प्रकाशित किया।

वर्ष २] १ नवम्बर १९३४ ई० [अंक ८

ॐ

श्री भा० दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुख-पत्र

ऑन० सम्पादक—
पं० चैनसुखदास जैन न्यायतीर्थ
अजितकुमार जैन शास्त्री पं० कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री

निवेदन

प्रेसपरिवर्तन के कारण पंजाब पोष्टल विभागसे दर्शनका रजिष्टर्ड नंबर प्राप्त करने में बहुत देर लग गई अतः यह आठवां अंक विलंबसे प्रकाशित हो रहा है आगामी अंक मेंइतना विलंब न होगा।

जिन महानुभावों का दर्शनकावार्षिक मूल्य समाप्तहो गया है वे कृपया मनीआर्डर द्वारा तीन रुपये भेजकर चार आने की बचतकरें। जैनदर्शन अब और अधिक मनोहर रूप में प्रकाशित होगा।

— अजितकुमार

अकलंक प्रेस मुलतान सिटी

एक वर्ष का मूल्य ३)] इस अंक का मूल्य ८)

जैन समाचार

श्रीमान संघपति सेठ पूनमचन्द जी घासी लाल आदि के शुभ उद्योग से प्रतापगढ़ नरेशने दशहरे पर होने वाली पशुबलि का अपने राज्य में निषेध कर दिया हैं।

बधाई- वीर अब दिवाली के बाद से साप्ताहिक रूप में प्रकाशित होगा इसके लिये वीर को बधाई है।

मेरठशहर में- उल्फतराय जी की प्रेरणा से जैन मित्र मंडलकी स्थापना हो गई है इस का प्रथम अधिवेशन शायद हस्तिना पुर में हो।

आवश्यकता निम्न दो स्थानों पर दो जैन कन्या पाठशाला के लिये अध्यापिकाओं की आवश्यकता है वेतन योग्यतानुसार दिया जायगा

मंत्री- जैन कन्या पाठशाला अम्बाला छावनी
ब० उल्फतराय जैन ठि० डा० धनपतराय जैन
(सदर मेरठ)

देश-विदेश के समाचार

—जबलपुरका समाचार है कि नदी के किनारे पतिड़ा गांवके एक खेतमें ३१॥ फ़ीट ऊंची मनुष्यकी ठठरी मिली है। इस हड्डियोंके ढचरे को रामगढ़के ज़मींदारने अपने महल में खड़ा करा दिया है और लोग उसे देखने को दूर २ से पहुंच रहे हैं। अकेले पैरोंका ही ऊंचाई १० फ़ीट है। इसको खड़ा करने में तीस आदमियों की सहायता की आवश्यकता पड़ी थी।

कलकत्ते में ज़मीन के नीचे रेल गाड़ी चलायी जायगी। इस में करीब चालीस लाख पौंड खर्च होगा। दस लाख पौंड का सामान बाहर से मंगाया जायगा। कलकत्ते शहर की कठिनाइयें लन्दन जैसी भूगर्भ रेल चलाये बिना दूर नहीं हो सकती यह कलकत्ता कार्पोरेशन के डाक्टर बी० एम० दे की राय है।

ऐसेम्बली के चुनाव में कहीं कहीं पर कांग्रेस को भारी विजय प्राप्त हुई है। मद्रास में सर सण्मुखम चेट्टी जो कि इस समय ऐसेम्बली के सभापति हैं कांग्रेसी उम्मेद्वार के मुकाबले में हार गये हैं।

बंबई में कांग्रेस का अधिवेशन बहुत भारी धूमधाम से हो गया। कांग्रेस के प्रधानका स्वागत जुलूस उस विराट सुन्दर रूपसे किया गया कि जैसा अब तक बंबईमें किसी का भी नहीं हुआ कांग्रेस दर्शकों की फीस से लग भग सवा दो लाख रुपया एकत्र हुआ। आगामी अधिवेशन लखनऊ में होगा।

—लैंसफ़ोर्ड (पेनसिलवानिया) में एककोयले की खान में किसी कारण ६१ वर्ष हुए आग लग गई थी। आग बुझाने की बेहद कोशिश के पश्चात भी वह आज तक जल रही है।

—जापानने बड़ी सस्ती मोटरकार निकाली है। दक्षिण अफ्रीका में वह केवल ६० पौंडको यानी ७८० रुपये को बिक रही है।

—जर्मनी एक ऐसा विशाल वायुयान तैयार कर रहा है जिस में २५०० मुसाफ़िर बैठसकेंगे और उनका सामान भी लद सकेगा। यह हवाई जहाज़ रेल गाड़ी के बराबरी में हो जायगा।

अमेरिका में बिना ड्राइवर के केवल रेडियो द्वारा रेल चलाने का परीक्षण किया गया और पहले पहल केवल सात मील तक यह रेल चलायी गयी। इस नये अविष्कारकी बदौलत एक जगह टेबल पर बैठे हुए एक आदमी अनेक गाड़ियों को बटन के इशारे से चला सकेगा। टेबल पर स्टेशनों के चिन्ह भी बने होंगे। जिस पर इशारा करते ही उसी नाम के स्टेशनपर गाड़ी रुक सकती है। इस आविष्कार के सफल हो जाने पर रेल कम्पनियों के बहुत से नौकरचाकरों आदि का खर्च बच जायगा।

श्री अकलंकदेवाय नमः

श्री जैनदर्शनमिति प्रथितोऽप्रशिमर्भर्षर्मीभवभिखिलदर्शनपक्षदोषः
स्याद्वादभानुकलितो बुधचक्रवन्द्यो भिन्दन्तमो विमतिजं विजयाय भूयात्

वर्ष २ | श्री कार्तिक वदी १०—गुरुवार श्री वीर सं० २४६० | अङ्क ८

आत्म-कामना

विश्वपते ! हे विघ्न विजेता ! नाम तुम्हारा लेता जो,
क्षण-भंगुर फूलों को तेरी पूजा में दे देता जो,
तेरा दिव्यालोक जहां पर रहता प्रतिपल हे जगदीश !
अविनश्वर वैभव का होता वहां नित्य नर्तन योगीश !
बाधामय हैं सब विभूतियां जीवन यह विपदामय है !
तेरी पद सेवा पर प्रभुवर ! सच मुच नित्य निरामय है।
सब बाधाएं, आकुलताएं, औविपदाएं हे स्वामिन !
हरकर, यहवरदे मुझ को तू हे मेरे अन्तर्यामिन
घटमय मेरा जीवन झटपट हो विनष्ट मिलजावे नाथ !
व्यापक शुद्ध अनन्त व्योम में बनकर ब्रह्म तुम्हारे साथ।

—चैनसुख दास जैन

आत्म तत्त्व।

(गतमांक से आगे)

कितने ही लोग प्राणवायु को ही चैतन्य (आत्मा) मानते है। उन का कहना है कि प्राणवायु ही चैतन्य है। जबतक यह शरीर में रहती है तबतक ज्ञान होता रहता है और उसके अभाव में ज्ञानप्राप्ति भी नष्ट हो जाती है। किन्तु ऐसा मानना संगत नहीं। क्योंकि प्राणवायु प्रति समय बदलती रहती है इस मुहूर्तमें जो प्राणवायु हमारे शरीर में मौजूद है अगले मुहूर्त में वह न रहेगी। इस लिये उस समय के अनुभूत का आगे के समयों में स्मरण न होना चाहिए। किन्तु ऐसा तो होता है नहीं। अतः आत्मा को प्राणवायु से अतिरिक्त मानना ही अधिक बुद्धिमत्ता का परिचायक है।

उक्त कथन से जो लोग इन्द्रियों के ही चैतन्य मानते हैं, उनका सिद्धान्त खण्डित होजाता है। क्योंकि चक्षुरादि इन्द्रियों ही के चेतनाशक्ति मानलेने से किसी कारण उनके भङ्ग हो जाने पर कभी भी स्मरणादिक की उत्पत्ति न होनी चाहिए। जिस (नेत्र आदि) ने अनुभव किया था उसका तो अभाव हो चुका, अब अनुभूत विषय का स्मरण करनेवाला रहा कौन? ऐसी स्थिति में यदि कोई अनुभूत पदार्थ को विषय करने वाला हो सकता है तो वह ज्ञान दर्शनात्मक चैतन्य (आत्मा) है। जब हम प्रत्यक्ष देखते है इन्द्रियों के समक्ष रहते हुए भी उपयोग के बिना ज्ञान नहीं होता। इसलिए इन्द्रियप्रवृत्ति का अधिष्ठाता उपयोगात्मक चैतन्य अवश्य ही इन्द्रियों से भिन्न सुनिश्चित है।

कितने ही लोग इन्द्रियों के चैतन्य न मानकर उक्त दोषके निवारणार्थ मनके चैतन्य की कल्पना करते हैं परंतु विचारकरने पर उनका यह पक्ष भी अधिक सुव्यवस्थित नहीं प्रतिभासित होता। **क्योंकि मनस्तत्त्वको इन्द्रियज्ञानका अनुभव** करनेवाला मानकर इन्द्रियों के ज्ञान हो जाने पर भी स्मरणादिक द्वारा ज्ञान सम्भव हो सकता है और इन्द्रियों के चैतन्य मान लेने के पक्ष में आये हुए दोषों का भी परिहार किया जा सकता है, किन्तु इतना होने पर भी इस सिद्धान्त का समर्थन करने वालों के लिये सुख दुखादि का अनुभव करने वाले अन्तस्तत्व भी कल्पना करना आवश्यक हो जाता है। मन को जब अनुभव करने वाला स्वीकार किया गया, तब वह सुख दुखादि का भी अनुभव करता है, यह नहीं माना जा सकता। मन को चैतन्य मान लेने पर मन ज्ञान का कर्ता सिद्ध होता है, और इन्द्रियां करण। सुख दुखादि का मन को ही कर्ता और मन को ही करण मानना उचित नहीं। क्योंकि इन्द्रिय अपेक्षा के बिना अनित्य ज्ञान उत्पन्न नहीं होता। हमें दर्शन स्पर्शन आदि जितने भी ज्ञान होते हैं, वे सब अनित्य हैं उन की उत्पत्ति इन्द्रियों के आश्रय से होती है। पाँचों इन्द्रियों के पाँच विषय नियत हैं। ये पांचों इन्द्रियां बाह्य विषयों से सम्बन्ध रखती हैं। सुख दुःखादि का ज्ञान इनका विषय नहीं है। इन के ज्ञान के लिये अन्य इन्द्रिय की आवश्यकता है, उसे यदि मन या अन्तरिन्द्रिय कहा जाय, तो इस ज्ञान का कर्ता भी अवश्य ही होना चाहिए। जो इन का प्रयोक्ता माना जायेगा हम उसे ही आत्मा कहते है। जो लोग मन को अणु या मध्यम परिमाणवाला मानते हैं, उनके मत में और भी अनेक

दोष उपस्थित होजाते हैं। क्योंकि मन अणु और ज्ञान के प्रति महत्त्व को कारण होना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में एक बात यह भी विचारणीय है अणु मन को ही आत्मा मान लेने पर एक समय में चेतन्य सम्पूर्ण अङ्गों में व्याप्त नहीं हो सकता। एक समय में एक अङ्ग विशेष ही चेतन रहेगा और अन्य सब अङ्ग अचेतन। यदि ऐसा ही होवे तो वेदना—सुख दुखादि का ज्ञान भी एक समय में सब अङ्गों में न होना चाहिए। इसलिए मन के चैतन्य पक्षमें अनेक दोष आ जाने के कारण आत्म-तत्त्व की मन के अतिरिक्त सत्ता स्वीकार करलेना ही श्रेयस्कर है।

उल्लिखित सिद्धान्तोंके अतिरिक्त स्वतन्त्र आत्मतत्त्व की सत्ता स्वीकार न करने वाले भारतीय विद्वानों के और भी अनेक मत उपलब्ध होते हैं, जिनका बहुत कुछ अंशों में पूर्वोक्त सिद्धान्तों से साम्य है। विशेष भेद न होने के कारण हमने उन पर प्रकाश डालना उपयुक्त न समझकर यहाँ उल्लेख नहींकिया है। भारतीय विद्वानों के अतिरिक्त अधिक पाश्चात्य दार्शनिक भी आत्म-तत्त्व की स्वतन्त्र सत्ता मानने लगे हैं जो विद्वान उस की स्वतन्त्र सत्ता नहीं मानते, उनके सिद्धान्तानुसार आँख के स्नायु से रूप का मेल होने पर स्नायु में भरे हुए एक प्रकार के तरल पदार्थ में कम्पन उत्पन्न होता है। यह कम्पन एक प्रकार का प्रवाह उत्पन्न करता है। मस्तिष्क के केन्द्र या स्नायुओं को आघात पहुंचाता है। यही दर्शन प्रत्यक्ष है। रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द द्वारा यथाक्रम जीभ, नाक त्वचा और कान की स्नायुओं से सम्मिलित हो कर ऊपर कहे हुए प्रकारानुसार रासन, घ्राणज, स्पार्शन और श्रावण प्रत्यक्ष उत्पन्न होते हैं। क्रमशः निर्विकल्प ज्ञान से सविकल्प ज्ञान की उत्पत्ति होती है। इनके मतमें मनुष्य एक ही प्रकार का स्नायविक यन्त्र है। बाहिरी जगत् की शक्ति के द्वारा यह अनवरतभाव यन्त्र चला करता है। गति, स्थिति और अनुमति इस यन्त्र के कार्य हैं। स्नायविक उत्तेजना किस प्रकार ज्ञान में बदल जाती है, इसकी मीमांसा अभी तक यह लोग नहीं करसके। यूरोप के कोई कोई दार्शनिक ज्ञान-समूह को तो मानते हैं किन्तु ज्ञान के आश्रय आत्मा को नहीं मानते। स्थिर आत्मा को स्वीकार किये बिना स्मरण, प्रत्यक्ष, प्रत्यभिज्ञान आदि बातें असम्भव हो जाती हैं।

भारतीय दार्शनिकों में बौद्ध भी किसी नित्य या स्वतन्त्र आत्म-तत्त्व की सत्ता स्वीकार नहीं करता। बौद्ध क्षणिकैकान्तवादी है, अतः वह क्षणान्तर में विनष्ट होनेवाले सन्तान के अतिरिक्त अन्य किसी आत्म-तत्त्व की सत्ता स्वीकार नहीं करता। जगत को क्षणभंगुर समझकर वह विचार करता है इसमुहूर्त में मैं विद्यमान हूँ, दूसरे मुहूर्त में मैं न रहूंगा। जगत् की प्रत्येक वस्तु का प्रथम क्षणमें उदय द्वितीय में स्थिति और तृतीय में विलय होजाता है। मृत्यु काल में सब संस्कार परम्परा नष्ट हो जाती है अतः बौद्ध के सिद्धान्तानुसार आत्मा का भी उच्छेद होजाता है। इस को स्पष्ट रूप में समझना चाहिए बौद्धों के चार भेद हैं माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाषिक इन में माध्यमिक शून्यवादी है, वह किसी भी पदार्थ की सत्ता यथार्थ नहीं मानता। परमार्थ दृष्टि से उस मत के अनुसार जड़ और चेतन कुछ भी नहीं है जगत् शून्य है और संसार अलीक। किन्तु योगाचार ऐसा नहीं मानता, वह विज्ञानाद्वैत वादी है, उसकेमत में यहाँ विज्ञान के अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ का अस्तित्व नहीं है। ज्ञान ही एक यथार्थ है, किन्तु वह भी क्षणिक है—वह ऐसा मानता है। इसी के आधार पर 'क्षणिक विज्ञानमेवात्मा' यह बौद्ध सिद्धान्त स्थापित किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि उत्तरोत्तर क्षण में पूर्व पूर्व क्षण का ज्ञान संक्रान्त अविच्छिन्न प्रवाह उत्पन्न करदेता है और यही सन्तान परम्परा आत्मा है। सौत्रान्तिकसम्प्रदाय के बौद्ध ज्ञान को स्वीकार करते हैं और यह भी मानते हैं कि हम

बाह्यार्थ का प्रत्यक्ष नहीं कर सकते तथापि ज्ञान के द्वारा उस का अनुमान कर सकते हैं। वैभाषिक बाह्यार्थ और ज्ञान दोनों को स्वीकार करते हैं। बौद्ध नैरात्म्यवादी है उसने स्वतंत्र नित्य आत्म-तत्व की सत्ता क्यों नहीं स्वीकार की, इस विषय पर हम आगे चल कर विचार करेंगे।

यहाँ अब हम नैरात्म्यवादियों की चर्चा को समाप्त करके यह बतलादेना चाहते हैं कि आत्मतत्व वादियों (आस्तिकों) का इस सम्बन्ध में क्या सिद्धान्त है।

आत्म-तत्व वादियों के इस सम्बन्ध में हमें दो सिद्धान्त उपलब्ध होते हैं। एक मानते हैं 'इस संसार में केवल चैतन्य ही की सत्ता विद्यमान है। घट पट आदि सब चैतन्य के अतिरिक्त किसी जड़ पदार्थ की सत्ता ही नहीं है। दूसरों का कहना है कि जड़ से चेतन और चेतन से जड़ की उत्पत्ति नहीं हो सकती। जड़ और चेतन दोनों ही की सत्ता भिन्न-भिन्न मानना अवश्य है। जड़ और चेतन के योग से ही उस जीव जगत का प्रादुर्भाव हुआ है। इन में पूर्वपक्ष का केवल वेदान्त दर्शनसमर्थन करता है द्वितीय पक्ष को सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, जैन सभी दर्शन स्वीकार करते हैं।

वेदान्त दर्शन का सिद्धान्त है कि इस जगत में ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी भी पदार्थ की सत्ता ही नहीं है। यह सम्पूर्ण प्रपञ्च ब्रह्म ही का विवर्त है, अर्थात् घट, पट आदि पदार्थ ब्रह्म ही के पर्याय हैं। आत्मा या जीव ब्रह्म ही का अंश मात्र है। पर ब्रह्म सदा सर्वथा निर्लेप है। माया या माया के कार्यों से सम्बद्ध हुए ब्रह्म या आत्मा को जीव कहते है। यह ब्रह्म सम्पूर्ण विश्व में अनन्तरूप से व्याप्त है। किसी भी जीव के आवागमन की कल्पना औपचारिक है। स्थूल शरीर के उत्पत्ति या नाश को आत्मा पर आरोपित कर के उस के आने-जाने की कल्पना करलीजाती है। प्रति शरीर में उसके भिन्न प्रति-भास का कारण अविद्या है। वास्तव में जीव और ब्रह्म एक ही है। जो ब्रह्म का लक्षण है, जीव भी तद्रूप ही है।

सांख्य दर्शन कार का मत है कि प्रकृति और पुरुष मुख्यरूप से ये दो ही तत्व इस संसार में व्याप्त हैं। प्रकृति अचेतन है और पुरुष चेतन। इन दोनो ही का अस्तित्व अनादि काल से है। शुद्ध पुरुष निर्लेप है वह न कर्ता है न भोक्ता। प्रकृति का संसर्ग रहते हुए ही उसे सुख दुखादि का अनुभव होता है। इस लिये कहा जा सकता है कि इस जीव की अभिव्यक्ति पुरुष केसाथ में प्रकृति का संयोग होने पर ही हुई है यह चेतना का अधिष्ठान, कर्ता, भोक्ता, आदि सब कहा जा सकता है। इस सम्बन्ध में इतना विशेष समझ लेना आवश्यक है कि पुरुष स्वभाव से ही चैतन्य आदि गुण विशिष्ट था, किन्तु कर्म का उस के पास कोई साधन नहीं था। इधर प्रकृति कार्य करने वाली मानी गई है, परन्तु अचेतन होने के कारण वह कार्य करना नहीं जानती थी जब इन दोनों का संयोग हो गया तब अन्धे और लंगड़े की भांति (अर्थात दोनों के संयोग से) पुरुष कार्य करने में समर्थ हो गया। पुरुष नाना है अर्थात प्रति शरीर में भिन्न भिन्न हैं। इन को ही सर्व साधारण आत्मा या जीव आत्मा कह देते हैं।

योग दर्शन के सिद्धान्त सांख्य शास्त्र से प्रायः मिलते जुलते हैं। आत्म तत्व के सम्बन्ध में भी उन में साम्य ही है। योगदर्शन में महर्षि पतंजलि ने कहा है कि आत्मा अपरिणामी है और बुद्धि परिणामशील है। आत्मा के प्रतिबिम्ब से बुद्धि चेतना का सा अनुभव करने लग जाती है और बुद्धि की प्रतिच्छाया से आत्मा भी बुद्धि मय हो जाती है। इसी कारण से आत्मा को दुखादि का अनुभव करना पड़ता है, जब तक वह यम नियमादि के अभ्यास द्वारा अपने स्वरूप को न पहिचान लेवे।

न्याय और वैशेषिक दर्शन के सिद्धान्त बहुत मिलते जुलते हैं, आत्मा के सम्बन्ध में उन में और भी

अधिक समानता है। इस लिये उन के सिद्धान्तोंको अलग अलग न लिख कर एक बार ही लिख देना उपयुक्त समझते हैं। इस दर्शन में ज्ञान के अधिकरण अर्थात आधार को आत्मा माना गया है। आत्मा के दो भेद हैं। एक जीवात्मा और दूसरा परमात्मा। परमात्मा ईश्वर को माना गया है, जो सर्वज्ञ है एक है और सुख दुख से रहित है। जीवात्मा को प्रत्येक शरीर में भिन्न भिन्न स्वीकार किया है। यह जीवात्मा विभु (व्यापक) और नित्य है। अर्थात स्वरूप से इस का कभी विनाश नहीं माना गया है। सुख, दुख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म अधर्म और ज्ञान ये जीवात्मा के गुण हैं। जीवात्मा का ज्ञान जन्य है, अर्थात वह उत्पन्न होता है और ईश्वर में ज्ञान अजन्य है। इसी लिये उसे नित्य ज्ञान का अधिकरण कहा गया है। जीव स्वकृत अदृष्ट- धर्म- अधर्म, या पुण्य पाप के परतन्त्र है। जिस जीव का जैसा अदृष्ट होता है, उसे वैसा ही फल मिलता है। यह शरीर का अधिष्ठाता है, इस के सम्बन्ध से ही शरीर में चैतन्य व्याप्त है। आत्मा का देह के साथ में संयोग होने पर ही इन बुद्धि आदि गुणों की उत्पत्ति होती है, इस लिये तत्वज्ञान हो जाने पर मुक्ति काल में ये सब गुण भी नष्ट हो जाते हैं।

अब हमें यहां विचार यह करना है कि आत्म-तत्व-वादी दार्शनिकों के सिद्धान्तों में भी विषमता क्यों है? क्या यह परस्पर नितान्त विरुद्ध हैं? यदि इनका कथन परस्पर विरुद्ध है, तब तो ये सब मिथ्या होने चाहिए। यदि इन में भी कोई समता है तो वह कैसी और इन के किस अन्तर्निहित रहस्य को सूचित करती है?

विचार करने से प्रतीत होगा कि बौद्धों केनैरात्म्य-वाद की कल्पना रहस्य पूर्ण है। और दार्शनिक संसार को उस का यथेष्ट सम्मान करना चाहिये। सभी विद्वान इस बात को स्वीकार करेंगे कि चार्वाक के नैरात्म्यवाद से बौद्धों के इस सिद्धान्त में बहुत अधिक गम्भीरता है, बहुत कुछ सोच विचार करने के पश्चात यह निश्चित किया गया है, इस का अन्तर्हित रहस्य यही होना चाहिए कि बौद्ध सर्वथैकान्तवादी है, एकान्त ही का उसे पक्ष लेना है। इस लिए एक दृष्टि कोण से उस ने अपने सिद्धान्तों का निरूपण किया है। क्षणिक विज्ञान में अनादि अनन्त नित्य आत्म तत्व चर्चा के भी लिये कोई स्थान अवशिष्ट नहीं रह जाता इस लिए नैरात्म्य सिद्धांत स्थापित करने के अतिरिक्त उसे निर्वाहके लिये और चारा ही क्या है यही बात शून्यवाद के सम्बन्ध में भी है। जब दृश्य मान जगत ही में शून्यता की भावना उत्पन्न करने का विचार करने लगे, तब कोई किसी सत्ता विशिष्ट पदार्थ को स्वीकार करने के लिये कैसे तयार होगा वह तो यही कहेगा कि 'सर्वं शून्यमिदं जगत' किन्तु इन बातों से आत्म तत्व के अस्तित्व की यथार्थता लुप्त नहीं हो जाती क्षणिक विज्ञान पक्ष में कृत प्रणाश और अकृताभ्यागम आदि दोष आये बिना नहीं रह सकते। कौन बुद्धिमान इस पक्ष का समर्थन करने के लिये तैयार होगा कि पुण्य कृत्य कोई करे और उसका फल उसे न मिल कर दूसरे को मिले या पाप कोई और ही करे और उस का दण्ड किसी अन्य व्यक्ति को मिले। शून्यैकान्त पक्ष के अभिमानियों के लिये संसार यातनाओं से छुटकारा पाने के लिये जगत में शून्यता की भावना करना तो प्रत्यक्ष विरुद्ध है।

वेदान्तके सिद्धान्तमें भी एक खास बात है। वेदान्त ब्रह्माद्वैतवादी है इस लिये इस संसार में पर ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ का अस्तित्व स्वीकार करना उन के लिये अभीष्ट नहीं ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य सब पदार्थों को असत सिद्ध कर देना ही उन का एक उद्देश है ऐसी स्थिति में यदि वे आत्मा को ब्रह्म से भिन्न स्वीकार न करें तो कौनसा बड़ा आश्चर्य है। अखिल विश्व में ब्रह्म की प्रतिच्छाया देखना यह वेदान्त का मौलिक सिद्धान्त है। संसार में इस सिद्धान्त का यथेष्ट आदर भी हुआ है। चार्वाकने शरीर ही को आत्मा माना। न्याय और वैशेषिक ने शरीर

से पृथक आत्म तत्त्व की सत्ता स्वीकार की और जीवात्मा को सुख दुख का भोक्ता भी बताया। सांख्य ने पुरुष को निर्लेप माना- कर्ता भोक्ता आदि गुण रहित स्वीकार किया. जीवात्मा का काम प्रकृति के संसर्ग विशिष्ट पुरुष या लिङ्ग शरीर में लिया वेदान्त ने इसी विचार को और भी अधिक उच्च बना देने की चेष्टा की, केवल एक परब्रह्म की कल्पना करके पूर्व के विचारों को उच्चतम श्रेणी पर पहुंचा दिया। वेदान्त दर्शनकारों ने सांख्य के विचारों में इस त्रुटि का अनुभव किया कि देश, काल, कारण रहित पुरुष अनेक नहीं हो सकते इस लिए एक निर्गुण परब्रह्म की ही सत्ता स्वीकार कर ली जाय तो उत्तम हो। मैं समझता हूँ अब पाठक उल्लिखित सिद्धान्तों और उनकी त्रुटियों को अच्छी तरह समझ गये होंगे मेरे कथनानुसार उक्त सिद्धान्तों में कोई भी पूर्ण नहीं है उन में कोई न कोई त्रुटि अवश्य रह गई है एक विचार शील विद्वान इन में से किसी को भी विना कोई आपत्ति उपस्थित किये सहसा स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हो सकता। विवेकशील उसी बात को मानने के लिये तैयार हो सकता है जिस में कुछ मिथ्यांश न हो और तात्विक वस्तु को कहने वाली हो। जैनाचार्यों ने अन्य सब दर्शनकारों की त्रुटियों का अच्छीतरह अनुभव किया और तत्पश्चात अपने सर्व मत अविरुद्ध सिद्धान्त को स्थापित किया।

जैनाचार्यों का कहना है कि जीव ज्ञानदर्शनात्मक, चेतना स्वरूप है। यह शरीरधारी भी है अशरीरी भी है। शून्य भी है पूर्ण भी है, नित्य भी है, अनित्य भी है,एक भी, अनेक भी है, क्षर भी है, अक्षर भी है, सूक्ष्म भी है, स्थूल भी है, व्यापक भी है, अव्यापक भी है, बद्ध भी है, मुक्त भी है,। इन के अतिरिक्त वह और भी अनेक धर्म विशिष्ट है। इन परस्पर विरुद्ध धर्मों का एक ही जीवात्मा में रहना विरुद्ध सा प्रतिभासित होता है किन्तु विचार करने पर शंकायें निवृत्त हो जाती हैं। अशुद्ध अवस्था में जीव शरीराश्रित ही रहता है इस लिये शरीर का संसर्ग रहने के कारण वह उपचार से शरीरी भी कहा जा सकता है किन्तु उपचार की प्रवृत्ति सत्य नहीं होगी शुद्ध स्वरूप की अपेक्षा जीव के किसी भी शरीर से सम्बन्ध नहीं इस लिये वह अशरीरी भी है। पर द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव की अपेक्षा रहित है, इसलिए शून्य भी है, समस्त ज्ञान, दर्शन सुख आदि गुणों से भरा हुआ है इस लिए पूर्ण भी है। द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा इस का कभी भी विनाश नहीं होता इस लिये नित्य भी है। पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से इस का प्रति समय विनाश होता रहता है, इस लिये अनित्य भी है। पर पदार्थों से भिन्न है, इस लिए शुद्ध निश्चय नय की अपेक्षा एक भी है। पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा इस की अनेक अवस्थायें हैं इसलिए अनेक भी है। प्रति समय इस की पर्यायें बदलती रहती है, इस लिए क्षर भी है। निश्चयरूप से इस के स्वरूप में कभी भी कुछ विकार नहीं होता, इस लिए अक्षर (अविनाशीक) भी है अमूर्तिक जीव को हम नहीं देख सकते इसलिये सूक्ष्म भी है। केवल दर्शन और केवल ज्ञान प्राप्त हो जाने पर देखा जा सकता है, इस लिये स्थूल भी है.। आत्म प्रदेशों के लोकाकाश प्रमाण होने के कारण वह व्यापक भी है। साधारण जीव अपने शरीर प्रमाण ही रहता है, इस लिये अव्यापक भी है। संसारावस्था में जीव हमेशा पूर्वोपार्जित कर्मों का फल भोगता रहता है और नवीन बांधता रहता है, इस लिये बद्ध भी हैं। जीव के स्वाभाविक स्वरूप विचार किया जाय तो यह मुक्त भी है। इसी प्रकार अनादि और आदि सान्त और अनन्त आदि कर्ता और अकर्ता आदि धर्मों पर भी विचार कर लेना चाहिए। इस प्रकार अनेक धर्मात्मक स्वरूप मान लेने पर कोई भी विरोध उपस्थित नहीं हो सकता। जैनाचार्यों ने जीव के सम्बन्ध में उपस्थित होने वाली सम्पूर्ण तर्कणाओं पर ध्यान दिया है, और अन्य दर्शनों के सिद्धान्तों में रही हुई कमजोरियों से मुक्त रहने का प्रयास किया है। जैन सिद्धान्त में

आत्मा के सम्बन्ध में जिन विशेषताओं को स्थान मिला है, उन पर विवेचन करने के लिये यहाँ पर्याप्त स्थान नहीं है अतः हम इसके सम्बन्ध में यहाँ कुछ भी लिखना नहीं चाहते।

अन्त में इस बात पर भी थोड़ा सा प्रकाश डालना अनुपयुक्त न होगा कि जीवात्मा की कल्पना ही क्यों की जाय? जो लोग आत्मा को नहीं मानते उनका भी काम तो चलता ही है, फिर इस अनावश्यक तत्व को मानने से लाभ ही क्या है? किन्तु बात ऐसी नहीं है आत्म तत्व की कल्पना अनावश्यक नहीं है और आत्म तत्व भी कल्पित नहीं है। अनादि-अनन्त, कर्ता-भोक्ता आत्मा की सत्ता स्वीकार बहुत अधिक आवश्यक है। संसार को शान्ति का साम्राज्य इस स्थायित्व पूर्ण पदार्थ की सत्ता स्वीकार करने पर ही सम्भव है। कर्तृत्व और भोक्तृत्व विश्व पहेली को सुलझाने के उत्कृष्टतम साधन बनाये गए हैं। हमारे जीवन का सम्पूर्ण क्रम इसी के विश्वास पर अवलम्बित है। इस सम्बन्ध में अपने विशेष विचार हम आगे लिखेंगे

—श्री प्रकाश जैन, न्याय तीर्थ

अनेकान्तवाद की व्यापकता और चारित्र

(ले०—पं० कैलाश चन्द्र जी जैन शास्त्री)

जेण विणा लोगस्सवि ववहारो सव्वहा ण णिव्वडइ
तस्स भुवणेक्क गुरुणो णमो अणेगंत वायस्स।

अचार्य सिद्धसेन

जिसके बिना लोक का भी व्यवहार सर्वथा नहीं बन सकता उस भुवनैकगुरु अनेकान्तवाद को नमस्कार हो।'

जहां जैन शासन के प्रभावक आचार्य सिद्धसेन जिनसेन सरीखे आचार्य जिनकी सूक्तियों को वृषभ नाथ भगवान की सूक्तियों के समान 'निष्तुषा' बतलाते हैं तथा अन्य अनेक जैनाचार्यों ने महती श्रद्धा के साथ जिनका संस्मरण किया है— अनेकान्त वाद के बिना लौकिक व्यवहार का चलना अशक्य बतलाते हैं वहां आज कल के कुछ विद्वान वस्तु तत्व की मीमांसा तक ही अनेकान्त वाद को सीमित करना चाहते हैं उनका कहना है कि, वस्तु तत्व की विवेचना में ही अनेकान्त का उपयोग किया जाता है, चारित्र में—आचार और व्यवहार में—उस का उपयोग नहीं हो सकता। गोया, चारित्र वस्तु तत्व की सीमा से बाहिर है अवस्तु है

क्या चारित्र अवस्तु है?

जैन वाङ्मय में अवस्तु नाम की कोई स्वतंत्र चीज़ ही नहीं है। वहां तो भिन्न दृष्टि कोण से वस्तु ही अवस्तु कही जाती है—

'वस्त्वेवा वस्तुतां याति प्रक्रियाया विपर्ययात्'

स्वामी समन्तभद्र

जब चारित्र अवस्तु नहीं है फिर वह है क्या बला? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए आचार्य कुन्दकुन्द लिखते हैं 'चारित्तं खलु धम्मो' चारित्र ही धर्म है! जब वस्तु धर्म में अनेकान्त का उपयोग किया जा सकता है तब आत्म धर्म चारित्र को उस से क्यों वंचित कर दिया जाना चाहिये? इस का उत्तर मेरी अल्पमति में नहीं समाता! शायद कोई कहे, 'अनेकान्त'

शब्द का अर्थ अनेक धर्म होता है । जबयह कहा जाता है कि, वस्तु अनेकान्तात्मक है तब उस का यही आशय होता है कि वस्तु अनेक धर्मात्मक है। ऐसी दशा में अनेकान्त वाद का उपयोग वस्तु में ही किया जा सकता है—वस्तु धर्म में नहीं किया जा सकता। चरित्र वस्तु नहीं है—वस्तु का अंश—धर्म—है । यदि धर्म में भी अनेकान्त वाद का प्रयोग किया जायेगा तो अनवस्था होजायेगी, क्योंकि यदि वस्तु का प्रत्येक धर्म अनेकान्तात्मक है तो धर्म में रहने वाले अनेक धर्म भी अनेक धर्मात्मक अवश्य ही होंगे ।

उक्त आक्षेप के समाधान के लिए धर्म और धर्मी के पारस्परिक सद्भाव पर एक सरसरी दृष्टि डालना आवश्यक है । धर्म और धर्मी दो स्वतंत्र वस्तुएं नहीं हैं—दोनों की सत्ता एक है । धर्म या गुणों का अखण्ड पिण्ड ही धर्मी कहलाता है, ऐसी दशा में कोई धर्म सर्वथा धर्म ही नहीं कहा जासकता—आज जो स्व-धर्मी अपेक्षा से धर्म कहा जाता है, वही धर्मान्तर की अपेक्षा से धर्मी भी कहा जा सकता है । इस में अनवस्था दोष का भय नहीं है, क्यों कि धर्म-धर्मी का भेद व्यवहार अनादि-अनन्त है, और अनादि-अनन्त वस्तु में अनवस्था दोष नहीं समझा जाता । अतः चारित्र यद्यपि वस्तु का धर्म है, फिर भी उस में एक अनेक, भेद, अभेद, नित्य, अनित्य आदि वस्तु धर्मों की तरह अनेकान्त वाद का प्रयोग अपरिहार्य है । अनेकान्त वाद का उपयोग सतमात्र में किया जाता है, इस विषय में अनेक शास्त्रीय प्रमाण उपलब्ध हैं ।

जिनेन्द्र देव की दिव्यध्वनि को 'स्याद्वाद नय संस्कृत' बताया गया है और इसी लिये जिनेन्द्र देव को 'स्याद्वादी' १ और उनकी दिव्यध्वनिके आधारपर ग्रथित द्वादशाँगको स्याद्वादनयगर्भित या 'स्याद्वाद' २ के नाम से सम्बोधित किया जाता है। जैसा कि देव शास्त्र गुरू की पूजन के समय भी 'स्याद्वाद नय गर्भित द्वादशाङ्ग श्रुत ज्ञानाय' बोल कर द्रव्य चढाया जाता है द्वादशाँग में केवलएकत्व नित्यत्व का ही विवेचन नहीं होता प्रत्युत उसका बहुभाग श्रावकधर्म और मुनिधर्म से ओत प्रोत रहता है तब उस भाग को स्याद्वाद नय गर्भित न मानने में क्या उत्पत्ति है? कुछ समझ में नहीं आता ।

जैन वाङ्मय में सम्यग्दर्शन का गुणानुवाद खूब गाया गया है, उसके बिना ज्ञान जप तप सब व्यर्थ बतलाये गये हैं। जिसे सम्यग्दर्शन हो जाता है, वह आत्मा सम्यग्दृष्टि या सद्दृष्टि कहा जाता है। यथार्थ में दृष्टि कोण के ठीक हुए बिना वस्तु तत्त्व का ठीक २ विवेचन नहीं हो सकता और न ज्ञान का ही ठीक २ उपयोग किया जा सकता है, इस लिये सम्यग्ज्ञानी को सद्दृष्टि होना आवश्यक है जिनशासनमें अनेकान्त दृष्टि ३ को ही सद्दृष्टि कहा गया है। और एकान्त दृष्टि को मिथ्या दृष्टि । सम्यग्दृष्टिका आचार सदाचार कहा जाता है और मिथ्यादृष्टि का कदाचार । ऐसी दशामें चारित्र को केवल एकान्तवाद की तुला में तोलने वाले महानुभाव किस कोटि में सम्मिलित किये जायेंगे? यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है।

चारित्र में अनेकान्त दृष्टि का उपयोग ।

उपलब्ध जैन वाङ्मय में व्यवहारतः अनेकान्त दृष्टि के उपयोग करने का श्रेय स्वामी समन्तभद्र को प्राप्त है। उन्होंने 'आप्तमीमांसा' नामक प्रकरण में प्रारम्भिक ८७ श्लोकों में भाव, अभाव, द्वैत, अद्वैत

---

१ 'स्याद्वादिनो नाथ तवैव युक्तं : बृहत्स्वयंभू श्लो १४ ।

२ 'स्याद्वाद केवलज्ञाने' आ० मी० श्लो० १०५ ।

३ अनेकांतात्मदृष्टिस्ते सती शून्यो विपर्ययः । ९८, बृहत्स्वयंभू ।

नित्य, अनित्य भेद, अभेद आदि वस्तु धर्मों के साथ ही साथ युक्तिवाद और आगमवाद का भी—जो कि संभवतः उस समय के विवादग्रस्त विषय थे-अनेकान्त दृष्टि से बड़ा सुन्दर समन्वय किया है। उसके बाद दैववाद और पौरुषवाद के पुरातन झगड़े को भी बड़ी सरलतासे निपटाया है। आरम्भ में ही ८८ वें श्लोक का व्याख्यान करते हुए विद्यानन्दि स्वामी ने एक वाक्य ∵ लिखा है। उसपर एक टिप्पणी ⁂ भी दी गई है उसका आशय निम्न प्रकार है—"उपाय दो तरह के होते हैं—ज्ञापक और कारक। वस्तु के जानने में सहायक ज्ञान आदि को ज्ञापक कहते हैं और वस्तु की सिद्धि में सहायक उद्योग दैव वगैरह को कारक। अब कारक उपाय की परीक्षा करते हैं"। ऊपर के विवरण से क्या यह स्पष्ट ध्वनित नहीं होता कि, अनेकान्तदृष्टि का उपयोग कारक तत्त्व-चारित्र-में भी किया जाता है? यदि इतने से सन्तोष न हुआ हो तो ज़रा और आगे बढ़िये और पुण्य पाप की व्याख्या में अनेकान्त दृष्टि का उपयोग देखिये। यहां यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि, जिन शासन में अहिंसा को पुण्य और हिंसा को पाप बतलाया गया है तथा जो जितने अंश में अहिंसक है, वह उतने ही अंश में चारित्रवान है। क्योंकि जैन वाङ्मय में अहिंसा ही परमब्रह्म * माना गया है।

पुण्य और पाप की परीक्षा करते हुए, आचार्य समन्तभद्र लिखते हैं कि 'यदि † दूसरों को दुःख देने से पाप का और सुखी करने से पुण्य का बन्ध अवश्य होता है तो अचेतन दूध कंटक आदि वस्तुओं को और सचेतन वीतरागी पुरुषों को भी पुण्य और पाप का बन्ध अवश्य होना चाहिये। इस के विपरीत यदि यह कहा जाय कि, अपने को दुःखी करने से पुण्य का और सुखानुभव से पाप का बन्ध होता है तो, कायक्लेश आदि तपस्या में तत्पर और तत्वज्ञान के चिंतन में सुख का अनुभव करने वाला वीतरागी मुनि भी कर्म बन्ध से अवश्य लिप्त होगा। और उस दशा में किसी को भी मुक्ति की प्राप्ति न हो सकेगी।

तब पुण्य और पापकी क्या व्यवस्था की जाय इस प्रश्न का समाधान उक्त आचार्य के वाक्यरत्नों से ही कीजिये। वह कहते हैं कि, × अपने में या पर में विशुद्ध परिणामों से जो कार्य किया जाता है वह पुण्यास्रव का कारण है और संक्लेश परिणामों से जो

∵ 'कारकलक्षणमुपायतत्त्वमिदानीं परीक्ष्यते'। अष्ट स. पृ. २५९

⁂ उपायतत्त्वं-ज्ञापकंकारकंचेतिद्विविधं, तत्रज्ञापकंप्रकाशकमुपायतत्त्वंज्ञानं, कारकं— तूपायतत्त्वमुद्योगदैवादि।

* अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमम् ॥ ११९ ॥ स्व. भू. स्तो.

† पापं ध्रुवं परे दुःखात् पुण्यं च सुखतो यदि।
अचेतनाकषायौ च बध्येयातां निमित्ततः ॥ ९२ ॥ आ० मी०
पुण्यं ध्रुवं स्वतो दुःखात् पापं च सुखतो यदि।
वीतरागो मुनि विद्वांस्ताभ्यां युंज्यान्निमित्ततः ॥ ९३ ॥

× कथं स्याद्वादे पुण्यपापास्रवः स्यात् इत्याहुः—
विशुद्धिसंक्लेशाङ्गं चेत् स्वपरस्थं सुखासुखम्।
पुण्यपापास्रवो युक्तो न चेद्व्यर्थस्तवार्हतः ॥ ९५ ॥

कार्य किया जाता है वह पापास्रव का कारण है।

'पुरुषार्थसिद्ध्युपाय' + में अमृतचन्द्र सूरि ने हिंसा के जो अनेक विकल्प किये हैं। क्या वे आचार में अनेकान्त की योजना का समर्थन नहीं करते?

अतिचार की व्याख्या अनेकान्त की नींव पर स्थित है।

यदि चारित्र से अनेकान्त की योजना को बहिष्कृत करदिया जाये तो व्रत, आचार अतिचार और अनाचार के रूप में विभाजित नहीं हो सकते। अतिचार की व्याख्या सर्वथा अनेकान्त पर ही अवलम्बित है क्योंकि अतिचार में एक देश का भंग और एक देश का रक्षण आवश्यक है। बारहवीं शताब्दी के बाद के कुछ विद्वानों ने संभवतः तत्कालीन मनुष्योंके शिथिलाचार से प्रभावित हो कर—स्वदार सन्तोषी श्रावक के लिये वेश्यासेवन को जो अनुचित नहीं बतलाया है उसमें भी अनेकान्त दृष्टि ही काम करती है।

गुणस्थानों केनाम भी

अधिक क्या कहें? संसार के जीवों को उन्नति और अवनति की सोपानस्वरूप गुणस्थानोंके नाम भी अनेकान्त की योजना पर ही अवलम्बित हैं, जैसे सासादन सम्यग्दृष्टि अविरतसम्यग्दृष्टि, विरताविरत, प्रमत्तसंयत, सयोगकेवली वगैरह। जिस प्रकार स्याद्वादी द्रव्य स्वरूप का निर्द्धारण करने के लिये स्व और पर का सहारा लेता है उसी प्रकार आचार का विवेचन द्रव्य और भाव की अपेक्षा से किया जाता है।

शब्द सिद्धि भी

जिन शासन में केवल अर्थ की सिद्धि में ही अनेकान्त का उपयोग नहीं किया जाता, बल्कि शब्दों की सिद्धि (GRAMMER) में भी उस का सहारा लिया जाता है, पूज्यपाद के जैनेन्द्र व्याकरण का प्रथम सूत्र "सिद्धिरनेकान्तात्" ही उक्त बात का समर्थन करता है। आचार्य हेमचन्द्र ने भी अपने व्याकरण में उक्त नियम को अपनाया है। ऐसी परिस्थिति में जिन बाणी के प्राण स्वरूप चारित्र में अनेकान्त की योजना न किये जाने की कल्पना करना भी दुःसह है।

वर्तमान राज नीति में अनेकान्त का उपयोग

कॉंग्रेस की नीति 'अहिंसा' है यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु पिछले दिनों ब्रिटिश सरकार द्वारा निर्धारित 'साम्प्रदायिक निर्णय' में कॉंग्रेस को जो मार्ग स्वीकार करना पड़ा है वह अनेकान्त दृष्टि के उपयुक्त ही है,। समस्त भारतीयों की प्रतिनिधि कहलाने का दावा करने वाली संस्था के लिये दूसरा मार्ग ही नहीं था। महात्मा गाँधी के वक्तव्य पर टीका टिप्पणी करते हुए, मान्य विद्वान श्री सम्पूर्णानन्द जी ने उक्त बात को स्वीकार किया है। वह लिखते हैं—"आज कॉंग्रेस को जैन दर्शन से स्याद्वाद सिद्धान्त को लेकर उसका प्रयोग राजनीति में करना पड़ता है। उसे साम्प्रदायिक निर्णय जैसी वस्तुओं के लिये यह कहना पड़ता है कि हम युगपत इनका खण्डन करते हैं और नहीं करते"।

क्या इन बातों से हमारे विद्वान भाई अनेकान्त की व्यापकता का अनुमान नहीं कर सकते?

उपसंहार

आज जब सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में गान्धीवाद समाजवाद, धनसत्तावाद, सैनिकसत्तावाद मुसोलिनीवाद, हिटलरवाद, आदि अनेक वादों का

+ देखो श्लोक ५१ से ५८ तक।

जमघट हो रहा है और तेरापन्थ बीसपन्थ तीर्थक्षेत्र और विवाद क्षेत्र को लेकर जैन समाज की शक्ति का सतत दुरुपयोग होता है तब 'यत् सत् तत्सर्व मनेकान्तात्मकम्' के प्रबल हुंकार से एकान्तवाद का मान विगलित करने वाले, 'नयविशारद' 'प्रबुद्धनय चक्र-संचार' श्री समन्तभद्र या सिद्धसेन के सदृश कोई भी दृष्टि गोचर नहीं होता जो उक्तवादों का समन्वय करके एकान्त वाद की चक्की में पिसने वाली प्रजा को सुख और शान्ति दान कर सके । आज समाज को अनेकान्ती विद्वानों की आवश्यकता अवश्य है किन्तु अनेकान्त वाद की सुन्दर शस्यश्यामला भूमिपर पादन्यास करने वालों में जिन गुणों की आवश्यकता है, अमृतचन्द्र सूरि के निम्न शब्दों में उन्हें सतत हृदयंगम करना चाहिये ।

स्याद्वादकौशलसुनिश्चलसंयमाभ्यां यो भावयत्यहरहः स्वामिहोपयुक्तः ।
ज्ञानक्रियानयपरस्परतीव्रमैत्री पात्रीकृतः श्रयति भूमिमिमां स एकः ।

स्वर्ग का सिंहासन

(स्वामिभक्ति और स्वार्थत्याग की एक ऐतिहासिक कहानी)

[ले०—श्रीमती अनुपमकुमारी जैन जयपुर]

चित्तौड़ की राणी कर्णावती अपने राज महल में किसी सन्निकट विपत्ति कीआशंका से चिंतित हो रही थी । उस का सुन्दर मुख चिन्ता से म्लान और उदास हो रहा था । हृदय में एक भारी उथल पुथल मची हुई थी । एका एक किसी के पैरों की आहट सुन पड़ी । राणी संभल कर उठ बैठी और सशंकित हो कर बोली

"है ! कौन ? पन्ना ! कहो, क्या खबर लायी हो ? इतनी घबराहट क्यों ? जल्द बताओ ! शत्रुओं की क्या हालत है ? चित्तौड़ के योद्धाओं ने विपक्षियों से हार तो नहीं खाई ?"

पन्ना ने कहा "महारानी ! क्या कहूँ ? बहुत विकट समस्या है । गुजरात के सुलतान की सेना समुद्र की बाढ़ के समान उमड़ पड़ी है । हमारे सैनिक बहुत थोड़े रह गये हैं । यद्यपि बचे हुए सैनिक भी बड़ी वीरता से शत्रुओं का सामना कर रहे हैं । हमारे एक २ योद्धा विपक्षियों की सेना के कई योद्धाओं को मौत के घाट उतार कर स्वर्ग की राह देखते हैं । पर सुलतान की सेना टीड़ी दलके समान घेरा डाले हुए है ।

"तो क्या आसार दिखाई दे रहे हैं" रानी ने पूछा "सुलतान किले की ओर नज़दीक आ रहा है ।" पन्ना ने जवाब दिया "अवश्य वह राज महल के भीतर प्रवेश करेगा और यह रनवास की स्त्रियों के लिये आशंका जनक है"

इतने ही में किसी दूसरी बांदी ने आकर सूचना दी "महारानी ! सुलतान अपने सिपाहियों

को गाजर मूली की तरह काटता हुआ राज महल के बहुत निकट आ पहुंचा है। किले के प्रथम द्वार में आ घुसा है।"

रानी कर्णावतीने उसी समय रणवास की समस्त नारियों को एकत्र करने का हुक्म दिया करीब पांच मिनिट में रानी के पास झुण्ड का झुण्ड स्त्रियों का जमा हो गया। रानी कहने लगी—

"भारत की वीराङ्गनाओ! गुजरात का सुलतान किले के चारों ओर अपनी असंख्य सेना ले कर घेरा डाले हुए है। हो न हो, अवश्य वह रणवास में घुसने की फिक्र में है। ऐसी आपत्ति के समय राजपूत नन्दिनियों ने प्राचीन काल में अपूर्व साहस और वीरता का परिचय दिया है। वही समय आज हम लोगों के सामने है। क्षत्राणियाँ जब शत्रु से अपना सतीत्व भंग होने की आशंका देखती हैं तो हँसते-खेलते अदम्य उत्साह और उल्लास के साथ इस क्षण भंगुर शरीर को अग्नि देवी के समर्पण कर देती हैं। मुझे लम्बी चौड़ी वक्तृता देने की आवश्यकता नहीं। चितायें सजाई जायँ और हम सब एक साथ मिल कर स्वर्ग का आह्वान करेंगी। क्यों, आप लोग तयार हैं न„

"तैयार हैं! तैयार हैं!!" एक साथ सैकड़ों आवाजों से राज महल गूँज उठा।

रानी ने अपनी इस आपत्ति का उपाय तो इस प्रकार कर लिया। पर इस नश्वर संसार में एक दुःख से छुटकारा पाने पर शीघ्र ही उसके स्थान पर-राज सिंहासन पर शासक के मरने पर दूसरे उत्तराधिकारी की तरह-दूसरा दुःख आखड़ा होता है।

"अहा! मेरा यह फूल सा बच्चा! मेरी अनुपस्थिति में इसकी कौन संभाल करेगा? जो क्षण भर भी मेरे बिना नहीं रहसकता है उसी को मैं सदाके लिए छोड़ कर जा रही हूँ। मां, मां कह कर चिल्लाता हुआ जब यह आंसुओं की धारा बहावेगा तो कौन मोतियों की तरह अपनी आंचल में उन बूंदों को झेलेगा?"

"रानी!" एक स्त्रीने साहस दिलाते हुए कहा "तुम एक वीर योद्धा की वीर पत्नी होकर पुत्र वियोग में इतनी विकल हो रही हो। पैदा होने के साथ साथ भाग्य भी यह जीव अपने साथ लेकर आता है। राजपूत स्त्रियोंको जो मुहब्बत अपने सतीत्व धर्म से होती है वह किसी से भी नहीं होती। यह समय शोक करने का नहीं है। रनवास की तीनहजार देवियां तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हैं।

जाते समय रानी ने पुत्र की धाय पन्ना को बुलाया और कहा—

"पन्ना! जिस दिन उदयसिंह ने मेरी कोख से जन्म लिया था उस दिन तुम्हारे भी पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई थी। मैं जानती हूं तुम उदय सिंह को अपने पुत्र से भी अधिक प्यार करती हो। मैं मेरे लाल को तुम्हारे ही भरोसे छोड़कर जाती हूं! समझना यह मेरा ही दूसरा पुत्र है। इसको सुख पहुंचाने के लिये कोई भी बात उठा न रखना"।

पन्ना ने कहा "जो आज्ञा, मैं इस बालक को अपनी जिन्दगी से भी अधिक प्रेम करूँगी यदि इस की रक्षा के लिए मुझे मेरी प्यारी से प्यारी चीज़ भी खोनी पड़े तो मैं उसका हर्ष के साथ बलिदान कर दूँगी"।

इसके पश्चात रानी कर्णावती ने उदय सिंह को बार २ गले से लगाया और अपनी गोद में से पन्ना को देते हुए कहा-

"बेटा, अब इसी को अपनी जन्म देने वाली मा समझना। मैं अब तुम से सदा के लिए विदा माँगती हूँ।" बच्चा अपनी माकी गोद में से उतरते हुए रोने और अपनी माकी तरफ एक टक दृष्टि से देखने लगा। पन्ना ने बड़ी मुशकिल से उसको रोने से

बन्द किया । जाते २ फिर रानी ने प्रिय पुत्र को गले से लगाया और उस को अन्तिम आशीर्वाद देकर वह अपने अभीष्ट स्थान की ओर चल पड़ी ।

एक क्षण के बाद चित्तौड़ के राज महल में एक साथ सैकड़ों चितायें धू धू करके जल उठीं

इस घटनाके तीन वर्ष पीछे की बात है । चित्तौड़ के महलों में एक बुढ़िया स्त्री दो समवयस्क बालकों को खिला रही थी । उन के पास तरह २ के खिलोने पड़े हुए थे । बालक बहुत देर से खेल रहे थे । बुढ़िआ ने अब उन को सुलाने का प्रबन्ध किया । शाही पलंगो पर रेशमी गद्दे तकिये बिछे हुए थे । उसने लोरियां गा गा कर उनको सुलाने की चेष्टा की पर खिलाड़ी बालक घड़ी में आंखें मंद लेते और घड़ी में अपनी मां की गोद में जाकर किलोलें करने लगते । मां अपने बच्चों की इन हरकतों से हैरान हो गई । अन्त में उसने स्वयं अपनी आंखें मींच कर सोने का बहाना किया । समझदार बच्चे अपनी मां की बात को ताड़ गये और कहकहा कर हंसने और कहने लगे "अम्मा, तुम झूठ मूठ ही सोनेका बहाना करती हो । लो, अब हम घोड़ा बन बन कर खेलेंगे । तुमतो घोड़ा बनो और हम सवार बनेंगे ।

मांने सोचा—आज बालकों ने दूध नहीं पिया है । खेल के लोभ से इन को जरूर दूध पिला सकूंगी—उस ने कहा "आज तुम दोनोंने दूध नहीं पिया है । यदि तुम दूध पी लो तो घोड़ा बनूंगी"

बालक बिना किसी हिचकिचाट के दूध पीने को राजी हो गये । मां जल्दी से दो कटोरों में दूध भर कर ले आई । बालक दूध पीने लगे और मा उनको पंखा करने लगी ।

"क्यों, उदयसिंह ! तुम ने आधी कटोरी पी है । सब की सब पीजाओ, बेटा, देखो फिर तुम्हारी चोटी इतनी बड़ी हो जायेगी" बूढी माने अपने हाथ को खूब ऊंचा कर के कहा

"मा तुम तो रोज़ रोज़ हमारी चोटी बड़ी करती हो । पर यह तो देखो ! अभी उतनी ही हैं ।"

बूढी मा और बच्चों के इसी वादविवाद के बीच में अकस्मात् किसी की चिल्लाहट सुन पड़ी । राजमहल का एक कर्मचारी आँधी की तरह कमरे की ओर झपटा । उस का चेहरा भय से पीला पड़ रहा था ।

"पन्ना ! राणा, विक्रमाजीत" हांपते हुए आगुन्तक ने कहा "अब इस दुनियां में नहीं रहा है"

पन्ना के मानो काठ मार गया । उसका कलेजा धक धक रहगया । पैरों तले से धरती खिसकने लगी

"किस दुष्टने राणा विक्रमाजीत का वध किया है" पन्ना ने पूछा ।

"बहुत दिनो से राज्य के अधिकारी लोग" नौकर कहने लगा "विक्रमाजीत के व्यवहारसे असन्तुष्ट थे उन की इच्छा बिक्रमाजीत को हटाकर उस के स्थानपर बनवीर को राजा बनाने की थी । आज उन का मनोरथ सफल हुआ । बनवीर और कुछ राज्य कर्मचारियों ने मिलकर षड़यन्त्र कर के राजा का वध करादिया । आज से बनवीर ही राजगद्दी का मालिक हो गया है ।"

पन्ना ने कहा "इस खून का कारण भी अवश्य होगा । राजकुमार उदयसिंह के जीवन में भी मुझे सन्देह है । बनवीर के हृदय में यह भी कांटे की तरह खटकता होगा"

कर्मचारी ने कहा "हां, मुझे विश्वस्त रूपसे मालूम हुआ है कि बनवीर ने आज रात तक

उदयसिंह को मारने का दृढ़ संकल्प कर लिया है। उसको शक है कि कहीं लोग उदयसिंह को राज्याधिकार देने का आन्दोलन न उठावें। मैं बड़ी मुश्किल से तुमको यह खबर देने के लिए आया हूं। चारों तरफ उसने इन्तिज़ाम कर रक्खा है।

पन्ना का सांस रुक गया। नेत्रों से आंसुओं की धारा बहने लगी। उस ने गद् गद् कंठ से कहा—

"रानी कर्णावती ने उदयसिंह के पालन करने का भार जब मुझे सौंपा था तो मैं ने उनको वचन दिया था कि मैं अपनी प्यारी से प्यारी वस्तु को भी इस बालक की जिन्दगी के सामने तुच्छ समझूंगी। अवश्य कोई न कोई उपाय करना चाहिए।"

"पन्ना!" नौकर ने निराशा का श्वास ले कर कहा। "इन हजारों सिपाहियों के के बीच राजकुमार की रक्षा का उपाय कैसा! मुझे तो इतने राज कर्मचारियों के बीच एक भी राजभक्त पुरुष नजर नहीं आता" पन्ना का हृदय सहम उठा। एक क्षण बाद सोचकर उसने कहा "मुझे इस के लिए एक उपाय सूझा है"

"वह क्या है"? स्वामी भक्त नौकरने उत्कंठित हो कर पूछा पन्ना दुनियां भर के साहस को बटोर कर कहने लगी —

"आज मैं राजकुमार उदय सिंह के स्थान पर अपने इकलौते बेटे को राजकुमार का भेष पहनाऊंगी और उदयसिंह को हम गुप्त रूप से किसी विश्वस्त पुरुष के साथ रणवास के बाहर भेज देंगे"

नौकर ने पूछा "तो क्या उदयसिंह के स्थान पर तुम्हारे हृदय का दुलारा बच्चा मारा जायगा?"

"हां" पन्ना ने हृदय पकड़ कर जवाब दिया "मालिक की रक्षा के लिए एक क्या दो पुत्रों का बलिदान भी वांछनीय है।

नौकर बूढ़ी धाय की स्वामी भक्ति और कृतज्ञता देख कर हक्का बक्का रह गया। मन ही मन उसकी प्रशंसा करते हुए बोला "पर रास्ते में बनवीर ने पेड़ २ पर सिपाहियों का प्रबन्ध कर रक्खा है। राजकुमार को बाहर भेजने की तरकीब!"

"तरकीब! यही है की एक फूलों की टोकरी में राजकुमार को सुला देंगे और कल फूलों के बहाने किसी विश्वस्त नौकर के साथ रावला के बाहर निश्चित स्थान पर भेज देंगे"

मेरे नयनों के सितारे! हृदय के प्यारे! लो मैं आज तुम्हें राजकुमार बना रही हूं। यह रत्नों का हार गले में पहनो और सोने का मुकुट अपने ऊपर धारण करो। आज तुम्हारे लिये बड़े गौरव और उत्सव का दिन है। राजकुमार की सुन्दर शैया पर आज तुम सोना और समझना इस रात के लिए मैं ही मेवाड़ का सच्चा राजकुमार हूँ

बालक राजा बनने की खुशी में फूल कर कुप्पा हो गया। पन्ना बज्रकी छाती कर और निकलते हुए आंसुओं को जबर्दस्ती से रोक कर बालक को कपड़े पहनाने लगी। बालक भी बड़े चाव से राजकुमार की जगमगाती हुई पोशाक को धारण करने लगा।

"क्यों, मां कल सवेरे उदयसिंह फिर राजा बना दिया जायगा और मैं उन्हीं फटे पुराने कपड़ों को पहनूंगा?"

"मेरे लाल! आज रात को तो तुम मेवाड़ जैसे छोटे से देश के ही राजकुमार बनोगे पर प्रातः काल उस से भी बहुत बड़े और सुन्दर देश के राजमुकुट को तुम शिर पर धारण करोगे"

एक विशाल देश के राजा बनने की खुशी

में बालक खिल खिला कर हंस पड़ा।

पन्ना ने फिर उदयसिंह को जगाकर कहा "राजकुमार चलो, आज उस सुदूर देश की यात्रा करने चलेंगे।

जल्द तैयार हो जाओ। अभी चलना है

"क्यों मां मेरा साथी भी चलेगा या नहीं?"

"नहीं बेटा उस को तुम्हारे राज्य की रक्षा के लिए छोड़ जायेंगे"

उधर पन्ना का लड़का इन बातों को सुन रहा था वह रोकर कहने लगा, "मा मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा"

अच्छा अभी तो सो जाओ। जाते समय तुम को भी जगा लेंगे।

रात के नौ बजे उदय सिंह अकेला ही अपने साथी को छोड़ कर चला गया।

काली अंधेरी रात थी। आकाश में बादल उमड़ रहे थे। रह २ कर बादलों की भीषण गर्जना लोगों के कानों को वेध देती थी। भयंकर तूफान यम राज के समान मनुष्यों को डरा रहे थे। बिजली की कड़ कड़ाहट से लोगों का हृदय एक साथ दहल उठता था। उसी समय पन्ना धाय राजमहल में अपने बालक की अन्तिम घड़ियाँ गिन रही थी। बच्चा गहरी नींद में सोया हुआ था। बालक स्वप्न में कभी २ बड़ बड़ा देता" मा बहुत सवेरे मैं एक सुन्दर राज कुमार बनूंगा"। मा शोक और दुख की गरम २ आहों से बच्चे को गर्मी पहुँचा देती। कभी उसे गले से लगाती। कभी उस का मुख चूमती। स्वामी भक्ति और स्वार्थ त्याग का कैसा दर्दनाक हृदय विदारक दृश्य था! उसी समय महल का अकस्मात दरवाजा खुला। बनवीर सिंह ने बड़े क्रोध पूर्वक स्वर में पूछा—

"उदय सिंह कहाँ है?"

पन्ना का शरीर काँपने लगा। दुख और शोक से उस का गला इतना रुधा हुआ था कि बनवीर की बात का वह कुछ भी जवाब न दे सकी।

"क्यों, दुष्टा, बोलती नहीं" बनवीर ने अपनी म्यान से तलवार निकाल कर कहा।

बूढ़ी मा ने मस्त नींद में सोए हुए अपने प्राणों से भी प्यारे पुत्र की तरफ इशारा कर दिये

एक क्षण के बाद बालक की आशा पूरी हो गई। मेवाड़ के राज सिंहासन से भी अति उत्कृष्ट स्वर्ग के सिंहासन की तरफ रवाना हो गया। बूढ़ी मा ने देखा उस के पुत्र को देव विमान में बिठला कर चमर ढोरते हुए ले जा रहे थे।

बुढ़िया बेहोश हो कर जमीन पर गिरपड़ी॥

निवेदन

जैनदर्शन का प्रकाशन गत अंक तक बिजनौर से होता रहा है, अब

'श्री अकलंक प्रेस मुलतान सिटी'

से प्रकाशित हुआ करेगा, अतः प्रकाशनार्थ समाचार और दर्शन का वार्षिक मूल्यआदि तथा प्रकाशनका पत्र व्यवहार मुलतान किया करें।

— अजितकुमार जैन

अकलंक प्रेस मुलतान सिटी

जैन धर्म का मर्म और पं० दरबारी लाल जी ।

(ले० पं० राजेन्द्रकुमार जैन, न्यायतीर्थ)

जिनशब्द

वैयाकरण शाकटायन का उल्लेख भारत के प्राचीनतर साहित्य में मिलता है । यह कौनसे शाकटायन हैं इसके सम्बन्ध में अभी भी विद्वानों में मतभेद है। कुछ का कहना है कि विवादस्थ वैयाकरण प्रचलित जैन व्याकरण शाकटायन के रचयिता ही हैं । दूसरा पक्ष इसको स्वीकार नहीं करता । यह प्रचलित जैन व्याकरण शाकटायन को ईसवी सन के बाद का मानता है । दोनों ही पक्ष अपने २ मत के समर्थन में अनेक २ बातें उपस्थित करते हैं ।

मद्रास प्रेसीडेन्सी कालेज के संस्कृत प्रोफेसर श्री गुस्टवाउवर्ट का अभिमत पहिले पक्ष में हैं । आपने इसके सम्बन्ध में अपना अभिमत जैन व्याकरण शाकटायन की अंग्रेज़ी भूमिका में लिखा है। जैन समाज के ऐतिहासिक विद्वान पं० जुगलकिशोर जी का अभिमत इसी पक्ष के अनुकूल है । कुछ भी सही, हमारा यहां इससे प्रयोजन नहीं कि इस शाकटायन से तात्पर्य प्रचलित जैन व्याकरण शाकटायन से है या इससे भिन्न किसी दूसरी पुस्तक से । हमारा प्रयोजन तो शाकटायन के उणादि प्रकरण से है तथा यह एक निर्विवाद बात है कि यह प्रकरण उस शाकटायन से सम्बन्धित है जिसका कि उल्लेख भारत के प्राचीनतर साहित्य में मिलता है ।

इसके समर्थन में अनेक बातें हैं किन्तु यहां हम उनमें से एकका ही उल्लेख करेंगे । प्रस्तुत वैयाकरण शाकटायन पाणिनी से प्राचीन है, क्योंकि पाणिनी ने अपनी अष्टाध्यायी में इस के मतका उल्लेख किया है । प्रस्तुत वैयाकरण शाकटायन यदि पाणिनी से प्राचीन न होते तो यह बात कैसे संभव हो सकती थी कि पाणिनी उनकी मान्यता का उल्लेख * कर सकते । जो जिसके बाद का होता है वही उसका उल्लेख कर सकता है ।

वैयाकरण पाणिनी भी एक असाधारण वैयाकरण हुए हैं । इनकी अष्टाध्यायी जैसी रचना अवश्य उल्लेख योग्य है । इन्होंने अष्टाध्यायी में हर एक बात का ध्यान रक्खा है किन्तु उणादि प्रकरण की रचना नहीं की है । इससे यही बात निकलती है कि यह प्रकरण शाकटायन कृत पहिले से ही मौजूद था और अपने विषय में अनुपम था अतः पाणिनी ने इसकी रचनाकी बिलकुल आवश्यकता नहीं समझी ।

आज भी पाणिनी व्याकरण में शाकटायनकृत उणादि प्रकरण का मिलना इसके समर्थन में अनुपम बात है । यदि प्रस्तुत उणादि प्रकरण पाणिनी के बाद के किसी अन्य शाकटायन का होता तो पाणिनी व्याकरण में अवश्य यह प्रकरण भी मिलता इससे स्पष्ट है कि शाकटायन का प्रस्तुत उणादि प्रकरण उसही शाकटायन का है जिसका

---

* लङः शाकटायनस्यैव. अष्टाध्यायी ३-४-१११

उल्लेख भारत के प्राचीनतर साहित्य में मिलता है।

वैयाकरण शाकटायन ने अपने उणादि प्रकरण के एक सूत्र में जिन शब्द का प्रयोग किया है। * इससे उक्त वैयाकरण के समय जिन शब्द का प्रयोग निर्विवाद हो जाता है ।

वैयाकरण शाकटायन किस समय हुए उस बात के समर्थन में हम निम्न लिखित बातें विद्वानोंके समक्ष उपस्थित करते हैं ! इन का उल्लेख निरुक्त, अष्टाध्यायी ** और यास्क प्रातिशाख्य † में मिलता है । निरुक्त का रचयिता यास्क अष्टाध्यायीका पाणिनी ऋक्प्रतिशाख्य का कर्ता शौनक है ।

अथर्ववेद की ९ शाखायें हैं × । उन में से एक शाखा शौनक की भी है प्रचलित अथर्ववेद इसही शाखा का है । गोपथ ब्राह्मण आदि जितना भी अथर्ववेद का परिकर मिलता है वह सब इसही शाखा से सम्बन्ध रखता है । इन सबकी रचना भी शौनक के बाद ही की है ।

गोपथ ब्राह्मण की रचना ब्राह्मण काल में हुई है। इस ही प्रकार शौनकीय शाखा का बीजारोपण भी संहिताकाल के कुछ बाद शाखाकालमें हुआ है ब्राह्मणकाल और शाखा काल, ये दोनों ही ईस्वीसन से एक हज़ार वर्ष पूर्व के हैं अतः शौनक का समय भी कमसेकम इतना प्राचीन तो अवश्य स्वीकार करना चाहिए । जैनतीर्थंकरों के काल की दृष्टि से यह काल भ० पार्श्वनाथ के शासन काल से कुछ पूर्व और भगवान नेमिनाथ काअंतिम काल ठहरता है ।

उपर्युक्त विवेचन से प्रगट है कि शाकटायनके उणादि प्रकरण में उल्लिखित सूत्र भगवान पार्श्वनाथ से पूर्व जिनशब्दकेअस्तित्व को प्रमाणित करता है ।

प्रश्न—निरुक्तकार यास्कनेभी शाकटायन के मत का उल्लेख किया है + । तथा उनका समय ईसवीसे सात सौ वर्ष प्राचीन है । इस ही यास्क का स्मरणभी शौनक ने अपने प्रतिशाख्य में किया है । ऐसी अवस्था में यह बात कैसे स्वीकार की जा सकती है कि शौनक कासमय ईसवी सन से एकहज़ार वर्ष तो प्राचीन अवश्य है ।

उत्तर—शौनक ने अपने प्रातिशाख्य में यास्क के मत का उल्लेख किया है । यह बात अवश्य सत्य है ।किन्तु यह यास्क निरुक्तकार यास्क से भिन्न है ।
वैदिक साहित्य में अनेक यास्कों का उल्लेख मिलता है ।

(१) भारद्वाजो भारद्वाजाच्चासुराय णाश्च यास्काश्च ।

शतपथ ब्राह्मण १४-७-२७

(२) वैशम्पायनो यास्कायैतां प्राह पैङ्गाये ,
यास्कस्तित्तिरयेप्राह उखाय प्राहतित्तिरिः ।
तैत्तिरीय काण्डानुक्रमणिकाअ० ३-२५

---

* इणसिञजिदीङ्ष्यविभ्योनक् ॥ जिनोऽर्हन् । सिद्धान्तसूत्र- ३०३.

† तत्रनामान्याख्यातजानीति शाकटायनो नैरुक्तसमयश्च । निरुक्त १-१२-२

** अष्टाध्यायी ३-४-१११ । ८-३-१८

† प्रथमंशाकटायनः ऋग्वेदप्रातिशाख्य प्रथमपटल.

× एक शतमध्वर्युशाखासहस्त्रवर्त्मा सामवेदः एकविंशतिधाबाह्वृच्यंनवधाऽथर्वणोवेदः
महाभाष्यपातञ्जलि

\+ न दाशतय्येयदा काचिदस्तीति यास्कः ऋग्वेदप्रातिशाख्य ९९३

(३) उरो बृहती यास्कस्य। पिङ्गलकसूत्र३० ।

दूसरी बात यह है कि शौनक ने अपने प्रातिशाक्य में यास्ककी जिसमान्यता का उल्लेख किया है यदि वह निरुक्त कार यास्क कीही होती तो वह बात प्रस्तुत निरुक्त में मिलनी चाहिए थी किन्तु ऐसा है नहीं अतः यही कहना पड़ताहै कि शौनक ने अपने प्रातिशाख्य में यास्क के मत का उल्लेख अवश्य किया है किन्तु वह यास्क निरुक्तकार यास्क से एक भिन्न यास्क हैं। ऐसी परिस्थितिमें निरुक्तकार यास्क का समय ईसवी सन से सातसौ वर्ष पूर्व होनेपर भी इसका शौनक केप्रस्तुत समय पर कोई प्रभाव नहीं है।

उपर्युक्त विवेचन से प्रगट है कि शाकटायन का प्रस्तुतमत भ० पार्श्वनाथसे पूर्व जिन शब्दके व्यवहार को प्रमाणित करता है।

मोहन जी दारू - सिन्ध- की खुदाई में जो वस्तुयें मिली हैं उन में कुछ ऐसी सीलें भी हैं जिनपर 'नमो जिनेश्वराय' लिखा है। डा० प्राणनाथ प्रोफेसर हिन्दू विश्वविद्यालयने अध्ययन किया है और वह इस परिणाम पर पहुंचे है। उक्त प्रोफेसर साहब ने इस के सम्बन्ध में निम्नलिखित शब्द लिखे हैं —

It may also be noted that the Inscription on the Indus seal No 449 reads according to my decipherment jinesvara or jinesah,,

Indian Historical quarterly Vo. VIII N. 2 Sp'

प्रोफेसर महोदय आर्यसमाजी हैं। आप का जैन धर्म की ऐतिहासिक प्राचीनता से कोई सम्बन्ध नहीं है। जैनेतर होने पर भी आपने मोहन जी दारू की सीलों के सम्बन्ध में जो कुछ भी लिखा है वह एक सत्य प्रियता की दृष्टि से हो। अतः कोई कारण नहीं जिस से कि आप की प्रस्तुत बात को सत्य स्वीकार न किया जाय।

इस सील का निर्माण काल आज से पांच हजार वर्ष प्राचीन है। यह तो एक ऐसी बात है जिस के सम्बन्ध में दो मत हो ही नहीं सकते अतः इस के सम्बन्ध में प्रमाणों का उल्लेख करना अनावश्यक पाते हैं।

शाकटायन व्याकरण और मोहन जी दारू की प्रस्तुत सील के आधार से भगवान पार्श्वनाथ से पूर्वभी जिन शब्द का व्यवहार ऐतिहासिक सत्य स्वीकार करना पडता है।

जिन शब्द की तरह अर्हन शब्द का उल्लेख भी भगवान पार्श्व नाथ से प्राचीन साहित्य में मिलता है। इस के समर्थन में हम निम्न लिखित वेदमंत्र उपस्थित करते हैं।

ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त ९४

इमंस्तोमम र्हतेजातवेदसेरथमिवसंमहे मामनीषय
भद्राहिनःप्रमतिरस्यसंसद्यग्ने सख्येमारिषामावयंतव ॥
अर्हन्तायेसदानवोनरोप्रसामिशवसः
प्रयज्ञं यज्ञियेभ्योदिवोअर्चामरुद्भ्य।

ऋग्वेद म० ५ सूक्त ५२-५

तावधन्तावनुधन्ममोयदेवावदभा।
अर्हन्ताचित्पुरोदधेशेवदेवावर्नते।

ऋग्वेद मंडल ५ सूक्त ५

अर्हन्बिभर्षिसायकानिधन्वार्हन्निष्कंयजतंविश्वरूपं
अर्हन्निदंदयसेविश्वमभ्वंनवाओजीयोरुद्रत्वदस्ति।

ऋग्वेद मण्डल २ सूक्त ३३। मं० १०

जिन और अर्हन शब्दों का एक ही अर्थ है सिद्धान्त कौमुदीकारने भी अर्हतशब्द को जिन शब्द के साथ एकार्थक स्वीकार किया है।

भगवान पार्श्वनाथ से पूर्व जैनधर्म का अस्तित्व प्रमाणित करने के सम्बन्ध में अन्यबातें भी उपस्थित की जासकतीहै किन्तु हम इन थोड़ी सी बातों को लिख कर ही इस प्रकरण को समाप्त करते हैं जिससे इस विषय पर शीघ्र और संक्षेपमें विचार हो सके।

आशा है हमारे विद्वान पाठक भगवान पार्श्व नाथ से पूर्व जैन धर्म के अस्तित्व के सम्बन्ध में हमारे इन तीनों लेखों का ध्यानपूर्वक अवलोकन करेंगे।

अहिंसा का सिद्धान्त विश्वोपयोगी है *

(ले० पं० कैलाशचन्द्र जैन दर्शन शास्त्री न्यायतीर्थ)

हाल ही में अहमदाबाद उजाम बाई के उपाश्रय में श्री विजयवल्लभ सूरिके सभापतित्व में एक सभा हुई थी। उस में डा. डब्ल्यू. नार्मन ब्राउन (Dr. W. Narman Brown), संस्कृत प्रोफेसर पेन्सिलवेनीया विश्वविद्यालय अमेरिका (Pensylvania University America) ने भाषण दिया था। आप जैन धर्म के बड़े विद्वान् व अन्वेषक हैं तथा जैन चित्रकला (Jain Miniature Painting) में खास तौर से रुचि रखते हैं।

प्रथम ही आपने जैनियों के साथ समागम होने की खुशी प्रगट करते हुए दो जैन बंधुओं का (मुनि हंस विजय जी व श्रावक के. पी. मोदी) स्मरण किया। जिन से वे सन् १९२८-२९ में मिले थे। तत्पश्चात् करीब आध घंटे तक आपका भाषणहुआ। भाषणका सार इस प्रकार है—

"मैं इस समय जैन धर्म के इतिहास व इसकी विशेषतायें बतलानेकी आवश्यकता नहीं समझता। इन बातों का ज्ञान आपलोगों को आप केआचार्यों द्वारा दिया गया है। शायद सबसे दिलचस्प विषय जिस पर मुझे बोलना चाहिए जैन धर्म का वह सिद्धान्त है जिस का प्रभाव लोगों के हृदय में एक जीवित शक्ति के समान पड़ता है। मुझपर जैनियों में पायेजाने वाले सद्भावना, परोपकार और संतोष इन गुणों का असर बहुत हुआ है। कहने का मतलब यह नहीं है कि सारे ही जैनी जिन से मैं मिला हूं इन गुणों से विभूषित हैं। पर औसतरूप से येगुण अधिक जैनियों में पाये जाते हैं।

हमारा जन्म ऐसे समय में हुआ है जब यह संसार ऐसे जातीय विरोध से विदीर्ण है जो प्राचीन काल में कभी नहीं जाना गया है एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से भय खाता हैचाहे वह दूर का हो या निकटवर्ती हो। एक ही जाति में मनुष्यों का एक समुदाय दूसरे समुदाय से डरता है। इस सम्बन्ध में परिस्थिति को आप लोग मुझ से अच्छी जानते हैं। मैं देखता हूँ भिन्न भिन्न देशों में एक दूसरे के प्रति शत्रुता है। और तो क्या कला कौशलपूर्ण राष्ट्रों में भी एक समुदाय दूसरे समुदायके प्रति वैमनस्य रखताहै। जब से औद्योगिक क्रान्ति हुई है सभ्यताके उत्थानसे कई उलझने तथा संसार की कई एक समस्यायें बढ़ गई हैं। वर्तमान सामाजिक और अन्तर्राष्ट्रीय समस्यायें भूत काल से भिन्न हैं। व्यक्तिगत और इस से भी बढ़ कर सामूहिक कठिनाइयों का अस्तित्व पहले से ज्यादा है। इस समय राष्ट्रीय विरोध पहले से अधिक मामलों में दिखाई देता है। जो विरोध मज़दूरी और पूंजी में होता है वही राष्ट्रों में है। हमारे पास कई नई २ समस्यायें और उन में से एक को भी हल करने का उपाय नहीं कियागया उन को हल करने के कई उपायों का विचार किया गया और कुछ कार्य रूप में भी परिणत किये गये। उदाहरण के लिए रूस ही लेलीजिए पर उन में एक भी फलदायक सिद्ध नहीं हुआ।

आप लोग और साथ में हिन्दुस्तान के दूसरे धर्मा-

* एक अमेरिकन प्रोफेसर का भाषण अंग्रेजी जैन गजट से अनूदित—लेखक.

बलम्बी भी अहिंसा का पाठ पढ़ाते हैं। और जोर दार शब्दों में कहते हैं कि अहिन्सा के पालन से हमारा जीवन सुख पूर्वक व्यतीत हो सकता है। सच मुच अहिन्सा का पालन किया जाय तो अच्छा ही है। अधिक लोग इसे स्वयं सिद्ध बात समझेंगे। आप के बडे २ पंडितों ने ही नहीं पर दूसरे विद्वानों ने भी इसका अथवा इस के समान सिद्धान्त का उपदेश दिया है। पर सच तो यह है कि लोग अहिन्सा का पालन करते ही नहीं। छोटे २ जीवों के लिए भी जैनी जिस अहिन्सा का प्रयोग करते हैं उस का हम लोग नहीं करते। हम सिर्फ उस अहिन्सा का बखान ही करते हैं जो मनुष्य मनुष्य के प्रति काम में लाता है। अब भी हम देखते हैं कि लोग इस की तरफ ध्यान नहीं देते । यह एक आदर्श है जिस तक पहुँचने के लिए हम योग्य नहीं हुए हैं। यदि हम किसी आदमी को हिमालय की सब से बड़ी चोटी पर बहु मूल्य रत्न दिखाने पर उस को उस तक पहुचने का रास्ता नहीं बतावें तो यह आशा नहीं की जा सकती कि वह उस रत्न को प्राप्त कर उसका उपभोग करेगा। प्राचीन काल के बड़े २ धार्मिक उपदेशकों और विचारकोंने लोगों को तत्कालीन कठिनाइयों का मुकाबला करने व अहिन्सा के अभिलषित उद्देश तक पहुंचने की तरकीब दिखाई थी। यदि वे पण्डित आज भी जीवित होते तो हमें भी इस समय की कठिनाइयों का मुकाबला करने व हमारे जातीय भाइयों के साथ सद्भावना रखने का उपाय बताते। यदि हम उन आचार्यों के उपदेशों में सच्ची श्रद्धा रखते हैं तो हम को स्वयं ही इन नई कठिनाइयों का सामना करने की चेष्टा करनी चाहिए न कि उन के उपदेशों को बार २ दोहरा कर ही संतुष्ट हो जाय। बल्कि उससे भी उच्च आदर्श को पहुंच कर उस मार्ग का अवलम्बन करना चाहिए जिस से हर एक राष्ट्र और समाज में मित्रता का भाव बढ़े।

इस का उपाय क्या ? अफसोस ! दुर्भाग्य से इस का हमारे पास कोई उत्तर नहीं। आप (जैनी) और साथ में हिन्दू भी सरस्वती देवी को मानते हो। जिसे विद्या की देवी कहते हैं। चाहे तो आप उसे एक जीवित प्राणी मानें अथवा एक आदर्श का स्मारक समझें, उस को प्रयोग में लाने की कोशिश जरूर करनी चाहिए। हम को उन समस्याओं को हल करने के ज्ञान की आवश्यकता है । जैनियों के पास एक उत्कृष्ट परम्परागत विद्या है । उनको यह विद्या गुजरे हुए जमाने की ही नहीं पर वर्तमान पदार्थों के सम्बन्ध में भी रखनी चाहिए। अगर वे अपने आदर्शों में श्रद्धा रखते हैं तो उन को ऐसे नये २ उपायों की खोज करनी चाहिए जिनसे लोग उन आदर्शों तक पहुंच सकें । सरस्वती की पूजा का असली तात्पर्य यही है 'कर यल गय मुत्ताहल सयर्ल पिच्छन्ति तियं भुवनम् सयलं जिय पस्सई नरा सा जय हु सरस्वती देवी'

'जिसकी कृपा से लोग तीनों लोकों को अपने हाथ में रक्खे हुए मोतियों की तरह देखते हैं उस सरस्वती देवी की जय हो'

इस का मतलब हमारे समय की कठिनाइयों का अध्ययन करना है ।

केवल इसी तरह से बुद्धिमत्ता से प्रार्थना करें ।

'जय हु जिनेसुर वीरो'

'भगवान महावीर की जय हो।'

यदि कोई भी धर्म दुनियाँ के लिए लाभ प्रद व इस संसार में रहना चाहता है तो उसे यह अवश्य दिखलाना चाहिए कि उस से लोगों को अपने समय की कठिनाइयों का सामना करने की मदद मिल सकती है । "

कलियुगकी समाप्ति होनेवाली है?

(ले० माणिकचन्द्र भाँवसा जयपुर)
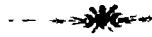
परमहंस श्री १०८ स्वामी राज नारायण जी आचार्य भक्तियोगाश्रम फाजिलका जिला फिरोज़ पुर (पंजाब) ने एक चेतावनी द्वारा यह घोषणा की हैं कि कलियुग समाप्त हो रहा है भगवान कल्कि का जन्म होने वाला है मुझे १० वर्ष हुए भगवान श्री कृष्ण ने यह आज्ञा की थी कि कलियुग समाप्त हो रहा है, और हम शीघ्र ही कल्कि अवतार के रूप में प्रगट होने वाले हैं! तुम केवल भक्ति का प्रचार करो, इसी से मनुष्यों का कल्याण होगा। इस अनुभव के पश्चात् मैं सोचने लगा कि कलियुग तो ४,३२,००० वर्षों का है इस पर मैंने शास्त्रों की बड़ी अन्वेषणा की और यह निश्चय किया कि संम्बत २००० विक्रम श्रावण अमावस्या तदनुसार ता० १-८-४३ ई० को कलियुग समाप्त हो जावेगा और तत्पश्चात् सत युग का आरंभ होगा। कलियुग ४,३२,००० वर्षों का नहीं किन्तु संध्या संध्यांश सहित ४,८०० वर्षों का है, और आजकल संध्या का समय समाप्त हो रहा है।

गहरे विचार से पता लगा कि कुछ काल पहले किसी ने शास्त्रों का गुप्त भेद न समझकर मनुष्य वर्षों को३६० सेगुणा करके देवताओं के वर्ष बना लिये और सतयुग की जगह कलियुग और कलियुग की जगह सतयुग समझ लिया! इस कारण कलियुग के ४,३२,००० वर्ष अपनी टीका में लिख डाले। तब से अबतक किसी पंडित ने इस पर विचार नहीं किया, सबउसी लकीर पर चलते रहे। कुछ विद्वानों ने तो अपना विचार सिद्ध करने के लिये शास्त्रों में शब्दतक बदल डाले हैं, जिन का उनको कोई अधिकार न था।

कलियुग की समाप्ति के पश्चात सतयुग की १०० वर्ष की संध्या का समय चलेगा। उसके आरंभ में भगवान् कल्कि का अवतार होगा। मेरे अनुभव से आपका प्रादुर्भाव होचुका है। भक्त जनों का हृदय कमल यह जानकर हर्ष से खिलजायेगा कि अब शीघ्र ही भक्तवत्सल भगवान के दर्शन होने वाले हैं। सतयुग में पाप कर्म का नाश होजाता है, केवल सत्य ही सत्य रह जाता है। कलियुग की समाप्ति के कारण गगन में तारा मंडल की दशा तक बदल रही है

मैं युगों का अन्वेषण कररहाथा कि संडे एक्सप्रेस लण्डन में पादरी वाल्टरवेन का बयान जिसको भारत के कुछ समाचार पत्रों ने भी दिया था पादरी वाल्टर वेन ने भी मिश्र देश के प्रसिद्ध मीनार पर यह पढा है कि अब सतयुग १,००० वर्ष के लिये आने वाला है।

उन के और मेरे हिसाब में ९ वर्ष का भेद है। मुझे बहुत से प्रमाण सतयुग के विषय में मिले हैं। अतः अब ९ वर्ष के पश्चात् सुन-हरी समय आने वाला है। भक्तजन आनन्द को प्राप्त होंगे। सबलोग ठीक विधि पूर्वक भक्तिकरें

इस युग परिवर्तन का संबंध समस्त संसार से है। इस लिये हिन्दू मुसलमान, ईसाई आदि सबोंको सूचित करता हूँ कि पाप कर्मों को को त्याग कर अपने अपने तरीके पर परमात्मा का गुण गावें। इसी में उनका कल्याण है।

कलियुग के विषय में कई विद्वानों से विचार

हो चुका है, और जो चाहेंगे उनसे भी प्रेम पूर्वक विचार किया जायगा । जो लोग पत्र द्वारा कुछ पूछना चाहें उनका एक आने का टिकट आने पर उत्तर दिया जावेगा ।

यह चेतावनी जैन विद्वानोंके लिये खास तौर पर इस पत्र में भेज रहा हूँ उनको इस की सत्यता पर विचार करना चाहिये कि जैन शास्त्रों की इस विषय में क्या आज्ञा है। मुझे आशा है कि हमारी जैन समाज के विद्वान् अपनी विद्वत्ता को व्यर्थ के आपसी झगड़े और समाज में कलहाग्नि फैलाने वाले विचारों से हटा कर इस विषय पर पूर्ण विचार कर प्रकाश डालने का कष्ट सहन करेंगे जिस से लोगों पर जैन आचार्यों और शास्त्रों का प्रभाव पड़सके ।

सं० नोट—अनावश्यक समझते हुए भी पाठकों के मनोरञ्जनार्थ स्वामी रामनारायण जी की इस भविष्य वाणी को प्रकाशित कर दिया गया है । वैदिक धर्म के विद्वानों को स्वामी जी के इस नये अनुसन्धान का जवाब देना चाहिए। क्योंकि हिन्दू धर्मानुसार कलियुग का प्रमाण ४३२००० वर्ष माना गया है, जबकि यह स्वामी जी केवल ४८०० वर्ष ही बतलाते हैं । वैदिक धर्म की मान्यता के अनुसार अभी सिर्फ ५०३५ वर्ष ही कलिकाल के व्यतीत हुए हैं ; ४२६९६५ अभी और बाकी हैं । इस भविष्य वाणी ने लोगों के दिलमें काफी हलचल पैदा कर दी है । आश्चर्य है इस ज्ञान विज्ञान के युगमें भी ऐसी तथ्य हीन भविष्य वाणियाँ शिक्षितों के हृदय में भी उथल पुथल मचाये बिना नहीं रहतीं । महाराज की इसबड़ी खोज को पढ़कर बहुत लोग बड़े प्रसन्न हो रहेहैं और उन्होंने निश्चय कर लिया है कि ६ वर्ष के बाद वे अवश्य ही भगवान कल्किका दर्शन करेंगे और सतयुग का आनंद लूटेंगे। इस अंध श्रद्धा के लिए क्या कहा जाए। हम ने कुछ वर्षों पहले एक ऐसी ही अफवाह सुनी थी कि एक मुसलमान भविष्य वक्ताने ६ महीने बाद दुनियां की प्रलय होने की भविष्य वाणी की है। उस समय भी अवश्य ही कुछ अन्ध श्रद्धालु उस बात को सुनकर चिन्तित हुए होंगे । ६ वर्ष पश्चात सतयुग प्रगट हो जाने की यह भविष्य सूचना भी उस प्रलय की सूचना सेअधिक महत्व नहीं रखती है । हमारा लिखना यहहै कि इसतरह की सूचना पर ध्यान देना भी कोई आवश्यक नहीं है । कुछ लोग विश्वविख्यात बनने के लिए ऐसी सूचनाऐं प्रगट करदेते हैं । जैनधर्मानुसार तो अभी सत-युग आने में हजारों वर्ष बाकी हैं ।

—चैनसुखदास जैन

मलेरिया

(अनु० श्री प० भँवर लाल जी जैन न्याय तीर्थ)

ऐसे बहुत कम लोग होंगे जिन पर जीवन में एक बार भी मलेरिया का आक्रमण न हुआ हो । मलेरिया अब हमारे लिए चिरपरिचित और सुपरिचित रोग हो गया है। जिस प्रकार प्लेग, ज्वर, हैजा और चेचक आदि मनुष्य जाति के लिए भयंकर बीमारियां समझी जाती हैं उसी प्रकार मलेरिया भी एक है । हाँ यह कहा जासकता है कि मलेरिया से इतने

व्यक्ति कराल काल के ग्रस नहीं बनते जितने कि प्लेग और हैजे से। किन्तु यह न भूलना चाहिए कि मलेरिया मनुष्य के लिए प्लेग और हैजे से भी अधिक हानिकर बीमारी है। अन्य बीमारियां तो समय समय पर होने वाली हैं लेकिन मलेरिया भारत जैसे देश में सदा जारी रहता है। यदि उसके लिए थोड़ा सा भी ध्यान दिया जाय तो यह बीमारी आसानी से दूर की जा सकती है। पाठकों को ज्ञात होगा कि प्रारम्भ में सुप्रसिद्ध पनामा की नहर का महान कार्य केवल मलेरिया के कारण ही बन्द करना पड़ा था।

इस नहर के स्थान में मलेरिया को फैलाने वाले मच्छरों की बहुत अधिकता थी। इस लिये नहर पर काम करने वाले मनुष्य मलेरिया से आक्रान्त हो कर पतंगों की तरह मरने लगे और जो किसी प्रकार जीवित रह सके वे भी दुर्बल और काम करने में असमर्थ होगए। पर अन्त में डाक्टरों की विजय हुई और मलेरिया को सदा के लिए वहां से भागना पड़ा। अगर वहां से मलेरिया न भगाया जाता तो यह निश्चित है कि पनामा की नहर कभी न बन पाती। यह सुन कर आप लोगों को अवश्य आश्चर्य होगा कि इतने बड़े इंजीनियरिंग (वास्तुविद्या) के काम को रोकने वाला केवल एक छोटा सा कीड़ा या मच्छर था।

यह निश्चित है कि इस मलेरिया को फैलाने वाला एक मच्छर ही है। मलेरिया को नष्ट करने का प्रश्न मच्छर को रोकने का प्रश्न है। इस लिए प्रारम्भ से ही उन मच्छरों को उत्पन्न न होने देना चाहिये जिन से यह रोग उत्पन्न होता है। स्थिर या गंदा पानी इन मच्छरों का उत्पत्ति स्थान है। जहां ऐसा जल नहीं है वहां मलेरिया नहीं हो सकता। अतः इस रोग से बचने वालों का प्रथम कर्तव्य है कि वह ऐसा वातावरण ही अपने पास पैदा न होने दे जो मलेरिया का उत्पादक हो। ऐसी जगह जहां पनाले वगैरह गिरते हों या गन्दा पानी इकट्ठा होता हो वहां मिट्टी का तेल डाल देना चाहिये। कुछ तालाब आदि स्थानों पर हम तेल नहीं डाल सकते अतः उन को ढक देना ही ठीक होगा। यदि किसी कारणवश हम इन मच्छरों को उत्पन्न होने से नहीं रोक सकते तो हमारी यही कोशिश होनी चाहिये कि यह मच्छर हमारे शरीर के नजदीक न पहुँच सके। जहां मच्छर हो वहां बिना मसहरी के नहीं सोना चाहिए डाक्टरों के बिलों में रुपया खर्च करने की अपेक्षा प्रारम्भ में ही मसहरी खरीद लेना बहुत सस्ता एवं लाभप्रद है।

पाठकों को अब मालूम हो गया होगा कि मलेरिया एक प्रकार के कीटाणुओं से होता है जिन को कि हम (Microbes, Bacteria, Bacillior Pratozoa) कह सकते हैं। यद्यपि ये इतने सूक्ष्म हैं कि हमारी आंखें बिना तेज खुर्दबीन की सहायता के इन को नहीं देख सकतीं किन्तु फिर भी ये एक चीते से भी अधिक भयंकर हैं। जिस तरह हैजे के कारण पानी द्वारा क्षय के श्वास द्वारा और (Tetanus Lockjaw के घाव द्वारा मनुष्य शरीर में प्रविष्ट होते है उसी प्रकार मलेरिया के कारण शरीर में प्रविष्ट नहीं होते अपि तु जब मच्छर शरीर पर आक्रमण करता है या काटता है कीटाणु मनुष्य के खून में प्रवेश पा लेता है और जब तक यह खून को विरला नहीं बना देते बढते और द्विगुणित होते जाते हैं। अब उस व्यक्ति को ठंड या ज्वर मालूम होता है। मनुष्य हृदय में तो यह कीटाणु इतना उपद्रव करते हैं किन्तु मच्छर के शरीर में कोई नुकसान न पहुंचाते हुए बढ़ते रहते हैं। लेकिन यह स्मरण रखना चाहिए कि सभी मच्छर ऐसे नहीं होते जिन में ये कीटाणु रहते हों।

यह केवल एक विशेष जाति का ही मच्छर है जिसको कि हम Anopheles कहते हैं। उन में भी नर नहीं, मादा ही ऐसा काम कर सकता है। किन्तु उचित तो यह है कि हम सभी प्रकार के मच्छरों से अपनी रक्षा करें। यदि ऐसा न हो सके तो हम Anopheles को तो अवश्य रोकना चाहिए। उसकी पहिचान लेना कोई विशेष बात नहीं है थोड़ा सा ध्यान देने पर ही वह जाना है। जब यह काटता या विश्राम करता है तब वह अपने मस्तक के बल खड़ा होजाता है। जब कि अन्य मच्छर (जो मलेरिया के उत्पादक नहीं है) धनुषाकार Horinzontal खड़े रहते हैं। उसके पर धब्बेदार होनेसे अन्य मच्छरों के परों से भिन्न होते हैं।

—अपूर्ण

कोयले की गैस

मनुष्य को सांस लेने के लिये स्वच्छ वायु मिलना आवश्यक है। सांस के लिए आई हुई गंदी वायु स्वास्थ्यको खराब करडालती है। कभी कभी किसी किसी स्थान पर जहरीली गैस मिलकर वायु इतना दूषित हो जाती है कि उस में सांस लेने से मृत्यु तक होजाती है।

अभी कुछ दिन पहले एक विस्तृत स्थान पर लड़के फुटबाल खेल रहे थे कि फुटबाल पास के एक कुए में गिर गई जिस में कि बहुत दिनों से पानी सूख चुका था और कूड़ा करकट भरता जाता था चार पैसे के लोभ से एक आदमी फुटबाल निकालने उस में घुसा वहां विषैली गैस से उसका दम घुट गया जिस से वह वहीं पर मर गया।

इसी प्रकार इलाहाबाद में गहरी बंद नाली को साफ करने के लिये उस में एक मेहतर उतरा उतरते ही वहां की विषैली वायु में श्वासोच्छ्वास लेने के कारण वहीं पर तुरंत मरगया उस की सहायता के लिये ज्यों दूसरे दो मेहतर नीचे उतरे कि वे भी पहुंचते पहुंचते मूर्छित हो गये।

कोयले में भी एक प्रकार की प्राणघातक गैस रहती है जिस से कि यदि कोयला जला कर किसी बन्द स्थान में रक्खा जावे तो उसमें सोने बैठने वाले मनुष्यों का दम उस विषैली गैस के कारण घुट जावे। गत वर्ष ऐसे अनेक समाचार प्रकाशित हुए थे।

कुछ दिन पहले शिमला जैन धर्मशाला में रात के समय कोयले जला कर कोठड़ी बंद करके दो मनुष्य सोगये थे कोयले की गैस से सोते हुए ही उनका दम घुट गया वे फिर न उठे।

अंबाले में भी एक ऐसा ही घटना हुई है जो कि निम्न लिखित रूप से है—

सरला देवी १३ वर्ष की एक हिंदू लड़की बन्द स्नानागार में गर्म पानी से स्नान कर रही थी कि जहरीली गैस से मरते मरते बची। जलते कोयलों की अङ्गीठी लेकर वह स्नानागार में गई और उस के दरवाजे को अन्दर से बन्द करके नहाने लगी। स्नान कर चुकने पर वह अपना शरीर तौलिए से साफ कर रही थी कि उस का दम घुटने लगा। उस ने जल्दी जल्दी कपड़े पहिने और कपड़े पहिन कर ज्यों ही कि उसने दरवाज़ा खोला वह बेहोश हो कर गिर पड़ी। भाग्य वश उसके सम्बन्धी, पास ही

बैठे हुए थे वह बड़ी कठिनाई से लड़की को होश में लाये। होश आने पर लड़की ने बताया कि मैंने गिरते समय चिल्लाने का प्रयत्न किया परन्तु चिल्ला न सकी।

आजकल सर्दी के कारण लोग कोयले जला कर बंद कमरे में सो जाते हैं अथवा बंद कोठरी में दहकते हुए कोयलों की अंगीठी रखकर बैठ जाते हैं तथा प्रसूता स्त्री को बंद कमरे में सुलाकर वहां कोयले जला देते हैं ये कार्य जीवन के लिये बहुत खतरनाक हैं इस कारण भारी ठंडक भी क्यों न हो शुद्ध वायु आने जाने केलिये रोशनदान, खिड़की, आदि का थोड़ा बहुत मार्ग अवश्य खुला रहना चाहिये कोयले न तो बंद स्थान में जलाने चाहिये और न बहुत समय से बंद स्थान में यकायक प्रवेश ही करना चाहिये।

—अजितकुमार

जैन क्षत्रिय वंशों का विवरण।

(ले०—श्रीमान सरदार भंवरलाल जी रतलाम)

जब भोग भूमि के विच्छेद होने और कर्म भूमि के प्रारम्भ होने का समय आता है तब भोग भूमि के युगलियों में से चौदह कुलकर (मनु) होते हैं, ये सृष्टि परिवर्तन के नियमों को जानने वाले और राज्य नीति का प्रचार करने वाले होते हैं।

वर्तमान अवसर्पिणी काल के चौदह कुलकर के नाम क्रम से इस प्रकार हैं:—प्रति श्रुति, सन्मति, क्षेमंकर, क्षेमंधर, सीमंकर, सीमंधर विमलवाहन, चक्षुष्मान, यशस्वान, अभिचन्द्र चन्द्राभ, मरुदेव, प्रसेनजित और नाभिराय।

पहले कुलकर के समय से भोग भूमि का क्रम २ नाश होते होते अन्तिम चौदवें कुलकर महाराजा नाभिराय के समय सम्पूर्ण भोग भूमि नष्ट हो गई और कर्म भूमि का प्रारम्भ हुआ। इसी युग के आदि में नाभिराय को मरुदेवी रानी से प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव उत्पन्न हुए। ऋषभदेव का विवाह कच्छ और महा कच्छ नामक दोनों राजाओं की दो कन्यायें यशस्वती और सुनन्दा से किया गया। महारानी यशस्वती से भरतादि १०० पुत्र व ब्राह्मी देवी नाम की कन्या और महारानी सुनन्दा से बाहुबलि नामक पुत्र व सुन्दरी देवी कन्या, कुल १०३ सन्तानें भगवान ऋषभदेव के हुई।

भरत इस युग के पहले चक्रवर्ती हुए। भरत के पुत्र अर्ककीर्ति (सूर्य्य यश) से सूर्य्यवंश की स्थापना हुई। अर्ककीर्ति के वंश में क्रम से यश श्रुत, बल, सुबल, महाबल, अतिबल अमृतबल, सुभद्र, सागर, भद्र, रवितेज, शशि प्रभुतेज, तेजस्वी, तपान, प्रतापवान्, अतिवीर्य्य, सुवीर्य्य, उदितपराक्रम, महेन्द्रविक्रम, सूर्य्य, इन्द्रप्रद्युम्न, महेन्द्रजित, प्रभु, विभु अरिध्वंश, वितभ वृषभध्वज, गरुडाङ्क, मृगाङ्क इत्यादि राजा हुए। पश्चात् कितने ही काल बाद इसी सूर्य्यवंश में राजा हरिश्चन्द्र हुए। हरिश्चन्द्र के वंश में राजा रघु, जिनके नाम से रघुवंश प्रसिद्ध हुआ।

रघुवंश में राजा दशरथ के महाप्रतापी भगवान रामचन्द्र, लक्ष्मण (नारायण), भरत, शत्रुघ्न, ऐसे चार पुत्र उत्पन्न हुए। रामचन्द्र जी की रानी सीता (राजा जनक की पुत्री) से लव और कुश दो पुत्र उत्पन्न हुए। लव के वंश में उदयपुर महाराणा और अन्य उदयवंशी क्षत्रिय हैं और कुश के वंश में जयपुर के कछावा आदि और अन्य उदयवंशी क्षत्रिय हैं। इस प्रकार सूर्य्यवंश का बहुत बड़ा विस्तार है, जिसका वर्णन जैन पद्मपुराण आदि ग्रन्थों में पूर्णतया विदित होगा

श्री ऋषभदेव के दूसरे पुत्र बाहुबलि के सोमकीर्ति (चन्द्रयश) से चन्द्रवंश की स्थापना हुई, इस के वंश में क्रम से सुबल, भुजबल, चन्द्रकीर्ति, आर्य्य और हरि नामक राजा हुए। राजा हरि से हरिवंश प्रसिद्ध हुआ। हरि के महागिर, हिमगिर, वसुगिर, गिर और सुमित्र हुए। सुमित्र की रानी पद्मावती से श्रीमुनिसुव्रतनाथ बीसवें तीर्थंकर उत्पन्न हुए। इनके सुव्रत, लोम पोलोम, महादत्त, मत्स्य, अरिंधन, म[illegible], सा[illegible] सूर्य, अमर, देवदत्त, मिथुलानाथ, हरिषेण नभसेण शंख, भद्र, अभिचन्द्र, वसु, बृहध्वज, सुबाहु, दीर्घबाहु, अभिमान, भान, सुभान, भीम इत्यादि बहुत से राजा हुए। पश्चात् इसी वंश में राजा यदु हुए, जिससे यदुवंश प्रसिद्ध हुआ। यदु के नरपति और नरपति के सूर और सुवीर दो पुत्र हुए। सूर ने सौर्य्यपुर नगर बसाया और सुवीर मथुरा का राजा हुआ। सूर के अंधक वृष्टि उनकी रानी सुभद्रा जिनसे समुद्रविजय वसुदेव आदि १० पुत्र हुए समुद्र विजय और उनकी रानी शिवा देवी से बाईसवें तीर्थंकर श्रीनेमिनाथ (अरिष्टनेमि) उत्पन्न हुए। ये बाल-ब्रह्मचारी रहे और गिरनार से मोक्ष प्राप्त हुए। राजा वसुदेव और रानी देवकी जी से नौवें नारायण श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए, इनकी पटरानी रुक्मिणि जी से प्रद्युम्न कुमार (कामदेव) उत्पन्न हुए। प्रद्युम्नकुमार के अनिरुद्ध, वज्र, प्रतिबाहु, बाहु, सुबाहु, आदि राजा हुए। इसी वंश में राजा भट्टी हुआ, जिस के नाम से भाटी वंश प्रसिद्ध हुआ। इस वंश में जैसलमेर के भाटी, करौली के यादव, कच्छ भुज के जाड़ेचा आदि तथा अन्य और भी उक्त वंश के क्षत्रिय हैं।

इस प्रकार चन्द्रवंश का भी बहुत बड़ा विस्तार है, जिस का विशेष विवरण जैन हरिवंश पुराण आदि ग्रंथों से विदित होगा। भरत चक्रवर्ती के दूसरे पुत्र श्रेयांस और सोमप्रभ थे। सोमप्रभ के जयकुमार और जयकुमार के कुरु हुआ। इसी राजा कुरु से कुरुवंश प्रसिद्ध हुआ। इस कुरुवंश में शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ ऐसे तीन तीर्थंकर चक्रवर्ती पद को धारण करने वाले हुए। पश्चात इसी वंश में राजा धृतिराज और रुक्मण हुए। राजा धृतिराज के अम्बिका, अम्बालिका और अम्बा ये तीन पटरानियां थीं। इन तीनों के क्रम से धृतराष्ट्र पाण्डु और विदुर ये तीन पुत्र हुए। राजा धृतराष्ट्र की रानी गान्धारी से दुर्योधनादि १०० पुत्र हुए और वे कौरव कहलाए। राजा पाण्डु की रानी कुन्ती से कन्या अवस्था में गंधर्व विवाह से कर्ण हुआ, पश्चात विवाह करने पर, युधिष्ठर, भीम और अर्जुन हुए। रानी माद्री से नकुल और सहदेव हुये। ये पांचो भाई पाण्डव कहलाये। सुप्रसिद्ध सती रानी द्रौपदी अर्जुन से ब्याही गई थी इस से रानी द्रौपदी का एक अर्जुन ही भर्तार था।
राजा रुक्मण की रानी गंगा से भीष्म (गुरु गांगेय) उत्पन्न हुए।

कुरुवंश का विशेष विवरण जैन पाण्डव पुराण में है। राजवंश को धनुर्विद्या सिखलाने वाले आचार्य भार्गव की शिष्य परम्परा इस प्रकार है—भार्गवाचार्य से भार्गव वंश प्रसिद्ध हुआ। भार्गवाचार्य के आत्रेय, कौथुमि, अमरावर्त, शित

वामदेव, कापिउल, अगत्थामा, सत्वर सरासन, रावण, विद्रावण, द्रोणाचार्य, (श्री आश्विनी) इनसे अश्वत्थामा हुआ वह धनुर्विद्या में इतना प्रवीण था कि सिवाय अर्जुन के उस समय उसका मान गलित करने वाला दूसरा धनुर्धारी था। धनुर्विद्या में यह अर्जुन से ही झेंपता था।

इस प्रकार आदि क्षत्रिय वंशों की उत्पत्ति तथा संक्षेप वंशावली अर्थात् इन वंशों में होने वाले महापुरुषों के नाम जैन धर्मानुसार इस लेख में बताये हैं, जिनसे पाठकों को यह बात ज्ञात हो जायगी कि जैन पुराणों में किस प्रकार से सृष्टि नियमानुसार प्राचीन क्षत्रियों का सिलसिलेवार वर्णन किया गया है और उन में ऐसी कोई बात नहीं आई जो कि असम्भव प्रतीत हो या जिससे इन महापुरुषों के चरित्र में कोई लाञ्छन लगता हो।

आगे के लेख में इधर ढाई तीन हजार वर्ष में होने वाले उन जैन क्षत्रिय सम्राट् और राजा, महाराजाओं का उल्लेख किया जावेगा जिन को आधुनिक इतिहासिक भी अपने इतिहासों में प्रामाणिक रूप मानते हैं।

श्रीराम जी शर्मा की मोटी भूल

ले० श्री० नेमिचन्द्र जैन—सासनी (अलीगढ़)

श्रीयुत श्रीरामजी शर्मा कासगंज ने ४ अक्टूबर के आर्यमित्र में आर्यसमाज के डबल गप्पाष्टक की पहेली गप्प का उत्तर देते हुए मनुष्य की अमैथुन सृष्टि का हवाई किला बांधा है। सत्यार्थ प्रकाश की गलत बात को सही करने के लिए उन्होंने निस्सार अंदाजे दौड़ाये हैं। मनुष्य प्राकृतिकरूप से गर्भज जीव है वह कीड़े मकोड़ों के समान सम्मूर्छन (उद्भिज, स्वेदज) नहीं है जिस से सृष्टि की आदि में बिना माता पिता के भी उत्पन्न हो जावे।

आगे आपने भगवती सूत्र के ६४४वें पृष्ठ में उल्लिखित भगवान महावीर के गर्भपरिवर्तन का ज़िक्र किया है तथा जैनतत्त्वादर्श के ४९६वें पृष्ठ पर लिखी हुई भगवान ऋषभदेव की कथा का ज़िक्र करते हुए लिखा है भगवान ऋषभदेव ने अपनी बहिन के साथ विवाह किया था

यहां भी महाशय श्रीराम जी हिमालय पहाड़ के बराबर गलती कर गये हैं। उनको पता नहीं कि जैनधर्म के नामपर जैनमत समीक्षा में ऐसी ही बातों का उल्लेख करने के कारण आर्य समाजी उपदेशक पं० शंभूदत्त जी को जुर्माना हुआ था। पूर्वोक्त बातें श्वेताम्बर जैन ग्रंथों में लिखी है जिनको कि दिगम्बरजैन सम्प्रदाय बिल्कुल नहीं मानता अत गप्पाष्टक के उत्तर में इनबातों का लिखना इसी तरह फ़िज़ूलहै जिस तरह आर्य्य समाज केलिए पौराणिक बातों के हवाले पेश किये जावें। इसलिये आप गप्पाष्टक का उत्तर देने के लिये दिगम्बरीय ग्रंथों का हवाला दें

श्वेताम्बर समीक्षाके नाम से नाक भौं सिकोड़ने वाले हमारे श्वेताम्बरी भाइयों को अपने ग्रंथों के संशोधन करने की बात पर विचार करना

चाहिये श्रीराम जी शर्मा ने जिन बातों का उल्लेख किया है वे तो श्वेताम्बर मत समीक्षा में भी नहीं आई। श्वेताम्बरी भाई जब तक गर्भपरिवर्तन सरीखी वे शिर पैर की बातों का संशोधन अपने ग्रंथों से न करेंगे तब तक वे जैन धर्म पर आये हुए आक्षेपों को दूर नहीं कर सकते। दिगम्बर सम्प्रदाय की तरह उन्हें अपने ग्रंथों का स्वाध्याय करना चाहिये जब तक वे अपने ग्रंथों का स्वाध्याय न करेंगे तब तक उन्हें अपने घर का क्या पता लगेगा।

दिगम्बर समाज ने जिस तरह चर्चासागर आदि ग्रंथों की सिद्धान्त विरोधी बातों को देख कर उसको अप्रमाण ठहराया इसी तरह उन्हें भी करना चाहिये आंख मींचकर सब कुछ ठीक मान लेना जैन धर्म के उसूल के विरुद्ध है।

बद्लिया जी की वर्षा

श्वेताम्बर मत समीक्षा के कारण उन श्वेताम्बरीय मित्रों को अधिक जोश आया है जिन्हों ने कि इस जीवन में अपने आगम ग्रन्थों के स्वाध्यायका सौभाग्य प्राप्त नहीं किया। यदि वे अपने सामने समीक्षा को रख कर अपने ग्रंथों का स्वाध्याय एक बार भी कर जावें तो वे बहुत कुछ लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

कलकत्ता निवासी श्री युत नौवतराय जी बद्लिया भी उन्हीं में से एक हैं आपने अभी श्वेताम्बर जैन के प्रथम अंक में हमारे ऊपर सुन्दर शब्दों की वर्षा करते हुए धमकी दी है इस के लिये उन्हें धन्यवाद है।

उन के लेखानुसार समीक्षा के उत्तर में "एक पुस्तक खामगांव में छप चुकी है कि अभी तक हम को प्राप्त नहीं हुई तथा दो और छपने वाली हैं" यह एक ऐसी बात है जिस को सुन कर बद्लिया जी से भी अधिक हमको हर्ष हुआ है। उक्तपुस्तकों का अवलोकन कर हम श्वेताम्बर मत समीक्षा के द्वितीय संस्करण में उचित सुधार कर देंगे। यदि समीक्षा का उत्तर पूर्ण सन्तोष जनक मिला तो उसके दूसरे ऐडीशन की आवश्यकता नहीं। बद्लिया जी ने एक धमकी दी है "कि मुझे दिगम्बरी ग्रंथों केमांसभक्षण मदिरापान विधान का भंडफोड़ करना पड़ेगा" यदि नौबतराय जी की दृष्टि में सचमुच दिगम्बरीय ग्रंथों के भीतर ऐसे अनुचित विधान हैं तो उन्हें निसंकोच हो कर उन्हें प्रगट कर के दिगम्बरजैन समाज

को अनुगृहीत करना चाहिये। बड़लिया जी देखेंगे कि उन की बात सत्य निकलने पर हम तथा हमारे सहयोगी उन ग्रंथों को अप्रामाणिक ठहराते देर न करेंगे।

रेवती दान विषयक लेख का उत्तर जैनमित्र में छपने वाला है वहां आप देख का कष्ट उठावें।

सौदास अदिदेव महिदेव, मृगध्वज के मांस भक्षण की कथाओं के उल्लेख मात्र से जो आपके मन में दिगम्बर ग्रंथों में मांसभक्षणविधान का भ्रम हुआ है वह आप का मोटा भ्रम है। सौदास आदि जैन धर्म से विमुख पापात्मा थे उन्होंने जैसा आचरण किया ग्रंथों में वैसा कथन लिखा है ग्रंथकारोंने उन के दुराचारकी सराहना नहीं की न वे कोई दिगम्बर श्वेताम्बर थे इस की कथाओं के कारण ग्रंथोंपर कुछ आक्षेप आ सके। ऐसी कथायें श्वेताम्बरीय ग्रंथों में भी अनेक हैं।

भगवान नेमिनाथ की बरातका विवरण लिख कर आप ने और भी अधिक अनभिज्ञता प्रगट की है यह कथा भाग आप के कल्पसूत्र आदि ग्रंथों में भी ठीक वैसा ही है जैसा कि हरि-वंशपुराण में। आप जरा अपने ग्रंथ देखें। यह बात भी सिद्धेली कथाओं के समान हैं।

हमको खेद है कि जो लोग विधान, निषेध, कथा उल्लेख में भेद भाव भी नहीं समझते वे भी पांचवें सवार बनने की धुन में चाहे जो कुछ भी लिख मारते हैं

रामस्वामी आयंगर की पुस्तकका उत्तर दिगम्बर जैनसमाज की ओर से एक बार नहीं अनेक बार प्रगट हो चुका है दो बार तो जैनगजट द्वारा हम ने भी दिया है। अंग्रेजी पत्रों में हमारे अन्य मित्र उत्तर दे चुके हैं। वह बात निराधार है उस में कुछ ऐतहासिक सार नहीं। यदि किसी मनुष्य ने जीवों का बलिदान किया हो तो डंके की चोट पर जैन नहीं होगा। आज भी कति पाय ओसवाल शिकार खेलने लगे हैं इस का अर्थ यह नहीं कि जैनी शिकार खेलतेहैं हैं

श्री मान मान्यवर यति सूर्यमल जी को बड़लिया जी के लेखका अवलोकन करना चाहिये अपने शिष्यों की लेखनी का भार बहुत आप के ऊपर भी है।

(अजित कुमार जी जैन)

श्रीमान यति बालचन्द्र जी से

एक वैयाकरण घूमते फिरते किसी जंगल में जा पहुंचे वहां पर शेर की गर्जना सुनकर लोगों ने वैयाकरण जी से कहा कि पंडित जी भागिये! व्याघ्र आरहा है वैयाकरण जी ने कहा कि विशेषेण जिघ्रतीति व्याघ्रः (अच्छी तरह जो सूंघे वह व्याघ्र होताहै) इस तरह व्याघ्र शब्द की व्युत्पत्ति विचार कर कहने लगे कुछ परवा नहीं व्याघ्र (बाघ) आकर हमें सूंघ लेगा क्या हानि है. डरने की आवश्यकता नहीं।

अपनी शब्द व्युत्पत्ति की धुन में वैयाकरण जी वहीं डटे रहे बाघ ने आकर उन्हें अपने पंजों में जकड़ कर जब वैयाकरण के शरीर पर मुंह लगाया तब वे कहने लगे कि ओह मैं भूल गया 'विशेषेण-आ समन्तात् जिघ्रतीति व्याघ्रः (यानी जो चारों ओर खूब सूंघता है वह व्याघ्र होता है) इस व्युत्पत्ति के अनुसार यह मुझे सब तरफ से अच्छी तरह सूंघेगा। इसी धुन में पंडित जी जीवन लीला समाप्त कर गये।

कभी २ श्वेताम्बर यति बालचन्द्र जी भी इसी तरह व्याकरण कोष की आड़ में लीला करते हैं रत्नकरंड श्रावकाचार के [illegible] 'चेलोपसृष्टमुनि [illegible] पद का अपना मनमाना अर्थ करके यह सिद्ध करने का उद्योग करते हैं कि समन्तभद्राचार्य महाव्रती साधु को वस्त्र धारक मानते थे। यह उनकी पतन मर्यादा

भूल है जिसके लिये उन से फिर निवेदन है कि वे अपनी इस भूल को सुधारने के लिए किसी संस्कृत भाषा के विद्वान से मालूम कर लेवें कि 'चेलोपसृष्ट मुनिः' में 'क्त' प्रत्यय कर्म में हुआ है या कर्ता में और उसका क्या अर्थ हो सकता है। आप संस्कृत भाषा जानते हैं यह प्रसन्नता की बात है किन्तु इस पद का अर्थ आपने बिल्कुल गलत समझा है यह भी बिल्कुल ठीक है।

जो समन्तभद्राचार्य रत्नकरंड के अंत में ग्यारहवीं प्रतिमाका स्वरूप बतलाते हुए केवल एक लंगोटी पहनने वाले को श्रावक प्रगट करते हैं वे समन्तभद्राचार्य गृहस्थ के घर से मांग कर लाये हुए वस्त्र पहनने वाले को महाव्रती साधु बतलावें यह असंभव है।

'उपसृष्ट' के टुकड़े २ करके जो आप अमरकोषका सहारा लेकर अर्थ कर रहे हैं वह भी गलत है उससे भी स्वेच्छा से वस्त्र धारण मुनिके सिद्ध नहीं होता। तथा ऐसे टुकड़े किये जावें तो 'उ' का अर्थ महादेव' कीजिये 'प' का अर्थ 'पवन' करिये।

जो मनुष्य रात्रि भोजन नहीं करता उसको उसकी इच्छा के विरुद्ध जबर्दस्ती रात में मिठाई खिलाना जिस तरह उस मनुष्य के लिये उपसर्ग है ठीक उसी तरह वस्त्र त्यागी साधु को भोलेपन से या व्रत भंग कराने की बुद्धि से कपड़े उढ़ा देना भी मुनि के लिए उपसर्ग है। उसी चेलोपसर्ग (कपड़े के उपसर्ग) का उल्लेख श्री समन्तभद्राचार्य ने इस पद में किया है अतः इसका अभिप्राय 'वस्त्र द्वारा उपसर्ग किया हुआ साधु' होता है 'उपसर्ग' दूसरे के द्वारा होता है।

अतः यति जी को इस पर पुनः विचार करना चाहिये।

—अजितकुमार

भ्रम निरसन

श्री युत म० श्री राम जी कासगंजने ४ अक्तूबर के आर्यमित्र में आर्य समाज की डबल-गप्पाष्टक का उत्तर देते हुए दो गप्पों को सत्य रूप देने का उद्योग किया है किन्तु वे उस में सफल नहीं हो पाये हैं।

डबल गप्पाष्टक में पहली गप्प सृष्टि आरम्भ में तिब्बत पर बिना माता पिता के परमात्मा द्वारा जवान मनुष्य उत्पन्न करने के विषय में थी। जिस के कि समाधान में महाशय जी ने बहुत भारी प्रयत्न किया है और मेंढक, गिजाई, बिच्छू आदि के दृष्टान्त देकर यह सिद्ध करना चाहा है कि प्रारम्भ में मनुष्य भी ऐसे ही जमीन से उत्पन्न हो गया था।

इस विषय में हमारा यह कहना है कि महाशय जी को प्रथम ही अकाट्य युक्तियों से समूचे जगत की पूर्ण प्रलय का होना और तदनंतर संसार की सृष्टि होना सिद्ध करें। जमीन से मनुष्य की पैदायश तो पीछे ही सकेगी।

पितापुत्र, बीज वृक्ष आदि परम्परा से यह संसार अनादिकालीन सिद्ध होता है महाशय श्रीराम जी की पितृपरम्परा कहीं भी समाप्त नहीं हो सकती अतः सृष्टि का प्रश्न तो उठ नहीं सकता। जितने गर्भज जीवजाति हैं वे अपनी परम्परा से सदा से थीं किसी विशेष समय उन की उत्पत्ति नहीं हुई।

मानवीय शरीर का निर्माण अपने माता पिता के रज वीर्यके मिश्रण से गर्भाशय में होता है। मनुष्य के शरीर के जहां उपादान कारण रज वीर्य के सिवाय अन्य कोई पदार्थ नहीं वहां उस पैदायश का स्थान माता के गर्भाशय के सिवाय अन्य स्थान नहीं हो सकता। यह एक ऐसा प्राकृतिक नियम है जिस को

कोई तिल मात्र भी नहीं हिला सकता। सृष्टि की आदि में जब आर्यसमाजी सिद्धान्तानुसार मनुष्य जाति का अस्तित्व सर्वथा नहीं था फिर मनुष्य के देह के उपादान कारण रज वीर्य कहां से मिल सकता है क्यों कि वह स्त्री, पुरुष के शरीर में तयार होता है।

इसी प्रकार वह रज वीर्य जमीन पर पड़ा हुआ गर्भ उत्पादन नहीं कर सकता उसके लिये स्त्री के गर्भाशय की आवश्यकता है।
अतः मनुष्य की उत्पति जमीन से कहना मोटी भूल है।

आर्यसमाज का मनुष्य की उत्पत्ति सृष्टि के प्रारम्भ में तिब्बत पर जमीन से हुई बतलाना ऐसे ही है। जैसे पौराणिक लोग सीता की उत्पत्ति जमीन से कहते हैं अथवा मुसल्मान लोग जन्नत (स्वर्ग) में गिजमों (कीड़ों) की पैदायश खेती से बतलाते हैं। मनुष्य कोई गाजर, मूली, घास फूस नहीं जो तिब्बत की जमीन पर उग खड़ा हुआ और न गिजाई कीड़ा मकोड़ा खटमल बिच्छू ही है जो उद्भिज रूप में उत्पन्न हो जावे वह तो गर्भज जीव है इस कारण वह माता पिता बिना कदापि उत्पन्न नहीं हो सकता। वैदिक सृष्टि प्रक्रिया उसका समाधान कर सकती है जो आंख मींच कर आपकी बात मान लेवे चाहे वह बिना शिरपैर की ही क्यों न हो। अतः निस्सन्देह तिब्बत की जमीन से (बिना माता पिता के) मनुष्य की उत्पत्ति बतलाना हिमालय सरीखा गपोड़ा है, असंभव है। श्रीरामजी इसका एक इंच भर भी समाधान नहीं कर सकते।

भगवान महावीर स्वामी के गर्भ परिवर्तन की बात तथा भगवान ऋषभदेव के युगलरूप में उत्पन्न होकर अपनी बहिन के साथ विवाह करने की बात किसी भी दिगम्बर जैन ग्रंथ में नहीं है। गप्पाष्टक का उत्तर आपको दिगम्बरजैन समाज को देना है अतः उसी के मान्य प्रमाण पेश करें।

यजुर्वेद (दयानंद भाष्य) के २५वें अध्याय के छठे मंत्र वाली गप्प का समाधान करते हुए आप लिखते हैं कि मुर्गी की गुदा सर्प के विष को खींचकर सर्प से डसे हुए मनुष्य को अच्छा कर देती है किन्तु स्वयं मरजाती है किन्तु सारस की गुदा (चूतड़) सांप के विष को खींच भी लेती है और सारस नहीं मरता इस लिये मंत्र में लिखा है कि 'हे मनुष्यो! कोई विशेष पक्षी या सारस चूतड़ों से पवन और सूर्य, जांघों से प्राण और उदान परिपूर्ण चलने वाले चाल तथा निचोड़ और स्थूल पदार्थों से बल को सिद्ध करना चाहिये।

महाशय जीका समाधान हमारी समझ में नहीं आया वेदमंत्रमें लिखा है कि सारस के चूतड़ों से सूर्य सिद्ध करो महाशय जी सूर्यके बजाय सर्प-दंश की औषध सिद्ध करना बतलाते है क्या सूर्य सर्पविष उतारने की औषधका नाम है जो कि सूर्य सिद्धकरनेका मतलब सर्पविष निवारण लिया जावे। मंत्र निर्माता ऋषि उस मंत्र में तथा स्वामी दयानंद जी अपने भाष्य में सूर्य के बजाय सर्प डसनेकी औषध रूप खुलासा नहीं लिख सकते थे?

सूर्य का अर्थ सांपके विष उतारनेकी औषध करना बादरायण संबंध मिलाना है। अतः यह दूसरा समाधान भी बिलकुल निःसार है। इस लिये श्रीयुत महाशय श्रीरामजी इस दूसरी गप्पका भी समाधान नहीं करपाये। इसके सिवाय प्रतिवर्ष भारतवर्ष में सर्प विष से लाखों मनुष्य मरते रहते हैं। मुर्गी तथा सारस पक्षी प्रायः सर्वत्र मिलते हैं यदि उनकी गुदा स्पर्श विषकी अचूकदवा है तो वे महाशय जी उसका प्रचार करके पुण्यलाभ करें। किन्तु फिरभी याद रहे कि सूर्य से इसका कोई संबंध नहीं।

—अजितकुमार

समालोचना

आदर्श कहानियां-यह पुस्तक श्रीमान मूलचन्द किशनदास कापड़िया सूरत अपने प्रेस से प्रकाशित की है पुस्तकाकार है पृष्ठ संख्या २०४ और मूल्य एक रुपया दो आना है। छपाई कागज अच्छे हैं।

पुस्तक की लेखिका श्रीमती पंडिता चन्दाबाई जी आरा हैं पुस्तक में स्त्रियों के लिये उपयोगी ऐतिहासिक तथा कल्पित २७ कथाओं का संग्रह हैं। कथाओं की भाषा रोचक और सरल है प्रत्येक स्त्री के पढ़ने योग्य है। प्रत्येक घर में इस पुस्तक का रहना आवश्यक है। महिलासमाज के उत्थान के लिये ऐसी पुस्तकें बहुत उपयोगी हैं।

संगीतसरोवर—(प्रथम द्वितीय भाग) पुस्तकों के लेखक श्रीमान मास्टर रामानंद जी जैन प्रेम गांधर्व विद्यालय खंडवा हैं। पुस्तक के दोनों भागों में हारमोनियम बजाने का ढंग बहुत सरल तरीके से बतलाया गया है। लेखक महानुभाव हारमोनियम आदि संगीत साधनों के कुशल जानकार हैं। हारमोनियम में तो वे बहुत अच्छी योग्यता रखते हैं यह बात प्रत्यक्ष देखी हुई है। उन्होंने अपने अनुभव को संगीत सरोवर के दोनों भाग लिख कर सर्व साधारण के समीप पहुंचाया हैं। हमारे खयाल में हारमोनियम सीखने के लिये यह पुस्तकें उपलब्ध पुस्तकों में उत्तम है। पुस्तक के लेखानुसार हारमोनियम बजाना [illegible] आसान है लेखक का परिश्रम प्रशंसनीय है।

प्रथम भाग का मूल्य आठ आने और द्वितीय भाग का मूल्य एक रुपया है। [illegible] रुपये सैकड़ा कमीशन भी दिया जाता है। हारमोनियम प्रेमियों को इन का अवलोकन करना चाहिये।

पंचांग—स्वर्गीय श्रीमान पं० जियालाल जी ज्योतिष रत्न के सुपुत्र श्रीमान पं० शिखरचन्द्र जी फरुखनगर (गुड़गांव) ने वि० सं० १९९२ का पंचांग प्रिंटिंग प्रेस में छपा कर प्रकाशित किया है। जैनतिथि भी दी हैं। मूल्य ढाई आना है। —अजितकुमार

संपादकीय

श्रीमान पं० शंकरलाल जी वैद्य १७ अक्टूबर को मानव शरीर छोड़ गये । आप आयुर्वेद के एक अनुभवी निपुण वैद्य थे । अनेक वैद्यक ग्रंथों के मूललेखक और अनेक के टीकाकार थे १७-१८ वर्ष से वैद्य पत्र का संपादन करते रहे जैन समाज के आप गणनीय व्यक्ति थे । जैन दर्शन को समय समय पर अपने सुंदर उपयोगी लेख भेजा करते थे । आप के वियोग से दिगम्बर जैन समाज को बहुत भारी हानि पहुंची है । आपकेआत्माको शान्ति लाभ हो ऐसी भावना है ।

जैन दर्शन का उदय बिजनौर के चैतन्य प्रिंटिंग प्रेसमें सवा वर्ष पहले हुआ था । प्रेस के स्वामी श्रीयुत बा० शान्तिचन्द्र जीने गतवर्ष में दर्शन का प्रकाशन प्रेम तथा सेवा भाव से तत्परता के साथ किया है इसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं ।

अब प्रकाशनभार हमारे ऊपर आया है जैन-दर्शन के प्रेमी महानुभाव इस कार्य में सहायता प्रदान करते रहें । प्रकाशन संबंधी कुछ त्रुटियां जो इस अंकमें रह गई हैं आगामी अंकमें न रहेंगी

श्रीमान पं० वंशीधर जी व्याकरणाचार्य न्यायतीर्थ तथा श्रीमान वर्द्धमान जी हेगडे जैन-दर्शनके ग्राहक बनाकर जो अपना प्रेमभाव प्रगट कर रहे हैं तदर्थ उन्हें धन्यवाद है ।

स्याद्वाद अंकपर अनेक महानुभाव अपनी सम्मति भेजरहे हैं उनको आगामी अंकोंमें यथास्थान प्रकाशित कर दिया जायगा ।

—अजितकुमारजैन

मुनिविहार पर रुकावट डालने वाले इंदौर राज्य के पास किये गये बिल का विरोध करने के लिये मुलतान दि० जैन मंदिर में सभा हुई । सभा के निर्णय अनुसार इंदौर महाराज, प्राइममिनिस्टर तथा रेजीडेंट के पास मैमोरियल भेजे गये ।

जैनदर्शन के नियम

१ जैन दर्शन धार्मिक प्रचार एवं समाज सुधार के उद्देश से प्रकाशित किया जाता है । जैनधर्मपर आये हुए आक्षेपों का समाधान करना भी इस का विशेष लक्ष्य है

२ अंग्रेज़ी मास की पहली तथा सोलहवीं तारीख को प्रकाशित होता है ।

३ इसका वार्षिक मूल्य तीन रुपया है संस्थाओं तथा विद्यार्थियों से ढाई रुपया लिया जावेगा ।

४ जैन दर्शन में झगड़ालू तथा दलबंदी के लेखों को स्थान नहीं मिलेगा ।

५ जो महानुभाव जैनदर्शनकी स्थायी रूपसे अपने सुंदर लेखों द्वारा सेवा करते हैं तथा जो कमसेकम पांच ग्राहक बनाने की कृपा करते हैं उनको बिना मूल्य भेंट किया जाता है ।

६ बैरंग लिफाफे, पत्र नहीं लिये जाते और न उन पत्रों का उत्तर देने के लिये ही जैनदर्शन का आफिस बाध्य है जिनके उत्तर के लिये पोस्टेज न आया हो ।

७ ठोस सच्ची धार्मिक सेवा तथा समाज सेवा के लिये जैन दर्शन का प्रकाशन होता है इस कारण प्रत्येक उत्साही महानुभावको दर्शन निजी संपत्ति समझना चाहिये ।

८ जैनदर्शन के लिये लेख कविता श्रीमान पं० चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ मनिहारों का रास्ता जयपुर तथा समालोचना के लिये पुस्तकें श्रीमान पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री भदैनीघाट बनारस के पास भेजनी चाहिये ।

९ परिवर्तन के पत्र तथा समाचार अजितकुमार शास्त्री मुलतान के पास भेजने चाहियें ।

REGD. NO. L.

उर्दू, अंग्रेज़ी जैन साहित्य !

यदि आप अंग्रेज़ी या उर्दू में जैन धर्म का अध्ययन या प्रचार करना चाहते हैं तो कृपया विद्यावारिधि बैरिस्टर चम्पतराय जी द्वारा रचित निम्न लिखित पुस्तकों को खरीदिये—

1.	The Key of Knowledge 3rd Edn.	Price Rs.	10 0 0
2.	The confluence of Opposites 2nd Edn.	,,	2 8 0
3.	The Jain Law.	,,	7 8 0
4.	What is Jainism (Essays and Addresses)	,,	2 0 0
5.	The Practical Dharma 2nd Edn.	,,	1 8 0
6.	The Sanyas Dharma	,,	1 8 0
7.	The House Holders Dharma	,,	0 12 0
8.	Jain Psychology.	,,	1 0 0
9.	Faith, Knowledge, and Conduct.	,,	1 8 0
10.	The Jain Puja. (with Hindi Sanskrit Padaya)	,,	0 8 0
11.	Rishabh Deo--The Founder of Jainism	,,	4 8 0
12.	,, (Ordinary Bindiug)	,,	3 0 0
13.	Jainism, Christianity and Science.	,,	3 6 0
14.	Lifting of the Veil.	,,	3 6 0
15.	,, (Ordinary Binding)	,,	2 0 0
16.	Jainism and World Problems.	,,	1 0 0
17.	Right Solution.	,,	0 4 0
18.	Glimpses of a Hidden Scienbe in orignal Christian Teachings.	,,	0 4 0
19.	Jaina Psychology.	,,	0 4 0
20.	Jaina Logic or Nyaya.	,,	0 2 0
21.	Jaina Penance.	,,	0 2 0
२२	जवाहराते इस्लाम प्रथम भाग उर्दू	,,	० ८ ०
२३	जवाहराते इस्लाम दूसरा भाग उर्दू	,,	० ८ ०
२४	इत्तहादुल मुख्तालफ़ीन उर्दू	,,	० १ ०
२४	जैन लॉ	,,	१ ० ०
२६	आत्मिक मनोविज्ञान	,,	० ८ ०
२७	श्रद्धा ज्ञान और चारित्र	,,	० ८ ०

विशेष के लिये कृपया पत्र लिखिये।

सब प्रकार के पत्र व्यवहार का पता—

मैनेजर—दि० जैन शास्त्रार्थ संघ, अम्बाला-छावनी।

अजितकुमार जैन ने "अकलंक प्रिन्टिङ्ग प्रेस, मुलतान में छापकर प्रकाशित किया।

वर्ष २] १ दिसंबर १९३४ ई० [अंक ९-१०

ॐ

श्री भा० दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुख-पत्र

ऑन० सम्पादक—

पं० चैनसुखदास जैन न्यायतीर्थ

पं० अजितकुमार जैन शास्त्री पं० कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री

विलंब का कारण

१३ नवम्बर को दर्शन का रजिष्टर्ड नंबर मिलने के कारण १ नवम्बर का ८वां अंक पाठकों के पास वहुत विलंब से पहुंचा। उसके पीछे ९ वें अंक का छपना प्रारंभ हुआ अतः यह ९वां अंक भी लेट हो गया है । इस कमी को पूरा करने के लिये यह युग्मांक निकाला गया है। आगामी दर्शन नियत समय पर सुन्दर रूप से प्रकाशित हुआ करेगा ।

निवेदक—

— मैनेजर

एक वर्ष का मूल्य ३) इस अंक का मूल्य ≈)

जैन दर्शन पर लोकमत

श्रीमान् मास्टर कस्तूर चन्द्र जी साहित्यभूत्य
नागपुर, की सम्मति।

जैनदर्शन जैन समाज में एक असाधारण पत्र है इससे मेरा जो हार्दिक प्रेम है वह अकथनीय है। गूढ़तत्व विवेचन की दृष्टि से यह पत्र जैन समाज की अमूल्य सम्पत्ति है।

—कस्तूर चन्द्र जैन

श्रीमान् पं० हीरालाल जी जैन न्यायतीर्थ
उज्जैन, की सम्मति

जैन दर्शन का 'स्याद्वादाङ्क' देखकर हृदय आनन्द से एकदम गद्गद् हो उठा। प्रायः सभी लेख गंभीर अध्ययन पूर्वक लिखे हुए एवं विद्वानों को भी अद्वितीय सामिग्री प्रस्तुत करने वाले हैं। जिस में श्रीमान न्यायाचार्य पं० माणिकचन्द्र जी एवं श्रीमान पं० राजेन्द्रकुमार जी के लेख तो मुझे बहुत ही पसन्द आए। 'जैनदर्शन' के संचालकों ने इस दिशा में जो कठिन परिश्रम उठाया है, उसके लिए उन को जितना भी धन्यवाद दिया जाय, थोड़ा है। वास्तव में यह अंक विद्यालयों, सरस्वती भवनों एवं विद्वानों के स्थायी संग्रह के योग्य सिद्ध हुआ है। स्याद्वाद के जिज्ञासु जनों को तो इस अंक का अवश्य ही संग्रह करना चाहिए।

जैन दर्शन की उन्नति का इच्छुक
—हीरालाल जैन

श्रीमान् पं० पन्नालाल जी काव्यतीर्थ
की सम्मति

जैनदर्शन का स्याद्वादांक निकालकर आपने प्रशंसनीय कार्य किया तदर्थ बधाई दिये बिना मुझ से नहीं रहा जाता। यह प्रयत्न आपका अत्यन्त स्तुत्य एवं श्लाघनीय है।

—भवदीय
पन्नालाल काव्यतीर्थ

श्रीमान पं० श्रीप्रकाश जैन न्यायतीर्थ,
जयपुर की सम्मति—

माननीय श्रद्धेय सम्पादक जी,

आपके सत्प्रयत्न से 'स्याद्वादांक' विद्वानों के लिये भी संग्रहणीय हुआ है। स्याद्वाद पर अपूर्व विशेषांक निकालने के लिये धन्यवाद। इसमें कोई सन्देह नहीं—यदि समाजके अन्य सोते हुए विद्वान् भी सहयोग देते तो यह और भी अनुपम बन जाता।

आपका—
श्रीप्रकाश जैन

श्रीमान प्रोफेसर सुल्तान सिंह जी एम. ए.,
महाराजा कोलेज, जयपुर की सम्मति—

'स्याद्वादांक' के पढ़ने से बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। इस में कोई सन्देह नहीं कि स्याद्वाद जैसे कठिन विषय को उदाहरण द्वारा खूब ही सरल कर दिया है, यहां तक कि मुझ जैसे साधारण बुद्धि वाले व्यक्ति भी समझ सके हैं कि "जैन स्याद्वाद" का क्या रहस्य है? एकान्त पक्ष का यह कितना खंडन करता है और संसारियों के लिये यह कितना कल्याणकारी है। मुझे आपने यह अंक भेजकर बड़ा कृतार्थ किया, जिसके लिये धन्यवाद?

आपका—
प्रो० सुल्तानसिंह
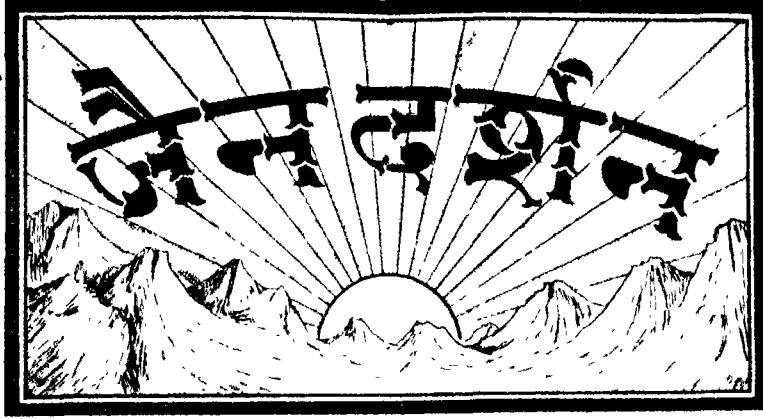
श्री अकलंकदेवाय नमः

श्री जैनदर्शनमिति प्रथितोऽग्रगिमर्भषमीभवन्निखिलदर्शनपक्षदोषः।
स्याद्वादभानुकलितो बुधचक्रवन्द्यो भिन्दन्तमो विमतिजं विजयाय भूयात्

वर्ष २ | श्री कार्तिक सुदी १०—शुक्रवार श्री वीर सं० २४६१ | अङ्क ६

स्वतंत्रते !

१- प्राज्य राज्य भी मेरा देवि,
तेरा सुन्दर हो उपहार !
तो भी मुझे विषाद नहीं,
पर, करदे कष्टों का संहार

२- तू है निखिल विश्व की पावन
हृदय-तन्त्री का करुण पुकार।
बिन तेरे इन्द्रासन शासन-
भी हो जाता जीवन भार।

३-हार हार कर भी उपासना,
का आधार बनी रहती।
तेरे मधुर मिलन में ही तो-
दुनियां कष्टों को सहती।

४-स्थावर-जंगम-जीव जगतको,
तेरी चाह अथाह सदा।
रहती है, सच है, बन्धन को,
कौन चाहता स्वयं सदा।

५-जहां नहीं है तेरा आसन,
शासन भी वह है निःसार।
वसन अशन धन जीवन तब
सब, हो जाते मानव को भार।

६-तू विमुक्ति का तत्त्व मनोहर,
तू मानव जीवन का रूप।
तेरी जैसी तो तू ही है,
सच मुच तू तो है चिद्रूप।

७

जिन्हें तू प्रसन्न हो करके—देदेती तेरा वरदान।
उनकी अखिल यातनाओं का—हो जाता है शीघ्र प्रहान॥

—चैनसुखदास जैन

पुनर्जन्म

[ले०—श्रीमान पं० प्रकाशचन्द्र जी जैन न्यायतीर्थ जयपुर]

पुनर्जन्म, पुनरुत्पत्ति, प्रेत्यभाव ये सब शब्द एक ही अर्थ को कहने वाले हैं। मर करके पुनः जन्म धारण करना प्रेत्यभाव या पुनरुत्पत्ति है अर्थात् पूर्व शरीर को छोड़ कर फिर उत्पन्न होना—शरीरान्तर में प्रवृष्ट होना पुनर्जन्म कहलाता है। आत्मा नित्य है—अनादि अनन्त है, अतः उस के स्वरूप से विनाश और उत्पाद की कल्पना संगत नहीं हो सकती। आत्मा द्रव्य रूप से नित्य होता हुआ भी पर्याय की अपेक्षा अनित्य है। इसलिए पुनर्जन्म का इतना ही अभिप्राय समझना चाहिए कि जीव अपनी पर्याय —बाह्य स्वरूप बदलता है, एक पर्याय को छोड़कर कर दूसरी पर्याय ग्रहण कर लेता है, नष्ट किसी भी अवस्था में नहीं होता। जैसे एक दीपक एक जगह से उठ कर दूसरी जगह चला जाने पर उस स्थान को आलोकित करने लगता है—पूर्व की जगह अन्धकार से व्याप्त हो जाती है और दूसरे स्थान पर प्रकाश फैल जाता है वैसे ही जिस शरीर से आत्मा निकल कर आता है वह उस के पूर्ण बाहर निकलते ही चेतना शून्य हो जाता है और जिस शरीर में आकर प्रविष्ट होता है वह ज्ञान दर्शन शक्ति संयुक्त होजाता है। जीव की यह क्रिया उस के बाह्यरूप में एक विलक्षण परिवर्तन कर देने वाली होती है—कोई मनुष्य से पशु बन जाता है और कोई पशु से मनुष्य या इस से भी पुण्य शरीर प्राप्त कर लेता है। इस असमान और अदृश्य परिवर्तन को न पहचान कर हम लोग 'वह मर गया' वह नवीन उत्पन्न हुआ, इत्यादि व्यवहार करने लगे हैं। जैनाचार्यों ने इस व्यवहार को सत्य बतलाने के लिये आत्म तत्व को नित्य मानने के साथ ही साथ कथञ्चित् अनित्य भी बतलाया है।

अशुद्ध आत्मा स्वोपार्जित कर्मों के आधीन है आयु कर्म की जितनी स्थिति पड़ी है, अधिक से अधिक उतने ही काल तक वह शरीर में रह सकता है। इस के बाद यदि वह मुक्त नहीं होता है तो उसे अपनी भावनाओं के अनुकूल प्राप्त होने वाले शरीरान्तर का आश्रय लेना अनिवार्य है। इसी शरीरान्तर में गमन की क्रिया का विद्वानों ने 'पुनर्जन्म' नाम रक्खा है।

यही बात अन्य दार्शनिकों ने भी मानी है। सभी आस्तिक दर्शनकार आत्मा के पुनर्जन्म सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। गीता में लिखा है—

> वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
> नवानि गृह्णन्ति नरोऽपराणि,
> तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
> न्यन्यानि संयाति नवानि देही।

अर्थात्—जिस प्रकार एक वस्त्र को पुराना होजाने पर छोड़ दिया जाता है, उसी प्रकार यह आत्मा भी एक शरीर के जीर्ण होजानेपर—उसे किसी

कारण से अपने अवस्थान के योग्य न समझ कर, छोड़ देता है और दूसरा नवीन शरीर धारण कर लेता है ।

नास्तिक लोग आत्मा की स्वतन्त्र सत्ता नहीं मानते, इस लिये पुनर्जन्म की भी सत्ता वे स्वीकार नहीं करते । यदि वे पुनर्जन्म की चर्चा करने लगें तो आत्मा का आवागमन सिद्ध हो जाय जो उन के लिये अभीष्ट नहीं । किन्तु अनेक अड़चनें ऐसी हैं जिन के कारण पुनर्जन्म को स्वीकार करना आवश्यक हो जाता है ।

पूर्व जन्म के संस्कार

पूर्वजन्म के संस्कार प्रत्येक आत्मा के साथ रहते हैं । इन्हीं संस्कारों के आधार पर शरीरान्तर में जीव की मनोवृत्तियां बनती हैं। प्रत्यक्ष देखाजाता है—एक मनुष्य जन्म से ही निठुर होता है बाह्य परिस्थितियां के अपने अनुकूल न पड़ते हुए भी उस के हृदय की कठोरता और क्रोध कभी शान्त नहीं होता तथा ऐसे दयालु भी देखने को मिलेंगे जो क्रूर माता पिता की सन्तान होकर भी स्वभाव से ही सरल होते हैं। बाह्य कारणों का भी हमारी मनोवृत्तियों पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है, किन्तु सर्वथा नहीं। यह नहीं कहा जा सकता कि जैसे हमें यहां कारण मिलते हैं, सर्वथा वैसा ही हमारा अन्तःकरण बनजाता है । हां इतना कहा जा सकता है कि हमारी मनोवृत्तियों का विकास अधिकता से बाह्यकारणों पर अवलंबित है जिन्हों ने पूर्वभव में अपने ज्ञान को अधिक विकसित किया था और जिस के ज्ञानावरण क्षयोपशम अधिकमात्रा में है, उसके थोड़ा सा बाह्य कारण मिलते ही ज्ञान बहुत शीघ्र प्रकाशित हो जायगा, ऐसे ही व्यक्ति थोड़ा बता देने पर किसी गूढ़तम तत्व को भी संकेत मात्र से अच्छी तरह समझने लगते हैं । किन्तु जो पूर्वजन्म में विशेष ज्ञान से वञ्चित रहे, जिन के ज्ञानावरण का क्षयोपशम विशेष नहीं होता, वे अनेक बार समझाने पर सरल बात को भी मुश्किल से समझते हैं । यह है पूर्व जन्म के संस्कारों का प्रभाव, जिस के कारण समान जातीय व्यक्तियों में भी विलक्षण अन्तर प्रतिक्षण अनुभव किया जाता है । पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण ही तीर्थकरों के जन्म से ही तीन ज्ञान (मति, श्रुत, अवधि) विद्यमान रहते हैं । इस समय के भी अनेकों उदाहरण हैं । "पास्कल" नामक एक बड़ा विद्वान होगया है । उसने बारह वर्ष की ही अवस्था में सरल भूमिति के मुख्य प्रमेय ढूँढ निकाले थे । मंगिया मेलो धनगर था उस ने पाँच ही वर्ष की उम्र में गणित के कठिन उदाहरण सहज कर डाले थे । उसका नाम-लोगों ने 'गणित का यन्त्र' रक्खा था । काल-बर्न नामक एक विद्वान् आठ वर्ष की उम्र के पहले ही पाटी पर अंक न लिखकर मुखाग्र ही गणित के प्रश्न तत्काल हल कर देता था। एक बार उसने ६ वीं संख्या का षोडश-घात मुख से ही कर दिखलाया था उस षोडशाघात की संख्या पन्द्रह अंकों की अर्थात् २८,१४,७४, ६७,६७,१०,६५६ थी ! वह छः अंकों की रकम का वर्गमूल और दस करोड़ संख्या का घनमूल

पूछते ही ठीक ठीक बतला देता था । एकने उससे पूछा कि ४६ वर्षों के कितने मिनट हुए ? इस पर उसने तुरन्त ही बतला दिया कि २,४२,८८,८०० मिनट । मोजार्ट नामिक प्रसिद्ध गायन-शास्त्रज्ञ ने अपनी चार ही वर्ष की अवस्था में पदों की रचना की और आठ वर्ष की उम्र में तो उस ने एक संगीत नाटक ही लिख डाला । मिलानोला नामक एक स्त्री तंतुवाद्य में बड़ी प्रवीण होगई; वह बहुत ही छोटी उम्रमें बहुत अच्छी सारंगी बजा लेती थी । यह देख कर लोग कहते रहते हैं कि जन्म लेने के पहले ही उस ने तंतु-वाद्य का अभ्यास कर लिया होगा । इसी तरह अनेक अलौकिक शक्ति के चित्रकार और शिल्पज्ञ हो गये हैं, जिन्हों ने बाल्यावस्था में ही अपनी बुद्धिमत्ता का प्रभाव दिखला कर लोगों को चकित कर दिया है * ।" उपर्युक्त उदाहरण पाश्चात्यों के दिये गये हैं क्यों कि भारतीय विद्वानों में तो अधिकतर पुनर्जन्म को मानते हैं, किन्तु प्रायः पश्चिमी देशनिवासी और उनकी शिक्षा से प्रभावित हुए अपनेज्ञान का अभिमान रखनेवाले भारतीय भाई उसे स्वीकार नहीं करते उनके लिये ऐसे ही उदाहरण अधिक उपयुक्त थे । भारतीयों में अलौकिक बुद्धिमत्ता—प्रारम्भ से ही जन्मान्तर के संस्कारों की उन्नति का प्राकट्य बतलाने वाले नित्यनये उदाहरण समाचारपत्रों में निकलते ही रहते हैं। होमर, प्लेटो, शेक्सपियर आदि की भाँति यहाँ भी दास, तुलसी प्रभृति की कमी नहीं है । पाठक जानते होंगे—कि टोडरमलजी को एक बार पढ़ते ही अच्छी तरह समझ में आ जाता था । उन्हों ने अपनी ऐसी ही विलक्षण शक्ति के पीछे १२ वर्ष की अल्पवय में ही गोम्मटसार जैसे महान गम्भीर और कठिन शास्त्र की भाषाटीका प्रारम्भ कर दी थी । अपने छोटे से जीवन काल में ही उन्हों ने पूर्ण गोम्मटसार, क्षपणासार त्रिलोकसार आत्मानुशासन की भाषा टीकाएं कर दीं और मोक्षमार्ग प्रकाश जैसे महान् ग्रन्थ के निर्माण का भी श्रीगणेश कर दिया । इन्हीं लोगों में ऐसी अपूर्व बुद्धिमत्ता क्यों प्रकट हुई ? इस का कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया जा सकता । मानना पड़ेगा कि ये सब पूर्वोपार्जित विशेषताओं के ही परिणाम हैं । जिस के पूर्वजन्म में जिस विषय में जैसे संस्कार होते हैं, उत्तर जन्म में उसके सर्व प्रथमउस विषय में वैसे ही संस्कार प्रकट होते हैं ।

संस्कारों के सम्बन्धमें उल्लिखित पंक्तियों से आप को यह विश्वास हुआ होगा कि पूर्व जन्म के संस्कार ही इस जन्म में अधिकतर विकसित होते हैं । अब हम पाठकों का ध्यान कर्म वाद की ओर आकर्षित करना चाहते हैं ।

कर्मवाद और पुनर्जन्म

"जैसी करणी वैसी भरणी" जो जैसा कर्म करता है, उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है ।

* ये कुछ पंक्तियां 'आत्म विद्या' नामक पुस्तक से ली गई हैं ।

कुछ का तत्काल और कुछ का कालान्तर में। जैसे मान लीजिये—आप ने किसी के चरित्र जमायी किसी को कुछ उपयोगी सामान दे दिया। ऐसे अवसर पर सम्भव है वह आपको तत्काल ही आपके किये हुए अपकार या उपकार का बदला चुकादे, और यह भी हो सकता है कि वह अधिक गम्भीर प्रकृति वाला होने से आप के कृत्य का तत्काल प्रतीकार न कर के अन्य किसी अवसर पर उस का बुरा या भला परिणाम प्रस्तुत कर दे। हमारे द्वारा प्रतिक्षण में होने वाले सभी कार्यों के फल हमें इसी नियम के अनुसार मिलते हैं। कितने ही कर्म उसी जन्म में फल देदेते हैं और कितनों ही का जन्मान्तर में भी परिपाक उपलब्ध होता है। अपरिमित सुख और अपरिमित दुःख, अनन्त सम्पत्ति चरम वैभव और चरम दरिद्रता तक प्राप्त होने वाली सम्पूर्ण अवस्थायें अपने अपने पूर्वोपार्जित अच्छे और बुरे कर्मों के परिणाम हैं? अन्यथा राजा और रंक, विद्वान और मूर्ख, रोगी और स्वस्थ का वैषम्य क्यों? एक ने तो जन्म से ही पहले क्या पुण्य किया, और दूसरे ने कौनसा अपराध बन पड़ा? पूर्व जन्म माने बिना यह समस्या कभी भी हल नहीं की जा सकती, विश्व में कर्म फल की व्यवस्था ही सब से अच्छा नियामक है। कर्मवाद के आधार पर पुनर्जन्म की परम्परा अनवरत चलती है, जब कर्मों का क्षय हो जाता है, तब पुनः जन्म भी नहीं होता। पुनर्जन्म को स्वीकार न करने वाले यदि इस कर्मफल की व्यवस्था को भी न मानें, तब तो संसार के प्रत्येक कार्य में अनेक बाधायें उपस्थित हो जायगी जिन का उचित समाधान पुनर्जन्म का विरोध करने वाले कभी भी नहीं कर सकेंगे। एक चोर को चोरी के लिए दण्डनीय और उस कार्य का उत्तरदाता न समझा जाय, तो सर्वसाधारण उस कार्य में प्रवृत्ति करने लगेंगे। यदि दुखियों का सन्ताप उनके अपराधों का प्रायश्चित्त नहीं है तो वह एक दुखी और एक सुखी क्यों होता है? अस्तु इसका अधिक विस्तार करने से कोई लाभ नहीं, हमारा अभिप्राय इतना ही है कि विश्व संसार के कार्यों की उचित व्यवस्था के लिये कर्मफल सिद्धान्त मानना आवश्यक है और कर्मवाद को स्वीकार कर लेने पर पुनर्जन्म मानना अनिवार्य है।

पुनर्जन्म पर पाश्चात्य विद्वानों के मत

उपर्युक्त अनेक अड़चनोंके उपस्थितहो जाने से पुनर्जन्मवाद को भारतीय आस्तिक दर्शन कार तो इसे बहुत प्राचीन काल से ही मानते आ रहे हैं। वर्तमान में भी पुनर्जन्म सिद्धान्त भारतीयों की मान्य वस्तु है। पाश्चात्य देशों में चाहे यह सर्वमान्य न हुआ हो, तथापि प्राचीन काल में और आधुनिक काल में भी अनेक महान तत्ववेत्ता धर्मोपदेशक, इतिहासकार, साधु, कवि इत्यादि ने निस्सन्देह मान्य किया है। प्रथमतः मिश्र देश की ओर दृष्टि डालते हैं। वह देश पृथवी में बहुत पहले सभ्य हुआ था। उस में यह तत्व मान्य था प्रसिद्ध ग्रीक इतिहासकार हेरोडोटसने लिखा है कि "मानवी आत्मा अमर है और जब मनुष्य मृत

होता है तब उसका आत्मा किसी दूसरे शरीर में प्रविष्ट होता है, यह तत्व मिसर देश के लोग प्रतिपादन करते थे।" पायथेगोरास नामक जो तत्व वेता हो गया है उसने और उसकी शिष्य- मंडली ने ग्रीस और इटली देशों में पुनर्जन्म-मत का प्रचार किया है । इस तत्ववेता को मार्ग में एक बार एक कुत्ता जाता हुआ मिला तब उसने यह जान लिया कि पहले मरे हुए उसके एक मित्र का आत्मा उस श्वान-देह में प्रविष्ट हुआ था; यह बात ग्रीस के इतिहास में बहुत प्रसिद्ध है । साक्रेटीस के सुशिष्य और महान् तत्ववेत्ता प्लेटो ने जो ग्रन्थ रचे उनकी मुख्य कुंजी तो पुनर्जन्म ही है । प्लेटो ने एक जगह लिखा है:—"हमारे शरीर की अपेक्षा आत्मा अत्यन्त प्राचीन है और वह बार-बार भिन्न भिन्न जन्म लेता है ।" इटली देश के महाकवि वर्जिल और ओविड के काव्यों में जगह जगह पुनर्जन्म का प्रतिपादन पाया जाता है । ओविड के काव्य का ड्रा-यडन नामक इँग्लिश कवि ने अनुवाद किया है । उसमें लिखा है कि मृत्यु में यह शक्ति नहीं है कि वह हमारे अजरामर आत्मा को मार सके एक देह जब मिट्टी हो जाती है तब आत्मा नवीन वसति-स्थान ढूँढ निकालता है और वहां जीव तथा प्रकाश उत्पन्न करता है ।" ईरान देश के प्राचीन तत्ववेत्ताओं के धर्म में पुनर्जन्म ही सार था । भारतवर्ष पर चढ़ाई करने के बाद सिकन्दर बादशाह ने आर्य-तत्व ज्ञानियों के सहवास से *पुनर्जन्म का तत्व मान्य किया था । इसका आधार* मिलता है । फ्रांस देश के आदिम निवासी, जिन्हें गाल्स कहते हैं, पुनर्जन्म पर पूर्ण विश्वास रखते थे । यह बात प्रख्यात रोमन ग्रन्थकार और योद्धा जूलियस सीजर ने लिखी है ।" ब्रिटेन देश के प्राचीन धर्मोपदेशक, जिन्हें ड्राइड कहते हैं, ऐसा मानते थे कि "मनुष्य का देह नष्ट होने-पर अपने स्वभाव और इच्छा के अनुरूप किसी दूसरे शरीर में प्रवेश करता है। पुनर्जन्म प्रतिपादन अरबस्थान के प्राचीन तत्व वेत्ताओं और मुसलमान सूफी पंडितों का विषय ही हो गया था । यहूदी लोगों ने बाबिलोनियां के बन्दिवास के बाद पुनर्जन्म-मत मान्य किया था । उन लोगों में पालिज नामक जो साधु हो गया है, उसी का अवतार वे जान बापटिस्ट को मानते थे । उसी प्रकार यहूदी लोग यह बात मानते रहे हैं कि उनका स्मृतिकार मोजेस और स्वयं ईसामसीह भी पहले के साधुओं के अवतार ही थे । इसके सिवा ईसाई धर्म की ओर जब हम दृष्टि डालते हैं तो वहां भी हमें यही हाल देख पड़ता हैं । वह शास्त्र भी कुछ पुनर्जन्म - मत से अलग नहीं है ।

आरिगननामक जो क्रिश्चियन धर्मोपदेशक होगया है वह लिखता है—"दो मनुष्यों में से एक की पुण्य की ओर और दूसरे की पाप की ओर प्रवृत्ति क्यों होनी चाहिए ? तथा एक ही मनुष्य की किसी समय पुण्य की ओर तो किसी समय पाप की ओर जो प्रवृत्ति होती है वह वैसी क्यों होनी चाहिए ? यह बहुत ही बड़ा गूढ़ *प्रश्न है । देह की उत्पत्ति के बाद जब हम इस* का कारण ढूँढने लगते हैं तो कुछ भी

समझ में नहीं आता इसका कारण ढूँढने में देहोत्पत्ति के पहले का ही विचार करना चाहिए।" ईसाई धर्म में पुनर्जन्म मत का प्रचार इतनी शीघ्रता से होने लगा था कि रोमन लोगों के बादशाह जस्टी नियम को ईसाई शक के बाद ५३८ वें वर्ष में कानस्टेन्टीनोपल की राजसभा में एक नवीन कायदा बनाकर इस मतका उच्छेद करना पड़ा। इस निश्चित किया गया था कि " कि यह पौराणिक और विचित्र मत कि इस देह के पहले भी आत्मा का अस्तित्व था आगे भी वह फिर जन्म पावेगा, मान कर जो कोई इसका प्रचार करेगा वह बहिष्कृत समझा जायगा।" सत्रहवें शतक में कंब्रिज विश्व विद्यालय के प्लेटो के मतानुयायियों ने पुनर्जन्म का मत मान्य किया था। जर्मनी के इतिहास के मध्यकाल में (ईसाई शक के अनन्तर ५०० और १५०० के बीच वाले समय में) होने वाले और आधुनिक बहुत से जर्मन तत्ववेत्ताओं ने भी इस मत का प्रतिपादन किया है। काण्ट, शेलिंग, गोयथ इत्यादि जर्मन तत्ववेताओं के ग्रन्थों मे पुनर्जन्म मत के पुष्टि करणार्थ अनेक अवतरण दिये जासकते हैं; परन्तु विस्तार भय से यहां नहीं दिये गये। नास्तिक शिरोमणि ह्यूम ने आत्मा के अमरत्व पर जो लेख लिख रक्खा था वह उसके मरने के बाद प्रकाशित हुआ है। उसमें उसने लिखा है कि "मनुष्य मात्र में अवस्था-भेद इत्यादि जो भेद पाये जाते हैं उनका जब हम तात्विक दृष्टि से विचार करते हैं तब *पुनर्जन्म का मत ग्रहण किये बिना काम* ही नहीं चलता।" आधुनिक पदार्थ-विज्ञान-शास्त्रवेत्ता प्रो० हक्सले ने लिखा है कि "अविचारी लोग चाहे भले ही कहा करें कि पुनर्जन्म का मत असम्भाव्य है; परन्तु जगत की वास्तविक दशा का ज्ञान होने के लिए जिस प्रकार उत्क्रान्ति-तत्व के मत की आवश्यकता है उसी प्रकार पुनर्जन्म के मत का मानना भी अत्यन्त आवश्यक है। यह मत मान्य किये बिना जगत की अनेक बातों का खुलासा नहीं हो सकता" ईश्वरज्ञानवेत्ता इमर्सनने अपने 'अनुभव' नामक निबन्धमें कहा है कि "हम जब जागृत हो कर देखते हैं तब ऐसा भास होता है कि मानो हम सोपान-परम्परा के मध्यभाग में बैठे हैं। नीचे दृष्टि डालने पर जान पड़ता है कि हम बहुतसी सिढ़ियाँ चढ़ कर ऊपर आये हैं। और जब हम ऊपर की ओर देखते हैं तब दीख पड़ता है कि अभी हमें बहुतसी सिढ़ियाँ ऊपर चढ़ना है। इस के सिवा कुछ सिढ़ियों का तो हमें पता भी नहीं लगता।" वर्डसवर्थ और राजकवि टेनिसन इत्यादि श्रेष्ठ कवियों ने भी पुनर्जन्म के मत को माना है। विटमन कवि ने कहा है कि "हे जीवात्मा तू अनेक बार मर कर फिर भी बच रहा है। मैं पहले दस हजार बार मृत हुआ हूँ, इस में कोई सन्देह नहीं।" अफ्रिका, अमेरिका, और एशिया महाद्वीपों के आदिम जंगली लोगों में भी पुनर्जन्म-मत दृष्टि पड़ता है एशिया के तीन चौथाई लोग इस मत पर विश्वास रखने वाले हैं। संसार की पीठ पर ऐसा एक भी धर्म नहीं मिल सकता जिस में मृत्यु के बाद जीवात्मा का अस्तित्व न माना

गया हो * ।"

पुनर्जन्म की सिद्धि में हेतु

हमें विश्वास होता है कि विदेशी दार्शनिकोंके निर्णय पर अपने विचार स्थिर करने वाले महाशय अब जीवात्मा के पुनर्जन्म पर अविश्वास प्रकट न करेंगे। तथापि एक सुदृढ़ विचार वाला विद्वान जो दूसरों के मत को अपना सिद्धान्त बना लेना अनुचित समझता है और अपने भी स्वतन्त्र विचार रखता है, वह कह सकता है कि हम दूसरों के अभिमतों को पढ़कर अपना निर्णय नहीं कर सकते जबतक हृदय में सुदृढ़ विश्वास उत्पन्न करने वाली युक्तियाँ विदित न हों, हम पुनर्जन्म वाद को स्वीकार करना अनुचित समझते हैं। ठीक है, हम भी ऐसे विचारशील महानुभावों की सराहना करते हैं जो अपने पैरों के बल खड़ा होना चाहते हैं। जैनाचार्यों ने पुनर्जन्म को सिद्धकरने के लिये चार हेतु दिये हैं। तदहर्जस्नेहातः (१), रक्षोदृष्टेः (२), भवस्मृतेः (३) और भूतानन्वयात (४) ये चारों हेतु अकाट्य हैं।

पुनर्जन्म पर दिये गये हेतुओं का समर्थन

यहां इन चारों हेतुओं के सम्बन्ध में विशेष लिखदेना अनावश्यक न होगा। अब हम इन पर क्रमशः अपना विचार प्रकट करते हैं।

पहला हेतु है—"तदहर्जस्तनेहातः"। अर्थात उसी दिन पैदा हुए बालक के स्तनपान की इच्छा। इससे आचार्यों ने यह अभिप्राय प्रकट किया है कि पूर्व में आत्मा का अस्तित्व माने बिना जन्म के दिन ही बालक दूध पीने के लिये माता के स्तनों के मुह कैसे लगा सकता है ‡ क्यों कि स्तन पान की इच्छा प्रत्यभिज्ञान पर निर्भर है और प्रत्यभिज्ञान ज्ञान स्मरण के आश्रित है। स्मरण भी तभी बन सकता है जब कि स्मरणीय पदार्थ का पूर्व में अनुभव किया जा चुका हो। किन्तु जब आत्मा का पुनर्जन्म ही नहीं मानाजाय तब यह अनुभव कैसे सम्भव हो सकता है। अन्य दर्शनिकों ने भी पुनर्जन्म सिद्ध करने के लिए यही युक्ति दी है + उनका भी तात्पर्य है कि अभ्यास के बिना प्रवृत्ति नहीं होती और पूर्व शरीर के माने बिना अभ्यास असम्भव है। हमारे प्रतिक्षण अनुभव में आता है कि जीव भूखा होने पर कुछ खाना चाहता है। आहार के द्वारा क्षुधा की

* इन दार्शनिकों के विचारों का स्वयं हम ने संग्रह नहीं किया है पाठकों को परिचय कराने के लिये 'आत्म-विद्या' से लिया है। इस के लिये हम मूल लेखक और अनुवादक दोनों ही महाशयों का आभार स्वीकार करते हैं।

‡ तत्रैव वासरे जातः पूर्वकेणात्मना विना
अशिक्षितः कथं बालो मुखमर्पयति स्तने —श्री अमितिगत्याचार्य

\+ प्रेत्याभ्यासकृतात् स्तन्याभिलाषात्।

निवृत्ति होती है, इसका भी हमें ज्ञान है। यही प्रति दिन के संस्कार जन्मान्तर में भी साथ जाते हैं पूर्व के अभ्यास का स्मरण करके बालक आहार की अभिलाषा करता है। और क्षुधा शान्ति के लिये उसकी स्तन पान की ओर प्रवृत्ति होती है। यहां पूर्व के अभ्यस्त विषयों का स्मरण करके बच्चे को हर्ष भय, शोक आदि भी होते हैं। × यदि पूर्व जन्म के संस्कार न हों तो नवजात शिशु के लिये हर्ष का विषय असम्भव है। तथा भयोत्पादक और शोक जनक भी हम किस को कह सकते हैं, ठीक तो यह है कि यदि कोई आत्मा राग द्वेष रहित हो तो उसका जन्म नहीं होता ÷ जो भी कोई जन्म लेता है वह सराग और द्वेषयुक्त ही होता है।

दूसरा हेतु है रक्षोदृष्टेः। अर्थात् व्यंतरों के देखने के कारण। वर्तमान में अधिकतर समझदारों का राक्षस, भूत, पिशाच आदि पर विश्वास नहीं है। आज-कल ये लालबुझक्कड़ की कल्पनाएं जाने लगी हैं। पर बात वास्तव में ऐसी नहीं है, बहुत कुछ विचार करने पर इन की सत्ता में कोई सन्देह नहीं रह जाता। इस सम्बन्ध में पाठकों को इतना अवश्य श्रद्धान कर लेना चाहिये कि इस समय सत्य के नाम पर अत्याचार अधिक होते हैं। भोली जनता को भूत-पिशाचों के नाम से बहुत अधिक डराया गया है और उसका बहुत कुछ अपहरण भी किया गया है। भूत-पिशाच आदि व्यन्तर ऐसे कहीं नहीं रहते हैं। वे कभी-कभी किसी का उपकार ही करते हैं, किन्तु जब स्वयं उन्हें सताया जाता है या उनको किसी व्यक्ति से भय की संभावना होती है, तब वे प्रतीकार भी करते हैं प्रबल इच्छाशक्ति वाले पर वे कभी कुछ अपना प्रभाव नहीं जमा सकते। खेल देखने के बहाने किसी को कभी सताना निम्न श्रेणी के व्यंतरों का कार्य है। जबतक स्वयं हमारे साथ उनकी बात चीत न हो, हम उनका विरोधकर सकते हैं, किन्तु उनकी वास्तविक सत्ता को लुप्त नहीं कर सकते। इन पंक्तियों के लेखक को अनेक ऐसी विलक्षण घटनाओं का अनुभव हुआ है, जो वास्तव में सत्य हैं और जिनसे प्रेतात्माओं की सत्ता असन्दिग्ध है। इन प्रेतात्माओं ने अपने वंशजों के संसारिक कार्यों में मदद पहुंचाते रहने के अतिरिक्त कभी अकारण कुछ पीड़ा नहीं पहुंचाई। एक दो ऐसे आदमियों का भी हम से सम्बन्ध है, जिन्हें स्वप्न में प्रेतात्मा ने रुपये दिये और प्रातः काल सचमुच ही उन्हें रुपये अपने बिछौनों में मिल गये। इन प्रेतात्माओं का बात-चीत करने का ढंग भी विलक्षण है। ये कभी रात्रि को समक्ष खड़े और बैठे दिखाई देते हैं और दो मनुष्यों की भांति अपने घरकी उपयोगी कोई ख़ास बात कभी-कभी करजाते हैं अब कभी इन्हें दिन में बात-चीत करनी होती है, उस समय, जिससे ये बात-चीत करनी

× पूर्वाभ्यस्तस्मृत्यनुबन्धात् स्तन्याभिलाषात्।

÷ वीतरागजन्मादर्शनात्।

चाहती हैं उस व्यक्ति की, जागते रहते हुए सिर्फ आँख बन्द हो जाती है और ये समस्त दिखाई देकर बात-चीत करने लगती हैं । जल्दी के कारण कभी-कभी सेकिण्डों में ही बात करके कह जाती हैं—अभी हम जाते हैं, देर होती है, फिर बात करेंगे आदि । अपने वंशजों को प्लेग आदि महाभयंकर रोगों में भी इन्होंने पूर्ण सहायता दी थी । जिस समय घर वालों ने रोगी के लिये समझ लिया था कि अब यह आज रात तक मरने वाला है, उस समय इनने आश्वासन दिया कि असावधानी के कारण इसे यह भयंकर रोग हो गया है तुम डरो मत । इसका हम बतलायें वैसे इलाज कराओ, मरेगा नहीं घरवालों की बिलकुल आशा नहीं रह गई थी, किन्तु उनकी आज्ञानुसार किया गया, खास-खास आदमी भी इस समय रोग लग जाने के भय से रोगी के पास तक नहीं आते थे । केवल एक आदमी उसके पास रहता था वही औषधी वगैरह करताथा, और सब बाहर रहते । ऐसी स्थिति में प्रेतात्मा स्वयं उसके पलंग के पास दिन निकलने के एक घण्टे तक बैठी रहती और जब दवा यथा समय न दी जाती, तब कभी-कभी स्वयं वह दे देती । परिणाम यह हुआ, कि इस भयंकर व्याधि से मरणासन्न रोगी भी अच्छा हो गया जो आज तक जीवित है । जब घर में बच्चा होता है तब प्रसूति घर की रात्रि को सँभाल स्वयं प्रेतात्मा करती है, ऐसा प्रसविणी कहा करती है । वास्तव में यह एक विलक्षण और सत्य कहानी है जो सब को आश्चर्य करेगी। इस प्रकार की और भी अनेक घटनाएं हुआ करती हैं । —अपूर्ण

मूक प्राणियों पर दया

समाचारपत्रों के पाठकोंसे यह बात छिपी नहोगी कि जर्मनी के शासक नाजी दल के नेता, हिटलर ने, शताब्दियों के देश भाई यहूदी लोगों के साथ कैसा, अमानुषिक व्यवहार किया है । उसी हिटलर की सरकार ने एक कानून बनाकर गूंगे जानवरों को कष्ट देने और उनसे उनकी शक्ति की अपेक्षा, अधिक काम लेने वालों को दो साल कड़ी कैद की सजा देने की व्यवस्था कर दी है । इसी महत्वपूर्ण घटना को लेकर 'आज' में बड़ा महत्वपूर्ण सम्पादकीय लेख प्रकाशित हुआ है । लेख के एक दो वाक्यों से सर्वथा असहमत होते हुए भी अहिंसा प्रेमी पाठकों की जानकारी के लिये हम उसे प्रगट करते हैं ।

—कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री

मनुष्यका हृदय पहिचानना बहुत कठिन है। यहूदी लोगोंके दमन में जर्मनीके नाजी शासकों ने जिस प्राचीनकालीन क्रूरता का परिचय दिया है उसे देखते हुए यह अनुमान कौन कर सकता था कि नाजी देशभक्तों के हृदय में मूक जानवरों के प्रति असीम दया भरी हुई है ? अपने शताब्दियोंके देशभाई यहूदियोंसे जो पशुतुल्य

व्यवहार कर सकते हैं वे मूक प्राणियोंपर दया कर सकते हैं, यह बात बर्लिन नगर वाले एक तारसे मालूम हुई है। समाचार है कि हिटलरकी सरकारने एक कानून बनाकर गूंगे जानवरों को कष्ट देने और उनसे उनकी शक्ति की अपेक्षा अधिक काम लेने वालोंको दो साल कड़ी कैद की सजा देनेकी व्यवस्था कर दी है। वैज्ञानिक व डाक्टरी आविष्कारके लिये जीवित प्राणियोंके अंग अंग काट कर देखना अथवा उनके नसोंमें विष डालकर उनका चमड़ा खींचना और विषकी क्रिया देखना तो बिलकुल बन्द नहीं कर दिया गया है, पर आज्ञा दी गयी है कि केवल नवीन बातों की खोजमें ही यह काम किया जा सकेगा और वह भी कुछ चुनी हुई संस्थाएं ही कर सकेंगी। इस आंशिक दयाके लिये भी हम हिटलर की सरकार को बधाई देते हैं। ऊपर जो बात कही गई है उसे अंग्रेजी में "विविसेकशन" या जीवित पशुओंको काटना कहते हैं। प्रायः सब सभ्य देशोंमें इसके विरोधी है पर विज्ञानके लिये इसकी आवश्यकता इतनी अधिक समझी जाती है कि सब पाश्चात्य देशोंमें इसकी अनुमति दी जाती है पर कार्य छिपा कर करना पड़ता है, और शायद कहीं कहीं यह भी नियम है कि अंगछेद करनेके पहले पशुशरीर का वह ज्ञानतन्तु काट डालना पड़ता है जिसके जरिये पीड़ाका अनुभव होता है। सम्भवतः यह तन्तु काटनेके बाद पशु अधिक काल तक जीवित नहीं रहता पर उस अल्प समयमें ही अन्वेषकको अपना उद्देश सिद्ध कर लेना पड़ता है।

सजीव अगच्छेदकी प्रथा क्रूर है और इसका जो विरोध किया जा रहा है वह उचित ही है। पर इससे भी अधिक क्रूर प्रथाएं सभ्य संसार में प्रचलित हैं। "बायोलाजी" यानी जीवशास्त्र का अध्ययन करने वाले बालकों या युवकोंको मेंढक काट काट कर दिखाए जाते हैं। क्या यह अपरिहार्य है? क्या वैज्ञानिक यंत्रों और चलचित्रों की सहायतासे यह शिक्षा नहीं दी जा सकती? उचित तो यह है कि सभ्य देशों में से यह व्यर्थ जीवनाश और क्रौर्य उठा दिया जाय। नयी बात जानने के लिये एकान्त स्थान में थोड़ेसे वैज्ञानिक जो अंगच्छेद क्रिया करते हैं वह क्षम्य भी हो सकती है, पर जानी हुई बात को जताने के लिये कोमल हृदय बालकों के सामने क्लासोंमें जो क्रूरता की जाती है उसका तो कोई अच्छा कारण ही दिखाई नहीं देता। इससे भी बुरी बात एक और है - पशुओं के शरीर में भयंकर रोगोंके बीज व रोगाणु प्रवेश कराये जाते हैं। जब उन के रक्तमें वह विष मिल जाता है या वह रोग उत्पन्न हो जाता है तो वह रक्त लेकर उससे अथवा उस रोग से उत्पन्न होने वाले घावके पीवसे तरह तरह के "एन्टीवेक्सिनम" पिचकारीसे देनेकी दवाएं तैयार की जाती है। चेचकका जो टीका दिया जाता है उसकी लस इसी तरह गायके बछड़े के शरीरमें चेचक पैदा करके उसके पीवसे तैयार की जाती है। किसी धर्म या किसी चिकित्सापद्धतिकी दृष्टिसे हम इसका विरोध नहीं

कर रहे हैं। हमारा विरोध मनुष्यताका विरोध है। चेचक के टीकेमे हानि होती है या लाभ, यह विषय भी डाक्टरों वैद्यों, और वैज्ञानिकोंका है। हम जानते हैं कि पाश्चात्य देशोंके ही बहुत से विद्वान और वैज्ञानिक इस टीके से लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होने की बात कहते हैं। पर हम उन बातों को भी अपने पक्षमें पेश न करके सिर्फ मनुष्यता की दोहाई देकर कहते हैं कि यह क्रूर प्रथा उठा देनी चाहिये। 'विषस्य विषमौषधं' इस सिद्धाँत को हम मानते हैं और जानते हैं कि आजकल की प्राकृतिक चिकित्सा जलचिकित्सा, वर्ण (रंग) चिकित्सा आदि कुछ पद्धतियोंको छोड़कर प्रायः सबचिकित्सा पद्धतियोंमें विषका प्रतिकार विषसे किया जाता है, और रोगाणु भी जंगम विष ही हैं। अतः विषका प्रतिकार नीरोग शरीरमें विष प्रवेश करा लेनेका जो विरोध किया जाता है हम उसका भी समर्थन नहीं कर रहे हैं। हमारा तो विरोध लस तयार करनेमें की जाने वाली क्रूरतासे है।

क्रूरता और जीव दया का प्रश्न नया नहीं पुराना है। हम यह भी नहीं मानते कि सभी मांसाहारी क्रूर होते हैं और जीव के नाकमें आकर मर जानेके भयसे नाक मुहंपर कपड़ा बांध रखनेवाले सज्जनोंमें वस्तुतः जीवदया अधिक होती है। मांसाहारी अंग्रेजोंके घरके और देशके पशु देखिये कैसे सुन्दर, कैसे हृष्ट पुष्ट, कैसे प्रसन्न होते हैं। इसकेविपरीत हम निरामिषांशी हिन्दुओंके घरके अन्य पशुओं की तो बात ही जाने दीजिये, गोमाताओं की ही अवस्था देखिये। गायें गलियों में अथवा लोगों के खेतों में चर कर आवें और मालिक को बिना खर्च दूध दे दिया करें, बस इसी में अधिकतर हिन्दू समाज की गोभक्ति समात हो जाती है। परिणाम भी वैसा ही कटु हो गया है। गायों की नस्ल बिगड़ते बिगड़ते इतनी बिगड़ गयी है कि उनके रखने में हानि और बेच डालने में लाभ होता है। अपनी उपेक्षा और अज्ञान को न कोसकर हम धर्म की दुहाई देते तथा दूसरों से लड़ने को तैयार रहते हैं। जिस दृष्टि से हम गाय को माता समझते हैं, जिस दृष्टि से हम चींटियों को चीनी खिलाने जाते हैं, जिस दृष्टि से हम बन्दरों को मनमाना उपद्रव करने देते हैं; जिस दृष्टि से हम जमीन झाड़कर उसपर पैर रखते हैं, उस दृष्टि से और जीव दया से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। धर्म विशेष के मानने वालों का हम जी दुखाना नहीं चाहते, सब धर्मों के लोग हमारे आश्रयदाता हैं; पर इतना अवश्य कहेंगे कि जीव दया का अर्थ यह नहीं है कि हम घरेलू पशुओं का वध न करें पर उन्हें घुल घुल कर मरने दें।

हर्ज क्या रुपया कागज का चला
यह तरक्की लार्डकर्जनकी बदोलत होगई,
सेठ जीको फिकथी एक-एकके दसदस कीजिये

शुक्र कर रोटी तो गेहूँ की रही
मुफलिस गिनतीमें है दाढ़ी भी रुखसत हो गई
मोत आ पहुंची हजरत जान वापिस कीजिये

मलेरिया

(अनु० श्री० पं० भंवरलाल जी न्यायतीर्थ)

[गतांक से आगे]

आप लोगों को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि इस मच्छर ने जो केवल कीटाणुओं को फैलाता ही है स्वयं उत्पन्न नहीं करता, पृथ्वी के कितने बड़े भाग को निर्जन स्थान बना दिया है जिस कार्य को करने में सिंह, भेड़िया, हाथी और सूअर आदि अन्य हिंसक पशु भी असफल हुआ है उस में इस छोटे से प्राणी ने सफलता प्राप्त की है। मनुष्य जाति को दुनियां के उपजाऊ भागों से सूखी और ऊसर भूमि में भगादिया है जहां कि यह स्वयं जीवित नहीं रहसकता। यह मच्छर केवल गीले स्थानों पर ही उत्पन्न हो सकता है। यही कारण है कि पानी की सतह पर अपने अंडे देता है। इस के अंडे करीब चौबीस घंटों में पकजाते हैं और एक प्रकार का कीड़ा जो कि (Larva.) कहलाता है बाहर निकल आता है। जिस तरह मनुष्य जाति वायु के बिना जीवित नहीं रह सकती उसी प्रकार इस कीड़े को भी हवा की आवश्यकता है। इसी लिए उस जल को जहां यह पैदा होता है मिट्टी के तेल या लकड़ी वगैरह से ढक देने से यह कीड़ा नहीं रह सकता। एक सप्ताह या पक्ष में यह कीड़ा बदल जाता है और उस समय (Pupa) कहलाता है तीन या चार दिन पीछे ही यह 'मासकीटो' की आकृति में परिवर्तित हो जाता है और इस के पंख निकल आते हैं किन्तु यह उस जगह से जहां उत्पन्न होता है अधिक दूर नहीं जा सकता और न हवा द्वारा ले जाया जा सकता है। बल्कि जब हवा बहती है तो यह अपने आप को छिपाने की और जो पास में घास वगैरह होती है उन में चिपट जाने की कोशिश करता है। मच्छर के उपरोक्त परिवर्तनों को यदि कोई चाहे तो एक काच के बर्तन में थोड़ा पानी डाल कर तथा उस पर मच्छर के अंडे को रखकर देख सकता है। किन्तु दुर्भाग्यवश हमारे भारत में प्रत्येक गांव और शहरों में ऐसे गन्दे जल के स्थान बहुत अधिक मिलेंगे जहां मच्छर अंडे देते हैं यदि कोई चाहे तो ऐसे स्थानों पर जा कर जांच कर सकता है।

मासकीटो केवल मलेरिया के कीटाणुओं को ही नहीं फैलाता किन्तु यह Dengue और Yellow Fever (एक प्रकार के ज्वर) तथा 'फीलपा' Elephantiasis नामक बीमारी के कीटाणुओं को भी फैलाता है लेकिन अधिक हानि इसने मलेरिया द्वारा ही पहुंचाई है। यह बात नहीं है कि इसको रोकने वाला कोई पदार्थ है ही नहीं। डाक्टरों का कहना है कि कुनैन Qunine * इसका जबर्दस्त शत्रु है। कुनैन के पास यह फटकने भी नहीं पाता। किन्तु यह नहीं जान लेना चाहिए कि मलेरिया हो जाने पर कुनैन से यह बीमारी हटाई जा सकती है। मसहरी की तरह कुनैन भी पहले ही इस्तेमाल में लाने की वस्तु है। जब हम को एक ऐसी

जगह जाना या रहना पड़े जहां कि मलेरिया है तो पहले ही से कुनैन का उपयोग करते रहना चाहिए। क्यों कि कुनैन के द्वारा हम हमारे खून में एक ऐसा पदार्थ रखलेते हैं जो मलेरिया के कीटाणुओं का जानी दुश्मन है।

प्रत्येक भारतीय को निम्न लिखित सूचनाए याद रखनी चाहिये-

(१) मलेरिया मनुष्य के लिये जबर्दस्त बीमारी है।

(२) किन्तु यह रोका भी जा सकता है।

(३) इस के कीटाणु खून के लाल कोशों (Cells) में बढ़ते हैं जब तक कि वह खून को जहरीला नहीं बना देते।

(४) मलेरिया केवल मच्छर के काटने से ही होता है।

(५) Anopheles नामक मच्छर ही इन कीटाणुओं को फैलाता है।

(६) मच्छरों से सतर्क रहने से ही हम मलेरिया से बच सकते हैं।

(७) मसहरी और कुनैन के इस्तेमाल से भी हम मलेरिया के आक्रमण से सुरक्षित रह सकते हैं।

(८) मलेरिया हो जाने पर भी कुनैन का उपयोग लाभप्रद है।

स्व० ब्रह्मचारि ज्ञानानन्द जी के संस्मरण

२

दक्षिण के किसी उत्सव में पं० उमराव सिंह जी ने अपना नाम और वेश दोनों बदल डाले ब्र० ज्ञानानन्द के नाम से ख्यात हुए।

उन दिनों भारतवर्षीय दि. जैन महासभा के आश्रित मथुरा महाविद्यालय की आन्तरिक दशा बहुत शोचनीय थी। कई वर्ष योग्य अभिभावक निरीक्षक के अभाव से गृह-कलह ने अपने पैर जमा लिये थे। अध्यापकों को समय पर वेतन भी न मिलता था। उमराव सिंह जी जब ब्रह्मचारी हुए थे उनका कईमास का वेतन विद्यालय पर अवशेष था। जैन समाज में संस्थाओं का उद्घाटन जितने समारोह और उत्साह से किया जाता है सचालन में उतनी ही उदासीनता और लापरवाही दिखाई जाती है। इन में समाज का दोष नहीं समाज और संस्थाओं के कर्णधारों का दोष है। समाज में दानियों की कमी नहीं, व्यापारिक मन्दी के इस जमाने में भी धर्म और शिक्षा के नाम पर समाज के लाखों रुपये प्रतिवर्ष व्यय होते हैं। यद्यपि यह सत्य है कि दान का बहुत भाग नवीन जिन मन्दिर जिन बिम्बों के निर्माण में खर्च किया जाता है, और शिक्षा संस्थाओं के हिस्से में रुपये में एक आना भी मुश्किल से आता है; तथा इसी लिये शिक्षासंस्थायें रात दिन घाटे का रोना रोती रहती हैं

तथापि यदि अनावश्यक संस्थाओं कोबन्द कर के दान का विभाजन उचित रीति से किया जाये तो यह रोना अवश्य दूर किया जासकता है। आज समाज में कई संस्थाएं ऐसी हैं जो योग्य आय और संचालक के अभाव में भी समाज का भार बनी हुई हैं। और जिन्हों ने आज तक शिक्षा की दिशा में कोई प्रगति नहीं की। अस्तु, समाज को सच्ची सेवा करनेमे धनपूर्ति का प्रबन्ध हो सकता है, किन्तु जिन की योग्यता पर संस्थाओं का भविष्य निर्भर है उन संचालकोंका प्रबन्धहोना दुसाध्यहै जैनसमाजमें प्रारंभसे ही अवैतनिक संचालकोंका बोलबाला है। इस का मुख्य कारण संस्थाओं की आर्थिक दशा है। अवैतनिक रूप से कार्य का संचालन निरीह त्यागी गण ही कर सकते हैं, किन्तु शिक्षा संस्थाओं के संचालन के लिये जिस योग्यता की आवश्यकता है वह योग्यता आज कल के त्यागियों में खोजने पर भी नहीं मिलती। जिनमें है वह इस झगड़े में पड़ना नहीं चाहते। अतः, 'गत्यन्तराभावात्' शिक्षित गृहस्थों को बनाया जाता है। किन्तु उन के पीछे गृहस्थी का भार है—गार्हस्थिक आरम्भों में दिन रात फंसे रहने के कारण वे अपना उत्तरदायित्व नहीं निभा सकते। अवैतनिक सेवा में जहां अनेक गुण हैं वहां अनेक दोष भी हैं। अवैतनिक व्यक्ति अपने उत्तरदायित्व का बिलकुल ध्यान नहीं रखता और थोड़े समय के अन्दर ही उसकी कार्य प्रणाली एक दम अनियमित हो जाती है। प्रारम्भ में कभी २ वह कमेटी और कार्यकर्ताओं पर अनुचित दबाब डालता है और अवैतनिकता की ओट में जब उसकी धींगाधींगी चलजाती है तो वह एकदम 'डिक्टेटरशिप' को स्वीकार करलेता है और संस्था का एकतंत्र शासक बन बैठता है। कमेटी के भोले सदस्य उसके वाग्जाल में फंस जाते हैं। जो नहीं फंसते उन्हें पदत्याग का भय दिखा कर वश में किया जाता है आज कल ऐसे स्वयंभू संचालक ही संस्थाओं और समाज के कर्णधार बने हुए हैं मथुरा विद्यालय में भी उस समय कुछ ऐसा ही 'गोल मोल' वातावरण था। मथुरा की समाज और महासभा के अधिकारी दोनों ही उस ओर से उदासीन हो गये थे ब्र० ज्ञानानन्द जी ने अपने अध्यापन-काल में इस परिस्थिति को हृदयंगम किया। उन्हें यह लगा कि, अब इस स्थान में यह विद्यालय न चल सकेगा, यदि इसका जल-वायु बदल दिया जाय तो शायद यह मृत्यु के मुख से बच जाय। ब्रह्मचारी होते ही उन्हों ने अपना ध्यान उस ओर दिया। ब्यावर के स्वर्गीय सेठ चम्पालाल जी रानी वालों ने कुछ आश्वासन दिया। डूबते हुए को तिनके का सहारा मिला ब्रह्मचारी जी ने बाबा छोटेलाल जी भरतपुर के सहयोग से विद्यालय को चौरासी (मथुरा) से ब्यावर से गये। मथुरा वालों ने बहुतेरी 'हाय' तोबा की, महासभा के अधिकारियों का भी आसन डोल उठा, किन्तु कर्तव्य शील ब्रह्मचारी जी के सामने किसी की भी न चली ब्यावर में रानी वालों के वंश ने विद्यालय को अपनी नसियां जी में स्थान दिया और धीरे २ घाटे का कुल भार अपने ऊपर लेलिया। ब्यावर में जब तक महाविद्यालय जीवित रहेगा ब्रह्मचारी

ज्ञानानन्द जी की कीर्ति गाथा भी जीवित रहेगी

मथुरा महाविद्यालय का सुप्रबन्ध करने के बाद ब्रह्मचारी जी की दृष्टि श्री ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम हस्तिनागपुर की ओर गई। उन दिनों ब्रह्मचर्याश्रम अपने शैशव काल को समाप्त करके युवावस्था में प्रवेश करने की तैयारी कर रहा था। किन्तु आश्रम के संस्थापक, संचालक, पोषक और रक्षक धीरे २ एक २ करके गृहकलह और मतभेद के शिकार बन चुके थे। समाज का लाखों रुपया आश्रम के पोषण में खर्च होचुका था। गुरुकुल कांगड़ी के मनोहर आदर्श पर आश्रम की स्थापना की गई थी उसी उन्नत आदर्श पर आश्रम की स्थापना की गई थी उसी उन्नत आदर्श पर मोहित होकर उत्तर प्रान्त की समाज ने अपनी पूर्ण शक्ति से आश्रम के पौदे को सींचा था। समाज में आश्रम का शोर मचा लोग अकलंक और निकलंक के समान ब्रह्मचारी युवकों को देखने के लिये तरस रहे थे। किन्तु

'बहुत' शोर सुनते थे पहलू में दिलका,
जो चीरा तो एक कतरे खूं भी न निकला'।

समाज की आशाओं पर पानी फिर गया, टकटकी बांध कर देखने वालों ने अपनी आंखें फेरली, धनिकों ने अपनी थली के मुंह बन्द कर दिये, आरम्भ शूर संचालकों ने अपना २ रास्ता नापा। हस्तिनापुर के बीहड़ स्थान में सूखा बगीचा रह गया। हरे भरे पौदों की 'खैर' खबर लेने वाले बहुत मिल जाते हैं किन्तु सूखी हुई डाल पर पक्षी भी बसेरा नहीं लेते। किन्तु जिनका काम ही सूखों को हरा करना- हरे भरों को सुखाना नहीं, वे पददलितों की खोज मेंरहते हैं। ब्रह्मचारी ज्ञानानन्द जी भी अपने स्वभाव के अनुसार आश्रम को हरा भरा करने का उपाय सोचने लगे। मथुरा महाविद्यालय के लिये जिस औषधी की व्यवस्था की गई थी: अनुभवी ब्रह्मचारी जी ने आश्रम के लिये भी उसे ही उपयुक्त समझा और एक दिन समाज ने समाचार पत्रों में आश्रम के स्थान परिवर्तन के समाचार पढ़े आश्रम हस्तिनापुर से उठकर जयपुर चला गया था। आश्रम, जयपुर चला गया किन्तु व्याबर के गनीवालों की तरह वहां उसे कोई योग्य अभिभावक न मिल सका। ब्रह्मचारी जी कुछ दिन तक अन्य सामाजिक कार्यों में व्यग्र रहकर बीमार पड़ गये। आश्रम ने ज्यों त्यों करके कुछ वर्ष विताये और ब्रह्मचारी जी का देहावसान होने के बाद उसे जयपुर भी छोड़ना पड़ा। अब वह चौरासी (मथुरा) में अपना कालयापन कर रहा है।,अस्तु.

मथुरा महाविद्यालय और आश्रम का पुनरुद्धार करने के बाद ब्रह्मचारी जी की दृष्टि अपने पुराने कार्यक्षेत्र बनारस की ओर आकर्षित हुई और सन १६२० के चैत्रमास में मैंने अपने साथियों के साथ पं० उमराव सिंह जी को ब्र० ज्ञानानन्द जी के नवीन संस्करण व रूपमें पहली बार देखा। काशी संस्कृत विद्या का पुरातन केन्द्र हैं। हिन्दू विश्व विद्यालय की स्थापना होजाने से सर्वाङ्गीण शिक्षा का केन्द्र बन गया है। न यहां विद्वानों की कमी है और न पुस्तकालयों की, ज्ञानार्जन और ज्ञान प्रचारके प्रेमियों के लिये इस से उत्तम स्थान भारतवर्ष में नहीं है। जो ज्ञानानन्दी जीव एक बार उसके वातावरण का अनुभव

कर लेता है, उसकी गुजर बसर, फिर अन्यत्र नहीं हो पाती। समाज के प्रायः समस्त विद्यालयों के वातावरण का अनुभव करने के बाद भी ब्रह्मचारी जी अपने पूर्व स्थान बनारस को न भूल सके और कई शिक्षा संस्थाओं के संचालन का भार स्वीकार करने पर भी उन्होंने परित्यक्त बनारस को ही अपना कार्यक्षेत्र बनाया।

उन दिनों मध्य प्रदेश के रतौना गांव में सरकार एक कसाई खाना खोलने का विचार कर रही थी वहां प्रति दिन कई हजार पशुओं के कत्ल करने का प्रबन्ध होने जा रहा था। इस बूचड़खाने को लेकर अखबारी दुनिया में खूब आन्दोलन हो रहा था। स्थान २ पर सरकारी मंतव्य के विरोध में सभा करके वायसराय के पास तार भेजे जाते थे। रक्षा बन्धन पर्व के दिन स्याद्वाद विद्यालय में भी सभा हुई। बूचड़खाने के विरोध में पूज्य पं० गणेश प्रसाद जी वर्णी का मर्म स्पर्शी भाषण हुआ। ब्र० ज्ञानानन्द जी ने बूचड़खाना स्थापित होने के विरोध में मीठा सेवन का त्याग किया और अहिंसा धर्म का संसार में प्रचार करने के लिये एक अहिंसा प्रचारिणी परिषद् स्थापित करने की योजना सुझाई।

मैं पहले बतला चुका हूँ कि ज्ञानानन्द जी किसी आवश्यक विचार को 'कल करै सो आज कर, आज करै सो अब' सिद्धान्त के पक्के अनुयायी थे। अहिंसा प्रचार की प्रस्तावित योजना को कार्यरूप में परिणत करने के लिये उन्हीं ने कलकत्ता की यात्रा की और दश लाक्षणी, पर्व वहीं बिताया। कलकत्ते की दानी समाज ने उनका खूब सम्मान किया और ८०००) रुपये के लगभग अहिंसा प्रचार के लिये भेंट किये। कलकत्ता से लौटते ही ब्रह्मचारी जी अपने काम में जुट गये। अखिल भारतीय अहिंसा प्रचारिणी परिषद् की स्थापना की गई और काशी नागरी प्रचारिणी समिति के भवन में बाबू भगवानदास जी के सभापतित्व में उसका प्रथम अधिवेशन खूब धूमधाम से मनाया गया। जनता में परिषद् के मन्तव्यों का प्रचार करने के लिये अहिंसा नाम की साप्ताहिक पत्रिका प्रकाशित की गई। उपदेशक भी घुमाये गये अजैन जनता ने भी परिषद् के कार्य में अच्छा हाथ बटाया। अनेक रजवाड़ों में भी सहानुभूति प्रदर्शित की। बहुत से अजैन रईस एक मुश्त सौ २ रुपये देकर परिषद् के आजीवन सदस्य बने।

प्रारम्भ में अहिंसा का, प्रकाशन एक दूसरे के प्रेस से हुआ था। पीछे एक स्वतंत्र प्रेस खरीद लिया गया जो अहिंसा प्रेस के नामसे ख्यात हुआ। प्रायः अधिकांश मनुष्य आत्म प्रशंसा को जितनी चाह से सुनते हैं, खरी आलोचना को उतनी ही घृणा से देखते हैं, किन्तु ब्र० ज्ञानानन्द जी में यह बात न थी वे अपनी आलोचना को भी बहुत सहानुभूति के साथ सुनते थे। एक बार कुछ ऐसी ही घटना घटी। ब्रह्मचारी जी ने अहिंसा परिषद्, के लिये कुछ लिफाफे और 'लैटर पेपर' छपाये थे जो बढ़िया थे। हमारी विद्यार्थी मण्डली ने ब्रह्मचारी जी के इस कार्य को समाज के रुपये का दुरुपयोग, बतलाया। यह बात ब्रह्मचारी जी के कानों तक पहुची। अवसर देखकर एक दिन रात्रि के समय

हमारी मण्डली के मुखिया लोगों के सामने उन्हों ने स्वयं आलोचना की चर्चा उठाई। उस समय का उनका प्रसन्नमुख आज भुलाने पर भी नहीं भूलता । बोले— मुझे प्रसन्नता है कि तुम लोग मेरे कार्यों की भी आलोचना करते हो। मैं ने बढ़िया कागज़ों की छपाई में व्यय अपना शौक पूरा करने के लिये नहीं किया किन्तु जमाने की रफ्तार को देखते हुए राजा-रईसों केलिए किया गया है हम लोग उनका उत्तर सुनकर कुछ सकुचा से गये। किन्तु फिर कभी उस विषय पर आलोचना नहीं हुई ।

जिन दिनों 'अहिंसा' का प्रकाशन आरम्भ हुआ उन दिनों भारत के राजनैतिक आकाश में गांधी की आंधी का ज़ोर बढ़ता जाता था। असहयोग आन्दोलन ने भारतीयों में पारस्परिक सहयोग का भाव उत्पन्न करके विदेशी शासन प्रणाली को विचलित कर दिया था । हिन्दू और मुसलमान गले २ मिलते थे । अदालतों, कौंसिलों सरकारी स्कूलों का बायकाट प्रति दिन ज़ोर पकड़ता जाता था । मशीन गनों की वर्षा के मुकाबले पर भारत के राष्ट्रपत्र वाग्बाणों की वर्षा कर रहे थे । घमसान युद्ध मचा हुआ था किन्तु दुश्मन को मारने के लिये नहीं, स्वयं मरने के लिये। रक्त लेने के लिये नहीं, रक्त देने के लिये । क्यों कि अहिंसात्मक युद्ध मारना नहीं सिखाता है ।

"जिसे मरना नहीं आया उसे जीना नहीं आता" ।

इस परिस्थिति से जन्म लेकर और राष्ट्र का तत्कालीन अस्त्र 'अहिंसा' का नाम धारण कर 'अहिंसा' राष्ट्र की आवाज़ में आवाज़ मिलाने से कैसे पीछे रह सकता था । किन्तु उसकी आवाज़ राष्ट्र की आवाज़ की प्रतिध्वनि मात्र थी, उसने राष्ट्रीय पत्रों की बात को दोहराया बेशक किन्तु कोई 'अपनी बात' न कही। इसका कारण जो कुछ भी रहा हो, परन्तु ब्र० ज्ञानानन्द जी राष्ट्र प्रेमी होने में कोई सन्देह नहीं है। वे पक्के धर्मात्मा होने पर भी जननी जन्म भूमि की व्यथा को भूले नहीं थे, राष्ट्र की प्रत्येक प्रगति पर उनकी कड़ी दृष्टि रहती थी और उसपर वे विचार भी करते थे ।

उनकी आन्तरिक अभिलाषा थी कि, प्रेस' के कार्य में अपने कुछ शिष्यों को दक्ष कर दिया जाय और एक विशाल 'छापाखाना' का आयोजन किया जाय । इस लिये वे प्रति दिन किसी न किसी छात्र को अपने साथ प्रेस में ले जाते थे। एक दिन मुझे भी लेगये और 'अहिंसा' के 'प्रूफ' संशोधन का कार्य मुझे सौंप कर विश्राम करने लगे । 'प्रूफ' में किसी राष्ट्रीय पत्र की प्रतिध्वनि थी—यदि मैं भूलता नहीं हूँ तो वह एक प्रहसन था, और शायद 'कर्मवीर' से नकल किया गया था । भारत के राजनैतिक मंत्र के सूत्रधार महात्मा गांधी और अली बन्धु 'प्रहसन' के पात्र थे । 'प्रूफ' में उक्त प्रहसन अधूरा था और मैं उसके आदि और अन्त से अपरिचित था । प्रूफ पर दृष्टि पढ़ते ही मुझे 'मौलाना' गान्धी दिखाई दिये । मैं चकराया । आगे बढ़ा तो 'महात्मा' शौकतअली पर नज़र पड़ी । अब मैं ने 'गांधी-अली' संवाद पर दृष्टि डाली तो सब जगह एकसी ही 'बेवकूफ़ी' देखी ।

संपूर्ण संवाद में गांधी के साथ 'मौलाना' और शौकत अली के साथ 'महात्मा' शब्द का प्रयोग देखकर मेरा 'टेम्प्रेचर' भड़क उठा और मुझे प्रेस के भूतों की बेअक़ली पर हंसी आ गई। आव देखा न ताव, कलम कुठार उठाकर 'मौलाना' और 'महात्मा' दोनों का शिरच्छेद कर डाला और नई रीति से गांधी के साथ महात्मा और शौकतअली के साथ 'मौलाना' शब्द जोड़ डाला इस कार्य में एक घंटे के लगभग लग गया। अब मैं प्रेस के भूतों की बेवकूफ़ी और अपनी बुद्धिमानी का सुसम्वाद कहने के लिये ब्रह्मचारी जी की निद्रा भंग होने की प्रतीक्षा करने लगा उनके उठते ही मैंने प्रूफ उनके सामने रक्खा। अभी मैं कुछ कहने भी न पाया था कि ब्रह्मचारी जी के श्रीमुख से मैंने अपने लिए वे शब्द सुने, जो कुछ देर पहले अपने दिल ही दिल में, मैं प्रेस के भूतों को कह चुका था। ब्रह्मचारी जी की इस 'नाशुक्री' पर मुझे बड़ा खेद हुआ। किन्तु जब मुझे मालूम हुआ कि, 'प्रहसन' में हिन्दू मुसलिम एकता का 'प्रहसन' किया गया है तो मेरे देवता कूंच कर गये, और मैं प्रेस से 'एक दो तीन' होगया।

❋ ❋ ❋

'अहिंसा परिषद्' और शिक्षा संस्थाओं के संचालन में ब्रह्मचारी जी इतने तल्लीन हुए कि शारीरिक स्वास्थ्य की ओर से एकदम उदासीन हो गये। कभी कभी २ बुखार आ जाने पर भी दैनिक कार्य करना नहीं छोड़ा। जब रोग बढ़ गया तो चिकित्सा के लिये बनारस से बाहिर चले गये। ज्वर ने जीर्णज्वर का रूप धारण कर लिया खांसी भी होगई। यक्ष्मा के लक्षण प्रगट होने लगे। फिर भी सामाजिक कार्यों में भाग लेना न छोड़ा। सन १९२३ के फर्वरी मास में देहली में जो पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ था, स्याद्वाद विद्यालय के छात्रों के साथ उस में वे सम्मिलित हुए थे और सेठ के कूंचे की धर्मशाला में ठहरे थे। मैं अपने सहयोगियों के साथ उनसे मिलने गया। उस समय उन्हें ज्वर चढ़ रहा था और खांसी भी परेशान कर रही थी। हम लोगों की आहट पाते ही उठकर बैठ गये और उसी स्वाभाविक मुस्कान के साथ हम लोगों से मिले। किसे खबर थी कि यह 'अन्तिम दर्शन' है? अफ़सोस !!! उसी वर्ष ग्रीष्मावकाश के समय अपने घर पर एक मित्र के पत्र से मुझे ज्ञात हुआ कि ब्र० ज्ञानानन्द जी का देहावसान होगया। पढ़ कर मैं स्तम्भित रह गया। रगों में बहने वाला खून जमने सा लगा, मस्तक गर्म होगया। अन्त में अपने को समझाया और उनकी सत्शिक्षा सद्व्यवहार और कर्तव्य शीलता का स्मरण कर के स्वर्गगत हितैषी को स्मृति अर्पित की।

मनुष्य जब तक जीवित रहता है, तब तक, उस के अत्यन्त निकट रहने वाले व्यक्ति भी उसका महत्व समझने की कोशिश नहीं करते। मेरी भी यही दशा हुई मैंने भी ब्रह्मचारी जी की सत् शिक्षाओं को सर्वदा उपेक्षा की दृष्टि से देखा। आज जब वे नहीं हैं और पद पद पर उन के ही सदुपदेशों का अनुसरण करना पड़ता है तब अपनी अज्ञानता पर अत्यन्त पश्चाताप होता है।

—कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री बनारस

भारत में स्त्री शिक्षा

ले०—श्रीमान मास्टर नाथूलाल जी

भारत जैसे देश में स्त्रीशिक्षा का प्रश्न बहुत महत्व पूर्ण है। जहाँ विद्वान लोग कहते हैं कि स्त्री-शिक्षा के प्रचार के बिना भारत का उत्थान असम्भव है। वहाँ स्त्री-शिक्षा का विरोध करने वालों की भी कमी नहीं है। उनके हृदय में सन्देह है कि स्त्री-शिक्षा से सामाजिक रीतियाँ बिलकुल बदल जायंगी। किन्तु अपना उद्धार चाहने वालों को शिक्षा का प्रचार करने के लिये ऐसे मिथ्या विचारों को समूल नष्ट कर देना चाहिये। प्रत्येक माता पिता को यह विदित होना चाहिये कि लड़कियों को भी शिक्षा में उतना ही अधिकार है, जितना कि वर्तमान में लड़कों का हक़ समझा जाता है। स्त्री-पुरुष ये दोनों ही समाज के अंग हैं। यदि इनमें से एक अयोग्य होगा; अशिक्षित होगा, दुर्बल होगा या अन्य किसी शक्ति में त्रुटिपूर्ण होगा, तो यह निश्चय समझिए कि समाज व्यवस्था में किसी न किसी प्रकार की गड़बड़ी हुये बिना न रहेगी। जब आधा अंग कुछ काम नहीं करता, तब अवशिष्ट अर्ध भी किसी योग्य न रह जाता—वह बेकार होजाता है। वास्तव में गृहस्थ-जीवन रूपी गाड़ी के स्त्री और पुरुष यह दो पहिये हैं। इनमें से यदि एक न हो या अयोग्य हो तो, जिस प्रकार एक पहिये वाला रथ नहीं चल सकता उसी प्रकार गृहस्थाश्रम भी सुख पूर्वक नहीं व्यतीत हो सकता।

जब हमारे देश में हिन्दुओं का राज्य था तब स्त्री शिक्षा थी और हिन्दुओं के शासन काल के अन्त तक प्रचलित भी रही, परन्तु ज्यों ही मुसलमानों ने हिन्दुओं पर विजय पाई और उनके रीति रिवाजों का प्रचार हुआ तब स्त्री शिक्षा को एक बड़ा भारी धक्का पहुँचा और तभी से इसकी दिन प्रतिदिन अवनति होने लगी। इस समय केवल समझदारों की ही बालिकायें पाठशाला और मस्जिदों में पढ़ती रहीं और स्त्री-शिक्षा की प्रणाली सर्वथा नष्ट कर दी गई। थोड़े ही दिनों में इसकी और भी अवनति हुई और प्रायः सभी स्त्रियाँ अनपढ़ रहने लगीं। जब से ही यह स्त्रियों को अनपढ़ रखने की प्रथा अभी तक प्रचलित रही। इसी निरक्षरता देवी के उग्र अभिशाप ने स्त्रियों को अपना लक्ष्य बनाकर भारतीयों की सब क्षेत्रों में नींव कुचल डाली। यह लिखते हुये प्रसन्नता होती है कि भारत के कोने २ में अब स्त्री-शिक्षा की ओर विद्वानों ने ध्यान दिया है। जो लोग इस समय भी इसके विपक्ष में हैं इसकी अनिवार्य आवश्यकता इसके लाभ, वर्तमान की रुकावटें और शिक्षाक्रम की ओर ध्यान दिलाना ही अग्रिम पङ्क्तियों के लिखने का उद्देश्य है।

प्रथम तो यह बात ध्यान में रखने की है कि जीवन यात्रा को सानन्द व्यतीत करने के लिये एक योग्य साथी चाहिये। स्त्री के लिये ही एक सुयोग्य पुरुष की जरूरत नहीं, किन्तु पुरुष के लिये भी एक उत्तम स्त्री की आवश्यकता है। एक शिक्षित ही अच्छा साथी नहीं है, प्रत्युत अच्छी सहधर्मिणी, सफल माता और सुयोग्य बहिन भी उत्तम साथी है, जो घर के साथ २ जाति की भी सहायक होती है। उक्त बात पर पूर्ण ध्यान देने से पाठकों को स्त्री-शिक्षा की अनिवार्य आवश्यकता विदित हो जायगी। स्त्री-शिक्षा

के लाभों की ओर थोड़ा सा संकेत कर दिया है, अब हम यह बता देना आवश्यक समझते हैं कि वर्तमान में किन २ कारणों से इसके प्रचार में बाधा पहुंच रही है।

(१) हमारे भारत में प्रायः सर्वत्र बालिकाओं का अल्पवय में ही विवाह कर दिया जाता है। इसलिये बालिकाएं अधिक अवस्था तक नहीं पढ़तीं, विवाह होते ही उनका पाठशाला जाना बन्द कर दिया जाता है। जब विचार पकने लगते हैं और वे अपने दायित्व को समझने के योग्य बनती हैं, तब उनका सब कुछ छीन लिया जाता है और उनके विकास में सब तरह की रुकावटें डाल दी जाती हैं। इसका भयंकर परिणाम यह होता है कि उनके स्वतन्त्र विचार रुक जाते हैं, उच्च शिक्षा पर आघात पहुंचता है और व्यवसाय का जोश भी मारा जाता है। अधिक लिखने से कुछ लाभ नहीं, इसी से सब कुछ समझ लीजिए। बालकों और माताओं की शारीरिक और मानसिक पीड़ाओं तथा कुटुम्ब में होने वाले सारे अनर्थों और दुःखों में स्त्रियों का अज्ञान या अपूर्ण ज्ञान ही प्रधान कारण होता है।

इधर माता पिताओं को छोटी अवस्था में ही अपनी बच्चियों की शादी करनी होती है, तब वह लड़कियों की शिक्षा में कुछ न व्यय करके, दहेज के लिये इकट्ठा करना ही अपने द्रव्य का सदुपयोग समझते हैं किन्तु शिक्षित युवक दहेज की अपेक्षा सुशिक्षित स्त्री को ही अधिक पसन्द करते हैं। दहेज में मिला सामान शीघ्र ही नष्ट होजाता है, किन्तु स्त्री यदि अशिक्षित है तो पुरुष के लिये आजन्म दुःख का कारण बन जाती है।

प्रत्येक माता पिता को उक्त बुराइयाँ अच्छी तरह समझ कर आगे इनसे छुटकारा पाने के लिये सयत्न होना चाहिये। इसके सुधार के लिये शादी की अवस्था की सीमा बढ़ाई जा सकती है और विद्यालय भी निश्चित अवस्था तक की विवाहित लड़कियों को भरती न करके इस कार्य में बहुत कुछ सुधार कर सकते हैं।

(२) परदे की प्रथा ने भी स्त्री शिक्षा में बहुत बाधाएं पहुंचाई हैं। केवल घर ही में बैठी रहने वाली लकीर की फकीर माताएं अपने दायित्व से अनभिज्ञ हैं, उन्हें यह पता नहीं कि वर्तमान में स्त्री-शिक्षा की बड़ी भारी आवश्यकता है। इसलिये वे इस समय भी शिक्षा का घोर विरोध करती हैं। घरके काम के अतिरिक्त बालिकाओं को कुछ भी सिखाना नहीं चाहतीं। पुराने सिलसिले में परिवर्तन करना उन्हें ठीक नहीं जचता। उनके हृदय में तो डर है कि ऐसा करने से हमारे घरकी शान्ति भङ्ग हो जायगी।

परदे की प्रथा के सम्बन्ध में कुछ भी लिखना प्रस्तुत लेख का विषय नहीं, किन्तु इस प्रथा ने भी स्त्री-शिक्षा के प्रचार में बहुत अधिक बाधाएं डाली हैं इसलिये यहां इतना ही लिख देना पर्याप्त होगा कि *जैसे कोई पौदा बन्द मकान में रखा हुआ मुरझा* जाता है तथा विकसित नहीं होता और वही पौदा यदि सूरज की रोशनी में होता है, धूप उस पर पड़ती है तो दिन दूना विकास प्राप्त होता है। इसी प्रकार जो स्त्रियाँ परदे में रहती हैं और घर ही जिनका संसार होता है, उनको ट्यूबरक्लोसिस (Tuberuclosis) और क्षय रोग (Consumplion) जैसी क्या २ भयंकर व्याधियाँ नहीं होजातीं। इनके विरुद्ध जो स्त्रियाँ परदा नहीं करतीं और खुले आम विचरण करती हैं वे हमेशा प्रसन्न चित्त देखी जाती हैं

इन बुराइयों को ध्यान में रखने के अतिरिक्त परंपरा के पक्षपातियों को यह भी समझ लेना चाहिये कि यह प्रथा प्राचीन नहीं है। मुसलमान बादशाहों के जमाने से ही इस रूप में यह प्रथा प्रचलित हुई है। अब भी जिन के हृदय में यह सन्देह है कि इस प्रथा को तोड़ देने से स्त्रियां दुराचारिणी बन जायेंगी, उन्हें अपने ऐसे मिथ्या विचारों को नष्ट कर डालना चाहिये। क्योंकि स्त्रियां जो स्वयं अपनी रक्षा कर सकेंगी, वही अधिक सुरक्षित है।

(३) अध्यापिकाओं की कमी के कारण यथेष्ट स्त्री-शिक्षा के प्रचार में बहुत अड़चनें आती हैं। प्रथम तो सुशिक्षित स्त्रियां ही बहुत कम है। जिनमें अध्यापिकाएं तो और भी कम हैं। जो अध्यापिकाएं भी हैं वे आवश्यक स्थान पर जाना नहीं चाहतीं। कुमारी स्त्रियाँ तो अकेली रहना पसन्द नहीं करतीं और विवाहिताओं को शिक्षा के कार्य में भाग लेने का बहुत कम अवसर प्राप्त होता है। विधवाएं इस कार्य को करतीं हैं तो लोग उनके चरित्र पर सन्देह करने लगते हैं। बड़े शहरों की पाठशालाओं की अपेक्षा छोटे गांव की शालाओं में इस त्रुटि को हम और भी अधिक रूप में देखते हैं। यहां तक योग्य अध्यापिकाएं बहुत ही कम पहुंचती हैं. कारण यह कि वे अनजान आदमियों में रहना पसन्द नहीं करतीं और अपने मित्रों सम्बन्धियों या शहर के आनन्द से भी पृथक होना नहीं चाहतीं। अस्तु, इस सम्बन्ध में लिखना यह है कि स्त्रियों का अध्यापन कार्य करना निन्द्य नहीं। जो शिक्षा बालिकाओं को सुयोग्य अध्यापिकाओं से मिल सकती है, वह किसी पुरुष से कभी भी नहीं मिल सकती। सब देशों में स्त्रियाँ बड़े २ काम करती हैं, तब हमारे देश में क्या उनके लिये अपनी बच्चियों को शिक्षा देना भी अनुचित हो जायगा?

(४) वर्तमान में प्रचलित पठन-क्रम भी स्त्री-शिक्षा में एक त्रुटि कही जा सकती है। इस दूषित पठन-क्रम को हम स्त्री-शिक्षा में बाधक तो नहीं कह सकते, किन्तु हमारी सभ्यता का घातक अवश्य कह सकते हैं। यह पाश्चात्य प्रणाली पर निश्चित किया गया है। अतः भारतवासियों के लिये विशेष उपादेय नहीं है। विद्वानों का कहना है कि इससे स्त्रियां 'मेम साहिबा' बन जाना चाहती हैं। विदेशी भाषाओं का ज्ञान उपार्जन करना बहुत अधिक उपयोगी है। परीक्षा भी एक बला है। इसके चक्कर में फंस कर आज हमारी बालिकाएं असली शिक्षा से बहुत दूर रह जाती हैं। लड़कियों के लिये आवश्यक विषय का कोई अर्थ नहीं होता। थोड़े से विषयों को पूर्णतया पढ़ लेना बहुत उपयोगी है, बजाय इसके कि किसी भी विषय का खास ज्ञान न होवे। बालिकाओं को अधिकतर अपने आप पढ़ना सिखाना चाहिये। आज जो लड़की है वह कल बच्चे की माता बनेगी, अतः उसे ऐसी बातें अधिकता से सिखाई जानी चाहिये, जो हमेशा काम आवें। रसोई बनाना, कपड़े बनाना, सिलाई और कसीदे का काम स्त्रियों की अनिवार्य शिक्षा है। इसी से भारतियों की सादा जिन्दगी कायम रह सकती है। गणित आदि का विशेष ज्ञान कराने की अपेक्षा बच्चों का पालन और स्वास्थ्य की शिक्षा अधिक लाभप्रद है। हिन्दी भाषा का विशेष ज्ञान प्राप्त करने के साथ ही धार्मिक ज्ञान का होना भी आवश्यक है। इन सब बातों पर ध्यान देकर निश्चित किया हुआ पठन-क्रम ही भारतीय स्त्रियों की शिक्षा में सुधार कर सकता है और उसी से हमारा उत्थान सम्भव है।

प्राप्ति स्वीकार और समालोचना

'जयधवला' सिद्धान्त ग्रंथ

और उसके उद्धार की योजना।

'धवला', 'जय धवला' तथा 'महाधवला' नाम के महान् सिद्धान्त ग्रन्थों के नाम से कौन व्यक्ति परिचित नहीं है? उन का नाम सुनने मात्र से ही जिन-वाणी-भक्तों के मस्तक श्रद्धा और भक्ति से नत हो जाते हैं। मूडबिद्री के सरस्वती भंडार में उक्त ग्रन्थ ताड़पत्र के ऊपर कनड़ी लिपि में लिखे हुए बहुत काल से सुरक्षित हैं। आज से बीस वर्ष पहिले साधारण जैनों के लिये उन के दर्शन होना भी दुर्लभ था। जो भाई मूडबिद्री की यात्रा करते थे वे सौभाग्य-वश ग्रन्थराजों के दर्शन कर सकने पर अपने को धन्य सम-झते थे। अनेक वर्षों के लगातार परिश्रम से अब उक्त तीन ग्रन्थों में से दो अर्थात्-'धवला' और 'जयधवला' की प्रतिलिपियाँ अनेक स्थानों में देखने को मिलती हैं। एक २ ग्रन्थ की प्रतिलिपि के लिये एक दो हजार रुपया तक खर्च किया जाता है। समर्थ समाजें ही इतना व्यय कर सकती हैं। इतने पर भी उन्हें उन ग्रन्थराजों के अनुपम उपदेशों को जानने का सौभाग्य प्राप्त नहीं होता, कारण उनकी भाषा प्राकृत है और जिस रूप में वे प्राप्त हैं उस रूप में उन का स्वाध्याय विद्वानों को भी क्लिष्ट है। अतः जनता की बढ़ती हुई उत्सुकता को देखकर बहुत दिनों से कुछ जिनवाणी-भक्तों का यह विचार हो रहा है कि इन ग्रन्थराजों के संशोधन, सम्पादन व प्रकाशन की व्यवस्था की जाये। जिस से सर्व साधारण उन्हें खरीद सकें और प्राचीन जैन तत्वज्ञान, की रूपरेखा को जान सकें। गत वर्ष भेलसा निवासी श्रीमन्त सेठ लक्ष्मी चंद शितावराय जी ने जिन वाणी के उद्धार के लिये ग्यारह हजार रुपयों का दान किया था। उस दान से उक्त ग्रन्थराजोंको प्रकाशित करनेकी व्यवस्था की जा रही है। यद्यपि कार्य की विशालता को देखते हुए उक्त रकम बिल्कुल थोड़ी है, फिर भी कार्य के प्रारम्भ होने पर सहायता की कमी नहीं रह सकती—यह जान कर ही अमरावती के प्रोफ़ेसर हीरालालजी ने उन के प्रकाशन का बीड़ा उठाया है। आपका विचार प्रथम जयधवला के संशोधन का है। जिसका कुछ प्रारम्भिक अंस संस्कृत रूपान्तर और हिन्दीभाषा अनुवाद सहित नमूने के बतौर प्रकाशित किया है। साथ में सिद्धान्त ग्रन्थ का परिचय और प्रकाशन की योजना भी मुद्रित है। उस 'अंश' की एक प्रति समालोचनार्थ हमारे सामने है।

'जयधवला' टीका का परिचय

महावीर स्वामी के निर्वाण के पश्चात् एक सौ वर्ष में पांच 'श्रुत-केवली' हुए जिन्हें समस्त द्वादशांग का ज्ञान था। अन्तिम श्रुतकेवली

भद्रबाहु के पश्चात् यह श्रुतज्ञान लुप्त होने लगा। उन के पीछे १८३ वर्ष में ग्यारह आचार्य ऐसे हुए जिन्हें केवल ग्यारह अंग और दस पूर्वों का ज्ञान था—अन्तिम चार पूर्व लुप्त होगये थे। उन के पश्चात् २२० वर्ष में ग्यारह अंग तथा पूर्वों के एक देश ज्ञान था। इस के पश्चात 'आचारांग' को छोड़ शेष अंगों का भी विस्मरण होगया। इसके बाद एकसौ अठारह वर्ष में जो चार आचार्य हुए उन्हें केवल प्रथम आचारांग तथा पूर्वों के किसी एक देश का ज्ञान था। इस के पश्चात् 'आचारांग' का भी लोप होगया और आचार्यों को केवल पूर्वों के किसी एक २ देश का ज्ञान रह गया। इस प्रकार महावीर भगवानके निर्वाणसे ६११ वर्ष पश्चात् द्वादशांगका एक प्रकार से लोप ही हो गया। बचे हुए एक देश पूर्व ज्ञाताओं की परम्परा में श्रीधरसेनाचार्यऔर गुणधर आर्यके नाम से दो आचार्य हुए। तब तक बचा खुचा अंग ज्ञान केवल स्मृति के आधार पर ही चला आता था। स्मरण की कमज़ोरी का अनुभव करके बचे खुचे अंगज्ञान की रक्षा करने के लिये उक्त दो महान आचार्यों ने सत्प्रयत्न किया। 'अग्रायणी' नामक दूसरे पूर्व के चौदह 'वस्तु' अर्थात अधिकारों में से पांचवे 'वस्तु' के 'महाकम' नामक चतुर्थ 'प्राभृत' का श्रीधरसेनाचार्य ने भूतबलि और पुष्पदन्त नामक शिष्यों द्वारा उद्धार कराया। और उस के ऊपर वीरसेनाचार्य द्वारा वह 'धवला' टीका निर्माण की गई जो 'धवल' के नाम से प्रसिद्ध है।

पांचवे 'पूर्व' का नाम ज्ञान-प्रवाद है जिस में बारह 'वस्तु' और प्रत्येक वस्तु में बीस २ 'प्राभृत' थे। इसी के दशम 'वस्तु' के तीसरे 'प्राभृत' का नाम 'पेज्ज' या 'पेज्ज दोष प्राभृत' था इसी 'पेज्ज पाहुड से 'कषाय—प्राभृत की उत्पत्ति हुई। गुणधर आचार्य ने 'पेज्जपाहुड' के सोलह हज़ार पदों को एक सौ अस्सी गाथाओं में संक्षिप्त करके 'कषाय प्राभृत' की रचना की। ये 'कषाय प्राभृत'। की सूत्र गाथायें आचार्य परम्परा से 'आर्यमुख' और 'नागहस्ती' नामक दो आचार्यों को प्राप्त हुई। इन्हीं दोनों से उन गाथाओं को सीखकर उन पर यति वृषभाचार्य ने चूर्णि-सूत्र रचे। यह गाथा सूत्र और चूर्णिसूत्र बहुत संक्षिप्त और दुर्बोध थे, अतः इन पर भी आचार्य वीरसेन ने एक विस्तृत टीका लिखी जिसका नाम उन्होंने 'जयधवला' रक्खा। वीरसेन स्वामी इस टीका को पूरी न कर सके. अतएव उनके सुयोग शिष्य आचार्य जिनसेन ने उसे शताब्द ७५९ (विक्रम संवत ८९४) में समाप्त की। इस टीका का विस्तार साठ हज़ार श्लोक प्रमाण है।

समालोचना

पाठकों की जानकारी के लिये, प्रस्तुत अंश से ग्रन्थराज का परिचय देने के बाद इस प्रकाशित अंश तथा भावि प्रकाशन के सम्बन्ध में कुछ विस्तृत आलोचना करना अपना कर्तव्य समझते हैं जिस से ग्रन्थ का संशोधन और संपादन उसकी ख्याति के अनुकूल हो सके।

(१) इस नमूने का आकार 'रायल' अठपेजी है। हमारी राय में इसे बढ़ाकर 'सुपर रायल अठपेजी' कर देना चाहिये। आजकल विशालकाय ग्रन्थों का इसी आकार में प्रकाशन देखा जाता है।

(२) यद्यपि प्राकृत 'अंश' की छपाई और कागज़ अच्छा है, फिर भी उसमें सुधार की आवश्यकता जान पड़ती है। कागज और स्याही ऐसे होने चाहियें जो कम से कम एक शताब्दि तक स्थिर बने रहें। क्योंकि ऐसे ग्रन्थों का दिगम्बर समाज में एकबार भी प्रकाशन होजाना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है, फिर बार २ की तो बात ही निराली है।

(३) इधर कुछ शताब्दियों से दिगम्बर विद्वानों में प्राकृत का ज्ञान बिल्कुल लुप्त होगया है। संभवतः इसी सबब से प्रकाशन में प्राकृत के नीचे संस्कृत छाया देने का रोग चल पड़ा है। आजकल के अधिकांश अध्यापक संस्कृत छाया पर से ही प्राकृत ग्रन्थों का पठन-पाठन करते देखे जाते हैं। यदि संस्कृत छाया न होती तो वे प्राकृत जाननेका कुछ न कुछ प्रयत्न अवश्य करते तथा संस्कृत छाया प्राकृतानभिज्ञ संस्कृतज्ञों के उद्देश से ही दी जाती है, अतः हम संस्कृत छाया देने के सख्त विरोधी हैं। उससे ग्रन्थ का परिमाण दूना होजायेगा और लाभ कुछ भी न होगा।

(४) हिन्दी अनुवाद जो कुछ सरल और किसी २ स्थल पर विस्तृत करने की आवश्यकता है। जैसे—'अज्जन' नामक चन्द्र, 'अम्बा' को नमस्कार, 'शब्दानुसारी' शिष्य, 'निष्पन्न' की निष्पत्ति विरोधात्मक है, इत्यादि किसी २ स्थान पर वाक्यों का अर्थ समझने में कठिनता पड़ती है, अतः भाषा मुहाविरेदार—जनसाधारण के योग्य होनी चाहिये।

(५) प्राकृत भाषा के संशोधन और संपादन में यद्यपि प्रोफ़ेसर सा० सिद्ध हस्त हैं तथापि विषय की गुरुता तथा शुद्ध प्रति के अभाव को देखते हुए कुछ सहयोगियों की अनिवार्य आवश्यकता जान पड़ती है, जैसा कि प्रोफ़ेसर सा० ने भी अपनी इच्छा प्रगट की है। तथा हिन्दी अनुवाद में किसी सिद्धान्तज्ञ विद्वान का सहयोग होना अत्यन्त आवश्यक है। अन्यथा, अर्थ का अनर्थ होजाने की संभावना है जैसा कि इस अंक में हुआ है। इच्छा न होते हुए भी, समालोचक के नाते उन्हें यहां देदेना अनुचित न होगा।

पृष्ठ १३, पंक्ति ५ में—'अप्पाण निराकरण दुवारेण' के स्थान पर 'निरायरण' पाठ संगत जान पड़ता है।

पृष्ठ १४ का अर्थ तो बिल्कुल ही विपरीत हो गया है उसे यहां अंकित करने से पूर्व कुछ पहिले की 'चर्चा' देदेना आवश्यक है जिस से सब कोई, उसे समझ सकें।

प्रस्तुत ग्रन्थ 'कषाय प्राभृत' के प्रारम्भ में आचार्य गुणधर ने मंगलाचरण नहीं किया है और न चूर्णि के कर्ता यति वृषभाचार्य ने ही किया है। इस पर जयधवलकार ने कुछ आपत्तियां उठाकर उनका समाधान करते हुए लिखा है, कि, शुद्ध नय के अभिप्राय से उक्त दोनों आचार्यों ने अपनी २ रचना के प्रारम्भ में मंगलाचरण नहीं किया। इस पर किसीने प्रश्न किया कि चौबीस अनुयोग द्वारों के प्रारम्भ में गौतम गणधर ने तो मंगलाचरण किया है तब इन आचार्यों ने क्यों नहीं किया ? उत्तर दिया गया कि, व्यवहार दृष्टि से गौतम ने मंगल किया है। इसी सिलसिले में आगे का वर्णन पढ़िये।

तत्तो सेसाण पउत्ति दंसणादो जो बहुजीवा-

णुग्गहकारी ववहारणओ सो चेव समस्सिदव्वो त्ति मणेणावहारिय गोदमथेरेण मंगलं तत्थ कयं।

हि० अ०—इन मे जो शेष हैं उनकी प्रकृति को देख कर ? जो बहुत जीवों का अनुग्रह करने वाला व्यवहारनय है, उसका आश्रय लेना चाहिये, ऐसा मन में विचार कर गौतम स्थविर ने वहाँ मङ्गल किया।

आलोचना— 'तत्तो सेसाणं पउत्ति दंसणादो' का अर्थ— 'इनमें जो शेष हैं, उनकी प्रवृत्ति को देख कर' किया गया है। किन्तु पूर्वानुसन्धान से यह अर्थ अशुद्ध प्रतीत होता है। क्योंकि इससे पहिले ऐसे जनों को नहीं गिनाया गया है जिनकी प्रवृत्ति शुद्धनय के अधीन हो। अतः उक्त वाक्य का अर्थ ऐसा होना चाहिये— (तत्तो) व्यवहारनय से (असेसाण) सबकी (पउत्तिदंसणादो) प्रवृत्ति देखी जाती है।

शंका— पुण्णकम्म बंधत्थीणं देसव्वयाणं मंगल करणं जुत्तं ण गुणीणं ? कम्मक्खयकंखुवाणं।

हि० अ०— जो पुण्य कर्म बंध के अभिलाषी देशव्रती (श्रावक) हैं उन्हें मंगल करना उचित है, कर्म क्षय की आकांक्षा रखने वाले गुणी (मुनियों) को नहीं।

आलोचना— 'गुणीणं' के स्थानमें 'मुणीणं' पाठ ठीक प्रतीत होता है। लेखक की भूल से 'म' का 'ग' होजाना मामूली सी बात है।

उत्तर— इदि ण वोत्तुं जुत्त, पुण्णबंधहेउत्तं पडि विसेसा भावादो, मंगलस्सेव सरागसंजमस्स विपरिच्चागप्पसंगादो।

हि० अ०— ऐसा कहना उचित नहीं है, क्योंकि पुण्यबन्ध के हेतुत्व के प्रति उन्हें कोई विशेष भाव नहीं है, तथा इससे तो जो मंगल सराग संयम है उसके ही सर्वथा त्याग का प्रसंग आयगा।

आलोचना— ऊपर लिखा हिन्दी अर्थ केवल प्राकृत की विभक्तियों के आधार पर कर दिया गया जान पड़ता है। उसमें ग्रन्थकार का आशय स्पष्ट नहीं होता। अनुवादक भी शायद उसका आशय नहीं समझ सके हैं। ऐसा अर्थ होना चाहिये— (इदि ण वोत्तुं जुत्तं) ऐसा कहना उचित नहीं है, —क्योंकि यदि पुण्यबंध का कारण होने से, कर्मक्षय को आकाँक्षा रखने वाले मुनिजनों को मंगल नहीं करना चाहिये तो—(मंगलस्सेव) मंगल की तरह (सरागसंजमस्सवि) सराग-संयम के भी (परिच्चागप्पसंगादो) परित्याग करने का प्रसंग उपस्थित होगा, अर्थात् मुनियों के सराग संयम धारण करने में भी बाधा उपस्थित की जा सकेगी क्योंकि (पुण्यबंधहेउत्तं पडि विसेसा भावादो) मंगल और सराग संयम दोनोंमें पुण्य बंधको कारण होनेसे कोई अन्तर नहीं है अर्थात् मंगल भी पुण्य बंध का कारण है और मुनियों का सरागसंयम भी पुण्य बंध का कारण है।

शंका—ण च संजम प्पसंग भावेण णिव्वुइ गमणा भावप्पसंगादो सराग संजमो गुण सेडि णिज्जराए कारणं तेण बंधादो मोक्खो असंखेज्ज-गुणो त्ति सराग संजमे मुणीणं वट्टणं जुत्तमिदि ण पच्चवट्ठाणं कायव्वं

उत्तर—अरहंत-णमोक्कारो संपहिय बंधादो असंखेज्जगुण कम्मक्खय कारओ त्ति तत्थ वि मुणीणं पवुत्तिप्पसंगादो।

हि०अ०—और संयम असंग के भाव में निर्वाण गमन के अभाव का प्रसंग नहीं हो सकता। सराग संयम गुणश्रेणी निर्जरा का कारण है और

बंध से मोक्ष असंख्येय गुणा (अधिक उत्तम) है, इसी से सराग संयम में मुनियों का वर्तना योग्य है । अतः (मंगल का) प्रत्यवस्थान अर्थात् निराकरण नहीं करना चाहिये । अरहंत का नमस्कार साम्प्रतिक बंध से असंख्येय गुण कर्म क्षय कारक है इस से उसमें भी मुनियों की प्रवृति का प्रसंग आता है ।

समालोचना—यद्यपि उत्तर ठीक हो गया है तथापि शंका का अर्थ पहिले ही की तरह एकदम असंगत जान पड़ता है —ऐसा अर्थ होना चाहिये—

शंका—(संजमप्पसंग ? भावेण णिव्वुइ गमणा भावप्पसंगादो) संयम के त्याग का प्रसंग उपस्थित करने से मोक्ष गमन के अभाव का प्रसंग आयेगा अर्थात् संयम के बिना मोक्ष नहीं हो सकता। तथा (सरागसंजमो गुणसेडि णिज्जराय कारणं तेण बंधादो मोक्खो असंखेज्जगुणो त्ति सरागसंजमे मुणीणं वट्टणं जुत्तमिदि ण पच्चवट्ठाणं कायव्वं) सराग संयम गुणश्रेणी-निर्जरा का कारणहै, उससे कर्म बंध होने की अपेक्षा कर्मों की निर्जरा असंख्यात गुणी होती है । अतः सराग संयम में मुनियों की प्रवृति होना ठीक है और उसका (सरागसंयम का) निराकरण नहीं करना चाहिये ।

उत्तर—(ण च) ऐसा मत कहो—क्यों कि ऐसा कहने से हमारे मत का ही समर्थन होता है (अरहंत णमोक्कारो संपहिय बंधादो असंखेज्ज गुण कम्म क्खाय कारओ त्ति तत्थ वि मुणीणं पवुत्ति प्पसंगादो) अरहंत का नमस्कार भी साम्प्रतिक उस समय होने वाले—बंध से असंख्यात गुणी कर्मों की निर्जरा को करता है अतः उस में भी मुनियों की प्रवृत्ति का प्रसंग आता है । अर्थात् जैसे कर्म बंध की अपेक्षा असंख्यात गुणी निर्जरा का का कारण होनेसे मुनियों के सराग संयम उपादेय है उसी तरह मंगल अर्थात् अरहंत-नमस्कार भी उपादेयहो सकता है । अतः शंकाकार का यह कहना—कि बंध का कारण होने से मुनियों को मंगल नहीं करना चाहिये—ठीक नहीं है ।

पृष्ठ १८, पंक्ति ७-८ के अर्थ में भी कुछ भूल जान पड़ती है । लेख का आकार बहुत बढ़ जाने से इस चर्चा को यहीं बन्द करते हैं ।

अन्तिम-निवेदन

प्रो० हीरालाल जी समाज के उन इने गिने शिक्षितों में से हैं जिनपर कोई भी समाज गर्व कर सकता है । थोड़े ही समय में उन्हों ने जिन-वाणी-माता की जो सेवा की है वह जैन साहित्य के इतिहास में उल्लेख योग्य है। आज अनेक सरकारी विश्वविद्यालयों में जो अपभ्रंश भाषा के जैन ग्रन्थ प्रविष्ट हो सके हैं उसका श्रेय प्रोफ़ेसर सा० को ही प्राप्त है । उन्हों ने सिद्धान्त ग्रन्थों के प्रकाशन का जो दुर्वह भार उठाया है उसके लिये हम उनके साहस की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते । किन्तु यह कार्य कल्पना से भी अधिक जटिल है—पद २ पर भूल होजाने की संभावना है । शुद्ध प्रति के न मिल सकने के कारण संपादक और संशोधक का कार्य और जिम्मेदारी और भी अधिक बढ़ जाती है । यदि मूडबिद्री जाकर प्रति का संशोधन करने का कार्य किया जा सके तो अभी इस प्रकाशन को कुछ दिनों के लिये रोक देना चाहिये । गत वर्ष सेठ रावजी भाई के आग्रह से वहां के भट्टारक ने प्रति को शुद्ध

करने के लिये मूडबिद्री के भंडार की प्रति दिखाने देने की बात स्वीकार की थी। प्रयत्न करना चाहिये। यदि इस दिशा में सफलता मिल गई—जिसकी कि पूर्ण आशा है—तो प्रकाशन और भी प्रमाणिक हो सकेगा। किन्तु कुछ कार्य तत्पर विद्वानों की अत्यन्त आवश्यकता है जो परिश्रम और प्रेम के साथ अपना समय इस कार्य में दे सकें। प्रकाशन की भिन्न २ आवश्यकताओं को देखते हुए इस समय हम तीन महानुभावों का नाम उपस्थित करते हैं प्राकृत-भाषा के लिये प्रो० ए० एन उपाध्याय कोल्हापुर तथा हिन्दी अनुवाद के सम्बन्ध में पं० वंशीधर जी इन्दौर और पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार सरसावा। इनके अलावा पं० देवकीनन्दन जी तो अपना समय देवेंगे ही। यदि सब के सहयोग से यह कार्य हो गया तो जैन साहित्य के एक बहुत बड़े अंश की पूर्ति होजायगी।

विद्वानों से—

हमारी अपील है कि वे इस कार्य में पूरा २ हाथ बटावें उनके पूर्ण सहयोग के बिना यह कार्य हो सकना असंभव है।

जैन जनता से

खास कर मन्दिरों के ट्रस्टियों से, पुस्तकालयों और शिक्षा संस्थाओं के सञ्चालकों से तथा स्वाध्याय प्रेमी भाईयों से हमारा निवेदन है कि वह ग्राहक बन कर जिनवाणी के उद्धार में हाथ बटावें। कमसे कम प्रोफेसर सा० की स्कीम है कि प्रत्येक तीन मास में १०० पृष्ठ का अंक निकाला जाये। हम इससे सहमत हैं। ऐसा होने से खरीदने में जन साधारण को कोई कठिनता नहीं होगी। यदि काफी तादाद में ग्राहक बन सके तो प्रत्येक अंक का मूल्य १॥) पड़ेगा। वर्ष में चार अंक निकलने से ६) साल खर्च करना होगा जो किसी तरह भी अधिक नहीं कहा जा सकता।

अन्त में सिद्धान्त ग्रन्थों का शुद्ध और सुन्दर प्रकाशन देखने की उत्सुकता को लेकर हम विदा होते हैं।

—कैलाशचन्द्र शास्त्री, बनारस

मन से—

चपल मन क्यों न लेत विश्राम?

क्यों पीछे पड़ रहा पराये, तज कर अपना काम,

आशा छोड़ निराशा भजले, स्वासा को ले थाम। चपल०

आज कहत कल करत नहीं है, होत सुबह औ शाम,

कब पावे वह समय भजे जब, अपना आतम-राम। चपल०

यह काया नहीं रहे एक दिन, जिसका बना गुलाम,

माया, मोह, महा ठग जग में, इनका मत ले नाम। चपल०

अब मन यहाँ - वहाँ मत भटके, आजा अपने धाम,

अपना 'प्रेम'—पीयूष पान कर, पाये सुख वसुयाम। चपल०।

—श्री प्रेमसागर जी

"मुक्तिवाद की निःसारता" का निराकरण।

ले०—पं० नाथूराम जी डौंगरीय, न्यायतीर्थ

गत जौलाई मास के चाँद (अंक नं० १३१) में श्री रजनीकांत शास्त्री B.A.B.L. का "मुक्तिवाद की निःसारता" शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है, जिस में विद्वान् लेखक ने यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि भारत के न्याय, वेदान्त, साँख्य, योग, बौद्ध, आर्हत, (जैन) चार्वाकादि नव दर्शनों में, चार्वाक को छोड़ कर शेष दर्शनों के अंतर्गत कर्म फलादि के द्वारा पुनर्जन्म तथा तत्वज्ञानादि के द्वारा कर्म बंधन से छूट कर मुक्त होजाने की बातें लिखी हैं वे सब अन्ध-विश्वास-ग्रस्त और भ्रांत-भारतीय दार्शनिकों की कोरी कल्पनाएं हैं। इसमें सार कुछ भी नहीं है आदि पुनर्जन्म और मुक्तिवाद निर्मूल कल्पनाएं हैं या इस विषय में लेखक महोदय के विचार ही भ्रमपूर्ण हैं? प्रस्तुत लेख में इन्हीं बातों पर स्वतंत्र तर्कों द्वारा जैन सिद्धान्तानुकूल विचार किया जायगा।

लेख को प्रारम्भ करते हुये लेखक महोदय लिखते हैं "पहले तो इस विषय में यह प्रश्न उठता है कि सृष्टि की आदि में जो मनुष्यादि प्राणी उत्पन्न हुये, उनका जन्म किस पूर्व जन्म के कर्म का फल था। क्योंकि सृष्टि के पूर्व कोई प्राणी था ही नहीं, जो अपना कर्म फल भोगने के लिये सृष्टि होने के समय जन्म मरण रूपी घोर संकट में न्याय पूर्वक घसीट लाया जाय। अतः जन्म किसी कर्म के अधीन न होकर स्वतंत्र वस्तु है।"

लेखक का उक्त प्रश्न और उसका समाधान तो तब ठीक होता, जब कि सृष्टि की कोई आदि होती तथा उसके पूर्व मनुष्यादि प्राणियों का अभाव रहा होता। किन्तु जैन दार्शनिकों के मत में तो विश्व के सम्पूर्ण पदार्थ द्रव्य दृष्टि से नित्य हैं—न तो कभी किसी के द्वारा सृष्टि की रचना हुई थी और न उसमें कभी मनुष्यादि प्राणियों का ही अभाव रहा था। अतः यह प्रश्न ही नहीं उठता कि सृष्टि की आदि में जो मनुष्यादि प्राणी उत्पन्न हुये उनका जन्म किस पूर्व जन्म के कर्म का फल था? क्योंकि प्राणियों की जन्म मरण और कर्म की परम्परा बीज वृक्ष की संतान परम्परा के समान अनादि कालीन है। जैसे बीज वृक्ष की संतान में पहले बीज हुआ था या पहिले वृक्ष हुआ था? यह नहीं कहा जा सकता उसी प्रकार जीव की जन्म मरण और कर्म की परंपरा में भी यह नहीं कहा जा सकता कि पहले जन्म हुआ या कर्म? जब कि कोई कार्य विना कारण के नहीं हो सकता तो जन्म भी चूँकि एक कार्य है अतः बिना किसी खास कारण के वह भी नहीं हो सकता। तथा अच्छे कारणों से कार्य भी अच्छा ही होता है और बुरे कारणों से बुरा। वैसे ही उत्तम गतियों में और नीच गतियों में जन्म लेकर आत्मा जो सुख दुःखादि उठाता है वह उसके पूर्व जन्म कृत शुभा-शुभ कर्मों का ही फल है। और वह कर्म जब पूर्व जन्म कृत ठहरता है। तो वह पूर्व जन्म भी किसी अन्य पूर्व जन्म कृत कर्म का फल होगा। इस प्रकार अनादि परंपरा है। इस से लेखक की यह बात भी

स्वयं खंडित हो जाती है कि जन्म किसी कर्म के आधीन न होकर स्वतंत्र वस्तु है, क्योंकि जन्म स्वतंत्र वस्तु न होकर जीव की अवस्था नवीन उत्पत्ति रूप परिवर्तन मात्र है। जैसे कुंडल कड़ा, कर्ण फूलादि सोने की अवस्थाएं हैं, और इन में से एक अवस्था के मिट जाने पर दूसरी अवस्था पैदा होती है तथा वह अवस्था (कुंडलादि) सोने को छोड़ कर कोई स्वतंत्र पदार्थ नहीं है वैसे ही जीव की अवस्थाएं भी मनुष्यादि के रूप में बदलती रहती हैं। नवीन अवस्था की उत्पत्ति का नाम जन्म और प्राकृत अवस्था के विनाश का नाम मरण है। न कि जन्म कोई स्वतंत्र पदार्थ है। अतः लेखक का जन्म को स्वतंत्र वस्तु मानना कोरा भ्रम है।

आगे चलकर लेखक का यह लिखना न्याय संगत नहीं है कि "यदि कहा जाय कि वर्तमान सृष्टि के पहले भी सृष्टि थी और उससे पूर्व भी सृष्टि थी अर्थात् सृष्टि परंपरा अनादि है: जीवात्मा पूर्व २ सृष्टियों का कर्म फल पश्चात २ सृष्टियों में भोगा करता है तो इस दशा में सृष्टि की परंपरा भी अनादि होगी और अनादि होने से अनंत भी होगी: क्योंकि अनादि पदार्थ अनंत देखे जाते हैं—जैसे जीव, ईश्वर, प्रकृति परमाणु आदि। इस प्रकार जन्म मरण की परंपरा यदि अनंत सिद्ध हुई तो जीव को कभी भी मुक्ति नहीं मिल सकती: वह बराबर एक के बाद एक शरीर धारण करता चला जायगा और उसके किये हुए योग, जप, तपादि सभी साधन व्यर्थ होंगे।

चूंकि अनादि पदार्थ अनंत देखे जाते हैं अतः लेखक महोदय जन्म मरण की परंपरा को अनादि मानने पर उसे अनंत सिद्ध करना चाहते हैं: किन्तु जरा गंभीर दृष्टि से विचार करने पर लेखक की युक्ति युक्त्याभास ही सिद्ध होती है क्योंकि यदि जन्म मरण की परंपरा कोई स्वतंत्र पदार्थ होती तब तो लेखक उक्त युक्ति से उसे अनंत सिद्ध कर सकते थे किन्तु जन्म मरण की परंपरा जब कोई पदार्थ ही नहीं है, केवल जीव की नवीन शरीर धारण और त्यजन रूप क्रियाएं हैं और वे जीव के ही आश्रित हैं तो इन क्रियाओं को भी पदार्थों की भांति अनंत सिद्ध करना युक्ति बल का गला घोंटना है। हां, यदि जन्म मरण की परंपरा जीव के अभाव में भी पाई जाती तब तो उसे स्वतंत्र वस्तु मान लेते, किन्तु ऐसा है नहीं। आत्मा के नवीन शरीर धारण करने का नाम जन्म और उसे छोड़ देने का नाम मरण है और यह विकार जीव में अनादि काल से कर्मों के निमित्त से हो रहा है, अतः जब आत्मा से कर्म बंधन दूर हो जायगा तब उसके निमित्त से होने वाली जन्मादि क्रियाएं भी रुक ही जायगीं क्योंकि जो जिसके निमित्त से होता है वह उसका निमित्त न मिलने पर नहीं होता। जैसे अग्नि से ईंधन आदि जलने वाली वस्तुओं के संयोग न होने पर धूम की उत्पत्ति। यहां हठात् यह नहीं कहा जा सकता कि जो परंपरा अनादि कालीन है वह भविष्य में भी अनंत काल तक चली ही जायगी क्यों कि

ऐसी अनेक परंपराएं देखने में आती हैं जो अनादि होने पर भी अनंत नहीं हैं जैसे बीज वृक्ष की परंपरा अनादि होने पर भी यदि बीज को न बोया जावे या बीज को भून लिया जावे तो फिर अंकुर पैदा हो ही नहीं सकता। अथवा अब तक जितने स्त्री पुरुष हुये हैं वे सब अनादि काल से अपनी मां और पिताओं की संतान परंपरा के रूप में उत्पन्न होते हुए चले आ रहे हैं, यदि किसी स्त्री को पुरुष का संयोग न मिले तो उससे अब संतान पैदा नहीं होगी। यद्यपि उसकी अनादि काल से संतान परंपरा चली आरही थी किन्तु अब अंनत काल तक उसकी संतान परंपरा नष्ट हो गई। इस भांति यह परंपराएं अनादि होने पर भी सांत सिद्ध हैं वैसे ही आत्मा भी जब तपश्चर्या, श्रद्धा, ज्ञानादि के द्वारा कर्म बंधन से मुक्त होजाता है तब उस की अनादि कालीन जन्म मरण की परंपरा का भी अभाव हो जाता है। इसी का नाम मुक्ति है। यह मुक्ति भी आत्मा की एक शुद्ध अवस्था ही है न कि कोई स्वतंत्र पदार्थ जो आज पैदा होरहा हो; क्यों कि संसार में जितने भी पदार्थ हैं वे सब अनादि अनंत हैं। न सत का विनाश होता है और न असत की उत्पत्ति। ऐसा होने पर भी पदार्थों की अवस्थाएं अपने अंतरंग और बाह्य कारणों के निमित्त से समान और असमान रूप में अवश्य ही बदलती रहती हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि संसार को अनादि सांत मानने में अर्थात् जन्म मरण की अनादि परंपरा के एक दिन नष्ट हो जानेमें कोई बाधा नहीं आसकती। साथ ही यह भी जान लेना चाहिये कि जो जीव कर्म बंधन से छूट कर मुक्त हो जायगा उस की मुक्ति सादि तो होगी। किन्तु सांत न होकर अनंत होगी उसका कभी भी खातमा न होगा। इस संबंध में लेखक महोदय लिखते हैं "यदि जन्म मरण की परंपरा को प्रागभाव की तरह अनादि सांत मान लिया जाय; अर्थात् घट की उत्पत्ति के पूर्व उसका अभाव जो अनादि था, उसके बनते ही सांत (नष्ट) होजाता है, वैसे ही यदि उक्त परंपरा को अनादि सांत मानकर जीवका एक न एक दिन शरीर बंध से मुक्त होना माना जाय तो यह तर्क भी समीचीन नहीं। क्यों कि अभाव, चाहे वह प्रागभाव हो या प्रध्वंसाभावादि, कोई पदार्थ नहीं क्योंकि जिस पदार्थ का भावाभाव किसी अन्य पदार्थ के क्रमशः अभाव भाव पर आश्रित हो तथा जिस में कोई क्रिया व गुण न हो वह स्वयं कोई पदार्थ नहीं हो सकता जैसे अंधकार वस्तुतः स्वयं कोई स्वतंत्र चीज नहीं वह तो है केवल प्रकाश का अभाव मात्र ·· ··आदि"।

लेखक का उक्त कथन तो तब ठीक हो सकता था जब कि जन्म मरण की परंपरा कोई स्वतंत्र पदार्थ होती, जैसा कि लेखक मान रहा है, किन्तु ऐसा है नहीं। हम ऊपर यह सिद्ध कर चुके हैं कि जन्म मरण की परंपरा रूप और तन्निवृति रूप मुक्ति वास्तव में एक ही आत्मा की क्रमशः अशुद्ध शुद्ध अवस्थाएं हैं

न कि स्वतंत्र पदार्थ । लेखक की मान्यतानुसार जैन दर्शनिकों की दृष्टि में जैसे प्रागभवादि कोई स्वतंत्र पदार्थ नहीं है वैसे ही संसार और मुक्ति भी । अतः लेखक का उक्त कथन हमारी मान्यता पर ,कुछ भी हस्तक्षेप नहीं करता: बल्कि प्रकारान्तर से हमारी बात का ही समर्थन करता है ।

इसी संबंध में लेखक एक और बाधा आने का भय उपस्थित करते हुए लिखता है—यदि प्रागभाव वाली दलील को थोड़ी देर के लिए ठीक भी मान लेवें तो उसमें दूसरी अड़चन हमारा गला पकड़ती है: क्योंकि यदि जन्म मरण की परंपरा सांत है तो जो उस परंपरा का अंत है वही मुक्ति का आदि हुआ; और यदि मुक्ति सादि हुई तो वह अवश्य सांत होगी—अर्थात् वह अवश्य एक न एक दिन जाती रहेगी क्यों-कि सृष्टि में सर्वत्र यही नियम दीख पड़ता है कि आदिमान् पदार्थ अवश्य अंतवान् होते हैं जैसे घट पटादि । ऐसी दशा में जीव अपने निःशेष कर्मों के उच्छेद से मुक्त हुआ था उसे फिर भी बिना किसी पूर्व कर्म के अकारण ही संसार चक्र में लौट कर सुख दुःख भोगना पड़ेगा । जिससे अंत में फिर वही बात सिद्ध हुई कि प्राणीयों का जन्म किसी कर्मों के आधीन न होकर स्वतंत्र वस्तु है ।

लेखक का उक्त तर्क भी निर्मूल है । जब कि जन्म मरण की परंपरा और मुक्ति ये दोनों जीव की अवस्थाएं हैं । न कि स्वतंत्र पदार्थ । अतः जन्म मरण की परंपरा के अंत हो जाने पर जो मुक्ति रूप अवस्था प्रारंभ होगी वह अवश्य सांत होगी क्योंकि सादि पदार्थ सांत देखे जाते हैं । लेखक की यह विचार धारा अयुक्त क्यों नहीं कही जाय ? और हेतु के आश्रयासिद्ध होने से उसे हेत्वाभास क्यों न कहा जाय ? वास्तव में विद्वान लेखक ने मुक्ति और संसार की जन्म मरण रूप परंपरा को स्वतंत्र २ पदार्थ मान कर जो कल्पनाएं करलीं हैं वे सबकी सब संभ्रांत और व्यर्थ की हैं । क्योंकि जीव को छोड़ कर मुक्ति और संसार कोई स्वतंत्र पदार्थ ही सिद्ध नहीं होते । जैसे एक मनुष्य जेल में कैद है यदि वह छूट जाय तो जेल और स्वतंत्रता कोई पदार्थ नहीं कहला सकते सिवाय उसकी दो हालतों के । पदार्थों की अवस्थाएं दो तरह से बदलती हैं (१) समान-रूप में (२) असमान (विसदृश) रूप में । जब समान रूप में परिणमन होता है तब बाह्य कारणों की आवश्यकता नहीं भी पड़ती किंतु जब असमान रूप में परिवर्तन होता है तब उस में इतर पदार्थ भी निमित्त कारण पड़ते हैं । यही बात आत्मा के विषय में भी लागू होती है । संसार में जन्म मरणादि के द्वारा पशु-पक्षी मनुष्यादि के विचित्र शरीर धारण कर सुख दुःखादि के फल भोगने का कारण कर्म है । इसी के कारण यह जीव जन्म मरण करता रहता है । जब मुक्ति में कर्म बंधन ही नहीं है, जिससे कि जन्म मरणादि हुआ करते थे तो फिर अकारण ही मुक्ति में आत्मा का जन्मादि होने लगेगा यह कहना वस्तुतः व्यर्थ है । इस संबंध में घट पटादि पदार्थों का दृष्टांत भी संभ्रांत है क्योंकि घट पटादि पदार्थ भी अव्वल तो स्वतंत्र पदार्थ

ही नहीं है—केवल पौद्गलिक विचार हैं जो कि प्रकृति के परमाणुओं और स्कंधों के मिलने तथा बिछुड़ने पर ही वे उत्पन्न होते और बिगड़ते हैं। यदि इन को स्वतंत्र पदार्थ भी मान लिया जाय तो भी इन की उत्पत्ति और विनाश सकारण ही होता है बिना-किसी के बनाए घट स्वयमेव उत्पन्न नहीं होता है और न बिना फूटने के कारण मिले फूटता है। अतः जैसे कारण मिलते हैं वैसे ही कार्य भी बनते हैं; इस से अकारण ही मुक्ति से आत्मा में जन्म मरण होने की कोई संभावना नहीं है जिस से कि मुक्ति को सांत माना जाय।

हम यहां संसार को अनादि सांत और मुक्ति को सादि अनंत मानने में एक और दृष्टांत उपस्थित करते हैं जिससे लेखक का भ्रम कर्पूर की भांति उड़ जायगा। जैसे शालि (धान) तथा अंकुर की परंपरा अनादि काल से चली आरही है-धान से अंकुर, अंकुर से धान उस से फिर अंकुर इस भांति अनादि परंपरा है। इस परंपरा में यदि एक बार भी धान के ऊपर का छिलका (तुष) अलग कर दिया जाय, जिस के संबंध से चांवल की अंकुरादि के रूप में परंपरा चल रही थी तो फिर चांवल के शुद्ध हो जाने से बीजांकुर की अनादि परंपरा अब सांत होगई और भविष्य में भी अनंत काल तक अब यह संभव नहीं रहा कि उस शुद्ध चांवल से फिर अंकुरादि पैदा हों—कोई चाहे कितना ही प्रयत्न क्यों न करे। बस, इसी प्रकार जीव पर भी जब तक कर्म रूप तुष लगा है तब तक तो अवश्य जन्मादि रूप परंपरा चला करती है और ज्यों ही कर्म रूप छिलका आत्मा से एक बार भी अलग हुआ कि बस, वह शुद्ध चांवल के समान मुक्त हो गया- अर्थात् अब उस से अनंत काल तक भी अब यह संभव नहीं रहा कि जन्म मरणादि की परंपरा उससे फिर उत्पन्न हो सके। जैसे चांवल से दूर होकर छिलका पुनः उसमें जुड़ जाय यह असंभव है वैसे ही आत्मा से दूर हुये कर्मों का भी।

उक्त चांवल के समान जीव की मुक्ति के सादि अनंत मानने में कोई भी बाधा नहीं आती अतः विद्वान् लेखक का यह कथन भी कुछ मुल्य नहीं रखता कि यदि कहा जाय कि मुक्ति संख्या क्रम की तरह सादि अनंत है; अर्थात् जैसे संख्या क्रम १ से प्रारंभ होकर अनंत है वैसे ही मुक्ति भी जन्म मरण की परंपरा के अवसान से प्रारंभ होकर अनंत है। इस का कभी खात्मा नहीं यह निरवधि है, तो यह भी ठीक नहीं। संख्या क्रम का प्रारंभ १ से मानना भयंकर भूल है। एक संख्या क्रम का प्रारंभ नहीं बलिक मध्य है, जिसके पूर्व $\frac{1}{2}, \frac{1}{3} \frac{1}{4} \frac{1}{5}$, आदि तथा पश्चात् २, ३, ४, ५, आदि संख्याएं हैं। वस्तुतः संख्याएं क्रम अनादि होने से ही अनंत हैं। अतः संख्या क्रम का उदाहरण देकर सादि अनंत मानना भूल है.................आदि

संख्या क्रम का उदाहरण मुक्ति को सादि अनंत मानने में अव्वल तो दिया नहीं गया और यदि थोड़ी देर के लिये उक्त उदाहरण को मान भी लिया जाय तो उसे यों घटित करना चाहिये—जैसे शास्त्री जी के लेखानुसार संख्या क्रम एक से अनंत है वैसा ही मुक्ति भी जीव जिस किसी दिन प्राप्त करलेगा उस दिन से

अनंत काल तक रहेगी उस का कभी खात्मा न होगा; तथा एक के पहिले जैसे ½, ⅓, ¼, आदि अनादि संख्याएं विद्यमान हैं वैसे ही मुक्त होने के पहिले संसार में जीव भी अनादि काल से जन्म मरण करता हुआ विद्यमान है। बस, इस प्रकार संख्या क्रम का उदाहरण संसार और मुक्ति अवस्था को प्राप्त एक ही जीव के लिये ठीक बैठ सकता है। दृष्टांत जिस विशेष बात की समानता मिलाने के लिये दिया जाय उसी की समानता मिलाना चाहिये, न कि अन्य सम्पूर्ण बातों की, अन्यथा दृष्टांत ही न बन सकेगा या फिर दृष्टांत ही दार्ष्टान्त हो जावेगा। एक सज्जन ने किसी बालक के विषय में प्रशंसात्मक शब्दों में कहा कि यह बालक बड़ा गौ है यह कहने का अभिप्राय केवल इतना है कि बालक बड़ा सीधा है। यदि शास्त्री जी उक्त वाक्य को सुनकर लोटा लेकर दूध दुहने बैठ जायँ और कहें-कि यह दूध तो देता ही नहीं है यह कैसा बड़ा गौ है। तो कितने अनर्थ और हंसी की बात न होगी? अतः संख्या क्रम का उदाहरण जिस प्रकार जीव की मुक्ति के विषय में ठीक घटता है उसी प्रकार घटा लेना चाहिये। यदि इस उदाहरण को शास्त्री जी मानने के लिये तैयार न हों तो पूर्वोक्त चांवल से अंकुर की अनंत काल तक अनुत्पत्ति का उदाहरण जीव की मुक्ति को सादि अनंत मानने में सुरक्षित है ही।

ऊपर किये गये संपूर्ण विवेचन से यह स्पष्ट है कि विद्वान लेखक ने जो जन्म मरण की परंपरा को अनादि सांत तथा मुक्ति को सादि अनंत मानने में बाधाएं उपस्थित की थी वे सब की सब निर्मूल और व्यर्थ हैं। वस्तुतः जन्मान्तरवाद और मुक्तिवाद में न तो किसी प्रमाण से बाधा आती है और न किसी तर्क से ही प्रत्युत तर्क और प्रमाण उनके समर्थक ही हैं जिन से कुछ का वर्णन किया जा चुका और कुछ लेखक के मंतव्य का निराकरण करते समय आगे लिखेंगे।

—अपूर्ण

सद्ज्ञान-प्रभात

ले० मा० कपूरचन्द जैन, "साहित्य-भृत्य"

[१]

सघन रजनी का कटु विस्तार,
हो रहा क्रमशः सारा नाश—
पड़ रहे तारागण सब मन्द,
बढ़ रहा कुछ कुछ दिव्य प्रकाश।

[२]

भटकते रहे हाय ! जन्मान्ध,
टटोला किया बहुत सर्वत्र।
चिढ़ाते रहे समझ अज्ञान,
व्योम-विस्तृत सारे नक्षत्र।

[३]

सत्य है कुसमय में उपहास,
किया करते हैं जग में लोग।
चिढ़ाने को दुखियों को हाय,
विभव का करते दुर-उपयोग।

[४]

किन्तु कब थी इसकी परवाह,
नहीं जा सका किसी का ध्यान।
प्रभो कब होगा मंजु-प्रभात,
यहीं स्थित ता सब अनुसन्धान।

[५]

अकेले ही चलकर अनजान,
किया सब ओर अनन्त प्रयास
गिरा भूला भटका कइ बार,
हुआ पर नहीं नितान्त-हताश।

[६]

मिला मेरा चिर-परिचित मित्र,
हमारा हृदयोद्भूत सद्ज्ञान।
पकड़ कर फिर सुमार्ग की ओर,
कराया जिसने शीघ्र पयान।

[७]

सत्य है सत्संगति से लोग,
सफल कर सकते सब संकल्प।
मुझे भी मिला नेक सौभाग्य,
हुआ सार्थक जीवन तब अल्प।

[८]

उदित होजाओ शीघ्र प्रभात,
दिखाओ अपना सुन्दर रूप।
निहारूं पाकर विमल प्रकाश—
वस्तु का सच्चा स्वच्छ स्वरूप।

नवयुवक उद्बोधन

यह भोग भूमि नहीं है, कर्म भूमि है, अपने इस अमूल्य मानवजीवन को मौज, शौक के लिये न समझो। कार्य क्षेत्र में उतर कर जरा हाथ पैर हिलाओ इस क्षणिक जीवन में अमर कीर्ति का संचय करो ।

जैनधर्म और जैनसमाज का भारी ऋण तुम्हारे शिरपर लदा है अपने पवित्र सेवा भाव से उसको हलका करो। जैन जाति की नौका जर्जरित होकर डगमगा रही है अपने अदम्य उत्साह और प्रबल उद्योग से इसको सुघाट पर पहुंचाओ किन्तु ध्यान रहे स्वयं दलदल में न फंस जाना ।

अपने शुभ उद्योग में विपत्तियों की बौछारों से रंचमात्र न घबड़ाना । छाती खोल कर उन का स्वागत करो निष्कलंक का बलिदान और अकलंक का उत्साह अपना आदर्श बनाओ । वीरता से जीवन यात्रा करो और कर्म क्षेत्र में वीरता से मृत्युका आलिगन करो ।

नवयुवक हो अपने उत्तरदायित्व को समझो, वाद-विवाद और आलस्यका कांटा निकाल फेंको, समाज सेवा के लिये अपना सर्वस्व अर्पण कर दो, समाज को इस की बहुत अवश्यकता है।

कलकत्ते में ठगों के अड्डे

बाहर से आये हुए लोग कलकत्ते में ठगों के अड्डों में पहुंचकर ठगे जाते हैं । इसलिये गत् १० जुलाई को कलकत्ते के पुलिस कमिश्नर द्वारा निकाली हुई निम्न आशयकी चेतावनीसे लोगों को लाभ उठाना चाहिये । पुलिस कमिश्नर का कहना है कि उन्हें पता चला है कि शहर के अन्दर धर्मतला स्ट्रीट, लाउडन स्ट्रीट , वीडन स्ट्रीट (हाथी बागान) थियटर रोड, लोअर सरक्युलर रोड, हाटखोला, शोभा बाजार, प्रेस्ट्रीट और अपर चितपुर रोडमें ठगों के अड्डे हैं । सर्व साधारण को इन ठगों के हथकण्डों से बचने के लिये सावधान किया जाता है । उनके हथकण्डे इस प्रकार के हैं:—दलका मुखिया यदि यूरोपियन हुआ तो उसका परिचय धनी व्यापारी के रूपमें दिया जाता है। कहा जाता है कि वे तेल या रङ्गकी लाभदायक एजेन्सी देना चाहता है ; यदि दलका सरदार भारतीय हुआ तो उस का परिचय जमींदारों के रूप में दिया जाता है । ठगोंके आदमी शहर में घूमते रहते हैं और नवागन्तुको को वे ताड़ जाते हैं । उन्हें फंसाकर के अड्डे में पहुंचाते हैं।

—अजितकुमार

यंत्र युग का दुस्परिणाम

यह यंत्रों का युग है। चारों ओर यंत्रों के चमत्कारों को देख कर मनुष्य को आश्चर्य चकित होना पड़ता है। अभी तक जो काम केवल सचेतन प्राणी ही कर सकते थे; उन्हें अब यंत्र बात की बात में कर डालते हैं। विधाता के सब से अधिक बुद्धिमान और शक्तिशाली प्राणी (मनुष्य) की उपयोगिता अब धीरे धीरे कम होती जा रही है। भौतिक विज्ञान के प्रसाद से यन्त्रों ने यह शक्ति प्राप्त करली है कि एक ही ही मशीन सहस्रावधि मनुष्यों का काम स्वल्पातिस्वल्प समय में कर सकती है। अब ऐसे बहुत कम जीवनोपयोगी कार्य रह गये हैं जिन्हें यन्त्र न कर सकते हों यन्त्र क्या नहीं कर सकते? वे छापते हैं, पीसते हैं, खेती करते हैं, पानी निकालते हैं, रोटी बनाते हैं, लिखते हैं, बोलते हैं, चलते हैं और कहाँ तक कहा जाय (अगर समाचार सही है तो) यन्त्र मनुष्य भी पैदा करने लग गये हैं। जल स्थल और आकाश को स्वाधीन बना लेने वाले इन यंत्रों को देख कर साधारण मनुष्य सहसा यह कह उठता है कि अब जड़ विज्ञान अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुका है; पर वैज्ञानिक विद्वानों का कहना है कि अभी तो भौतिक विज्ञान की उन्नति का प्रारंभिक युग है। उसका मध्य युग और चरम सीमा तो अभी बहुत दूर है। कुछ वर्ष हुए एक विद्वान् ने भविष्य के वैज्ञानिक युग के मनुष्य का एक कल्पना चित्र खींचा था। उस अभागे मनुष्य की अवस्था को देख कर तो यही कहना पड़ता है कि हे भगवन! ऐसा भयंकर समय कभी उपस्थित न करना। उक्त विद्वान् की कल्पना का यही आशय था कि उस समय का एक ही मनुष्य लाखों मनुष्यों का काम करेगा और उसे अपने काम करने के लिए आना जाना न पड़ेगा एक ही स्थान पर बैठा हुआ वह यंत्रों की कृपा से अपने सारे कामों को इच्छानुसार कर सकेगा और इस तरह स्वयं निष्क्रिय बनकर वह मनुष्य लाखों मनुष्यों को भी निष्क्रिय बनादेगा। लिखने का तात्पर्य यही है कि यदि इस तरह यंत्र कलो का प्रचार द्रुत वेग से बढ़ता रहा तो आज की अपेक्षा लाखों गुणी अधिक बेकारी बढ़ जायगी। हे विधाता तब संसार की क्या अवस्था होगी।

भौतिक विज्ञान ने आश्चर्यकारी मशीनों को जन्म देकर संसार को दुःखी बनाया या सुखी इस प्रश्न पर विचार करने के लिए जरा गहराई तक पहुंचने की आवश्यकता है।

जिन पूंजी पतियों को धनके कारण सब तरहकी क्षमता प्राप्त है उन्हें यह यंत्र युग चाहे सुंदर और भला मालूम हो रहा हो पर उन असंख्य नर नारियों की दशा का किस को पता है— जिन को प्रधानतया इन मशीनों के कारण ही जीवन के लिये अत्यंत आवश्यक भोजन वस्त्र भी प्राप्त नहीं होते : हम प्रति दिन पत्रों में आत्महत्या जैसे भयंकर काण्डों को पढ़ते है। पेटकी ज्वाला को शांत करने के लिए भोजन न मिलने के कारण अमुक स्त्री अथवा अमुक पुरुष ने विष खा कर आत्महत्या करली—आदि समाचारों से दैनिक पत्र रंगे रहते हैं। लिखने का तात्पर्य यही है कि इन मशीनों के कारण संसार को दुःख ही अधिक मिला है। भूतकाल में जब इन मशीनों का अभाव था संसार इतना दुःखी न था दिनों दिन बेकारी की समस्या के विकट होने का प्रधान कारण यंत्रों के अतिरिक्त और क्या हो सकता है। जबतक यंत्रों के प्रचार को न रोका जायगा तबतक बेकारी का दूर होना किसी तरह संभव नहीं है। जिस काम को पहले सौ मनुष्य मिलकर करते थे अब उस को यंत्र की सहायता से बहुत थोड़े समय में एक ही मनुष्य करडालता है। इस तरह यंत्र वाला एक मनुष्य अवशिष्ट ९९ मनुष्यों को बेकार बना देता है। सैंकड़ों स्त्रीयां एक दिन में जितना आटा पीस सकती हैं, एक मशीन केवल एक दो मनुष्यों की सहायता से कुछ घंटों में ही उतना आटा पीस डालती है। अगर सैंकड़ों पीसने वाली स्त्रीयों की बेकारी दूर करना है तो मशीन के आटे का उपयोग करना बंद कर दिया जाय। जब तक भूत काल के समान हाथ से काम करने का युग वापिस न आवेगा तबतक संसार को सुख शांति प्राप्त नहीं होसकती।

इस समय अशिक्षितों की अपेक्षा शिक्षितों में बेकारी अधिक है। नौकरी के लिये एकजगह खाली होती है और हजारों की तादाद में उम्मेद-वारों की अर्जियां पहुच जाती हैं। हर प्रांत के हर आफिस में यही बात देखने को मिलेगी। इस से यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि शिक्षितों की बेकारी अशिक्षितों की अपेक्षा और भी दयनीय है। इस का कारण यह है कि कोई भी शिक्षित हाथ का काम कर अपनी जीविका उपार्जन करना घृणा की चीज समझता है। केवल आफिस में बैठ कर बाबू बनना ही शिक्षितों के जीवन का ध्येय होगया है। शिक्षितों के हृदय में पुराने शिल्प के प्रति अरुचि पैदा हो गई है। इसका कारण भी वर्तमान मशीनों का अत्याधिक प्रचार ही है। प्राचीन शिल्प चाहे कैसा ही हो पर यह निश्चय है कि उसमें अनेकों के भरण पोषण की योग्यता थी। वर्तमान बहुमूल्य यंत्रों के द्वारा धनियों का पोषण होता है। गरीबों को उनसे बहुत कम लाभ होता है। यंत्रों ने गरीबों के रक्त को चूसकर पूंजिपतियों को बहुत शक्तिशाली बना दिया है। यंत्रवाद और पूंजीवाद का पार-स्परिक घनिष्ट सम्बंध है। यंत्रवाद ने दो सन्तानें पैदा की हैं; एक पूंजीवाद नामक पुत्र और एक बेकारी रूपी कन्या। इन भाई बहनों की वृद्धि अपने पिता की उन्नति के साथ दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती आ रही है। वसुधा का

अनंत धन एक जगह आकर एकत्रित हो जाता है। पूंजीवाद का सांप उसे दूसरे को नहीं छूने देता आश्चर्यकारी मशीनें ही इस धन को एकत्रित करने के साधन हैं। जो कार्य अनेकों ईश्वर पुत्रों में बटा हुआ था अब उस को अकेला संतान ही करलेता है और उसके विभाजित फल से सर्वसाधारण वंचित रह जाते हैं। यह है जड़ विज्ञान की संतान मशीनों की करामात। जिन अशिक्षितों में शिल्प से आजीविका उपार्जन करने का प्रचार है उनका जीवन तो फिर भी संकटमय नहीं है। किन्तु प्रति वर्ष स्कूल और कालेजों से लाखों की संख्या में निकलने वाले बेकारी के पुलिन्दों का जीवन सचमुच ही दयनीय होरहा है। वर्तमान शिक्षा में विलासिता की मात्रा कूट कूट कर भरी रहती है इसलिए शिक्षा प्राप्त नरनारी भी—जीवन के उच्चादर्श को भूलकर पथ भ्रष्ट होजाते हैं। विलासिता के जीवन प्राण धन के लिये उन्हें जो भी कुछ करना पडे कर सकते हैं परतंत्र और निर्धन भारत में विलासिता की भी जो दुर्दशा होती है उसको देख सुनकर हंसी आये बिना नहीं रहती है। वर्तमान शिक्षा की बुराइयों के गीत वर्षों से गाये जारहे हैं, पर अभी तक उसमें कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ है और न कुछ होने की आशा है। यदि शिक्षा का रूप बदल दिया जाता तो बेकारी के कारण शिक्षितों की ऐसी दुर्दशा कभी नहीं होती। उस दिन एक दैनिक पत्र में पढ़ा था कि सर तेज बहादुर सप्रू की अध्यक्षता में एक समिती बैठेगी जो बेकारी के सम्बन्ध में विचार करने का उपाय सोचेगी और उस समिती में स्कूल, कालेजों की शिक्षा पद्धति के सम्बन्ध में भी विचार होगा। पर सच बात तो यह है कि शिक्षालय में परिवर्तन कर देने पर भी बेकारी का कुछ अंश ही दूर होगा। फिर भी शिक्षाक्रम में यथेष्ट सुधार कर देने से बहुत कुछ लाभ होने की आशा है।

बहुत से लोगों का कहना है कि जन संख्या की वृद्धि ही बेकारी का कारण है। कुछ अंशों में उनका कहना भी सही हो सकता है किन्तु जन संख्या की वृद्धि को ही केवल बेकारी का कारण मान लेना भूल है। यह बात बहुत कुछ निर्विवाद है कि यन्त्रों का अधिकाधिक प्रचार ही बेकारी का कारण है। इस बेकारी को दूर करने का सर्व श्रेष्ठ उपाय है हाथ की बनी हुई वस्तुओं का इस्तेमाल करना और हाथ के कला कौशल का प्रचार करना। सबसे अधिक बेकारी कपड़े की मीलों ने फैलाई है। अतः हाथ से बने हुए कपड़े का उपयोग करना बेकारी को दूर करने का क्रियात्मक उपाय है। पानी की नलें, बिजली की रोशनी, आटा पीसने वाली कलें, बिजली से चलने वाले पंखे, अनेक प्रकार के पश्चिमीयवाद्य यन्त्र और और मोटर आदि सवारियों ने भी निम्न श्रेणी के लोगों में बेकारी फैलाने में बहुत कुछ सहायता दी है यथासम्भव इन और इसी तरह की दूसरी चीजों का उपयोग न किया जाय तो इस बेकारी पिशाचनी की शक्ति बहुत कुछ कम होजायगी।

यन्त्रों की कृपा से न केवल मनुष्यों में ही बेकारी बढ़ रही है अपितु मनुष्य समाज के सहचर बैल, ऊँट घोड़े आदि उपयोगी पशुओं की उपयोगिता भी इस बेकारी की कृपा से दिनों दिन कम होती जारही है। अब सवारी के लिये बैल, ऊँट, हाथी, घोड़े आदि की क्या आवश्यता है। इस समय तो इनके स्थान में सर्व प्रिय और सर्वोपयोगी सवारी मोटर बन गई है।

चेतन प्राणियों की सारी सवारियों के सर्वाधिकार को छीन कर मोटर अब इतनी परिपुष्ट और बलवती बन गई है कि किसी भी सवारी के लिये उससे मुकाबला करना संभव नहीं है। जिन रेतीले मैदानों में केवल ईश्वर के सचेतन प्राणी ऊंट आदि पशुओं का गमनागमन होता था। उस विशाल कालका राशि में अब मोटरें तीव्र वेग के साथ भूं भूं करती हुई विहार करती हैं। मानो वह विधाता की सृष्टि का उपहास कर रही हैं। ऐसा कौन स्थान है जहां इन मोटर आदि यान्त्रिक वाहनों का प्रवेश न हो पाया हो इन पैट्रोल आदि से चलने वाले वाहनों के सामने बेचारे हाथी, घोडे आदि को कौन पूछेगा। जब इनकी आवश्यकता न होगी तो इनको दाना देने और पालन पोषण करने का फिक्र कौन करेगा। इस तरह मनुष्यों के समान बेकारी ने पशुओं का भी पीछा कर उनका सर्वनाश करना प्रारंभ कर दिया।

पहिले ऊंट, बैल, घोडे आदि से खेती होती थी, पर अब इनकी बिलकुल जरूरत नहीं है। एक ही कृषि का यन्त्र हजारों पशुओं का काम करता है। हजारों का पेट फाड़ कर अपने मालिक को प्रसन्न करने वाले इन यन्त्रों ने सृष्टि में जो उत्पात मचाया है उसका भूत के इतिहास में तो कोई प्रमाण नहीं मिलता।

हमारे लिखने का आशय जड़ विज्ञान और उसके आविष्कृत यन्त्रों की निन्दा करने का नहीं है। ज्ञान और विज्ञान तो कोई बुरी चीज नहीं, पर इनका उपयोग आवश्यकतानुसार और संसार की हित की दृष्टि से होना चाहिए। इस समय विज्ञान ने जो कुछ कर दिखाया है वह बहुत पर्याप्त है। अब और अधिक यन्त्रों के आविष्कार और उपयोग से संसार का कुछ भी हित न होगा। इसलिये सर्व साधारण के हितार्थ इस यन्त्र युग के दुष्परिणाम को रोकने के लिये यन्त्रों का कम से कम उपयोग किया जाय, यही बेकारी के रोकने का उपाय है।

जयधवला सिद्धान्त ग्रन्थ के उद्धार की योजना

जिनवाणी भक्तों को यह जान कर परम प्रसन्नता होगी कि जैन समाज के प्रसिद्ध विद्वान् श्रीमान् प्रोफेसर हीरालाल जी जैन एम० ए० एल-एल० बी० ने दि० जैनों के परमागम श्री जयधवलादि सिद्धान्त ग्रन्थों को हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित करने का निश्चय किया है। इस निश्चय के लिये उन प्रोफेसर साहब को जितना धन्यवाद दिया जाय थोड़ा है। जिन ग्रन्थों की एक २ प्रति केवल मूडबिद्री के सरस्वती भण्डार में मिलती थी और जिनके दर्शनों के लिये दूर २ के जैन भाई मूडबिद्री की यात्रा करते थे; हिन्दी अनुवाद सहित उनके प्रकाशित होने की बात सुनकर किसे प्रसन्नता न होगी।

प्रोफेसर महोदय ने विद्वानों की सम्मति के लिये नमूने के बतौर श्री गुणभद्राचार्य कृत गाथा सूत्र (कषाय प्राभृत) व यति वृषभाचार्य कृत चूर्णि सूत्र पर श्री वीरसेनाचार्य कृत जयधवला टीका का कुछ अंश हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित कर 'जय धवला टीका' नामक २० पेज की एक पुस्तिका भेजी है। विद्वानों को अपनी योग्य सम्मति प्रदान कर प्रकाशक जी के कार्य में सहायता देनी चाहिये। मूल ग्रन्थ-कषाय प्राभृत और चूर्णि सूत्र के अतिरिक्त केवल जयधवला टीका का प्रमाण साठ हजार श्लोक है।

संस्कृत छाया और हिन्दी अनुवाद सहित ग्रंथ का विस्तार कई गुणा अधिक होजायगा। ऐसे बृहत् और सुदुष्कर कार्य के लिये परिश्रमशील विद्वानों और उदार धनिकों के सहयोग की अधिकाधिक आवश्यता है। श्रीमान् सेठ लक्ष्मीचन्द जी, सीताबराय जी भेलसा निवासी ने इस पुण्यमय साहित्योद्धार की परमोपयोगी कार्य के लिये ग्यारह हजार का दान देकर जो चंचला लक्ष्मी का सदुपयोग किया है, जैन समाज के अन्य धनवानों को भी उसका अनुकरण करना चाहिये। केवल तीन दिन की हेय और अस्थायी कीर्ति के लिये विवाह शादी आदि कार्यों में हजारों रुपय खर्च कर देने वाले लक्ष्मीपतियों को इधर ध्यान देना चाहिये। पर दुःख केवल इसी बात का है कि जैनी बनिये होकर भी सौदा करना नहीं जानते। थोड़ा देकर अधिक लेने वाला ही सच्चा वणिक है। यहाँ तो सर्वस्व खोकर भी कुछ लेना नहीं जानते। आशा है प्रोफेसर साहब की अपील पर ध्यान देकर जैन समाज के धनिक अस्थायी धन द्वारा स्थायी और पावन कीर्ति का उपार्जन करेंगे। इसीतरह विद्वानों को भी अपनी विद्या और बुद्धि का सदुपयोग करनेके लिए इस कार्य में यथा शक्ति सहयोग देना चाहिये। विद्वानों और धनिकों के आतिरिक्त सर्व साधारण जैन बंधु भी अपना अपना नाम ग्राहक श्रेणी में लिखा कर इस पुण्य मय कार्य में भाग ले सकते हैं।

हमारी सम्मति में मूल प्राकृत, संस्कृत रूपांतर और हिन्दी अनुवाद तीनों ही रहने चाहियें। अन्यथा सर्व साधारण को यथेष्ट लाभ न पहुंच सकेगा। संस्कृत रूपांतर न रखनेसे—जैसा कि कई विद्वानों की सम्मति है प्राकृत ज्ञान विधुर संस्कृत विद्वानों के लिये यह विशेष काम की वस्तु न होगी। अधिकांश जैन विद्वानों को प्राकृत ज्ञान केवल नाम मात्र की होता है। हिन्दी अनुवाद न रहे तो कोई विशेष हानी नहीं पर संस्कृत रूपांतर अवश्य रहना चाहिए।

प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद बहुत क्लिष्ट और सिर्फ हिन्दी जानने वालोंकेलिये दुर्ज्ञेय है। कई शब्द ज्यों के त्यों उठाकर रख दिये गये हैं। ऐसे अनुवादसे मुमुक्षुओं को विशेष लाभ नहीं होसकता। हमारा प्रार्थना है कि अनुवादक महोदय अनुवाद में सरलता लाने की चेष्टा करेंगे अनुवाद में कई जगह गल्तियां भी रह गई हैं उदाहरणार्थ—चक्खु मइयाण का अर्थ चक्षुष्मती अर्थात् आखों वाली—किया है जबकी इसका आंखें होता है। श्रुत देवता हमारी आंखें हैं। इसी तरह अणंजणो णाम ओचंदो, का अनुवाद भी ठीक नहीं है।

सहयोगी का स्वागत

यह नवीन दैनिक पत्र जैन समाज के प्रसिद्ध लेखक बाबू कामता प्रसाद जी जैन और सुदर्शन लाल जी जैन द्वारा सम्पादित होकर एटा से प्रकाशित होता है। हमारे सामने इसका दूसरा अङ्क है। इस अङ्क में एक दो लेख और बहुत से समाचार पठनीय हैं। जैनों से सम्बन्ध रखने वाले भी बहुत से समाचार हैं। यह हमारे सौभाग्य की बात है कि जैन विद्वानों के देख रेख में इसका सम्पादन और संचालन होगा। पत्र को समुन्नत बनाने के लिये युगल सम्पादकों को अभी बहुत कुछ प्रयत्न करने की

आवश्यकता है हम सहयोगीका स्वागत करतेहैं और हृदय से इसकी उन्नति के अभिलाषी हैं। एक प्रति का मूल्य एक पैसा है और प्रत्येक अंक में बड़े साइज के ६ पेज रहते हैं। खास कर जैन बन्धुओं को ग्राहक बन कर इसके समुत्थान में सहायक बनना चाहिये।

—चैनसुख दास जैन।

स्वतन्त्र मुनि विहार पर रुकावट

अभी इन्दौर राज्य की केबीनेट ने एक ऐसा प्रस्ताव पास करके प्रकाशित किया है जिससे इन्दौर राज्य में दिगम्बर जैन मुनियों के स्वतन्त्र विहार पर भारी रुकावट आती है यह समाचार दिगम्बर जैन समाज के लिये व्याकुलता उत्पन्न करने वाला है। दिगम्बर जैन साधु संसार में अखंड ब्रह्मचर्य का तथा सर्वोच्च त्याग का मूर्तिमान आदर्श है। उसके विहार पर प्रतिबन्ध लगाना इंदौर राज्य को उचित नहीं। दिगम्बर जैन समाज इंदौर राज्य की एक प्रधान समाज है। उसके ही नहीं, किन्तु समस्त दि० जैन समाज के धार्मिक अधिकारों पर आघात न पहुँचाना चाहिये।

इंदौर राज्य के उक्त प्रस्ताव का प्रत्येक स्थान पर सबल विरोध होकर उसकी सूचना श्रीमान् हिज हाईनेस महाराजा इंदौर तथा श्रीमान एस० एम० बाफणा प्राइम मिनिस्टर इंदौर के पास भेज देनी चाहिये।

—अजित कुमार जैन।

प्राप्ति स्वीकार—श्रीमान सेठ लिखमीचन्द जी शाह जयपुर ने ढाई हजार रुपया दान किया है। उस में से ५) दर्शन को प्राप्त हुये हैं, तदर्थ धन्यवाद।

भूल सुधार—इस अंक में प्रथम पृष्ठ पर अंक ९ छपा है। पाठक वहां पर ९-१० समझें क्यों कि यह अंक युग्मांक है।

—मैनेजर

शोक— श्री भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ के प्रधान मंत्री श्रीमान् पं० राजेन्द्र कुमार जी न्यायतीर्थ के पूज्य पिता श्रीमान ला० नन्दूमल जी जैन कासगंज, मानवीय शरीर त्याग कर दिव्य शरीर धारण कर चुके हैं अतः वे सदा के लिये हमारी दृष्टि से अगोचर होगये हैं। इस समाचार को पाठक महानुभाव शोक के साथ पढ़ेंगे। गत कांग्रेस आन्दोलन के समय सत्या-ग्रह में भाग लेने के कारण आपको जेल जाना पड़ा था। जेल के रहन सहन ने आपका स्वास्थ्य निर्बल बना दिया था जोकि इस जीवन का ग्राहक बन कर ही रहा।

वास्तव में श्री पं० राजेन्द्र कुमार जी सरीखे विद्वान्, समाज सेवक पुत्र का जनक सदा अमर है। सांसारिक अस्थिर दशा का अवलोकन और विचार करते हुये श्री पं० राजेन्द्र कुमार जी को शोक भाव त्याग कर तत्परता के साथ पुनः कार्यक्षेत्र में आजाना चाहिये, आप स्वयं विज्ञ हैं।

—सम्पादक

जैन समाचार

शोक-श्रीमान पं० राजेन्द्रकुमार जी न्यायतीर्थ के पूज्य पिता जी श्रीमान् ला० नन्हेमल जी का स्वर्गवास हो गया है,

बधाई—श्रीमान् सेठ भागचन्द्र जी सोनी अजमेर और श्रीमान् बाबू श्यामलाल जी ऐडवोकेट बहुमत से असेम्बली के मेम्बर चुने गये हैं।

स्पेशल तीर्थयात्रा ट्रेन—७ दिसम्बर को चितौड़ से एक स्पेशल ट्रेन छूटेगी जोकि सम्मेदशिखिर, गिरनार आदि तीर्थक्षेत्रों के यात्रियों को यात्रा करावेगी। आने जाने का किराया ६४) होगा सब तरह का आराम होगा। संतलाल जैन, हिंदू सोडावाटर फैक्टरी प्रतापगढ़ (राजपूताना)

एक स्पेशल ट्रेन—दक्षिण प्रान्त से (बंगलोरसे) सम्मेदशिखिर आदि तीर्थों की यात्रा करने के लिए २३ दिसम्बर को छूटेगी। साथ में दो विद्वान भट्टारक रहेंगे।

बधाई—अजमेर के प्रख्यात सोनी घराने के चन्द्र श्रीमान् सेठ भाग चन्द्र जी जैन असेम्बली के चुनाव में अपने दो प्रतिद्वन्द्वियों को पछाड़ कर विजय लाभ करके एम. ए. ल. ए. बने हैं आशा है आप इस पद को प्राप्त कर तत्परता के साथ कार्य करते हुए इस विजय लाभ को सफल बनायेंगे।

बधाई—पंजाब में अंबाला डिवीजन से रोहतक निवासी श्रीमान् बा० श्यामलाल जी जैन एडवोकेट कांग्रेस के टिकिट पर असेम्बली की सदस्यता बहुमत के साथ प्राप्त कर चुके हैं इस के लिये आप को बधाई है।

शिक्षांक—दिगम्बर जैन का शिक्षांक प्रकाशित होगा उसमें २६ विषयों पर लेख रहेंगे।

वीरनिर्वाण उत्सव—देहरादून में इस वर्ष दीपावली उत्सव धूमधाम से मनाया गया। महावीर संदेश पढ़ते हुए बाजार से जूलूस निकला रात को सभा हुई उस में वैद्यराज पं० मित्रसेन जी, ला० पृथ्वीसिंह जी, ला० मिट्ठनलाल जी तथा नवयुवक मंडल के मंत्री जी के व्याख्यान हुए। —बुलाशराय जैन गर्ग

जैन रथ यात्रा में बाधा—आगरा में जैनियों का रथ आगामी मार्गशीर्ष कृष्णा ३ को निकलने वाला था, रथ को फुलट्टी बाजार से भी निकालने की आज्ञा अबकी बार श्री महेन्द्र जी आदि ने प्राप्त करली थी, परन्तु कुछ हिंदुओं ने इस का विरोध किया इस कारण जिला मैजिस्ट्रेट ने फुलट्टी बाजार से रथ निकालने की आज्ञा को रद्द कर दिया - इस के विरोध में जैनियों की तरफ से अर्जी दी गई है अतः दुबारा जांच होगी।

श्री ब्रह्मचर्याश्रम कुंथलगिरी के वैतनिक प्रचारक श्री पं० विजयसिंह जी शास्त्री बंगाल आदि प्रांतों में उक्त आश्रम के सहायतार्थ घूम रहे हैं अतः उदार, धार्मिक दातार उन को यथाशक्ति सहायता दें। आश्रम की रिपोर्ट रसीद बुक आदि उन के पास हैं। —ब्र० पार्श्वसागर अधिष्ठाता

देश विदेश के समाचार

मुजफ्फरनगर के कलेक्टर साहिब ने अपने ज़िले में पक्षियों का मारना बंद करा दिया है। धन्यवाद

जवाहरलाल नेहरू संभवतः जनवरी मास में रिहा हो जावेंगे।

ईरान सरकार ने हुकम जारी किया है, कि ५ वर्ष की उम्र से १५ वर्ष की उम्र तक के किसी लड़के या लड़की को सिनेमा देखने की इजाजत नहीं है।

कोल्हापुर के प्रधान मंत्री ने पं० मदनमोहन मालवीय जी को सूचित किया है कि कोल्हापुर के छत्रपती महाराज ने बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी को १लाख का दान दिया है।

चुनाव का परिणाम—असेम्बली के चुनाव में श्री भूलाभाई देसाई को आदि ले कुल ४२ कांग्रेसी श्री शरतबोसकोआदि ले ६ नेशनलिस्ट, मुस्लिम बोर्ड से मौ० शौकतअली मि० अजहर अली, सिक्खों में से, स० सन्तसिंह और स० मंगलसिंह, सेठ भागचन्द्र जी जैन सोनी को आदि ले ४२ व्यक्ति स्वतंत्र रूप से इस प्रकार कुल ६४ सदस्य चुने गये हैं।

REGD. NO. L. 3439

अजितकुमार जैन ने "अकलंक प्रिन्टिङ्ग प्रेस, मुलतान में छपवाकर प्रकाशित किया।

वर्ष २ [१६ दिसंबर १९३४ ई० [अंक ११

ॐ

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुख-पत्र

ऑन० सम्पादक—
पं० चैनसुखदास जैन न्यायतीर्थ
पं० अजितकुमार जैन शास्त्री पं० कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री

आवश्यक निवेदन

भा० दि० जैन शास्त्रार्थ-संघकी कार्यकारिणी मीटिङ्ग २६-२७ दिसम्बर को दुपहरके १२ से ४ बजे तक संघके कार्यालय अम्बाले में होगी। इसमें विशेषकर निम्न लिखित बातों पर विचार होगा।

(१) उपदेशक विद्यालय की स्कीम
(२) जैन दर्शनकी आर्थिक परिस्थिति
(३) नवीनकार्यकारिणी का चुनाव
(४) गतवर्ष का हिसाब
(५) संघ के प्रबन्ध संबन्धी अन्य आवश्यक बातें
(६) वर्तमान नियमावली की कुछ बातें

कार्य कारिणीके माननीय सदस्यों से सानुरोध प्रार्थना है कि वे निश्चित तिथियों में अवश्य अम्बाला पधारनेकी कृपा करें।

प्रार्थी—
राजेन्द्रकुमार जैन, प्रधान मंत्री।

एक वर्ष का मूल्य ३) इस अंक का मूल्य =)

पुनर्जन्म

(ले० पं० श्रीप्रकाश जी न्यायतीर्थ)

[गतांक से आगे]

एक बार हिन्दी बंगवासी में छपा था—"कलकत्ता समिति की एक सभा अभी हाल में बङ्गाल थियोसोफिकल सोसाइटी के भवन में संस्कृत कालेज के प्रिन्सिपल डाक्टर सुरेन्द्रनाथदास गुप्त एम. ए०. पी. एच डी के सभापतित्व में हुई थी. जिस में बङ्गवासी कालेज के प्रोफेसर ए. दास गुप्त एम. ए. ने निबन्ध पाठ किया । सभा में नगर के गण्यमान्य पुरुष तथा बड़े बड़े विद्वान उपस्थित थे । निबन्ध का विषय था "प्रेतात्मा की अभिव्यक्ति और मृत व्यक्तियों के साथ पत्र व्यवहार के तीन वर्ष के अनुभव"।

प्रोफेसर दासगुप्त ने कहा कि दश वर्ष पूर्व मैं नास्तिक था और यह समझता था कि यदि आत्मा का अस्तित्व हो तो उसका शरीर के साथ ही नाश हो जाता है । भूत प्रेत की कहानी यदि मुझ से कोई कहता था, तो मैं उसे परियों की कहानी जैसी कल्पित समझकर हँसी खेल में उड़ा दिया करता था और यदि इस प्रकार की कहानी कहने वाला व्यक्ति अपने कथन की सत्यता से प्रमाण उपस्थित करता था, तो उस को भी मैं मजाक उड़ाया करता था किन्तु मेरे इस विश्वास पर सहसा एक आघात पहुंचा, जिस से मेरी अज्ञानता दूर हो गई और मेरे सामने ज्ञान का विस्तृत क्षेत्र प्रसरित हो गया । इसके बाद श्रीयुक्तदास गुप्त ने ऐसी बहुत सी रोमाञ्चकारी घटनाओं का वर्णन किया. जो सन् १९२२ में उनके कलकत्ता स्थित मकान तथा देहात में हुई थी । इन घटनाओं के प्रत्यक्ष शी थे, एक प्रोफेसर, पुलिस विभाग के सरकारी अफसर तथा और भी कितने ही सम्भ्रान्त पुरुष । इसके बाद श्रीयुक्तदास गुप्त ने इस प्रकार कहा—मेरी सम्बन्धिनी पारुल नामकी एक लड़की थी, जिस की अवस्था सात वर्ष की थी । वह बालिका १९२२ के २४वीं अगस्त को मर गई । इस के तीन सप्ताह बाद कलकत्ते में मेरे मकान पर एक अजनबी लड़की देखी गई । वह मेरी लड़कियों के साथ खेला करती थी, किन्तु उसे कोई भी अन्य व्यक्ति नहीं देख पाता था । वह दिन में टोकरी भर मिठाई लाया करती थी कभी कभी तो दिन में कई बार लाती थी । मेरी लड़कियाँ मुझ से कहा करती थीं कि वह दिखने में बड़ी सुन्दर है । खूब अच्छी साड़ी पहिने रहती है और उसके शरीर पर कीमती जवाहिरात शोभा पारहे हैं । वह बहुत सुकुमार मालूम पड़ती थी और ऐसा प्रतीत होता था, मानो उस के शरीर में कोई तत्व नहो । इस के बाद घरमें बड़ी विचित्र विचित्र घटनाएं होने लगीं, जैसे कि घर का दरवाजा बंद रहने पर भी चीजों का बाहर निकल आना, शीशे की बंद अलमारी से खिलोनों का

गायब होजाना, और फिर उन्हीं खिलौनों का एका एक बिछावन पर रखा जाना, राधा कृष्ण की मूर्ति के सामने खिलौनों को सजा कर रखना इत्यादि। एक दिन मेरी मां के पास से चूल्हा एकाएक गायब हो गया। इसका कारण यह था, कि उस दिन मेरी मां की लड़की नोआखाली में मर गई थी, लेकिन उस समय तक मेरी मां को इस की खबर नहीं लगी थी। इसलिये उसे तमाम दिन उपवास करने के लिये चूल्हा गायब कर दिया गया था। फिर उसी दिन संध्या को वह चूल्हा मा के पास पहुंच गया। इसके बाद और भी कितनी ही विचित्र घटनाएं हुई। पुलिस को सूचना दी गई और पुलिस ने इसकी जांच पड़ताल की लेकिन कुछ फल नहीं हुआ। पुलिस इन्सपेक्टर हमीद ने प्रोफेसर दासगुप्त से कहा कि आप देवता की पूजा के लिये किसी ओझा को बुलाइये। प्रोफेसर दास गुप्त निराश और घबराहट में पड़कर बङ्गाल थियोसोफिकल सोसाइटी में इस बात का पता लगाने के लिए गये कि यह सब काम किसी प्रेतात्मा का तो नहीं है और यदि प्रेतात्मा का हो तो उसकी शांति किस प्रकार हो सकती है। सोसाइटी के सिकत्तर प्रोफेसर तुलसी दास करने श्री युक्त दास गुप्त का परिचय सोसाइटी के उपसभापति प्रिन्सीपल योगेन्द्र नाथ मित्र से कराया। प्रिन्सीपल मित्र ने बड़े ध्यान से तीन घण्टे तक उनकी बातों को सुना और उन्हें यह विश्वास दिलाया कि यह सब काम किसी प्रेतात्मा का है जो प्रोफेसर दास गुप्त के साथ परलोक से बात चीत करना चाहती है और इन सब उपद्रव का कारण इस बात की कोशिश करती है कि उस लोक के मनुष्य के साथ उस का सम्बन्ध स्थापित हो जाये।

प्रिन्सपल मित्र ने उन्हें यह सलाह दी कि अब प्रेतात्मा को उसका साहसिक कार्य और अपनी शक्ति दिखलाने के लिये छेड़ो मत। क्यों कि इससे तो वह और भी उत्तेजित हो उठेगी। इससे प्रेम अर्थात दयालुता दिखा कर उसे शांत करने की चेष्टा करनी चाहिये और यदि सहायता की आवश्यकता हो तो उसे सहायता करनी चाहिए। उनके आदेशों का पालन करते हुए प्रोफेसर दासगुप्त ने प्रेतात्मा के प्रति प्रेम एवं दयालुता का व्यवहार करना शुरू कर दिया और अपनी व्यक्तिगत हानि तथा उपद्रव से उदासीन रहने लगे। प्रेतात्मा को दूर करने के लिये उन्हों ने किसी ओझा या गुणी को नहीं बुलाया। क्यों कि वे बिना अणुमात्र भी सन्देह के यह जानना चाहते थे, कि मृत्यु के बाद भी आत्मा का अस्तित्व बना रहता है। इसके लिये वे व्यक्तिगत रूप में हानि उठाकर भी इस सम्बन्ध में अपने ज्ञान की वृद्धि करना चाहते थे। किन्तु उनके कुछ मित्रों ने आग्रह करके एक ओझा को बुलाया, किन्तु उससे कोई फल नहीं हुआ। इसके बाद प्रोफेसर ने अपने कुछ मित्रों को इस अनुसन्धान कार्य में सहायता करने के लिये बुलाया और रात में देर तक भजन कीर्तन होने लगे। प्रोफेसर दासगुप्त इस बात का पता लगाने लगे कि इससे प्रेतात्मा की प्रकृति कैसी है ध्यान पूर्वक कई रात विधियों

को देखने से उन्हें पता चला कि यह किसी स्त्री की प्रेतात्मा है । इसका पता उन्हों ने इस तरह लगाया, कि वह प्रेतात्मा को आदेश देते थे कि बटन को या किसी दियासलाई के बकस को अमुक दशा में रखो यह परीक्षा कई बार की गई और सब बार एक ही परिणाम निकला । इसके कई दिनों के बाद उस प्रेतात्मा ने बोर्ड पर अपना नाम लिख दिया जिस से मालूम हुआ कि पारले की प्रेतात्मा है तत्पश्चात् मकान की छत से धड़ा धड़ चिट्ठियाँ गिरने लगीं जिन में प्रेतात्मा अपना सन्देश भेजा करती थी । उन चिट्ठियों में लिखा था कि उसने किस प्रकार भौतिक शरीर धारण किया है और केवल लड़कियों को ही देख पड़ती थी । मिठाइयाँ लाती थी और उपद्रव किया करती थी, जिससे घर के लोगों को भी यह धारणा बद्धमूल होजाये कि मृत्यु के बाद भी वह प्रकट हो रही है । इस बात के प्रकट होजाने पर उसके सारे उपद्रव बन्द होगये । प्रोफेसर दास गुप्त रबर का एक पुतला लाये, जिसकी पीठ पर दबाने से सीटी जैसी आवाज हुआ करती थी । उस पुतले को प्रोफेसर ने उस प्रेतात्मा को दिया । इस पर वह पुतला ऊपर की ओर उठा और सीटी भरता हुआ छत तक चला गया और फिर गायब होगया । जिस समय पुतला ऊपर की ओर उठ रहा था, उस समय उसकी पीठ पर किसी की अंगुली रखते नहीं देखा गया, हालाँ कि सीटी बराबर बजती जाती थी । प्रेतात्मा प्रतिदिन चिट्ठयाँ भेजा करती थी और कलकत्ते में उसके जितने पत्र मिले, सब छत से गिरते थे । इसके कुछ समय बाद प्रेतात्मा ने यह इच्छा प्रकट की कि गया में उसको पिण्ड दिया जावे उसने यह भी भविष्य वाणी की कि परिवार के कुछ बच्चों पर बड़ी विपत्ति आने वाली है, और कहा कि सब लोग अपने गाँव में चले जावें । परिवार के घर चले आने पर प्रेतात्मा पत्र द्वारा बातचीत करने लगी और प्रोफेसर की दूसरी लड़की जो दश वर्ष की थी प्रेतात्मा को देखने लगी और उसकी आवाज सुनने लगी । प्रेतात्मा भूत और वर्तमान की बात ठीक २ बता देती थी और भविष्य के सम्बन्ध में भी बहुत कुछ कहा करती थी । मृत व्यक्तियों के कार्य परलोक के सौंदर्य आदि का वर्णन किया करती थी उसने अपने लौकिक जीवन की घटनाओं के सम्बन्ध में तथा अपने माता-पिता, चाचा-चाची, भाई-बन्धु और जिन लड़के-लड़कियों के साथ वह खेला करती थी, उनके सम्बन्ध में बिलकुल यथातथ्य वर्णन किया ।

प्रोफेसर दासगुप्त ने उन सब बातों का साँगोपाङ्ग वर्णन किया कि प्रेतात्मा ने किस प्रकार आश्चर्य जनक काम किये थे, जो मनुष्य द्वारा होना सम्भव नहीं । मृत व्यक्ति को उसने किस प्रकार भोजन पहुँचाया और अन्य प्रेतात्माओं का संवाद वह किस प्रकार कहा करती थी । इसके सिवाय और भी कई प्रकार से उपकार किया । परिवार पर विपत्ति पड़ने के सम्बन्ध में जो भविष्य वाणी की थी, वह सर्वथा सत्य प्रमाणित हुई । गया में पिंडदान देने के बाद पारुल की प्रेतात्मा कम आने लगी और फिर उसका आना एकदम बन्द होगया । अन्त में प्रोफेसर ने चिट्ठियों का एक बड़ा बण्डल खोलकर लोगों को दिखलाया जो प्रेतात्मा की भेजी हुई थीं । बहुत से लोगों ने इन चिट्ठियों का पर्यवेक्षण किया । प्रोफिसर दासगुप्त की इस कहानी की सत्यता का समर्थन प्रोफसर तुलसी दास कार, प्रिन्सिपल योगेन्द्र नाथ

मिश्र और राय बहादुर चंडी चरण चट्टोपाध्याय ने किया।'

यह बातें प्रेतात्मा के पूर्वभव के संस्कारों पर निर्भर हैं। जैनाचार्य इस बात को स्वीकार नहीं करते। उनके मत से न कोई प्रेत हमारा दिया हुआ भोजन खाता है और न गया में पिण्डदान से मृत आत्मा को तृप्ति ही होती है। उक्त प्रेतात्मा ने जो ऐसा कार्य किया उसके लिये तो हम कह ही चुके कि उसके पूर्व के संस्कारों को ही प्रधान समझना चाहिये। अपना जैसा श्रद्धान पुष्ट करने के लिये ऐसी चेष्टाएं कुछ असम्भव नहीं हैं। एक बार जयपुर में दड़े के अखाड़े में एक सांप बकराया जा रहा था। साँप से पूछा तू कौन है? मैं जैन हूँ-साँप ने उत्तर दिया। अच्छा तो मन्दिर के दर्शन कर आ (जहाँ साँप बकराया जारहा था उसके ऊपर ही मन्दिर है) —साँप बकराने वालों ने कहा। सर्प ने इसके उत्तर में चेहरे से विरोध सा जाहिर करते हुये कहा—नहीं, नहीं, मैं नहीं जा सकता यह बीस पन्थियों का मन्दिर है। कुछ असम्भव बात नहीं, एक कट्टर तेरापन्थी इस प्रकार कह सकता है। अस्तु, हमें यहाँ दिखाना इतना ही है कि प्रेतात्माओं में पूर्वभव के संस्कार काम करते हैं।

उपर्युक्त वृत्तान्त से व्यन्तरों की स्थिति और पुनर्जन्म में कोई सन्देह नहीं रह जाता। अब हम यहाँ तीसरे हेतु पर विचार करते हैं।

तीसरा हेतु है—भवस्मृतेः। अर्थात् पूर्वजन्म का स्मरण होजाने से, पुनर्जन्म सिद्ध होता है। पूर्वजन्म की स्मृति का होजाना हम लोगों को विलक्षण घटना है। इसमें पूर्वजन्म के सूक्ष्म संस्कार काम करते हैं। "काशी के एक सुप्रसिद्ध स्वामी जी, जब पाँच वर्ष के थे तब अपनी गीता की पुस्तक ढूंढने में व्यग्र हो गये थे। एक दिन वह भागे २ गये और किसी मन्दिर के गुप्त स्थान में रखी हुई गीता की पुस्तक उठा लाये। पता लगने पर उस मन्दिर के महन्त ने कहा कि यह पुस्तक उनके गुरुदेव की बड़ी प्रिय वस्तु थी जिनका स्वर्गवास हुए ४ या ७ वर्ष होचुके थे।" प्राचीन पुस्तकों और धर्म शास्त्रों में भवस्मरण का जगह २ उल्लेख किया गया है। नवीन दृष्टान्तों की भी कमी नहीं है। सुप्रसिद्ध बङ्किमचन्द्र चटर्जी की भी जीवनी में उनके पूर्व जन्म का पता लगने का उल्लेख हुआ है।" समाचार पत्रों में भी प्रायः ऐसी अनेक घटनाएं प्रकाशित हुआ करती हैं जिनमें पाठकों की जानकारी के लिये यहाँ ज्यों की त्यों उद्धृत किये देते हैं।

एक बार ग्वालियर के 'जयाजी प्रताप' में पं० गणेशदत्त शर्मा गौड़ विद्यावाचस्पति ने छपाया था—

"आगरे से पांच मील सुसनेर रोड पर पाँचारूड़ी नामक गाँव में हरीसिंह (वल्द गोदड़ जी) अहीर के घर में एक कन्या है, जो अपने पिछले जन्म की सब बातें कहती है। कन्या की उम्र इस समय लगभग तीन वर्ष की है। वह जब स्पष्ट बोलने लगी तब उसने एक दिन अचानक कहा, मैं जाग की रहने वाली हूँ। वहाँ मेरे माता पिता बहुत प्यार करते थे। तुम लोग उतना नहीं करते। उनके यहाँ घोड़ी है और एक जोटे में एक जगह रुपये गाड़ रखे हैं इत्यादि।" इस लड़की का नाम सुरजी है और पूर्व जन्म में भी सुरजी ही था। उस जन्म में भी यह कन्या ही थी। और उसके माता पिता अहीर ही थे। जागवलि रामाजी अहीर जिनके यहाँ यह लड़की गुलाब नाम से थी, हरीसिंह अहीर के रिश्तेदार हैं।

"गत फाल्गुण मास में इस लड़की को जाग (परगना सुमकर) कार्यवश ले जाया गया। जब यह रात के वक्त वहां पहुंची, तब कलाल का मकान देखकर कहने लगी, "यह कलाल बाड़ी है।" उसने कलाल के लड़कों का भी नाम बताया, जिनके साथ यह पूर्वजन्म में खेला करती थी। रामाजी का घर देखकर वह उस में इस प्रकार जा घुसी, मानो उससे खूब परिचित हो। घोड़ी बांधने का स्थान बताया और अपने पूर्व जन्म के पिता को देखते ही उसके पैरों से लिपट गई और उससे कहा, मैं तुम्हारी लड़की गुलाब हूं। उसने वह जगह भी बताई, जहां रुपये गाड़े गए थे। और भी कई बातें बतलाई जो बिल्कुल सच निकलीं। यह कन्या पूर्वजन्म में चेचक रोग से तीन वर्ष की अवस्था में मर गई थी।

"यह लड़की रातभर अपने पूर्वजन्म के घर में रही। बड़ी प्रसन्न थी। वह पीछा लौटना नहीं चाहती थी, परन्तु उसे पैसे देकर बड़ी मुश्किल से फुसलाकर लौटाया गया। लड़की हरवक्त अपनी पूर्व-कथा नहीं कहती, बल्कि जब उसके मन में आता है या याद आती है तभी कहती है। जीव का आवागमन न मानने वालों के लिए यह एक पहेली है। जो कोई इस बात की सत्यता जानना चाहे वह यहाँ आकर निश्चय कर सकता है।"

ऐसी ही एक घटना ता० १३ मार्च (सन १९३२) के 'अर्जुन' में, तोताराम बोहरा मौजा जाजौ डाकखाना फतहपुर-सीकरी जिला आगरा ने प्रकाशित कराई थी। जो इस प्रकार है।

"मौजा अरहरा डाकखाना व परगना किरावली जिला आगरा में एक आदमी अकबर कौम जाट उमर ६० साल का था। वह मर गया। उस को मरे करीब आठ साल हुए। उसने मौज़े सुन्दैरा डाकखाना फतहपुर सीकरी ज़िला आगरा में कल्लू फ़क़ीर मुसलमान के घर जन्म लिया है। अब उसकी उमर करीब ७ साल के है। वह अपने पूर्व जन्म की कुल बातें बतलाता है। उसकी यह शोहरत तमाम गांवों में हुई, तब हम ने उसकी सचाई की जांच की। उस लड़के को हमराह उसके बाप के गांव में बुलाया जो करीब १ मील के है। उस में हमारी जमींदारी भी है। उससे पूछा गया कि तेरा पहले जन्म में क्या नाम था और कैसे मरा? जो कुछ उससे पूछा गया उसने उसका जवाब दिया। वह सब सही निकला। उसका कुछ सार लिखते हैं—नाम अकबर था कौम जाट। तीन बेटे और एक बेटी थी। बेटों के नाम अंगद, कन्हैया और भरत, बेटी का नाम गोबिन्दी था, औरत का नाम केसर, ससुराल मानाबरी थी। और कहा कि सांड (जिजार) मेरे हाथ भाले से मारा गया था जो कि मेरे खेतों में बहुत नुकसान करता था। मैं चार हल यानी आठ बैलों से खेती करता था। जंगल में खेतों के पास एक झोंपड़ी बना ली थी। जाड़े के मास में करबी वग़ैरह से बैलों के लिए छाया कर ली थी। रात का वक्त था कि हवा चलने लगी। आग हवा से सुलग कर झोंपड़ी और करबी वग़ैरह में लग गई। बैलों की जान बचाने को गुदड़ी ओढ़ कर बैलों के रस्से कुल्हाड़ी से काटे तो मैं भी आग से जल गया। दो बैल जल

कर मर गये। मैं एक पानी के गढ़े में गिर पड़ा और मर गया। और भी बहुत सी बातों का अच्छी तरह जवाब दिया ४०) रुपये झोंपड़ी के पास बताये। १।।) एक घड़े में बताया। २।।) झोंपड़ी में बताये, सो उसके बेटों ने मरने बाद निकाल लिये।

जिस वक्त जाजों में तारीख २६ फ़रवरी सन् १६२२ को उस लड़के को बुला कर पूछा गया तो सुन्हैरा से चार आदमी साथ आये थे तहसील किरावली के एक कुर्क अमीन किसी काम जाजो आये थे, वे भी मौजूद थे और बोहरे कुन्दनलाल श्यामलाल भी मौजूद थे। सब के सामने पूछा गया, सब बातें सही निकलीं।

इसके अतिरिक्त और भी अनेक घटनाएं उद्धृत की जा सकती हैं, किन्तु यहां इतना स्थान नहीं है तथा एक सी ही कई घटनाओं का लिखना उपयोगी भी नहीं है।

पाठकों को इन घटनाओं से पुनर्जन्म पर श्रद्धा हुई होगी यदि पुनर्जन्म झूठा है, तो, इन अबोध बालकों को पुरानी घटनाओं का स्मरण कैसे हो गया। अनेक महानुभाव इन घटनाओं को सुन कर चौंक पड़ते हैं और कहते हैं हमें पूर्व भव की स्मृति क्यों नहीं हो जाती? जब हमें स्मृति नहीं होती तो हम यही कहेंगे कि पुनर्जन्म नहीं है। कितने ही लोग तो इसी कारण पुनर्जन्म स्वीकार नहीं करते। हम ऐसे लोगों से एक बात पूछते हैं कि क्या आप को इस जन्म की कुमारावस्था और यौवनकाल की घटनाएं याद हैं? जब आप को इस जन्म की ही घटनाओं का पूरा ज्ञान नहीं तब पूर्व जन्म की बातें तो कैसे याद रहेंगी। साधारण मनुष्यों को यह भी याद नहीं होता कि परसों क्या खाया था? किन्तु फिर भी कोई खास बात याद रह सकती है या संस्कार के दृढ़ रहने से स्मरण करलिया जाता है। उसी प्रकार पूर्व जन्म और वर्तमान अवस्था में बहुत कुछ काल व्यतीत हो चुका तथा अनेक बड़े व्यवधान भी आ चुके इस लिये हमें उन घटनाओं का सहसा स्मरण नहीं हो सकता। संस्कारों की प्रबलता या योगाभ्यास से पूर्व जन्म की बातें अवश्य जानी जा सकती हैं। इस कार्य के लिये उत्कृष्ट अभ्यास और एकाग्र शक्ति ही विशेष कर अपेक्षित है। इस लिए हमें स्मृति नहीं हो पाती? ऐसी तर्कणाओं से पुनर्जन्म के महत्व में कोई भी बाधा नहीं आती। अस्तु जन्मान्तर की स्मृतियों की उपेक्षा कर दी जाय, फिर अनेक ऐसी असन्दिग्ध घटनाएं हैं, जिनके कारण पुनर्जन्म में कोई सन्देह नहीं रह जाता। —अपूर्ण

वेदार्थ विषय में समाधान का उत्तर।

ले०—वेद विद्या विशारद पं० मंगलसैन जी अम्बाला

स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि जो २ वेद में करने या छोड़ने की शिक्षा की है उस २ का हम यथावत् करना वा छोड़ना मानते हैं और इसी बात को उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास पृष्ठ ७० में इस प्रकार लिखा है

प्रश्न— तुम्हारा मत क्या है ?

उत्तर— वेद अर्थात जो २ वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा की है उस २ का हम यथावत करना और छोड़ना मानते हैं जिसके लिये वेद हमको मान्य हैं इसलिये हमारा मत वेद है। ऐसा ही मान कर सब मनुष्यों को, विशेष आर्यों को एक मत होकर रहना चाहिये, इत्यादि।

जबकि स्वामी जी वेद के अनुसार ही करने वा छोड़ने की शिक्षा करते हैं और वेद विरुद्ध को अधर्म समझते हैं तब आप वेद के विरुद्ध दूसरों के लिये प्रत्यक्षादि प्रमाण वा आत्म प्रियता की कसौटी अपनी तरफ से नवीन कल्पित नियत क्यों करते हैं। आपको तो वेद के अनुकूल ही प्रमाण मानना चाहिये यदि आप सत्यासत्य के निर्णयार्थ नवीन कसौटी ही नियत करते हैं तो उस कसौटी की प्रमाणता के लिये कोई वेद मंत्र का प्रमाण लिखें, अन्यथा वेद विरुद्ध दूसरों के लिये नवीन कसौटी नियत करना सर्वथा मिथ्या है। ऐसा मैंने पूर्व लेख में लिखा था।

अब इसका उत्तर आर्यमित्र वर्ष ३६ अङ्क १५ पृष्ठ २६ कालम १ समाधान नम्बर ३ में लिखा है कि—हमने यथार्थ में आपके प्रश्न से यही जाना कि प्रत्यक्षादि प्रमाण वेद के विरुद्ध है इत्यादि। स्वामी दयानन्द जी ने वेदों को ईश्वर कृत होने से निर्भ्रान्त वास्वतः प्रमाण माना है जैसा कि सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास पृष्ठ में ६६ लिखा है कि चारों वेद ईश्वरकृत हैं और चार ब्राह्मण, वेदाङ्ग छः शास्त्र छः उपवेद चार— यह सब ऋषिकृत ग्रन्थ हैं इनमें जो २ वेद विरुद्ध प्रतीत हों उस २ को छोड़ देना क्योंकि वेद ईश्वरकृत होने से निर्भ्रान्त वास्वतः प्रमाण अर्थात वेद का प्रमाण वेद से ही होता है। जबकि स्वामी दयानन्द जी वेदों को निर्भ्रान्त वास्वतः प्रमाण अर्थात् वेद से ही होना मानते हैं। तब आपका वेदार्थ विषय में प्रत्यक्षादि प्रमाण की कसौटी नियत करना सर्वथा मिथ्या है। और यदि आपको वेदार्थ विषय में प्रत्यक्षादि प्रमाण का आग्रह ही है, अर्थात प्रत्यक्षादि प्रमाण द्वारा ही सिद्ध करना चाहते हैं तो वेदों को आप परतः प्रमाण अर्थात ऋषिकृत होना स्वीकार करें अन्यथा वेद विरुद्ध प्रत्यक्षादि प्रमाण की कल्पना करना सर्वथा मिथ्या है।

साथ ही में दार्शनिक पद्धति और श्रुति में विशेष अन्तर पाया जाता है क्योंकि वैदिक साहित्य में अन्य ऋषि कृत ग्रन्थों की अपेक्षा श्रुति को अधिक बलवान माना है। और यदि श्रुति को अधिक बलवान न माना होता तो वेदान्त दर्शन में सांख्य, न्याय और वैशेषिक आदि का खण्डन न होता परन्तु वेद-व्यास जी ने वेदान्त दर्शन शारीरिक भाष्य अध्याय २, पाद २ में लिखा है कि वेदान्त दर्शन के विरोधी

जो साँख्यादि दर्शन हैं तिनका खण्डन करने के लिये इस द्वितीय पाद का आरम्भ है इत्यादि। और वेदान्त दर्शन में जहाँ पर नैयायिक, वैशेषिक आदि का खण्डन किया है वह सब श्रुतियों के आधार से ही किया है इसलिये वेदार्थ की सिद्धि में प्रत्यक्षादि प्रमाणोंका आग्रह करना केवल अपने को वेद विरोधी सिद्ध करना है।

आगे आप मेरे से पूछते हैं कि—क्या आप कृपया यह बतलायेंगे कि— स्वयं प्रत्यक्ष शब्द वेद विरुद्ध है—या उसका अर्थ ?। यदि यह शब्द ही वेद विरुद्ध है— तो यह सर्वथा मिथ्या है— इत्यादि। महाशय जी वेद के किसी मंत्र में प्रत्यक्ष शब्द आजाने से प्रत्यक्ष प्रमाण की सिद्धि कदापि नहीं हो सकती है क्योंकि प्रत्यक्षादि प्रमाणों का निर्दोष लक्षण वर्णन करना—यह एक दार्शनिक पद्धति है—वेदोक्त नहीं। और मंत्र में केवल प्रत्यक्ष शब्द को प्रकट करना यह भी ऐसा है जैसा कि कोई मनुष्य अपना घर बेचने की इच्छा से कोई पत्थर का टुकड़ा उसमें से निकालकर अन्य मनुष्यों को दिखलाता फिरे और कहे कि देखो मेरे मकान का यह नमूना है— बस यही व्यवस्था आप की है।

आगे आप ने प्रत्यक्षादि प्रमाण की सिद्धि के लिए अथर्ववेद के दो मंत्र भी उपस्थित किये हैं जिन में कि प्रत्यक्षादि प्रमाण की गन्ध भी नहीं है— केवल आर्यसमाजियों को खुश करने के लिए स्वामी जी ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ १०४ में उन का अर्थ लिख दिया है—सो वह भी ऋषि प्रणाली वा स्वामी जी की प्रतिज्ञा के विरुद्ध होने से सर्वथा मिथ्या है।

अब हम उन दोनों मंत्रों में से एक को यहां पर उद्धत करते हैं जरा इसे ध्यान से पढ़िये—

पुनर्मैत्विन्द्रियंपुनरात्मा द्रव्यद्रिणं ब्राह्मणं च पुनरग्नयो धिष्ण्या यथा स्थान कल्पन्तामि हैव ७-६-८

इन्द्रियम् इन्द्रेण दत्तंवीर्यम्। इन्द्रियम्-इन्द्रलिङ्गम् इतिसूत्रेण इन्द्रिय शब्दो निपातितः। यद्वा। इन्द्रियम् इति जातावेकवचनम्। चक्षुरादीन्द्रियाणि। मा माँ पुनरैतु-पुनरागच्छतु। आत्मादेहाभिमानी। पुनरैतु इत्यनुषङ्गः। द्रविणम्। प्रति प्राह्यंधनम्। माम् ऐतु इत्यनुषङ्गः। तथा ब्राह्मणम्-मंत्र ब्राह्मणात्मको वेदश्च पुनरैतु इति सम्बन्धः। तथा धिष्ण्याः होत्रादि धिष्ण्येषु विहृता अग्नयः इहैव अस्मिन्नेव विहृतप्रदेशे यथास्थाम। यथास्थानम् इत्यर्थः। तिष्ठते "आतो मानिन्" पुनः कल्पयन्ताम् समर्थाः प्रवृद्धाभवन्तु।

इन्द्रदेव का दिया हुआ वीर्य अथवा चक्षु आदि इन्द्रियाँ मुझ में फिर आवें, देहाभिमानी जीवात्मा भी मुझ में फिर आवे, प्रतिग्राह्यधन मुझ में आवे और मंत्र ब्राह्मणात्मक वेद भी मुझ में फिर आवे होत्रादि स्थानों में विहार करने वाली अग्नियें भी यथा स्थान में फिर समृद्ध होवें। इत्यादि इस अथर्ववेद के प्रमाण में आप के मान्य प्रत्यक्षादि प्रमाण की गन्ध भी नहीं है। अब बतलाइये कि आप वेद का प्रमाण लिखकर जनता को सरासर धोका देते हैं—या नहीं ? और फिर भी तुर्रा यह कि हम वेदों के मानने वाले हैं— हमारा मत वेद है और वेदों के अनुसार ही हम करना या छोड़ना मानते हैं—बलिहारी इस मान्यता की।

आगे लिखा है कि—जब आपको वेदों में अविश्वास हुआ तो हमने आपसे जगत की वस्तुओं को प्रत्यक्षादि प्रमाणों द्वारा अपनी आत्मा और इन्द्रियों के ज्ञान का विषय बनाने को कहा—इत्यादि । महाशय जी ! मैं अपने पूर्व पत्र में ही लिख चुका हूं कि अभी सृष्टि और सृष्टा—काल और आकाश के अनादि न मानने से दोनों ही साध्य कोटि में हैं जबकि दोनों ही साध्य कोटि में हैं तब जगत की वस्तुओं के विषय में लिखना अथवा प्रमाणों द्वारा उनका विवेचन करना सर्वथा मिथ्या है । यदि आप में कुछ भी हिम्मत वा वेदज्ञता की शक्ति है तो प्रथम आकाश और काल को वेद मंत्रों द्वारा अनादि सिद्ध करके दिखलावें और जब तक आप काल और आकाश को अनादि सिद्ध नहीं कर सकेंगे तबतक आप ब्रह्मदिन वा ब्रह्मरात्रि का कथन अथवा वेद ईश्वर कृत हैं तथा ईश्वर सृष्टि का कर्ता है—यह सब कल्पनायें आप की गधे के सींग सदृश सर्वथा मिथ्या है ।

कामना ।

उठी है मन में मधुर हिलोर ।

तज करके आरंभ परिग्रह, जाऊं बन की ओर,
वेश दिगम्बर धरूं, करूं तप, सहूं परिषह घोर ।
उठी है मन में मधुर हिलोर ।

राग-द्वेश-बैरी अनादि के, अनुभव-धन के चोर,
हृदय-सदन से उन्हें निकालूं कभी न देऊं ठौर ।
उठी है मन में मधुर हिलोर ।

इन्द्रिय दमन करूं मन चाहा, विषयों से दिल-मोर,
वैराग्यामृत पान करूं नित, पाऊं मोद अछोर ।
उठी है मन में मधुर हिलोर ।

आत्म-शक्ति को व्यक्ति करूं, काटूं करमों की डोर,
अजर, अमर, पद "प्रेम" प्राप्त कर, नाश करूं भव-छोर ।
उठी है मन में मधुर हिलोर ।

—प्रेम सागर पंचरत्न

मुक्तिवाद की निःसारता का निराकरण

पं० नाथूराम जी डोंगरीय न्यायतीर्थ।

[गतांक से आगे]

गीता के "यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम" तथा छान्दोग्योपनिषद् के "न च पुनरावर्तते नच पुनरावर्त्तते" इन दो वाक्यों को लिखकर लेखक ने इन्हें मानने के पूर्व तर्क की कसौटी पर कसने का इशारा किया है : क्यों कि ये आप्त वचन आगमों में परस्पर विरुद्ध भी पाये जाते हैं अतः हम भी लेखक की उक्त बात का समर्थन करते हैं क्यों कि जो बातें तर्क की कसौटी पर कसने योग्य हैं उन्हें परीक्षित करने बाद मान्य करने से अधिक लाभ और श्रद्धा उत्पन्न हो सकती है। इस विषय में हम तो यहां तक कहने को तैयार है कि जिस आगम में या आप्त वचनों में परस्पर विरुद्धता या प्रत्यक्षादि प्रमाणों से बाध्यता पाई जावे उसे न तो सच्चा आगम ही मानना चाहिये और न उन के प्रवर्तकों को सच्चा आप्त. क्यों कि सच्चा आप्त वही है जिस के वचन बाधित न हों तथा जो सर्वज्ञ हो। ऐसे में जब कि मुक्तिवाद को सादि अनंत मानने में पूर्वोक्त विवेचन द्वारा किसी तरह की भी बाधा नहीं आती तो विद्वान् लेखक का भी कर्तव्य है कि वह अपने मत को पुनः तर्क की कसौटी पर कसे। आगे आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द जी के द्वारा सांत (सावधि) मुक्ति की मान्यता का खंडन करते हुये लेखक महोदय लिखते हैं—

" ते ब्रह्मलोके हि परांत काले,
परामृतात् परि मुच्यंति सर्वे "

मुण्डकोपनिषद्।

मुंडक के उक्त वचन का अर्थ करते हुए स्वामी दयानंद जी लिखते हैं कि " वे मुक्त जीव मुक्ति में प्राप्त होके ब्रह्म में आनंद को तब तक भोग के पुनः महाकल्प के पश्चात् मुक्ति सुख को छोड़ कर संसार में आते हैं " सत्यार्थ प्रकाश ९ समु०। स्वामी जी ने मुक्ति को उक्त प्रमाण के द्वारा सावधि मानते हुए एक और भी विलक्षण आविष्कार कर अपने चेलों के सामने रख दिया है। आपने मुक्ति के भोगकाल का परिमाण भी ठीक २ निकाल कर अपनी कीर्ति को अजर अमर बना डाला है ? आपके उर्वर मस्तिष्क से उपजा हुआ यह अश्रुत पूर्व आविष्कार—मुक्ति का भोगकाल महाकल्प, अर्थात् ब्रह्मा बाबा (ब्रह्माण्ड) की पूर्ण आयु के तुल्य बताता है। बूढ़े बाबा की आयु उनके अपने वर्षों से १०० वर्ष की होती है, जिस में, ५० वर्ष (प्रथम परार्द्ध) तो बीत गये, तथा द्वितीय परार्द्ध के श्वेत वाराह कल्प में ६ मनवन्तर भी हो गये। वर्तमान मनवन्तर की २७ चौयुगियाँ भी चली गई और २८ वीं चौयुगी के कलियुग का प्रारंभ हुए वर्तमान विक्रम सं० १९९१ में ५०३५ वर्ष हो गये। स्वामी जी की मृत्यु

वि० सं० १९६० कार्तिक कृष्णा ३० मंगलवार को हुई थी ; अतः यदि आपको मुक्ति मिली होगी तो उसका पूर्ण आनंद तो दूर रहा, उसके आधे से भी कम आपको नसीब हुआ । आप बहुत घाटे में रहे ? यदि कहो कि महा कल्प में केवल तनुज्य काल का अभिप्राय है, नकि बुढऊ बाबा के जीवन काल का, तो अच्छी दिल्लगी हुई; क्योंकि ऐसी अवस्था में स्वामी जी की मुक्ति का खात्मा ब्रह्मा जी के "राम नाम सत्य" हो जाने के बाद होगा जिस समय सर्वत्र प्रलय विद्यमान रहेगा और आगामी सृष्टि होने में सुदीर्घ काल का विलंब रहेगा । न जाने स्वामी जी की पवित्रात्मा आगामी सृष्टि की प्रतीक्षा करती हुई तब तक किस अवस्था में पड़ी रहेगी ? अवश्य ही वह मुक्ति और सृष्टि के बीच महाराज त्रिशङ्कु की तरह उल्टी लटकती रहेगी; क्योंकि इधर मुक्ति भी सावधि होने के कारण हाथ से जाती रही और उधर अभी आगामी सृष्टि भी नहीं हुई कि यह उसकी शरण ले । यदि कहो कि आगामि सृष्टि तक स्वामी जी मुक्तावस्था में पड़े रह कर चैन की बंशी बजाते रहेंगे, तो ऐसा हो नहीं सकता; क्योंकि आपको मुक्त के भोगकाल का वृद्धि तथा ठेके से अधिक मौज उड़ाने का कोई हक नहीं

लेखक का उक्त कथन स्वामी दयानंद जी द्वारा मानी गई सांत (सावधी) मुक्ति के विषय में अवश्य ही बिल्कुल ठीक जंचता है । तथा मुक्त हो जाने पर भी यदि जीव वहां से लौट कर पुनः जन्म मरण करने लगे तब तो मुक्ति नहीं, प्रकारांतर से संसार ही कहना चाहिये । कुछ अधिक समय तक सुख भोग लेने पर भी आखिर जन्म मरण के संकट का सामना तो करना ही पड़ेगा; तब उस अधिक सुख भोग के काल का नाम मुक्ति रख लेना केवल मन को समझाना है वह भी ईश्वर की देख रेख और पराधीनता में। जब तक ईश्वरेच्छा सही सलामत है तब तक कोई परिमित काल तक कल्पित मुक्ति का सुख भले ही भोग ले ; अन्यथा ईश्वर तो ठहरा, जब चाहे तब इन्हें संसार रूप नरक कुंड में ढकेल दे और ये फिर मुक्ति के सुखों से टापते रह जाँय ! मुक्ति क्या हुई, ईश्वर का गुड्डे गुड़ियों जैसा खेल होगया !! असल में ईश्वर को जगत्कर्ता और मुक्ति में भेजने का ठेकेदार समझना ही भ्रम है । इसी बात पर आक्षेप करते हुए लेखक महाशय आगे लिखते हैं "महमूद ग़ज़नवी अपने प्रत्येक भारतीय आक्रमण के अवसर पर जो असंख्य निरीह भारतीय नर नारियों का अति निर्दयता पूर्वक वध कर उनका धन, जन, सर्वस्व लूट लेगया, उसमें उसका कोई भी कसूर नहीं; क्यों कि उसने तो केवल ईश्वरीय व्यवस्था-नुसार उन लोगों को अपने अपने पूर्व जन्मों के कर्म के फल दिये । यदि कहो कि वे नर नारी कर्म फल की दृष्टि से निर्दोष थे और ईश्वर के यहां से ग़ज़नवी को इस अत्याचार का दंड अवश्य मिलेगा सो जगत्पिता, परम दयालु दीनबंधु, अशरण शरण, सर्व शक्तिमान, घट घट व्यापी न मालूम क्या २ कहलाने वाला तुम्हारा वह "न्याय शील ईश्वर किस खर्राटे की नींद सो रहा था कि उसकी समझ मुबारक में—

"Prevention is better than Cure."

अर्थात बीमार को आराम कर देने से तो यही अच्छा है कि बीमारी होने ही न दी जाय— यह उत्तम नीति न आई और उन दीन दुखियों की रक्षा का प्रबंध पहिले से ही नहीं किया! वाह रे जगन्नियन्ता !! उसके देखते देखते इतने भारी कांड हो गये, पर उसने अपने कान भी नहीं पट पटाए !!!"

ईश्वर की मुक्ति दाता और सृष्टि कर्ता की मान्यता में उक्त दोषों के अतिरिक्त और भी कई दोष आते हैं; किंतु इतने मात्र से यह नहीं कहा जा सकता कि पुनर्जन्म और मुक्ति वाद कोरी कल्पनाएं हैं, क्यों कि युक्तियों और प्रमाणों से दोनों बातें सिद्ध हैं।

अब जरा विद्वान् लेखक के नव दर्शनातिरिक्त किये गये नवीन आबिष्कार पर भी प्रकाश डालना चाहिये जिसमें उसने कोरी कल्पना के आधार पर हवाई पुल बांधा है। वह लिखता है—"अब यहां पर यह बतला देना भी उचित है कि जीवों को सुख दुख होने का कारण क्या है? यह सुख दुःख वस्तुतः किसी प्राक्तन जन्म के कर्म का फल न होकर या तो इसी जन्म के कर्म फल हैं, या नहीं, तो सृष्टि विचित्रता मात्र है। हमें अपने कर्म का फल इसी जन्म में राजा, समाज, प्रकृति तथा आत्मा के द्वारा मिल जाता है। इसके लिये पूर्व जन्म की तथा ईश्वर की कल्पना करना पूर्णतः व्यर्थ है। राजा, कारागारादि द्वारा, समाज बहिष्कारादि द्वारा तथा आत्मा (Conscience) चित्त की ग्लानि द्वारा हमें अपने कर्मों का फल भोगाते हैं। इसके अतिरिक्त हमें जो सुख दुःख होते हैं। वे सृष्टि के वैचित्र्य हैं। इसमें यही स्वभाव है कि इसमें प्रत्येक चीज की व्यवस्था दूसरे से भिन्न होती है। एक ही वृक्ष में असंख्य पत्ते होते हैं पर किसी भी दो पत्तों के बीच पूर्ण समता नहीं दीख पड़ती।

लेखक महोदय का उक्त कथन प्रत्यक्ष और तर्क दोनों से बाधित है; क्योंकि हम प्रायः देखते हैं कि बेचारे अनाथों, बेकसों और बच्चों के लिये बिना पाप कर्म के किये भी दुःख हुआ करता है। एक गरीब के यहां बालक पैदा हुआ है, जन्म से ही वह अन्धा है, नकटा वा कुष्ठरोग से पीड़ित है, तिस पर भी कुछ दिन बाद उसके शरीर में असंख्य फोड़े फुन्सियां उत्पन्न होगये, शरीर में से अब पीप और खून चू रहा है। बालक को असह्य वेदना होरही है। अच्छे से अच्छा जांच कर इलाज करने पर भी कुछ असर नहीं होता-उल्टी वेदना बढ़ रही है। वह रात दिन कलप २ कर तड़प २ कर बेजार होरहा है ऐसी वेदना से प्राण भी निकल जांय तो अच्छा; पर कम्बख्त वे भी नहीं निकलते। अब यदि लेखक के कथनानुसार सुख दुःख को इसी जन्म के कर्मों का फल माना जाय तो उस बेचारे दीन बालक ने अभी ऐसा कौनसा पाप कर्म कर डाला जिससे कि उसे इतना दुःख उठाना पड़ रहा है? ऐसे ही एक रईस के यहां भी पुत्र जन्मा है, बड़ा सुन्दर, अत्यंत निरोग जिसकी टहल के लिये बीसों दास दासियां लगी हुई हैं और बालक को अधर २ लिये फिरती हैं। इस बालक को इतना सुख है कि आज तक किसीने उसके रोने तक की आवाज नहीं सुनी। अब बतलाइये कि इस बालक ने जन्म लेते ही ऐसा कौनसा अनुपम पुण्य कार्य कर डाला कि उसे इतना सांसारिक सुख भोगने को मिल रहा है? यदि कहा जाय कि मा बाप की गरीबी और अमीरी के कारण ऐसा

है, तो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि यहां पर भी यही प्रश्न उठता है कि यह गरीब और यह अमीर क्यों? अथवा कभी २ यह भी देखने में आता है कि एक गरीब बालक किसी धन कुबेर के बालक की अपेक्षा अधिक सुखी है। देखो जमीन से ऊंचे रूई के गद्दे पर तकिये के सहारे बैठे हुये मुँह में चार पान का बीड़ा दबाये, कान में इत्र का फव्वा लगाये, १०-५ नौकरों से टहल कराते हुये सेठ जी बिना किसी परिश्रम के ही १०००) नकद कमा रहे हैं, और एक किसान, जो रात दिन गर्मी, सर्दी, बर्षात की भयंकर बाधाएं सहते हुये अधपेट भोजन और कभी बिलकुल ही भूखे रहकर मशीन की भाँति अनवरत परिश्रम करता हुआ भी दाने २ को तरस रहा है। सो क्यों? यदि कहो कि सेठ को रुपया कमाने की तदबीरें याद हैं और किसान को नहीं, तो यह भी ठीक नहीं। क्योंकि भाग्य पलटने पर सेठ जी भी दाने २ को तरसते हैं और किसान राजा बन जाता है। सुप्रसिद्ध साम्यवादी देश रूस में, जहां कि साम्यवाद के के आधार से डंके की चोट प्रजातन्त्र घोषित कर दिया गया है। उसके मौजूदा डिक्टेटर मि० स्टेलिन आज भी क्यों बादशाही सुख भोग रहे हैं तथा उसी देशवासी किसान क्यों फावड़ा कुदाली लेकर जमीन खोद रहे हैं? एक मेहतर क्यों रात दिन दूसरों का मल मूत्र ढोता है और वायसराय मखमली फर्श से नीचे कदम नहीं रखता। यदि कहा जाय कि यह सब अत्याचार है, तो यह प्रश्न उठता है कि तुम क्यों इतने शक्तिशाली नहीं हुये जो स्वयं दलित न होकर औरों को पद दलित करते? इन सब बातों से सिद्ध है कि पूर्व जन्म में जैसा जिसने कर्म किया है उसका वैसा ही यहाँ फल भोगरहा है तथा अब करेगा सो आगे भोगेगा। यहां हठात् यह नहीं कहा जा सकता कि सम्पूर्ण अच्छे बुरे कर्मों का फल यहीं पर ही भोग लिया जाता है; क्यों कि आंखों के सामने सैकड़ों गौओं पर छुरी चलाने वाले कसाई, हजारों बदमाश, गुण्डे, विश्वासघाती, झूठे, दगाबाज रंडीबाज, माँस भक्षी, शराबी, शिकारी, जुआरी, हत्यारे जन्म भर बड़ी मौज से ऐश आराम में जिन्दगी का मजा लूट रहे हैं और ऐसा करते हुये भी जिन का आज तक राजा, समाज, रोग, आत्मग्लानि ने बाल तक टेढ़ा न कर पाया। तथा आजीवन सत्य-भाषी, पर स्त्री को मा-बहिन समझने वाले, दयालु, परोपकारी, धर्मात्मा, सज्जन भूखों मर रहे हैं, दाने २ को तरस रहे हैं, बिना किसी अपराध के जेल में ठूँस दिये जाते हैं, समाज से बहिष्कृत किये जाते हैं और एक न एक आधि-व्याधि उनका गला दबाए ही रहती हैं। अतः अवश्य ही पापी पाप का फल आगे जन्म लेकर भोगेगा और पुण्य का फल पुण्यात्मा। यदि आगे के लिये जन्म मरण न माना जाय तब तो पूछना ही क्या है? डट कर पाप, अत्याचार, और अनाचार कर जिन्दगी का मजा लूटिये और वह भी बुढ़ापे में सबसे अधिक, क्योंकि मरने बाद जीवात्मा तो कहीं जायगा ही नहीं और न पापादि का लेखक के मंतव्यानुसार फल ही मिलेगा? अतः लेखक का यह मत भ्रांत है कि सुख दुःख इसी जन्म के कर्म फल हैं प्राक्तन जन्म के नहीं, क्योंकि जन्म से ही अमीरी गरीबी, रोग, शोक, कष्टादि की उत्पत्ति बिना इस जन्म के किसी कर्म के भी होती देखी जाती है।

—अपूर्ण

बर्मा निवासी बौद्ध*

(लेखक—श्री सनत्कुमार जैन, जयपुर)

बर्मा-निवासी बौद्ध हैं। वे बुद्ध-धर्म को मानते हैं और उसके नियमों का पालन करते हुए अपना जीवन व्यतीत करते हैं। सन्यासी लोग मठों में रहते हैं। सन्यासियों के अतिरिक्त प्रत्येक गृहस्थ के लिये भी अपने जीवन में कम-से-कम एकबार सात दिन तक किसी मठ में रहना अनिवार्य है यह उनका धार्मिककृत्य है। इसे कोई भी व्यक्ति जब चाहे तब कर सकता है, साधारणतया ऐसा बारह वर्ष की अवस्था में किया जाता है। सात दिन बीत जाने पर वह मठ में ही ठहरा रहे या अपने घर लौट आवे यह उसकी इच्छा पर निर्भर है। यदि वह वहाँ मठ में ही ठहरना निश्चय करे तो उसे एक भिक्षुक का जीवन व्यतीत करना पड़ता है।

प्रति दिन प्रातःकाल युवा और वृद्ध भिक्षुक मठों से भिक्षा के लिये निकलते हैं। वे पीला वस्त्र धारण किये रहते हैं और अपनी गर्दन में एक पीतल का प्याला ले जाते हैं। जिन के घर वे भिक्षा के लिये जाते हैं, उनकी भेंटों को उस प्याले में ग्रहण करते हैं। ये भिक्षुक लोग एक साथ पङ्क्ति सी बनाकर जाते हैं। जब किसी के घर पहुँचते हैं तो वहाँ नीची आंखें किये हुए खड़े रहते हैं। वे कुछ भी नहीं कहते। जब घर की स्वामिनी उनके (भिक्षा ग्रहण करने के) प्याले में अपनी भेंट—चावल, कढ़ी, फल या साग-तरकारी को रख देती है, तब भी वे कुछ भी नहीं बोलते और आगे चल देते हैं। एक दूसरी जगह वे और जाते हैं और वहाँ भी ऐसा ही करते हैं। इसके बाद वे अपने मठ को लौट जाते हैं। मठ में पहुंचने पर समस्त भिक्षुओं में भोजन परस्पर समान भाग में बांट लिया जाता है। संभवतः ६० हजार पीली पोशाक वाले बालक, वृद्ध और युवा भिक्षुक बर्मा में प्रतिदिन ऐसा ही किया करते हैं।

सन्यासी लोग बारह वर्ष से कम आयु वाले बालकों के लिये पाठशालाएँ जारी रखते हैं, इन में बच्चों को शिक्षा दी जाती है।

बर्मा वालों के पूजा के स्थान पगोड़ा कहलाते हैं। ये सम्पूर्ण देश में हजारों हैं। कुछ नये कुछ खंडहर और कुछ थोड़े थोड़े गिरते हुए। ज्यों ही एक बर्मा निवासी धन कमाता है और मालदार बन जाता है, एक पगोड़ा बनाता है; पर किसी पुराने (जीर्ण पगोड़ा) की मरम्मत की ओर कोई ध्यान ही नहीं देता।

बर्मा वालों में जात-पाँत का भेद नहीं है वे बड़े प्रेमी सज्जन हैं। प्रत्येक व्यक्ति उनके घरों में जा सकता है। जब कोई नवीन व्यक्ति उनके यहाँ जाता है और उनके घर भोजन तथा गृह-प्रबन्ध को देख कर प्रसन्नता प्रकट करता है तो वे बहुत आनन्दित होते हैं।

* एक अंग्रेजी लेख का अनुवाद

लड़के जब चौदह वर्ष के होजाते हैं तब कमर से घुटनों तक गोदे जाते हैं। यह काम लड़के के लिये बड़ा कष्ट-प्रद होता है। गोदने के समय लड़के को बेहोश कर दिया जाता है, पर वह कभी-कभी चीखें मारता है। गोदा हुआ स्थान सूज जाता है और वह कई दिन बाद अच्छी तरह चल-फिर सकता है। गोदे हुए चित्र कभी-कभी बहुत सुन्दर होते हैं।

लड़कियों को कान बिंधवाने पड़ते हैं। यह उनकी आवश्यक प्रथा है। कानों के सूराख मोटी-मोटी सींकें डालकर उत्तरोत्तर बड़े किये जाते हैं। जब ये बहुत बड़े होजाते हैं तब इन में एक इंच लम्बी पौन इंच मोटी बाली डाली जाती है। बर्मा में स्त्री और पुरुष अपने कपड़ों में जेबें नहीं रखते, छोटी-छोटी चीजें रखने का काम इन्हीं से चला लेते हैं।

बर्मा वाले मनुष्य बड़े प्रसन्न चित्त रहते हैं। वे कंजूस नहीं होते। जब एक बर्मा-निवासी के पास कई सौ रुपया बच जाता है, तब वह एक पगोड़ा बना डालता है या अपने मित्रों को दावत देने में खर्च कर डालता है। बर्मा के पुरुष नाव खेने और गाड़ी चलाने में बड़े निपुण होते हैं। स्त्रियां भी बहुत होशियार देखी जाती हैं।

भूल सुधार—गतांक के पुनर्जन्म शीर्षक लेख में लेखक का नाम प्रकाशचन्द्र छप गया है, पाठक वहाँ पर श्री प्रकाश जी पढ़ें। तथा सम्पादकीय मन्तव्य में सहयोगी का स्वागत लेख में सुदर्शन नाम पढ़ें।

—प्रकाशक

मनोवेदना

ले०—'नरेन्द्र'

[१]

चिर दिन से आखें व्याकुल हैं
लालायित हैं ये मेरी ।
भारत जननि ! नहीं अवलोकी ,
कान्ति अलौकिक वह तेरी ।

(२]

वर विकास मय वारिज के सम ,
विकसित वदन न तब देखा ।
चारु अधर पर नहीं विलोकी ,
रुचिर हंसी की वर रेखा ।

[३]

कहाँ गई वह रूप माधुरी ,
मुग्ध हमें जो करती थी ।
कहाँ गई वह भाव—मंजुता ,
जो मानव चित हरती थी ।

[४]

कहाँ गई वह गौरव—गरिमा ,
जिस ने जग आसक्त किया ।
कहां कई वह कला—चातुरी ,
जिसने जग को ज्ञान दिया ।

[५]

क्यों तू है अवसन्न दिखाती ,
क्यों अब बहु चिन्तित तू है ।
क्यों परमाकुल नयन युगल से ,
आंसू अब पड़ता यों है ।

[६]

मन—मानी की मची धूम है ,
टूट रहा सब का नाता ।
घर घर कलह बैर है फैला ,
जन जन हो गया मदमाता ।

[७]

नये नये नाना विचार में,
कपटाचार समाया है ।
जो लोचन हैं ज्योति निकेतन,
अन्ध उन्हीं पर छाया है।

[८]

देव-भवन में देव-भाव का,
अब अभाव है दिखलाता ।
सुर दुर्लभ वैभव सुमेरु भी,
सदा छीजता है जाता ।

[९]

रहा न धर्म, धर्म-आडम्बर-
ही अब धर्म कहाता है।
जन मयंक छूने को, वामन
होकर के ललचाता है।

[१०]

नरक वास कर लोग बात,
हा ! सुरपुर की बतलाते हैं।
हैं नन्दन वन पथिक किन्तु वे,
चले रसातल जाते हैं।

[११]

क्या इन बातों को विचार तू
प्रति दिन कुम्हलाती जाती ?
शोक विवश ही कलित कान्ति,
क्या तेरी मलिन हुई जाती ?

[१२]

कब तक आयेगा जग वन्दिनि,
यह महान दुख अब भोगा ।
क्या अब सुदिन नहीं आयेंगे,
स्वर्ण सुयोग न फिर होगा ।

जैन धर्म का मर्म और पं० दरबारीलाल जी

(ले०—पं० राजेन्द्रकुमार जैन, न्यायतीर्थ)

क्या नग्नता मोक्ष के लिये अनिवार्य नहीं है ?

पं० दरबारीलाल जी का कहना है कि मुनि जीवन में नग्नता का समावेश भगवान महावीर ने ही किया है। इनसे पूर्व भ० पार्श्वनाथ के शासन में ऐसी बात नहीं थी। उस समय साधु वस्त्रधारी भी हुआ करते थे। आपका यह भी कहना है कि भ० पार्श्वनाथ के शासन में अन्य बातें भी अनिश्चित थीं जिनको भ० महावीर ने निश्चित किया है।

ऐसी परिस्थिति में निम्न बातें विचारणीय होजाती हैं।

(१) क्या भ० पार्श्वनाथ के शासन के साधु वस्त्रधारी थे ?

(२) क्या भ० पार्श्वनाथ के समय में कुछ बातें अनिश्चित थीं ?

(३) क्या नग्नता मोक्ष के लिये अनिवार्य नहीं है ?

भगवान पार्श्वनाथ के शासन के साधुओं को वस्त्रधारी प्रमाणित करने के लिये लेखक ने उत्तराध्ययन के केशि गौतम संवाद के एक अंग को उपस्थित किया है।

विचारशील पाठक आपके दिये हुये प्रमाण पर भली भाँति विचार कर सकें अतः यहां हम उसको ज्यों का त्यों उपस्थित करते हैं।

"केशि—महावीर ने दिगम्बर वेश क्यों चलाया

गौतम—भगवान ने केवल ज्ञान से जान कर जिसको जो उचित है, उसको वैसा ही धर्मोपकरण बतलाया है। दूसरी बात यह है कि लिङ्ग तो लोगों को यह विदित कराने के लिये है कि यह साधु है। (इसलिये दिगम्बर लिङ्ग धारण करने पर भी कोई बाधा नहीं है, क्योंकि यह भी लोक प्रत्यय का कारण होसकता है) तीसरी बात यह है कि संयम निर्वाह के लिये लिङ्ग है। चौथी बात यह है कि मैं साधु हूँ, इस प्रकार की भावना बनाये रहने के लिये लिङ्ग है। ये सब काम दिगम्बर लिङ्ग से भी हो सकते हैं और वास्तव में तो ज्ञानदर्शन चारित्र ही मोक्ष का साधक है, लिङ्ग नहीं।

निष्पक्ष विचारक का यह कर्तव्य है कि वह प्रमाणों के अनुसार अपनी सम्मति को बनावे। हां, उसको यह अधिकार है कि वह किसी भी उल्लेख की सत्यता की परीक्षा करे या उसको अस्वीकार करे। किन्तु उसका यह कर्तव्य नहीं कि वह शास्त्रीय उल्लेखों को अपनी सम्मति के अनुसार बनाने की चेष्टा करे। कभी २ ऐसा देखा जाता है कि कोई २ महानुभाव शास्त्रीय उल्लेखों को अपने अनुकूल बनाने के लिये उसके अर्थों में परिवर्तन एवं परिवर्द्धन कर दिया करते हैं।

पं० दरबारी लाल जी का उत्तराध्ययन का प्रस्तुत भाषान्तर भी इन ही में से एक है। आपने भी उत्तराध्ययन के कथनानुसार अपनी सम्मति नहीं बनाई। किन्तु अपनी सम्मति के अनुकूल उत्तराध्ययन के उल्लेख को बनाने की चेष्टा की है। इसी

लिये आपको उत्तराध्ययन के अर्थ में कहीं २ परिवर्तन और कहीं २ परिवर्द्धन भी करना पड़ा है।

लेखक ने केशि के प्रश्न का भाषान्तर करते हुये दिगम्बर को वेष लिखा है, यह मिथ्या है। मूल में दिगम्बर *अचेलक के साथ धम्म शब्द का प्रयोग है जिसका अर्थ धर्म है। इस ही प्रश्न में अचेलक को दोनों स्थानों पर धर्म ही स्वीकार किया है।

इस ही प्रकार की गलतियाँ आपने उत्तर के भाषान्तर में की हैं। पहिली बात तो यह है कि उत्तर वाली पहिली गाथामें आया हुआ 'विन्नानेण समागम्म' पद क्रिया विशेषण है तथा उसका सम्बन्ध गाथास्थ अन्तवी क्रिया से है। अतः इस गाथा का यह अर्थ होजाता है कि विज्ञान से अच्छी तरह समझ कर गौतम ने इस प्रकार उत्तर दिया········। दरबारी-लाल जी ने इस गाथा में से ही इतना अर्थ और भी लिख दिया है कि "भगवान ने केवल ज्ञान से जान कर, जिसको जो उचित है उसको वैसा ही धर्मोपकरण बतलाया है"। दूसरी बात यह है कि केशि के प्रश्न अचेलक धर्म के सम्बन्ध में थे, अतः गौतम का उत्तर भी उन ही के सम्बन्ध में है। इसमें दरबारी लाल जी का लिङ्ग का समन्वय करना भी निराधार है। इस ही प्रकार इस ही भाषान्तर का यह अंश कि "यह सब काम दिगम्बर लिङ्ग से भी हो सकते हैं।" बिलकुल निराधार है। मूलगाथा में ऐसा कोई भी शब्द नहीं जिसका प्रस्तुत अर्थ निकाला जा सके। दिगम्बरत्व को केवल लिङ्ग बतलाना और उसका प्रयोजन अपने भाषान्तर में बतलाई हुई बातें लिखना भी मूल के प्रतिकूल है। मूल में दिगम्बरत्व को धर्म और व्यवहार मोक्ष मार्ग स्वीकार किया गया है।

दरबारीलाल जी ने ऐसा क्यों किया? उनका अर्थ के इस परिवर्तन और परिवर्द्धन में क्या मंतव्य सिद्ध होता है? इत्यादि प्रश्नों का यही उत्तर है कि उन्होंने इनसे अपने मन्तव्य की पुष्टि की चेष्टा की है। आपका कहना है कि साधु नग्न भी हो सकता है और वस्त्रधारी भी। इसलिये उन्होंने केशि के दिगम्बर धर्म विषयक प्रश्न के उत्तर की बातों को साधारण लिङ्ग के सम्बन्ध में घटित करने की चेष्टा की है तथा फिर इस ही आधार से आपने दिगम्बरत्व को लिङ्ग लिखा है। इससे आपने यह निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न किया है कि जिस २ में ये सब बातें ठीक बैठ जाती हों, वही लिङ्ग है तथा ये बातें दिगम्बरत्व और वस्त्र सहित दोनों में ही ठीक बैठ जाती हैं अतः दोनों ही लिङ्ग हैं।

इस से पाठक समझ गये होंगे कि यह सब पं० दरबारी लाल जी का असफल प्रयत्न है। केशी का प्रश्न दिगम्बर धर्म के सम्बन्धमें था अतः उसका गौतमका समाधानभी उसही के सम्बन्ध में है दूसरे मूलमें भी ऐसा कोई पद नहीं जिस का दरबारी लाल जी वाला अर्थ निकाला जा सके। इससे स्पष्ट है कि जहाँ तक भगवान महावीरके धर्मोपदेश का सम्बन्ध है वहां तक दिगम्बरत्व ही सिद्ध होता है न कि अन्य भी। यह सब विचार तो हम ने उत्तराध्ययन के प्रस्तुत अंशको अभ्युपगम सिद्धान्त‡ से स्वीकार कर लिया है वैसेतो हम उत्तराध्ययनके इसअंशको प्रमाण स्वीकार करने के

---

* अचेलगो य जो धम्मो— २६
धम्मे दुविहे मेहावी— ३० उत्तराध्ययन

लिये तैयार नहीं। इसके सम्बन्ध में निम्न लिखित बातें विशेष विचारणीय हैं—श्वेताम्बरीय मान्यता के अनुसार अंगों की तीन वाचनाएं हुई हैं। एक पटना में, दूसरी मथुरामें और तीसरी बल्लभीपुर में। इन तीनों ही वाचनाओं में अंगों को संक्षिप्त किया गया है*। प्राचीन अंगों की भाषा तो पटनाकी वांचनामें नहीं रही और पटनाकी वाचना वाली भाषाभी मथुराकी वाचनामें परिवर्तित होगई। इसही प्रकार यह भी स्थिर न रह सकी और इसको भी बल्लभीपुर में बदलनाही पड़ा। प्रस्तुत सूत्र साहित्य की भाषा अधिकतर इसही वाचना की भाषा है। इसका समय वीर सम्वत ९९३ और मथुराकी वाचनाका समय वीर सम्वत ८१४ है।

किसीभी कथनकी भाषा में अन्तर लाये बिना उसको संक्षित नहीं किया जा सकता। किसीको भी संक्षित करने के लिये उसकी भाषामें अन्तर लाना अनिवार्य है। यह खयालकरना कि भाषामें बिना परिवर्तन किये ही ग्रन्थ का परिमाण कम करदेने से वह संक्षित होजायगा एक कल्पना मात्र है ऐसा करनेसे कोई भी ग्रन्थ संक्षित नहीं किया जासकता हां उसको कम किया जासकता है। कम करने और संक्षित करनेमें भारी अन्तर है। संक्षित करने पर भी उससे उतना ही मतलब निकलना चाहिये जितना उसके विस्तृत रूपसे निकलता था कम होने पर यह बात नहीं रहती।

अतः श्वेताम्बरीय मान्यता के अनुसारही सूत्र साहित्य की प्राचीन और नवीन भाषा में अन्तर मानना ही पड़ता है। यही कारण है जिसमें वर्तमान सूत्र साहित्य की भाषा भगवान महावीर और उनके निकट के समय की नहीं है किन्तु बहुत बाद की है। जिन भाषा-शास्त्रियों ने इनका अध्ययन किया है वे भी इसही परिणाम पर पहुंचे हैं()

श्वेताम्बरीय वर्तमान सूत्र साहित्य में केवल भाषा में ही परिवर्तन नहीं हुआ है। किन्तु इनमें समय २ की बातों का सम्मिश्रण भी हुआ है। सूत्र साहित्य में ऐसी बातें भी मिलती हैं जो भगवान महावीर के कईसौ वर्ष बाद तक की हैं। ठाणांग सूत्र में ७ अछेरों का वर्णन है। इनमें से अखीर के दो भगवान के ५४४ और ५८४ वर्ष बाद हुये हैं तथा इनका इसमें भूतरूप में वर्णन है। ×

इसी प्रकार भद्रबाहु रचित कहे जाने वाले कल्पसूत्र में वीर सम्वत ९०० के बाद तक की पट्टावलियों का उल्लेख मौजूद है। ऐसी परिस्थिति में श्वेताम्बरीय

‡ अपरीक्षिताभ्युपगमात्तद्विशेषपरीक्षणमभ्युपगमसिद्धान्तः —न्यायदर्शन १—३१

* शास्त्रोद्धारमीमांसा (श्री अमोलक ऋषिकृत पृ० ३४-८)

() The Language of the Jain Canon (Svetambare Jain angas) is far letter than the time of the nandas, and if the Language could be changed then the Content also was far from Secure; Indeed Jaina tradition reneals it's early looses and we have no right to hold that the present Canon in substance or detail goes back to the fourth century B. C.

Prof. A. Bauible Keith M.A.D.P.H.I.L.
Sir Ashutosh memorial V. P. 21

× ठाणांग सूत्र सटीक ५८७। उपधाई विशेषावश्यक भाष्य।

मान्यता के अनुसार ही यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है कि वर्तमान सूत्रों में समय २ पर सम्मिश्रण नहीं हुआ है।

यह बात यहीं तक समाप्त नहीं होती। अभी तो ऐसे भी प्रमाण मौजूद हैं जिनसे बल पूर्वक यह कहा जा सकता है कि वर्तमान सूत्र साहित्य पर बौद्ध एवं ब्राह्मण साहित्य का भी प्रभाव पड़ा है। उनकी रचना में इनसे बहुत कुछ सहायता लीगई है। दूसरे सूत्रों को न लेकर अभी हम उत्तराध्ययन के सम्बन्ध में ही इस बात का विशेषता के साथ उल्लेख करेंगे। उत्तराध्ययन का बहुत कुछ अंश धम्मपद की नकल है या यों कहिये कि इसकी रचना में उसकी सहायता लीगई है। पाठकों के परिचय के लिये यहाँ हम दोनों के कुछ उद्धरण देदेना आवश्यक समझते हैं।

उत्तराध्ययन में वही भाव वैसे ही शब्दों, वाक्यांशों और कहावतों में प्रगट किया गया है। जोकि वैसे ही शब्दों, वाक्यांशों और कहावतों में बौद्ध पिटकों में मिलता है। उभय साहित्य की शब्द समानता के समर्थन में निम्न लिखित शब्द उपस्थित करते हैं—

अप्पकुक्कुए-अप्पकुक्कुच, उक्कुडुओ-उक्करिको, लूह-लूख, परीसहा-परिस्सहा, मिलक्खुआ-मिलिक्खुका अइच्छति-अतिच्छति; सल्लेइ-सल्लेखः तसेसु थावरेसु च

वाक्यांशों (Phrases and word clusters) की समानता में निम्न लिखित बातें ली जा सकती हैं धम्माणि संतय-धमणि संतथ, जहाकरेणु परिकिण्णे कुञ्जरे सट्ठिहायणे (उ० ११-१८) सेय्यथाऽपि भाम कुञ्जरो सट्ठिहायनो गभीरं पोक्खरणिं ओगाहेता (म० नि० ३५-३) धोरव्वइशील (ध० २०४) धोरेञ्जसीला (१४-३५) नाइदूरमणासन्ने - नातिदूरं न अच्चासन्ने। यह समानता यहांतक समाप्त नहीं होजाती किन्तु श्लोक के श्लोक भी दोनों में एक से मिलते हैं—

मासे मासे उजो बालो कुसग्गेणतं भुञ्जए।
नसो सुअक्खा अधम्मस्स कलं अग्घति सोळसिं
(उत्तराध्ययन ९-४४)

मासे मासे कुसग्गेन बालो भुञ्जेथ भोजनं।
नसो संखतधम्मानं कलं अग्घति सोळसिं॥
(धम्मपद ७०)

जो सहस्सं सहस्सेण संगामे दुज्जए जिणे।
एगं जिणिज्ज अप्पाणं एस से परमोजओ॥
(उत्तराध्ययन ९-३४)

यो सहस्सं सहस्सेन संगामे मानुसेजिने।
एकं च जेय्यमत्तानं स वे संगामजुत्तमो॥
(धम्मपद १०३)

एवं अलित्तं कामेहिं तं वयं बूम माहणं-
(उत्तराध्ययन १५-२६)

यो न लिम्पति कामेसु तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं-
(धम्म० ४१)

कम्मुणा बंभणो होई कम्मुणा होई खत्तियो।
कम्मुणा वइसो होई सुद्दो हवइ कम्मुणा।
(उत्तरा० २५-३२)

न जच्चा वसलो होति न जच्चा होति ब्राह्मणो।
कम्मणा वसलो होति कम्मणा होति ब्राह्मणो॥
(सु० नि० १३६)

तं समणा समणासणं भइत्ता- (उ० १५-४)
एतं च समनासनं- (ध० १८५)

अन्य भी अनेक प्रमाण इस प्रकार के दोनों साहित्य में मौजूद हैं किन्तु हमने नमूने के तौर पर यहां कुछ लिखे है।

उत्तराध्ययन २६-४२ में ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम वानप्रस्थाश्रम और सन्यासाश्रम का भी उल्लेख मिलता है। ऐसे ही अन्य उल्लेखों में भी उत्तराध्ययन खाली नहीं है यह सब इस पर ब्राह्मण साहित्य का प्रभाव है।

जैनियों में भी विभाग हुये हैं किन्तु वे विभाग इन चार आश्रमों में नहीं हुये। इस प्रकार के विभाग तो केवल ब्राह्मण साहित्य में ही मिलते हैं।*

बौद्ध पिटकों की भाषा तथा उनका निर्माण काल श्वेताम्बरीय सूत्रों की भाषा और निर्माण काल से प्राचीन है ऐसी परिस्थिति में बौद्ध साहित्य का ही प्रभाव श्वेताम्बरीय सूत्रों पर स्वीकार करना होगा।

यात्री हुएनत्सांग ने सिंहपुर स्तूप के सम्बन्ध में वर्णन करते हुये लिखा है कि "स्तूप की बगल में थोड़ी दूर पर एक स्थान है। जहां श्वेताम्बर साधु को सिद्धान्तों का ज्ञान हुआ था और उसने सबसे पहले धर्म का उपदेश दिया था। इन लोगों ने अधिकतर बौद्ध पुस्तकों में से सिद्धान्तों को उड़ाकर अपने धर्म में सम्मिलित कर लिया है"।

हुएनत्सांग का भारत भ्रमण पृ० १४२

ऐसी परिस्थिति में श्वेताम्बरीय सूत्र साहित्य पर बौद्ध और ब्राह्मणों का प्रभाव स्वीकार करना ही होगा।

इसके सम्बन्ध में एक बात यह भी है कि जिस समय उत्तराध्ययन की रचना हुई है, विद्वान् लेखक इसको भले ही वाचना कहकर अपने मनको सन्तुष्ट करले, वह एक ऐसा समय था जबकि दिगम्बर श्वेताम्बर का मतभेद होचुका था। ऐसी परिस्थिति में यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है कि जिसके रचयिता ने अन्य सामयिक बातों को लिखा हो, बौद्ध एवं ब्राह्मण साहित्य से सहायता ली हो वह इस मतभेद के प्रभाव से अछूता ही रहा होगा और उसने जो कुछ भी लिखा है वह इस सम्वाद के आधार से श्वेताम्बरीय मान्यता को केवल प्राचीन रूप देने के ही लिये नहीं लिखा।

ऐसा हो भी जाया करता है। थेरावली की पोल (श्वेताम्बरीयकृति) अभी कुछ ही पूर्व खुल चुकी है, उत्तराध्ययन के सम्बन्ध में भी ऐसा ही हुआ मालूम पड़ता है। उत्तराध्ययन कार को ऐसा सूझा मालूम पड़ता है कि वह कोई ऐसा सम्वाद या उसका भाग विशेष निर्माण करे जिसके द्वारा भ० पार्श्वनाथ के समय में साधुओं को सवस्त्र स्वीकार किया जासके। इस ही का यह परिणाम है। ऐसी परिस्थिति में उत्तराध्ययन के प्रस्तुत संवाद को उसकी रचना से सैकड़ों वर्ष पूर्व की घटना के सम्बन्ध में ऐतिहासिक आधार मानना युक्तियुक्त नहीं है।

अतः उत्तराध्ययन के प्रस्तुत सम्वाद के आधार से भ० पार्श्वनाथ के शासन के साधुओं को वस्त्रधारी प्रमाणित करने की चेष्टा करना बिलकुल व्यर्थ है।

भ० पार्श्वनाथ के समय के मुनियों को वस्त्रधारी प्रमाणित करने के लिये लेखक ने अन्य किसी युक्ति को उपस्थित नहीं किया है अतः यह बल पूर्वक कहा जा सकता है कि भगवान पार्श्वनाथ के काल के साधुओं को सवस्त्र कहना केवल कल्पना मात्र है।

—अपूर्ण

* ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गृही भवेत् गृही भूत्वा वनी भवेद् वनी भूत्वा प्रव्रजेत्। शतपथ ब्राह्मण का० १४

प्राचीन सिक्के और उनकी उपयोगिता

(अनु०—श्री पं० नाथूलाल जी शर्मा)

पुराने जमाने में अदले बदले का रिवाज था। परस्पर में वस्तुओं को लेन देन करके व्यवहार चलाया जाता था। एक व्यक्ति के पास धान्य होता और दूसरे के पास गौओं का समूह; धान्य वाले को गौओं की आवश्यकता होती और गाय वाले को धान्य की, तो वे आपस में यह निश्चित करलेते कि कितने धान्य की एवज में कितनी गायें दीजायें। और जब वे दोनों आपस में यह तय कर लेते, तब लेन देन होजाता था।

परन्तु प्राचीन काल का यह सादा तरीका बहुत समय तक प्रचलित न रहा। सभ्यता की उन्नति होने लगी, जातियों का निर्माण हुआ, बड़ी २ रियासतें बनी, व्यापार का क्षेत्र बढ़ा। अब अदला बदला एक ही गांव में न होता रहा, दूर देशों की वस्तुओं में भी परिवर्तन प्रारंभ हुआ। दूसरे देशों में पैदा होने वाली वस्तुएं साधारण माध्यम (Medium) द्वारा खरीदी और बेची जाने लगीं। कीमती धातुएं अपनी कमी; मजबूती और बहुत कम घिसने के कारण उपयोग में ली जाने लगीं। इस तरह से सिक्कों के रिवाज का आरम्भ हुआ।

प्रारंभ में तो भारतवर्ष में सिक्कों का रिवाज केवल व्यापारियों में ही मालूम होता है। ये व्यापारी लोग चांदी के चपटे पत्रों का प्रयोग करते थे जो बहुधा चौकोर होते थे, गोल नहीं। ये तोल में करीब ३२ रत्ती या ५६ ग्रेन होते थे और उन पर भिन्न २ प्रकार की मुहरें लगी हुई होती थीं। किसी के सूर्य, किसी के चन्द्रमा; किसी के वृक्ष, जानवर, स्तूप इत्यादि। ये सम्पूर्ण भारतवर्ष में सिक्कों के तौर पर चलते थे इनमें से बहुत से बंगाल में पाये गये थे। जिनमें से कुछ ढाका के अजायब घर में हैं। दो सिक्के तो केवल वर्द्धमान के जिले में ही मिले थे।

ये सिक्के भारतवर्ष में कई शताब्दी पर्यन्त चलते रहे और ईसवी सन् की तीसरी शताब्दी तक काम देते रहे। सिलसिले वार सिक्के भारतवर्ष में बहुत देर से चलने लगे थे। ये पुराने सिक्के इतने प्रचलित थे कि चन्द्रगुप्त और अशोक जैसे मौर्य सम्राटों ने जिन के लिये कहा जाता है कि उन्होंने पारसी और यूनानी कारीगरी की नकल की उन्होंने भी अपने पड़ोसियों की नकल करके सिलसिले वार सिक्के कभी जारी नहीं किये।

कौटिल्य-अर्थशास्त्र में ऐसा लिखा है कि सिक्के बनवाने वाला हाकिम भी था और बनावटी सिक्के बनाने वालों को सजा भी दी जाती थी यह राजकीय सिक्कों की बनावट व्यापारी समूह के सिक्कों के तुल्य ही थी। मौर्य साम्राज्य ऐश्वर्य के बचे हुए निशान अभी अशोक के स्तम्भों की सूरत में मिलते हैं, परन्तु ऐसा कोई एकभी सिक्का नहीं मिलता जिसको खास मौर्यों का ही समझा जावे।

मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात् जो पंजाब और उत्तरी पश्चिमी सीमा की यूनानी रियासतें थीं, उनमें झगड़ा हुआ। सिकन्दर महान की मृत्यु के पश्चात उसके सेनापति सेल्यूकस ने बहुत बड़ा राज्य पूर्व की भूमि में स्थापित

कर लिया था जो सीरिया का राज्य कहलाता था। इसकी पूर्वी सीमा हिन्दुस्तान तक थी। यह बात भली प्रकार से ज्ञात है कि सेल्यूकस को अफगानिस्तान के निकट का देश किस प्रकार से चन्द्रगुप्त को देना पड़ा।

ईसा के २५०—२४६ वर्ष पूर्व सीरिया राज्य छिन्न भिन्न होगया। सीरियाके दो सरदारोंने विद्रोह खड़ा किया और पारसि देश में पार्थिया और बिक्टेरिया के स्वतन्त्र राजा बन गये। बिक्टेरिया के चौथे राजा डिमिट्रियस ने मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात अपने राज्य की सीमा पंजाब के पूर्व तक फैलाली और इस प्रकार से भारतवर्ष के एक भाग का राजा होगया। परन्तु पार्थिया का राजा युकरटिडीज (Eukratides) ने डिमिट्रियस पर आक्रमण किया और उसको पंजाबसे आगे नहीं बढ़ने दिया। इस प्रकार पश्चिमी भाग डिमिट्रियस के हाथ से जाता रहा।

अब इन राज वंशों के तथा इनके उत्तराधिकारी पालव और शक वंशों के बारे में सविस्तार लिखने की कोई आवश्यकता नहीं हैं। यही लिख देना पर्याप्त है कि इन राज वंशों ने भिन्न भिन्न प्रकारके सिक्के भारतवर्ष में जारी किये जिनमें मुख्य तांबे के सिक्के थे जिन पर उनके नाम तथा उनके चेहरे और उनके देवताओं के चित्र होते थे। यह कार्य पहले पहल कुशन सम्राटों ने किया और गुप्त वंश वालों ने भी ऐसा ही किया और यही ढंग हर्षवर्धन तक जारी रहा। कुछ समय बाद बादशाहों के चेहरे का चित्र देनेकी प्रथा धीरे धीरे बन्द होगई और एक तरफ मोटे अक्षरों में राजा का नाम और दूसरी तरफ उनके देवी देवताओं की तस्वीरें दीजाने लगीं और चाँदी के सिक्कों में उन के छपने के सम्वत भी मिलते हैं।

मुसलमानी सिक्कों में जहांगीर के सिक्कों को छोड़ कर किसी पर भी किसी तरह का चित्र नहीं था। इतिहास के लिये वे अधिक उपयोगी हैं, क्योंकि उन पर सन् और टकसाल का नाम दोनों मिलते हैं।

प्राचीन और अर्वाचीन दोनों ही प्रकार के इतिहासों की खोज विद्वानों ने शिलालेखों तथा अन्य वस्तुओं द्वारा की है। गत सौ वर्षों से विद्वान् लोग लेखों की खोज में हैं। वे विद्वान् उन लेखों से कई बातें खोज कर भारत की प्राचीन कथा लिखना चाहते हैं। प्राचीन काल में यह रिवाज था कि जब कोई व्यक्ति मन्दिर या अन्य सर्व साधारणोपयोगी इमारत बनवाता तो उसके किसी मुख्य स्थान पर अपने गुण और वंश का वर्णन खुदवा देता था। उस समय का प्रचलित सम्वत्, राजा का नाम और उस का शासन सम्वत भी लिखा जाता था। यदि निर्माण कराने वाला स्वयं राजा होता तो वह अपने वंश की कीर्ति लिखवा दिया करता था। इससे अब यह बात आसानी से समझ में आ सकती है कि ये लेख एक देश के लुप्त इतिहास को पूर्ण करने में कितनी सहायता प्रदान करते हैं।

परन्तु ऐसे लेख अधिक नहीं मिलते और उनसे इतिहास का पूरा ज्ञान भी नहीं होता। यहाँ ही से प्राचीन सिक्कों की उपयोगिता का प्रारम्भ होता है। सम्भव है एक राजा के राज्य का बना हुआ तालाब या मन्दिर स्थिर न रहे या उसका पता न लगे, परन्तु उसके राज्य के सिक्के, उसके राज्य में-सारी रियासत में फैले हुए रहते हैं।

सिक्के किसी राज्य के उस समय के लेख हैं। और लेखों का काम देते हैं। इतिहास में इन का स्थान सर्व प्रथम है। सिक्के की तरह लेख उस समय का वृत्तान्त नहीं बतला सकते। कितने ही राजा ऐसे होगये हैं जिनके समय के लेख नहीं मिलते, किन्तु ऐसा कोई सा ही समय होगा जब के सिक्के न मिलते हों क्योंकि सभ्य जाति के व्यवहार में सिक्कों के बिना एक प्रकार की रुकावट उत्पन्न हो जाती है। सिक्का एक ऐसी वस्तु है जो किसी राजा की सम्पूर्ण रियासत में फैली रहती है, दूर का कोना भी इस से खाली नहीं रहता। जब ये खोये जाते थे तो भूमि में गड़ जाते थे, यहां तक कि उनकी स्त्री और बच्चों को भी उनका पता नहीं होता था। कोई यात्रा या व्यापार के लिये देशान्तर में जाता और लौट कर वापिस नहीं आता, उसके सिक्के जमीन में गड़े ही रह जाते। इस जमीन के सिक्कों को राजा भूल जाता, कंजूस भूल जाता पर वसुन्धरा देवी कभी नहीं भूलती। ऐसा हो सकता है, कि हम में से किसी को सौभाग्यवश जरासा खोदने से यह कीमती चीज़ निकल आवे। यदि हम इसे जल्दी से सुनार की दुकान पर गलवाने का विचार करें तो वह कैसी बहुमूल्य वस्तु बन जाती है। कई शताब्दी से जिस राजा को हम नहीं जानते थे। वह तत्काल हमारी निगाह के सामने आ जाता है।

मान लो कि महारानी विक्टोरिया के समय तमाम कागजात खो जायें और बड़े बड़े कीमती लेख भी खो जायें और बड़ी बड़ी इमारतों में जो जो लेख लिखे हुए हैं वे भी नष्ट भ्रष्ट हो जायं। इतना होने पर भी एक हजार वर्ष पश्चात् जो इतिहास के लेखक होंगे वे इसी महारानी के समय की घटनाओं की तलाश विदेशी यात्रियों के वर्णनों को देखकर करेंगे। यदि कोई ऐसा कंजूस है, जिसने दो पीढ़ी तक रुपया इकट्ठा कर लिया है और किसी बच्चे या स्त्री से कहा भी नहीं है, अगर वही द्रव्य इतिहास खोजने वालों को प्राप्त हो जायगा तो इस के काल का सब पता लगा लेंगे। अभाग्यवश सरकार को लेखों पर अधिक विश्वास है, वह सिक्कों पर टकसाल का नाम नहीं लिखवाती। परन्तु इससे बहुत काल के पश्चात् इतिहास लेखकों में यह गड़-बड़ पड़ जाती है कि अमुक प्रान्त महारानी के शासन में था या नहीं।

अपूर्ण

लेखक महानुभावों से निवेदन है कि वे अपने लेख व कवितायें, पं० चैनसुख दास जैन, मणिहारों का रास्ता, जयपुर सिटी, के पते से भेजने को कृपा करें।

तीर्थक्षेत्रों के लिये विशेष आवश्यक

जैनधर्म का प्राचीन गौरव अनेक अज्ञात स्थानों की पृथ्वी के नीचे दबा हुआ किसी चतुर मजदूर की कुदाल की बाट देख रहा है उसी तरह पुरातन तीर्थ स्थान भी जैन धर्म की गरिमा के आदर्श विद्यमान है जहां पर कि जैन ऋषिवरों ने पवित्र तपश्चर्या से संसार को शान्ति का पाठ पढ़ाया था।

जैन समाज यद्यपि आज भी उन पवित्र भूमियों की सन्मान के साथ वन्दना किया करता है। उनके प्रबन्ध के लिये अपने न्यायोपार्जित द्रव्य में से काफी भाग निकाला करता है और हृदय से चाहता है कि उसके ये प्राचीन गौरव स्थल किसी तरह हानि का धक्का न खाने पावें।

इसीलिये जैन समाज की ओर से प्रत्येक तीर्थ भूमि पर उसका प्रबन्ध करने वाला दफ्तर और प्रबन्धक नियत है जोकि भक्ति का आदर्श उदाहरण है। किन्तु इतना सब कुछ होने पर भी जैन समाज का लक्ष्य एक खास बात की ओर नहीं गया है जो कि अति आवश्यक है।

अनेक इतिहास खोजी विद्वान तथा अनेक भ्रमण प्रिय मनुष्य जैन तीर्थ भूमियों का अवलोकन करने के लिये आया करते हैं। खंडगिरि, उदयगिरि, देवगढ़, श्रवणबेलगोला, सम्मेदशिखर आदि क्षेत्रों के अवलोकन के लिये जो अजैन यात्रियों का आवागमन बना रहता है यह किसी से छिपा नहीं हैं।

किन्तु तीर्थक्षेत्रों पर हमारी ओर से जो मुनीम नियत किये हुए हैं वे प्रायः इतने योग्य, शिक्षित नहीं होते जोकि आगन्तुक सज्जनों को अपने तीर्थक्षेत्र के पुरातन इतिहास, महत्व एवं जैन सिद्धान्त बतला सकें जिससे कि परिणाम यह होता है कि आगन्तुक अजैन यात्रीगण हमारे प्राचीन गौरव से अपरिचित रह जाते हैं अतः तीर्थ के महत्व की छाप जो उनके हृदय में बैठनी चाहिये वह नहीं बैठने पाती।

इसके सिवाय तीर्थस्थानों पर उस तीर्थभूमि का ऐतिहासिक विवरण से भरी हुई, जैनसिद्धान्त के संक्षिप्त सार के बतलाने वाली पुस्तकें भी वहां नहीं होतीं जोकि अजैन यात्रियों के हाथ में पहुंच कर उस तीर्थभूमि का और जैन धर्म का महत्व प्रगट कर सकें। इस कारण हमारे तीर्थक्षेत्र आफिस इस विषय में अजैन यात्रियों के लिये व्यर्थ सिद्ध होते हैं।

इस भारी कमी की पूर्ति के लिये तीर्थक्षेत्र के प्रबन्धक महानुभावों का आवश्यक कर्तव्य है कि वे—

एक तो—अपने अपने तीर्थक्षेत्र पर सुशिक्षित विद्वान मुनीम नियत करें जोकि सभी जैन अजैन यात्रियों को जैन धर्म से तथा उस क्षेत्रके इति-

हास से सन्तोषजनक परिचय करा सके। उसका मुख्य काम यह हो कि वह आगन्तुक यात्रियों को जैन धर्म तथा उस तीर्थक्षेत्र का महत्व भली प्रकार समझा देवे।

दूसरे—वहां पर उस तीर्थक्षेत्र के प्राचीन इतिहास से भरी हुई संक्षेप रूप से जैनधर्म को सरल रूप में समझाने वाली छपी हुई पुस्तकें मौजूद रहनी चाहियें जोकि बिल्कुल थोड़े मूल्य पर अथवा बिना मूल्य आगन्तुक यात्रियों को विशेषकर अजैन यात्रियों को दी जा सकें।

ऐसा प्रबन्ध हो जाने पर जैनधर्म का महत्व और जैन तीर्थ स्थानों का गौरव बहुत सुगम रूप से फैलाया जा सकता है। तीर्थक्षेत्र कमेटी तथा भिन्न भिन्न तीर्थों के प्रबन्धक इस आवश्यक त्रुटि सुधार के लिये उद्यमी होंगे ऐसी आशा है।

—कस्तूरचन्द्र जैन नयादा।

सं०—अभिमत-श्रीमान बा० कस्तूरचन्द्र जी बडजात्या का उक्त विचार प्रचार की दृष्टि से पर्याप्त महत्व रखता है। दुख है कि जैनसमाज का द्रव्य अन्य व्यर्थ खर्चों के पेट में चला जाता है और ऐसे उपयोगी काम की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता तीर्थ प्रबन्धकों को लेखक की सम्मति का आदर करना चाहिये।

समय का उपयोग

मनुष्य जीवन का एक २ पल अमूल्य है। संसार की क्षणिक विभूतियाँ उसके सामने कुछ मूल्य नहीं रखतीं। तुम समझते हो कि हम प्रति दिन बढ़ रहे हैं किन्तु सच यह है कि तुम्हारी आयु रेखा प्रतिदिन मिटती आरही है जोकि फिर न बढ़ेगी। यह कुछ ठीक पता नहीं कि वह किस समय मिट जावे। इस अनिश्चित हालत में तुम्हें ढीलाढाला, सुस्त बना रहना उचित नहीं।

चुस्त होकर उद्योग मे भिड़ जाओ। अपने अमूल्य समय का प्रत्येक क्षण इस तरह बाँटो कि तुम्हारे सभी कार्य सरलता से होते चले जावें। जो अच्छा काम करने का विचार हो उसको आरम्भ करने में देर न करो। पता नहीं किस समय इस दीपक का आयुष्य तेल समाप्त होजावे और तुम्हारे अरमान अधूरे रह जावें।

अपने धार्मिक नित्य नियम, व्यापार, आहार, व्यवहारादि सभी दैनिक कामों का समय नियत करके क्रम से उन कामों को करते जाओ। शारीरिक मानसिक स्वास्थ्य के अनुकूल होने पर आज का काम कल पर कभी न छोड़ो।

जो समय की कदर नहीं करते वे अपने इस अमूल्य जीवन में कोई अच्छा काम नहीं कर पाते। इस लिये समय को व्यर्थ न खोओ।

—वीरेन्द्र कुमार जैन।

भूल

खामगांव निवासी श्रीमान यति बालचन्द्र जी रत्नकरंड श्रावकाचार के १०२ वें श्लोक के "चेलोपसृष्ट मुनिरिव" पद का अर्थ श्वेताम्बर जैन के गत ७ वें अंक में यों लिखते हैं—

(उपसृष्ट में) क्त प्रत्यय कर्म में हुआ है, और इसीलिए (सृष्ट) शब्द का अर्थ कोषकारों ने "भिक्षा में दूसरे से मांगकर लाया हुआ वस्त्र" किया है।

हमको दुःख है कि यति जी 'चेलोपसृष्ट मुनि' में 'क्त' को कर्म प्रत्यय में मानते हुए भी उसका अर्थ

ठीक नहीं कर रहे, जो कि एक साधारण सी बात है। "रामेण बाणेन हतो बाली" के समान ही यह "केनचित्पुरुषेण चेलेन उपसृष्टो मुनिः" वाक्य है।

कोषकारों की दुहाई देते हुए जो यति जी मनमाना गलत अर्थ कर रहे हैं। पता नहीं वह कोषकार भी कौन है जिसने 'सृष्ट' शब्द का अर्थ "भिक्षा में दूसरे से माँग कर लाया हुआ वस्त्र" किया है। पुस्तक का नाम, पृ० आदि लिखें।

दिगम्बरीय ग्रन्थों में ग्यारहवीं प्रतिमाधारक के क्षुल्लक, ऐलक दो भेद किये हैं। क्षुल्लक लंगोटी और शरीर प्रमाण से छोटी चादर ये दो वस्त्र रखता है ऐलक। केवल लंगोटी पहनता है। रत्नकरण्ड श्रावकाचार में भी तदनुसार ग्यारहवी प्रतिमा के श्रावक का विशेषण चेलखण्डधर लिखा है। जिसका अर्थ टीकाकार ने "कौपीन मात्र वस्त्र धारक" (केवल लंगोटी पहनने वाला) लिखा है यति जी उसे देखने का कष्ट उठावेंगे तो चेलखण्ड का अर्थ दशबीस हाथका वस्त्र खण्ड फिर न करेंगे।

उपसर्ग का अर्थ पत्थर लाठी आदि का उपद्रव ही नहीं है इच्छा विरुद्ध बलात कोई भी क्रिया करना इस शब्द का अर्थ है। उपवासमें कोई बलात भोजन करादेवे यह भी उपसर्ग है और वस्त्र त्यागी को हठ से कोई कपड़ा उढ़ा देवे यह भी उपसर्ग है। जिस बात का त्याग यतिजी को है यदि कोई पुरुष उस पदार्थ का समागम यति जी की इच्छा विरुद्ध जबर्दस्ती मिलाता है तो वह यति जी के लिये उपसर्ग ही है।

अंत में आपने जैन जगत की दुहाई दी है सो जैन जगत ने जो कुछ लिखा है उससे अधिक वह आपकी तरफदारी कर सकता है साथ ही आप के सिद्धान्त का भी सफाया कर सकता है तथा कर चुका है। अन्य बात छोड़ कर 'चेलोपसृष्ट मुनिरिव' पद का अर्थ जैन जगत के संपादक श्रीमान पं० दरबारीलाल जी से पूछ लीजिए। आप को संतोष होजायगा।

वस्त्र यदि परिग्रह नहीं है तो आचारांग-सूत्र में उसके छोड़ने की सराहना क्यों की है। मांग कर लाना, उसको संभाल कर रखना, अरक्षित न छोड़ना, शरीर पर उसको लपेटना इत्यादि क्रियाएं शरीर के तथा वस्त्र के साथ मोहभाव की परिचायक हैं। यदि वस्त्रपरिग्रह न होता तो दीक्षा लेते समय तीर्थंकर वस्त्र क्यों उतार फेंकते।

यति जी दो और दो का योगफल चार जानते हुए भी पांच कर रहे हैं। 'जैनधर्म का मर्म' के खंडन में जो लेखमाला चल रही उसमें यह विषय चल रहा है यति जी उसका ध्यान से अवलोकन करें।

—अजितकुमार

सादर आमंत्रण

अभी सिवनी में ३०—३१ दिसम्बर को रजतरथोत्सव होने वाला है, उस समय स्थानीय वर्द्धमान सभाने मध्य प्रान्त, बरार प्रान्तीय परवार जैन युवक मंडल की स्थापना करने का निश्चय किया है, क्योंकि भारतवर्षीय युवक मंडल कीस्थापना का काम विस्तृत और कठिन है इस कारण पहिले सफलता पाने के लिये मध्य प्रान्त और

बरार प्रान्तीय युवक मंडल की स्थापना करना ठीक रहेगा इस कारण परवा जाति के जैन नवयुवकों से सादर निवेदन है कि वे इस कार्य के लिये अपनी सम्मति भेजें, तथा अवसर पर पधारने की कृपा करें। हरकचन्द्र जैन,

मंत्री श्री वर्द्धमान सभा सिवनी।

भिवानी के मन्दिर के सम्बन्ध में सरकार का निर्णय

भिवानी में एक मन्दिर प्राचीन है। यह एकसौ वर्ष पुराना बतलाया जाता है। इसके पीछे गली में एक ब्राह्मण का मकान है। इस ब्राह्मण महाशय ने गली में अपने मकान के आगे टोडे लगा लिये थे। तथा इनका विचार उन पर कुछ और भी बनाने का था। एक तो टोडों से ही मन्दिर के प्रकाश में कमी होगई थी और यदि उनके ऊपर भी कुछ बन जाता तो कहना ही क्या था।

स्थानीय जैन पंचायत की तरफ से स्थानीय म्युनिस्पेलिटी को लिखा गया। इस पर म्युनिस्पेलिटी ने इन टोडों को गिराने का हुक्म दे दिया था किन्तु उक्त म्युनिसपेलिटी के चेयरमैन की कृपा से जोकि उस ब्राह्मण के रिश्तेदार बतलाये जाते हैं, वह हुक्म रद्द होगया और टोडे न गिर पाये।

इस पर संघ ने यह मामला कमिश्नर महोदय अम्बाला डिवीजन की सेवा में उपस्थित किया और उनसे निवेदन किया कि वह इसमें हस्तक्षेप करने का कष्ट उठावें।

कमिश्नर महोदय ने यह मामला जिलाधीश हिसार के पास वास्ते मुनासिब कार्यवाही के भेज दिया। अब इस संबन्ध में सरकारने यह निश्चय किया कि उन टोडों पर कुछ भी न बनने दिया जावे। तथा इसका इकरारनामा लिखने को मालिक मकान को कह दिया गया है।

इस सम्बन्ध में संघ को जो अन्तिम पत्र कमिश्नर साहब अम्बाला का मिला है। वह निम्नलिखित है।

From

Khan Bahadur Mian Abdul Aziz. M. A. C. B. E..
Commissioner. Ambala Division.

To

The General Secretary,
The All India Digambar Jain Shastrarth,
Sangha, Ambala Cantt.

No. 4809 dated Ambala Cantt: the 3 October, 1934.

Sir

In continuation of my letter No. 1322, dated the 7th March. I have the honour to inform you that the Deputy Commissioner concerned has after inapecting the spot reported that the todas in question can have no appreciable effect upon the lighting of the Jain temple in Bhiwani and that their presence does not in itself constitute a nursance. The owner

of the beuilding has however been required by the Deputy Commissioner to execute an agreement undertaking not at any future time to efect another storey over that part of the toadas which overhangs the Mnnicipal land.

Attested　　　　　　　　　　　　　　　　I have etc.
Sd........... Supdt,　　　　　　　　　　　Sd, A, Aziz,
Commissioner's office.　　　　　　　　　Commissioner
　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　RCS

क्वीन्स कालिज में जैन कोर्स

यू० पी० सरकार ने स्वीकृति देदी

क्वींस कालिज यू० पी० सरकार का संस्कृत का एक प्रसिद्ध कालेज है। इसमें संस्कृत की पढ़ाई के साथ ही साथ संस्कृत में भिन्न भिन्न विषयों की परीक्षायें भी होती हैं। यू० पी में तो यह लासानी है ही किन्तु भारत में भी इसके समान प्रतिष्ठित अन्य कोई परीक्षालय नहीं है। यदि यों कह दिया जाय कि संस्कृत परीक्षालयों में इसका स्थान सबसे ऊंचा है तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है।

इसमें न्याय, वैशेषिक, साँख्य और वेदान्तादि सब ही दर्शनों में परीक्षायें होती थी किन्तु जैनदर्शन का उन परीक्षाओं में कोई स्थान नहीं था। कहने की आवश्यकता नहीं कि जैन दर्शन का अध्यापन या निरीक्षण तो दूर रहा इस कालेज में तो जैनियों को ब्राह्मण का वेष धारण करके पढ़ना पड़ा है। जिन्होंने ऐसा नहीं किया है वे इसमें स्थान नहीं पासके हैं। संघ को यह बात खटक रही थी। उसकी धारणा थी कि प्रस्तुत कालिज यू० पी० सरकार का है तथा यू० पी में जैनियों का भी स्थान कम नहीं है। अतः इस कालेज में भी जैन कोर्स को स्थान मिलना चाहिये।

संघ ने अपने आशय को कार्यान्वित करने के लिये मंत्री शिक्षा विभाग यू० पी० सरकार, डायरेक्टर महोदय शिक्षा विभाग यू० पी० सरकार और रजिस्ट्रार महोदय उक्त कालिज की सेवा में निवेदन पत्र भेजे। इस प्रार्थना पत्र को भेजे आज तक १॥ वर्ष का समय भी हुआ है। तब ही से इसके सम्बन्ध में एक उपसमिति बनाई। फिर उस समिति ने जैन दर्शनाचार्य और जैनदर्शन शास्त्री का कोर्स तैयार किया। इसके पश्चात इस कोर्स को फिर स्वीकृति के लिये यू० पी० सरकार के समक्ष उपस्थित किया गया। मुझे आज इस बात को सूचित करते हुए परम हर्ष होता है कि सरकार ने उसको स्वीकार कर लिया है। अब इसमें सन् १९३६ में परीक्षायें शुरू होजायगीं। क्वींस कालिज की नवीन नियमावली जून में प्रकाशित होने वाली है उसमें उसको भी कर दिया जायगा।

संघ को इसके सम्बन्ध में जो अन्तिम पत्र रजिस्ट्रार महोदय का मिला है। उसकी नकल मैं पाठकों के परिचय के लिये नीचे दिये देता हूं।

——:०:——

COPY

From

Dr. Mangal Deva Shastri, M. A , D. Phil. (Oxon).
Registrar,
Sanskrit College Examinations, U. P.
Benares.

To

The General Secretary,
All India Digambar Jain Shastrarth Sangha,
Ambala Cantt.

Dated Benares, the 6th December. 1934.

Sir;

With reference to the correspondence ending with this office letter No. R. 420, 11—5 dated August, 1933, I have the honour to say that Government have approved the courses in Jain Philosephy and litrature for the Shastri and Acharya Examinations, and to request you kindly to give publicity to the fact by communicating it to each centre of Jaina Dharma.

The first Examination, in Jain Sarshana, Shastri, I Year, will be held in 1935 and the prescribed courses of study will be published along witk the Niyamavali for the year 1936—1937, to be out about June next.

I have the honour to be,
Sir,
Your most obedient servant,
Sd. M. D. Shastri,
M. A. D. Phil.,
Registrar,
Sanskrit College Examinations,
United Provinces
Benares.

यहां मैं इस बात को प्रगट किये बिना नहीं रह सकता कि इस कार्य में उक्त कालेज के रजिस्ट्रार महोदय ने उल्लेखनीय प्रयत्न किया है जिसके लिये जैन समाज उनकी सदैव के लिये आभारी रहेगा।

निवेदक—
राजेन्द्रकुमार जैन, प्रधान मंत्री
भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ, अम्बाला छावनी।

सम्पादकीय टिप्पणियां

बधाई—स्व० श्रीमान् डिपुटी चंपतराय जी के पौत्र और स्व० श्रीमान बा० नवलकिशोर जी के सुपुत्र श्रीमान बा० लक्ष्मीचन्द्र जी कानपुर विलायत से आई० सी० एस० परीक्षा पास करके आये हैं और अभी आप अलीगढ़ में ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट के पद पर नियत हुए हैं। इस सफलता के लिये आपको बधाई है। संभवतः इस परीक्षा में सफलता प्राप्त करने वाले आप द्वितीय दि० जैन युवक हैं। आपके पितामह ने दि० जैन महा सभा की नीव डाली थी आपके पिता जी महासभा के कोषाध्यक्ष रहे थे। इसी प्रकार आप भी उच्चपदासीन होते हुए भी धार्मिक जीवन और समाज सेवा से विरक्त न रहेंगे और स्व० श्रीमान् जुगमंदिरलाल जी वैरिष्टर के समान अपने नाम के साथ 'जैन' शब्द लगाते रहेंगे ऐसी आशा है।

शोक—कोल्हापुर निवासी श्रीमान सेठ भूपाल अप्पा जी जिरगे एक व्यापारी, सम्पन्न, उदारचित्त महानुभाव थे आपने अपने न्यायोपार्जित द्रव्य में से लगभग दोलाख रुपये दान किये थे। श्रीमान् भट्टारक लक्ष्मीसेन जी के मठ में "जैन सिद्धान्त विद्यालय" खोला था। पता नहीं अब वह किस दशा में है। आप सरल सज्जन महानु-भाव थे। कराल काल ने २ दिसंबर के दिन आपको सदा के लिये दृष्टि से ओझल कर दिया है। आपका आत्मा शान्तिलाभ करे। ऐसी भावना है।

शोक—उदगांव (बेलगांव) निवासी श्रीमान् पं० अप्पा शास्त्री एक अच्छे विद्वान थे। मंत्र शास्त्र, क्रियाकांड में उनका प्रमुख स्थान था उपाध्यायों में अग्रणी थे। गत कार्तिक वदी १३ को आपका देहावसान हो गया है आपके वियोग से जैन समाज का एक रत्न लुप्त हो गया है आपका अमर आत्मा शान्ति लाभ करे ऐसी कामना है।

—अजितकुमार जैन।

समाचार

सिवनी में रजत रथोत्सव—सिवनी दि० जैन पंचायत ने एक विशाल, बहुमूल्य रजत रथ बड़ी मोटर पर निर्माण कराया है इसका ता: २५-२६-२७ दिसम्बर को बड़े समारोह के साथ रथोत्सव होगा इसी समय स्थानीय सभाओं के अधिवेशन भी होंगे। इस वर्ष रथोत्सव का खर्च स० सिं० दीपचन्द्र जी ने देना स्वीकार किया है। ऐसे सुअवसर पर समाज के मान्य विद्वानों तथा प्रत्येक महानुभावों से निवेदन है कि इस धार्मिक कार्य में सम्मिलित होकर अमित पुण्य संचय करें।

श्रीमन्त सेठ विरधीचन्द्र
अ० सेक्रेटरी दि० पंचायत सिवनी।

समाचार

लन्दन के मेजर रेमाण्ड फिलिप्स ने एक ऐसा आविष्कार किया है कि विचार शक्ति द्वारा ही रेलगाड़ी चलायी जा सकेगी। विचार शक्ति द्वारा आप एक ऐसी ज्योति पैदा करते हैं कि इसी के बल पर गाड़ी चलने लगती है। इसके द्वारा गाड़ी की गति भी रोकी जा सकेगी।

जर्मनी में एक ऐसा ग्रामोफोन तैयार किया गया है कि इसकी आवाज कानों से नहीं बल्कि दाँतों द्वारा सुनी जा सकेगी आवाज बिजली द्वारा पहुंचायी जाती है। बज्र बहरा व्यक्ति भी इस आवाज को अच्छी तरह सुन सकता है। खोपड़ी, ठुड्डी अथवा दांतों द्वारा यह आवाज स्पष्टतया सुनी जाती है।

जर्मनी में २४ नवम्बर सन् १९३३ को व्यभिचार और बलात्कार के अपराधियों को नपुंसक बना देने का एक कानून जारी हुआ था। उसके अनुसार अबतक १११ आदमियों को नपुंसक बना दिया गया है।

डार्चेस्टर के एक प्राचीन खण्डहर में एक नर कङ्काल मिला है जिसके सम्बन्ध में पुरातत्वविदों का कहना है कि वह दो हजार वर्ष पूर्व मरे हुए एक बच्चे का है। यह नर-कङ्काल जमीन में धँस गया था अब इसे खोदकर निकाला गया है।

लन्दन की खबर है कि वहां के एक पब्लिक स्कूल के ४ विद्यार्थियों ने गधों पर दुनियां की यात्रा करने का फैसला किया है।

कराची १ दिसम्बर—यहाँ एक आदमी की मुर्गी ने चार टांग और दो परों वाला बच्चा दिया। वह ४ घंटे जीवित रह कर मर गया। स्थानीय अजायबघर वालों ने उसे गलने सड़ने से बचा कर रक्खा है।

दतिया रियासत में आश्चर्यजनक नर-कङ्काल जमीन के अन्दर मिला है।

कहा जाता है कि दतिया के राजा साहब शिकार खेलने गये थे। वहां कुछ किसानों ने आप को एक जगह दिखाई जहां पर जमीन खोदी गयी थी और अन्दर से एक ऐतिहासिक नर-कङ्काल मिला था। वह कङ्काल नापा गया तो लग भग ३१ फीट का निकला टांगें १० फीट लम्बी थीं।

राजा साहब उसे उठवा कर अपने महल ले गये।

एक युरोपियन विज्ञानवेत्ता ने कागज के ग्रामोफोन रिकार्ड बनाये हैं जो वर्तमान ग्रामोफोन रिकार्ड के समान बजते और आवाज निकालते हैं

अमेरिका जर्मनी में फिल्मों के द्वारा फौजों को तालीम दिये जाने का तजरुबा हो रहा है।

रूस के एक किसान ब.ट नामक ने कई शादियाँ करके १०७ बच्चे पैदा किये हैं। जिन में ८७ अभी तक जीवित हैं।

—सीमा प्रांत के नेता खान अब्दुलगफ्फारखाँ गिरफ्तार कर लिये गये हैं।

—अपने पिता श्री जानकीदास बोस की बीमारी का तार पाकर हवाई जहाज द्वारा श्री सुभाषचन्द्र कलकत्ता आये। उतरते ही आपको नजरबन्द कर दिया। शीघ्र आनेपर भी पिता के दर्शन न करपाये।

—*—

REGD. NO. L. 3459

उर्दू-अंग्रेज़ी जैन साहित्य !

यदि आप अंग्रेज़ी या उर्दू में जैन धर्म का अध्ययन या प्रचार करना चाहते हैं तो कृपया विद्यावारिधि बैरिस्टर चम्पतराय जी द्वारा रचित निम्न लिखित पुस्तकों को खरीदिये—

1.	The Key of Knowledge 3rd Edn.	Price Rs.	10 0 0
2.	The confluence of Opposites 2nd Edn.	,,	2 8 0
3.	The Jain Law.	,,	7 8 0
4.	What is Jainism (Essays and Addresses)	,,	2 0 0
5.	The Practical Dharma 2nd Edn.	,,	1 8 0
6.	The Sanyas Dharma	,,	1 8 0
7.	The House Holders Dharma	,,	0 12 0
8.	Jain Psychology.	,,	1 0 0
9.	Faith, Knowledge, and Conduct.	,,	1 8 0
10.	The Jain Puja. (with Hindi Sanskrit Padaya)	,,	0 8 0
11.	Rishabh Deo—The Founder of Jainism	,,	4 8 0
12.	,, (Ordinary Bindiug)	,,	3 0 0
13	Jainism, Christianity and Science.	,,	3 6 0
14.	Lifting of the Veil.	,,	3 6 0
15.	,, (Ordinary Binding)	,,	2 0 0
16.	Jainism and World Problems.	,,	1 0 0
17.	Right Solution.	,,	0 4 0
18.	Glimpses of a Hidden Sciene in orignal Christian Teachings.	,,	0 4 0
19.	Jaina Psychology.	,,	0 4 0
20.	Jaina Logic or Nyaya.	,,	0 2 0
21.	Jaina Penance.	,,	0 2 0
२२	जवाहराते इस्लाम प्रथम भाग उर्दू	,,	० ८ ०
२३	जवाहराते इस्लाम दूसरा भाग उर्दू	,,	० ८ ०
२४	इत्तहादुल मुखालफ़ीन उर्दू	,,	० १ ०
२५	जैन ला	,,	१ ० ०
२६	आत्मिक मनोविज्ञान	,,	० ८ ०
२७	श्रद्धा ज्ञान और चारित्र	,,	० ८ ०

विशेष के लिये कृपया पत्र लिखिये।

सब प्रकार के पत्र व्यवहार का पता—

मैनेजर—दि० जैन शास्त्रार्थ संघ, अम्बाला-छावनी।

अजितकुमार जैन ने "अकलंक प्रिन्टिङ्ग प्रेस, मुलतान में छापकर प्रकाशित किया।

वर्ष २]　　　　१ जनवरी १९३५ ई०　　　　[अंक १२

ॐ

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुख-पत्र
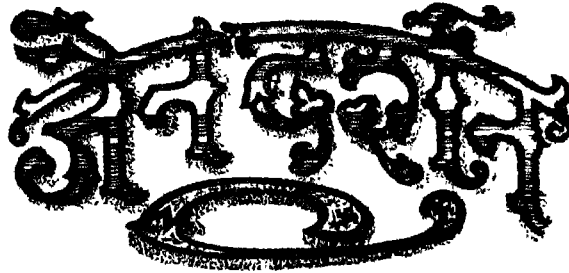
ऑन० सम्पादक—

पं० चैनसुखदास जैन न्यायतीर्थ

पं० अजितकुमार जैन शास्त्री　　　　पं० कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री

स्याद्वादांक पर सम्मति

बाबू कामताप्रसाद जी जैन, एम० आर० ए० एस०

सम्पादक 'वीर' और 'सुदर्शन'

'स्याद्वादांक' अपने विषय का अनूठा और श्रेष्ठ है। ज्ञान चर्चा का समाज में प्रायः अभाव होगया था, यह अंक उस चर्चा को पुनर्जीवन प्रदान करने के लिये एक प्रशंसनीय उद्योग है। इसके लिये आप धन्यवाद के पात्र हैं।

भवदीय—

कामताप्रसाद

इस स्याद्वादांक की थोड़ी प्रतियां शेष रह गई हैं, जो महानुभाव वर्ष २ अंक १ से ग्राहक बनेंगे उन्हें यह अपूर्व सचित्र विशेषांक मुफ्त दिया जायगा। अतः ग्राहक बनने की शीघ्रता कीजियेगा।

—प्रकाशक

एक वर्ष का मूल्य ३)　　　　इस अंक का मूल्य ≡)

जैन समाचार

श्री दि० जैन महापाठशाला जयपुर

इस पाठशाला का प्रबन्ध जब से नवीन कमेटी के हाथ में आया है तभी से पाठशाला में उपाध्याय आचार्य न्यायतीर्थ आदि संस्कृत भाषा धर्म शास्त्र उच्च कक्षाओं की पढ़ाई होने लगी है विद्यार्थी दूने हो गये हैं तथा आर्थिक आय भी बढ़ गई है इस उन्नति से समाजहितैषी महानुभावों को हर्ष होना चाहिये।

किन्तु कुछ महानुभावों ने जोकि अपने आप को समाज नेता मानते हैं कोशिश करके राज्य की ओर से मिलने वाली मासिक सहायता बंद करादी है। इसके सिवाय भिन्न भिन्न महानुभावों से भी सहायता बंद कराने का उद्योग किया। इस तरह उनको शिक्षित बनाने वाली पाठशाला के लिये उन्होंने उपकार प्रदर्शन किया है। किन्तु फिर भी वे पाठशाला की प्रगति न रोक सके।

राज्य के शिक्षा विभाग के डायरेक्टर तथा एजूकेशन मिम्बर महोदय से निवेदन है कि वे पाठशाला की सहायता चालू कराकर शिक्षा प्रचार श्रेय प्राप्त करें।

—माणिकचन्द भौंसा (जयपुर

तारीखें बदलीं— रोहतक में जो रथयात्रा महोत्सव होने वाला था उसकी तारीख बदलकर अब ता० ९ से १३ जनवरी निश्चित हुई है।

लश्कर—कुछ उत्साही नवयुवकों ने जैन ड्रामेटिक क्लब की स्थापना की है जिसका उद्देश्य नाटक द्वारा समाजमें शिक्षा का प्रचार करना है।

पटना—(मधुबनी) में १६ ता० के सबेरे एक अद्भुत दृश्य नजर आया। जगह २ कुओं और तालाबों में पानी घटने और बढ़ने लगा।

बहावलपुर—यहां के नवाब सा० ने आज्ञा निकाली है कि सम्पूर्ण राजकर्मचारियों आफिस आते समय तुर्की टोपी पहनकर आना चाहिये।

फिरोजाबाद—से लोक मित्र नामक मासिक पत्र पं० सुरेन्द्र चन्द्र जैन वीर के सम्पादकत्व में जनवरी से प्रकाशित होगा।

भूल सुधार—गतांक में जो लश्कर का समाचार छपा है उसमें चार मैडल दि० जैन बघेरवाल समाज ने दिये ऐसा होना चाहिये।

'वैद्य' गत कई मास से सम्पादक जी का स्वास्थ्य खराब होने के कारण बन्द था। अब 'वैद्य' के पुनः प्रकाशन का आयोजन किया जा रहा है आशा है अब १० वां अंक (जोड़ाङ्क) फरवरी मास के प्रथम सप्ताह में पाठकों की सेवा में पहुंच जावेगा।

वैद्य शंकरलाल जी सम्पादक 'वैद्य' की स्मृति में ३ मास तक "वैद्य" के पिछले वर्ष के फायलों में से कोई सा भी एक फायल विद्यार्थी धर्मार्थ औषधालय और वाचनालयों को केवल डाक महसूल के लिये।-) के टिकट भेजने पर बिना मूल्य दिया जावेगा।

व्यवस्थापक-वैद्य
मुरादाबाद
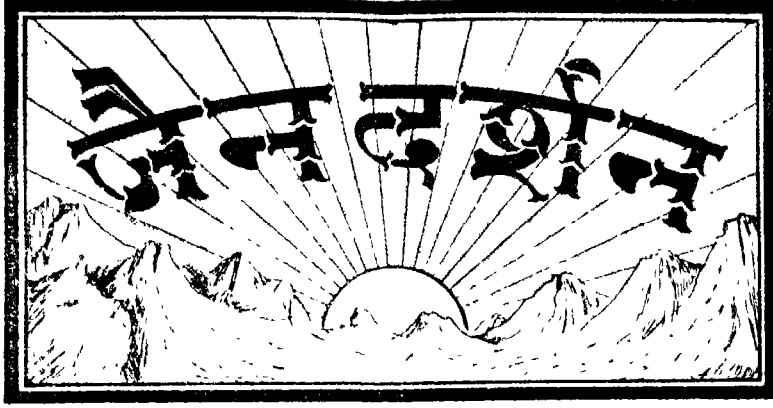
श्री अकलंकदेवाय नमः

श्री जैनदर्शनमिति प्रथितोग्ररश्मिर्भर्म्मीभवन्निखिलदर्शनपक्षदोषः,
स्याद्वादभानुकलितो बुधचक्रवन्द्यो भिन्द्यन्तमो विमनिजं विजयाय भूयात्

वर्ष २ | श्री पौष वदी ११—मंगलवार श्री वीर सं० २४६१ | अङ्क १२

निर्वाण।

(१)

चरमोद्देश्य मनुज जीवन का, तुझे बताते हे निर्वाण!
पर कैसा है रूप तुम्हारा, और कहां है तेरा स्थान?

कोई कहता आत्म-नाश से-
बनता तेरा रूप विचित्र।
कोई आत्मस्वरूप बतलाता-
तेरा सुन्दर पावन-चित्र। २

कोई कहता ब्रह्मरूप में-
लय होजाना है निर्वाण।
सप्तत्रय दुख-ध्वंस मुक्ति को-
बतलाता कोई मतिमान। ३

(४)

आत्म-विशेष गुणोंका अंतिम-ध्वंस मुक्ति कोई कहता
बतलाता कोई जब मुक्ति-विष्णु-निकट मानव रहता।

(५)

आदि विविध अति जटिल समस्या-पराभूत है तेरा तथ्य
किंतु मुक्ति कहलाती है जब-पालेते हम अन्तिम लक्ष्य।

(६)

यदि होता प्रत्यक्ष तुम्हारा-
रूप मनोहर हे अम्लान!
क्यों मुमुक्षु दुविधा में पड़ते,
क्यों होता मत-भेद-विधान।

(७)

निःश्रेयस अपवर्ग मुक्ति-
निर्वाण आदि सब तेरे नाम।
मत विभिन्नता को बतलाते।
सर्वाहित हे लोक ललाम।

(८)

विचरमान तत्वज्ञ योगियों का,—वासस्थल हे सुखधाम!
बनो शीघ्र क्रीड़ा-स्थल मेरे, सदा कोटिशः तुम्हें प्रणाम।

—चैनसुखदास जैन

निर्वाण-सिद्धान्त

(लेखक—पं० श्रीप्रकाश जैन, न्यायतीर्थ, जयपुर)

पूर्णत्व के लिये स्फूर्तिमान होना जीव का स्वभाव है। छोटे-से-छोटे प्राणी भी अपने विकास के लिये उद्यत रहते हैं। संसार में कोई ही ऐसा जीव होगा जो अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति न चाहता हो। प्रत्येक आत्मा अपनी त्रुटियों और न्यूनताओं से उत्पन्न हुए दुःख से छुटकारा चाहता है, अपनी कमजोरियों का अनुभव कर उन्हें दूर करने की चेष्टा करता है। यही प्रयत्न किसी भी जीव के उत्थान या विकास का प्रधान कारण है। इसे ही अभ्युदय का आविष्कारण या मूलस्रोत कहना चाहिये। निर्वाण भी उत्कृष्ट अभ्युदय या विकास की चरमसीमा का ही नामान्तर है।

निर्वाण ही को मुक्ति, मोक्ष, अपवर्ग निःश्रेयस कैवल्य आदि कहते हैं। यही जीव का वास्तविक अभ्युदय है। ज्यों-ज्यों ज्ञान का उत्कर्ष होता जाता है, त्यों-त्यों जीव अधिक समुन्नत बनता जाता है, अपनी न्यूनताओं की बहुत कुछ पूर्ति कर लेता है। यही कारण है जिससे उत्तरोत्तर विशेष ज्ञान वाले प्राणी अधिक विकसित देखे जाते हैं। तथापि इसमें एक विशेषता है। उत्तरोत्तर विकसित योनियों में जीव का बहुत कुछ उत्थान होजाता है, उसके ज्ञान का भी विकास होजाता है, किन्तु उसकी आवश्यकतायें बहुत बढ़ जाती हैं। इसका कारण यह कि ज्यों ही प्राणी अपनी पूर्व की न्यूनता और आवश्यकताओं को अपनी कमी समझ कर उनकी पूर्ति के लिये सयत्न होता है और अपने प्रयत्न में सफल होजाता है त्यों ही उसे अपने में नवीन त्रुटियां दिखाई देने लगती हैं और उनकी आवश्यकतायें भी बढ़ जाती हैं। यही क्रम चरम विकास तक चलता रहता है। जैसे एक निर्धन पहले तो कुछ द्रव्य प्राप्ति की ही इच्छा करता है, किन्तु ज्यों ही उसके पास कुछ धन सञ्चित होता है, वह उसे उत्तरोत्तर बढ़ाने की ही चिन्ता करता है, कभी भी तृप्त नहीं होता वैसे ही जीव भी जब निम्नतम योनि में रहता है तब वहां न्यूनताओं की पूर्ति चाहता है और ज्यों ही कुछ उन्नत बन जाता है उत्तरोत्तर अपने उत्थान की आकांक्षा रखता है, जब तक पूर्ण विकसित नहीं हो जाता।

जैन शास्त्रानुसार सूक्ष्म निगोतिया लब्धिअपर्याप्तक अवस्था जीव की निम्नतम दशा—आत्यन्तिक पतन है। इस योनि में जीव सब प्रकार से अस्वतन्त्र रहता है, प्रायः उसकी सब कुछ सम्पत्ति छिन जाती है। जहां उसकी ज्ञान शक्ति बिलकुल कम हो जाती है, वहां उसका शारीरिक पतन भी अत्यधिक हो जाता है। यद्यपि जीव शक्ति से अनन्त ज्ञानादि गुण विशिष्ट माना गया है, तथापि इस अवस्था में उसकी सब शक्तियां अप्रकट रहती हैं। इसके अतिरिक्त अन्य योनियों में जीव का विकास होता रहता है। मनुष्य पर्याय की प्राप्ति के पूर्व जीव को स्वतन्त्रता मिलती है, पर उसकी सामर्थ्य को ध्यान में

रखकर हम कह सकते हैं कि बहुत कम। मनुष्य-योनि जीव के उत्थान के लिये सब से अच्छा साधन है। यद्यपि इसमें जन्म लेनेवाला प्रत्येक प्राणी पूर्ण नहीं होता तथापि पूर्ण हो सकने की सामर्थ्य रखता है और पूर्ण बन भी सकता है। इस जीवन में उसे ऐसे साधन प्राप्त होते हैं, जिनका यदि वह सदुपयोग करे तो अपना चरम विकास कर सकता है। मनुष्य की ज्ञान शक्ति इसका सब से अच्छा प्रमाण है।

अपनी शक्ति का सदुपयोग या दुरुपयोग करना जीव के स्वाधीन है। अपने कर्तव्यों को भूलकर अपनी सामर्थ्य की उपेक्षा कर और निंद्य-कर्मों में प्रवृत्त होकर अपने को क्षुद्रकीट बना लेना, अपना सर्वस्व लुटा देना भी उसके हाथ में है और अपने कर्तव्यों का पालन कर अपने दायित्व को समझ कर, अपनी शक्ति का सदुपयोग कर, अपने को स्वतन्त्र बनालेना और संसार की यातनाओं के सन्ताप से अपना उद्धार कर लेना भी उसके लिये शक्य है। जो श्रेयोमार्ग को अपनाते हैं, उनका उद्धार हो जाता है, उन्हें संसार की यातनाओं से सन्तप्त नहीं होना पड़ता। जो प्रेयोमार्ग को ग्रहण करते हैं, वे संकटों की दलदल में फंस जाते हैं, उनका कभी उद्धार नहीं होता। पहला मार्ग परिणाम में सुखकर होता हुआ भी प्रारंभ में कठिन है, दुःसाध्य है इस लिये सरल मार्ग को अपनाना चाहते हुए जल्दी से सुख प्राप्ति की अभिलाषा रखने वाले संसारी प्राणी उन्हें पसन्द नहीं करते दूसरा मार्ग परिणाम में कष्टप्रद है, आकांक्षाओं को बढ़ा देने वाला है, तो भी प्रारम्भ में उससे कुछ शान्ति का आभास मिल जाता है, इसलिये साधारण जीव इसी का अवलम्बन कर लेते हैं। बात यह है कि उत्तम कार्यों का बन पड़ना कठिन है और निन्द्य कर्म सहज बन जाते हैं। जो समझदार हैं वे कभी भूल पर भूल नहीं करते, हमेशा अपने उत्थान की ओर ही अग्रसर रहते हैं, और अपना उद्धार कर लेते हैं, पर खेद है इस संसार में ऐसे महापुरुष अधिक नहीं होते। अधिक जनता अज्ञान और मोह के कारण अपने हित को भूले हुए है, उसे अपने उद्धार की कुछ भी चिन्ता नहीं है। अपने उद्धार की बातें बनाने वाले, मोह-जाल से मुक्त हो जाने का परस्पर परामर्श करने वाले मनुष्य अधिक मिल सकते हैं, पर अपने विचारों को कार्यरूप में परिणत करने वाले तो अवश्य ही विरले हैं।

मनुष्य-जीवन का प्रधान उद्देश्य है 'अभ्युदय की प्राप्ति'। यह अभ्युदय सम्पूर्ण योनियों में ही जीव का प्रधान-उद्देश्य रहता है, किन्तु मनुष्य जीवन में इसमें और भी विशेषता आ जाती है। इसका कारण यह है कि अन्य योनियों में ज्ञान इतना विकसित नहीं होता जिससे जीव अपने वास्तविक कर्तव्य को पहचान सके। अस्तु इस अभ्युदय की प्राप्ति के लिये ही प्राणी अहर्निशि पुरुषार्थ करता है। यह अभ्युदय चाहे इस लोक का हो चाहे परलोक का। इस लोक का अभ्युदय स्थायी नहीं होता, थोड़े ही समय में नष्ट हो जाता है, पर परलोक का अभ्युदय स्थायी और अनन्त है—ऐसा दर्शन शास्त्रियों ने माना

है, यही जीव का वास्तविक कल्याण है, इसे ही निःश्रेयस कहते हैं। यह आत्मा को स्थायी सन्तोष प्रदान करता है, एकबार प्राप्त होजाने पर फिर कभी नहीं जाता। जीव का चरम विकास होजाने पर ही यह अवस्था प्राप्त होती है। इसमें जीव सारे दुःखों से मुक्त होजाता है।

यह मुक्ति या निर्वाण क्या है? इसके सम्बन्ध में हम लोग ठीक-ठीक कुछ भी नहीं कह सकते भारतीय दार्शनिकों ने इस विषय पर बहुत अधिक विचार किया है, प्राचीनकाल के दार्शनिकों में यह एक अच्छे वाद-विवाद का विषय रहा है। मृत्यु के बादमें जीव की अवस्था का प्रत्यक्ष नहीं होता, अतः निर्वाण के सम्बन्धमें विचार परोक्ष प्रमाण का विषय है। जितने भी दार्शनिक हुए उन्होंने अनुमान लगाया है और अनुभव से काम चलाया है। अनुमान प्रत्यक्ष पूर्वक होता है, प्रत्यक्ष की सत्यता पर ही अनुभव की समीचीनता निर्भर रहती है। परन्तु इस सम्बन्ध में हम लोगों का प्रत्यक्ष कुछ भी महत्व नहीं रखता। जब प्राचीन दार्शनिकों के अन्दाजे सत्य हैं या मिथ्या—इसका निर्णय करने में भी हम असमर्थ हैं। दार्शनिकों के परस्पर विरुद्ध मत-भेदों ने इस विषय को आवश्यकता से अधिक दुरवबोध और विवाद ग्रस्त बना दिया है। अब तो निर्वाण कल्पित है या वास्तविक, मुक्ति तत्व कोई पदार्थ है या नहीं, यह निश्चय कर लेना भी बहुत कठिन होगया है। दिव्यज्ञानी ही इसकी वास्तविकता को जान सकते हैं।

चार्वाक का कहना है—स्वतन्त्रता से रहना या मरजाना ही मोक्ष है*। शून्यवादी (माध्यमिक बौद्ध) मानते हैं:—आत्म-सन्तति का उच्छेद हो जाना, दीपक के समान बुझ जाना या शून्य में मिल जाना ही मोक्ष है ‡।

विज्ञानाद्वैतवादी योगाचार बौद्ध (और वैभाषिक तथा सौत्रान्तिक भी) मानते हैं—भावना के प्रकर्ष से दुःख और वासनाओं के नष्ट होजाने पर विषयाकार उपद्रव के अभाव से (विषयोन्मुख संकल्पों के न होने से) विशुद्ध विज्ञान-सन्तति का उदय (उत्पत्ति) हो जाना ही मोक्ष है §। प्राच्य नैयायिक मानते हैं:—प्राग-भाव के असमान कालीन दुःख का ध्वंस हो जाना, अर्थात् जिस दुःख के नष्ट होजाने पर दुःख का प्रागभाव न रहे, उनका आत्यन्तिक विनाश हो जाय वह ही मुक्ति है ÷। अथवा इक्कीस प्रकार के दुःखों (छह इन्द्रियां, छह इन्द्रियों के विषय, छह बुद्धियां—पदार्थों के ज्ञान, सुख, दुःख और शरीर ※) का आत्यन्तिक विनाश

* "स्वातन्त्र्येण स्थितिर्मरणं वा मुक्तिरिति चार्वाकाः।"

‡ "आत्मोच्छेदो मोक्ष इति शून्यवादिनो माध्यमिकाः।"

§ "भावनाप्रचयान्निखिल दुःखवासनोच्छित्तौ विषयाकारोपप्लवाभावेन विशुद्धविज्ञानसन्तानोदयो मोक्ष इति योगाचार प्रमुखाः सर्वे बौद्धाः।"

÷ "स्वसमानाधिकरणदुःखप्रागभावा समानकालीन दुःखध्वंसः मुक्तिः।"

※ दुःखानुषक्तित्वाच्च शरीरादौ गौणदुःखत्वम्।" अर्थात् दुःख का कारण होने के कारण शरीर को गौण दुःख कहा गया है।

होजाना ही मुक्ति है १ । वैशेषिक मानते हैं—बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म और संस्कार इन नौ विशेष गुणों का आत्मा से संसर्ग छूट जाना ही मोक्ष है २ । मीमांसक मानते हैं:—स्वर्ग की प्राप्ति होजाना ही मोक्ष है ३ । भट्ट मानते हैं:—ज्ञान और कर्म के समुच्चय से (नित्य नैमेत्तिक यज्ञादि अनुष्ठान करने से) अविनश्वर सुख प्रकट होजाना ही मुक्ति है ४ । प्राभाकर मानते हैं:—आत्म-ज्ञान होजाने पर वैदिक कर्मों के अनुष्ठान से (वैदिक क्रिया-कांड के करने से) धर्म और अधर्म का नाश हो जाने पर शरीर और इन्द्रिय आदि का अत्यन्त विनाश हो जाना ही मुक्ति है ५ । सांख्य मानते हैं:—प्रकृति और पुरुष के भेद-ज्ञान से अज्ञान के दूर होजाने पर तीन प्रकार के दुःखों (आधिदैविक ६ आधिभौतिक ७ और आध्यात्मिक ८) के मिट जाने पर उदासीनता (राग-द्वेष का अभाव) का हो जाना ही मुक्ति है ९ । पातंजल-योग-मानते हैं-अविद्या १० अस्मिता ११ राग १२ द्वेष १३ अभिनिवेश १४ रूप पांच प्रकार के क्लेशों के तथा जाति, (जन्म) आयु और भोग रूप बन्ध के नष्ट हो जाने पर स्वतन्त्रता की प्राप्ति होजाना ही मोक्ष है * । पाशुपत मानते हैं:—पशुपति (शिव, महेश्वर) के पूजनादिक से जीव रूप पशु का बन्धन रूप (सांसारिक बन्धन स्वरूप) पाश से छुटकारा होजाने पर हमेशा पशुपति के पास रहना ही मोक्ष है ‡ । वैष्णव मानते हैं:—पञ्चरात्र आदि शास्त्रों में वर्णित विधि से वैष्णव-धर्म का आचरण करने से विष्णु की कृपा होने पर विष्णु-लोक में रहना ही मुक्ति

१ मोक्षस्त्वात्यन्तिकैकविंशतिदुःखनिवृत्तिः ।

२ बुद्ध्यादिवैशेषिकगुणोच्छेदः पुरुषस्यमोक्ष ।

३ स्वर्गादिरेव मुक्तिरिति मीमांसकाः ।

४ ज्ञानकर्मसमुच्चयान्नित्यसुखाभिव्यक्तिरिति भट्टपादाः ।

५ आत्मज्ञानपूर्वकवैदिककर्मानुष्ठानाद्धर्माधर्मयोः क्षयेदेहेन्द्रियाद्यत्यन्तोच्छेद इति प्राभाकराः

६ शीत, उष्ण, वायु, वर्षा, विद्युत्पात आदि होने वाले दुःख को आधिदैविक कहते हैं ।

७ जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज इन चार प्रकार के प्राणियों के निमित्त से प्राप्त होनेवाला दुःख आधिभौतिक कहलाता है ।

८ शारीरिक (ज्वरादिरोग) और मानसिक (प्रियवियोग, अप्रिय-संयोग) दुःखों को आध्यात्मिक कहते हैं ।

९ प्रकृतिपुरुषविवेकज्ञानविवेकनिवृत्तौ त्रिविधदुःखनिरोधे औदासीन्यमिति सांख्याः ।

१० अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या । अर्थात्- विपरीत ज्ञान को अविद्या कहते हैं; अनित्य को नित्य, अपवित्र को पवित्र, दुःख को सुख और अनात्मा को आत्मा समझना अविद्या है ।

११ दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवाऽस्मिता-अर्थात्- दृकशक्ति और दर्शनशक्ति में भेद प्रतीति न होकर एकात्मता का ज्ञान होना अस्मिता है ।

१२ सुखानुशयीरागः" अर्थात्- सुख होने के पश्चात उस सुख की वासना राग है ।

१३ "दुःखानुशयी द्वेषः" अर्थात दुःख होने के पश्चात उस दुःख के प्रतिविरुद्ध भावना द्वेष है ।

१४ स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः । अर्थात मृत्यु का भय जो प्रत्येक प्राणी में स्वभाव से ही रहता है, अभिनिवेश है ।

* अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशरूपक्लेशपञ्चकस्य जात्यायुर्भोगरूपबन्धस्य च निवृत्तौ स्वातन्त्र्यप्राप्तिरिति पातञ्जलाः ।

‡ पशुपतिपूजनादिभिर्जीवरूपपशोर्बन्धनरूपपाशनिवृत्तौ नित्यं पशुपतिसमीपस्थितिरिति पाशुपताः ।

है ‡ । हैरण्यगर्भ मानते हैं:—पञ्चाग्नि (चारों दिशाओं में अपने चारों ओर चार अग्नियां और ऊपर सूर्य) विद्या आदि की उपासना से सूर्य आदि के मार्ग से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होजाना ही मोक्ष है * । एक दण्ड वेदान्ति मानते हैं:—"मैं ब्रह्म हूँ" इस प्रकार जीव और ब्रह्म का अभेदरूप से साक्षात्कार होजाने से अविद्या की निवृत्ति होजाने पर सम्पूर्ण उपाधियों से रहित आत्मा का शुद्ध स्वरूप से अवस्थान ही मोक्ष है † । त्रिदण्डि वेदान्ति मानते हैं:—जीव का ब्रह्म से भेद और अभेद श्रुति में कहा गया है उसमें ज्ञान और कर्म के समुदाय के अभ्यास से कर्म की वाञ्छा सहित भेदांश की निवृत्ति हो जाने पर अपने कारण ब्रह्म में लय होजाना ही मुक्ति है () । कितने ही ऐसा भी मानते हैं कि समुद्रके निस्तरङ्गत्व और सतरंगत्वके समान ब्रह्मकी निर्विकार और सविकार अवस्थाएं वेद सेसिद्ध हैं । इनमें ज्ञान और कर्म के अभ्यास से सविकार अवस्था का परित्याग होकर जीव के निर्विकार अवस्था की प्राप्ति होजाना ही मोक्ष है १ । विशिष्टाद्वैतवादी रामानुज के अनुयायियों का सिद्धान्त है कि—सृष्टि कर्तृत्वादि गुणों को छोड़ कर—संसार का बनाना आदि जो विशेष गुण केवल ईश्वर में ही रहते हैं उनके अतिरिक्त—सर्वज्ञत्व आदि सम्पूर्ण श्रेष्ठगुणों की प्राप्ति पूर्वक परमेश्वर के स्वरूप का अनुभव होजाना ही मोक्ष है २ । द्वैतवादी माध्व के अनुयायियों का मत है कि—जगतकर्तृत्व, लक्ष्मीपतित्व और श्रीवत्स धर्म को छोड़कर भगवान के ज्ञान के आधीन दुःखों से रहित सुख ही मोक्ष है ३ । शुद्ध द्वैतवादी वल्लभ के अनुयायी मानते हैं कि—गोलोक में श्री कृष्ण के साथ में रासलीलादि क्रीड़ाओं का अनुभव कर लेना ही मोक्ष है ४ । शब्दाद्वैतवादि वैयाकरणों का कहना है कि—चार

‡ पञ्चरात्रादिशास्त्ररीत्या वैष्णवधर्मानुष्ठानलब्धविष्णुप्रसादस्य विष्णुलोकस्थितिरिति वैष्णवाः ।

* पञ्चाग्निविद्याद्युपासनयार्चिरादिमार्गेण ब्रह्मलोकप्राप्तिरिति हैरण्यगर्भाः ।

† अहं ब्रह्मास्मीति जीवब्रह्माभेदसाक्षात्कारेणाविद्यानिवृत्तौ सर्वोपाधिरहितस्यात्मनः स्वस्वरूपेण स्थितिरित्येकदण्डिवेदान्तिन ।

() जीवस्य ब्रह्मणा सह भेदाभेदौ श्रुत्योच्यते तत्रज्ञानकर्मसमुच्चयाभ्यासेन कर्मवासनासहितभेदांशनिवृत्तौ कारणब्रह्मणि लय इति त्रिदण्डि-वेदान्तिनः ।

१ समुद्रस्यनिस्तरङ्गत्वसतरङ्गत्वे इव ब्रह्मणो निर्विकारत्वसविकारत्वे अवस्थे श्रुतिसिद्धे एव । तत्र ज्ञानकर्मसमुच्चयाभ्यासात्सविकारावस्थापरित्यागा जीवस्य निर्विकारावस्थाप्राप्तिरिति केचित् ।

२ जगत्कर्तृत्वं विहाय सर्वज्ञत्वादिनिखिलकल्याणगुणप्राप्तिपूर्वको वासुदेवयाथात्म्यानुभवो मोक्ष इति विशिष्टाद्वैतवादिनो रामानुजाया ।

३ जगत्कर्तृत्वलक्ष्मीपतित्वश्रीवत्सवर्जं भगवज्ज्ञानायत्तनिर्दुःखपूर्णसुखं मोक्ष इति द्वैतवादिनो माध्वाः ।

४ गोलोके श्रीकृष्णेन सह रासलीलाद्यनुभवो मोक्ष इति शुद्ध द्वैतवादिनो वल्लभीयाः ।

प्रकार की वाणियों (परा () पश्यन्ति* मध्यमा† और वैखरी ‡) में ब्रह्म परक परा वाणी का का साक्षात्कार कर लेना ही मोक्ष है१ । रसेश्वरवादी कहते हैं—पारद् (औषधि विशेष) के सेवन से बुढ़ापा आदि न आना ही मोक्ष है २ । कितने ही मानते हैं:—स्थान विशेष (काशी आदि) में मरने से ही मुक्ति मिल जाती है । जैनों ने माना है:—उस आत्यन्तिक अवस्था का नाम मोक्ष है, जिसमें आत्मा से सम्पूर्ण कर्म-मल-कलंक के हट जाने पर अचिंत्य और स्वाभाविक ज्ञानादि गुण के प्रकट होजाने के साथ अव्याबाध सुख भी प्रकट होजाता है ३ ।

—अपूर्ण
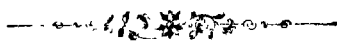
पुनर्जन्म

[गतांक से आगे]

जयपुर में घी वालों के रास्ते, दड़ापर, पचासों वर्षों से एक सांप के रोगों का इलाज करने वालों का एक अखाड़ा (पार्टी या दल) है । यहां एकबार एक रोगी, जो मरणासन्न था—जिसमें हृद्गति मात्र अवशिष्ट थी, लाया गया । विशेषज्ञों ने उसकी परीक्षा की । बहुमत इसी ओर रहा कि उसका शीघ्रतम उपचार करना चाहिये । यह मत निश्चित होते ही बन्दूकें मंगवाई गईं । तत्काल पास के लोगों से कई बन्दूकें प्राप्त हुईं । रोगी के कान के पास आवाजें करने की विशेषज्ञों ने अनुमति दी । तदनुकूल कार्य प्रारम्भ हुआ । ४१ बार की आवाजें व्यर्थ हुईं । ४२वीं बार वह शरीर एकदम उछल पड़ा सांपने मैड ले लिया। इसका भी उपचार किया गया। रोगी सचेत हुआ, तब ठीक हाल जानने और रोगी को बचाने के लिये सांप को मंत्रादि से रोगी के शरीर में बुलाया गया। सांप के शरीर में आजाने पर, उससे सब यथावत् समाचार पूछे गये । सांप ने उत्तर दिया—मैं जैनी हूं । नाम बख्तावरलाल है। नित्य प्रात अपने चैत्यालय के दर्शन करता हूं और भाऊजी मन्दिर में शास्त्र सुनता हूं । (शास्त्र सुनते समय जहां वह बैठा

() आत्मदर्शनरूप, * अर्थदर्शनरूप, † अन्तरालापरूप, ‡ वाणीरूप ।

१. परा पश्यन्ती मध्यमा वैखरीति चतुर्विधवाचि ब्रह्मरूपपरादर्शनमिति शाब्दिकाः ।

२. पारदसेवनेन जरादिराहित्यमिति रसेश्वरवादिनः ।

३ निरवशेषनिराकृतकर्ममलकलङ्कस्याऽशरीरस्याऽऽत्मनोऽचिन्त्यस्वाभाविकज्ञानादिगुणमव्याबाधसुखमात्यंतिकमवस्थान्तरं मोक्ष इति ।

करता था, उसका भी उसने संकेत किया और कहा मैं वहां किसी को भी नहीं बैठने देता यह हमारा नौकर है। मकानों की सफ़ाई रखना इसका काम है। मैंने इसे कईबार सूचित कर दिया—भाई, कोठे में एक चकचूंदर मरी पड़ी है, इससे वह स्थान अपवित्र होरहा है, तुम वहां सफाई करदो। यह समझता था, क्या होता है, कभी देखा जायगा। इसी कारण मैं ने इसके साथ ऐसा किया हैं। मेरा इससे और कोई बैर नहीं हैं। अखाड़े वालों के समझाने पर उसने रोगी को अच्छा बना दिया।

सांप ने अपने पुराने मित्र (बच्चूलाल जी छावड़ा) को भी बुलाया। दोनों मित्र परस्पर गलेमें हाथ डाल कर विशेष प्रेम से मिले। यहां तक कि दोनों के आनन्द आश्रुओं की धारा बह चली। सांप ने अपने पुत्र से भी बहुत कुछ बातें कहीं। जिनका लिखना यहां उपयुक्त नहीं।

इस अपूर्व घटनाओं को देखकर लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। किन्तु आज-कल के से तार्किकों की तब भी कमी नहीं थी। कितने ही लोग कहने लगे, यह सब दोष है। हम तो तब माने जब यह प्रत्यक्ष दिखाई दे। इतनी बात के सुनते ही सांप ने उत्तर दिया—जिन्हें मुझ में सन्देह हो और जो यह बात झूंठ समझता हो वह घर पर आवे, मैं उनके सामने निकलूंगा, नीचे के कोठे में से निकल कर ऊपर माल में चला जाऊँगा। खास-खास आदमी देखने को गये, बात बिल्कुल सत्य निकली। क्या तब भी लोग पुनर्जन्मवाद का विरोध करेंगे ? हम ऐसी अनेक घटनाओं से परिचित हैं।

अब पुनर्जन्मवाद का प्रचार दिनोंदिन बढ़ रहा है। भारत में ही नहीं अन्यदेशवासी भी इसकी महत्ता समझने लगे हैं। योरुप में परलोक विद्या के अभ्यास के लिये अनेकों विद्वान् प्रयत्न कर रहे हैं। डाक्टर विलियम अल्फ्रेड वेलेस, सर विलियम क्रुक्स, सर आलिवर लाज, डाक्टर सर आर्थर कोनोन डायल आदि प्रतिष्ठित विद्वानों ने इस विद्या का अभ्यास कर इसे बड़े महत्व की वस्तु बनादी है। इन महानुभावों ने इसके सम्बन्ध में अनेक नवीन पुस्तकें भी निर्माण की हैं। इनके मुख्य विचार ये हैं।

(१) आत्मा का अस्तित्व शरीर से स्वतन्त्र है।

(२) उसकी क्षमताओं से विज्ञान अभी तक अनभिज्ञ है।

(३) वह हमारी इन्द्रियों के हस्तक्षेप के विना स्वतन्त्र रूपसे काम कर सकती है।

(४) प्रकृति में एक प्रकार के आत्मिक तत्व का अस्तित्व है, जो अभीतक हमें अलक्षित है।

(५) स्थूल शरीर के नाश के बाद आत्मा जीवित रहती है और मृत्यु के बाद वह अपना दूसरा जन्म ग्रहण कर सकती है।

(६) जीवित और मृतक की आत्माओं में आत्मिक संचारण होता है।

(७) परलोकगत आत्मा एक ऐसे स्वरूप और अवस्था में रहती है जिसका ज्ञान हमारी साधारण इन्द्रियाँ नहीं प्राप्त कर सकती हैं।

(८) किन्हीं अवस्थाओं में पड़कर जिसके ठीक स्वरूप का पता अभी तक नहीं लगा है, वे अपने आप जन्म ग्रहण करते हैं।

(९) ठीक विधि का अनुसरण करने से मृत

आत्माओं तक मनुष्य पहुंच सकता है।

इस विद्या के आचार्यों का कहना है परलोक विद्या के अभ्यासी प्रेतात्मा के उपसर्गों से पिड़ितों को नीरोग बना सकता है। इन लोगों ने प्रेतात्माओं से सम्भाषण और उनके फोटो आदि लेने की भी युक्तियां निकाली हैं। कुछ वर्ष पहले पेरिस में परलोक विद्या के विद्वानों की महासभा हुई थी। इसमें अनेक देशों के प्रतिनिधि थे। भारत की ओर से श्री० बी० डी० ऋषि सम्मिलित हुए थे। आपने एक जगह अपनी पत्नी का फोटो लिवाया, कईबार का प्रयास विफल हुआ, किन्तु अन्त में ठीक फोटो आगया अस्तु, लेख बहुत विस्तृत होगया है। चौथे हेतु भूतानन्वयनात् के सम्बन्ध में हम गये अंकों 'आत्म-तत्व' शीर्षक लेख में पर्याप्त लिख चुके हैं। अब अन्त में पुनर्जन्म उपयोगिता के सम्बन्ध में कुछ लिख हम अपने लेख को समाप्त करते हैं।

"पुनर्जन्म की भावना का मनुष्य के चरित्र निर्माण पर बहुत ऊंचा प्रभाव पड़ता है। जो देश और जाति इन सिद्धान्तों के रहस्य को भली भांति समझ सकती हैं, वह चिरकाल तक पतित होकर नहीं रह सकती। भारत वर्ष के क्रान्तिमय दिनों में पुनर्जन्म का सिद्धान्त अपना प्रभाव दिखावेगा।"

भगवान महावीर और अहिंसा

यूं तो संसार मांहि नित ही अनंते जीव
मरण को प्राप्त होय कोऊ पूछै नाहीं है।
नन्तानन्त-आवर्तन किये मोह मदिरा से
बार-बार जन्मो मरो कहा चतुराई है।
धन्य हैं ते भव्य जीव जन्म मृति नाहिं करैं
स्व-पर-कल्याण कर पावैं सिद्धताई है।
ऐसे ही श्री वीर प्रभु नित्य सुख प्राप्त करो
जगत के हित को अहिंसा बतलाई है।

मूढ जन भ्रान्तिवश कहते हैं कि भारत से
अहिंसा के वाद ने ही वीरता भगाई है।
विज्ञ समुदाय कहै—अहिंसा ही सार्व धर्म
जहां पूर्ण अहिंसा है वहीं वीरताई है।
भारत के पतन का हेतु मान द्वेष ही है
आपस में जूझ २ शक्ति को गमाई है।
यज्ञ मांहि होते थे हजारों मूँक पशु बली
अहिंसा के धरम ने वीरता सिखाई है।

दलीपसिंह कागजी, देहली।

———※———

श्रीराम जी आर्य से कुछ प्रश्न

आर्य मित्र वर्ष ३७ अंक ३८ के पृष्ठ १२ में आर्य समाज की इश्तहार ... का उत्तर रूप लेख प्रकाशित हुआ है इसमें आपने लिखा है कि पण्डित अजितकुमार जी को उचित तो यह था कि वे किसी आर्य विद्वान् की सेवा में रहकर वैदिक शास्त्रों का भली भांति अध्ययन कर लेते इत्यादि (आप भी तो वैदिक विद्वान ही हैं और-विद्वान्सोहि देवाः—इस मान्य श्रुति के अनुसार आप देवता सिद्ध होते हैं । देवता अनृत को छोड़ कर सत्य का ही व्यवहार करते हैं; इस लिये अन्ध श्रद्धा को छोड़ कर आप को सत्य का ही व्यवहार करना उचित है और चौथे नियम को भी ध्यान में रखिये । स्वामी दयानन्द जी ने वेद वा निजी प्रतिज्ञा तथा ऋषि प्रणाली विरुद्ध ही वेदार्थ किया है इस लिये सत्यासत्य के निर्णयार्थ वेद भाष्य के विषय में हमारी निम्न प्रकाशकाएं हैं—(१) मन्तव्य २ में लिखा है कि—वेदों की शाखा जोकि वेदों के व्याख्यान रूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रन्थ हैं उनको परतः प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इन में वेद विरुद्ध वचन हैं उनको अप्रमाण करता हूं तो जिस यजुर्वेद का स्वामी जी ने भाष्य किया है वह भी माध्यन्दिनीय शाखा होने से परतः प्रमाण अर्थात् ऋषिकृत ही सिद्ध होता है अब बतलाईये ? कि ईश्वर कृत होने से स्वतः प्रमाण चार वेद कौन से हैं ? ।

(२) स्वामी जी ने वेदों की ग्यारहसौ सत्ताईस शाखाएं बतलाई हैं सो इनके होने में प्रमाण क्या ? और मूल वृक्ष से शाखा भिन्न होती है या अभिन्न ? । यदि प्रतीकों के होने से ही आप शाखा भेद मानते हैं तो यजुर्वेद अध्याय ३४ मंत्र ५८ को पढ़िये ? और विचार कर उत्तर लिखिये ? ।

(३) स्वामी दयानन्द जी ने यजुर्वेद के पचीसवें अध्याय में मत्र भाष्य के ४८ मंत्र प्रकाशित किये हैं—सो इस अध्याय में अड़तालीस ही मंत्र हैं इसके न होने में प्रमाण क्या ? ।

(४) यजुर्वेद में कण्डिकाएं होती हैं और एक कण्डिका में कई २ मंत्र होते हैं फिर स्वामी जी ने एक ही मंत्र मान कर सीधा सा मंत्रार्थ कर दिया है—सो यह वेदानुकूल है या विरुद्ध ? और इसके सत्य होनेमें प्रमाण क्या ? ।

(५) ऋग्वेदादि भा० भूमिका पृष्ठ ३६३ में लिखा है कि—केवल मूल मंत्रों के अर्थानुकूल का अनुष्ठान और प्रतिकूल का परित्याग करना चाहिये क्योंकि जो २ मंत्रार्थ वेदोक्त हैं सो सब स्वतः प्रमाण रूप और ईश्वरोक्त कहे हुए हैं इत्यादि । लेख में जो मंत्रार्थ वेदोक्त है उसके अनुकूल ही यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये—तो स्वामी जी के चेलों को बतलाना चाहिये कि उन्होंने किस मूल वेद के मंत्रानुकूल वेदार्थ किया है और जब कि वेदार्थ वेदानुकूल ही नहीं तब यज्ञ के अनुष्ठान की तो बात ही क्या ? जरा प्रमाण सहित लिखिये ? ।

(६) स्वामी जीने करना या छोड़ना सब वेदानुकूल ही बतलाया है तो कृपा कर यह बतलाइये कि यज्ञपात्र और यज्ञोपवीत बनाने का विधान किस वेद मंत्र में लिखा है। प्रमाण सहित लिखिये अथवा वेदानुकूल की डींग मारना छोड़ दीजिये?

(७) आपने लेख में लिखा है कि हिन्दू संप्रदायों में भी हमको जैनी सम्प्रदाय इस कार्य में सबसे आगे दिखाई देता है इत्यादि। सो हिन्दू सम्प्रदायों में तो हिन्दू शब्द रूढ़ी है सार्थक नहीं। क्योंकि वेदानुकूल यज्ञादि कर्मों में हिंसा का विधान पाया जाता है। और जिन धार्मिक कार्यों में वेद विहित हिंसा का विधान है, ऐसे हिंसा के विधायक वेदों को जैनी नहीं मानते। तब हिन्दू सम्प्रदायों में जैनियों को शामिल करना आपका मिथ्या है या नहीं? लिखिए कि हिन्दू सम्प्रदायों में जैनी क्योंकर सम्मिलित हो सकते हैं?

(८) ईसाई या यवनों की पुस्तकों में जो हिंसा का विधान पाया जाता है वह सब वेदानुकूल ही है इसलिये उनका खण्डन करना मिथ्या है। यदि आप उनकी हिंसा आदि को वेद विरुद्ध समझते हैं तो प्रमाणों द्वारा सिद्ध करके दिखलाइये?

(९) त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः ३१-४। इस यजुर्वेद के प्रमाणानुसार ईश्वर के तीन हिस्से तो आकाश के बिना ही ऊपर अधर जा लटके। फिर सृष्टि की रचना किसने की और किस प्रकार की? और जब सृष्टि उत्पन्न ही नहीं हुई थी तब आप उसे सर्व व्यापक किस प्रकार सिद्ध करते हैं? प्रमाण सहित लिखिये अन्यथा ईश्वर जगत्कर्ता की डींग मारना छोड़िये।

(१०) स्वामी जी ने कहीं तीन और कहीं पाँच अनादि पदार्थ लिखे हैं। परन्तु 'नाभ्याआसीदन्तरिक्षं यजु ३१-१३। तस्माद्वा एतस्मादात्मनआकाशस्सम्भूतः तैत्तिरियोपनिषद्। इन दोनों प्रमाणों में आकाश की उत्पत्ति बतलाई है बिना आकाश के कोई भी पदार्थ स्थित नहीं रह सकता। इस कारण आकाश के अनादि सिद्ध न होने से तीन या पांच पदार्थों को अनादि मानना मिथ्या है। यदि आप आकाशादि को अनादि मानते हैं तो किसी वेदमन्त्र का प्रमाण लिखिये।

(११) सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास पृष्ठ २३२ में मनुष्याऋषयश्च ये - ततो मनुष्या अजायन्त — यह यजुर्वेद में लिखा है। सो ये दोनों ही मंत्रों के टुकड़े बनावटी हैं और यजुर्वेद में कहीं नहीं लिखे। यदि इनको सत्य समझते हैं तो सिद्ध करके दिखलाइये

(१२) आपने अमैथुनी सृष्टिसिद्ध करने के लिये चार मंत्र अथर्ववेद के लिखे हैं परन्तु अमैथुनी सृष्टि के अतिरिक्त वहां पर -उपसर्प-इन ऋचाओं में श्मशान स्थान को शलाकाओं या ईंटों से चिनना लिखा है। लिखिए अब आप अमैथुनी सृष्टि किस प्रकार सिद्ध करते हैं।

(१३) गप्पाष्टक हांकने वाले आपके ये शास्त्र शास्त्रकार तथा आपके ईश्वर (तीर्थ कर) हैं इत्यादि। हमारे शास्त्र वा शास्त्रकार तथा तीर्थ कर तो गप्पाष्टकी नहीं हो सकते परन्तु वेदादि ग्रन्थों में अश्लील भाषण वा असम्भवादिदोष तथा हिंसा के विधायक होने से गप्पाष्टकी अवश्य सिद्ध होते हैं। यदि आपमें कुछ भी हिम्मत है तो वैदिक विधि के अनुसार उन दोषों की निवृत्ति करके दिखलावें अन्यथा

गप्पाष्टक हांकने वाले आपके ईश्वर वा वेद स्वयं ही सिद्ध हो जावेंगे।

(१४) महावीर स्वामी का गर्भ हरण, ऋषभ देव का स्वयं भगनी के साथ विवाह और भरत वा ब्राह्मी दोनों युगल पैदा हुए इत्यादि। दिगम्बर शाखा में आपने गप्प दिखलाने की चेष्टा की है। सो इन बातों का खण्डन हमारे ग्रन्थों में स्वयं ही लिखा है फिर शास्त्रकार वा तीर्थ कर पर आक्षेप करना मिथ्या सिद्ध है-या नहीं यदि आपको अपने वचनों की सत्यता पर कुछ भी अभिमान है तो दिगम्बर शाखा के ग्रन्थों के आधार से सत्य सिद्ध करके दिखलावें अन्यथा यजुर्वेद में लिखित यजमान की पत्नी का अश्वरत्न से भोग और चक्रवर्ती पुत्र का उत्पन्न होना स्वयं सिद्ध होजायगा।

(१५) महावीर स्वामी का गर्भ हरणादि वाक्यों को आपने कुछ शब्दों में बदलकर जैन मत समीक्षा द्वारा लिखे हैं जो कि देहली की अदालत से जप्त हो चुकी है और लिखने वाले आदि को अदालत से दण्ड भी मिल चुका है अब यातो आप उक्त वचनों को दिगम्बर शाखा के ग्रन्थों द्वारा सत्य सिद्ध करके दिखलावें अन्यथा आपके साथ जाब्ते की कार्य्यवाही क्यों न की जावे।

नोटः—प्रथम आप स्वामी दयानन्द जी के वेद भाष्य को वेदानुकूल सत्य सिद्ध करके *दिखलावें पश्चात्* मन्त्रों के ऋषि देवता छन्दादि मय प्रमाण के लिखें। यदि आप विधायक ग्रन्थों का प्रमाण न लिखकर केवल स्वामीजी के वेदार्थ की ही नकल करेंगे तो वेदार्थ विषय में आप की अनभिज्ञता अवश्य सिद्ध हो जावेगी और विधायक ग्रन्थ भी वेदानुकूल होने से ही प्रमाण माने जावेंगे।

—मल्लसैन-जैन अम्बाला छावनी

आप्त स्वरूपम्

(ले० श्री० के० भुजबली शास्त्री,)

प्रिय पाठकों को विदित होगा कि माणिक चन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थ माला में प्रकाशित सिद्धान्त सारादिसंग्रह में' 'आप्त स्वरूपम्' नामक एक छोटा ग्रन्थ भी सम्मिलित है। भवन में इस 'आप्त स्वरूपम्' की दो हस्तलिखित प्रतियां वर्तमान हैं। मुद्रित 'आप्त स्वरूप' से भिन्न जो पाठ इन प्रतियों में मिल रहे हैं उन्हें पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर देना ही इस लेख का उद्देश्य है।

इन प्रतियों में से एक का नम्बर २४६ है। यह ग्रन्थ कनड़ी लिपि में कागज़ पर है। उस में आप्त स्वरूप के स्थान में 'आप्त परीक्षा' स्पष्ट लिखा हुआ है। यह प्रति अशुद्ध है। फिर भी मुद्रित प्रति के पाठ से इसके पाठ में कुछ भिन्नता है। जैसे इस प्रति में चौथे श्लोक का उत्तरार्ध यों मिल रहा है—

"यस्य नैव च दोषाहते स्याप्तास्त्यानृतकारणम्"

इस प्रति में ११४ पद्य पाये जाते हैं। ७६ श्लोक के बाद इसमें "इति कल्याण कारकः" लिखा हुआ है। इससे मालूम होता है कि ग्रन्थ यहीं समाप्त होता है। परन्तु आगे ११४वें श्लोक के बाद "इति आप्त परीक्षा समाप्ता" लिखा हुआ मिलता है। अभी तक के कथन का यही सारांश निकला कि २४६ नम्बर वाली प्रति में ६४ के बदले ११४ श्लोक हैं और ग्रन्थ का नाम आप्त स्वरूप' न होकर 'आप्त परीक्षा' है। अब मैं उस प्रति के ८० से ११४ के बीच के कुछ श्लोकों को यथावत् इस लिये उद्धृत कर देना चाहता हूँ ताकि अन्वेषक विद्वान इस बात पर खोज कर कि ये श्लोक इसी 'आप्त स्वरूप' के हैं या किसी अन्य ग्रन्थ के।

ध्यानदहनेण निर्भिन्नघनघातिमहातरुः।
अन्तभवसंतानजयादासोदनन्ताजित् ॥ ८० ॥
त्रैलोक्यनिर्जयावाप्तदुर्दर्पमयदुर्जयम्।
मृत्युराजं विजित्यासि जिनमृत्युंजयोभवान् ॥
विधूताशेष संसारबन्धनो भव्य बान्धवः।
त्रिपुरारिस्त्वमीशासि जन्ममृत्युजरान्तकृत् ॥ ८२
त्रिकालविषयाशेषतत्व भेदत्रिधोत्थितम्।
केवलाख्यं दधश्चक्षुस्त्रिनेत्रोसित्वमीशतः ॥ ८३ ॥
नमस्तेऽनन्त वीर्याय नमो ऽनन्त सुखात्मने।
नमस्तेऽनन्त लोकाय लोकालोकावलोकिने ६१
नमस्ते उनन्तदानाय नमस्ते ऽनन्त लब्धय।
नमस्ते ऽनन्त भोगाय नमोऽनन्त — —॥ ६२ ॥

आगे ६४ श्लोक के बाद 'नाम स्तुति' उसके बाद 'श्रीमन्नाकौ इत्यादि स्थापना' फिर ६७ श्लोक के बाद "नाभेयस्येत्यादि-द्रव्यस्तव" इसके उपरान्त 'कैलाशाद्रौ-इत्यादि क्षेत्रस्तव'। पुनः ६८ श्लोक के पश्चात् 'भावस्तव' तब 'यं शैवाः समुपासते' यह श्लोक क्रमशः मिलते हैं।

मंगलश्री यमुद्दिष्टः पुरायार्थ स्याभिधायकः।
तल्लातीत्युच्यते सद्भिर्मङ्गलं मङ्गलार्थिभिः ॥ १०३ ॥
मलं पापमिती प्रोक्तमुपाचारसमाश्रयात्।
तद्धि गालयतीत्युक्तं मंगलं पंडितैर्जनैः ॥ ११४ ॥

अर्हद्गुणगणास्तोत्रम् तन्मुख्यं मंगलं स्मृतं ।
अमुख्यं तद्गुणौपम्यात् पूर्णकुंभादिलौकिकम् ॥ १०५ ॥
प्रधान मंगलं प्राहुः सूरयोऽर्हद्गुणस्तवः ।
तद्गुणैकप्रदेशेन साम्यं वृक्षादि गौणतः ॥ १०६ ॥
सर्वेन्द्रस्तु तपाशाब्जं सर्वज्ञं दोषवर्जितम् ।
श्री जिनाधीश्वरं नौमि परमानन्दमक्षयम् ॥ १०६ ॥

आगे ध्यान स्वरूप के ही कुछ पद्य दिये गये हैं । ग्रन्थ-समाप्ति में यह श्लोक मिलता है

सम्यक्त्वाङ्कुरमुत्तमत्तमदयामूलं तपो बीजकं ।
ज्ञानस्कंधमृदुत्वत्वप्रशुबलं चारित्रशाखान्वितं ॥
सत्यं छाया युतं सुशौचमुकुलं त्यागोद्गमं संयमा ।
योदं (?) ब्रह्म फलं वशामि विधिना योगीन्द्रकल्पद्रुमम्

अब दूसरी प्रति को देखें । इसका नम्बर १६३ है । यह ग्रन्थ खण्डित है और यह भी कनड़ी लिपि ताड़ पत्र पर है । इसमें मुद्रित प्रति का पाठ ही प्रायः शुद्ध मिलता है। इस की पद्य संख्या ७८ है । मुद्रित प्रति में नहीं पाये जाने वाले कई पद्य इसमें मिलते हैं । यह बात श्लोक संख्या से भी सहज ज्ञात हो जाती है। किन्तु इसमें मुद्रित प्रति के कुछ श्लोक नहीं मिलते जैसे पद्य संख्या १३,१४ और ४० । अब पाठकों के सामने मुद्रित प्रति में नहीं पाये जाने वाले कुछ श्लोक यहां उद्धृत किये जाते हैं ।

शवस्मार्थं महादेवं लौकिकानां मते मतः ।
शब्दतो गुणतश्चैव महादेव स उच्यते ॥

यह पद्य मुद्रित प्रति के 'महत्वाधीश्वर स्वाद्य' जिसकी क्रम संख्या २७ है उसके पहले है । मुद्रित प्रति का 'पश्चमन्त्रर्थनामानि' यह ४४वां पद्य इसमें इस प्रकार है ।

'पश्चमन्त्रर्थनामानं सर्वज्ञं सार्वमच्युतम् ।
वक्ष्ये तस्यैव नामानि विद्यान्यत्र विचक्षणैः ॥

मुद्रित प्रति का ५१वें श्लोक का अन्तिम भाग यों है—" मोहारातिर्महाजेता कर्मजन्मद्वयान्तकः । " मुद्रित प्रति का ५४वें श्लोक के उत्तरार्ध में " कुशलः " के स्थान पर 'केवली' है । मुद्रित प्रति के ५६वें श्लोक के प्रथम पाद में ' शुद्ध स्फटिक संकाश ' के स्थान में 'शुद्ध स्फटिक संकाशं' है । मुद्रित प्रति के ५७वें श्लोक के उत्तरार्ध में 'मोक्षपुरं' के स्थान में 'मोक्षेश्वरं' है । मुद्रित प्रति के ५८वें श्लोक के उत्तरार्ध में 'प्रातिहार्य पतिः स्मृत.' के स्थान में 'प्रातिहार्यैरलंकृतः' है । मुद्रित प्रति के '५६' श्लोक का स्थान हस्तलिखित प्रति में ६०वां है । मुद्रित प्रति के ६०वें श्लोक का उत्तरार्ध इस प्रति में इस प्रकार है 'संक्रान्तबिम्बसदृशं स्वान्ते संचिंतयेद्धि-भुम' । मुद्रित प्रति में कुल ६४ श्लोक हैं, किन्तु ताड़ पत्र की इस प्रति में ७८ हैं । इस प्रकार १४ श्लोक ताड़ पत्र की प्रति में अधिक हैं । इन में से कुछ पद्य उद्धृत किये जा चुके हैं । मुद्रित प्रति के अन्तिम चार श्लोक इसमें रूपान्तर होकर मिलते हैं । इस प्रकार पूर्वोक्त १४ और अन्तिम ४ श्लोकों को उद्धृत करने की इच्छा होते हुए भी पत्र खण्डित होने के कारण कुल पद्यों को उद्धृत न कर कुछ पद्य यहां उद्धृत किये जाते हैं।

'रूपिणं बिम्बयेत्तावत् पश्चाद्रूप विवर्जितम् ।
ज्ञानपिंडात्मकं शुद्धं निर्द्वन्द्वं परमेश्वरम् ॥ ६० ॥
अकारादि हकारान्तं रेफमध्यं सबिन्दुकम् ।
तदेव परमं तत्त्वं योजानाति स तत्त्ववित् ॥ ६३ ॥

उदयादित्यबिम्बाभं प्रभासंभारभासुरं ।
ध्यायेत् तं महामोहं प्लुष्यन्तं कर्मपञ्जरम् ॥ ६५ ॥
स्वश्लेषित कर्माणं नयन्तं परमास्पदं ।
विश्वतो व्यापकं ध्यायेदकारं नाभिवारिजे ॥ ६६ ॥
शिरःसरोरुहारूढं सेत्रणं (?) शशि-शोभितं ।
साकारञ्च मुखाम्भोजे हारनीहारपाण्डुरम् ॥ ६८ ॥
प्रमाणनयनिक्षेपैरात्मतत्त्वमवैति यः ।
स ध्येति परमात्मानं परमात्मा नमर्थतः ॥ ७१ ॥

मुद्रित प्रति के ६२वें पद्य के अन्त में 'निधिस्थ' के स्थान में ताड़ पत्र के प्रति में 'निधिष्ठः' है। मुद्रित प्रति के ६३वें श्लोक के अन्त में 'परमात्मं' के स्थान में 'परमार्थं' है। मुद्रित प्रति के ६४वें पद्य के उत्तरार्ध में 'परहृदयमतार्थं' के स्थान में 'परहृदयगतार्थं' है।

क्या देखा ?

(१)

देखा है उत्सुकता से, जग-जीवन रूपी मेला,
आता है पथिक अकेला, जाता पथिक अकेला।
देखा है बारीकी से, आशाओं का नर्तन है;
इस क्षण भंगुर जगती में बस देखा परिवर्तन है।

(२)

अवगुण की हैं दुकानें विष, मदिरा के ग्राहक हैं,
पापों की हैं बहु खानें तृष्णा के सब बाहक हैं।
पहना कुचालमें रंगकर मानाभिमान का चोला,
भीतर तो है चालाकी देखा ऊपर से भोला।

(३)

लालच के वशमें होकर, करता है अपना अपना,
माया की मृदु रजनी में, सुख दुख का देखा सपना।
मिट्टी के इक कण कण में है कर्म कूट की रेखा,
इस जग में बस आकर के, है इतना ही तो देखा।

कपूरचन्द जैन, "साहित्य-भूषण"

प्राचीन सिक्के और उनकी उपयोगिता

[गतांक से आगे]

जिस देश का इतिहास नहीं लिखा हुआ है उस देश के राजाओं के साल सम्वत् तो इस प्रकार से भूमि खोदने के कार्य विभाग वाले बतलाते हैं। परन्तु जहाँ सब तरह के इत्तला पाने के रास्ते गुम होजाते हैं वहां केवल एक यही रास्ता बाकी रहता है। ऐसे राजाओं का सूचिपत्र मिलता है जो पहले बिलकुल भूले जाचुके थे। पर उनका पता केवल सिक्कों से ही लगा है और इन्हीं की सहायता से उनका काल निर्माण किया गया है। जैसा कि कर्नल जेम्स टाड साहब की सन् १८२४ की तलाश से यह पूरा पता लग गया। भारतवर्ष की सीमा पर यूनानियों के सिक्के मिले और ३३ यूनानी, २६ शक और पालव राजाओं के नाम तथा शासन काल का पता लगा। इन राजाओं में से केवल ५-६ का ही पता लग सका है।

केवल सिक्कों से ही इस बात का पता चलता है कि अमुक राजाके राज्यका इतना विस्तार था जैसे कि प्रयाग के किले की मीनार पर यह खुदा हुआ है कि महाराज चन्द्रगुप्त का राज्य उत्तरीय भारतवर्ष में पंजाब से लेकर समता तक था। इससे यह साबित हुआ कि ब्रह्मपुत्र तक था। क्या सिक्के इस बात की गवाही देते हैं? हां, अवश्य।

एक राजा के राज्य का विस्तार जानने के लिये सिक्के हमें बहुत मदद दे सकते हैं। इसके सिवाय यदि किसी लेखमें किसी राजा के राज्य का विस्तार लिखा हो तो उसकी सिक्कों द्वारा ही जांच की जा सकती है। उदाहरणार्थ—इलाहाबाद (प्रयाग) स्तम्भ के लेख में लिखा हुआ है कि महाराज समुद्र गुप्त ने सारे उत्तरीय भारत को (पंजाब से लेकर समता तक) अपने आधीन कर लिया था। किंतु इस बातका समर्थन करने वाला प्रमाण अभी तक नहीं मिला था। पर अब मालूम हुआ है कि यह स्थान ब्रह्मपुत्र नदी के पूर्व की ओर था। क्या सिक्के भी इस बात को सिद्ध करते हैं। हां, अवश्य।

एक सोने का सिक्का महाराज समुद्रगुप्त के समय का और दूसरा उनके पोते स्कन्धगुप्त के समय का, कोटलीपाडा (फरीदपुर जिले) में मिला है इसी प्रकार कई सिक्के इस स्थान में और भी मिले हैं। अभाग्यवश कई सिक्के जो ऐसे ही खोदने से प्राप्त होजाते हैं उनका मिलना कठिन है। ढाका जिले के भूतपूर्व कमिश्नर मिस्टर जे० टी० रेंकिन साहब ने जिन कई सिक्कों को इकट्ठा किया था वे आज कल ढाका म्यूजियम में सुरक्षित हैं। स्कन्धगुप्त के समय के जो सिक्के मिले हैं, उनमें से एकतो बाबू रमेशचन्द्रसेन हैड क्लर्क मैदारीपुर म्युनिसिपेलिटी के पास है। दूसरा मि० स्टेपिलन साहब के पास बतलाया जाता है। गुप्तसम्राटों के सिक्के पंजाब के पूर्व सारे उत्तरीय भारतवर्ष में सब जगह पाये जाते हैं। इसी कारण उक्त बात की पुष्टि सिक्कों से होसकती है। स्कन्धगुप्त के पश्चात गुप्त साम्राज्य की अवनति होगई। इसका पता इस बात से भी पूरा २ लगता है कि उनके उत्तराधिकारियों के

सिक्कों के विस्तार की सीमा बहुत थोड़ी है। अर्थात् उनके सिक्के केवल पूर्वीय भारत में ही चलते थे और वह भी एक बहुत थोड़ी संख्या में। इसी से यह सिद्ध होजाता है कि इनकी शक्ति और राज्य की सीमा कितनी छोटी थी।

तीसरी बात यह है कि प्राचीन सिक्के शासन कर्ताओं के धर्म अथवा सम्प्रदाय का भी ज्ञान कराते हैं। और कुछ कुछ इनके द्वारा समय का भी ज्ञान होता है। मुसलिम काल के पहले के सिक्कों में एक तरफ देवता अथवा देवी की छाप रहती थी। मुसलिम युग के पूर्व के सोने के सिक्कों में तो यह बात जरूर ही मिलेगी। कनिष्क के सिक्कों से यह पूरा २ पता लगता है कि किस तरह तो वह पहले ईरानियों के देवताओं को मानता था और किस प्रकार फिर उसने भारत वासियों के देवताओं को मानना आरंभ कर दिया। और अंत में बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। यूनानियों का ब्राह्मण धर्म को स्वीकार कर लेना केवल बेसनगर का प्रसिद्ध कीर्ति स्तम्भ ही नहीं बतलाता वरन् उस समय के सिक्के भी इसी बात की पुष्टि करते हैं। गुप्तवंश के सम्राटों के धार्मिक विचारों का इतिहास तो अब भी सिक्कों के जरिये बतालाया जा सकता है कुमारगुप्त के सिक्कों पर कुमार (कार्तिकेय) के चित्र देखकर मन कैसा प्रसन्न होता है।

और भी कई ऐसे तरीके हैं कि जिनका प्रयोग करने से सिक्के पुराने खोये हुए इतिहास को प्राप्त करने में पूरी २ सहायता पहुंचाते हैं। समुद्र गुप्त, चन्द्र गुप्त द्वितीय और कुमार गुप्त के सोने के सिक्कों का बहुतायत से मिलना यह भी सिद्ध करता है कि उस समय में देश कितना धन धान्य से पूरित था, और इनके उत्तराधिकारियों के समय में सिक्कों का कम पाना यह दिखलाता है कि उनका राज्य अवनत दशा को पहुंच गया था। स्कंधगुप्त के समय में खालिस सिक्कों का न बनना यह यह बतलाता है कि साम्राज्य के बुरे दिन आगये थे।

स्कंधगुप्त के उत्तराधिकारियों के समय में सिक्कों का बहुत थोड़ा होना ही यह सिद्ध करता है कि गुप्त साम्राज्य बहुत कमज़ोर होता आरहा था। बुद्धगुप्त के समय में तो सिक्कों की कमी इतनी बढ़ गई थी (यद्यपि वह गुप्त साम्राज्य के बहुत से भाग पर राज्य करता था) कि उसका नाम केवल चांदी के दो ही सिक्कों पर मिला है। जैसा कि पहले वर्णन किया जाचुका है, सिक्कों से साफ २ प्रगट होता है कि गुप्त राज्य के आखिरी समय में इस वंश को कितना पीछे हटना पड़ा था। और फिर इन राजाओं के सिक्कों का मिलना जो गुप्तवंश के नहीं थे यह बतलाता है कि महाराज समुद्र गुप्त के वंश का राज्य शासन बिलकुल बंद हो गया था।

अब यह बतलाया जायगा कि इतिहास की कई समस्याओं को किस प्रकार सिक्कों द्वारा सुलझाना चाहिये या किस प्रकार घटनाओं का काल निश्चित करना चाहिये।

सन् १६०६ में कोटलीपाड़ा (जिला फरीदपुर) की पुलिस की चौकी पर घूंघटहारी ग्राम में एक ताम्र पत्र मिला था—उसका मतलब यह

यह था कि यह पत्र समाचार देव के शासन काल का है (जो महाराजाधिराज का नाम करके लिखा हुआ था) पत्र के लेख से पत्र का बहुत ही प्राचीन होना प्रतीत होता था। पत्र पाल वंश से पहले का मालूम पड़ता है। श्री मान् आर० डी० बनर्जी महोदय तो इस लेख और पत्र को बनावटी और जाली बताने में भी नहीं हिचकिचाये। डाक्टर ब्लाक महोदय ने जो उस समय आरचियोलोजिकल सर्वे—(Archiological Survey) के सुपरिन्टेन्डेन्ट थे इस बात का मज़ाक उड़ाया कि समाचार नाम का भी कोई राजा हुआ है।

मगर सन् १९१० में पार्जीटर महोदय ने इसी प्रकार के दो और लेख (पत्रों के संबंध में) छपवाये, जो और भी ज्यादह अज्ञात महाराजाधिराजों के समय के थे। लिपि और लेख को तो अब आश्चर्यजनक नहीं बतलाया जा सकता बनर्जी महोदय भी अब उक्त ताम्र पत्र को बनावटी तथा जाली बतलाने से बंद हुए। पार्जीटर महोदय इन घुंघटहारी के लेखों को शुद्ध छपवाने का कार्य किया।

कुछ दिनों के पश्चात् दीनाजपुर के जिले में कुमार गुप्त बुद्ध गुप्त आदि राजाओं के समयके उसी प्रकार के पांच लेख और मिले। प्रोफेसर राधा गोविन्द ने उनको प्रकाशित करवाया उन से बनर्जी महोदय का यह कहना कि यह बनावटी है बिल्कुल असत्य सिद्ध होगया है। फिर भी बनर्जी महोदय ने यह नहीं माना कि उनका कथन (Theory) मिथ्या है। सन् १९२० के ढाका रिव्यू में मि० एन० के० भट्टसाली महोदय ने घुंघटहारी के पत्रों के लेखों को स्पष्टतः प्रकाशित किया और कई बातें जिन्हें पारजीटर महोदय सिद्ध नहीं करसके थे उन्हें भट्टसाली महोदय ने सिद्ध की। परन्तु यह बात दो सिक्कों के हाथ में पड़ जाने से हुई। इनमें से एक मोहम्मदपुर जिला जैसोर, घुँघट हारी के करीब ३० मील उत्तर पश्चिम में मिला था। दूसरे के लिये ठीक २ मालूम नहीं कि वह कहां मिला? ये दोनों सिक्के इस समय इन्डियन म्यूजियम में हैं। जब से ये पाये तब से ही विद्वान लोग इनके विषय के लेखों की खोज में हैं। डाक्टर विन्सेन्ट ए० स्मिथ महोदय ने सन् १९०५ के इन्डियन म्यूजियम के सिक्कों के सूचिपत्र में यह छपाया था कि ये दोनों सिक्के निश्चय शून्य हैं। स्मिथ महोदय ने एक सिक्के पर राजा का नाम यमधा (Yamdha) पढ़ा। यह सिक्का ईसा की छठी शताब्दी के करीब का है। मि० एलन महोदय ने ब्रिटिश म्यूजियम के गुप्त काल के सिक्कों के संबंध में पुनः जांच करते हुए फिर विचार किया। वे डाक्टर साहब के जो काल निश्चय किया उस से तो सहमत होगये परन्तु राजा के नाम के बारे में कुछ भी निश्चय न कर सके। उनका कहना था कि नाम 'सहच' या 'यमच' है फिर इसकी बहस बहुत दिनों तक चलती रही अंत में मि० आर० डी० बनर्जी ने इस नाम को शुद्ध यम पढ़ा।

अपूर्ण

मुक्तिवाद की निःसारता का निराकरण

[गताङ्क से आगे]

सुख दुख को प्राक्तन जन्म के कर्मों का फल न मानकर केवल सृष्टि की विचित्रता मानना भी अविचारित रम्य ही है; क्योंकि संसार में जितने भी कार्य देखे जाते हैं वे सब बिना उपादान और निमित्त कारण के पैदा नहीं होते जैसे बिना मिट्टी और कुंभकार के घट या बिना अग्नि के धूम भी पैदा नहीं होता इसी तरह अन्य कार्य भी। चूंकि सुख दुखादि भी आत्मा के पैदा होते हैं अतः इनका भी कोई न कोई अंतरंग कारण होना ही चाहिये। शुभाशुभ कर्म ही इसका कारण हो सकते हैं। जबकि हमें सुखद बाह्य सामग्रियों के रहते हुये दुख और दुखद के रहने पर सुख हुआ करता है। यदि कहा जाय कि सृष्टि में सुख दुखादि विचित्रता का पैदा होना स्वभाव ही है क्योंकि इनमें प्रत्येक चीज की व्यवस्था दूसरे से भिन्न होती है जैसे एक वृक्ष के असंख्य पत्तों में समता नहीं दीख पड़ती आदि। तो यह भी ठीक नहीं क्योंकि यदि ये सांसारिक सुख दुख आत्मा के स्वभाव होते तो कभी भी इनको नष्ट और उत्पन्न नहीं होना चाहिये था, जबकि पदार्थों के स्वभाव कभी नष्ट नहीं होते जैसे अग्नि की उष्णता जीवकी चेतनता, प्रकृति की जड़ता आदि कभी भी नष्ट नहीं होते। चूं कि सुख दुखादि कभी उत्पन्न और कभी नष्ट होते हैं अतः इनका कुछ न कुछ कारण भी होना ही चाहिये। इनको स्वभाव कहना मिथ्या है। इसके सिवाय सृष्टि में जो विचित्रताएं दीख पड़ती हैं वे भी बिना कारण के उत्पन्न नहीं होतीं बल्कि उनका भी कुछ न कुछ कारण हुआ करता है। वृक्ष के पत्तों में जो विचित्रता पैदा होती है उसका कारण भी नाना प्रकार परमाणुओं का तरतम रूप में सम्मिलित है; क्योंकि एक प्रकार के ही बराबर रूप परमाणुओं से सब पत्ते बने होते तो उनमें विचित्रता का होना भी संभव नहीं था। अतः जैसे पत्तों में परमाणुओं की विभिन्नतादि विचित्रता का कारण है वैसे ही जीव के सुख दुखादि की विचित्रता का कारण भी शुभाशुभ प्राक्तन कर्म ही हैं; जैसा कि हम ऊपर सिद्ध करचुके हैं।

जीव क्या है? जन्म के पूर्व वह कहां था और मृत्युपरांत वह कहां चला जाता है? इन प्रश्नों का समाधान करते हुये लेखक महोदय लिखते हैं "विश्व में दो तत्व है—(१) चेतन (२) जड़। ये दोनों अन्योन्याश्रयी हैं और कोई भी स्थान उनसे खाली नहीं है चेतन का विकार यह जीवात्मा और जड़ का विकार यह भौतिक शरीर है। जैसे बिजली सर्वत्र व्यापती हुई भी विद्युत्यंत्र (Battery) के द्वारा विकसित उद्बोधित और अभिव्यक्त होती है। तथा उक्त यंत्रके टूट जाने पर वह कहीं चली नहींजाती बल्कि वहीं पर अपने मूल तत्व में लीन होजाती है। न वह कहीं से आती है और न कहीं को चली जाती है उसी प्रकार शरीर यंत्र के द्वारा सर्व व्यापक एक ही चेतन तत्व का आंशिक उद्बोधन होता है और जैसे बिजली उद्बोधित होकर आकर्षणादि क्रियाएं करने लग जाती

हैं वैसे ही शरीरस्थ चेतन तत्व भी उद्बोधित होकर नाना प्रकार की शारीरिक और मानसिक क्रियाएं करने लग जाता है। मृत्यु के बाद पञ्चभूतात्मक शरीर की भांति जीवात्मा भी वहीं पर अपना मूल तत्व (सर्व व्यापी चेतन) में लीन हो जाता है। न वह कहीं से आता है और न वह कहीं को चला जाता है उसकी व्यक्तिता शरीर जन्य होने के कारण शरीर के साथ ही नष्ट होजाती है।

लेखक का उक्त कथन में कपोल कल्पना मात्र है; क्योंकि अव्वल तो इस विषय में कोई प्रमाण ही नहीं है कि सर्वव्यापी एक ही चेतन तत्व है और वह अकारण ही जन्म के समय शरीर (जड़) द्वारा व्यक्त होकर मृत्यु के पश्चात् वह फिर उसी चेतन (सर्व व्यापक) तत्व में लीन होजाता है। यदि इस कथन को थोड़ी देर के लिये ठीक भी मान लिया जाय तो अन्य अनेक बाधाएं आकर हमारा गला पकड़ती हैं। हम प्रत्यक्ष से ही देखते हैं कि जिस प्रकार भिन्न २ परमाणुओं के अनंत स्कंध (परमाणु समूह) हमारी दृष्टि में आते हैं वैसे ही अनंतानंत जीव भी अपनी २ देह के बराबर पृथक् २ सत्ता और चैतन्य के धारक पाये जाते हैं। यद्यपि संग्रहनय से चूंकि सब में चैतन्य पाया जाता है और इस दृष्टि से सब के एकसे होने से १ चेतन तत्व कह सकते हैं जैसे कि भिन्न अनंत परमाणुओं में जड़ता पाई जाने से १ जड़ तत्व कहा जाता है; किंतु यह नहीं कहा जा सकता कि आकाश की भांति एक ही चेतन सर्व व्यापक है और उसका आंशिक उद्बोधन होता है। यदि एक ही चेतन तत्व सर्व व्यापक मानोगे तो उसे ज्ञानादि स्वभाव युक्त स्पर्श रस गंध वर्णादि रहित निर्लेप ही मानना पड़ेगा। तब फिर जड़ के स्पर्शादि सहित होने से न तो जड़ चेतन को छू सकेगा न चेतन जड़ को। तब फिर एक के संसर्ग न होने से जड़ चेतन को कैसे उद्बोधित कर सकेगा ? जब कि मूर्तिक को मूर्तिक ही संसर्ग करके पकड़ सकता है अमूर्तिक नहीं यह नियम सर्वत्र ही दिखाई दे रहा हो तो अमूर्तिक आत्मा को भी वह (जड़) पकड़ कर उद्बोधित नहीं कर सकता, अन्यथा अमूर्तिक आकाश को भी वह उद्बोधित क्यों नहीं कर देता ? यदि कहा जाय कि चेतन और जड़ के सर्व व्यापक होने से दोनों में संघर्ष हुआ करता है अतः यह उस को व्यक्त कर देता है तो फिर भी वही कहना पड़ेगा कि आकाश भी सर्व व्यापी है उसका भी जड़ से संघर्ष होता है अतः आकाश भी अभिव्यक्त होना चाहिये। यदि कहो कि चेतन को ही वह व्यक्त कर सकता है तो चेतन और उस की अभिव्यंजक प्रकृति जब कि नित्य और सर्व व्यापक है तो क्या कारण है कि चेतन तत्व सबकासब एकबार ही व्यक्त नहीं हो जाता ? यदि कहा जाय कि सम्पूर्ण जड़ पदार्थ में चेतन को अभिव्यक्त (प्रकट) करने की शक्ति नहीं है बल्कि कुछ में है तथा वे परमाणु जो शरीर रूप बन कर चेतन को अभिव्यक्त कर सकते हैं, जब एकत्र हो जाते हैं तब चेतन भी अभिव्यक्त हो जाता है, तो यह भी ठीक नहीं; क्यों कि ऐसा मानने पर भी सब चेतन अभिव्यक्त होना चाहिये ? यदि आंशिक अभिव्यक्ति

को भी स्वीकार करलें तो एक बार भी चैतन्य की अभिव्यक्ति होजाने पर फिर वह लुप्त नहीं हो सकेगा। जिससे कि मृत्यु भी असंभव हो जायगी। लेखक का यह कहना भी युक्ति युक्त नहीं कि मृतक शरीर वैसा सुसंगठित और सुव्यवस्थित नहीं रहता जैसा कि मृत्यु के पूर्व था, क्योंकि हम देखते हैं कि चेतन शरीर के सुसंगठित और सुव्यवस्थित रहने पर ही निकलता है और चेतन के निकलने के बाद ही शरीर अव्यवस्थित होता है। हमने ऐसे कई हृष्ट पुष्ट नवयुवकों को मरते देखा है कि जो बिना किसी रोग और मृत्यु के कारणों के आये शरीर के सुसंगठित रहने पर भी मर गये, शायद लेखक ने भी देखा हो अतः जब कि लेखक की मान्यतानुसार चेतन के अभिव्यंजक शरीर के सुसंगठित और सुव्यवस्थित रहते हुये भी मृत्यु हो जाती है तो (शरीर) को चेतन का अभिव्यंजक मानना भ्रम पूर्ण होने से मिथ्या है।

इसके सिवाय-आत्मा अपनी २ देह के ही बराबर है; क्योंकि वह उससे बाहर उपलब्ध नहीं होता तो जितनी जगह उपलब्ध होता है वह उतना ही बड़ा होता है। जैसे तिल के एक होने में व्यापक तेल तिल के दाने के बराबर ही मानने में आता है तिल के बाहर न निकलने से वह तिल के बाहर नहीं माना जाता। चूंकि आत्मा भी देह प्रमाण ही उपलब्ध होता है। अतः वह भी देह के ही बराबर है। इस तर्क द्वारा भी आत्मा देह के बराबर ही सिद्ध होता है। यदि कहो कि देहस्थ आत्मा को सर्व व्यापक चैतन्य का अभिव्यक्त अंश है, तो फिर हम भी यह कहने के लिये तैयार हैं कि तिली में जो तेल है वह सर्व व्यापक तेल का अंश है, वस्तुतस्तु तेल भी एक सर्व व्यापक पदार्थ है। इसी प्रकार यह घर भी सर्व व्यापक घर का एक अंश मात्र है वास्तव में एक 'सर्व व्यापक घर' नाम का भी एक पदार्थ है जो समय २ पर परमाणुओं के द्वारा अभिव्यक्त होता रहता है। यदि कहा जाय कि यहाँ तो प्रत्यक्ष से ही बाधा आरही है तो आत्मा को सर्व व्यापक चैतन्य का अंश मानने में भी वही बाधा गला पकड़ रही है।

विद्वान लेखक ने चेतन को सर्व व्यापक सिद्ध करने में जो बिजली और विद्युत्यंत्र का दृष्टांत दिया है वह भी ग़लत है क्योंकि बिजली कोई सर्व व्यापक पदार्थ नहीं है बल्कि वह बैटरी में रक्खे हुए मसाले और बल्ब आदि चीजों के के संयोग से पैदा होती है। जबतक मसाले में जलने की शक्ति है अर्थात् विद्युत रूप चमक उत्पन्न करने योग्य परमाणुओं का सद्भाव बना रहता है तब तक तो चमक पैदा होती रहती है और ज्यों ही मसाला जल चुकता है फिर उससे चमक उत्पन्न नहीं होती अन्यथा एक ही मसाले से चमक सदा उत्पन्न होना चाहिये सो होती नहीं, अतः विद्युत सर्व व्यापक नहीं। ऐसे ही पत्थरों में संघर्ष होने से, माचिस और सींक की रगड़ से अग्नि उत्पन्न हो जाती है और भी कई ऐसे संयोग होने पर पदार्थों की अवस्थायें विचित्र ही उत्पन्न हो जाया करती हैं पर इतने मात्र से ऐसा नहीं कहा जा सकता

कि वे सर्व व्यापक हैं, अन्यथा सांख्य का यह सिद्धांत भी सिद्ध हो जायगा कि सर्व सर्वत्र विद्यते अंगुल्यग्रे हस्तियूथशतमस्ति अर्थात् सब पदार्थ सब जगह मौजूद हैं अंगुलि के अग्र भाग पर सैकड़ों हाथियों के झुंड विचर रहे हैं पर व्यक्त नहीं हैं—जो कि प्रत्यक्ष से ही बाधित है। अतः विद्युत का दृष्टांत भी आत्मा को देह प्रमाण ही प्रमाणित करता है क्योंकि वह स्वयं सर्व व्यापक नहीं है।

एक सर्व व्यापक अखंड चेतन तत्व के न मानने में एक बात यह भी है कि हमारे शरीर के रोम मात्र उखाड़ने पर तद्देहस्थ सारी आत्मा को दुख और इत्रादि सूँघने पर सुख होता है वैसे ही यदि शरीर के बाहर भी इसमें चेतन का अंश मौजूद होता तो उसे भी सुख दुख होना चाहिये। ऐसे में हमारा सुख आपको और आपका दुख हमको भी होना चाहिये क्यों कि एक ही चेतन के हम अंश हैं। यदि कहा जाय कि हमारे शरीरों के भिन्न २ होने से चेतन के एक रहते हुए भी ऐसा नहीं होता अर्थात् एक दूसरे के सुख दुख मालूम नहीं होते, तो यह कहना भी ठीक नहीं क्योंकि अखंड चेतन के सुख दुखादि भी एक होना चाहिये शरीर उसमें बाधा कैसे पहुंचा सकता है जबकि सुखादि चेतन के ही अमूर्तिक रूप से शरीर से भिन्न हुआ करते हैं। अन्यथा नासिका से होने वाला सुख *नासिका में स्थित आत्मांशों को और रोम खींचने से* होने वाला दुःख रोम खींचने के स्थान पर ही होना चाहिये, शरीरस्थ सारी आत्मा को नहीं। किन्तु होता सारी ही आत्मा को है अतः चेतना देह के ही बराबर सिद्ध होती है। न कि सर्व व्यापक यदि सर्व व्यापक होता तो उसका गुण ज्ञानादि भी सर्वांशों को होता।

दूसरे यदि चेतन तत्व को एक मात्र का सर्व व्यापक माना जाय तो फिर उसमें हलन चलन रूप क्रिया भी नहीं हो सकती, क्योंकि सर्व व्यापक पदार्थ निष्क्रिय देखे जाते हैं जैसे आकाश। अतः शरीर के द्वारा अभिव्यक्त चेतन जिस स्थान पर अभिव्यक्त हो उसे वहीं पर रहना चाहिये, न कि हजारों मील चलना चाहिये जैसा कि हम चलते हैं। ऐसा करने से एक सर्व व्यापक तत्व की व्यापकता में बाधा पहुँचती है क्योंकि व्यापक (सर्वव्यापक) पदार्थ में हलन चलन कैसा? मैं एक कोस आया, आदि क्रियाओं से 'मैं' 'मैं' के द्वारा होने वाला ज्ञान प्रत्यक्ष से ही यह सिद्ध कर रहा है कि आत्मा हमारे ही शरीर के बराबर है। अतः इस निर्बाध प्रत्यक्ष से सुख जीवों की अनंतता और देह प्रमाण स्थिति को न मान कर उक्त अनेक दोषों और बाधाओं से पूर्ण अदृष्ट एक सर्व व्यापक चेतन पदार्थ की कल्पना करना वस्तुतः उपेक्षणीय है।

जीव न कहीं से आता है और न कहीं को चला जाता है" लेखक की इस बात का खंडन करने के लिये हमें उस बालक की याद आती है जो कुछ दिन पहले मोरेना (ग्वालियर) में आया था और अपने पूर्व जन्म की कहानी कह कर बतलाता था कि मैं अमुक डाकू था और मुझे अमुक सिपाही ने गोली से अमुक स्थान पर मार डाला है इसलिये मैं अब उससे बदला अवश्य लूंगा, तब ग्वालियर नरेश ने उक्त घटना की जांच की, सिपाही से माफी मंगवाई और

बालक को इतना बेहतर लिखा किया। इसी प्रकार और भी कई घटनायें हमारे सुनने में आया करती हैं जो अखबारी जगत में छिपी नहीं हैं। डबलिन (आयरलैंड) में एक तीन वर्ष का बच्चा लोहे की जंजीरों को तोड़ देता है और प्यानो वगैरह बिना सिखाये ही बजा लेता है तथा कठिन २ प्रश्नों के उत्तर भी देदेता है इससे उसके पूर्व जन्म कृत कर्म और संस्कारों की संबद्धता ही प्रकट होती है।

इन सब बातों से जन्ममरण की परंपरा अनादि सिद्ध है। और वह कर्मों के निमित्त से ही होरही है। शुभाशुभ कर्मों के निमित्त से जीव को जैसा अच्छा बुरा और छोटा बड़ा शरीर मिल जाता है, आत्मा के प्रदेश भी संकुचित और विस्तरित होकर (दीपक के प्रकाश की तरह) देह में समा जाते हैं। वस्तुतः जीव आत्मा है जो कर्म बन्धन से मुक्त होकर स्वतंत्र होजाता है वह फिर कभी भी जन्म मरण करने के लिये संसार में वापस नहीं होता (जले हुए बीज से अंकुर की तरह) और इसीलिये मुक्ति के साधनभूत श्रद्धा ज्ञान, सदाचरण, तपश्चर्यादि का करना भी सार्थक है। अतः लेखक का इस विषय में यह लिखना कि जन्मान्तरवाद और मुक्तिवाद कोरी कल्पनायें हैं, कुछ मूल्य नहीं रखता। जन्मान्तरवाद और मुक्तिवाद का सिद्धांत अटल है, जैसा कि हम पहले सिद्ध कर चुके हैं।

आशा है कि लेखक महोदय के कल्पित युक्ति और प्रमाण हीन लेख से उत्पन्न हुआ पाठकों का (उक्त विषय में) भ्रम हमारे इस लेख से दूर हो जावेगा और लेखक महोदय भी पक्षपात को छोड़ कर हमारे इस लेख पर विचार कर अपना सिद्धांत पुनः तर्क की कसौटी पर कसेंगे।

—नाथूराम डोंगरीय

जैन धर्म का मर्म और पं० दरबारीलाल जी

(ले०—पं० राजेन्द्रकुमार जैन, न्यायतीर्थ)

क्या नग्नता मोक्ष के लिये अनिवार्य नहीं है ?

पं० दरबारीलाल जी दिगम्बरत्व को ही भ० पार्श्वनाथ और भ० महावीर के शासन में अन्तर की बात नहीं मानते किन्तु ब्रह्मचर्य को भी आपने इसके साथ लिया है। आपका कहना है कि भ० पार्श्वनाथ ने अहिंसा, सत्य, अचौर्य और अपरिग्रह इन चार महाव्रतों का उपदेश दिया था किन्तु भ० महावीर ने ब्रह्मचर्य को भी उनके साथ ही लिया हैं। इस प्रकार भ० महावीर ने चार के स्थान पर पांच महाव्रतों का उपदेश किया है।

दिगम्बरत्व के सम्बन्ध में तो हम अपने पिछले लेख में यथेष्ट प्रकाश डाल चुके हैं। अब हमको इस लेख में ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में विचार करना है। दरबारीलाल जी ने अपनी इस बातके समर्थन में दो प्रमाण लिखे हैं। एक उत्तराध्ययन का केशि गौतम सम्वाद और दूसरा मूलाचार। ये दोनों प्रमाण आपके ही शब्दों में निम्न लिखित हैं—

"केशि—चार प्रकार के चारित्र को महावीर ने पांच प्रकार का क्यों बतलाया ? जब दोनों का एक मार्ग है तब अन्तर का कारण क्या है ? गौतम—पार्श्वनाथ के समय में लोग सरल प्रकृति के थे। अब कुटिल प्रकृति के लोग हैं। उनको स्पष्ट समझाने के लिये ब्रह्मचर्य के विधान की आवश्यकता हुई"।

"बावीसं तित्थयरा सामायिय संजमं उवदिसन्ति' छेदुव ठावणियं पुण भयवं उसहो य वीरो य। मूलाचार ५३३—बाईस तीर्थंकर सामायिक संयम का उपदेश करते हैं और भगवान ऋषभ और वीर छेदोपस्थापना का उपदेश करते हैं"। उत्तराध्ययन के इस प्रश्नोत्तर की प्रमाणिकता से पूर्व हम इसके हिन्दी भाषान्तर की परीक्षा करना आवश्यक समझते हैं। दरबारीलाल जी ने उपर्युक्त हिन्दी वाक्य उत्तराध्ययन के निम्नलिखित प्राकृत शब्दों के भाषान्तर स्वरूप लिखे हैं—

चाउज्जामो इमो धम्मो जो इमो पंच सिक्खिओ।
देसिओ वद्धमाणेण पासेण य महामुणी ॥ २३॥
एग कज्ज पवन्नाणं, विसेसे किं नु कारणं।
धम्मे दुविहे मेहावि कहं विपच्चओ न ते ॥ २४॥
ततो केसिं व्रुवंतं तु गोयमो इण मव्ववी।
पन्ना समिक्खिय धम्मतत्तं तत्तविणिच्छियं ॥ २५ ॥
पुरिमा उज्जु जड्डाओ, वंकजड्डाओ पच्छिमा।
मज्झिमा उज्जुपन्नाओ तेण धम्मे दुहाकए ॥ २६ ॥
पुरिमाणं दुव्विसोज्झोओ, चरिमाणं दुरणुपालओ।
कप्पोमज्झिमगाणं तु सुविसोज्झो सुपालओ ॥२७॥

उत्तराध्ययन केशिगौतम संवाद

दरबारीलाल जी के इस प्रश्नोत्तर के भाषांतर के सम्बन्ध में पहली बात तो यह है कि इन्होंने गौतम के पूरे उत्तर को नहीं लिखा किन्तु उसका एक देश लिखा है। गौतम का पूरा उत्तर आकृत २६-२७ गाथा में है। इसका आशय यह है कि प्रथम

तीर्थङ्कर भ० ऋषभदेव के समय के साधु सरल किन्तु मूर्ख होते हैं और अन्तिम तीर्थङ्कर भ० महावीर के समय के साधु वक्र और मूर्ख होते हैं। पहिले तीर्थङ्कर के शासन के साधु कठिनता से समझते हैं और अन्तिम तीर्थङ्कर के शासन के बड़ी कठिनता से पालन करते हैं। किंतु बीच के तीर्थङ्करों के शासन के साधु सरलता से समझते और पालन करते हैं अतः धर्म का दो तरह से वर्णन किया है।

गौतम के उत्तर के इस आशय से पाठक समझ गये होंगे कि गौतम ने अपने उत्तर में २४ तीर्थंकरों का उल्लेख किया है। उन्होंने केवल भ० पार्श्वनाथ का उल्लेख करते हुये ही केशि के प्रश्न का समाधान नहीं किया है। गौतम के समाधान में चौबीस तीर्थ-ङ्करों का उल्लेख रहने पर भी दरबारी लाल जी ने अपने भाषान्तर में केवल भ० पार्श्वनाथ को ही क्यों लिया है या भ० पार्श्वनाथ से पूर्व २२ को क्यों छोड़ दिया है ?

ऐसा होना गलती से या सरलता से भी संभव है। गलती से मेरा आशय यह है कि किसी पद का अर्थ ध्यान में न आवे और आशय लिखते समय उस का उल्लेख रह जाय। यह बात प्रस्तुत भाषान्तर में स्वीकार नहीं की जासकती इसके दो कारण हैं। एकतो यह है कि शेष तीर्थङ्करों के वाचक शब्द ऐसे कठिन नहीं हैं दूसरे गाथाओं में वे ऐसे स्थान पर हैं कि जिनके दृष्टि से परे होजाने पर गाथाओं का अर्थ ही नहीं बैठ सकता।

सरलता से इनके छोड़ देने वाली बात भी स्वीकार नहीं की जा सकती। ऐसा तो तब हो सकता था जबकि शेष तीर्थंकरों के सम्बन्ध की बातें समाधान से असम्बन्धित होती या उनका प्रस्तुत समाधान से कोई उल्लेख योग्य सम्बन्ध न होता। बात यह है कि दरबारीलाल जी ने यह सब जानकर और बड़ी बुद्धिमानी के साथ किया है।

दरबारीलाल जी का कहना है कि भ० पार्श्वनाथ से पूर्व जैनधर्म का अस्तित्व अंधकार में है और चौबीस तीर्थंकरों की मान्यता एक कल्पित बात है तथा इसकी कल्पना भ० महावीर के बाद की है।

गौतम स्वामी के प्रस्तुत समाधान को उनके ही शब्दों में उपस्थित करने से निम्नलिखित बातें भी प्रमाणित होती हैं—

(१) चौबीस तीर्थंकरों की मान्यता भ० महावीर के समय में भी थी, क्योंकि यह संवाद उस ही समय का है जब कि भ० महावीर सर्वज्ञ हो चुके थे और विहार कर रहे थे।

चौबीस तीर्थंकरों के अस्तित्व का प्रतिपादन भ० महावीर के ही द्वारा हुआ था, क्योंकि गौतम स्वामी जन्म के ब्राह्मण थे और भगवान के केवली होने बाद उनके भक्त हुए थे। इन को जो कुछ भी ज्ञान हुआ था उसका आधार भगवान का उपदेश ही था। गौतम भगवान के भक्त हुए थे नकि किसी परम्परा विशेष के अतः उनके द्वारा चौबीसी की कल्पना की बातभी स्वीकार नहीं की जासकती।

इनबातों से दरबारीलाल जी की उपर्युक्त बात का प्रतिवाद होता था अतः दरबारीलाल जी ने गौतम के समाधान के इस अंश को छोड़ दिया। किसी भी सत्यान्वेषी से ऐसी आशा नहीं की जासकती। उसका कर्तव्य अपनी

सम्मति के अनुसार प्रमाणों को ढालना नहीं है किन्तु प्रमाणों के अनुसार अपनी सम्मति को बनाना है ।

दरबारीलाल जी को उत्तराध्ययन का यह अंश यदि ऐतहासिक प्रतीत होता था और इस को वह भ० पार्श्वनाथ के अस्तित्व में सबसे प्रबल प्रमाण स्वीकार करते हैं जैसाकि उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है तो उनका यह भी कर्तव्य था कि वे इसही ऐतहासिक संवाद में भ० महावीर के समय चौबीस तीर्थकरों की मान्यता को भी स्वीकार करते। ऐसी परिस्थिति में उनको न तो समाधान के अंश विशेष को छोड़ना पड़ता और न इस समालोचना का पात्र ही बनना पड़ता है। किसी भी सत्यान्वेषी से तो ऐसी ही आशा की जासकती है । यह तो हुई समाधान के आशय को छोड़ देने की बात । अब देखना यह है कि क्या वास्तव में भ० पार्श्वनाथ और भ० महावीर के शासन में ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में अन्तर है ।

उत्तराध्ययन और मूलाचार के अतिरिक्त अनगार धर्मामृत १ चारित्रभक्ति २ आवश्यक निर्युक्ति ३ और प्रज्ञापना सूत्र की मलयगिरि टीका ४ आदि दिगम्बर और श्वेताम्बर ग्रन्थों में भी भ० पार्श्वनाथ और भ० महावीर के शासनभेद का उल्लेख मिलता है ।

इन चार शास्त्रकारों में से पहिले दो दिगम्बरी हैं तथा बाद के दो श्वेताम्बरी हैं। दिगंबरी शास्त्रकारों का समय क्रमशः ईसा की दसवीं और चौथी शताब्दी है । श्वेतांबरी तो आवश्यक निर्युक्ति को भद्रबाहु रचित मानते हैं किन्तु इतनी बात तो अवश्य

(१) दुःशोधमृजुजडैरिति पुरुरिव वीरोऽदिशद्व्रतादिभिदा ।
दुष्पालं वक्रजडैरिति साम्यं नापरे सुपटुशिष्याः ॥ ९-८७

इस ही की स्वोपज्ञ टीका निम्न प्रकारके है— अदिशदुपदिष्टवान् । कोऽसौ ? वीरोऽन्तिमतीर्थकरः । किं तत् । साम्यं सामायिकाख्यं चारित्रम् । कया व्रतादिभिदा व्रतसमितिगुप्तिभेदेन ....

(२) तिस्रः सत्तमगुप्तयस्तनुमनोभाषा निमित्तोदयाः
पञ्चेर्यादि समाश्रयाः समितयः पंचव्रतानीत्यपि ।
चारित्रोपहितं त्रयोदशतयं पूर्वं न दिष्टं परै-
राचारं परमेष्ठिनो जिनपते वीरान्नमामो वयम् ॥७॥

(३) बावीसं तित्थयरा सामाइय संजमं उव इसंति ।
छेओ वट्ठावणयं वयन्ति उसभो य वीरो य ॥१२४६॥

(४) यद्यपि सर्वमपि चारित्रमविशेषतः सामायिकम् तथापि छेदादि विशेषैर्विशेष्यमाणमर्थतः शब्दान्तरैश्च नानात्वं भजते...........।

है कि यह भी एक प्राचीन शास्त्र है। जहाँतक शासन भेद के कारण का संबन्ध है वहांतक ये चारों शास्त्र तथा उत्तराध्ययन और मूलाचार एकमत हैं। इन सबमें शासन भेद का कारण एकही बतलाया है। येही जब शासन भेद का वर्णन करते हैं तब इनकी यह एकता भङ्ग होजाती है। उत्तराध्ययन और अकेला उत्तराध्ययन इसको एक तरह से प्रगट करता है और शेष पांचों इसको दूसरी तरह से बतलाते हैं। उत्तराध्ययन का कहना है कि यह भेद चतुर्याम और पांच के आधार से हुआ है। तथा शेष पाँचों का कहना है कि इस भेद का आधार सामायिक और छेदोपस्थापना है। दरबारीलाल जी ने अपनी लेख माला में इनमें से केवल दो का (उत्तराध्ययन और मूलाचार का) उल्लेख किया है। उत्तराध्ययन के प्रस्तुत अंश का अर्थ तो आपने चार और पांच महाव्रत किया है तथा मूलाचार के विवादस्थ अंश को उत्तराध्ययन की लाइन पर लाने की चेष्टा की है। आपने लिखा है कि मूलाचार की विवादस्थगाथा में दो स्थानों पर 'य' का प्रयोग हुआ है इसमें सामायिक के साथ छेदोपस्थापना के अतिरिक्त शेष तीन चारित्रों को भी लेलेना चाहिये। उस ही सम्बन्ध में अगाड़ी चलकर आप लिखते हैं "विष्णुकुमार आदि मुनियों के चारित्र से मालूम होता है कि उस समय प्रायश्चित्त लिया जाता था और प्रायश्चित्त के बाद संयम छेदोपस्थापना कहलाने लगता है। इससे यह बात साफ मालूम होती है कि महावीर के पहिले छेदोपस्थापना संयम था परन्तु किसी कारण से अहिंसा, सत्य, अचौर्य और अपरिग्रह इन चार यमों के स्थान में सामायिक, परिहार विशुद्धि आदि चार संयम आगये हैं। कुछ भी हो परन्तु यह बात दोनों सम्प्रदायों को स्वीकृत है कि पार्श्वनाथ के समय में चार यम थे और महावीर के समय में पाँच होगये।"

लेखक ने छेदोपस्थापना शब्द के अर्थों पर विशेष ध्यान नहीं दिया। यदि उन्होंने ऐसा किया होता तो उनको ऊपर की पंक्तियों के लिखने की आवश्यकता न पड़ती। प्रस्तुत छेदोपस्थापना और प्रायश्चित्त के बाद की छेदोपस्थापना में यद्यपि शब्द की दृष्टिसे समानता है किन्तु अर्थ में महान् अन्तर है। प्रस्तुत छेदोपस्थापना का वाच्य भेद स्वरूप धर्म है और प्रायश्चित वाली छेदोपस्थापना का स्थितिकरण। कौन कहता है कि बीचके बाईस तीर्थङ्करों के शासन में साधुगण प्रायश्चित्त नहीं लिया करते थे। लेखक ने यदि मूलाचार पर ही दृष्टि डाली होती तो उनको वहां इसका स्पष्ट उल्लेख मिल जाता। मूलाचार में स्पष्ट स्वीकार किया है कि बीच के तीर्थङ्करों के शासन के साधु अपराध होने पर ही प्रतिक्रमण किया करते थे तथा आदि और अन्तिम तीर्थङ्कर के शासन के साधुओं के लिये यह आवश्यक नहीं। अन्य शास्त्रकारों ने भी ऐसा ही वर्णन किया है।

बीच के तीर्थंकरों के शासन में इस छेदोपस्थापना के स्वीकार कर लेने पर भी उस छेदोपस्थापना का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता जिसका निराकरण मूलाचार ने किया है। इस छेदोपस्थापना से भाव तो भेदरूप चारित्र से है—इस ही लिए स्वयं मूलाचार कार ने ही अगाड़ी चल कर छेदोपस्थापना के स्थान पर पंचमहाव्रत शब्द का प्रयोग किया है। अन्य शास्त्रकारों ने भी इस छेदोपस्थापना से ऐसा ही भाव किया है।

मूलाचारकार का तो वक्तव्य केवल इतना ही

है कि बीच के तीर्थंकरों ने चारित्र का संक्षेप से वर्णन किया था आदि और अन्तिम तीर्थंकर ने इसही का विशदता के साथ विवेचन किया था। उसही भाव से उन्हों ने सामायिक और छेदोपस्थापना शब्दों का प्रयोग किया है—इससे विचार शील पाठक समझ गये होंगे कि बीच के तीर्थंकरों के समय प्रायश्चित व्यवस्था एवं उससे सम्बन्धित छेदोपस्थापना के स्वीकार कर लेने पर भी इससे यह बात प्रमाणित नहीं होती कि उस समय विवादस्थ छेदोपस्थापना था और इससे अहिंसा आदि चारके स्थान पर सामायिक आदि चार का प्रयोग स्वीकार किया जाय।

दूसरी बात यह है कि जितने भी दिगम्बर और श्वेताम्बर आचार्यों ने इस शासन भेद का वर्णन किया है उन्होंने सामायिक और छेदोपस्थापना के आधार पर ही किया है। केवल एक उत्तराध्ययन-कारही हैं जिन्होंने ४ यम और पांचका इसके सम्बन्ध में उल्लेख किया है। इससे तो यही प्रतीत होता है कि उत्तराध्ययनकार की यह बात वीर शासन की परम्परागत नहीं है। किन्तु किसी सम्प्रदा-यान्तर का प्रभाव है। उत्तराध्ययन का मन्तव्य यदि वीर परम्परागत होता तो उसके समकालीन या उसके बादके शास्त्रों में इसका वर्णन मिलना चाहिये किन्तु इनमें तो प्रत्युत उसके विपरीत ही मिलता है जैसा कि हम पूर्व बतला चुके हैं। इससे यह धारणा और भी पक्की हो जाती है। बौद्ध साहित्य में जैनियों के चतुर्याम का उल्लेख मिलता है किन्तु वहां इस बात पर जरा भी प्रकाश नहीं डाला गया कि इस चतुर्याम से क्या मन्तव्य है।

उत्तराध्ययन पर बौद्ध साहित्य का और भी प्रभाव पड़ा है। इसको हम अपने पहिले लेख में सिद्ध कर चुके हैं। ऐसी परिस्थिति में हमारी धारणा है कि उत्तराध्ययन में इस शब्द का प्रयोग वीर शासन की परम्परा के आधार पर नहीं हुआ है किन्तु यह यहां बौद्ध साहित्य से लिया गया है।

इसके सम्बन्ध में एक बात यह भी है कि यदि चतुर्याम की बात को सत्य स्वीकार किया जाता है तो वह समाधान जोकि उत्तराध्ययन-कार ने शासन भेद के कारण को स्पष्ट करने के हेतु दिया है ठीक नहीं घटता।

शासन भेद के कारण की उत्तराध्ययन की बातों को हम पूर्व ही लिख चुके हैं। यह बातें सामायिक और छेदोपस्थापना के सम्बन्ध में ही घटित होती हैं। चार व्रत के पांच रूप वर्णन करने में सामान्य और विशेष का विशेष अन्तर नहीं है। यह तो तभी बैठता है जब कि एक समय चारित्र का उपदेश सामायिक रूप माना जाता है और दूसरे समय छेदोपस्थापना रूप। अतः यह बात भी उत्तराध्ययन के शासन भेद के आधार को मिथ्या प्रमाणित करती है।

यदि थोड़ी देर के लिए अभ्युपगमसिद्धांत से उत्तराध्ययन के इस कथन को सत्य भी स्वीकार कर लिया जाय तब भी भगवान पार्श्वनाथ के समय में ब्रह्मचर्य का अभाव प्रमाणित नहीं होता। उत्तराध्ययन के मूलपाठ में कोई ऐसी बात नहीं है जिससे चतुर्याम का अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह ही अर्थ किया जाय तथा पांच का इन सहित ब्रह्मचर्य अर्थ किया जाय।

इस सब विवेचन से प्रगट है कि ब्रह्मचर्य

विषयक बीच और आदि अन्त के तीर्थंकरों में कथन भेद बतलाना बिल्कुल मिथ्या है। शासन भेद सम्बन्ध में बात यह है कि यह तो एक कथन की प्रणाली है। इसको तो परिस्थिति के अनुसार ही स्वीकार करना पड़ता है। आदि और अन्त के तीर्थंकरों के शिष्यों के प्रतिबोध के लिये विस्तृत शैली की आवश्यका थी अतः इन दोनों ही तीर्थङ्करों ने उसको ग्रहण किया और उसही चारित्र को भेद रूप में समझा दिया।

बीचके तीर्थंकरों के समय की परिस्थिति कुछ इससे भिन्न थी। इस समय लोग संचित रुचि के थे अतः बीच के तीर्थंकरों ने इसही को अपनाया और चरित्रका उपदेश संक्षेप में सामायिक के रूपमें दिया।

संक्षेप से यह तात्पर्य नहीं कि संक्षेप से वर्णन करते समय व्याख्याता किन्हीं २ बातों को छोड़ जाते थे किन्तु यह है कि उस बात के वर्णन में भेदोपभेद की बात नहीं उठाते थे किन्तु उस तत्व को ही बतला दिया करते थे।

इससे विज्ञ पाठक समझ गये होंगे कि जिन्होंने सामायिक का उपदेश दिया है उन्होंने किसी बात को जोड़ नहीं दिया था किन्तु उसी तत्व का उपदेश बिना भेदोपभेद के दिया था जिसको शेष तीर्थंकरों ने भेदोपभेद की बात उठाकर छेदोपस्थाना रूपसे किया था।

बात एक ही है। सामायिक और छेदोपस्थापना तो उसको समझाने के केवल दो भाग हैं।

इससे यह बात भी स्पष्ट होजाती है कि चौबीस तीर्थंकरों के कथन में विरोध या मतभेद की बात भी उपस्थित नहीं की जा सकती। अब रह जाती है केवल एक बात और वह है इसही शासन भेद के आधार से भ०पार्श्वनाथ के अस्तित्व को स्वीकार करने की बात इसके सम्बन्ध में हमको यहां केवल इतना ही कहना है कि शासन भेद में भ० पार्श्वनाथ का ही नहीं, किन्तु अन्य तीर्थंकरों का भी अस्तित्व सिद्ध होता है। जिस प्रकार भ० महावीर की कथन-शैली से भ० पार्श्वनाथ की कथनशैली भिन्न थी उस ही प्रकार भ० पार्श्वनाथ आदि से भ० ऋषभदेव की थी। ऐसी परिस्थिति में यह कैसे होसकता है कि इसके आधार से भ० पार्श्वनाथ को स्वीकार कियाजाय और भ० ऋषभदेव को न माना जाय?

यहां हम यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि शासन भेद को हम भ० पार्श्वनाथ आदि तीर्थंकरों के अस्तित्व के प्रमाणों से भी एक मानते हैं यह नहीं कि इनके अस्तित्व समर्थन में अन्य प्रमाणों का बिलकुल अभाव ही हो। उपर्युक्त विवेचन से पाठक समझ गये होंगे कि चौबीस तीर्थंकरों के कथन में न नग्नता के सम्बन्ध में ही भेद है और न ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में।

प्राप्ति स्वीकार और समालोचना

करकंडु और उनकी गुफायें— लेखक प्रो० हीरालाल जैन, किंग एडवर्ड कालिज, अमरावती। आकार, रायल अठपेजी, पृष्ठ १८। प्रस्तुत पुस्तक में मुनि 'कनकामर' द्वारा अपभ्रंश भाषा में रचित 'करकंड-चरिउ' का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। मूल ग्रन्थ भूमिका, अंग्रेजी अनुवाद, शब्दकोश अनुक्रमणिका, टिप्पणी, परिशिष्ट तथा एक दर्जन चित्रों सहित 'कारंजा जैन सिरीज़' से प्रकाशित हो चुका है।

आरम्भ में ग्रन्थकार के समय का अनुमान किया गया है और अनेक प्रमाणों के आधार पर इस ग्रन्थ के बनने का समय सन् १०६५ ईस्वी के लगभग अन्दाजा गया है 'ग्रन्थ का विषय' शीर्षक में 'करकण्डु' महाराज की कथा संक्षेप में दी गई है। यह कथा 'पुण्यास्रव कथा कोश' और 'आराधना' कथा कोष में पाई जाती है। मुनि कनकामर के 'करकंड-चरिउ' में इस कथा के अन्तर्गत नौ और भी कथाएं हैं जो 'करकंडु' को नीति सिखाने तथा मूल कथा की किसी बात को समझाने के लिये कही गई हैं। प्रस्तुत पुस्तक में उन सब का भी संक्षिप्त वर्णन किया गया है। 'करकण्डु' का वर्णन दिगम्बर साहित्य में ही नहीं, श्वेताम्बर और बौद्ध साहित्य में भी कुछ हेर फेर के साथ पाया जाता है लेखक का ख्याल है कि कनकामर ने अपना ग्रन्थ पहिले लिखा है और श्वेताम्बर कथाकारों ने पीछे।

मूल ग्रन्थ की चौथी और पांचवीं सन्धियों में 'करकण्डु' महराज के 'तेरापुर' पहुंचने, वहां की पहाड़ी में एक गुफा और उसमें विराजमान पार्श्वनाथ भगवान की मूर्ति का दर्शन करने, गुफा में एक जलवाहिनी प्रकट कराने तथा वहाँ और तीन गुफाओं के बनवाने का विशद वर्णन है। खोज करने से हैदराबाद राज्य के उस्मानाबाद जिले में एक 'तेर' नामका स्थान मिला है। लेखक का अनुमान है कि यही 'कनकामर' कवि का 'तेरापुर' है क्योंकि 'कनकामर' द्वारा वर्णित सब बातें आज भी वहाँ विद्यमान हैं। 'तेर' के पास पहाड़ी भी है। उसकी बाजू में गुफायें भी हैं। प्रधान गुफा बड़ी विशाल है। इसका बरामदा ७८ फुट लम्बा और १०॥ फुट चौड़ा है। पांच दरवाजे भीतर शाला में जाने के लिये हैं। यह शाला ८५ फुट लम्बी और लगभग उतनी ही चौड़ी चौकोर आकार की है। यहां ३२ खंभे दोहरे चौकोर आकार में हैं। इस शाला की प्रत्येक बाजू में आठ २ कमरे हैं जो प्रत्येक ६ फुट चौकोर हैं। फिर गर्भगृह कोई २० फुट लम्बा और १५ फुट चौड़ा है यहां पांच फुट की पार्श्वनाथ भगवान की काले पाषाण की पद्मासन मूर्ति विराजमान है।

कवि ने गुफा के भीतर एक जलवाहिनी प्रकट होने का वर्णन किया है। जब 'करकण्डु ने गुफा की मूर्ति के दर्शन किये तो सिंहासन पर उन्हें एक गांठ दिखी। उस गांठ को उसने तुड़वाई और वहां से एक भारी जल का फुआरा निकल पड़ा। गुफा के भीतर अब भी जल कुण्ड है वह १७ फुट लम्बा और १२ फुट चौड़ा है। इसी कमरे में एक सप्तफणी नाग सहित पार्श्वनाथ

भगवान की प्रतिमा है। दो पाषाण और भी हैं जिन पर भी जिन प्रतिमाएं खुदी हैं। चारों गुफाओं में जहाँ प्रतिमाएं हैं वहाँ अधिकतः पार्श्वनाथ भगवान की ही हैं। महावीर भगवान की तो एक भी प्रतिमा नहीं है। इससे—प्रोफेसर सा० के मंतव्यानुसार—इस संस्थान के पार्श्वनाथ भगवान के तीर्थ में निर्माण किये जाने की बात पुष्ट होती है। प्रस्तुत पुस्तक में उक्त गुफाओं के ६ चित्र भी दिये गये हैं। जिन में से एक चित्र जिन मूर्तियों का भी है।

पुस्तक के अन्त में 'पहिली गुफा किस ने बनवाई' इस प्रश्न को हल करने की पूरी चेष्टा की गई है।

इस 'परिचय' के पढ़ने से जान पड़ता है कि 'करकंडु चरिउ के संपादन में प्रोफ़ेसर सा० ने खूब परिश्रम किया है और इसके लिये वे बधाई के पात्र हैं।

जैन कन्या शिक्षालय धर्मपुरा देहली का छब्बीसवां वार्षिक विवरण—यह कन्या शिक्षालय स्त्री समाज में शिक्षा का प्रचार सफलता पूर्वक कर रहा है। कई वर्ष से 'रिकग्नाईज' भी हो गया है। ७ अध्यापिकाएं हैं। जिन में तीन ट्रेंड हैं। फल सन्तोष जनक है। शिल्प-शिक्षा का प्रबन्ध भी किया जाने वाला है।

महिलाओं के प्रति दो शब्द—लेखक व प्रकाशक पं० नाथूलाल जैन शास्त्री यह ट्रैक्ट जैन जाति भूषण लाला हजारीलाल जी कुन्नलाल जी मित्तल इन्दौर की ओर से उनकी सौभाग्यवती पुत्री स्वर्गीया चन्द्रावती बाई की पुण्य स्मृति में वितरित किया गया है। राजयक्ष्मा रोग से उक्त बाई का केवल २१ वर्ष की अवस्था में स्वर्गवास हो गया था। इस ट्रैक्ट में यक्ष्मा से बचने के साधारण उपाय-प्रश्नोत्तर रूप में—बतलाये गये हैं।

जैन सेवा मंडल आगरा का षष्ठ वर्षीय कार्य विवरण—प्रकाशक श्यामलाल जैन वारौलिया प्रधान मंत्री। इस वर्ष मण्डल की सेवाएं चार विभागों में विभाजित रहीं—स्वयं सेवक दल १ विधवा अनाथ फण्ड २ प्रचार ३ और शिक्षा ४ स्वयं सेवक दल ने अनेक अवसरों पर अच्छी सेवा की। जिसका विवरण रिपोर्ट में है। विधवा अनाथ फण्ड से १२ विधवा अनाथ और अपाहिजों को मासिक सहायता दी जारही है। मंडल के उद्योग से १३-१४ विवाह संस्कार जैन पद्धति से कराये गये। शिक्षा विभाग के द्वारा आगरे की जैन शिक्षा संस्थाओं का भली भांति निरीक्षण किया जाता है। मण्डल का कार्य प्रशंसनीय है।

अभिषेक पाठ—सम्पादक और संशोधक, पं० मोहनलाल जी शास्त्री, प्रकाशक छोटेलाल कपूरचन्द जैन बेरिया, व्यवस्थापक श्री प्रज्ञा पुस्तक माला बरायठा, (सागर सी० पी०) मूल्य डेढ़ आना

इस छोटी सी पुस्तिका में माघनन्दि सूरि रचित संस्कृत अभिषेक पाठ और पं० मोहनलाल जी रचित पपौरा पूजन और शान्तिपाठ है। संस्कृत कविता बड़ी मनोहर है। छपाई आदि अच्छी है।

झनकार—रचयिता श्री भगवत्स्वरूप जैन, भरतपुर प्रकाशक जैनेन्द्रकुमार जी—इस छोटी सी पुस्तक में आजकल की तर्ज के गीतों का संग्रह किया गया है छपाई साधारण है।

—कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री

सम्पादकीय टिप्पणियां

शोक श्रीमान सेठ सुखलाल जी टडैया ललितपुर अब हमारे सामने नहीं रहे हैं यह समाचार दि० जैन समाज दुःख के साथ अवलोकन करेगा। सेठ सुखलाल जी टडैया घराने के शिरोमणि थे, धार्मिक सेवा और सामाजिक सेवा में तत्पर थे आपका वियोग जैन समाज के लिये अधिक हानिकर है।

शोक— फिरोजाबाद निवासी श्रीमान मुन्शी वंशीधर जी का अभी दुर्घटनावश स्वर्गवास होगया है। आपने अपने जीवन में जो कुछ धन संचित किया था वह सभी परोपकार, परमार्थ में लगा दिया। फिरोजाबाद में इस समय जो श्री पन्नालाल दि० जैन विद्यालय स्थापित हुआ है उसके लिये आप ही धर्मशाला ही काम आ रही है। आप पद्मावती पुरवाल जाति के एक रत्न थे। आपके अभाव से जैन समाज को विशेषकर फिरोजाबाद की जैन समाज को बहुत ठेस पहुंची है।

जयधवला— टीका सरीखे विशाल सिद्धान्त ग्रंथ के प्रकाशन का भार उक्त प्रोफेसर महानुभाव ने अपने कंधे पर उठाया है। समाज के लिये यह सौभाग्य की बात है। 'जयधवला' प्रकाशन के विषय में हमारी वह ही सम्मति है जो जैन दर्शन के गत ९—१० अंक में श्री० पं० कैलाशचन्द्र जी ने प्रकाशित की है।

—अजितकुमार जैन

स्टोव का व्यवहार

आजकल जनता प्रत्येक काम में मशीनों का सहारा लेकर अपना शारीरिक श्रम बचाना चाहती है जिस प्रकार मोटर, रेलगाड़ी, ट्राम आदि के कारण लोगों ने अपने पैदल चलने फिरने का अभ्यास कम कर दिया है उसी प्रकार स्त्रियों ने भी बहुत से घरेलु कार्यों से अपना पंछा छुड़ा लिया है। चक्की चलाना, चर्खा चलाना, अब दरिद्र घरों का कार्य समझा जाने लगा है। यही विशेष कारण है कि स्त्री-पुरुष तथा उनकी सन्तान दिनोंदिन निर्बल होती जारही हैं।

कुछ दिनों से हमारे शौकीन लोगों ने चूल्हे से भी पीछा छुड़ाने के लिये बेलजियम आदि के बने हुए स्टोव (गैसका चूल्हा जिसमें कि मिट्टी का तेल जला करता है) से रसोई बनाना प्रारम्भ कर दिया है। बम्बई तथा गुजरात में इन गैसी चूल्हों से रसोई बनाने का रिवाज बहुत जोर से चल रहा है।

—किन्तु स्टोव का व्यवहार स्वास्थ्य के लिये हानि कारक एवं प्राणों को भयंकर पदार्थ हैं इस कारण इसका व्यवहार बिलकुल छोड़ देना चाहिये।

स्टोवकी गैस से स्त्रियों के कपड़ों में आग लगने की आशंका सदा बनी रहती है जरा भी दृष्टि चूकने पर अथवा तनक भी असावधानी होने पर इनके कपड़ों में लग जाती है और इस प्रकार अनेक स्त्रियाँ अकालमृत्यु का आहार बन जाती हैं। बंबई में ऐसी दुर्घटनायें प्रायः दूसरे तीसरे महीने हुआ ही करती हैं। अभी जबल-पुर में दो युवती स्त्रियां रसोई बनाते हुए स्टोव से जल कर मर गई हैं।

भोजन भी मंद अग्नि से अच्छा पुष्टिकर तैयार होता है सबसे अच्छा ऊपलों (गोबर के कंडे) की आग पर बनता है उससे कम पौष्टिक लकड़ी की आग पर तैयार होता है। उससे हितकर लकड़ी के कोयलों की आग पर बनता है। उससे भी घटिया पत्थरी कोयले की आग से तैयार होता है सबसे कम पुष्टिकर भोजन स्टोव पर बनता है।

क्योंकि तेज आग की गर्मी से भोजन का सार भाग जल जाता है। स्टोव की आग सबसे अधिक तेज होती है। स्टोव की पकाई हुई रोटी किनारे पर कच्ची रह जाती है। जबकि वह बीच में जल जाती है क्योंकि उसका सेक बीचमें ही होता है। स्टोव पर बने हुए शाक में कुछ कुछ मिट्टी के तेल की गंध आती है। अब एक स्टोव पर बनाया हुआ भोजन स्वास्थ्य के लिये बहुत हानिकारक है।

इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर बम्बई में दुर्घटना वाले केसों में जज लोग स्टोवों को अपने सामने तुड़वा डालते हैं। इस प्रकार सब तरह से हानिकारक स्टोव का व्यवहार हमारे जैन भाईयों को छोड़देना चाहिये।

जैन समाचार

जैन स्त्री मेंबर—श्रीमती सौ० विद्यावती बाई देवड़िया नागपुर म्युनिसपेलिटी की मेंबर चुनी गई हैं नागपुर म्यु० में यह सर्व प्रथम जैन स्त्री सभासद हैं। बधाई!

—जीव दया सभा आगरा की प्रबंध कारिणी की बैठक ता० १६ को आगरा में हुई। जिसमें आगरा दि० जैन पंचान जांच कमेटी के मदस्यों तथा सभा परस्पर का मत भेद दूर हो गया है।

वैद्य राजों से निवेदन— आल इंडिया वैद्य सम्मेलन ने जो कि भारतवर्ष के प्रतिष्ठित २ वैद्यों की रजिस्टर्ड संस्था है अपनी रजत जयन्ती मनाने का आयोजन किया है उस समय देशभर की वैद्यक संस्थाओं की रिपोर्ट प्रकाशित की जावेगी। सम्मेलन के सभापति ने यह कार्य भार मुझे सौंपा है कि जितने जैन धर्मार्थ औषधालय या स्वतन्त्र हों उनके प्रबन्धक महानुभावों से निवेदन है कि वे उनकी संक्षित रिपोर्ट तैयार करके सम्मेलनमें प्रस्तुत करूं इस लिये आप महानुभावों से प्रार्थना है कि वे फार्म मेरे पास से मंगवाकर उन प्रश्नों का उत्तर संक्षेप में शीघ्र ही लिखकर मेरे पास भेज दें जिससे औषधालयों का विवरण रिपोर्ट में प्रकाशित किया जा सके।

—वैद्यराज कन्हैयालाल जैन वैद्यरत्न,
सिविल-लाईन कानपुर।

—इस अंक के साथ केसरी कलेन्डर बांटा जा रहा है पाठक संभाल लें।

—प्रकाशक

यह समाचार प्रकट करते हुए महान दुःख हो रहा है कि बुन्देलखण्ड प्रान्त के सुप्रसिद्ध श्रीमान् सेठ पन्नालाल जी टडैया ललितपुर का स्वर्गवास होगयाहै

श्रीमान सेठ लक्ष्मणलाल जी साह (जयपुर)
का २७०१) रु० का आदर्शदान

७१) श्री तीर्थक्षेत्र कमेटी बम्बई ५१)
श्री चमत्कार जी आलणपुर १०) श्री महावीर १०)
२७७॥-) श्री चांदनगांव, सवाई जयपुर के मन्दिर
और चैत्यालयों में
४५) थाली-सामग्री-नातणा-प्रक्षाल आदि,
४५) खीचड़ी गेहूँ तीर्थक्षेत्रों में।
२०) अनाथालय, श्राविकाश्रम, बालाविश्राम आदि में
१५) बिहार तीर्थ क्षेत्र कमेटी
१५१) असमर्थ भाइयों की मदद के लिये
१०१) असमर्थ विद्यार्थियों के लिये।
११०≡) गरीबों के भोजन वस्त्र के लिये।
२६) गौशाला और कबूतरों के लिये ज्वार
११०१) जैन महापाठशाला मणिहारों का रास्ता
२२) जैन पाठशाला मन्दिर जी
११) दिवाण जी, कन्यापाठशाला मन्दिर जी
२६) पाठशालाएं गुमानी, पं० शिवदान जी
४३) महावीर पुस्तकालय इत्यादि
११२) पाठशाला, जैनबद्री, मूड़बद्री. केशरियानाथ
१०) दिगम्बर जैन परिषद्
१०) जम्बू स्वामी कुन्थाश्रम
२१) स्याद्वाद विद्यालय काशी
२१) जीवन कुटीर-वनस्थली
१५) जैन दर्शन, जैन जगत्, जैन मित्र
२००) मन्दिर जी सांगा का जयपुर
२५) मो० बगवाड़ा
६१) श्री पावागिर सिद्ध क्षेत्र (जो अभी निकला है)
१००) सरस्वती भण्डार मन्दिर जी में शास्त्रोंके लिये
१२५) स्थानीय मा० हिन्दुस्तानी दवाखाना
११) जैन औषधालय
११) धन्वन्तरी औषधालय
११) अकुत औषधालय
१८) औषधालय बड़नगर

कुल २७०१) रोकड़ी १७०१) और एक डिगरी १०००)

वर्ष २] जनवरी १६ १६३५ ई० [अंक १२

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुख-पत्र

ऑन० सम्पादक—
पं० चैनसुखदास जैन न्यायतीर्थ; जयपुर
पं० अजितकुमार शास्त्री मुलतान पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री बनारस

बधाई

श्रीमान सेठ भागचन्द्र जी सोनी अजमेर, जो अभी कुछ समय पहले एम० एल० ए० बनने में सफलता प्राप्त कर चुके हैं, को नवीन वर्ष (१६३५) के प्रारम्भ में भारत सम्राट ने 'रायबहादुर' पद से सम्मानित किया है। इस राज्यमान्यता के उपलक्ष्य में आपको बधाई है।

देहली, शिमला निवासी श्रीमान बा० नेमीदास जी को सरकार ने 'रायसाहिब' का पद प्रदान किया है, एतदर्थ आपको बधाई है।

धन्यवाद

झांसी (केन्ट) निवासी श्रीमान बा० विश्वम्भरदास जी गार्गीय ने जैनदर्शन की सहायता के लिये २५) रुपयों की स्वीकारता दी है एतदर्थ आपको धन्यवाद है।

—अजितकुमार जैन

जैन समाचार

पचास हजार का दान— श्रीमंत सेठ लक्ष्मी चन्द्र जी भेलसा ने जैन हाई स्कूल खोलने के लिये ५००००) रुपये दान किये हैं। इन रुपयों से हाई स्कूल खोला जायगा। बधाई

रायबहादुर हुये—

सेठ भाग चन्द्र जी सोनी अजमेर को नववर्ष के उपलक्ष में सरकार ने रायबहादुर की उपाधि दी है। बधाई।

भोपाल—२८दिसम्बर को श्री विद्यावती जी जैन म्यु० कमिश्नर नागपुर के हाथों से श्री जैन कन्या शाला का उद्‌घाटन हुआ।

जबलपुर—ता० २२-२३ दिसम्बर को दि० जैन बोर्डिंग का वार्षिकोत्सव बा० कन्छेदी लाल जी वकील के सभापतित्व में सानन्द हो गया।

मन्दिर में चोरी—सनवाद में ता० २७ दिसम्बर को मन्दिर में चोरी हो गई तीन चांदीकी प्रतिमायें चांदी की पांडुक शिला आदि चोरी गई हैं।

रायसाहिब हुये—ला० नेमी दास जी जैन केशियर शिमला को नववर्षके उपलक्ष में राय साहिब की उपाधि मिली, बधाई।

नयनागिर पर व्याख्यान वाचस्पति पं० देवकी नन्दन शास्त्री के सभापतित्व में बुंदेलखण्ड प्रांतिक सभाका तृतीय वार्षिकोत्सव सानन्द समाप्त हो गया। इस में अनेक उपयोगी प्रस्ताव पास हुए हैं जिनमें से इन्दौर के स्वतंत्र मुनि-विहार प्रतिबन्ध सम्बधी प्रस्ताव का विरोध, कवीन्स कालेज में, जैनदर्शन के कोर्स भर्ती करने और कराने के उपलक्ष में उक्त कालेज के रजिस्ट्रार एवं शास्त्रार्थ संघको धन्यवाद और अपराधों के दण्ड के सम्बध में पं० गणेश प्रसाद जी वर्णी के मन्तव्य का समर्थन आदिक प्रस्ताव उल्लेख योग्य है। इसही समय क्षेत्रपर महाराजा-धिराज पन्ना के भाई साहब भी पधारे थे उपस्थित जैनसमाजकी तरफसे आपका यथोचित सम्मान किया इसके सम्बध में भाषण करते हुए आपने जैनसमाज के प्रतिकृतज्ञता प्रगट की थी और क्षेत्रसम्बन्धी आवश्यक बातों में राज्यकी तरफ से पूर्ण सहयोग का आश्वासन दिया था।

इस उत्सव में पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी और पं० राजेन्द्रकुमार जी मंत्री शास्त्रार्थ संघ भी पधारे थे। —सम्वाददाता

भोपाल—एक जैन बैंकरके यहां ६२ हजार रु०के आभूषण इत्यादि चोरी की सनसनी पूर्ण घटना का समाचार मिला है। कहा जाता है कि घर के लोग सो रहे थे जबकि चोर, ठण्डक और अन्धेरे से लाभ उठाते हुए घर में घुस आये और लोह की तिजोरी को तोड़ कर ६० हजार रुपये का माल उड़ा ले गए।

हार्दिक धन्यवाद

"जैन दर्शन" के प्रेमियों ने "दर्शन" को निम्न प्रकार सहायता देकर अपना प्रेम प्रकट किया है। तदथ धन्यवाद है। आशा है अन्य दानीमहानुभाव भी अनुकरण करेंगे।

८५) श्रीमान ला० शिब्बामल जी अम्बाला छावनी

२५) „ बा० रतन कुमार जैन ओवरसीयर „

२५) „ बा० दीपचन्द्र जैन वकील किराना

२५) „ सेठ रोडमल मेघराज जी जैन सुसारी

नोट— नं० ३, ४, तथा विश्वम्बर दास जी से अभी रकम वसूल होनी बाकी है। आशा है उक्त महानुभाव शीघ्र ही भेज देने की कृपा करेंगे। —मनेजर

'जैनदर्शन' कार्यालय,
~~बिजनौर यू० पी०~~

ना० १९—१—३५

मान्यवर महोदय,

धर्मस्नेह पूर्वक जुहारु ! अपरंच सेवा में निवेदन है कि आप जैन जातिके एक गणनीय पुरुष हैं। आपके द्वारा समाज को बहुत कुछ लाभ पहुँच सकता है। इसीलिये आपकी सेवा में "जैनदर्शन" पाक्षिक पत्र बराबर भेजा जारहा है। आशा है, आपने उसे अवश्य ही अपनाया होगा। गत सप्ताह में श्रीमान् की सेवा में इस पत्र की ३।) की वी० पी० की गई थी, जो मालूम नहीं डाकखाने की गड़बड़ी से या कैसे, वापस चली आई है। हमें यह विश्वास है कि आपकी जानकारी में वी० पी० वापस नहीं आई होगी; कारण आपकी शास्त्रार्थ संघ और उसके एक-मात्र मुखपत्र "जैनदर्शन" पर हमेशा ही कृपादृष्टि रही है, और रहेगी। आशा है आप इसका वार्षिक मूल्य ३।) रुपये मनीआर्डर से भेजनेकी कृपा करेंगे, अथवा पुनः वी० पी० करने के लिये पत्र-द्वारा आज्ञा देंगे।

आशा है आप हमारी प्रार्थना पर अवश्य ध्यान देंगे।

भवदीय—
प्रकाशक "जैनदर्शन"

वर्ष २ | अङ्क १३

(१)
जंगल में
वज्र मूर्ख
दुराचारी
आदत है

(२)

(३)—जैनसुखदास जैन—(४)

कभी सूक्ष्म बनकर इतर
कभी स्थूल बन दृश्य दिखाता,
नाना रूप अनूप विश्व में,
तुझे न सब चाहें कैसे ?
तेरी समता औ पैसे।

प्रजा प्रजापति स्वामी सेवक का
है आधार तू ही पैसे।
तेरी समता औ पैसे।

(५)
स्वर्गधाम पश्चिम बन जाता।
तेरी महिमा से मदमाता।
करता अत्याचार सदा यह
देशों पर भारत जैसे।
तेरी समता औ पैसे।

(६)
मौन भंग ऋषियोंका होता,
धर्म ज्ञान का खुलता सोता,
जब आजाते धनिक भक्त।
तू विश्व नियन्ता है पैसे।
तेरी समता औ पैसे।

निर्वाण सिद्धान्त

गतांक से आगे - (ले० पं० श्रीप्रकाश जैन न्यायतीर्थ जयपुर)

इन सिद्धान्तों में परस्पर कितना विरोध है—यह विचारशील पाठक स्वयं समझ सकते हैं। हम इस विषय पर कुछ भी लिखना नहीं चाहते: पर फिर भी एक बात की ओर ध्यान दिला देना आवश्यक है। हमें इन सब दार्शनिकों के विचारों में एक बात समान रूप से देखने को मिलती है; वह यह कि मनुष्य जैसे विकसित प्राणी के लिये भी एक प्रापणीय वस्तु है, और मनुष्य को उसे अवश्य प्राप्त करना चाहिये। उसकी प्राप्ति होजाने पर मनुष्य को अनुपम और अनन्त सुख मिलेगा, दुःख का कभी अनुभव न होगा।

दर्शनशास्त्रों का यह अविरुद्ध सिद्धांत है कि जीवन चाहे पृथ्वी का हो चाहे स्वर्ग का; दुःख से छुटकारा नहीं पा सकता। दुःख से पूर्ण रूपेण मुक्त होने के लिये जीवन को समाप्त कर देने की आवश्यकता है। जबतक हमारे हृदय में जीवन के सुख-भोग की इच्छा है तबतक ऐसा होना असम्भव है।

संसार के सुख-भोग की इच्छाओं का प्रधान कारण है मोह और अज्ञान। जब आत्मा और अनात्मा का पूर्ण भेद ज्ञान हो जाय, जब यह अच्छी तरह जान लिया जाय कि अपने से भिन्न वस्तुओं के साथ आत्मा का क्या सम्बन्ध है तब यह मोह हट जाता है। इसके लिये आवश्यकता इतनी ही है कि ज्ञान प्राप्ति के साधनों का उपयोग ठीक-ठीक किया जाय।

शास्त्रों की रचना जीव के समुत्थान के लिये की जाती है। दर्शन-शास्त्रों की रचना में भी इसी उद्देश्य का बीज प्रस्फुटित हुआ है। जितने भी दर्शन शास्त्र हैं उनमें जीव की पहेलियों को सुलझाने की चेष्टा की गई है, भारतीय दर्शनों की तो रचना ही जीव को अभ्युदय-निःश्रेयस का मार्ग बतलाने के लिये हुई है। जीव के कल्याण की चर्चा करते हुए निखिल दार्शनिकों ने यही निष्कर्ष निकाला है कि जीव को पराये पदार्थों के संसर्ग से दुःख भोगना पड़ रहा है यदि यह इनसे अपना सम्बन्ध विच्छेद करले तो इसका उद्धार सम्भव है। अन्य पदार्थों का संसर्ग न रह कर केवल अपना ही आश्रय रह जाना, अपने शुद्ध स्वरूप में आप का तन्मय हो जाना ही तो मुक्ति है। इसके लिये आचार्यों ने कहा है कि जो जैसी इच्छा भावना रक्खे और आचरण करे वह वैसा ही बन सकता है। अद्वैत की भावना अद्वैत और द्वैत की चिन्तना संसार का कारण है यदि अपने शुद्ध स्वरूप का चिन्तवन करे, अपने को निःस-हाय समझे अद्वैत की भावना भावे, तो निःसन्देह वह स्वयं भी विशुद्ध निर्विकार निर्दोष अपने स्वाभाविक स्वरूप को प्राप्त कर सकता है। और यदि वह अपने को बद्ध समझता है, द्वैत ख्याल करता है, तो भी निश्चित ही समझिए—वह संसार की यातनाओं से मुक्त नहीं हो सकता। क्योंकि प्रकृति या जड़ का संसर्ग ही दुःखों का मूल है इसी के कारण पुरुष को संसार में भ्रमण करना पड़ता है।

हमारे उपर्युक्त अभिप्राय को स्पष्टतया समझाने

के लिये पूर्वोक्त निर्वाण के लक्षणों पर ध्यान देना आवश्यक है। चार्वाक परलोक की सत्ता नहीं मानता, इसलिए उसका कहना है कि इस लोक के अतिरिक्त अन्य कोई स्थान विशेष मुक्ति नहीं है. यहां स्वतन्त्रता से रहना या इस संसार के दुःखों से मुक्त होजाना—मर जाना ही मोक्ष है। शून्यवादी सम्पूर्ण संसार को शून्य मानते हैं, यहां किसी भी पदार्थ की सत्ता यथार्थ नहीं मानते, इसलिये उन्होंने माना है, कि यह सारा संसार शून्य है किन्तु भ्रान्ति के कारण सत प्रतीत होरहा है, इसमें सत्ता का भ्रान्त ज्ञान ही संसार का कारण है। इस भ्रान्ति को हटाकर इस जगत में शून्यता की भावना करने से शून्यात्मता का तत्त्व ज्ञान होजाता है, आत्मा शून्य में मिल जाता है, यही जीव की मुक्ति है १। इस अवस्था में आत्मा—रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान इन संसार-बन्ध या जगत के क्लेशों के कारण पांच स्कन्धों का संसर्ग न रहने से क्लेशों से निवृत्त होकर केवल शान्ति लाभ करता है २। विज्ञानाद्वैतवादी सम्पूर्ण संसार को विज्ञान मय मानते हैं, इसलिए उन्हों ने माना है कि विशुद्ध-ज्ञान-सन्तति का उदय होजाना या जीव का ज्ञान में तन्मय होजाना ही मोक्ष है यह अवस्था विषयाकार—विषयोन्मुख या सांसारिक विषयों में प्रवृत्ति विज्ञान के नष्ट होजाने पर तत्कारणक आत्मचिन्तन मात्र विषय वाले आलयविज्ञान के उदित होजाने पर होती है ३। नैयायिकों ने माना है दुःख का आत्यन्तिक अभाव होजाना ही मुक्ति है। इससे उनका अभिप्राय यह है कि प्रमेयों ४ का ठीक-ठीक ज्ञान न होने के कारण जीव को संसार में रुलना पड़ता है और दुःख सहना पड़ता है। यह जीव प्रमाणों ५ के द्वारा

(१) सर्वं जगच्छून्यमपि भ्रान्त्यैव सदिति प्रतीयते तस्य शून्यताभावनया शून्यात्मतातत्त्वज्ञानमिति।

(२) दीपो यथा निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।
दिशं न कांचिद्विदिशं न कांचित् स्नेहक्षयात्केवलमेति शान्तिम्॥
जीवस्तथा निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।
दिशं न कांचिद्विदिशं न कांचित् क्लेशक्षयात्केवलमेति शान्तिम्॥

(३) अयं घट इत्यादिविषयाकारं प्रवृत्तिविज्ञानम्, तत्कारणभूतमहमिति निर्विषयमालयविज्ञानम्, प्रवृत्तिविज्ञानलयेनालयविज्ञानधारा मुक्तिरिति।

(४) प्रमाण और प्रमेय इन दोनों में ही न्याय-सिद्धान्त के सोलह पदार्थों का समावेश करके प्रमाण के अतिरिक्त सबको यहां प्रमेय शब्द से ग्रहण कर लेना चाहिये। इससे प्रमेय में वे सब बातें आजायेंगी जिनके जानने की इच्छा मनुष्य करता है अथवा जान सकता है। अर्थात् प्रमेय में आत्मा और अनात्मा दोनों का लेना चाहिये।

(५) 'प्रमाण' शब्द से उन सब बातों का ग्रहण होता है, जिनके प्रयोग से हर प्रकार के ज्ञान की प्राप्ति है। इन प्रमाणों के ठीक ठीक उपयोग के लिये उन सब बातों का भी जानना अनिवार्य है जो इनके प्रयोग में सहायता पहुंचाती है या बाधा उपस्थित करती है।

प्रमेयों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके अपने जीवन और उसकी सहगामिनी कठिनाइयों से बच सकता हैं। अर्थात् दुःखों का कारण प्रमेयों का अज्ञान है, इस अज्ञान के दूर होजाने पर जीव मुक्त हो जाता है। वैशेषिकों ने माना है बुद्ध्यादि विशेष गुणों के नष्ट होजाने पर जीव मुक्त होजाता है। इसका यह अभिप्राय है कि ये गुण जबतक आत्मा में रहते हैं, तबतक उसे संसार में घूमना पड़ता है और दुख भोगना पड़ता है। जब ये विशेष गुण आत्मा में नहीं रहते, तब जीव का छुटकारा होजाता है। इन विशेष गुणों में ज्ञान भी है मुक्तावस्था में ज्ञान के विनाश मानने का कारण यह है कि अधिक ज्ञान अधिक दुःख का कारण है। बालकों को अधिक ज्ञान नहीं होता इसलिये उसे दुःख भी कम होता है, ज्यों-ज्यों ज्ञान बढ़ता जाता है त्यों त्यों कष्ट भी विशेष बढ़ता जाता है। मूर्ख से विद्वान को अधिक कष्ट जान पड़ता है। मुक्तावस्था में दुःख की सत्ता नहीं इसलिये मुक्त जीव के ज्ञान मानना अनुचित है। वैशेषिकों की मान्यता के अनुसार इस दशा में आत्मा चेतना शून्य आकाश के समान जड़ सा रहता है। मीमांसक (याज्ञिक) मोक्ष को अलग नहीं मानते। उनका मत है कि स्वर्ग ही मोक्ष है। जब तक पुरुष अपने नित्य नैमित्तिक कर्म को भूले रहता है, यज्ञादि नहीं करता, तब तक उसके पापों का नाश नहीं होता और इसी कारण स्वर्गादि की प्राप्ति भी नहीं होती जब प्राणी अपना नित्य और नैमित्तिक कर्म करने लगता हैं, तब उसके सब पाप नष्ट होजाते हैं और स्वर्ग की प्राप्ति हो जाती है १, यही कहा भी है—

स्वर्ग कामो यजेत.

" सांख्यों ने प्रकृति और पुरुष के भेद दर्शन को मोक्ष कहा है उनका यह मत है कि संसार में प्रकृति और पुरुष ये दो ही प्रधान तत्व हैं। पुरुष चेतन है निर्गुण है, शुद्ध है, नित्य है, अक्रिय है, प्रकृति के कार्यों का भोक्ता है,, स्वयं अकर्ता है। प्रकृति अचेतन है, सगुण है, अशुद्ध है, पुरुष के लिये कार्यों की उत्पादिका है। पुरुष स्वयं शुद्ध है, किन्तु प्रकृति का संसर्ग होजाने पर अहङ्कार के वश होकर प्रकृति के किये हुए कार्यों का स्वयं अपने को कर्त्ता मानने लग जाता है। यही पुरुष का संसार है और दुःख भोगों का कारण है। जब पुरुष अपने को प्रकृति से भिन्न समझ लेता है और उसके कार्यों में ममत्व बुद्धि नहीं करता, तब उसे दुःख नहीं भोगना पड़ता और वह मुक्त हो जाता है। इस दशा में पुरुष सोते हुए जीव के समान सब चिन्ताओं से रहित होजाता है।

योगदर्शनका सिद्धांत है-क्लेशों और बन्धोंके कारण जीव को दुःख हो रहा है, इनका सम्बन्ध छूट जाने पर प्राणी मुक्त हो जाता है। वेदान्ति मानते हैं-इस जगत में ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी भी पदार्थ

(१) नित्यनैमित्तिके [illegible] प्रत्यवायजिहासया।
ज्ञानं च विमलीकुर्वन्नभ्यासेन तु पाचयेत्॥
अभ्यासात्पक्वविज्ञानः कैवल्यं लभते नरः।
काम्ये निषिद्धे [illegible]॥

की सत्ता यथार्थ नहीं है। अज्ञानी प्राणी अविद्या के कारण द्वैत का विचार करता है, जब इसकी यह अविद्या निवृत्त हो जाती है तब इसे ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है और यह जीव अपने कारण भूत ब्रह्म में लीन होजाता है। इस अवस्था में जीव का दुःखों से छुटकारा होजाता है और अपूर्व आनन्द की प्राप्ति हो जाती है। इसी प्रकार अन्य लक्षणों के सम्बन्ध में भी समझ लीजिए। सब ने यही निष्कर्ष निकाला है कि संसार में सुख नहीं है। सुख-भोग के लिये इस संसार को हमेशा के लिये छोड़ देने की आवश्यकता है, संसार के पदार्थों का मोह छोड़े बिना सुख नहीं मिल सकता।

अस्तु, इस प्रकरण को हम यहीं समाप्त कर देते हैं। अब हमें विचार यह करना है कि इस प्रकार के लक्षणों से तो मुक्ति का स्वरूप बालकों के खेल से अधिक महत्वपूर्ण नहीं ठहर सकता। क्योंकि जिसके जो मन में आया, उसने उसे ही मुक्ति का स्वरूप मान लिया। शैवों ने महादेव जी की पूजनोपासना से शिव जी के समीप स्थिति ही को मोक्ष मान ली, वैष्णवों ने वैष्णव धर्म के अनुष्ठान से विष्णु की कृपा होजाने पर विष्णु लोक में स्थिति को ही मुक्ति बतला दी। यहां तक कि गो लोक में रासलीला की कल्पना में भी लोगों ने मुक्ति के दर्शन कर लिए, रसेश्वर वादियों ने पारद (पारा) के सेवन में ही मोक्ष बतला दी और काशी आदि में मरना भी मोक्ष गिना जाने लगा। धन्य है इस दार्शनिक-संसार की कल्पनाओं को, जिनके पीछे संसार अपना सर्वस्व लुटाकर शान्ति की मृगतृष्णा में मारा-मारा भटक रहा है। यदि ये भी मुक्ति के स्वरूप हैं तो बच्चों का खेल भी मोक्ष है—इसमें क्या सन्देह? जिसके जैसी मनमें आवे वह उसे ही मोक्ष क्यों न माने? बच्चे भी कह सकते हैं हमारा खेल ही मोक्ष है, पर इन सब में सत्य क्या है इसे ढूंढना हमारा काम है।

हम पहले कह चुके हैं द्वैत की भावना द्वैत और अद्वैत की चिन्तना अद्वैत का कारण है। हम इस में सब कुछ सत्य पा सकते हैं। उक्त कथन की सत्यता और विशेषता पर ध्यान देकर जैनों ने जीव और जड़ को मुख्य माना है। इसका तात्पर्य यह है कि जीवको जड़का संसर्ग दुःख दायी है। सुख की प्राप्ति के लिए जीव को पुद्गल से सम्बन्ध-विच्छेद कर देने की आवश्यकता है। जीव जब अपने तपोबल से स्व-स्वरूप में लीन होजाता है, तब संसार-बन्धन के कारण भूत कर्मों का संसर्ग भी छूट जाता है*। इस अवस्था में उसके दुःख निवृत्त हो जाते हैं और अपने स्वभाविक गुणों की प्राप्ति हो जाती है। कर्म बन्धन से एकबार छुटकारा मिल जाने पर आगे किसी कारण के न रहने से पुनः बन्ध की आशंका नहीं रहती। जैसे जला अंकुर पुनः नहीं उगता।

अपूर्ण

(*) यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा॥

नीमाड़ प्रान्त में जैनधर्म
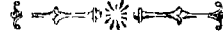
[ले०—विष्णुकुमार जैन शास्त्री]

मध्यभारत का वह भूभाग जो विन्ध्याचल और सत्पुड़ा पर्वतों के बीचका है, नीमाड़ कहलाता है। प्राकृतव्याकरणानुसार नीमाड़ शब्द की व्युत्पत्ति निम्न १ प्रकार है:—

निम्न+आवर्त (नीचे का प्रदेश)

आवर्त–आवट्ट–आवड्ड–आवाड़

निम+आवाड़

निम+आड़ – निमाड़ (नीमाड़)

अथवा– निम्न–पट्ट (नीचा प्रवाह)

पट्ट–वट्ट–वड्ड–वाड

निम–वाड़ | नीमाड़

इस तरह यह प्रदेश मालवा से निम्न (नीचा) होने से या विन्ध्याचल और सत्पुड़ा के मध्य का "निम्न प्रदेश" होने से निमाड़ या नीमाड़ सिद्ध हुआ प्रतीत होता है। नीमाड़ प्रान्त और जैनधर्म का आदर पूर्वक सम्बन्ध प्राचीनकाल से लगाकर आज तक पाया जाता है। जिस समय भोगभूमि का अंत और कर्मभूमि का प्रारम्भ हुआ, उस समय भगवान आदिनाथ स्वामी ने जन्म लेकर जनता को, संसार में सभ्यता पूर्वक जीवन-यापन करने की शिक्षा दी और समाज व राज्य का कार्य सुचारु रूप से चलने के नियम बनाये। तत्पश्चात् तपस्या कर केवल ज्ञान प्राप्त किया और धर्म का मार्ग जनता को बतलाया। धर्म प्रचार के सिलसिले में भगवान आदिनाथ स्वामी का विहार नीमाड़ प्रान्त में भी हुआ था। इस तरह नीमाड़ प्रान्त का जैनधर्म से सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन है। श्री ऋषभ भगवान के बाद अन्य तीर्थंकरों ने भी अपने पवित्र चरणों से इस प्रान्त को पावन किया था। भगवान नेमिनाथ स्वामी का समवसरण नीमाड़प्रान्त के ऐतिहासिक प्रसिद्ध नगर माहिष्मती (महेश्वर) में आया था।

"प्रद्युम्न चरित्र" काव्य के निर्माता श्री महासेन आचार्य, दिग्गज विद्वान् श्री अमितगति आचार्य, "नीतिवाक्यामृत" के निर्माणकर्ता श्री सोमदेव सूरि, "भक्तामरस्तोत्र" के रचयिता श्री मानतुङ्गाचार्य, "द्रव्य संग्रह" के कर्ता श्री नेमिचन्द्राचार्य और "सुदर्शन चरित" के निर्माता श्रीनयनानन्दी आचार्य ने नीमाड़ प्रदेश पवित्र किया था एवं इन्हीं दिगम्बराचार्यों ने अपनी २ उक्त रचनाएं इसी प्रान्त में रची थीं। २

नीमाड़ प्रान्त से करोड़ों मुनियों का मोक्ष३ जाना ही इस प्रान्त में जैनधर्म की बाहुल्यता का प्रमाण है। नर्मदा नदी के दोनों किनारों से साढे पाँच करोड़ मुनियों ने मोक्ष प्राप्त किया।

श्री सिद्धवरकूट से दो चक्रवर्ती और दश काम देव साढ़े तीन करोड़ मुनियों सहित मोक्ष गये।

१ [illegible]   २ दिगम्बरत्व और दि० मुनि   ३ निर्वाणकाण्ड

श्री चूलगिरि (बड़वानी) से इन्द्रजीत और कुम्भ करण ने निर्वाण पद पाया ।

श्री पावागिर (मु० ऊन) से स्वर्णभद्रादि चार मुनीश्वरों ने सिद्धपद प्राप्त किया ।

श्री पावागिर सिद्धक्षेत्र अभी प्रकाश में आया है । यूं तो नेमाड़ प्रान्त का इतिहास शृंखलाबद्ध नहीं मिलता और न इसका क्रमबद्ध इतिहास लिखागया है, अतएव शृंखला पूरी करने के लिये अनुमान और तर्क से विशेष काम लेना पड़ता है । हां यह बात अवश्य है कि इतिहास क्षेत्र के आवश्यकीय अंग अनुमान और तर्क भी, यथेष्ट प्रमाणों के द्वारा सच्चे मार्ग प्रदर्शक होसकते हैं, अस्तु ।

निर्वाण काण्ड में सिद्धक्षेत्रों की वन्दना क्रम से की है । १२ वीं गाथा में श्री सिद्धवरकूट, १३वीं में श्री चूलगिरी (बड़वानी) १४ वीं में श्री पावागिर और १५ वीं गाथा में द्रोणगिरि को नमस्कार किया है । इस क्रम नियम से यह विदित होता है कि श्री पावागिर सिद्धक्षेत्र बड़वानी अथवा द्रोणगिर के समीप होना चाहिये । परन्तु स्व० कवि जगतराम जी कृत बृहत निर्वाण विधान में लिखा है कि— "बरनगर निकट उतंग परवत नाम पावागिर परो। ताके समीप सुनदी चलना नाम तट ताको धरो।

इससे श्री पावागिर का बरनगर (बड़वानी) निकट होना सिद्ध होता है । बड़वानी के निकट ऊन के सिवाय और कोई ऐसा स्थान नहीं है जहां जैन तीर्थ होने का निश्चय होसके तथा दूसरी बात यह है कि इस स्थान पर नदी ठीक किनारे से होकर बही है एवं चेलना का चेरक और चेरक का अपभ्रंश 'चिरूढ' होगया होगा ।

श्रावण शुक्ला ६ ता० १६-८-३४ को श्री० दा० वी० ती० भ० शि० रा० ब० रा० भू० रावराजा सर सेठ हुकमचन्द जी सा० के सभापतित्व में सभा होकर श्री वि० वा० पं० खूबचंद्र जी शास्त्री, सि० शा० पं० बंशीधर जी शास्त्री, महोपदेशक पं० कस्तूर चंद्रजी, न्या० ती० प० जीवन्धर जी और वयोवृद्ध प० पन्नालाल जी गोधा प्रभृति विद्वानों ने भी इसी स्थान को श्री पावागिर सिद्धक्षेत्र होना सिद्ध किया है । सारांशतः इन तीन सिद्धक्षेत्रों का निर्माण होना और विपुल संख्या में मुनिराजों का विचरना व मोक्ष जाना ही इस प्रान्त में जैन धर्म का अच्छी तरह से प्रसार होने का प्रमाण है ।

आषाढ़ कृष्णा ८ वी० सं० २४६० के दिन चैतन्यलाल जी को स्वप्न होकर ५ प्रतिमाएं व चरण पादुकाएं ज़मीन से निकलीं, जिनमें तीन फुट ऊंची श्री महावीर स्वामी की पद्मासन प्रतिमा की शान्ति मुद्रा दर्शनीय है; जिनमें सं० १२५२ अंकित है और श्री प्रभाचन्द्राचार्य और मंडोवरा एवं बल्हद ये नाम खुदे हुये हैं ।

बल्हद है या बल्लाल-यह स्पष्टरीति से दृष्टिगोचर नहीं होता किन्तु बल्हद की अपेक्षा बल्हाल (बल्लाल) ही होना चाहिये । क्योंकि किंवदन्ती है कि— राजा बल्लाल ने रोगमुक्त होने के कारण इन मन्दिरों का निर्माण किया एवं इतिहासकार भी राजा बल्लाल को इन मंदिरों का निर्माता स्वीकार करते हैं । परन्तु यह बल्लाल होयलवंशी द्वारसमुद्र (वर्तमान हैलेबीड़ि मैसूरराज्य) का था परमार वंशी मालवे का? इसमें इतिहासकारों का मतभेद है ।

पुरातत्व विभाग इंदौर स्टेट के भू० पू० उच्च अधिकारी श्री प्रो० रामेश्वर गौरीशंकर ओझा एम.ए

राजा बल्लाल को मालवाधिपति मानते हैं जबकि अक्टूबर और नवम्बर सन् १९३२ ई० की "इण्डियन एन्टिक्वेरी" में श्री० डॉ० सी० गंगुली महोदय ने मालवे के पमारवंशी जयवर्मा को द्वार समुद्र के होयसलवंशी बल्लाल द्वारा पराजित होना बतलाया था अस्तु; यह बात तो निर्विवाद सिद्ध है कि ऊन के मन्दिर निर्माता राजा बल्लाल थे।

सुप्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता स्व० श्री रखालदास जी बैनर्जी के मतानुसार उत्तर भारत में ऊन के सिवाय ऐसा और कोई स्थान नहीं है जहां इतने अधिक प्राचीन देवालय अबतक सुरक्षित एवं अर्द्ध-रक्षित दशा में विद्यमान हो।

इन मन्दिरों की कारीगरी भारतवर्ष की स्थापत्य कला कुशलता का उज्वल प्रमाण है। इनकी तक्षण कला खजुराहों के लोक प्रसिद्ध मन्दिरों से कुछ ही हलकी सी जान पड़ती है।

इस प्रकार श्री पावागिर सिद्ध क्षेत्र (मु० ऊन) के मध्यकालीन मन्दिर समूह नीमाड़ प्रान्त में जैन धर्म का शानदार अस्तित्व बतलाते हैं।

वर्तमान समय में भी खण्डवा, सनावद, बड़-वानी, बड़वाहा, महेश्वर और मनावर आदि स्थानों में स्कूल, पाठशाला औषधालय, बोर्डिङ्ग आदि संस्थाएं अच्छी तरह से उन्नति करती हुई चल रही हैं।

अगर जैन इतिहासज्ञ श्री पावागिर सिद्धक्षेत्र (मु० ऊन) की तरफ दृष्टि डालें तो जैनधर्म का नीमाड़ सम्बन्धी इतिहास बहुत कुछ प्रकाश में आजायेगा। धनीमानी सज्जनों से प्रार्थना है कि इस स्थान का जीर्णोद्धार शीघ्रातिशीघ्र करें जिससे लाखों रुपये की लागत के मन्दिरों की रक्षा हो।

अंगुष्ठ विज्ञान

[ले० श्री० मा० पांचूलाल जी काला, जयपुर]

[शरीर के लक्षणों को देखकर प्राणी जीवनकी घटनाओं का अध्ययन कर लेना सामुद्रिक विद्या कहलाती है। प्राचीन काल में भारत ने इस संबंध में बहुत कुछ तरक्की की थी इस समय पाश्चात्य विद्वान भी इस विद्याका बड़ी तत्परता के साथ अध्ययन कररहे हैं, और इस संबंध में नये २ ग्रन्थ भी लिख रहे हैं। सामुद्रिक विद्या के द्वारा अगर मनुष्य अपने भविष्य जीवन का ज्ञान प्राप्त करले तो बहुतसी विपत्तियों से छुटकारा पा सकता है। सामुद्रिक विद्या भारत के प्रसिद्ध ८ महानिमित्त ज्ञानों में अंग व्यञ्जन अथवा लक्षण नामक निमित्तों में आजाती है। भारत के प्राचीन निमित्तज्ञों ने इस संबंध में बड़े २ ग्रंथ लिखे हैं। बहुत से धूर्त आजकल सामुद्रिक विद्या के विशेषज्ञ होने का बहाना बनाकर लोगों को ठगते फिरते हैं। बहुत से भोलेभाले भाई और खासकर स्त्रियें इनके फन्दे में आकर व्यर्थ आर्थिक हानि उठाया करती हैं। जैनदर्शन के पाठकों को सामुद्रिक विज्ञान के संबंध में कुछ परिचय प्राप्त हो और इस संबंध में कुछ अनुराग भी पैदा हो इस लिये यह लेख प्रकाशित किया जाता है। श्रीमान मास्टर पांचूलाल जी काला जयपुर रमलशास्त्र और सामुद्रिक विज्ञान के विशेषज्ञ हैं। आप अपने परीक्षित अनुभवों को जैनदर्शन में अवकाशानुसार प्रकाशित कराते रहेंगे। हस्त विज्ञान में अंगूठे का एक विशेष स्थान है। इस लिये सर्वप्रथम आपने इसी विषय पर लिखने की कृपा की है। आशा है पाठक ध्यान पूर्वक अध्ययन कर आपके लेखों से फायदा उठायेंगे]

—चैनसुखदास जैन

हाथ में अंगूठा एक मुख्य स्थान रखता है। अंगूठे से मनुष्य के कई गुण मालूम होते हैं। अंगूठे से दिमाग का सीधा संबंध है अगर मनुष्य की शक्ति का पता लगाना है तो अंगूठा देखना सीखो। अंगूठे से मुख्य कर तीन बातों का ज्ञान होता है— (१) हिम्मत—इच्छाशक्ति (Will Power) (२) दलील—विचारशक्ति (Logic) (३) मोहब्बत—प्रेम (Love) अंगूठे के दो भेद हैं (१) मजबूत—दृढ़ (Firm jointed) और (२) कोमल—लचकीला, ढीला (Supple jointed) जिसका अंगूठा कोमल लचकीला व इधर उधर झुकने वाला कमजोर होता है, उसके स्वभाव में अस्थिरता रहती है। वह दूसरों के प्रभाव में आकर अपने विचारों को बदल देता है, जब कि मजबूत अंगूठे वाला अपना प्रभाव दूसरों पर डाल देता है। पागलखाने में अधिकांश पागल कोमल अंगूठे वाले होतेहैं। कोमल अंगूठे वाले स्वतंत्र राय के नहीं होते वे औरों की राय का इन्तजार करते हैं और कभी २ कहते हैं कि "आपकी राय सो मेरी राय" ऐसे आदमी मौके पर घबड़ा भी बहुत जाते हैं और बीमारी में भी बहुत हाय तोबा मचाते हैं। उनको जरा २ सी बात पर क्रोध भी आजाता है। कोमल अंगूठे वाले लड़ाई में ठोस अंगूठे वाले से हार जाते हैं। परन्तु पोलीटिकल

Political वालों में उनको हरा देते हैं। क्यों कि ये (कोमल अंगूठे वाले) बड़े चोकन्ने, होशियार, वहमी, चालबाज, और तरकीवों के सोचने वाले होते हैं। उनको (ठोस अंगूठे वाले) अकड़ाई से लाभ उठाते हैं, हाकिम से खूब मिल जाते है। ये खुशामद करना खूब जानते हैं और स्वयं भी खुशामद से खुश होते हैं । ऐसे लोग ललितकला (Fine art) के कार्यों में अच्छी सफलता प्राप्त कर सकते हैं यदि स्थिर हो कर लगातार कार्य करें (क्यों कि इनमें इसका अभाव होता है) लचकीले अंगूठे वाला तारीफ किये जाने पर खूब काम करता है। उनके लिये बार २ हिम्मत दिलाना जरूरी होता है। ऐसे आदमियों की सभा खूब तारीफ करे तो दान के समय खूब दातारी दिखावेंगे। यदि अभाग्यवश उनके पास द्रव्य न हो तो दुखी होंगे। और कहेंगे हाय हमारे पास रुपया नहीं है। इनकी बुराई मत करो नहीं तो इनका दिल मर जायगा और ये उत्साह हीन हो कर बैठ जायंगे क्यों कि इन में बुराई सुनने की ताकत नहीं होती। इनकी तबियत जरा सी बातों में बदल जाती है। शरम या अत्यंत दुख के समय ऐसे ही लोग आत्मघात कर लेते हैं। थोड़ा सा भी दुःख उनको पहाड़ मालूम होता है।

मजबूत दृढ़ अथवा करड़े अंगूठ वाला मनुष्य स्वेच्छाचारी, हठीला (जिद्दी) होता है। यह अपनाप्रभाव दूसरों पर डालता है, और अपनी ही राय को उत्तम मानता है । ऐसे अंगूठे वाले को अधिकार में रखना कठिन है। इस अंगूठे वाला मनुष्य स्वतंत्र होकर कार्य करता है। उसकी अपनी ही अलग राय होती है, यह Practical (विचारानुसार त काल कार्य करने वाला) भी अधिक होता है। दृढ़ अंगूठे वाले मनुष्यों को छोटी २ बातों पर बार-बार क्रोध नहीं आता। वे किसी धुन या विचार के पक्के होते हैं। और इन्साफ पसन्द भी । अपने कार्य में सफल होने के लिए ऐसे लोग पूरी शक्ति का उपयोग करते हैं। और कार्य के लिए अपने आपको मशीन समझते हैं लड़ाई में मैदान छोड़ कर नहीं भागते, मित्रता को अंत तक निभाते हैं। हरएक बातमें सत्य की खोज करना अपना कर्तव्य समझते हैं खुशामद लल्लू चप्पू, जी हजूर करना उनकी तबियत के विरुद्ध होता है।

ये लोग धर्म में सादगी को पसंद करते हैं। बनावटी और दिखाऊ धर्म उनको पसंद नहीं आता । ये अपने मतलब को अधिक समझते हैं। और समझते हैं कि संसार में हम भी कोई हैं। दूसरों को आधीन रखने की उनमें शक्ति होती है, और मिजाज में अकड़ाई। उनका प्रेम ठोस होता है। और अधिक प्रेम घर से होता है। ये लोग काम को अधूरा नहीं छोड़ते । समय को काम में लाना खूब जानते हैं, पर फैयाज (दातार)नहीं होते।ये हरएकसे शीघ्र मेलजाल नहीं करते, किन्तु शक्ति से राज करना चाहते हैं । इनमें तरकीबें कम होती हैं। ऐसे आदमी लड़ाई, पुलिस, जंगलों, पहाड़ों अर्थात् संगीन सख्त कामों के लिये विशेष उपयोगी होते हैं।

अंगूठे पर एक मनोरंजक मजाक

एक समय अकबर बादशाह को दरबार में जंभाई (Yawn) आई। लोगों ने चुटकियां बजाई किंतु बीरबल ने अंगूठा दिखाया। इस पर लोगों ने बादशाह

से शिकायत की और कहा, देखिये हजूर बीरबल आप को अंगूठा दिखाता है। बादशाह ने लोगों की बात सुन कर बीरबल से इसका जवाब मांगा, तो उसने उत्तर दिया, सरकार ! ये लोग आपको चुटकियों में उड़ाना चाहते हैं, पर मैं अंगूठा दिखाकर कहता हूँ कि बादशाह का तो बाल भी बांका न होगा। अकबर इस उत्तर को सुनकर बड़ा खुश हुआ। यहां बीरबल ने अंगूठे में हिम्मत दिखाई है।

तुर्क औरतों की लड़ाई

तुर्क औरतों की लड़ाई प्रसिद्ध है, ये जरा २ सी बातों में झगड़ा कर बैठती हैं। झगड़े की हालत में खूब बोली ठोली होती है। उस समय ये औरतें बातर में अंगूठे को नचाती हैं, और अपनी हिम्मत का सबूत देती हैं।

अंगूठे की कहावत (Proverb)

जब किसी मनुष्य से किसी मामले या लेनदेन की बातचीत चल रही हो और वह मुकर जाय तो लोग कहदेते हैं कि उसने तो अंगूठा दिखा दिया।

प्राचीन समय की बात

प्राचीन काल में योरुप के यूनान आदि अनेक देशों में विजयी लोग अपने दुश्मनों का अंगूठा कटवा डालते थे। ऐसा करने से उनका यही आशय था कि दुश्मनों की शक्ति को सदाके लिये छीन लिया जाय। अंगूठे में मनुष्य की शक्ति सन्निहित रहती है। महाभारत में लिखा है कि द्रोणाचार्य ने अपने शिष्य एकलव्य (क्योंकि द्रोणाचार्य उसको उन्नत नहीं देखना चाहते थे) का जो बाण विद्या में बड़ा चतुर हो गया था और जो क्षत्रिय पुत्र भी नहीं था, गुरु-दक्षिणा में उसका एक अंगूठा कटवा लिया था।

बालक का अंगूठा

योरुप की चतुर दाइयां जानती हैं कि यदि नव-जात बालक कुछ दिनों तक अपना अंगूठा अंगुलियों के नीचे दबाये रखे, तो वह शरीर से कम हो जाता है। इतना ही नहीं, किन्तु यदि अधिक दिनों तक अंगूठे को दबाये रखे तो बच्चे की बुद्धि का भी ह्रास होजाता है। यदि कोई बालक या मनुष्य अपना अंगूठा बार २ नीचा करे, या अंगुलियों के नीचे दबावे तो समझो शरीर में कुछ खराबी होने वाली है। इस से यह सिद्ध होता है कि शक्ति और बुद्धि का अंगूठे के साथ घनिष्ट संबंध है।

अंगूठा और तिलक

हिम्मत और उत्तम विचार शक्ति से कार्य की सिद्धि होती है। निर्बल और विचार हीन मनुष्य संसार में सफलता को नहीं पा सकते। इस लिये सफलता संपादन करने के प्रत्येक साधनों में शक्ति और विचारों का सम्मिश्रण होना चाहिये इसी बात को खयाल में रखकर अभिलषित कार्यों की सफलता के लिए मस्तक में किस्मत के स्थान पर अंगूठे द्वारा लाल रंग वाली रोली से तिलक किया जाता है। अंगूठे से तिलक करना हिम्मत और कार्य सिद्धि की सूचना करना है

अंत समय अंगूठा

जब कोई बीमार मरने को होता है तो अंत समय में उसके अंगूठे की अकड़ाई जाती रहती है। वह ढीला पड़ जाता है। यदि किसी बीमार के अंगूठे की अकड़ाई यकायक जाती रहे तो समझो बीमार अवश्य मरेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि जिस मनुष्य का अंठा स्वभाव से गाँ

ही लचकीला वह बीमारी में जिंदा भी मुर्दा के बराबर है। यदि बीमारी में करड़े अंगूठे वाला बहुत हाय तोबा करे तो समझो तकलीफ काबले बरदाश्त नहीं है।

मुड़ने वाले अंगूठे

अंगूठे दो जगह से मुड़ा करते हैं। एक नाखून वाले बीचके जोड़ पर अथवा अंगूठे के आधार अर्थात दूसरे जोड़ पर, पहली तरह के अंगूठे वाले मनुष्य दूसरों के प्रभाव में आ जाते हैं, और स्वयं अपने विचारों के कमजोर होते हैं। ऐसे मनुष्य दूसरों के लाभ के लिए अपना नुकसान कर लेते हैं समय और धन खर्च करने में विचारवान नहीं होते धन के विचार से उनमें कमीनापन कभी नहीं होगा। पांच आदमियों में उनकी तारीफ हो तो वे नाम और तारीफ के लिये द्रव्य देंगे (यदि पास में धन हो) परन्तु जिनका अंगूठा दूसरे जोड़ पर से झुका हुआ धनुषाकार होता है वे आसानी से किसी के प्रभाव अथवा धोके में नहीं आसकते। और जहां धन के खर्च का सवाल उपस्थित हो वहां वे रूखेपन से काम लेते हैं।

कैसे अंगूठे वाले से कौनसा काम लेना चाहिये।

कोमल अंगूठे वाले को जज (न्यायाध्यक्ष) पंच (मध्यस्थ) एलची (राजदूत) सिपहसालार (सेना पति) सिपाही (जहाज का कप्तान) सर्जन (डाक्टर) पहलवान, लीडर और पथप्रदर्शक मत बनाओ। उपरोक्त कार्य मजबूत अंगूठे वाले से लेना ही बेहतर होगा। पर उससे नाजुक कार्य मत लो लचकीले, पतले, नुकीले अंगूठे वाले से गाने बजाने, चित्रकारी आदि के नाजुक काम (Fine arts) लो। इससे मीठी २ बातें बनालो। मगर मुश्किल सख्त काम के लिए वह हिम्मतहार होगा।

मुलायम अंगूठे वाला हाकिम

जब मुद्दई मुद्दायले के दोनों वकील किसी मुकद्दमे में जोरदार बहस कर रहे हों तो मुलायम अंगूठे वाले हाकिम की बड़ी खराबी आती है। यदि दोनों ही वकील जबर्दस्त दलीलें पेश कर रहे हों तो बेचारा नाजुक अंगूठे वाला हाकिम अपने विचारों को स्थिर नहीं रख सकता और जिस वकील की आखिरी बहस मजबूत और जोरदार होती है उसी की तरफ वह भी हो जाता है। इसीलिए जो वकील चतुर और समझदार होते हैं, उनकी दलीलें प्रारंभ में साधारण किन्तु अंत में जोरदार और अकाट्य होती हैं।

वे अपनी अंतिम दलीलों से न्यायाध्यक्ष को प्रभावित कर मुकद्दमे को जीत जाते हैं। क्यों कि कोमल अंगूठे वाले पर आखिरी बहस का ही प्रभाव पड़ता है। उचित यह है कि ऐसे अंगूठे वाला आदमी हाकिम ही न बनाया जाय

वकील का अंगूठा

अंगूठे में ३ पोरुवे होते हैं। जिस मनुष्य का दूसरा पोरुआ बड़ा सुंदर और ठीक तौर से संगठित अथवा ठोस बना होगा वह बहस करने में चतुर होगा। परन्तु साथ ही में चौथी उँगली भी बड़ी होनी चाहिये। और उसका नाखून वाला पोरुआ नोकीला तथा बीच के पोरुवे से

बड़ा हो ऐसा होने से वह बात करने में चतुर होगा। मौके पर ठीक जवाब तत्काल देगा। इस उंगली के बड़ी होने से (अनामिका—तीसरी उंगली के नाखून वाले पहले पोरुवे के जोड़ से जरा ऊपर निकल जाने पर चिट्टी को बड़ी कहते हैं) तहरीर और तकरीर में अच्छा रंग देगा यदि उसकी मस्तक रेखा गहरी और उत्तम होगी तो उसके विचार भी गहरे और बढ़िया होंगे। क्यों कि वकील का दिमाग ही तो काम करता है।

दो पार्टियों में किसकी हार

किसी खेल में ग्यारह-ग्यारह खिलाड़ियों की दो पार्टियां बनाओ। यदि इनमें एक तरफ कोमल अंगूठे वाले और दूसरी ओर दृढ़ अंगूठे वाले खिलाड़ी हों तो कोमल अंगूठे वाले सब खिलाड़ी कुस्ती आदि में हार जावेंगे। मगर पोलिटीकल चालों में कोमल अंगूठे वालों से दृढ़ अंगूठे वाले नहीं जीत सकते। इसके लिये मस्तक रेखा (Head Line) का देखना भी जरूरी है।

कोण (Angles)

अंगूठा और तर्जनी के बीच का कोण जितना अधिक चौड़ा और अधिक फैलाव वाला होगा मनुष्य उतना ही स्वतंत्र विचार का होगा, अपने ऊपर उसका दृढ़ विश्वास होगा, परोपकारी होगा परन्तु असाधारण रूप से नहीं।

विषम कोण (Acute angle) वाला पुराने रस्म रिवाजों की ओर झुका हुआ रहता है और उपरोक्त गुणों से उल्टी बातें उसमें पाई जाती हैं। उसकी आत्मा कमजोर और स्वतंत्र-विचार हीन होती है और वह डरपोक तथा चेष्टा रहित होता है परन्तु अपने मतलब में नहीं चूकता, सतर्क होता है।

सीधा और मजबूत अंगूठा

अंगूठा जितना सीधा और मजबूत होता है मनुष्य के विचार भी उतने ही स्वतंत्र और दृढ़ होते हैं। ऐसे अंगूठे वाले मनुष्य अपनी धुन के पक्के होते हैं। अपने विचारों में लगे रहते हैं और अंत में उन्हें पूरा करके छोड़ते हैं। अर्थात् वे स्थिर स्वभाव वाले और पूरी कोशिश करने वाले होते हैं।

(अपूर्ण)

निवेदन

लेखक महानुभावों से निवेदन है कि वे अपने लेख व कविताएं पं० चैनसुख दास जैन, मणिहारों का रास्ता जयपुर सिटी के पते से भेजने की कृपा करें।

व्यायाम की महत्ता

[ले० श्री० पं० भंवरलाल न्यायतीर्थ]

शरीर के स्थिर रखने के लिये प्राणी मात्र को शारीरिक परिश्रम की आवश्यकता है। जिस प्रकार बिना अन्न-जल के शारीरिक स्थिति नहीं रह सकती उसी प्रकार शारीरिक परिश्रम के बिना मनुष्य का जीवित रहना असम्भव है।

यों तो संसार में सभी मनुष्य शारीरिक परिश्रम करते रहते हैं। यदि कोई आजीविका के निमित्त करता है तो कोई अन्य कार्य के लिये। किन्तु जो परिश्रम शरीर को सुसंगठित, सुन्दर और शक्तिशाली बनाने के लिए नियमित रूप से किया जाता है वह व्यायाम (Exercise) कहलाता है। इस प्रकार के नियमित व्यायाम के द्वारा हमारे शरीर से गन्दा पसीना बाहर निकल आता है और शरीर के सम्पूर्ण अवयवों को सञ्चालन शक्ति प्राप्त होती है। वक्षस्थल उभरा हुआ दिखाई देता है। शरीर सुडौल एवं शक्तिशाली बन जाता है। व्यायामी मनुष्य के हृदय में शान्ति की लहरें हिलोरें मारा करती हैं उसे व्यर्थ के कारणों से कभी भी क्रोध उत्पन्न नहीं होता किन्तु इसके विपरीत जो निर्बल हैं और व्यायाम नहीं करते उन्हें बहुत शीघ्र मामूली कारणों से गुस्सा आजाता है। वास्तव में यह कहावत ठीक है कि 'कमज़ोर गुस्सा ज्यादा'। ऐसे मनुष्यों का स्वभाव चिड़चिड़ा एवं झगड़ालू होजाता है। वे कलहप्रिय बनजाते हैं। *ऐसे मनुष्य कभी भी उन्नतिशील नहीं होसकते।* उनका जन्म संसार में भारस्वरूप ही है।

ऐसी ही दशा आज हमारे भारत के युवक और युवति समाज की है जिसमें खास तौर से हम जैनों की तो बहुत ही शोचनीय है। जिधर देखो उधर कमजोर ही कमजोर नजर आते हैं। किसी के भी मुख पर अद्भुत तेज और आभा दिखाई नहीं देती। जो समय फलने और फूलने का है वही पतझड़ का मौसम होजाता है। कोई क्षयसे ग्रसित होजाता है तो कोई प्रमेह उपदंश आदि से। ऐसे बहुत कम हैं जो किसी भी रोग से पीड़ित नहीं। जब बीमारियां ही पीछा नहीं छोड़तीं तो यह आशा कैसे की जासकती है कि इनसे जाति, धर्म और देश का किञ्चित् मात्र भी उपकार होगा। इस उन्नति की दौड़ में जैन जाति का सबसे पीछे रहने का यही कारण है कि इसमें शारीरिक परिश्रम अर्थात् व्यायाम का अभाव है। वास्तव में संसार में निर्बल व्यक्तिका कोई स्थान नहीं है। क़दम क़दम पर उसके लिए कांटे बिछे हुए हैं। संसार उस को कोई वक़त नहीं करता। जिस प्रकार एक गजराज एक साधारण वृक्ष को बिना अधिक परिश्रम के ही उखाड़ फेंक देता है उसी प्रकार एक निर्बल मनुष्य को हर कोई कुचल डालता है। उसके लिए कोई शक्ति जुटाने की आवश्यका नहीं होती। किन्तु शक्तिशाली मनुष्य का सामना करना ज़रा टेढ़ी खीर है। उसके नाम से संसार डरता है। इसके लिए भीष्मपितामह, हनुमान, भीम, अर्जुन, अभिमन्यु, रुस्तम नेपोलियन बोनापार्ट और महाराणा प्रताप आदि का उदाहरण दे सकते हैं जिन्होंने अपनी वीरता से शत्रुपक्ष की आंखों में चकाचौंध उत्पन्न करदी थी। यह उनकी वीरता का ही प्रभाव है कि कई युगान्तर व्यतीत हो जाने पर भी आज उनका नाम अजर अमर और

जीवित है। दुनियां के एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक उनका गुण गायन होता है। किन्तु हाय ! आज हम भारतीयों के हिस्से में तो उनका गुणानुवाद ही आया है। उनकी सी शक्ति तेज और पराक्रम तो कहीं खोजने पर भी नहीं मिलता।

इस लिए जिस प्रकार मनुष्य अपनी आर्थिक एवं धार्मिक अवस्था को सुधारने के लिए सतत प्रयत्न करता है। उसी तरह शारीरिक शक्ति को भी सुधारने के लिए प्रयत्न करना चाहिये। जब तक शारीरिक शक्ति ठीक न हो तब तक मनुष्य किस तरह धन एवं धर्मोपार्जन कर सकता है। कवि कालिदास ने कहा है कि 'शरीरमाद्यं खलुधर्मसाधनम्'। अतः शरीर को धर्म पालन एवं धनोपार्जनका प्रधान साधन समझ कर बलिष्ट बनाने की चेष्टा करनी चाहिये। मानसिक शक्ति को भी ठीक रखने के लिए शारीरिक शक्ति को ही ठीक रखना आवश्यक है। क्योंकि मानसिक और शारीरिक शक्ति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिस व्यक्ति की शारीरिक शक्ति ठीक है उसी में मानसिक शक्ति की प्रबलता देखी जाती है। यही कारण है कि जैनों की मानसिक शक्ति ठीक नहीं है।

इसलिये यह निर्विवाद है कि किसी भी शक्ति को प्राप्त करने के लिये प्रथम शारीरिक शक्ति को दृढ़ बनाने की आवश्यकता है इसलिये मैं पाठकों को यह बतलाना चाहता हूं कि शरीर को दृढ़ बनाने वाला व्यायाम कौनसा है यद्यपि मैंने अबतक कोई नई बात नहीं बतलाई है और न शायद इस लेख में आगे ही मिलेगी। किन्तु फिर भी जैनदर्शन के पाठकों को बार बार व्यायाम के सम्बन्ध में उत्तेजना मिलती रहे और वे अपना कार्य ठीक रूप से करते रहें बस केवल इसी उद्देश्य से पाठकों की सेवा में उन शब्दों को लिखा है।

व्यायाम कैसा होना चाहिये ?

वैसे तो व्यायाम करने के अनेक तरीके हैं जैसे टहलना, तैरना इत्यादि। किन्तु इनसे शरीर सुडौल एवं हृष्टपुष्ट नहीं बन सकता। हाँ यह अवश्य कहा जा सकता है कि ये मनुष्य को तन्दुरुस्त रखने के साधन हैं। यदि वास्तव में देखा जाय तो डंड, बैठक मुगदर, सैण्डो कुश्ती, चेष्ट एक्सपेण्डर और जमनास्टिक आदि ही शरीर को सुसंगठित और हृष्टपुष्ट बनाने के साधन हैं। किन्तु ये प्रत्येक कसरतें प्रत्येक मनुष्य के लिए लाभप्रद ही हैं, यह नहीं कहा जा सकता। क्योंकि व्यायाम की व्यवस्था भिन्न २ व्यक्तियों के लिये भिन्न २ प्रकार की है। प्रथम तो इसकी व्यवस्था मनुष्य की अवस्था पर निर्भर है। करीब दस या बारह वर्ष तक के बालक को कोई भी व्यायाम की आवश्यकता नहीं। वह स्वयं ही प्रातःकाल से सायंकाल तक खूब दौड़ता है और खेलता रहता है इस उम्र के पश्चात उसको थोड़ी २ कसरत करके अभ्यास बढ़ाना चाहिये। वास्तव में खूब व्यायाम करने की अवस्था १६ वर्ष से ही प्रारम्भ होती है और तरुण अवस्था तक रहती है। बस यही व्यायाम के लिये उचित समय है। आगे जाकर वृद्ध अवस्था में तो सब अंग प्रत्यङ्ग ढीले पड़ जाते हैं। अतएव अधिक व्यायाम हानिप्रद है। उस अवस्था में तो टहलना वगैरह सरल व्यायाम ही लाभदायक है। द्वितीय व्यायाम की व्यवस्था मनुष्य की परिस्थिति आहार एवं बुद्धि पर निर्भर है। जिस व्यक्ति की जैसी परिस्थिति है

उसको उसीके अनुसार कसरत करनी चाहिये अन्यथा लाभ के बदले हानि ही भुगतनी पड़ती है। यदि दार्शनिक एवं तार्किक विद्वान डण्ड जैसी कसरतें करें तो मेरे ख्याल में उनको तत्कालीन उसका फल मिल जायगा। इस लिए जो व्यक्ति बिना सोचे समझे चाहे जिस प्रकार की कसरत प्रारम्भ करदेते हैं वे भूल करते हैं। हां यह अवश्य है कि उनको उचित व्यायाम जरूर करते रहना चाहिये। ऐसी कसरतें जिनका मस्तिष्क पर अधिक दबाव पड़ता है दार्शनिकों के लिये व्यायाम है। सर्वसाधारण के लिए यह बात नहीं कही जासकती।

इच्छा शक्ति (Will Power) और व्यायाम में भी घनिष्ट सम्बन्ध है। इसलिए व्यायाम के साथ इच्छा शक्ति का प्रयोग करना उतना ही आवश्यक है जितना प्रत्येक व्यक्ति के लिए व्यायाम करना। इसके प्रयोग बिना कोई भी व्यक्ति सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। देखा जाता है कि एक लुहार अथवा स्वर्णकार दिन भर घन पर हथोड़े की चोट मारा करते हैं किन्तु उनकी कमजोर भुजा कभी हृष्ट पुष्ट एवं मजबूत नहीं बनती। इसका कारण यही है कि उनकी इच्छा शक्ति आभूषण तैय्यार करने की तरफ होती है।

यह निर्विवाद है कि शरीर के ऊपर मन का पूरा २ अधिकार है और मानसिक विचारों पर ही संसार के समस्त कार्य निर्भर हैं। मानस शास्त्रवेत्ताओं (Psychologists) का मत है कि किसी भी प्राणी का आकार बनाना, शरीर के अवयवों में परिवर्तन होना और स्वस्थ या बीमार रहना सर्वथा उसकी इच्छाशक्ति पर निर्भर है। इसलिये हम इस विलक्षण शक्तिके द्वारा शारीरिक अवयवोंका इच्छानुसार परिवर्तन कर सकते हैं। जिस शरीर के हिस्से को हम हृष्टपुष्ट बनाना चाहते हैं उससे संबंध रखने वाले ज्ञानतन्तु इच्छा शक्ति द्वारा अंगप्रत्यंग को अधिक पोषण तत्व पहुंचाते रहते हैं और इसी लिये हम तुरंत सफलता प्राप्त कर लेते हैं। सैण्डो की व्यायाम में मनुष्य की इच्छाशक्ति बहुत काम करती है और इसीलिये वह अंग जिसकी कसरत की जाती है शीघ्र सुन्दर एवं मजबूत बन जाता है। हमारे पाठकों को ध्यान रखना चाहिये कि वही कसरत शरीर को सुसंगठित बनाने के लिए पर्याप्त है जो इच्छा शक्ति के साथ की जाती है। यदि वास्तव में देखा जाय तोआधुनिक पाश्चात्य व्यायाम प्रणाली जैसे फुटबाल क्रिकेट, टेनिस, हाकी, और वाली—बाल आदि भी शरीर को हृष्टपुष्ट नहीं बना सकती कारण कि इन में इच्छा शक्ति केवल खेल के जीतने की तरफ दौड़ती है न कि शरीर की तरफ।

मेरे कहने का मतलब यह हर्गिज नहीं हो सकता कि जो व्यक्ति इन पूर्वोक्त व्यायामों को करते हैं वे भूल करते हैं। हां वे व्यक्ति जिन का उद्देश्य शरीर को शीघ्रातिशीघ्र सुडौल एवं हृष्ट पुष्ट बनाने का है इन कसरतों से विशेष लाभ नहीं उठा सकते। ये कसरतें शरीर को तन्दुरुस्त बनाये रखने के साधन हैं। इन से शरीर अवश्य दृढ़ एवं मजबूत बनता है किन्तु केवल इन्हीं से कोई पहलवान नहीं बन सकता।

अब अन्त में पाठकों से मैं यही निवेदन करना चाहता हूं कि वे व्यायाम की उपयोगिता को समझ कर प्रति दिन व्यायाम करने की प्रतिज्ञा

लें तथा दूसरों को दिलावें। जिन स्थानों पर व्यायामशालायें नहीं हैं वहां शक्त्यनुसार खर्च करके व्यायामशालायें खुलवावें।

बुजुर्ग व्यक्तियों को चाहिये कि वे अपनी सन्तानों का इस विषय में पूरा पूरा खयाल रखें उनको व्यायाम करने के लिये बाध्य करते रहें। और कुसंगत से भी बचावें। आज कल माता पिताओं के खयाल न रखने से ही उनकी सन्तानें गुण्डों बदमाशों के पञ्जे में फंस जाती हैं और अपना जीवन बरबाद कर देती हैं। ऐसे हजारों गुण्डे देखे जाते हैं जो प्रारम्भ में इस व्यायाम के बहाने से नवयुवकों को फंसा लेते हैं और फिर उनका जीवन नष्ट कर डालते हैं। इस लिए संरक्षकों को इन बातों का खयाल रखना चाहिए इसी में कल्याण है यही देश हित है और यही उन्नति का मार्ग है।

जैन तिथि और पंचांग

(ले० श्री० मिश्रीलाल सोगानी-हाथरस)

जैन समाज में जैन तिथियों की मान्यता प्रायः जैन तिथिपत्रों के अनुकूल साधारणतया सर्वत्र प्रचलित है। गत कई वर्षों से जैन तिथिपत्र देहली व इन्दौर से प्रकाशित होते आरहे हैं, किन्तु उक्त तिथिपत्रों में कभी २ कई तिथियों में फर्क पड़ जाता है। इसका कारण यह है कि दुर्भाग्य से इस समय जैन समाज में जैन ज्योतिष का ऐसा कोई विद्वान नहीं है जोकि जैन ज्योतिष शास्त्रानुसार स्वतंत्र गणित करके जैन पञ्चांग की रचना कर डाले, और वह सर्वत्र मान्य होसके। ऐसी हालत में देहली का तिथिपत्र स्वर्गीय ज्योतिषरत्न पं० जैनी जियालाल जी के पञ्चांग के आधार से श्रीमान सेठ हुकमचन्द जी जगाधरमल जी द्वारा सम्पादन होकर व इन्दौर का तिथिपत्र बंबू पञ्चांग के आधारसे श्रीमान पं० पन्नालाल जी साहब गोधा अधिष्ठाता उदासीन आश्रम द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित होता है।+

अतः दो पञ्चांगों के आधार से दो तिथिपत्र निकलने के कारण प्रायः तिथियों में फर्क पड़ जाता है। समान एकसी तिथि न होने के कारण जहाँ जिस पंचायत की एवं किसी जानकार व्यक्ति की जिस तिथिपत्र पर श्रद्धा होती है वहां उसीके अनुकूल तिथि मानी जाती है। उदाहरण के लिये अब की बार जो वीर सं २४६१ के प्रारम्भ में तिथिपत्र प्रकाशित हुये हैं उनमें देहली के तिथिपत्र में कार्तिक

+ सूरत और कलकत्तासे भी तिथिपत्र आते हैं, व अन्य स्थानों से भी आते हैं। किन्तु इस समय हमारे सामने यह दो ही तिथिपत्र हैं।

की अष्टाह्निका कार्तिक सुदी ८ बुधवार से प्रारम्भ होकर कार्तिक सुदी १५ बुधवार तक मानी है, किन्तु इन्दौर के तिथिपत्र में कार्तिक सुदी ७ मंगलवार से प्रारम्भ करके कार्तिक सुदी १४-१५ मंगलवार तक का मानी है, इसी प्रकार अन्य पर्व तिथियों में फर्क होना संभव है। इसका फल यह हुआ है कि हाथरस में मंगलवार ७ से अष्टाह्निका प्रारम्भ हुई और समीपस्थ मथुरा में बुधवार ८ से हुई। इस प्रकार अन्य स्थानों में भी घोटाला हुआ होगा। इन पृथक् स्थानों की बात तो जाने दीजिए, यहांतक देखने में आया है कि एक ही स्थानपर जहां दो चार श्री जिन मन्दिर जो जरा फासले पर हैं वहां किसी मन्दिर जी में पर्व तिथि (अष्टमी, चतुर्दशी) पहिले दिन मानी जाती है तो कहीं दूसरे दिन। इससे कहीं २ बड़ा विसम्वाद शुरू होजाता है।

इस विषय पर तिथि पत्र के मान्य सम्पादक महानुभावों का ध्यान अभीतक क्यों नहीं आकर्षित हुआ इसका आश्चर्य है। यहां पर पाठकों को यह भी जान लेना चाहिये कि दोनों तिथिपत्रोंके कर्ता महानुभाव आगमानुकूल ६ घड़ी या इससे अधिक उदय तिथि को मानते हैं, किन्तु वर्तमान में भारत में जितने पञ्चांग प्रकाशित होते हैं उनमें भिन्न भिन्न गणित पृथक २ विद्वानों के द्वारा होने के कारण प्रायः कभी कभी किसी किसी तिथि के उदयकाल का सर्वत्र फर्क हो जाता है। उक्त दोनों पञ्चांगों में भी उदय तिथि के काल (घड़ियों) का फर्क रहने से तिथियों में भी फर्क है, और इस तरह इस फर्क का निकलना भी संभव प्रतीत नहीं होता।

अतः इस तरह के फर्क का संशोधन करने के लिये विद्वानों को अपने विचार प्रकट करना चाहिये हमारी तुच्छ सम्मति में इस फर्क के निकालने के निम्न उपाय हैं, आशा है इनपर भी विद्वान लोग विचार करेंगे।

१—जैन विद्वानों को (खासकर दि० जैन शास्त्रि परिषद् को) जैन ज्योतिष शास्त्रों की खोज और अध्ययन करके उस के गणित के अनुसार स्वतन्त्र दि० जैन पञ्चांग की रचना करनी चाहिये। जैनज्योतिषके जानकार विद्वानों द्वारा स्वतंत्र पञ्चांग प्रकाशित होने से जैन धर्म और समाज दोनों का गौरव प्रकट होगा, और यह झंझट भी दूर होजावेगी।

२—जबतक जैन पञ्चांग स्वतंत्र तैयार न हो तब तक वर्तमान में प्रकाशित अजैन पञ्चांगों में से किसी एक को सर्वत्र मान्यता देनी चाहिये, ताकि उसीके आधार पर उदय तिथियों से जैन तिथिपत्रों का सम्पादन होवे।

यहां पर पञ्चांगों के सम्बन्ध में यह प्रकट करदेना और आवश्यक है कि पहिले जैन समाज में श्रीमान ज्योतिष रत्न पं० जैनी जीयालाल जी (फर्रुखनगर) जब जीवित थे तब तक उनके द्वारा सम्पादन होकर जो पञ्चांग प्रकाशित होता था उसकी सर्वत्र मान्यता थी। उसमें जैन समाज के उपकारार्थ जैन तिथियों का पृथक कोष्ठक भी रहता था। उनके स्वर्गवास होने के पश्चात उनके सुपुत्र पं० शिखरचन्द जी द्वारा पञ्चांग प्रकाशित हो रहा है उसमें भी उन्हीं का अनुकरण किया जा रहा है और इसी लिये इस प्रकार

प्रांत के अधिक स्थानों में प्रायः इसी पञ्चांग की मान्यता है।

अनुमानतः २० या २५ वर्ष से इन्दौर के (पहिले श्रीमान स्वर्गीय पं० दर्याव सिंह जी सोधिया द्वारा उनके पश्चात उदासीन पं० पन्नालाल जी साहब द्वारा सम्पादन होकर) तिथिपत्र प्रकाशित होने लगे हैं, तबसे ज्योतिष रत्न जी के पञ्चांग को अमान्य ठहरा कर चंडू पञ्चांग को मान्यता दी गई है। संभवतः उक्त महानुभावों की श्रद्धा यह रही हो कि चंडू पञ्चांग की गणित जैन ज्योतिष शास्त्रानुकूल है, और शेष की नहीं। या आपने मालवा प्रांत में सूर्यका उदय अस्त चंडू पञ्चांगके अनुकूल ठीक समझा हो। जो हो यदि पहिला कारण ठीक है तब तो विद्वानों को निश्चय करके इसी चंडू पञ्चांग की मान्यता सर्वत्र प्रसिद्ध करनी चाहिये, यदि दूसरा कारण ठीक है तो भिन्न भिन्न प्रांतों के लिये वहां के उदय अस्त की तिथि मिलाकर उन्हीं प्रांतों से प्रकाशित पञ्चांगों की मान्यता प्रकट करनी चाहिये। और यदि वास्तव में यह दोनों कारण नहीं है तो वर्तमान में स्वर्गीय ज्योतिष रत्न जी के स्मारक स्वरूप उनके सुपुत्र द्वारा सम्पादन होकर जो पञ्चांग प्रकाशित होरहा है उस को मान्यता देनी चाहिये। कारण कि उत्तर प्रांत में वर्षों से उसी का प्रचार है।

यदि विद्वान लोगों की दृष्टि में उक्त पञ्चांगमें अन्य और कोई गम्भीर दोष हो तो अन्य काशी, जयपुर, जोधपुर, नीमच, बम्बई, कलकत्ता आदि स्थानों से प्रकाशित किसी एक पञ्चांग को मान्य करना चाहिये तभी यह तिथियों का फर्क दूर होसकेगा।

आशा है इस विषय पर वर्तमान में ज्योतिष शास्त्रों के ज्ञाता जैन विद्वान जैसे श्रीमान पं० नरसिंह दास जी चावली, पू० पं० पन्नालाल जी साहब गोधा इन्दौर, तर्कतीर्थ पं० झम्मनलाल जी कलकत्ता, पं० भन्नालाल जी साहब पाटनी व पं० मिलाप चन्द जी कटारिया केकड़ी पं० के० भुजबली शास्त्री आरा आदि विचार प्रकट करने की कृपा कर निर्णय प्रगट करेंगे।

—※—

जयपुर—स्थानीय श्री महावीर स्वामी के मंदिर में ता० ३१-१२-३४ को श्री शुक्रवार की सहेली के तत्वावधान में श्री दि० जैन महापाठशाला के छात्रों के अनेकानेक विषयों पर व्याख्यान और अनुवाद (Debate) हुए। श्री पं० श्री प्रकाश जी न्यायतीर्थ और पं० केशरलाल जी जैनदर्शन शास्त्री का वर्तमान वैज्ञानिक अविष्कारों से हानि व लाभ इस विषय पर बड़ा ही मनोरञ्जक संवाद हुआ। पं० श्री प्रकाश जी का पक्ष वर्तमान वैज्ञानिक अविष्कारों की हानि की ओर तथा पं० केशरलाल जी का उनके लाभ की ओर था। छोटे बच्चों में एक ७-८ वर्ष के बच्चे ने भी परोपकार के संबंध में कुछ अच्छे शब्द कहे थे। श्रीमान श्रद्धेय पं० चैन सुखदास जी न्यायतीर्थ का करीब आध घंटे तक वैज्ञानिक आविष्कारों की हानि के संबंध में एक मर्मस्पर्शी व्याख्यान हुआ। अंत में श्रीमान माननीय मुंशी साहिब सूर्यनारायण जी सेठी वकील ने विद्यार्थियों शुक्रवार की सहेली के नेताओं, तथा उक्त पंडित जी साहब को धन्यवाद देते हुए एक हृदयग्राही व्याख्यान दिया। अंत में जयध्वनि के साथ सभा विसर्जित की गई।

—सनत्कुमार जैन, मंत्री

श्री महावीर उपासक मंडल

कवि पंप का 'विक्रमार्जुन-विजय'

(ले० श्री० के० भुजबली शास्त्री, आरा)

पंचद्राविड़ भाषाओंमें कन्नड़ भाषा अन्यतम है। जिस प्रकार गुजराती, हिन्दी, मराठी, बंगाली आदि भाषायें संस्कृत जन्य गिनी जाती हैं उसी प्रकार कन्नड़ भाषा तज्जन्य नहीं गिनी जाती। यद्यपि इसमें भी संस्कृत प्राकृत शब्दों की कमी नहीं है, फिर भी भाषा विद्वानों के मत से यह द्राविड़ भाषाओं में ही गर्भित है द्राविड़ जातीय पांच भाषाओं में तामिलु (तामिल) प्राचीन समझी जाती है। पर तामिलु भाषा के समान यह भी (कन्नड) अधिक प्राचीन है। संस्कृत प्राकृत के सदृश इसका व्याकरण, छंद और अलंकार भी स्वतंत्र एवं सर्वांग पूर्ण है। जिस समय हिन्दी बंगला आदि भाषाओं का जन्म भी नहीं हुआ था उस समय कन्नड़ साहित्यभाण्डागार हजारों ग्रन्थ रत्नों से परिपूर्ण था। कन्नड़ भाषा को उन्नत और परिपूर्ण बनाने का प्रथम श्रेय जैनाचार्यों और जैन कवियों को ही प्राप्त है। सभी मान्य विद्वान इस बात को निर्विवाद रूप में स्वीकार करते हैं कि जैनियों के हाथ से ही कन्नड़ भाषा का उद्धार हुआ है और उन्हीं ने ही कन्नड़ भाषा के साहित्य को एक उच्च श्रेणी की भाषा के योग्य बनाया है। तेरहवीं शताब्दी तक कन्नड़ भाषा में जैन ग्रन्थकारों के अतिरिक्त अन्यधर्मके उल्लेखाई ग्रन्थ कार ही नहीं हुए हैं। इस बात से पाठक स्वयं ही जान सकते हैं कि उस समय कर्णाटकीय प्रान्तोंमें जैन धर्म का कितना अधिक प्राबल्य था गंग, राष्ट्रकूट, चालुक्य होय्सल, विजयनगर, मैसूर, कार्कल, बंगवाड़ी आदि राजा महाराजाओं के दरबारों में जैन कवियों का बड़ा सम्मान रहा है। उस समय जैन कवियों के यशोगान सम्पूर्ण कर्णाटक में बड़े आदर के साथ गाये जाते थे। पीछे जब रामानुजाचार्य के वैष्णव मतके प्रचार आदि से जैन धर्म का ह्रास होने लगा तब उसके साथ ही जैन कवियों की संख्या भी घटती गई। फिर भी पीछे सैकड़ों जैन कवि कन्नड़ साहित्य का मुख उज्वल करते रहे। यह बात निस्सन्देह रूप में कही जा सकती है कि कन्नड़ साहित्य के जितने प्राचीन तथा अर्वाचीन काव्य, पुराण कोष आदि ग्रन्थ इस समय उपलब्ध हैं उनमें से करीब दो तिहाई ग्रंथ जैन विद्वानों के द्वारा ही प्रणीत हैं।

यह बात प्रसिद्ध है कि समन्तभद्र, पूज्यपाद वीरसेन, जिनसेन, गुणभद्र, अकलंक, नेमचन्द्र, वादीभसिंह, भूतबलि, पुष्पदन्त आदि प्रधान प्रधान आचार्य जो दिगम्बर आम्नाय के स्तम्भ समझे जाते हैं वे सब ही प्रायः कर्णाटक देश के निवासी थे। उन में से कई न केवल संस्कृत प्राकृत के ही कवि थे, किन्तु कन्नड़ के भी विश्रुत ग्रंथकार समझे जाते हैं।

पंप का जन्म ईसवी सन ९०२ में ब्राह्मण कुल में हुआ था। उनके पिता का नाम अभिराम देवराय था। वह पहले वेदानुयायी थे किन्तु पीछे जैन—धर्मावलम्बी हो गये। पंप न केवल कवि प्रत्युत अपने समय के एक अच्छे वीर थे। वह पुलिगेरी के चालुक्य महाराजा अरिकेसरी के दरबारी कवि और सेनानायक थे। उनके रचे हुये दो ग्रंथ इस समय उपलब्ध हैं।

एक का नाम है 'आदिपुराण' और दूसरे का नाम 'भारत'। प्रथम ग्रन्थ में प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव की और द्वितीय में महाभारत की कथा वर्णित है। पंप ने 'भारत' में अपने आश्रय दाता राजा अरिकेसरी का अर्जुन के साथ साम्य दिखलाया है। और उन्होंने उस को ६ महीने में तथा आदि पुराण को तीन महीने में लिखा था। उस समय पंप की अवस्था ३९ वर्ष की थी। 'आदिपुराण' एक चम्पू-काव्य है, जिस में १६ परिच्छेद हैं। 'भारत' में जिसका दूसरा नाम विक्रमार्जुन विजय है, १४ आश्वास हैं। पाण्डवों के जन्म से लेकर कौरवों के बध तक की कथा इसमें वर्णित है। राज्याभिषेक के साथ ही यह ग्रन्थ समाप्त होता है।

आज तक के विख्यात ख्यात कन्नड़ कवियों में पंप ही आदि कवि हैं और वही सर्व श्रेष्ठ भी हैं। उल्लिखित उनके दो ग्रन्थों में एक धार्मिक और दूसरा लौकिक। कवि अपने इस धार्मिक ग्रन्थ में भी पीछे के कन्नड़ कवियों के समान अधिक मात्रा में तत्त्वों के उलझन में नहीं पड़ा है। उस धार्मिक ग्रन्थ में भी काव्य रसास्वादन के लिये इसने यथेष्ठ अवकाश दिया है। यही कारण है कि जैनेतर समाज भी उसे बड़े प्रेम के साथ अध्ययन करता है। कोरे धार्मिक ग्रन्थ में अनुपम रस भर देना सामान्य कवि के बूते का काम नहीं है। पंप सदृश महाकवि के लिये ही यह साध्य है। पंप की प्रतिभा उसके 'विक्रमार्जुन विजय, (भारत) में और भी प्रस्फुटित दीख पड़ती है। उसमें उसने सब को मोहित कर पीछे के सभी कवियों को स्वमार्गानुसारी बना डाला है। कन्नड़ कवि-पितामह पंप ने भारत के कथावस्तु को तत्कालीन वातावरण के अनुकूल और रसमें ढालकर काव्य के अनुकूल कथा में उचित परिवर्तन कर दिया है। पंप के मतानुसार भारत का कथा नायक 'अर्जुन' है। हम ऊपर लिख चुके हैं कि उन्होंने 'भारत' में अपने आश्रयदाता राजा अरिकेसरीका अर्जुनके साथ साम्य दिखलाया है। कविकथनानुसार अर्जुनके कुल साहस अरिकेसरीके ही हैं, मानो उसने अरिकेसरी को अर्जुन का अपरावतार ही मान लिया है।

भारत में अर्जुन, भीष्म द्रोण, कर्ण आदि महा वीरों का साहस कवि के द्वारा हृदय द्रावक ढंग से वर्णित है। पंप की अमेय कविता शक्ति एवं अनुपम वाग वैखरी इन वर्णनों में पूर्ण रूपेण झलकती है। कवि द्रौपदी की अपेक्षा सुभद्रा को उन्नत स्थान प्रदान करते हैं। उसने पटरानी का पद भी सुभद्रा को ही दिया है। इसमें कुछ रहस्य है अवश्य हो सकता है कि पंचपतित्व केशाकर्षण रूप अपमान आदिके हेतु द्रौपदी को महिषी बनाना पंप को अभीष्ट न हो। व्यक्तित्व, सन्निवेश, मनोभाव प्रतिभा आदि पंप के प्रत्येक

पंक्ति में टपकते हैं। पंप की वर्णन शैली इतनी अच्छी है कि केशाकर्षण, गदायुद्ध प्रकरणों को पढ़ते समय पाठकों का हृदय करुणा वीर आदि रसों से उमड़ने लगता है। सचमुच कई जगह कवि पाठकों को रुला डालता है। पंपका हृदय विशाल था। उसको कथा भिमान अधिक और आत्मा भिमान कम था। सम्पूर्ण दृष्टियों से इसका विक्रमार्जुन विजय श्रेष्ठ है। कथा संविधानादि इसके प्रत्येक विषय अनन्यादृश है। एक लाख श्लोक (१०००००) परिमित सहस्रों उपाख्यानों से युक्त महान महाभारत को इसने केवल १४ आश्वासों में संग्रह किया है। इसने सचमुच गागर में सागर भर डाला है। फिर भी महाभारत का कोई भी वर्णनीय प्रधान अंग नहीं छूट पाया है। युक्तायुक्त परिज्ञानी इस कविने यथोचित कहीं विस्तार से कहीं संक्षेप से उद्दिष्ट विषय को भले प्रकार निभाया है। पंप की कल्पना शक्ति आश्चर्य कारिणी रही। वह कथा शरीर को आकर्षक रूप में स्वेच्छानुसार बदल सकते थे। इस लिये जहाँ तहाँ उसने मूल महाभारत के विरुद्ध कई घटनाओं को धैर्य के साथ अपने इस विक्रमार्जुन विजय में जोड़ दिया है। विद्वानों का कहना है कि उसने जो कुछ परिवर्तन किया है वह वास्तव में भारत के गौरव को बढ़ाने वाला है। पंपने अपने भारत में अर्जुन एवं कृष्ण को समान स्थान दिया है। यह उसका स्थान दान जैन मान्यता की दृष्टि से अनुचित नहीं कहा जा सकता। भीष्म द्रोण, कर्ण आदि महा योद्धाओं को साहस पूर्वक जीतने वाला महाभारत के महासंग्राम में प्रमुख स्थान धारण करने वाला, विभूति पुञ्ज, स्वयंशक्त अर्जुन बात बात पर कृष्ण का मुहं नहीं जोह सकता। गुणार्णव पंप कौरव सभा में सती द्रौपदी के केशाकर्षण मात्र का ही उल्लेख करता है। उसके वस्त्रापहरण को कविने सर्वथा छिपा लिया है मालूम होता है कि कवि को इस बात का उल्लेख करना सर्वथा इष्ट नहीं था। पंप द्रौपदी को अर्जुन की पत्नी बतलाता है। जैन कवि के नाते से यह ठीक भी है। वीर दुःशासन के वध के प्रकरण में भी द्रौपदी के पंच पतित्व को इसने छिपा लिया है। कवि ने महाभारत के गाम्भीर्य में कहीं भी कलंक नहीं आने दिया। पंपके भारत के सभी पात्र कथानुकूल उत्तम हैं। वल्कि यह बात व्यास भारत में नहीं है। जिस समय कौरव कर्ण से सारथी बनने के लिये प्रार्थना करता है उस समय के शल्य का व्यवहार व्यासभारत में बहुत कुछ समालोचना के योग्य है शल्य का व्यवहार सचमुच शील रहित है। उसका मुख-विकार, अंगचेष्टा, कर्कशवचन प्रहार आ पढ़ने वालों को अरुचि उत्पन्न करदेता है। परन्तु उसी प्रकरणों को आप पंप भारत में प्राञ्जल रूपमें पावेंगे पंप भारत में शल्य की नीति, कौरव का विनय बड़े मनोहर ढंगसे चित्रित है। इसी प्रकार सैन्धव को लीजिए व्यास भारत में वह उपहासपात्र, कायर, धैर्य हीन, निरभिमानी एक सामान्य व्यक्ति है। इसे ही पंप भारत में देखिये। वह सैन्धव अर्जुन के अटल प्रतिज्ञासे डरने वाला नहीं। अन्यथा, ऐसे

भीरु के लिए दुर्योधन अपनी प्रिय बहिन को देने के लिए कैसे तैयार होता पंपका जयद्रथ युद्ध भूमि में साहस पूर्वक लड़कर कीर्ति श्री एवं वीर गति को प्राप्त करने वाला पुरुष सिंह है।

इसी प्रकार पंप का कौरव बलिष्ठ, समग्र भारत चक्रवर्ती, हठग्राही, विश्वास पर, मान-धन, विनय शाली, गुणग्राही, एकांग साहसी, प्रतिकूल दैव के साथ विषम युद्ध में ससाहस लड़कर मरने वाला महा मल्ल है। महाभारत रूपी नाटक का यह अनुकूल नायक है। उस के भीतर कतिपय दोष थे अवश्य फिर भी गुणों पर मात्सर्य क्यों? इस प्रकार पात्रों के गौरव को नष्ट न कर पंप ने उनके औन्नत्य की पूरी पूरी रक्षा की है। गुणारोपण किस पात्र में किस मात्रा में होना चाहिये इस बात को पंप भली भांति जानता था। पंप का वर्णन-क्रम बड़ा अपूर्व है। इसके समान विषय को स्पष्ट करने वाला दूसरा कवि प्रायः कन्नड़ में हुआ ही नहीं। विषय स्पष्टीकरण में पंप की प्रतिभा अद्वितीय है। पंप वर्ण-नीय वृत्तान्त को बड़े सरल ढंग से स्वभावानुकूल हमारी दैनिक घटनाओं के साथ मिलकर हृदय ग्राही रूपमें समझाता है। पंप-भारत ध्वनि काव्य है। इस की उत्तमता के लिये यह एक योग्यता ही पर्याप्त है। पंप भारत के मर्म को सब कोई नहीं समझ सकते। व्यंग्य अर्थ को भले प्रकार समझने वाले सूक्ष्म बुद्धि वाले विद्वान ही इसके मर्म को समझ सकेंगे। पंप की शैली सुगम सरल एवं सर्वोत्कृष्ट है। उसकी कविता-शक्ति अतुलनीय है। पंप की कृतियां लालित्य लावण्यादि काव्योचित गुणों से ओत प्रोत है। पंप कन्नड़ के आदि कवि हैं इसमें तनिक भी सन्देह नहीं अतः पंप के आदि (आदि पंप) विशेषण को इसी अर्थमें लेना ही सयुक्तिक है। सर्व प्रारम्भमें काव्य बनाने से ही कोई आदि कवि नहीं होता। उस पदके योग्य गुण भी होना चाहिये। पंप में वे गुण पूर्णतया विद्यमान थे पंप के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त है कि यह कन्नड़ सरस्वतीके ज्येष्ठ तथा लाडले पुत्र हैं

कवि चक्रवर्ती रन्न कृत "साहस भीम विजय" अथवा 'गदायुद्ध' का भी मूल पंप भारत का तेरहवाँ आश्वास है। बल्कि कहीं कहीं वर्णादि में रन्न ने पंप का ही अनुकरण किया है। रन्न के कुछ पद्य तो पंप के पद्यों से नितान्त मिलते हैं। इससे भी पंप का गौरव बढ़ गया है। इसी प्रकार कुमार व्यास नेभी पंप के कुछ भावपूर्ण परिवर्तनों को अवश्य अपनाया है। पूर्वकथनानुसार आज तक के उपलब्ध कन्नड़ काव्यों में भावशैली वस्तु रचना कथानिरूपण वर्णन चातुर्य आदिमें पंप के काव्य अद्वितीय हैं। इनके सूर्योदय सूर्यास्त आदि का वर्णन समयोचित तथा गंभीर है। अलंकारों में पंप ने उपमा और उत्प्रेक्षाको विशेषस्थान दिया है, अथवा यों कहिये कि पंप की उपमा और उत्प्रेक्षा विशेष उल्लेखनीय है। इसकी उपमा नूतन स्वाभाविक और हृदयग्राही है। शब्दालंकारमें पाठकों को पंप की कृतियों में अनुप्रास ही अधिक संख्या में मिलेंगे। पंप संस्कृतज्ञ भी थे यह बात निर्विवाद सिद्ध है। इसके १—१५, ४—२७ आदि पद्यों में संस्कृत शब्द अमर्यादित रूप में भरे पड़े हैं। यहांतक कन्नड़ साहित्य, महाकवि पंप और उसके विक्रमार्जुनविजय (भारत) पर यथेष्ट प्रकाश डालागया, अब विक्रमार्जुन विजय के वीर रस पर थोड़ा कहा जाता है।

विक्रमार्जुन विजय के चौदह आश्वासों में से अन्तिम चार आश्वासों में केवल युद्ध का ही वर्णन किया है। ये चार आश्वास वीररस से नितान्त ओत प्रोत हैं।ऐसे तो सारा काव्य ही वीररस से परिपूर्ण है। महाकवि पंप स्वयं महान् योद्धा भी था। इस लिए उसके इस काव्य में वीररस का प्रस्फुटित होना स्वाभाविक ही है। अगर पाठकों को पंप भारत में वीररस की छटा देखनी हो तो वे उसके अन्तिम आश्वासों को देखें। पंप भारत के वीररस प्रधान कुछ पद्यों को यहाँ पर उद्धृत करना निरर्थक है क्यों कि हिन्दी विद्वानों के लिये वह विशेष उपयोगी नहीं होते। इन पद्यों का रसास्वादन कन्नड़ विद्वान ही कर सकते हैं। हिन्दी में उन पद्यों का अनुवाद देने पर भी मूलकी मौलिकता नहीं आसकती। फिर भी हम यहां पर उदाहरणार्थ एक पद्य उद्धृत कर देते हैं।

'बनकरि कुँभपाटन पटिष्ठ कठोर नखप्रहारभे।
दन गलिता (छ) रक्त नव मौक्तिक पंक्ति विलास भासुरा॥ ननमेने सन्दुइग्र मृगराजनुमंदवद् विरोधि मे। दन करमप्प शौर्य्य मदेन्नुमनोन्दोडलेम्ब मंजया (आ० १३ पद्य ५०) लेख बहुत बढ़ गया है। इसे अब और बढ़ाना अच्छा नहीं। इसलिए अभीतक का सारांश यही है कि पंप की कविता शैली असामान्य है। इसकी नई २ कल्पनाएं चित्ताकर्षक हैं। पंप अनुकूल कथावस्तु को गढ़ने में और कथावस्तु के अनुकूल रस को मिलाने में बड़ा कुशल था। इसके अनुकूल छन्द की प्रौढ़ योजना, काव्य शरीर के सौन्दर्य को बढ़ाने वाले अंगोपांगों का रचना चातुर्य पात्रों में जान डालकर उन्हें वाचकों के सामने लाने का रचना चमत्कार अनौचित्यों को दूर कर उनमें यथोचित परिवर्तन करने की असीम शक्ति, प्राचीन रचनाओं से मौलिक आशयों को ग्रहण कर उन्हें तदनुकूल परिवर्तित कर अपनी कृति में मिलाने की प्रज्ञा, अभिप्राय तत्काल ही पाठकों के मन में आजाय इस प्रकार बनाने का सामर्थ्य प्रकरण के अनुकूल यथोचित पाठकों के हृदय में निर्मल भक्ति उत्पन्न करने वाले, स्तोत्रों की गाम्भीर्य प्रचलित कहावतों को यथास्थान प्रयोग करने का औचित्य, अनेक वाक्यों में कहने योग्य विषय को कुछ ही शब्दों में गर्भित कर स्पष्ट तथा सुन्दर रूप में कहने की निपुणता बहुपद प्रयोग दक्षता, शैली की सरलता, वर्णनों की रमणीयता, अलंकारों की स्वाभाविकता आदि गुण महाकवि पंप में अपूर्व थे। इन्हीं गुणों के कारण यह कर्णाटक कवि सार्वभौम पदके लिए नितान्त योग्य है अन्तमें हम यह भी स्पष्ट करदेना चाहते हैं कि पंपकी कृतियों में कुछ दोष होसकते हैं फिर भी वह एक दो दोष चन्द्र कलंकवत उसके मौलिक गुणों के समक्ष कुछ भी नहीं हैं। पंप अमर है, उसकी कृतियाँ अमर रहेंगी।

अभी भेलसा में परिषद् का अधिवेशन अच्छी धूम धाम के साथ समाप्त हुआ है । अधिवेशन कई बातों में सफलता के साथ हुआ है । अधिवेशनमें जो प्रस्ताव पास हुए हैं उनमें से छठे प्रस्ताव में शास्त्रार्थ संघ का भी नाम आना आवश्यक था क्योंकि क्वींस कालेज बनारस के पठन क्रममें जैन ग्रन्थ भर्ती कराने का उद्योग शास्त्रार्थ संघने ही किया था और उसीके अनवरत उद्यम से इस कार्य में सफलता प्राप्त हुई है ।

श्रीमान दानवीर सेठ लखमीचन्द्र जी भेलसा किसी संस्था की नींव डालना चाहते थे जिसके लिए उन्हों ने आजसे लगभग दो वर्ष पहले विचार प्रगट किये थे । उन्हों ने अपना विचार इस अधिवेशन पर कार्य रूपमें परिणत कर दिखाया और हाईस्कूल सरीखी शिक्षा संस्था के खोलने के लिये आपने ५० हजार रुपये दान कर दिये इसके लिये आपको धन्यवाद है ।

हमारी सम्मति से इस रकम से भेलसा में हाई-स्कूल न खुलकर निम्न लिखित कोई एक संस्था खुले तो समाज के लिये विशेष उपयोगी सिद्ध होगी क्यों कि इंग्लिश शिक्षाका पर्याप्त प्रबन्ध सरकारकी ओरसे प्रत्येक नगर में है अपना अलग एक हाई स्कूल खोल कर एक धर्माध्यापक रख देने मात्रसे कोई विशेष प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा इसका कुछ अनुभव हमको पानीपत हाई स्कूल, हीरालाल जैन हाई स्कूल देहली आदि से है । राज्य भाषा के खयाल से अंग्रेजी शिक्षा को प्राप्त करना तथा धार्मिक ज्ञान उसके साथ हासिल करना हम आवश्यक मानते हैं किन्तु इस उद्देश्य सिद्धि के लिये जैन हाईस्कूल सफल सिद्ध नहीं हुए यह भी हमारी राय है । अस्तु ।

जैन समाज में जीवन डालने के लिये निम्नलिखित संस्थाओं की भारी आवश्यकता है ।

१—उपदेशक विद्यालय-जो अच्छे प्रभावशाली प्रचारक आधुनिक ढंग से तैयार करे जैसे कि आर्य समाज, ईसाई आदि कर रहे हैं । इस संस्था के न होने से जैन धर्म के प्रचार में भारी बाधा पड़ रही है

पुरातत्व अन्वेषण जैनधर्म का पुरातन गौरव जमीन में दबा पड़ा है अथवा खंडहरों के रूपमें बिखरा पड़ा है उसकी खोज करने के लिये ४००—५०० रुपये मासिक खर्च करने वाली एक संस्था का होना कितना आवश्यक है इस बात को परिषद के विद्वान भली भांति समझते हैं ।

गुरुकुल कारंजा ब्रह्मचर्याश्रम के ढंग पर अच्छे स्नातक तयार करने के लिये जैनसमाज को भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्तमें बहुत भारी आवश्यकता है ।

अनाथालय-जैनसमाज में उन दरिद्रों की भी कमी नहीं जो दरिद्रता का शिकार बनकर धर्म छोड़ बैठते हैं प्रायः सभी प्रांतों में अनाथ बच्चों की संभाल रखना जरूरी है । भेलसा के आस पास ऐसी संस्था

बहुत उपयोगी सिद्ध होती है। अनाथालय स्थितिक-रण अंग का प्रधान साधन है। आर्यसमाज, ईसाई समाज ने अनाथालयों से बहुत लाभ उठाया है।

छात्र वृत्ति फंड-यदि इंग्लिश शिक्षितों को धार्मिक बोध कराने की आवश्यकता परिषद् को सब से अधिक मालूम होती है तो सेठ जी को स्कालरशिप फंड क़ायम करने की सम्मति देनी चाहिये जिस के सूद से उन अंग्रेजी शिक्षित छात्रों को स्कालरशिप दिये जावें जोकि जैन सिद्धान्त का अध्ययन करें परीक्षा देकर उत्तीर्णता प्राप्त करें। इस ढंग से थोड़े से समय में अच्छी सफलता मिल सकती है।

आशा है हाईस्कूल खोलने से पहले श्रीमान सेठ लखमीचन्द्र जी तथा तथा उनके सम्मतिदाता इसपर विचार करेंगे।

पांचवें सवार

कलकत्ता निवासी श्रीयुत नौबतराय जी बदलिया एक कृपा पात्र महानुभाव हैं जो लीडरी घुड़दौड़ में अपना ढाई टांग का घोड़ा दौड़ाकर बाजी मारना चाहते हैं। इस काम में सफलता पाने के लिए वे आवश्यक योग्यता को हासिल करना भी उचित नहीं समझते इसी कारण उनको जोश का ऐसा भारी उबाल आताहै कि सभ्यता की सीमा को तोड़ कर वह बाहर बह निकलता है।

अभी श्वेताम्बर जैन के गत १०वें अंक में आपने अपनी सभ्यता की बौछार फिर हमारे ऊपर छोड़ी है हम पुनः उसका स्वागत करते हैं आशा है आपकी सभ्यता का स्रोत आगामी भी बहता रहेगा। जो मनुष्य किसी विषयके समाधानमें अपने को योग्य नहीं पाता वह खोखली कर इसी सभ्यता का आश्रय ले बैठता है। सेमई बदलिया जी इस प्रगति में और भी उन्नति प्राप्त करें।

किन्तु हितदृष्टि से फिर भी हमारी यही सम्मति है कि पहले आप अपने आगम ग्रन्थ देखें यदि इसके लिये आपको महाव्रत स्वीकार करने आवश्यक हों तो सच्चे समालोचक बनने की इच्छा से यह कार्य भी अवश्य करें। योग्यता पूर्वक अपने ग्रंथों का अच्छी तरह स्वाध्याय करके फिर यह कार्य हाथ में लें। अन्यथा भुसमें लट्ठ मारने से कुछ सार नहीं निकलता

आपको अभी यहाँ तक पता नहीं कि राजा सौदास के मांस भक्षण की कथा लिख देने मात्र से ग्रंथकार के ऊपर मांस भक्षण विधान का आक्षेप लागू हो सकता है या नहीं।

संपादक श्वेताम्बर जैन को भी अपना कर्तव्य और उत्तर दायित्व सम्हालना चाहिये, कोरी गालीगलौज से भरे हुए लेख प्रकाशित कर देना संपादकीय कर्तव्य से कितना दूर है? अन्य पत्र संपादक के साथ अपना क्या कितना फर्ज है? ये बातें उन्हें सदा सामने रखनी चाहिये।

—अजितकुमार

इन्दौर स्टेट के प्राइम मिनिस्टर का आश्वासन।

पण्डित राजेन्द्रकुमार जी प्रधान मन्त्री श्री भारत वर्षीय दिगम्बरजैन शास्त्रार्थ संघ, गत ६ जनवरी इन्दौर स्टेट में स्वतन्त्र मुनि विहार प्रतिबन्ध निवारणार्थ इन्दौर गये थे। आपने इस सम्बन्धमें तारीख ६ को इन्दौर स्टेट के प्राइममिनिस्टर से भी मुलाक़ात की।

इस मुलाकात में आपके और प्राइम मिनिस्टर महोदय के बीच दिगम्बर मुनि विहार प्रतिबन्ध सम्बन्धी प्रस्ताव पर कई पहलुओं से विचार हुआ। पारस्परिक इस विचार परिवर्तन के परिणाम की तरफ सङ्केत करना समय से पूर्व है। फिर भी, यह दृढ़ता पूर्वक कहा जा सकता है कि दिगम्बर जैन समाज की आवाज का उक्त प्राइम मिनिस्टर महोदय पर काफ़ी प्रभाव पड़ा है और आप उसपर पूरा पूरा विचार करेंगे। आपने संघ के मन्त्री को आश्वासन दिया है कि उनका अभिप्राय दिगम्बर जैन समाज के धार्मिक अधिकारों में हस्तक्षेप करने का कदापि नहीं है। तथा वे दिगम्बर जैन समाजकी प्रार्थनाके संबंधमें पूर्ण सहानुभूति पूर्वक निर्णय करेंगे। आपने फरवरी के अन्त तक इसके निर्णय का वचन दिया है।

इन ही दिनों में तारीख ७ को मारवाड़ी दिगम्बर जैन मन्दिर और तारीख ८ को जौहरी बाग में आपके भाषण भी हुए थे। मुनि विहार प्रतिबन्ध सम्बन्धी प्रस्ताव के सम्बन्ध में इन्दौर दिगम्बर जैन पञ्चान और सरसेठ हुकमचन्द्र जी साहब के साथ भी आपका परामर्श हुआ था। —मन्त्री, प्रचार विभाग।

भास्कर का पुनः प्रकाशन

बड़े हर्ष की बात है कि श्रीमान बाबू निर्मल कुमार जी ने अस्तंगत भास्कर के पुनः प्रकाशन का प्रबन्ध स्थायी रूप से कर लिया है। इसका प्रथमांक परम पुनीत श्रुत पञ्चमी को निकल जायगा। लेखकों से निवेदन है कि वे जैन साहित्यिक एवं ऐतिहासिक आदि महत्वपूर्ण लेख जहां तक होसके शीघ्र भेज दें। पाठकों से भी निवेदन है कि वे अपने ग्राहक होने की सूचना जल्दी दें। क्योंकि इसकी प्रतियां ग्राहक संख्यानुसार परिमित रूपसे ही छपेंगी अप्रकाशित जैन ग्रन्थों की आलोचनात्मक प्रशस्तियाँ और एक अपूर्व जैन वद्यक ग्रन्थ हिन्दी अनुवाद के साथ धारावाहिक रूप से प्रथम किरण से ही निकलने लगेगा। अतः भास्कर के पुराने और नये पाठक इस सुवर्णावसर को नहीं खोयेंगे।

—के० भुजबली शास्त्री,
जैन सिद्धान्त भवन आरा

सानन्द होगई

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ कार्यकारिणी की बैठक ता० २६–२७ दिसम्बर को अम्बाले में सानन्द होगई। स्थानीय सदस्यों के अतिरिक्त पं० कैलाशचन्द्र जी बनारस और पं० अजितकुमार जी मुलतान आदि भी सम्मिलित हुए थे। इसमें उपदेशक विद्यालय स्थापन आदि महत्वशाली बातें निश्चित हुई हैं-विशेष अगले अंक में देखें।

मन्दिरों में चोरी

लोग समझते हैं कि जैनों के मन्दिर लक्ष्मी के भंडार हैं। उनकी इस धारणा का कारण है जैन मन्दिरों का असाधारण वैभव। यह वैभव जब किसी धार्मिक जुलूस के समय मन्दिरों की अवधि को छोड़ कर बाहर आता है, तो साधारण जनता इसे आश्चर्य भरी निगाहों से देखती है। शायद उससे ऐसा मालूम होता हो मानो पुराण वर्णित स्वर्गकी लक्ष्मी वसुधा पर आकर नाच रही है। ऐसे शानदार जुलूसों के समय भारत की दरिद्रता का भयंकर रूप उस वैभव की तीव्रता से भयभीत होकर मानो विलुप्त होजाता है। बेकार लुटेरे और चोर इस वैभव को केवल आश्चर्य की दृष्टि से ही नहीं किन्तु तृष्णा की दृष्टि से भी देखते हैं। समय पाकर यही परिपुष्ट तृष्णा की भावना मंदिरों में चोरी, डाका, लूट खोसट आदि का कारण बन जाती है।

आजकल चारों ओर से जैन मन्दिरों में चोरी होजाने के समाचार सुने जाते हैं। इन समाचारों को सुनकर जो दुःख और वेदना होती है उसका वर्णन नहीं किया जासकता, जब मन्दिरों जैसे सुन्दरतम और पवित्रतम स्थानों से चोर लुटेरे लक्ष्मी का चट्टा पकड़ कर दुर्दशा के साथ उसे खींच लेजाते हैं तब किसे दुःख न होगा। चोरों के साथ अपमान पूर्वक विदा होती हुई यह लक्ष्मी हमें बहुत कुछ शिक्षा देजाती है, पर दुःख केवल इस बात का है कि इस शिक्षा की तरफ हम कुछ भी ध्यान नहीं देते। सच बात तो यह है कि अब हम उपासना मन्दिरों की भी रक्षा करने में समर्थ नहीं हैं। जब मन्दिरों में चोरी होजाती है तब हम केवल कानूनी और गैरकानूनी दो तरह का रोना रोकर शांत हो जाते हैं। पर हमारे इस रोनेकी आवाज़ में कुछ भी तथ्य और सफलता नहीं है। यह रुदन तो केवल हमारे मन्दिरों के लोकोत्तर वैभव का विज्ञापन मात्र है। इससे चोर और लुटेरों को और भी साहस मिलता है और यही कारण है कि दिनोंदिन इन चोरियों की संख्या अधिकाधिक वेग से बढ़ती जा रही है। यदि हमारे रुदन में इन चोरों और डाकुओं को भयभीत करदेने की शक्ति होती तो इस तरह मन्दिरों में ये दुःखान्त चोरियां न होतीं।

उसदिन पचार (जयपुर) के कुछ भाइयों ने कहा कि चोर वहां की नशियां जी में से उपकरण, रुपये, पैसे के अतिरिक्त (सुवर्ण की समझकर) धातु की प्रतिमा भी चुरा लेगये हैं। चोरी को बरामद कराने के लिये बहुत कुछ चेष्टा की पर नतीजा कुछ नहीं। उस गये हुये धनको वापिस

लानेके प्रयत्न में केवल कुछ धनको और स्वाहा करने के अतिरिक्त अन्य कोई लाभ नहीं होता।

अभी हाल ही में -

जयपुर जिले के कई ग्रामों के मंदिरोंमें चोरी हो जाने के समाचार हम ने बड़े दुख के साथ सुने हैं। सुना है एक मंदिर में (जिस में से हजारों का माल चोर चुराकर ले गये हैं) एक सुवर्ण का सत्तर तोले का छत्र भी था। यदि यह समाचार सच है, तो इनसे हमें बहुत कुछ शिक्षा लेने की आवश्यकता है। जब हम में देव मन्दिरों की रक्षा करने की शक्ति नहीं है तो इस तरह इन स्थानों में असंख्य धन एकत्रित कर देने की क्या जरूरत है। महाजन की कोठीसमान देवालयोंमें धन रखना और फिर उसकी रक्षा के साधनों का भी प्रबंध न करना यह कहां तक उचित है। मंदिर का धन हमें जीर्णोद्धार और जिन वाणी के संग्रह करने में लगा देना चाहिये। ऐसी परिस्थिति में उपकरण जितने भी कम रहे उतने ही अच्छे हैं। इन उपकरणों से अब जैन धर्म की प्रभावना करने का समय नहीं रहा है। किसी युग में शायद ये प्रभावना के अङ्ग समझे जाते हों पर अब तो इनके द्वारा अब मंदिरों की पवित्रता इन उपकरणों के कारण चोरों और लुटेरों द्वारा नष्ट की जा रही है तब प्रभावना होने के बदले अप्रभावना ही होती है। इस लिये मंदिर में जितने छत्र चमर सिंहासन आदि रखने की आवश्यकता हो उनसे अधिक रखना किसी तरह उचित नहीं। अगर थोड़े से उपकरणों से अब भी संतोष न हो तो कम से कम मन्दिरों की रक्षा का तो अच्छे से अच्छा प्रबंध करना चाहिये जिस से चोर लुटेरे और डाकुओं द्वारा हमारे पवित्रतम मंदिरों की अप्रभावना न कर सकें बड़े दुख और अंतस्ताप के साथ लिखा जाता है कि मंदिरों की चोरी केवल रुपये पैसे और उपकरणों तक ही सीमित नहीं रहती अपितु धन तृष्णा के लोलुपी बदमाश हमारी चांदी सोने कीप्रतिमाओं को भी चुरा ले जाते हैं। जिन प्रतिमाओं के पूज्य बनाने के लिये प्रतिष्ठित करने में हमें लाखों रुपये खर्च करने पड़ते हैं माहसी लुटेरे वर्षों से संग्रहीत पवित्रता को क्षण भर में नष्ट कर देते हैं। क्या अब भी हमारी आंखे न खुलेंगी। उस दिन यहां के स्थानीय चम्पा पाण्ड्या के मंदिर में एका एक दो चांदी की प्रतिमायें चुरालो गई अभी तक भरसक प्रयत्न करने पर भी उनकापता तक ही नहीं चला। अगर प्रतिमायें चांदी की न होतीं तो कभी भी इनके चुराने का मौका न आता। हम अपने गाढे पसीने की कमाई को प्रतिमाओं के रूप में एकत्रित कर देते हैं और चोर उसको आनन फानन में लेकर भाग जाते हैं हम थोड़ा सा शोर गुल कर शांत हो जाते हैं। सुवर्ण भ्रमके कारण और तो क्या पीतल की प्रतिमाओं तक की भी चोरी हो जाती है। हिन्दू धर्म मानता है कि कलियुग का सर्वाधिक निवास सुवर्ण में रहता है। शायद वेद अथवा स्मृति का यह वचन है कि "हिरन्मयेन पात्रेण सत्यस्यपीतं मुखम्" मेरा आशय यही है कि इस युग में सुवर्ण चांदी आदि बहुमूल्य धातुओं की प्रतिमाएं बनाना किसी तरह

उचित नहीं। मनुष्य का कर्तव्य है कि तात्कालिक घटनाएं जो पाठ सिखावें उसको कभी न भूलें। पर मनुष्य नाम का प्राणी इतना स्वार्थी है कि जिन घटनाओं का सम्बन्ध अपने स्वार्थ से नहीं होता, प्रायः उनपर वह अधिक ध्यान नहीं देता। मनुष्य की इस गलती ने सदासे ही जाति और देश की बड़ीसे बड़ी हानि पहुंचाने में जबर्दस्त सहायता दी है। बड़े दुःख की बात है कि हमारे अनन्य परमोपयोगी धार्मिक क्षेत्र बिना पानी की तरह सूखे जारहे हैं और मन्दिरों में सन्निहित अगाध जलराशि को चोर लुटेरे लेजाकर उसका दुरुपयोग कर रहे हैं।

आशा है हमारे इस आवश्यकीय नोट पर जैन दर्शन के पाठकों का अवश्य ध्यान जावेगा और वे मन्दिरों की रक्षा करने का पर्याप्त उपाय सोचेंगे।
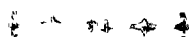
—चैनसुखदास जैन।

भूल सुधार

गत १२वें अंक में श्रीयुत माणिकचन्द्र जी भांवसा का एक लेख श्री दिगम्बर जैन महापाठशाला जयपुर के विषय में प्रकाशित हुआ था। लेख बड़ा था। उसको संक्षिप्त करके छोटे रूप में छापा गया था। इस संक्षेप करने में एक यह गलती होगई थी कि जयपुर राजकीय परीक्षाओं के साथ ही गवर्नमेन्ट कलकत्ता कालेज की 'न्यायतीर्थ' परीक्षा का नाम बढ़गया जो कि इस पाठशाला से नहीं दिलाई जाती है। अतः पाठक वहाँ न्यायतीर्थ परीक्षा को गलत समझें।

—मैनेजर

जैन समाचार

सिवनी—श्री वर्द्धमान सभाकी बैठक ता० ३० दिसम्बर को इन्द्र भवनमें सि० मोतीलाल जी भाऊ वाला घाट के सभापतित्व में निम्नाशय के दो प्रस्ताव पास हुये थे—१ प्रो० हीरालाल जी को श्री जयधवला के प्रकाशनार्थ प्रयत्न के लिये धन्यवाद और संशोधनार्थ एक कमेटी नियुक्त करने की प्रार्थना २- दानवीर श्रीमंत सेठ लक्ष्मीचन्द्र जीके समयोचित दानपर बधाई

—हरकचन्द्र जैन मंत्री

फरुखाबाद— में माह सुदी १५ से फा० वदी ३ तक रथोत्सवादि बड़ी धूम धाम के साथ होंगे इस अवसर पर रथोत्सव विमलनाथ भगवानके कल्याणकोंके स्थानके दर्शन, पद्मपुराण नाटक, तथा अन्य कई नाटक और प्रमुख २ विद्वानों के भाषणों का लाभ भी होगा। अतः अवश्य पधारें।

— पुत्तूलाल अर्हन्त शरण जैन

—श्रीमती केसर बाई दि० जैन कन्या पाठशाला बड़वाई के लिये दो अध्यापिकाओं की आवश्यकता है

—फूलचन्द्र जैन अध्यापक

तिलोकचन्द्र जैन हाई स्कूल इन्दौर

—जैन मित्र मंडल की कार्य कमेटी की बैठक ता० ५ को रात्रि के ८॥ बजे कमरा लायब्रेरी में ला० मीरो मल जी के सभापतित्व में हुई जिसमें निम्न लिखित महानुभावों को धन्यवाद दिया गया।

१ सेठ भागचन्द्र जी सोनी अजमेर राय बहादुर एम० एल०ए-२ ला० श्यामलाल जी एडवोकेट एम-एल-ए ३ ला० नेमदास जी 'रायसाहिब' ४ श्रीमती विद्यावती जी नागपुर मेम्बर म्युनिस्पल कमेटी

जैन मित्र मंडल की जनरल कमेटी ता० १६-१-३५ को रात्रि के ८॥ बजे होगी जिसमें श्री महावीर जयन्ती मनाने पर विचार होगा।

—रघुवीर सिंह जैन देहली

आवश्यकता है—नहटौर जिला बिजनौर के लिये एक जैन विद्वान की आवश्यकता है जो धार्मिक शिक्षा के साथ २ रात्रि को शास्त्रसभा भी कर सके। वेतन योग्यतानुसार और रहने को मकान मुफ्त।

नाथूराम डोंगरीय जैन

जैन पाठशाला बिजनौर

थूबौन जी का मेला— सदा की भांति इस वर्ष भी श्री अतिशय क्षेत्र थूबौन जी का मेला मिती माघ सुदी १० से फागुन वदी १० तक बड़े धूमधाम व समारोह के साथ होगा। गत वर्ष की अपेक्षा इस वर्ष मेला में कई विशेषतायें होंगी। जो संस्थायें अपना अधिवेशन उक्त मेले में करना चाहें वह शीघ्रातिशीघ्र निम्न पते से पत्र व्यवहार करें।

—नन्दकिशोर जैन

बिजनौर— में चैतन्य लाइब्रेरी की स्थापना बा० शान्तिचन्द्र जी जैन ने अपने पूज्य पिता श्रीमान पं० बिहारीलाल जी "चैतन्य" की स्मृति स्वरूप की है। जिसमें आपने धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक, वैद्यक, ज्योतिष, आदि २ विषयों का कुल मिलाकर ५००० के करीब पुस्तकें समर्पण की हैं। पुस्तकालय का उद्घाटन श्रीयुत रायसाहब ला० फतेचन्द्र जी इन्जीनियर के करकमलों द्वारा किया गया तथा अन्य सज्जनों ने बा० शान्तिचन्द्र जी को धन्यवाद दिया।

—नाथूराम डोंगरीय

ग्वालियर का समाचार है कि वहाँ एक जैन मंदिर से ४ हजार तोले की ३ रौप्य मूर्तियां चोरी चली गईं। चोर जाते समय मंदिर को आग लगा गये।

अजितकुमार जैन ने "अकलंक प्रिन्टिंग प्रेस, मुलतान में छापकर प्रकाशित किया।

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुख-पत्र

वर्ष २ | अंक १४

जैनदर्शन

फरवरी १ १९३४ ई० | माघ वदी १३ शुक्रवार

दिल्ली में शास्त्रार्थ

आर्य समाज दिल्ली अपना अर्द्ध शताब्दी महोत्सव मनाने वाली है। उसने इस ही अवसर पर भारतवर्ष के भिन्न २ धर्मावलम्बियों के साथ शास्त्रार्थ की आयोजना भी की है। इसही सम्बन्ध में उसने संघ को भी निमन्त्रण दिया था।

संघ ने यह निमन्त्रण सहर्ष स्वीकार कर लिया है। अतः यह शास्त्रार्थ ता० २-३ फरवरी को रात्रिके साढ़े सात बजेसे आर्यसमाजके ही पैण्डाल में होगा।

शास्त्रार्थ के निम्नलिखित विषय निश्चित हुये हैं—

(१) क्या वेद ईश्वरीय ज्ञान है? (२) क्या मूर्ति पूजा अनुपयोगी है?

शास्त्रार्थ पहिले दिन पहिले विषय पर और दूसरे दिन दूसरे वि० पर होगा।

पहिले दिन पूर्व पक्ष जैन समाज का और उत्तर पक्ष आर्य समाज का होगा। किन्तु दूसरे दिन पूर्व पक्ष आर्यसमाज का और उत्तर पक्ष जैन समाज का होगा।

यह शास्त्रार्थ केवल मौखिक होगा और दोनों ही ओर के वक्ताओं को प्रति बार दस-दस मिनट समय बोलने को दिया जायगा। अपने २ वक्ता को नियमानुकूल चलाने और सभामें शान्ति स्थापन के निमित्त दोनों ही पक्ष अपने सभापति चुनेंगे। दिल्ली भारतवर्ष की राजधानी है और आर्यसमाज तथा जैन समाज का केन्द्र भी है। यह शास्त्रार्थ भी बहुत दिनों के बाद होरहा है अतः यह अवश्य दर्शनीय होगा। धर्म प्रेमी इस अवसर पर पधार कर लाभ उठावें।

निवेदक— मन्त्री, प्रचार विभाग,
भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ, अम्बाला छावनी।

ऑन० सम्पादक—
पं० चैनसुखदास जैन न्यायतीर्थ; जयपुर
पं० अजितकुमार शास्त्री मुलतान | पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री बनारस

एक प्रति ≈) | वार्षिक ३)

जैन समाचार

बधाई

प्रयागमहिला विद्यापीठकी अक्टूबर १९३४ की परीक्षाओं में, श्री दि० जैन पद्मावती कन्या पाठशाला जयपुर से, श्रीमती अनुपम कुमारी सुपुत्री श्रीमान कपूर चन्द जी पांड्या विद्या विनोदिनी परीक्षा में संस्कृत में विशेष योग्यता के साथ द्वितीय श्रेणी में, श्रीमती सुभद्रा कुमारी सुपुत्री श्रीमान कपूरचन्द जी पाटणी प्रवेशिका परीक्षा में प्रथम श्रेणी में तथा श्रीमती ललिता कुमारी सुपुत्री श्रीमान् कस्तूर चन्द जी पाटणी, श्रीमती सरला कुमारी सुपुत्री श्रीमान् केसर लाल जी अजमेरा, श्रीमती कमला देवी सुपुत्री श्रीमान् पूनमचन्द जी कासली वाल, श्रीमती निर्मलादेवी सुपुत्री श्रीमान् मालीलाल जी गोधा प्रवेशिका में द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हुई है।

धन्यवाद

श्रीअतिशयक्षेत्र थूबोनजीको निम्न प्रकारकी सहायता प्राप्त हुई है।

१००) दानवीर दिगम्बर जैन पंचायत कलकत्ता

२७१) श्री मती चन्द्राबाई जी खंडवा क्षेत्र पर धर्म शाला को

१८) श्रीमान् सिंघई बालचन्द जी पिपरई गाँव वालोंने १ जोड़ा बर्तन मय लखत चौकी

३५) श्रीमान् सेठ शोभाराम ताराचंद जी काला उज्जैन वालों ने ७० बर्तन व १ चन्दोवान

१२५) फूल चंद जी जैन थूबोन वालों ने मंदिर नं २१ में फर्श कराने के लिये

उपर्युक्त दातारों को अनेकशः धन्यवाद है

जरूरी सूचना

पंडित अर्जुनलाल जी इन्दौर वालोंका कार्य सन्तोषजनक प्रतीत नहीं हुवा है इस लिये कोई भाई उन्हें थूबोन जी की सहायतार्थ चंदा न देवें व जहां पर वे पहुंचें वहाँ की पंचायत उनसे कमेटी का हिसाब व कागजात लेकर महा मंत्री आफिस को भेजने की कृपा करें।

श्रीअतिशयक्षेत्र थूबोनजी पर अबतक २३ मंदिर ही देखने में आते थे लेकिन थोड़े दिनों से २ मंदिर और प्राप्त हुवे हैं जिनमें दिगम्बर जैन प्रतिमायें भी हैं अब की बार मेले पर २५ मंदिरों के दर्शन होंगे। समाज के श्रीमानों को क्षेत्र के फागुन वदी ५ से फागुन वदी १० तक होने वाले मेले पर अवश्य पधारना चाहिये।

चौधरी रामलाल महामंत्री

श्री पावापुरी क्षेत्र पर पंचकल्याणक बिम्ब प्रतिष्ठा मिती फागुन वदी ११ ता० १ मार्च १९३५ ई० से मिती फागुन सुदी ३ ता० ७ मार्च १९३५ ई० तक स्वर्गीय हरप्रशाददास जी आरा वालों की तरफ से पंडित झम्मनलाल जी तर्कतीर्थ प्रतिष्ठाचार्य की अध्यक्षता में होना निश्चय होगया है।

भवदीय

बच्चूलाल जैन

ट्रष्टी बाबू हरप्रसाददास जैनफंड

ता० २०-१-३५ को श्रीमहावीर जैन ब्रदरहुडने ला० नेमि दास जी शिमला को सरकारसे 'रायसाहिब' पद प्राप्त होनेके उपलक्ष्य में प्रीति भोज दिया, जिस में देहली के प्रतिष्ठित जैन महानुभाव सम्मिलित थे सभा के सभापति श्रीमान् सेठ कानमल जी अजमेर वाले थे जिसमें विद्वानों ने कवितायें पढ़ी तत्पश्चात सभाके मंत्री बा० शिवदयाल जी ने रा० साहिब जी को अभिनन्दन पत्र भेट किया।

अकलंकदेवाय नमः
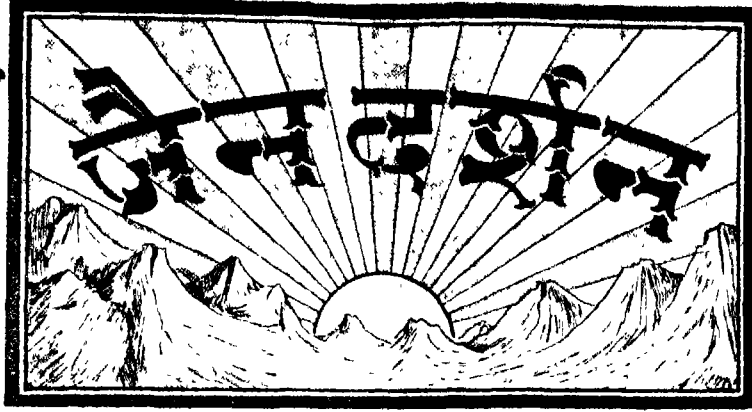
श्री जैनदर्शनमिति प्रथितोग्ररश्मिर्भूमीभवन्निखिलदर्शनपक्षदोषः,
स्याद्वादभानुकलितो बुधचक्रवन्द्यो भिन्द्यन्तमो विमतिजं विजयाय भूयात्

वर्ष २ | श्री माघ वदी १३—शुक्रवार श्री वीर सं० २४६१ | अङ्क १४

बुद्धदेव और एक वृद्धा

(१)

एक दिवस इक वृद्धा माता, बुद्धदेवके गई समीप,
हाथजोड़ बोली, कर जीवित मेरे मृतसुतको जगद्दीप।
वहही मेरा अवलंबन था, वहही था जीवन शृङ्गार,
ध्यानखोल करुणालय बोले, बुद्धदेव तब गिराविचार

(२)

जिस घरमें ना कभी मरा हो कोई, उस घरसे लाओ,
मुट्ठीभर राई के दाने, शीघ्र लौट फिर यहां आओ।
तब तेरी आंखों का तारा जीवित होगा शीघ्र सही,
एकबार जीवित होकर यह नहीं मरेगा कभी कहीं।

(३)

पा आज्ञा उस योगीश्वर की-गई शीघ्र वह लाने को,
मुट्ठी भर राई के दाने, अपना पुत्र जिलाने को।
घर २ घूमी किन्तु न पाया, उसने अपना इच्छित दान,
ऐसा घरतो कहीं नहीं है बोले यों सबही मतिमान।

(४)

हो हताश तब उसनेसोचा, यह असार संसार महा,
योगायोग मृत्यु जीवन का, अद्भुत मेला यहाँ कहा।
मोहजालमें पड़के मैंने, अपना अबतक किया विनाश,
सत्य तत्व जीवनमें क्याहै नहीं हुआ मुझको प्रतिभास

(५)

विश्ववन्द्य अब बुद्धदेवके चरणों में रहकर अपना,
जीवन सफल बनाऊंगी मैं, सचमुच यहजग है सपना।
इस अनंत जीवन में केवल; मानव जीवन ही है सार,
बन साध्वी मैं दूर करूंगी, अपने सब कर्मों का भार।

—चैनसुखदास जैन

क्या स्वप्न भविष्य वक्ता हैं ?

(ले० श्री० मोहनलाल बड़जात्या)

उपरोक्त प्रश्न का उत्तर; हां हैं। सो भी प्राचीन शास्त्रों की साक्षी पूर्वक। वर्तमान शिक्षा प्राप्त बहुतसे सज्जन सम्भव है, इस बात पर ठठा कर हंसे, कहें कि इस बात में क्या तथ्य है सपने तो एक प्रकार के जंजाल मात्र हैं। उनका यह कहना भी किसी अंश में सत्य है पर यह ऐसा कहने वालों की नासमझी के कारण है और यथार्थ में देखा जाय तो सपने भली भांति आगे आने वाली शुभाशुभ घटनाओं के पूर्व द्योतक हैं। जैन शास्त्रों में तीर्थंकर भगवान की माता के सोलह स्वप्न और राजा चन्द्रगुप्त के सोलह स्वप्न और उनका फल भली भांति वर्णित है भगवान की माता के स्वप्न शुभ द्योतक थे और राजा चन्द्रगुप्त के स्वप्न आगे आने वाले निकृष्ट काल के सूचक थे जिनका फल उसी अनुसार वर्त रहा है। इन स्वप्नों के अतिरिक्त जैन धर्म के अन्य चरित्र ग्रंथों में और भी जगह जगह स्वप्न और उनके फलों का वर्णन मिलता है। जीवन्धर चरित्र में वर्णन है कि जीवन्धर स्वामी के पिता सत्यंधर राजा की विजया रानी को तीन स्वप्न आये। ग्रन्थ कर्ता श्री वादीभसिंह सूरि उन स्वप्नों का उल्लेख करते हुए क्या लिखते हैं। देखिये

'अस्वप्नपूर्वं जीवानां न हि जातु शुभाशुभम्'

अर्थात्-जब तक पहले स्वप्न नहीं आ लेता तब तक मनुष्यों के लिए शुभ और अशुभ का प्रादुर्भाव नहीं होता। इस कथन के अनुसार तो यह सिद्ध हो जाता है कि शुभ और अशुभ के प्रगट होने के पूर्व सब को उसकी सूचना स्वप्न द्वारा मिलती है। यह बात असम्भव नहीं प्रत्युत सम्भव और सत्य जान पड़ती है। हमें सुप्तावस्था में न जाने कितने स्वप्न आते हैं पर इनमें स्मरण बहुत कम ही रहते हैं। स्मरण रहनेपर भी फलके मिलान करनेकी कौन फिक्र करता है एवं फल के मिलान का ज्ञान भी कितनों को है ?

जिस प्रकार भविष्य ज्ञान के अन्य साधनों यथा ज्योतिष शास्त्र, शकुन शास्त्र आदिका ज्ञानहोना सुगम नहीं उसी भांति स्वप्नों के फलाफल को समझने में भी अभ्यास और तत्संबंधी ज्ञान की अत्यावश्यकता है। जिस प्रकार शकुनों के शुभाशुभ को समझ लेना साधारण बात नहीं यथा दूध और घी दोनों ही अच्छे पदार्थ हैं पर गमन के समय दोनों ही मिल जाना अच्छा नहीं—उसी भांति स्वप्न में हंसता हुआ देखना या स्वयं हंसना अच्छा नहीं प्रत्युत स्वप्न में रोना आगे आने वाली खुशी का द्योतक है। इसी भांति स्वप्नों के फलाफल के सम्बन्ध में बड़ी विचित्रता है। स्वप्नों के अच्छे बुरे फलों का अर्थात् अच्छे और बुरे स्वप्नों का दिग्दर्शन करा देना यह इस लेख में सम्भव नहीं इसके लिये एक छोटा मोटा कोष ही पर्याप्त होगा पर स्वप्न वास्तव में कुछ तथ्य रखते हैं यही दिखाने का यहां उद्देश्य है।

जैन शास्त्रों में ही स्वप्नों को भविष्यसूचक माना है सो नहीं वैदिक शास्त्रों में भी इसी भांति माना है और एक नहीं बीसियों जगह इनके फलों का वर्णन किया गया है। पृथ्वी के सब धर्मों और धर्मशास्त्रों में स्वप्नों को भविष्य वक्ता माना गया है और तत्संबंधी उदाहरण दिये गये हैं-यह कहना अत्युक्ति नहीं होगा वैदिक ग्रन्थों में अक्रूर और परशुराम जी के देखे सुस्वप्न

और घोरासुर, कंस और कीर्त्त वीर्यार्जुन के देखे दुःस्वप्न का वर्णन है। एवं और भी कई स्थानों पर तत्सम्बन्धी बहुत उलेख पाये जाते हैं।

सब जगह स्वप्नों के फल एक समान वर्णन किये गये हैं इसका यह अर्थ है, कि कहीं किसी स्वप्न को शुभ माना हो और कहीं पर अशुभः ऐसा कहीं नहीं पाया गया। पाश्चात्य पुस्तकों में भी स्वप्न विषयक साहित्य काफी मौजूद है और उन में वर्णित फल भी हमारे प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित फल से मिलता है। सम्भव है पाश्चात्य साहित्य अधिकांश में हमारे प्राचीन साहित्य से ही लिया गया हो। स्वप्न विषयक पाश्चात्य लेखकों में Maury, Wundt, Carpenter, Vollket, Tissie, Frend और Nicoll आदि के नाम उलेखनीय हैं।

स्वप्न के समय और निष्फल स्वप्न के विषय में शास्त्रों का मत इस भांति है—रात्रि के पहले पहर में आये हुए स्वप्न का फल एक वर्ष में, दूसरे पहर का आठ महिने में, तीसरे पहर का तीन महिने में और चौथे पहर में आये हुए स्वप्न का फल पन्द्रह दिन में प्रगट हो जाता है। इसी भांति प्रातः काल आया हुआ स्वप्न उसी दिन फल दे देता है। शुभ सूचक स्वप्न देखने के बाद शुभ फल की प्राप्ति के लिये सोना मनाहै इसी भांतिअशुभस्वप्न देखनेपर स्वप्नके अशुभ फल को मिटानेके लिये निद्रा अवश्य ले लेना चाहिये चिन्ताग्रस्त, रोगग्रस्त और भयाकुल मनुष्यों के स्वप्न निष्फल होते हैं इसी भांति मल मूत्र की बाधा होने पर अथवा नंगे और खुले केशों वालों के स्वप्न भी निरर्थक होते हैं। स्वप्न के बाद नींद ले लेने पर किंवा रात्रि में ही किसी दूसरे को अपने देखे हुए स्वप्न का हाल कहदेने से स्वप्न का फल नहीं होगा।

भद्र बाहु संहिता में रोगी मनुष्यों के लिये कई प्रकार के अरिष्ट सूचक स्वप्नों का वर्णन है जिनके देखने पर मृत्यु नियत समय में अवश्य होजाती है। पहले देखी हुई, सुनी हुई और सोची विचारी हुई बातों के स्वप्न भी निरर्थक होते हैं।

इस प्रकार स्वप्न तीन प्रकार के हुए: अर्थात शुभ, अशुभ और निरर्थक। विद्यानुवाद नामक जैन मन्त्र ग्रन्थ में स्वप्न दो प्रकार के लिखे हैं एक तो अपने आप आये हुये स्वप्न और दूसरे देवी स्वप्न जोकि मन्त्र के बल से इच्छित बात के निर्णयार्थ लिये जाते हैं। स्वप्नको किस प्रकार सिद्ध करना और सिद्ध होजाने पर किस प्रकार स्वप्न लेना यह विधि बताई गई है। यह भी कहा गया है कि जो स्वप्न सहज ही अपने आप आते हैं वे तो झूठ और सच्चे दोनों हो सकते हैं पर जो मंत्र सिद्ध करके विधान पूर्वक स्वप्न लेता है उसे सच्चा स्वप्न आता है। कहा है—

श्रुता सृतानि संपूर्णैर्यदुक्तं भद्रबाहुभिः
तदेवाहं प्रवक्ष्यामि स्वप्नदृष्टं शुभाशुभं।
स्वप्नमाहु द्विधाऽऽचार्य्यदैवतं सहजं तथा,
यो मंत्राज्जायते स्वप्नः स दैवः कथितः स्मृतः। ?
इतो मंत्रहीनो यः ? सत्यासत्य द्विभेद भाक् ,
समं धातो भवेत्सत्यश्चित्यादि जनितः परं।

इसके बाद में मंत्र लिखा है जो एक बहुत छोटा सा मंत्र है। उस मंत्र के दस हजार जाप करके सिद्ध करने का विधान बताया गया है। मंत्र इतना छोटा है कि उसके दस हजार जाप कोई चाहे तो एक दिनमें भी हो सकते हैं। इस लेखक ने भी एक ही दिन में कर लिये थे। दस हजार जाप करके दशांश अर्थात् एक हजार आहुति पूर्वक होम करने के लिये लिखा है। और इस प्रकार स्वप्न सिद्ध हो जाने पर जिस

दिन स्वप्न लेना हो उस दिन उपवास करके मौन सहित रहकर रात्रि को स्वप्न लेने का विधान बताया है। इस संबंध के जो कतिपय श्लोक भी विद्यानुवाद ग्रन्थ में हैं वे नीचे उद्धृत किये जाते हैं।

मंत्र— " ... ... "

मंत्रके बाद में निम्न श्लोक है—

अयं दश सहस्रैः सुजाती पुष्पैस्तुमिष्यति
दशांशहोम संयुक्तैर्गुग्गुलैर्मधुरत्रयैः
सिद्धो मंत्रो यदा मंत्री स्वप्नं पश्येद्विधानतः
स्वपर कार्यदिस्यसु पुण्याय सुकोर्णय ?
सोपवास संमौनस्थः सर्वारंभ विवर्जितः
रौद्रार्तविकथाहीनो धर्मस्थस्तद्दिने समी
तत्संध्यायां कृतस्नानः श्वेतवस्त्रादिभूषितं
सुगंधि जाति पुष्पाणामष्टोत्तरशतेन वै
जिनाकृति पुरो मंत्रं जपित्वैकाग्रमानसः
हृदि संस्थाप्य तत्कार्यं सुप्येत्तत्रैव संस्तरे।
एक रूपो भवेत्स्वप्न द्विविधोपिस्वपुण्यतः
सत्रतः सत्य पश्यस्यादितरश्च कदाचन।

स्वप्न विधान के अतिरिक्त अनुमान २४ अन्य विधान श्रीविद्यानुवाद ग्रंथ में है। जिनमें मारण, उच्चाटन, स्तंभन, आकर्षण और वशीकरण आदि विधान भी गर्भित हैं। सम्भव हुआ तो इन विषयों पर आगामी प्रकाश डाला जायगा।

जैनधर्म का मर्म और पं० दरबारीलाल जी

[ले० पं० राजेन्द्रकुमार जैन न्यायतीर्थ]

क्या भ० पार्श्वनाथ के धर्म में कुछ बातें अनिश्चित थीं ?

पं० दरबारीलाल जी का कहना है कि भ० पार्श्व-नाथ के धर्म में कुछ बातें अनिश्चित थीं जिनको भ० महावीर ने निश्चित किया था। देखने में तो यह एक साधारण सी बात जंचती है किन्तु इसका परि-णाम विचारने पर यही एक महत्वशाली बन जाती है यदि यह बात स्वीकार करली जाती है तब सर्वज्ञता के खंडन की कोई आवश्यक्ता ही नहीं रह जाती। क्योंकि जो व्यक्ति किन्हीं बातों का निश्चय नहीं कर सकता उसको सर्वज्ञ मानना तो एक दूर की बात है, ऐसी परिस्थिति में यह आवश्यक होजाता है कि इस पर गम्भीरता के साथ विचार किया जाय।

दरबारीलाल जी ने अपनी इस बातके समर्थन में उत्तराध्ययन के केशि गौतम संवाद को ही लिखा है। इसके आधार से आपने इस बात के प्रमाणित करने की चेष्टा की है कि भ० पार्श्वनाथ के धर्म में मोक्ष का स्थान अनिश्चित था और द्वादशांग की व्यवस्था भी नहीं थी। विचारशील पाठक आपके कथन पर अच्छी तरह विचार सकें अतः यहां हम उसको लेखक के ही शब्दों में उद्धृत किए देते हैं—

"बारहवें प्रश्न से मालूम होताहै कि पार्श्वनाथके समय में मोक्ष का स्थान अनिश्चित था। मुक्त जीव लोकाग्र में स्थित हैं। यह बात भी महावीर ने कही होगी · उत्तराध्ययन में केशिकुमार को श्रुतज्ञानी कहा है। जबकि गौतम को द्वादशांग वेत्ता कहा है। उससे मालूम होता है कि भ० पार्श्व-नाथ का श्रुत अंगों में विभक्त नहीं था। वह एक ही संग्रह था जो श्रुतसे कहा जाता था। उससे भ० पार्श्वनाथ के श्रुत की संक्षिप्तता या लघुता और भ० महावीर के श्रुत की विस्तीर्णता और महत्ता मालूम होती है।" यदि संवाद के इस अंश की प्रमाणता और अप्रमाणता की बातको छोड़ भी दिया जाय और यही मान लिया जाय कि वास्तव में यह संवाद हुआ और केशिकुमारने गौतम से मोक्ष के सम्बन्ध में ऐसा ही प्रश्न किया था तब भी इससे यही सिद्ध होता है कि केशिकुमार को मोक्षस्थान का पता नहीं था। इसका यह भाव कदापि नहीं निकलता कि भ० पार्श्वनाथ ने अपने उपदेश में मोक्षस्थान का निर्णय नहीं किया था। केशि गौतम के प्रस्तुत संवाद और भ० पार्श्वनाथ के धर्मोपदेश के समयमें करीब ढाईसौ वर्ष का अंतर है। ऐसी परिस्थितिमें यह कैसे कहा जासकता है कि केशि का ज्ञान वही भ० पार्श्वनाथ का उपदेश था या भ० पार्श्वनाथ ने जिन २ बातों का उपदेश दिया था वे सब केशिकुमार को याद थीं। यह तो भ० पार्श्वनाथ के शासन की बात है। हम तो महावीर शासनमें भी इसका अभाव पाते हैं। महावीर के शासनमें वे सब बातें जिनका उपदेश भ० महावीर ने दिया था—ढाईसौ वर्ष तक ज्योंकी त्यों नहीं रहीं कुछ के सम्बन्धमें स्मरण का अभाव होगया और कुछ के स्मरणमें विपर्यास होगया। ढाईसौ वर्ष की बात

तो दूर की है वीर के शासनमें तो दो सौ वर्ष तक भी श्रुत केवलियों का अस्तित्व नहीं मिलता । क्या दिगम्बर और क्या श्वेताम्बर दोनों ही मान्यतायें इस बात को स्वीकार करती है कि आचार्य भद्रबाहु वीर शासन के अन्तिम श्रुत केवली हुये हैं और इनका समय वीर सम्बत से १६२ वर्ष से अधिक का नहीं।

ऐसी परिस्थितिमें केशिकुमार के अज्ञान से भ० पार्श्वनाथ के धर्म का निर्णय करना युक्तियुक्त नहीं। भ० पार्श्वनाथ के धर्म का निर्णय तो भ० पार्श्वनाथ के साक्षात् उपदेश या उनके उपदेश की अटूट परम्परा से ही किया जासकता है। उससे तो केवल इतना ही सिद्ध होता है कि केशिकुमार को मोक्ष स्थान का पता नहीं था न कि यह कि भ० पार्श्वनाथ के धर्म में यह बात अनिश्चित थी केशिकुमार के दूसरे प्रश्नों से भी ऐसा ही झलकता है कि उनकी ज्ञान की मात्र न्यून थी—दृष्टांत के लिये चौथे और छटे को ही ले लीजियेगा। लेखक ने केशि के ये प्रश्न और उनके गौतम का उत्तर निम्न प्रकार लिखा है।

" (४) सभी लोग बन्धनोंमें बन्धे हुये हैं तब आप इन बंधनों से कैसे छूट गये ? उत्तर- राग द्वेश आदि को चारों तरफ से नष्ट करके मैं स्वतंत्र होगया हूं । (६) आत्मा में एक तरह की ज्वालायें उठा करती हैं तुमने उन्हें कैसे शान्त किया ? ये कषायरूपी ज्वालायें हैं। मैंने भ० महावीर द्वारा बताये गये श्रुतशील और तपरूपी जल से उन्हें शान्त किया है।

यदि केशिकुमार के प्रश्नों से ही भ० पार्श्वनाथ के धर्म का निर्णय किया जायगा तब तो यह भी मानना पड़ेगा कि भ० पार्श्वनाथ के धर्ममें बंधनों से दूर होने और कषायों के शान्त करने की बातों का भी अभाव था, जैसा कि उपरिलिखित चौथे और छठे प्रश्नों से स्पष्ट है। जिसको बंधनों से दूर होने और कषायों के शान्त करने के मार्ग का भी पता नहीं था वह जिन युग प्रवर्तक तीर्थंकर कैसे होगया उसका उत्तर भी दरबारीलाल जी ही देंगे।

इन दोनों प्रश्नों की उपस्थिति में यह निःसन्देह होजाता है कि उन सब बातों से केशिकुमार के ज्ञान संबंधमेंही कुछभी निर्णय किया जासकताहै नकि भ० पार्श्वनाथ के ज्ञान और उनके धर्म के सम्बन्ध में है।

दूसरी बात भी ऐसी ही अस्पष्ट है। केशि को श्रुतज्ञानी कहा इसका यह तात्पर्य कैसे निकाला जा सकता है कि उस समय द्वादशांग की रचना ही नहीं हुई थी। श्रुत केवली को भी तो श्रुतज्ञानी ही कहा जाता है। भद्रबाहु के सम्बन्ध में इस प्रकार के उल्लेख अनेक स्थानों पर मिलते हैं। लेखक के आशय के अनुसार इससे भी तो यही परिणाम निकलना चाहिये कि महावीर के शासन में द्वादशांग की रचना का अभाव है, क्योंकि श्रुत केवली भद्रबाहु को श्रुत केवली ही कहागया है। जो जिसका या जितने अंग का ज्ञाता है उस उसके साथ वैसे ही शब्दोंके प्रयोग का नियम या पद्धति होती तब तो लेखक का केशि कुमार को केवल श्रुत ज्ञानी लिख देने से विवादस्थ आशय निकालना किसी तरह ठीक भी कहाजा सकता था किन्तु ऐसा न नियम ही है और न पद्धति ही । अतः केशिकुमार के सम्बन्ध में केवल श्रुत ज्ञानी शब्द के प्रयोग से भ० पार्श्वनाथ के धर्म में द्वादशांग रचना के अभाव की बात ठीक नहीं बैठती।

दूसरी बात यह है कि केशिकुमार का पूर्ण श्रुत ज्ञानी होना भी अभी निश्चित नहीं है प्रत्युत इनके

सम्बन्ध में तो इससे विपरीत बात ही प्रगट होती है। जैसा कि उनके प्रश्नों से प्रगट है।

ऐसी परिस्थिति में इस ढंग के आधार से भ० पार्श्वनाथ के श्रुत को संक्षिप्त लघु कहना किसी भी प्रकार युक्तियुक्त नहीं ठहराया जा सकता। इससे प्रगट है कि दरबारीलाल जी की भ० पार्श्वनाथ के धर्म में कुछ बातों को अनिश्चित बतलाने की बात बिलकुल निराधार है अब रह जाती है मुनियों की नग्नता की अनिवार्यता की बात। इसके सम्बन्ध में लेखक का कहना है कि शरीरधारण करके भी और भोजन लेकर भी अपरिग्रही होसकता है तो लंगोटी धारण करने परभी क्यों नहीं?

इसके सम्बन्ध में आपके निम्नलिखित शब्द ध्यान देने योग्य हैं- "एक मुनि शरीर का भी त्याग करता है। क्या उसके लिये उसे आत्महत्या सरीखा पाप करना चाहिये? यदि शरीर के रहते हुये भी शरीर का त्याग होसकता है तो उसका यह अर्थ स्पष्ट होजाता है कि शरीर तो रखना परन्तु शरीर को अपनी सम्पत्ति नहीं मानना। इसी प्रकार परिग्रह त्यागी, धान्य परिग्रह का भी त्याग करता है किन्तु फिर भी धान्य का भोजन करता है। इस प्रकार धान्य ग्रहण करने परभी हम उसे धान्य परिग्रही नहीं कहते। भोग या उपभोग से ही परिग्रह नहीं कहलाता। अन्यथा एक मुनि मकान में ठहरता है तो वह गृहपरिग्रही होजायगा। पानी पीता है तो जल परिग्रही होजायगा। आसन पर बैठता है तो आसन परिग्रही होजायगा। इसलिये यह स्मरण करना चाहिये कि जबतक किसी वस्तु में सम्पत्ति रूपसे ग्रहण करने की भावना नहीं होती तबतक वह परिग्रह नहीं कहलाता। ··· ··· जब शरीर और तदन्तर्गत भोजन में ममत्व नहीं है तो शरीरस्थ लंगोटी में क्या ममत्व होजायगा ··· ··· आक्षेप— मुनि अगर वस्त्र धारण कर सकता है तो जेवर क्यों नहीं? समाधान— गुप्तेन्द्रिय को ढकने के लिये कपड़ा आवश्यक है, जेवर नहीं। [जैन जगत वर्ष ७ अङ्क १२]

क्या २ परिग्रह है और क्या २ परिग्रह नहीं है? इस बात को निर्णय के लिये प्रथम परिग्रह के लक्षण को ही निश्चित करना चाहिये। परिग्रह की परिभाषा के निश्चित होजाने पर जिन २ में यह घटित हो जायगी उन उनको परिग्रह स्वीकार कर लिया जायगा। परिग्रह की परिभाषा के लिये इतना ही लिख देना पर्याप्त नहीं कि "जबतक किसी वस्तु में सम्पत्ति रूपसे संग्रह करने की भावना नहीं होती तबतक वह परिग्रह नहीं कहलाता"। किसी भी वस्तु में सम्पत्ति रूपसे संग्रह करने की भावना हो या न हो यदि वह सराग क्रिया का निमित्त है तो वह परिग्रह है। भोगभूमियाँ जो चाहते हैं उनको वही मिल जाता है अतः उनकी किसी भी वस्तु में संग्रह की बुद्धि नहीं रहती तो क्या उनके वस्तु ग्रहण को अपरिग्रह कहा जा सकता है? यही बात स्वर्गस्थ जीवों की है। स्वर्ग में भी संकल्पमात्र से अमृतपान होजाता है। वहां भी इतनी संग्रह बुद्धि नहीं रहती तो क्या इनका यह अमृतपान भी अपरिग्रह कहना चाहिये? भोगभूमियां और देवों के अतिरिक्त आज हम में भी बहुतसे ऐसे प्राणी मिलेंगे जो प्रतिदिन जितना उपार्जन कर लेते हैं उतना ही व्यय कर देते हैं उनमें वस्तुओं के संग्रह करने की बुद्धि नहीं रहती। साम्यवादी राष्ट्रों में इसको बड़ी विशालता के साथ बताया जा सकता है। वस्तुओं में संग्रह बुद्धि की

तो बात ही क्या है ? यहां तो उपार्जन के प्रश्न की भी गौणता रहती है। इन देशों में तो केवल अपना नियमित कर्तव्य ही होना चाहिये। इसके बाद आवश्यक सामग्री तो स्वयं प्राप्त होती ही है।

भोगभूमियां जीवों को, देवों को और संग्रह की बुद्धि न रखने वाले मनुष्यों को अपरिग्रही किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं किया जासकता। अतः स्पष्ट है कि लेखक की परिग्रह की परिभाषा त्रुटिपूर्ण है। सूत्रकार ने मूर्च्छा को परिग्रह स्वीकार किया है+ मूर्च्छा से तात्पर्य किसी वस्तु में ममत्व बुद्धि से है।

मूर्च्छा या ममत्व परिणाम परिग्रह क्यों है ? इस बातके निर्णय के लिये यहां धर्माधर्म के स्वरूप पर भी थोड़ा सा विचार करलेना अनावश्यक न होगा। निश्चय दृष्टि से धर्म से तात्पर्य वस्तुस्वभाव से है। व्यवहार दृष्टि से उसको भी धर्म माना गया है जिस से वस्तुस्वभाव को प्राप्त किया जाता है। अनन्त चतुष्टय आत्मा का स्वभाव है तथा यह वीतरागता के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है अतः व्यवहार में यही वीतरागता धर्म है वीतरागता को धर्म स्वीकार करलेने पर यह तो स्वयं सिद्ध होजाता है कि इससे विपरीत अर्थात सरागता अधर्म है। वीतरागता धर्म है और सरागता अधर्म इस बातके निश्चित होजाने पर वे सब बातें जिनसे वीतरागता बढती है धर्म मानी जाती हैं और वे बातें जो सरागता को बढ़ाती हैं. अधर्म ख्याल की जाती हैं।

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इनसे सरागता की वृद्धि होती है ये सराग क्रियायें हैं अतः इनको अधर्म माना गया है। इसके विपरीत अहिंसा सत्य, अचौर्य और अपरिग्रह उससे सरागता में न्यूनता आती है और वीतरागभाव में वृद्धि होती है अतः उन को धर्म स्वीकार किया गया है। इससे पाठक समझ गये होंगे कि परिग्रह को अधर्म और मूर्च्छा या ममत्व बुद्धि को परिग्रह क्यों स्वीकार किया गया है। अब देखना यह है कि मुनि को वीतरागता के निमित्त किन २ बातों की आवश्यकता है ? यद्यपि वीतरागता आत्म स्वभाव है किन्तु फिर भी अनादिकर्म बन्धन से वह प्रगट नहीं हो पाती। ज्यों २ कर्म बन्धन को हल्का किया जाता है त्यों २ वह प्रगट होती रहती है। अतः वीतरागता की अभिव्यक्ति का मुख्य साधन कर्मबन्धन का अभाव या न्यून होना है। यह संवर और निर्जरा से हो सकता है। ये दोनों तपस्या साध्य हैं। तपस्या शरीर के ही द्वारा हो सकती है तथा स्थिति के हेतु भोजन पान आवश्यक है। अतः शरीर और भोजन पान का तो वीततरागता का साधन होना निःसन्देह है। इससे मेरा यह तात्पर्य नहीं कि जितने भी शरीर हैं या जितने भी प्रकार के भोजन हैं वे सब वीतरागताके साधनहैं किन्तु यहहै कि वीतरागता शरीर औरभोजनके बिना नहींहो सकती। अतः वे व्यक्ति जो केवल इस ही दृष्टि से शरीर और भोजनादिक का सम्बन्ध रखते हैं वे परिग्रही नहीं।

वस्त्र के सम्बन्ध में यह बातनहीं। शरीर की स्थिति के लिये वस्त्र की आवश्यकता नहीं। शरीर की स्थिति तो बिना वस्त्र के भी संभव है। जिन लोगों ने शरीर शास्त्र का अध्ययन किया है। वे भी इस परिणाम पर

+ मूर्च्छा परिग्रहः। तत्त्वार्थ सूत्र—

पहुंचे हैं कि दिगम्बरत्व मनुष्य की आदर्श स्थिति है हम देखते हैं कि जब तक हम साधु जीवन व्यतीत करते हैं तबतक बिना भोजन के हमारा निर्वाह नहीं होता किन्तु वस्त्र के बिना भी होजाता है। दिगम्बर साधुओंका अस्तित्व इसके समर्थनके लिये पर्याप्त है। ऐसा कोई भी समय नहीं रहा है जब कि दिगम्बर साधुओं का बिलकुल अभाव हो गया हो वस्त्र मनुष्य के लिए अनिवार्य होता या इसके बिना शरीर की स्थिति ही न होती तो लम्बे २ समय तक साधु दिगम्बर न रह सकते थे।

जिस श्वेताम्बर समाजने निर्ग्रन्थ साधुओंके साथ भी वस्त्र का पुन्छल्ला जोड़ा है वे भी जिनकल्पी साधुओं का अस्तित्व स्वीकार करते हैं। यदि वस्त्र मनुष्य जीवन के लिये अनिवार्य ही होते तो जिनकल्पी या अन्य दिगम्बर साधुओं का अस्तित्व न मिल सकता था।

भगवान महावीर स्वयं दिगम्बर थे। स्वयं श्वेताम्बर समाज ने भी उनका बहुत काल तक दिगम्बर रहना स्वीकार किया है। बौद्ध साहित्य ही भ० महावीर को दिगम्बर प्रतिपादन करता है।

जबकि बिना वस्त्र के भी एक लम्बे चौड़े समय तक जीवन निर्वाह और वह भी विशिष्टसंयमी और ज्ञानी अवस्था में होसकता है तो यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है कि वस्त्र भी शरीर स्थिति के लिये अनिवार्य है।

लेखक ने स्वयं भी इसके सम्बन्ध में एक स्थान पर लिखा है कि "दिगम्बर वेष के लिये बिना मुक्ति नहीं हो सकती यह एकान्तवाद है। दिगम्बर वेष से भी मुक्ति हो सकती है और अन्य वेष से भी मुक्ति होसकती है" जब लेखक स्वयं यह स्वीकार करता है कि दिगम्बर वेष से भी मुक्ति होती है तब फिर उस का यह लिखना कि "शरीर रक्षा के लिये वस्त्र की उपयोगिता आहार बराबर तो नहीं, किन्तु कुछ नकुछ अवश्य है" कहांतक सत्य है, यह विज्ञ पाठक स्वयं विचार सकते हैं। शरीर रक्षा के लिये वस्त्र की आवश्यकता यदि अनिवार्य होती चाहे वह कितनी ही मात्रा में क्यों न सही तब उन दिगम्बर साधुओं की जो कि लेखक के कथनानुसार अपने दिगम्बर रूप से ही मुक्त्याधार हैं शरीर रक्षा न हुई होती और ना ही वे मुक्त होसकते थे। दिगम्बर रूपसे मुक्ति स्वीकार कर लेने पर तो वस्त्र की अनिवार्यता की बात स्वयं दूर होजाती है। शरीर रक्षा के लिये वस्त्र की आवश्यकता तो उसही अवस्था में जानी जा सकती थी जबकि वस्त्र के अभाव में शरीर की स्थिति में बाधा पड़ती हो। यदि ऐसा होता तब तो दिगंबर रूप से मुक्ति ही असंभव थी। मुक्ति प्राप्त करना निर्बल या अस्वस्थ का कार्य कदापि नहीं हो सकता।

इस ही प्रकार लेखक का यह कहना कि गुप्तेन्द्रिय को ढकने के लिये कपड़ा आवश्यक है, समुचित नहीं। गुप्तेन्द्रिय ही क्या हरएक अवयव को ढकने के लिये कपड़ा या तज्जातीय अन्य पदार्थ आवश्यक हैं किन्तु पहले यह भी सिद्ध होना है कि साधु को गुप्तेन्द्रिय का ढकना भी जरूरी है। इससे साधु-

+ मनुष्यमात्र की आदर्श स्थिति दिगम्बर ही है। आदर्श मनुष्य सर्वथा निर्दोष है- विकार शून्य होता है।
महात्मागांधी— (दिगम्बरत्व और दि० मुनि—)

जीवन में अमुक २ बाधाएं आती हैं। जब तक यह बात सिद्ध न होजाय तबतक इसही आधार से साधु जीवन में कपड़े का पुन्कल्ला कैसे स्वीकार किया जा सकता है। जो स्वयं दिगम्बर वेष से मुक्ति होना मानते हैं वही यह कहें कि गुप्तेन्द्रिय का ढकना और उसके ढकने के लिये कपड़ा जरूरी है; कितने आश्चर्य की बात है? इसका तो यह तात्पर्य समझना चाहिये कि दिगम्बर वेष से जितने मुक्त हुए उन्होंने अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया और फिर भी वे मोक्ष चले गये।

दिगम्बर वेष से भी मोक्ष स्वीकार कर लेने पर भी गुप्तेन्द्रिय के ढकने की आवश्यकता बतलाना एक शेखचिल्लियों जैसी बात है।

इन सब बातों के बल पर यही कहना पड़ता है कि शरीर स्थिति के लिये वस्त्र का होना अनिवार्य नहीं।

शरीर स्थिति के अतिरिक्त भी अन्य और कोई मार्ग नहीं जिसके द्वारा वस्त्र को वीतरागता का कारण स्वीकार किया जा सके। अतः यही कहना पड़ता है कि शरीर के रहने पर, भोजन करने पर; आसन पर बैठने पर, और जल पीने पर भी साधु परिग्रही नहीं, क्योंकि वह उन सब कामों के द्वारा केवल वीतरागता की वृद्धि करता है। या यों कहिए कि साधु की वीतरागता की अभिव्यक्ति के लिये यह अनिवार्य है। इनको या इनमें से एकको भी छोड़ दिया जाय तो फिर वीतरागता की आराधना असंभव होजाती है अतः इन सब के रहने पर भी साधु को परिग्रही स्वीकार नहीं किया जाता। ये बातें वस्त्र के सम्बन्ध में घटित नहीं होतीं। वस्त्र के साथ शरीर स्थिति या वीतरागता का अविनाभावी सम्बन्ध नहीं है अतः इसको वीतरागता के निमित्त स्वीकार नहीं किया जा सकता। वीतरागता और सरागता परस्पर विरुद्ध हैं। जहां इनमें से एक का अभाव है वहां दूसरा का सद्भाव अवश्यंभावी है वस्त्र के आधार से साधु में वीतरागता को स्वीकार नहीं किया जासकता जैसाकि हम ऊपर स्पष्ट कर चुके हैं अतः उसके आधार से साधु में सरागता ही माननी पड़ती है।

साधु का भोजन स्वयं वीतरागता का साधन नहीं किन्तु वीतरागता के साधन शरीर का साधन है अतः इसको भी वीतरागताका साधन माना जाता है इसही प्रकार वस्त्र स्वयं सरागता का निमित्त है दूसरे लज्जा रूप राग की वृद्धि का कारण है अतः इस दृष्टि से भी यह सरागता का ही कारण समझा जाता है। जितेन्द्रिय और लज्जाजयी को बालक की भांति क्या आवश्यक है कि वह अपनी गुप्तेन्द्रिय को ढके। बालक और जितेन्द्रिय साधु में केवल इतना ही अन्तर है कि अभी बालक में विकारभाव उत्पन्न ही नहीं हुए और साधु में उत्पन्न होकर भी दूर हो चुके हैं।

इन सब बातों के आधार से यह बात प्रगट है कि सवस्त्र अवस्था में पूर्ण वीतरागता एवं उससे होने वाली मोक्ष का साधन नहीं हो सकता अतः मोक्ष के लिये नग्नता को अनिवार्य ही स्वीकार करना पड़ता है।
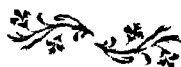
ब्रह्मचर्याणुव्रत और उसके अतिचार पर दृष्टिक्षेप

[ले० पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री बनारस]

जैनदर्शन के गत ८वें अंक में 'अनेकान्तवाद की व्यापकता और चारित्र' शीर्षक से मेरा एक लेख प्रकाशित हुआ था। इस लेख में एक स्थान पर मैंने लिखा था—'बारहवीं शताब्दी के बाद के कुछ विद्वानों ने संभवतः तत्कालीन मनुष्यों के शिथिलाचार से प्रभावित होकर स्वदार संतोषी श्रावक के लिये वेश्यासेवन को जो अनुचित नहीं बतलाया है उसमें भी अनेकान्त दृष्टि ही काम करती है"। इस वाक्य का 'संभवतः तत्कालीन मनुष्यों के शिथिलाचार से प्रभावित होकर' यह अंश 'जैन बोधक' पत्र के स० सम्पादक श्री 'कोठारी' जी को अनुचित जान पड़ा है 'बोधक' के २२ अंक में उन्होंने इस पर एक नोट दिया है। और मुझसे उसपर दृष्टिक्षेप करने की प्रेरणा करते हुए अन्त में लिखा है—'इस विषय पर और भी लिखने का मेरा हेतु है'। अब तक मैं उसी की प्रतीक्षा करता था, अधिक विलम्ब होता जान उत्तर देना उचित समझा।

कोठारी जी का कहना है कि, 'पं० आशाधर जी ने अपने 'सागार धर्मामृत' की टीकामें 'वेश्यासेवन को जो अतिचारों में गिनाया है वह नैष्ठिक श्रावक की दृष्टि से नहीं किन्तु, पाक्षिक श्रावक की दृष्टि से गिनाया है'। हम 'कोठारी' जी के मत से सहमत होते किन्तु हमें दुःख है कि आशाधर जी के शब्द उनके मत का समर्थन नहीं करते। इस बात पर प्रकाश डालने के लिये कुछ विस्तार से विवेचन करना आवश्यक है।

पं० आशाधर जी बहुश्रुत विद्वान थे, उनका पांडित्य अपूर्व था, इतने पर भी उन्होंने जो कुछ लिखा उसमें पूर्वाचार्यों तथा विद्वानों के वाक्यों का यथाशक्ति निर्वाह किया। सागार धर्मामृत की रचना के समय उनके सामने अनेक श्रावकाचार तथा इतर ग्रन्थ उपस्थित थे उनमें रत्नकरंड, महापुराण, यशस्तिलक चम्पू, वसुनन्दि श्रावकाचार और अमितगति श्रावकाचार का नाम उल्लेखनीय है इनमें से भी आशाधर जी ने महापुराण और यशस्तिलक का बहुत अधिक उपयोग किया है। सागार धर्मामृत के श्लोकों तथा टीका का तुलनात्मक पर्यवेक्षण करने से उक्त बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है। अस्तु,

श्रावक के अष्ट मूल गुणों को लेकर जैनाचार्यों में मत भेद है। उनमें दो मत मुख्य हैं एक मत पंचउदुम्बर और मद्य मांस तथा मधु के त्यागके पक्ष में दूसरा मत पंच उदुम्बरों के स्थान में पंच अणुव्रतोंको स्वीकार करता है। पं० आशाधर जी ने प्रथम मत को स्थान दिया है। उन्होंने सागार धर्मामृत के दूसरे अध्याय में अष्ट मूलगुणोंके पालक पाक्षिक श्रावक का बड़ा विस्तृत विवेचन किया है। तीसरे अध्याय से नैष्ठिक का वर्णन प्रारम्भ होता है। ग्यारह प्रतिमाएं नैष्ठिक श्रावक के ही भेद कही जाती हैं। अतः दर्शन प्रतिमा का वर्णन करके चतुर्थ अध्यायसे व्रत प्रतिमा का विवेचन प्रारम्भ किया गया है। उसमें ब्रह्मचर्याणुव्रत का लक्षण निम्नप्रकार से है—

सोऽसि स्वदार संतोषी योऽन्यस्त्रीप्रगटस्त्रियौ।
न गच्छत्यहंसो भीत्या नान्यैर्गमयति त्रिधा ॥५२॥

अर्थात् पाप के भय से परनारी और वेश्या को जो मन वचन और कायसे न स्वयं भोगता है और न दूसरों को प्रेरणा करता है वह श्रावक स्वदार संतोषव्रत का पालक कहाता है। इस श्लोक की टीकामें दार* शब्द का अर्थ 'धर्म पत्नी' किया है तथा और भी लिखा है जिसका आशय इस प्रकार से है—" यह ब्रह्माणुव्रत निरतिचार अष्ट मूलगुण के धारक विशुद्ध सम्यग्दृष्टि श्रावक को लक्ष्य करके बतलाया गया है। जो गृहस्थ स्वपत्नी की तरह साधारण स्त्रियों का भी त्याग करने में अशक्त है और केवल परस्त्री का ही त्याग करता है वह भी ब्रह्माणुव्रती कहा जाता है। क्योंकि ब्रह्माणुव्रत के दो भेद हैं स्वदार संतोष और परस्त्री त्याग। स्वदारसंतोष व्रत—जिसका लक्षण ऊपर बतलाया गया है—

अभ्यस्त देश संयमी नैष्ठिक श्रावक पालता है और देश संयम का अभ्यासी पाक्षिक श्रावक दूसरे व्रत को धारण करता है "।

उक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट होजाती है कि आशाधर जी के मत से द्वितीय प्रतिमा का धारक नैष्ठिक श्रावक स्वपत्नी के सिवा परस्त्री और वेश्या दोनों का त्याग करता है। और पाक्षिक श्रावक केवल

परस्त्रीका ही त्याग करता है वेश्याका त्याग नहीं करता इस मत के समर्थन में पं० आशाधर जी ने 'तदाह श्री सोमदेवपण्डितः' लिख कर यशस्तिलक चम्पू का यह श्लोक दिया है—

वधूवित्तस्त्रियौ मुक्त्वा सर्वत्रान्यत्र तज्जने।
माता स्वसा तनूजेति मतिर्ब्रह्म गृहाश्रमे ॥

अर्थात्—पत्नी और वित्तस्त्री —धन की दासी वेश्या—को छोड़ कर अन्य समस्त नारियों को माता बहिन और पुत्री के समान मानना गृहस्थ का ब्रह्माणुव्रत है।

पं० आशाधर जीने अपने श्रावकाचारमें पं० सोमदेव जी का बहुत अधिक अनुसरण किया है किन्तु पं० सोमदेव जी ने ब्रह्माणुव्रत का उक्त लक्षण किस आर्ष-वाक्य के आधार पर बनाया है। यह आज तक भी नहीं ज्ञात होसका। आचार्य † श्री समन्तभद्र ने रत्नकरंड श्रावकाचार में परदार निवृत्ति व्रत का ही दूसरा नाम 'स्वदार संतोष' बतलाया है। जब तक उक्त लक्षण के समर्थन में किसी प्रामाणिक आर्षवाक्य का आधार न मिल सके, तब तक हमें यही मानने के लिये बाध्य होना पड़ता है। कि शिथिलाचार के युग में सोमदेव के समान किसी पंडित ने ही एक व्रत के दो टुकड़े करके खुले आम वेश्या सेवन करने वालों को भी ब्रह्माणुव्रती होने का 'फ़तवा' दे दिया है।

* स्वदारेषु-निजधर्मपत्नीषु। तदेतद् ब्रह्माणुव्रतं निरतिचारं सामायिकपर्यन्तमुत्तरविरतिलक्षणाष्टमूलगुणान् प्रतिपन्नवतो विशुद्धसम्यग्दृशः श्रावकस्योपदिश्यते। यस्तु स्वदारवत् साधारणस्त्रियोऽपि त्यक्तुमशक्तः परदारानेव वर्जयति सोऽपि ब्रह्माणुव्रतीष्यते द्विविधं हि तद्व्रतं, स्वदारसन्तोषः परदारवर्जनं चेति। - - - - । तत्राद्यमभ्यस्तदेशसंयमस्य नैष्ठिकस्येष्यते द्वितीयं तु तदभ्यासोन्मुखस्य।

† न तु परदारान् गच्छति न परान् गमयति च पापभीतेर्यत्।
सा परदारनिवृत्तिः स्वदारसन्तोषनामापि ॥५९॥

ब्रह्माणुव्रत के अतिचार पर विचार

ब्रह्माणुव्रत के अतिचारों का सबसे प्राचीन उल्लेख 'तत्वार्थ सूत्र' में पाया जाता है*। नीचे टिप्पणी में 'ब्रह्माणुव्रत' के विषयमें हमने जितने ग्रन्थों का उल्लेख किया है। उनमें से अमित० श्रा० और पुरुषार्थ सिद्धयु' नाम के सिर्फ़ दो ही ग्रन्थोंमें अतीचारों का वर्णन किया गया है दोनों ग्रन्थकार 'तत्वार्थसूत्र' का ही अनुसरण करते हैं इस विषयमें 'लाटीसंहिता' भी उनसे बाहिर नहीं है। अब शेष रहजाते हैं—समन्त-भद्र, सोमदेव और आशाधर। जब कि, तत्वार्थसूत्र कार और उनके अनुयायी विद्वान 'इत्वारिका परिग्रही तापरिग्रहीतागमन' का उल्लेख करते हैं तब स्वामि समंतभद्र केवल 'इत्वरिकागमन' ही लिखते हैं। दोनों उल्लेखों के आशयमें कोई अन्तर नहीं है। आशा-धर जी ने 'इत्वरिकागमन' ही लिखा है, वे लिखतेहैं

इत्वरिकागमनं परविवाहकरणं विटत्वमतिचारा।
स्मरतीव्राभिनिवेशोऽनङ्गक्रीड़ा च पंच तुर्ययमे ॥५८॥

इस श्लोक की टीकामें 'इत्वरिकागमन' शब्द की व्याख्या करते हुए पं० आशाधर जी लिखते हैं— "इत्वरिका यानी व्यभिचारिणी औरतें दो प्रकार की होती हैं, एक जो खुला व्यभिचार करती हैं उन्हें वेश्या कहते हैं, और दूसरी—जो यद्यपि अस्वामिका होतीहैं फिर भी खुला व्यभिचार नहीं करतीं। दोनों प्रकार की स्त्रियों का सेवन करना 'स्वदार संतोषव्रत' का अतिचार है। कारण, उनका शुल्क (Fee) चुका देने से कुछ काल के लिये वे 'स्वदार' यानी स्वपत्नी होजाती हैं (पहिले श्लोकमें 'स्वदार' शब्द का यही अर्थ किया गया है) इसलिये व्रत की कथंचित रक्षा होजाती है और वास्तवमें वह 'अस्वदार' है अतः कथं-चित् भंग भी होता है।

'इत्वरिकागमन' को स्वदारसंतोषव्रत का अती-चार बतलानेके बाद आशाधरजी उसे 'परदारनिवृत्ति' नामक दूसरे व्रत का अतीचार इस प्रकार सिद्ध करते हैं—किसी मनुष्य 'रखेली' वेश्या के साथ सहवास करने से 'परदारनिवृत्ति' व्रत भंग होता है क्योंकि

---

* आचार्य समन्तभद्र, पं० आशाधर और पं० सोमदेव कृत ब्रह्माणुव्रत का लक्षण ऊपर बतलाया गया है। पाठकों की जानकारी के लिये कुछ अन्य विद्वानों के भी लक्षण नीचे दिये जाते हैं।

१ जो मण्णदि परमहिलं जणणीबहिणी सुआइ सारित्थं।
मणवयणे कायेण वि बंभवई सोहवे थूलो ॥३३८॥ स्वा० कार्ति० अनु०।

२ पब्बेसु इत्थिसेवा अणंगकीडा सया विवज्जंतो।
थूलयड बंभयारी जिणेहि भणिऊ पवयणम्मि ॥२१२॥ वसुनन्दि श्रावकाचार।

३ ये निजकलत्रमात्र परिहर्तुं शक्नुवन्ति न हि मोहात्।
निःशेषशेषयोषिन्निषेवणं तैरपि न कार्यम् ॥११०॥ पुरुषार्थसिद्धयुपाय।

४ स्वसुमातृ दुहितृसदृशा दृष्ट्वा परकामिनीः परीयास।
दूर विवर्जयंते भजंगीमिव घोरदृष्टिविषाम् ॥६ ६४॥ अमित० श्रा०

५ मातृवत्परनारीणां परित्यागस्त्रिशुद्धितः।
स स्यात्परांगनात्यागो गृहिणां शुद्धचेतसाम् ॥४५४॥ भावसंग्रह।

इन सब ग्रंथों में समस्त परस्त्रियों के त्यागी को 'ब्रह्माणुव्रती' कहा गया है।

वह वेश्या उस समय कथंचित् परदार है किन्तु लोक में वह 'परदार' के नाम से प्रसिद्ध नहीं है अतः व्रत भंग नहीं होता। किन्हीं विद्वानों के मत से अपरिगृहीत सम्भ्रान्त कुल की रमणी का सेवन कर लेना भी परदार निवृत्ति व्रत का अतिचार ही कहलाता है क्योंकि किसी स्वामी के न होने से वह 'अपरदार' है किन्तु लोकमें वह परस्त्री ही कही जाती है। *

'कोठारी' जी कहते हैं कि यह अतिचार पाक्षिक श्रावक यानी परदार निवृत्तिव्रती की दृष्टि से बताये गये हैं, नैष्ठिक श्रावक यानी स्वदारसंतोषव्रती के लिये नहीं बतलाये गये'। उनसे हमारा नम्र प्रश्न है १- वे इत्वरिकागमन को स्वदारसंतोष व्रत का अतिचार मानते हैं या नहीं? यदि नहीं मानते हैं तो इस व्रतके पांच अतिचारों की पूर्ति वे किस प्रकार करते हैं? तथा यदि मानते हैं तो उसका क्या अर्थ करते हैं?

२—पं० आशाधर जी ने वेश्या सेवन को 'ब्रह्माणुव्रत' का अतीचार बतलाते हुए दो स्थानोंमें दो प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है। पहिले स्थलमें 'स्वदार' और 'अस्वदार' शब्द का प्रयोग करते हुए उन्हें हम देखते हैं और दूसरे स्थल पर 'परदार' और 'अपरदार' शब्द का। क्या इस शब्द भेदमें उतना ही अन्तर नहीं है जितना 'स्वदारसंतोष' और 'परदार निवृत्ति' में है तथा क्या दोनों व्रतों को लक्ष्यमें रखकर उक्त प्रयोग भेद नहीं किया गया है?

३—यदि वेश्या सेवन नैष्ठिक का अतिचार नहीं है तो फिर किसका अतीचार है?

पाक्षिकका अतिचार तो उसे कह नहीं सकते, क्योंकि यह केवल परस्त्री का ही त्याग करता है- वेश्या सेवन का त्याग नहीं करता। 'यस्तु स्वदारवत् साधारण स्त्रियोऽपि व्रतयितुमशक्तः परदारानेव वर्जयति' इत्यादि लिखकर तथा उसके समर्थन में पं० सोमदेव जी का 'वधूवित्तस्त्रियो' आदि श्लोक उद्धृत करके आशाधर जी ने इस बात को स्वीकार किया है। यदि यह माना जाय तो फिर स्वदारसंतोष और परदार निवृत्ति में कुछ अन्तर ही नहीं रहता।

अतः हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि पं० आशाधर जी ने 'स्वदारसंतोषव्रत' के धारक नैष्ठिक श्रावक की दृष्टि से ही वेश्या सेवन को अतिचार कहा है। (पाक्षिक की दृष्टि से उसी वेश्या का सेवन करना अतिचार कहा जाता है जो किसी की रखेली हो।) और इस विषय में अपने ग्रंथ प्रदर्शक पं० सोमदेव जी

* इत्वरिकागमनादयः पञ्चातिचाराः परिहार्या ब्रह्मचर्याणुव्रते भवन्तीति सम्बन्धः। तत्रेत्वरिकागमनं—अस्वामिका असती गणिकात्वेन पुंश्चलित्वेन वा पुरुषानेति गच्छतीत्येवंशीला इत्वरी। तथा 'प्रति पुरुषमेति' इत्येवंशीलेति व्युत्पत्त्या वेश्याप्यत्वरी। ततः कुत्सायां के इत्वरिका, तस्यागमनमासेवनम्। अत्र भावना—भाटिप्रदानान्नियतकालस्वीकारेण स्वकलत्रीकृत्य वेश्यामित्वरिकां सेवमानस्य स्वबुद्धिकल्पनया स्वदारत्वेन व्रतसापेक्षचित्तत्वादल्पकालपरिग्रहाच्च न भंगः, वस्तुतोऽस्वदारत्वाच्च भंग इति भंगाभंगरूपत्वादित्वरिकाया वेश्यात्वेनान्यस्यास्तु अनाथतयैव परदारत्वात्। किं चास्य भाटिप्रदानेन परेण किञ्चित्कालं परिगृहीतां वेश्यां गच्छतो भंगः कथंचित् परदारत्वात्तस्याः लोके तु परदारत्वारूढेर्न भंग इति भंगाभंगरूपोऽतिचारः। अन्ये तु अपरिगृहीतकुलाङ्गनागमनमपि अन्यदारवर्जिनोऽतिचारमाहुः, तत्कल्पनया परस्य भर्तुरभावादपरदारत्वात् लोके च परदारतया रूढेर्भंग इति भंगाभंगरूपत्वात्।

से भी वह गजों आगे बढ गये हैं। पं० सोमदेव जी अपने श्रावक से वधू और वित्तस्त्री के सिवा अन्य स्त्रियों का त्याग कराकर भी परस्त्रीसंयम को अतिचार कहके चुप होजाते हैं। पं० आशाधर जी और भी आगे बढ़ते हैं और व्रत प्रतिमा के धारक नैष्ठिक श्रावक से परनारी और वेश्या का त्याग कराकर 'इत्वरिकागमन' को अतिचार कह कर ही चुप नहीं होते, बल्कि स्पष्टतया उसका समर्थन भी करते हैं। समय की बलिहारी है।

गमन शब्द का अर्थ

पहले टिप्पणी में ब्रह्माणुव्रत के विषय में हम जिन २ ग्रन्थकारों के मत का उल्लेख करते हैं उनमें से पं सोमदेव के पूर्ववर्ती तथा समकालीन सभी श्रावकाचारों के निर्माताओं ने अतिचारों में 'इत्वरिकागमन'+ या 'इत्वरिकापरिगृहीतागमन' शब्दका उपयोग किया है। टीकाकारों* ने भी शब्दका केवल समास दिखला दिया है। ब्रह्माणुव्रत के लक्षण में वित्तस्त्री की छूट देकर क्रान्ति उत्पन्न करने वाले श्री सोमदेव जी ही यहां भी आगे बढ़ते हुए पाये जाते हैं। वे इत्वरिकागमन के स्थान में 'परस्त्रीसंगम' † शब्द का प्रयोग करते हैं। इनके अनुयायी आशाधर जी गमन का अर्थ 'आसेवन' करते हैं और लाटी संहिता** वाले पंडित जी दुश्चेष्टा और रति दोनों को स्वीकार करते हैं। नई तीनों पंडितों के सिवा किसी भी पुरातन आचार्यों ने 'गमन' शब्द का ऐसा अनर्थ नहीं किया। श्रुतसागर‡ सूरि ने अपनी तत्वार्थवृत्ति में 'गमन' शब्द का अर्थ 'दुश्चेष्टा' ही किया है, सेवन नहीं।

भोजन के अन्तराय बतलाते समय पं० आशाधर जी ने लिखा है कि यदि भोजन में किसी त्यागी हुई वस्तु का सेवन कर लिया जाये तो तुरन्त भोजन को छोड़ देना चाहिये। प्रायश्चित्त शास्त्र भी ऐसी भूलों के लिये प्रायश्चित की व्यवस्था देता है। ऐसी दशामें कोई व्रती परदार और वेश्या का त्याग करके भी यदि उसका सेवन करे तो वह किस प्रकार 'व्रती' बना रह सकता है? क्या देव गुरू और शास्त्र की साक्षी पूर्वक स्वदारसंतोष व्रत धारण करते समय गृहस्थ को यह नहीं समझाया जाता कि 'स्वदार' शब्द से क्या अभिप्राय लिया जाता है? जब 'स्वदार' शब्द का अर्थ 'धर्मपत्नी' किया जाता है तब 'भाड़ा' देकर किसी स्त्री के सेवन करने की गुँजाइश ही नहीं रहती।

पं० आशाधर जी और सोमदेव जी के समर्थकों से हमारा एक नम्र प्रश्न है। वह यह कि 'इत्वरिकागमन को ही क्यों अतिचार बतलाया गया? यदि उसके स्थान में 'परस्त्रीगमन' शब्द रखा जाता तो क्या हानि थी? अगर गमन शब्द का अर्थ सेवन ही अभीष्ट है तब भी कोई अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि

+ देखो- रत्न० का० श्लो० ६०, तत्वार्थसूत्र अ० ७ सू० २८, तत्वार्थसार ४-८१, पु० सि० श्लो० १८६, चारित्रसार पृ० ६,।

*सर्वार्थ०, तत्त्वार्थवार्तिक, और श्लोकवार्तिक अ० ७ सू० २८। † यशस्तिलक० उ० ७। **देखो पृ० १०७ श्लो० ७६।

‡ गमने इति को ऽर्थः ? जघन वदन स्तनादि निरीक्षणं संभाषणं पाणि भ्रू चक्षुरन्तादि संज्ञाविधानम् इत्येवमादिकं निखिलं रागित्वेन दुश्चेष्टितं 'गमनम्' इत्युच्यते।

'इत्वरिका' भी परस्त्री ही है। शान्त चित्त से इस प्रश्न की मीमांसा करने पर हम इसी निश्चय पर पहुँचते हैं कि पूर्वाचार्यों को 'गमन' शब्द का 'सेवन' अर्थ अभीष्ट नहीं था किन्तु 'आना-जाना' ही इष्ट था। कैसे ? सुनिये—

श्लोकवार्तिक में स्वामी विद्यानन्दी लिखते हैं— 'स्वदारसंतोषव्रतविहननयोग्याहि तदतिचारा न पुनस्तद्विघातिन एव'। अर्थात्- जो कार्यव्रत को नष्ट कर देते हैं उन्हें 'अतिचार' नहीं कहते, किन्तु जिन कार्यों के करने से व्रत के नष्ट होने की संभावना रहती है। वे अतिचार कहे जाते हैं। 'परस्त्री गमन' यानी समस्त परस्त्रियों के यहां आने जाने से स्वदारसंतोषव्रत के भंग होने की संभावना नहीं है, क्योंकि उन परस्त्रियों में माता, बहिन, पुत्री तथा अन्य पतिव्रता स्त्रियां भी सम्मिलित हैं जिनसे सम्बन्ध रखना नैतिक तथा धार्मिक दृष्टि से हानि कारक नहीं है। किन्तु इत्वरिकामात्रयानी समस्त दुराचारिणी स्त्रियों(कोठे पर बैठनेवाली हों या परदे वाली हों, से सम्बन्ध रखना उनके यहां आना जाना परिणाम में भयावह है। वे काजल की कोठरियां हैं जिनमें जाकर सयाने भी नहीं बचते। जैसा कि कहा भी है-

काजल की कोठरी में कैसो हू सयानो जाय
एक लीक काजर की लागि है पै लागि है।

अतः भगवान महावीर और उनके अनुयायी आचार्यों ने 'इत्वरिकागमन' को अतिचारों में गिना कर स्वदारसंतोष व्रत की रक्षा के लिये खतरे का सिगनल खड़ा कर दिया है। यदि इतने पर भी कोई अदूरदर्शी ड्राइवर स्वदारसंतोषी मुसाफिरों की मेल ट्रेन को दाल की मण्डी या सफेद गली रूपी कुमार्ग से लेजाने की कोशिश करता है तोबेचारे मुसाफिरों का खुदा हाफ़िज़ है।

दर्शन प्रतिमा के धारक श्रावक को सप्त व्यसन त्याग का आदेश देते हुए पं० आशाधर जी वेश्या व्यसन के अतीचार इस प्रकार बतलाते हैं—

त्यजेत् तौर्यत्रिकासक्तिं वृथाट्यां षिड्गसङ्गतिम्।
नित्यं पण्यांगनात्यागी तद्गेहगमनादि च॥

वेश्या के त्यागी श्रावक को गायन नर्तन और वादन का 'चस्का' छोड़ देना चाहिये, व्यर्थ गलियों में नहीं घूमना चाहिये, गुंडों की संगति से बचना चाहिए और वेश्या के घर आना जाना भी नहीं चाहिये'।

इन अतिचारोंमें स्वामी विद्यानन्दि के लक्षण का पूरा २ ध्यान रखा गया है किन्तु अफसोस है तो इसी बात का है कि पहली प्रतिमा के धारी को वेश्या के घर न जाने का उपदेश देकर भी आशाधर दूसरी प्रतिमाके धारी को वेश्यासेवनकी अनुमति देदेते हैं।

प्राचीन सिक्के और उनकी उपयोगिता

(गतांक से आगे)

यदि कोई समचार देव के सिक्कों की तरफ देखे और जिस प्रकार उसपर नाम लिखा है उसपर गौर करे तो उसको ज्ञात होजायगा कि दोनों सिक्कों पर नाम (समचार देव) एक ही है। केवल लिखने में सूक्ष्म सा अंतर है। यह बात बहुत आश्चर्य की है कि पहले किसी विद्वान ने भी इस पर कोई विचार नहीं किया इस संबंधमें यही कहा जासकता है कि निर्णय आसान वस्तु नहीं है। इस संबंधमें यह निश्चित है कि यह दोनों सिक्के घूंघटहारी वाले समचार देव के हैं इस बात को अब सब विद्वानों ने मंजूर कर लिया है। बनर्जी महोदय ने भी अब यह मान लिया है कि उक्त दोनों सिक्के समचार देव के समय के ही हैं। समचारदेव कोई अवश्य हुआ है और उसने राज्य भी किया है। परंतु अब तक उक्त महाशय के बङ्गाल के इतिहास के देखने से यही मालूम होता है कि सिक्के चाहे सच्चे हों परंतु पत्र तो बनावटी हैं।

अब एक दूसरा उदाहरण लीजिये और देखिये किस प्रकार पुराने सिक्के प्राचीन इतिहास की खोज करते हैं। ढाका शहर के पश्चिममें १४ मील की दूरी पर सभार नामक स्थान है। यहां पर कई प्राचीन खंडहरात हैं। जिनमें एक दुर्ग और महल का स्थान भी है। यह हरिश्चन्द्र की यादगार है। सभारके संबंधमें बहुत कुछ लिखा जा चुका है। प्रतिभा तथा ढाका रिव्यू के पुराने अङ्कों को देखना चाहिये। इनमें अधिकतर स्थानीय गाथा तथा स्थानीय भौगोलिक वर्णन है। बाबू विजयचन्द्र राय ने खण्डहरात का बहुत कुछ संशोधन कर लिया है कि यह खण्डहरात ढाका जिलेमें विक्रमपुर के परगनेमें रामपाल स्थानमें सैन वंश के खण्डहरातों की अपेक्षा प्राचीन हैं। सभार के खण्डहरातमें पत्थर नहीं केवल पकी हुई ईंटें हैं और उसपर बौद्ध तथा बोधि सत्वों के चित्र हैं। इससे यह प्रगट होता है कि खण्डहरात बहुत प्राचीन हैं। परन्तु कोई विश्वास योग्य प्रमाण न होने से यह नहीं बतलाया जासकता कि यह कितना पुराना है। हरिश्चन्द्र के पुत्र महेन्द्र के बारेमें मठ निवासी कविराज अमृतानंद के यहां पड़ा हुआ जो लेख निकला था उससे इस बात का विवाद आरंभ हुआ यदि इसको सत्य भी समझा जाय तो इसके संबंधमें कोई संवत् निश्चित नहीं किया जा सकता था।

सभारमें पाये हुए सिक्के ही एक ऐसा जरिया था कि जिससे इन खण्डहरातों की प्राचीनता का अनुमान लगाया जासकता है। सभार के खण्डहरातों में मिले हुए सोने के सिक्के बहुतायत से मिलते हैं और वे गुप्ता सम्राटों के सिक्के जैसे ही हैं। परन्तु कारीगरी में बहुत गिरे हुए हैं। उनमें से कुछ सिक्के तो समचारदेव और ससंक के सिक्कों के साथ ही मिले थे। जो अनुमानतः छठी शताब्दी के अंतके या सातवीं के प्रारंभ के हैं। अतः ऐसा कहा जा सकता है कि ये खण्डहरात अनुमान सन् ६०० ई० के हैं ढाका म्यूजियममें इस प्रकार के आठ सिक्के सभार से प्राप्त हुये हैं। प्रथम तो सिक्कों का मिलना

ही कठिन है फिर थोड़ी सी भूमि में बहुत से निकल आना) सभार के कई निवासियों का कथन है कि ऐसे सिक्के बहुत निकले थे परन्तु गला डाले ।

अब भारतवर्ष के इतिहास में से मुस्लिम कालका उदाहरण दिया जाता है। ऐसा कहा जाता है कि ज्यों ही हम इतिहास की खोज में मुस्लिम काल में दाखिल होते हैं त्यों ही ऐतिहासिक वृत्तान्त के कम होने की शिकायत दूर होजाती है। अतः सिक्कों के मदद की अधिक आवश्यकता नहीं रहती। यह बात मुगल इतिहास के लिये अधिकतर सत्य है। परन्तु दिल्ली की बादशाही का सिलसिलेवार सन के अनुसार जमाव पहले पहल टामस महोदय ने अपनी पुस्तक (Chronicales of Pathan Kings of Delhi) में किया था जिसको उन्होंने सिक्के लेख तथा उक्त समय के ऐतिहासिक वृत्तान्त के आधार पर तैयार किया था परन्तु बङ्गाल जैसे प्रांत के लिये तो सिक्कों की आवश्यकता ही है क्योंकि यह प्रान्त दिल्ली के अधीन केवल थोड़े ही समय तक रहा और फिर स्वतन्त्र होगया। जबतक दिल्ली से सम्बन्ध रहा तबतक तो शाही इतिहासकारों को अपने इतिहास के लिये प्रमाण मिलता रहा। परन्तु ये प्रमाण भी बहुत थोड़े हैं। क्योंकि बहुत दूर के प्रांत का वर्णन होने से सिक्कों द्वारा जांच होने की आवश्यकता है। उसी समय सिक्कों की आवश्यकता पूर्ण रूप से होजाती है जबकि दिल्ली से सम्बन्ध टूट जाता है और बादशाही इतिहासकार प्रांत के बारे में लिखना बन्द करदेते हैं। यही हालत बङ्गाल की है क्योंकि यहां पर स्वतन्त्र राज्य करने वाले सुलतानों के समय का इतिहास नहीं मिलता। अबुल फ़ज़ल और फरिश्ता ने स्वतन्त्र संतानोंकोएक नाम मात्र का सा वर्णन किया है और उसमें भी कई स्थानों के साल संबत् के विषयमें बहुत गलतियां पाई जाती हैं। गुलाम हुसेन ने अपनी पुस्तक "रायज़-उस-सलातीन" में केवल इन्हीं बातों को विस्तार के साथ नकल की है। अर्थात् इसमें स्थानीय कल्पित बातों को और स्थान दे दिया जिससे संबत् की सूचीमें और भी अधिक अशुद्धता आ गई है। यह एक टामस महोदय ही की मिहनत तथा ब्लोच मैन साहब की मदद है कि कम तथा विशेष बंगाल के स्वतंत्र राज्य कर्ताओं की संबत् की सूची मिलती है।

कई एक स्थानों पर यह महोदय भी भूलमें पड़ गये हैं उदाहरणार्थ—बहुत से आदमी गयासउद्दीन और क़ाज़ीके किस्से से परिचित होंगे कि उसने काज़ी को बयानात लेने और ज़िरह करने के लिये अपने सामने कचहरीमें बुलाया था। मगर इस मशहूर राज्य कर्ता का संबत् भी ठीक तौर से मालूम नहीं था। टामस महोदय और उनके साथ ही ब्लोच मैन महोदय का ऐसा कथन था कि गयासउद्दीन का राज्य सन् ७६६ हिजरीमें समाप्त हो गया था। सन् ७६६ हिजरी का ईस्वी सन् १३६६ होता है। ब्लोच मैन महोदय को गयासउद्दीन के समय के बहुत से सिक्के (सन् १८१२ हिजरी) मिले थे। परन्तु उन्हों ने इन सिक्कों को राज्य काल के पीछे के समझे क्योंकि उक्त दोनों सनों के बीच के सिक्कों का पता नहीं चलता था, जब कि भारत के अजायबघर में बंगाल प्रान्तके सिक्कों की सूची बनी उस समय सूची बनाने वाले ने ब्लोचमैन के कथनको मान लिया और गयासउद्दीन का शासनकाल ७६६ हिजरी में ही समाप्त करदिया। कई वर्ष के पश्चात आर० डी० बनर्जी महोदय ने भी गयासउद्दीन के

शासन का अन्तिम सन् ७६६ हिजरी मान लिया। ये सब बातें ऐसी आश्चर्ययुक्त हैं कि बड़े २ विद्वानों ने भी बिना जांच किये ही मान ली हैं। सन् १६१८ में ३४२ सिक्के (इस समय के ११ सिलसिलेवार राजाओं के) लेखक के हाथ लगे और ये ढाका के कलेक्टर महोदय ने परीक्षा के निमित्त दिये। इनमें से ७२ सिक्के गयासउद्दीन के समय के थे, जिनमें बहुत से सन् ७६६ और १८१३ हिजरी के दरम्यान के थे। इससे नतीजा यही निकलता है कि गयासउद्दीन ने सन् १८१३ हिजरी तक राज्य किया। फिर लेखक को यह खयाल पैदा हुआ कि शायद ऐसे सिक्के Indian Museum में भी हों। अतः वे कलकत्ते गये और उनका विचार ठीक सही निकला। वहां सन् ७६६ हिजरी और १८१२ के बीच के सिक्के मौजूद थे और उनको सूची बनाने वाले ने गलत पढ़ा था।

यदि दूसरा उदाहरण दिया जाय तो वह राजा गणेश का है। यह बङ्गाल के इतिहास में इस समय का एक आश्चर्यकारी व्यक्ति हुआ था। उसका शासनकाल कितना ही थोड़ा क्यों न हो, उसने ही बङ्गाल के मुसलमान शासन कर्ताओं के सिल-सिले को तोड़ा था परन्तु इस शक्तिशाली राजाका अभीतक कोई भी सिक्का नहीं मिला था। ब्लोचमैन ने राजा का समय उस काल में रखा जब कि बाया-जीदशाह के सिक्के मिलते हैं अतः ब्लोचमैन महोदय का यही विचार रहा कि महाराजा गणेश ने अपने नामके सिक्के नहीं ढाले किंतु बायाजीदशाह (जो उसके हाथकी एक कठपुतली था) के नाम के सिक्के चलाता रहा। परंतु लेखक ने सिक्कों द्वारा यह सिद्ध किया है कि सन् १८१७ हिजरी तक मुसलमान राजाओं का ही सिलसिला रहा। और बायाजीद शाह ने सन् १८१६ हिजरी तक राज्य किया। उसके फीरोजशाह नामका एक पुत्र भी था। और उसके सन् १८१७ हिजरी के सिक्के हैं। यह कहा जासकता है कि फीरोजशाह का पहले कुछ भी स्थान नहीं था, किसी भी इतिहास में उसका नाम नहीं लिखा और न पहले उसके समयके सिक्कों का कुछ पता था। सौभाग्यवश लेखक को ही पहले पहल इसके सिक्के मिले। इसके नये सिक्के मिल जाने से बङ्गाल शासकों की सूचीमें तो एक नाम बढ़ ही गया, परंतु साथ ही फीरोज शाह के इतिहासमें सही स्थानका भी पता लगगया।

सन् १६१२ ई०में बहुतसे सिक्के मिले थे जिन पर बङ्गाली लिपिमें 'दनुज मरदानदेव' का नाम लिखा हुआ था। दनुज मरदानदेव के कुछ सिक्के सन् १६१२ के पूर्व भी मिले थे। परन्तु ढाकाके कलेक्टर महोदय ने जो नये पाये हुए सिक्के लेखक को दिये उनमें तीन सिक्के दनुज मरदान के थे। वह दनुज मरदान कौन था? इसके सिक्कों का सन् १३३६ तथा १३४० शाके था और वे चटगाँव, सुनारगांव और पंडुव की टकसालोंमें ढले थे। वे सिक्के ही इस बात की साक्षी देते हैं कि वह बङ्गाल का उस समय का एक अद्वितीय शासक था। सन १३३६ तथा १३४० शाके हिजरी सन् करीब ८१६ तथा ८२० के होते हैं। बंगाली अखबारोंमें इस संबंधमें कई लेख निकले। बनर्जी महोदय ने भी भारत वर्षीय आरकियोलोजिकल सर्वे सन् १६११—१२ में एक लेख दिया और सबने यही लिखा कि दनुज मरदान राजा गणेश का एक जोरदार प्रतिद्वन्द्वी था।

इस समय का इतिहास बहुतसी आश्चर्य जनक बातें बतलाता है जो विस्तार से रायज उस्सलातीन में

भी लिखी हुई हैं। निःसन्देह रायजउस्सलातीन के लेख स्पष्ट रूप से सत्य ही हैं। उनमें ऐसा लिखा है कि बायाजीद की मृत्यु के पश्चात भी राजा गणेश सारे बङ्गाल का राजा बन गया। उस समय पंडुवा में एक बड़ा फकीर रहता था। जिसका नाम नूरकुतुब आलम था। जब उसको यह ज्ञान हुआ कि बङ्गालके मुसलमानों का सिंहासन एक हिन्दू के कब्जे में आगया तो उसने जोरपुर वाले इब्राहीम शाह को बङ्गाल पर आक्रमण करने बुलाया। इब्राहीम ने बंगाल पर कूच किया और राजा गणेश को इस प्रकार धमकाया कि नूरकुतुब आलम साहब की मेहरबानी प्राप्त करो। अतः गणेश नूरकुतुब आलम के पास गया और मेहरबानीके लिये प्रार्थनाकी। शेख साहब ने राजा को फरमाया। यदि तुम मुसलमान होजाओ तो मैं इब्राहीम को वापिस भेज सकता हूं। इस बात पर राजा गणेश ने अपने पुत्र को मुसलमान बना दिया और इसका नाम जलाल उद्दीन मुहम्मद शाह रखकर बंगाल के राज्यसिंहासन पर बिठा दिया। थोड़े दिन पीछे इब्राहीम मर गया। तब उसने अपने पुत्रको वापिस हिन्दू बना लिया। और खुद ही राजा बन गया। गणेश के मरने के बाद उसका पुत्र जादू फिर मुसलमान बन गया। और पहलेवाला ही नाम जलालुद्दीन मुहम्मद रख कर फिर राजसिंहासन पर बैठ गया। अब जरा सिक्कों के निम्न लिखित लेख पर गौर करना चाहिये।

सन् ८१७ हिजरी सिक्के बायाजीदशाह के मिलते हैं।
„ ८१७ „ थोड़े से फिरोजशाह के
„ ८१८ „ बहुत से जलालुद्दीन शाह के
„ ८१६ „ जलालुद्दीन का एक सिक्का
„ ८१६ „ थोड़े से दनुजमर्दन के
„ ८२० „ „
„ ८२१ „ थोड़े से महेन्द्र देव के
„ ८२१ „ बहुत से सिक्के जलालुद्दीन मुहम्मद शाह के। और आगे विस्तार की आवश्यकता नहीं है परन्तु सन् ८१७ हिजरी से पहले राजा गणेश का नाम तक नहीं मिलता है। सन् ८१८ हिजरीके दोनों तरफ जब जलालुद्दीन के सिक्के पहिले पहल दीखते हैं तब यह साफ जाहिर होजाता है कि ये बंगालके राजा गणेश के सिक्केहैं, जो शाके सम्वत १३३६ तथा १३४० में बंगाल का शासक था और उसने अपना कल्पित नाम दनुजमर्दन देव रख कर सिक्के ढलवाये थे।

नाथूलाल शर्मा

(माडर्न रिव्यू में प्रकाशित श्री एन० के० भट्टशाली के एक अंग्रेजी लेख से अनुवादित)

अंगुष्ठ विज्ञान

(ले०— श्रीमान् मा० पांचूलाल जी काला]

[गतांक से आगे]

अंगूठे का पहला भाग

(नाखून वाला हिस्सा)

यह इच्छा शक्ति का स्थान है। यह भाग दूसरे पौरुवे से या तो छोटा होगा या बड़ा अथवा बराबर। यदि यह हिस्सा बड़ा होता तो इच्छा शक्ति (Will Power) विचार शक्ति से अधिक होगी और इस तरह का आदमी व्यर्थ बातूनी तथा झगड़ालू होगा। जो कुछ दिलमें आवेगा उसको करडालने में वह अपने विचारों को अधिक काममें नहीं लावेगा। मनुष्य का स्वभाव इस पौरुवे के बड़े छोटे होने पर ही निर्भर है। यहां बड़ा छोटा होना दूसरे पौरुवे की अपेक्षा से है। इन दोनों में कौन बड़ा और कौन छोटा है यही बात विशेषतया देखनी पड़ती है। इस ऊपरी भाग का बड़ा होना अच्छा नहीं है, क्योंकि यह मनुष्य को स्वेच्छाचारी और उद्दण्ड बना देता है।

अंगूठे का दूसरा पोरुवा—

यह विचार शक्ति (Logic) का स्थान है। यह पहले पौरुवे से या तो छोटा होगा या बड़ा अथवा बराबर दोनों का बराबर होना अच्छा है, क्योंकि ऐसी अवस्था में मनुष्य स्वेच्छाचारी होने के साथ २ विचार शक्ति वाला भी होता है। यदि यह पौरुवा पहले पौरुवे से अधिक बड़ा हो तो विचार शक्ति और इच्छा शक्ति में समानता न होगी। विचार शक्ति अधिक होगी किंतु इच्छा शक्ति कमजोर होनेसे कामयाब न होगा विचार शक्ति इसकी इच्छा शक्ति को सदा दबाती रहेगी, ऐसा व्यक्ति किसी भी कार्य के करने के समय तर्क वितर्क करता रहेगा, और अंत में अनेक बाधाओं का विचार कर कार्य को छोड़ देगा। ऐसा मनुष्य यद्यपि दूसरों को अच्छी राय देसकता है किंतु खुद उसपर कदाचित ही अमल करता है ऐसे मनुष्य वहमी औरकुतर्की भी होते हैं। जिस का दूसरा पौरुवा बड़ा और मजबूत तथा पहला छोटा और निर्बल हो वह हठी, जिद्दी, तथा स्थिर स्वभाववाला होता है। यह बहस बहुत करता है यदि उसका पक्ष कमजोर हो तो भी वह अपने पक्ष को सत्य साबित करनेकी कोशिश करता रहता है अत्यंत जिद्दी होनेके कारण लड़ाई तक करने पर उतारू हो जाता है।

अंगूठे में हिंसा के भाव

अब अंगूठे में नाखून वाला पौरुवा मोटा सोटा सा (Clubbed thumb) हो तो ऐसे मनुष्यमें आवेश के समय कत्ल करने के भाव पैदा होजाते हैं और यदि उसको उकसाया जाय या क्रोध दिलाया जाय तो ऐसा आदमी कत्ल कर बैठता है। किंतु यदि दिलकी रेखा तथा मस्तक की रेखा उत्तम हो तो संभव है दूसरे को नुकसान न पहुंचावे और खुद आत्म हत्या करले। ऐसे अंगूठे वाले से सदा दूर रहना चाहिये।

एक दिन एक विदेशी ने मुझे अपना हाथ दिखाया उसका अंगूठा प्रथम पौरुवे में ऐसा ही था। मैंने उसके भावों को टटोला और अनेक सवाल जवाब के बाद पूछा कि क्या तुम्हारे हाथ से किसी का खून हुआ है। वह चुप रहा, परन्तु अंत में

उसने कहा ऐसे ही जुर्ममें मुझे कई वर्षो की सजा हुई थी। इसी तरह एक और मनुष्य का अंगूठा देखा तो मोटा और भारी था उसके हाथ से एक साथ चार खून हुए थे और वह बहुत वर्षों तक जेल में रहा था।

सुंदर अंगूठा

अंगूठा बहुत बड़ा मोटा भारी और भद्दा अच्छा नहीं होता। तथा बिल्कुल छोटा और बेडौल भी खराब होता है। मध्यम परिमाण (Medium Size) वाला अंगूठा सामुद्रिक शास्त्र में अच्छा माना गया है। इस तरह का आदमी हर अवस्था में हरएक काम को विचार पूर्वक करता है। अपनी तरकीबों को काम में लाने के लिये वह चतुर होता है। अंगूठे में खड़ी लकीरों का होना उत्तम होता है। आड़ी और पड़ी लकीरों वाला अंगूठा अच्छा नहीं होता उसमें इच्छा शक्ति, विचारशक्ति, औरप्रेम (Will, Logic Love) नहीं होते।

जिसका अंगूठा जड़में लचकीला तथा आकार में छोटा होता है वह साहस तथा आपत्ति के समय घबरा जाता हैं। उसको बात २ का डर लगा रहता है दिमागी और शारीरिक अवस्था से भी जाहिर पावसिन तौर पर कमजोर होता है।

दाएं बाएं अंगूठे (Right & left thumbs) दोनों हाथों के देखने चाहिये। इनमें कभी २ बड़ा अंतर होता है। इससे विचारों में हेरफेर करना पड़ता है। बायाँ अंगूठा या तो माता पिताओं से प्राप्त *गुणों को प्रगट करता है अथवा पैदायश द्वारा कुद्रत* (Nature) या कर्मों ने जो कुछ दिया है उसको प्रगट करता है। परंतु संसार में आकर यह उन गुणों में कितनी और कैसीउन्नति या अवनति करेगा यह बात दाहिने हाथ से मालूम होती है। बाएं हाथ में प्रारम्भिक भाव होते हैं और दाहिने में कार्य रूप। इसी लिये सामुद्रिक शास्त्रवेत्ता दाहिने हाथ पर ही अधिक विश्वास करते हैं। परंतु विचार दोनों का करते हैं। एक ही हाथ के देखने से कभी २ धोखा खा जाते हैं और किसी २ का तो बायां हाथ ही अधिक उपयोगी होता है।

एक मनुष्य का बायां अंगूठा कोमल ढीलाढाला है और दाहिना दृढ़। पामिस्ट (हाथ देखने वाला) विचार करता है कि गुणोंमें कमी बेशी होगई। ऐसा मनुष्य न तो कोमल अंगूठे ही के गुण रखता हैं न ठोस के किंतु मध्यवर्ती है। फिर भी ठोसपना दाएं अंगूठे में होने के कारण ठोस के गुण अधिक लिये जायेंगे। क्योंकि दाहिना हाथ बतौर मुद्दई और बायां बतौर गवाह के है। चाहे वह मनुष्य प्रारंभ में कोमल अंगूठे से उत्पन्न होने वाले विचारों में ही लीन हो किंतु कार्य करने पर उसमें ठोस अंगूठे की शक्ति आजायगी। फिर भी समय पाकर या किसी के प्रभाव में आकर वह अपने विचारों में परिवर्तन करडाले या कभी इधर कभी उधर हो जाय यह बात अधिकतर उसके अंगूठे की बनावट या हाथ की अन्य दिल दिमाग आदि रेखाओं पर निर्भर है। यह दाहिने बायें अंगूठे की बात अंगूठे ही से संबंध नहीं रखती बल्कि सारे हाथ और उसकी रेखाओंसे संबंधरखती है।

कम्पनी वालों का अंगूठा

यदि हाथ मुलायम किंतु फूला हुआ (Flabby) नहीं हो, अंगूठा बड़ा और सुन्दर हो किंतु बहुत कड़ा न हो वह आदमी अपनी तरकीबोंको खुद काममें लानेकी

चेष्टा कम करेगा। दूसरों से काम लेवेगा और यदि वे दूसरे नेक व उत्तम होंगे तो काम अच्छी तरह चलेगा किन्तु यदि वे बदमाश होंगे तो उसके काम को बिगाड़ देंगे। ऐसी अवस्था में उनकी चालों को वह रोक न सकेगा बल्कि उसकी समझ में उनकी बुरी चालें अच्छी मालूम होंगी। अंतमें विजय उत्तम अंगूठे वाले की होगी, किन्तु कुछ हानि हुए विना भी न रहेगी।

अच्छा या बुरा अंगूठा

कमजोर, पागल और बुद्धिहीनों का अंगूठा उत्तम व ठोस नहीं होता किंतु वीर बुद्धिमान तंदुरुस्त और ताकतवर का अंगूठा ठोस तथा सुंदर होता है। हाथ की अन्य रेखाओं को देखना भी इस सम्बन्ध में अत्यंत आवश्यक है। जिस मनुष्य का पहला पोरुवा कमजोर हो किंतु दूसरा उससे अच्छा कड़ा और सुन्दर हो तो वह मनुष्य दूसरों को अच्छी राय देगा। संभव है वह खुद उस रायके मुआफिक कार्य न भी करे, किंतु उसकी राय लाभकारी और उत्तम अवश्य होगी।

छोटे अंगूठे वालेका हाकिमदिल होता है अर्थात् ऐसा आदमी विचार से काम नहीं लेता और न उस का आखिरी नतीजा ही सोचता है। जो दिल में आई वही कर डालता है। परन्तु बड़े और सुन्दर अंगूठे वाले का हाकिम दिमाग होता है। ऐसा व्यक्ति विचार पूर्वक काम करता है। इस सम्बन्ध में दिमाग और दिल की रेखाओं का देखना भी जरूरी है। इसमें *इन रेखाओं के आपसमें अंतरका विचार होता है।*

जिस मनुष्य या स्त्री का अंगूठा पीछे को मुड़ताहै वह दातार होता है, उसको रुपये का लोभ नहीं होता इतना ही नहीं वह समय का भी दातार होता है, उन के नजदीक समय और रुपये की कुछ कीमत नहीं होती। इस विचार में अंगूठे का अच्छा-बुरापन देखना भी जरूरी होता है। अच्छे सुन्दर अंगूठे वाला अपना धन और समय उपयोगी कामों में खर्च करेगा। जिसके अंगूठे की बनावट अच्छी नहीं होती, वह झूठी नामवरी और ऐशो-आराम में धन खर्च करता है। लोगोंका दबाव भी उस पर अधिक पड़ता है।

जिसके अंगूठे में जोड़, मुलायम, लचकीला और ढीला होता है वह सत्य-असत्य का विचार नहीं करता। तत्काल जो भावों में आता है और जैसा अपने दिल में आता है वही कर डालता है उस पर वातावरण का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। जैसी परिस्थिति होती है वैसा ही वह बन जाता है, वह आगे की सोचने वाला नहीं होता। यदि उसके दिलकी रेखा कमजोर हो तो यह बात उसमें औरभी अधिक पाई जायगी। यदि दिमाग की रेखा अच्छी हो तो इस गुण में कमी आजाती है। परन्तु कड़े, दृढ़ जोड़ वाले अंगूठे के गुण इसके प्रतिकूल होंगे।

"वीर-सन्देश"

(१)

भारत वीर उठो अब देखो,

प्राची दिश में दिव्य प्रभात।

क्षीण रश्मियों से—है तुमको,

उषा जगाती निद्रित भ्रात।

(२)

अन्य देश के उन्नत बन्धु,

कैसा गाते मंगल गान।

कहां गये अपने गौरव दिन,

कहां गया भारत का मान।

(३)

स्वप्न मिटे मारे सोने के,

हाय! बन गये कायर दीन।

अब भी जागो बहुत होगया,

कार्य करो होकर तल्लीन।

(४)

कितनी क्षीण आह! भारत माँ,

कितना है दयनीय निवेश।

टारो बन्धु मातृ संकट अब,

और सुधारो निज प्रिय देश।

(५)

धार्मिक-पापाचार मिटा कर,

भ्रात! समाजोद्धार करो।

हों आचार विशुद्ध सभी के,

सब में विस्तृत प्रेम भरो।

(६)

ढोंगी जन की पोल खोलदो,

कुचलो पाप व अन्याचार।

साथी बनो दीन दुखियों के,

करके पतितों का उद्धार।

(७)

तोड़ गुलामी की कड़ियों को,

क्रान्ति पताका फहरा दो।

दान शान्तिका वसुधाको कर,

कीर्ति अलौकिक फैला दो।

(८)

भारत वीरों का दिखलादो।

शौर्य, पराक्रम अरु उत्थान।

गूँज 'नरेन्द्र' जगत में जावे,

भारतका नव स्वर्ण विहान।

—नरेन्द्र

जैन पंचांग की प्रसिद्धि के उपाय

(ले० श्री० श्वे० मुनि विकास विजय जी)

मेरे प्रथम के दिये हुये दो लेख विद्वानों ने पढ़े होंगे, तद् विषयक अपने महान् आचार्य श्री मद्हरिभद्र सूरि जी महाराज ने 'लग्नशुद्धि' ग्रंथ में पञ्चाँग के जो अंग दिखाये हैं उससे उनका क्या मन्तव्यहै वह स्पष्ट उनके ही वचनोंसे मालूम होताहै।

हरिभद्र सूरि जी महाराज ने लग्न शुद्धि ग्रंथ की गाथा ४२ में कहा है कि सूर्य और चंद्रके ग्रहणके बादके सात दिन ग्रहण दग्ध कहाते हैं इस लिये शुभ कार्यमें वर्ज्य हैं। वैसे ही उसी ग्रंथकी ५९वीं गाथा में आप फरमाते हैं कि जिस नक्षत्रमें ग्रहण हुआ होवे वह राहु हत कहाता है। और वह नक्षत्र शुभ कार्य में छः मास तक न लेना चाहिये। और अर्द्ध ग्रास होवे तो तीन मास न लेना वगैरह। किंतु श्रावक भीमसिंह माणेक की छपाई हुई आरंभ सिद्धि के पांच विमर्श पूरे हुए बाद 'लग्न शुद्धि' छापी है उसमें ऊपर दिखलाई हुई ५९वीं गाथा के भाषांतर में कौंसमें लिखा है कि जिस नक्षत्रमें ग्रहण हुआ होवे वह नक्षत्र सूर्य नहीं भोगे तब तक अशुद्ध गिनाजाता है। इससे ऐसा सिद्ध होता है कि जिस नक्षत्र में चन्द्र को ग्रहण हुआ होवे उस नक्षत्र को सूर्य छठे मासमें भोगता है। फिर भी जब सूर्य ग्रहण होवे उस समय एक ही नक्षत्र में और वह भी करीबन् एक ही अंशमें सूर्य चन्द्र होते हैं। इस गणितानुसार निर्विवाद सिद्ध है कि वह नक्षत्र सूर्य के भोगमें है। वह अधिक से अधिक पंद्रह दिन में भोग लेता है और फिरसे सूर्य को उस नक्षत्र को भोग लेनेमें एक वर्ष चाहिये। यहां यह प्रश्न गौण है मगर ग्रहण को अमुक प्रकार से मानना यह प्रश्न मुख्य है। तो भावी कालमें होने वाले ग्रहणों का गणित करनेमें कौन से ग्रंथ का कौनसा भाग उपयोगी होसके कि जो ग्रंथ जैनाचार्यों का बनाया हुआ हो?

उपरोक्तानुसार ग्रहण का मन्तव्य उद्भव होने पर जैन पंचांग का शुद्ध स्वरूप कैसा होना चाहिये उस विषय का विचार करने पर प्रथम तो जैन पंचांग किसीने बनाया है या नहीं कि जो पंचाँग जैनाचार्यों के मतानुसार बराबर होवे? मूर्तिपूजक श्वेताम्बर और दिगम्बरों ने कोई पञ्चांग निकाला हो वह मेरे ध्यान में नहीं आया। केवल तिथी, वार और तारीख दिखलानेवाले कलैंडर जो एकही सफेपर निकलते हैं उनमें 'जैनपंचांग' ऐसा लिखा हुआ होता है। किन्तु उसमें तिथी, नक्षत्र, योग और करण यह चार अंग, कितनी घटिका और कितने पल के होते हैं यह जानने का कोई साधन उनमें नहीं होता है। उस विषय का प्रयास करने वाला एक युगका पंचांग अहमद नगर (दक्षिण) निवासी श्रावक रायचंद ने पंजाब स्थानकवासी संप्रदाय के श्री अमरसिंह जी महाराज के टोले के महाराज श्री श्रीचंद जी की की हुई गणनानुसार विक्रम संवत १९६२ के असाढ वदी १ से प्रारम्भ कर पांच वर्ष के एक पंचांग की पहली आवृत्ति छपाई है। उसकी एक प्रति पालन पुर के स्थानकवासी जैन पुस्तकालय नं० ७८ पत्र की मैंने खुद देखी है। उसमें दी हुई तिथियों के घड़ी और पलों में बहुत बड़ा अन्तर मालूम होता है वैसे 'जैन ज्योतिष तिथि पत्रिका' संवत १९७२ से २००७

तक का ३५ वर्ष का पंचांग स्थानकवासी संप्रदाय के महाराज श्री सोहनलाल जी महाराज द्वारा तैयार किया हुआ लाहौर निवासी ला० निरंजनदास राम लाल श्रावक ने छपाया है। वह तिथि पत्र उपरोक्त अहमद नगर निवासी श्रावक रायचंद के छपाये हुये पञ्चाँग के साथ मेल नहीं रखता। उसका खास कारण यह है कि उन दोनों पंचांगकारों में से किसी ने वेध सिद्ध पद्धति को स्वीकार नहीं किया। दोनों पञ्चांगोंमें सूर्य-चन्द्रके ग्रहण नहीं दिखलाये और वेध सिद्ध पंचांगों में जो पूनम को और अमावस को ग्रहण दिखलाये हैं। वह पूनम और अमावस को ग्रहण होसके वैसी घड़ी पल वाली तिथियें उपरोक्त दोनों पंचांगों में नहीं हैं। तिथि का नियम महेन्द्रसूरि महाराज स्वरचित 'यंत्रराज' ग्रंथ में दिखलाते हैं कि 'चन्द्रेऽर्कं भक्ततिथिरो विलब्धाः' यानी सूर्य चन्द्र का बार अंश का अंतर वह एक तिथि का प्रमाण है। वैसे ही तिथि का अंतकाल वही ग्रहण मध्यकाल का होना चाहिये। ऐसा वेध सिद्ध गणित का नियम है। 'तिथिविरतिरयं ग्रहस्य मध्य' इस नियम के साथ हरएक पंचांग समान होना चाहिये। दृष्टांतके लिए चन्द्र ग्रहण की तिथि चंद्र ग्रहण रात्रि को जिससमय बराबर मध्य भाग में आवे तब तक पहुँचनी चाहिये। और सूर्य ग्रहण की तिथि दिन को सूर्य ग्रहण के मध्य भाग तक ही होनी चाहिये। यानी पूर्णिमाके घड़ीपल जो सूर्यास्त के पहिले ही समाप्त होजावे तो उस दिन चंद्र ग्रहण नहीं है। वैसे ही अमावस के घड़ी पल जो रात्रि तक पहुँचते होवें तो उस दिन भी सूर्य ग्रहण नहीं है।

प्रथम मैंने बताया है कि आचार्य श्रीमद् हरिभद्र सूरि जी के वचनानुसार ग्रहण अमुक प्रमाण में मानना चाहिये। उस ग्रहण का मेल रखने के लिये अवश्य अपने वेध सिद्ध पञ्चांग को स्वीकार करना चाहिये। इतना ही नहीं किन्तु श्रीमद् हरिभद्र सूरि जी महाराज 'लग्न शुद्धि' ग्रंथ की गाथा १४-१५ में विशेष महत्व की बात दिखलाते हैं कि गुरू और शुक्र की वृद्धावस्था, वैसे ही उन दोनों ग्रहों का अस्त काल शुभ कार्य में नहीं लेना। इस विषय का निषेध बतलाकर, दोनों ग्रहों की बाल्य और वृद्धावस्थायें कब और कितने दिन की होवे उनका भी स्पष्टी करण किया है। विशेष में उसी ग्रन्थ की गाथा ५८ में दिखलाया है कि जो नक्षत्र बक्री ग्रह से अधिष्ठित होवे यानी जिस नक्षत्र में भौमादि कोई ग्रह बक्री हुआ होवे, वह नक्षत्र विड्वर कहलाता है।

अब ग्रहों की बाल्यावस्था, वृद्धावस्था, अस्तकाल और वक्रगति ये सब विषय वेधसिद्ध गणित के विना बिलकुल असंभव हैं जिससे वेधसिद्ध गणित स्वीकार करने का आवश्यकता है।

प्रचलित पंचांगों में विष्कंभादि योग, उनके सूर्योदय से घड़ी पलों के साथ दिये हुये होते हैं। वह योग वैसे ही सूर्य, चन्द्र के नक्षत्र द्वादश लग्न इत्यादि वेधसिद्ध गणित से किस तरह से साध सके वह 'यन्त्रराज' ग्रंथ में यंत्र विचारणाध्याय में श्रीमान् महेन्द्रसूरि जी महाराज ने दिखलाया है।

इस विषय के ज्ञाता आचार्य, मुनिवर और श्रावक वर्ग अपना २ अभिप्राय दिखलावें तो इस मार्ग में आगे बढ़ने की मुझे उत्तेजना मिले।

—※—

उपदेशक विद्यालय खुलेगा।

२५००० रु० की अपील

चंचला लक्ष्मी के सदुपयोग का अपूर्व अवसर

स्थायी प्रभावना के इस यज्ञ में संघ का हाथ बटाइये।

"जनता का अज्ञान दूर करके जिन धर्म का प्रसार करना ही सच्ची प्रभावना है" —स्वामी समंतभद्र

गत दिसम्बर मास में शास्त्रार्थ संघ की प्रबन्ध कारिणी कमेटी ने नीचे लिखे दो प्रस्ताव पासकिये—

प्रस्ताव नं० १—उपदेशक विद्यालय की योजना पर जो लोक मत मिला है इससे उसकी आवश्यकता में कोई सन्देह नहीं रहता। अतः संघ की कार्यकारिणी समिति की यह बैठक प्रस्ताव करती है, कि योग्य उपदेशकों के तैयार करने के लिये एक उपदेशक विद्यालय खोला जाय। इसके संचालन के लिये उपसमिति द्वारा निश्चित योजना ही काम में लाई जावे। केवल छात्रवृत्ति में परिवर्तन किया जावे जो २५) के स्थान में दस रुपये हो।

प्रस्ताव नं० २—उपदेशक विद्यालय के संचालन के लिये धन की आवश्यकता है तथा संघ के पास कोई फंड नहीं है, अतः कार्य कारिणी समिति की यह बैठक प्रस्ताव करती है कि इसका एक स्वतंत्र फंड स्थापित किया जावे और इसके लिए समाज से २५ हजार की अपील की जावे तथा धन संग्रहके लिये कुछ मुख्य २ स्थानों पर कुछ महानुभावों का एक डेपुटेशन भेजा जावे।

प्राक्कथन

जैनदर्शन के गत १ जुलाई के अंक में उपदेशक विद्यालय की एक योजना लोकमत मालूम करने के लिये प्रकाशित की गई थी। उसमें समाज के वर्तमान प्रचारकों की त्रुटियों पर प्रकाश डालते हुए एक उपदेशक विद्यालय की अनिवार्य आवश्यकता बतलाई गई थी। नये और पुराने सभी विचारों के सज्जनों ने उस स्कीम की सराहना की। संघ के अनेक प्रेमियोंने क्रियात्मक सदुपयोग देने का आश्वासन दिया। अतः इस समाजोपयोगी कार्य में देरी करना उचित नहीं समझा और बड़े लोगों की 'शुभस्य शीघ्रम्' कहावत के अनुसार इस शुभ कार्य को बहुत शीघ्र चालू कर देने के लिये तैयारी करना उचित समझा गया।

उपदेशक विद्यालय खोलने का बीड़ा संघ ने क्यों उठाया?

इस पर दो शब्द कहना अनुचित न होगा। कि राजनीति विशारदों का कहना है कि समाज या देश की रक्षा के लिये यह आवश्यक है कि घरेलू और बाहरी दुश्मनों के आक्रमण से उसकी रक्षा की जाय। जो समाज या देश केवल घरेलू झगड़ों के फन्दे में उलझा रहता है और बाहर की ओर ध्यान नहीं देता, उसे बाहरी दुश्मन चट कर जाते हैं। उत्तर प्रान्त में दिगम्बर जैनों के ह्रास का कारण हमारी लापरवाही ही है। ढूँढिया साधुओं के द्वारा जो दि० जैनों के सैकड़ों घर अपने

पन्थ में दीक्षित कर लिये गये तथा आज भी किये जाते हैं उनकी बात तो एक तरफ रखिये, आर्य समाज के द्वारा भी हमें कम हानि नहीं उठानी पड़ी इन बाहरी बलवान आक्रमणों से जैनधर्म और समाज की रक्षा के लिये ही संघ की स्थापना कीगई थी। संघ की ओर से आज तक जितने शास्त्रार्थ किये गये उनसे उत्तर प्रान्त का बच्चा २ परिचित है। आर्य समाज के बढ़ते हुए आतंक को दबाकर संघ ने अपनी जन्मभूमि को निर्भय बना दिया है। अस्तु,

अपने कई वर्ष के प्रचार कार्य में संघ के सञ्चालकों को समाज की अन्दरूनी दशा के बहुत कटु अनुभव प्राप्त हुये। उसने देखा कि ग्राम में बसने वाले जैनों की बड़ी दुर्दशा है। वे अपने धर्म-कर्म से बिलकुल अपरिचित होते जाते हैं। उनकी ओर किसी का भी ध्यान नहीं है। एक दो प्रचारक रख कर संघ ने उधर कार्य करना चाहा तो औरभी अधिक निराशा हुई। प्रचार की शिक्षा न मिलने से प्रचारकों को कोई सफलता नहीं मिली। एक सैलानी प्रचारक महाशय तो गांव २ घूमने से घबराकर चलते बने। समाज और उसके प्रचारकों की यह दशा देख कर संघ के सञ्चालकों ने इस दिशा में कुछ ठोस कार्य करने का संकल्प किया उसीका परिणाम यह उपदेशक विद्यालय होगा, आज समाजमें काम चलाऊ पण्डितों की कमी नहीं हैं बल्कि उन्हें क्रियात्मक शिक्षण देने की कमी हैं। उस कमी की पूर्ति यह विद्यालय करेगा।

उपदेशक कैसे होंगे ?

साधारण जनता तथा विद्वज्जनता दोनों का ध्यान रखकर ही उपदेशक तैयार किये जांयगे। वे आपका मनोरंजन भी करेंगे और आड़े समय में काम भी आयेंगे। दीन और दुनियाँ दोनों का अनुभव होगा। वे आपसे चन्दा नहीं मांगेंगे, संभव है आप ही उनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर उनकी झोलियों में 'सेवा का उपहार' डालने के लिये उत्सुक हों। उनके कार्यक्षेत्र केवल बड़े २ शहर नहीं होंगे, बल्कि उनकी आवाजसे दीन हीन ग्रामीणों के झोंपड़े भी जगाये जाँयगे।

क्या संघ के संचालकों की यह भावना सफल होगी ?

अवश्य होगी, उन्हें अपनी सेवाओं पर अटूट विश्वास है और आज तक वे उसी के बल पर विघ्नों का सामना करते आते हैं। अपने सच्चे सेवकों को जनता कभी नहीं भूलती। इसका प्रमाण 'संघ' है उसके कोष में एक पैसा न होते हुए भी वह प्रत्येक आवश्यक कार्य में आगे बढ़ने से नहीं चूकता और कार्य प्रारम्भ करने पर प्रेमी जनता के अनुग्रह से उस कोई कार्य धनाभाव से नहीं रुकता। उसी विश्वास के ऊपर उसने इस कार्य को हाथ में लिया है और उसे आशा है कि इस मन्दी के जमाने में भी

२५००० रु० की अपील

की पूर्ति अवश्य होगी। जिस समाज का एक २ धनी जैन धर्म की प्रभावना के लिये पूजा-प्रतिष्ठाओं में पचास पचास हजार रुपये तक व्यय कर डालता है क्या उस समाज में एक भी ऐसा विचारक दानी नहीं निकलेगा जो इस स्थायी प्रभावना अंग के लिए केवल २५००० रुपया दे सके।

स्मरण रखिये-

धर्मायतनों की रक्षा धर्म प्रचार पर ही अवलंबित है। अतः जो धर्म प्रचार में हाथ बटाता है वह

धर्मायतनों का रक्षक और पोषक है। इस लिये समाज सेवा धर्म रक्षा और पुण्यसंचय के इस पुनीत कार्यमें दिल खोलकर दान दीजिये। इस क्षेत्रमें एकबार बोया गया बीज पीढ़ी दरपढ़ी तक फूले फलेगा। जो दाता बड़ी रकम दान देंगे उनकी स्मृति को सुरक्षित रखने का प्रबन्ध किया जावेगा।

डेपुटेशन घूमेगा।

धन संग्रह के लिये शीघ्र ही एक डेपुटेशन घूमेगा जो मुख्य २ स्थानों पर जायेगा। अपील का आशा प्राप्त होते ही विद्यालय का काम प्रारंभ कर दिया जायगा। शायद आपके यहां डेपुटेशन न जाय इस लिये आज ही जो कुछ बने मनि आर्डर द्वारा संघ क कोशाध्यक्ष लाला शिब्बामल जी रईस अम्बाला कैंट के पते पर भेजना शुरु कर दीजिये। और 'उपदेशक विद्यालय' का हवाला देना न भूलिये। दानियों के लिये दान करने का ऐसा अवसर न मिलेगा। यदि समाज ने इस विद्यालय में दिल खोलकर दान दिया तो हम भारत वर्ष में जैनों की—

एक सुसंगठित प्रचारक संस्था

का निर्माण करने में समर्थ होंगे। आशा है समाजका प्रत्येक व्यक्ति इस कार्य में योग देकर हमारा उत्साह बढ़ायेगा और हमें दिल खोल कर समाज सेवा करने का सुअवसर देगा।

समाज का सेवकः—

—कैलाशचन्द्र शास्त्री

मंत्री, प्रचार विभाग

भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ

हितेच्छु का आक्षेप

पार्टीबंदी से अलग रहने तथा श्रीमान पं० इन्द्रलालजी शास्त्री और उनके कुछ सहयोगियोंकी हां में हां न मिलाने के कारण एवं शास्त्रार्थ संघ के दो-एक कार्यकर्ताओं से वैयक्तिक मेल न खाने के कारण पं० इन्द्र लाल जी की आंखों में शास्त्रार्थ संघ और उसका जैनदर्शन बहुत चुभता है। इसी कारण वे अपने स्वभाव से लाचार होकर छिद्र देखा करते हैं। ऐसा छिद्र अबकी बार उन्हें हाथ लग गया तदनुसार वे हितेच्छु के ४-६ अङ्क में जैनदर्शन पर आक्रमण कर ही बैठे। इसके लिये उन्हें धन्यवाद है, वे अपने इस छिद्रान्वेषण में औरभी उन्नति करेंगे, ऐसी आशा है। जैन जगत के साथ शास्त्रार्थ संघ तथा जैन दर्शन की कितनी सहानुभूति है, यह कुछ छिपने वाली बात नहीं। धार्मिकता की आड़ में स्वार्थी लोग इसको छिपाना चाहें, यह उनकी असफल निंद्य चेष्टा है।

हितेच्छु हमको आज ३० जनवरी को उस समय मिला है जबकि जैनदर्शन का सारा मैटर कंपोज होचुका है अतः इस आक्षेप का उत्तर इस अंकमें नहीं दिया जा सकता। पं० इन्द्रलाल जी शास्त्री के चित्त में यदि कोई अन्य स्थूल या सूक्ष्म आक्षेप विद्यमान हो तो उसे भी बेधड़क होकर प्रकाशित करदें, इन सबका उत्तर आगामी अङ्क में दे दिया जायगा।

—अजितकुमार

श्वेताम्बर मत समीक्षा दिग्दर्शन

इस नामकी पुस्तक जो खामगांव से प्रकाशित हुई है वह हमको मिल गई है उसके लेखक श्रीमान यति बालचन्द्र जी हैं। उसे सरसरी दृष्टि से देख भी लिया है। पुस्तक अपने नामानुरूप है उसमें श्वेताम्बर मत समीक्षा की अधिकांश बातों का या तो प्रकारान्तर से समर्थन किया गया है अथवा मंक्षिप्त रूप से दिग्दर्शन कराया गया है। कुछ का युक्ति विहीन रूप में प्रतिवाद भी किया गया है।

श्रीमान यति बालचन्द्र जी ने इस पुस्तक के द्वारा उन कई विषयों पर से परदा हटा दिया है जिन का उल्लेख देख, सुनकर हमारे कतिपय भोले भाले जोशीले श्वेताम्बरी नवयुवक असीम जोश की बाढ़ में सभ्यता को बहा देते थे। जिन महानुभावों ने श्वेताम्बर मत समीक्षा का अवलोकन किया है उनको इस प्रतिवाद रूप पुस्तक का भी अवलोकन करना चाहिये ऐसा हमारा अनुरोध है।

यति जी ने जिस सत्यप्रियता को खुले तथा दबे रूपमें अपनाया है। एवं भाषा समिति का आदर किया है उसके लिये आपको धन्यवाद है। आगामी अंकमें हम इस पुस्तक पर कुछ लिखेंगे —अजितकुमार

श्वेताम्बर मत समीक्षा और उसका दिग्दर्शन

कतिपय श्वेताम्बर नवयुवकों के जोशीले लेखों को देख उत्सुक होकर मैंने संत परीक्षा, जैनमत-दर्पण आदि पुस्तकों को देख कर फिर श्वेताम्बरमत समीक्षाको देखा। इसके बाद उसका उत्तर भी पढ़ने के लिये दिलमें उत्सुकता थी वह भी पूर्ण हुई। खामगांम निवासी, वादीमानमर्दनकार, आचार्य, सूरीश्वर यति बालचन्द्र जी की लिखी श्वेताम्बरमत समीक्षा दिग्दर्शन' पुस्तक श्वेताम्बरमत समीक्षा के उत्तरमें प्रकाशित हुई है।

यति जी ने पुस्तक अच्छी प्रशंसनीय सभ्यता के साथ लिखी है जिसका कि अभाव श्वेताम्बर नवयुवकों में पाया जाता है। यति जी ने जहां सभ्यता का आदर्श नहीं गिरने दिया वहीं सचाई को भी बहुत कुछ खोल दिखाया है। जैसे कि—

१—श्वेताम्बरीय सिद्धान्तानुसार महाव्रती साधु वन आदि में ग्रंथ सुरक्षित रखने आदि के लिये पांच प्रकार का चमड़ा काम में ले सकता है। पृ० २४

२—साधु दिन में उपवासों की संख्या अनुसार अनेकबार भोजन कर सकता है। पृ० २४

३—साधु वर्षा के लिये अपने पास छाता भी रख सकता है। पृ० २३ इत्यादि।

गर्भापहार, केवली कवलाहार, स्त्री मुक्ति आदि जिन स्थूल विषयों का प्रतिवाद यति जी ने किया है उसमें युक्तियों का अभाव है। पं० अजितकुमार जी ने प्रत्येक विषय सैद्धान्तिक युक्तियों तथा श्वेता० ग्रंथों की साक्षी से जमाया है उन युक्ति और आगम

प्रमाणों का यति जी ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया है अतः जो विषय श्वेताम्बर मत समीक्षा ने २०—२५ पृष्ठों में लिखा है उसी का उत्तर यति जी ने दो एक पृष्ठमें लिखकर समाप्त कर दिया है। अस्तु

केवली केवलाहार का समर्थन करते हुए यति जी ने जो पांचवें पृष्ठ पर 'शुद्धस्फटिक संकाशं' आदि श्लोक की मीमांसा करते हुए इस श्लोक को दिगम्बरीय ही बतलाया है सो आप भूले हैं श्री हेमचन्द्राचार्य कृत 'योगशास्त्र' ग्रंथ में भी केवली के शरीर का वर्णन करते हुए यह श्लोक ज्यों का त्यों लिखा हुआ है जिससे कि हेमचन्द्रचार्य के मतानुसार केवली का शरीर 'सप्तधातु रहित' होता है। अब बतलाइये इस का क्या समाधान है ?

भगवान महावीर के गर्भापहार का समर्थन करते हुए जो आपने लिखा है कि डाक्टर लोग आज कल भी ऐसा कर सकते हैं सो कृपा करके उनमेंसे किसी एक आध का नाम बतलाइये जो ८२ दिन के गर्भ को एक पेट से निकालकर दूसरे पेट में रखदे।

स्त्री मुक्ति के समर्थन में जो आपने ६वें पृष्ठ पर लिखा है कि दिगम्बरीय ग्रंथकार पुरुष थे उन्होंने स्त्रियों को मुक्ति के अयोग्य बतलाकर उनके साथ अन्याय किया है। सो क्या आपके लिखे अनुसार श्वेताम्बरीय ग्रंथों ने सचमुच स्त्रियोंको पुरुषों सरीखा समानता का अधिकार दिया है ? यदि हां ! तो निम्न लिखित बातें श्वेताम्बरीय सिद्धान्तोंमें क्यों पाई जाती हैं।

१—स्त्री चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण आदि उच्च पद नहीं पा सकती।

२—स्त्री बारहवें स्वर्ग से ऊपर जाने लायक पुण्य उपार्जन नहीं कर सकती। (बारहवें स्वर्ग से ऊपर तो न जासके किन्तु मोक्ष पालेवे) यह अद्भुत बात है।

३—अहमिन्द्रपद कर स्त्री पर्याय नहीं पाते।

४—स्त्रियों को चौदह पूर्व का ज्ञान नहीं होता (पूर्ण श्रुत ज्ञान तो स्त्री को न हो किन्तु केवल ज्ञान हो जावे यह भी अद्भुत बात है।)

५—तत्वार्थाधिगम् सूत्र के कथनानुसार स्त्री शरीर पापकर्म के उदय से प्राप्त होता है। आदि

माँस भक्षण विधान का जबाब देते हुए आपने वहां सौदास राजा की कथा का उल्लेख किया है। सो क्या यति जी अपने सच्चे हृदय से बतलाने की कृपा करेंगे कि ऐसी ऐतिहासिक कथाओं के उल्लेख मात्र से मांस भक्षण विधान पद्मपुराण के गले मढ़ा जा सकता है ?

महाव्रती साधु को वस्त्र पहनने का समर्थन करते हुये जो कुछ आपने लिखा है उस विषय को स्पष्ट करने के लिये कृपया इतना जरूर बतलावें कि-

१- श्वे० यति महाव्रतधारी हैं या नहीं ?

२- यदि महाव्रती नहीं तो कौनसी प्रतिमा के धारक अणुव्रती होते हैं ?

३- महाव्रती साधु अपने पास क्या २ रख सकते हैं ?

आशा है यति जी उक्त विषयों पर अपनी मीठी कलम से प्रकाश डालने की कृपा करेंगे।

वीरेन्द्र—अम्बाला।

—✼—

संघ की कार्यकारिणी की बैठक
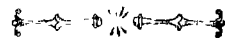
ता० २७ दिसम्बरको दोपहर के १२ बजे से से संघ के कार्यालय में संघ की कार्य कारिणी कमेटी की बैठक हुई थी। इसमें निम्नलिखित सदस्य उपस्थित थे।

(१) पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री बनारस।
(२) ला० शिब्बामल जी रईस अम्बाला।
(३) „ बाबूलाल जी खातौली (बजरिये- प्राक्सी)
(४) पं० मंगलसेन जी अम्बाला
(५) पं० अजितकुमार जी शास्त्री मुलतान
(६) चैनसुखदास जी शास्त्री जयपुर (बजरिये— प्राक्सी)
(७) राजेन्द्रकुमार

सभापति का स्थान पं० अजितकुमार जी शास्त्री मुलतान ने ग्रहण किया। सर्व प्रथम पं० कैलाशचंद्र जी ने मंगलाचरण किया। इसके बाद समिति ने बहुत वादानुवाद के पश्चात कई प्रस्ताव स्वीकार किये। इनमें से तीन प्रस्तावों के सम्बन्ध में उपदेशक विद्यालय की स्थापना और संघ की कार्य कारिणी समिति के चुनाव ये हैं। अतः हम उनको उद्धृत किये देते हैं।

(१) उपदेशक विद्यालय की आयोजना पर जो लोकमत मिला है उससे इसकी आवश्यकता बिलकुल निसन्देह है अतः संघ की कार्यकारिणी की यह बैठक प्रस्ताव करती है कि योग्य उपदेशकों के तैयार करने के लिये एक उपदेशक विद्यालय खोला जाय। इसके संचालन के निमित्त उपसमिति द्वारा निश्चित आयोजना ही काम में लाई जावे। केवल उपदेश की कक्षा के छात्रों को १५) मासिक छात्रवृत्ति के स्थान पर दस रुपये मासिक रखा जावे।

(२) उपदेशक विद्यालय के संचालन के लिये धनकी आवश्यकता है तथा संघ के पास फंड नहीं है अतः कार्यकारिणी की बैठक प्रस्ताव करती है कि इसका एक स्वतन्त्र फंड कायम किया जाय और इसके लिये समाज में पच्चीस हजार की अपील कीजाये तथा मुख्य मुख्य स्थानों पर मुख्य २ महानुभावों का एक डेपुटेशन भेजाजाय।

(३) संघ के अगले वर्ष के कार्य संपादन के लिये भा० दि० जैन शास्त्रार्थ कार्यकारिणी समिति के प्रस्ताव की आवश्यकता है अतः कार्य कारिणी की यह बैठक प्रस्ताव करती है कि निम्नलिखित महानुभावों का यह समिति चुनी जाय।

(१) संरक्षक और कोषाध्यक्ष—ला० शिब्बामल जी जैन रईस अम्बाला।
(२) सभापति- व्याख्यान वाचस्पती पं० देवकी नन्दन जी शास्त्री कारंजा।
(३) उपसभापति- बा० सुमेरचन्द जी एडवोकेट सहारनपुर
(४) महामन्त्री- राजेन्द्र कुमार जी जैन अम्बाला
(५) मंत्री प्रचार विभाग- पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री बनारस
(६) „ प्रकाशन विभाग- पं० अजित कुमार जी शास्त्री मुलतान।
(७) पत्र सम्पादक- पं० चैनसुखदास जी न्याय-तीर्थ जयपुर।

प्राप्ति स्वीकार श्री पार्श्वनाथ दि० जैन विद्यालय उदयपुर (मेवाड़)

मास मई सन् १९३४ इस्वी

२२॥) साधारण दान खाते

५) श्रीमान बाहरमल जी नेमीचन्द जी इन्दौर
।) „ नारजी बौड़ा भुँगाणा
३) „ वेचरचंद जी परमचंद जी कुड्वारी
१) „ ॐकार जी चंपालाल जी ऋषभदेव
२।) „ समस्त संघ बीसा हूमड़ डूंगरपुर
१) „ समीरमल जी गोधा साहपुरा
॥) „ बचराज जी नरसिंहपुरा भोडर
॥) „ कंजोरीमल जी पचोरी „
३) „ शिवलाल जी नत्थूराम जी कुरडुवारी
१) „ भागचंद जी नारजी धौलगढ़
१) „ रामपाल जी पाटोदी कुचामन
४) „ पद्म जी उमेदचंद जी छिन्दवाड़ा

६) मासिक दान

६) श्रीमान मोतीलाल जी नीमच की छावनी

२३।=) अहार दान

२०-) श्रीमान जोधराज जी पालावत कुरावड़
३।-) „ रोड जी टीपरवा साकरोदा

१७॥) औषधालय

२) श्रीमान कजोड़ीमल जी ठोल्या
२) छोगालाल जी अग्रवाल
१) खूबचंद जी अग्रवाल
१॥) गुलाबचंद जी भरावड़ा
४) नेमीचंद जी गोधा
६) पृथीराज जी चितोड़ा
१) कालूलाल जी अग्रवाल

१६४।) भोजन फीस—छात्रों के आये

२३३॥=) कुल जोड़

मास जून १९३४ इस्वी

१६७॥=)॥ साधारण दान

।) श्रीमान कपूर जी टेकचंद जी डुंगरपुर
२) „ मांगीलाल जी गोरेलाल जी सनावद
११) „ जौहरीलाल जी कन्हैयालाल जी कलकत्ता
२) „ चुन्नीलाल जी नारायनदास जी
१॥।) „ गुप्त नाम से एक भाई के
१८) „ समस्त पंच तेरह पंथ उदयपुर
१।) „ किशनलाल जी गोविन्दलाल जी बाकानेर
१) „ सज्जन मलजी जयचन्द जी प्रतापगढ
१) „ शिवलाल जी डागरिया पारसोला
१०) „ कन्हैयालाल गंगवाल अजमेर
४) „ लक्ष्मीचन्द जी मेघराज जी मनीपुर
३) „ गुलाब चन्द जी हीराचन्द जी इंडी
१) „ मानमलजी काशलीवाल अजमेर
१) „ मंगलचंद जी काशलीवालजी अजमेर
१) „ सूआलाल जी सेठी अजमेर
२) „ छीतरमल जी नथूमल जी सेठी अजमेर
१) „ गुलाब चंद जी मोती लाल जी अजमेर
१) „ सूआ लाल जी केसरी मल जी अजमेर
१-) „ केसरीमलजी झाझरी, कन्हैयालालजी „
॥।)॥ „ मांगीलालजी जमनालालजी कुवलखेड़ा
३॥) „ समस्त दि० जैन पंचांग गोराना

४) ,, मोतीलाल जी मु. झाडोल
५) ,, समस्त दि० जैन पंचान ,,
५) ,, पूनमचंद जी गुलाबचंद खाकड़
१८।-) समस्त दि० जैन पंचान ,,
४) ,, चन्द्रभाण जी कोरी लाल जी बदराना
४॥) ,, सकल दि० जैनपंचान ,,
१) ,, गुलाबचंद जी जावरिया समैजा
१०॥) ,, सकल दि० जैन पंचान औगणा
१) ,, कालूलाल जी भामावत समैजा
५) ,, सकल दि० जैन पंचान औगणा
१) ,, गुलाब चंद जी जावरा थोबावाड़ा
५॥) ,, फतेचंद जी मोतीलाल जी छगनलाल जी
१०॥),, सकल दि० जैन पंचान कोल्यारी
६।) ,, ,, ,, बीछीवाड़ा
५) ,, चंपालाल जी वरदीचंद जी फलासा
३) ,, पन्नालाल जी किस्तूर चंद जी ,,
५) ,, लाबचंद जी गुलाबचंद जी पूँचड़ी
३) ,, वरदीचंदजी दाड़मचंदजी चांपावत ,,
२२।) सकल दि० जैन पंचान ,,
३) ,, ,, ,, बावलवाड़
१) ,, ,, ,, भा दा
३) ,, ,, ,, नायागाँव
३) ,, ,, ,, छाणी

२२) मासिक दान

४) श्रीमान मोहरसिंह जी राधेश्यामजी देहुली
१२) ,, रतनचंद जी मथुरादास जी जावद
६) ,, रूपचंद जी भवानीराम जी मंडफर

२३) आहारदान

१२) श्रीमान ला० दीनदयाल जी किशनलालजी नसीराबाद
११) ,, कालुरामजी कजोड़ीमल जी भीलवाड़ा

४॥) औषधालय

२) श्री मान छगनलाल जी महेता उदयपुर
१) ,, रामलाल जी शाह उदयपुर
।) ,, पन्नालाल जी अग्रवाल
१॥) रोड़जी टीमरवा साकरोदा

७) कन्या पाठशाला

२) गुप्तदान एकभाईने ह० छगनलालजी महेता
५) ,, ला० पारसदास जी नसीराबाद

१७) भोजन फीस छात्रों के आये

५०॥≥)॥ ब्याजके

६॥≥) ,, छगनलाल जी मरेना उदयपुर
५) ,, कन्हैयालाल जी बदरीचंद जी कलकत्ता
३६।)॥ ,, चैन सुख जी गम्भीमल जी ,,
३३२।-)॥

निम्नलिखित महानुभावों ने छात्रों को मिष्टान्न भोजन कराया।

१ श्रीमान जोधराज जी बालावत कुरावड़
२ ,, दीनदयाल जी किशनलाल जी नसीराबाद

मास जुलाई सन १९३४ ईस्वी

४१) साधारण दान

२) श्री चंपालाल जी केसरीमल जी मन्दसौर
२) लखमीचन्द जी मथुरालालजी परतापगढ़
१) फतेहलाल जी पोरवाड़ खण्डवा
१०) त्रिभुवनदास जी दयालदास जी भावनगर
४) मगनलाल जी बाकलीवाल आगरा
१) श्रीमान अमोलक चन्द जी अजमेरा पीड़ावा
१) ,, हुकमचन्द जी बाकलीवाल बड़नगर
२) ,, भंवरलाल जी अजमेरा बनता
१२) ,, थावरचन्द जी रामलालजी खाकड़

६) ,, लक्ष्मीराम जी शिवबकस जी बेरी

५८॥=) मासिक दान

३) ,, चन्दन लाल जी चौधरी भीलवाड़ा

६) ,, बेणी चन्द जी दामावत उदयपुर

१॥=) ,, गेवीलाल जी बालावत कुरावड़

१२) ,, शुभकरणजी मदनलाल जी गोपालगंज

३६) ,, शिवलाल जी गुलाबचन्द जी डबोक उदयपुर

२१) आहार दान

१५) ,, परम चन्द जी बेचर चन्द जी कुरडू वाड़ी

३) ,, ऋषभचन्द जी मुन्नालाल जी परतापगढ़

११) ,, श्रीमति जीऊबाई बीजापुर के मु. सोलापुर

२७) ,, औषधालय

४) ,, दीपलाल जी अ वाल उदयपुर

२) ,, गहेरीलाल जी भोजक साकरोदा

१२) ,, शिवलाल जी गुलाबचन्द जी उदयपुर

६) ,, वेणीचन्द जी दामावत उदयपुर

१२) ,, कन्या पाठशाला में शिवलाल जी रामा उदय पुर

१५१) भोजन फीस में छात्रों के अये

३१७॥=) मीजान

मास अगस्त १९३४ ईस्वी

१७॥) साधारण दान

२॥) श्रीमान वीरचंद जी पहाड़ चंद जी सलुम्बर

१) ,, भेरूलाल जी सूआलाल जी धार

१) ,, कोमलचंद जी घासीलाल जी धार

१) ,, ऋषभदास जी श्रावगी अजमेर

५) ,, भंवरलाल जी निर्मलकुमार जी कुचामन

१) ,, हीराचंद जी वरदीचंद जी खण्डवा

१) ,, ताराचन्द जी रीड़

॥) ,, नानालाल जी हूमड़ परतापगढ़

॥) ,, कुरीचन्द जी भोपावत ऋषभदेव

१) ,, नाथूलाल जी शिवलाल जी ऋषभदेव

५) ,, छोगमलजी सुजानमलजी सुजानगढ़

१२) मासिक दानमें सेठ रंगलाल जी रामेश्वर जी गोहाटी

४२॥=) आहारदान

३) श्रीमान हीरालाल जी टोंग्या उदयपुर

१२) बैजनाथ जी श्रावगी कलकत्ता

२७॥=) समस्त पंचान तेरहपंथ उदयपुर

२३॥) औषधालय में उदयपुर वाले

१) काउलाल जी अग्रवाल

२) मगनलाल जी बंडी

२) गुलाब चन्द जी भदावत

५) छगनलाल जी गदिया

२) नंदलाल जी

॥) अर्जुनलाल जी गोधा

१) गहेरीलाल जी भोजक

१) छगनलाल जी गदिया

५) प्रेमचन्द जी अग्रवाल उदयपुर

२) खूबचन्द जी अग्र० बंडी

२) कुंदन जी नागदा

७३०।-)॥ व्याज के कल्याण मल भाल से

६५।≡)॥ भोजन फंन्ड में छात्रों से आये

४०२) दि० जैनधर्म शाला

४०१) श्रीमान गणेशीलाल जी मु. लालटेन गंज

१) हीरा चन्द जी विरदी चन्द जी खण्डवा

१२६५॥≡) कुमला

नोट:—उपर्युक्त दातारों को कोटिशः धन्यवाद है अन्य भाई भी अनुकरण करेंगे

भवदीय— गुलाबचन्द राय मंत्री।

आवश्यक सूचना

जैन गजट तथा खंडेलवाल जैन हितेच्छु के एक लेखमें सौभाग्यदास जी सेठी (जयपुर) ने अपने नाम के साथ दि० जैन महापाठशाला जयपुर के सहायक मंत्री का पद लगाकर समाज को धोका देना चाहा है। अतः सूचित किया जाता है कि ये न तो कभी उक्त पाठशालाके सहायक मंत्री थे और न अब हैं। प्रत्युत इनमें महापाठशाला के २२१४॥=)। बाईस सौ चौदह रु० सवा दस आने बाकी थे। इस लिये इनकी वसूली के लिये इनको मुद्दायलह नं० १ बनाकर सबजजी जयपुर सिटी में पं० कस्तूरचन्द जी साह सहायक प्रबंधकारिणी कमेटी दि० जैन महापाठशाला की तरफ से नालिश दायर कर रखी है। अतः कोई भाई भ्रममें पड़कर इनके नाम महापाठशाला के निमित्त किसी तरह की सहायता न भेजे। यदि किसी महाशय ने कभी इनके नाम सहायता भेजदी हो तो हमें सूचित करें।

समाज हितैषी— जवाहिरलाल मंत्री,
श्री दि० जैन महापाठशाला जयपुर।

(८) मन्त्री अनुसन्धान- पं० के० भुजबली शास्त्री आरा।

(९) पुस्तकालय- वेद विद्या विशारद पं० मंगल सेन जी अम्बाला।

(१०) मंत्री शास्त्रार्थ-बाबू जयभगवान जी ऐड-वोकेट पानीपत

(११) कानूनी सलाहकार-बाबू महावीर प्रसाद जी ऐडवोकेट अम्बाला

(१२) आडीटर-ला० बाबूलाल जी खतोली

(१३) सदस्य-न्यायाचार्य पं० माणिकचन्द्र जी सहारनपुर

(१४) सदस्य-सिद्धान्तवारिधि पं० वन्शीधर जी इन्दौर

(१५) सदस्य-वाणीभूषण पं० तुलसीराम जी काव्यतीर्थ बड़ौत

यह सब ही प्रस्ताव सर्व सम्मतिसे पास हुए हैं

निवेदक-

राजेन्द्रकुमार जैन

महामंत्री भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ

—※—

—अहमदाबाद के श्वेताम्बर जैन तीर्थ यात्रा संघ के २५ यात्रियों का ठंडक से देहान्त हो गया।

समाचार

उदयपुरमें करीब ३ माहसे श्री दिगम्बर जैन महावीर पुस्तकालय तथामंडल की स्थापना हो गई है। जिसने करीब ३८० पुस्तकें एकत्रित करली हैं। जैन अजैन ७ पत्र आने लगे हैं और १५०० के करीब जैन अजैन भाइयोंने पुस्तकालय से लाभ उठाया है।

धन्यवाद

निम्न लिखित महानुभावों ने मंडल को सहायता दी उनके लिये कोटिशः धन्यवाद है।

७) श्रीमान् सेठ कारूलाल जी

४) श्रीमती चन्द्राबाई जी आरा०

५) श्रीमान् सेठ शिवलाल जी

२) श्रीमान् सेठ वेणीचन्द्रजी

२) श्रीमान् सेठ गोपीलाल जी कुराबड़

१) श्रीमान् कारूलाल जी मौड़ा

१) श्रीमान पं० लक्ष्मीलाल जी

२) श्रीमान् सेठ ऋषभदास जी

१५।) फुटकर चन्दा

कुलमीजान ४०।) रु०

रामपुर—अहमद नामक एकमुसलिम लड़केको लम्बी दाढ़ी और मूंछें आ गयी हैं। कहते हैं कि जब वह तीन सालका था तभी उसके दाढ़ी मूंछ आने लगी थीं।

आसामके एक धनी द्रविड़ने जिसे अफीम खानेकी लत पड़ गयी है, ' काली देवी ' [अफीम] के सब कुछ भेंट चढ़ा दिया यहाँ तक, कि दो लड़कियों को भी एक तोला अफीम के बदले में दे दिया।

इंग्लैण्ड के एक शिल्पीने एकऐसी मूर्ति बनायी है जिसका चर्म रबड़ का है और जिसके पेटमें ऐसे स्पन्दनशील यन्त्र लगाये गये हैं जिनके संचालन से वह मूर्ति हंसती, मुस्कराती, हाव-भाव दिखाती और रोती है।

एक जर्मन आविष्कारकने एक मशीन बनायी है जो छपे हुए समाचारपत्र तथा पुस्तकें पढ़ देती है। इस मेंसमाचारपत्र लगा दियाजाताहै और एक बिजलीका स्विच दबा देते हैं। इसमें सबसे महत्वपूर्ण वस्तु फोटो इलेक्ट्रिक सेलहै जिसका गुण यह है कि प्रकाश पड़ते ही वह बिजली की धारा छोड़ देती है। यदि कम प्रकाश पड़े तो कम बिजली निकलेगी और अधिक प्रकाश पड़ेतो अधिक।

REGD. N. L. 3459.

श्री चम्पावती जैन पुस्तकमाला की उपयोगी

प्रचार योग्य पुस्तकें

यदि आप जैनधर्म का अध्ययन प्रचार और खंडनात्मक साहित्य का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं तो कृपया निम्न लिखित पुस्तकों को अवश्य खरीदिये—

१ जैनधर्म परिचय —जैनधर्म क्या है ? सरलतया इसमें समझाया गया है। पृ० सं० ५० मूल्य -)

२ जैनधर्म नास्तिक मत नहीं है ? — जैनधर्म को नास्तिक बतलाने वालों के प्रत्येक आक्षेप का उत्तर मि० हर्बर्ट वारन (लन्डन) ने बड़ी योग्यता पूर्वक इसमें दिया है। पृ० सं० ३० मू० -)

३ क्या आर्य समाजी वेदानुयायी है ? पृ० सं० ४४ मू० -)

४ वेद मीमांसा — पृ० सं० ६४ मू० =)

५ अहिन्सा — पृ० सं० ५२ मू० -)॥

६ भगवान ऋषभदेव की उत्पत्ति असम्भव नहीं है। —आर्य समाज के ऋषभदेव की उत्पत्ति असम्भव है ट्रैक्ट का उत्तर बड़ी योग्यता पूर्वक इसमें दिया गया है। पृ० सं० ८४ मू० ।)

७ वेद समालोचना पृ० सं० १२४ मू० ।=)

८ आर्य समाज की गप्पाष्टक मू०)॥

९ सत्यार्थ दर्पण— योग्यता के साथ सत्यार्थ प्रकाश के १२ वें समुल्लास का युक्तियुक्त खण्डन इसमें किया गया है। पृ० सं० २४० मू० ॥।)

१० आर्यसमाज के १०० प्रश्नों का उत्तर। पृ० संख्या ६० मू० ≡)

११ वेद क्या भगवद्वाणी है ? —वेदों पर एक अजैन विद्वान का युक्तिपूर्ण विचार। ,, -)

१२ आर्यसमाज की डबल गप्पाष्टक ,, -)

१३ दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि— जैनधर्म और दि० जैन मत का प्राचीन इतिहास प्रमाणिक सरल और जीवित लेखनी के साथ विस्तृत रूप में लिखा गया है जिसमें रंगीन तथा सादे अनेक चित्र हैं। ऐसी पुस्तक जैन समाज में अभीतक प्रकाशित नहीं हुई। प्रत्येक पुस्तकालय और भण्डार में इसका होना अत्यंत उपयोगी है ऐसे अपूर्व सचित्र ऐतिहासिक ग्रन्थ की एक प्रति अवश्य मगायें। पृ० ३५० मू० १)

१४ आर्यसमाज के ५० प्रश्नों का उत्तर ,, =)

१५ जैन धर्म सन्देश-मनुष्यमात्र को पठनीय है ,, -)

१६ आर्य भ्रमोन्मूलन (जैन गप्पाष्टक का मुंह तोड़ जवाब) ,, -)

१७ लोकमान्य तिलकका जैनधर्म पर व्याख्यान द्वि० एडी० ,,)॥

१८ पानीपत शास्त्रार्थ भाग १ जो आर्यसमाज से लिखित रूप में हुआ। इस सदी के सम्पूर्ण शास्त्रार्थों में सर्वोत्तम है। क्या ईश्वर जगत्कर्ता है ? इस को युक्तियों द्वारा असिद्ध किया है पृ० २०० मू० ॥=)

१९ पानीपत शास्त्रार्थ भाग २ इसमें 'जैन तीर्थङ्कर सर्वज्ञ हैं' यह सिद्ध किया गया है। ,, ,, ॥=)

सब प्रकार के पत्र व्यवहार का पता:—

मैनेजर—दि० जैन शास्त्रार्थ संघ, अम्बाला-छावनी।

अजितकुमार जैन ने "अकलंक प्रिन्टिंग प्रेस, मुलतान में छापकर प्रकाशित किया।

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुख-पत्र

वर्ष २ अंक १५

जैनदर्शन

फरवरी १६-१९३५ ई० माघ सुदी १३ शनिवार

देहली का सफल शास्त्रार्थ

आर्य समाज देहली की ओर से भूमंडल के समस्त जैनियों को शास्त्रार्थ करनेके लिये ललकारा था। आर्य समाज की इस ललकार को श्री भा० दि० जैन शास्त्रार्थसंघ अम्बाला छावनी ने सहर्ष स्वीकार किया तदनुसार २ फरवरी को देहली में परेड के मैदान में दोनों ओर के सुभट विजयमाला पहननेके लिये आ डटे। जैन समाज की ओर से श्रीमान पं० राजेन्द्रकुमार जी न्यायतीर्थ और आर्य समाजने अपनी ओर से श्रीमान पं० देवेन्द्र जी सांख्यतीर्थ को खड़ा किया था। दोपहर के १ बजे से ४ बजे तक लग भग ८—१० हजार दर्शकों के समक्ष 'क्या वेद ईश्वरीय ज्ञान है'? विषय में शास्त्रार्थ हुआ उसकी विजयमाला पं० राजेन्द्रकुमार जी के गले में पड़ी—आर्य समाजी विद्वान परस्पर में कह रहे थे कि आर्य समाजी नवयुवकों का श्रद्धान वेदों से आज हट गया।

दूसरे दिन रातको ७ बजे से १० बजे तक "क्या मूर्ति पूजा अनुपयोगी है"? विषय पर शास्त्रार्थ हुआ आज उपस्थित जनता की संख्या कल से भी अधिक थी। जैन समाज की ओर से आज भी पं० राजेन्द्रकुमार जी खड़े हुए थे आर्य समाज से स्वामी कर्मानंद जी खड़े हुए थे। इस दिन भी जैन पहलवान ने प्रभाव शालिनी विजय प्राप्त की जिसका बखान अजैन जनता के मुख से हो रहा था। भारत की राजधानी में यह शास्त्रार्थ पिछले सभी शास्त्रार्थों से अधिक सफल सम्पन्न हुआ।

—अजितकुमार

ऑन० सम्पादक—
पं० चैनसुखदास जैन न्यायतीर्थ, जयपुर
पं० अजितकुमार शास्त्री मुलतान, पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री बनारस

वार्षिक ३) एक प्रति ≈)

जैन समाचार

लाभ उठावें

बंगलोरके दिगम्बर जैन यात्री संघमें पंडिताचार्य चारुकीर्ति जी महाराज भी हैं। जहां जहां संघ पहुँचे वहां के भाइयों को आपके प्रभाव शाली सदुपदेश का सभा कर के लाभ उठाना चाहिये इनके साथ कई शुद्ध राग रागनियों में जैन पदों को गाने वाले जैन भाई भी हैं।

बैंगलोर दि० जैन यात्री संघ

उपरोक्त संघ ता० २७-१३५ ११ को बजे हवड़ा स्टेशन पहुचा दि० जैन युवक समिति के सदस्यों एवं स्वयं सेवकों ने स्टेशन पर पहुचकर स्वागत किया। इस संघ में करीब २०० यात्री हैं। साथमें ही पंडिताचार्य श्री चारुकीर्ति जी महाराज भी हैं। आप श्रवण बेलगुल के भट्टारक हैं।

कलकत्ते का दि० जैन भवन (धर्मशाला) इन यात्रियों के लिये १०—१५ दिन पहिले से ही रिजर्व रखा गया था परन्तु मंत्री की धींगा धींगी की वजह से संघ के लोगों को ३ घंटे तक चौक में बाहर पड़े रहना पड़ा। दि० जैन यात्रियों का, दि० जैनियों की धर्मशाला में ही ऐसी दुर्दशा हो वास्तव यह कलकत्ते के सभी जैनियों के लिये लज्जा की बात है और आशा है कलकत्ता समाज इधर ध्यान देगी।

पंडिताचार्य चारुकीर्ति जी के तीन दिन रात्रि में व्याख्यान हुए। जिसमें यहां की जनता पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। महाराज के व्याख्यानों का सार यह था कि अब किसी भी जैन भाई को पृथक करने का समय नहीं हैं। किन्तु समय है हृदय से लगाने का और प्रेम पूर्वक समझानेका। आपने शिक्षा प्रचार और खासकर स्त्रियों में शिक्षा के प्रचार के लिये विशेष जोर दिया। जैन धर्म में त्यागियों के लिये स्वेच्छा चारिता का विरोध किया और अंत में सभी को धर्म का दृढ़ श्रद्धानी होने की प्रेरणा की।

अन्तिम दिन ता० २७-१-३५ को एक अभिनंदन पत्र कलकत्ता समाज की ओर से भेट किया गया। भट्टारक जी ने उसका यथोचित उत्तर दिया। आज धर्मशाला में बड़ी भारी भीड़ एकत्रित हुई थी।

संघ को दि० जैन युवक समिति के सभापति बा० धर्मचन्द जी सरावगी फार्म जोखीराम मूगराज की ओर से एक दिन भोजनादि कराकर सत्कार किया गया।

रतनलाल झांझरी मंत्री

श्री जैनवीर सेवा मंडल

बड़े ही हर्ष से सूचित किया जाता है कि श्री जैनवीर सेवा मंडल ने पिछले दिनों जीणमाता के मेले पर बकरों और सीकर में दशहरे पर भैंसों का बलिदान बंद कराने में जो कोशिश और जीवदयाका प्रचार किया उसको श्रीमान सेठ सूरजमल जी छाबड़ा कासलीवाल की सुपुत्री के शुभ विवाह पर उनसे १२) तथा बेटे वाले श्रीमान् सेठ दुलीचन्द जी झूमरमल जी सेठी लाडणू निवासी से ५१) रुपया व अन्य बराती महानुभावोंसे १०७॥) कुल १७३॥) रुपयों की प्राप्ति हुई है जिसके लिये यह मंडल उन सबका आभारी है।

अतर सेन जैन मन्त्री श्री जैनवीर
सेवा मंडल सीकर।

बुन्देलखण्ड प्रांत की महिलाओं में जागृति

इस वर्ष श्री सिद्धक्षेत्र रेशंदीगिर जी के मेले पर बुन्देलखण्ड व मध्य प्रदेश की जैन महिलाओं नेपुरुष समाजकी प्रांतिक सभाके सदृश श्री बुन्देलखंड

शेष टाइटलके तीसरे पेज में देखें।

अर्हद्देवाय नमः

श्री जैनदर्शनमिति प्रथितोऽप्रतिमः प्रोज्ज्वलाखिलदर्शनपक्षदोषः.
स्याद्वादभानुकलितो बुधचक्रवन्द्यो भिन्द्यात्तमो विमतिजं विजयाय भूयात्

वर्ष २ | श्री माघ सुदी १३—शनिवार श्री वीर सं० २४६१ | अङ्क १५

जब—

तेरा उन्माद सताता

(१)

कृत्याकृत्य विचार मूढ हो,
अभिमानाचल-शिखरारूढ हो,
पावन पथ को कर कर्दमयुत,
नर यह शोर मचाता।

(२)

उन्नत नत हो बनता नेता
कहलाने को विश्व विजेता,
दीन हीन पतितों पर,
अत्याचार उपल बरसाता।

(३)

अमर नाम की तीव्र लालसा—
समाक्रान्त हो विश्व भाल-सा,
निर्मित करता भवन विशद
उसमें सर्वस्व लगाता।

(४)

नूतन पंथ धर्म पैगम्बर—
बनकर रचता बाह्याडम्बर—
दिखा विश्व को कर प्रवञ्चना,
अपने पैर पुजाता।

(५)

आग्रह का अवतार मनुज हो,
करता अत्याचार दनुज हो,
तुच्छ विभव के लिये मनुजता—
का बलिदान कराता।

(६)

धन शरीर औ शक्ति लगाकर,
तेरा अपघन बना बना कर,
कर जीवन का अंत कीट बन,
फिर न मनुज तन पाता।

—पं० चैन सुखदास जैन

आचरण की सभ्यता

[ले० नरेन्द्र]

यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो विद्या, कला, कविता, साहित्य, धन और राजत्व से आचरण की सभ्यता अधिक प्रभाव शाली और ज्योतिष्मती है। आचरण की सभ्यता को प्राप्त करके एक गरीब और कंगाल आदमी राजाओं के दिलों पर भी अपना प्रभुत्व जमा सकता है; और संसार में उन्नति गामी होता हुआ अपना सुन्दर भविष्य बनाकर अपने को एक अमर आदर्श बना सकता है।

आचरण की सभ्यतामय भाषा सदा मौन रहती है। उस भाषाका कोष शुद्ध श्वेत पत्रों वाला है, किंतु यह सभ्याचरण नाद करता हुआ भी मौन है। मृदु वचनों की मिठास में आचरण की सभ्यता मौन रूप से खुली हुई है। नम्रता दया प्रेम और उदारता सब के सब सभ्याचरण की भाषा के मौन व्याख्यान हैं। मनुष्य के जीवन पर मौन व्याख्यान का प्रभाव चिर-स्थायी होता है और उसकी आत्मा का एक अंग हो जाता है।

आचरण के मौन व्याख्यान से मन और हृदय की गति बदल जाती है। तीक्ष्ण गर्मी से जले भुने व्यक्ति आचरण के बादलों की बूंदा बांदी से शीतल हो जाते हैं। इससे मनुष्य को एक नया जीवन प्राप्त होता है। उसके अन्दर नये २ विचार स्वयं ही प्रगट होने लगते हैं और कुल पदार्थों के साथ एक नया मैत्री भाव फूट पड़ता है।

विचार करके देखो! मौन व्याख्यान किस तरह हमारे हृदय की नाड़ी में सुन्दरता पिरो देता है। वह व्याख्यान ही क्या जिसने हृदय की धुन को, मन के लक्ष्य को ही न बदल दिया हो। चन्द्रमा की मन्द २ हंसी का, तारागण के कटाक्ष पूर्ण प्राकृतिक मौन व्याख्यान का—प्रभाव किसी कवि के दिल में घुस कर देखो कमल और नरगिस में नयन देखने वाले नेत्रों से पूछो कि मौन व्याख्यान की प्रभुता कितनी दिव्य है।

हिमालय जो इस प्रकार बर्फ की चादर ओढ़े अति सुन्दर, उच्च और गौरवान्वित मालूम होता है यह सब प्रकृति के मौन आचरण की महिमा है। प्रकृति ने अगणित शताब्दियों के परिश्रम से रेत का एक एक परमाणु समुद्र के जल में डुबो डुबो कर उनको अपने विचित्र हथोड़ों से सुडौल कर करके इस हिमालयके दर्शन कराये हैं। इसी प्रकार आचरण भी हिमालय की तरह एक ऊंचे कलश वाला मन्दिर है।

सारे वेद और शास्त्र यदि घोल कर पी लिये जायं तो भी आदर्श आचरणकी प्राप्ति नहीं होसकती। आचरण प्राप्ति की इच्छा रखने वाले को तर्क-वितर्क से कुछ भी सहायता नहीं मिलती। शब्द और वाणी तो साधारण जीवन के चोचले हैं। ये आचरण की गुप्त गुहा में नहीं प्रवेश कर सकते। और यह हो भी कैसे सकता है? आत्मा तो सदैव मौन है आत्मा शब्द और भाषा का विषय नहीं; वह केवल आचरण के कान में गुरुमंत्र फूँक सकता है और ऋषियों के अन्तःकरण में वेद का ज्ञानोदय हो सकता है।

यदि आप कहें कि व्याख्यानों द्वारा कितने ही पुरुष और नारियों के हृदय पर जीवन व्यापी प्रभाव पड़ा है, तो यह उत्तर है कि प्रभाव शब्द का नहीं पड़ता—प्रभाव तो सदाचरण का पड़ता है। साधारण उपदेश तो हर गिरजे, हर मन्दिर और मस्जिद में होते हैं परन्तु उनका प्रभाव हम पर तभी पड़ता है जब गिरजे का पादरी स्वयं ईसा होता है, मन्दिर का पुजारी स्वयं महर्षि होता है, मस्जिद का मुल्ला स्वयं पैगम्बर या रसूल होता है।

यदि एक ब्राह्मण किसी डूबती कन्या की रक्षाके लिये—चाहे वह कन्या किसी जाति की क्यों न हो, किसी मनुष्य की हो और चाहे किसी देश की हो—अपने आपको गंगा में फैंकदे—चाहे फिर उसके प्राण रहें या न रहें, तो इस कार्य के प्रेरक आचरण की मौनमयी भाषा किस देश में, किस जाति में और किस काल में, कौन नहीं समझ सकता? प्रेम और दया का आचरण-क्या पशु और क्या मनुष्य-जगत के सब ही चराचर आपही आप समझ लेते हैं। जगत भर के बच्चों की भाषा इस भाषणहीन भाषा का चिन्ह है।

मनुष्य का जीवन इतना विशाल है कि उसके आचरण का रूप देने के लिये नाना प्रकार के ऊंच नीच, भले-बुरे विचार, अमीरी-गरीबी, उन्नति और अवनति इत्यादि सहायता पहुँचाते हैं। जो कुछ जगत में होरहा है वह केवल आचरण के विकास के अर्थ होरहा है। अतः आत्मा वही काम करता है जो बाह्य पदार्थों के संयोग से प्रतिबिंब होता है। जिन को हम पवित्रात्मा कहते हैं-क्या पता है किन २ कूपों से निकल कर वे अब उदय को प्राप्त हुये हैं। जिनको हम धर्मात्मा कहते हैं-क्या पता है, किन अधर्मों को करके वे धर्मज्ञान को पा सके हैं। जिनको हम सभ्य कहते हैं और जो जीवन में पवित्रता को ही सब कुछ समझते हैं-क्या पता है, वे कुछ काल पूर्व बुरी और अधर्म पूर्ण अपवित्रता में लिप्त रहे हों? अतः इस प्रकार उनका उन्नत होना उनके आचरण की सभ्यता का नमूना है। राजा में फकीर छिपा है और फकीर में राजा। बड़े से बड़े पण्डित में मूर्ख छिपा है और बड़े से बड़े मूर्ख में पण्डित। वीर में कायर और कायर में वीर सोता है। दुरात्मा में महात्मा और महात्मा में पापी डूबा है।

आचरण का विकास जीवन का परमोद्देश है, इसके लिये नाना प्रकार की सामग्री-शारीरिक, मानसिक, प्राकृतिक और आध्यात्मिक जुटानी पड़ती हैं। चाहे कोई कितना ही बड़ा महात्मा क्यों न हो वह निश्चय पूर्वक यह नहीं कह सकता कि यों ही करो, और किसी तरह नहीं। आचरण की सभ्यता के लिये वह सब को एक पथ नहीं बता सकता। आचरणशील महात्मा स्वयं भी किसी अन्य की बताई हुई सड़क से नहीं आया; उसने अपनी सड़क स्वयं बनाई है—इसी से उसके बनाये हुए रास्ते पर चल कर हम भी अपने आचरण को आदर्श के ढांचे में नहीं ढाल सकते। हमें अपना मार्ग आप तलाश करना पड़ता है।

यदि मुझे आत्मिक ज्ञान नहीं तो ऐसे ज्ञान से ही क्या प्रयोजन? "मैं अपना कर्तव्य ठीक करता हूं बस यही मेरा धर्म है"। जब तक मैं अपना उद्धार ठीक और शुद्ध रीति से किये जाता हूँ। तब तक यदि मुझे अध्यात्मिक पवित्रता का मान नहीं तो न होने दो। जब तक किसी जहाज़ के कप्तान के हृदय में इतनी वीरता भरी हुई है कि वह महा भयंकर समय

में भी अपने जहाज़ को नहीं छोड़ता तब तक वह मेरी और तेरी दृष्टिमें शराबी, व्यभिचारी और मायावी हो तो उसे होने दो; उसकी बुरी बातों से प्रयोजन ही क्या ? आंधी हो, बरफ हो, बिजलीकी कड़क हो—समुद्र का तूफ़ान हो—वह दिन रात आंख खोले अपने जहाज़ की रक्षा के लिये जहाज़ के पुल पर घूमता हुआ अपने धर्म का पालन करता है । वह अपने जहाज़ के साथ समुद्र में डूब जाता है । परन्तु अपना जीवन बचाने के लिये कोई उपाय नहीं करता क्या उसके आचरण की सभ्यता कुछ कम महत्व की है ? कदापि नहीं । उसने अपना मार्ग आप निकाल रक्खा है ।

देखिये ! रोम का साहित्य और कला एवं संगीत सभी नष्ट हो गए और ऐसा सोया कि अब तक न जागा । ऐंग्लो सैक्सन जाति ने जो उच्च पद प्राप्त किया—वह उसने अपने समुद्र, जंगल और पर्वतों से संबन्ध रखने वाले जीवन से ही प्राप्त किया । इस जाति की उन्नति लड़ने, भिड़ने, मारने, मरने लूटने, लूटे जाने वाले जीवन का ही परिणाम है । लोग कहते हैं, केवल धर्म ही जाति को उन्नत करता है । यह ठीक है, परन्तु वह धर्मांकुर जो जाति को उन्नत करता है, इस असभ्य, कमीने और पापमय जीवन की गंदी राख के ढेर के ऊपर नहीं उगता है । मंदिरों और गिरजों की टिम टिमाती हुई मोमबत्तियों की रोशनी से युरोप इस अवस्था को नहीं पहुँचा । वह कठोर जीवन, जिसको देश देशान्तरों को ढूँढते फिरते रहने के बिना शान्ति नहीं मिलती, जिसकी अन्तर्ज्वाला दूसरी जातियों को जीतने लूटने मारने और उनपर शासन करने बिना मंद नहीं पड़ती—केवल वही विशाल जीवन समुद्र की छाती पर मूँग दल कर और पहाड़ों को फाँद कर उनको वास्तविक महत्ता की ओर ले गया और ले जा रहा है ।

यदि कुल समुद्र का जल उड़ा दो तो रेडियम धातु का एक कण कहीं हाथ लगेगा । आचरण का रेडियम—सारी प्रकृति को हवामें उड़ाये बिना भला कब मिलने का है ? संसार की खाक छान २ कर आचरण का स्वर्ण हाथ आता है । क्या बैठे बिठाये भी मिल सकता है ?

हमारा सम्बन्ध यदि प्राचीन असभ्य जाति के साथ रहा होता तो हमारे वर्तमान वंश में अधिक बलवान श्रेणी के मनुष्य होते । आज कल तो हम उपनिषदों में ऋषियों के पवित्रतामय प्रेम के जीवन को देख २ कर अहंकार में मग्न होरहे हैं और दिन पर दिन अधोगति की ओर जारहे हैं ।

यदि हम किसी जंगली जाति की सन्तान होते तो हम में भी ऋषि और बलवान होते । ऋषियों को पैदा करने योग्य असभ्य पृथ्वी का बन जाना तो आसान है परन्तु ऋषियों को अपनी उन्नति के लिये राख और पृथ्वी बनाना कठिन है । क्योंकि ऋषि तो केवल अनंत प्रकृति पर सजते हैं, हमारी जैसी पुष्प शय्या पर मुरझा जाते हैं । माना कि प्राचीन कालमें यूरोप में सभी असभ्य थे । परन्तु आजकल तो हम असभ्य हैं । उनकी असभ्यता के ऊपर ऋषि जीवन की उच्च सभ्यता फूल रही है और हमारे ऋषियों की पुष्प शय्या पर आजकल असभ्यता का रंग चढ़ा हुआ है ।

भारतवर्ष अब समुद्र में गिरा कि गिरा, एकदम और धड़ाम से नीचे । कारण इसका केवल यही है कि यह निश्चय करता है कि " मैं रोटी के बिना जी

सकता हूँ, हवा में पद्मासन जमा सकता हूं, पृथ्वी से अपना आसन उठा सकता हूँ, योग सिद्धि द्वारा सूर्य और ताराओं के गूढ़ भेदों को जान सकता हूँ। समुद्र की लहरों पर बेखटके सो सकता हूँ। यह यही निश्चय करता रहा और स्वप्न देखता रहा। परन्तु अब तक न संसारकी ही और न राम की ही दृष्टि में एक भी बात सिद्धि हुई यदि अब भी इसकी निद्रा न खुली तो बेधड़क शंख फूँक दो। कह दो, भारतवासियों का इस असार संसार से कूच हुआ। तात्पर्य केवल यह है कि आचरण केवल मनके स्वप्नों से कभी नहीं बना करता। उसका सिरतो शिलाओं के ऊपर घिस २ कर बनता है।

हजारों साल से धर्म पुस्तक खुली हैं। अभी तक उनमे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ, तो हम अपने हठ पर क्यों मर रहे हैं? अपनी स्थिति को क्यों नहीं देखते? पीछे मुड़ २ कर देखने से क्या लाभ? अब तो खुले जगत में अपने अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा छोड़ देना चाहिये। जरा चलो तो सही अपने आप की परीक्षा करो।

धर्म के आचरण की प्राप्ति यदि ऊपरी आडम्बरों से होती तो आजकल भारतवासी सूर्य के समान शुद्ध आचरण वाले होजाते। भाई! माला से तो जप नहीं होता और गंगा नहाने से तप नहीं होता। पहाड़ोंपर चढ़नेसे प्राणायाम नहीं हुआकरता। आध्यात्मिक धर्म के स्वप्नों की शोभा तभी भली लगती है जब आदमी अपने जीवन का धर्म पालन करे। प्राकृतिक सभ्यता के आने पर ही मानसिक सभ्यता आती है और तभी स्थिर भी रह सकती है।

आचरण की सभ्यता का देश ही निराला है। उसमें किसी प्रकार के झगड़े नहीं। न वहां कोई बड़ा है न छोटा, न वहां कोई धनवान है न निर्धन। वहाँ तो प्रेम और एकता ही का अखंड राज्य रहता है।

इस लेख की कई बातों से हम सहमत नहीं हैं। आचरण की सभ्यता का अर्थ शासक बनना नहीं, किंतु कर्तव्य पालन करना है। पर कर्तव्य की व्याख्या में अपने हितके साथ २ दूसरों के हित का खयाल रखना भी आजाता है शक्ति, बुद्धि और धन बल से सारे संसार पर शासन करने वाली पश्चिमीय सभ्यता के प्रभाव से प्रभवान्वित होकर लेखक ने भारत की उस महत्ता को भुला दिया है जिससे संसार भरकी भूत और वर्तमान सभ्यताओं का जन्म हुआ है। पश्चिम की विजय और प्रभुता का कारण उसके आचरण की सभ्यता नहीं है। उसको, यह भौतिक महत्ता तो उसके राजनैतिक, बुद्धि कौशल और राष्ट्रीय संगठन के कारण प्राप्त हुई है। आचरण की सभ्यता में भारत अब भी इस गये गुजरे जमाने में किसी भी देश से कम नहीं उतरेगा। धर्म पुस्तकें तो हमें उत्थान में सहायता देती हैं। वे एक तरह का प्रकाश हैं। यदि कोई धर्म पुस्तकों को रखकर भी पाप अथवा अवनति के अंध कूप में गिरजाय तो यह अपराध उस रखने वाले का है न कि धर्म शास्त्रों का। धर्मशास्त्र तो भारत के समान प्रायः संसार के सभी देशों में है। धार्मिक अंधविश्वास यद्यपि भयंकर वस्तु है, पर भारत को अवनति का इससे कुछ अधिक सम्बन्ध नहीं है। इसकी कमी तो अन्य देशों में भी नहीं है। क्या विजयिनी मुसलमान जाति में धार्मिक अंध विश्वास की कमी है? धर्मों की विभिन्नता तथा राजनैतिक बुद्धि कौशल और राष्ट्रीय संगठन का अभाव ही हिन्दुस्थान के अधःपतन का कारण है।

—सम्पादक

स्त्री शिक्षा की आवश्यकता ।

(ले०—श्री सनत्कुमार जैन, जयपुर)

ज्ञान आत्मा का धर्म है। ज्ञान के विकासमें आत्मा का उत्थान और ज्ञान के संकोच में आत्मा का पतन है। उन्नति और अवनति का भी यही अर्थ है। यहाँ मेरा अभिप्राय सफल ज्ञान से है। सृष्टि के उन जीवात्माओं को, जिनमें कम से कम ज्ञान पाया जाता है, जघन्य श्रेणी का प्राणी कहा गया है। इतर प्राणी वर्ग से मनुष्य की भी यही विशेषता है कि वह उससे अधिक ज्ञानवान है। यदि मनुष्य में सफल ज्ञान न हो तो पशुओं से उसकी कुछ भी विशेषता नहीं मानी जायगी। प्रसिद्ध विद्वान श्री आशाधर ने कहा है—

नरत्वेपि पशूयन्ते मिथ्यात्वग्रस्तचेतनाः
पशुत्वेऽपि नरायन्ते सम्यक्त्वव्यक्तचेतनाः

अर्थात् जिनका ज्ञान मिथ्या है वे मनुष्य होने पर भी पशु हैं और जिनका सफल ज्ञान है वे पशु होने पर भी मनुष्य हैं। 'ज्ञानेन हीना पशभिः समानाः' यह नीति वाक्य जगत प्रसिद्ध है। कहने का आशय यही है कि मनुष्य को अपने उत्थान और जगत कल्याण के लिये ज्ञान की प्राप्ति की अधिकाधिक आवश्यकता है। केवल मनुष्य ही को क्यों संसार के इतर प्राणी वर्ग के लिये भी ज्ञान से अधिक और कोई उपकारी वस्तु नहीं है। " नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते " यह श्रुत वाक्य कितना मनोहर है। धर्माचार्यों ने लिखा है कि 'ऋते ज्ञानात् न मुक्तिः' अर्थात् ज्ञान के बिना दुःखों से छुटकारा नहीं मिल सकता। इस लिये जो दुःखों से उन्मुक्त होकर सुखी बनना चाहे उसको अवश्य ही ज्ञानार्जन करना चाहिये इन पंक्तियों का उद्देश्य स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ लिखने का है।

पुरुष वर्ग सदा से स्त्रीशिक्षा के लिये उदासीन चला आरहा है। ज्ञान जैसी पवित्र वस्तु की प्राप्ति में भी पुरुषों ने स्त्री जाति की उन्नति में जो बाधायें डाली हैं उन्हें सुनकर हंसी आये बिना नहीं रहती। यहां उनका वर्णन करना इस लेख का ध्येय नहीं है। हमारे धर्माचार्यों ने बतलाया है कि नारी और नर दोनों ही के लिये ज्ञान अत्यंत उपयोगी वस्तु है। तो भी कुछ शताब्दियों पहले से पुरुषों के द्वारा इस प्रकार के विचारों का प्रसार किया गया कि स्त्रियों को पढ़ने का अधिकार नहीं है। " स्त्रीशूद्रौ नाधीयातां " इत्यादि वेद वाक्य भी स्त्रियों की ज्ञानोन्नति में बहुत बाधक हुए, किन्तु नर वर्ग के इस स्वार्थ का कटुक-फल न केवल स्त्री जाति को ही मिला अपितु, पुरुष जाति भी इसके कुफल से वञ्चित नहीं रही। स्त्री और पुरुष के सुन्दर सम्मेलन से मनुष्य का ऐहिक-जीवन पवित्र, शान्त और आनन्द मय बन जाता है। पर ऐसा सम्मेलन तो जब तक दोनों में ज्ञान का प्रकाश नहीं होता तब तक कैसे हो सकता है। ज्ञान का सजातीय ज्ञान है इस लिये वह विजातीय अज्ञान से मेल कभी न खायगा। जहाँ स्त्री और पुरुष दोनों शिक्षित और विवेकी होते हैं वहाँ का सुख

अलौकिक, स्वर्गीय सुखों से कम नहीं है। भारत के प्राचीन महर्षियों ने इस वास्तविक सत्य को समझा था तभी तो सीता, द्रौपदी, अंजना, मनोरमा जैसी महा सतियों ने उत्पन्न होकर भारत के ऊंचे मस्तक को और भी उन्नत बनाया था।

जगतवन्दनीय भगवान आदि तीर्थंकर ने युगके प्रारंभ में सब से पहले अपनी दोनों कन्याओं को विद्यारंभ कराकर स्त्री शिक्षा के प्रारंभ का श्रीगणेश किया था। शिष्य बनाने का स्थान सर्व प्रथम पुरुषों को नहीं किंतु स्त्रियों को मिला था। भगवान आदिनाथ ने समझा था कि सारी उन्नति का मूल स्त्री-शिक्षा ही है।

वर्तमान की कन्यायें भविष्य की मातायें होती हैं। राष्ट्र का संचालन करने वाले विद्वान वीर और महात्माओं की भी जननियां होती हैं। यदि उन में ज्ञान का दिव्य प्रकाश न होगा तो उनकी संतति में भी वह कहां से आवेगा विदुषी माताएं विद्वान संतान और मूर्ख जननी मूर्ख संतति पैदा करती रहती हैं। इसके अतिरिक्त कौटम्बिक जीवन को पूर्ण और आनन्दमय बनाने के लिये नारी शिक्षा की जितनी आवश्यकता है उतनी अन्य और किसी की नहीं। भगवान आदीश्वर के इस दिव्य और लोकेतर संकेत का उद्देश्य जो लोग नहीं समझते वे ही स्त्री-शिक्षा का विरोध करते हैं। स्त्री जाति की अशिक्षा के कारण जो हमारी समाज का अधःपतन हुआ है उसका सबसे अधिक उत्तर दायित्व उन लोगों पर है जो स्त्री शिक्षा का प्रकट या अप्रकट विरोध करते हैं।

हमारे बहुत से भले विचार तब तक कार्य रूप में परिणत नहीं किये जासकते जब तक कि पुरुष की निकट सहयोगिनी स्त्री का सहयोग उन्हें प्राप्त नहीं हो। हमारी विफलता का कारण भी यही है कि उन्नति के विशाल मार्ग में तथा इतर आवश्यक प्रगति में हमारा आधा हिस्सा कुछ भी सहायता नहीं दे सकता। यदि हम उसको योग्य बनाते तो उसके द्वारा हमें कितनी सहायता प्राप्त होती। पुरुष स्त्रियों को अशिक्षित रखकर अपने ऐहिक जीवन को अधि-काधिक संकटों में डाल देते हैं इसके अनेकों दृष्टांत हम अपने जीवन में पाते रहते हैं। दुःख है कि फिर भी हमारी आंखें नहीं खुलतीं। हम ऐसे कई कुटुम्बों को जानते हैं जहाँ स्त्रियों को अशिक्षा के कारण घर मेंप्रति समय अशान्ति और क्लेशों का नग्न ताण्डव होता रहता है।

स्त्री घरकी शासिका होती है। घर ही उसका राज्य है। पर तबतक शासन करने की क्षमता प्राप्त नहीं होती जब तक कि उसको सुयोग्य न बनाया जाय। इस समय पुरुष वर्ग की बहुतसी विपत्तियों का कारण यह भी है कि आर्थिक प्रश्न हल करने के सिवाय घरका अन्यान्य प्रबन्ध भी उन्हें ही करना पड़ता है। दोनों का अलग २ विभाजित कार्य जब एक ही को करना पड़ता है तब उसकी विपत्तियों का बढ़ जाना स्वाभाविक है। अगर पुरुषों के जिम्मे केवल आर्थिक प्रश्न को हल करना ही रहता तो उनकी अधिकाँश विपत्तियें निःसन्देह कम होजातीं हमारे घरों में जो शक्ति से अधिक व्यय होजाता है इसका प्रधान कारण भी अशिक्षिता स्त्रियें ही हैं। किसी भी अवसर पर वे प्रचलित रीति रिवाज के अनुसार अधिकाधिक व्यय करने की सलाह ही नहीं देतीं किन्तु जबर्दस्त आग्रह करने लगती हैं। यदि हम उनके इस अनुचित आग्रह को नहीं मानते तो हमारा घर नरक कुण्ड के समान कलह का भीषण क्षेत्र बन

जाता है। उनको कितना ही क्यों न समझाया जाय वे कभी न मानेंगीं। अशिक्षा के कारण उनके हृदय पर पड़े हुए कुसंस्कारों को हटा देना हमारे लिये तो क्या किन्तु कभी २ बड़े से बड़े विद्वानों के लिये भी असंभव सा होजाता है। ये निरक्षर स्त्रियें कभी इस बात का विचार नहीं करतीं कि हमारे इन अनुचित दुराग्रहों का भविष्य में क्या फल होगा? चाहे व्यर्थ और शक्ति से अधिक व्यय के कारण हमारा घर नीलाम भी क्यों न होजाए, उनमें तो कभी २ सहानुभूति तक भी नहीं होती। उन्हें तो केवल वस्त्र, भोजन, गहने और मौज उड़ाने की चिन्ता रहती है। अन्यान्य सारी चिन्ताओं का भार इस बेचारे विवेक-हीन निर्बल भारतीय गृहस्थ पर पड़ता है।

होना भी ऐसा ही चाहिए क्योंकि "हाथ कमाये करमड़े दई न दीजे दोष"। जब हम जान बूझ कर उन्हें अशिक्षित और अयोग्य रखते हैं तो हमारे इस अज्ञान और स्वार्थ का कुफल चखने के लिये भी हमें ही तैयार रहना चाहिये जिस दिन पुरुष अपनी गलती सर्वांशों में समझ कर सुधार लेंगे उसी दिन उनका गृहस्थ जीवन आनन्द शान्ति और संतोष का जीवन बन जायगा।

प्राचीन भारतीय गृहस्थजीवन और वतमान जीवन में बहुत बड़ा अन्तर है। इसका कारण है पुरुष और स्त्रियों में ज्ञान, आचरण और कर्तव्य के संबन्ध की बहुत अधिक और काल्पनिक विषमता। प्राचीन काल में इस तरह की अनुचित विषमता न थी। जब पौराणिककालीन स्त्रियों की जीवन घटनाएें पढ़ते हैं तो हमें स्पष्ट मालूम हो जाता है कि वे भी पुरुषों के समान ही विदुषी, सच्चरित्रा और कर्तव्य शीला थीं। इस समय जिन कर्तव्यों को हम प्रधान रूप से पुरुषों के ही मान रहे हैं उन्हें स्त्रियाँ भी आश्चर्यप्रद सफलता के साथ करती थीं। महाराणी केकई आदि का दृष्टान्त भी हमारे इस वक्तव्य का समर्थन करता है। हम लोग चुपचाप पुरुषों की अनुचित आज्ञाओं को सहलेना स्त्रियों का भूषण ही नहीं अपितु जीवन का उद्देश्य समझते हैं याद पड़ता है कि मुझे एक बार एक ब्राह्मण पण्डित ने कहा था कि स्त्री का कर्तव्य पति की हर प्रकार की आज्ञाओं को मान लेना ही है उनके औचित्य अनौचित्य के खयाल करने की आवश्यकता नहीं। यहां तक कि यदि स्त्री को पति परपुरुष के यहां जाने के लिये भी कहदे तो उसे जाना चाहिये। उक्त पण्डित जी ने अपनी बात का समर्थन करने के लिये एक श्लोक भी बोला था। उनका कहना था कि यह श्लोक स्मृतियों का है। मैंने कहा यह श्लोक मुझे लिखवा दीजिये, पर पंडित जी ने ऐसा करने से न मालूम क्यों इन्कार कर दिया नहीं तो मैं उस श्लोक को यहाँ पर लिख देता। यह उस समय की घटना है जब मैं एक बार ट्रेन में जयपुर से नयेनगर जा रहा था। मैं नहीं कह सकता ऐसी बातें स्मृतियों में लिखी हुई हैं या नहीं।

किन्तु उक्त पंडित जी के कथनानुसार यदि वह श्लोक किसी स्मृति का है तबतो निःसन्देह कहना पड़ेगा कि पुरुषों ने स्त्रियों पर अत्याचार करने की सीमा का भी उल्लंघन कर दिया। "पतिरेव गुरुः स्त्रीणाँ" इत्यादि वाक्य भी पुरुषों ने ही अपने स्वार्थ साधनार्थ गढे हैं। अन्यथा गुरुत्ता तो ज्ञानसे आता है न कि लिङ्ग से। "गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं नच वयः" अर्थात् गुण ही गुरुता और पूज्यता के कारण हैं। लिंग और वय में क्या रक्खा है। क्या

एक शिक्षित स्त्री मूर्ख पति की नेता नहीं बन सकती ? यह तो बड़ी विचित्र बात होगी कि निरक्षर पति भी विदुषी स्त्रियों का गुरु कहलावे। पुरुष के इस मिथ्या अहंकार ने कि मैं गुरु और मालिक हूँ स्त्रियों पर अत्याचार करने के लिये उत्साहित किया है। पर फिर अब जमाना आगया है कि उसको अपने हृदय की ऐसी कलुषता को धोकर जीवन यज्ञ में स्त्रियोंके साथ समान आहुति देनी पड़ेगी। स्त्रीको पैर की जूती समझना उचित नहीं। अबतो उसको मालकिन कहने का समय आगया है। संस्कृत में पति और पत्नी के भिन्न २ अर्थ नहीं होते। किन्तु पति शब्दसे स्त्री प्रत्यय करनेसे पत्नी शब्द बनता है जिसका अर्थ पतित्व विशिष्ट होता है अगर भाषाओं में लिङ्ग भेद न होता तो जिस प्रकार हम पुरुषों को पति कह सकते थे उसी प्रकार स्त्रियों को भी पति कह सकते थे। किन्तु मानव जाति में रहने वाली मानसिक निर्बलता शब्दों में भी आई और उसी के फल स्वरूप एक ही अर्थ में स्त्री और पुरुष के लिये विभिन्न शब्दों की रचना की गई। मेरे लिखने का तात्पर्य यही है कि पुरुष स्त्री का मालिक है और स्त्री पुरुष की। जैसे वह स्त्री से अच्छा बर्ताव चाहता है वैसे उसका भी कर्तव्य है वह उसे इसी प्रकार का बर्ताव करे। यदि हम सीता, द्रौपदी अञ्जना, मनोरमा, चन्दनबाला आदि पवित्र सती शिरोमणी स्त्रियों को अब भी देखना चाहते हैं और वीर विद्वान एवं सुयोग्य संतान पैदा करना चाहते हैं तो हमारा कर्तव्य है कि हम उन्हें वीर, शिक्षित और सुयोग्य बनाने की अधिकाधिक चेष्टा करें।

जिस प्रकार स्त्री समाज को शिक्षिता बनाने की अत्यंत आवश्यकता है उसी प्रकार उन्हें बलवती भी बनाने की जरूरत है। यदि वे बलवती न होंगीं तो कभी अपने धर्म को आधुनिक समय में रखने में समर्थ न हो सकेंगी। और न बलवान संतान पैदा कर सकेंगी।

कुछ दिनों पहले मैंने एक समाचार पत्र में एक घटना पढ़ी थी जिसका भाव यह था कि एक जैन महिला प्रातःकाल श्री जिनेन्द्र देव के दर्शनार्थ मन्दिर जी को आरही थी। रास्ते में एकान्त समझ कर अचानक एक गुण्डे ने उस पर बलात्कार करने की चेष्टा की। किन्तु उस वीर नारी ने उस दुष्ट के हाथों को इतने जोरसे पकड़ लिया कि वह दुष्ट गुण्डा बहुत कोशिश करने पर भी उन्हें छुड़ाने में असफल रहा। इतने में हुल्ला मचाने से बहुत लोग इकट्ठे हो गये और उसको गिरफ्तार करवा दिया सोचिये अगर वह स्त्री बलवती और साहसवाली न होती तो क्या वह अपनी रक्षा कर सकती। इसी तरह की घटनायें हमें यह शिक्षा देती हैं कि हमें स्त्रियों को शिक्षिता और बलवती बनाना चाहिये। किन्तु बड़े दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि हमारे कतिपय स्वार्थ लोलुपी स्त्री शिक्षा के विरोधी बन रहे हैं, और इसके विरुद्ध व्यर्थ का ही हुल्ला मचाया करते हैं। वे स्त्रियों को शिक्षिता बनाना नहीं चाहते। बलवान बनाने के विषय में वे कहते हैं कि बलवान बनकर क्या वह अपने पति से लड़ेंगी अथवा उन्हें बलवान बनकर क्या किसी से लड़ना है। वाहरे! स्वार्थियो खूब जबाब है।

महारानी केकयी, झांसी की रानी आदि की कथाओंसे हमें यही शिक्षा मिलती है कि स्त्री शिक्षिता, सच्चरित्रा और बलवती बनाई जाये। कहते हैं कि महारानी केकयी ने अपने पूज्य पति महाराज दशरथ को रण में जो आश्चर्यकारी सहायता दी थी,। क्या

यह शिक्षा का चमत्कार नहीं है। जब उनके रथ का पहिया टूट गया था तब महारानी केकई ने उनके रथको अपने कंधे पर एक तरफ से डाटा था। यहतो निश्चित ही था यदि महारानी केकई युद्ध विद्या में प्रवीण न होती तो महाराज दशरथ की कभी युद्धमें विजय न होती।

प्राचीन समय में स्त्रियों का बहुत सन्मान था और वे बहुत आदरणीय समझी जाती थीं। कहा भी है "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः" अर्थात्— जहाँ स्त्रियों का आदर सत्कार होता है वहाँ देव निवास करते हैं इत्यादि वाक्यों से भी प्राचीन समय में भी स्त्रियों के आदर सत्कार की पुष्टि होती है। स्त्रियं पुरुष की अर्द्धाङ्गिनी, सहचारिणी, सहधर्मिणी मानी गई हैं जिससे उनके अधिकारों की कल्पना हो सकती है। आज हम स्त्रियों को अपनी पैरों की जूती से भी गई समझते हैं यह हमारी असभ्य मूर्खता है। हमने उसे अपने आदरणीय और पवित्र स्थानसे गिरा कर केवल पुरुषों की दासी बना डाला है। हमें अधिकार है कि मात्र हम इन पर मनमाना अत्याचार करें इन अत्याचारों के खिलाफ स्त्रियों को ज़रा भी कहने का कुछ भी अधिकार नहीं; सिवाय इसके कि वह इन अत्याचारों को चुपचाप सहन करलें। इसका मतलब यह न समझें कि उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता देदेनी चाहिये, नहीं, उन्हें इतनी स्वतन्त्रता भी न देनी चाहिये जिससे हानि होने की संभावना हो, किन्तु यह अवश्य है कि उन पर मनमाने अत्याचार करना पाप और अन्याय है।

सं० नोट— लेखक एक नवयुवक हैं अतः उनके शब्दोंमें अदम्य जोश है जो कि कहीं कहींपर कुछ कटुरूप ले गया है। आदर्श गृहस्थाश्रमके लिये आदर्श पत्नी की आवश्यकता है और वह तभी बन सकती है जब कि उसने शिक्षा प्राप्तकी हो इस कारण प्रत्येक कन्या को सुशिक्षित बनाना आवश्यक है लेखकका यही अभिप्राय है।

आर्य्य समाज के प्रधान महोदय के पत्र का उत्तर

तारीख १४-६-३४ को आपका पत्र आया था कई कारणों से उसका शीघ्र उत्तर न दिया जासका इसका मुझे अधिक दुःख है। पत्र के अवलोकन से ज्ञात होता है कि आप अपने विचारों को ही वेद समझते हैं इसी कारण आप वैदिक विधि वा वेद के असली आशय को स्वीकार करना नहीं चाहते। स्वामी दयानन्द जी की सत्यार्थ प्रकाश में शिक्षा है कि हम करना व छोड़ना वेदानुकूल ही मानते हैं परन्तु वास्तव में विचार किया जाय तो वह बात केवल लोगों को दिखाने के लिये ही है इस लिये शिक्षा स्वयं स्वीकार न होने से स्वामी जी का लेख मिथ्या है।

आपने पत्र में लिखा है कि जो उत्तर मैंने मंत्र—चत्वारिश्रृङ्गा—में दिया है वह उसी देवता वा निरुक्त के अविरुद्ध है—इत्यादि। स्वामी जी ने प्रथम मंत्रार्थ तो देवता वा निरुक्त के अनुसार किया है परन्तु द्वितीय मंत्रार्थ देवता वा निरुक्त के विरुद्ध किया है क्योंकि स्वामी जी ने उक्त मंत्र का व्याकरण देवता न लिखकर के यज्ञ पुरुष ही देवता लिखा है और कात्यायनसर्वानुक्रमणिका सूत्र में भी यज्ञ पुरुष देवता ही लिखा है जैसा कि चत्वारिश्रृङ्गा यज्ञ पुरुष देवत्य ऋषभ मंत्र—२—२८। इस सूत्रानुसार ऋषभ मंत्र का यज्ञ पुरुष देवता सिद्ध होता है फिर समझ में नहीं आता कि मंत्र का व्याकरणी देवता न होने पर भी स्वामी जीने जो द्वितीय अर्थ व्याकरण परक क्यों किया है। वह निराधार होने से मिथ्या है।

स्वामी जीने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ ३६६ में लिखा है कि जिस २ मंत्रका जो २ अर्थ होता है वही उसका देवता कहाता है—सो यह इसलिये कि जिस से मंत्रों को देखकर उनके अभिप्रायार्थ का यथार्थ ज्ञान हो जाय—इत्यादि। इस प्रमाण में स्वामी जी ने मंत्र का अर्थ ही देवता बतलाया है। और मंत्र के साथ में व्याकरणी देवता लिखा नहीं फिर बिना देवता के स्वामी जी ने व्याकरण परक अर्थ निराधार क्यों किया। यदि आप देवता के विरुद्ध भी अर्थ करेंगे अथवा देवता शब्दके नानार्थ करेंगे तो मंत्र के साथ देवता लिखने का नियम वा स्वामी जी का वेदार्थ सर्वथा मिथ्या सिद्ध हो जायगा इस लिये मंत्र का द्वितीय अर्थ देवता वा निरुक्त के विरुद्ध होने से मिथ्या है।

आगे लिखा है कि—निरुक्त में युक्ति पूर्ण भिन्न अर्थ के लिये मना नहीं है अन्यथा निरुक्ताचार्य्य एक अर्थ को भिन्न २ शब्दों में प्रदर्शित करने का कष्ट नहीं लेते—इत्यादि। वेद मंत्रों में सारे ही शब्द यौगिक हैं ऐसा नियम नहीं है जैसा कि यजुर्वेद अध्याय २५ मंत्र १९ में इन्द्र का वृद्धश्रवाः और पूषा का विश्ववेदा विशेषण लिखा है। यदि सारे ही शब्द यौगिक मान लिये जाँय तो एक दूसरे के विशेषण नहीं हो सकते हैं और यौगिक शब्दों का निर्वचन भी प्रकरणादि वा देवता के अनुसार ही करना चाहिये तथा अर्थ भी श्रुति वा सूत्र के विरुद्ध न हो। यदि आप अपनी इच्छानुसार ही नानार्थ का सहारा लेकर अर्थ करेंगे तो वह अर्थ श्रुति वा सूत्र के विरुद्ध होने से कदापि मान्य न होगा इसलिये नानार्थ का सहारा लेकर प्रकरणादि के विरुद्ध अर्थ करना मिथ्या है।

फिर लिखा है कि आपको कोरा हठ नहीं करना

चाहिये इत्यादि। महाशय जी कोरा हठ आप लोग ही करते हैं जो वेद विरुद्ध लेखनी चलाते हैं और वेदानुयायी होने का दम भरते हैं। आपने अभीतक एक भी बात वेदानुकूल सिद्ध करके नहीं दिखलाई और स्वामी दयानन्द जी का वेदार्थ तो सारा ही साध्य कोटि में गोते लगा रहा है। अब आप ही विचारें कि कोरा हठ आप करते हैं या हम?

आगे लिखा है कि— पञ्चाध्यायी के आधार पर ही जैन मात्र को ज्ञान की मूर्छित अवस्था में मानता हूँ इत्यादि। कर्मशत्रुओं को जीतने वाले को 'जिन' कहते हैं और जिनके अनुयायी को जैन कहते हैं और उन्हीं अरिष्टनेमि जिन का वर्णन यजुर्वेद अध्याय २७ मंत्र १६ में उपस्थित है। इसलिये वेदकी आज्ञानुसार जैन होने से आप भी मूर्छित अवस्था से बच नहीं सकते। जैनमात्र को मूर्छित बतलाने से तो साबित होता है कि आपको लौकिक ज्ञान का भी भान नहीं है क्योंकि आर्यसमाज में कोई सभापति, कोई मन्त्री, कोई सभासद, कोई पत्र सम्पादक अथवा कोई लेखक या क्लर्क है। क्या इन सब में ज्ञान की शक्ति बराबर है? यदि बराबर नहीं तो आपका जैन मात्र को मूर्छित शब्द का प्रयोग करना निराधार है।

स्वामी दयानन्द जी की मूर्छित अवस्था का आप को ध्यान भी नहीं है। देखिये सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ २०१ में लिखा है कि ईश्वर को त्रिकाल दर्शी कहना मूर्खता का काम है। फिर इसके विरुद्ध ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ ७६ में लिखा है कि त्रिकालदर्शी ईश्वरने भूत भविष्यत वर्तमान तीनों कालों के व्यवहारों को यथावत जानकर कहा है। इस प्रकार तद्विरुद्ध वचन होने से दोनों ही मिथ्या सिद्ध होजाते हैं— कहिये स्वामी दयानन्द जी के उक्त दोनों ही लेखों से मूर्छित अवस्था सिद्ध है या नहीं? इसी प्रकार एक नहीं बल्कि अनेक वचन परस्पर विरुद्ध लिखे हैं जिनको हम यथावसर लिखकर दिखलायेंगे।

स्वामी शंकराचार्य जी वेद प्रचार में एक स्तम्भ माने गये हैं परन्तु जैनमत के स्याद्वाद को वे भी नहीं समझ सके। और वेदों के विरुद्ध संशयवाद कहकर ही उसका खंडन किया है और लिखा है कि एक वस्तु में शीत उष्ण की भांति दो विरोधी धर्म नहीं रह सकते हैं और जबकि एक वस्तु में दो विरोधी धर्म नहीं रह सकते। तब 'अणोरणीयान् महतोमहीयान् २-२० कठोपनिषद्' इस मान्य श्रुति का क्या अर्थ होगा? इस प्रकार शंकराचार्य जी ने श्रुति के अनुकूल पक्ष होने पर भी जैनधर्म के स्याद्वाद का खण्डन किया है फिर आपका तो कहना क्या? अभी विशेष समझनी बुद्धि की आवश्यकता है आपको जरा सोच समझ कर लेखनी चलानी चाहिये।

आगे लिखा है कि व्याकरणों में से आप एक भी उद्धरण नहीं दे सकते जो जैनमत को नास्तिक सिद्ध न करता हो इत्यादि। महाशय जी! वैदिक ऋषियोंने वेदाङ्ग में अष्टाध्यायी को ही स्वीकार किया है अन्य को नहीं। देखिये आर्यमित्र वर्ष ३६ अङ्क २८ पृष्ठ ११ में अष्टाध्यायी का सूत्र वा वृत्ति को इस प्रकार उद्धृत किया है कि—अस्तिनास्तिदिष्टंमतिः ४-४-७०। वृत्तिकार इस सूत्र का स्पष्टी करण यों करते हैं कि तदस्येव अस्तिपरलोकइत्येवमतिर्यस्य स आस्तिकः। नास्तीतिमतिर्यस्य स नास्तिकः। अर्थात् परलोक को मानने वाला आस्तिक और परलोक को न मानने वाला नास्तिक होता है। इस अष्टाध्यायी के सूत्र वा वृत्तिकार के स्पष्टीकरण से परलोक अर्थात् पुण्य-पाप के फल स्वरूप स्वर्ग नरक को स्थानविशेष नहीं माना

इसके लिये सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ ४७२ में इस प्रकार लिखा है कि जैसे अन्य मत में बैकुण्ठ, कैलाश, गो-लोक श्रीपुर आदि पुराणी। चौथे आसमान में ईसाई, सातवें आसमान में मुसलमानों के मत में मुक्ति स्थान लिखे हैं वैसे ही जैनियों की सिद्ध शिला और शिव पुर भी है। क्योंकि जिसको जैनी लोग ऊंचा मानते हैं वही नीचे वाले जोकि हमसे भूगोल के नीचे रहते हैं उनकी अपेक्षा में नीचा है व्यवस्थित पदार्थ कोई नहीं है—इत्यादि। इस लेख में स्वामी जी ने ऊंचा नीचा व्यवस्थित पदार्थ कोई नहीं माना इस लिये स्वर्ग वा नरक को स्थान विशेष न मानने से स्वामी दयानन्द वा उनके अनुयायी नास्तिक अवश्य सिद्ध होते हैं। फिर लिखा है कि व्याकरण के इतने प्रमाण मनुस्मृति के अध्याय २ श्लोक ११ की बराबरी नहीं कर सकते हैं—देखिये वह श्लोक इस प्रकार है—

योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः
ससाधु भिर्वहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः।
मनु २—११

अर्थः—जो द्विज कुतर्कादिकों से इनको निन्दा करे वह साधुओं से निकाल देने योग्य है क्योंकि वह वेद निन्दक नास्तिक है—इत्यादि। जो सन्यासी वेदों को ईश्वर कृत होने से सूर्य्य की भांति स्वतः प्रमाण मानता है तो वह वेद के असली आशय को स्वीकार क्यों नहीं करता और कुतर्कादि द्वारा उसका खण्डन क्यों करता है। और वेदादि ग्रन्थों के विरुद्ध मंत्रों के देवता लिखकर विपरीत आशय क्यों प्रकट करता है इस लिये वेदों को मानता हुआ भी जो वेदों के असली आशय को न माने वास्तव में उस ही वेद विरोधी वा कुतर्की को नास्तिक कहना चाहिये जैसा कि स्वामी दयानन्द जी ने अपने वेद भाष्य में किया है।

भक्ष्य निर्णय भास्कर पृष्ठ ४९ में लिखा है कि—वेदों की प्रत्यक्ष निन्दा का ही नाम—नास्तिकता नहीं है किन्तु वेद पाठ का परिवर्तन—बदल लेना वा दुराग्रह से विपरीत अर्थ करना वा वेदवाक्यों के सत्य अर्थ को दुराग्रह कर नाहीं मानना इत्यादि यही नास्तिकता के लक्षण हैं क्योंकि यह सब लक्षण वेदों में अश्रद्धा कर ही होते हैं। 'देखिये स्वस्तिन इन्द्रा—' इस मंत्र का 'विश्वे देवा देवता' अनुक्रमणिका सूत्र के अनुसार सिद्ध होता है परन्तु इसी मंत्र का अर्थ स्वामी जी ने 'ईश्वरो देवता' के अनुसार किया है जो कि देवता के विरुद्ध होने से मिथ्या है इसी प्रकार वेदार्थ विषय में स्वामी जी ने बड़ा अनर्थ किया है इस लिये स्वामी जी वेद विरोधी वा निन्दक होने से नास्तिक सिद्ध होते हैं।

जैनी लोग ईश्वर को जगत का कर्ता नहीं मानते इस लिये आप उनको नास्तिक कहते हैं परन्तु यह कहना आपका मिथ्या है क्योंकि जो सृष्टि का संहार करेगा उसमें प्राणों का वियोग अवश्य होगा और जहां प्राणों का वियोग होगा वहां हिंसा का होना अनिवार्य्य हो जाता है इस लिये हिंसा कार्य्य होने से वह ईश्वर कदापि नहीं हो सकता। और ईश्वर को सृष्टि का कर्ता मानना भी मिथ्या है क्योंकि आप उसको निमित्त कारण बतलाते हैं और 'तस्मादश्वा अजायन्त—'वेद उसे उपादान कारण बतलाता है इस लिये वह विषय अभी साध्य कोटि में है और इसे अभी सिद्ध करना भी कठिन कार्य्य है इस लिये जगतकर्ता न मानने से जैनियों को नास्तिक बतलाना सर्वथा भूल है जरा कुछ तो समझ कर लिखना चाहिये।

आगे लिखा है कि—आपके अरिष्टनेमिः को वेद स्वीकार नहीं करता और मार्कण्डेय पुराण खण्डन करता है—इत्यादि। महाशय जी! वेद तो अरिष्ट नेमि को स्वीकार करते हैं परन्तु स्वामी जी स्वीकार नहीं करते क्योंकि उन्हों ने मंत्र का कल्पित 'ईश्वरो देवता' लिखकर अर्थ बदल दिया है। हमने इसी मंत्र का सर्वानुक्रमणिका के अनुसार 'विश्वे देवा देवता' लिख कर जो वेदार्थ किया था आपने उसको सत्य मानकर छूआ तक नहीं फिर आप कैसे कह सकते हैं कि वेद अरिष्ट नेमि को स्वीकार नहीं करते इसलिये मंत्र का 'विश्वे देवा देवता' होने से वेद अरिष्ट नेमि को सर्वथा स्वीकार करते हैं उसमें रंच मात्र भी सन्देह नहीं है। आपने मार्कण्डेय पुराण द्वारा अरिष्ट नेमिः का जो खण्डन किया है सो मिथ्या है जिन पुराणों को आप प्रमाण नहीं मानते और स्वामी जी उनका खण्डन करते हैं तो क्या आप स्वामी जी के लेखों को नहीं मानते या आप उनका खण्डन करते हैं? यदि आप खण्डन नहीं स्वीकार करते तो आपने मार्कण्डेय पुराण का प्रमाण लिखकर अरिष्ट नेमि का खंडन क्यों किया और प्रमाण मानते हैं तो आप इसका क्या उत्तर देते हैं—देखिये ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका पृष्ठ ८२ में स्वामी जी लिखते हैं कि-'ब्राह्मणग्रन्थानामेव पुराणेतिहासादि नामास्ति न ब्रह्मवैवर्त श्रीमद्भागवतादीनांचेति'। ब्राह्मण ग्रन्थों का ही इतिहासादि नाम जानना चाहिये, श्रीमद्भागवतादि का नहीं। इस प्रमाण द्वारा स्वामी जी ब्राह्मण ग्रंथों को ही पुराण मानते हैं अन्य को नहीं। तब आपने स्वामी जी की मान्यता के विरुद्ध मारर्कण्डेय पुराण द्वारा अरिष्टनेमि का खंडन क्यों किया। यदि आप में कुछ भी हिम्मत है तो ब्राह्मण ग्रन्थों द्वारा अरिष्टनेमि का खण्डन करके दिखलावें। अन्यथा पुराण प्रमाण मानने से आपका आर्य सिद्धान्त सर्वथा ही रसातल को चला जायगा। कहिये अब आपको पुराण स्वीकार हैं या ब्राह्मणग्रन्थ।

आपने अध्याय १ सूत्र पाँचवें की वृत्ति में नाम करण संस्कार समझ कर अरिष्टनेमि पर आक्षेप किया है सो मिथ्या है क्योंकि उक्त सूत्र में नामकरण संस्कार का वर्णन नहीं है किन्तु निक्षेपों का है इस लिये नामकरण संस्कार का वर्णन न होने से आपका आक्षेप मिथ्या है। आपको जैन शास्त्रों के जानने की योग्यता तो है नहीं और खन्डन की हविश में बिना समझे ही प्रमाण लिख देते हैं। इसके लिये जैन विद्वानों की कुछ दिनों सेवा करो और कुछ लाभ उठाओ तब ही कुछ लिखने का साहस करो अन्यथा व्यर्थ काले कागज करने से क्या लाभ?

आगे आपने नम्बर ६ तक अरिष्ट नेमि पर निराधार आक्षेप किये हैं इनको आप ब्राह्मण ग्रन्थों द्वारा सिद्ध करके दिखलावें। यदि नहीं तो आपके आक्षेप निराधार और मिथ्या हैं। विशेष आगामी।

पंडित भगवद्दत्त जी ने जो विचार अपनी पुस्तकों में प्रकाशित किये हैं वही हमने आपके पास भेज दिये थे। आपके समक्ष वे कुछ भी कहें इससे हमें क्या प्रयोजन? मौखिक कहने से लिखा अधिक प्रमाण माना जाता है-यह लोक प्रसिद्ध बात है। और जबकि हम स्वयं ही वेदों के विषय में लिखने को तैयार हैं तब ऐसी पुस्तकों से हमें लाभ क्या?

अन्तिम आपको ध्यान रहे कि अष्टाध्यायी के प्रमाणानुसार परलोक के न मानने वाले को ही नास्तिक कहा है परन्तु जैनी परलोकादि को मानते हैं। इसलिये व्याकरण के सूत्रानुसार जैनी नास्तिक

सिद्ध नहीं हो सकते। हां स्वामी दयानन्द जी अवश्य नास्तिक सिद्ध होते हैं क्योंकि ईश्वर को सृष्टिकर्ता मानते हुये भी उसके कार्य स्वर्ग नरक को स्थान विशेष न मानना, इससे विशेष नास्तिकता और क्या हो सकती है। वेदों के विरुद्ध अर्थ कर विपरीत आशय प्रकट करना भी नास्तिकता को सिद्ध करता है इसलिये ईश्वर रचित स्वर्ग नरक को स्थान विशेष न मानना या वेद के विरुद्ध अर्थ कर विपरीत आशय प्रकट करना ये दोनों ही नास्तिकता के प्रसिद्ध लक्षण हैं और मार्कण्डेय पुराण द्वारा अरिष्टनेमि पर जो ऐतिहासिक दृष्टि से आक्षेप किये थे वह स्वामी जी के लेख के विरुद्ध होने से मिथ्या हैं। अब आप ब्राह्मण ग्रंथों द्वारा सिद्ध करके दिखलावेंगे तब उसका भी उत्तर दे दिया जायगा।

वेद विद्या विशारद-मंगलसेन जैन
अम्बाला छावनी

अंगुष्ठविज्ञान

[गतांक से आगे]

इच्छा और विचार

पहला पौरुवा बड़ा और दूसरा छोटा हो तो ऐसे अंगूठे वाला दलीलें पैदा नहीं कर सकता, उसे बहस के लिये मसाला नहीं सूझता। वह बहस करना पसंद भी नहीं करता, और साथ ही उसमें यह बात भी होती है कि वह दूसरों की दलीलोंको सुनने में उपयोग नहीं लगाता। उस की इच्छा शक्ति प्रबल होती है और वह सदा विचार शक्ति को दबाती रहती है। यदि दिमाग़ की रेखा भी इसी गुण के अनुकूल होगी, तो यह बात और भी अधिक बढ़ जायगी, क्योंकि दिमाग़ की लकीर और अंगूठे का बड़ा संबंध है। यदि दूसरा पौरुवा बड़ा तथा उत्तम हो और पहला छोटा हो तो विचार शक्ति प्रबल होती है और इच्छा शक्ति निर्बल। उसकी विचार शक्ति सदा हिम्मत को दबाती रहती है।

जिस मनुष्य या स्त्री का अंगूठा उत्तम और सांगोपाङ्ग है वह न बहुत बड़ा और न बहुत करड़ा है तथा न बहुत छोटा और न बहुत लचकीला है। ऐसे स्त्री अथवा पुरुष की कोई साधारणतया अच्छी होती है।

देश-जाति से प्रेम करने वाला अंगूठा

जिस मनुष्य का पहला पौरुवा मुलायम और पीछे को मुड़ने वाला हो तो वह जाति और देश से प्रेमकरने वाला होता है। किन्तु मुड़ने में और कोमलता में अति नहीं होना चाहिये। साथही यदि शुक्र का सिखर भी उत्तम हो तो उसमें सहानुभूति की मात्रा भी अधिक होगी। इसमें दिल की रेखा का होना भी जरूरी है क्योंकि दिल में प्रेम होना चाहिये देश और जाति से प्रेम करने वाला अंगूठा जिस के हाथ में होगा वह नये देश और जाति में

दूध पानी की तरह मिल जायगा। वह नये काम में भी जल्दी लग जायगा। नई सोसाइटी में तत्काल मिलजाना उसके लिये साधारण बातहोगी क्योंकि उसकी इच्छा शक्ति उसी परिस्थितिमें से उसे मार्ग दिखाती हुई चली जायगी, चाहे आगे चल कर नतीजा प्रतिकूल ही हो।

परिवर्तन शील अंगूठा

मुलायम अंगूठे वाला परिवर्तन शील होता है। जरासी परिस्थिति के बदलने सेही अपने पूर्व निश्चित विचारों को बदल देता है। प्रभावशाली मनुष्यों के प्रभाव में आ कर भी वह अपने विचारों को बदल डालता है। किन्तु ठोस अंगूठे वाला इससे विपरीत होता है। इसका प्रेम ठोस और स्थिर होता है इस विचार में गरडिल तथा मस्तक रेखा का देखना भी जरूरी होता है।

स्वतंत्र विचार वाले का अंगूठा

यदि हाथ का पंजा चौड़ा किया जावे और अंगूठे तथा तर्जनी अंगुली के बीच गहरा (आधिक) फैलाव हो तो वह मनुष्य स्वतंत्र विचार वाला होता है। पुराने रस्मो रिवाज को दूसरी सूरत में बदलने या मिटाने के भाव रखता है। उसकी निजी राय होती है। अगर दिमाग की रेखा अच्छी हो तो वह अच्छी सूझवाला भी होगा। इसके प्रतिकूल यदि अंगूठा तर्जनी की ओर झुक कर दोनों के बीच में फैलाव कम करदे तो समझो स्वतंत्र विचार की मात्रा उसमें कम हो गी। पुराने रीति रिवाजों को चाहे वे हानि करही क्यों न हों बदलने की उसमें हिम्मत न होगी अथवा बदलने की इच्छा रखता हुआ भी उन्हीं में लगा रहना पसंद करेगा।

आधार में ऊंचा अंगूठा

ऐसा अंगूठा अच्छा नहीं होता। अंगूठे का आधार तर्जनी की सीध में होना उत्तम है इससे ऊंचा होना (Too High) बुरा है। ऐसा अंगूठा बुद्धिहीन खपदिमाग (Idiot) का होता है। ऐसे अंगूठे वाला रुपये पैसे के मामले में कमीना होता है। सोसाइटी से उसका मेल नहीं खाता। वह स्वार्थी होता है।इसके लिये हाथके अन्य हिस्सों का देखना भी जरूरी है।

नज़ाकत (Fine Art) की तालीम

पतले (Stender) अंगूठे वाले को कविता, चित्रकारी, संगीत आदि फाइन आर्ट की शिक्षा देना उपयोगी है। पर इसके साथ में सूर्य्य रेखा का उत्तम होना तथा मध्यमा अंगुली का ठीक होना और मस्तक रेखा का चन्द्रशिखर की तरफ़ उचित मुड़ाव खाना भी जरूरी है। यदि साथ ही अंगुलियाँ नोकीली (Conical) हों तो और भी अच्छा रहता है।

आधीन रखने की कोशिश मत करो

जिस मनुष्य का अंगूठा करड़ा, दृढ़ और ठोस है, वह किसी के आधीन रहना पसन्द नहीं करता। वह (Ungovernable Person) है। यदि आधीन रखने वाले का अंगूठा कोमल होगा तो उनके आपस में नहीं बनेगी। और बनेगी भी तो वह उससे दबा हुआ रहेगा या वह ठोस अंगूठे वाला किसी वज़ह से दबा हुआ रहेगा। उन में दिल की सफाई के साथ मेल-जोल बना रहना बहुत कठिन है। इसका कारण यह है कि ये दोनों भिन्न भाव के हैं। अगर पति और पत्नी का अंगूठा एक सा न हो तो रात-दिन अनबन रहेगी। सगाई, दोस्ती, शराकत, मुलाजिमत आदि

मेल-जोल के समय अंगूठे का मेल देखना बड़ा जरूरी है।

उत्तम इच्छाशक्ति क्या है ?

उत्तम इच्छा शक्ति (Will Power) वह है जब हम अपने ऊपर काबू रखने या दूसरों पर प्रभाव डालने की शक्ति रखते हों। यह विचार अंगूठे के प्रथम पौरुवे में मिलता है। यदि यह पौरुवा सुन्दर और उचित आकार का यथास्थान होता है तो इच्छा शक्ति उत्तम होती है।

अगम बुद्धि

जिस मनुष्य का दूसरा पौरुआ ठोस और बड़ा होगा, वह काम करने के पहिले खूब सोच विचार करने वाला होगा। और यदि पहिले पोरुवासे मिलान करने में बड़ा हो तो दलीलों में बाल की खाल निकालेगा। दूसरों की दलीलों को सुनने की चेष्टा कम करेगा और दूसरों का विश्वास भी कम करेगा।

दूसरा मोटा पोरुआ

इस प्रकार के अंगूठे वालों में बुद्धि नहीं होती। उनकी बात-चीत में कोई विशेषता नहीं पाई जाती। ऐसे अंगूठे वाले प्रायः जंगली-भील, गोंड संथाली लोग होते हैं।

चतुर अंगूठा

अंगूठा बड़ा हो और साथ ही में अंगुलियाँ सुन्दर नोकीली (Conical) हों, तो वह मनुष्य बात करने में चतुर होगा। उसकी बात-बात में सुन्दरता पाई जावेगी। वह कवि या किसी आर्ट में चतुर होगा। नाटक, उपन्यास आदि पुस्तकों के पढ़ने का शौकीन होगा। बातों से सब को अपनी तरफ़ खींच लेगा, किन्तु प्रेक्टिल नहीं होगा और न अति विद्वान होगा। खेल कूद शौकीनी में अधिक मन लगावेगा उसका ध्येय हर बात में सुन्दरता (Beauty) होगा।

पहिला पौरुआ अति बड़ा जिस मनुष्य का होता है, वह मनुष्य बड़ी हिम्मत वाला, हेकड़, दिलेर, फौज और पुलिस के काम का आदमी होता है। यदि वह पोरुआ आधार में भी कड़ा हो तो ये गुण उसमें और भी अधिक होते हैं।

तरकीब बाज का अंगूठा

दूसरे पौरुवे में यदि कुछ झील हो, यानी दूसरा पोरुवा कुछ मोटा और बीच में पतला हो तो वह मनुष्य तरकीब वाला (Tact ful) होता है, परन्तु तरकीब अपने मतलब की होती है।

अंगूठे का जौ सामुद्रिक विषय की अंग्रेजी पुस्तकों में अंगूठेके जौका वर्णन कहीं भी हमारे देखनेमें नहीं आया किन्तु भारतीय विद्वानों ने अंगूठे के जौ का वर्णन किया है। एक विद्वान कहता है—खुश हाली देता है, अंगूठे का जौ गरचे रंग ढंग उसका चोखा हो अर्थात् जिसके अंगूठे में जौ का चिन्ह होता है वह खुशहाल होता है बशर्तेकि उसका आकार और सूरत अच्छी हो। अगर जौ का चिन्ह मोटा छोटा कमजोर टेढा बाँका अधूरा और खराब हो तो फल अच्छा होगा। खुशहाली का तात्पर्य समझने की आवश्यकता है। कोई मनुष्य धनके कारण खुशहाल तो मालूम होता है परन्तु उसके दिल में खुशहाली नहीं है तो संभव है उसके अंगूठेमें इसका निशान न हो। हमारा अनुभव यह है कि हिम्मत और विचार तथा प्रेम के द्वारा जिस मनुष्य को सच्ची खुशहाली प्राप्त हुई हो उसके यह निशान अवश्य होता है।

तीसरा भाग (Venus Mount)

यह शिखर कहाँ है ? अंगूठे को सब से छोटी अंगुली की तरफ ले जावो और अंगूठे का जितना भाग झुकाव खा जाय वह सारा अंगूठा है । उस में के दो भागों को हम बतला चुके हैं। तीसरा भाग वह उभरा हुआ अंगूठे के नीचे का भाग है जिसके आगे तर्जनी सेघुमाव खाती हुई जीवन रेखा (Life Line) आती है। यह प्रेम का भाग है और अंगूठे में में शामिल किया जाता है। इस भाग में तर्जनी की तरफ का आयु और मस्तक रेखाओं के मिलने वाला स्थान शामिल नहीं किया जाता हैं। यह मङ्गल का स्थान समझा जाता है। इस से मनुष्य का स्वभाव, सहानुभूति, प्रेम, वैर विरोध, काम शक्ति, गाना, बजाना, राग रंग खेल तमाशे, चाल चलन खुदगर्जी (Selfishness) आदि अनेक भाव देखे जाते हैं।

कामी पुरुष का अंगूठा

जिस पुरुष या स्त्री का तीसरा Venus Mount पोरवा बड़ा Over-beveloped और भारी होगा उस पुरुष या स्त्री में विषय भोग की मात्रा अधिक होगी वह दूसरों से प्रेम का अभिलाषी होगा और स्वयं भी दूसरों से प्रेम करेगा। किन्तु इस शिखर का उत्तम होना विषय भोग को सुख रूप बनाता है। नहीं तो भोगउसके नष्ट होनेका कारण होता है। इस सम्बन्ध में हाथ की अन्य रेखा और स्थानों को भी देखना चाहिये। खासकर दिलको रेखा Heart Line तो देखना ही चाहिये।

शुक्रपर खड़ी रेखायें— सब ही स्त्री पुरुषों के हाथोंमें होती हैं और सामुद्रिक विचारोंसे अच्छी नहीं समझी जातीं अंगूठे के नीचे उतरे हुये स्थानवाली खड़ी पड़ी रेखाओं को छोड़ कर बाकी आगेवाली खड़ी रेखा से हमारा मतलब है। इनमें गहरी मोटी रेखा शारीरिक तकलीफ, बीमारीको प्रकट करती है। जो समय पाकर होती है और फिर मिट जाती है। बाकी और रेखाएं उन मनुष्यों को प्रकट करती हैं जो हमारी जिन्दगी के कामों में बाधक रूप खड़े होंगे हमें नुकसान पहुँचायेंगे। इन रेखाओं का जीवन रेखा, भाग्य रेखा, हृदय रेखा, दिमाग रेखा, सूर्यरेखा और विवाह रेखादि से छूना अच्छा नहीं है क्योंकि इनका छूना दुश्मनी या बाधक कारणों की सफलता है और यह बात अवश्य होकर रहती है उदाहरणार्थ यदि शुक्र की कोई खड़ी रेखा भाग्य की रेखा को (जो हाथ के बीच में मध्यमा अङ्गुली की तरफ जानेवाली होती है) काट दे तो समझो दुश्मन ने या किसी बाधक कारण ने रोजगार में हानि पहुँचाई है या कोई और नुकसान किया है इसी तरह और रेखाओं के सम्बन्ध में समझो।

शुक्र शिखर पर खड़ी पड़ी रेखायें

इस शिखर पर रेखायें बहुत होती हैं और ये दोनों ही तरफ की होती हैं खड़ी भी और पड़ी भी। यही पड़ी रेखा जीवन रेखा के साथ २ जाती है और खड़ी रेखा उनको काटती हुई जाती है। इनमें पड़ी रेखा पुरुष के हाथ में स्त्री की और स्त्री के हाथ में पुरुष की होती है और खड़ी रेखा दुश्मन तथा बीमारी आदि की होती है। किन्तु किसी किसी के हाथ में जीवन रेखा बिलकुल खराब होती है और फिर भी वह अधिक दिन तक जीता है। इसका कारण यह है कि उसके जीवन रेखा के साथ २ एक बारीक रेखा और होती है। उसको मंगल की रेखा Mars Line कहते हैं।

कभी २ जीवन की रेखा खराब तो नहीं होती—किन्तु जिस मनुष्य या स्त्रीमें लड़ाकूपनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति Martial Spirit या मात्रा अधिक होती है। वह आदमी फौजी होता है उसके हाथ में भी जिन्दगी की रेखा के साथ मंगल रेखा होती है। कभी कभी जीवन रेखा किसी खास भाग में खराब होती है उससे यह प्रकट होता है कि उससमय बीमारी आवेगी पर मृत्यु न होगी क्योंकि मंगल रेखा का वह टुकड़ा उस को उस बीमारी से बचावेगा। इस मंगल रेखा के अतिरिक्त बाकी और पड़ी हुई रेखाएं प्रायः स्त्रियों की सूचना देती हैं जो हमारे प्रभाव में आती हैं या हम जिन से प्रभावान्वित होते हैं।

वैवाहिक रेखा (Wife Line)

शुक्र की इन पड़ी रेखाओं में जीवन के साथ २ जाने वाली—स्त्री की रेखा भी कभी २ होती है। उससे विवाह का समय, स्त्रीका स्वभाव अच्छा बुरापन. शारीरिक अवस्था और पति पत्नी का मेल जोल आदि अनेक बातें मालूम की जाती हैं। स्त्री के हाथ में पति की और पुरुषके हाथमें स्त्रीकी यह रेखा उन प्राणियों के हाथ में पाई जाती हैं जो उपर्युक्त गुणों से एक दूसरे से प्रभावित होते हों नहीं तो स्त्री की रेखा छिट्टी अंगुली के नीचे बुध के शिखर पर मिलती है जिनको आम लोग जानते हैं।

तंदुरुस्ती और यह शिखर

इस शिखर का उभरा होना और इस में चमक दमक तथा सुर्खी का होना प्रकट करता है कि खून की मात्रा इसमें अधिक है। जोश भी अधिक है। काम शक्ति प्रबल है। सन्तान उत्पन्न करनेकी शक्तिभी है। अतः यह तन्दुरुस्ती के विचारों से अच्छा है, परन्तु यह भी संभव है कि वह विषय-भोग में पड़कर अपनी तन्दुरुस्ती को खराब कर लेवे। इस लिये इस का अधिक मोटा और भारी होना अशुभ है।

तीनों पोरुवों बड़ा छोटा होना

यदि पहिला पोरुवा छोटा और कमजोर होगा और तीसरा बड़ा, तो यह गुण उसमें अवश्य होंगे। पर इच्छाशक्ति उसकी इतनी अधिक नहीं होगी। यदि दूसरा पोरुवा बड़ा होगा तो वाद विवाद अधिक करेगा, उसका अधिक समय और शक्ति का तर्क-वितर्क में उपयोग होगा, खेल, कूद, तमाशे आदि में अधिक भाग लेगा। यदि अंगूठा छोटा और चौड़ा होगा, तो वह अपने कामों में धोखा भी खा जायगा। संसार में वह बहुत उपयोगी सिद्ध न होगा। क्योंकि अंगूठा जितना छोटा उतना ही खोटा और बहुत बड़ा भी कामका नहीं। बहुत मोटा और भारी भी उत्तम नहीं होता, क्योंकि जरूरत से ज्यादा (Over developed) होना नुकसानकारी और अशुभ होता है।

अपूर्ण

—मास्टर पांचूलाल काला-जयपुर

उद्बोधन

(ले० नाथूराम डोंगरीय जैन न्यायतीर्थ)

नव जीवन ज्योति जगाओ तो।

(१)

मत समझो मैं निबल दीन हूं।
कृत करने में शक्ति क्षीण हूं।
चिर विस्मृत अनुपम अनंतवर आत्म शक्ति प्रगटाओ तो।
कायरता का भाव हृदय में, सत्वर दूर भगाओ तो॥
नव जीवन ज्योति जगाओ तो।

(२)

वीर—स्मृति कर तब शोणित में।
स्फूर्ति नहीं आती क्यों? चित में—
अपनी विकृत वृत्ति पर हे प्रिय अब भी तनिक लजाओ तो।
बातों में सदियां खोदीं कुछ, करके भी दिखलाओ तो॥
नव जीवन ज्योति जगाओ तो।

(३)

पापों का दृढ़ दुर्ग तोड़ दो।
पाखंडों का मुंह मरोड़ दो।
रौढ़िक तज दासत्व क्रांति का मिलकर बिगुल बजाओ तो।
अत्याचारों से दृढ़ बन कर भीषण युद्ध मचाओ तो॥
नव जीवन ज्योति जगाओ तो।

(४)

वीरोचित वीरत्व दिखाकर।
कायर को वीरत्व सिखाकर।
विश्व प्रेम का पुनः विश्व को अनुपम पाठ पढ़ाओ तो।
वीर धर्म की विजय पताका जगती पर फहराओ तो।
नव जीवन ज्योति जगाओ तो।

जैनधर्म का मर्म और पं० दरबारीलालजी

(ले०—राजेन्द्र कुमार जैन न्यायतीर्थ)

आज करीब डेढ़ वर्ष का समय हुआ, जब मैंने पण्डित दरबारीलाल जी की 'जैनधर्म का मर्म' शीर्षक लेख माला की समालोचना प्रारम्भ की थी। प्रारम्भ के समय ही मैंने लेखमाला को दो विभागों में विभाजित कर दिया था। पहले भाग में उन बातों को रखा था जिनका सम्बन्ध जैनधर्म की मूल मान्यताओं से था और दूसरे भाग में वे बातें रक्खी थीं जोकि पहिले भाग से शेष थीं। "सर्वज्ञत्व-भगवान पार्श्वनाथ से पूर्व जैन धर्म का अस्तित्व और मोक्ष के लिये नग्नता की अनिवार्य आवश्यकता" ये तीन बातें हैं। प्रथम भाग की लेखमाला की समालोचना को प्रारम्भ करते समय ही मैंने यह भी सूचित कर दिया था कि मैं पहिले माला के प्रथम भाग की बातों की समालोचना करूंगा। और तत्पश्चात दूसरे भाग की बातों की।

अपनी सूचना के अनुसार पहिले लेख माला के 'सर्वज्ञत्व' विषय की फिर भ० पार्श्वनाथ से पूर्व जैन धर्म के अस्तित्व की और अन्त में मोक्ष के लिये नग्नता की अनिवार्यता की समालोचना की है। मेरा विचार था कि मैं इन विषयों की समालोचना को इससे पूर्व समाप्त करदूं, किन्तु उपविषयों की अधिकता और समय के अभाव से मैं ऐसा नहीं कर सका। मैं इन विषयों की अपनी समालोचना को इतना बढाना भी नहीं चाहता था किन्तु उप विषयों की अधिकता से ऐसा करना पड़ा है। मैं ज्यादा से ज्यादा इसको सौ पेजमें समाप्त करना चाहता था किन्तु ऐसा न होकर अब यह करीब १५० पेज में समाप्त हुई है।

लेखमाला के इस समालोचना में मैं कहाँ तक सफल हुआ हूँ इसके सम्बन्ध में मैं कुछ भी लिखना आवश्यक नहीं समझता। मेरा कार्य तो लेखमाला की समालोचना करना था, वह मैंने किया। मैं इस कार्य में कहांतक सफल हुआ हूँ या यों कहिये कि मैं अपनी लेखमाला के द्वारा जैनधर्म के मूल सिद्धान्तों पर दरबारी लाल जी द्वारा किये गये आक्षेपों का समाधान कर सकता हूँ या नहीं इस बात का निर्णय त मैं विज्ञ पाठकों पर ही छोड़ता हूँ।

पं० दरबारीलाल जी ने मेरी लेखमाला के सर्वज्ञत्व विषय की आलोचना "जगत" में "विरोधी मित्रों से" शीर्षक द्वारा प्रारम्भ कर दी है। अब तक इस सम्बन्ध में उनके पाँच छः लेख प्रकाशित हो चुके हैं। दरबारी लाल जीकी लेखमाला के दूसरे भाग की समालोचना के साथ ही उनकी इस प्रत्यालोचना पर भी विचार करना आवश्यक है। अतः मैं अपनी लेख माला को दो भागों में विभाजित किये देता हूँ। इसका एक भाग तो प्रस्तुत शीर्षक में ही रहेगा और उसमें दरबारी लाल जी की लेख माला के दूसरे भाग की बातों की समालोचना रहेगी मेरी लेखमाला के दूसरे भाग का शीर्षक विरोध परिहार होगा। इसके द्वारा पं० दरबारीलाल जी की "विरोधी मित्रों से" शीर्षक लेखमाला का समाधान किया जायगा।

अपनी परिस्थिति से मैं इस बातको स्वयं समझता हूँ कि पं० दरबारीलालजी को भी समय की कमी है। अतः उनसे किसी भी बात की शीघ्रता को करना ठीक नहीं। किन्तु फिर भी मैं उनसे यहां इतना निवेदन अवश्य करूंगा कि वे अपनी "विरोधी मित्रों से" शीर्षक लेखमाला को जहांतक सम्भव हो अधिक समय दें।

ऐसा करने से उनकी यह लेखमाला "जगत" के प्रत्येक अङ्क में और वह भी अधिक परिमाण में निकलेगी। दरबारीलाल जी की इस लेखमाला के प्रति अङ्क और अधिक परिमाण में निकलने से तथा उसके साथ ही साथ उनकी लेखमाला की "विरोध परिहार" शीर्षक दर्शन की लेखमाला के पढ़ने वालों को प्रस्तुत विषय की वास्तविकता के समझने में सरलता रहेगी।

यहाँ मुझे समाज के कुछ हितैषियों से भी कुछ कहना है। इन हितैषियों में मुख्य श्री दीपचन्द जी वर्णी और श्री शीतलप्रसाद जी हैं। समाज के इन हितचिन्तकों की तरह आपको भी दरबारीलाल जी की लेखमाला से दुःख हुआ है और ऐसा होना स्वाभाविक है। इसके परिणाम स्वरूप आपने समय२ पर समाज के सामने अपने विचार रक्खे हैं और जैन विद्वानों से दरबारीलाल जी की प्रस्तुत लेखमाला के खंडन की अपील भी की है।

पं० दरबारीलाल जी की लेख माला से जहाँ तक आपके हृदय को चोट लगने और जैन विद्वानों से उसके खण्डनार्थ आपकी अपीलका सम्बन्ध है वहाँ तक तो हम को इसके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहना हम यह माननेको तैय्यार नहीं हैं कि आपको दरबारीलाल जी की लेख माला को पढ़ कर दुःख नहीं हुआ है और हमारा यह भी विचार नहीं है कि जैन विद्वानों को इसके खण्डन के अर्थ प्रयत्न नहीं करना चाहिये। किन्तु जब आप यह लिखते हैं कि "जैनजगत की इस लेखमाला का समाधान नहीं किया जा रहा है" तब हम आपकी बात को मानने के लिये तैय्यार नहीं हैं। इस लिये नहीं कि जगत की लेख माला का समाधान करने वाला, या उसके खण्डन में लेख माला लिखने वाला मैं हूँ। किन्तु इस लिये कि आपका ऐसा लिखना निराधार है। आपने जो कुछ भी लिखा है वह "दर्शन" और "जगत" की लेख मालाओं पर तुलनात्मक ढंग से बिना विचार किये ही लिखा है। यदि आपने इन दोनों लेख मालाओं पर तुलनात्मक ढंग से विचार किया होता तो आपको ऐसा लिखने का कष्ट न उठाना पड़ता।

आप लोग समाज के उत्तरदायी बनते और कहलाते हैं। आपका कर्तव्य है कि आप एक भी शब्द लिखने या बोलने से पूर्व उसके फलाफल पर पूर्ण विचार कर लें। कहीं ऐसा न हो जाय कि आप लोगों के मुख वा लेखनी द्वारा एक भी ऐसा शब्द निकल जाय जिसके द्वारा समाज के अहित की सम्भावना हो। यहां मैं आपसे अधिक न कह कर इतना निवेदन अवश्य करूंगा कि आप दोनों लेखमालाओं का तुलनात्मक ढंग से अध्ययन करें और फिर उनपर अपनी सम्मति प्रकाशित करें। इससे पूर्व इस सम्बन्ध में आप या अन्य भी कोई व्यक्ति जो कुछ भी लिखेंगे उनका लिखना समझदार व्यक्तिओं की दृष्टि में उपहास योग्य तो होगा ही किन्तु उससे समाज का अहित भी अवश्यम्भावी है। आप यह निश्चित समझिएगा कि इस प्रकार आप जो भी

बात लिखेंगे उसका मुझपर या मेरे अन्य सहयोगियों पर विशेष प्रभाव पड़ेगा। हम आप लोगों की या अन्य किसी भी विद्वान की बातों से सर्वथ लाभ लेने को तैयार हैं। किन्तु वे साधार होनी चाहिये।

दोनों लेखमालाओं को मिला कर पढ़ने वाले अनेक विद्वानों की सम्मतियां मेरे पास आयी हैं जिन में उन्हों ने दर्शन की लेख माला की प्रशंसा की है। किन्तु फिर भी मैंने उनको प्रकाशित करना आवश्यक नहीं समझा। यहां सम्मतियों से वस्तु स्वरूप का निर्णय नहीं करना परन्तु युक्तियों से करना है। सम्मति तो कभी कभी निराधार भी हो जाया करती है। दृष्टांत के लिये यों समझियगा कि भाई रघुबीर शरण जी अमरोहाने "दर्शन" और "जग" की लेखमाला के और सत्य समाज के सम्बन्ध में अपनी सम्मति "जगत"में प्रकाशित करायी है। क्या आप समझते हैं कि वह सम्मति साधार है या दोनों लेखमालओं को तुलनात्मक ढंग से पढ़ने के बाद निर्धारित की गयी है। भाई रघुबीर शरण जी मेरे बन्धुओं में से एक हैं। मैं उनके स्वभाव से भली भांति परिचित हूं। अतः मैं इस बात को दृढ़ता के साथ कह सकता हूं कि आपने अपनी सम्मति निर्धारित करने से पूर्व दोनों लेखमालाओं को तुलनात्मक ढंग से नहीं बांचा है। व्यक्तिगत दृष्टांत उपस्थित करना मैं मुनासिब नहीं समझता किन्तु सम्मतियों की और सत्य समाज के नवजात सदस्यों की वास्तविकता का पता हमारे समाज हितैषियों को लगजाय इससे मैंने एक बन्धुके नामका और उनकी वास्तविक परिस्थिति का उल्लेख यहां कर दिया है।

सत्य समाज के नवजात कुछ सदस्योंकी संख्या से समाज हितैषियों को घबड़ाने और यह परिणाम निकालनेकी ज़रूरत नहीं है कि जैन विद्वानों की तरफ से दरबारीलालजी की लेखमाला का सयुक्तिक उत्तर नहीं दिया जा रहा है ऐसा तो उनके विचारों के प्रचार और उनके खण्डन स्वरूप अपने विचारों के अप्रचार से भी हो सकता है। ऐसा अनेक बार हुआ भी है। भारत का इतिहास इसका साक्षी है। क्या समाज हितैषी महानुभाव इस बात पर विचार करने का कष्ट उठावेंगे कि भारत में या अन्यत्र जब जब भी जिस जिस मान्यता का प्रचार हुआ है तब तब उसके अनुयायियों की संख्या बढ़ी है चाहे वह मान्यता सत्य रही हो या नहीं भी।

यदि सत्यता ही संख्या वृद्धि का कारण होती तो भारत में वाममार्ग जैसे विचारों का प्रचार कभी भी नहीं हो पाता और न आज संसार में जैनेतर मनुष्यों की संख्या ही इतनी मिलती। इससे इतनी बात तो हमारे समाज हितैषियोंको निःसन्देह माननी होगी कि दरबारीलाल जी की सत्य समाज के कुछ सदस्य बने हैं वह केवल उनके विचारों के प्रचार से ही। यदि हम चाहते हैं कि एक भी जैन के उन जैसे विचार न होने पावें तो हमको भी उनके प्रतिकूल अपने विचारोंका सयुक्तिक रूपमें प्रचार करना चाहिये आशा है कि हमारे समाज हितैषी मेरे इस छोटे से नोट पर ध्यान देंगे और इस कार्य्य में हमको हमारी हमारी त्रुटियाँ साधार लिखेंगे तथा इस पवित्र यज्ञ में अन्य प्रकार से भी हमारा सहयोग करेंगे।

यहां मैं अपने सहयोगी कुछ विद्वानों से भी थोड़ा सा निवेदन कर देना अत्यावश्यक नहीं समझता। हमारे इन सहयोगी व्यक्तियों में हमारे मित्र पण्डित इन्द्रलाल जीका मुख्य स्थान है। समय समय पर आप और आप के सम्पादकत्व में

छपने वाला हितेच्छु भी हमपर कृपा कर देता है। एक आध विषय में आपके और मेरे विचारों में अन्तर है। यह बात प्रायः सब ही विद्वान जानते हैं किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि यदि हमारे द्वारा कोई धर्म रक्षा का कार्य्य किया जा रहा है तो आप उसको गिरानेकी चेष्टा करें। इस प्रकार के लेखोंसे मेरी हानि नहीं किन्तु धर्म की हानि है। मैंने जो कुछ भी लिखा है या लिख रहा हूँ वह अपने गौरव के लिये नहीं किन्तु धर्म्म के गौरव के लिये। मेरी इस लेख माला से यदि मेरा अभिप्राय अपने स्वार्थ साधन का होता और तब आप ऐसा करते तो मुझ को आपसे कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं थी आशा है कि आप मेरे इन शब्दों पर अवश्य ध्यान देंगे।

इन ही शब्दों के साथ में अपने निष्कर्ष को पूरा करता हूँ। मेरी भावना है कि जिनेन्द्र की भक्ति मुझे मेरे कार्य में आने वाले विघ्नों पर विजय प्राप्त करने में सहायक हो।

आधुनिक शिक्षा की कमियों पर—

डा० सर राधाकृष्ण।

आँध्र विश्व विद्यालय के वाईस चान्सलर डा० सर राधाकृष्ण एम० ए० डी० लिट्ने १३ नवम्बर को इलाहाबाद विश्व विद्यालय का जो दीक्षान्त भाषण दिया था वह बहुत महत्वपूर्ण और मननीय है। आपने कहा—

दीक्षाकाल की प्रथानुसार मैं आपको डिगरियाँ प्राप्त करने के लिये धन्यवाद देता हूँ। आपने अपने पाठ्यक्रमों को सफलता पूर्वक तैयार कर लिया है। और अब आप अपने भावी जीवन के कार्य की खोज में हैं। वास्तव में विश्व विद्यालय की शिक्षा आपके भावी जीवन की एक तैयारी ही है, जीवन की आवश्यकताओं तथा आपकी शिक्षा में जो असमानता है, उस पर आलोचना और वादविवाद होचुका है। इस लिये उस प्रश्न की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना अनावश्यक है। पर हे युवको और युवतियो यदि मैं आपसे कहूँ कि विश्व विद्यालय की डिगरियाँ प्राप्त कर लेने के बाद आपको सुन्दर नौकरियाँ तथा महान जीवन व्यतीत करने को मिलेगा—तो यह केवल एक असफल होने वाली आशा का दिलाना होगा।

आजकल संसार भरमें विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों में अधिकाँश के भाग्य में बेकारी ही लिखी है हमारी शिक्षा में कुछ ऐसी त्रुटियां मौजूद हैं जिनके कारण शिक्षा में अत्यधिक धन गर्क करने वाली समाज के लिये उपयोगी व्यक्ति तैयार नहीं होते। विश्वविद्यालय का कार्य नहीं है कि वह ऐसा ओछा विद्यार्थी तैयार करे जो आलस्य से अत्यधिक प्रेम करता हो और इस प्रकार मानसिक अस्थिरता तथा दिवालियेपन की उन्नति करे। ऐसी स्थितिकी जिम्मेदारी केवल हमारी शिक्षा के प्रकार पर ही नहीं है वरन हमारी आर्थिक दुरवस्था पर भी है और आप इन दोनों में से किसीके भी जुम्मेवार नहीं। पर यह एक उत्तम चिन्ह है कि हमारी शिक्षा के उन्नायक इस बात से काफी सहमत हैं कि हमारी शिक्षा के ढंग में एक सिरे से दूसरे सिरे तक परिवर्तन होना आवश्यक है। कारण कि वह ढंग आधुनिक हालतों को देखते हुए प्राचीन होगया है और उससे बुद्धि तथा शक्ति का भारी नुकसान होता है।

प्रारम्भिक, माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय की सभी प्रकार की शिक्षाओं में एक पूर्णीय ढंग का परिवर्तन होना आवश्यक है। जनतन्त्र शासन का एक अङ्ग या अंश (Unit) होने के लिये यह आवश्यक है कि समाजका प्रत्येक व्यक्तिप्रारम्भिक दर्जे की शिक्षा अवश्य पावे। तथा समाजके स्तम्भरूप जो बहुत से व्यक्ति हैं उनकी और किसान तथा व्यवसाय में लगे हुए चतुर व्यक्तियों की शिक्षा का माध्यमिक स्कूलों में होना चाहिये। हमारी शिक्षा की माध्यमिक अवस्था सबसे कमजोर और कड़ी है। उस पर तो खासकर विश्वविद्यालय की तैयारी काही प्रभाव है। उसे तो एक पूर्ण तथा व्यावहारिक शिक्षा होनी चाहिये जिस से उसके प्राप्त करने वाले जीवन में एक स्थान प्राप्त कर सकें। औद्योगिक

स्कूलों को चाहिये कि वे युवकों को लेकर शहर के व्यवसायों की ही शिक्षा न दें क्योंकि हमारा देश प्रधानतः देहातों से युक्त है, कृषी तो भारतीय जीवन की नींव है, और सुदूर भविष्य में भी वह ऐसी ही रहेगी।

आजकल हमारे देश के धनोत्पादक किसान अनाज आदि की कीमतों में कमी के कारण अपनी किसानी से अपने लिये काफी भोजन नहीं पासकते। यदि स्थिति अच्छी हुई तो भी उनके पास बिक्री के लिये माल बहुत कम बच रहता है। जब तक हमारे भाई प्राचीन औजारों—काठ के हल और फावड़ों से ही खेती करते रहेंगे तबतक खेती की उपज में बढ़ती नहीं होसकती। साथ ही यदि किसी प्रकार की भी उन्नति करनी है तो हमारी ग्रामीण हालतों के अनुकूल कृषि-शिक्षा अत्यावश्यक है। इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि छोटे २ तथा आवश्यक सीमा वाले बहुत से स्कूल खोल दिये जाँय। प्राचीनकाल में खेती के अतिरिक्त कताई और बुनाई लोगों के अन्य कार्य थे। गांधी जी जो फिर से उनके चालू करने की कोशिश कर रहे हैं, वह किसी पगाल व्यक्ति का स्वप्न नहीं है। सबसे बड़ी आवश्यकता उन औद्योगिक स्कूलों की है जिनमें छोटी २ दुकानों में होसकने वाले व्यवसायों की शिक्षा दीजाय।

नेताओं की शिक्षा भी विश्वविद्यालयों का एक महत्वपूर्ण कार्य है। जनतन्त्रवाद की परिभाषा करते हुये मेजिनी ने कहा है यह तो सभी लोगों द्वारा सबसे अधिक विद्वान तथा सर्वोत्तम व्यक्तियों के नेतृत्व में सभीलोगों की उन्नति है। मेरा विचार है कि यदि लोग चतुर और बुद्धिमान नेता चुनने में असफल रहते हैं तो जनतन्त्रवाद भी सफल नहीं होता। आधुनिक नेता न तो चतुर ही हैं, न बुद्धिमान ही।

सेनावाद इस समय पूर्णोन्नति पर है। आज कल जिसकी लाठी उसकी भैंस—का पूरा बोलबाला है।

हमारे डिक्टेटर फौजों को कायम रखने के लिये बेचारे गरीबों का खून और पसीना एक कर रहे हैं राष्ट्र फौलाद और खून से पल रहे हैं यूरोपके राष्ट्र सारी भयानकताओं के साथ युद्ध की ओर जा रहे हैं। आगामी युद्ध में चाहे सभ्यता का पूर्ण नाश न हो फिर भी हम बर्बरता से तो पूर्णतया व्याप्त हो जाँयगे।

आधुनिक राजनैतिक डिक्टेटरों के युद्ध की चिल्लाहट तथा भावना प्रधान बकवास से तुलना करने पर बम्बई— कांग्रेस के समय गाँधी जी द्वारा दिया हुआ विदा का सन्देश, अन्धकार से भरे हुए संसार में एक ईश्वरीय प्रकाश की किरणों के समान है। उन्हों ने कहा है कि क्रान्ति द्वारा लाया हुआ स्वायत्त शासन मैं कभी भी स्वीकार न करूंगा। भारत की स्वतन्त्रता केलिए हममें से सबसे अधिक इच्छुक गांधी जीको राजनैतिक स्वतंत्रता प्रिय है ही परः सत्य तथा अहिंसा उनको उससे कहीं अधिक प्रिय है; उन्हों ने अपने कार्य कर्ताओं से सैनिक जुम्मेवारी तथा अपने सहकारियों के लिये आदर भावना रखने के लिये कहा है। येबातें राजनैतिक युद्धों में दूसरी जगह कठिनता से पाई जा सकती हैं। विश्व के सत्य को राष्ट्रों की राजनीति से प्रथम स्थान दे कर गाँधी जी ने एक ऐसी ज्योति जगा दी है जो कभी

भी न बुझेगी। यह ज्योति देश और काल में दूर तक फैल जायगी और संसार भरके सभी सच्चे तथा गंभीर पुरुषों द्वारा इसका दर्शन तथा स्वागत किया जायगा।

विश्वविद्यालयोंका यह कर्त्तव्य है कि वे ऐसे व्यक्ति तैयार करें जो अहंमन्यता काविरोध कर सकें और सार्वजनिक कार्य करसकें और साथही सत्य तथा नैतिक साहस को ढूंढ कर उसका अनुमान कर सकें। पृथ्वी पर मनुष्य आनन्द मनाने के लिये नहीं आया वरन यहाँ वह ईमानदार होने के लिये आया है। चाहे तुम्हें अच्छी नौकरी मिले और चाहे न मिले, पर यह बात प्रत्यक्ष है कि तुम्हें अपने साथियों के प्रति लाभप्रद होना चाहिये और सत्य के लिये कार्य करना चाहिये।

देहली शास्त्रार्थ

(ले०—श्रीमान् पं० सुरेशचन्द्र न्यायतीर्थ अंबाला छावनी)

क्या वेद ईश्वरीय ज्ञान है ?

इस शास्त्रार्थ में वादी और प्रतिवादी की तरफ से जो भी युक्तियाँ और प्रत्युक्तियाँ उपस्थित की गई थीं, उनको हम यहां पर संक्षेप से ज्यों का त्यों उद्धृत किये देते हैं। जिससे विचार शील पाठक स्वयं इसके परिणाम को निकाल सकें, जैन समाज की तरफ से निम्न लिखित बातें पूर्व पक्ष स्वरूप उपस्थित की गई थीं।

१—वेदों के ईश्वरीय ज्ञान होने और उनके ईश्वर कृत होने में अन्तर है। वेदों के ईश्वरीय ज्ञान से तात्पर्य यह है कि वेदों का ज्ञान तो ईश्वरीय है, किन्तु उसकी शब्द रचना मनुष्यों के द्वारा हुई है। कृत पक्ष में तो ज्ञानकी तरह वेदों की शब्द रचना भी ईश्वरीय माननी पड़ेगी। आज तक आर्य समाज वेदों को ईश्वरकृत मानता चला आ रहा था, स्वामी दयानन्द ने भी इनको ईश्वर कृत माना है *। किन्तु अब आर्य समाज ने वेदों को ईश्वर कृत मानने से इनकार कर दिया है। वह अब इनको ईश्वरीय ज्ञान मानने लगा है। इसी शास्त्रार्थ सम्बन्धी पत्रों में से एक पत्र में आर्यसमाज देहली ने स्पष्ट स्वीकार किया है कि वह वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानता है † नकि ईश्वरकृत।

* ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पेज ३३९ — "और यह भी प्रगट होजावेगा कि ईश्वरकृत सत्य पुस्तक वेद ही हैं" — — —
विशेष के लिये सत्यार्थ प्रकाश सातवां समुल्लास देखो।

† पहिला विषय जो आपने लिखा है कि "क्या वेद ईश्वर कृत है" इसकी बजाय "ईश्वरीय ज्ञान है" यह होना चाहिये क्योंकि समाज वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानता है ईश्वर ने पुस्तक रूप में दिये ऐसा नहीं मानता अतः "क्या वेद ईश्वरीय ज्ञान है" यह स्वीकार है। आर्यसमाज देहली का पत्र शास्त्रार्थसंघ अम्बाला को- ता० १८-१-३५

जैन समाज की दृष्टि से न वेद ईश्वरकृत ही हैं और न वेद ईश्वरीय ज्ञान ही। अतः उसकी दृष्टि से तो दोनों ही बात अयुक्त हैं, किन्तु कृत पक्ष को छोड़कर ज्ञान पक्ष को स्वीकार करने से इतनी बात तो अवश्य प्रमाणित होती है कि अब आर्य समाज को स्वयं भी वेदों के सम्बन्ध में निर्बलता अनुभव होने लगी है। वेदों को ईश्वरीय ज्ञान प्रमाणित करने के लिये दो बातों का प्रमाणित होना अनिवार्य है। एक ईश्वर का मनुष्यों को ज्ञान देना, दूसरी उनका उसही ज्ञान के आधार से वेद मंत्रों का निर्माण करना। जब तक दोनों बातें सिद्ध नहीं होतीं तब तक वेदोंको ईश्वरीय ज्ञान सिद्ध करने की आशा करना केवल आशा मात्र ही है। आर्य समाज का कर्तव्य है कि वह इन दोनों बातों के समर्थन में प्रमाण उपस्थित करे।

—ऋग्वेद, १ ऐतरेय ब्राह्मण, २ तैतरेयारण्यक, ३ सूत्र साहित्य, ४ बृहद्देवता, ५ सर्वानुक्रमणिका, ६ और निरुक्त ७ ने ऋषियों को वेद मंत्रों का कर्त्ता स्वीकार किया है। अतः वेद ऋषिकृत हैं।

—वेद मंत्रों में ऋषियों की जीवन घटनायें और उनके सिद्धान्तों का उल्लेख मिलता है ८ अतः वेद ऋषि कृत हैं।

—वेद मंत्रों में असम्भव ९ और परस्पर विरुद्ध १० बातें मिलती हैं, अतः वेद ईश्वरीय ज्ञान नहीं हैं।

—वेद मंत्रों में अश्लीलता ११ आदि का वर्णन मिलता है, अतः वेद ईश्वरीय ज्ञान नहीं हो सकते। इन सब प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान नहीं हैं।

---

१ ऋषेर्मंत्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्धर्धयागिनरः। ऋग्वेद मं० ९ सू० ११३ मं० २

२ सर्पऋषिर्मंत्रकृत ६—१

३ नमः ऋषिभ्योमंत्र कृद्भ्यो........मंत्रकृतो... . ...पेज ३४१ पूना।

४ नमः ऋषिभ्योमंत्रकृद्भ्यो आ-श्रोत्र-२-१४

५ सम्पूर्णऋषिवाक्यं तुसूक्तमित्यभिधीयते —— —— बृहद्देवता

६ यस्यवाक्यं सः ऋषिः। सर्वानुक्रमणिका

७ कर्तास्तोमानाम्——यास्क

८ क- सप्तमर्यादाकवयस्ततक्षुः। अथर्व० कां० ५ सू० १ मंत्र ६ विशेष के लिये दुर्गाचार्य टीका वाला निरुक्त ५१८ पेज पर देखें।
ख ऋग्वेद मं० १० सू० ९८ मं० ५ से ७ तक इसमें देवापि और शान्तनु की जीवन घटनायें मिलती हैं।
विशेष के लिये दुर्गाचार्य टीका वाला निरुक्त १३० पेज पर देखो।

९ हे राजन् तू जो निश्चित वकार उत्पन्न होता है वह प्रथम उत्पादक को देखता है जिसमें पवित्र हुये विद्वान् उत्तम सुख और दिव्य गुणों के उपाय को प्राप्त होते हैं। यजुर्वेद अ० १३ म० ४१

१० आकाश { नित्य—यजुर्वेद अ० ३३ मं० ४३
अनित्य—ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पेज १२३ और १२७

उस पुरुष के मनन अर्थात् ज्ञानस्वरूप सामर्थ्य से चन्द्रमा और तेज स्वरूप सूर्य उत्पन्न हुआ है श्रोत्र अर्थात अवकाश रूप सामर्थ्य से आकाश और वायु रूप सामर्थ्य से वायु उत्पन्न हुआ है तथा सब इन्द्रियां भी अपने कारण से उत्पन्न हुई हैं।

११ इसी प्रकार मांस लोभी को मांस द्वारा, शराबी को शराब से, जुएखोर को जुए से कामी को स्त्री के द्वारा वश करना चाहिये।
अथर्व० कां० ६ सू० ७० मं० १

जैन समाज की तरफ से उपस्थित की गई, वेदों में असम्भव और परस्पर विरुद्ध बातों के उत्तर में तो आर्य समाज की तरफ से केवल टालमटूल ही की गई थी। राजा के निश्चित बकरा होने और उसके पहिले पहिल अपने उत्पादक के देखने को आर्य समाज सम्भव प्रमाणित नहीं कर सका। यह हो भी कैसे सकता है कि जितने भी राजा हैं वे सब अपने अपने दूसरे भव में बकरे के ही शरीर को धारण करें और वहां भी सर्व प्रथम वे अपने उत्पादक को ही देखें। गर्भवती बकरी के गर्भदाता बकरे को यदि उसके शेष जीवन के समय तक उससे न मिलाया जाय तब भी वह अपने गर्भ से बकरे को उत्पन्न करती है, और वह बकरा भी बढ़ता है तथा अपने जीवन सम्बन्धी सब कार्य करता है। यदि इसका उत्पन्न होते ही अपने उत्पादक का देखना अनिवार्य होता तबतो ऐसी परिस्थिति में यह उत्पन्न ही नहीं होता, और यदि उत्पन्न भी होता तो भी इसको किसी का ज्ञान नहीं होना चाहिये था। यजुर्वेद का यह कथन स्वामी दयानन्द के भाष्यानुसार है। अतः आर्य समाज अर्थ की अप्रमाणता की बात भी उपस्थित नहीं कर सका। आर्य समाज ने केवल यह कहकर टालने की चेष्टा की थी कि प्रस्तुत भाष्य में हे राजन! यह सम्बोधन है और बाकी के कथन का सम्बन्ध राजन से नहीं है। परन्तु वहां तो साफ लिखा है कि हे राजन तू जो…… .. अतः आर्यसमाज की यह बात भी नहीं चल सकी। आर्य समाज ने इसके सम्बन्ध में दूसरी बात यह कही थी कि यह बात हिन्दी भाषान्तर में है, किन्तु संस्कृत में नहीं। आर्य समाज की यह बात भी विषय को नहीं टाल सकी क्योंकि प्रस्तुत मंत्र के संस्कृत भाष्य में भी हिन्दी जैसा वर्णन है। दूसरे हिन्दी भाष्य भी आर्य समाज का ही किया हुआ है। इस प्रकार बहुत टालमटूल करने के बाद भी आर्य-समाज वेदों से असम्भव बातों के वर्णन को दूर न कर सका।

वेदोंके सम्बन्धमें परस्पर विरोधी वर्णनकी बात भी जब आकाश के कथन से घटित करके सिद्ध कर दी गई, तो समाज की तरफ से समाधान उपस्थित किया गया था कि एक जगह " अजायत " शब्द का अर्थ प्रगट होना है न कि उत्पन्न होना।

प्रथम तो व्याकरण की दृष्टिसे इस शब्द का अर्थ ही उत्पन्न होना है. दूसरे स्वामी दयानन्द ने भी इस का यही अर्थ किया है, तीसरे जिस मंत्र में आकाश के साथ इसका प्रयोग हुआ है, उस ही मंत्र में इसही शब्द का प्रयोग ऐसे शब्दोंके साथ भी हुआ है, जिन को आर्य समाज रचित मानता है, अतः इस शब्द के आधारसे आकाश का प्रगट होना स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस प्रकार यह दोष भी वेदोंके सम्बन्ध में तदवस्थ ही है।

जैन समाज की तरफ से उपस्थित की गई बातों में से शेष बातों के सम्बन्ध में आर्य समाज की तरफ से निम्न लिखित प्रमाण उपस्थित किये गये थे।

वेदों के ईश्वरीय ज्ञान होने का समर्थन निम्न-लिखित प्रमाणों से होता है।

१—अथर्व० कां० १० सूक्त २३ मं० २० मं० २

२—वेद नित्य हैं अविनाशी होने से।

३—इस को समझने के लिये विशेष ज्ञानी की आवश्यकता है, हमारे असर्वज्ञ होने से

४— उत्तरपुराण पर्व ६७ श्लोक ३८६

उनके समाधान स्वरूप जैन समाज की ओर से नीचे लिखी बातें रक्खी गईं।

१— वेद मन्त्रों के आधार से वेदों को ईश्वरीय ज्ञान स्वीकार नहीं किया जा सकता ऐसा तो तबही हो सकता था जबकि जैन समाज को वेदों की प्रामाणिकता अभीष्ट होती। दूसरे यदि इस मन्त्रके अर्थ के विवादको छोड़दें और थोड़ी देर के लिये इस मन्त्रका वही अर्थ स्वीकार करलें जो स्वामी दयानन्द ने किया है तब भी इस मन्त्र में ईश्वर का अन्यपुरुष से (Third person) ग्रहण किया गया है। यदि यह मन्त्र परमात्मा रचित होता तब तो इस मन्त्र में उसका ग्रहण प्रथम पुरुष से होना चाहिये था इससे प्रगट है कि इस मन्त्र का रचयिता परमात्मा नहीं है किन्तु वह है जिसका ग्रहण प्रथम पुरुष के द्वारा होता है। इस प्रकार यह मन्त्र तो वेदों को अनीश्वरीय ही प्रमाणित करता है।

२— नित्य और अविनाशी ये दोनोंएक ही अर्थ के वाचक हैं। अतः इस अनुमान में हेतु साध्यसम होने से असिद्ध है।

३—आर्य समाज के दूसरे अनुमान के गुण और दोषों पर विचार न भी किया जाय। तब भी उसमें यह बात प्रमाणित नहीं होती कि ये वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं प्रस्तुत अनुमान में ऐसी आई हुई बातें नहीं हैं जिस से वेदों का ईश्वरीय ज्ञान होना प्रमाणित हो सके अतः यह अनुमान भी व्यर्थ है।

अपूर्ण

आहारो णत्थि णीहारो

स्थानकवासी मुनि श्रीचन्द्रजी लिखित "सत्या-सत्य निर्णय" नामक एक पुस्तक देहली से प्रकाशित हुई है जिस में अनेक स्थानों पर मुनि जी ने व्यावहारिक सभ्यता को भी बुरी तरह फटकार कर अपना सत्यमहाव्रत और भाषा समिति सफल की है आवश्यकता है कि साधारण पुरुषों के समान ऐसे मुनियों को भी सभ्यता का पाठ पढाया जावे।

पुस्तक का उत्तर रोहतक निवासी श्रीयुत ला० न्यामत सिंह जी ने तय्यार कर दिया है जो कि निकट भविष्य में प्रकाशित हो जायगा। मैं यहां सिर्फ उस विषय पर कुछ प्रकाश डालता हूँ जिसको कि न समझ कर मुनि जी असभ्यता को अपना बैठे हैं। वह विषय है— षट पाहुड़ टीका की निम्नलिखित गाथा का अभिप्राय—

तित्थयरा तप्पियरा हलहर चक्की यवासुदेवा हि पडिवासु भोगभूमिय आहारो णत्थि णीहारो।

अर्थात्— तीर्थकर, उनके माता पिता, चक्रवर्ती नारायण, प्रतिनारायण और भोगभूमिया जीवों के आहार होता है किन्तु नीहार यानी मल-मूत्र नहीं होता।

यहां पर दो बातें समझने की हैं एक तो यह कि क्या उक्त बात संभव है दूसरी-इस दशा में गर्भाधान हो सकता है या नहीं ?

पहली बात का समाधान यह है कि खाये हुए भोजन को हमारी जठराग्नि की मशीन रस रूप में बनाती है (रस से खून मांस आदि धातु बनती हैं) मनुष्य की मशीन यदि ताकतवर होती है तो वह खाये हुये भोजन में से रस बहुत बना लेती है और मल मूत्र के रूप में फोक भाग थोड़ा सा छोड़ देती है। यही कारण है कि बलवान मनुष्य (राम मूर्ति गामा पहलवान [illegible]) साधारण मनुष्यों से अधिक मात्रा में भी (प्रति दिन ढाई सेर बादाम ढाई सेर दूध आदि) खाकर टट्टी पेशाब साधारण मनुष्यों के समान बल्कि उससे भी कम करते हैं जब कि निर्बल मनुष्य थोड़ा सा भोजन करते हुए भी टट्टी पेशाब ज्यादा मात्रा में करता है।

इसलिये शारीरिक शास्त्रानुसार बलवान मनुष्य की जठराग्नि इतनी प्रबल भी हो सकती है कि वह खाये हुए सभी भोजन को रस रूप में बना दे फोक कुछ भी न रहने दे जिससे कि वह भोजन तो करे किन्तु नीरोग रहता हुआ भी टट्टी पेशाब बिलकुल न करे।

जैसे कोई चक्की ऐसा आटा पीसती है जिसमें भुसी अधिक निकलती है कोई ऐसा बारीक पीसती है जिस में थोड़ी भुसी मिलती है और कोई ऐसा बारीक आटा पीसती है जिस में भुसी बिलकुल नहीं निकलती। यही हाल जठराग्नि का है। तीर्थ कर आदि विशिष्ट पुरुषोंकी जठराग्नि इतनी प्रबल होती है कि वह खाये भोजनमें से सभी का रस बना देती है कुछ भी फोक भाग शेष नहीं छोड़ती जिससे कि वे भोजन करते हैं किन्तु नीहार यानी टट्टी पेशाब नहीं करते। जैसा कि कुछ समय पहले यू० पी० में एक स्वस्थ मनुष्य को १४ वर्ष तक लगातार होता रहा। बृहत जैन शब्दार्णव देखिये।

दूसरी बातका उत्तर यह है कि वीर्य मल नहीं है किन्तु शरीर की सर्वोत्तम धातु है, शरीर का राजा है अतः वीर्यका शरीरमें रहना आवश्यक है टट्टी पेशाब के समान उसका शरीर से बाहर निकलना आवश्यक नहीं। यदि जन्म भर भी वीर्य शरीर से बाहर न निकले तो रंचमात्र भी हानि नहीं बल्कि अचिन्त्य लाभ है। इस कारण 'आहारो णत्थि णीहारो' का नियम टट्टी पेशाब आदि शारीरिक मलों के लिये है, न कि वीर्य सरीखी सर्वोत्तम धातुके लिये अत एव तीर्थंकर, उनके पिता चक्रवर्ती आदि के वीर्य स्राव होता है और वे अपनी पत्नियों को गर्भाधान करा सकते हैं।

श्रीचन्द्र जी मुनि को तथा अन्य किसी भाई को अब भी ' आहारो णत्थि णीहारो के विषय में कुछ शंका हो तो उसको सभ्यभाषा में उपस्थित करें।

वीरेन्द्र जैन
अंबाला

हितेच्छु का हित सम्पादन

खंडेलवाल हितेच्छु के गत छठे अङ्क में उसके संपादक महोदय श्रीमान पं० इन्द्रलाल जी शास्त्री ने जैनदर्शनकोसमाज की दृष्टिमें गिरानेके लिये जैनदर्शन पर निम्नलिखित वाक्यों में आक्षेप किये हैं—

"जैनजगतके लेखोंके खंडन करनेके लिये इसके संचालकोंने इसकेजन्मका उद्देश्य बतलाया था आज वही जैनदर्शन जगत को दी हुई सहायता को आदर्श दान बतला रहा है। जयपुर निवासी लक्ष्मणलाल जी

साह के उत्तराधिकारियों ने २७०१) का दान दिया जिसमें ५) जैन जगत को भी दिये हैं उस दान सूची को जैनदर्शन ने आदर्शदान के रूप में प्रकाशित किया है। सो जैनदर्शन की युक्ति बड़ी अच्छी है जो उसके "एकाध लेख का थोड़ा बहुत खण्डन करके धार्मिक समाजका श्रद्धाभाजन बना रहे और जैनजगत की सहायताको आदर्श सहायता बतलाकर सुधारकों का भी पूर्ण श्रद्धा पात्र बना रहे ·· जैनदर्शन के ऐसे और भी उदाहरण हैं परन्तु हमने उन सूक्ष्म बातों को कभी प्रकाशित नहीं किया है परन्तु इस बात का दिग्दर्शन इसी लिये पाठकों के समक्ष किया है कि जैनदर्शन का दृष्टि कोण जनता को परिचित हो जाय।"

पाठक महानुभावों को ज्ञात होना चाहिये कि सेठ लक्ष्मणलाल जी साह की ओरसे जो २७०१) का दान हुआ है उसमें तीर्थक्षेत्रों, अनाथालय, औषधालय, विद्यालय, मंदिर आदि धर्म क्षेत्रों में द्रव्य वितरण किया गया है साथ ही १५) जैनदर्शन, जैनमित्र और जैन जगत को भी दिये हैं। दान की सूची जयपुर से जैनदर्शन में छपने के लिये आई थी जोकि ज्यों की त्यों बिना किसी टीका टिप्पणी के समाचार रूप में जैनदर्शन में छाप दी गई। पं० इन्द्रलाल जी ने इस समाचार छापने पर आक्षेप किया है।

पं० इन्द्रलाल जीके ख्याल से प्रत्येक पंक्तिके साथ आदर्श अनादर्श का विशेषण लगाना चाहिये था। जैन समाज को खास कर जयपुर पंचायत को अपने एक ऐसे विद्वान पर गर्व होना चाहिये जो कि सामाजिक हित की आड़ में अपने स्वार्थ साधन के लिये ऐसी बाल की खाल निकाल सकता है।

"हम जैन जगत को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं" इस महा वाक्य को रट कर अपना पिंड छुडा लेने वाले (शान्ति परिषद्के मंत्री और हितेच्छु के संपादक) पं० इन्द्रलाल जी जैन जगत की सहायता कर रहे हैं या धारावाहिकरूपसे बलवती सभ्य युक्तियों से जैनजगत के लेखों की धज्जियाँ उड़ाने वाला जैनदर्शन जैन जगत की सहायता कर रहा है इसको समझदार व्यक्ति तथा पं० इन्द्रलाल जीका हृदय भी जानता है यदि पं० इन्द्रलाल जी अपने आक्षेप में कुछ जान समझते हैं तो जैन जगत के लेख का थोड़ा सा भी खंडन करके अपनी धार्मिकता को दृढ़ बनाने का प्रयास करें। किन्तु शास्त्री जी लकड़ी से पानी छूकर अपने आप अपनी पीठ ठोंक लेते हैं।

खुशामदी दुरंगी नीति जो त्रिवर्णाचार, चर्चासागर के विषय में आपने दिखलाई है उसी को धोने के लिये वे खुशामदी दुरंगी नीति का रंग जैनदर्शन पर डालना चाहते हैं सो उन्हें निश्चय रखना चाहिये कि वे अपने प्रयत्न में सफल न हो सकेंगे। खुशामदी दुरंगी नीति जैनदर्शनके लिये प्राणघातक विष है यह अमृत आपके लिये मुबारिक हो।

पहले भी एक पदानशीन, वृद्ध व्याकरण केसरी ने ज्योतिष का ढोंग रच कर 'वक्ष्यमाण वक्ता' नाम से अपना व्याकरण बोध सफल बना कर शास्त्रार्थ संघ और जैनदर्शन पर पर हमला किया था जिसका प्रतिवाद शास्त्रार्थ संघ के कमांडरन चीफ के आर्डर से रोक दिया गया दूसरी बार यह झपटा मारा जिसका कि विवश होकर यहां उत्तर देना पड़ा।

शास्त्रार्थ संघ और जैनदर्शन क्या कुछ करता है यह बात शास्त्री जी इंदौर, देहली कुडची, भिवानी,

पानीपत, खतौली, आदि स्थानों की पंचायतोंसे पूछिये पं० दरबारीलाल जी के हृदय से पूछिये तथा, अपने ईर्ष्यालु हृदय से पूछिये जिसके कारण आपका कलम कुठार सामाजिक हित वृक्ष की जड़ पर चला करता है। जैन दर्शन और शास्त्रार्थ संघ का अभ्युदय आप को असह्य है इसी कारण ऐसे आक्षेपों की बौछार होती है।

यदि सचमुच आपके हृदय में सामाजि चोट और धार्मिक भावना है तो आइये अपने उन जालंधर जिले के ६०—७० खण्डेलवाल भाइयों के घर सुधारिये जो कि कुछ दिनों से श्वेताम्बर हो चुके हैं आपके आक्षेप जितने भयानक नहीं जितनी भयानक- 'परन्तु हम ने उन सूक्ष्म बातों को कभी प्रकाशित नहीं किया है' इत्यादि रूपधारिणी आपकी कृपा है। मिहरबानी करके यह कृपाभंडार आप शास्त्रार्थ संघ के लिये कदापि सुरक्षित न रखिये।

हमको दुःख है कि पं० इन्द्रलाल जी की कूट मनोवृत्ति ने जैन दर्शन का यह उपयोगी स्थान इन वाक्यों से रंगवाया है।

—सम्पादक

समाचार

सम्राट पंचम जार्ज की जुबली के उपलक्ष्य में मैसूर, ग्वालियर, निजाम, बड़ौदा और काश्मीर नरेश को 'बादशाह (His Magesty) की उपाधि दी जावेगी।

अजमेधयज्ञ— पूना के पास एक ब्राह्मण पंडित ने वैदिक विधि से अभी एक अजमेध यज्ञ आरम्भ किया है जिस में ६ बकरे बलि किये जावेंगे १ बकरे का हवन हो भी चुका है। पशुबलि के दुख में पूना के जैनियोंने व्यापार बंद रक्खा।

लण्डन के चिड़िया घरमें एक ऐसा बन्दर है जो बहुभाषाविद् है। वह चार भाषायें समझता है और उसे चार भाषाओं में जो हुक्म दिया जाता है वह समझकर उसका पालन करता है।

होशंगाबाद यहां एक स्त्री के एक असाधारण कद और भार का बच्चा पैदा हुआ। उसका सिर बड़ा भारी और दाँत खूब निकले हुए थे। उस के ३५ उंगलियाँ थीं। वह जन्मते ही मर गया।

केनाडा के एक किसान मि० डान के घर में ५ लड़कियां पैदा हुई थीं— वे पाँचों लड़कियाँ बिलकुल स्वस्थ हैं। आज कुछ लोगों ने उन्हें पहिली बार देखा। इन्होंने जा कर डाक्टरी संसार में एक नया उदाहरण उपस्थित कर दिया है।

रूस—ऐसा हवाई जहाज बनाया गया है, जिसमें १२ मुसाफिर सफर कर सकते हैं उस के बीच में एक कमरा है, जिसमें सोने व आराम की अन्य सामग्रियाँ जुटाई गई हैं।

(टाइटल के दूसरे पेज का शेषांश)

प्राँतिक दि० जैन महिला परिषद का संगठन कर लिया है। इसमें श्रीमती विद्यावती जी देवी म्यु० मेम्बर नागपुर श्रीमती सुन्दर बाई जी और द्रोपदी बाई जी फीमेल टीचर्स ट्रेनिंग स्कूल जबलपुर ने सहयोग दिया है। इस अधिवेशन में मुख्य तीन प्रस्ताव पास हुये। पहिला प्रस्ताव प्राँत की महिलाओं को समुचित रीति से संगठित करने का। दूसरा प्राँत के किसी केन्द्र स्थान पर आधुनिक पद्धति से एक महिलाश्रम खोलने का और तीसरा महिलाओं में जागृति पैदा करने के लिये एक मासिक पत्रिका निकालने का था। —मंत्रिणी

REGD .N. L. 3459.

अजितकुमार जैन ने "अकलंकप्रिन्टिङ्ग प्रेस, मुलतान में छापकर प्रकाशित किया।

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुख-पत्र

वर्ष २ अंक १६-१७

जैनदर्शन

मार्च १६-१९३५ ई० फाल्गुन सुदी १२ शनिवार

निवेदन

दर्शन के तीनों संपादक कार्यवश बाहर चले गये थे। ठीक समय पर उपस्थित न होने से जैनदर्शन का १६ वां अंक समय पर प्रकाशित न होसका अतः यह १६-१७ वां संयुक्त अंक प्रकाशित करना पड़ा।

-मैनेजर

सम्पादक—
पं० चैनसुखदास जैन न्यायतीर्थ: जयपुर
पं० अजितकुमार शास्त्री मुलतान, पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री बनारस

वार्षिक ३) एक प्रति ≈)

श्री शीतलप्रसाद जी के वक्तव्य पर
शास्त्रार्थ संघ का अभिमत

जैन मित्र अङ्क १० ता० १६ जनवरी में श्री शीतल प्रसाद जी ने " सिद्धान्त की रक्षा आवश्यक है " शीर्षक एक वक्तव्य प्रकाशित किया। इसका तात्पर्य यह है कि जैन विद्वानों की एक समिति बुलाई जाय और उसमें पंडित दरबारीलाल जी के साथ 'सर्वज्ञत्व मुक्ति से पुनरावृत्ति, आदि विषयों पर वाद विवाद किया जाय। अपने इस वक्तव्य को प्रारंभ करते हुए कहा कि—शीतलप्रसाद जी ने लिखा है कि उन्होंने इस प्रस्ताव को परिषद् के भेलसा वाले अधिवेशन में भी रक्खा था किन्तु परिषद् स्थिति के अनुकूल न होने से उनको अपना यह प्रस्ताव वापिस लेना पड़ा। अब आपने अपने इस वक्तव्य में इसके संबंध में दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ की तरफ संकेत किया है।

ऐसी परिस्थिति में यह आवश्यक है कि श्री शीतलप्रसाद जी के इस वक्तव्य के सम्बन्ध में मैं संघ का अभिमत स्पष्ट कर दूं। इस में कोई संदेह नहीं कि शीतलप्रसाद जी ने यह वक्तव्य सरल एवं सिद्धान्त रक्षा अभिप्राय से लिखा है अतः इसके लिये हम उनके आभारी हैं। किन्तु जब आप यह लिखते हैं कि " केवल लेख लिखनेसे समाधान नहीं होता " तब हम आपकी बात को मानने के लिये तैयार नहीं हैं। हमारी तो यह धारणा है कि दरबारीलाल जी के कथन का लिखित प्रतिवाद मौखिक प्रतिवादक उपेक्षा कहीं अधिक लाभदायक है इसके पढ़ने वाले को अभी भी इससे लाभ होगा और भविष्य में भी यह लाभदायक है।

मौखिक की अपेक्षा लिखित से विचार करने में भी अधिक सहायता मिलती है इन्हीं सब बातों को ध्यान में दरबारीलाल जी के विचारों के प्रतिवाद स्वरूप संघ की तरफ से 'दर्शन' में लेखमाला निकल रही है।

ऐसा होने पर भी हमारा यह एकान्त नहीं है कि दरबारीलाल जी के विचारों का प्रतिवाद लिखित हो या मौखिक वादविवाद न किया जाय। हम इसको भी लाभदायक समझते हैं। इसके लिये श्री शीतल प्रसाद जी की आयोजना में थोड़े से संशोधन की आवश्यकता है और वह यह है कि यह वादविवाद एक उपसमिति के निरीक्षण में हो जिसमें प्रतिष्ठित तीन व्यक्ति हों। और जो वादविवाद के पश्चात दोनों तरफ की युक्ति और प्रत्युक्तियों को संग्रह करके प्रकाशित कर सकें। ऐसा होने से यह वादानुवाद केवल उसी समय के लिये नहीं होगा किन्तु इससे कालान्तर में भी लाभ हो सकेगा।

स्वतंत्र उपसमिति के निरीक्षण एवं उसके द्वारा प्रकाशित कार्यवाही के होने से इन सब बातों के सम्बन्ध में अविश्वास की बात भी नहीं रहेगी। इस उपसमिति का चुनाव दोनों पक्षों की स्वीकृति से होना चाहिये। स्थान के सम्बन्ध में केवल इतना ही नोट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि यह शास्त्रार्थ किसी ऐसे स्थान पर होना चाहिये जहां जैनियों की जन संख्या अधिक हो। ऐसा लिखने की आवश्यकता यों पड़ी कि अभी इस प्रकार वादानुवाद की चर्चा बनारस के सम्बन्धमें चल रही है। बनारस में न तो जैनियों की जनसंख्या अधिक है और न इसके आस पास ही समुदाय जैन निवास करते हैं। ऐसे स्थान इस कार्य के लिये किसी भी प्रकार उपयुक्त नहीं हो सकते।

इस सम्बन्ध में जो बातें आवश्यक थीं उनमें से कुछ

(शेष टाईटिल के तीसरे पेज पर देखें)

अकलंकदेवाय नमः

श्री जैनदर्शनमिति प्रथितोऽग्रगामिमर्थ्याभवन्निखिलदर्शनपक्षदोषः,
स्याद्वादभानुकलितो बुधचक्रवन्द्यो भिन्द्यात्तमो विमतिवियाय भूयात्

वर्ष २ | श्री फाल्गुन सुदी १२—शनिवार श्री वीर सं० २४६१ | अङ्क १६-१७

मनुष्य और संसार

सागर में तिनका है बहता।
उछल रहा है लहरों के बल में हूँ, मैं हूँ कहता।
इस तरङ्ग में मारे फिरते बड़े पीपल अभिमानी,
उनकी कथा जानकर भी यह बना हुआ अज्ञानी।
अपने को है बड़ा समझना-यह इसकी नादानी,
धीरे धीरे गला रहा है इसको खारा पानी।
धक्के खाकर भी इतराता, -ऐसा मद से फूला,
मैं हूँ कौन कौन है सागर इसको बिलकुल भूला।
धोखे ही धोखे में मित्रो, अपने को खोवेगा,
जिस गोदी में उछल रहा है उसमें ही सोवेगा।
उचक उचक नभ के तारों को, छूआ चाहता है यह,
कुछ न पूछिए, क्या जाने क्या हुआ चाहता है यह।

--बदरीनाथ भट्ट (उद्धृत)

जीवन सुधार के सरल उपाय

(ले०—श्री० नेमी चन्द्र जी मोर्दी, जयपुर)

मनुष्य जीवन त्रुटि पूर्ण है। अतएव यद्यपि कोई भी मनुष्य पूर्ण नहीं हो सकता, तथापि मनुष्य के हृदय में महत्व की आकांक्षा प्रारम्भ से ही रहती है—जब वह जन्मता है तब से ही उन्नत बनने के लिये उत्सुक रहता है और शक्तिभर प्रयास भी करता है। किन्तु कुछ समय पश्चात ही उसे सांसारिक झंझट इतना फंसा लेती है कि उसका अपने कर्तव्योंकी ओर से विशेष ध्यान नहीं रहता। यदि हम खोज करें, तो संसार पचड़ों में फंसे हुये ऐसे मनुष्य बहुत ही कम मिलेंगे—जो अपने जीवन के सच्चे उद्देश्य से विचलित न हुए हों और पूर्णत्व प्राप्ति के मार्गमें प्रवृत्त हों

पूर्वाचार्यो ने अपनी आत्मा का उत्थान चाहने वाले मनुष्यके लिये अपनी त्रुटियोंका संशोधन करना अनिवार्य समझ कर सामयिक का विधान किया है। बात बिल्कुल ठीक है—जब तक अपनी त्रुटियाँ न निकाली जांय, उन्नति का स्वप्न भी नहीं आ सकता। अतः आत्म-संशोधन कर शुद्ध स्वरूप प्राप्त करने के लिये सामयिक उपयुक्त साधन है।

आधुनिक वैज्ञानिकों का भी यही मत है। उनका कहना है कि अपनी संसार यात्रा को सार्थक बनाने के लिये—कर्मनिष्ठ होने के लिये प्रत्येक बुद्धिमान को अपनी दिनचर्या नियमबद्ध रखनी चाहिये। जब तक प्रतिदिनके चौबीस घंटे सुव्यवस्थित रीतिसे न व्यतीत किये जायंगे, उनका अधिक से अधिक सदुपयोग न किया जायगा, तब तक जीवन भार स्वरूप मालूम होगा, किसी भी कार्य में विशेष आनन्द न मिलेगा और इस प्रकार की अव्यवस्था में किया हुआ कार्य समुचित रूपसे परिपूर्ण भी न होगा।

जितने भी महापुरुष हुयेहैं उनके चरित्रोंका सूक्ष्म अध्ययन करने से यही ज्ञात होता है कि—उन्होंने अपनी दिनचर्या को नियमबद्ध बनाया था, अपने जीवन को सुव्यवस्थित किया था,—इसी से उन्होंने संसार में नाम पाया—अपनी आत्मा एवं देश को भी उन्नत बनाया। अतः कहना पड़ेगा कि समय अमूल्य धन है, उसका उचित उपयोग करना ही उन्नति का मूलाधार है।

समय का सदुपयोग करने वाले मनुष्य योगी हैं। जो समय का सदुपयोग करके कार्य करता है, वही मनुष्य कर्म योगी कहलाता है। संसार की झंझटों में फंसे हुए मनुष्यों को कर्म योगी बनने की ही आवश्यकता है। इसी से वे स्व-पर को उन्नत बना सकते हैं।

मनुष्य दूसरे की शक्तियोंको देख कर उनसे ईर्षा करने लगता है और तदनुरूप बननेके लिये अधिकांश में उत्सुक भी रहता है, किन्तु कोई भी मनुष्य केवल ईर्षा करके ही अपने को तत्सदृश नहीं बना सकता। तदनुरूप बनने के लिये कार्य करते रहना अनिवार्य है। हम लोग ईर्षा तो करते रहते हैं, किन्तु आदर्श के अनुरूप अपने को बनाने के लिये प्रयास कुछ भी नहीं करते। सब संकल्पों को मानसिक विचारों में ही इति श्री कर देते हैं। अन्तःकरण की शुद्धता एवं त्रुटियों का संशोधन आत्मोत्थान के लिये अनुपम साधन है।

यदि हमें उन्नत बनना है, तो अपनी त्रुटियोंका संशोधन कर आदर्श के अनुरूप बनने का प्रयास भी अनिवार्य रूप से करना होगा। ईर्षा मात्र से कुछ भी सिद्धि न होगी, सफर्गी जो मनुष्य अपने प्रत्येक कर्तव्य में यह ध्यान रक्खेगा कि मेरा कार्य कैसा हो रहा है, मैं अनुचित तो नहीं कर रहा हूँ इस कार्यमें कुछ त्रुटि तो नहीं हो गई है। वह ही उन्नति का मुंह देखता है और कर्मण्य कहला कर संसार का बन जाता है। कहा भी है—

आत्म चिन्तन ही मनुष्य को पूर्ण बनाता है।

अतः आनन्दमय जीवन प्राप्त करने के लिये हम को अपने प्रत्येक दिन के जीवन का समुचित आरंभ करना चाहिये। विचार करने से समझ में आजायगा कि एक दृष्टि से प्रत्येक दिन एक नवीन जीवन का आरम्भ है। यदि हम किसी भी एक दिन को व्यर्थ चला देते हैं, उसका अपनी बुद्धिमानी से अधिक-से-अधिक उचित उपयोग नहीं कर रहे हैं, तो समझ लीजिए हम अपने जीवन का सर्वनाश कर रहे हैं अपनी आत्मा की हत्या कर रहे हैं—अपने आप को धोखा दे रहे हैं। जीवन का समय—मनुष्य जीवन की घड़ियाँ अधिक से अधिक मूल्य की वस्तु हैं। इसमें आत्मोत्थान के कार्य से वंचित रह जाना, कौए को उड़ाने के लिये चिन्तामणिरत्न का उपयोग कर अपनी मूर्खता का परिचय देने के समान है। जो मनुष्य समय का आदर नहीं करते, समय भी उनका आदर नहीं करता और उनके कुछ भी मूल्य की वस्तु नहीं बनता, किन्तु जो सज्जन समय का अधिक से अधिक उपयोग करते हैं—उसका आदर करते हैं, समय भी उनका आदर करता है और उनके लिये विशेष महत्व की वस्तु बन कर अपने अनुपम मूल्य को जाहिर करता है। हम लोगों ने अभी तक समय का कुछ भी सत्कार नहीं किया, इसी लिये उन्नत भी न बन सके हम लोगों का समय व्यर्थ के कार्यों में अधिक व्यतीत होता है, जीवन सुधार के निमित्त हम थोड़ा सा भी समय व्यतीत नहीं करते। प्रत्येक दिन यों ही व्यतीत कर देते हैं और मृत्यु आने पर फिर पछताने लगते हैं हम काम करनेके लिये यह तो इच्छा करते हैं कि यदि एक दिन में चौबीस घंटों से भी अधिक समय हमें मिल जाय तो अच्छा हो, परन्तु मिले हुए समय में भी अपना कार्य नहीं करते, किसी प्रकार यदि इस से अधिक समय भी मिलना सम्भव हो जावे, तो हम उसका दुरुपयोग के अतिरिक्त और कर ही क्या सकते हैं? कार्य करने वालों के लिये समय की कमी का प्रश्न कभी शोभा नहीं देता। आलसियों से समय भी अपना पीछा छुड़ाना चाहता है। अस्तु समय की बात तो जाने दीजिए। आश्चर्य तो यह है कि हम जितना भी कार्य करते हैं, वह भी तो सोच समझ कर नहीं करते। यदि हमारे कार्य त्रुटियों से रहित हों, तो हम अपना उत्थान कर सकते हैं किन्तु हम तो कोई भी ऐसा कार्य नहीं कर रहे हैं, जो हमारे उत्थान में असाधारण सहायक हो। हमारे अधिक कार्य तो ऐसे होते हैं-जिनसे दूसरोंका नुकसान होता है और अपनी आत्माका भी पतन होता है। हम लोग जिनसे विरोध रखते हैं, उनका बुरा विचारा करते हैं और उनका बुरा हो जाने पर खुश हो जाते हैं और अपने को धन्य मानने लगते हैं। विचारा तो जाय, यह हमारी कितनी बड़ी मूर्खता है। हमें यह ख्याल नहीं कि ऐसे संकुचित एवं स्वार्थपूर्ण विचारों

से हमारा हृदय कितना कलुषित हो जाता है और हमें कितना अवनत बना देता है। मेरा दृढ़ श्रद्धान है कि कलुषित भावनाएं एवं संकुचित विचारों से कभी भी किसी मनुष्य का आत्मोत्थान नहीं हो सकता। यह निश्चित है कि—झूठा आदमी अन्त में सिवाय अपने और किसी को धोखा नहीं देता जीवन सुधार करने वाले मनुष्य के लिये ऐसे विचार एवं भावनाओं को हृदय से समूल निकाल डालने की आवश्यकता है। प्रत्येक कार्य करते समय अपने कर्तव्यों पर पूर्ण ध्यान रखने की जरूरत है। ऐसा किये बिना कोई भी उन्नत नहीं बन सकता।

यदि हम अपने को उन्नत बनाना चाहते हैं, तो हमें अपने छोटे से छोटे विचार एवं कार्य की भी जांच पड़ताल करनी चाहिये। अपने हृदय की बड़ी कड़ी आलोचना के साथ परीक्षा आरंभ करनी चाहिये और यत्र तत्र मिले हुये बुरे विचार की पूर्ण रूपसे निर्दयता पूर्वक निन्दा करके उसे अपने हृदय में आगे भी स्थान न देने की प्रतिज्ञा कर, उसे बाहर निकाल फेंकना चाहिये। हमारे विचार जितने ही पवित्र होंगे हम उतने ही उन्नत बनते जांयगे। हमें दृढ़ श्रद्धान कर लेना चाहिये कि विचारों से ही मनुष्य उठता है और विचारों से ही गिरता है।

जितने भी महापुरुष हुये हैं उन्होंने इस कथन को सत्य समझ कर अपने विचारों को पवित्र बनाने के लिये 'डायरी' का उपयोग किया था। वे अपनी दिनचर्या को उसमें नोट करके शान्ति के समय उस पर गम्भीर विचार किया करते थे, अपने दोषों की कड़ी आलोचना अर्थात निन्दा किया करते थे। इसी साधन से वे उठे और एक दिन महा पुरुष कहलाने के अधिकारी बन गये। आज दुनियां उनकी ओर सतृष्णा दृष्टि से देखती है और उन्हें अपना आदर्श मानता है। इससे यह स्वयं सिद्ध है कि अपनी उन्नति चाहने वाले प्रत्येक मनुष्य को डायरी का उपयोग करना चाहिये और समय मिलने पर अपने चारित्र की आलोचना करनी चाहिये।

जो सच्चा महाजन होता है, वह अपना हिसाब साफ रखता है। नित्य प्रति सायंकाल में अपनी पूंजी का निरिक्षण करता है और विचारता है कि—आज मुझे कितना लाभ एवं हानि हुई। संसार जानता है, ऐसा करने वाला व्यक्ति कभी भी अधिक हानि नहीं उठाता। यदि हम भी प्रति दिन अपनी चरित्र के सम्बन्ध में ऐसा ही किया करें तो क्या यह सम्भव है हमें भी कभी अवनति का मुंह देखना पड़ेगा? बस अधिक से क्या प्रयोजन उन्नति चाहने वाले प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपने चरित्र के सम्बन्ध में प्रतिदिन आलोचना करे या प्रतिसमय ध्यान रक्खे कि मेरा कार्य सत्पुरुषों के तुल्य है किंवा पशुओं के अनुरूप? यद्यपि सज्जनों के मार्गका सर्वांश अनुसरण करना साधारण पुरुषों के लिये असम्भव सा है, पर यह निश्चित है कि अनुक्रम से अपने उत्थान की चिन्ता करने वाला अपने को तदनुरूप बना सकता है।

सूर्य का प्रकाश

(ले०—श्री० डा० राम प्रताप जी एम० डी० जयपुर)

" सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च " (ऋग्वेद १-११५-१)

" प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः " (प्रश्नोपनिषद् १-८)

सूर्य को वेदों में संसार की आत्मा बतलाया है। इसका गूढ़ार्थ यह है कि सूर्य से ही समस्त संसार के प्राणियों को जीवन शक्ति (Vitality) प्राप्त होती है। वास्तवमें यदि हम ज्ञान चक्षुओंकी सहायता से इस विषय का अवलोकन करें, तो हमें ज्ञात होगा कि सूर्य सम्पूर्ण रोग नाशक पदार्थों का जन्मदाता है अर्थात् सब चिकित्सकों का चिकित्सक है, संसार व्यापिनी अखिल शक्तियों का उद्गम-स्थान है। अंग्रेजी में एक कहावत प्रसिद्ध है—" Where there is light there is life " सूर्य के प्रकाश से हमें आरोग्यता, सौन्दर्य और प्रसन्नता मिलती है शरीर नीरोग और मस्तिष्क बलवान बन जाता है। सूर्य के प्रकाश में गर्मी के प्रभाव से हमारे चमड़े के असंख्य रोम-कूप खुल जाते हैं, जिन से समस्त शारीरिक व्याधियों का—विकृत वात पित्तादि दोषों का और अनुचित आहार विहार से शरीर में प्रविष्ट होकर इकट्ठे होने वाले रोग, जन्य दूषित विजातीय पदार्थों (Foreign matters) का बहिष्कार होता है और एक प्रवाह में नियमितता आ जाती है। सूर्यके प्रकाश में रोगोत्पादक कीटाणुओं को नाश करने का, गन्दगी मिटाने का एवं स्वच्छता व शुद्धि उत्पन्न करने का अद्वितीय प्रभाव है। महाकवि कालिदास ने शुद्धि के दो प्रधान कारण, जिनसे स्वास्थ्य को किसी प्रकार की हानि होने की सम्भावना नहीं (फिनाईल आदि अन्याय शुद्धिकर पदार्थों के साथ ही साथ स्वास्थ्य कोभी धक्का पहुँचता है) बतलाए हैं। यथा—" प्रभा पतंगस्य मुनेश्च धेनुः " अर्थात् १—सूर्य का प्रकाश और वशिष्ठ मुनि की नन्दिनी नामक गाय या कोई भी सामान्य स्वस्थ गाय, इन दोनों में प्रथम स्थान सूर्य के प्रकाश को दिया गया है।

सूर्य रश्मियोंका स्वास्थ्यप्रद गुण बहुत चिरकाल से विख्यात है। प्राचीन सभ्यता के सब इतिहास इसके प्रमाण हैं। आर्यों ने इसी उद्देश्य से सूर्य नमस्कार को नित्य कर्मों में प्रधान स्थान दिया था। वेद और उपनिषदों में इसका विधान और उपासना यंत्र मिलते हैं। वेबीलोन आसीरिया और मिश्र के प्राचीन निवासियों ने सूर्य प्रकाश का सेवन करने के लिये ही यत्र तत्र वाटिकाएं (Sun gardens) निर्माण की थीं। प्राचीन रोम निवासी डाक्टर और वैद्य गाउट (Gout) गठिया का इलाज छतपर सूर्यके प्रकाश से करते थे। यही नहीं, प्राचीन समय में जर्मन लोग रोगियों को नीरोग बनाने के लिये बसन्त ऋतु में पहाड़ों के धूपदार ढालों पर ले जाते थे और उन्हें खूब आतप स्नान कराकर लाभ उठाते थे।

प्राचीन संसार के सभी मनुष्योंने सूर्यकी महिमा को भली प्रकार समझ रक्खा था और किसी न किसी रूप में इसकी किरणों को उपयोग में लाकर लाभ उठाते थे परन्तु पता नहीं मध्य कालीन संसार किस प्रकार के प्रभाव से प्रभावित होकर ऐसे गुणप्रद

सूर्य की महिमा को भूल गया जिसका परिणाम स्वरूप प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि बारह सौ से अधिक रोगों का शिकार बनना पड़ा है। अब आधुनिक सभ्य संसार फिर से इसकी महिमा को पूर्ववत् समझने लगा है और इसके गुणों को ग्रहण करने लगा है, जर्मनी, इङ्गलैंड, समस्त यूरोपीय प्रदेश, अमेरिका आदि पाश्चात्य देशों में आतप स्नान (Sun bath) रोगियों का रोग दूर करने के लिये और स्वस्थों का स्वास्थ्य कायम रखने के लिये बड़े जोरों से प्रचलित हो रहा है। " लुई कुईनी " के अनुयायी, प्राकृतिक चिकित्सक [Cromo paths], प्रभृति उत्तमोत्तम डाक्टरों की कृपा से यह संसार में पुनः प्रसिद्ध हो रहा है।

सूर्य की किरणें सभी प्रकार के रोगों को जड़ से नष्ट करने की शक्ति रखती हैं। रोग कैसी ही भयंकर अवस्था को पहुंच चुका हो, यदि आवश्यक जीवन शक्ति शरीर में अवशिष्ट हो तो किसी योग्य प्राकृतिक चिकित्सक Nature path की सहायता से बिना दवा ही सूर्य रश्मि, जल, मिट्टी शुद्ध वायु, अहार विहार के नियम आदि उपचारों से आराम किया जा सकता है। सूर्य रश्मियों में शुद्ध करने की असीम शक्ति है इसके भिन्न २ समय के भिन्न प्रकार के उपचारों से रिकेट, चर्म रोग, खुजली, गंजापन, कुष्ट, क्षय, प्लीहा, पेट के सम्पूर्ण रोग एग्जीमा, हृद्रोग आँख और कानके रोग, गलेकी सूजन, स्नायुसम्बन्धी रोग, धातु निर्माण की खराबियाँ, इन्फेन्टाइल पेरेले सिस, रजवीर्य के दोष आदि दूर किये जाते हैं।

सूर्य के प्रकाश से बच्चों के रोग—रिकेट (जिसमें अस्थियाँ नर्म होकर मुड़ जाती हैं) शारीरिक वृद्धिकी रुकावट के कारण, पाचन शक्ति को कम करने वाली बीमारियाँ, अनीमिया आदि, युवा पुरुषों के रोग—कनवेलसन्स अनीमिया, ग्लेंडूलर-सुस्ती-स्नायुजालकी शिथिलता, आदि, वृद्ध जनों के रोग—गठिया, श्वास कास, कफ, आराथ्रिटिस, गाउट-लम्बागो, ओवेसिटी आदि; और स्त्रियों के रोग— रजोविकार, मासिक धर्मकी खराबियां, प्यूवर्टी की खराबियां, इम्पोटेन्सी, आदि जड़ से खोदिये जाते हैं। सूर्य की किरणें बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री और अन्यान्य प्राणिवर्ग वनस्पतिवर्ग सब चराचर सृष्टि के लिये हितकर हैं।

आधुनिक विज्ञानने सूर्य की किरणों को तीन प्रकार की, त्रिगुणात्मक, माना है—१ मनुष्य चक्षु से दिखनेवाला प्रकाशात्मक किरणें। ये किरणें यावन्मात्र प्रकाशप्रद पदार्थोंमें-फास्फोरस, गन्धक, बिजली आदि में सूर्य से प्राप्त होकर अदृश्य रूप से वर्तमान रहती हैं और नियमित रसायनिक परिवर्तन के अनन्तर दृष्टिगोचर होती हैं। कहने का सारांश यह है कि सूर्य प्रकाशका अधिष्ठातृ देवता है, २-उष्णता निर्मापक किरणें (Infrared Rays) मात्र आग्नेय पदार्थों में सूर्य से आती हैं और अदृश्य रूप से कैद रहती हैं। फिर पूर्वोक्त किरणों की तरह यथासमय रसायनिक संयोग से प्रत्यक्ष होकर गर्मी देती है। इससे सिद्ध हुआ कि गर्मी का अधिष्ठातृ देवता भी सूर्य ही है। (३) रोगनाशक या जीवन प्रद किरणें-जिन्हें अंग्रेजी में (Uttravilet Rays)कहते हैं। इनसे समस्त पदार्थों को जीवन शक्ति मिलती है। ये बनस्पति वर्ग में और प्राणि मात्रके रक्त में विटामिन प्रवेश करती हैं। आज कल सूर्य रश्मियों का प्रयोग रिजुवेन्सनके लिये और कण्ठमणि (Thyriod) को चैतन्य करने को (जिस से सेक्स्युअल ग्लैंड्स उत्तेजित हो उठते हैं) किया जाता है। सूर्य की किरणों के इसी प्रभाव से उष्ण कटिबन्ध में स्त्रियों को मासिक धर्म शीघ्र प्रारम्भ होता है।

सूर्य के प्रकाशसे रक्तमें (Bactericidel) कीटाणु नाशक शक्ति उत्पन्न होती है। ये समस्त Bicrobs को मार देती है। उनसे रक्त कोष ऐसे उत्तेजित हो उठते हैं कि बाहरी घातक कीटाणु शरीर में प्रवेश ही नहीं कर पाते-युद्धमें तत्क्षण पराजित होकर मर मिटते हैं। सूर्यकी Uttravilet rays उत्तमोत्तम, उत्तेजित रोगनाशक, कई प्रकार के रोगोत्पादक कीटाणुओं को घातक और स्टिमूलेण्ट सिद्धहुई हैं। ये कांच, जल और मोटे कपड़े में से नहीं छन सकती अतः नंगे बदन या बारीक कपड़ा ओढ़े घाम में घूमना लाभप्रद होता है। इसी प्रकार के सेवन से जीवन शक्ति मिलती है। यथाविधि आतप स्नान करने वालों को स्वास्थ्य सौन्दर्य और बुढ़ापे को रोकने वाला युवापन प्राप्त होता है बनस्पति तक सूर्य के प्रकाश में बलवान रहती है और अन्धकार में मर जाती है। जो गाय ज्यादे धूप में रहती है, उसी के दूध में विटैमीन पाया जाता है और उसी का दूध नीरोग सिद्ध हुआ है। वास्तव में सूर्य ही सर्वोपरि एवं सर्व प्रधान डाक्टर (प्राणाचार्य) है।

—※—

उद्बोधन

(ले० योगेन्द्रकुमार जैन)

दर्शन कर तू अपना प्रकाश।

(१)

है उन्नति का युग महान,
हो रहा विश्वका समुत्थान।
निज उन्नति का कर विचार,
आता न समय फिर बार बार।

(२)

धर्मोन्नति का रख सदा ध्यान,
अकलंक सदृश हो दृढ़ महान।
सामाजिकता का हो वितान,
जग में हो तेरा अखिल मान।

(३)

बाधाओं से मत हो निराश,
दर्शन कर तू अपना प्रकाश।

(४)

घर घर तेरा हो प्रकाश,
अज्ञान, दम्भ का हो विनाश,

(५)

हो रही क्रान्ति है आजकल,
तू धार्मिकता में हो अटल।

(६)

तेरे बल-वैभव का हो विकाश,
दर्शन कर तू अपना प्रकाश।

जैन धर्म के सिद्धान्तों की व्यापकता

(ले० श्री प्रकाश जैन)

संसार में धर्म और अधर्म का आविर्भाव किस हित और अहित की कामना से हुआ? प्राणियों के लिये प्रत्येक कार्य में धर्म और अधर्म की अवस्था क्यों की गई! जब हम इस पर विचार करते हैं तब मालूम होता है कि मनुष्य जीवन का प्रधान कर्तव्य लौकिक एवं पारलौकिक उन्नति करना ही है। और ऐसा ही समझ कर हमारे विचार शील पूर्वाचार्यों ने इसके लिए सर्वोत्कृष्ट साधन धर्म का विधान भी किया है-उनका उपदेश है कि यदि मनुष्य आत्मा के उत्थान के लिये सुनिश्चित धार्मिक विधानों का अनुसरण करे तो वह अवश्य ही उन्नत बन सकता है। क्योंकि मनुष्य का मन बड़ा चंचल है और इसी लिए वह नियन्त्रण के बिना अनेक दुर्वासनाओं की ओर प्रवृत्त होने में नहीं हिचकिचाता और मनुष्य की भावनाओं को निकृष्ट बना कर उसका पतन कर डालता है। उसी पापी मन पर आधिपत्य प्राप्त कर, कर्तव्य मार्गमें निस्वार्थ प्रवृत्ति करके अपनी आत्मा को उत्थान करने के लिये धर्म ही अनन्य आश्रय है धर्म ही कुमार्ग में प्रवृत्ति करने से होने वाली हानियों को दिखा कर सुमार्ग में कर्तव्य मार्ग के सुखों को बतलाता है और कर्तव्य करने के लिए पूर्णतः बाध्य करता है। कुमार्ग से हटाकर सत्पथ में प्रवृत्त कर देना ही धर्म की सबसे बड़ी विशेषता है और इसी कारण से धर्मका आविर्भाव किया जाकर विशेषत प्राणियों के प्रत्येक कर्तव्यमें उसके ध्यान रखनेका भी विधान किया गया है।

यह तो निश्चित ही है कि यदि विश्व एक धर्मावलम्बी होता तो इसका बड़ा भारी कल्याण होता क्योंकि अनेक धर्म धर्मान्तरों के फैल जाने से साम्प्रदायिकता ने जो जोश पकड़ा और उस साम्प्रदायिकता के जोश ने जो २ अत्याचार और अनिष्ट किया वह इतिहासज्ञों से छिपा नहीं है इसी साम्प्रदायिकता के आवेश से हजारों जीते जी जला दिये गए हजारों स्त्रियां व बाल बच्चे निर्दयता से काट दिये गए उन्हें भींतो में चुना दिया गया, कई देश जलाकर खाक कर दिए गये। कितना इनसे वैमनस्य और उत्पात बढ़ा और आज भी इसके कारण हजारों मनुष्य काल की वेदी पर बलिदान किए जाते हैं। विशेष से क्या यही पर्याप्त है कि संसार में ऐसा कौनसा बड़ा अत्याचार है जो धर्म के नाम पर न हुआ हो। जो धर्म प्राणी मात्र की उन्नति के लिये हुआ था उसीने साम्प्रदायिकता का बाना पहिन कर उनकी हानी अवनति कर डाली है। अब संसार ऐसे धर्म स्वरूप से बहुत अधिक दुःख भोग चुका है अब उसे ऐसे धर्म की आवश्यकता नहीं है। साम्प्रदायिकता से संकुचित स्वरूप अब संसार का कल्याण मार्ग नहीं हो सकता।

अतः यदि हम विश्व में शान्ति रखने के साथ ही साथ उस परम सुख की आशा करते हैं तो हमें विश्व के एक धर्म का अनुगामी बनाना आवश्यक है। यद्यपि इस समय सभी धर्मावलम्बी अपने२ धर्म को विश्व का धर्म बनाना चाहते हैं किन्तु किसी भी धर्म को विश्व धर्म का रूप देने के पूर्व उसमें अनेकों अड़चनें उपस्थित हुए बिना नहीं रह सकतीं। क्योंकि

विश्व धर्म कहलाने के अधिकारी धर्म के सिद्धान्त व्यापक एवं उदार होने चाहियें वह धर्म किसी सम्प्रदाय विशेष का पक्षपाती न होना चाहिये। यद्यपि हमारा निश्चय है कि आजतक संसार न तो एक धर्म का अनुयायी हुआ ही है और न होगा ही, परन्तु फिर भी हमें यहाँ पर इसीपर विचार करना है, कि ऐसा कौनसा धर्म है जिसके सिद्धान्त व्यापक एवं उदार हैं और वह विश्व धर्म कहलाने का अधिकारी है।

यद्यपि एकान्त से यह तो कभी नहीं कहा जा सकता कि यही धर्म योग्य है और यह नहीं। क्योंकि प्रत्येक धर्म में कुछ न कुछ ऐसी बात है जो कि सर्वमान्य होने योग्य है। ऐसी हालत में विश्व का धर्म वही धर्म बन सकता है जो प्रत्येक धर्म में कही गई अच्छी२ बातों से पूर्ण होता हुआ अन्य आवश्यक बातों से भी परिपुष्ट हो।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखकर जब हम प्रत्येक धर्म के सिद्धान्तों का निष्पक्ष होकर अवलोकन करते हैं तो कहना पड़ता है कि जैन धर्म ही ऐसा धर्म है उसके सिद्धान्त ही ऐसे उदार एवं व्यापक हैं, जिनके आधार पर वह विश्व धर्म कहलाने का अधिकारी हो सकता है। यही हमें अपने तुल्य प्राणियों को बता कर सत्वेषु मैत्री (अर्थात जीवमात्र से प्रेम) का पाठ पढ़ाता है। यद्यपि वर्तमान में उसका भी रूप विकृत हो गया है, तो भी वह अपने वास्तविक स्वरूप में किसी का भी पक्षपात न कर वीतरागता का ही उपदेश देता है। अतएव—

जैन धर्म के सिद्धान्त केवल जैनियों ही की बपौती नहीं, उन पर सम्पूर्ण विश्व के प्राणियों का आधिपत्य है।

हमें जैनियों के सिद्धान्त ग्रन्थों और अध्यात्म ग्रन्थों में कहीं भी कोई बात केवल जैनियों के लिए ही कही गई नहीं मिलती। सम्पूर्ण प्राणि मात्र के लिए ही उपदेश दिया हुआ मिलता है और वह भी मनुष्यों के लिये ही नहीं वरन् जैसा मनुष्यों के लिए है, उसी प्रकार पशुओं के लिए भी है। जो धर्म मनुष्यों और मनुष्यों के समान पशुओं को भी कल्याण मार्ग का, आत्म हितके उपाय का निःसंकोच उपदेश देता है क्या वही सच्चा धर्म या विश्व धर्म कहलाने का अधिकारी नहीं है?

जैन धर्म की सब से बड़ी विशेषता है—अनेकान्तवाद यह एक ऐसा सिद्धान्त है जो अन्य सम्पूर्ण धर्मों से उत्कृष्ट सिद्ध होता है इसको न मानने वाले जैनेतर धर्मावलम्बी वस्तु के एक धर्म को लेकर अपना सिद्धान्त बना बैठे हैं जो युक्तियों से छिन्न भिन्न हो जाता है-परन्तु जो अनेकान्त को मानते हैं उनके मत में कहींभी किसी प्रकार का विरोध नहीं आता क्योंकि अनेकान्त वस्तु को विभिन्न दृष्टिकोण से देख कर सिद्धान्त पूर्ण सर्वमान्य बात कहता है। जिसका इसके विरोधियों को स्वप्न भी नहीं आसकता। झूठ नहीं है—जब हम किसी वस्तु पर विचार करने लगते हैं तो हमारा मत सर्वांश में सत्य प्रतीत होता है। विश्वास के लिये सर्व प्रसिद्ध मोक्ष तत्व को ही लीजिए। जब हम दर्शनों का अध्ययन करते हैं तो विदित होता है कि कोई दर्शन-ज्ञान को ही, कोई केवल दर्शन को ही, कोई केवल चारित्र को ही निःश्रेयस प्राप्ति का उपाय बतलाता है। ऐसे परस्पर विरुद्ध सिद्धान्तों में किसी पर भी विचार शील मनुष्यों को विश्वास नहीं हो सकता। परन्तु जैन सिद्धान्त इसी मोक्ष की

प्राप्तिके लिये इन तीनों को ही अनिवार्य कारण बतला कर अपने तथ्यपूर्ण विवेचना का परिचय देता है जिस पर सर्व साधारण को भी शंका के लिए कोई अवसर प्राप्त नहीं होता।

ऐसी अवस्था में संसार के सम्पूर्ण धर्मों के सिद्धान्त पूर्ण कहलाने के योग्य नहीं हैं, वे तर्क की कसौटी पर अपूर्ण ही उतरते हैं। किन्तु जैन धर्म के सिद्धान्त सर्वांश में पूर्ण हैं।

जो धर्म के सम्बन्ध में कहा गया है कि धर्म वही हो सकता है जो प्राणी मात्र का हितकारी हो। जैन धर्म में इस बात की न्यूनता नहीं। उसके सिद्धान्तों में "अहिंसा परमो धर्मः" विशिष्ट रूप से प्रतिपादन किया गया है यहां तक कि अहिंसा वाद को प्रधान रूप देने के कारण ही अनेक स्थानों में जैन धर्म का अहिंसा धर्म के नाम से भी उल्लेख किया गया है।

भौतिक और पारमार्थिक उन्नति के इच्छुक जीवों के लिए उनकी जीवन प्रक्रिया का भी जैन धर्ममें बड़े ही अच्छे ढंग से प्रतिपादन किया गया है जिसका मनुष्य सहज ही में पालन कर सकता है। मुनि जीवन और गृहस्थ जीवन-इन दोनों जीवनोंमें ही एक दम से उनके पालन का विधान नहीं। अपनी आत्मा के उत्थान के साथ अपने आचरणों को उत्तरोत्तर उन्नत बनाते रहने का विधान किया गया है। मुनि जीवन पालन करने वाले को सर्वप्रथम ब्रह्मचारी होना पड़ता है, उसके बाद क्षुल्लक तत्पश्चात् ऐलक अर्थात् क्रमशः श्रावक की एकादश प्रतिमाओं का बिना किसी प्रकार की बाधा के यथोचित पालन करने पर मुनि जीवन में प्रविष्ट होना पड़ता है। इस प्रकार बाह्याभ्यंतर चारित्र की उत्तरोत्तर वृद्धि करने वाले मनुष्यके लिए न तो आरम्भिक जीवन ही कष्टमय होता है और न मुनि जीवन ही असह्य प्रतीत होता है। प्रत्येक विचार सकता है कि जैनियों का यह जीवनक्रम कितना अलौकिक एवं हितकर है जिसे साधारण योग्यता का मनुष्य भी सहज ही में पालन कर मोक्ष जैसे कठिन आदर्श को सुलभ बना सकता है। अतः कहना पड़ेगा कि सहज २ चलकर लम्बा मार्ग पार करने का ढंग जैनाचार्यों ने ही बतलाया है अन्य आचार्यों ने नहीं।

इस संक्षिप्त कथन से यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि जैन धर्म के सिद्धान्तों में वे सब गुण विद्यमान हैं जो सार्वभौम धर्म के लिए अनिवार्य एवं आवश्यक है।

अब अन्तमें इस विशयपर प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है कि जैन धर्म के सिद्धान्त जो इतने व्यापक एवं व्यवहार्य हैं वे भी आज थोड़ी सी जन संख्या में ही क्यों परिमित हैं विचार करने पर कहना पड़ता है कि हम ने जैन धर्म के उदार उपदेशों के गले में संकुचितता की रस्सी डाल दी। जो जैन धर्म अखिल संसार का धर्म होने योग्य था उस को हमने अपनी पैतृक सम्पत्ति समझ ली। धर्म डूबा धर्म डूबा चिल्ला कर धर्म के सिद्धान्तों को रूढ़ियों में परिवर्तित करडाला। खेद है कि न हम धर्मको समझते हैं और न समझने की कोशिश ही करते हैं। इस धर्माचरणसे सर्वथा शून्य हैं। जब हम स्वयं ही उसे नहीं समझते तो दूसरों को क्या समझा सकते हैं? अतः हमारे लिए सर्व प्रथम जैन धर्म के रहस्य को समझने की परम आवश्यकता है।

वर्तमान में जैन धर्म का पूर्णतः प्रचार करने के लिये सर्वप्रथम जैन साहित्य का वृहद् रूप में सुलभता

(शेष ११वें पेज में नीचे देखें)

अगरोहे का टीला

(ले० श्री सुमेरचन्द जी जैन, अम्बाला छावनी)

भारत वर्ष में बहुत से स्थानों पर बड़े २ टीले उजड़े हुए पड़े हैं। उनके देखने से संसार की गति का ध्यान आता है। एक समय तो वह था जब इन नगरों के वासियों ने मुसीबतों से उन्हें बसाया था और छोड़ते समय बड़े कष्टों का सामना किया था। ऐसे दो टीले अगरोहे जिला हिसार में कङ्काली टीला मथुरा में, राजा हरीचंद के मंदिर का टीला मदरास में, और तक्षशिला का टीला पंजाब आदि में हैं। इन में से अगरोहे के टीले का वृत्तान्त हम यहां लिखेंगे।

अगरोहे का टीला जिला हिसार में यहां से १२ मील दूर है। यह वह प्रसिद्ध स्थान है, जिस को राजा उग्रसेन के पुत्रों ने अपने पूज्य पिता के नाम पर विक्रम सम्वत् से ५५१ वर्ष पहले बसाया था। चन्द्रगुप्त मोरविया भी इन्हीं महाराज उग्रसेन के कुल में हुये हैं। अग्रवाल वंशावली में, और महाराजा चन्द्रगुप्त के जीवन चरित्र में भी (पं० राजनारायण जीने) लिखा है कि महाराजा चन्द्रगुप्त राजा मुरारदास के बेटे हुए हैं, जो महाराजा उग्रसेनके चौथे बेटे मनीपाल जी के वंश में हुए थे। इनका गोत्र कोशल था। राजा मुरारदास का विवाह झाँसी के राजा श्यामकर्ण की लड़की चित्रवती से हुआ था। राज प्रथा के अनुसार चित्रवती के साथ एक नौकरानी सुन्दरी, जो जात की नायन थी, आई थी। यह बड़ी सुन्दरी थी। दैवयोग से जब चित्रवती के चन्द्रगुप्त उत्पन्न हुआ, तो उसी समय सुन्दरी के भी बालक उत्पन्न हुआ था। राज्य-प्रथा के अनुसार चित्रवती का लड़का पालन पोषण के लिये सुन्दरी को दिया गया। और सुन्दरीका लड़का एक और धायके आधीन किया गया। अभी चन्द्रगुप्त छह महीने का भी न हुआ था कि उसकी माता चित्रवती का परलोक वास हो गया। अब चन्द्रगुप्त का पालन पोषण उसकी ४ वर्ष की अवस्था तक केवल सुन्दरी द्वारा ही हुआ।

उन दिनों बिहार प्रान्त का राजा महानन्द था, जो बौद्ध मतानुयायी था, और सारे भारतवर्ष में अपना मत फैलाना चाहता था। राजा महानन्द मुरारदास के राज्यपर चढ़कर आया। बहुत घमासान युद्ध हुआ, और अन्त में मुरारदास मारा गया। महानन्द की सेना और योद्धाओं ने अगरोहे में बड़ी लूट मार मचाई, और उसके बेटे चन्द्रगुप्त को महलों

मे प्रचार किया जाना चाहिए। उसके महत्व पूर्ण ग्रन्थों का संसार की सम्पूर्ण भाषाओं में अनुवाद होना चाहिए। विवाद पूर्ण एवं सर्वोपयोगी विषयों पर विचार पूर्ण ट्रैक्ट प्रकाशित किए जाकर वे स्वल्प मूल्य एवं मुफ्तमें बाँटे जाने चाहिऐं। विभिन्न प्रान्तों में ऐसी २ अनेक संस्थाएं खोली जानी चाहिऐं जहाँ से उच्च कोटि के विद्वान् निकल कर समाज सेवा एवं संसार में जैन धर्म का प्रचार करें। प्रत्येक प्रान्तमें ऐसे सार्वजनिक पुस्तकालय होने चाहिऐं जो धर्म प्रचार को अपना मुख्य उद्देश्य समझ कर धार्मिक ज्ञान का प्रसार करें।

के भीतर ढूँढा। पूछने पर सुन्दरी ने अपने पुत्र की ओर संकेत करके कहा कि यही चन्द्रगुप्त है। इस प्रकार चन्द्रगुप्त की जान बचा ली गयी। जो मनुष्य इतिहास से अनभिज्ञ हैं, वे चन्द्रगुप्त को नायन का पुत्र बतलाते हैं, किन्तु वह नायन का बेटा नहीं था। जैन मत की पुस्तकों में भी उसे क्षत्राणी ही का पुत्र लिखा है। पुरानी प्रथा के अनुसार समस्त अग्रवाल जाति में विवाह के समय वधु के साथ नायन ही जाती है। मुरारदास का देहान्त ई० सन् ३४४ वर्ष पूर्व हुआ। उस समय जब महानन्द महलों के भीतर आया, तो वहाँ कोई रानी नहीं थी। चित्रवती का तो पहले ही स्वर्गवास हो चुका था। केवल वहाँ गिनन बाँदियां थीं। सुन्दरी को देखकर उसका मन चलायमान हुआ। उसने अपने सैनिक को आज्ञा दी कि इसको और इसके बच्चे को विहार ले चलो। इस प्रकार चन्द्रगुप्त अगरोहे को छोड़ कर विहारमें अपना नौकरानी सुन्दरी के सहित महाराजा महानन्दके पास रहने लगा। राजा महानन्द ने सुन्दरी को बुला कर उसको रानी बनाने को कहा तब उसने इस प्रतिज्ञा पर स्वीकार किया कि आप मेरे लड़के चन्द्रगुप्त को यदि युवराज बनावें तो मुझे रानी बनना स्वीकार है।

राजा महानन्द के और भी बहुत से पुत्र थे। इस कार्य्य में उसको इच्छा न होने पर भी, उस समय वे कुछ न कर सके। थोड़े काल पश्चात चन्द्रगुप्त को शिक्षा देने का प्रबन्ध हुआ। सुन्दरी बड़ी चतुर और विदुषी रानी थी। वह संस्कृत अच्छी प्रकार जानती थी। उसने अपने प्रिय पुत्र चन्द्रगुप्त के लिये "सूर्यज्ञान चालीसी" नामक एक पुस्तक रची थी, जिस में चन्द्रगुप्त के जन्म का वृत्तान्त लिखा था चन्द्रगुप्त को यह पुस्तक १५ साल की अवस्था में प्राप्त हुई थी। चन्द्रगुप्त उस पुस्तक को पढ़ कर अति प्रसन्न हुआ। उसको मालूम हुआ कि मैं राजा मुरारदास (अगरोहे प्रान्त) का पुत्र हूं। और चित्रवती मेरी माता है। साथ ही इस पुस्तक को पढ़ कर क्रोध भी हुआ, क्योंकि उसके पिता को राजा महानन्द ने मारा था। चन्द्रगुप्त ने तीन वर्ष यूनानी भाषा को अध्ययन करनेमें व्यतीत किये अर्थात् १८ वर्ष के भीतर वह पूर्ण युवा अवस्था को प्राप्त हुआ। उसने अपनी माता से आज्ञा माँगी कि मुझ को वैदिक धर्म की सहायता और बौद्धों से लड़ना चाहिये। इस बात को श्रवण कर सुन्दरी तम तमा उठी, किन्तु कुछ वश न चला, उसे पुत्र का विचार मानना पड़ा। अब चन्द्रगुप्त थानेसर में ५ मील पर सरस्वती नदी के तट पर जो गर्ग ऋषी का गुरुकुल था, उसमें आया, जहां मुरारदास का मंत्री परमानन्द अगरोहा से भागकर आया था। वहाँ वह परमानन्द से मिला और उसे वह पुस्तक दिखलाई। परमानन्द उसे देखकर समझ गया कि यह पुस्तक सुन्दरी की लिखी हुई है। उसने तत्काल ही चन्द्रगुप्त को प्यार किया और अपने साथ रक्खा। जिस समय राजा महानन्द को चन्द्र गुप्त के छिपकर भाग जाने का समाचार मालूम हुआ तो उसे बड़ा क्रोध हुआ, और उसने अपने प्रधान सेना पति बौद्ध को उसके पकड़ने के लिये पीछे भगाया। उसने जाकर गर्गऋषी के आश्रम पर आक्रमण किया। उसी समय चन्द्रगुप्त ने परमानन्दको सचेत किया और कड़ाहियोंमें तेल गर्म करके बौद्धों पर पिचकारियों द्वारा गेरना प्रारम्भ किया। इससे बहुत से बौद्ध मरे परन्तु तेलके समाप्त होने पर बौद्धों ने बड़ा उत्पात मचाया बहुत से वैदिक मतानुयायियोंको मारकर भगा दिया। किन्तु इस

प्रकार भागने को सहन न कर सका। उसने पुनः राजधर्मीयों को एकत्रित किया और थानेसर पर पुनः युद्ध प्रारम्भ हुआ, जिस में बौद्ध परास्त हुये और चन्द्रगुप्त की बड़ी प्रतिष्ठा हुई। किन्तु उस युद्ध से परनामी की आँख में घाव हो गया और उसी व्याधी से थोड़े ही काल में वह इस संसार से चलबसा। चन्द्रगुप्त अगरोहे के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। अब बौद्ध शंकर ने काठियावाड़ विजय किया और गिरनार के पास सेनाका घेरा डालदिया; किन्तु इसके कुछ काल बाद ही बौद्धशंकर का देहान्त हो गया। चित्रबोध इस के स्थान पर बैठा। चित्रबोध ने पहले किला भवानी में, जो अगरोहे के इलाके में था खूब लूट खसोट की पश्चात् अगरोहे पर अपना आधिपत्य जमा लिया। चन्द्रगुप्त इसको देख कर विचार करने लगा कि किस प्रकार बौद्धों को अगरोहे से निकालें। उस को कुछ सेना यदु वंशियों की मिली जो लूट मार करने में अपना जीवन सफल समझते थे। इसने उनको चित्रबोध के राज्य में लूट करने में लगा दिया तथा यदुवंसियों और अपनी सेना को एक ओर चित्रबोध की सेना के साथ रात्रि के समय मुठभेड़ पर लगा दिया। किन्तु फिर भी बौद्धों की विजय हुई और चन्द्रगुप्त भाग निकला।

चन्द्रगुप्त भागता हुआ भटकते २ पोरस के राज्य में जा निकला। मार्ग में इसको यह समाचार मिला कि यूनान का राजा सिकन्दर पोरस पर आक्रमण करने की अभिलाषा से दरियाये अटक पर पड़ा है। इस समाचार को चन्द्रगुप्त ने अपने मन में बहुत अच्छा समझा। और विचार किया कि कदाचित बौद्धों को परास्त कर दूं। इसी मन्तव्य को धारण कर दरियाये अटक की ओर गमन किया। किन्तु इन्हीं दिनों में सिकन्दर और पोरस के बीच युद्ध छिड़ गया। यह घटना ई० सन् से ३२७ वर्ष पूर्व की है।

पोरस दरिया जेहलम पर सिकन्दर के सामने आडटा। सिकन्दर ने जेहलम नदी के मोड़ पर चिलिया वाले के मैदान में १४ मील के अन्तर पर अपनी सेना एकत्रित की और एक रात्रि के समय जिसमें एक आंधी चल रही थी जेहलमसे पार हो गया और पोरस से युद्ध किया, किन्तु दैवयोग से पोरस के रथ का पहिया दल दल में फंस गया और उसका बेटा वहीं मर गया। निदान सिकन्दर ने पोरस की वीरता को माना और उसके साथ सुलह करली।

अभी सिकन्दर वापिस नहीं आया था कि चन्द्रगुप्त उसके पास जा पहुँचा। और उसको राजा नन्द वाली बहार के साथ लड़ने को कहा, किन्तु उसकी सेना पहले ही पञ्जाब की लड़ाई से तंग आई हुई थी। इस लिये उसने आगे जाने से जवाब दे दिया जिससे वह आशा हीन हो गया। यह घटना ई० सन ३२६ वर्ष पहिले की है।

चन्द्रगुप्त अब अम्बाले की तरफ चन्द्रऋषि के गुरुकुल मन्डल मिर्ती जो मारकण्डे के तट पर था वहाँ पहुँचा। किन्तु चन्द्रऋषि के गुरुकुल पर बौद्धों ने अधिकार जमा लिया था। चन्द्रगुप्त ने बौद्धों पर आक्रमण करके बौद्धों को परास्त किया। चित्रबोध का चन्द्रगुप्त ने मस्तक काट दिया। इसका समाचार बहुत दूर २ तक पहुँचा। जब राजा महानन्द को चित्रबोध के मारे जाने का समाचार ज्ञात हुआ, तब उसने अपने बड़े बेटे वीरानन्द को अपनी पचास हजार सेना और पराक्रमी सामन्तों के साथ चन्द्रगुप्त के सम्मुख युद्ध करने को भेजा। जिसने यमुना

के तटपर चूड़िया और जगाधरी के समीप अपने डेरे डाल दिये। अब चन्द्रगुप्त का साहस बहुत बढ़ा हुआ था उसने एक उपाय सोचा कि किसी न किसी प्रकार परनामी के पुत्र पद्म को अपने साथ मिलाना चाहिये। यह विचार कर उसने साधु का भेस धारण किया और बौद्धमत के भजनों का गायन करते हुये एक छोटी सा सितार को कन्धे पर रख कर बौद्धों की सेना की ओर प्रस्थान किया। वह सारी सेना म भ्रमणकर खूब देखता रहता था। निदान फिरते२ एक दिन वीरानन्द ने उसे अपने पास बुलाया, और भजन सुन कर आनन्दित हुआ। उसने चन्द्रगुप्तको कई दिन अपने समीप रक्खा। तब चन्द्रगुप्तने पद्म को कहला भेजा कि मेरी सम्पूर्ण सेना चार मील के अन्तर कोटबद्ध रहे। जब तीनदिन व्यतीत हो चुके तब उसने भजन गाते हुए अपने कपड़ों में से एक शीशी निकाल कर उसका कई बूंद पानी में मिला कर पान किया और पुनः भजन गान करना प्रारम्भ कर दिया। वीरानन्द ने पूछा कि यह क्या वस्तु है। चन्द्रगुप्त ने कहा कि यह वह वस्तु है जिस के पान करने से बड़ी सफलता प्राप्त होती है। वीरानन्द ने कहा कि क्या आप हमको इससे वञ्चित रक्खेंगे। चन्द्रगुप्त ने उत्तर दिया कि इस समय तो यह शीशी समाप्त हो चुकी है यदि आप आज्ञा देतो और प्रस्तुत हो सकती है। उसको आप स्वयम भी पान करे, अपनी सेना को भी पिलावें। चन्द्रगुप्त का यह दाव चल पड़ा और वीरानन्द तथा चाणक्य आदि बुद्धिमानोंने आनन्द पूर्वक इसका पान किया। पीने के साथ ही सेना सहित वीरानन्द मूर्च्छित हो गया। उसको मूर्च्छित देखकर उसी समय चन्द्रगुप्त अपनी सेना लेकर पहुँचा। बौद्धों पर एक दम आक्रमण कर दिया। रात्री का समय था, सबको कत्ल कर दिया। वीरानन्द चन्द्रकृषी के हाथ से मारा गया और चाणक्य आदि समस्त बौद्ध चन्द्रगुप्त के कारागार में आगये। चाणक्य ने बहुत विनती के पश्चात् कहा कि मुझ को छोड़ दो। चन्द्रगुप्त ने उत्तर दिया कि बलवान शत्रु को मुक्त करना महान मूर्खता है।

यदि तुम महानन्द और उसके पुत्रों को मार दो तो तुम को मुक्त कर सकता हूँ। चाणक्य ने यह नियम स्वीकार किये। और दश हजार बौद्धों के सहित वैदिक धर्म स्वीकार किया। यमुना के तट पर एक बड़ा भारी यज्ञ किया उसमें समस्त बौद्धों को चन्द्रगुप्त ने यज्ञोपवीत धारण कराया। पश्चात् चाणक्य विहार प्रान्त में आगया और महानन्द राजा के पास पहुंचा तथा उसे चन्द्रगुप्त की विजय और अपनी परास्तता का समाचार सुनाया। राजा महानन्दको बड़ा शोक हुआ। चाणक्यने अपनी प्रतिज्ञा स्मरण की। उसके एक शक्ति शाली पुत्रको सिंहासन दिलाने की प्रतिज्ञा करके महानन्द को मरवा दिया। अनन्तर इसके पांचों पुत्रों को परस्पर की ईर्षाग्नि में भस्म कर दिया। छठे पुत्र को चाणक्य ने स्वयं मार डाला। इससे विहार प्रान्त का कोई उत्तराधिकारी न रहा। जब चाणक्य का चन्द्रगुप्त के पास यह समाचार पहुंचा, तब वह बड़ा प्रसन्न हुआ और नगर में अधिकार जमा लिया तथा शुभ महुर्त में विहार प्रान्त की राजधानी पाटलीपुत्र में स्थापित करनेकी पृथा मनाई। अनेक प्रकारके कार्यालय प्रचलित किये, औषधालय खुलवाये, मार्गों को साफ किया। न्यायालय निर्माण किये, चन्द्रगुप्त का राज्य इतना विस्तृत देख कर यूनान के राजा को पुनः युद्ध करना पड़ा।

सिकन्दर भारतवर्ष से आने के पश्चात् थोड़े ही दिन जीवित रहा और बाबिल में मरगया। इसके पश्चात् उसके महामन्त्री सिल्यूकस ने यूनान और समीप के स्थानों पर अपना अधिकार जमा लिया। यहाँ तककि उसने लाहौर को भी विजय कर लिया। जब यह समाचार चन्द्रगुप्त को मालूम हुआ तो अपनी सेना लेकर उस पर चढ़ाई की और लाहौर के नज़दीक पहुँच कर उसने स्वयं ही एक पत्र लिखा और अपने आप ही दूत बनकर सिल्यूकस के पास जाकर उसको पत्र दिया। उस समय उसकी दृष्टि एक सुन्दरी के ऊपर पड़ी। जिसकी अवस्था उस समय १८ वर्ष की थी। उसने जान लिया कि यह सिल्यूकस की कन्या है। सल्यूकसने चन्द्रगुप्तके पत्र का उत्तर दिया कि मैं युद्ध के लिये तैयार हूँ। यदि तुमको मेरी आधीनता स्वीकार नहीं है तो युद्ध के लिये कटिबद्ध होजाओ। निदान सन् ११-१२ ई० से पूर्व युद्ध आरम्भ हुआ। चन्द्रगुप्त का पासा प्रबल रहा। सिल्यूकस ने चन्द्रगुप्त को लिखा कि बहुत ही अच्छा हो यदि आप मेरे से सहमत होजायें। नियम उपरिचित हुये सिल्यूकस ने स्वीकार किये और उनको पक्का करने के लिये चन्द्रगुप्त के साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया। इसके पश्चात् चन्द्रगुप्त का शासन पक्का होगया। उसका राज्य बङ्गाल से लेकर काबुल तक और काश्मीर से दक्षिण तक फैल गया। वह अपनी सारी आयु में बौद्ध धर्म का विध्वंस और वैदिक धर्म की उन्नति करता रहा।

एक बार चन्द्रगुप्त को विदित हुआ कि एक हलवाई बहुत अच्छा हलवा बनाता है और उसमें जोड़ें इन्सानी (नर रत्न) मिलाता है। चन्द्रगुप्त उसकी दुकान पर आया और हलवाई ने इसे मोटा ताज़ा देखकर उसे भोजन कराया और एक यंत्र द्वारा उसको नीचे उतार दिया। हलवाई की लड़की उसको देखकर आसक्त होगई और चन्द्रगुप्त को बचाने का बहुत यत्न किया। एक आदमी को लालच देकर उसके मन्त्री पद्म के पास भेजा। वह तत्काल आया और चन्द्रगुप्त की रक्षा की। उसने हलवाई और इस काम के करने वालों को कत्ल कराया। चन्द्रगुप्त ने वसुदेवी को अपनी रानी बनाया। उसने ६६ वर्ष तक राज्य किया और २९१ ईसा से पूर्व परलोक का रास्ता ले लिया।

प्रायः इतिहासवेत्ता उसके परलोक जाने को ईस्वी सन् २९१ से पूर्व बतलाते हैं। किन्तु जैन धर्मावलम्बी उसमें १२ वर्ष और सम्मिलित करते हैं। भद्रबाहु संहिता, राजबली कथा व श्रवण बेलगोला के शिलालेख देखने से पता चलता है कि एक बार चन्द्रगुप्त को उज्जैन में १२ स्वप्न आये। वह उनका परिणाम पूछने के लिये श्री स्वामी भद्रबाहु के पास आया। भद्रबाहु ने बतलाया कि इस स्थान पर १२ वर्ष का दुर्भिक्ष पड़ेगा। यह सुनकर वह अपने पुत्रको राज्य अर्पण करके मुनि हो गया। जब दुर्भिक्ष का समय समीप आया तो भद्रबाहु स्वामी ने अपने संघ को बुलाकर कहा कि यहां दुर्भिक्ष पड़ेगा। तुम सब कर्णाटक चलो। तब जिनदास माधोदत्त, बन्धुदत्त आदि सेठों ने प्रार्थना की कि महाराज हमारे यहाँ बहुतसा अन्न विद्यमान है, आप न जावें। किन्तु भद्रबाहु स्वामी ने स्वीकार न किया और वह अपने १२ सहस्र शिष्यों को लेकर कर्णाटक की ओर प्रस्थान किया किन्तु रामल्ल, स्थूलाचार्य, और स्थूलभद्र आदि श्रावकों के कहने से वहां ही रह गये। भद्रबाहु स्वामी जब वर्तमान देश मैसूरके उत्तर पश्चिम प्रान्त

में कटवीपड़ पहाड़ के समीप पहुचे । तो उनको मालूम हुआ कि उनके मरने का समय समीप आ गया है। उस समय उन्होंने वेशाखाचार्य को जो दश पूर्व के जानने वाले थे, अपने पट्ट पर बिठाकर अपने संघ सहित चोलमण्डल देश को भेज दिया और स्वयम चन्द्रगुप्त मुनि समेत वहां निवास करने लगे।

जब भद्रबाहु स्वामीका देहान्त हुआ तो चन्द्रगुप्त उनके चर्णों का निशान बनाकर उनकी सेवा करने लगा। जिस जगह गुफा में, भद्रबाहु स्वामी और चन्द्रगुप्त के चरण बने हुये है, वह श्रवण बेलगोला के नाम से प्रसिद्ध है। और उसको अब चन्द्रगिरी भी कहते हैं।

उज्जैन में बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ा। यहां तककि लोग अपने बच्चों को मार कर भक्षण करने लगे। श्रावकों ने मुनियों को, जो अबतक सदैव जंगल में निवास करते थे, अपने जीव की रक्षा के निमित्त शहर में रहने के लिये विवश किया। वे कम्बल ओढ़ कर और पात्रों को हाथ में लेकर रात के समय आहार लेजाने लगे और दिनमें खाने लगे। दुर्भिक्षके समाप्त होने पर वेशाखाचार्य कर्णाटक से उज्जैन और आरा में आकर रायमल, स्थूलाचार्य और स्थूलभद्र से मिले। इस समय स्थूलाचार्य ने पुनः दिगंबर प्रणाली पर आजाने के लिये आग्रह किया। किन्तु रायमल और विशाखाचार्य ने न माना। तदर्थ वे अर्द्धफालक कहलाने लगे। उस समय तक जैनमत में कोई शाखा न थी। यह मत अर्हन्त, जैन, अनेकान्त आदि नामों से प्रसिद्ध था। इसके सारे मुनि बिलकुल नग्न रहने के कारण दिगम्बर कहलाते थे। भद्रबाहु स्वामीका, जो अन्तिम श्रुतकेवली थे, स्वर्गवास होचुका था। अतएव दिगम्बर सम्प्रदाय का गुरु बेशाखाचार्य और अर्धफलका या श्वेताम्बर सम्प्रदाय का गुरु स्थूलभद्र नियत हुआ। क्या कोई सच्चा ऐतिहासिक पूरी खोज करके हमें बतलावेगा कि चन्द्रगुप्त उस समय जैनी था या वैदिक धर्मी? क्या उसने उल्लिखित लेख वैदिक धर्म के लिये किया या जैन धर्म के लिये? कृपया उस पुस्तक का पता भी दीजियेगा जिस में इन युद्धों का विवरण हो। हमारे पास जो लिखा है उससे वह जैनी प्रतीत होता है। किन्तु वह लेख भद्रबाहु स्वामी के पश्चात के हैं इससे यह प्रतीत होता कि चन्द्रगुप्त पहले वैदिक धर्मी था पश्चात वह जैन हो गया। इससे जैन मत का पूरा समाचार प्रतीत होगा।

हमने अपनी अग्रवाल वंशावली में लिखा है कि ईसा के ३२५ वर्ष पूर्व राजा नन्द ने सिकन्दरके साथ जेहलम पर लड़ाई की, किन्तु पराजय हुई और सिकन्दर ने उसको प्रसन्न होकर उसका राज्य उसे दे दिया। और यहां चन्द्रगुप्त की जीवनी लेखक पंडित राजनारायण अरमान ने वर्णन किया है कि चन्द्रगुप्त ने सिकन्दर से लड़ाई के वास्ते कहा और उसने टाल दिया। इसमें कौन सी बात सत्य है, किसी प्राचीन पुस्तक से प्रमाणित किया जाय तो बहुत उत्तम हो।

पुनः राजा दिवाकरदेव अगरोहे की गद्दी पर बैठे। उस समय १२४ और १५५ के बीच में—लोहाचार्य्य जी संघ सहित पधारे। और उपदेश दिया तो राजा दिवाकरदेव इस प्रकार प्रसन्न हुआ कि अपने परिवार सहित लौकिक और पारमार्थिक धर्म को सुनकर शीघ्र ही गृहस्थ धर्म में प्रविष्ट होगये और १ लाख से

कुछ अधिक अग्रवाल आदि जैन हुये। आजकल जो अग्रवाल जैन धर्म को लिये हुए हैं, वे उसी समय के स्मारक हैं। सूर्यवंशियों से सम्बन्ध टूट जाने पर और वैश्य रीति से धन संग्रह करने से कुंवर और लक्ष्मी पुत्र कहलाने लगे।

विक्रम की आठवीं शताब्दि तक अगरोहे की व्यवस्था सामान्य रहा। फिर सं० ७४८ में दो बड़े आदमी (शिवानन्द और धर्मसेन) धारानगर के तुमार वंशी राजा समरजीत को फुसलाकर अगरोहे पर चढ़ा लाए। संवत ७४६ विक्रम अथवा सन ६९५ ईस्वी में अगरोहा समर जीत के अधिकार में रहा। सारा बंग देश व कन्नौज सुप्रसिद्ध राजा हर्षवर्धन के बाद आगया था। समरजीतने सन ७०२ में इसका पश्चिमी हिस्सा शिवानन्द को और पूर्वी भाग धर्मसेन को पारितोषक में दे दिया। और जब शिवानंद अपने पश्चिमी हिस्से का राज्य अच्छी तरह न कर सका, तब उसके लड़के गोपाल को राजा बनाया। इसने दक्षिणी बिहार को अपने कबजेमें कर लिया और राजा केपालवंश को परास्त किया। दूसरा राजा धर्मपाल और तीसरा देवपाल हुआ। निदान जबसे अगरोहा बरबाद हुआ तबसे यह राजा सन्तान परम्परा से राज करते रहे और राज वंशी कहलाते रहे। जो अग्रवाल थे देश वंशी प्रसिद्ध हुए। जब खलीफा वलीद की आज्ञा से मुहम्मद अब्दुल कासिम ने सिन्ध देश पर आक्रमण किया और ७ जून सन ७१२ को जब एक ब्राह्मण राजा के लड़के दाहर वीर को मारा तो उस समय रतनसेन और गोकुलचंद राज वंशियों ने, जो अगरोहा छोड़ कर सरसे जा बसे थे, मुहम्मद अब्दुल कासिम से जा मिले और अगरोहे पर अधिकार जमाने की के लिये उसे इस नगर पर चढ़ालाए। उसने दिल खोलकर अगरोहे और सरसे में लूट मचाई। पश्चात् ४००० अग्रवाल लड़कर मर गये। इस समय इनकी १२०० सुशील स्त्रियां सती हुईं जो आज तक अग्रवालों के यहाँ विवाह आदि समयों पर पूजी जाती हैं। इन पतिव्रता स्त्रियों ने दुःखी दिल से कहा था कि कुल का नाश करनेवाले रतनसेन और गोकुलचन्द की सन्तान हमारी संतान से पृथक् रहे और अग्रवंशी ऐसे कलंकित नगर से बाहर रहें। अर्थात वे लोग कुल्हार अग्रवाल हैं (अधिक वृत्तान्त वंशावलीसे मालुम करें)। अब अगरोहा बरबाद हुआ पड़ा है। यह हिसार से १२ मील दूर पर एक टीले की शकल में है। यदि कोई धनवान भाई उसे खुदवावे या अन्य कार्य करें तो उसमें से जैन धर्म, बौद्ध धर्म और वैदिक धर्म के पुराने चिन्ह निकल सकते हैं, जैसे मथुरा के टीले से निकले हैं। इस टीले की खुदवाई का एक स्टीमेट (Estimate) रायबहादुर कन्हैयालाल इन्जिनियर (Engineer) ने सन १८८६ के लगभग बनवाया था जो Second circle Ambala में पड़ा है। यदि इस सम्बन्ध में कार्य किया जाय तो बहुत अच्छा हो। उसमें राय बहादुर ने लिखा था कि संभव है कि कोई खजाना मिल जावे क्योंकि यह शहर बड़ा प्रसिद्ध और करोड़ पतियों और लखपतियों का था।

स्वर्गीय-संगीत

नर हो, न निराश करो मन को।

कुछ काम करो, कुछ काम करो,
जग में रहके कुछ नाम करो।
यह जन्म हुआ किस अर्थ अहो!
समझो, जिस में यह व्यर्थ न हो।
कुछ तो उपयुक्त करो तन को,
नर हो, न निराश करो मन को ॥१॥

संभलो कि सुयोग न जाय चला,
कब व्यर्थ हुआ सदुपाय भला?
समझो जग को न निरा सपना,
पथ आप प्रशस्त करो अपना।
अखिलेश्वर हैं अवलम्बन को,
नर हो, न निराश करो मन को ॥२॥

जल-तुल्य निरन्तर शुद्ध रहो,
प्रबलानल ज्यों अनिरुद्ध रहो।
पवनोपम सत्कृतिशील रहो,
अवनीतलवत् धृतिशील रहो।
कर लो नभ-सा शुचि जीवन को,
नर हो, न निराश करो मन को ॥३॥

जब हैं तुम में सब तत्व यहां,
फिर जा सकता वह सत्व कहां?
तुम स्वत्व-सुधा-रस पान करो,
उठके अमरत्व-विधान करो।
दव-रूप रहो भव-कानन को,
नर हो, न निराश करो मन को ॥४॥

निज गौरव का नित ज्ञान रहे,
"हम भी कुछ हैं" यह ध्यान रहे।
सब जाय अभी, पर मान रहे,
मरणोत्तर गुञ्जित गान रहे।
कुछ हो, न तजो निज साधन को,
नर हो, न निराश करो मन को ॥५॥

प्रभु ने तुमको कर दान किये,
सब वाञ्छित वस्तु विधान किये।
तुम प्राप्त करो उनको न अहो!
फिर है किस का यह दोष कहो?
समझो न अलभ्य किसी धन को,
नर हो, न निराश करो मन को ॥६॥

किस गौरव के तुम योग्य नहीं?
कब, कौन तुम्हें सुख भोग्य नहीं?
जन हो तुम भी जगदीश्वर के,
(सब हैं जिन के अपने, घर के)
फिर दुर्लभ क्या उसके जन को,
नर हो, न निराश करो मन को ॥७॥

करके विधि-वाद न खेद करो,
निज लक्ष्य निरन्तर भेद करो।
बनता बस उद्यम ही विधि है,
मिलता जिससे सुख का निधि है।
समझो धिक् निष्क्रिय जीवन को,
नर हो, न निराश करो मन को ॥८॥

—मैथिलीशरण गुप्त (सरस्वती से उद्धृत)

जयधवला का प्रारंभिक मुद्रित अंश।

(ले० श्री वंशीधर व्याकरणाचार्य बीना)

धवलादि सिद्धान्त ग्रन्थों के उद्धार के लिये कम से कम वर्तमान विद्वत्समाज तो उत्सुक था ही, आज उनके उद्धार की संभावना की जाने लगी है। इसका प्रधान श्रेय श्रीमन्त दानवीर सेठ लक्ष्मीचन्द्र जी भेलसा को है जिन्हों ने आज के लिये अनावश्यक पुरानी परिपाटी से ममत्व हटाते हुए इसकार्य में द्रव्य का सदुपयोग कर धार्मिक समाज के सन्मुख अनुपम आदर्श उपस्थित किया है। श्रीमान बाबू हीरालाल जी सा० प्रोफेसर किंग एडवर्ड कालेज अमरावती भी शतशः धन्यवाद के पात्र हैं जिन्हों ने इसके संपादन का गुरुतर भार अपने ऊपर लेने का उत्साह किया है।

प्रोफेसर सा० सब से पहिले जयधवला टीका को उसके दर्शन व उससे होने वाले लाभ के लिये लालायित समाज के समक्ष उपस्थित करने में प्रयत्न शील है। समाज के इन दोनों उद्देश्यों में सफल प्रयत्न होने के लिये उन्हों ने जयधवलाका प्रारंभिक अंश मुद्रित कराकर उसके द्वारा समाज के विविध प्रकार के व्यक्तियोंके निकट विविध उद्देश्योंसे अपील उपस्थित की है आशा की जाती है कि समाजके धनी व विद्वान सभी महानुभाव शक्ति और योग्यता के अनुसार इस महाकार्य में सहायक होते हुए प्रोफेसर सा० की इस अपील का समुचित आदर करेंगे।

इस समय तक इस मुद्रित अंश की तीन आलोचनायें मेरे साहने हैं—१—पंडित कैलाशचन्द्र जी शास्त्री बनारस, २—पंडित मिलापचन्द्र जी कटारया व पंडित दीपचन्द्र जी पांड्या केकड़ीकी, ३—पंडित जुगलकिशोर जी मुख्तार सरसावा की। इन तीनों में पहिली व तीसरी आलोचनायें उक्त मुद्रित अंश से ही संबन्ध रखती हैं लेकिन दूसरी आलोचना इस के साथ २ पहिली आलोचना से भी संबन्धित है।

इन आलोचनाओं के देखने से मेरी इच्छा हुई कि मुद्रित अंश का दर्शन भी अवश्य करना चाहिये इसलिये चार आने के टिकट भेज कर उसे मंगाया भी जिसे देखकर मैंने भी कुछ आवश्यक विचार प्रगट करना उचित समझा है। यद्यपि मेरे यह विचार बहुत देर से प्रगट हो रहे हैं परन्तु विश्वास है कि आवश्यक होने से विद्वान के लिये ये उपेक्षणीय नहीं होंगे।

इस ग्रन्थ राज की रचना का जो इतिहास प्रोफेसर सा० ने प्रगट किया है उसकी आलोचना दूसरी व तीसरी आलोचनाओं द्वारा की जा चुकी है पंडित कैलाशचन्द्र जी ने इस विषय में प्रोफेसर सा० का अनुसरण किया है जान पड़ता है कि ऐसा वे प्रोफेसर सा० के कथन पर विश्वास करके जल्दी में कर गये हैं उन्हों ने स्वयं इसके आधार की खोज नहीं की।

इस इतिहास के विषय में विचारणीय बात यह है कि प्रोफेसर सा० आर्य मंक्षु और नाग हस्ती को गुणधर आचार्य की परम्परा का मानते हैं और कटारया जी व पांड्या जी ने इन दोनों आचार्यों को गुणधर आचार्य का साक्षात शिष्य होना स्वीकार किया है। प्रोफेसर सा० ने तो अपने कथन की पुष्टि में अभी कोई प्रमाण उपस्थित नहीं किया है परन्तु

कटारया जी व पांड्या जी ने अपने कथन की पुष्टि में दो प्रमाण उपस्थित किये हैं—

१– इन्द्र नंदी का श्रुतावतार, २ जयधवला की सप्तमी गाथा।

पहिला प्रमाण तो मेरे सामने नहीं है परन्तु जयधवला की सप्तमी गाथा को देखते हुए मेरा मन भी कटारया जी व पांड्या जी के कथन को स्वीकार करने के लिये ललचाता है विद्वानों को इस पर विचार करना चाहिये।

प्रोफेसर सा० गुणधर आचार्य कृत गाथाओं की संख्या जहाँ १८० बतलाते हैं वहां कटारया जी व पांड्या जी ने १८३ मूल गाथायें व ५३ विवरन गाथा में कुल २३६ बतलाई हैं इसका भी स्पष्टी करण होना चाहिये।

इसी इतिहास प्रकरण में प्रोफेसर सा० लिखते हैं "पाँचवें विभाग का नाम ज्ञान प्रवाद था जिस में १२ वस्तु (अध्याय) और प्रत्येक वस्तु में बीस बीस पाहुड थे। इसीके दशम वस्तु के तीसरे पाहुड का नाम 'पेज्ज पाहुड' या 'पेज्ज दोष पाहुड' था इसी पेज्ज पाहुड से कषाय पाहुड की उत्पत्ति हुई"।

प्रोफेसर सा० ने यह नं० १ की मूलगाथा व व्याख्यान के आधार पर लिखा होगा ऐसा जान पड़ता है। इसमें निम्न लिखित दो बातें विचारणीय हैं—

१. क्या इसका नाम 'पेज्ज दोष प्राभृत' ठीक है

२. क्या पेज्ज प्राभृत से कषाय प्राभृत उत्पन्न हुआ है। और यदि ऐसा व्याख्यान टीकाकार ने किया है तो उसका आशय क्या है?

प्राकृत भाषा में इसका नाम 'पेज्ज दोस पाहुड' पाया जाता है। इसका संस्कृत अनुवाद प्रोफेसर सा० ने 'पेज्ज दोष प्राभृत' किया है, मुख्तार सा० 'पेज्ज का अनुवाद 'प्रेय' मान कर 'प्रेयदोष प्राभृत' ठीक समझते हैं। कटारया जी व पांड्या जी ने इन्द्रनंदीके श्रुतावतार के आधार पर 'प्रायो दोष प्राभृत' अनुवाद की संभावना बतलाई है। परन्तु ग्रन्थकार ने इस ग्रन्थ राज का नाम 'पेज्ज दोस पाहुड' क्यों रखा इसका स्पष्टी करण किसी ने नहीं किया। जिस किसी ग्रन्थ का नाम, उसकी सार्थकता को लिये हुए ही रक्खा जाता है ऐसा आम्नाय है। यदि वास्तव में इसका संस्कृत नाम 'पेज्ज दोष प्राभृत' या 'प्रेय दोष प्राभृत' अथवा 'प्रायो दोष प्राभृत' ठीक है तो इसकी सार्थकता बतलाना चाहिये।

मेरी समझ से 'पेज्ज' शब्द की संस्कृत छाया कुछ भी हो परन्तु उसका अर्थ 'राग' करना चाहिये तथा 'दोस' की संस्कृत छाया 'द्वेष' मान करके इस ग्रन्थ राज को 'राग द्वेष का प्राभृत' कहना ठीक होगा।

इस 'राग द्वेष प्राभृत का अपर नाम ही 'कषाय प्राभृत' है न कि पेज्ज प्राभृत से कषाय प्राभृत उत्पन्न हुआ है। क्योंकि राग और द्वेषका उपसंहारात्मक नाम ही 'कषाय' है। पृष्ठ १५ के "कथमेकस्मिन्नुत्पाद्योत्पादकभावो? नोपसंहार्यादुपसंहार (क) स्य कथंचिद् भेदोपलंभतस्तयोरेकत्वविरोधात्" इस वाक्य में पठित 'उपसंहार्यादुपसंहार (कस्य' यह भी इस बातका सूचन कर रहा है। यहांपर राग और द्वेष उपसंहार्य हैं, कषाय उपसंहारक है। उपसंहार्य और उपसंहारक में उत्पाद्योत्पादक भाव मान करके ही टीकाकार ने 'तत्थ उप्पण्णमिदि वेत्तव्वं' ऐसा व्याख्यान किया है।

पृष्ठ १८ की "पेज्जदोसपाहुडस्स पेज्जपाहुडमिदि

सण्णा कथं जुज्जदे? वुच्चदे, दोसो पेज्जाविणाभावित्ति वा, जीवदव्व दुवारेण तेसिमेयत्तमत्थित्तिवा" इन पंक्तियों के अर्थ पर विचार किया जाय तो स्पष्ट मालूम होजायगा कि 'पेज्ज दोष पाहुड' का तात्पर्य 'रागद्वेष प्राभृत' से है।

पेज्जदोस पाहुड़ की पेज्जपाहुड़ संज्ञा कैसे कही जा सकती है? इस शंका का समाधान यहां पर किया गया है कि 'दोस' पेज्ज का अविनाभावी है। अथवा जीवद्रव्य के द्वारा पेज्ज और दोस दोनों में एकता है।

जब इस ग्रन्थराज को रागद्वेष का प्राभृत मान लिया जाता है तो इन दोनों समाधानों की उपयुक्तता समझ में आजाती है। क्योंकि 'द्वेष' राग का अविनाभावी है इसलिये जिस प्रकार 'वीतराग' शब्द का आशय 'वीतराग, शब्द से लिया जाता है उसी प्रकार 'पेज्जपाहुड़' शब्द का आशय भी 'पेज्जदोस पाहुड' से लेना चाहिये। तथा जब राग और द्वेष दोनों का आश्रय जीव है तब एकाश्रयित्व सम्बन्ध से राग और द्वेष दोनों को एक माना जासकता है। स्वयं प्रोफेसर सा० व अन्य विद्वान विचार करेंगे कि मेरे लिखे अनुसार इस ग्रन्थराज को रागद्वेष का प्राभृत मानना तथा इसका दूसरा नाम ही 'कषाय प्राभृत' स्वीकार करना कहां तक अनुचित होगा?

जयधवला के मुद्रित अंश की आलोचना तीनों आलोचनाओं द्वारा प्रायः की जाचुकी है और उसमें मैं सहमत हूं। परन्तु जहां मुझे आवश्यक विशेषता मालूम पड़ती है उसको प्रगट कर देना उचित समझता हूं।

पृष्ठ १० पर 'चक्खुमइयाए' का संस्कृत अनुवाद 'चक्षुष्मत्यं' उचित जान पड़ता है। उसीका अर्थ चक्षुष्मती होगा, 'चक्षुष्मयी' का नहीं।

इसी पृष्ठ पर 'जेमउज्ज मंखुणा सो' के स्थान पर कटारया जी व पोड्यार्जीका 'जेणज्जमंखुणा सह' पाठ मानते हुये मुझे इतना विशेष लिखना है कि इस गाथा में 'अज्जमंखुणा सह' यह अंश मध्यदीपक है। जिससे देहली दीपक न्याय से नागहस्ती आचार्य के साथ आर्यमंक्षु आचार्य का अवधारण किया के समान वक्खान क्रिया में भी अन्वय करना चाहिये।

पृष्ठ ११ पर 'परमागम' शब्द का अर्थ ब्रेकिट में 'उत्तम शास्त्र' न देकर 'अध्यात्मशास्त्र' या 'आत्मोपकारक शास्त्र' दिया जाता तो अच्छा था।

पृष्ठ १२ पर "तथा पारिणामिकभाव दोनों कारणों से रहित है" इसके स्थानमें "पारिणामिक भाव दोनों तरह के कारणपने से रहित है" ऐसा लिखना चाहिये था तथा इसी पृष्ठ पर 'यह तो विरोध हो जायगा' 'प्रमाणानुसारी होने में विरोध पड़ जायगा' ऐसे अनुवाद ग्रन्थकार के आशय को नहीं बतला सकते हैं। यह त्रुटि इस अनुवाद में अधिकतर पाई जाती है क्योंकि अनुवाद करते समय प्रोफेसर सा० ने केवल विभक्त्यर्थ या पर्याय शब्दों का ही अधिक ध्यान रक्खा है।

पृष्ठ १३ पर 'ण च सिस्सेसु सम्मत्तत्थितम सिद्धं अहेदु-दिट्ठिवाद-सुणणसवणगाहणुव वत्तीदो त्ति तदत्थित्तसिद्धी दो' इस वाक्य में 'अहेदु' शब्द का अर्थ प्रोफेसर सा० ने 'हेतु रहित' किया है परन्तु इससे ग्रन्थकार के अभिप्राय को समझने में संदेह पैदा हो जाता है इस लिये इस पद का अर्थ 'प्रयोजन रहित' या 'प्रयोजन के बिना' करना चाहिये। इस स्थानमें एक महत्वपूर्ण टिप्पणीकी भी आवश्यकताहै।

जैनागम में बतलाया है कि मिथ्या दृष्टि ११ अंग ६ पूर्व तक पढ़ सकता है अन्त के पांच पूर्वों का अध्ययन वह नहीं कर सकता है।

यदि इस स्थान को गंभीरता पूर्वक देखा जाय तो यह बात सहज ही में समझी जा सकती है। अन्त के पांच पूर्वों का विषय लौकिक चमत्कारों की दृष्टि से अधिक महत्व का है। मिथ्या दृष्टिसे इनका अध्ययन करके ऐहिक लाभ, पूजा, सत्कार आदि की अभिलाषासे चामत्कारिक प्रयोगों द्वारा जन साधारण को अपने अनुकूल बनाकर सत्यधर्म से वंचित कर सकता है इस लिये ही आचार्यों ने इन पांच पूर्वों के पढ़ने का मिथ्यादृष्टि को निषेध बतलाया। मिथ्यादृष्टि में इन पांच पूर्वों के अध्ययन की योग्यता नहीं है इस का अर्थ यही करना चाहिये कि मिथ्यादृष्टि ऐहिक प्रयोजन की अभिलाषा के बिना इन पांच पूर्वों का अध्ययन नहीं कर सकता है।

इसी पृष्ठ पर 'लाह-पूजा-सक्कारे पडुच्च' की संस्कृत छाया कटारया जी व पांड्या जी के लिखे अनुसार 'लाभ-पूजा-सत्कारान प्रतीत्य' मान करके इसका अर्थ 'लाभ, पूजा और सत्कार के उद्देश्य से' ऐसा करना चाहिये। इससे ग्रन्थकार का आशय सर्वसाधारण सरलता पूर्वक समझ सकते हैं

इसी पृष्ठ पर 'अप्पाण णिराकरण दुवारेण' के स्थान में कटारया जी व पांड्या जी का 'अण्णाण णिराकरण दुवारेण' पाठ ठीक जचता है। पंडित कैलाशचन्द्र जीका 'अप्पाण निरावरण दुवारेण' नहीं।

इसी पृष्ठपर 'विपहिचारो'के स्थानमें कटारयाजी व पांड्या जी ने 'वि विहिचारो' पाठ माना है परन्तु केवल 'विहिचारो' पाठ अच्छा मालूम होता है स्वतंत्र 'वि' जिसका अर्थ 'भी' होता है—की कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती। —अपूर्ण

—※—

हिंदूधर्म क्या है ?

(ले०—श्री प्रकाश जी एम० एल० ए०)

किसी चीजकी परिभाषा देना कठिन ही नहीं, असम्भवप्राय है। परिभाषा करते हुए बड़े २ विद्वान भी गड़बड़ा जाते हैं। प्राचीन यूनान के सुप्रसिद्ध दार्शनिक और शिक्षक अरस्तूने जब 'मनुष्य' की यह परिभाषा की कि "वह बिना परका दो पैरका जन्तु है" तब उसके किसी तबीयतदार और मनचले विद्यार्थी ने एक मुर्गे का सब पर नोच कर और उस पर यह लिखकर कि 'यह अरस्तू का मनुष्य है' उनकी मेजपर रख दिया। तब से संसार के सभी विद्वान परिभाषा करने से घबराते हैं। वस्तु-विशेष का वर्णनमात्र करके अपने आपको सन्तुष्ट कर लेते हैं। यूक्लिड की प्रसिद्ध परिभाषा में भी वर्णन ही है। कुछ लोग अपने प्राण बचानेके लिये निषेधात्मक परिभाषा देते हैं, जिस प्रकार 'ब्रह्म' की परिभाषा 'नेति नेति' से दी गयी है। ऐसी अवस्था में मेरे ऐसे अल्पबुद्धि व्यक्ति के लिये हिन्दू धर्म ऐसे विशाल और जटिल विषय की परिभाषा देने का यत्न करना दुःसाहस होगा। और लोगोंकी दिखलायी परम्परा के अनुसार निषेधात्मक शब्दों और उसके वर्णन से ही मैं भी अपना सन्तोष कर लूंगा।

हिन्दू-धर्म उस अर्थ में धर्म नहीं है जिस अर्थ में साधारण प्रकार से धर्म समझा जाता है। वह 'मजहब' या 'रिलीजन' नहीं है। उसके अन्तर्गत बहुत से सम्प्रदाय हैं, जो 'मजहब' शायद कहे जा सकते हैं, पर वह आचार-विचार 'मजहब' नहीं कहा जासकता जिसका व्यापक संकेत 'हिन्दू धर्म' से होता है। हमारे यहाँ 'धर्म' शब्दका बहुत से अर्थों में प्रयोग होता है। 'कर्तव्य' 'नित्यकर्म' 'लोकाचार', 'सद्व्यवहार', 'रीति रस्म', सभी 'धर्म' कहे जाते हैं। जब हिन्दू धर्म की चर्चा होती है तब सब के मनमें प्रधान रूपसे भी एक ही प्रकार के भाव उसके सम्बन्ध में नहीं होते। गौड़ रूप से तो सभी में अन्तर है, पर हमारे धर्म की विशेषता है कि मुख्य मुख्य बातों में भी समानता नहीं है। जब बौद्ध धर्म, ईसाईधर्म अथवा इसलाम-धर्म का नाम लिया जाता है तब सब के मन में कुछ खास खास विचार एकाएक उठ आते हैं। विवेचना करने पर चाहे अन्तर प्रतीत हो पर प्रधान बातों में विचार-भेद नहीं होता। लेकिन शायद ही दो हिन्दू ऐसे मिलें (जबतक कि उसके अन्तर्गत सम्प्रदाय-विशेष के सदस्य दोनों न हों) जिनका इसके सम्बन्ध में एक ही विचार है। ऐसा होने पर भी वे सम्प्रदाय विशेष का ही अपने को कहते हैं, हिन्दू तो उनके लिये एक साधारण विशेषण है जिसका कोई खास महत्व नहीं है न जिसका कोई विशेष प्रभाव ही उनके प्रति दिन के जीवन पर पड़ता है।

किसी भी धर्म के (रिलिजन) या मजहब के अर्थ में तीन प्रधान अंग होते हैं। पहले में हमें बतलाया जाता है कि संसार की सृष्टि कैसे हुई। 'संसार' का अर्थ उस सबसे है जिसका अनुभव हम अपनी इन्द्रियों से कर रहे हैं। सब मजहब अपने अनुयायियों को समझाने का यत्न करते हैं कि दुनिया कहाँ से और कैसे आयी। दूसरा अंग कर्मकाण्ड का होता है, जिस

में धर्म विशेष के अनुयायियों को यह बतलाया जाता है कि किन किन प्रकारों से जीवन के भिन्न भिन्न अवसरों पर विशेष कार्य करना चाहिये। यह एक प्रकार से संस्कारों का अध्याय होता है। गर्भाधान से मृत्यु तक जो विशेष विशेष घटनाएं होती हैं उन के नियमन, नियंत्रण, प्रदर्शन आदि के रूप इसमें बतलाये जाते हैं। आवश्य ही सब मजहबों का यही बाह्य रूप होता है। प्रायः इसी पर सबसे अधिक जोरभी दिया जाता है। इसी में परस्पर का प्रधान अन्तर भी पाया जाता है। इसी के कारण आन्तरिक एकता अर्थात प्रेम और बाह्य अनेकता अर्थात विद्रोह पैदा होता है। तीसरा अंग नैतिक आदेशों का होता है, जिसमें यह बतलाया जाता है कि व्यक्ति का अन्य व्यक्तियों और समष्टि के प्रति क्या कर्तव्य है। मनुष्य के कठोर जीवनको सुचारु रूपसे संघटित करने और परस्पर सद्व्यवहार स्थापित कर समाज में मनोमालिन्य और अन्य प्रकार की कठिनाइयों को हटाने का प्रयत्न इसके द्वारा किया जाता है।

सारा उद्देश्य यह है कि मनुष्य, जिसे विवश हो कर संसार में जन्म लेना पड़ता है, अपने शारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक जीवन को इस प्रकार से व्यतीत करे कि उसे और उसके द्वारा दूसरोंको सुख मिले, और उचित मार्ग से चलने पर अनिवार्य मृत्यु के बाद भी सुख की आशा और अनाचार करने पर दुःख का भय देकर सब एक निर्दिष्ट मार्ग पर रखे जायें, जिससे अभीष्ट प्रकार से संसार चला जाय। उदाहरण के लिये ईसाई मजहब ही ले लीजिये। उन की एक धर्मपुस्तक है। वह ईसाइयोंके लिये सर्वमान्य है। पहले तो वह यह बतलाती है कि संसार की उत्पत्ति कैसेहुई? ईश्वर आदम होआ, शैतान आदिका वर्णन है। फिर यह बतलाती कि है ईसाई के क्या २ संस्कार हैं, जिनसे कोई व्यक्ति ईसाई कहा जा सकता है। इस में बपतिस्मा, विवाहपद्धति, प्रार्थनाके प्रकार मृत्युके समयके कृत्य आदि सब बतलाये हैं। साथही उस में दया, दान, पिता-माता की भक्ति, अतिथियों सत्कार, सदाचार आदि का आदेश है। इसी प्रकार सभी मजहबों का विभाग कर उसकी परीक्षा की जा सकती है। हिन्दू धर्म के अन्तर्गत भिन्न भिन्न सम्प्रदायों में भी ये विभाग देखे जा सकते हैं। नानकपंथ कबीरपंथ, रामानुज, सम्प्रदाय राधास्वामी आदि सम्प्रदायों की यदि विवेचना की जाय तो मालूम होगा कि उनके विश्वासों के आधारके भी यही भाव हैं और वे भी सृष्टि की रचना के कारण, अपने विशेष सम्प्रदायके बाह्यरूप, और सदाचारके प्रकार बतलाते हैं।

अब हिन्दू धर्म क्या है पहले तो 'हिन्दू' शब्द से ही प्रतीत होता है कि यह न किसी विशिष्ट पुरुष का सूचक है जिसने इस धर्मका प्रवर्तन किया हो, न इस के पास कोई ऐसा ग्रन्थ ही है जिसे वह प्रणाको देकर अपने सम्बन्धका ज्ञान प्रदान कर सके। 'हिन्दू' तो हिन्द के रहने वाले सिन्धु नदी पर बसे हुए लोग हैं, न कि किसी विचार विशेष के अनुयायी। आज भी अमेरिका में भारतीय चाहे वे मुसलमान या ईसाई की क्यों न हों — 'हिन्दू' ही कहे जाते हैं। हिन्दू शब्द भी नया है। उस व्यवस्था को जिसे मोटे तौर से 'हिन्दू' कहते हैं, पुराने ग्रन्थों में इसको प्रमाण पुस्तकों में, मानव धर्म या सनातन धर्म या वर्णाश्रम धर्म कहा है। 'मानवधर्म' से यह मालूम पड़ता है कि जो लोग इसके प्रवर्तक रहे हैं वे मनुष्य मात्र का धर्म बतला रहे हैं। यों तो यह कहा जा सकता है कि

सभी मज़हब सारे मनुष्य समाज को अपनाना चाहते हैं पर हिन्दू धर्म का यह अवश्य विशेषता है कि उसने बिना किसी संस्कार विशेष के—बिना बपतिस्मा या सुन्नत के—सबको अपना लिया और सब के लिये व्यवस्थाकर डाली। 'सनातनधर्म' इस बातका सूचक है कि इसके संस्थापकों के अनुसार यह धर्म अनादि अनन्त है। यह मनुष्यों के आन्तरिक स्वभावसे है जो सदा अपरिवर्तनीय ही समझा जासकता है। वर्णाश्रम यह दर्शाता है कि इस धर्म में वर्ण और आश्रम की व्यवस्था कर सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन का संघटन किया गया है। इन्हीं शब्दों पर ध्यान रखनेसे हम इसे समझ सकेंगे।

हिन्दू धर्म कोई मज़हब नहीं है, वह किसी व्यक्ति-विशेष या देवता विशेषका उपासक नहीं है, वह किसी विशेष विचार का प्रचारक या किसी विशेष परलोक मार्ग का प्रवर्तक नहीं है। वह वास्तव में सारे मनुष्य समाज के सुदृढ़ संघटन का एक प्रकार है। और उसका आधार दो आध्यात्मिक विश्वास कर्म और पुनर्जन्म पर है। यदि ये दो विश्वास न हों तो जो समाज संघटन हिन्दू धर्म चाहता है वह कदापि नहीं हो सकता। चाहे कितने ही सम्प्रदाय हमारे बीचमें क्यों न हों, जहां तक मैं जानता हूं, किसी भी सम्प्रदाय के किसी भी अनुयायी को इन दो बातों में शंका नहीं होती। सब हिन्दू यह मानते हैं कि हम जो कुछ हैं अपने कर्म के कारण हैं और जैसा कर्म हम करेंगे उसी के अनुसार हम आगे के जन्म में होंगे। ये दो विश्वास डाल कर समाज का संघटन करने का विशाल प्रयत्न हिंदू धर्म ने किया है। थोड़े में हिन्दू धर्म स्वयं ही एक समाज संघटन है, जिसमें कर्म और पुनर्जन्म के विश्वास के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति का जन्म से ही समाज में पद और कार्य निर्दिष्ट कर दिया गया है। कोई भी पद छोटा-बड़ा नहीं है। सभी अपने अपने स्थान पर सम्मान के योग्य हैं, सभी सबकी सहायता करते हैं, सभी समाज रूपी पुरुष के ज़रूरी अंग हैं। जब सबकी सहायता और पुष्टि करेंगे तभी व्यक्ति और समष्टि दोनों का लाभ हो सकता है।

संसार में मनुष्य है। वह अपना सुख चाहते हैं। सुख के लिये व्यक्तिगत और समाजगत संघटन की आवश्यकता है। मनुष्य होने से ही उसके ऊपर मानव धर्म लागू हो जाता है। उसके सुखकी अभि-लाषा सनातन होने के कारण उस पर सनातन धर्म लागू हो जाता है। बिना समुचित संघटन किये मनुष्य के लिये सुख सम्भव नहीं है, अतएव उस पर वर्णाश्रम-धर्म लागू हो जाता है। संसार में मनुष्य पैदा हुआ। माता पिता ने उसका भरण पोषण किया उसको अपने पैरों खड़ा होने के योग्य बनाया। अब उस को संसार में किसी कार्य में लगना ज़रूरी है। क्या कार्य करे? बहुत दौड़ धूप, नाक रगड़ने, ठोकर खाने की क्या आवश्यकता है? आखिर उसके बापका भी तो कोई काम रहा है। सभी काम संसार के लिये आवश्यक है। कोई काम खराब नहीं है, काम करने वाला खराब हो सकता है। जाति जाति का काम बंटा हुआ है। हर एक आदमी के लिये पैदाइश से ही काम तैयार है। उसी काम को उठा लो। ठीक तरह करो। उसीमें अपना और सबका भला समझो।

पर व्यक्ति कहता है कि यह काम मेरे योग्य नहीं है। मैं इससे बहुत अच्छे काम के योग्य हूं। मुझे उसका मौका मिले। तब समाज कहता है—जैसा तुम्हारा कर्म था उसी के अनुरूप तुम्हारी जाति है

और उसीके अनुकूल तुम्हारा काम है। एक व्यक्तिकी अहंमन्यता के कारण समाज की दुर्व्यवस्था नहीं होने दी जा सकती। यदि इसे अच्छी तरह करोगे, यदि कर्तव्य-परायण होगे तो तुम्हें ऊंची जाति और ऊंचा काम किसी आगे के जन्म में दिया जायगा। अपनी महत्वाकांक्षा को थोड़ा दबाये रहो। सब कुछ समय से होगा। यदि कर्म और पुनर्जन्म में विश्वास न हो तो कदापि यह सम्भव नहीं है कि व्यक्ति को इस प्रकार से आश्वासन दिया जा सके। वर्णकी व्यवस्था जन्म से ही प्रत्येक के लिये उपयुक्त काम को कर सकनेकी व्यवस्था है। वर्णयुक्त समाज में व्यक्ति अपनी जाति विशेष की सम्मान और प्रशंसाकी ही फ़िकर करता है। दूसरी जाति के लोग उसे क्या समझते हैं, इसकी उसे चिन्ता नहीं रहती। इसीसे वह काम ठीक तरह कर सकता है। ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र की वर्णव्यवस्था इन्हीं भाव और उद्देश्यों का सूचक है !

प्रत्येक व्यक्ति के लिये भी चाहे वह किसी जाति का क्यों न हो, चाहे वह कोई भी काम क्यों न करता हो, एक निश्चित रूप से रहना आवश्यक है। अपने जीवन के प्रथम भाग में उसने संसार के कार्य के योग्य अपने को बनाने के लिये समुचित शिक्षा प्राप्त की, चाहे शिक्षा पाठशाला की हो, या व्यवहारिक खेत और कल कारखाने की हो। दूसरे भागमें उसने उस शिक्षा को काम में लाकर उसके द्वारा अपना और अपने घर वालों का भरण पोषण किया। और साथ ही समाज के आवश्यक अंग की पुष्टि कर उस की सेवा की। उसके लिये यह उचित है कि एक खास आयु तक पहुँच कर वह अपना काम स्वयं अलग होकर दूसरों को सुपुर्द कर दे। उसके लिये यही अच्छा है, चाहे सांसारिक दृष्टि से कितना ही सफल प्रयत्न क्यों न रहा हो। उसे विश्राम मिलता है और दूसरे उसमें बुरा नहीं मानते, यह नहीं चाहते कि वह मरे जिससे हमें भी आगे बढ़नेका मौका मिले विश्राम की अवस्था में अपने अनुभव से वह दूसरों की सेवा बिना कुछ लिये कर सकता है। जब इसके भी योग्य न रह जाय और प्राण शरीरको न छोड़े तो तपस्या कर आगे के लोक के लिये बिना इस लोक पर बोझ हुए तैयारी कर सकता है।

> प्रथमे नार्जिता विद्या द्वितीये नार्जितं धनं ।
> तृतीये न तपस्तप्तं चतुर्थे किं करिष्यति ॥

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास की आश्रम व्यवस्था इन्हीं भावों और उद्देश्यों का सूचक है। इस धर्म ने आश्रम की व्यवस्था कर व्यक्ति को शांति देने का यत्न किया है जैसे वर्ण की व्यवस्थाकर समाज को शांति देने का यत्न किया है। उसने हमारे सामाजिक और व्यक्तिगत जीवनसे उस भयंकर चढ़ा ऊपरीको हटाना चाहा है जिसने आज हमारे सामने ऐसी ऐसी घोर समस्याएं उपस्थित करदी हैं कि हम लोग त्रस्त और किंकर्तव्य विमूढ़ हो रहे हैं। आधुनिक समाज ने व्यर्थ ही कुछ काम को छोटा या नीच मान लिया है, कुछ को बड़ा और गौरवयुक्त सभी लोग इन बड़े कामों के लिये दौड़ते हैं। सब उसे पा नहीं सकते। निराश होते हैं। जो काम कर सकते हैं सो भी नहीं करते जिससे उसका ह्रास होता है। इसीसे आज की भयंकर दुरवस्था फैली हुई है। भगवान-कृष्ण ने ठीक कहा है—

> एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।
> अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥

आज से उद्धृत)

सामाजिक उत्थान

किसी समय जैन समाज का संसार में बोलबाला था। राजशक्ति, ज्ञानशक्ति, आर्थिक बल, जनबल आदि सभी आवश्यक सामग्री जैन समाज में सन्निहित थीं। अभ्युदय और यश जैन समाज के चरणों में लोटता फिरता था। किन्तु आज वही जैन समाज अपनी समस्त शक्तियां खोकर दीन होरहा है। फिर भी सम्हल कर उठ खड़े होने का उसको खयाल नहीं होता। जिनको हमने अपना रक्षक मान रक्खा है। वे ही इसकी क्षीण काया को चूंट रहे हैं।

समय के थपेड़ों से एक तो वैसे ही जैन जाति की संख्या १२ लाख रह गई है। उसमें भी फिर तीन टुकड़े होगये हैं। इनका एक टुकड़ा हमारा दिगम्बर सम्प्रदाय है जिसकी कि दशा सबसे अधिक सोचनीय है। इसके जितने घर हैं उतने ही मत और दल हैं। संसार में यदि कोई भूख से मरता है तो कोई अभागा अधिक खा-पीकर अजीर्णता से मृत्यु का मुंह देखता है किन्तु दिगम्बर सम्प्रदाय भूख और अजीर्णता दोनों आफतों का शिकार होरहा है।

अनेक भाई तो शिक्षा की भूख से खाली पेट रह कर अजैन बनकर समाज की मृत्यु संख्या बढ़ा रहे हैं और उन महानुभावों की संख्या भी कम नहीं जो शिक्षा को पचा न सकने के कारण जैन समाज के ह्रास के कारण बन रहे हैं। हमारे अनेक शिक्षित महानुभाव दलबंदी की दल दल से समाज का वातावरण इतना दूषित बना रहे हैं कि यहाँ श्वासोच्छ्वास के लिये शुद्ध वायु का मिलना कठिन होरहा है।

दिगम्बर सम्प्रदाय में पहले सेठ दल, बाबू दल थे, फिर पंडित दल का प्रादुर्भाव हुआ, कुछ समयसे पंडित दल के कई खंड हो गये, बीसपंथ, तेरहपंथ, आदि संसार के सभी दल दिगम्बर जैन समाज में आ घुसे जिसका परिणाम यह हो रहा है कि सामाजिक हित की कोई भी बात एक स्वर से न तय हो पाती है और न उसका अमल होता है। मनचले शिक्षित लोग अपनी नित्य दृष्टि से टकटकी लगाये देखा करते हैं कि अगर कोई मनुष्य धर्म प्रचार या सामाजिक हित का कोई कार्य करता है तो झट उसपर कोई दोषारोपण करके बजाय उसे उत्साहित करने के उसको पीछे गिराने की चेष्टा करते हैं।

यह बात अटल है कि समाज में सभी प्रकार के मनुष्य होते हैं धनिक, निर्धन, शिक्षित, अशिक्षित, सज्जन दुर्जन, सदाचारी, दुराचारी आदि। जो कि समय समय पर सभी काम आते हैं। किसी कामको धन की शक्ति से किया जा सकता है तो किसी को शरीर की शक्ति से किया जा सकता है। कोई काम विद्वान के योग्य होता है तो बहुत से काम अशिक्षित लोगों के साध्य होते हैं। बात यह है कि समाज का प्रत्येक मनुष्य योग्य कार्य के लिये आवश्यक है।

यदि बाबूदलके खयालसे पंडितदलका अस्तित्व अनुपयोगी है तो उनकी भारी भूल है और यदि पं० दल बाबूदल का अभाव उपयोगी समझता हो तो

वहभी भूलभुलैयों में है। धनिकवर्ग निधन जनताकी उपेक्षा करे तो भी निर्वाह नहीं और यदि धनिक लोगों की उपेक्षा की जावे तब भी जैन समाज की मशीन नहीं चल सकती। यह मशीन तो तभी चलेगी जब कि इसके सभी पुर्जे अपना अपना कार्य करते रहे। कहने का मतलब यह नहीं कि उन पुर्जों की कीचड़ को साफ न करना भी उपयोगी है।

जिस कार्य को श्रीमान पं० माणिकचन्द जी कर सकते हैं उसको वैरिष्टर चम्पतराय जी नहीं करसकते और 'की ऑफ नॉलेज' का निर्माण या इंग्लंकशन केस की पैरवी बैरिष्टर साहिब कर सकते है उसको पंडित जी नहीं कर सकते। यदि पं० मक्खनलाल जी पंचाध्यायी की टीका कर सकते है तो वह भार बा० जुगलकिशोर जी से नहीं उठ सकता और जो समन्तभद्राचार्य के इतिहास की खोज बा० जुगलकिशोरजी से हुई है वह पं० मक्खनलाल जी से नहीं बन सकती। पं० इन्द्रलाल जी शास्त्री कविता बना सकते हैं किन्तु प्रतिवादी से शास्त्रार्थ नहीं कर सकते। पं० राजेन्द्र कुमार जी कविता नहीं कर सकते। हां, प्रतिवादी के दांत खट्टे कर सकते हैं। जो कार्य सर सेठ हुकमचन्द जी कर सकते है उसको एक साधारण मनुष्य नहीं कर सकता किन्तु इसमेंभी रंचमात्र संदेह नहीं कि जो समाज सेवा साधारण दरिद्र पुरुष से मौकेपर होसकेगी वह सरसेठ सा० से नहीं होसकती इस अवस्था में कौन बुद्धिमान पुरुष यह कह सकता है कि अमुक व्यक्ति या अमुक दल जैन समाज के लिये सर्वथा घातक है। हां, यह बात अवश्य है कि जिस दलकी नीतिमें या जिस व्यक्ति की कार्यप्रणाली में जो दोष दृष्टिगोचर हो उसको उचित ढंग से दूर करने का उद्योग करना चाहिये।

यदि बा० जुगल किशोर जी विधवा विवाह का समर्थन करते हैं तो उनके इस समर्थन का सफल, प्रबल युक्तियों से प्रतिवाद करना चाहिये किन्तु इस कार्य में उनके व्यक्तित्व पर हमला न होना चाहिये और इसके बदले में 'समन्तभद्राचार्य के इतिहास' खोज निकालने की उनकी अनुपम सेवाको भुला देना चाहिये उस शुभकृति का हृदय से आदर करना चाहिये। इसी प्रकार पं० मक्खनलाल जी ने जो पंचाध्यायी, राजवार्तिक आदि ग्रंथों की टीका से साहित्य सेवा की है उसको चर्चासागर की आड़ ले कर भुला देना या उनकी उस उज्वल कृतिका आदर न करना उचित नहीं।

सारांश यह है— जहां जो त्रुटि दृष्टिगोचर हो वहाँ से वह त्रुटि दूर करने का उद्योग अवश्य करना चाहिये किन्तु साथ ही उसके प्रशंसनीय कार्यों का आदर भी अवश्य करना चाहिये।

इस आवश्यक बात को हमारे नेता या शिक्षित महानुभाव भूल गये हैं इसी का यह परिणाम है कि त्रुटियों का निन्दा-स्थान व्यक्तिगत निन्दा ने ले लिया है और विभिन्न दल का उपयोग। प्रशंसनीय कार्यवाही का आदर न करने के कारण उत्साही कार्यकर्ताओं का अभाव होता जारहा है काम करने वाले सब तरह से अपमान का शिकार बन कर चुप बैठते जा रहे हैं

इस दशामें उन प्रभावशाली पुरुषोंकी आवश्यकता है जो "अयोग्यः पुरुषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभः" (मनुष्य कोई भी अयोग्य नहीं बशर्ते उसके अयोग्य काम उसको दिया जावे किन्तु ऐसा काम देने वाला नेता मिलना ही दुर्लभ है) इस नीति का मर्मज्ञ और अमल करने वाला हो।

इन महानुभावों से निवेदन है (जिन के हाथों में थोड़ी बहुत भी समाज की बागडोर है) कि वे इस तुच्छ निवेदन पर ध्यान दें।

—अजितकुमार

यति बालचन्द्र जी से

श्वेताम्बर जैन के गत १७ वें अंक में 'विरोधी सज्जनों से' शीर्षक लेख में वे आवेश में आकर कुछ व्यक्तिगत आक्षेप भी कर गये हैं। आपने मेरे लेख का भाव तोड़ मरोड़ कर अन्यथा रूप में समझा है या समझाने की चेष्टा की है इस लिये मैं इन कुछ लाइनों से उस भ्रम पर प्रकाश डालता हूं।

आपने अपनी पुस्तक में जो श्वेताम्बर मत समीक्षा के अनुसार महाव्रती साधु को पांच तरह का चमड़ा रखना स्वीकार किया है तथा ग्रंथों की रक्षा के लिये चमड़े की जिल्द बंधाना उपयोगी बतलाया है। चमड़ा जो कि पंचेन्द्रिय जीव की खाल होती है जिसमें कि गीली दशा में जीव उत्पन्न होते रहते हैं ऐसी अपवित्र चीज को (चमड़े का रक्खा हुआ घी-हींग आदि गृहस्थश्रावक को त्याज्य बतलाया है) अपने पास रखने से अपने व्यवहार में लाने से साधुओं का अहिंसा महाव्रत निर्दोष रहता है।

आचारांगसूत्र के 'मंसं वा मेच्छं वा' तथा भगवतीसूत्र के 'कवोयसरीरं' आदि का एवं कल्पसूत्र का 'मज्ज मंसं' आदि शब्दों का मांस परक अर्थ पं० अजितकुमार जी ने ही किया है यह सरासर असत्य है। यति जी अपने पुरातन, प्रमाणिक आचार्यों की टीका को देखें फिर पं० अजितकुमार जी पर दोष रक्खें। शीलांगाचार्य ने अपवाद दशा की आड़ से अथवा प्रमादी हालत को बतलाकर साधु के लिये मद्य, मांस, मछली आदि ग्राह्य बतलाया है। अभय देव सूरि ने कपोत, कुक्कुट, मार्जार शब्दों के अर्थ कबूतर, बिल्ली, मुर्गा भी किया है तथा कल्पसूत्र के संस्कृत टीकाकार ने भी बीमार साधु के लिये मद्य, मांस ग्रहण करने का सम्मति दी है। इसके सिवाय आचारांग सूत्र के गुजराती टीकाकार ने भी टिप्पणी में मद्य, मांस अर्थ बतलाया है तथा श्वेता० वकील श्रीमान बा० गणपतिराय जी ने अपनी संतपरीक्षा में भी उन शब्दों का अर्थ मांसपरक किया है इतना ही नहीं उन्हों ने तो सूयगडंग आगम के उल्लेख से अपवाद दशा की आड़ में और भी बहुत आगे पैर बढ़ाया है।

इस दशा में पाठक महानुभाव स्वयं विचार सकते हैं-आचारांगसूत्र आदि में मांस विधान बतलाने का प्रायश्चित पुरातन श्वेता० आचार्यों को तथा आधुनिक श्वेताम्बर विद्वानों को लेना चाहिये या उसके अनुसार पवित्रता की रक्षा के लिये लिखने वाले पं० अजितकुमार जी को लेना चाहिये। हमको खेद है कि अब तक भी श्वेताम्बर विद्वान ऐसे अनुचित विधानों का प्रकारान्तर से (जैसा कि यति बालचंद्र जी ने अपवाद दशा की आड़ में अग्राह्य विषय ग्रहण का महाव्रती साधु के लिये विधान किया है) समर्थन करते हैं किन्तु उनको आगमग्रन्थों से हटाने का उद्योग नहीं करते। ये लाइनें मैंने इस लिये लिखी हैं कि अभी तक यति बालचन्द्र जी तथा उनके अन्य सहायक यह झूठा दोष पं० अजितकुमार जी पर लगा कर पाठकों के हृदय में भ्रम उत्पन्न कराते हैं यति जी से निवेदन है कि वे इस पर विचार करें।

यति जी अन्य अप्रासंगिक बातों को छोड़ कर नीचे लिखी बातों का खुलासा करने की कृपा करें।

शुद्धस्फटिकसंकाशं तेजोमूर्तिमयं वपुः
जायते क्षीणदोषस्य 'सप्तधातुविवर्जितम्'

हेमचन्द्राचार्य ने अपने योगार्णवमें केवली के शरीर के लिये यह श्लोक लिखा है इसमें 'सप्तधातुविवर्जितम्' का क्या अर्थ है ?

२—स्त्री को १४ पूर्व का ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति क्यों नहीं है ! और जब वह १४ पूर्व ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकती तब उसे केवल ज्ञान किस तरह हो सकता है ?

३— अभी तक दुनिया भर का कोई भी डाक्टर ८२ दिन का बच्चा गर्भ से निकाल कर एक पेट से दूसरे पेट में नहीं रख सका है यही बात बंबई के डाक्टर एस एम मंगले के लिये है । तथा श्रीमान प्रज्ञाचक्षु पं० सुखलाल जी भगवान महावीरके गर्भापहार को भागवतादि में लिखे हुए कृष्ण के गर्भापहार की नकल करना बतलाते हैं। फिर बतलाइये प्रकृतिविरुद्धगर्भापहार कैसे सिद्ध होता है ?

४— यति लोग शुभमुहूर्त, पूजा आदि करा के दक्षिणा लिया करते हैं तथा वैद्यक आदि से कमाई करते हैं एवं हजारों लाखों रुपये की जायदाद रखते हैं (आप किस रूप में यति पद पर हैं यह हम को मालूम नहीं) फिर वे महाव्रत किस तरह होते हैं? और क्या यति पद की रक्षा के लिये वस्त्र को परिग्रह नहीं बतलाया जाता है ?

५— स्व० मुनीन्द्रसागर का समाचार व्यक्तिगत है जो कि सामाजिक नियम नहीं माना जा सकता (पोलपत्रिका में बीसों श्वेताम्बर सचित्र साधुओं का अनुचित लीला प्रकाशित हो चुकी है) जिस के पास एक पैसा भी रहता है वह महाव्रती साधु नहीं हो सकता यही बात आप मानते हैं या नहीं ! और उस दशा में आप महाव्रती है या नहीं? यह प्रश्न इस लिये है कि आप के बतलाये हुए महाव्रत का स्वरूप जाना जा सके।

पं० दरबारीलाल जी की बात तो जुदि है वे तो सर्वज्ञ ही नहीं मानते भग० पार्श्वनाथ से पहले जैन धर्म का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते उनके लेखों का खंडन धारावाहिक रूप से जैनदर्शन में निकल रहा है और उनका झुकाव श्वेताम्बर सम्प्रदाय की ओर है।

' मात्रावर्णलाघवेन पुत्रोत्सव मन्यतेति ' यह लाइन जो आप ने लिखी है यह किस भाषा की है ? अच्छा होता इसका भाव हिन्दी में लिखकर देववाणी का अपमान न होता। पता नहीं यहाँ कर्ता कौन है ? 'मन्यतेति' का क्या अर्थ है ? 'पुत्रोत्सवमन्यते' इस का समास किस व्याकरण के अनुसार है ?

आशा है यति जी उपर्युक्त बातों पर प्रकाश डालेंगे।

—वीरेन्द्र जैन अम्बाला

शोक समाचार

जैन दर्शन के सं० पंडित चैनसुखदास जी की पूज्य माता जी का माघ सुदी १४ को स्वर्गवास हो गया इस समाचार को सुनकर हमें हार्दिक दुःख हुआ किन्तु काल की विचित्र गति है इसमें किसी का चारा ही क्या है ? हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि उनकी स्वर्गीय पवित्र आत्मा को चिर शांति तथा पंडित जी को इस शोकावस्था में धैर्य रखने की शक्ति प्रदान करें। —मैनेजर

दलबंदियों का शैतान

जहां ईश्वर का निवास होता है वहां उसके सदा तत्सहचर सुख-शांति-समृद्धि आदि भी रहते हैं। किन्तु यदि ईश्वर के स्थान में शैतान आ धमके और वहां अपना आसन जमाले तो ईश्वर के साथी सुख शान्ति आदि को भी वहां से कूच करना पड़ता है। शैतान और ईश्वर की प्रति द्वंद्विता जगत प्रसिद्ध है। इनमें से किसी स्थान पर एक के उपस्थित रहने से दूसरा नहीं रह सकता। पर यह बात याद रखना चाहिये कि बार २ आह्वान करने पर भी सरलता से एक नहीं आता और दूसरा बिना बुलाये ही आ जाता है, और एकबार आजाने पर बड़ी कठिनता से वापिस जाता है। यह ईश्वर और शैतान भलाई बुराई के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। हमारा तात्पर्य यह है कि सुख शान्ति और वैभव प्राप्त करने के लिये हमें शैतान और उसके प्रधान परिकर दलबंदी आदि से बचना चाहिये।

दलबंदी भी एक जबर्दस्त बुराई है एक दूसरे को हानि पहुँचाने के लिये जो दलबंदियाँ होती हैं उनमें शैतान का निवास रहता है कलियुग और कलहयुग इन दोनों शब्दों का एक ही अर्थ है। जहां दलबंदियां होकर उनके बीच कलह नाचरहा हो वहाँ कलियुग अपने चारों पैरों को रखकर खड़ा रहता है। जो दलबंदियां सैद्धान्तिक मत भेद को लेकर हुई हों वे इतनी भयङ्कर नहीं होतीं, किन्तु जो स्वार्थके आधार पर खड़ी होती हैं, वे भयंकरता और नीचता की सीमा का उल्लंघन कर जाती हैं। ये मनुष्य से विवेक छीनकर उसे पशु बनादेती हैं पशु और मनुष्यका भेद यहांही स्पष्टदिखाई देता है इनसे पारस्परिक शक्तियोंका व्यर्थ ह्रास होकर धनिक समाज और राष्ट्र की जो हानि होती है उसका पूरा करना बहुत कठिन हो जाता है। भारत बहुत दीर्घ काल से इन्हीं के कटुक फलों को भोग रहा है जिन शक्तियों को हम भले कामों में लगाकर अपने और अपने बंधुओं के दुःख दूर करने में सहायता पहुंचा सकते हैं, उन्हें पशुओं के समान आपस में लड़ कर व्यर्थ खो देते हैं इससे अधिक दुःख और परिताप की क्या बात होगी?

मत विभिन्नता होना बुरा नहीं यह तो व्यक्ति की बुद्धि और विवेक का अस्तित्व बतलाती है, और कभी २ वस्तु के यथार्थ निर्णय तक पहुंचा देती है। पर यदि यह दलबंदी का रूप धारण कर केवल अपनी स्वार्थ साधना का ही कारण बन जाय तो इस मत विभिन्नता को शैतान की दलबंदी कहना चाहिये। अगर किसी भी मत विभिन्नता का उद्देश्य किसी को वैयक्तिक हानि पहुंचानेका है तो ऐसी मत विभिन्नता बिलकुल अवांछनीय है। अगर किसी से हमारा मत ना मिले तो उसका खण्डन करें, उसको असत्य कह डालें, नमानें, और यदि वचन तथा लेखिनीमें बल हो तो दूसरे को भी न मानने दें। किन्तु उस विभिन्न मत रखने वाले को वैयक्तिक-लौकिक-हानि पहुंचाने

की चेष्टा करना मनुपुत्र मनुष्य का काम नहीं है यह शैतान का काम होगा।

ये पंक्तियां हम जैन समाज को लक्ष्य कर लिख रहे हैं। इस समय जैन समाज दलबंदियों की प्रचण्ड अग्नि ज्वाला में जल रहा है। यदि दल विभाग किसी अच्छे उद्देश्य को लेकर हो तो कोई विशेष हानि की बात नहीं है, पर ऐसा है नहीं। मनुष्य समाज में उद्देश्य भेद तो सदा से चला आया है और सदा ही बना रहेगा। वह भी अन्य नित्य वस्तुओं के समान अनादि और अनन्त है। किन्तु यदि उद्देश्य भेदके पर्दे में स्वार्थ साधना के भाव को छिपाकर कोई समाज के रंग मंच पर दलबंदी का नाटक खेल रहा हो तो उसको धर्म और समाज दोनोंका शत्रु कहना चाहिये क्योंकि इस श्रेणी के लोगों के द्वारा जो हानि होती है वह आगे कई पीढ़ियों तक भी नहीं भरती। लौकिक स्वार्थ के लिये फूट का बीज बोकर अशांति का वृक्ष खड़ा करना किसी भी विवेकी का काम नहीं। इस समय जैन समाज में जो मनोवृति काम कर रही है, उसमें प्रधानतया दलबंदी की प्रेरणा और उत्तेजना का ही हाथ है। यही कारण है कि जिस को हमने विरुद्ध पक्ष वाला मान लिया है—चाहे वह कितना ही अच्छा काम क्यों न करे हम उसका कभी समर्थन न करेंगे। उसके लिये प्रशंसा के शब्द हमारे मुँह से न निकलें इतना ही नहीं उसके भले कामों में बाधा डालने की भी भरसक चेष्टा करेंगे और इस सम्बन्धमें शक्ति भर अपने भोले भाले अनुयायियों को भी भड़कावेंगे। अमुक काम अच्छा नहीं है क्योंकि हमारे सहयोगी का किया हुआ नहीं है अगर वह हमारे किसी सहयोगी द्वारा संपन्न होता तो प्रशंसनीय होता। अपना किया हुआ कुकृत्य भी सुकृत्य और दूसरों का किया हुआ सुकृत्य भी कुकृत्य कहने वालों का बोलबाला और नेतृत्व जब तक रहता है तबतक समुदाय का भला नहीं हो सकता। स्वार्थी मनुष्यको सदा अपने स्वार्थ का ही विचार रहता है। उसकी प्राप्ति में उसको जो भी कुछ करना पड़े कर डालता है। उसे समाज, धर्म अथवा देशकी चिंता नहीं होती। उसके लिये उसका व्यक्तित्व ही सारा संसार है। अगर दुनियां में ऐसी प्रलय हो, जिसमें केवल वे स्वयं बच जावें तो ऐसे लोग इस तरह की प्रलय को भी पसंद कर लेंगे। इस तरह की मनोवृति का एक ताजा उदाहरण सुनिए—उस दिन एक पंडित महाशय ने अपने दश बीस आदमियों की सभा में कहा कि जैसे बने वैसे इन न्यायतीर्थों की बाढ़ को रोको। न्याय पढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं है इस से बुद्धि बिगड़ जाती है ज्यादा पढ़ना अच्छा नहीं पाठशालाओं की भी क्या जरूरत है इत्यादि। कोई संस्कृत का पंडित ऐसी बातें कह सकता है? सहसा इस बात पर किसी को विश्वास न होगा पर अहंकार और स्वार्थ मनुष्य से सब कुछ कहला सकता है यदि उस समय उनसे कोई यह पूछने वाला होता तो कम से कम यह तो पूछता कि धर्म के एक मात्र ठेकेदार बनने वाले हे महात्मन् यदि न्यायका पढ़ना इतना बुरा है और न्याय के ग्रंथ पढ़ने से अक्ल बिगड़ जाती है तो कृपया आप यह तो बतलायें कि इस तरहके ग्रंथ आचार्य समन्तभद्र विद्यानंद और अकलंक देवने क्यों बनाये. जिस न्याय के लिये कवि लोग "तर्क बिना नेत्र विवेक वैभवम" जैसा स्पष्ट और समुचित संकेत कर रहे हैं उसके लिये इन पंडित जी का ऐसा प्रलाप है। ये सब दलबंदी के कटुक परिणाम हैं। एक बार किसी से एक उपदेशक महाशय ने कहा "अमुक संस्था को

दान नहीं देना चाहिये" जब दाता महोदय ने यह पूछा क्यों। तब उपदेशक जी इसका कोई समुचित उत्तर न दे सके पर इन के कहने का आशय यही था कि वहां हमारी पार्टी के आदमी काम नहीं करते। चाहे कोई संस्था कितना ही अच्छा काम क्यों न कर रही हो, यदि वहाँ हमारा स्वच्छंद विहार नहीं हो रहा है तो उस की अनुचित समालोचना किये बिना हम न रहेंगे इतना ही नहीं हम उसे बाधा पहुँचाने की भी चेष्टा करेंगे। कई धार्मिक संस्थाएं केवल इसी कारण से भारी आर्थिक कष्ट सह रही हैं।

हमारे लिखने का तात्पर्य यही है कि हमें दल-बंदी के दल २ से बाहर निकल कर निष्पक्षता के स्वच्छ मैदान में खड़ा होना चाहिये। अबतो रही सही शक्तियों को एकत्रित कर उन्हें समाज समुत्थान के पवित्र कार्य में लगाने की जरूरत है। दलों में विभक्त होकर गृह कलह में अपनी शक्तियों को व्यय करने की अपेक्षा उन्हें सामाजिक बुराइयों को दूर करने में लगा देना कहीं अधिक श्रेयस्कर है। तब तक जैन समाजके कभी भले दिन न आवेंगे जब तक पवित्र भावना से दलबंदियों के शैतान को विदा कर उसके स्थान पर ईश्वर को आसीन न किया जायगा।

बेकारी का प्रश्न और शिक्षा समस्या— उसदिन एक ग्रेज्युएट ने आकर कहा, अंग्रेजी शिक्षा तो दिनों दिन मँहगी होती जारही है किन्तु नौकरियोंके सस्ते पन का कोई ठिकाना नहीं है। लोग डिग्रियें हासिल करने में जितना प्रयास और परिश्रम करते हैं उससे कई गुणा अधिक नौकरियों के लिये करना पड़ता है फिर भी दुःख है कि वे नहीं मिलतीं। परीक्षाओं में पास होजाना तो फिर भी निश्चित है पर नौकरियों का अनिश्चय शिक्षित नव युवकों को इतना दुःख ग्रस्त और हताश कर देता है कि कभी वे आत्म हत्या तक करने पर उतारू हो जाते हैं। इस तरह की घटनाएं दैनिक पत्रों में कभी २ मिल जाती हैं।

शिक्षा तो मनुष्य सुखी बननेके लिये प्राप्त करता है यदि शिक्षित बनने पर भी वह इसी तरह दुःखी बना रहे तोसमझना चाहिये कि इस दुःख का कारण उस शिक्षा में ही मौजूद है। जब तक हमारी शिक्षा में जीवन को सुखी बनाने के साधनों की ओर ध्यान न दिया जायगा तब तक यह जबर्दस्त त्रुटि कभी दूर न होगी। हजारों रुपये तथा मानसिक और शारीरिक शक्तिको अत्यधिक रूपमें व्यय कर जिन उपाधियों कोप्राप्त किया जाता है, वे उस समय और भी अधिक मानसिक दुःख और अनुतापका कारण बन जाती हैं, जब उन्हें रुपयों की पोट के समान अपने शिर पर लाद कर एक डिग्री धारी नौकरी के लिये आफिसों में मारा २ फिरा करता है और फिर भी सफल मनो-रथ नहीं होता। ऐसे समय यदि वह निराश युवक अपने जीवन की तुलना एक अशिक्षित ग्रामीण से करे तो उसको मालूम होगा कि उसका जीवन उस ग्रामीण की अपेक्षा अधिक दयनीय और विपदा पूर्ण है। जितना शरीर मन और धन इस मँहगी शिक्षा के प्राप्त करने में उसने व्यय किये यदि वह उतना किसी अन्य जीवनोपयोगी कार्य में लगाता तो संभव है उसके समान उसके पास भी बहुत से उम्मेदवार नौकरी के लिये आते। एकबार मुझे एक ग्रेज्युएट ने कहा कि—आज तक का हिसाब लगाकर मैंने देखा है कि प्रारंभ से अब तक डिग्री हासिल करने में मेरे जितने रुपये खर्च हुए, यदि इतने रुपये इस समय मेरे पास होते तो मैं उन से घर बैठे पचास रुपय मासिक कमा लेता। दुःख है कि यह वर्तमान शिक्षा हमारे धन मन और तन इन तीनों को छोड़ कर हमें

प्राप्ति स्वीकार श्री पार्श्वनाथ दि० जैन विद्यालय उदयपुर [मेवाड़]

सितम्बर १९३४ इस्वी

१४०।) साधारण दान
१॥) श्रीमान् नाथूलाल जी गाँधी ऋषभदेव
५) ,, बाबू निर्मलकुमार जी मंसूरी
५) ,, शिखरलाल पाहड्या सातांई
६) ,, जेठमल जी मदासुख जी लखनऊ
२०) ,, हजारीमल जी किशोरीलाल जी गिरड़ी
१) ,, सूरजमल जी रतनलाल जी इन्दौर
५) ,, समस्त दि०जैन पंचान मुगलहाट
१०) ,, शोभाराम जी गम्भीरमल जी टोंग्या इन्दौर
५) ,, समस्त दि० जैन पचांन रोहतक
१०) ,, कस्तूरमल जी कंवरीलाल जी रामासुतागंज
५) ,, हरदेव जी हीरालाल जी सेठी कोयमाहील
२५) ,, तिलोकचन्द जी कल्याणमल जी, इन्दौर
१) ,, कन्हैयालाल जी लिखमावत भींडर
५) ,, समस्त दि० जैन पंचान महेश्वर
५) ,, कजूलाल जी अमनालाल जी, बलौदा बाजार
५) ,, मेवाराम जी शान्तिलाल जी
॥।) ,, गुमनाम से बाईयों के उदयपुर
१०) ,, आनन्दकरण जी बालचंद जी पलासवाड़ा
२) ,, धुलचन्द जी भमरा ऋषभदेव
२) ,, समस्त दि० जैन पंचान हासु
१०) ,, समस्त दि० जैन पंचान नड़ियाद
६१) मासिक दान
४४) श्रीमान् रा० बा० सेठ टीकमचन्द भागचन्द जी अजमेर
२५) ,, किस्तूरचन्द जी तेजपाल जी आमलनेर
१२) ,, गुलाबचन्द जी पाटनी कुगड़ा
१५) अहार दान
।) ,, फौजमल जी गदिया उदयपुर
१) ,, पं० सुन्दरलाल जी न्यायतीर्थ उदयपुर
॥) ,, कालूलाल जी अग्रवाल उदयपुर
।) ,, छोगालाल जी अग्रवाल उदयपुर
१२) ,, समस्त दि० जैन पंचान, राजसमंद
१) ,, दुलीचन्द जी पाटवारी बिनौता
३७॥=)॥ औषधालय
२) ,, कजोड़ीमल जी स्तोड़या उदयपुर
११=)॥ ,, वरदीचन्द जी अग्रवाल ,,
६) ,, प्यारचन्द जी गदिया उदयपुर
१५) ,, नानालाल जी अग्रवाल ,,
२) ,, छोगालाल जी अग्रवाल ,,
१॥) ,, कन्हैयालाल जी काला ,,
१४॥) भोजन फन्ड में छात्रों से
॥। कन्या पाठशाला से गुप्तदान
४॥।) दि० जैन धर्मशाला में समस्त पंच, भीडला

२६४॥।=)॥ कुल जोड़

मास अक्टोबर

२५६ॾ) साधारण दान
१०) श्रीमान समस्त दि० जैन पंचान कोहीमा
५) ,, लाभूलाल जी, मेवा, गोपीलाल, हमोला
॥-) ,, अम्बाईदास जी बघेरवाल कारंजा
१) ,, छगनलालजी सुन्दरोत की धर्म पत्नी ऋषभदेव

१) ,, गेंदीलालजी सुन्दरलालके धर्म पत्नी ऋषभदेव
१) ,, चंपालाल जी छगनलाल जी वगावत ,,
१०) ,, समस्त पंचान दि० जैन सेठकी कूंचा देहली
॥) ,, धनराज जी नरसिंहपुरा ऋषभदेव
२७) ,, समस्त पञ्चान दि० जैन तेरहपन्थ, उदयपुर
५) ,, किस्तूरचन्द जी मोहनलाल जी फींफोट
४) ,, ला० पारसदास जी जैन नसीराबाद
५) ,, घीसालाल जी ताराचन्द जी गदिया नसीराबाद
१) ,, घीसालाल जी पाटनी नसीराबाद
८) ,, कन्हैयालाल जी
३) ,, समस्त दि० जैन पंचान
१) मलचन्द जी छाबडा मऊ
१) सुखरामजी दौलतरामजी, सोनकछ
११॥=) ,, जवरचन्द जी मऊ
२) ,, पन्नालाल जी मिश्रीलाल जी बडनगर
१) ,, हेमराज जी लेखोल
॥) ,, चांदमल जी सुरजमल जी कुरकाड्या
१) ,, मगनलाल जी छगनलाल जी लावड़िया
५) ,, माणकचन्द जी पाटनी अजमेर
१०) ,, देवीचन्द जी साहेब मन्दसौर
१००) ,, समस्त पंचान दि० जैन नारायन गंज
२) ,, ,, ,, ,, ,, ,, गीवाड़ी
२) ,, किशनचन्द जी कटनेरा सम्मसाबाद
१) ,, नाथूलाल जी मोतीलाल जी, नगरी
१) ,, फतहलाल जी बड़जात्या बीकानेर
५) ,, समस्त दि० जैन पञ्चान निम्बोहड़ा
१ ,, ,, ,, ,, ,, ऋषभदेव
१ ,, सेठ ऋषभदास जी भींडर
१ ,, लक्ष्मीचन्द जी उदयपुर भींडर
२१) ,, गोरधनजी छोगालाल जी तामसा
१) ,, बोबड़ा कन्हैयालाल जी दाहोद
५) ,, मुसद्दीमल जी मभूमल जी जोहरी देहली

६७) मासिकदान

१०) श्रीमान चंपालाल जी तिलोकचन्द जी मऊ
१२) ,, कनीराम जी छगनलाल जी मुगलहाट
६०) ,, दा० वीर सेठ माणकचन्द जी पानाचन्द जी बम्बई
५) ,, मोहरसिंह जी राधेश्याम जी देहली

३८॥) अहारदान

१२) ,, नेमीचन्द जी पाहड्या के धर्मपत्नी धार
३) ,, मांगीलाल जी बज मऊ
१३) ,, जवरचन्द जी मऊ
१०॥=) ,, मंगतुराम जी
१०३) भोजन फीस खाते छात्रों के आये
४२) औषधलय खाते
१) ,, गहरीलाल जी भोजन उदयपुर
२) ,, लाधूलाल जी सेवा
५) ,, तिलोकचंद जी अग्रवाल उदयपुर
२॥) ,, किस्तुरचन्द जी टोमरया ,,
२) ,, भंवरलाल जी बड़जात्या ,,
१) ,, गुलाबचन्द जी भदावर. ,,
४) ,, छगनलाल जी महता ,,
॥) ,, छोगालाल जी अग्रवाल ,,
३) ,, नेमीचन्द जी पाहड्या के धर्मपत्नी धार
१) ,, मांगीलाल जी बज धार
७) ,, जवरचन्द जी मऊ
६) ,, दीपलाल जी अग्रवाल उदयपुर
५) मोहनलाल जी किस्तूरचंद जी. फींफोट
१) कालूलाल जी अग्रवाल उदयपुर

७) कन्या पाठशाला
२) ,, लाधुलाल जी मु० सेवा
५) ,, जवरचन्द जी मउ
२४।-)॥। दी० कल्याणमल भील व हुकमचन्द भील से मिले
३४१॥)॥ व्याज के हुकमचन्द भील इन्दौर १६८॥॥ दयालाल जी किशनलाल जी यऊ १८०)

२१०॥=)॥ कुल जोड़

मास नवम्बर

२६८॥) साधारण दान
५) श्रीमान समस्त पंचान दि० जैन कलकता
१०) ,, लक्ष्मीचन्द जी काला महूआ
१) ,, पृथ्वीराज जी रतनलाल जी ऋषभदेव
१) ,, हमीरचंद जी तेजोत ,,
२) ,, कचरुमल जी गोधा मन्दशौर
२) ,, नेमीचन्द जी श्रावगी धार
२) ,, नाथूलाल जी चुन्नीलाल जी अंजड़
५) ,, सकल दि० जैन पन्चान धर्मपुरी
१) ,, मोतीलाल जी जैन बड़वाह
१) ,, कान्तिप्रशाद जी जैन पल्लीवाल अजमेर
४) ,, समस्त दि० जैन पन्चान जावद
३) ,, रोड़मल जी मैघराज जी सुसारी
२) ,, हीरालाल जी चन्दरलाल जी इन्दौर
५) ,, रामचन्द्र जी भौंसा जयपुर
२) ,, कोदरमल जी गेन्दालाल जी खातेगाँव
२) ,, हुकमचन्द जी गम्भीरमल जी हाटपीपल्या
१) ,, गेन्दालाल जी हाटपीपल्या
१०) ,, शिवलाल जी कन्हैयालाल जी जयपुर
१) ,, चुन्नीलाल जी पेमराज जी,खातेगाँव
१) ,, कैलाशचन्द जी जैन सहारनपुर
५) ,, समस्त दि० जैन पन्चान रोहतक
२) ,, मोतीलाल जी छगनलाल जी कुआसी
१) ,, मोतीलाल जी जयपुर
२) ,, पारसोबा, नारसोबा, मादा
॥) ,, पारसोबादेव जी पीपलदरी
१) ,, चुन्नीलाल जी डाइमचन्द जी ऋषभदेव
१॥) ,, चंपालाल जी गणेशलाल जी ऋषभदेव
॥) ,, कुरीचन्द जी ऋषभदेव
१॥) ,, नाथुलाल जी चुन्नीलाल जी रेमावाद
१॥) ,, मगनलाल जी भुवालीलाल जी बाकली
१) ,, चुन्नीलाल जी भेवोत ऋषभदेव
१) ,, सिंघई फतेचन्द जी किस्तुरचन्द जी, झाँसी
१०) ,, बालचन्द जी पांड्या के बहु नागोर
१५) ,, सूरजमल जी बड़जात्या के मातेश्वरी नागोर
१५) नेमीचन्द जी बड़जात्या नागोर
११) ,, सरदारमल जी काशली वाल, सुजानगढ़
३०) ,, कुन्दनमल जी चन्दनमल जी ,,
२) ,, चुन्नीलाल जी मोतीलाल जी कोटा
१००) ,, रा० ब० सेठ चम्पालाल जी रामस्वरूप जी ब्यावर
१) ,, गणेशलाल जी रेमावाद
१७१॥।-) मासिक दान
३३) श्रीमान रा० ब० सेठ टीकमचंद जी भागचन्द जी अजमेर
१॥) ,, भागचन्द जी केलावत रोड़वा
॥) ,, ताराचन्द जी बागदा वरी
॥) ,, जयचन्द जी वरमावत ,,
॥) ,, रामचन्द जी वरमावत ,,
३) ,, गुलाब चन्द जी इन्दौर
६) ,, राधाकिशन जी घासीलाल जी धार
१॥।-) ,, छगनलाल जी मेहता उदयपुर

५) ,, केशरीचंद जी ढामावत ,,
१२०) ,, कन्हैयालाल जी वरदीचंदजी कलकत्ता
३०) औषधालय
२) ,, नेमीचंद जी, धार
१) ,, गेंदीलाल जी पीपल्या
१) ,, चंपालाल जी ताराचंद जी चिकलद्रा
२) ,, सकल दि० जैन पंचान बड़वाह
६) ,, नाथुलाल जी जीवनराम जी अंजड़
१) ,, हीरालाल जी चंदर लाल जी इन्दौर
५) ,, शिवलाल जी किन्हैयालाल जी बेराठी जयपुर
२) ,, मूलचंद जी अग्रवाल उदयपुर
१०) कुन्दनमल जी चन्दनमल जी सुजानगढ़
१६) कन्या पाठशाला
२) ,, सकल दि० जैन पन्चान बड़वानी
५) ,, नाथूलाल जी चुन्नीलाल जी अंजड़
१) ,, हीरालाल जी चन्द्रलाल जी इन्दौर
१०) ,, कुन्दनमल जी चन्दनमल जी ,,
४०)॥ आहारदान
२०[illegible])॥। श्रीमान् भैरूलाल जी जेसिंगोत माकरोद
१६।-) ,, चुन्नीलाल जी भेखात ऋषभदेव
४२६।) दि० जैन धर्मशाला में
२०॥।) श्रीमान् समस्त दि० जैन पंचान मु० धार
।॥) ,, चम्पालाल जी आवगी धार
५) ,, सकल दि० जैन पन्चान मनावर
६॥) ,, ,, ,, ,, ,, बीकानेर
१) ,, भीकमचंद जी मैघराज जी बीकानेर
२॥) ,, समस्त दि० जैन पन्चान टोंकी
४) ,, ,, ,, ,, ,, गनवारी
४॥।) ,, ,, ,, ,, ,, डेरी
२॥) ,, ,, ,, ,, ,, लोहारी

१) ,, कपूरचन्द जी सींगाना
१) ,, हीरालाल जी लक्ष्मीचन्द जी सींगाना
२) ,, जीवणराम जी पीपल्या
१) ,, गेंदीलाल जी ,,
१॥) ,, धन्नालाल जी मोतीलाल जी कुक्षी
२) ,, गेंदमल जी मैघराज जी खुसारी
२) ,, चंपालाल जी चिकलद्रा
॥) ,, गोविन्दराम जी ,,
५) ,, सकल दि० जैन पन्चान बड़वानी
२) ,, ,, ,, ,, ,, अंजड़
३) ,, नाथुलाल जी चुन्नीलाल जी अंजड़
१) ,, समस्त दि० जैन पन्चान महेश्वर
१) ,, फूलचन्द जी सनावद
॥) ,, गेन्दालाल जी मनावर
॥) ,, शिवा जी मानकसाइ जी सनावद
॥) ,, हीरालाल जी चन्द्रलाल जी इन्दौर
५) ,, शिवलाल जी कन्हैयालाल जी जयपुर
३५१) ,, कुन्दनमल जी चन्दनमल जी सुजानगढ़
४) ,, वस्त्रालय में राजमलजी बजरंगलाल जी काशलीवाल नेणवा
१३१) छात्रों से भोजन फीस के आये

११२१।॥ल॥ कुल जोड़

दिसम्बर

८७॥) साधारण दान
१) ,, हीराचन्द जी बालचन्द जी संघवी, उस्मानाबाद
५) ,, बिनोदीलाल जी अग्रवाल मेरठ
॥) ,, बख्तावरमल जी भूरालाल जी इन्दौर
५) ,, कल्लुभाई किस्तूरचन्द जी सागवाड़ा
५) ,, मीठालाल जी जैन अग्रवाल दहेली
(शेष आगामी अङ्क में)

जैन समाचार

कृतज्ञता प्रकाशन

मेरी पूजनीय माता जी के परलोकवास के संबंध में समवेदना प्रगट करने के लिये मैरे प्रेमी बंधुओं की तरफ से जो बहुत से पत्र मुझे प्राप्त हुये हैं उन सब का अलग २ जवाब देने में मैं असमर्थ हूं। मैं ने इन सब पत्रों का विनम्र कृतज्ञता के साथ स्वागत किया है।

—भवदीय

चैनसुखदास जैन सम्पादक जैनदर्शन

आवश्यकता है

जैन कन्या पाठशाला कैराना के लिये एक अध्यापिका की जो धार्मिक और लौकिक शिक्षा भले प्रकार दे सके वेतन २० से ३० तक मकान मुफ्त पत्र व्यवहार का पता किशारनाथ जैन मुख्तार कैराना।

प्रतिमाओं की आवश्यकता

स्थानीय नवीन दि० जैन मंदिर में स्थापन करने के लिये कुछ मनोज्ञ पद्मासन प्रतिमाओं की आवश्यकता है जिन मंदिरों में अधिक प्रतिमायें है और उनके उदार अधिकारी देना स्वीकार कर वह कृपया निम्न पते से सूचित करें प्रतिमायें योग्य और उचित विनय से लेआने का प्रबंध किया जावेगा।

– फिरोजाबाद (आगरा) में श्री पन्नालाल दि० जैन विद्यालय खुल गया। इसमें धर्मशास्त्र, व्याकरण गणित महाजनी, हिन्दी और अंग्रेजी पढ़ाई का उचित ढंग से काफी प्रबन्ध है। बाहर से आने वाले छात्रों का भी इन्तजाम किया गया है उनको भी प्रविष्ट होकर लाभ उठाना चाहिये।

निवेदक—
रामशरण जैन, मंत्री

श्री अहिर्तीर्थ क्षेत्र मेला राम नगर (जियरेली)

यह मेला ता० २७ मार्च से ३१ मार्च १९३७ तक सदा की भाँति बड़े समारोह के साथ होगा। स्याद्वाद वारिधि पं वंशीधर जी शास्त्री शोलापुर पं० मक्खनलाल जी न्यायतीर्थ मैरिना श्री १०८ ऐलक श्री चन्द्रसागर जी महाराज तथा बड़े २ विद्वानों के पधारने की आशा है। सज्जन महानुभाव सपरिवार क्षेत्र पर आने का कष्ट उठावें।

निवेदक—
हीरालाल जैन बहजोई, मुरादाबाद

(टाइटल के दूसरे पेज का शेषांश)

का हमने यहां निर्देश कर दिया है। भारतवर्षीय दि० जैन परिषद् या अन्य भी कोई स्थानीय पंचायत अथवा सभा जो इसकी आयोजना करेगी शास्त्रार्थ संघ उन को अपना सहयोग प्रदान करने के लिये सर्वदा तैयार है।

निवेदक—प्रधान मंत्री
भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ।

शोक समाचार

श्रीमान राये बहादुर सेठ रतनलाल जी रांची का स्वर्गवास होजाने का समाचार सुनकर हमें हार्दिक दुःख हुआ किन्तु कठिन काल कराल के सामने किसी का वश नहीं चलता। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि उनकी स्वर्गीय आत्मा को चिर शांति तथा उनके कुटुम्बियों को ऐसे समय में धैर्य रखने की शक्ति प्रदान करें।

—संपादक

अजितकुमार जैन ने "अकलंकप्रिन्टिङ्ग प्रेस, मुलतान में छापकर प्रकाशित किया।

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुख-पत्र

वर्ष २ अंक १८

जैनदर्शन

१ अप्रैल-१९३५ ई० चैत्र वदी १३ सोमवार

सोलापुर में उत्सव

बंबई परीक्षालय के मंत्री श्रीमान सेठ राव जी सखाराम दोशी की सुवर्ण जयन्ती के निमित्त से सोलापुर में चैत्र सुदी १ से ५ तक लगभग १५ उत्सव होंगे। जिन में कि पंचकल्याणक प्रतिष्ठा नवीन मंदिर तथा मानस्तंभ प्रतिष्ठा के अतिरिक्त दि० जैन महासभा, शास्त्री परिषद् तथा महिलापरिषद् इन तीन सभाओं के भी अधिवेशन होंगे एवं जैनबोधक पत्र की सुवर्ण जयंती, कवि सम्मेलन आदि छोटे उत्सव भी इसी समय में होंगे। अतः संभावना है कि सोलापुर में इस अवसर पर श्रीमान धीमान महानुभावों का अच्छा जमाव होगा। किन्तु प्रतिष्ठा आदि अनेक महोत्सवों के समय जैसा कि प्रायः हुआ करता है। सभाओं की कार्यवाही मंद, फीकी होती है जिसके लिये सोलापुर में निम्न बातों पर ध्यान रखना आवश्यक है।

१— प्रस्तावों की भरमार न होकर चुनिन्दा, आवश्यक दो-चार प्रस्ताव ही रक्खे जावें। तथा अन्य उत्सवों के समय में ही सभा का समय न हो।

२— सारे परीक्षालयों और समस्त विद्यालयों में अमल आने योग्य एक अच्छा पठनक्रम बनाया जाय एवं सुवर्ण उत्सव के उपलक्ष्य में श्रीमान सेठ रावजी साहिब को एक अच्छे फंड से जैन पुरातत्व अन्वेषण के लिये एक अचल संस्था कायम करदेनी चाहिये।

—अजितकुमार

सम्पादक—

पं० चैनसुखदास जैन न्यायतीर्थ, जयपुर

पं० अजितकुमार शास्त्री मुलतान, पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री बनारस

वार्षिक ३) एक प्रति =)

जैन समाचार

अन्य वर्षों की भाँति इस वर्ष भी महावीर जयंति का उत्सव चैत्र सुदी ११, १२, १३ बार रविवार, सोमवार, मंगलवार बड़े समारोह के साथ देहली में मनाया जायगा। साथ ही मित्र मण्डल का २० वां वार्षिकोत्सव, सार्वधर्म सम्मेलन और भगवान के पुण्यकीर्तन के उपलक्ष में कवि-सम्मेलन भी होंगे।

सार्व धर्म सम्मेलन का विषय-धर्म की विशेषता,

कवि-सम्मेलन की समस्याएं—भाग जागे है।

उर्दू—महफिले हस्ती तेरे जलवे से नूरानी हुई।

विनीत—मन्त्री जैनमित्र मंडल देहली

—'कल्याण' नामक मासिक पत्र का "योगांक" नामसे श्रावण तक एक विशेषांक निकलेगा। जिसमें जैन धर्म सम्बन्धी लेख—जैनधर्म में योग, सिद्धि प्राप्ति के उपाय, सिद्धियोंसे पारमार्थिक हानि, गुण स्थान का विवरण, सिद्ध शिला, लोकाकाश तथा अलोकाकाश, संवर तथा निर्जरा के साथ योग का सम्बन्ध, मनः पर्यय ज्ञान, अवधि ज्ञान, केवल ज्ञान, कर्म का स्वरूप तथा प्रकार भेद, कर्मविपाक आदि विषयों पर होंगे अतः जैन विद्वानों से प्रार्थना है कि अपने लेख जहांतक होसके शीघ्र ही निम्न पते पर भेजने की कृपा करें इससे जैनधर्म के सिद्धान्तों का काफी प्रचार होगा।

सम्पादक—कल्याण, गीता प्रेस

गोरखपुर

मेला—श्री महावीर जी का मेला ८ अप्रेलसे शुरू होगा उस समय यात्रियों की सहूलियत के लिये परौंडा (महावीर रोड) स्टेशन पर दिल्ली से आने वाली एक्सप्रेस गाड़ियां ५ से २५ अप्रेल तक ठहरा करेंगी। परौंडा स्टेशन का टिकिट घर रात दिन खुला रहेगा। क्षेत्र पर मंदिर जी के पासदो बड़ी २ धर्मशालाएं जिनमें एक २ हजार यात्री ठहर सकते हैं बनाई गई हैं।

—शोक, श्रीमान सेठ दीवान पन्नूलाल जी सीकर का फागुन सुदी १४ को अचानक स्वर्गवास हो गया आप एक जैन नर रत्न थे, श्री जैन वीर सेवा मण्डल सीकर की एक शोक सभा हुई जिसमें स्वर्गवासी सेठ के परिवार के साथ सहानुभूति प्रगट की गई।

—अमरसेन जैन मंत्री

—वेदी प्रतिष्ठा स्थगित—किरतपुर (बिजनौर) में जो १५ अप्रेलसे २० अप्रेल तक वेदी प्रतिष्ठा रथोत्सव होने वाला था वह प्रतिमा न मिल सकने से अभी स्थगित हो गया है। कोई उदार महानुभाव अपने यहां से यहांके मंदिर जीके लिये प्रतिमा प्रदान करने की उदारता दिखलावें विनय पूर्वक प्रतिमाओं के लाने का प्रबन्ध किया जावेगा।

—बांकेराम जैन सर्राफ किरतपुर (बिजनौर)

सच्ची प्रभावना—गया के उत्सव से होकर शास्त्रार्थ संघ के महामन्त्री श्रीमान पं० राजेन्द्रकुमार जी न्यायतीर्थ तथा श्रीमान कुंवर दिग्विजय सिंह जी दो दिन के लिये यहां पर पधारे आपने पब्लिक सभाओं में ओजस्वी मार्मिक भाषणों द्वारा अजैन जनता में जो जैन धर्म की अपूर्व प्रभावना की है इसको लिखा नहीं जा सकता जिन श्रोताओं ने आपके व्याख्यानों को श्रवण किया उसके हृदय में जैन धर्म का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा।

कस्तूरचन्द्र जैन—नवादा

अकलंकदेवाय नमः

श्री जैनदर्शनमिति प्रथितोऽग्रशिमसम्पाप्तमवशिखिलइशनपत्तनोर,
स्याद्वादभानुकलितो बुधचक्रवन्द्यो भिन्द्यन्तमो विमतिविगत भूतान

वर्ष २ | श्री चैत्र वदी १३—सोमवार श्री वीर सं० २४६१ | अङ्क १८

जीवन नाट्य–

(ले० पं० चैनसुखदास जैन न्यायतीर्थ)

(१)

अरे विश्व के रङ्ग मञ्च पर,
इन खेलों को खेल २ कर
क्यों इठलाता जीवन जग में,
विपदाओं को झेल २ कर।

(२)

छोड़ कपणा जाल जटिल यह,
पावन पथ का अनुगामी बन
[illegible] अनन्त [illegible]
के ओक [illegible] मन।

(३)

क्षण २ में यों भेष बदल कर, क्यों आता है क्यों जाता है,
इन सब खिलाड़ियों में तेरा, सत्य बता तो क्या नाता है।

(४)

अपना रूप अनूप बनाकर
बार २ क्यों हंसता रोता।
खोल हृदय पट को अंतर में,
भरा पड़ा है वह सुख सोता।

(५)

आज बना है राजा यदि तो,
निश्चय से कल रङ्क बनेगा।
जिसने आज हना निबलों को।
उसको कल वह सबल हनेगा।

(६)

शक्ति, ज्ञान, धन यदि पाया है, तो निबल अज्ञान अभागे,
उनको कर उपकृत उनको सबल बनाओ [illegible] मांगे।

यशस्तिलक चम्पू

[ले० श्री जगनलाल गुप्त मुख्तार]

कहते हैं, विद्या प्राप्त करके मनुष्य उदार हो जाता है; अपनी मनोवृत्ति का विकास हो जाने के कारण वह दुराग्रह, हठ पक्षपात तथा द्वेष छोड़ कर जहां से भी सत्य ज्ञान की प्राप्ति होती है वहीं से अपनी तृषा शांत कर लेता है। वह बहुश्रुत होने के कारण मानवीय अल्पज्ञता एवं निर्बलता का अनुभव स्वयं भी कर लेता है, अतः स्वतंत्र पक्षी की नाईं मत वादियों के बतलाये उन मार्गों का अनुसरण नहीं करता, जो पशुओं के लिये बनाये मार्गों के जैसे होते हैं, जिन्हें छोड़ पशु नहीं चल सकते; क्योंकि उन मार्गों के अतिरिक्त उनकी गति अन्यत्र नहीं हो सकती। वे स्वतंत्र मार्ग न खोज सकते हैं और न स्वयं निर्माण कर सकते हैं। इसी लिये उनके लिये वे मार्ग बनाये भी गये हैं। किन्तु पक्षी अपना मार्ग स्वयं निर्धारित करते हैं, आवश्यकतानुसार उसे बदलते और छोड़ भी देते हैं। इस स्वतंत्र वृत्ति से यह भी अनुमान होता है कि चतुष्पद पशुओं की अपेक्षा द्विपद पक्षी अधिक स्वतंत्र स्वावलम्बी तथा बुद्धिमान भी होते हैं। शायद इसी बौद्धिक विशेषता की समानता को अपने में देखकर बुद्धिमान मानव समाज ने भी अपने सदस्योंका नाम 'द्विज' रख लिया होगा, जिसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की जाती है कि द्विज का जन्म भी पक्षियों की नाईं दो बार होता है। पक्षी एकबार अण्डा रूप में माता के उदर से बाहर आते हैं, और दूसरी बार अण्डेसे फोड़कर आते हैं, और मनुष्य एकबार माता के गर्भ से बाहर आकर जन्म लेता है तथा दूसरी बार, सावित्री माता विद्या देवी के द्वारा ज्ञान प्राप्त करके पशु से द्विज, विद्वान बनता है। कुछ भी हो मनुष्यमें स्वतंत्र वृत्तियों का विकास बिना विद्या के नहीं होता और स्वतंत्र मनुष्य पशु की अपेक्षा पक्षियों की नाईं अपने मनोनीत मार्गों से निर्धारित गति करना चाहते हैं। वे सांसारिक नश्वर सुखों को लेकर अपने शास्त्र जन्य मानसिक विनोद को नष्ट करनेकी इच्छा नहीं करते। उनकी दृष्टि उदार, विचार क्षमा के भावोंसे पूर्ण, वृत्ति शान्त, भाव सहिष्णु एवं कार्य किसी को हानि न पहुचाने वाले होते हैं। विद्वान वस्तुतः किसी के शत्रु नहीं होते, न वे किसी का बुरा चाहते हैं वे मतवाले मुल्लाओं, ईसाइयों या हिंसक पुरोहितों की नाईं खून प्यासे नहीं होते, और न धर्म के नाम पर हिंसा करना ही वे पसन्द करते हैं।

यशस्तिलक चम्पू का विद्वान लेखक सोमदेव सूरि भी एक ऐसा ही विद्वान व्यक्ति था। जिसमें सहिष्णुता की मात्रा कूट कूट कर भरी थी। वह जैन धर्म के श्वेताम्बर सम्प्रदाय का अनुयायी होकर भी दूसरे धर्म के प्रति उदारता के भाव रखता एवं

[illegible] यशस्तिलक [illegible] अपना [illegible] सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध [illegible]

[illegible] प्रकाशित [illegible]

विधर्मियों के विद्वानों को आदर के साथ स्मरण करता था। अपने से भिन्न धर्मवालों के गुणों की प्रशंसा एवं अवगुणों की मृदु निन्दा आप उसके उक्त ग्रन्थ में ही नहीं, प्रत्युत अन्य पुस्तकों में भी देखेंगे।

उसने विद्या और उसके भक्तों के विषय में कितनी सुन्दर उक्ति कही है—

लोको युक्तिः कला छन्दोऽलंकाराः समयागमाः।
सर्वसाधारणाः सद्भिस्तीर्थमार्गइवस्मृताः॥

लोकाचार या लौकिक नियम, युक्ति (प्रमाण, आदि न्यायशास्त्र या तर्कपद्धति), कला छन्द-शास्त्र अलंकार-शास्त्र, अनेक प्रकार के जिन, जैमिनि, कपिल, कणाद चार्वाक, शाक्य आदि भिन्न २ प्रकार के आगम, यह सब बातें विद्वानों के लिये सर्व साधारण हैं, प्रत्येक व्यक्ति का इन पर समान अधिकार है। कोई व्यक्ति चाहे इन आगमों के संस्थापक महात्मा के सिद्धान्तों का अनुयायी हो या न हो, किन्तु वह स्वतन्त्रता पूर्वक इसका संग्रह कर सकता है तथा यदि वह चाहे तो इनकी आलोचना प्रत्यालोचना एवं खण्डन मण्डन आदि भी कर सकता है। इसमें किसी को बुरा मानने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि ये सब कुछ किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति नहीं हैं—यह सार्वजनिक पदार्थ हैं। इसका कारण यह कि विद्वानों ने इन्हें तीर्थ (मुक्ति, स्वर्ग, मोक्ष, निर्वाण, निजात आदि अन्तिम ध्येय) की प्राप्ति का मार्ग कहा है और ये मार्ग किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति नहीं होते। अतः इन विशेष तीर्थ को लेजाने वाले विशेष मार्गों पर ही किसी का विशेष अधिकार क्यों हो?

सोमदेव ने जो मोक्ष का स्वरूप इस ग्रंथ में वर्णन किया है वह कदाचित जैन विद्वानों के वर्तमान समाजको पसन्द न हो। *

आनन्दोज्ञानमैश्वर्यं वीर्यं परमसूक्ष्मता।
एतदात्यन्तिकं यत्र स मोक्षः परिकीर्तितः॥

---

* जैनधर्म मुक्तात्मा में अनन्त ज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त सुख और अनन्तवीर्य को स्वीकार करता है जिसे कि सोमदेव ने बतलाया है। इन चारों को स्वचतुष्टय या अनन्त चतुष्टय कहते हैं। ये चारों आत्मा के स्वाभाविक गुण हैं जो सांसारिक बन्धन से मुक्त हो जाने पर प्रत्येक आत्मा में व्यक्त हो जाते हैं। और कभी उनका नाश नहीं होता। किन्तु वैदिक विद्वान मोक्ष के विषय में एक मत नहीं हैं। नैयायिक, वैशेषिक, सांख्य, योग और मीमांसक आदि वैदिक दर्शनकार अपनी २ दृष्टि से मोक्ष की व्याख्या करते हैं। किन्तु एक बात में वैदिक विद्वान [illegible] अधिक मोक्ष पर्याय को मानने वाले सभी दर्शनकार एक मत हैं। [illegible] अभाव माना है। पर भाव अभाव को बिलकुल स्वतन्त्र वस्तु मानने वाले वैदिक विद्वानों की दृष्टि में [illegible] अत्यन्त अभाव और स्वतन्त्र अत्यन्त सद्भाव [illegible] वस्तु नहीं है। अतः उनके मत में यदि मोक्ष [illegible] उस दुःख के अभाव का [illegible] ही है। जबकि जैन मानता है कि मोक्ष दुःखविनिवृत्ति मात्र ही नहीं है, किन्तु उसमें स्वाभाविक सुख आदि स्वतन्त्र गुण भी हैं। अतः सोमदेव सूरि का मोक्ष का स्वरूप तो [illegible] जैन विद्वानों को पसन्द है और [illegible] यह भी हम हैं कि उसमें आपके वैदिक विद्वान भी सर्वथा सहमत हैं। किन्तु कदाचित् वैदिक विद्वान [illegible] हैं। ([illegible])

मोक्ष में आनन्द, ज्ञान, ऐश्वर्य, वीर्य और स्वरूप की अत्यन्त सूक्ष्मता होती है। वैदिक विद्वान भी दुःख के अत्यन्त अभाव को मोक्ष मानते हैं। उस समय जीव अपने वास्तविक सूक्ष्म रूप में अविद्या से मुक्त होकर रहता है एवं उसकी गति सर्वत्र निर्बाध होती है। जीव की अपनी स्वतन्त्रसत्ता भी मोक्ष में कहीं २ मानी गई है। किन्तु सोमदेव सूरि द्वारा वर्णित मोक्ष का स्वरूप किसी प्रकार भी वैदिक मोक्ष के स्वरूप से भिन्न या विरुद्ध नहीं कहा जा सकता। जगत की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के विषय में भी इनका मत सुनिए।

> उत्पत्तिस्थितिसंहारसारा: सर्वे स्वभावत:।
> नयद्वयाश्रयादेते तरंगा इव तोयधे:॥

रात्रि दिवस या प्रकाश और अन्धकारके प्रवाह की तरह अथवा उत्पत्ति और उस के पश्चात नाश के प्रवाह की नाईं केवल इसीहोने और होकर नष्ट होजाने के अनुसार यह स्वभाव से ही अनादि है। अनेक बार उत्पन्न होकर यह संसार स्थित रहा और फिरयह नष्ट हो गया बस यही इस का स्वभाव है। जिस प्रकार समुद्रमें लहरें निरन्तर उत्पन्न और फिर नष्ट होती रहती हैं इसीप्रकार यह संसार भी अनन्त काल से उत्पन्न और नष्ट होता रहा है।

यहां सोमदेव सूरिने समुद्रकी लहरोंका उदाहरण देकर यद्यपि जगत के इस व्यापार के कारणोंकी सत्ता कोस्वीकार किया है, तथापि लहरों के कारण समुद्र या उसकेजल और वायु या जल को प्रेरणा देनेवाली शक्ति कोलहरोंकी उत्पत्तिकास्मरण करतेसमय भुलाया नहीं जा सकता। किन्तु लेखक ने कर्त्ता के होने न होनेके प्रश्नको उठा विषयको झगड़ेका कारण नहीं बनाया।

भारत धार्मिक द्वेष और अत्याचारों के कारण गर्क हुआपड़ा है क्यों कि यहां धर्मने 'मत' का स्वरूप धारण कर लिया है। किन्तु सोमदेवका यह मत नहीं है। उसने धर्मका स्वरूप इस प्रकार लिखा है

> यस्मादभ्युदय: पुंसां नि:श्रेयसफलाश्रय:।
> वदन्ति विहिताम्नायास्तं धर्मं धर्मसूरय:॥
> स प्रवृत्तिनिवृत्यात्मा गृहस्थेतरगोचर:।
> प्रवृत्तिर्मुक्तिहेतौ स्यान्निवृत्तिर्भवकारणात्॥

धर्म वही है, जिस से लौकिक अभ्युदय एवं मोक्ष रूपी फल की प्राप्ति हो। सम्पूर्ण वेदादि आम्नायों के ज्ञाता विद्वानों का मत भी धर्म के विषय में यही है। वैदिक दार्शनिक विद्वान कणाद ने भी अपने वैशेषिक दर्शन में धर्म की परिभाषा इन्हीं शब्दों में लिखी है। यह धर्म निवृत्ति और प्रवृत्ति मार्ग वाला है। सांसारिक मार्ग से निवृत्त हो कर मुक्ति के मार्गमें प्रवृत्त होने से ही वस्तुत धर्मका पूरा २ पालनहोता है, अकेले निवृत्तिसे धर्म लगड़ा रह जाता है। इस लिये धर्म का सेवन

[illegible]

प्रति समय दोनों प्रकार से करना उचित है। तभी निःश्रेयस और अभ्युदय की प्राप्ति होगी। कहिये, निवृत्ति और प्रवृत्ति की कितनी विचित्र संगति लगाई है भगवान कृष्ण का निष्काम कर्मवाद या वेद का 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि' आदि भी इस से भिन्न नहीं है। वास्तव में विद्वान वही है जो विद्वानों के परस्पर विरुद्ध दिखाई देने वाले वाक्यों का सामञ्जस्य करे। व्यर्थ का वाद विवाद उठा कर लड़ाई झगड़ा उत्पन्न करनातो "कालो गच्छति मूर्खाणाम निद्रया कलहेन वा" ही है।

सोमदेव सूरि ने एक स्थान पर वैदिक विद्वानों के वाक्यों में ही यज्ञ का स्वरूप, जो उस के समय में

यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयम्भुवा।
यज्ञोहि भूत्यै सर्वेषाँ तस्माद्यज्ञे बधोऽबधः।

"ब्राह्मणो ब्राह्मणमालभेत इन्द्राय। क्षत्रियं मरुद्भ्यः। वैश्यं तमसे। शूद्रमुत्तमसे। तस्करमात्मने। क्लीबं कामाय। पुंश्चलमतिक्रुष्टाय मागधं गीताय। सूतमादित्याय। स्त्रियं गर्भिणीं सौत्रामणी। या एवं विधां सुरां पिबति न तेन सुरा पीता भवति।

। उपेहि मातरं उपेहि स्वसारम्।"

"षट् शतानि नियुज्यन्ते पशूनां मध्यमेऽहनि अश्वमेधस्य वचनानि पशुभिस्त्रिभिः

"गोसवे सुरभिं हन्याद्राजसूये तु भूभुजम्।
अश्वमेधे हयं हन्यात पौण्डरीके च दन्तिनम्॥"

ये सब नृशंसताएँ क्यों होती थीं? सुनिये - "औषध्यः पशवो वृक्षास्तिर्यञ्चः पक्षिणो नराः। यज्ञार्थं निधनं प्राप्ताः प्राप्नुवन्त्युच्छ्रितां गतिम्॥"

यज्ञ के इस भयानक स्वरूप के सर्वप्रथम विरोध कर्ता भगवान बुद्ध थे। इस युग में श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी भी इस हिंसा पूर्ण यज्ञ के कट्टर शत्रु थे, फिर अहिंसा धर्म के मानने वाले सोमदेव सूरि उस पर कलम क्यों न चलाते।

एक स्थान पर सोमदेव सूरि ने अनेक विद्याओं के प्राचीन आचार्यों के नामों का उल्लेख किया है। यहां एकाध विषय के विद्वानों की सूची दी जाती है। नीति के प्राचीन आचार्यों में गुरु, शुक्र, विशालाक्ष, परीक्षित, पराशर, भीम भीष्म भारद्वाजादि गिनाये हैं। इन नामों में गुरु शुक्र विशालाक्ष पराशर और भीष्म तथा भरद्वाज के नामों का उल्लेख तो कौटिल्य ने भी किया है। किन्तु परीक्षित और भीम के नीति शास्त्रों का पता आचार्य कौटिल्य को भी न था। अन्यथा वह अवश्य उल्लेख करते। बृहस्पति के मत का उल्लेख यशस्तिलक चम्पू में इन शब्दों में मिलता है।

"सांख्ययोगौ लोकायतं चान्वीक्षिकी तस्यांच स्यादस्ति स्यान्नास्तीति नग्न श्रमणक इति बृहस्पति राखण्डिलस्यपुरस्तं समयं कथं प्रत्यवतस्थे"।

लेखक ने यहां प्रसंग वश उस इतिहास का उल्लेख किया है, जो मत्स्य पुराण, विष्णु पुराण, श्री मद्भागवत तथा और भी एक दो पुराणों में महाराज रजि के पुत्रों के प्रसंग में उपलब्ध होता है, एवं जिस में बृहस्पति ने इन्द्र को जैन धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार करके रजिपुत्रों को नष्ट करने की योजना समझाई थी।

प्राचीन कालीन गजशास्त्र के प्रणेता विद्वानों के नाम भी देखिये। याज्ञवल्क्य, वाहलि, नर, नारद, राजपुत्र और गौतम। इस अवसर पर नकुल और सहदेव या नल में से किसी का भी नाम नहीं लिया

गया, और न पाल कय को ही याद किया गया। सोमदेव के समय में, और उससे बहुत पहिले भी, कलिंग हाथियों के लिये प्रसिद्ध था। आचार्य कौटिल्य ने लिखा है, "कलिङ्गजागजाः श्रेष्ठाः" (प्रक० २०) यही सोमदेव की भी सम्मति है। उसके समयमें भी कलिंग देशाधिपति अपना वार्षिक कर हाथियों के रूप में भेजा करता था।

"कलिंग विषयाधिपतिप्राहित प्रतिवर्ष देय-वेतण्ड मण्डलीमध्ये" तथा "अवलगतिकलिंगा भीश्वरस्थां करीन्द्रैः"

उस समय कलिंग देश की सीमा इस प्रकार थी

उत्कालानां च देशस्यदक्षिणस्यार्णवस्य च।
सह्यस्य चैव विन्ध्यस्य मध्ये कालिंगजं वनं ॥

उत्तर में उड़ीसा (उत्कल) दक्षिण में सागर पश्चिम में सह्य पर्वत सतपुड़ा पर्वतमाला) तथा विन्ध्याचल के मध्य का निम्न भाग और पूर्व में समुद्र से आवृत भूभाग कालिंग वन था। सोमदेव सूरि के यशस्तिलक चंपू का नायक कावुल का हूण था। इसी बात को सोमदेव सूरि किस प्रकार एक भोज की प्रशंसा करते समय व्यक्त करता है 'देव ! देव मिव कुलेन कम्बोजम' सोमदेवके राजनीति विद्या के गुरु आचार्य कौटिल्य थे उनका अर्थ शास्त्र पढ़कर इन्होंने राजनीति का ज्ञान विशेष रूप से प्राप्त किया था। अतः उन्हीं के जैसा ऐतिहासिक ज्ञान इनका भी बहुत विस्तृत था। इन्होंने एक प्रसंग पर अनेक राजा के मारे जाने का उल्लेख इस प्रकार किया है।

१— कलिंगष्वनंगो नाम दुर्पातिर्विवार्कीति-सेनाधिपत्येन सामन्त सन्तानं सन्तापयन सम्भूय प्रकुपिताभ्य प्रकृतिभ्यः किलैक लोष्ठानुरोधं वधम-वाप—कलिंग देश का राजा अनंग था। उसने अपने विवा कीर्ति के द्वारा सामन्तों के पुत्रोंको बहुत पीड़ित किया था। प्रजा ने विद्रोह करके उसे मार डाला।

२— केरलेषु करालः कितवस्य पौरोहित्येन—केरल देश के राजा कराल को कितव पुरोहित ने ही मार डाला था।

३—बंगालेषु मंगलो वृषलस्य साचिव्येन—बंगाल में मंगल राजा को वृषल सचिव ने मार डाला था।

४-कथकैथकेष कामोपरुद्धवधूस्तन्धयस्य यौवरा-ज्येन—कथकैथक देश के राजा को युवराज की धाय ने मार डाला था वह अत्यन्त कामी राजा था।

वंगेषु स्फुलिंगः कुल क्रमागतस्य चतुरुपधा शुद्ध-स्यापि सचिवस्यापमानेन —बंग देशका स्फुलिंग राजा अपने पुराने खानदानी मन्त्री के द्वारा मारा गया था: क्योंकि राजा ने मन्त्री का अपमान कर दिया था।

६— मगधेषुमकरध्वजः साधुसमीहितस्यापि पुरोहितस्यावहेलनेन—मगधदेश का राजा बड़ा साधु सत्कार करने वाला था। उसका नाम मकरध्वज था। किन्तु उसे भी उसके पुरोहित ने मार डाला था, क्योंकि उसने पुरोहित का मजाक उड़ाया था।

७—कौंगषु कुरंगो देश कोपोचितप्रतापस्यापि सेनापतेरधिक्षेपेण—कुंग या कौंग देशके कुरंग राजा सेनापतिने पदच्युत कर देनेके कारण मार डाला था।

८—चेदिषु नराशो निरपराधस्यापि मरत सुतस्य प्रत्ययनेन—चेदि देशके राजा नराशको इसलिये मौत का मुंह देखना पड़ा कि उसने अपने पुत्र को युवराज पद से हटाया था। ये राजा सभी ऐसे हैं, जिनके सम्बन्ध में ऐतिहासिक विद्वानों को प्रकाश डालना चाहिये। कुछ और ऐतिहासिक उल्लेख देखिए।

१- श्रूयते हि आत्मनः किल स्वच्छन्दवृत्ति-मिच्छन्ती विषदूषित मद्यगण्डूषेण मणि कुण्डलामहादेवी यवनेषु निजतनुजराज्यार्थं अजराजं जघान स्वयं स्वेच्छाचार की कामना एवं पुत्र को राज्य दिलाने के लोभ में महादेवी मणि कुण्डला ने यवन देश में अजराज को विषाक्त शराब पिलाकर मार डाला था।

२—विषालक्तकदिग्धेनाधरेण वसन्तमतिः सूरसेनेषु सुरतविलासं-

मथुरा राज्यमें अपने होठोंसे विष लगा कर महाराना वसन्तमति ने महाराज सुरतविलास को यमपुर पहुंचाया था।

३—विषोपलिप्तेनमेखलामणिना वृकोदरी दशार्णेषु मदनार्णवम्-दशार्णदेश के महाराज मदनार्णव को रानी वृकोदरी ने विष लगी मेखलामणि से मार डाला था।

४—निशितनेमिना मुकुरेण मदिराक्षी मगधेषु मन्मथविनोदं- मगधके महाराज मन्मथविनोद को रानी मदिराक्षी ने दर्पण की तेज धार से गोल करा कर उसकी धार से ही मार डाला था।

५—कबरीनिगूढेनासिपत्रेण चण्डरसा पाण्ड्यु मुण्डीरम्-चण्डरसा ने अपनी चोटी में असिपत्र छिपा कर उससे मुण्डीर को मार डाला था। यह पाण्ड्य (पांड्य ?) देश की बात है।

६-७—विधुर्गुरोः कलत्रेण गौतमस्यामरेश्वरः शन्तनोश्चापि दुश्चर्मासमगंस्त पुरा किल-प्राचीन समय में चन्द्रमा ने गुरु पत्नी तारा से, इन्द्र ने गौतम की स्त्री अहल्या से एवं दुश्चर्मा ने शान्तनु की स्त्री से व्यभिचार किया था। अहिल्या के विषय में एक अन्य स्थान पर यह भी लिखा है कि यद्यपि उसका पति उसकी रक्षा करता था किन्तु तब भी वह नहीं रुक सकी 'अनुश्रूयते कृतरक्षा शतयाप्यहल्या किलाखण्डलेन सह संविवेश'।

१०—हरदेहार्धाश्रितापि गिरि सुता गजासुरेण-हिमालय की पुत्री पार्वती ने महादेव के सदैव साथ रहने पर भी गजासुर से संगम किया था।

११—एकवसनवैदेहकवधूमूलदेवेन-एक स्थान में रहने वाले विदेह की स्त्री ने मूलदेव से जारकर्म किया था।

१२—यमजठरगतापि छाया पावकेन-यम की भगिनी छाया ने पावक से संगम किया था।

१३—बृहस्पति इन्द्र की सभा में प्रवेश करने से रोके गये थे-तथा च लौकिक श्रुतिःकिल बृहस्पतिः सदवृत्तोपि चकोरनगरे लोचनाञ्जनहरण किनवेन मिथ्यापवाददूषितः शतक्रतुः सभायां प्रवेशं न लेभे।

१४—चक्रपाणि साधु बनारस से निकाला गया था-अलब्धाशनाशेन तृष्णकनाम्ना वारजीवनेन अयं भिक्षाभ्रमणाव्याजेनार्भकान्भक्षयतीत्युद्धतश्चक्रपाणिः परिव्राड् वाराणस्याम्।

१५—मार्कण्ड तपस्वी तापस मण्डली में से निकाले गये—मधुपेन मद्ये पतितयाश्च मार्कण्ड-तापसस्तापसाश्रमेषु (प्रवेशं न लेभे)

१६—द्वैपायन ने द्वारावती जलाई-द्वैपायनो येन स तादृशं कर्म समाचार (द्वारावती भस्मीकरण-कर्मेति)

१७—रावण ने दाण्डक्य का इतिवृत्त जानकर भी स्त्री चुराई—पौलस्त्यो नीतिशास्त्रेषु नाश्रौषी-द्दाण्डक्योपाख्यानम् येन स परदारानपाहरत ?

१८— नहुष ने सप्तर्षियोंको अपना वाहन बनाया- नहुषो न सम्यगुपासितो गुरुकुले येन सप्तर्षीन्संयुगा- नकार्षीत् ?

१९—प्रजापति ने अपनी पुत्री पर मन चलाया- प्रजापतिर्जड एव रण्डो वा येनात्मदुहितरि मनश्चकार।

प्राचीन समय का कुछ वानप्रस्थाश्रम पालनेवाली स्त्रियों के उदाहरण देखिए—

१—किल वानप्रस्थभावेऽपि रामस्य माता सधर्मचारिण्यासीत् २—द्रौपदी धनञ्जयस्य ३— सुद- क्षिणा दिलीपस्य ४—लोपामुद्रागस्त्यस्य ५—अरु- न्धती वशिष्ठस्य ६—रेणुकाच जमदग्नेरिति । आचार्य सोम सूरि की भौगोलिक बहुज्ञता भी वैसी ही पृथुल थी, जैसी उनकी इतिहासज्ञता । किन्तु यह विषय हम किसी दूसरे निबन्धके लिये छोड़ते हैं, और यहां एक दो बातें और कहकर इस लेख को समाप्त करते हैं।

सोमदेवने तत्कालीन गृहांगण, बाग, उद्यान आदि का जिस प्रकार विस्तृत वर्णन लिखा है, उससे तत्का- लीन सामाजिक सभ्यता का भी कुछ न कुछ पता चलता ही है । उज्जैन की शोभा वर्णन करते हुए उन्होंने कल से चलने वाले पंखों और फव्वारों का उल्लेख किया है ।

नक्तं सिप्रानिलैर्यत्र जालमार्गानुगैःकृता ।
वृथारतिषु पौराणां यन्त्रव्यजनपुत्रिकाः ॥

इस पर टीकाकार ने लिखा है " यन्त्रेण कृत्वा व्यजन पुत्रिकाः ताल वृन्त पुत्तलिकाः "। और देखिए-

चन्द्रोपल प्रणालाग्रैर्निशि चन्द्रातपद्रुतैः ।
हसन्ति यत्र हर्म्याणि यन्त्रधारागृहश्रियम्- ॥

उज्जैन नगरी में ऐसे मकान थे जिनकी छतों में चन्द्रकान्तमणि के पनाले-पनाली लगाये गये थे। इन पनाले पनालियों से रात्रि में चन्द्र किरणों का स्पर्श होने से जल टपकता रहता था । जल की ये धाराएं यन्त्र धारा गृहों (मेघ मन्दिर या " सावन भादों " नामक गृहों) की शोभा को हीन बनाती थीं । यन्त्र गृहों में फव्वारों के द्वारा सदैव जल बरसता रहता है जो जल के द्वारा ऊपर चढ़ाया जाता है ।

इस प्रकार के प्रासाद बीकानेर में देखे जा सकते हैं, जो नये ही बने हैं। भारत वर्ष में भी आज कल ऐसे फव्वारा गृहों की कमी नहीं है । कुछ भी हो, यह नहीं कहा जा सकता कि नल के बल से जलको ऊपर चढ़ाने का विज्ञान लेखक के मस्तिष्क में उस समय नहीं था—यह दूसरी बात है कि उसने ऐसे यन्त्र स्वयं देखे थे या नहीं किन्तु वह ऐसे यंत्रोंके अस्तित्व से अवश्य परिचित था । कल के पखों का उल्लेख प्राचीन कालमें एक आध स्थान पर और भी उपलब्ध होता है । श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी भोज प्रबन्ध के आधार पर महाराज भोज के यहां एक इसी प्रकार के कल के पंखे का उल्लेख अपने ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में किया है । सोमदेव की एक आध राज नैतिक सूक्ति की बानगी भी देखिए—

एकामात्ये महीपाले नालं लक्ष्मीर्विजृम्भते ।
लतायास्तत्र का वृद्धिः शाखैका यत्र शाखिनः ॥

जिस राजा का एक ही अमात्य होता है उसकी राज लक्ष्मी अधिक वृद्धि नहीं कर सकती । जिस पेड़ में एक ही शाखा है उसका आश्रय लेने वाली लता का प्रसार ही क्या होगा ? राज लक्ष्मी लता है और राजा वृक्ष है, तथा मंत्री उसकी शाखा । अब राज लक्ष्मी के विस्तार की सीमा वृक्ष तथा उसकी शाखा से बढ़ कर तो हो ही नहीं सकती ।

अतः यदि लता को अधिक फैलते देखने की इच्छा है तो बहुत सी शाखा वाले वृक्ष का आश्रय दीजिये। जहां बहुत से मस्तिष्क, अनेक प्रकार के विचार और विवेक तथा कितने ही हितैषी काम करने वाले होते हैं, वहीं सभी कामों में सफलता मिलती है। मन्त्री के योग्यायोग्य होने पर ही राज्य का अस्तित्व निर्भर है। इस पर आचार्य का कथन है

दुर्योधनः समर्थोऽपि दुर्मन्त्री प्रलयंगतः।
राज्यं एकशरोऽप्यापि सन्मंत्री चन्द्रगुप्तकः।

दुर्योधन सेना, कोष, मित्र आदि सब प्रकार के बलों से सम्पन्न था, किन्तु वह नष्ट होगया, और चन्द्रगुप्त निराश्रय, निर्धन, सेना रहित तथा मित्रादि से रहित राजकुमार था, किन्तु वह सम्राट हो गया यह इस प्रकार की विभिन्नता क्यों? केवल मंत्री के अयोग्य और योग्य होने के कारण।

माधुर्य से उद्धृत

जयधवला का प्रारम्भिक मुद्रित अंश

(गतांक से आगे)

पृष्ठ १४ पर पैराग्राफों का विभाग तीनों आलोचनाओं के आधार पर निम्न प्रकार होना चाहिये।

ण च ववहारणओ चप्पलओ, तत्तो सेसाण पउत्ति दंसणादो। जो बहु जीवाणुग्गहकारी ववहारणओ सो चेव समस्सिदव्वो त्ति मणेणावहारिय गोदम थेरेण मंगलं तत्थ कयं।

२—पुण्णकम्म बंधत्थीणं देसव्वयाणं मंगलं करणं जुत्तं ण मुणीणं कम्मक्खयकंखुवाणमिदि ण वोत्तुं जुत्तं, पुण्ण बंधहेउत्तं पडि विसेसाभावादो मंगल स्सेव सरागसंजमस्स वि परिच्चागप्पसंगादो। ण च तस्स परिच्चागो जुत्तो संयमाप्पसंगभावेण णिव्वुई गमणाभावप्पसंगादो।

३—सरागसंजमो गुण सेढि णिज्जराए कारणं तेण बंधादो मोक्खो असंखेज्ज गुणो त्ति सराग संजमे मुणीणं वट्टणं जुत्तमिदि ण पच्चवट्ठाणं कायव्वं अरहंत णमोक्कारो संपहियबंधादो असंखेज्ज गुण कम्मक्खय पकारओत्ति तत्थवि मुणीणं पवुत्ति पसंगादो।

पहिले पैराग्राफ का अर्थ कराग्या जी व पांड्या जी के अर्थके अनुसार करना चाहिये दूसरे पैराग्राफ का अर्थ पंडित कैलाशचन्द्र जी व मुख्तार सा० के अनुसार करना चाहिये। परन्तु इस पैराग्राफ में 'ण च तस्स परिच्चा गो जुत्तो' यह पाठ मुख्तार सा० ने माना है पंडित कैलाशचन्द्र जी ने नहीं, इसलिये पं० कैलाशचन्द्र जी को तीसरे पैराग्राफ का अर्थ करने में बहुत कुछ कठिनाई का सामना करना पड़ा है

जिसमें उनका अर्थ कुछ आपत्ति के योग्य भी रहगया है प्रकरण बढ़ जाने के भय से उसका स्पष्टीकरण नहीं कर रहा हूं।

तीसरे पेराग्राफ का अर्थ करते हुए प्रोफेसर सा० ने 'इदि ण पच्चवट्ठाणं कायव्वं' का अर्थ 'अतः (मंगल का) प्रत्यवस्थान अर्थात् निराकरण नहीं करना चाहिये' ऐसा किया है। पंडित कलाशचन्द्र जी व मुख्तार सा० ने ब्रेकिट में दिये गये 'मंगल' शब्द के स्थान में 'सराग संयम' पाठ ठीक समझा है तथा मुख्तार सा० प्रत्यवस्थान शब्द का निराकरण अर्थ प्रकरण के अनुकूल बतला कर परित्याग अर्थ उचित माना है लेकिन यहां पर ब्रेकिट में न तो 'मंगल' या 'सराग संयम' पद ही वाक्यार्थ के उपयुक्त मालूम होते हैं और न प्रत्यवस्थान शब्द का परित्याग अर्थ ही उपयुक्त है। प्रत्यवस्थान शब्द का अर्थ यहाँ पर 'निराकरण' ही करना चाहिये और निराकरणभी यहाँ पर सिद्धान्त पक्षीय आक्षेप का किया गया है 'मंगल' या 'सराग संयम' का नहीं।

यहाँ पर प्रकरण यह है कि गुणधर आचार्य व यतिवृषभाचार्य ने अपनी रचना के आदि में मङ्गल नहीं किया है। इसका अभिप्राय आक्षेप और समाधान पक्ष को दिखलाते हुये टीकाकार ने स्पष्ट किया है। अन्तिम समाधान का भाव यह है कि शुद्धनय का आश्रयण करके ही इन दोनों आचार्यों ने मगल नहीं किया है लेकिन व्यवहारनय का आश्रयण करके मुनियों को भी मङ्गल करना उचित है। जैसाकि गौतम स्वामी ने चौबीस अनुयोग द्वारों के आदि में मङ्गल किया है। इसके ऊपर दूसरे पेराग्राफ में निम्न लिखित आक्षेप किया गया है।

आक्षेप— (मंगल से पुण्य कर्म का बन्ध होता है) पुण्य कर्म बन्धार्थी देशव्रती श्रावकों को मंगल करना उचित है कर्म क्षयार्थी मुनियों को नहीं।

सिद्धान्त पक्षीय आक्षेप—ऐसा कहना ठीक नहीं क्योंकि पुण्यबन्ध के प्रति समानता होनेसे मंगल की तरह मुनियों के सरागसंयम के भी परित्याग का प्रसंग उपस्थित होगा। लेकिन (मुनियों के) उसका (सराग संयम का) परित्याग उचित नहीं क्योंकि संयम के अप्रसंग भाव से अर्थात् मुनियों के सरागसंयम के परित्याग में संयममात्र ही परित्याग हो जाने से उनके निर्वृत्ति (मोक्ष) गमन के अभाव की प्रसक्ति होगी अर्थात मुनियों का कभी मोक्ष गमन नहीं हो सकेगा। आक्षेप पक्षीय समाधान—सराग संयम गुण श्रेणी निर्जरा का कारण है इस लिये (सरागसंयम से) बंध की अपेक्षा मोक्ष असंख्यात गुणा अधिक होने के कारण सराग संयम में मुनियों की प्रवृत्ति उचित है।

सिद्धान्त पक्षीय आक्षेप—इस प्रकार प्रत्यवस्थान अर्थात सिद्धान्त पक्षीय आक्षेप का ('मंगल की तरह मुनियों के सराग संयम के भी परित्याग का प्रसंग उपस्थित होगा' इस आक्षेप का) निराकरण नहीं करना चाहिये कारण कि अरहंत नमस्कार अर्थात मंगल भी वर्तमान बन्ध की अपेक्षा असंख्यात गुणा अधिक कर्मक्षय का कारण है इस लिये उसमें (मंगल में) भी मुनियोंकी प्रवृत्तिका प्रसंग उपस्थित होजायगा अर्थात इस तरह आक्षेपक के मत से भी 'व्यवहारनय का आश्रय करके मुनियों को मंगल करना उचित है यह सैद्धान्तिक पक्ष ही सिद्ध हो जायगा।

तीसरे पेराग्राफ में अन्तिम वाक्यांश का 'प्रसंग आता है' ऐसा अनुवाद प्रोफेसर सा० ने किया है इसके स्थान में मुख्तार सा० ने 'प्रसंग पाया जाता है, या 'प्रसंग ठीक बैठता है' यह अनुवाद ठीक माना है परन्तु इस तरह से आक्षेप और समाधान का रूप ही बिगड़ जायगा बात सिर्फ इतनी है कि प्रोफेसर सा० को प्रसंग आता है, इसका आशय 'अथान मुनियों के मंगल करने का सैद्धान्तिक पक्ष ही पुष्ट हो जाता है इस रूपमें स्पष्ट कर देना चाहिये था।

दूसरी बात यह है कि जिस हेतु के द्वारा आक्षेपक ने मुनियों के सराग संयम में अनिवार्य प्रवृत्ति सिद्ध की है उसी हेतु से उनकी मंगल में भी अनिवार्य प्रवृत्ति सिद्ध होती है जोकि आक्षेपक व सिद्धांती दोनों को अभीष्ट नहीं। क्योंकि इस तरह से तो गुणधर आचार्य और यतिवृषभाचार्य का ग्रन्थ के आदि में मंगल नहीं करना अनुचित ही सिद्ध होगा। परन्तु वह व्यवहारनय की दृष्टि से अनुचित होने पर भी शुद्धनय की दृष्टि से उचित ही माना गया है। इसी अनभीष्ट प्रवृत्ति को टीकाकार 'तत्थ वि मुणिणं पउत्तिप्पसंगादो' इस हेतु वाक्य से सूचित करते हैं। इसलिये मुख्तार साहब का यह लिखना कि "अन्तिम वाक्य में प्रसंग आता है" ऐसा जो अनुवाद किया गया है वह भी आपत्ति के योग्य है। क्योंकि उससे यह ध्वनि निकलती है मानो वह प्रसंग सराग संयम के परित्याग की तरह अनिष्ट है। परंतु अरहंतों के नमस्कार में मुनियों की प्रवृत्ति होना कोई अनिष्ट नहीं है" व्यवहारनय की अपेक्षा उपयुक्त होने पर भी शुद्धनय की अपेक्षा उपयुक्त नहीं कहा जा सकता। अन्यथा मैं पहिले लिख चुका हूँ कि गुणधर आचार्य और यतिवृषभाचार्य का ग्रन्थ के आदि में मङ्गल नहीं करना भी अनुचित ही सिद्ध होगा। इस अभिप्राय का स्पष्टी करण आगे के ग्रन्थ पर भी ध्यान देने से होजाता है।

पृष्ठ १७ के दूसरे पेराग्राफ का अर्थ निम्न प्रकार करना चाहिये।

(तत्थ) उस पेज्ज प्राभृत में (कसाय पाहुडं होदि) कषायप्राभृत है (त्तिवुत्ते) ऐसा कहने पर (तत्थ उप्पण्णमिदि घेत्तव्वं) उसमें (कषायप्राभृत) उत्पन्न हुआ है इस प्रकार तात्पर्य ग्रहण करना चाहिये। (कथमेकस्मिन्नुत्पाद्योत्पादक भावो) एक वस्तु में उत्पाद्योत्पादक भाव कैसे हो सकता है? (न) ऐसा कहना ठीक नहीं, क्योंकि (उपसंहार्योपसंहार क) स्य) उपसंहार्य मे उपसंहारक में। कथं चित् । किसी अपेक्षा से। भेदोपलम्भतः) भेद की उपलब्धि होने से। (तयोः) उपसंहार्य और उपसंहारक के। एकत्व विरोधात्। एकत्वका विरोध है।

यहां पर यह बात ध्यान में रखना चाहिये कि 'उपसंहारस्य'की जगह 'उपसंहारकस्य' और 'एकत्वाविरोधात्' की जगह 'एकत्वविरोधात्) पाठ ठीक जचता है। इस पेराग्राफ के तात्पर्य को भी स्पष्ट करने की आवश्यकता थी जिसका कुछ संकेत में पहले कर चुका हूँ।

पृष्ठ १८ पर 'देसामासिय भावेण' के स्थान में 'दे' को हटा कर 'समासिय भावेण' पाठ कटारया जी व पाँड्या जी ने शुद्ध माना है। परन्तु प्रकरण को देखते हुये यह पाठ संगत नहीं जान पड़ता।

यहां पर प्रकरण यह है कि उपक्रम पांच होते हैं लेकिन ग्रन्थकार ने एक ही का प्रतिपादन क्यों किया

है ? इसके समाधान रूप से निम्न लिखित पाठ पढ़ा गया है—'पाहुडम्मि युत्ति वत्थतराणि दुसद्दे ण पुण सेस उपक्कमा सूचिदा. देसा मासिय भावेण वा' । इस में दो वाक्य हैं और दोनों स्वतंत्र रूप से उक्त प्रश्नके दो समाधान करते हैं जैसा कि चूर्णि सूत्र के 'संपहि गाहाए दोहिय यारेहि सूचिद सेसोवक्कमाणं परूव-णट्ठं जइवसहाइरियो चुण्णिसुत्तंभणदि' इस अवतरण से स्पष्ट है।

पहिलो समाधान यह है कि नामोक्रम का कंठोक्त कथन करके शेष चार उपक्रमों को 'दु' शब्दसे सूचित कर दिया गया है। दूसरा समाधान यदि कटारयाजी व पांड्या जी के पाठ को मान कर किया जाय तो नहीं हो सकता क्योंकि 'सासामिय भावेण वा' का अर्थ 'अथवा संक्षिप्त भाव से शेष उपक्रमों को ग्रहण कर लिया गया है' ऐसा होगा जोकि पहिले समाधान का ही समर्थन हो जायगा कारण कि संक्षिप्त भाव का आश्रयण करके ही ग्रन्थकार ने 'दु' शब्द से शेष उपक्रमों को ग्रहण किया है।

यदि प्रोफेसर सा० का ही 'दे सामासिय भावेण वा' पाठ मान कर उसकी संस्कृत छाया 'तेषामाश्रित भावेन वा' ही मान ली जाय तो इसका अर्थ यह होगा कि (वा) अथवा (तेषामाश्रितभावेन) शेष उपक्रम इस नामोपक्रम के अविनाभूत होने से नामोपक्रम का कथन करने से ही उनका ग्रहण सिद्ध हो जाता है। और यह अर्थ समाधानान्तर का द्योतक भी माना जा सकता है। परन्तु प्रोफेसर सा० के द्वारा किया गया इस वाक्य का 'क्योंकि वे इस के आश्रित हैं' यह अनुवाद अवश्य ही ग्रन्थकार के आशय से दूर मालूम होता है। क्योंकि यह अनुवाद पहिले वाक्यार्थ से ही संबंधित हो गया है। जिस प्रकार 'रूपिणः पुद्गलाः' इस सूत्र में रूप शब्द से उसके अविनाभावी रस गंध और स्पर्श का ग्रहण कर लिया गया है उसी प्रकार नामोपक्रम से इसके अविनाभूत शेष चार उपक्रमोंका ग्रहण भी अनुचित नहीं कहा जा सकता।

मैं अब अपने विषय को समाप्त करता हूँ इसके प्रकाशनके विषयमें पहिली तीन आलोचनाओंकेलिखने वाले महानुभावों ने जो सम्मति प्रका की है उस पर अवश्य ही प्रोफेसर सा० ध्यान देंगे। तथा मैंने जो विचार प्रकट किये हैं उन पर भी उनका ध्यान अवश्य जायगा. ऐसी उम्मीद है।

—वंशीधर व्याकरणाचार्य बीना

स्वार्थी–संसार

समझता है कुछ रे नादान !
सरल स्वार्थ का यहाँ सभी जन करते हैं रसपान ।

नव विकसित कलि चूम २ कर,
पीता है रस झूम २ कर,
चरणों पड़ता लूम २ कर,
आ आ आता घूम २ कर,
गाता गुन २ गान ।
मधुप कलिका की लख मुस्कान

कलिका इधर प्रेम तन्मयता
में प्रिय को लख बेसुध रमता,
रखकर अति उल्लास हृदय में,
हुई प्रफुल्लित लेकर ममता-
पतित हुई अनजान ।
तुरत मधुकर ने किया पयान ।

हरित फलित कुसुमित उपवन में,
विहरित विहग मुदित हो मन में,
बुलबुल कोयल कीर करट सब,
नित बसते द्रुमलता-सदन में,
लेकर सुमधुर तान ।
देख ! गाते हैं कल २ गान ।

देखा–उजड़ चला है उपवन,
हुआ उदास खगों का भी मन,
कुछ २ कम आते जाते हैं ।
और अंत में सभी विहग गन,
तज बैठ-उद्यान ।
परख ले, फिर करले पहिचान ।

कमल कुमुद रवि शशि को लखकर,
शम्भत खिलते प्रमुदित होकर,
इसीलिये बस, चन्द्र कमल को,
सूर्य कुमुदिनी को सकुचाकर,
करते हैं अपमान ।
चुकाते बदला घृणित महान ।

हमें देख यह नहीं खिलता है ।
जब देखो प्रिय रत मिलता है,
तेरा खिलना अब न सहूँगा,
देखें तू क्योंकर खिलता है ?
यह रख कर अरमान ।
वार करते रवि शशि कृविमान ।

सुकृत कर्म वश जब तक धन है,
तन पर श्री विहसित यौवन है,
तब तक ही बस, मित्र बन्धु सुत,
और लगा रामा का मन है,
आनत सकल जहान ।
और [illegible] लगा कर ध्यान ।

[illegible] यह बात जगत की,
स्वार्थ [illegible]न औ मा[illegible] की,
पर [illegible] स्वार्थ समाया,
[illegible] [illegible] मात्र भगत की,
सुध लेते हैं आज ।
[illegible] बैठे हैं जो भगवान ।

—नाथूराम डोंगरीय

देहली शास्त्रार्थ

क्या मूर्ति अनुपयोगी है ?

अर्ध शताब्दी—के उत्सवके अवसर पर ३ मार्च १९३५ की रात्रि को ७ बजे से १० बजे तक आर्य समाज देहली और दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ अम्बाला छावनी के मध्य इस विषय पर कि "क्या मूर्ति पूजा अनुपयोगी है" शास्त्रार्थ हुआ आर्य समाज का पूर्व और जैन समाज का उत्तर पक्ष था, आर्य समाज की ओर से स्वामी कर्मानन्द जी और जैन समाज की ओर पं० राजेन्द्रकुमार जी न्यायतीर्थ, शास्त्रार्थ कर्ता थे प्रत्येक पक्ष के लिये १०-१० मिनिट का समय दिया जाता था, आर्य समाज की ओर से महाशय रामचंद्र उपदेशक और जैन समाज की ओर से पं० तुलसीराम काव्यतीर्थ बड़ौत सभा के अध्यक्ष थे।

इस शास्त्रार्थ में पूर्व पक्ष प्रतिपादक स्वामी कर्मानंद जी ने बहुत सी बातें विषयान्तर भी कहीं किन्तु उनके प्रतिवादी पं० राजेन्द्रकुमार जी ने उन्हें निग्रह स्थान पर न लाकर सभ्यता पूर्वक उनका भी उत्तर दिया ताकि स्वामीजी और श्रोताजनके हृदयमें किसी प्रकार का भ्रम उत्पन्न न हो सके।

इस शास्त्रार्थ का सारांश निम्न प्रकार है।

पूर्व पक्ष

उपस्थित विषयके संबंध में मैं यह पूछना चाहता हूं कि (१) आपके मतानुसार मूर्ति पूजा का लक्षण क्या है? (२) यदि मूर्ति पूजा उपयोगी थी तो सर्व प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव ने किसकी मूर्ति की पूजा की? यदि मूर्ति पूजा किये बिना ही मोक्ष प्राप्त कर सके तो मूर्ति पूजा नितांत आवश्यक न हुई।

(३) चैत्य शब्दकी उत्पत्ति चिता धातुसे है इसीसे चिता, चितम चैत्य और चिती शब्द बनते हैं। पूर्व समय मृतक मनुष्यों की अस्थियों को लेकर लोग कहीं गाड़ दिया करते थे और वहां कोई छत्री समाधी या आश्रम आदि बना दिया करते थे इसके बाद ऐसा रिवाज पड़ा कि हड्डियों को गाढ़ने के बजाय मृतजनों की मूर्तियां बनाकर रखने लगे, फिर श्रद्धा भक्ति के आवेश में उन मूर्तियों की पूजा करने लगे। इसी हेतु से मूर्ति को चैत्य और मन्दिरों को चैत्यालय कहते हैं और मूर्ति पूजा के आरंभिक इतिहास का रहस्य इन्हीं शब्दों में छुपा हुआ है।

महावीर स्वामी के देहावसान के समयभी ऐसा ही हुआ कि बहुत से राजा महाराजा उनकी अस्थियों के लेजाने पर लड़े झगड़े और जितनी जिस के हाथ पड़ी लेगया उनकी उन्हों ने समाधियाँ बनालीं मन्दिर निर्माण कर लिये और उनकी पूजा करने लगे

(४) अपने पूर्वजों और गुरुजनोंकी समाधि बनाने और उनकी पूजा करने का रिवाज प्रायः बौद्धों में ही था चूंकि जैनधर्म उसकी शाखा है इसलिये जब जैन धर्म बौद्ध धर्म से निकला तो मूर्ति पूजा को भी अपने साथ लेता आया।

हरिवंश पुराण में लिखा है कि नारकियों के पास उन्हें कष्ट देने के लिये असुर रहते हैं इन असुरों के निवास स्थानों में भी जिन मंदिर हैं नारकी उनकी रात दिन पूजा करते हैं तब भी नरक वास से नहीं छूटते तथा मन्दिरों में जाकर जैनी लोग अपनी इष्ट

सिद्धि के लिये प्रार्थनायें करते हैं परन्तु उनको मूर्ति से धन संतान आदि इच्छित पदार्थों की प्राप्ति नहीं होती, इसलिए मूर्ति पूजा अनुपयोगी है।

(५) जल पुष्प आदि में जैनी जीव मानते हैं उन को देवार्पण करने में अवश्य हिंसा होती है इस लिये प्रतिमा पूजा जैन धर्म के विरुद्ध भी है।

(१) उत्तर पक्ष

न त्वंमूर्ति न मूर्तिस्त्वं त्वं त्वमेवासि सव सा
मूर्तिमालम्ब्य त्वद्भक्ता मूर्तिमन्तमुपासते

के अनुसार मूर्ति परमात्मा नहीं है न परमात्मा मूर्ति है दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं परन्तु मूर्ति के अवलम्बन से मूर्तिमान की उपासना होती है यह मूर्ति पूजा का लक्षण है।

शब्दार्णव कोष में भी लिखा है
वीतराग मूर्ति के द्वारा जिसका मूर्ति है उसकी भक्ति करना ······· ·····मूर्ति पूजा है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने भी सत्यार्थ प्रकाश समु०१४ में लिखा है कि मूर्ति पूजा का वास्तविक अर्थ जड़ की उपासना नहीं है बल्कि मूर्ति के आश्रय से मूर्ति मान की पूजा है। मुसलमानों से वाद करते समय भी उनके प्रश्न के उत्तर में स्वामी जी ने कहा था कि मूर्ति पूजक जड़ मूर्ति की पूजा नहीं करते।

बस यही मूर्ति पूजा का अभिप्राय है।

मूर्ति पूजा का जो इतिहास वर्णन किया गया है वह भ्रमात्मक और मनोकल्पित है जिसकी कोई ऐतिहासिक साक्षी नहीं है अतः प्रमाण रूप नहीं माना जा सकता।

(४) जैन धर्म बौद्ध धर्म की शाखा है यह इतना ही गलत है जितना दिन को रात्रि कहना, बौद्ध धर्म के प्रतिपादक बुद्ध भगवान महावीर स्वामी के समकालीन थे, यदि जैन धर्म को बुद्ध धर्म की शाखा कहा जाय तो इसका यह अर्थ है कि जैन धर्म के प्रतिपादक भगवान महावीर थे, परन्तु स्वयं स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश की प्रथम आवृत्ति में यह माना है कि जैन धर्म के प्रतिपादक भगवान ऋषभदेव थे अब हम सोचते हैं कि इस विषय में हम स्वामी दयानन्द जी को यथार्थ वक्ता समझें या स्वामी कर्मानंद को भगवान महावीर के समय को ढाई हजार वर्ष हुये, अतः हमारे प्रति पक्षी की धारणा के अनुसार जैन धर्म ढाई हजार वर्ष पूर्व था ही नहीं, किन्तु अभी मोहनजोदारो में पाँच हजार वर्ष पूर्व की बनी हुई श्री ऋषभदेव की प्रतिमा निकली है देखो मोडर्न रव्यु अगस्त सन१९३२।

न नारकियों के पास असुर कुमारों के रहने के स्थान हैं और न वहाँ जिन मन्दिर ही है अत नारकियों की जिन मन्दिर के दर्शन की बात ही नहीं फिर पूजा करने पर भी पाप नष्ट नहीं होते यह कहना तो बिल्कुल ही निराधार है। आर्य समाज को अपने इस कथन पर यदि विश्वास है तो उसको इसके समर्थन में प्रमाण उपस्थित करना चाहिये।

यहां इस बात का निर्णय नहीं करना कि अमुक२ व्यक्ति ने अमुक २ मूर्ति पूजा की थी किन्तु यहाँ तो केवल इतना ही देखना है कि "क्या मूर्ति के द्वारा मूर्तिमान की भी उपासना की जा सकती है"। अतः भगवान ऋषभदेव ने किसकी मूर्ति की पूजा की इसके स्पष्टीकरण की यहां आवश्यकता नहीं। फिर भी हम इतना बतला देना चाहते हैं कि जैन धर्म बाह्य पदार्थों

को एक हद तक ध्यान का सहकारी मानता है। शब्द और मूर्ति भी इन ही बाह्य पदार्थों में से हैं। शब्द के द्वारा हम किसी विषय पर ध्यान करते हैं किन्तु यह भी एक हद तक। कभी ऐसा भी समय आता है जब हम को इसका सहारा छोड़ देना पड़ता है। यही बात मूर्ति के सम्बन्ध में है। जब तक हमारे मनपर बाह्य पदार्थों का प्रभाव पड़ता है या बाह्य पदार्थों के द्वारा हम अपने भावों का निर्माण कर सकते हैं तब तक हम मूर्ति का सहारा लेते हैं किन्तु जब हम इस अवस्था से पारहो जाते हैं तब हमको इसके सहारे की आवश्यकता नहीं रहती। नकशा भी विद्यार्थियोंको भूगोल सिखाने के लिये किसी हद तक ही आवश्यक है।

तीर्थंकर इस अवस्थामें परे होते हैं अतः उनको मूर्ति के सहारे की आवश्यकता नहीं हुआ करती

यह सब द्रव्य मूर्ति के सम्बन्ध में है। भाव मूर्ति की बात तो इनके सम्बन्ध में भी ठीक बैठती है। यह भी अपने हृदयस्थ सिद्ध परमेष्ठी के आकारका ध्यान करते हैं तीर्थङ्करों के सम्बन्ध में जैन शास्त्रों में सिद्ध भक्ति का स्पष्ट वर्णन मिलता है अतः आर्य समाज का यहप्रश्न भी उसके प्रतिकूलही जाता है

सत्यार्थ प्रकाश में स्वामी दयानन्द जी ने यज्ञ के पात्रों के चित्र दिये हैं कि चमचा आदि उपकरण इस प्रकार के होने चाहियें. इससे स्वयं सि है कि मूर्ति से मूर्तिमान का बोध होता है. आर्य समाज की मान्यता के अनुसार जो उपदेश परमात्मा ने मन्त्रों द्वारा दिया उसको ऋषियों ने धारण किया और फिर अक्षरबद्ध कर दिया उन्हीं मन्त्रों का संकलन वेद कहलाता है. शब्द नाशवान हैं वह उसी समय नष्ट हो गये जिस समय उनका उच्चारण हुआ अब केवल आधार रूप में उन शब्दों की मूर्ति रह गई है इसलिये उपस्थित वेद भी परमात्मा कथित मन्त्रों की मूर्ति है जिसकी आर्य समाज उपासना करता है। यदि आर्य समाज निषेध करने का साहस करता है तो उसे सब से पहिले उपस्थित वेदों का बहिष्कार करना पड़ेगा।

यदि परमात्माने कोई लिखित वेद ऋषियोंके पास प्रचारार्थ भेजा था तो यह वेद जो आज हमारे सामने हैं वह असली वेद नहीं हैं. यह उसको प्रतिलिपि ही हो सकती है इससे मानना पडेगा कि असल का काम नकल से लिया जा सकता है।

यदि आर्य समाजका सिद्धान्त यह है कि मूर्ति से मूर्तिमानका ज्ञान नहीं होता तो कहना होगा कि असली वेद की प्रति लिपि से, या मूल मंत्रों की अक्षरात्मक वेद रूप मूर्ति से भी मूल वेद का ज्ञान नहीं हो सकता और ऐसा मानने पर आर्य समाज के सिद्धान्त का मूलाधार ही नष्ट होजायगा।

यदि कहा जाय कि मूर्ति से मूर्तिमान के गुणों का ज्ञान होता है तो मूर्ति पूजा को अनुपयोगी नहीं कहा जा सकता।

२ पूर्व पक्ष

श्री मान जी! आपने मूर्ति का लक्षण बताया यह तो ठीक है हम भी मूर्ति को मानते हैं परन्तु शास्त्रार्थ का विषय मूर्तिकी उपयोगिता नहीं है किन्तु आपको सिद्ध करना यह है कि मूर्ति पूजा उपयोगी है। अतः आपको मूर्ति पूजा का लक्षण देकर यह बताना चाहिये कि मूर्ति मूर्तिमान की किस २ अवस्था का ज्ञान कराती है।

(२) यदि किसी शिव मन्दिर में वीतरागकी मूर्ति विराजमान करदी जावे तो आप उसकी पूजा करेंगे या नहीं अगर नहीं करेंगे तो क्यों? क्या वहां उस मूर्ति से वीतरागता का ज्ञान प्राप्त करना असंभव है।

मेरा विचार यह है कि जितने तीर्थंकर हुये है वह सभी वैदिक धर्मी थे उन्हों ने किसी प्रतिमा की पूजा नहीं की न उसका उपदेश दिया।

(४) जैन तत्वादर्श में स्वामी आत्मानंद जी ने लिखा है कि वीतराग की मूर्ति को देखकर वीतरागता का भाव तो उत्पन्न होता है किन्तु नग्नावस्था में उस की गुह्य इन्द्रियों को देखकर लज्जा आती है।

(५) यह बात गलत है कि मोहनजोदारो में पांच हजार वर्ष पहली ऋषभदेव की प्रतिमा निकली है। जब ढाई हजार वर्ष से पूर्व जैन धर्म था ही नहीं तो ५हजार वर्षपहली जैन प्रतिमा कैसे हो सकती है उस के विवरण में लिखा है कि वह विष्णु की प्रतिमाएं हैं। प्रतिमा बनाने की कला उस समय होगी प्रतिमा पूजा भी उस समय की जाती थी यह सिद्ध नहीं होता।

(६) मन्दिरों में वेश्याओं से आरती कराई जाती थी जैसा कि हरिवंश पुराण पर्व ३६ में लिखा है क्योंकि जिस समय साकार प्रतिमाओं की पूजा का रिवाज चला तो जैनियों ने भी प्रतिमाएं बनाकर मंदिर निर्माण कर लिये और हिन्दुओं की देखा देखी अपने धर्म का अधिक प्रचार करने के लिये प्रतिमा की पूजा करने लगे।

(७) प्रतिमा को देखकर उसके बाह्य चिन्हों से यह तो अवश्य जान लिया जाता है कि अमुक वस्तु या व्यक्ति की प्रतिमा है किन्तु उस मे प्रतिमा वाले के अभ्यन्तर गुणों का बोध नहीं होता. वीतरागता मनुष्य का अभ्यन्तर भाव है उस का ज्ञान मूर्ति से नहीं होसकता।

(२) उत्तर पक्ष

१-मैंने अपने आदि वक्तव्य में मूर्ति पूजा का ही लक्षण दिया था केवल मूर्ति का नहीं क्योंकि यह मुझे मालूम है कि मूर्ति पूजा पर वाद है मूर्ति पर नहीं।

मैंने उपस्थित अक्षरात्मकवेद को शब्दात्मक मूल मन्त्रों की प्रतिमा सिद्ध किया जिनकी उपासना करने से आर्य समाज इनकार नहीं कर सकता इस लिये प्रतिमा पूजा की उपयोगिता स्वयं सिद्ध है।

२- वीतराग की प्रतिमा जो पूज्य है वह प्रत्येक स्थान पर पूज्य है और वह वीतरागता की शिक्षा हर एक जगह पर देगी उसे चाहे जहाँ विराजमान कर दिया जाय।

३- महीधर कृत वेद भाष्य में लिखा है कि यदि रानी घोड़े के लिंग को अपनी योनि में स्थापन करे तो उसके चक्रवर्ती होने वाला पुत्र उत्पन्न होगा यजु० अ० २३ मं २० तथा वेगवान घोड़े की लीद से तपाने से तत्वज्ञान की प्राप्ति होती है, यजु० ३७ अं ६ म० महावीर स्वामी या अन्य तीर्थ करों को ऐसे वेदों का अनुयायी कहना कितना सफेद झूठ है लोकमान्य बाल गंगा धर तिलक ने कहा है कि याज्ञिक हिंसा और धर्म के नाम पर होने वाले रक्तपात की प्रथा को भगवान महावीर ने नष्ट किया। महावीर प्रभु ने इन वेदों को कभी मस्तक नहीं नवाया जिन में हिंसा का विधान और असंभव बातों का वर्णन है। स्वामी दयानंद सरस्वती ने स्वयं लिखा है कि जैन धर्म वेद विरोधी है। फिर जैन तीर्थंकरों को वेदानुयायी बताना कोरा मायाचार है।

अजमेर में एक बार मैं और स्वामी कर्मानन्द दोनों वहां गये जहाँ स्वामी दयानन्द की समाधि बनी हुई है मैं जानबूझ कर यह देखने के लिये कि भला आर्य

समाजी क्या कहते हैं जूता पहने हुये समाधी के चबूतरे पर चढ़ने लगा तो मुझसे जूते उतारकर ऊपर चढ़ने को कहा गया, क्या इसको प्रतिमा पूजा या मंदिर पूजा नहीं कहते ? पूजा का अर्थ आदर सत्कार और विनय सम्मान करने का है सो स्वामी जी की समाधि का किया जाता है फिर आर्य समाजी किस मुंह से प्रतिमा पूजा का खण्डन करते हैं ?

३ पूर्व पक्ष

यह बार २ क्यों कहा जाता है कि उपस्थित वेद असली वेदों की नकल हैं हम इन्हें नकल नहीं मानते असल ही मानते हैं।

यह ठीक है कि स्वामी दयानंद जी ने पहिले सत्यार्थ प्रकाश में ऋषभदेव को जैन धर्म का प्रवर्तक लिखा था मगर यह बात गलत थी इस लिये बाद में इसका संशोधन कर दिया गया. भगवान ऋषभदेव तो हुये ही नहीं. जैनियों के मान्य महावीर भी नहीं हुये क्यों कि जिस महावीर स्वामीको जैनी तीर्थंकर बतलाते है उनके विषयमें कहते हैं कि उनका रक्त सफेद था. वे मल मूत्रका निहार नहीं करते थे ऐसा कोई मनुष्य न हुआ न हो सकता है। तभी तो हम कहते हैं कि जैन धर्म कोई स्वतन्त्र धर्म नहीं है। बौद्ध ग्रंथों से नकल करके सिद्धान्त बनाया गया है। इस में अपनी कोई बात भी नहीं है।

गवर्नमेंट ने अश्लील चीजों की मनाही की है। प्रतिमा में जडत्व है इसके उपासक जडत्व ही तो प्राप्त कर सकते हैं. जब प्रतिमा को ज्ञान है ही नहीं तो इससे ज्ञान की प्राप्ति कैसे हो सकता है ?

३ उत्तर पक्ष

वेद मंत्र शब्द रूप है परन्तु वेद-पुस्तकों में वे अक्षर बद्ध हैं इस लिये वे नकल हैं असल नहीं हो सकते। जिस प्रकार उन असली वेद मंत्रों का काम इस नकल से लिया जाता है और अक्षरात्मक मंत्रों को पढ़कर असली शब्दात्मक मंत्रों का अर्थ और भाव समझ लिया जाता है इसी प्रकार प्रतिमा भी जो मूर्तिमान का नकल है उसके भावों का ज्ञान कराती है। प्रतिमा को देख कर मूर्तिमान का चिंतन और ध्यान किया जाता है यही प्रतिमा पूजा की उपयोगिता है।

जैसे यज्ञ के साधनों का चित्र देखकर उनका ज्ञान होता है उसी भाँति प्रतिमा को देख कर मूर्तिमान का बोधभी अवश्य होता है कहा जाता है कि स्वामी दयानन्द जी ने ऋषभदेव को जैन धर्म का प्रतिपादक लिखने में गलती की थी तो इस की क्या गारन्टी है कि स्वामी कर्मानंद जो कुछ कह रहे हैं वह गलत नहीं है।

आप कहते हैं कि महावीर वेदानुयायी थे जैनी नहीं थे और जैनियों के मान्य महावीर कोई हुये ही नहीं स्वामी दयानन्द जी ने १२ वें समुल्लास में लिखा है कि महावीर जैनी थे। हम नहीं कह सकते कि स्वामी दयानंद सत्यवक्ता थे या उनके अनुयायी स्वामी कर्मानंद जी। यदि द्रव्य व्यक्ति में विकार भाव नहीं होते तो दर्शक के भाव भी विकारी नहीं होसकते न न प्रतिमा या वस्त्र रहित साधुओंमें विकार भाव न होने के कारण उनके दर्शकों के भाव भी विकृत नहीं होते। जैसे अपने

नग्न पुत्र को देख कर तथा गले से लगा लेने पर भी माता के भावों में विकार उत्पन्न नहीं होता क्यों नहीं होता ? इस लिये कि कि बालक के भावों में कोई विकार नहीं है।

४ पूर्व पक्ष

जो कुछ आप बोल रहे हैं वैसा ही मैं लिख रहा हूँ यह मेरा लेख नकल नहीं असल ही है इसी तरह जो कुछ परमात्मा ने उपदेश दिया वही ऋषियों ने लिखा और वेद रूप में उपस्थित किया इस लिये वेद असल ही है नकल नहीं।

स्वा० दयानंद जीने स्वयं कोई गलती नहीं की, उन के पास जो ब्राह्मण पण्डित लिखने पर रहते थे, वास्तव में उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में गलती की जिसे बाद को सुधार दिया गया, इसी तरह ब्राह्मण पंडितों ने भट्टारक के रूप में जैन शास्त्रों में भी मिलावट कर दी है।

प्रतिमा प्रतिमावाले की आकृतिको बना सकती है उसके गुणों को नहीं बना सकती इस लिये उसकी पूजा अनुपयोगी है।

किसी जैन ग्रन्थ में नहीं लिखा कि किसी तीर्थंकरने प्रतिमा की पूजा की हो।

(४) उत्तर पक्ष

आपने कहा जैसा मैं बोलता हूँ वैसा ही आप लिख रहे हैं, बस जहाँ जैसे और वैसे का प्रयोग होता है, वही नकल है, मैं बोलता हूं शब्द और आप लिखते हैं और अक्षर इस लिये अक्षर शब्दों की मूर्तियां ही तो हैं जिस तरह अक्षरों को पढ़ कर बोलने वाले के शब्द का अर्थ ग्रहण कर लिया जाता है इसी तरह प्रतिमाओं के दर्शन से प्रतिमा वाले का ध्यान और उसकी उपासना से उसके गुण ग्रहण किये जा सकते हैं।

पहिले सत्यार्थ प्रकाशका लेख 'कि भ० ऋषभदेव जैनधर्म के आदि तीर्थङ्कर थे' स्वामी दयानन्द का नहीं है और दूसरे विद्वानों द्वारा मिलाया गया है इसमें प्रमाण क्या है ? यदि ऐसा होता तो स्वामी जी ने इसके प्रकाशित होने के बाद इसका प्रतिवाद किया होता किन्तु ऐसा नहीं हुआ प्रत्युत दूसरे सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में लिखा है कि पहले सत्यार्थप्रकाश से इसमें कुछ बातें कम नहीं कीगई, हां, कुछ बढ़ा दी हैं। इससे स्पष्ट है कि यह लिखना स्वामी दयानन्दका ही काम है।

मोहन जो दारो की वह प्रतिमा जिसका उल्लेख हमने किया है भ० ऋषभदेव की नहीं है किन्तु विष्णु की है, यह मिथ्या है। वह भ० ऋषभ देव की है, । प्रमाण दे चुके हैं। मूर्ति के अतिरिक्त अन्य भी मोहरें मोहन जोदारो में मिली हैं। जिन पर "नमो जिनेश्वराय" लिखा है। यह कथन तो स्वयं आर्यसमाजी विद्वान प्रो० प्राणनाथ का है। अब कहिये कहां जावेंगे।

५) पूर्व पक्ष

यह ठीक है कि चित्र या मूर्ति के देखने से मूर्तिमान या चित्रित व्यक्ति की बाह्य आकृति (सूरत शकल) का ज्ञान तो अवश्य होजाता है किन्तु उसके अभ्यंतर गुणों की सिद्धि नहीं होती। जिस मनुष्य को कभी देखा तक नहीं, उसका चरित्र पढ़ा नहीं तो उसके चित्रसे इसके भावोंका ज्ञान किस तरह हो सकता है।

मूर्तियों से काम चलाया जाता है, इससे हमें विरोध नहीं, लेकिन मूर्ति पूजा से पाप नष्ट नहीं होते इसलिये दिगम्बरीय पूजा विधान अनुपयोगी है।

नग्न मूर्ति से अवश्य विकार भाव उत्पन्न होता है प्रतिमा पूजा आरंभ जैनियों ने अपने धर्म का प्रचार करने के लिये किया बड़े २ विशाल मन्दिर बनवाये उनमें सोने चांदी आदि की प्रतिमायें विराजमान कीं जो नित्य चोरी जाती हैं जो पाप कर्म का कारण है तथा उन प्रतिमाओं को आरती के लिये गाने बजाने वालों को मन्दिरों में रक्खा गया।

५ उत्तर पक्ष

चित्र का प्रभाव हृदय पर अवश्य पड़ता है इसमें वीतराग प्रतिमा का दर्शन भावों की उज्वलता का कारण है। और उसके द्वारा प्रतिमावान के ध्यान चिंतन करने तथा गुण ग्रहण से कर्मों का नाश अवश्य होता है अतः प्रतिमा पूजा की उपयोगिता स्वयं सिद्ध है।

यदि शिव मन्दिर में वीतराग की प्रतिमा स्थापित कर दी जाय तो उसके पूजने में हमें कोई संकोच नहीं।

पूजा का अर्थ है "गुण ग्रहण करना, आदर सत्कार करना, भक्तिभाव से द्रव्य समर्पण करना" आदि।

यजु० अ० ३० मंत्र १६ में प्रार्थना की गई है कि परमेश्वर नाचने गाने वालों को उत्पन्न कर

ऋग्वेद १-१-३-१ मंत्र के द्वारा परमेश्वर को जो निराकार है सोम रस पिलाने को उपदेश दिया गया है।

यह है द्रव्य पूजाका नमूना जो स्वयं वेद में मौजूद है।

(६) पूर्व पक्ष

वीतरागता बाहर का गुण है न कि अंदर का यह मैं कह चुका हूं कि प्रतिमा बाहर का गुण प्रकट करती है परन्तु मूर्तिमान के अंदर के भाव उससे प्रकट नहीं होते।

वेदों में नाचने गाने वालों को उत्पन्न करने की प्रार्थना इस लिये नहीं की गई कि वे पूजा करने के काम में लाये जायेंगे बल्कि इस लिये कि नाचना गाना भी एक विद्या है उनके द्वारा इस विद्या का प्रचार होगा।

आदि पुराण में लिखा है कि ऋषभदेव जी ने भी नाचने गाने की शिक्षा दी लेकिन यह नहीं बताया कि उन्हों ने नाचना गाना किस से सीखा वेदों से या वेद मंत्रों की प्रार्थना पर उत्पन्न हुये नाचने गाने वालों से?

यदि वेदों को परमात्मा के शब्दों की प्रतिमा भी मान लिया जाय तो यह और तरह की प्रतिमा है जिस से मंत्रों के अर्थ और भाव स्पष्ट प्रकट होते हैं। किन्तु किसी व्यक्ति की प्रतिमा दूसरे प्रकार की नकल है इस से मूर्तिमान के अभ्यन्तर भाव प्रगट नहीं होते न प्रतिमा में वह गुण विद्यमान होते हैं जो असल व्यक्ति के हैं।

वेद मंत्र में पाहि शब्द आया है इसका अर्थ व्याकरण से पिलाने का नहीं है भाष्य के अर्थ में सोमरस परमात्मा को पिलाने की बात पण्डितों ने लिख दी है।

(६) उत्तर पक्ष

यदि किसी हंसते हुए मनुष्य का फोटो लिया जाय और रोते हुए व्यक्ति का चित्र बनाया जाय तो उन्हें देखकर यह अवश्य बोध होगा कि हंसते हुये चित्र वाले मनुष्य का मन उस समय प्रफुल्लित था और रोते हुये को कोई हार्दिक वेदना थी। इसी तरह क्रोधातुर मनुष्य की तसवीर देख

कर उसके मानसिक भावों का स्वतः ही ज्ञान हो जाता है। इससे सिद्ध होता है कि मूर्ति के बाह्य चिन्हों को देखकर उसके अभ्यंतर परिणामों का अवश्य ज्ञान होजाता है।

मूर्तिपूजा मन वचन काय तीनों योग से होना चाहिये इसलिये वीतराग मूर्ति को देखकर उसके वैराग्यमय भावों का मनन करना, वचन द्वारा मूर्तिमान की स्तुति करना और जल पुष्प नैवेद्य आदि सामग्री समर्पण करके यथाविधि मन वचन काय से उसमें लीन होजाना सच्ची पूजा है यही द्रव्य पूजा का विधान है।

यास्क ऋषिकृत निरुक्त में पाहि शब्द का अर्थ पिलाना किया गया है। और स्वामी जीने इसीके आधार पर वेद भाष्य किया है, फिर यह कहना कि पण्डितों ने अर्थ करने में गड़बड़ करदी है, नितांत अयुक्त है।

ऋग्वेद १-१-३-३१ में निराकार परमात्मा तक को सोमरस पिलाकर द्रव्य पूजा का विधान किया गया है तो साकार परमात्मा मानने वालों पर द्रव्य पूजा के विषय में आक्षेप करना बिल्कुल अर्थहीन है।

(७) पूर्व पक्ष

१- किसी मूर्ति की आकृति से उसके वैराग्य मय भावों का बिलकुल पता नहीं चल सकता।

२- मैंने कहा था कि फूलों आदि से पूजा करने में हिंसा होती है इसलिये द्रव्य पूजा जैनधर्म के विरुद्ध है इसका उत्तर नहीं मिला, न यह बतलाया कि तीर्थंकरों ने किस २ प्रतिमा की पूजा की, न इस प्रश्न का उत्तर मिला कि मूर्तिपूजा से क्या लाभ है? और द्रव्य पूजा का विधान किस शास्त्र में किया गया है ?

मैंने व्याकरण से सिद्ध किया था कि पाहि शब्द का अर्थ पिलाने का नहीं है, पण्डित जी को चाहिये था कि व्याकरण से ही इसका अर्थ सिद्ध करते। निरुक्त कोई व्याकरण का ग्रंथ नहीं है बल्कि कोषग्रंथ है। कोष में एक शब्द के बहुतसे अर्थ दिये जाते हैं परन्तु उपयोग में वही अर्थ आते हैं जो व्याकरण से ठीक बैठते हैं।

(७ उत्तर पक्ष

१- इस प्रश्न का उत्तर कई बार उदाहरण सहित दिया जाचुका है कि वीतराग मूर्ति की बाह्य आकृति से मूर्तिमान के वैराग्यमय भावों का अवश्य ज्ञान होता है और उसकी मानसिक प्रवृत्तियों का दर्शक पर अवश्य प्रभाव पड़ता है।

नकल दो तरह की होती है। विचार पूर्वक देखा जाय तो जैसे शब्दों का अर्थ अक्षरों से प्रकट होता है इसी प्रकार तीर्थंकरों की वीतराग और शान्त मुद्रा वाली मूर्ति से उनके अभ्यंतर भावों का ध्यान होता है।

ऐसी मूर्ति द्वारा मूर्तिमान के गुणों का चिंतन करने से उसके गुण प्राप्त करने की भावना उत्पन्न होजाती है। संसार से उदासीनता के संस्कार आत्मा में पैदा होजाते हैं जो परम्परा से सद्गति के कारण होते हैं। यही मूर्ति पूजा का लाभ है। यही उसकी उपयोगिता है।

जल पुष्प आदि के समर्पण करने में हिंसा

अवश्य होती है परन्तु बहुत थोड़ी और वह भी ऐसी जो गृहस्थ के लिये वर्जनीय नहीं है। चूँकि देवपूजा करना गृहस्थ का परम धर्म है। इससे भावों में जो उज्वलता आनेके कारण पुण्य होता है वह हिंसा के मुकाबले में बहुत अधिक है। इसलिये देवपूजा हिंसा के हेतु से जैनधर्म के विरुद्ध नहीं। यदि ऐसा न माना जायगा तो गृहस्थ के लिये खान-पान, शाक भाजी आदि का समस्त आरंभ धर्म विरुद्ध होजायगा यह कई बार बता दिया गया है कि तीर्थंकरों ने किस की पूजा की, उस पर बार २ प्रश्न करना पिष्ट पेषण है।

स्वामी दयानन्द जी ने वेद भाष्य भूमिका में लिखा है कि हमने वेदों का भाष्य निरुक्त के आधार पर किया है। यह नहीं लिखा कि व्याकरण से उसकी तुलना करके उसे उपयुक्त किया है। हमारी समझ में नहीं आता-जब स्वामी दयानन्द जी यास्क ऋषि को अपना गुरु मानते हैं तो उनके अर्थ को न मानने की स्वामी कर्मानन्द जी क्यों धृष्टता करते है।

(८) पूर्व पक्ष

आपने कहा कि प्रतिमा को देखकर प्रतिमावान के गुणोंका बोध होता है और उसके सच्चारित्र और सद् भावों का अनुकरण करने से सद्गति का अधिकारी हो जाता है खैर इतना ही होता तो भी कुछ बात बन जाती. लेकिन गड़ बड़ी तो इस में है कि प्रतिमा के समक्ष जल पुष्पादि द्रव्य चढ़ाकर उस जड़ प्रतिमा की स्तुति की जाती है जिस से धर्म की जगह अधर्म होता है. इन आडम्बरी साधनों से असली धर्म नष्ट हो रहा है. जगत में अन्धकार छा गया. ऐसी द्रव्य पूजा से कोई लाभ नहीं इस प्रतिमा पूजा के प्रचार से लोग मन्दिरों को, जगलों को, पहाड़ों को तीर्थ मान कर पूजने लगे जहां वीतरागता का चिन्ह तक नहीं वैराग्यमय आकृति नहीं इस भेडियाधसान की प्रथा का कारण केवल प्रतिमाकी पूजा ही है जो नितांत अनुपयोगी है।

(८) उत्तर पक्ष

द्रव्य पूजा पर आक्षेप करना आर्यसमाज के प्लेट फार्म पर शोभा नहीं देता यदि वायु शुद्धि के लिये ही हवन करना अभीष्ट है तो अग्नि में सामग्री होम करते समय ओम स्वाहा ओम स्वाहा की रट क्यों लगाई जाती है। और उस समय भगवान प्रार्थना के मंत्रों का उच्चारण क्यों किया जाता है इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि वायु शुद्धि का तो केवल बहाना ही है असल में यह परमात्माकी द्रव्यात्मक पूजा है जो नित्य भक्तिभाव से की जाती है।

हमभी मूर्तिके सम्मुख मूर्तिमान का ध्यान करते, स्तुति पढ़ते और द्रव्य चढ़ाकर स्वाहा बोलते हैं।

हम इस प्रकार मूर्ति की नहीं बल्कि मूर्तिमान की पूजा करते हैं।

तीर्थ स्थानों पर पहुंच कर उन शक्तिशाली धर्मनिष्ठ व्यक्तियों का स्मरण होता है जिन की वहां तपो भूमि है और उन के गुण और चारित्रको याद करके चित्र पट पर एक भावात्मक मूर्ति बन जाती है और उस एकांत स्थानमें तीर्थ नायककी ही पूजा उपासना करके धर्म लाभ किया जाता है इससे धर्म की हानि समझना कोरा भ्रम है। किन्तु यह तो बताइये संस्कार विधि में जो छुरे को, मूसल को, ओखली को और *ऐसे ही बहुत से गृहस्थ के उपकरणों को नमस्कार* किया गया है इससे कौन से प्रयोजन की सिद्ध होती

है। यहाँ तो मूर्ति और मूर्तिमान का उदाहरण घटित नहीं होता।

(६) पूर्व पक्ष

जैसे सोमरस पिलाने की बात डिग्री भाष्य में पंडितों ने गलत लिख दी है वैसे ही छुरे आदि को नमस्कार करने की बातें गलत लिख दी हैं। वेद मंत्र के शब्दों का यह अर्थ नहीं होता।

हम अग्नि जलादि में जीव ही नहीं मानते इस लिये हमारी पूजा में हिंसा नहीं होती जैनी इन वस्तुओं में जीव मानते हैं इस लिये उनकी द्रव्य पूजा धर्म विरुद्ध है जैन जगतमें लिखा है कि मोहनजोदारो में जो प्रतिमा निकली हैं उनकी अभी जांच होरही है निश्चय रूप से नहीं कहा जाता कि वे किसकी हैं।

(६) उत्तर पक्ष

मोहनजोदारो में ऋषभदेव की पांच हजार वर्ष पूर्व की बनी हुई प्रतिमा निकली है इसके अतिरिक्त मथुरा के कंकाली टीले से भी बहुत पुराने सिक्के शिलालेख निकले हैं जिन से जैन धर्म की प्राचीनता सिद्ध होती है मूर्ति को देख कर मूर्तिमान के बाह्य ही नहीं किन्तु आभ्यंतर भावों का भी दर्शक को ज्ञान हो जाता है और उन्हीं गुणों को प्राप्त करने के भाव से प्रतिमा के द्वारा प्रतिमावान की पूजा की जाती है। भावों की शुद्धता से कर्मों का नाश होता है अर्थात कर्मों के नाश का कारण प्रतिमाकी पूजा है। जैन धर्म आत्माका एक स्वतंत्र और अनादि धर्म है जैकोबी आदि अनेक पाश्चात्य विद्वानों और पुरातत्वानुवेषकों ने ऐसा ही मत निर्धारण किया है

मन वचन काय तीनों योगोंको केन्द्रित करने के लिये द्रव्य पूजा बहुत ही उपयोगी साधन है। उपरोक्त प्रमाणों और युक्तियों से तथा वेद मंत्रों से भी मूर्ति के द्वारा मूर्तिमान की द्रव्य पूजा उपयोगी सिद्ध होता है।

—※—

विरोध परिहार

(ले० पं० राजेन्द्रकुमार न्यायतीर्थ)

"जैनधर्म का मर्म और पं० दरबारीलाल जी" शीर्षक हमारी लेखमाला के सर्वज्ञत्व प्रकरण की समीक्षा पं० दरबारीलाल जी ने जैन जगत में प्रारम्भ करदी है। पण्डित जीने यह समीक्षा "अपने विरोधी मित्रों से" शीर्षक लेखमाला के बाईसवें लेख से प्रारम्भ की है तथा अब तक इसके सम्बन्ध में लगभग छह लेख निकल चुके हैं मेरा विचार था कि मैं जगत की इस समीक्षा की परीक्षा उसके एक प्रकरण या कम से कम एक उपप्रकरण के समाप्त होने पर प्रारम्भ करूं किन्तु मेरे कुछ मित्रों का कहना है कि जहाँ तक हो सके समीक्षा के साथ ही साथ उस की परीक्षा भी प्रकाशित होती रहनी चाहिये। इससे विचारक पाठकों को दोनों लेखमालाओं पर विचार करने में सुविधा रहेगी। बात भी ऐसी ही है अतः इसकी परीक्षा को प्रारम्भ कर देना ही आवश्यक पाता हूँ। मैं अपनी इस परीक्षा को इसही शीर्षक 'विरोधपरिहार' से अपने पाठकों के समक्ष उपस्थित करूंगा।

जहां तक हो सकेगा जगत की समालोचना का प्रत्यालोचना उसके कुछ समय बाद दर्शन में प्रकाशित होती रहेगी किन्तु संभव है फिर भी कभी २ विलम्ब हो जाय क्योंकि इसके अतिरिक्त भी अन्य कई कार्यों का उत्तरदायित्व मुझ पर है। आशा है कि इस के लिये विद्वान पाठक क्षमा करेंगे।

जहां कि दरबारीलाल जी का हमारे साथ सर्वज्ञत्व के स्वरूप के सम्बन्ध में मत भेद हैं वहां उसके निर्णायक मार्गमें भी। जैन जगत वर्ष ७ अंक १३ पृ० १ पर पं० दरबारीलाल जी ने इसके सम्बन्ध में निम्न लिखित वाक्य लिखे हैं।

"शास्त्रोंमें हमें शुद्ध धर्म नहीं मिलेगा किन्तु उस के खोजने की सामग्री मिलेगी। वैज्ञानिक कसौटी पर कसकर जो बातें हमें ठीक मालूम हों उन्हें जैन धर्म में रखना चाहिये बाकी को विकार समझ कर अलग कर देना चाहिये"

इस पर हमारी तरफ से निम्न लिखित वाक्य लिखे गये हैं। दरबारीलाल जी का अभिप्राय यदि यह है कि जो २ बातें वैज्ञानिक कसौटी अर्थात प्रत्यक्ष और अनुमान के प्रतिकूल हों उनको विकार समझ कर निकाल देना चाहिये तब तो इस विषयमें दरबारीलाल जी तथा हमारे बीच कोई अन्तर नहीं है तथा यह वही मार्ग है जिसका प्रतिपादन आज से लगभग १८०० वर्ष पूर्व स्वामी समन्तभद्राचार्य ने किया था। तथा यदि पूर्व लिखित पंक्तियों से दरबारीलाल जी का यह भाव हो कि जो २ वैज्ञानिक कसौटी प्रत्यक्ष अनुमान से सिद्ध न हो उनको विकार समझकर निकाल देना चाहिये तब हम आप से बहुत दूर हैं। आपका यह भाव ठीक नहीं प्रतीत होता, क्यों कि इस परिस्थिति में तो अनेक अन्य बातें भी हमको निकाल देनी होंगी। ... आगम गम्य अनेक ऐसे विषय हैं—जिनको प्रत्यक्ष अनुमान जान ही नहीं सकते। ऐसी दशा में उनको विकार या असत्य कह देना अपराध —परीक्षा का उपहास है"

" जैन धर्म के मर्म का रूप तो उसी को दिया जा सकेगा जिसका प्रतिपादन भ० महावीर ने किया है और जो शिष्यपरम्परा से अब तक चला आ रहा है अतः किसी भी बात को जैन धर्म के मर्म का रूप देने के लिये हम को यह भी देखना होगा कि यह बात भगवान महावीर की उपदेश परम्परा मंसे है या नहीं यदि कोई बात इसके प्रतिकूल प्रमाणित हो तो हम को परीक्षा प्रधानी होने की दृष्टि से उसको अमान्य कर देने का अधिकार है। जहाँ हमको इस बात का अधिकार है वहीं हम को इस बात का अधिकार नहीं कि हम उसके स्थान पर नवीन बातों की स्थापना करें यदि हम ऐसा करते हैं तो ऐसी बातें हमारे निज मन्तव्य हैं या हो सकते हैं न कि जैन धर्म का मर्म "। दर्शन वर्ष १ अंक १

हमारे इन वाक्योंकी समालोचना स्वरूप दरबारीलाल जी ने निम्न लिखित वाक्य लिखे हैं—

" जो बातें प्रत्यक्ष और अनुमान के प्रतिकूल हैं प्रायः इन्हीं को निकाल बाहर किया गया है परन्तु बहुत सी असिद्ध बातें भी निकाली जाती हैं, अगर वे उपमान वगैरह से अविश्वसनीय मालूम होती हों अथवा प्रत्यक्ष और अनुमान के विषय के भीतर होने पर भी सिद्ध न होती हों भौतिक विज्ञान सम्बन्धी बहुत सी बातें इस श्रेणी की हैं। आगम गम्य वे ही बातें हम नहीं जान सकते जो पौराणिक कहलाती हैं किन्तु इसी लिये वे सब विश्वसनीय नहीं हो जातीं अन्यथा हमें जैन पुराणों पर ही क्यों सभी पुराणोंपर विश्वास करना चाहिये—

प्रत्यक्ष अनुमान का विषय न होने पर भी अगर हमें यह मालूम हो जाय कि अमुकबात राग, भक्ति या द्वेषवश हो कर लिखी गई है तो हम उसे आप्तवचन न मान कर छोड़ देंगे "।

"परम्परा की और व्यक्ति विशेष की गुलामी करने के लिये प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है परन्तु जो सत्यान्वेषी और कल्याणेच्छु है वह सत्यता असत्यता का ही निर्णय करना चाहता है। वह अगर अपने को जैन मानता है तो वह जैन धर्म को सत्य न कहेगा किन्तु सत्यको जैन धर्म कहेगा। अगर वह बौद्ध है तो वह बौद्ध धर्म को सत्य न कह कर सत्य को बौद्ध धर्म कहेगा। इसी प्रकार वह अपने को किसी भी धर्म का अनुयायी मानता हो किन्तु वह सत्य का ही अनुयायी होगा मैं जैन धर्म को सत्य नहीं किन्तु सत्य को जैन धर्म मानता हूँ। . . .
रही नवीन कल्पना की बात सो परम्परा विश्वसनीय न होने से यह कहना कठिन है कि यह बात नवीन है या लुप्ततत्व का अन्वेषण है जहां प्रचलित परम्पराओं में से किसी का भी मत कसौटीपर ठीक नहीं उतरता और उस जगह पर किसी न किसी बातका अस्तित्व अवश्य रहता है तब जो संभव मालूम होता है उसी की कल्पना की जाती है दूसरी बात यह है कि जिस दृष्टि बिन्दु के आधार पर कोई तीर्थंकर कोई बात कहता है उसी दृष्टि बिन्दु को लेकर विज्ञान की असाधारण प्रगति की सहायता से अगर महावीर भगवान के वक्तव्य में थोड़ा बहुत संशोधन किया जाय या उसका कुछ विकाश किया जाय तो यह सब उन के अनुकूल ही होगा"।

जहाँ हमको आगमगम्य बातों की इष्टाविरुद्धता देखनी है वहाँ यह भी देखना है कि अमुक २ बातें आगम की मर्यादा के अन्दर भी आती हैं या नहीं।

आगम की तरह आगमाभास भी है। राग, द्वेष और मोह युक्त वक्ता के वचन से जो ज्ञान होता है वह आगमाभास है। जहाँ भी इस प्रकार की बातों का अस्तित्व मिलता है उसको तो आगम ही स्वीकार नहीं किया जा सकता ऐसी परिस्थिति में दरबारी लाल जी का लिखना कि "अमुक बात राग द्वेष या भक्तिवश होकर लिखी गई है तो हम आप्त वचन न मान कर छोड़ देंगे" कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं करता ऐसा लिखना तो केवल पिष्टपेषण ही है। शास्त्रकारों ने यदि आगम और आगमाभास के विवेककी बात न बतलाई होती तब तो आपका लिखना किसी अंश में उपयोगी हो सकता था। यही बात आपके " परन्तु बहुत सी असिद्ध बातें भी निकाली जाती हैं अगर वे उपमान वगैरह से अविश्वसनीय मालूम होती हों " वाक्य के संबन्ध में है। यहां हम इतना स्पष्ट कर देना आवश्यक नहीं समझते कि हमारे आगमगम्य शब्द के अर्थ में दरबारीलाल जी ने असिद्ध शब्दका प्रयोग किया है।

दरबारीलाल जी को इस बात के उपस्थित करने की तो तभी आवश्यकता होसकती थी जबकि शास्त्रकारों ने ऐसा स्वीकार न किया होता शास्त्रकार यह नहीं बतलातेकि आप परीक्षा नकरें और आंखोंपर पट्टी बाँध कर किसी भी बात को सत्य स्वीकार करें। यदि आप ऐसा करते हैं तो यह आपकी त्रुटि है या कहां ज्ञासकती है नकि शास्त्रकारोंकी या जैनसिद्धान्त की। शास्त्रकारों ने तो ऐसी बातों के वर्णनको आगम मानने से ही इनकार किया है। आचार्य समन्तभद्रने आगम के लक्षण में " अदृष्टेष्टविरोधकम " विशेषण का प्रयोग किया है × इसका तात्पर्य यह है किआगम के लिये यह भी अनिवार्य है कि उसमें प्रत्यक्ष और अनुमानादि से विरोध न आता हो। अनुमानके साथ आदि शब्द से उपमानादिक को भी ले सकते हैं। अतः दरबारीलाल जी का उपर्युक्त वाक्य भी परीक्षा के मार्ग के निर्णय के अनुपयोगी है।

अब इस सम्बन्ध में दरबारीलाल जी की दो ही बातें रह जाती हैं एक प्रत्यक्ष और अनुमान के साथ प्रायः शब्दका प्रयोग और दूसरी प्रत्यक्ष और अनुमान के द्वारा उनसे सिद्ध न होने पर असत्य बतलाना- दरबारीलाल जी ने यदि दूसरी बात न लिखी होती तो उन को प्रत्यक्ष और अनुमान के साथ प्रायः शब्द के प्रयोग की आवश्यकता न पड़ती यहाँ भी दरबारी-लालजी ने गलती की है। बहुत सी ऐसी बातें हैं जो केवल प्रत्यक्ष या अनुमान अथवा उभय से सिद्ध हो सकती है किन्तु फिर भी हम वैसा नहीं कर सकते तो इसका यह तात्पर्य थोड़े ही है कि उनको असत्य ही कर दिया जाय। आज जिन २ भौतिक तत्वों के आविष्कार हो चुके हैं वे ही आज से एक सौ वर्ष पूर्व प्रत्यक्ष और अनुमानसे सिद्ध नहीं किये जा सकते थे किन्तु एतावता उस समय इनका अभाव बतलाना भी तो युक्ति युक्त स्वीकार नहीं किया जा सकता। दरबारीलाल जी चौदह गुण स्थानों को स्वीकार करते हैं। एक समय था जब ऋषिगण इनमें से उच्च से उच्च गुण स्थान का अनुभव करते थे अतः इनको प्रत्यक्ष के विषय से बाहर तो किसी भी प्रकार माना

(×) दृष्टं प्रत्यक्षं, इष्टमनुमानादि, न विद्यते दृष्टेष्टाभ्यां विरोधोयस्य— रत्नकरण्ड सं० टीका श्लो०

नहीं जासकता किन्तु फिर भी आज हम उनको प्रत्यक्ष के द्वारा सिद्ध नहीं कर सकते।

उपर्युक्त परिस्थिति में यही बात युक्ति युक्त प्रतीत होती है कि कोई भी बात क्यों न हो चाहे वह प्रत्यक्ष और अनुमान की ज्ञेय हो अथवा आगम की यदि वह प्रत्यक्ष और अनुमानादि के प्रतिकूल प्रमाणित हो तो हमें उसको अमान्य ठहराना चाहिये। जहाँ हमको यह अधिकार है वहीं हमको यह नहीं करना चाहिये कि यदि ऐसी कोई बात प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सिद्ध न होती हो तो हम उसकी अमान्यता फ़ौरन प्रदान करदें। ऐसी अवस्था में अनेक सत्य बातोंसे भी हाथ धोना पड़ेगा। अतः दरबारीलालजीका प्रायः विशेषण ठीक प्रतीत नहीं होता और यदि उनके वाक्य में से प्रायः को हटा दिया जाय तब तो परीक्षा के मार्ग के सम्बन्ध में हम में और उनमें मत भेद की गुंजायश ही नहीं रह जाती। प्रायः शब्द के निकाल देने पर आपका वाक्य निम्न प्रकारका रह जाता है "जो बातें प्रत्यक्ष और अनुमान के प्रतिकूल हैं इनही को निकाल बाहर किया गया है"। परीक्षा का यही मार्ग स्वामी समन्त भद्र ने बतलाया है जैसाकि हमारे पूर्व विवेचन से प्रकट है। अतः परीक्षा के समय हमें इस ही दृष्टि कोण को सामने रखना चाहिये।

जिस प्रकार परम्परा या व्यक्ति विशेषकी गुलामी करने के लिये प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है उस ही प्रकार अपने को स्वतंत्र समझना या घोषित करना भी एक सरल बात है। ऐसा समझने या करने से ही वह स्वतंत्र नहीं हुआ करता स्वतंत्र होने के लिये तो अनुपम बलिदान की आवश्यकता है। विचारा एक क्षुद्र जन्तु भी जब किसी कार्यको करलेता है तब वह उसमें अपने को स्वतंत्र अनुभव करता है किन्तु उस की स्वतंत्रता क्या है फिर भी यह रहस्य की ही बात है। दरबारीलाल जी यदि अपने को किसी परम्परा या व्यक्ति विशेष का अनुयायी नहीं समझते तो उन को धर्मों के मर्मों को लिख कर जनता को उनके अनुयायी बनने की प्रेरणा की आवश्यकता नहीं थी। उनका कर्तव्य था कि वह अपने स्वतंत्र मार्ग की स्थापना करते जब तक वह किसी के भक्त या अनुयायी हैं अथवा धर्म या धर्मों के चाहे वह समन्वयात्मक ढंग से हो या असमन्वयात्मक ढंगसे, प्रचारक हैं तब तक वह भी इस प्रकार की दासता से दूर नहीं हैं। यदि दासता को बिना भी स्वीकार किए किसी के गुणों का या उसके मार्ग का भक्त या अनुयायी बना जासकता है तब फिर भगवान महावीर का भक्त होना या उसके मार्ग का अनुयायी बनना ही दरबारीलाल जी दासता क्यों समझने लगे हैं?

किसी भी बात के निर्माण और उसके स्पष्टीकरण में महान अन्तर है। जहां कि निर्माण एक स्वतंत्र बात है और इसके लिए अन्याधार की आवश्यक्ता नहीं वहीं स्पष्टीकरण एक पराश्रित बात है और इसके लिये उसके आश्रय का आवश्यक्ता है जिसका यह किया जाता है। दरबारीलाल जी जैन धर्म का निर्माण नहीं कर रहे किन्तु उसका स्पष्टीकरण कर रहे हैं अतः उनका यह अनिवार्य कर्तव्य है कि जैन धर्मका मर्म लिखते समय अपनी प्रत्येक बात के समर्थन में जैन साहित्य के अंशविशेष को उपस्थित किया करें। यदि वह ऐसा नहीं करते तो यों कहना चाहिये कि जैन धर्म के मर्मकी आड़ में वे अपने विचारों का जैन समाज में प्रचार करना चाहते हैं।

हमारा यह अभिप्राय नहीं कि दरबारीलाल जी को अपने विचारोंके प्रचारका अधिकार नहीं है या उनको ऐसा नहीं करना चाहिये किन्तु यह है कि उनको अपने विचार अपने नाम से रखने चाहिये। उनका यह कर्तव्य नहीं कि वह जैन धर्म के मर्म के नाम पर अपने विचार रक्खें जैन धर्म के मर्म में तो जैन धर्म का ही मर्म लिखा जाना चाहिये।

सत्य जैन धर्म है न कि जैनधर्म सत्य, इसको जैन धर्म की मान्यताका रूप देने के लिये कम से कम किसी आधार को तो उपस्थित करना था। यह भी तो बतलाना था कि इन दोनों की विषम व्याप्ति ही क्यों मानी जाय? सत्य और जैनधर्म की सम-व्याप्ति मानने में क्या आपत्ति है? वह कौन सा जैन धर्म है जो सत्य के भी अतिरिक्त है जिसमें जैन धर्म और सत्य की सम व्याप्ति नहीं बन पाती?

सत्य ही यदि जैन धर्म है तो इस सत्य का नाम जैन धर्म क्यों पड़ा? इसही प्रकार यदि सत्य ही बौद्ध, इस्लाम, ईसाई और वैदिक धर्म है तो इसके इस नाम भेद का क्या कारण है? अखीर में चलकर यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि इसका उपदेश *जिन—तीर्थंकर ने दिया था अतः यह जैन धर्म* कहलाया। दरबारीलाल जी ने स्वयं भी अपने पहिले लेखों में ऐसा ही स्वीकार किया है। दरबारीलाल जी के इन लेखों के कुछ अंश विशेषों को यहाँ हम लिख देना अनावश्यक नहीं समझते।

"वर्तमान में जो जैन धर्म है उसका श्रेय श्रमण भगवान महावीर को है। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि जैन धर्म इनसे पुराना है" जगत वर्ष ७ अंक ६ पृ० ३ "इस व्याख्यान में मैंने जैन धर्मको स्वतंत्र धर्म सिद्ध किया था और भगवान महावीर तथा भगवान की ऐतिहासिकता सिद्ध की थी। इस प्रकार जैन धर्म को २५०० वर्ष का सिद्धकरके……"। जगत वर्ष ६ अंक १७ पृ० ४।

इस से प्रगट है कि अब तक दरबारीलाल जी जैनधर्मसे 'भगवान महावीर और भगवान पार्श्वनाथ प्रतिपादित उपदेश' को ही ग्रहण करते रहे हैं। यदि ऐसा न होता तो क्यों तो इसका श्रेय भ० महावीर को दिया जाता और क्यों ही इसको २५०० वर्ष प्राचीन बतलाते। अब चाहे दरबारीलाल जी सत्यको जैन धर्म कहें या किसी अन्य को; किन्तु इतना तो फिर भी मानना ही पड़ेगा कि इस सत्य का उपदेश हम को भगवान महावीर आदि तीर्थंकरों ने दिया था अतः यही सत्य जैन धर्म कहलाया। ऐसी परिस्थितिमें विषमव्याप्ति को कोई स्थान ही नहीं रहता चाहे यों कह लीजियेगा कि जैन धर्म सत्य है। वास्तव में यह तो वही है जिसका प्रतिपादन तीर्थंकरों के द्वारा हुआ है। वस्तु अनेकधर्मात्मक है अतः उसका भिन्न २ दृष्टियोंसे अनेक शब्दोंके द्वारा प्रतिपादन किया जाता है यहाँ तीर्थंकरों के उपदेशके संबंध में है। तीर्थंकर जिन कहलाते हैं अतः इनका कथन *इनका बतलाया हुआ वस्तु स्वभाव जैन धर्म कहलाता* है। इसही प्रकार महात्मा बुद्धके उपदेशका नाम बौद्ध धर्म और महात्मा ईसा, मोहम्मद आदिके उपदेश का नाम ईसाई और सनातन है। जहाँ कि इन सब धर्मों में कुछ थोड़ी भी बातों में समानता है वहाँ बहुत सी बातें ऐसी भी हैं जो एक धर्म की दूसरे धर्म से नहीं मिलतीं। धार्मिक बातों के समान इनके प्रवर्तकों की जीवन घटनायें भी आपस में समानता

नहीं रखती। अतः सब धर्मों के लक्षण कोटि में सत्य को नहीं रक्खा जासकता। अस्तु। यह एक विषयान्तर की बात है और इस पर पूरी तौर से उस समय विचार किया जायगा। जबकि दरबारी लाल जी इन धर्मों के मर्म को लिखकर अपने प्रतिज्ञावाक्य को सिद्ध करने की चेष्टा करेंगे। अभी तो केवल इतना ही देखना है कि भ० महावीर आदि के उपदेश का नाम ही जैनधर्म है। अतः जैनधर्म का मर्म भी वही कहा जासकता है जोकि महावीर भ० की उपदेश परम्परा का सार है।

परीक्षा प्रधानी होने की दृष्टि से हमको अधिकारहै कि हम इस बातकी परीक्षा करें कि कौन २ सी बातें महावीर की उपदेश परम्परा की है और कौन कौन सी नहीं हैं। जो भ० महावीरकी उपदेशपरम्परा की प्रमाणित न हों उनको अमान्य करदेने का या उनको जैनधर्म का रूप न देने का हमको अधिकार है किन्तु हमको यह अधिकार नहीं कि हम उनके स्थान पर नवीन रचना करें। ऐसी बातें हमारी रचना या मान्यता होसकती हैं, या हैं; न कि महावीर का उपदेश या जैनधर्म का मर्म।

इसके सम्बन्ध में दरबारीलाल जी का लुप्त तत्व का अन्वेषण या विकास वाला समाधान भी युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता। अमुक बात नवीन कल्पना नहीं है और लुप्त तत्व का अन्वेषण है। इसका समर्थन भी तो होना चाहिये। यदि ऐसे ही लुप्त तत्व के अन्वेषण वाली बात मान लीजाय तो प्रत्येक नवधर्म प्रचारक अपने धर्मको लुप्त तत्व के अन्वेषणका रूप देसकता है। यह बात ऐसी है जैसे आर्य समाजी बन्धु कहा करते हैं कि रेल, तार, वायुयान आदि जितने भी आविष्कार हुए हैं वे सब वेदों के आधार से ही किए गए हैं। वेदों में इन सब का वर्णन मौजूद है। जिस प्रकार आर्यसमाज के पास अपनी प्रतिज्ञा के समर्थन में कोई प्रमाण नहीं है ठीक ऐसी ही परिस्थिति दरबारीलाल जी की है। अतः नवीन बातों के वर्णन में लुप्ततत्व के अन्वेषण वाली बात तो स्वीकार नहीं की जा सकती।

विकाश के सिद्ध करने के लिये उस का मूल रूप तो बतलाना ही होगा। कहीं भी जब तक किसी भी बात का मूल अंश न बतला दिया जाय तब तक यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है कि अगाड़ी जो कुछ भी कहा गया है वह सब उसके ही आधार पर विकाश स्वरूप है।

विकाश और संशोधनमें भारी अन्तर है विकाशमें किसीको पल्लवित किया जाता है किन्तु संशोधनमें उस में सुधारणाकी जाती है। इसको यों समझिये गा कि चित्र का एक तो एनलार्जमेन्ट (Enlargement) किया जाता है और दूसरा इस का संशोधन। जहाँ पहिले में उस के आकार में अन्तर नहीं आता किन्तु केवल उसको बढ़ा दिया जाता है वहीं दूसरे में आकार परिवर्तन भी होता है।

किसी भी तीर्थंकर ने जिस परिस्थिति में उपदेश दिया है संभव है वह ऐसी हो जिससे किसी बात को उन्हें सूत्ररूपमेंही कहना पड़ा हो किन्तु ऐसा नहीं हुआ कि उन्होंने अपने उपदेश में असत्य बातें भी कही हों। सत्य को जैन धर्म कहने वाले दरबारीलाल जी की दृष्टि से भी यह बात ठीक नहीं बैठती अतः जहां पहिली बात किसी दृष्टि से मानी जा सकती है

(शेष पेज ३० के नीचे देखो)

संघका प्रचार कार्य

संघ के महा मंत्री पं० राजेन्द्रकुमार जी और उसके प्रचारक कुं० दिग्विजय सिंह जी क्रमशः ता० १२ और ता० १० फरवरी को गया पहुंचे। यहां वार्षिक रथोत्सव था, स्थानीय टाऊन हाल में ता० १३-१४ और १५ को पबलिक व्याख्यानों का भी प्रबन्ध किया गया था। ता० १२ को रथोत्सव के समय शहर में कुं० दिग्विजय सिंह जी के भाषण हुए। ता० १३-१४-१५ को भी कुँवर साहब और महा मंत्री महोदय के मूर्ति पूजा, परमात्मस्वरूप, जैन धर्म की प्राचीनता, क्या ईश्वर कर्म फल प्रदाता है और जैन धर्म का महत्व पर स्थानीय टाऊन हाल में भाषण हुये। इन तीनों ही दिन सभापति का स्थान गया के प्रतिष्ठित जैनेतर महानुभावों ने ग्रहण किया था। गया में एक संस्कृत महा विद्यालय भी है। यहां बड़े २ संस्कृतके ब्राह्मण विद्वान अध्यापन का कार्य करते हैं। विद्यार्थी भी सैकड़ों की संख्या में हैं। इस विद्यालय के मुख्य २ अध्यापक तथा छात्रगण भी व्याख्यान सुनने आया करते थे।

ता० १४ को महा मंत्री जी महोदय का "क्या ईश्वर कर्म फल प्रदाता है" इस विषय पर भाषण हुआ था। आपके इस भाषण पर महाविद्यालय के अध्यापकों ने कुछ शंकायें उपस्थित करनी चाहीं जिसके लिये उनको सहर्ष समय दिया गया। यह शंका समाधान ता० १५ को हुआ था। ता० १५ को पूर्व पक्ष की तरफ से सर्व प्रथम वेदाचार्य पं० रामावतार जी खड़े हुए, आपने बतलाया कि जगत में जितने भी कार्य हैं वे सब किसी न किसी बुद्धिमान के ही बनाये हुए हैं जगत स्वयं भी कार्य है अतः इसको भी बुद्धिमान का कार्य ही जानना चाहिये। आपने यह भी कहा कि हिन्दू धर्म एक ऐसा धर्म है जिस में सब धर्मों का समावेश हो जाता है, इसके लिये "सर्वे पदा हस्तिपदे निमग्नाः" वाली कहावत बिलकुल उपयुक्त है आदि। इसके बाद महाविद्यालय के प्रधानाध्यापक पं० सिद्धेश्वर जी न्यायाचार्य खड़े हुए। आपने भी ईश्वर कर्तृत्व का समर्थन किया, साथ ही जैनियों के मान्य सिद्धान्त स्याद्वाद और आत्मा के मध्यम परिणाम का निराकरण भी किया। आपने प्रथम तो ईश्वर को उपादान कारण बतलाया और अन्त में वैशेषिक का उल्लेख करते हुए उसको ही निमित्त कारण सिद्ध किया।

जैनसमाजकी तरफसे इनके समाधानार्थ महामंत्री जी महोदय खड़े हुए। आपने अनेक सरल युक्तियों के द्वारा पूर्वपक्ष के खंडन के साथ सिद्धान्त पक्ष

वहीं दूसरी बात के परिवर्तन के लिये तो वहां बिल कुल स्थान ही नहीं है। उपर्युक्त विवेचन से प्रगट है कि जैन धर्म परीक्षा प्रधानता का विरोधी नहीं। उसने इसको बड़े ही आदर योग्य शब्दों में स्मरण किया है। जैन शास्त्रों में स्थान २ पर इसके उल्लेख मिलते हैं किन्तु वह परीक्षा का मार्ग वहीं मानता है जिसका प्रतिपादन आचार्य समन्तभद्रने किया है तथा यह समुचित भी है।

साथ ही यह भी स्पष्ट है कि जैन धर्म के मर्ममें वे ही बातें आ सकती हैं जिनका समर्थन कि जैन शास्त्रों से होता हो।

अपूर्ण

की स्थापना की आपके वक्तव्य का सारांश निम्न प्रकार है—

कार्य के साथ कर्ता की व्याप्ति ही नहीं है बहुत से ऐसे कार्य भी हैं जो बिना कर्ता के भी हो जाया करते हैं दृष्टान्त के रूप में बिहार के पिछले भूकम्प को ही उपस्थित किया जा सकता है।

दूसरे अभी तक जगत का कार्य न होना ही असिद्ध है इस के लिये तो इस बात को सिद्ध करना होगा कि कोई ऐसा भी समय था जब कि इस जगत का अभाव था। इस बात के समर्थन में पूर्व पक्ष ने कोई प्रमाण उपस्थित नहीं किया है अतः इस हेतु के आधार से ईश्वर को जगत का कर्ता कहना न्याय के प्रतिकूल है।

सर्वेपदा हस्तिपदे निमग्नाः वाली बात भी हिन्दू धर्म की तरह जैन धर्म के सम्बन्धमें भी तो कही जा सकती है। विद्वान वक्ता का कर्तव्य था कि वे अपने इस कथनके समर्थनमें प्रमाण उपस्थित करते। विचार के समय प्रतिज्ञा वाक्यों का क्या मूल्य हो सकता है अतः यह बात भी निराधार है।

वेदान्त के अनुसार जगत की रचना मानने में निम्न लिखित बाधायें आती हैं।

(१) चैतन्यरूप परब्रह्म से जड़रूप जगत की रचना कैसे हुई ?

(२) अद्वैत स्वरूप परब्रह्म में जगतरूप होने की इच्छा क्यों हुई और वह उसके नित्य ज्ञान पक्ष में कभी २ कैसे घटित हो सकती है ?

(३) परब्रह्म पूर्ण है उसमें इच्छा का क्या काम इच्छा तो अपूर्ण में ही होती है।

महामंत्री महोदय इन सब बातों का विवेचन कर ही रहे थे कि इतने में ही न्यायाचार्य जी ने कहा कि हम परमात्मा को निमित्त कारण मानते हैं। इस पर आपने बतलाया कि निमित्तकारणवाद के हेतु का खंडन तो मैं पूर्व ही कर चुका हूँ। यदि आप अन्य हेतु उपस्थित करें तो उसका फिर भी विचार करने को तयार है।

इसके सम्बन्ध में दो बातें और भी विचारणीय हैं। एक यह कि परमात्मा सर्वव्यापक है अतः वह क्रिया रहित है और जब वह ही क्रिया रहित है तब वह दूसरों में क्रिया कैसे उत्पन्न कर सकता है ? दूसरी यह कि परमात्मा में क्रिया मानने पर भी उसकी क्रिया से दो परमाणुओं में गति नहीं आसकती। वही पदार्थ दूसरे में गति उत्पन्न कर सकता है जो उससे टकराता हो। परमात्मा परमाणु से भी सूक्ष्म माना गया है अतः यहां इस बात की संभावना ही नहीं है। ऐसी परिस्थिति में परमात्मा को निमित्त कारण भी नहीं माना जा सकता।

शरीर के बाहर भी यदि आत्मगुणों का अस्तित्व सिद्ध होसकता तबतो आत्मा को सर्वव्यापक माना जा सकता था। जहाँ जिसके गुण हैं वहीं उसका अस्तित्व माना जाता है। समस्त शरीर में आत्मगुणों का सद्भाव है अतः आत्मा को भी शरीर परिमाण वाला ही मानना पड़ता है। आपके स्याद्वाद सम्बन्धी आक्षेप के सम्बन्ध में तो इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि माननीय विद्वान को स्याद्वाद के स्वरूप को ही पहिले विचार करना चाहिये। जब आप इसपर विचार करेंगे तब आपको स्वयं ही इसमें कोई भी खंडन योग्य बात न मिलेगी। आदि ...

REGD .N. L. 3459.

अजितकुमार जैन ने "अकलंकप्रिंटिंग प्रेस, मुलतान में छापकर प्रकाशित किया।

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुख-पत्र

वर्ष २ अंक १६

जैनदर्शन

१६ अप्रेल-१९३५ ई० चैत्र सुदी १३ मंगलवार

शोकाश्रु

श्रीमान कुंवर दिग्विजयसिंह जी ७ अप्रैल की शामके समय अबालाकोटनी में परलोक यात्रा कर गये यह समाचार बड़े दुःख के साथ पाठक महानुभावों के समक्ष पहुंचाया जाता है। आपको निमोनिया हो गया था जो कि प्राण-ग्राहक बन गया। कुंवर साहिब को जैन समाज भली भांति जानता है। आप क्षत्रिय थे बांधपुर (इटावा) आपका निवास स्थान था पहले आर्य समाजी थे स्व० श्री मान पं० पुत्तूलाल जी के साथ शंकासमाधान में जैन धर्म की सच्चाई जांच कर आपने जैन धर्म स्वीकार किया था। तब से आप अंत तक जैन धर्मानुयायी ही रहे। आप एक अच्छे कुशल व्याख्यान दाता थे। व्याख्यान के विषय को आप अपनी वक्तृता से जनताके हृदय पर अंकित कर देते थे। आर्य समाज के साथ आपने अनेक स्थानों पर प्रभाव शाली शंका समाधान किये थे। आपके वियोग में जैन समाज को बहुत हानि पहुंची है। आप का आत्मा शांति लाभ करे ऐसी भावना है।

--संपादक

सम्पादक—

पं० चैनसुखदास जैन न्यायतीर्थ, जयपुर

पं० अजितकुमार शास्त्री मुलतान, पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री बनारस

वार्षिक ३) एक प्रति =)

इसके बाद फिर श्री सिद्धेश्वर जी खड़े हुये। आपने कहा कि जैनियों की युक्तियाँ प्रबल हैं। हमतो परमात्मा को सर्व शक्तिमान मानते हैं। आज की सभा में ये विद्वानगण अपने शिष्यसमूह सहित आये थे और अनुमानतः शिष्यमंडल दो-सौ की संख्या में था। इन सबही पर जैनधर्म का प्रभाव पड़ा।

आज पं० दत्तदत्त जी शर्मा का भी भाषण हुआ था और आपने जैनियों के स्याद्वाद और अहिंसावाद के सम्बन्ध में आदरणीय भाव प्रकट किये थे। अगले दिन भी एक अजैन विद्वान भाषण हुआ था और उन्होंने भी जैनधर्म के सम्बन्ध में आदरणीय भाव जनता के सामने उपस्थित किये थे।

इस उत्सव में जैन समाज के प्रसिद्ध विद्वान पं० माणिकचन्द जी और पं० कैलाशचन्द जी शास्त्री सम्पादक जैनदर्शन भी पधारे थे। आप लोगों के व्याख्यान और शास्त्र सभाओं का भी जनता पर अपूर्व प्रभाव रहा है।

गया के बाद संघ के दोनों ही कार्यकर्ता नवादा गये। यहां ता० १५-१८ को जैनधर्म के भिन्न २ विषयों पर आपके पब्लिक भाषण हुये। उपस्थिति अधिक थी, जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा। इसके बाद आप बनारस आये। यहां स्याद्वाद विद्यालय का उत्सव था। इसमें आपके भाषण हुये। यहांसे ब्र० कु० दिग्विजयसिंह जी इटावा होकर पावापुरी जी की पंचकल्याणक उत्सव में सम्मिलित होने को चले गये और महामन्त्री कुछ दिन बनारस रहकर अम्बाला चले आये—

—मन्त्री प्रचार विभाग
भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ

आवश्यक सूचना

अवशिष्ट लेख—इस अंकमें छपने के लिये ३-४ लेख आये हैं जिनमें से एक श्रीमान पं० इन्द्रलाल जी शास्त्री के आक्षेपों का प्रतिवाद रूप है, दूसरा श्री ऋषभदेव (केशरियानाथ) उदयपुर के सम्बन्ध में है वे सब स्थान न रहने के कारण नहीं छप सके हैं। अतः उन लेखों को पाठक महानुभाव आगामी अंकमें पढ़ सकेंगे।

भूल सुधार—गत १६ - १७ वें अंक में भूलसे ३० वें पृष्ठ के बाद ४१ वां नंबर लग गया है अतः पाठक महानुभाव गत १६ - १७ अंकमें १० पृष्ठ कम न समझें।

जो महानुभाव अपने पत्र का उत्तर पाना चाहें वे उत्तर के लिये टिकिट, कार्ड भेजा करें। ग्राहकों को पत्र में अपना नंबर अवश्य लिखना चाहिये

—अजितकुमार

समाचार

४५ वर्ष तक नहीं सोया

—विलियम कौलस्य कहते हैं कि ४५ वर्षों से मुझे तनिक नींद नहीं आई और न मुझे कभी इस की आवश्यकता ही जान पड़ी। २७ वर्ष की अवस्था से ही मुझे नींद नहीं आतीः पर रात्रि के समय मैं बिछौने पर ही रहता हूँ, क्योंकि उस समय कोई कार्य नहीं रहता। इस समय उनकी अवस्था ७३ वर्ष की है।

—गिद्ध की सूंघने की शक्ति इतनी तेज होती है कि वह अपनी खुराक को ४० मील के फासले से सूंघ लेता है।

—भारतवर्ष में कुल शहरों की संख्य १०२३१६ है और गावों की संख्या ६ लाख ८८ हजार है।

—न्यूयार्क में सिंगर सीने की मैशीन की इमारत ७ मंजिल की है।

—रविवार की रात को लण्डन के लोग २० लाख पौण्ड रंग रेलियाँ मानने में खर्च कर देते हैं।

—इंग्लैण्डमें बहुत सी ऐसी इमारत हैं, जोगत ५० वर्षों से बन रही हैं और अभी तक पूरी नहीं हुई हैं। कहा जाता है कि उनके पूरे होने में ५० वर्ष और लगेंगे।

—दुनिया में विभिन्न देशों की खानों से १५०० मन के करीब सोना प्रतिवर्ष निकलता है।

—एक चालाक चूहा २४ घण्टे में अपने शरीर की शक्ति से तीन गुना ज्यादा खा जाता है।

—काले साँप का जहर अगर निगला जाय तो कुछ हानि नहीं पहुँचा सकता।

—संसार में सब से छोटा काम देने वाला फोटो का कैमरा केवल अंगूठे के नाखून के बराबर है।

—जब कोई मनुष्य गुस्सा करता है तो चेहरे की ५० नसें सिकुड़ जाती हैं।

—कराची १८ मई, महाराजा नत्थूराम के हत्यारे अब्दुल क्यूम को फाँसी पर लटका दिया गया। मुसलमानों ने उसका जलूस निकालने का निश्चय किया। इस पर पुलिस के हस्तक्षेप करने के कारण मुसलमानों ने पत्थर फैंके, फल स्वरूप परिस्थिति पर काबू करने के लिये पुलिस को गोली चलानी पड़ी जिससे ३५ आदमी मारे गये और १०१ घायल हुये।

—दिल्ली २५ मई, असेम्बली के कांग्रेसी सदस्य मि० शेरवानी का देहान्त होगया। आपको कान की पीड़ा के कारण अधिक बेचैनी होगई थी, गर्दन तोड़ बुखार का भी कुछ असर होगया था।

—विदेशों में और विशेष कर अमेरिका में चोरों की कला ऐसी उन्नति कर गई है कि घर को सुरक्षित रखनेके लिये बड़े २ वैज्ञानिक उपाय करना आवश्यक होगया है। इधर वैज्ञानिक रक्षा के साधन निकालते हैं उधर चतुर चोर उनको विफल करने के उपाय सोचते हैं। घरकी रक्षा करने के लिये आजकल एक विचित्र तरकीब काम में लाई जा रही है। दरवाजे के सामने, खिड़की के आसपास व जीनेपर प्रकाश को अदृश्य किरणें छोड़ दी जाती हैं। यदि कोई उनको पार करे या रोकले तो सारा स्थान प्रकाश से भर जाता है और घर में घण्टियां बजने लगती है। साथ ही पुलिस स्टेशन पर भी खतरे की घंटी बजने लग जाती हैं। जिस स्थान पर जेवर या रुपया रक्खा होता है वह ऐसा बनाते हैं कि छूते बिजली का धक्का लगता है।

समाचार

सूचनाएं—जैनदर्शन यहां से २-३ बार जांच कर भेजा जाता है जिन महानुभावों के पास न पहुंचता हो वे अपने पोष्ट आफिस से तहकीकात करें।

पत्रमें अपना ग्राहक नंबर अवश्य लिखना चाहिये उत्तर पाने के लिये टिकिट या कार्ड भेजना चाहिये।

जिन महानुभावों का वार्षिक मूल्य समाप्त हो गया है वे मनीआर्डर तीन रुपये भेजकर चार आनेकी बचत करें।

नवीन ग्राहक बनने वालों को एक रुपये मूल्यमें स्याद्वाद अंक मुफ्त मिलेगा। ५ ग्राहक बनाने वालों को एक वर्ष तक जैनदर्शन मुफ्त मिलेगा।

— मैनेजर जैनदर्शन

अकलंक प्रेस मुलतान सिटी

वेदी प्रतिष्ठा—वैशाख सुदी ४ (अक्षय तृतीया) को बेगूँ (मेवाड़) जिला चित्तौड़गढ़ वेदीप्रतिष्ठा महोत्सव होगा। वैशाख सुदी ७ धूमधाम से रथ यात्रा उत्सव होगा। कलश, ध्वजारोहण आदि उत्सव भी इस अवसर पर होंगे गायन मंडलियां और श्रीमान ब्र० चांदमल जी, महोपदेशक पं० कस्तूरचन्द जी, चंपालाल जी आदि पधारेंगे। समस्त महानुभाव पधारने की कृपा करें। समस्त पंचान बेगूं

सम्मति का सार-आज ता० ४-५-३५ को मैं ने श्री पन्नालाल दि० जैन विद्यालय का निरीक्षण किया प्लेग के कारण कुछ लड़के बाहर थे। परीक्षा लेने पर फल सन्तोषजनक पाया। समाज के उदार महानुभावों को इस विद्यालय की सहायता करना चाहिये मैं भी यथाशक्ति प्रयत्न करूंगा।

ब्रह्मचारी उल्फतराय जैन

गोहाना

शोक सभा—हम श्री दिगम्बर जैन मिडिल स्कूल सदर मेरठ के समस्त अध्यापक तथा विद्यार्थी श्रीमान बा० अम्बाप्रसाद जी के पूज्य पिता ला० बनारसीदास जी की मृत्यु पर शोक प्रगट करते हैं। तथा उन के सब कुटुम्बियों के इस दुःख में समवेदना रखते हैं। परमात्मा से प्रार्थना है कि वह दिवंगत आत्मा को शांति प्रदान करें।

विनीत—

अध्यापक तथा विद्यार्थीगण

प्रवेशेच्छुक छात्रों को सूचना

श्री स्या० महा० वि० काशी का नया वर्ष ता० १ जुलाई से प्रारम्भ होता है। भर्ती होने वाले छात्रों को सूचित किया जाता है कि :

१—विद्यालय से जो छपा हुआ प्रवेश फार्म भेजा जावे उसको दोनों तरफ की पूरा—पूरा खाना पूरी करके फार्म ता० १ जून से पहिले पहिले भेज देवें। तथा फार्म के साथ में पूर्व पाठशाला के अधिकारी महोदयों का सार्टीफिकेट भेजें।

२—अन्य पाठशाला के अधिकारी महोदयोंसे विनिवेदन है कि वे उन्हीं छात्रों को सार्टीफिकेट देवें जो सुशील और बुद्धिमान हों।

रूपचन्द जैन—उप अधिष्ठाता

वैद्य की फाइल मुफ्त— जैनदर्शन के ग्राहकों को नौवें वर्ष से १४ वें वर्ष तक की 'वैद्य' पत्र की फाइलें सवा ६ आने के टिकट डाकखर्च के लिये भेज देने पर मुफ्त मिलेगी जिसकी पृष्ठ संख्या साढ़े तीनसौ से भी अधिक है।

पता— मैनेजर 'वैद्य' मुरादाबाद

फीरोजाबाद में मुहर्रम के दिन दंगा होगया। मुसलमान गुण्डों ने डा० जीवाराम के मकान को आग लगादी जिसमें उसमें ११ स्त्री पुरुष मरगये।

अकलंकदेवाय नमः
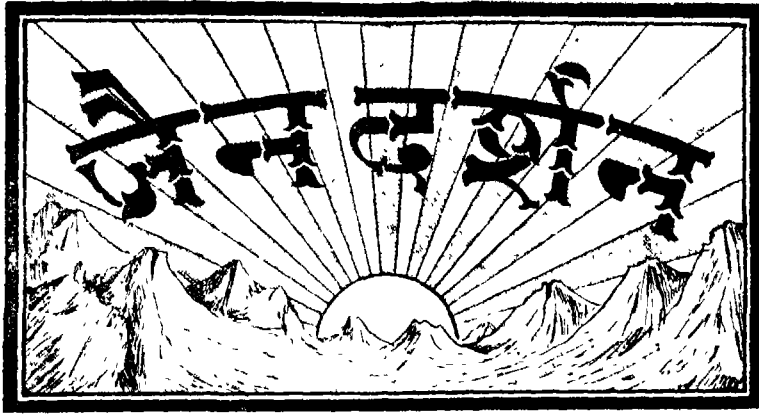
श्री जैनदर्शनमिति प्रथितोग्ररश्मिर्भ्रष्माभवन्निखिलदर्शनपक्षदोषः,
स्याद्वादभानुकलितो बुधचक्रवन्द्यो भिन्द्यन्तमो विमतिवियाय भूयात्

वर्ष २ | श्री चैत्र सुदी १३—मंगलवार श्री वीर सं० २४६१ | अङ्क १६

प्रलोभन

—पं० चैनसुखदास जैन

(१)

अगम अगाध सिन्धु के भीतर,
नौका को रखकर ऐसे ।
तूफानों के मध्य निरापद,
पावोगे वह तट कैसे ॥

(२)

तर्क खड्ग को लेकर आगे ।
जीवन रण के मध्य चलो ।
प्रलोभनों के तूफानों से,
बचे रहो ना कभी हिलो ॥

(३)

सदा सतर्क बने रहते जो,
वे प्रलोभनोंका कर नाश ।
पाजाते अमरत्व जगत में,
फैला करके दिव्यप्रकाश ॥

(४)

तुझे निगलने को धोखे से,
यह प्रलोभनाराति सदा ।
मुंह फैलाकर खड़ा हुआ है,
जिसका परिकर है विपदा ॥

(५)

उन्नति के दुर्गम पथ पर यह,
है गंभीर विषम चट्टान ।
टकरा कर लाखों की इसने,
ले डाली है सुन्दर जान ॥

(६)

धीर अधीर वीर कायर औ
मानव पशु बन जाता है ।
प्रलोभनों की विषम व्याधि का,
जब आवेग सताता है ॥

(७)

जो प्रलोभनों की प्रतारणा—
से आक्रान्त सदा रहता ।
राष्ट्र व्यक्ति मानव समाज का,
उससे कभी न हित होता ॥

शिक्षा-समस्या

(ले०—पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री बनारस)

जैन समाज में अन्य समस्याओं की तरह शिक्षा की समस्या भी एक जटिल रूप धारण करती जारही है। इस समस्या के मुख्य रूप इस प्रकार हैं— १ शिक्षितों की बेकारी, २ शिक्षाक्रम में परिवर्तन की आवश्यकता, ३ शिक्षा संस्थाओंमें संगठनका अभाव। इन को हल करने के लिये कई बार समाज के कुछ विद्याप्रेमी सज्जनों के द्वारा प्रयत्न किया गया, किन्तु फल कुछ भी न निकला। 'दिगम्बर जैन' के शिक्षांक में अनेक लेखकों ने शिक्षा के भिन्न २ रूपों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है और संभवतः इसी उद्देश्य से यह विशेषांक निकाला भी गया है। सिवनी के सेठ वृद्धिचंद जी ने भी 'शिक्षा संस्थाओं में संगठन का अभाव' शीर्षक से समस्या के अन्तिम पहलू पर कुछ अपने विचार प्रगट किये हैं। वर्तमानमें आप एक समाजमान्य धनिकवंश के साथ ही साथ कई छोटी मोटी शिक्षासंस्थाओं के भी उत्तराधिकारी हैं अतः आपके मामूली शब्दोंने भी हमें अपनी ओर आकर्षित किया, और उस पर टीका-टिप्पणी करना हमें उचित जान पड़ा।

आप लिखते हैं - " हमें उन संस्थाओं के संबंध में कुछ नहीं कहना है जो स्थानीय छात्रों के लिये स्थानीय ही चन्दे से या किसी व्यक्ति विशेष की ओर से स्थानीय पाठशाला के रूप में चल रही हैं। मैं अपना राय सिर्फ़ बोर्डिङ्ग हाऊस वाले उन विद्यालयों के ताल्लुक पेश करूंगा जो अपने २ विद्यालयों में शास्त्री, न्यायतीर्थ तथा न्यायाचार्य आदि महापदवियों का कोर्स बनाये हुये हैं "

इसके बाद सेठ जी ने जो विचार प्रदर्शित किये हैं वे ठीक होंगे। आपका कहना है कि, समाज में अनेक विद्यालयहैं प्रत्येक विद्यालयमें ४० या पचास छात्र हैं, (कहीं २ तो इससे भी कमती हैं) उनमें शास्त्रीय कक्षा में पढ़ने वाले रुपये में दो अना मिलेंगे। इन ऊंची कक्षा के चन्द छात्रों को पढ़ाने के लिये ही ऊंची २ तनख्वाह के अध्यापक नियुक्त किये जाते हैं। और इस प्रकार उच्च शिक्षा पाने वाले इने गिने छात्रों के लिये मासिक बजट का आधे से ज्यादा रुपया व्यय हो जाता है। संस्थाओं के इस अपव्यय का निर्देश करके लेखक ने उसके रोकने का उपाय इस प्रकार बतलाया है। आप फर्माते हैं—" मेरी राय में संस्थाओं का संगठन यदि इस प्रकार किया जाये कि, इन्दौर सहारनपुर आदि उन स्थानों के विद्यालय जो पूर्ण रूपसे स्वतंत्र जीवी हैं, इनमें ही शास्त्री, न्यायतीर्थ आदि का प्रबन्ध रहे। बाकी के वे विद्यालय जिन में कुछ स्थायी फंड है लेकिन पर्याप्त नहीं वहां विशारद, मध्यमा तक की पढ़ाई की जाये "।

कोई भी विचारक लेखक के इस मत से सहमत नहीं हो सकता। उच्च शिक्षा के लिये केवल यथेष्ट द्रव्य ही कारण नहीं है, क्षेत्र तथा वर्तमान समय के लिये उपयोगी अन्य सामग्री भी आवश्यक है। इसके समर्थन में हम उन संस्थाओं का नाम उपस्थित कर

सकते हैं जिनके पास यद्यपि प्रचुर सम्पत्ति और ख्यात नामा विद्वान हैं फिर भी छात्रों की कमी का रोना रहता है - खाने पीने का अनेक सुविधाएं देने पर भी छात्र वहां नहीं पहुंचते, दरिद्र संस्थाओं में रूखी सूखी रोटी खाकर भी अपना निर्वाह कर लेते हैं और प्रसन्नता से रहते हैं। लेखक ने जिन कारण कलापों से प्रेरित होकर अपना उक्त मत निर्धारित किया है उनमें 'प्रचारकों का बाहुल्य' भी एक कारण हो सकता है। यथार्थ में प्रचारकों के धावों से कहीं २ का समाज घबरा उठा है। किन्तु समाजने स्वयं यह 'आफ़त' मोल ली है। पात्र-अपात्र का विचार छोड़ कर जब समाज ने छोटी मोटी एक देशीय शालाओं को उनके प्रचारकों के जरिये अच्छी सहायता देना प्रारम्भ कर दिया और उपयोगी संस्थाएं अपनी आमदनी से वंचित की जाने लगीं तब तो सभी संस्थाओं ने इस तरफ अपना पैर बढ़ाया। आज तो यह दशा हो गई है कि प्रचारक न रखने वाली संस्था को भी प्रचारक रखने के लिये प्रेरित किया जाता है इस प्रचारक प्रथा को प्रचलित करने में समाज का जितना दोष है. धनिकवर्ग का उससे कम दोष नहीं है। इन्दौर के सर सेठ साहिब की देखा-देखी धनिकों में पारमार्थिक संस्थाएं खोलनेका शौक चल पड़ा है। यह शौक बुरा नहीं कहा जा सकता। किन्तु यदि उससे समाज का हित-साधन न होता हो तो उसे हम अपव्यय में ही शामिल करेंगे। आज कल इस तरह के अपव्यय की भी कमी नहीं है। प्रत्येक दाता अपने घर के सामने ही अपनी कीर्ति का मन्दिर' देखना चाहता है। यदि द्रव्य के मोहके साथ ही साथ इस मोह का भी मोह छूट जाये और धनिक वर्ग नई २ संस्थाओं की सृष्टि न करके प्रचलित उपयोगी संस्थाओं में ही अपनी कीर्ति या स्मारक खड़ा कर सकें तो उनके ऊपर प्रचारकों के इतने 'हमले' न हों, और उनके दानसे समाजका वास्तविक कल्याण भी हो।

समाज के द्रव्य के दुरुपयोग को रोकने के लिये शिक्षा संस्थाओं के संगठन की अत्यन्त आवश्यकता है। और वह इस प्रकार होना चाहिये कि जिन स्वतंत्र जीवी संस्थाओं के पास पर्याप्त धन है किन्तु वहां विद्यार्थी नहीं पहुंचते वे प्रवेशिका या विशारद तक अध्ययन का प्रबन्ध करें। प्रवेशिका या विशारद परीक्षा पास करने के बाद उच्च शिक्षा के योग्य छात्रों को वे संस्थाएं अपने खर्च से सार्वजनिक उच्च शिक्षा संस्थाओं में भेजें। इस तरह उच्च शिक्षा संस्थाओं का आर्थिक प्रश्न हल हो जायगा और अनुपयोगी किन्तु द्रव्यसंपन्न शिक्षा संस्थाएं अपना अस्तित्व कायम रखकर समाज सेवा में हाथ बटा सकेंगी। जो जो संस्थाएं वर्तमान में प्रथमा या विशारद तक ही शिक्षण देती है और आगे का व्यय नहीं उठा सकतीं वे भी यदि किसी उच्च शिक्षण संस्था से सम्बन्धित हो जायें और अपने योग्य छात्रों को स्वयं उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेजें तो बहुत सी बुराइयां दूर हो सकती हैं। क्या पाठशालाओं के अधिकारी इधर ध्यान देंगे ?

विरोध परिहार

(ले०—पं० राजेन्द्रकुमार जैन न्यायतीर्थ)

अब हम अपनी सर्वज्ञत्व सम्बन्धी दरबारीलाल जी की समीक्षाकी परीक्षाकरते हैं। हमारे पाठकों को दरबारीलालजी के और हमारे कथनोंके मालूम करने में कठिनता न हो अतः हम अपनी इस लेखमाला में दरबारीलालजी के कथनको 'विरोध' शीर्षक से और अपने कथन को 'परिहार' के शीर्षक से रक्खेंगे।

१-विरोध—ज्ञान अनन्त पदार्थों को जान सकता है (साध्य) क्योंकि वह अनन्त है। (हेतु) इस अनुमान में आक्षेपक ने एक ही वस्तु को हेतु और साध्य बना—दिया है· ··· ··· अगर हम दोनों को जुदे २ धर्म भी मानलें तो भी इसमें अन्योन्याश्रय है, क्योंकि जब ज्ञान की अनन्तता सिद्ध हो जाय तब उसकी अनन्त पदार्थों को जानने की शक्ति सिद्ध हो सकती है और जब अनन्त पदार्थोंको जानने की शक्ति सिद्ध हो जाय तब उसकी अनन्तता सिद्ध हो सकती है। जब—दोनों ही असिद्ध है तब कौन किसको सिद्ध कर सकता है। लोहे का पटरी और शीशे की पटरी का दृष्टांत तो वहीं काम आ सकता है जहाँ कोई बात हेतु से सिद्ध हो। दूसरे इस दृष्टांत में विषमता है, क्योंकि उपर्युक्त कल्पना में दोनों ही पटरियां क्षेत्र और काल की दृष्टि से समान हैं जबकि केवल ज्ञान और सर्व पदार्थ न तो क्षेत्र की दृष्टि से समान हैं और न काल की दृष्टि से। १—परिहार - किसी का खंडन करना और उसके सम्बन्ध में बाधा उपस्थित करना ये दोनों भिन्न २ बातें है। खंडन के समय उसके समर्थन में उपस्थित की गई बातों का प्रतिवाद करना होता है किन्तु बाधा उपस्थित करने के लिये यह बात आवश्यक नहीं। बाधा में तो इतना ही बतलाया जाया करता है कि आपकी प्रस्तुत मान्यता में यह बाधा आती है। या आप इस बात का अपने सिद्धान्त के अनुसार कैसे स्पष्टीकरण करते हैं। वर्तमान वैज्ञानिक पद्धति में इस बात की मुख्यता है। जब कोई वैज्ञानिक किसी नवीन बात की गवेषणा कर लेता है तब वह उसको विद्वानों के समक्ष उपस्थित करता है। विद्वान अपनी २ शंकाओं को बाधाके रूप में उसके समक्ष उपस्थित करते हैं और यदि वह अपनी गवेषणा के अनुसार उन सब का स्पष्टीकरण (Explanation) कर देता है तब उसका वह सिद्धान्त मान्य कर लिया जाता है।

इस ही प्रकार किसी भी बात का सिद्ध करना और उसके समर्थनमें उपस्थित बाधाओंका स्पष्टीकरण भी भिन्न २ बातें हैं। समर्थन में स्वतंत्र प्रमाणों को उपस्थित करना है और बाधाओं के परिहार में मान्य सिद्धान्त के अनुसार उनका स्पष्टीकरण करना पड़ता है।

हमने अपनी सर्वज्ञत्व विषयक लेखमाला में बाधा-परिहार, खंडन और मंडन तीनों का ही प्रयोग किया है। दरबारीलाल जी की बाधाओंकेस्पष्टीकरण में बाधा-परिहार, उनके सर्वज्ञत्व के खंडन के खंडन में खंडन और सर्वज्ञत्व सम्बन्धी आवश्यक बातों के समर्थन में मंडन का प्रयोग किया है। दरबारीलाल जी ने हमारी इन बातों पर ध्यान नहीं दिया। यदि उन्होंने ऐसा किया होता तो उनको अपनी इस लेख माला में अनेक बातें न लिखनी पडतीं। दरबारीलाल जी के विरोध नं० १ में उद्धृत वाक्य भी उन ही बातों

में से है। हमारे जिन वाक्यों पर उन्होंने ये वाक्य लिखे हैं वे वाक्य न तो खंडनात्मक ही है और मंडनात्मक ही किन्तु बाधापरिहार स्वरूप हैं। हमारे ये वाक्य यदि खंडनात्मक होते तब तो इनको अनुमान के रूप में रखने की आवश्यकता हो सकती थी बाधा परिहार स्वरूप होने से इनको सरलभाषाही में रखना पड़ा है। हमारे ये वाक्य निम्न लिखित है— जैन दर्शन जिस प्रकार ज्ञेय को अनन्त मानता है उस ही प्रकार ज्ञान को भी। अनन्त द्वारा अनन्त का ज्ञान हो जाता है अतः न वस्तु को ही सान्त मानने की आवश्यकता पड़ती है और न ज्ञान को ही। इस को या समझना चाहिये कि ज्ञेय के स्थानापन्न एक लोहे की पटरी है और ज्ञान के स्थानापन्न एक शीशे की तथा दोनों ही अनन्त हैं। ऐसी अवस्था में लोहे की पटरी शीशे की पटरी में प्रतिबिम्बित भी हो जायगी और दोनों अनन्त भी बनी रहेंगी। हाँ यदि शीशे की पटरीको सान्त मान लिया जाय तब तो यह आपत्ति उपस्थित की जा सकती है कि लोहेकी पटरी उसमें प्रतिबिम्बित न हो सकने से उस को सान्त मानना पड़ेगा"। हमारे इन वाक्योंकी भाषासे विद्वान पाठक समझगये होंगे कि इनके द्वारा केवल सिद्धान्त को स्पष्ट करके बाधा का परिहार किया गया है। यहाँ हम यह भी नोट कर देना अनावश्यक नहीं समझते कि दरबारीलाल जी की जिन पंक्तियों पर ये पंक्तियां लिखी हैं वे भी स्वयं बाधा स्वरूप ही हैं। इस के समर्थन में हम यहां उनकी भूमिका स्वरूप लिखी गई पंक्तियाँ उद्धृत किये देते हैं। "सर्वज्ञत्व के प्रचलित स्वरूप के विषय में जो सबसे बड़ी बाधा है वह है अनन्त के ज्ञान की असँभवता।

उपर्युक्त विवेचनसे प्रगट है कि अनन्तके ज्ञानकी असंभवता की बात दरबारीलाल जी ने बाधा के रूप में उपस्थित की थी और बाधा का परिहार सिद्धान्त के स्पष्टीकरण से ही होता है तथा हमने भी ऐसा ही किया है। अतः दरबारीलाल जी का हमारे इस कथन को अनुमान का रूप देकर उपस्थित करना तथा उस में साध्यसम और अन्योन्याश्रय दोषों का उद्भावन करना नितान्त अप्रासङ्गिक तथा अनुपयोगी है।

अब इसके सम्बन्ध में केवल एक ही बात शेष है और वह है दृष्टान्तका असमानता। दृष्टांत दार्ष्टान्त में क्षेत्र और काल की दृष्टि से तुल्यता होना चाहिये यह एकान्त नहीं। दृष्टान्त और दार्ष्टान्तमें इन बातोंका देखना तो केवल लड़कपन है। दृष्टान्तमें तो केवल यही देखना चाहिये कि जिन धर्मों की दृष्टि से उसको दृष्टान्त बनाया गया है वे उसमें पाये जाते हैं या नहीं दृष्टान्त की परिभाषा भी है कि जिस में साध्य और साधन लक्ष्य धर्म पाये जांय। अपेक्षित दोनों धर्म शीशे और लोहे की पटरियों में पाये जाते हैं। इस सम्बन्धी अपने कथन को हम उपर उद्धृत कर ही चुके हैं। अतः क्षेत्र और काल की असमानता की बात बिलकुल निरर्थक है।

विरोध २-आक्षेपक का कहना है कि ज्ञान अगर एक समय में एक पदार्थ को भी जाने तो वह अनन्त काल तक प्रति समय एक पदार्थ को जानता रहेगा इस लिए वह अनन्तका ज्ञाता कहा जायगा इस प्रकार तो काल द्रव्य भी अनन्त प्रदेशी कहलायगा क्योंकि वह भी तो अनन्त काल तक एक प्रदेशी है। इस प्रकार धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य जीव, परमाणु आदि सभी अनन्त प्रदेशी कहलावेंगे। एक हाथ ऊपर कूदने वाला मनुष्य भी योजनों ऊपर कूदनेवाला

मानना पड़ेगा क्योंकि वह प्रति समय इतना कूद सकता है तथा उसके जीवन के समय बहुत ज्यादा हैं यही बात उसकी ऊंचाई के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। जैन शास्त्रों के अनुसार मति और श्रुत ज्ञान अनन्त पदार्थों को नहीं जान सकते परन्तु आक्षेपक के मतानुसार ये ज्ञान भी अनन्त को विषय करने वाले होजांयगे।

शक्ति की विवेचना करते समय सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि वह कितना जानता है यह नहीं कहा जा सकता कि वह किसको जानता है इस लिये पूर्ण ज्ञान एक समय में जितना जानेगा उतना दूसरे समय में जानेगा परन्तु उतना जानेगा उसको ही जानेगा। इस लिये प्रति समय की शक्ति का जोड़ लगाकर उसको अनन्त कहना अनुचित है। (परिहार२) एक या एक जैसी शक्ति के द्वारा भी अनेक कार्य होते है और अनेक शक्तियों के द्वारा भी। जहां एक या एक जैसी शक्ति के द्वारा अनेक कार्य किये जाते हैं वहां कार्य भेद नहीं हुआ करता किन्तु जहां अनेक कार्यों को शक्ति भेद की आवश्यकता पड़ा करती है वहां कार्य भेद हुआ करता है। दृष्टांत के लिये यों समझियेगा कि एक मनुष्य दश समयों में एक भाषा में दश दफा एक मनुष्यका नाम लिखता है और दूसरे दश समयोंमें उस हीके नामको दस भाषाओंमें लिखता है। इस ही प्रकार एक कारीगर दशदिन तक एक ही वस्तुको बहु संख्यामें तय्यार करता और दूसरे दश दिनोंमें यही दश प्रकारकी वस्तुओंका निर्माण करता है

इन दोनों ही दृष्टांतों में कर्ता मनुष्य एक ही है फिर भी एक परिस्थिति में भिन्न २ समयों के उसके भिन्न २ कार्यों से उसमें प्रति समय उन कार्यों के सम्पादन योग्य योग्यताओं का अस्तित्व माना जाता है किन्तु दूसरी परिस्थिति में इसकी कोई भी आवश्यकता नहीं पड़ती और एक शक्ति मानकर ही यह सबबातें घटित हो जाती हैं संक्षेपमें इसको यों कहना चाहिये कि जहां कार्य भेद है वहां कारण भेद अवश्य है और जहाँ कार्य भेद नहीं है वहाँ कारण भेद के मानने की भी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। उपर्युक्त दोनों ही दृष्टांतों में एक स्थान पर कार्य भेद है और दूसरे स्थान पर इसका अभाव। जब वही मनुष्य किसी व्यक्ति के नाम को दस भाषाओं में लिखता है या कारीगर भिन्न २ समयों में भिन्न २ प्रकार की वस्तुओं का निर्माण करता है तब उनके इन कार्यों में विभिन्नता स्वीकार न करने को तो कोई स्थान ही नहीं है। जिस प्रकार एक भाषा से दूसरी भाषा की लिपि भिन्न है उस ही प्रकार एक कार्य की रचना से दूसरे कार्य की रचना भी।

जिस प्रकार इनके नानात्व में कोई संदेह नहीं उस ही प्रकार इनकी कारण भूत योग्यता की भिन्नता में भी। जिस योग्यता से अंगरेजी लिखी जा सकती है इस ही से संस्कृत और अरबी आदि भाषायें नहीं लिखी जा सकतीं। इस ही प्रकार संस्कृत आदि की योग्यतासे अन्य भाषाओंका लिखा जाना भी असंभव है

यही बात कारीगर के कार्यों के सम्बन्ध में है। कारीगर जिस योग्यता से एक चीज को बनाता है उस ही को उससे भिन्न वस्तुओं के निर्माण के लिये उससे भिन्न योग्यता का प्राप्त करना भी अनिवार्य है। कार्य भेद के लिये यदि योग्यता भेद अनिवार्य न होता तो आज भिन्न २ भाषाओं, भिन्न २ दस्तकारियों भिन्न २ कलाओं के शिक्षण की आवश्यकता ही नहीं थी। एक ही भाषा, एक ही दस्तकारी और एक ही कला के शिक्षण से सब कार्य हो जाने चाहिये थे।

प्रस्तुत विवेचन से यह बात निःसंदेह हो जाती

है कि कार्य भेद के लिये शक्ति भेद अनिवार्य है।

इसके साथ यह भी स्पष्ट है कि जो व्यक्ति जितने प्रकार के कार्य करता है चाहे वह उनको एकसाथ करता हो या क्रमशः उसमें उतने ही प्रकारकी शक्तियाँ माननी पड़ती हैं। जैसे ऊपर के दोनों दृष्टान्तों में लेखक एक समय एक ही लिपि को लिखता है किन्तु फिर भी हर समय उसमें उतनी ही लिपियों का ज्ञान स्वीकार करना पड़ता है जितनी लिपियों को वह अपने समग्र जीवन में लिख सकता है। यही बात कारीगर के सम्बन्ध में है। वह भी एक समय में एक ही वस्तु का निर्माण करता है किन्तु फिर भी इसमें उतनी वस्तुओं के निर्माण की योग्यता माननी पड़ती है जिनको यह भिन्न समयों में भी बना सकता है।

जो विभिन्नता प्रस्तुत दोनों दृष्टान्तों में है वही हमारे और दरबारीलाल जी के वक्तव्यों में भी है। हमने अपने वक्तव्य में जिस बात को उपस्थित किया है वह कार्य भेद है अतः उससे कारणभेद को माना जा सकता है किन्तु दरबारीलाल जी के दृष्टान्तों में इस बात का अभाव है अतः इनमें कारण भेद के स्वीकार करने की गुंजायश ही नहीं।

कालाणु एक समय एक प्रदेशी है इसही प्रकार दूसरे समयों में भी। कालाणु का एक समय का एक प्रदेशीत्व उसके दूसरे समयों के एक प्रदेशीत्व से भिन्न नहीं है। अतः यह सब कालाणु के एक ही स्वभाव के कार्य हैं। यही बात धर्म द्रव्य जीव और परमाणु के प्रदेशों के सम्बन्ध में है। धर्म अधर्म और जीव द्रव्य असंख्यात प्रदेशी हैं किन्तु इनका एक समय का असंख्यात प्रदेशीत्व दूसरे समयों के असंख्यात प्रदेशीत्व से भिन्न किसी भी प्रकार स्वीकार नहीं किया जा सकता। यही बात परमाणु के सम्बन्ध में है।

एक मनुष्य एक समय में एक हाथ ऊंचा कूदता है तथा दूसरे समयों में भी इस का इतना ही कूदना है अतः यहां भी कार्य भेद का मानना निष्कारण ही है शरीर की ऊंचाई के सम्बन्ध में तो यह बात बिलकुल स्पष्ट है। एक समय की शरीर की ऊंचाई से दूसरे समय की उसकी ऊंचाई को भोला व्यक्ति भी भिन्न कहेगा। अतः दरबारीलाल जी के इन दृष्टान्तों में जब प्रदेशभिन्नता या कार्य भिन्नता का ही अभाव है तब ये सब एक ही स्वभाव या शक्ति के प्रतिफल मानने ही चाहिये। जिस प्रकार कि हमारे दोनों दृष्टान्तों में एक ही योग्यता से भिन्न २ समयों में भी वही कार्य किया जा सकता है और इसके लिये योग्यता भेद की आवश्यकता नहीं पड़ती वही बात दरबारीलाल जी के प्रस्तुत दृष्टान्तों के सम्बन्ध में है।

उपस्थित किए गये दृष्टान्तों में से दरबारीलाल जी का अब केवल एक दृष्टान्त शेष है और वह है मति ज्ञान और श्रुतज्ञान का। दरबारीलाल जी का इनके सम्बन्ध में यह कहना कि जैन शास्त्रों के अनुसार मति और श्रुतज्ञान अनन्त पर्यायों को नहीं जान सकते बिलकुल निराधार है। आपने फुटनोट के रूप में इसके समर्थन में सर्वार्थ सिद्धि की निम्न लिखित पंक्ति को उपस्थित किया है "तानि द्रव्याणि मतिश्रुतयोर्विषयभावमापद्यमानानि कतिपयैरेव पर्यायैर्विषयभावमापद्यमानानि कतिपयैरेव पर्यायै र्विषयभावमास्कन्दन्ति न सर्वपर्यायैरनन्तैरपि" सर्वार्थ० १-२६। सर्वार्थ सिद्धि की इन पंक्तियों में ऐसी कोई बात नहीं है जिस से मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की शक्तियों का निर्णय हो ये पंक्तियां तो केवल उनके

विषय सम्बन्ध के सम्बन्ध में हैं। किसी की शक्ति का निर्णय उसके समय विशेष के विषय सम्बन्ध से ही नहीं किया जा सकता। दरबारीलाल जी ज्ञान में एक साथ असंख्यपदार्थों के जानने की शक्ति मानते हैं किन्तु फिर भी वह प्रति समय इतने पदार्थों को जानते हुये दृष्टिगोचर नहीं होता। अतः किसी भी ज्ञान के समय विशेष के ज्ञेय से उसकी शक्ति का निर्णय कथमपि नहीं किया जा सकता।

थोड़ी देर के लिये अभ्युपगम सिद्धान्त से सर्वार्थसिद्धि की इन पंक्तियों को मानें और श्रुत ज्ञान की शक्तिसूचक ही इन्हें स्वीकार कर लिया जाय तब भी इन में ऐसी कोई बात नहीं है जिससे दरबारी लाल जी की बात स्वीकार की जासके। सर्वार्थसिद्धिकी इन पंक्तियों में तो केवल यही बतलाया गया है कि मति ज्ञान और श्रुतज्ञान द्रव्यों की सम्पूर्ण पर्यायों को नहीं जानते। यहाँ यह कहां बतलाया है कि उनमें अनन्त पर्यायों को जानने की शक्ति नहीं है। द्रव्यों की सम्पूर्ण पर्यायें अनन्त हैं किन्तु अनन्त सब नहीं। अनन्त और द्रव्यों की सम्पूर्ण पर्यायों में समव्याप्ति नहीं है अतः मति और श्रुतज्ञान में द्रव्यों की सम्पूर्ण पर्यायों के ज्ञेयत्व का निषेध करने से ही उन में अनन्त के ज्ञेयत्व का निषेध स्वीकार नहीं किया जा सकता। सर्वार्थ सिद्धि की इन पंक्तियों के अन्त में "अनन्तैरपि" पद आया है किन्तु यह 'सर्वपर्यायैः' का विशेषण है। अतः यह भी दरबारीलाल जी के इष्ट को सिद्ध करने में असमर्थ है। जैनशास्त्रकारों ने मति और श्रुतज्ञान की जघन्य से जघन्य अवस्था में भी उनमें ज्ञान के अनन्त अविभागी प्रतिच्छेद स्वीकार किये हैं। अतः दरबारीलाल जी के इस दृष्टान्त का भी प्रस्तुत विषय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

इसही विषय के सम्बन्ध में हमने अपनी पहिली लेखमाला में निम्न लिखित वाक्य लिखे थे—

"जितने पदार्थ हैं वे सब सत् स्वरूप हैं। सत् उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यात्मक है। अतः यह तीनों ही बातें प्रत्येक पदार्थ में प्रति समय हुआ करती हैं। इससे स्पष्ट है कि पर्याय दृष्टि से प्रत्येक पदार्थ प्रति समय भिन्न २ स्वरूप है। ऐसी अवस्था में उसका या उनका अनन्तकाल तक जानना अनन्त ज्ञेयों का जानना है"।

उपर्युक्त वाक्यों से प्रगट है कि पदार्थ का एक समय का स्वरूप उसके दूसरे समय के स्वरूप से भिन्न है। यदि ऐसा न माना जायगा तब फिर प्रति समय उत्पाद और व्यय मानने की बात भी घटित न हो सकेगी। पदार्थों में प्रति समय स्वरूपभेद स्वीकार कर लेने पर ज्ञानमें भी यह विभिन्नता स्वीकार करनी ही पड़ेगी। यह कैसे हो सकता है कि ज्ञेयों में तो विभिन्नता बनी रहे और ज्ञान अभिन्न ही रह जाय। ज्ञान की यह विभिन्नता बिना उसमें शक्तिभेद स्वीकार किये घटित नहीं होती अतः इस ही को यदि दूसरे शब्दों में कहना चाहें तो यों कह सकते हैं कि जिस शक्ति से ज्ञान पदार्थ के एक रूप को जानता है उसको उसके भिन्न रूप के जानने के लिये उसमें भिन्न शक्ति अनिवार्य है।

उपर्युक्त विवेचन से प्रगट है कि अनेक समयस्थ ज्ञेयों और कालाणु आदि के एक प्रदेशत्व आदि में अन्तर है। जहां कि पहलेमें विभिन्नता है वहीं दूसरों में उसका अभाव है अतः पहिले कार्य के सम्पादन के विभिन्न ज्ञान में विभिन्न शक्तियों का अस्तित्व

सूर्य स्नान

स्नान जल से किया जाता है, बहुधा चिड़ियाएं रेत में अपने पर फटफटा कर स्नान करती हैं, साधु से घूमने वाले बहुत से चुपाये जीव अपने शरीर शरीर से राख मल कर भभूत स्नान करते हैं। इन स्नानों से मतलब यह है कि शरीर के अन्दर की उष्णता शक्ति को प्रगट किया जाय और शरीर के छिद्र साफ हो जांय जिससे सूर्य की गर्मी शरीर के अन्दर प्रवेश कर सके। इस प्रकार स्नान से गर्मी और गर्मी से जीवनी शक्ति पैदा की जाती है।

सूर्य स्नान क्या है ?

जिस प्रकार हम प्रायः नंगे होकर गोते लगाते हैं, कलोलें करते हैं और अंग प्रत्यंगों को धोकर साफ करते हैं उसी प्रकार सूर्य की किरणोंमें कलोलें करना खेल कबड्डी और शरीर के प्रत्येक भाग पर जल की बौछारों के समान सूर्य की किरण पड़ने देना सूर्य स्नान कहलाता है।

गर्मी ही जीवन है

हमारे शरीर की जीवनी शक्ति गर्मी है। जब शरीर की गर्मी निकल जाती है तब शरीर ठंडा पड़ जाता और मनुष्य मर जाता है। फिर सब प्रकार की गर्मी का आधार सूर्य है। इस लिये स्वभावतः हमें अपने जीवन के लिये सूर्य की गर्मी की आवश्यकता है। जहाँ जहाँ सूर्य की किरणों का प्रकाश जाता है वहीं तक मनुष्य के जीवन की सीमा है। अन्धेरी कोठरी, गुफा और बिना प्रकाश के घरों में सूर्य की मन्द किरणें पहुंचती हैं इसी लिये ऐसी जगहों पर मनुष्य अधिक समय तक स्वस्थ दशा में जीवित नहीं रह सकता। सूर्य का प्रकाश जहां जितना ही कम पहुंचेगा मनुष्य के जीवन की वहां उतनी ही कम आशा होगी। जिस जगह हवा का प्रवेश नहीं होता वहाँ भी सूर्य की गर्मी काम करती है। जल के अन्दर यही बात है।

जीवन शक्ति

सूर्य की किरणों में जीवनी शक्ति है। प्राचीन काल में हमारे ऋषि मुनि प्रायः नग्न अवस्था में रहते थे तभी उनकी जीवनी शक्ति आज कल के लोगों से अधिक बलवती होती थी ·········· कपड़ों में लिपटे रहने वाले शहरी लोगों की अपेक्षा देहात की खुली हवा में रहने वाले किसान तथा किसानों की अपेक्षा जंगलोंमें ही रहने वाली कौमों के लोग अधिक मजबूत बलवान और साहसी होते हैं। शहरों में चार दुकान छोड़ कर पांचवीं दुकान किसी हकीम या डाक्टर की जरूर होगी, बाबू जी और लाला जी के घर ही दो तीन तरह का चूरन, चटनी, दवाई की पुड़ियां और

(८४ पेज का शेषांश)

अनिवार्य है जहाँकि दूसरे दृष्टांतों में एक ही शक्ति से भिन्न २ समयोंमें उन कार्यों का होना निश्चित है या शक्तिका नाश नहीं होता चाहे वह किसी भी कालमें क्यों न प्रगट रही हो अतः अनेक भाषाओं के लेखक या अनेक भाषाओं के ज्ञाता की तरह ज्ञान में ये शक्तियां प्रति समय ही माननी पड़ेंगी। इसही का नाम एक समय में "ज्ञान का अनन्त पदार्थों जानने का स्वभाव है"—

अपूर्ण

डाक्टरी बोतलें जरूर होंगी पर इन जंगल के लोगों के पास में कोई भी हकीम डाक्टर नहीं होता, और न उन्हें उसकी जरूरत ही पड़ती है।

पश्चिम के देशों में

जिन्हों ने सभ्यता की परिभाषा यह की है कि केवल मुख और हाथ के सिवाय सब शरीर को वस्त्रों से आच्छादित रखने में ही सभ्यता है, उनके मुल्कों में अब प्रकृति धर्म के अनुसार जीवन बिताने की परिपाटी कायम हो चली है। जर्मनी देश में ऐसे हजारों प्राकृतिक क्रीड़ास्थल 'Nature clubs' हैं जहां स्त्री और पुरुष, जवान और बालक तथा बूढ़े नितंग नंगे रहते हैं। वे सूर्य की धूप में घूमते हैं, क्रीड़ा करते हैं, मौज करते और कबड्डी उड़ाते हैं, लेकिन उन में कोई बुरा भाव पैदा नहीं होता। वे अपना जीवन प्राकृतिक नियमों के आधार पर चलाने का प्रयोग करते हैं जो विकार रहित होकर उनकी सोसाइटी में प्रवेश करता है उसे वे अपना मेम्बर बना लेते हैं। फ्रान्स और अमेरिका में भी ऐसी संस्थायें कई जगह खुली हुई हैं। वे लोग कहते हैं कि—

"पुरुष प्रकृति से नंगा है"

वह नंगा पैदा हुआ है। गुह्य अंगों को कपड़े से ढकने की प्रथा तो मानवी विकारों के साथ पैदा हुई है जानवर और पशु जो नंगे रहते हैं, उनके शरीर कैसे सुन्दर होते हैं। यूरोपियन पश्चिमी लेडियाँ नाचघरों में अपनी आधी टांगों को दिखा कर कभी कभी नितंग नंगी नाचती हैं, कई बाहों की छाती खुली हुई कमीज पहिनती हैं और केवल नेकर पहिन कर साइकिलों पर चक्कर लगाती हैं। इस नंगे पन में इरादतन वे विकार-भाव पैदा करती हैं पर प्रकृति के अनुसार विकार रहित होकर वे नंगा रहना नहीं चाहतीं। भारतीय स्त्रियों और पुरुषों से हम यह तो नहीं कहते कि वे जर्मनी के नेचर क्लबों का अनुसरण करने लग जांय पर हां वे सूर्यस्नान वाली उपरोक्त बात को ध्यान में रख कर अपने समस्त अंगों का सूर्य की किरणों का स्नान करावें और प्रकृति जीवन के आदर्श बनें।

—हिन्दी मिलाप

साधु स्वभावी चीता

चीता एक भयानक, माँसखोर, जंगली पशु है। किन्तु अभी वेंकटेश्वर समाचार में साधु स्वभाव वाले चीते का समाचार छपा है पाठकों को परिचय कराने के लिये उस समाचार को यहां प्रकाशित करते हैं।

संपादक—

जोगेश्वरी (बम्बई) में संन्यासी आश्रम स्थापित करने वाले सन्त स्वामी कृष्णानन्द जी के पास अर्सेसे एक चीता स्वच्छन्दता पूर्वक रहता था। लोग दूर दूर से उसे देखने को पहुँचते थे क्योंकि वह अपना जातीय स्वभाव छोड़ कर पूर्ण साधु वृत्तिसे आश्रम में रहा करता था। गोवत्स और कुत्ते तक उस के साथ खेलते रहते थे। हिंसा वृत्ति का उसमें लेश भी नहीं रहता था। कई बार अनेक स्त्री पुरुषों ने अपने और बच्चों के साथ उसे बैठा कर फोटो भी ले लिए थे। गत सप्ताह उसकी स्वच्छन्दता में अचानक एक

विघ्न पड़ गया और पिंजरे में बन्द होने की सम्भावना देखकर उसने अचानक प्राण छोड़ दिये। विघ्न यह उपस्थित हुआ। कि एक दिन स्वामी कृष्णानन्द जी के साथ वह अपोलोबन्दर पर चला आया लोगोंने चीतेके साथ बहुजन पूर्ण स्थान में फिरतेसाधु को देखा तो चकराये पर शीघ्र ही भ्रम दूर हो गया। भीड़ एकत्र हुई। इसपर कांस्टेबिल ने स्वामी जी से जरा पुलिस चौकी तक चलने को कहा। स्वामी जी ने समझा कि शायद वहाँ के अफसर उसे देखना चाहते हैं। पर चौकी में पहुँचने पर इस प्रकार चीता खुला रखने के लिये आपत्ति उठाई गयी। दूसरे दिन मजिष्ट्रेट के यहाँ पेशी हुई। वहाँ भी सबने उस की साधुवृत्ति को देखकर आश्चर्य किया। मजिष्ट्रेट की टेबिल पर उसको बैठा दिया गया लोग उसपर हाथ फेरते रहे। अन्ततः स्वामी जी पर दो बातों के लिए जोर दिया गया। कहा गया कि (१) इसका लायसेंस लो और (२) इसको पिंजरे में बंद रखो। एक भक्त ने तुरन्त ही १०) रुपये जमा करा कर लायसेंस ले लिया।

जोगेश्वरी में स्वामी कृष्णानन्द जी ने आश्रम की मरम्मत के कार्य में लगे हुए बढ़ई से पिंजरा बना देने के प्रश्न पर बात चीत शुरू की तो चीता बीच बीच में बार बार स्वामी जी के पास आता था। मालूम होता था कि वह इस बात को समझ रहा है और पिंजरे में बंद करने का निषेध करता है। दूसरे दिन अचानक उसने प्राण छोड़ दिये वह बीमार न था। पर उसे एक क्षण के लिये भी बंधन स्वीकार न हुआ। स्वामी जी को बहुत दुःख हुआ। अन्य आश्रम वासी भी दुःखित हुए। उस दिन दिन भर किसी ने न कुछ खाया न पिया। स्वामी जी ने संन्यासियों की विधि से उसकी भी समाधि वहीं आश्रम में बना दी है उस समय जोगेश्वरी के सभी साधुसन्त एकत्र हो गये थे।

कुत्ता और गोवत्स अब भी चीते की समाधि पर बार बार जाते है। उस स्थान को सूँघते है और प्रायः वहीं बैठ जाते हैं।

स्वामी जी समझते हैं कि वह कोई साधु जीवात्मा था जिसे किसी कारणवश यह शरीर मिल गया था।

मन के व्यापार

(ले०—नाथूराम डोंगरीय जैन न्यायतीर्थ)

(१)

दृश्य रंग भू में अदृश्य रह,
बन कर योगिराज सा मौन ।
मानव जीवन के अभिनय का,
संचालन करता है कौन ?

(२)

किसके इंगित पर संसृति में,
ये जन मारे फिरते हैं ।
मृग तृष्णा में शांति सुधा की,
भ्रांत कल्पना करते हैं ।

(३)

आशा तथा निराशाओं की,
धारा कहां बहा करतीं ?
और निरंतर अभिलाषाएं,
नव क्रीड़ा करती रहतीं ?

(४)

क्षण भंगुर यौवन श्री पर यह,
इठलाता है इतना कौन ?
रूप राशि पर मोहित होकर,
शिशु सम मचला करता कौन ?

(५)

विन पग विश्व विपिन में करता-
रहता कौन स्वछंद विहार ?
बन सम्राट राज्य बिन किसने,
कर रक्खा सब पर अधिकार ।

(६)

चित्र विचित्र बनाया करता,
बिन रँग ही रह अन्तर्ध्यान ।
किसने चित्र कला का ऐसा,
पाया है अनुपम वरदान ?

(७)

रोकर कभी विहंसता है, तो
फिर चिंतित हो जाता है ।
भाव-भंगि के नित गिरगिट सम,
नाना रंग बदलता है ॥

(८)

प्रिय मन ! तेरी ही रहस्य मय
यह सब अजब कहानी है ।
कर सकता जगती पर केवल,
बस तू ही मन मानी है ॥

(९)

पर ज्यों रहता विषयों में रत
त्यों यदि प्रभु चरणोंमें प्यार ।
करता, तो अबतक हो जाता,
भव सागर से बेड़ा पार ॥

तत्वार्थाधिगम भाष्य पर विचार

(ले०—पं० उत्तमचन्द जी जैन)

जिस प्रकार दिगम्बर श्वेताम्बर सम्प्रदाय भक्तामर स्तोत्र को अपनाते हैं ठीक उसी तरह श्री उमास्वामी (उमास्वति) विरचित तत्वार्थ सूत्र भी दोनों सम्प्रदायों में मान्य है। किन्तु उसकी विशेष मान्यता दिगम्बर सम्प्रदाय में है। यही कारण है कि तत्वार्थसूत्र पर सर्वार्थ सिद्धि, तत्वार्थराजवार्तिक, श्लोकवार्तिक श्रुतसागरी टीका आदि अनेक टीकाएं दि० विद्वानों ने लिखी हैं। श्री समन्तभद्राचार्य के गन्धहस्ति महाभाष्य का जो उल्लेख पाया जाता है। अधिकांश विद्वानों की सम्मति में वह भी तत्वार्थसूत्र की ही विशाल टीका थी जोकि दुर्भाग्यवश इस समय उपलब्ध नहीं है।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय में तत्वार्थ सूत्र की मान्यता अवश्य है किन्तु वहाँ ऐसी कोई महत्वपूर्ण टीका नहीं पाई जाती। हाँ, तत्वार्थाधिगम भाष्य नामक एक छोटी सी टीका अवश्य है जिसको कि स्वयं तत्वार्थ सूत्र के रचयिता उमास्वामी आचार्य द्वारा लिखा हुआ बतलाया जाता है। इस टीका में श्वे० सिद्धान्तों का पोषण होता है अतः यदि यह भाष्य सचमुच तत्वार्थसूत्रकार ने ही लिखा है तो निःसन्देह उमास्वामी आचार्य श्वे० सम्प्रदाय के एक मान्य विद्वान थे किन्तु ऐसा है नहीं।

तत्वार्थ सूत्र को अपनाने के ख्याल से किसी पीछे के श्वेताम्बर विद्वान ने यह टीका लिखकर उस पर उमास्वामी आचार्य का नाम लगा दिया है। इसके प्रमुख दो कारण हैं।

१-तत्वार्थाधिगम भाष्य में अनेक स्थलों पर श्री अकलंक देव विरचित राजवार्तिक की और आचार्य पूज्यपाद विरचित सर्वार्थ सिद्धि का पद्य ज्यों का त्यों पाया जाता है। जिसको कभी पाठकों के समक्ष उपस्थित किया जायगा।

२-दशवें अध्याय के अंत में जो ३२ कारिकाएं लिखी गई हैं वह ज्यों की त्यों श्री अमृतचन्द्र सूरि विरचित तत्वार्थसार ग्रंथ के आठवें अधिकार से उठाकर रक्खी गई हैं। तत्वार्थसार एक कारिका रूप श्लोकबद्ध ग्रन्थ है। उसकी रचना शैली श्री अमृतचन्द्र सूरि के इतर ग्रंथों (पुरुषार्थसिद्ध्युपाय आदि) के समान है उसमें ७२० श्लोक हैं जो ६ अधिकारों में विभक्त हैं। तत्वार्थ सूत्र के समान इन अधिकारों में ७ तत्वों का विशद विवेचन है। तदनुसार इसके आठवें अधिकार में मोक्ष तत्व का प्रतिपादन किया गया है इस कारण तत्वार्थाधिम भाष्य वाली कारिकाएं तत्वार्थ सार में यथास्थान ठीक पाई जाती हैं। जबकि तत्वार्थाधिगम भाष्य में वे उतना महत्व नहीं रखतीं।

ये कारिकाएं यदि तत्वार्थसार में न हों तो वह ग्रंथ अधूरा रह जाता है जबकि वे ही ३२ श्लोक तत्वार्थाधिगम भाष्य में व्यर्थ सिद्ध होते हैं। इन कारिकाओं में मोक्षतत्व का वर्णन है जो कि प्रकरणानुसार तत्वार्थसार में अवश्य होना चाहिये किन्तु तत्वार्थ सूत्र दशवें अध्याय में सूत्र रूप से मोक्षतत्व पहले ही बतला दी गई पुनः उमास्वामी उसी तत्व

को श्लोक बद्ध लिखने बैठें यह एक पिष्टपेषण सरीखी निःसार बात है जिसको कि बुद्धिमान कदापि स्वीकार नहीं कर सकते।

अब यहां पर कुछ श्लोकों का मिलान किया जाता है।

तत्वार्थसार के आठवें अधिकार में निम्नलिखित श्लोक विद्यमान हैं—

तदनन्तरमेवोर्ध्वमालोकान्तात् स गच्छति,
पूर्व प्रयोगासंगत्वाद्बन्धच्छेदोर्ध्वगौरवैः ।२७।
कुलालचक्रं दोलायामिषौ चापि यथेष्यते,
पूर्वप्रयोगात्कर्मेह तथा सिद्धगतिः स्मृता ।२८।
मृल्लेपसंगनिर्मोक्षाद्यथा दृष्टाप्स्वलाबुनः,
कर्मबन्धविनिर्मोक्षात्तथा सिद्धगतिः स्मृता ।२९।
एरंडस्फुटदेलासु बन्धच्छेदाद्यथा गतिः
कर्मबन्धनविच्छेदाज्जीवस्यापि तथेष्यते ।३०।

इनका संक्षिप्त अर्थ यह है कि कर्मबन्धन से छूट जाने पर जीव पूर्व प्रयोग से कुम्हार के चक्र के समान, मिट्टी आदि छूट जाने पर पानी में तूंबी के समान और डोंडी टूटने पर एरंड के बीज के समान ऊपर को जाता है।

ये चारों श्लोक निम्नलिखित रूप में तत्वार्थाधिगम भाष्य में लिखे हुए हैं—

तदनंतर मेवोर्ध्वमालोकान्तात्स गच्छति,
पूर्व प्रयोगासंगत्वबन्धच्छेदोर्ध्वगौरवैः ।९।
कुलालचक्रे दोलायामिषौ चापि यथेष्यते,
पूर्व प्रयोगात्कर्मेह तथा सिद्धगतिः स्मृता ।१०।
मृल्लेपसंगनिर्मोक्षाद्यथादृष्टाप्स्वलाबुनः,
कर्मसंगविनिर्मोक्षात्तथा सिद्धगति स्मृता ।११।
एरंडयन्त्रपेडासु बन्धच्छेदाद्यथा गतिः,
कर्मबन्धनविच्छेदात्सिद्धस्यापि तथेष्यते ।१२।

तत्वार्थसार के पूर्व लिखित श्लोकों से इन श्लोकों में कुछ भी अंतर नहीं है। इसके सिवाय इन चारों श्लोकोंका भाव तत्वार्थ सूत्रके दशवें अध्यायके-

पूर्वप्रयोगादसंगत्वाद्बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च ।६। आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालाबुवदेरंडबीजवदग्निशिखावच्च ।७।

दोनों सूत्रों में आगया है अतः पुनः उन ही सूत्रों को उमास्वामी आचार्य भाष्यमें श्लोकबद्ध यदि लिखें तो उनके लिये पुनरुक्त दोष आता है जिसको कि सूत्रकार कभी नहीं कर सकते। (तत्वार्थाधिगमभाष्य में छठा सूत्र है सातवां नहीं है किन्तु फिर भी उक्त दोष आता ही है। अतः सिद्ध होता है कि ये कारिकाएं तत्वार्थसार से उठाकर तत्वार्थाधिगमभाष्य में रक्खी हैं और उनका महत्व बढ़ाने के लिये उनके रचयिता का नाम उमास्वाति आचार्य रख दिया है।

इसी प्रकार अन्य २६ श्लोक भी इनके ही साथ में विद्यमान हैं। पाठक महानुभाव दोनों ग्रंथ सामने रखकर मिलान कर सकते हैं विस्तार भय से यहां नहीं लिखते।

तत्वार्थसार की ये कारिकाएं 'तत्वार्थराजवार्तिक' के अंत में भी 'उक्तंच' लिखकर दी गई हैं। संभवतः तत्वार्थाधिगम भाष्य में भी तत्वार्थसार की इन कारिकाओंको उद्धृत करते समय भाष्यकार ने 'उक्तंच' लिखा होगा किन्तु पीछे से भाष्यकार के नाम आदि परिवर्तन के साथ ही 'उक्तंच' को भी उड़ा दिया गया है।

कुछ भी हो परन्तु यह निःसन्देह प्रतीत होता है कि यह भाष्य स्वयं सूत्रकार का नहीं है।

'द्रव्यानुयोगतर्कणा' नामक श्वेताम्बरीय ग्रंथ में नयों के भेद बतलाते हुए 'तत्वार्थसूत्र' के प्रथम

देहली शास्त्रार्थ

(गत १५ वें अङ्क से आगे)

क्या वेद ईश्वरीय ज्ञान है ?

उत्तर पुराण के जिस स्थान पर वेदों का उल्लेख मिलता है उसको यहां हम पूर्वापर सम्बन्ध के साथ उद्धृत किये देते हैं। जिससे विज्ञ जनता इसके संबंध में स्पष्ट परिचय प्राप्त करले।

" नारद और कुछ तपस्वियों ने यह बात सुन कर विचार किया कि धिक्कार है इस दुष्ट ने संसार में मिथ्या मार्ग का एक अधिकार फैला दिया है। पाप करने में पंडित ऐसे इस दुष्ट को किसी भी उपाय से रोकना चाहिये। यही विचार कर वे सब अयोध्या आये। वहां पर उन्हों ने यज्ञ करते हुए विश्वभू मंत्री को देखा कि अनेक पापी लोग अपनी इच्छाओं को पूर्ण करने के लिये अन्यान्य प्राणियों की हिंसा कर रहे हैं। तब सब प्राणियों के हितकी इच्छा करने वाले तपस्वी लोग कहने लगे कि किसी भी जगह कोई भी मनुष्य धर्म के लिये प्राणियों के हिंसक नहीं बनते हैं। यह वेद ब्रह्मा का कहा हुआ है। वेदके जानने वाले सदा अहिंसाको ही व्याख्यान करते हैं और यह अहिंसा ही कल्प बेल के समान अथवा माता के समान अथवा भार्या के समान संसार का हित करती है। इस प्रकार पहिले के ऋषियों के कहे हुए वाक्यों को यदि तू प्रमाण मानने की इच्छा करता है। तो अनन्त कर्मों का कारण ऐसा यह घोर हिंसा से भरा हुआ कर्म तुझे छोड़ देना चाहिये। तपस्वियों की इस बात को सुन कर विश्वभू मंत्री कहने लगा कि भो तपस्वियो ! उत्तर पुराण पूर्व ६७ श्लो० ३८४-९० "

उत्तर पुराण के इस उद्धरण से यह स्पष्ट है कि यह प्रकरण संवाद रूप है। एक तरफ तपस्वी हैं और दूसरी तरफ विश्वभू मंत्री है। 'वेदो ब्रह्म निरूपितः' अर्थात् वेद ब्रह्मा का कहा हुआ है।

यह वाक्य इसी संवाद में तपस्वी द्वारा कहा गया है। अतः यह उन्हीं की मान्यता भी है। ऐसे अनेक स्थान हैं जहां दो व्यक्तियों के सम्वाद का उल्लेख मिलता है। इनमें जो २ बातें जिस २ की तरफ से कही जाया करती हैं वे वे उस २ की ही मान्यता कहला सकती हैं। न कि उस संवाद के लेखक की। अतः इस सम्वाद की मान्यता का भार भी उत्तरपुराणकार पर नहीं आता। दूसरे 'वेदो ब्रह्म-निरूपितः' इस वाक्य में ब्रह्म शब्द का प्रयोग भी सम्वादकारने ऋषि के अर्थ में ही किया है। जैसा

(१५ वें पृष्ठ का शेषांश)

अध्याय के अंतिम सूत्र को 'नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्र-शब्दसमभिरूढैवंभूता नयाः' इस रूप में उद्धृत किया है। यदि तत्वार्थाधिगम भाष्य द्रव्यानुयोगतर्कणा के निर्माण समय विद्यमान होता तो वहाँ सूत्र का रूप " नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दा नयाः " ऐसा होता इस दशा में तत्वार्थाधिगम भाष्य का रचनाकाल तत्वार्थसार और द्रव्यानुयोगतर्कणा से पीछे का है।

अतः सिद्ध होता है कि तत्वार्थाधिगम भाष्य का रचनाकाल श्री अमृतचन्द्र सूरि से पीछे का है। तदनुसार इसका निर्माण समय वि० संवत् ९६२ से पीछे का है जब कि तत्वार्थसूत्र का प्रथम शताब्दी है।

कि इस श्लोक के अगाड़ी के दो तीन श्लोकों से प्रगट है।

तीसरे स्वयं स्वामी दयानन्द जी ने ब्रह्माको ऋषि स्वीकार किया है *। अतः इस दृष्टिसे भी यह उल्लेख प्रमाण कोटि से उपस्थित नहीं किया जा सकता। इससे तो वेद ऋषिकृत ही प्रमाणित होते हैं। इससे स्पष्ट है कि आर्य समाज के प्रमाणों में से एक भी ऐसा प्रमाण नहीं है। जिससे वेदों को ईश्वरीय ज्ञान स्वीकार किया जासके।

ऋषिकृत— आर्यसमाज की तरफ से इसके सम्बन्ध में निम्नलिखित वक्तव्य उपस्थित किया गया था।

१—कृत और कार ये एकार्थवाची शब्द हैं। स्वर्ण को स्वर्णकार (सुनार) बनाता नहीं है। फिर भी वह मनुष्य स्वर्णकार (सुनार) कहलाता है। इसी प्रकार मंत्रकृत और मंत्रकार मंत्रों के बनाने से नहीं होते हैं किन्तु उनके द्रष्टा होनेसे कहलाते हैं।

२-निरुक्तकार ने भी ऋषियों को मंत्रों का द्रष्टा ही स्वीकार किया है।

कृञ् धातु का अर्थ पातञ्जलि ने अभूत प्रादुर्भाव किया है। इन सब बातों के देखते हुये जैन समाज की तरफ से उपस्थित किये गये प्रमाणों से ऋषिगण मंत्रों के रचयिता सिद्ध नहीं होते। जैन समाज की तरफ से इन सब बातों का निम्नलिखित समाधान किया गया था।

स्वर्णकार स्वर्ण को बनाता नहीं है किन्तु उसका रूपान्तर करता है। अतः वह स्वर्णकार कहलाता है। इसीका नाम अभूत प्रादुर्भाव है। जो पर्याय अभीतक नहीं थी उसका प्रादुर्भाव हुआ है अतः यह अभूत प्रादुर्भाव कहलाता है। मंत्रों के सम्बन्ध में भी जब तक ऐसा अभूत प्रादुर्भाव या रूपान्तर नहीं माना जायगा तबतक ऋषियों के सम्बन्ध में भी स्वर्णकारित्व के समान मंत्र कृतत्व या मंत्रकारत्व घटित नहीं होसकता। हमारा कहना है कि जिस प्रकार स्वर्ण पूर्व से ही मौजूद था उसी प्रकार वेद मंत्रों में प्रयुक्त शब्द पहिले से ही थे। जिस प्रकार स्वर्ण के रूपान्तर करने से ही मनुष्य स्वर्णकार बन जाता है उसी तरह ऋषि भी शब्दों को मंत्रों का रूप देदेने से मंत्रकृत या मन्त्रकार कहलाते हैं। ऐसा स्वीकार करने पर ही अभूत प्रादुर्भाव ठीक बैठता है। इससे प्रगट है कि आर्यसमाज की तरफ से उपस्थित की गई पहिली और तीसरी बात तो ऋषियों को मंत्रों का कर्ता ही प्रमाणित करती है।

यास्क ने ऋषियों को द्रष्टा माना है। इससे यह बात कैसे सिद्ध होती है कि ऋषियों को वह ज्ञान परमात्मा ने दिया था। आज हम इस उत्सव को देख रहे हैं—और फिर जाकर सबको इसका समाचार सुनाते हैं। यही बात ऋषियों के सम्बन्ध में है। वे स्वयं जानते थे-और जो कुछ भी जानते थे वही दूसरे मनुष्य को बतला दिया करते थे। इसके स्पष्टीकरण के लिये स्वार्थानुमान और परार्थानुमान का दृष्टान्त बिलकुल उपयुक्त है।

इससे यह बात प्रमाणित नहीं होता कि ऋषि जो कुछ भी जान रहे थे, वह उनको परमात्मा जना रहा था। किन्तु इतनाही सिद्ध होता है कि ऋषिगण मंत्रार्थ के साक्षात कर्ता थे। यह अर्थ उनको

---

* सत्यार्थ प्रकाश ७ वां समुल्लास वेद प्रकरण

परमात्माने बनाया था—इसके सिद्ध करने के लिये तो काफी प्रमाण की आवश्यकता है

यास्क ने द्रष्टा के साथ ही ऋषियों को मंत्रों का कर्ता भी लिखा है। इससे स्पष्ट है कि यास्क भी ऋषियों को मंत्रों को कर्ता ही स्वीकार करते थे।

उपर्युक्त विवेचन से प्रगट है कि वैदिक साहित्य ऋषियों को मंत्रों का कर्ता ही प्रमाणित करता है।

ऋषियों की जीवन घटनायें और उसके सिद्धान्त

इसके समाधान में तो आर्य समाज ने केवल इतना ही कहा था कि जैन समाज की तरफ से उपस्थित किया गया मंत्रार्थ ठीक नहीं है इस पर जैन समाज की तरफ से आर्य समाज को बतला दिया गया था कि जैन समाज का उपस्थित किया गया अर्थ उसके घर का अर्थ नहीं है। किन्तु वह यह अर्थ है जिसको निरुक्तकार यास्क ने भी स्वीकार किया है इस पर तो आर्य समाज को मौन ही धारण करना पड़ा।

अश्लील कथनादि

इसके संबंध में भी आर्य समाज ने यही आपत्ति उपस्थित की थी कि वह इस अर्थ को प्रमाणिक नहीं मानता किन्तु जब जैन समाज की तरफ से उसको सुझाया गया कि उनके ही चतुर्वेद भास्कर पं० जयदेव जी की ही यह व्याख्या है इस पर तो आर्य समाज फिर चुपी ही साध गया। दोनों तरफ से उपस्थित की गई युक्ति और प्रतियुक्तियों को हमने पाठकों के समक्ष संक्षेप से रख दिया है। जैन समाज की तरफ से एक २ बात के समर्थन में कई २ मंत्र उपस्थित किये गये हैं। किन्तु हमने संक्षेपता की दृष्टि से उन में से एक २ को ही लिखा है। इस में किस की विजय और किस की पराजय हुई इस बात को हम अपने विज्ञ पाठकों पर छोड़ते हुए एक विषय के देहली शास्त्रार्थ को समाप्त करते हैं।

सुरेशचन्द्र जैन न्यायतीर्थ

क्या पढ़ना चाहिये ?

(ले० श्रीमान पं० प्रकाश जैन न्यायतीर्थ)

वर्तमान में साहित्य का स्वरूप बड़ा विशाल हो गया है। पुस्तकों की विस्मयोत्पादक संख्या पर विचार करके ज्ञान की व्यापकता का अनुमान लगाया जा सकता है। यद्यपि हिन्दी साहित्य अभी सर्वाङ्ग पुष्ट नहीं है, तो भी उसके ग्रंथों की संख्या बहुत बढ़ी हुई है। और प्रतिवर्ष बढ़ती ही जाती है।

साहित्य प्रकाशन के इस विशाल स्वरूप के आगे इस बात का निर्णय कर लेना बड़ा ही कठिन तम कार्य हो गया है कि—क्या पढ़ना चाहिये ? वास्तव में यह प्रश्न बड़ा ही जटिल है, और साथ ही महत्व पूर्ण भी। इस पर बहुत कुछ विचार करते रहने पर भी सर्व मान्य निर्णय की ओर नहीं आता। निर्णय हो भी कैसे समय बहुत कम और पुस्तकें बहुत ज्यादा। जीवन का निश्चित समय कम होता जाता है, और

पुस्तकें बढ़ती जाती हैं।

मेरी समझ में तो ऐसी अवस्था में उपयोगिता का आश्रय लेना अधिक उचित प्रतीत होता है और उसी के आधार पर क्या पढ़ना चाहिये? का भी निर्णय कर लेना संगत प्रतीत होता है। पुस्तकों में विचारों की पवित्रता ही मुख्य मानी गई है—कहा भी गया है—विचार कार्यों का पिता है। यदि बहुत सी पुस्तकें न पढ़ी जाँय तो विशेष हानि की बात नहीं,, जो भी पढ़ी जाय मनन-पूर्वक पढ़ी जानी चाहिये। आज कल प्रायः नवयुवक पुस्तकें उठाते हैं और इधर उधर से २—४ पृष्ठ बाँच कर इति श्री कर देते हैं। आज कल पुस्तकें मनोरञ्जन या निद्राके आह्वान के लिये पढ़ी जाती हैं विशेष को लक्ष्य नहीं समझा जाता। इस प्रकार सम्पूर्ण रामायण का पाठ कर जाने पर भी राम और रावण में कौन राक्षस था ठीक-ठीक ज्ञान नहीं हो पाता है। जब तक पुस्तक सामने खुली रहती है तबतक तो विद्वान 'पीछे सब काम चौपट' पहिले ज्ञानका केन्द्र मस्तिष्क था और अब हो गया है, पुस्तकों का विस्तृत मैदान।

एक विद्वान का कथन है कि क्या पढ़ना चाहिये इसके निर्णय के लिये पहिले क्या नहीं पढ़ना चाहिये इसका निर्णय कर लेना आवश्यक है—आजकल साहित्य प्रकाशन का ध्येय ज्ञान प्रचार करने के स्थान में रुपया कमाना हो जाने के कारण सभी पुस्तकें उदरस्थ करने योग्य नहीं हैं। कुछ को चखना चाहिये, कुछ को चबाना चाहिये, कुछ को निगलना चाहिये और कुछ को पचा डालना चाहिये। इस साहित्य-समृद्धि के समय में कुछ पुस्तकें ऐसी भी आविष्कृत हो चुकी हैं, जिनमें कुछ को छूना चाहिये, और किसी के दर्शन मात्र करके ही रख देना चाहिये। यद्यपि यह बात मानी जा सकती है कि मनुष्य चाहे तो किसी भी पुस्तक से कुछ न कुछ लाभ अवश्य ही उठा सकता है किन्तु इसके लिये अधिक विचार-शीलता की आवश्यकता है, जिसका सर्व साधारण में होना असम्भव है। विचारशीलों के लिये भी इसमें लाभ कम और हानि अधिक की सम्भावना है।

आज जो वास्तवमें पुस्तकें कही जानी चाहिये बहुत कम दृष्टि गोचर होती हैं, चारित्र पर अधिकाँशमें बुरा असर डालने वाली पुस्तकें ही हाथोंहाथ बाजार में बिका करती हैं। खेद है कि आज किसी लेख या पुस्तक में कोई एक भी शब्द ऐसा आ जाए, जिसकी कि—सरकार को गन्ध भी न सुहाती हो लेखक, सम्पादक और प्रकाशक सहित गिरफ्तार कर ली जाती हैं, पर अश्लील पुस्तकों पर उसकी भी सदैव कृपा बनी रहती है।

पुस्तक एक मित्र का काम करती है। जैसे मित्र बुरे रास्ते जाते हुए मित्रको समझा बुझा कर सत्पथ पर लगा देता है वैसे ही पुस्तकें भी कुमार्ग में जाते हुये मनुष्यों के समक्ष उस मार्गमें होने वाली हानियों का दर्शन करा देती हैं और सुव्यवस्थित कल्याण-कारी मार्ग में पदार्पण करने के लिये बाध्य करती हैं। परन्तु यदि मित्र चरित्र हीन होता है, स्वयं दुष्ट प्रकृति का होता है तो वह दूसरे को भी वैसा बना देता है। वैसे गन्दी-साहित्य की पुस्तकें भी चारित्र पर कुप्रभाव डालती हैं। अतः इन दोनों प्रकार की पुस्तकों के चुनाव में बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिये। इस पर बहुत से लोग बिगड़ कर प्रश्न किया करते हैं, क्या नाटक, उपन्यास, गल्प आदि न पढ़े जाँय? हमारा उन से कहना है कि वे अवश्य

समाजवाद बनाम धर्म

(ले०—श्रीमान् पं० कैलाशचन्द्र जैन)

मूलगन्ध कुटी बिहार सारनाथउत्सवके उपलक्ष्यमें नवम्बर मास में काशी के प्रसिद्ध समाज वादी श्री सम्पूर्णनन्द जी ने बौद्ध धर्म पर भाषण किया था। उनका भाषण भाषण मात्र नहीं था किन्तु धार्मिक संसार के लिये कड़ी चेतावनी थी। उन्होंने कहा दुनियाँ के अनेक देशों में इस समय धर्म और मजहब को मिटाने की आवाज उठी है। उन लोगों का कहना है कि धर्म और मजहब से उन्नति में बाधा पहुंचती है। दुनियां में जितना बड़ा वैषम्य इस समय है उतना पहिले कभी नहीं था। अब तो 'सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयन्ति'की कहावत चरितार्थ हो रही है। योग्यता की परीक्षा बुद्धि नहीं बल्कि रुपया हो गया है। आज कल सिर्फ पूजा करना या मंत्र पढ़ना ही धर्म समझा जाने लगा है। सबलों द्वारा निर्बलों का उत्पीडन होता रहे, अबलाओं की लाज भले ही जाती रहे, असहायों पर अत्याचार भले ही हो यह सब बला से होता रहे पर इसके विरुद्ध आवाज उठाना आज कल के धर्मगुरु या धर्माचार्य लोग अपना कर्तव्य नहीं समझते। कहते हैं कि ये सब अपने कर्मों का फल भोगते हैं मुझे इन बातों से क्या कोई भी धर्माचार्य यह बतला सकता है कि उसने किसी आततायी या अत्याचारी लखपति या करोड़पति के यहाँ जाने से इनकार किया है क्या उस ने कभी उत्पीड़ितों को सहानुभूति में एक शब्द भी कहा है जब वे स्वयं दुर्बलों और उत्पीड़ितों की उपेक्षा करते हैं तो उन्हे भी इस बात की आशा छोड़ देनी चाहिये कि आगे चल कर दुनियाँ में उनकी भी आवश्यकता रहेगी। सीमा प्रान्त के पास के गावों में आकाश से बम वर्षा हुई। क्यों हुई? गांव वालों का कसूर था। क्या ऐसा करना उचित था? किसी भी हिन्दू बौद्ध या मुसलमान धर्माचार्य या उलेमा ने एक शब्द भी नहीं कहा हां, इंग्लैंड के बिशप ने इसका विरोध किया कि यह अनर्थ हो रहा है। बौद्ध धर्म के सामने जिस प्रकार पहले मोक्ष की समता और सेवाभाव का प्रश्न था उसी प्रकार अब जगत के वर्तमान भीषण वैषम्य के दूर करने का प्रश्न है। धर्म वही है जो उत्पीड़ितों की सेवा में अपने को मिटा देने का आदेश करे।

(१८ वें पेज का शेषांश)

ही पढ़े जाने चाहिये, वे भी साहित्य के मुख्य अंग हैं, उन्हींमें भाषाकी सजीवता है परन्तु क्या सिर्फ उन्हीं के अध्ययन से जीवन के उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है? साहित्य के सच्चे ध्येय की पूर्ति तो उत्थान करने वाली—आत्मज्ञान करा देने वाली, संसार का रहस्य बताने वाली पुस्तकों से ही होती है।

प्राचीन काल में साहित्य-सौष्ठव पर विशेष ध्यान न देकर (तत्कालीन साहित्यमें साहित्य-सौष्ठव स्वभावतः ही आ गया है यह दूसरी बात है) जीवन का उत्थान करने वाली पुस्तकें ही रची थीं। और यदि भाषा-सौष्ठव पर ध्यान दिया भी जाता था तो गौण रूप से, मुख्य रूप से कभी नहीं।

पुराने जमाने के धार्मिक आविष्कारों का स्थान अब राजनैतिक आविष्कारों ने ले लिया है। पहले इहलोक में रहने वाले लोग मोक्ष और परलोक सम्बन्धी तत्त्वों के अनुसन्धान में ही अपना जीवन बिता देते थे, संभवतः उस समय जीवन संग्राम इतना जटिल नहीं था। राजनीति के दाव पेंच उस समय भी होते थे किन्तु उनका प्रभाव परिमित क्षेत्र पर ही पड़ता था। एक राजा दूसरे राज्य पर सदा चढ़ाई भी करता था पर सदा के लिये पराजितों को दासता के बन्धन में नहीं बांधता था। गतयुग में क्षत्रियत्व से प्रेरित होकर लड़ाइयां लड़ी जाती थीं किन्तु आज वैश्यवृत्तिका बोल-बाला है। इस उलटफेर से प्राचीन युग और नवीन युग में तीन और छै का सा अन्तर पड़ गया है। भौतिक अविष्कारों ने राजनैतिक और आर्थिक संसार में हलचल मचादी है। मशीनों की उत्पादक शक्ति ने इधर तो मनुष्यों को बेकार कर दिया इधर तैयार माल को खपाने के लिये बाजारों की आवश्यकता अधिक बढ़ा दी। प्रत्येक स्वतंत्र देश अपनी आवश्यकता से कई गुना अधिक माल तैयार करता है और उसे बेचने के लिये दूसरे देशों को फंसाने का मौका देखा करता है। मशीनों की बदौलत सम्पत्ति का बटवारा ठीक २ नहीं हो पाता एक करोड़पति कल कारखाने खोल कर मजदूरों के बल पर लाखों रुपया प्रतिवर्ष कमाता है किन्तु, बेचारे मजदूरों को पेट भर अन्न भी नहीं जुटता। मानों, सम्पत्ति ही सब कुछ है मनुष्यों को मेहनत कुछ भी नहीं। इस भयंकर विषमता को हम तब तक ही गर्मी का फल कह सकते हैं जब तक इस को दूर करने का प्रयत्न नहीं किया जाता। कारण कर्मफल सर्वथा अपरिवर्तनीय चीज नहीं है—अपने कार्यों के द्वारा हम उसमें आमूल उलटफेर कर सकते हैं। ज़ार के समय में रूस के किसानों और मजदूरों की जो करुणाजनक दशा थी शासन व्यवस्था में लौट फेर कर देने से आज वह खोजने से भी नहीं दीख पड़ती। गरीब और अमीर के इस प्रश्न ने वर्तमान संसार को बचा रक्खा है। समस्त राष्ट्रों के अधिनायक इस प्रश्न को हल करने में लगे हुये हैं। इस समस्या को सुलझानेके लिये अनेक राजनैतिक-वादों का जन्म हुआ है और होगा। जिस प्रकार पुरातनयुग में एक धर्म का अनुयायी राजा अपने राज्य में विभिन्न धर्मों के प्रचार को रोका करता था उसी तरह आज प्रत्येक गवर्नमेंट अपने से विरुद्ध राजनैतिक वादों पर कड़ी नजर रखती है। ऐसे विकट समय में—जब राजा और प्रजा पत्र और पुस्तक सब का प्रवाह एक ही दशा में बह रहा है—धर्मों की वर्तमान रूपरेखा अपने स्थायित्व का दावा नहीं कर सकती। पुरातन युग में मोक्ष और पारलौकिक सुख के नामपर मनुष्यों को धार्मिक बनाया जा सकता किन्तु आज उनकी दुहाई देने पर उत्पीड़ित जनता की ओर से खरा जवाब मिलता है। इस युग में जनता पर धर्म का प्रभाव डालने का एक ही मार्ग है जिसे 'लोकसेवा' कह सकते हैं। लम्बे चौड़े व्याख्यानोंके द्वारा आकाश पाताल के 'कुलाबे' मिलाने से 'लोकसेवा' नहीं होती और स्वार्थ से प्रेरित होकर धनिकों के गुणगान करने से ही होती है। उसके लिये हमें सम्यग्दर्शन के कुछ अंगों को क्रियात्मक रूप देना होगा। धर्म और भगवान की प्रभावना के साथ धार्मिकों के कष्टों और अभावों को दूर करने का भी प्रयत्न करना होगा। धार्मिक संसार को अपनी सहानुभूति का द्वार राजा और रंक सबके लिये समान रूपसे

खोलना होगा। तभी जनता को धार्मिक बनाया जा सकेगा। राष्ट्र के समान और करोड़ों क्षुधापीड़ितों के जीर्ण शीर्ण कलेवरों को पदद्दलित करके हम धर्म की 'विजयवैजयन्ती' नहीं फहरा सकते। जब धर्म को राष्ट्र के साथ मिलाने का प्रयत्न किया जायगा, और सोमदेव सूरि के—

सर्व एव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः।
यत्र सम्यक्त्व हानि र्न यत्र न व्रतदूषणम्॥

शब्दों में लौकिक विधि-विधानों में कार्यतः हाथ बटाया जायेगा, तभी धर्म को जनता की सहानुभूति प्राप्त हो सकेगा। अन्यथा धार्मिक नेताओं की वही दशा होगी, जो इस बार एसेम्बलीके चुनाव में हुई है-कांग्रेस के विपक्ष में खड़े होने वाले वर्णाश्रमी नेताओं को इतने कम वोट प्राप्त हुये कि उनकी जमानतें जप्त होगईं। क्या इस उदाहरण से धार्मिक संसार कुछ सीख ग्रहण करेगा और अपने को राष्ट्र का सच्चा सेवक बनाने का प्रयत्न करेगा?

ग्राम्यउद्योगसंघ

राजनैतिक क्षेत्र से अवसर ग्रहण करने के बाद ग्रामीण उद्योग धंधों को पुनरुज्जीवित करने की ओर नेताओं का ध्यान गया है। संघ भी कायम हो चुका है कार्यकर्ता भी मिल गये हैं। बडे २ डाक्टरों के सार्टिफिकेट के साथ हाथ का कुटा चावल, हाथ का पिसा आटा और देसी कोल्हू का पिला तेल सेवन करने की अपील भी प्रकाशित हो गई। यदि इस कार्य में सरकार की ओर से कोई बाधा न दी गई तो हमें आशा है कि एक दिन खद्दर की तरह इन चीजों का भी प्रचार होगा और घर घरमें अंशतः शुद्ध खान पान की चीजों का मिलना सुलभ हो जायेगा। इस बीसवीं शताब्दी के वातावरण में धार्मिक प्रश्नों को आर्थिक दृष्टि से हल करने का यह एक उदाहरण है। दूरदर्शी धर्म प्रचारक चाहें तो इस से लाभ उठा सकते हैं। सुना है 'वर्णाश्रमसंघ' ने भी इस दिशा में कार्य करने का प्रस्ताव पास किया है। धार्मिक मनोवृत्तिके अनुभव के आधारपर हम यह कह सकते हैं कि सनातनियों का यह निर्णय ग्रामीण जनों की सेवा करने के उद्देश्य से नहीं हुआ। फिर भी यदि वे इधर ध्यान दें तो भारत का हित ही होगा। जैन समाज की सभा सोसाइटियों का ध्यान इस ओर आकर्षित करते हैं। पत्र, प्रचारक, परीक्षालय आदि गिने चुने कार्यों के साथ यदि वे ग्राम्य संगठन की ओर भी ध्यान दें, और ग्रामों में बसने वाले बेकार जैनों को उद्योग धंधों में लगायें तो इससे समाज के साथ ही साथ देश का भी कुछ कल्याण हो सकता है।

नम्र निवेदन

जिन ग्राहक महानुभावों का वार्षिक चन्दा समाप्त हो गया है वे शीघ्र ही अपना वार्षिक मूल्य मनीआर्डर द्वारा भेजने की कृपा करें। अन्यथा आगामी अंक उनकी सेवा में वी० द्वारा भेजा जायगा।

तीर्थ भूमियां

(ले०—पं० अजित कुमार जैन शास्त्री)

आत्म अभ्युदय के लिये अन्य कारणों के समान क्षेत्र भी एक विशेष कारण है। वेश्याओं की पड़ोस भूमि व्यभिचार की रंग भूमि होती है। सभ्य सदाचारी पुरुषों की निवास भूमि सदाचारी वायु मंडल से भरी रहती है। ये बातें सरलता से इस बातको हृदय पटल पर अंकित कर देती हैं कि विचारों के बनाने बिगाड़ने का एक गणनीय प्रधान कारण क्षेत्र भी है। पारिवारिक चिन्ता भार से व्याकुल मनुष्य जिस समय किसी पर्वत, बाग आदि एकान्त स्थान में जा बैठता है उस समय उसका चिन्ता भार हलका हो जाता है, हृदय की व्याकुलता दूर जाती है और विचारों से गंदापन विदा हो जाता है।

इसी उद्देश से हमारे पुरातन पूज्य ऋषिगण निर्जन जंगलों में, पर्वतों में या दूरवर्ती प्राकृतिक रमणीक किन्तु जनशून्य प्रदेशों में जाकर तपस्या किया करते थे और आध्यात्मिक उन्नतिकी चरमसीमा पर पहुंच जाते थे। उन की पवित्र तपश्चर्या के प्रभाव से उस प्रदेश के जन्म विरोधी पशु भी अपना विरोध छोड़ देते थे। आज यद्यपि वे महान ऋषिवर विद्यमान नहीं किन्तु उनकी तपोभूमियां आज भी विद्यमान हैं। आत्मसुधार के इच्छुक भक्त लोग आज भी उन पवित्र तपो भूमियों की वंदना करके शान्ति लाभ करते हैं। इसी कारण वे पवित्र भूमियां 'तीर्थ क्षेत्र' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

तीर्थ क्षेत्रों में सम्मेदशिखर, चम्पापुरी, पावापुरी गिरनार तीर्थकरों की निर्वाणभूमियां हैं कुछ राजगृही आदि तीर्थ ऐसे हैं जहां पर तीर्थंकरों का समवशरण बना था हस्तिनापुर कुँडलपुर आदि कुछ कल्याणक (जन्म, तप आदि) क्षेत्र हैं सोनागिर चौरासी (मथुरा) कुछ अन्य ऋषियों के निर्वाण क्षेत्र हैं, और कुछ जैनबद्री, महावीर जी आदि प्रभावशाली प्रतिमाओं के विराजमान होने के कारण अतिशय-क्षेत्र हैं।

इनमें से सोनागिर, चौरासी, महावीर जी श्रवण-बेलगोला आदि अनेक तीर्थक्षेत्र ऐसे हैं जिनको केवल दिगम्बर सम्प्रदाय ही मानता है और सम्मेदशिखर पावापुरी आदि अनेक तीर्थक्षेत्र ऐसे हैं जिनको दिग-म्बर, श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदाय मानते हैं।

जिन तीर्थों पर एक एक संप्रदाय की ही मान्यता है वे साम्प्रदायिक झगड़ों से दूर हैं अतः उनका वायु-मंडल शान्त सुहावना बना हुआ है किन्तु जिन तीर्थों को उभय संप्रदाय मानते हैं उन पर कुछ समय से झगड़ालू महानुभावों की कृपा से सदा कुछ न कुछ झगड़ा टंटा बना रहता है। ये झगडे यहाँ तक बढ़ चले हैं कि उनका निर्णय परस्पर में न होकर अदालतों से करना पड़ता है। इस मुकद्दमेबाजी में दोनों पक्षों की धनराशि किस निर्दयता से खून होती है यह जग जाहिर है। धन नाश के सिवाय धार्मिक अपमान भी सीमा से अधिक होता है किन्तु अंत में निर्णय जो कुछ होता है वह या तो दोनों के लिये हानिकर होता है अथवा आगामी के लिये भी उलझ-न में डाल देता है।

अभी तक कोई ऐसा प्रभाव शाली न्यायप्रिय नेता मैदान में नहीं आया जो इस कलंक को जैन समाज

के मस्तक से मिटा देता। अनेक बार देहली आदि में पारस्परिक समझौते के लिये दोनों सम्प्रदायों के मुख्य मुखिया पुरुषोंकी मीटिंगें हुई किन्तु कुछ परिणाम न निकला अभी बंबई में भी कुछ उद्योग हुआ था किन्तु वह भी असफल रहा।

ये पारस्परिक समझौते के सम्मेलन क्यों असफल रहे इस बात पर यदि कोई बुद्धिमान पुरुष विचार करे तो उस को उस कारण का पता लगाते देर न लगेगी। समझौता सदा समान शक्तियों में हुआ करता है बलवान और निर्बलों के बीच सन्तोषजनक फैसला कदापि नहीं होता यही नीति दिगम्बर श्वेताम्बर समझौते की असफलता पर लागू है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय की दृष्टि में दिगम्बर सम्प्राय एक आर्थिक शक्ति तथा संगठन शक्ति से शून्य निर्बल सम्प्रदाय है अतएव या तो श्वेताम्बर सम्प्रदाय हृदय से समझौते का इच्छुक नहीं, दिखावटी खेल से जनता पर समझौते का प्रभाव डालना चाहता है अथवा समझौते के लिये ऐसी अपमानजनक शर्तें पेश करता है जिसको स्वाभिमानी दिगम्बर सम्प्रदाय स्वप्न में भी स्वीकार नहीं कर सकता।

सम्मेदशिखर के समझौते के लिये देहली में जो १०—११ वर्ष पहले बैठक हुई थी उसमें दिगम्बर सम्प्रदाय की ओर से 'सम्मेदशिखर पर दोनों सम्प्रदायों के पूर्ण समान अधिकार रहने' की शर्त रक्खी गई। श्वेताम्बर सम्प्रदाय ने उसके उत्तर में यह शर्त पेश की कि 'दिगम्बर सम्प्रदाय सम्मेदशिखर पर्वतपर अपना अधिकार छोड़ देवे दिगम्बर सम्प्रदाय को हम दूसरी जगह ढाई बीघा जमीन देवेंगे दिगम्बर सम्प्रदाय वहां पर अपना सम्मेदशिखर बना लेवे।'' मानों दिगम्बर सम्प्रदाय ढाई बीघे जमीन का भूखा है वह इतना दरिद्र है कि ढाई बीघा जमीन भी नहीं खरीद सकता।

इसी तरह कुछ समाज हितैषी महानुभावों ने बम्बई में जैन जाति के तीनों सम्प्रदायों की सम्मिलित बैठक करके इन झगड़ों का अंत करना चाहा किन्तु वहां श्वेताम्बर सम्प्रदाय के निर्वाचित दो प्रतिनिधि आये ही नहीं और यह भाव अमल में लाया गया कि श्वेताम्बर सम्प्रदायको समझौतेकी कुछ परवा नहीं।

ये रुख इस बात को प्रगट करते हैं कि श्वेतांबर समाज दिगम्बर समाज को शक्तिशून्य समझ कर हृदय से समझौते का इच्छुक नहीं है।

यद्यपि श्वेताम्बर सम्प्रदाय का खयाल कुछ अंश में सत्य माना जासकता है। क्योंकि दि० स० दो तीन कारणों से श्वे० समाज की अपेक्षा कुछ निर्बल है। एक तो उसमें दलबन्धी का बाजार गर्म है जिससे उसके भीतर संगठन शक्ति क्षीण होती जा रही है और उसका अपनी बाहिरी रक्षा की ओर ध्यान नहीं जाता।

दूसरे-दि० समाज में सार्वजनिक, सामाजिक, पारमार्थिक संस्थाओं, विद्यालयों, पाठशालाओं आदि का बाहुल्य है जिस से उसकी धनराशि उस ओर अधिक खर्च होती रहती है।

तीसरे कुछ महानुभाव तीर्थभक्ति से उदासीन हैं तीर्थरक्षा के लिये उनके हृदय में विचार ही उत्पन्न नहीं होता।

चौथे कुछ ऐसे महानुभाव भी हैं जो शरीरसे दि० किन्तु स्वार्थवश हृदय से श्वेताम्बर सम्प्रदाय के पक्ष पोषक हैं इस कारण वे अपनी अन्दरूनी हरकतों से

दिगम्बर समाज का ध्यान तीर्थक्षेत्रों की ओर से दूर खींचते रहते हैं।

उन कारणों के सिवाय दिगम्बर सम्प्रदाय ने इस मुकद्दमे बाजी के लिये कोई अच्छा प्रोव्यफंड भी स्थापित नहीं किया है जैसा कि श्वेताम्बर सम्प्रदाय में आनन्द जी कल्याण जी नामक फर्म प्रायः तीर्थ क्षेत्रों के लिये ही काम में आती रहती है।

परन्तु यह समझना बिलकुल गलत है कि उपर्युक्त कारणों से दिगम्बर सम्प्रदाय ऐसा बलहीन हो गया है कि अपने उचित अधिकारों की भी रक्षा नहीं कर सकता पिछली और आधुनिक मुकद्दमे बाजी ने इस बात को बहुत अच्छी तरह से जनता को साबित कर दिया है कि दि० सम्प्रदाय वह गुड़ नहीं जिसको चींटि सहज में हजम कर जावें। आपत्ति के समय सर्वस्व अर्पण करके दिगम्बर बन कर भी अपने धार्मिक अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिये दि० सम्प्रदाय चूक न करेगा।

श्वेताम्बर सं० में उन न्याय प्रेमी महानुभावों का अभाव नहीं है जो कि अनुचित ढंग से दूसरों के धार्मिक अधिकारों को छीनने में पाप नहीं समझते। उन महानुभावों के समक्ष हम इस लेख माला द्वारा अपना दृष्टिकोण रखना चाहते हैं जिससे कि वे तथा अन्य निष्पक्ष महानुभाव इस बातका निर्णय कर सकें कि न्याय पक्षपर कौन है और अन्यायपर कौन चलरहा है। इस लेख माला में हम खास तौर से श्री ऋषभदेव (केशरियानाथ) तीर्थ पर ऐतिहासिक रूप से प्रकाश डालेंगे जिससे दिगम्बर श्वे० जनता इस तीर्थक्षेत्र की वास्तविक परिस्थिति को समझ सके। उसके पहले कुछ उन बातों का संक्षिप्त रूपमें उल्लेख कर देना भी आवश्यक दीखता है जो मुकद्दमे बाजीके इतिहास में आद्य मानी जाती है।

क्रमशः

शास्त्री जी की कृपा

हमारे मित्र श्रीमान पं० इन्द्रलाल जी शास्त्री एक वह बारीक चलनी हैं जो सदा बारीक से बारीक सच्चे या झूठे दोष पकड़ कर खंडेलवाल हितेच्छु के द्वारा संसार में फैलाया करते हैं इस काममें वे बहुत निपुण हैं। इस निपुणता की तराजू पर वे अपनी धार्मिकता को तोल दिया करते हैं। धर्म की परिभाषा उनकी निजी अपने घरकी है और उसके परखने वाली कसौटी भी उनकी अपनी ही चीज है। अतः वह भी ऐसी है कि संसार में सिवाय पं० इन्द्रलाल जी के किसी को खरा नहीं ठहराती।

पं० इन्द्रलाल जी का जहाँ से थोड़ा बहुत भी किसी न किसी तरह का स्वार्थ साधन हो वह संस्था धार्मिक संस्था है। और जो उनके प्रभाव को स्वीकार नहीं करती, वह धार्मिक पाठशाला ही क्यों न हो, अधार्मिक संस्था ठहरा दी जाती है। शास्त्री जी कभी साफ तौर से और कभी गोलमाल रूपसे उसको सहायता न देने का समाज को आदेश दे डालते हैं। जयपुर की दि० पाठशाला से जब से आपका स्वार्थ धागा टूटा उसी समय से वह अधार्मिक पाठशाला होगई इसी कारण आपने जयपुर राज्य से मिलने वाली पाठशाला को ५०) मासिक सहायताको रुकवा दिया। सहारनपुर, इंदौर, बनारस आदि स्थानों के महाविद्यालय भी पं० इन्द्रलाल जी की दृष्टि में अधार्मिक हैं क्योंकि उनके प्रधानाध्यापक दि० जैन शुद्ध जातियों के पारस्परिक विवाह संबन्ध को शास्त्रानुकूल कहते हैं। आपने जैन सिद्धान्त में इष्ट छत्तीसी के ३६ दोहे पढ़कर जैन सिद्धान्त का रहस्य जानकर ऐसे विवाह संबंध को शास्त्रविरुद्ध घोषित किया है। आप प्रायः छाती ठोंक कर अभिमान के साथ कह दिया करते हैं कि 'धर्म की रक्षा करने वाला कौन ? मैं इन्द्रलाल। सिर्फ इष्ट छत्तीसी पढ़कर खंडेलवाल हितेच्छु का संपादन करने वाला कौन ? मैं इन्द्रलाल। इत्यादि

पं० इन्द्रलाल जी की दृष्टि में शायद स्व० पं० गोपालदासजी, स्व० न्याय दिवाकर पं० पन्नालाल जी, स्व० पं० सेठ जयदेव जी कलकत्ता, ब० गणेशप्रसाद जी वर्णी, न्यायाचार्य पं० माणिकचन्द्र जी, सिद्धान्त शास्त्री पं० वंशीधर जी इन्दौर, पं० देवकीनंदन जी तथा कुछएक के सिवाय सभी विद्वान जैन सिद्धान्तसे अनभिज्ञ थे तथा हैं क्योंकि वे विजातिविवाह को जैन शास्त्र विरुद्ध नहीं बतलाते। जैनदर्शन पत्र विजाति विवाह के खंडन मंडन से अलग है इसी कारण इन्द्रलाल जी बार २ इस विषय को छोड़ कर अनुचित लाभ उठाते हैं। पं० इन्द्रलाल जी यदि सच्चे हृदय से निर्णय करना चाहते हैं तो हितेच्छु में उभय पक्ष के लेखों को स्थान देकर इस विवादग्रस्त विषय का निर्णय करने का प्रयास करें धार्मिक अधार्मिक का निर्णय हो जायगा।

पं० इन्द्रलाल जी लिखते हैं कि 'हम तो सब से बड़ी धर्मरक्षा जाति वर्णरक्षा और पिंडशुद्धिमें मानते हैं। आपने इन विषयों में क्या किया है ? हमारा भी यह प्रश्न पं० इन्द्रलाल जी के सामने है कि अपनी धार्मिकता कायम रखने के बहाने सब किसी को गाली-गलौज देने के सिवाय आपने पिण्ड शुद्धि, वर्ण जाति रक्षा के लिये क्या किया है ? हमको दि० जैन सिद्धान्त पर अन्य लोगों से होने वाले आक्षेपों का निराकरण करना अधिक उपयोगी प्रतीत होता है जिसको कि जैनदर्शन यथाशक्ति करता है। आप अपने अभीष्ट कार्य को कीजिए। यह कोई आवश्यक नहीं कि सभी कार्य जैनदर्शन करे। आप भगवज्जिनसेनाचार्य का आधुनिक पद ग्रहण करना चाहते हैं तो कोरी बातों से तो कुछ नहीं बनता।

शास्त्री जी ने चौधरी धर्मचन्द्र जी के पुराने प्रकरण को लेकर अपना मनोरथ सिद्ध करना चाहा है सो यह भी उनकी भारी कृपा है। धर्मचन्द्र जी स्थानकवासियोंके पंचकुला गुरुकुल तथा आर्य समाज गुरुकुलों में कार्यकर्ता रह चुके थे उसी खयाल से उनको द्विजवर्ण की मान्यता में कुछ दिन शास्त्रार्थ संघ से उनका सम्पर्क रहा था पीछे वह भी न रहा इस से शास्त्रार्थ संघपर क्या लांछन आया (चौधरी धर्मचन्द्र

जी जन्म से मुसलमान थे इसका अभी तक कोई प्रमाण नहीं मिला है) पं० इन्द्रलाल जी का स्वार्थी हृदय चाहता है कि आंखों में चुभने वाला शास्त्रार्थ-संघ और जैन दर्शन समाज की आंखों से गिर कर अपना अस्तित्व खो बैठे जैसा कि अन्य संस्थाओं के लिये उनकी भावना रहती है और साफ लिख भी देते हैं कि ऐसी संस्थाओं को समाज सहायता न दे। शास्त्री जी कितने बड़े धर्मरक्षक और समाज नितैषी हैं उसका यह नमूना है।

शास्त्री जी लिखते हैं कि "जैन दर्शन ने विधवा-विवाह का खंडन नहीं किया" पता नहीं शास्त्री जी इस वाक्य से क्या साधना चाहते हैं जरा खुलासा कर देते तो अच्छा था। इन्द्रासन पर बैठ कर इन्द्र-लाल जी दूसरों की समालोचना करते हैं लेकिन अपने लिये कुछ नहीं। इन्द्रलाल जी ने इस विषय का कौन सा खंडन किया सो रहस्यकी बात है विधवा-विवाह वाला सव्यसाची का ट्रेक्ट जैन दर्शन में भी पहिले प्रकाशित हुआ था। पं० इन्द्रलाल जी ने उसका खंडन लिखकर अपनी सन्दूक में रख लिया है जिसको वे कभी मौकेपर समाज को दिखावेंगे। अभी उसको हवा इसलिये नहीं लगाते कि कहीं वह कपूर की तरह उड़ न जाय। समाज सेवाके नाम पर दिलके फफोले फोड़ कर धर्मरक्षता के ढंग से स्वार्थ गांठना ही शास्त्री जी का विधवा विवाह खंडन है। मानो शास्त्रार्थ संघ ने या जैनदर्शन ने उसका कभी मंडन किया है।

शास्त्री जी प्रायः सभी उत्सवों के समय एक ऐसे व्यक्ति के साथ भोजन किया करते हैं और उसे धार्मिक शिरोमणि बतलाया करते हैं जो नित्य नियम रूप से वेश्यागामी है तथा जिस ने एक अज्ञात जातीय विधवा को बंबई अदालत में अपनी पत्नी बतला कर उससे संतान उत्पन्न की और उसको जैन विद्यालय में अन्य जैन छात्रों के साथ पढ़ाया। ऐसे रंगीले व्यक्ति के साथ पं० इन्द्रलाल जी की "जाति वर्ण, पिण्डशुद्धि वाली महती धर्म रक्षकता' जरा भी नहीं हिलती क्योंकि वह व्यक्ति शास्त्री जी के स्वार्थ सिद्धि का, हां में हां मिलाने का, परस्पर प्रशंसा का एक साधन है। शास्त्री जी की ऐसी मायाविनी धर्म रक्षकता ही दिगम्बर जैन समाज का उद्धार करेगी।

अपने पुत्र के विवाह समय वेश्यानृत्य करा कर आदर्श उपस्थित किया वह भी पं० इन्द्रलाल जी की धर्म रक्षकता थी।

जयपुर—जैन महापाठशाला की सूचना जैनजगत में छपती है इस लिये जैनदर्शन दोषी है पं० इन्द्रलाल जी का यह आक्षेप भी बादरायण सम्बन्ध से बढ़कर है। इस तरह तो इन्द्रलाल जी शास्त्री भी दोषी हैं क्योंकि वे जयपुर के रहने वाले हैं।

बात वास्तव में यह है कि जैन महापाठशाला जयपुर का मंत्रित्व आपको नहीं मिल पाया श्रीमान पं० जवाहरलाल जी शास्त्री मंत्री बना दिये गये। पाठ-शालाके प्रधानाध्यापकका नाम जैनदर्शनकी संपादकी में है। जैनदर्शन पर आक्षेप करने का खास कारण यह है।

इन्द्रलाल जी शास्त्री इधर अंग्रेजी शिक्षाकी निन्दा करके संस्कृत भाषा तथा धार्मिक शिक्षा का समर्थन करते हैं और उधर जयपुरकी दि० जैन महापाठशाला को सहायता बंद करा देने का शुभ उद्योग करते हैं जिसमें कि संस्कृत में आचार्य परीक्षा का कोर्स तथा राजवार्तिक, प्रमेयकमलमार्तण्ड आदि उच्च जैन ग्रंथोंकी

पढ़ाई होती है, यह शास्त्री जी की आदर्श धार्मिकता है? रंगदार दुरंगी चाल का यह एक नमूना है। आप शास्त्री इसी पाठशाला में पढ़ कर हुए हैं।

शास्त्री जी ने शीतलप्रसाद जी के नाम से जैन दर्शन के विरुद्ध समाज को भड़काना चाहा है। इस विषय में जैनदर्शनका स्पष्ट अभिमत यह है कि शीतल प्रसाद जी ही क्या उन से भी बहुत नीचे दर्जे का जघन्य मनुष्य जो कि अपने हृदय में जैन धर्म की पक्ष रखता है जैनदर्शन उसको 'जैन' समझता है यदि वह जैन धर्म के प्रचार, अभ्युदय में रत्ती भर भी कुछ कार्य करता है उस का सराहना करना उसका कर्तव्य है। किन्तु उसके अवगुणों की प्रशंसा कदापि न करेगा समय पर उसकी निन्दा ही करेगा।

यदि वैरिष्टर चंपतराय जी इंजकशन केसमें पैरवी करके अमूल्य सेवा करते हैं तो जैनदर्शन की दृष्टि से उनका कार्य सराहनीय है और यदि वे विधवा विवाह का समर्थन करते हैं तो उनकी वह कृति निन्दनीय है। पं० इन्द्रलाल जी यदि चर्चासागर, त्रिवर्णाचार को आगम बतलाते हैं तो वह कार्य उन का निन्दनीय है और यदि जैनधर्म प्रचार का कोई कार्य करते हैं तो वह प्रशंसनीय है।

न सर्वथा बाबूदल निंद्य है और न पंडितदल सर्वथा प्रशंसनीय है। बाबूदलमें जो भलाई है वह प्रशंसनीय है और पंडितदल में जो बुराई है वह निन्दनीय है। पंडितदल की धार्मिक सेवा को प्रशंसनीय न माना जाय तो कृतघ्नता है और बाबूदल की बुराइयों को प्रशंसनीय बतलाया जाय तो पाप है।

अभी ऋषभदेव (केशरियानाथ) केसमें श्रीमान बा० गंगाराम जी वकील, पं० खूबचन्द्र जी शास्त्री, पं० पन्नालाल जी सोनी, सेठ भागचन्द्र जी सोनी, बा० नान्दमल जी अजमेरा आदि सभी दल के महानुभावों ने अपनी अपनी योग्यता के अनुसार सेवा की है तो क्या उस सेवा को दलबन्धीके आधार पर बांट कर किसी की प्रशंसा और किसी की निन्दा के रूप में रख दिया जाय?

समाज सेवा में यथा स्थान सभी दल के व्यक्ति आवश्यक हैं अतः समाजहितैषी को किसीके सत्कार्य की अवहेलना और किसी के कुकार्य को प्रशंसा कदापि न करनी चाहिये।

जैन धर्म की जरा सी भी पक्ष अपने हृदय में रखने वाला आचरणशून्य व्यक्ति भी मौके पर बड़ी आवश्यक वस्तु है। गुण दोष का विवेचन उस ढंग से करना चाहिये जिससे अवगुणों का प्रसार न हो और धार्मिक प्रचार का क्षेत्र विस्तृत हो।

मतलब यह है कि इन्द्रलाल जी शास्त्री की अपार महिमा है उन्होंने स्वयं अपने बाहुबल से धर्माचार्य का अखंड अधिकार प्राप्त कर लिया है अतः धार्मिकता, अधार्मिकता का प्रमाणपत्र देना उनके बाँये हाथ का काम है।

वैयक्तिक मनोमालिन्य को आपने शास्त्रार्थ संघ सरीखी उपयोगी संस्था पर निकाल कर अपनी स्वार्थवासना सिद्ध करनी चाही इस कारण आपकी सेवा में मित्रभाव से ये चार शब्द लिखने पड़े हैं।

—सम्पादक

—※—

दि० जैन महा पाठशाला के संबंध में —मेरे दो शब्द—

उस दिन श्री महावीर स्वामी के मंदिर (जयपुर) में मेरा जैन धर्म के सम्बन्ध में व्याख्यान हुआ था उपस्थिति अच्छी थी सभा विसर्जित हो जाने के बाद वहीं कुछ लोगों से स्थानीय सामाजिक परिस्थिति पर बातें होने लगी तो ज्ञात हुआ कि स्थानीय दि० जैन महापाठशाला को जो करीब ५० वर्ष से जयपुर राज्य के कोष से सहायता मिल रही थी उस को बंद कर देने के लिये यहां के कुछ लोग प्रयत्न कर रहे है और इस में मुख्य हाथ पं० चैनसुखदास जी शास्त्री, पाठशाला के भूत पूर्व मंत्री प० नानूलाल जी शास्त्री और पं० सीमंधरदास जी सेठी का है उस सहायता के बंद होने का आर्डर तो अभी नहीं हुआ है पर वह आठ दस माह से रुका पड़ा है।

इन समाचारों को जान कर मुझे बेहद रंज हुआ कोई विद्वान हो कर भी ऐसे विद्या मंदिर को ढाह देने के प्रयत्न में अगुआ बन सका है यह बात एकाएक मेरी समझ में नहीं आयी आने घर से तो कुछ देना नहीं पड़ता था फिर राज्य के खजाने से मिलने वाली सहायता बंद कराने में इन्हें क्या लाभ था और बातें मेरे लिये एक बड़ी भारी जटिल पहेली सी बन गई। अतः इस सम्बन्ध में गहरी छान बीन करने के लिये मैं महा पाठशाला का निरीक्षण करने को गया। पाठशाला के कार्य को देखकर मुझे बहुत सन्तोष हुआ। मैंने आय व्यय का हिसाब भी देखा जिससे विदित हुआ कि पहले की अपेक्षा पाठशाला प्रत्येक विषय में अति बढ़ी है। पहले तो ध्रौव्य कोष से द्रव्य उठाकर बढ़ोता बांटा जाता था पर अब ध्रौव्यकोष से कुछ नहीं आरहा है। पाठशाला की आर्थिक स्थिति पहिले की अपेक्षा बहुत कुछ संतोष जनक है। पहिले स्थानीय मासिक चंदा घटकर करीब ३५) के रह गया था जबकि अब ३५०) रु० मासिक चन्दा आरहा है। विद्यार्थियों की उपस्थिति भी अच्छी रहती है। सम्भव है कि आगामी वर्ष कुछ छात्र आचार्य परीक्षा में भी बैठें। आजतक पचास वर्ष में यहां से एक भी आचार्य नहीं निकला और सब मिलाकर शास्त्री भी करीब १२ ही निकले हैं। पर अबतो उच्च कक्षाओं में छात्रों की संख्या अधिक होनेसे ऐसा अंदाजा होता है कि प्रतिवर्ष यहां से कोई न कोई उपाध्याय शास्त्री मिलता ही रहेगा।

यह सब बातें मैं पाठशाला के रजिस्टर आदि के आधार पर लिख रहा हूँ।

इस वर्तमान प्रबन्ध कारिणी कमेटी के पहिले कई वर्षों से पाठशाला का प्रबन्ध और आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो रही थी अधिकांश स्थानीय सज्जन पाठशाला की ओर से उदासीन थे इसका भी कारण यह था कि भूतपूर्व मंत्री पं० नानूलाल जी शास्त्री पाठशाला के संबंध में मनमानी किया करते थे (ऐसा खंडेलवाल जैन हितेच्छु पत्र के पढ़ने से मालूम हुआ है) यही कारण था कि उस समय की कमेटी के मेम्बरों ने धीरे २ कमेटी से पद त्याग कर दिया था जब पाठशाला की आर्थिक स्थिति बहुत अधिक गिर गई और ध्रौव्य कोष से करीब ६०००) रु० व्यय कर दिये गये तो पाठशाला के हितैषी कोषाध्यक्ष श्रीमान चिमनचन्द जी सेठी ने इस ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया जिसके फलस्वरूप १९३३ की ११ जून को पाठशाला

कोई वार्षिक अधिवेशन में पं० नन्हूलाल जी शास्त्री को मंत्री पदके स्थानमें भूतपूर्व सहायता मंत्री या कस्तूरचन्द जी को मन्त्री नियुक्त किया गया और श्रीमान् मुन्शी साहब प्यारेलाल जी रिटायर्ड मेम्बर आफस्टेट कौंसिल जयपुर के सभापतित्व में प्रबन्धकारिणी कमेटी का चुनाव हुआ था। इसके बाद पाठशाला का कार्य संतोष जनक होरहा है पर जिन लोगों की स्वार्थ परता में बाधा पहुंची उन्हें यह कब सह्य था अतः पाठशाला को हानि पहुँचाने के लिये उन लोगों ने दातार महोदयों के घरों पर जाकर पाठशाला में चंदा न देने के लिये कोशिश की और पाठशाला को आर्थिक हानि पहुंचाने के लिये जीजान से चेष्टा करने लगे। फिरभी दाता महाशयों ने यथाशक्ति दान देकर पाठशाला की उन्नति में हाथ बढ़ाया।

अब सरकारी सहायता को बन्द कराने के लिये इन्होंने क्यों प्रयत्न किया? इसका भी थोड़ा सा इतिहास सुनिये— बात यह है कि पं सीमन्धरदास जी सेठी से उक्त पाठशाला के करीब २३००) रु० बाकी हैं उन रुपयों की मियाद आरही थी इसलिये वर्तमान प्रबन्ध कारिणी कमेटी के मन्त्री कस्तूरचन्द जी ने उन पण्डित जी पर जयपुर कोर्ट में दावा कर दिया इस दावे में नं० १ मुद्दायले सीमन्धरदास जी और नं० २ मुद्दायले पं० नान्हूलाल जी शास्त्री हैं सीमन्धरदास जी के मिसल की बही आदि कागजात इन के पास थे यह देना नहीं चाहते थे इस लिये इन को भी मुद्दायला बनाया गया बस दावा होते ही पं० सीमन्धर दास जी, पं० नान्हूलाल जी, पं० इन्द्रलाल जी ने मिल कर अपने कुछ साथियों को मिला कर उक्त शिक्षा मंदिर के खिलाफ आन्दोलन शुरू कर दिया स्मरण रहे पं० इन्द्रलाल शास्त्री में भी पाठशाला के रुपये कई बरसों से बाकी निकलते आरहे हैं इनके सिवाय इनका साथ देने वाले कुछ ऐसे भी लोग हैं जिनमें पाठशालाके रुपये बाकी हैं जैसे श्रीमान पं० गोमनलाल जी भावसा आदि।

आप पर पाठशाला के ४५०) रु० बाकी हैं राजकीय सहायता बंद कराने में जिन लोगों का हाथ है या तो वे ऐसे हैं जिन पर पाठशाला के रुपये बाकी हैं या उन करजादारोंके रिश्तेदार और मित्र दोस्तहैं बस ५०) बंद कराने का यह संक्षिप्त हाल है।

पार्टी बंदी का बहाना बनाकर ये लोग रुपये बंद कराने की चेष्टा कर रहे हैं पर पाठशाला के संबन्धमें जहाँ तक मुझे ज्ञात हुआ है पार्टी का कोई प्रश्न नहीं है यह सब तो स्वार्थ की लड़ाई है इस लिये जयपुर स्टेट के एज्युकेशन मेम्बर सा० को मामलेकी तह तक पहुंचकर मासिक सहायता शीघ्रातिशीघ्र जारी कर देना चाहिये अथवा जयपुर राज्य के राज्यभक्त जैन प्रजाके हृदय पर बड़ा भारी आघात पहुँचेगा जब कि विद्यालय पहिले से भी अच्छी दशा में चल रही है छात्र संख्या भी बढ़ी है अभी राजकीय परीक्षा में भी अच्छी संख्या में परिक्षार्थी सम्मिलित होते हैं तो क्या कारण है कि सदा से मिलने वाली सहायता को रोक दिया जाय उचित तो यह था कि कार्य को देखर सहायता में और कुछ वृद्धि की जाती आशा है एज्युकेशन मेम्बर सा० हमारी प्रार्थना पर ध्यान देंगे।

अब पं० इन्द्रलाल जी शास्त्री से भी हम कुछ निवेदन करना चाहते हैं आप हमारे पुराने मित्रों में से हैं इस लिये लिखने की आवश्यकता हुई है। आप इस महा पाठशाला से फले फूले और बढ़े हुए हैं

इसी से आप साक्षर भी बने हैं कई वर्षों तक आपने इस पाठशाला की प्रधानाध्यापिकी भी की है इसलिये सच कहा जाय तो यह पाठशाला आपकी जननी है इतना ही नहीं अब भी आप अपनी संतान को इसी प्रार्थना है कि जननी के प्रति पुत्र का सुकर्तव्य होना पाठशाला में पढ़ने के लिये भेजते हैं इस कारण चाहिये क्या हम आपसे पूर्ण आशा करें कि पाठशाला के प्रति आप अपनी कृतज्ञता दिखलाकर उसकी उन्नति में सहायक बनेंगे और इस ज्ञान मंदिर को ढाहने की चेष्टा न करेंगे।

विनीतः—

ज्यो० र० रामलाल जैन पंचरत्न

जनरल सेक्रेटरी हिन्दू प्रामिसिंग स्काउट दसो०रामपुर

सं० मत—दि० जैन महा पाठशाला के विषय में हमारे पास ऐसे दो लेख जयपुर से आये थे किन्तु आवेशवश लिखे जाने के खयाल से उन्हें स्थान नहीं दिया था किन्तु यह एक ऐसे महानुभाव का लेख है, जिनका जयपुर पंचायत से कुछ सम्बन्ध नहीं तथा जो उत्तरदायित्व शून्य नहीं एवं जो इन्द्रलाल जी शास्त्री के पुराने मित्र हैं। एक उपयोगी सामाजिक संस्था को हानि न पहुंचे इस खयाल से भी इस लेख को स्थान दिया गया है। दुख होता है कि वैयक्तिक स्वार्थ या मनमुटाव सामाजिक संस्था को हानि पहुँचाने का कारण हो जाता है।

प्राप्ति स्वीकार और समालोचना

सती अंजना नाटक—लेखक बा० ज्योति प्रसाद मुलहेड़ा, प्रकाशक, पं० मंगलसैन जैन, मूल्य बारह आने, पृष्ठ संख्या १६०।

विषय नाम से ही स्पष्ट है। चलती भाषा में रचा गया है। स्टेज पर खेला भी जा सकता है। नाटक प्रेमियों के काम की चीज है।

अथ पखवाड़ा— (भा. टी.) सम्पादक, पं० मंगलसैन जैन, प्रकाशक पं० अतरसैन जैन मैसल। मूल्य छै पैसे।

इस छोटी सी पुस्तिका में प्रत्येक तिथि की गिनती के अनुसार चीजों का संग्रह किया गया है। जैसे आठें (अष्टमी) की गिनती के अनुसार सम्यग्-दर्शन के आठ अंग, ज्ञान के आठ भेद, आठ प्रकार की पूजा इत्यादि। एक से लेकर सोलह तक का संग्रह है। पं० द्यानतराम जी की कविता है कहीं २ पर शास्त्र के अन्त में इसका पाठ किया जाता है। पुस्तक के अन्त में अठाई रासा भी है।

मैं क्या चाहता हूँ—संग्रहकर्ता श्री वासुदेवप्रसाद जैन, प्रकाशक पं० मंगलसैन जैन। मूल्य पाँच पैसा।

इसमें आत्म कल्याण के उपयोगी कुछ विचारों का संग्रह किया गया है जो अच्छा है। छपाई वगैरह भी आकर्षक है।

प्रतिक्रमण भाषा—अनुवादक, पं० मंगलसैन जैन मैसल।

यह चारों पुस्तकें--पं० अतरसैन जैन, जैन पुस्तकालय मुहल्ला अनुपूरा मुजफ्फर नगर के पते से प्राप्त होती हैं।

सत्यमार्ग दीपक—संग्रह कर्ता ब्र० सुन्दरलाल जी, प्रकाशक लाला रहतालाल जी मुकाम कुटेसरा जिला मुजफ्फरनगर।

इस पुस्तक में जैन धर्म की प्राचीनता व उत्तमता के विषय में अजैन विद्वान की सम्मतियों का व अजैन ग्रन्थों के प्रमाणों का संग्रह किया गया है। इस में अजैन ग्रन्थों से जो प्रमाण लिये गये हैं वे अत्यन्त अशुद्ध छापे गये हैं। संस्कृत न समझने का यही दुष्परिणाम होता है। फिर भी पुस्तक संग्रह के योग्य है।

१ गृहस्थ शिक्षा. २ शाखोचार—लेखक जैन कवि बाबू ज्योतिप्रसाद जी देवबन्द।

अभी हाल में ही देहली निवासी लाला हुकमचंद जगाधरमल के सुपुत्र का स्थानकवासी समाज के सुप्रसिद्ध दानी सेठ ज्वालाप्रसाद जी जौहरी महेन्द्रगढ़ की पुत्री के साथ 'पाणिग्रहण' संस्कार हुआ है। इस अवसर के लिये ही उक्त दोनों पुस्तकों का निर्माण किया गया है। कवि जी पुराने लेखकों में से हैं। अतः उनकी रचना का सर्वांग सुन्दर होना मामूली बात है। पुस्तकों की छपाई कागज आदि भी विवाह समारोह के अनुरूप ही हैं।

नागौरी जी रचित केसरिया जी के इतिहास पर एक दृष्टि—लेखक श्रीमान लक्ष्मीसहाय जी माथुर विशारद, झालरापाटन, प्रकाशक—श्रीमान गेंदमल जी जैन प्रधानाध्यापक जैन विद्यालय धींमंडी अजमेर हैं पुस्तक की छपाई सफाई कागज आदि सामग्री अच्छी है मूल्य १२ आने हैं।

श्रीयुत चन्दनमल जी नागौरी ने 'केसरिया जी का सत्य इतिहास' नामक एक पुस्तक प्रकाशित की थी जिसमें आपने अपने ढंग से श्री ऋषभदेव (धुलेव) के ऐतिहासिक दिगम्बरी मंदिर को श्वेताम्बरी सिद्ध करने की चेष्टा की थी। उक्त पुस्तक द्वारा नागौरी जी की पुस्तक को विद्वान लेखक ने निष्पक्ष दृष्टि से असत्य साबित किया है।

लेखक ने मंदिर प्रकरण में खेलामंडप के दो शिला लेख फुटनोटके तौरपर लिखकर मूल मंदिरका जीर्णोद्धार दिगम्बर सम्प्रदाय के द्वारा हुआ सिद्ध किया है।

प्रतिमाप्रकरण में लेखक ने नेमिनाथ मंदिर के शिला लेख द्वारा तथा देव कुलिकाओंके शिलालेखकी नकल देकर बावन जिनालयों को एवं मूलनायक प्रतिमाको दिगम्बरी सिद्ध किया है गिरनार जीके बिम्ब (सहस्रकूट चैत्यालय) को उसके शिलालेख की नकल देकर दिगम्बरीय साबित किया है पृ०१७ पर लेखक ने मरुदेवी वाले हाथी के लेख से इस हाथी को दिगम्बरी सिद्ध किया है।

ध्वजादंड प्रकरण को लेखक ने १५ पृष्ठोंमें संक्षेप से अच्छा लिखा है नागौरी जी को अनुचितः असत्य बातों का अच्छा उत्तर दिया है।

परवाना प्रकरण विद्वान लेखक ने २२ पृष्ठों में अच्छी खोज के साथ लिखा है। नागौरी जी ने अकबर बादशाह के जाली फरमानों की तरह मेवाड़ राज्य की ओर से प्राप्त कुछ बनावटी परवानों का उल्लेख अपनी पुस्तक में किया था उन परवानों को एक तो उस जमाने की प्रचलित भाषा के आधार पर बनावटी ठहराया है तथा नागौरी ने उन परवानों में जो मिती-संवत् लिखे हैं उनमें गणितके असत्य ढंग

सम्पादकीय टिप्पणियां.

हर्ष—कुछदिन पहले इन्दौर की केबीनेट ने एक कानून बनाया था जिसके अनुसार दिगम्बर जैन मुनियों के स्वतंत्र विहार पर रुकावट आती है यह एक ऐसा विषय था जिससे कि दिगम्बर जैन समाज को असीम दुःख हुआ। इसी कारण इंदौर में जो श्रीमान रावराजा सर सेठ हुकमचन्द जी साहब की रत्नजयंती बहुत धूमधाम से होने वाली थी वह रोक दीगई तथा प्रायः सभी स्थानों से इन्दौर महाराज की सेवा में उक्त कानून को रद्द करदेने के लिये तार, पत्र, मैमोरियल आदि भेजे गये। किन्तु कुछ खास प्रयोजन सिद्ध न हुआ।

गत ६ जनवरी को श्रीमान पं० राजेन्द्र कुमार जी न्यायतीर्थ महामन्त्री शास्त्रार्थ संघ इंदौर, इसी कार्य के लिये गये थे और वहां पहुंच कर आप प्राइम मिनिस्टर श्रीमान एस० एम० बाफना महोदय से मिले और उनसे पर्याप्त समय तक बातचीत करते रहे। फलस्वरूप बाफना महोदय ने राजेन्द्रकुमार जी को कानून का संतोष जनक परिवर्तन करने का आश्वासन दिया। जिसका विवरण जैन दर्शन के १३ वें अंक में प्रकाशित होचुका है।

तदनुसार पाठक महानुभाव हर्ष के साथ पढेंगे कि इंदौर स्टेट का कानून दि० जैन साधुओं पर से हटा लिया गया है। समाचार पाते ही इंदौर दि० जैन समाज ने बहुत हर्ष मनाया।

इसके लिये श्रीमान इन्दौर नरेश तथा इन्दौर राज्य के प्रधान मंत्री श्रीमान बाफना महोदय धन्यवाद के पात्र हैं।

अपील—धुलेव (उदयपुर) में श्री ऋषभदेव (केशरियानाथ) का जो प्राचीन ऐतिहासिक दि० मंदिर है। जिसपर धार्मिक अधिकार सुरक्षित रखने के लिये ३—४ नवयुवकों के साथ श्रीमान पं० गिरधारीलाल जी ने बलिदान दिया था किन्तु दि० जैन समाज को सफलता प्राप्त नहीं हुई थी कि हमारे सौभाग्य से मेवाड़ राज्य के प्राइममिनिस्टर श्रीमान सर सुखदेवप्रसादजी का आगमन हुआ आपने दिगम्बर समाज के साथ होने वाले अन्याय को अनुभव किया और उक्त मंदिर की प्रबन्धकारिणी कमेटी में श्वेताम्बर सभासदों के समान चार सभासद दि० समाजके भी नियत किये। तथा-ध्वजादंड किस संप्रदाय की विधि से चढ़ना चाहिये इसके लिये कमीशन नियत कर दिया।

उसके सामने दिगम्बर श्वेताम्बर गवाहों की गवाही हुई है जिसके लिये प्रसिद्ध वैरिस्टर-वकील रखने पड़े उनको फीस में तथा अन्य और सामग्री जुटाने में पर्याप्त खर्च हुआ तथा अभी और होगा। अन्दाजन पचास हजार रुपये इस न्याय युद्ध में व्यय हो जावेंगे। दि० जैन समाज को समय देखकर इस समय इस आवश्यकता की पूर्ति में तनक भी प्रमाद नहीं करना चाहिये अन्यथा हानि पहुँच सकती है। सहायता श्रीमान राय बहादुर सेठ भागचन्द जी सोनी अजमेर के पास भेजनी चाहिये।

संपादक

(३१ वें पेज का शेषांश)

से अपना स्वार्थ सिद्ध किया गया है। यह पुस्तक प्रत्येक पुस्तकालय में रहनी चाहिये। सत्यप्रियता और परिश्रम के लिये लेखक ने जैन समाज को आभारी किया है।

समाचार

जयन्ती—श्री महावीर जयन्ती का उत्सव १६ अप्रैल को यहाँ धूमधाम से मनाया गया। प्रातःकाल समारोह से पूजन हुआ। सायंकाल जलूस निकला और रात को श्री दि० जैन मंदिर में स्थानीय ऐडवोकेट श्रीमान सरदार तेजसिंह जी के सभापतित्व में सभा हुई जिसमें भजन गायनके बाद श्रीयुत घनश्याम दास जी, राजेन्द्रकुमार जी, श्यामतराय जी, जिनदास जी, और सुखानंद जी के भगवान महावीर के पवित्र जीवन पर व्याख्यान हुए। तदनंतर म्युनिसिपल कमेटी के एक्जीक्यूटिव आफीसर श्रीमान चौधरी रोशनलालजी का मार्मिक प्रभावशाली भाषण हुआ उसमें आपने अहिंसा विषय का अच्छा विवेचन करते हुए वीर बनने का उपदेश दिया। उसके बाद श्रीमान पं० अजितकुमारजी शास्त्री का व्याख्यान हुआ आपने ऐतिहासिक उदाहरणों से प्राचीन भारतीय सभ्यता, जैन वीरों की वीरता को बतलाते हुए अहिंसा का विशद विवेचन तथा भगवान महावीर की जीवनी का सारांश बतलाया अंत में सभापति जीने अपने संक्षिप्त भाषण में अहिंसा को धार्मिक नियमों में यथार्थता बतलाते हुए जैनधर्म की प्रशंसा की।

मंत्री—जैन युवक सभा मुलतान

श्री पन्नालाल दिगम्बर जैन विद्यालय फीरोजाबाद का प्रथम अधिवेशन [illegible] (आगरा) के मेले पर श्रीमान [illegible] साहब जी [illegible] के सभापतित्व में चैत्र वदी १० और सं० २८-३-१ शनिवार को बहुत धूमधाम से हुआ। अधिवेशन में फीरोजाबाद, एटा, जलेसर, [illegible], शिकोहाबाद, मैनपुरी, ऐत्मादपुर आदि अनेक स्थानों के श्रीमान धीमान सम्मिलित हुए थे।

विद्यालय की ४ मास की रिपोर्ट सुनाई गई फिर आठ प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास किये गये। तीसरे प्रस्ताव द्वारा २१ व्यक्तियों की प्रबन्धकारिणी कमेटी बनाई गई।

विद्यालय में धर्मशास्त्र, व्याकरण, हिन्दी, गणित महाजनी, अंग्रेजी की शिक्षा का उचित प्रबन्ध है। बाहर के छात्रों से भोजन खर्च सिर्फ ३) मासिक लिया जाता है।

—[illegible] जैन

—निवेदन है कि वैशाखी, मुहर्रम और महावीर जयंती आदि छुट्टियां होने के कारण जैनदर्शन ठीक समय पर न निकल सका, पाठक क्षमा करें। आगामी अंक ठीक समय पर प्रकाशित होगा।

—मैनेजर

—ता० ४ तथा पांच अप्रैल १९३५ को भारतवर्षीय दि० जैन महिला परिषद् का बीसवां अधिवेशन सोलापुरमें श्रीमती साहित्य सूरि विदुषी रत्न ब्र० पं० चंदाबाई जी आरा के सभापतित्वमें बड़ी सफलताके साथ मनाया गया। लगभग दो हजार महिलाएं उपस्थित हुई थीं। जिसमें अनेक स्थानों की प्रतिष्ठित महिलाएं थीं। प्रथम ही श्राविकाश्रम शोलापुर की छात्राओंने मंगलाचरण किया, पश्चात् स्वागताध्यक्षा श्रीमती ब्र० राजूबाई जी का भाषण होने के पश्चात् सभा प्रमुखा का व्याख्यान हुआ जिससे महिलाओं में बड़ी जागृति उत्पन्न हुई तथा गत वर्ष की रिपोर्ट सुनाई गई। इसी प्रकार दूसरी बैठक में [illegible] प्रस्ताव पास हुए। —[illegible] जैन

REGD. N. L. 3459.

अजितकुमार जैन ने "अकलंकप्रिन्टिङ्ग प्रेस, मुलतान में छापकर प्रकाशित किया।

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुख-पत्र

वर्ष २ | अंक २०

जैनदर्शन

१ मई- १९३५ ई० | वैशाख वदी १४ बुधवार

धन्यवाद

मुज़फ्फरनगर निवासी श्रीमान ला० धार्मसिंह बालचन्द्र जी ने विवाह के समय जैनदर्शनको सहायतार्थ पांच रुपये प्रदान किये हैं एतदर्थ आपको धन्यवाद है।

शोक

श्रीमान पू० ब्रह्मचारी गेंदालाल जी का कोटा में स्वर्गवास हो गया है। आप एक अच्छे निःस्पृह चुपचाप काम करने वाले महानुभाव थे राजपूताने में आपके द्वारा धार्मिक प्रचार होता था। आपके आत्मा को शान्तिलाभ हो ऐसी भावना है।

दंगा

मुलतान की गर्मी प्रसिद्ध है साथ ही इधर के मनुष्यों का चित्त भी गर्म होता है इसी गर्मी के कारण यहाँ हिन्दू मुसलमानों के साम्प्रदायिक दंगे भी बहुत जल्दी हो जाया करते हैं किन्तु वे होते गर्मी के दिनों में ही हैं। अभी २४ अप्रेल को एक वीरभान नामक हिन्दू युवक निजी द्वेष से एक सुनसान गली में ४—५ मुसलमानों ने छुरे से मार दिया उसके दो दिन बाद एक ४ वर्ष का हिन्दू बच्चा रात को ३—४ बजे गला घोंट कर मार दिया। दोनों घटनाओं से हिन्दू युवकों को बहुत जोश आया किन्तु हिन्दू नेताओं तथा अधिकारियों के समझाने से वे शान्त रहे अतः खून खराबी बच गई। ५ कातिल पकड़े गये हैं। ४—५ दिनतक दूकान, प्रेस, कारखानों आदि की पूर्ण हड़ताल रही है।

—अजितकुमार

सम्पादक—

पं० चैनसुखदास जैन न्यायतीर्थ, जयपुर

पं० अजितकुमार शास्त्री मुलतान, पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री बनारस

वार्षिक ३) | एक प्रति ≥)

समाचार

उपयोगी प्रस्ताव-अभी सोलापुर में होने वाले शास्त्री परिषद् के अधिवेशन में तीसरा प्रस्ताव पास हुआ है कि पं० शंभुनाथजी त्रिपाठीने जैनेन्द्रव्याकरण सिद्धान्त कौमदी के ढग पर लिखा है उसको विद्वानों से जांच करा कर परीक्षा क्रम में रखा जाय और त्रिपाठी जी को १०१) भेंट किया जाय।

श्रीमान रा० ब० सेठ भागचन्द जी सोनी M. L. A. ला० प्यारेलाल जी, पी० डी० रामचन्द्र जी प्रभृति नेताओंके उद्योग से जैनियोंकी दो सभायें दिल्ली में हुई जिनमें निश्चय हुआ कि संसार के शासकों के पास धर्म का महत्व समझाने के लिये प्रतिभाशाली पुरुषों का डेपूटेशन ले जाने का प्रबन्ध किया जाय इस कार्य का श्री गणेश सम्राट की सिल्वर जुबली के अवसर पर लन्दन डेपूटेशन भेज कर किया जाय तदनुसार पत्र व्यवहार और कार्य प्रारंभ होगया है। उत्साही सज्जनों को श्रीयुत सेठ गुलाबचन्द गोधा जौहरी, कन्नाट प्लेस, नई दिल्ली से पत्र व्यवहार करना चाहिये।

शेखूपुरा—पञ्जाब युनीवर्सिटी का एक एम० ए० पास २ साल तक बेकार रहने के बाद अब कपड़ धोने का काम करने लगा है। वह बहुत सस्ते कपडे धोता है। लोगों को उससे बड़ी सहानुभूति है।

(जापान)—साम्राज्यान्तर्गत फार्मोसाद्वीप में २१ अप्रैल को अत्यन्त भयंकर भूकम्प आने के समाचार आये हैं जिसमें २७११ नर-नारियों के मरने ११३८८ के घायल होने की खबर है। इस द्वीप के दो प्रान्त तबाह हो गये और चार बड़े नगर उजड़ गये।

सोना आज कल कितना मंहगा हो रहा है, यह बताने की आवश्यकता नहीं है। उसका एक विशेष कारण यह है कि कोई२देश बुरी तरह सोना दबाकर बैठे गये हैं। कौन देश कितने पौंड सोना दबाये बैठा है इसका हिसाब नीचे देखिये।

अमेरिका	१, ६२, ८५, ००, ०००
फ्राँस	१, १०, ०१, ८७, ५००
ब्रिटेन	३१, ६८, ०२, ०००
स्विटज़रलेण्ड	१२, ६२, २३, २००
हालेण्ड	११, ५८, ४५, ०००
बेलजियम	११, ६१, ४५, ०००
जर्मनी	६, ३६, ४३, ०००

रेवरेन्ड एच० आर० ले० मेसूरी ४ वर्ष तक बिलकुल नहीं सोये। आपने प्रेस प्रतिनिधि से कहा है कि "जब मैं सिपाही था तो सब से आगे की कतार में था। और उसी समय गोले के धक्के से मुझे अनिद्रा रोग हो गया था। मैं चार वर्ष तक तो बिलकुल ही नहीं सोया। ईश्वरने मुझे ठीक कर दिया

स्वयं जुड़ने वाली रबड़।

अमरीका के एक विज्ञान वेत्ता ने एक ऐसा रबड़ तैयार किया है जो खुद बखुद जुड़ जाता है। इस रबड़ के बने हुए टयूब व टायर आदि जब फटते हैं तो उनके अन्दर से एक ऐसा लसदार पदार्थ निकलता है कि वह उस रबड़ को खुद बखुद जोड़ देता है।

इंग्लैंड में तलाकों की संख्या बुरी तरह बढ़ रही है। एक ही वर्ष में १६७००० विवाहित स्त्री-पुरुषों ने तलाकों के लिये अदालतों के द्वार खट-खटाये और इनमें से ३५००० मामलों में तो स्त्रियों को पुरुषों द्वारा गुजारा मिलने के भी हुकम हुए।

अकलंकदेवाय नमः

श्री जैनदर्शनमिति प्रथितोऽप्रशिमभर्माभवन्निखिलदर्शनपक्षदोषः।
स्याद्वादभानुकलितो बुधचक्रवन्द्यो भिन्द्यात्तमो विमतिविधाय भूयात्

वर्ष २ | श्री वैशाख वदी १४—बुधवार श्री वीर सं० २४६१ | अङ्क १६

अनासक्ति

कृति को जीवन लक्ष्य बनाना
फल की आशा से हट जाना (१)
परिभाषा है अनासक्ति की
सदा इसे नर हे ! अपनाना

फल की आशा सदा मनुज की
तन्मयता में बाधक होती (२)
तीव्र लालसा रजो राशि में
यह सुन्दर मणि को खोदेती

यशोलिप्सा स्वर्गासन से
गिरा मनुज को नरक दिखाती (३)
पौद्गल वैभव की तृष्णा भी
इस मानव को पशु बनाती

इसी लिये ऋषि मुनि योगीश्वर
अनासक्ति का तत्त्व मनोहर (४)
दिखा विश्वको शान्ति सुधा का
पान कराते क्लेश हलाहर

जो मानव अनुभावन करते
विषयवासना के वश होकर (५)
वे दरिद्र बन दुख उठाते
फिरते ज्ञान ज्योति को खोकर

उनका अन्तस्तल तृष्णा के
विपुल मैल में आवृत होता (६)
नर तन पाकर भी ईश्वर का
भेद खेदमय दूर न होता

मानव जीवन में मानव यह
ईश्वर का प्यारा होजाता (७)
धीरे धीरे यह ईश्वर बन
जनसमाजका क्लेश मिटाता

यही तीर्थङ्कर कहलाता
औ अवतार नाम यह पाता (८)
सच है अनासक्ति को पाकर
नर ही नारायण बन जाता

—चैनसुखदास

तक्र का शास्त्रीय उपयोग ।

(ले०—श्री वासुदेव सिद्धनाथ मेहता आयुर्वेदाचार्य)

तक्र (मट्ठा) हमारे नित्य के भोज्य पदार्थों में से है। भारतवर्ष में सर्वत्र हिन्दू जाति में भोजन के प्रथम वा अन्त में अवश्य इसका सेवन किया जाता है। महाराष्ट्र प्रान्त तथा गुजरात में तो भोजन के बाद चावल तथा तक्र अवश्य नियमित खाया जाता है। परंतु इसके वास्तविक गुणोंसे कम लोग परिचित रहते है। वे केवल स्वाद की दृष्टि से ही उसका प्रयोग करते है। कितने ही मनुष्य कहा करते हैं कि हमको तक्र सर्दी करता है। परंतु वास्तव में तक्र न गरम है न ठंडा। तक्र तीनों दोषों (वायु, पित्त, कफ) को शांत करता है, केवल कृति एवं उपयोग का भेद है।

तक्र के प्रकार एवं कृति

१. घोल—जो दही का तोड़ न निकाल कर बिना जल मिलाये ही दही को मथने से तैयार होता है उसको घोल कहते हैं—इसमें शक्कर मिलाने से श्रीखंड तैयार होता है।

२. मथित मक्खन निकाल कर बिना जल मिलाये यह तैयार होता है।

३. तक्र—दही में चतुर्थांश जल मिला कर मथ कर मक्खन निकालने से जो तैयार होता है उसे तक्र, छाछ, मट्ठा कहते हैं।

४. उदश्वित—दहीके बराबर जल मिलाकर मथा हुवा उदश्वित कहलाता है।

घोल—वातपित्त शामक है।

मथित कफपित्त—शामक है।

तक्र—त्रिदोष—शामक है।

दही को अच्छी तरह जमाकर छः घन्टे के बाद उस में चतुर्थांश शीतल जल मिला कर हिलाना चाहिये। और फिर अच्छी तरह से मथ कर नवनीत निकाल ले। यह तक्र उत्तम होता है। यह अतिशय रुचिकर, पाचन में सरल, मल मूत्र शोधक, स्वयं पाचक होने से पाचन में सहायक तथा अतिसार (डायरीया), विसूचिका (कॉलरा), संग्रहणी (स्प्रू), अर्श (पाइल्स), नलाश्रितवायु, मलावरोध, उदरशूल, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, उदर रोग, गुल्म (ट्यूमर) में अत्यंत हितकारी है। केवल इन विकारों में ज्वर का अनुबन्ध न होना चाहिये। यदि अल्प किंवा जीर्ण ज्वर हो तो उसमें इसका उपयोग कोई हानि नहीं पहुंचाता।

तक्र के शास्त्रीय गुण—

तक्रं लघुकषायाम्लं दीपनं कफवातजित्।
शोथोदरार्शो ग्रहणीदोषमूत्रग्रहारुचीः ।
प्लीहगुल्मघृतव्यापद्गरपाण्ड्वामयान् जयेत् ।
(अष्टाङ्गहृदयसूत्र)

अर्थात् तक्र लघु, कषाय, खट्टा, अग्नि—दीपन, कफवातनाशक, शोथ (वरम), उदर रोग, अर्श, ग्रहणीरोग, मूत्रग्रह, अरुचि, प्लीहा गुल्म (गोला), घृत व्यापद् विषदोष पाण्डुरोग आदि का नाशक है।

गो-महिष—अजा—तक्र—भेद

गो-तक्र—अग्निदीपक, बुद्धिवर्धक, त्रिदोषनाशक,

गुल्म, अर्श, अतिसार, प्लीहा, संग्रहणी, में गौ-तक्र अत्यंत हितकारी है

महिष-तक्र—कफकारक, शोथोत्पादक है।

अजा-तक्र स्निग्ध, हलका, त्रिदोषशामक होने से शोथ, गुल्म, ग्रहणी और अर्श का नाशक है :

रोगानुसार तक्र का प्रयोग

वातविकार में तक्र के साथ अम्ल तथा सैंधव मिलाकर सेवन करना चाहिये।

पित्तविकारमें मधुर तथा शर्करा युक्त सेवन करना चाहिये।

कफविकार में—नवनीत मिलाकर तक्र में सोंठ, काली मिर्च पीपल, सैंधव, अजवायन मिलाकर सेवन करना चाहिये।

पाण्डुरोगमें—चित्रक चूर्ण मिलाकर सेवन करना चाहिये।

नवनीत युक्त तक्र का दोष

नवनीत तक्रभारी, धातुवर्धक, श्लेष्मवर्द्धक और पाचन में गरिष्ठ होता है। जिस तक्र का नवनीत निकला होता है वह अत्यन्त लघु, अग्निदीपक और पथ्यकारक है। अनुष्ण तक्र कोष्ठस्थ श्लेष्मा को शांत करता है परन्तु कंठस्थ वायु को बढ़ाता है अतः श्वास कास में तक्र देना हो तो गर्म किया हुवा तक्र लाभ कारी होता है।

तक्र किन किन रोगों में हितकारी है।

शैत्यविकार, अग्निमांद्य, वात विकार, अरुचि, स्रोतरोध इन रोगों में तक्र अमृत तुल्य लाभकारी है। विषदोष, वमन, लाला स्राव, एकाहिक विषम ज्वर, पाण्डु, मेद, ग्रहणी,अर्श, मूत्रकृच्छ मूलाघात, अश्मरी, कोष्ठगतवातज क्षुधावर्द्धक, प्राण को हितकारी, रक्तमांस बढ़ाने वाला, कफ वात नाशक है। इस प्रकार तक्र आठ गुणों से युक्त है।

किन २ रोगों में तक्र हितकारी नहीं है

गर्मियों में, क्षत में, व्रणरोग में, दौर्बल्यता के विकार में ज्वर, मूर्च्छा, मदात्यय, भ्रमदाह, रक्तपित्त एवं उष्ण रोगों में हितकारी नहीं।

उदर रोग में तक्र की योजना

१ वातोदर में—पीपल सैंधव नमक युक्त तक्र पीना चाहिए।

२ पित्तोदर में—शर्करा काली मिर्च डालकर पीना चाहिये।

३ कफोदर में—त्रिकटुक चूर्ण मिश्रित-तक्र सेवन करना चाहिये।

४ सन्निपातोदर में सोंठ, मिर्च, पीपल मिला कर सेवन करना चाहिये।

५ प्लीहोदर में— अजवायन, मधुयुक्त सेवन करना चाहिये।

६ छिद्रोदर में— पीपल तथा मधुयुक्त सेवन करना चाहिये।

७ जलोदर में सोंठ, काली मिर्च, पीपल सैंधव क्षारयुक्त सेवन करना चाहिये।

उपर्युक्त रोगों में यदि तक्र दिया जाय (अन्न जल छोड़कर) तथा पथ्य पूर्वक रहे तो भयंकर से भयं कर उदर रोग एवं अस्थि पिंजर ग्रहणी ग्रस्त रोगी अच्छे होते हैं यहाँतक कि संग्रहणी तथा उदर रोग में पर्पटी प्रयोग में २०-२५ सेर तक तक्र सेवन कराया जाता है और पच जाता है। प्रातःकाल का तक्र शाम तक और शाम का रात को उपयोग में लाना चाहिये।

—माधुरी से उद्धृत

साहित्य के चोर

जैसे अन्य पदार्थों के चोर सदा से होते आये हैं वैसे साहित्य चोरों की सत्ता से भी संसार खाली नहीं रहा है। साहित्य चोरों का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि साहित्य निर्माताओं को जो कीर्ति प्राप्त होती है वह दूसरों के लिये अत्यन्त दुर्लभ है इसी लिये दुनियां की अन्य समस्त वस्तुओं की अपेक्षा साहित्य सबसे अधिक मूल्यवान गिना जाता है। जिनके पास साहित्य का धन है वे अन्य धनियों की अपेक्षा अधिक सुखी और सम्पन्न कहे जाते हैं (इस के समर्थन के लिये रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि वर्तमान युग के महाकवियों के नाम उदाहरण रूपसे उपस्थित किये जा सकते हैं) वे मृत्यु के पश्चात् भी अमर बने रहते हैं। श्री जिनसेनाचार्य, कालिदास और शेक्सपीयर की अमरताका कारण केवल उनका साहित्य निर्माण ही है। जो स्वयं साहित्य निर्माता न होकर भी अमर हुये हैं, उन्हें भी साहित्य ने ही अमरत्व प्रदान किया है। इस तरह साहित्य की उपयोगिता पर विचार करने से ज्ञात होता है कि वह सर्वोत्कृष्ट धन है। अन्य धन इस तुलना में निष्प्रभ और निष्प्राण हो जाते हैं। यदि ऐसे सर्वश्रेष्ठ पदार्थ की चोरी हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है पर यह अवश्य कहना होगा कि साहित्य की चोरी करना अन्य वस्तुओं की चोरी की अपेक्षा अधिक पापजनक और हास्यास्पद है।

पाप की अधिकता संक्लेश और आकुलता की अधिकतासे मापी जाती है। स्वनिर्मित-साहित्य तो प्रत्येक मनुष्य को अतिशय प्यारा होता है यदि कोई उन्हें चुरा ले तो उन्हें बड़ा दुःख होगा। तृण या मिट्टी आदि साधारण वस्तुओं का चोर अधिक सजा का पात्र नहीं होता क्योंकि ये चीजें ज्यादा मूल्य की नहीं हैं, पर रत्न और सुवर्ण आदि बहु मूल्य वस्तुओं के चोर को बड़ी सजा मिल सकती है। बात यह है कि साधारण चीजों की चोरी स्वामी और चोर दोनों ही की आकुलता का कारण कम होती है। इसके सिवाय साहित्य की चोरी से और भी बहुत सी बुराइयों के फैलने की सम्भावना हो सकती है। यही कारण है कि पुराने कवियों ने भी साहित्य चोरों की कड़ी से कड़ी समालोचनायें की है और उनके लिये पापी, चोर, लुटेरे आदि शब्दों का प्रयोग किया है। दशवीं शताब्दी के जैन कवि सोमदेव ने अपने यशस्तिलकचम्पू में लिखा है कि--

> कृत्वाकृती पूर्वकृता पुरस्तात्,
> प्रत्यादरेणा पुनरीक्षमाणः ।
> तथैव जल्पेदथयोन्यथा वा,
> स काव्यचोरोस्तु स पातकी च ॥

अर्थात जो पूर्व कर्ताओं की कृतिओंको सामने रख कर उन्हे अत्यन्त आदरपूर्वक देखता हुआ यदि वैसे ही अथवा अन्य प्रकार से उनकी नकल कर नवीन रचना कर डाले तो काव्य चोर अथवा पापी है। दूसरे की कृतियों को अपनी कह देना अत्यन्त निर्लज्जता और धृष्टता का काम है। चोरी कभी छिपी नहीं रहती वह कभी न कभी अवश्य प्रकट होती है। इस युग में नहीं तो किसी दूसरे युग में प्रकट होगी और इस क्षेत्र में नहीं तो किसी अन्य क्षेत्र में उसका भंडाफोड़ हुए बिना न रहेगा। अत्यधिक योग्य वस्तुओं को अयोग्यों के हाथ में देख-

कर किसे सन्देह नहीं होता। इसी सम्बन्ध में एक दूसरे कवि ने भी कहा है कि:—

परस्य काव्यं स्वमिति ब्रुवाणो
विज्ञायते सूरिह काव्यचौरः।
विलोक्य माणिक्यमयोग्यहस्ते,
प्रत्येति को नाम यदेतदस्य ॥

अर्थात् जो दूसरों के काव्य को अपना बतला देता है उसे विद्वान लोग काव्य चोर कहते हैं। ठीक ही है अयोग्य आदमी के हाथ में हीरे को देख कर कौन आदमी इस बात पर विश्वास कर सकता है कि यह इस का है।

यह सब इस बात के प्रमाण हैं कि प्राचीन काल में भी साहित्य की चोरियां होती थीं और ऐसे चोरों को बहुत बुरी निगाह से देखा जाता था। यह साहित्य चोर अपने इस तरह के दुष्कृत्यों द्वारा केवल अपने आप को ही बदनाम नहीं करते, किन्तु इस कलंक का भागीदार उन्हें भी होना पड़ता है जिनके साथ इनका किसी न किसी रूप में संसर्ग हो जाता है। दुःख है कि "जैनदर्शन" में भी इस तरह एक चोरी का लेख प्रकाशित होगया।

गत द्वितीयवर्ष के 'जैनदर्शन' के पन्द्रहवें अङ्क में 'आचरण की सभ्यता' नामक एक लेख किसी 'नरेन्द्र' उपनामधारी लेखक का प्रकाशित हुआ है। इस लेख के सम्बन्ध में हमें 'लश्कर' के भाई मानकचन्द जी जैन की ओर से जो पत्र प्राप्त हुआ है। उससे मालूम हुआ कि लेखक नरेन्द्र ने यह लेख सर्दार पूर्णसिंह के 'आचरण की सभ्यता' नामक निबन्ध से कुछ फेर फार के साथ चुराकर अपने नामसे जैनदर्शन में प्रकाशित करवाया है। यह पत्र पढ़ कर हमें बहुत दुःख हुआ इस सम्बन्ध में वास्तविकता को जानने के लिये जब उक्त पुस्तक को पढ़ागया तो ज्ञात हुआ कि भाई मानकचन्द जी का लिखना बिलकुल ठीक था, आप की इस कृपा के लिये हम कृतज्ञ हैं और इन 'नरेन्द्र' जी को तो क्या कहा जाय। इस तरह दूसरे की कृतियों को चुराकर प्रख्यात बनने की अपेक्षा तो चुपचाप बैठे रहना ही अच्छा है। पर आश्चर्य है कि बहुत से लोग इस निम्नलिखित श्लोक द्वारा प्रदर्शित पथ पर चलना ही अधिक श्रेयस्कर समझते हैं।

घटं छिन्द्यात्पटं भिन्द्यात्कुर्याद्रासभरोहणम्।
येन केन प्रकारेण प्रसिद्धः पुरुषो भवेत् ॥

आशा है हमारी इन पंक्तियों से नरेन्द्र और उनके समान अन्य अपने को विख्यात बनाने की लालसा रखने वाले लेखक कुछ न कुछ शिक्षा अवश्य ग्रहण करेंगे।

—चैनसुखदास

—❋—

नम्र निवेदन

जिन ग्राहक महानुभावों का वार्षिक चन्दा समाप्त हो गया है वे शीघ्र ही अपना वार्षिक मूल्य मनीआर्डर द्वारा भेजने की कृपा करें। अन्यथा आगामी अंक उनकी सेवा में वी० पी० द्वारा भेजा जायगा।

स्वामी शान्तानंद जी और जैन सिद्धान्त

आर्यसमाजमें कुछ ऐसे विद्वानोंका बाहुल्य है जो कि किसी बात की तह तक पहुँचे बिना, किसी दार्शनिक विषय का तथ्य बिना समझे उसकी समालोचना के लिये उतावले हो उठते हैं इसी कारण वे साधारण दार्शनिक विषयों में भी जहां स्वयं प्रवेश नहीं कर पाते वहीं जनता को भी पदार्थनिर्णय से दूर रखते हैं। ऐसे महाशयों में से नगीना (गुड़गांव) निवासी एक स्वामी शान्तानन्द जी सन्यासी भी हैं।

आपने अभी 'जैन सिद्धान्त की समालोचना' नाम की पुस्तक लिखी है जिस के भीतरी पृष्ठ पर मूल्य नाम पैसे तथा बाहरी प्रथम पृष्ठ पर दो आने छपे हुए हैं। स्वामी जी ने इस में श्रीमान पं० राजेन्द्र कुमार जी न्यायतीर्थ लिखित 'जैनधर्म का सिद्धान्त' शीर्षक पैम्फलेट तथा हमारे लिखे हुए 'आर्य समाज के एक सौ प्रश्नों का उत्तर' नामक ट्रैक्ट पर अपनी लेखनी की आजमाइश की है किसी भी दृष्टिसे सही शान्तानंद जीने जैन धर्मका स्वाध्याय किया इसकारण आप को धन्यवाद है।

स्वामी जी ने सबसे पहले जीव का रूप बतलाने के विषय में हमारे तथा पं० राजेन्द्रकुमार जी के लिखित वाक्यों में परस्पर विरोध दिखलाने का प्रयास किया है आप लिखते है कि—

पंडित राजेन्द्रकुमार जी जैन धर्म के दूसरे सिद्धान्त को इस प्रकार वर्णन करते हैं कि

स्वभाव की अपेक्षा सर्व जीव समान और शुद्ध है परन्तु अनादि काल के कर्मरूप पुद्गलों के सम्बन्ध से अशुद्ध हो रहे हैं। जैसे कि सोना खान में से मिट्टी से मिला हुआ निकलता है। परन्तु पं० अजितकुमार जी अपने उपरोक्त ट्रैक्ट में श्रीमान स्वा० कर्मानन्द जी महाराज के प्रश्नों का उत्तर देते हुए प्रश्न नं० ३ के उत्तर में सर्व जीवों को समान नहीं मानते। वे कहते हैं कि जीव दो प्रकार के हैं। एक तो भव्य जीव जो तपश्चर्यादि शुभ कर्मों के कारण कभी न कभी इस संसार से मुक्त हो जांयगे। दूसरे अभव्य जीव जो कभी भी इस कर्मबन्धन (संसार) से मुक्त न होंगे चाहे कितने ही शुभ व निष्काम कर्म करें।

अब हमारा पूछना यह है कि इन दोनों परस्पर विरुद्ध बातों मेंसे किस को सत्य माना जावे।"

स्वामी जी यदि दोनों बातों को ध्यान से विचार देखते तो उन्हें कदापि परस्पर विरोध प्रतीत न होता पं० राजेन्द्रकुमार जी के वाक्य में तथा हमारे वाक्य में कोई ऐसा शब्द नहीं है जो एक दूसरे का विरोध करता हो। राजेन्द्रकुमार जी ने यह कहीं नहीं लिखा कि सभी संसारी जीव मुक्त हो जावेंगे या उनमें भव्य, अभव्य भेद नहीं है और न हमने यह कहीं बतलाया है कि संसारी जीव जीवत्व की दृष्टि से समान नहीं हैं। फिर दोनों बातें परस्पर विरुद्ध क्योंकर कही जासकती हैं।

जिस स्त्रीजन्य स्वभाव की दृष्टि से संसार की सभी स्त्रियांसमान हैं, योनि, स्तन, गर्भाशय,रजस्राव आदि बातें समस्त स्त्रियों में पाई जाती हैं अतः समस्त स्त्रियां समान हैं। किन्तु ऐसा होते हुए भी कुछ स्त्रियां ऐसी हैं जिनको पुरुषसमागम होनेपर भी गर्भाधान नहीं होता अतः वे बन्ध्या हैं सन्तान उत्पन्न करने के अयोग्य हैं। और कुछ ऐसी हैं जिन को गर्भाधान हुआ करता है, सन्तान उत्पन्न होती रहती है

इस निगाह से स्त्री जाति के दो भेद हैं। इस प्रकार समान अंगोपांग आदि की अपेक्षा से स्त्री जाति को समान एक रूप बतलाने में तथा गर्भधारण की योग्यता, अयोग्यता की दृष्टि से स्त्रीजाति को दो रूप बतलाने में कुछ भी परस्पर विरुद्ध बात नहीं।

एक ही बीज से उत्पन्न होने के कारण एक ही बेल के हजारों उड़द. जाति की अपेक्षा एक समान किन्तु उनमें कुछ उड़द ऐसे हैं जो गर्म पानी में उबालने पर सीझ कर गल जाते हैं किन्तु उनमें ही कुछ ऐसे कुकरू उड़द हैं जो हजारों मन कोयलों की आग पर भी पानी में उबाले जांय कदापि सीझ कर न गलेंगे। इस सीझने, न सीझने की अपेक्षा से वे ही एक बीज से उत्पन्न हुये समान एक जाति के उड़द दो प्रकार के हैं। इस 'एक प्रकार के. दो प्रकार के' कहने में बुद्धिमान पुरुष परस्पर विरोध नहीं कह सकता।

ठीक ऐसी ही बात जीवों के विषय में है कर्म परदे में छिपे हुये ज्ञान आदि गुण सब जीवों के समान हैं इस कारण सभी संसारी जीव एक समान हैं ऐसा होते हुए भी उनमें से कुछ 'भव्य' नामक जीव तपस्या आदि से किसी न किसी समय मुक्ति प्राप्त कर लेंगे और कुछ अभव्य नामक जीव कुकरू उड़द के समान तपस्या आदि कार्यों से भी मुक्त न हो सकेंगे। इस कहने में परस्पर विरोध की गंध भी नहीं आती।

अतः स्वामी जी ने समझने में गलती की है। पं० राजेन्द्रकुमार जी तथा हमारे लिखे वाक्य में परस्पर विरोध नहीं है।

जीवमात्र का निर्दोष लक्षण (उपयोगोलक्षणम्) तथा जीवों के भव्य, अभव्य रूपभेद (जीवभव्याभव्यत्वानि च) तत्वार्थसूत्र ग्रंथ के दूसरे अध्याय में बतलाये गये हैं। जिसकोकि दिगम्बर श्वेताम्बर दोनों ही प्रामाणिक ग्रंथ मानते हैं।

सर्वज्ञाता तीर्थङ्कर जीवों के भव्यत्व, अभव्यत्व को स्पष्ट जानते हैं और उन्होंने ही इस बात को बतलाया है। जो मुक्ति प्राप्त करसके वह भव्य और जो मुक्त न होसके वह अभव्य है। यही भव्य अभव्य जीवों की पहचान है।

अब स्वामी जी शान्तचित्त से आनन्द के साथ विचार करलें कि प० राजेन्द्र कुमार जी लिखित जैन सिद्धान्त में तथा 'आर्य समाज के एकसौ प्रश्नों का उत्तर' पुस्तक के लेख में परस्पर विरोध है या नहीं ?

स्वामी जी आगे चल कर लिखते हैं कि—

"हमारा तो यह अनुमान है कि इन दोनों ही जैन विद्वानों ने इस सूक्ष्म विषय को वास्तव में जीव क्या पदार्थ है और उसके यथार्थ गुण कर्म स्वभाव और स्वरूप क्या है नहीं समझा।"

स्वामी जी यहां पर और भी अधिक भूले हैं स्वामी जी को पता नहीं कि आध्यात्मिक विषय जैन विद्वानों के समान कोई नहीं समझता जीव, अजीव विषयक जिन सूक्ष्म बातों को स्वामी शान्तानन्द जी बहुत भारी अध्ययन के बाद जान सके होंगे वे सूक्ष्म बातें जैन विद्यार्थी अपनी प्रारंभिक कक्षा (बालबोध श्रेणी) में पढ़ लेते हैं फिर पं० राजेन्द्र-कुमार जी सरीखे विद्वान की बात तो दूर रही।

इसके आगे आपने लिखा है कि—

"अजितकुमारजी श्री स्वा० कर्मानन्द जी के प्रश्न नं० ३२ के उत्तर में लिखते हैं कि "संसारी जीव का ज्ञान रागद्वेषादि के कारण मिथ्या ज्ञान होता है।" इस में तो संदेह ही नहीं कि दोनों ही जैन विद्वान

संसारी जीव हैं बस दोनों ही का ज्ञान पं० अजित-कुमार जी के लिये प्रमाण मिथ्याज्ञान है जिससे जीव के स्वरूप को ठीक ठीक नहीं समझे। आदि।"

स्वामी जी को यदि सचमुच जैन सिद्धान्त की समालोचना का प्रेम है और वे अपने इस काम में कुछ सफल होना चाहते हैं तो वे हमारी इस शुभ सम्मति को अवश्य स्वीकार करें कि इस काम में उतावली से काम न लेकर पहले किसी जैन विद्वान से कुछ दिन जैन सिद्धान्त का अध्ययन कर लें उसके बाद इस काम में हाथ डालें।

आप को अभी "मिथ्या ज्ञानके कारण रागद्वेषादि को समझने की आवश्यकता है जिससे कि जानने में आप गलती न करें। देखिये मिथ्याज्ञान का प्रधान कारण राग द्वेष के साथ साथ 'मिथ्यात्व' (विपरीत श्रद्धान) है जिस को कि स्वामी जी 'आदि' विशेषण से समझें। यदि केवल राग द्वेष हो मिथ्यात्व न हो तो आध्यात्मिक ज्ञान सच्चाज्ञान होता है मिथ्याज्ञान नहीं होता। यह जैन सिद्धान्त की एक साधारण बात है जिस को कि अभी तक स्वामी शान्तानन्द जी नहीं समझ पाये हैं।

जिन जैन विद्वानों के विषय में आपको मिथ्या-ज्ञानी होने का भ्रम है वे मिथ्याज्ञानी इसलिये नहीं कि उनको मिथ्यात्व (विपरीत श्रद्धान) नहीं है। उनको सच्चा ज्ञान है। अतः आपका अनुमान असत्य है हां यह अनुमान आप अपने ऊपर लगाते तो अवश्य ही ठीक बैठता।

इसी तरह जैन ग्रंथ रचयिता ऋषि भी सम्यक् ज्ञानी थे अतः उनके बने हुए ग्रंथ सर्वज्ञ उपदेशानुसार सत्य हैं। इस लिये जैन सिद्धान्त उसी प्रकार वज्र-भित्ति पर अचल खड़ा हुआ है। कसर केवल समझने की है।

क्रमशः

—अजितकुमार जैन

विरोध परिहार

(ले०—पं० राजेन्द्रकुमार जैन न्यायतीर्थ)

विरोध ३— जिस प्रकार काल की अनन्तता जानने के लिये सब समयों को जानने की जरूरत नहीं उसी प्रकार क्षेत्र की अनन्तता जानने के लिये सब जगह को जानने की आवश्यकता नहीं है। दोनों की अनन्तता अनुमान से जान सकते हैं। उत्तर पर्याय की उत्पत्ति के बिना पूर्व पर्याय का नाश नहीं होसकता इसलिये यह पर्याय परम्परा अनन्त है यही काल की अनन्तता है। इसी प्रकार दूसरे प्रदेश के प्रारम्भ हुये बिना पूर्व प्रदेश का अन्त नहीं होसकता। अर्थात् एक प्रदेश के बाद दूसरा प्रदेश अवश्य आता है, भले ही उसमें कोई वस्तु हो या न हो इसलिए समय परम्परा के समान प्रदेश परम्परा भी अनन्त है"।

परिहार ३- पूर्व पर्याय के नाश के साथ उत्तर पर्याय के उत्पाद का अविनाभावी सम्बन्ध है। ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं जिसकी पूर्व पर्याय के नाश होने पर भी जिसकी उत्तर पर्याय की उत्पत्ति न होती हो। यदि यों कहाजाय कि पूर्व पर्याय का नाश ही उत्तर पर्याय की उत्पत्ति है या उत्तर पर्याय की उत्पत्ति ही पूर्व पर्याय का नाश है तब भी कोई अत्युक्ति न होगी। अतः पूर्व पर्याय के नाश से उत्तर पर्याय के उत्पाद का और फिर उसमें कालकी अनन्तता का तो अनुमान किया जासकता है किन्तु यह बात क्षेत्र की अनन्तता के सम्बन्ध में घटित नहीं होती। क्षेत्र के प्रदेशों में इसबात का समर्थन अनुमान से नहीं होता। जितने भी संख्यात प्रदेशी और असंख्यात प्रदेशी पदार्थ हैं उन सबका अभाव है इनमें एक प्रदेश के अन्त होने पर भी दूसरे प्रदेश का अस्तित्व नहीं मिलता। दृष्टान्त के लिये यों समझियेगा कि एकसौ प्रदेशी पदार्थ है। इसमें सौ तक तो एक के बाद दूसरा प्रदेश मिलेगा। किन्तु उसके बाद यह नियम उसमें लागू नहीं होसकता। यही बात समान संख्यात प्रदेशी और असंख्यात प्रदेशी पदार्थों के मध्य की है। किन्तु जब इनमें भी अन्तिम सीमा पर आजाते हैं तब यह नियम भी पलायते होजाता है। जगत में संख्यात प्रदेशी या असंख्यात प्रदेशी पदार्थों का अभाव नहीं है किन्तु यों कहना चाहिये कि अधिकतर पदार्थ इसी प्रकार के हैं।

एक पर्याय के नाश के अनन्तर दूसरी पर्याय के उत्पाद की तरह यदि एक प्रदेश के बाद दूसरे प्रदेश का होना भी अनिवार्य माना जायगा तबतो यों कहना चाहिये कि जगत के प्रत्येक पदार्थ को अनन्त प्रदेशी मानना पड़ेगा। जिन पदार्थों को हम सीमित देख रहे हैं वे पदार्थ भी फिर सीमित न रह सकेंगे। यहाँ तक कि एक प्रदेशी अणु भी चाहे वह कालका हो या पुद्गल का अनन्त प्रदेशी ही हो जायगा। ये सब बातें अनुभव और युक्ति के प्रतिकूल हैं अतः पर्याय नाश के साथ पर्यायान्तरोत्पाद की तरह प्रदेश के बाद प्रदेशान्तर की व्याप्ति कथमपि स्वीकार नहीं की जा सकती।

यहाँ पर एक यह समाधान भी उपस्थित किया जा

सकता है और वह यह है कि हमारा प्रदेश के बाद प्रदेशान्तर के अस्तित्व का कथन केवल आकाश के संबन्ध में है अतः अन्य पदार्थों की बातों का प्रस्तुत कथन पर कुछ भी प्रभाव नहीं किन्तु यहाँ पर भी इतना तो विचारना होगा कि आकाश में ही इस नियम का निश्चय किस प्रमाण से होता है। अनुमान के लिए व्याप्ति का निश्चय अनिवार्य है अतः यह अवश्य बतलाना होगा कि प्रदेश के बाद प्रदेशान्तर के अस्तित्व का निर्णय अमुक प्रमाण से किया गया है। यदि अनुमान को इस कोटि में रखा जायगा अर्थात यह कहाजायगा कि इस प्रकार का ज्ञान भी अनुमान से ही होता है तब तो अनवस्था हो जायगी क्योंकि उस अनुमान की व्याप्ति के निर्णय के लिये भी किसी अन्य अनुमान को और उसकी व्याप्ति के निर्णय के लिये किसी अन्य को मानना पड़ेगा।

प्रत्यक्ष को इस कोटि में लाने से तो हमारा ही अभिमत सिद्ध होगा कि किसी भी पदार्थ की अनतता उस के ज्ञान में बाधक नहीं। किन्हीं भी पदार्थों के सम्बन्ध में प्रत्यक्षादिक ज्ञानों के हो जाने के बाद ही विचारात्मक तर्क ज्ञान हुआ करता है तथा प्रस्तुत विषय में इनका सम्बन्ध घटित नहीं होता अतः यहां तर्क को भी स्थान नहीं है।

उपर्युक्त विवेचन के बल पर हम इस बात के कहने के अधिकारी हैं कि दरबारीलाल जी के प्रदेश के बाद प्रदेशान्तर के अस्तित्व के कथन को किसी भी दृष्टि से विचार लो किन्तु अनुमान के साथ उस का सम्बन्ध बिलकुल भी घटित नहीं होता।

आकाश की अनन्तता का ज्ञान होता है यह एक अविवाद की बात है। हमारी तरह दरबारीलाल जी भी इसको स्वीकार करते हैं विचार केवल प्रत्यक्ष और अनुमान का ही था। अनुमान के सम्बन्ध में यह बात घटित नहीं होती जैसाकि हम ऊपर बतला चुके हैं अतः आकाश की अनन्तता का ज्ञान प्रत्यक्ष और आगमगम्य ही स्वीकार किया जा सकता है। अतः स्पष्ट है कि पदार्थों की अनन्तता सर्वज्ञ के अस्तित्व की बाधक नहीं प्रत्युत साधक ही है।

आक्षेप ४—"प्रत्येक पदार्थ किसी न किसी ज्ञान का विषय है यह कहना मिथ्या है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की दृष्टि से विश्व इतना महान है कि उसके आगे ज्ञान की शक्ति समुद्र के आगे बिन्दु बराबर भी नहीं है। यदि हम विश्व के सारे पदार्थों को सब जीवों में बांट दें तो भी एक जीव के हिस्सेमें इतने पदार्थ पड़ेंगे कि उनकी एक समयकी अवस्था वह करोड़ों जन्म में भी न जान सकेगा फिर त्रैकालिक अवस्थाओं का तो कहना ही क्या है। हमारे शरीर में कितने परमाणु हैं यह हम नहीं जान सकते ....इस लिये यह कहना अनुचित है कि प्रत्येक पदार्थ किसी न किसी के ज्ञान का विषय है। पदार्थ का अस्तित्व उसकी अर्थ क्रिया पर निर्भर है वह ज्ञान का विषय न हो तब भी अपना काम करता रहता है। दूसरी बात भी ठीक नहीं है, क्योंकि उसमें समानता और एकता के भेद को भुलाया गया है। सब जीव समान हैं न कि एक. इसलिये एक जीव जितना जान सकता है उतना ही दूसरा भी जान सकता है न कि दोनोंका जोड़"।

परिहार ४—आक्षेपक ने हमारे वक्तव्य पर विशेष ध्यान नहीं दिया, उन्हों ने यदि ऐसा किया होता तो उनको नम्बर एक की बात लिखने की

आवश्यकता ही प्रतीत न होती । हमने केवल इतना ही नहीं लिखा था कि जगत का प्रत्येक पदार्थ किसी न किसी जीव के ज्ञान का विषय है किन्तु साथमें इतना और भी था कि 'हो सकता है'। होना और हो सकना इनमें महान अन्तर है। जो वस्तु अभी अभी किसी के ज्ञानका विषय नहीं है किन्तु फिर भी वह ज्ञान की सीमा से बाहर नहीं जा सकती, ऐसी अनेक वस्तुएं हैं जो एक कालमें किसी के ज्ञान का विषय न होने पर भी कालान्तर में हो जाया करती हैं। यहां ज्ञान की वर्तमान अवस्था का ही विचार नहीं है किन्तु उसकी शक्ति का विचार है अतः ज्ञान का विषय हो सकने वाले पदार्थ भी ज्ञान की सीमा से बाहर नहीं किये जा सकते।

दूसरी बात यह है कि ज्ञान से तात्पर्य यहां ज्ञान मात्र से है चाहे वह प्रत्यक्ष ज्ञान हो या परोक्ष ज्ञान जिसको हम प्रत्यक्षसे जानते हैं वह भी हमारे ज्ञान के भीतर है और वह भी जिसको हम परोक्ष से जानते हैं। हमारा शरीर हमारे प्रत्यक्ष का विषय है तथा हो सकता है। किसीके शरीरका कोई ऐसा भाग नहीं जिसको उसकी समानता रखने वाला न जानसकता हो। किसी भी शरीर के भाग और उपभाग करके उसको भली भांति जाना जा सकता है। शरीर के त्रसरेणु और फिर उनके द्वारा उसके परमाणुओं की संख्या भी अनुमानादि के बाहर की बात नहीं है।

जब परमाणु ही ज्ञान की सीमा के बाहर की बात नहीं है। तब सोचने की बात है कि परमाणुओं की संख्या विशेष ही ज्ञान की सीमा के बाहर किस प्रकार स्वीकार की जासकती है। अतः स्पष्ट है कि आक्षेपक की प्रस्तुत बात से तो यह प्रमाणित नहीं होता कि कोई पदार्थ ऐसा भी है जो ज्ञान की सीमा के बाहर है। इस सम्बन्ध में अब केवल एक ही बात शेष है और वह यह है कि "क्या विश्व इतना महान है कि यदि उसको सम्पूर्ण जीवों में विभाजित कर दिया जाय तो उसके एक जीव के हिस्से को एक जीव करोड़ों जन्म में भी नहीं जान सकता आक्षेपक ने यह वाक्य केवल प्रतिज्ञा के ही रूप में लिखा है उन का कर्तव्य तो यह था कि वह अपनी इस प्रतिज्ञाके सम्बन्धमें प्रमाण भी उपस्थित करते जिस से कि इस की वास्तविकता पर विचार किया जासकता। प्रतिज्ञा वाक्य होने से इस का भी प्रस्तुत विषय पर कोई प्रभाव नहीं है ऐसी परिस्थिति में यह बात स्वीकार करनी ही पड़ती है कि जगत में ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं जो किसी के भी ज्ञान का विषय न हो, या न हो सकता हो।

इसही प्रकार जिसको एक जीव जानता है उस को दूसरा भी जान सकता है इस बात के विवेचन से भी समानता और एकता के भेद को नहीं भुलाया गया है किन्तु उसको सामने रखकर ही परिणाम निकाला गया है। हमारा भी यही मन्तव्य है कि सब जीव समान हैं, न कि एक। किन्तु फिर भी जितना एक जीव जानता है दूसरा जीव भी उतना ही जान सकता है और दोनों का जोड़ भी।

दृष्टान्त के लिये यों समझियेगा कि डा० रमन डा० गणेशप्रसाद और डा० टैगोर आदि अनेक व्यक्ति हैं। ये सब अपने २ विषय में अधिकारी माने जाते हैं। साथ ही साथ एक की विचार शक्ति एवं मानसिक झुकाव भी दूसरे से भिन्न हैं। जहाँ इनमें इस प्रकार की विभिन्नता है वहीं जीवत्व दृष्टि से समानता

भी है। परस्परमें विभिन्नता होने पर भी इस दृष्टिसे (जीवत्व दृष्टि से) जिसको एक जानता है उसको दूसरा भी जान सकता है। अतः तीनों ही प्रतिष्ठित विद्वानों में तीनों ही प्रकार की योग्यता माननी पड़ती है। यह तो दोनों के जोड़ का दृष्टान्त है। इस ही प्रकार सोलह आने, चार चवन्नियों के बराबर हैं और चार चवन्नियाँ आठ दुअन्नियों के। अतः यह कहना पड़ता है कि सोलह आने और आठ दुअन्नियाँ समान हैं, जो मूल्य सोलह आनों का है वही आठ दुअन्नियों का, अतः यह उतने का ही दृष्टान्त समझना चाहिये।

समानता के आधार में निकाले गये परिणाम (Result) में यह विभिन्नता कैसी ? इसका संक्षिप्त उत्तर इतना ही है कि यह सब विवेचन अधिकरण सिद्धान्त न्याय की दृष्टि से है। अधिकरण सिद्धान्त की परिभाषा "यत्सिद्धावन्यप्रकरणसिद्धि : सोऽधिकरणसिद्धान्तः "। अर्थात जिसके सिद्ध होने पर उस से जो अन्य बात सिद्ध होती है वह अधिकरण सिद्धान्त है। जिस प्रकार चवन्नियों वाले दृष्टान्त में सोलह आने और आठ दुअन्नियों को सिद्ध करके फिर उनके मूल्य की समानता सिद्ध की जाती है इस ही प्रकार सम्पूर्ण जीवों में द्रव्य दृष्टि से समानता बतलाकर उन सब में ज्ञान को समान सिद्ध किया जाता है।

जिन पदार्थों में ये दोनों धर्म जिनके सम्बन्ध में निष्कर्ष उपस्थित किया जाता है, एकसे होते हैं वहाँ उतना ही सिद्ध होता है, किन्तु जहाँ इनमें असमानता होती है वहाँ उतना ही नहीं किन्तु उन दोनों के या उनसे ज्यादा के जोड़रूप प्रमाणित होता है।

जिस प्रकार सोलह आने और आठ दुअन्नियों के मूल्य में समानता है उसी प्रकार जगत के सम्पूर्ण जीवों के ज्ञानों में नहीं। इनमें तो असमानता बिलकुल स्पष्ट है। एक विषय के ज्ञान के लिए जिस बात की जरूरत है दूसरे विषय के ज्ञान के लिये उससे भिन्न ही बात की आवश्यकता है। वैयाकरण को यदि एक शक्ति की आवश्यकता है तो दार्शनिक को उससे भिन्न की। यही बात जगत के समस्त प्राणियों के ज्ञान की है अतः अधिकरण सिद्धान्त के आधार से प्रत्येक आत्मा में अखिल संसारवर्ती सम्पूर्ण आत्माओं के ज्ञानों के होने योग्य ही शक्ति माननी पड़ेगी न कि उतने ही ज्ञान होने की। इस ही का नाम आत्मा का 'सर्वज्ञ स्वभाव' है। उपर्युक्त विवेचन से प्रगट है कि हमारा कथन प्रत्येक आत्मा को सर्वज्ञस्वभाव प्रमाणित करने के लिए यथेष्ट है।

आक्षेप ४ "नास्ति अवक्तव्य भंगका स्वरूप एक विद्यार्थी भी समझता है और बीसों बार मैंने भी समझाया है। न यह अप्रसिद्ध है और न कठिन। मैं ने अपने न्याय प्रदीप में सप्त भंगी पर एक अध्याय ही लिखा है फिर भी आक्षेपक का इस विषय में मुझे नासमझ बतलाना साहस ही है। मैं ने यहाँ धोखा भी नहीं दिया है जैन शास्त्रों में सप्त भंगी का जो स्वरूप मिलता है वह विकृत है वह मौलिक भी नहीं है उसका मौलिक और सत्यरूप बतलाने के लिये मैं लेख माला में लिखने वाला हूँ उस ही समय उसका निर्णय होगा"।

परिहार ४–आक्षेपक का अपने इसही कथन में एक जगह तो यह बतलाना कि विवादस्थ भंग का स्वरूप अतिसरल है। आपने अनेक बार विद्यार्थीयों को

पढ़ाया है और अपनी न्याय प्रदीप नामकी पुस्तक में भी लिखा है। आप ही दूसरे स्थानपर लिखते हैं कि "जैन शास्त्रों में सप्त भंगी का जो स्वरूप मिलता है वह विकृत है.........."। आपके इन दोनों वाक्योंका क्या रहस्य है यह विद्वान पाठक भली भांति जान सकेंगे। हमें तो केवल इतना ही लिखना है कि जिस भंग की दृष्टि से आप वस्तु का विवेचन कर रहे थे उस समय उसका स्वरूप भी तो स्पष्ट कर देना था या नीचे नोट कर देना था कि मेरे इस कथन को प्रस्तुत भंग के प्रचलित स्वरूप के अनुसार न समझा जाय किन्तु मैं इसका स्वरूप आगाड़ी चल कर लिखने वाला हूँ उसके अनुसार समझा जाय। ऐसी परिस्थिति में ही आप आक्षेप से दूर हो सकते थे। दूसरी बात यह है कि आपने प्रस्तुत भंगका प्रचलित अर्थ ही विद्यार्थियों को पढ़ाया और अपनी पुस्तक में लिखा है या अपना मनोकल्पित। पहले पक्ष में क्या आत्मवंचना के साथ परवंचना नहीं है। जिसको कल्पित एवं अमौलिक समझना और उस ही को पुस्तक में लिखना और दूसरे विद्यार्थियों को पढ़ाना दूसरे पक्ष में यद्यपि वे विद्यार्थी या उन को आप का अध्यापन हमारे सामने नहीं है किन्तु फिर भी न्याय प्रदीप मौजूद है अत इस के आधार से यह कहा जा सकता है कि आपका कहना मिथ्या है। आपने इस पुस्तक में विवादस्थ भंग का स्वरूप प्रचलित परिभाषा के अनुसार ही लिखा है †। अब रहजाती है इस भंगके स्वरूपकी मौलिकता और अमौलिकता तथा इसकी साधारणताकी बात। इनमेंसे पहली बातके सम्बन्धमें तो यही कह देना पर्याप्त होगा कि अभी तो यह आपका केवल दावा है। जब आप इसके सम्बन्धमें प्रमाण उपस्थित करेंगे तब देखा जायगा। दूसरी बातके सम्बन्धमें बात यह है कि कभी २ साधारण २ बातों के समझने में भूल हो जाया करती हैं हमारी और आपकी तो बात ही क्या है बड़े २ अधिकारी विद्वान भी इस प्रकार की गलतियां कर जाया करते हैं अतः आपके सम्बन्ध में गलती करने की बात या आपको अचम्भे की आवश्यकता नहीं थी। दूर जाने की जरूरत नहीं आपके इसही न्याय प्रदीप में इस प्रकार की त्रुटियों का अभाव नहीं है। दृष्टान्त के रूप में प्रकरणसमहेत्वाभास की बातको ही ले लीजियेगा * आपने इसका अनुमान बाधित में अन्तर्भाव किया है किन्तु आपका ऐसा लिखना नितान्त मिथ्या है। प्रकरणसम को तो हेत्वाभास कहना ही बज्रभूल है। किसी भी दर्शन की पुस्तक में किसी को हेत्वाभास लिख दिया गया है इसही लिये उसको हेत्वाभास स्वीकार नहीं किया जा सकता आखिर यह भी तो देखना चाहिये कि इसमें हेत्वाभासका लक्षण भी घटित होता है या नहीं।

† वस्तु के अनेक धर्मो को हम एक साथ नहीं कह सकते। इसलिये युगपत् स्वपर चतुष्टय की अपेक्षा वस्तु अवक्तव्य है........ लेकिन अन्य दृष्टियों से वक्तव्य भी है इसलिये जब हम अवक्तव्य के साथ किसी रूप से वस्तु की वक्तव्यता भी कहना चाहते हैं तब वक्तव्य रूप तीनों भंग [अस्ति, नास्ति, अस्तिनास्ति] अवक्तव्य के साथ मिल जाते हैं इसलिये अस्ति अवक्तव्य और नास्ति अवक्तव्य, अस्ति नास्ति अवक्तव्य इन तीनों भंगों का प्रयोग होता है। न्याय प्रदीप १३२--३

* न्याय प्रदीप ७०

प्रकरणसम या सत्प्रतिपक्ष में जहां समबल का होना अनिवार्य है वहीं अनुमान बाधित में इसका अभाव। इन दोनों में तो परस्पर में दिन और रात्रि जैसा अन्तर है। प्रकरणसम तो वह समीचीन हेतु है जो वस्तुके वास्तविक रूपको सिद्ध करता है इससे ही तो वस्तु अनेकान्तात्मक सिद्ध होती है। न्यायप्रदीप अन्य भी ऐसी त्रुटियों से खाली नहीं है। प्रकरणवश उनमें से एक का यहां उल्लेख कर दिया है।

उपर्युक्त विवेचन से प्रगट है कि आक्षेपक का समाधान बिलकुल निराधार है और हमारा यह कहना कि उन्होंने विवादस्थ भंग के समझने में भूल की है या जानकर उल्टा लिखा है बिलकुल ठीक है। अपूर्ण
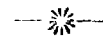
अंगुष्ठ विज्ञान

ले०—मास्टर पाँचूलाल जी काला जयपुर
(पूर्व प्रकाशित से आगे)

काममें टालमटोल करनेवाला अंगूठा

जिस आदमी का अंगूठा ढीला हो पीछे को मुड़ा हो और अंगूठे की जड़ में जन्मपत्री के से खाने हों अर्थात एक जंजीर सी हो तो ऐसा आदमी समय पर काम करने वाला नहीं होगा। वह हमेशा समय को टालने की कोशिश करता रहेगा। कर लेंगे, फिर कर लेंगे, होजायगा इत्यादि विचार ही उस के मस्तिष्क में घूमते रहते हैं और इस प्रकार वह मोका हाथ से निकाल देता है।

दिल और अंगूठे का सम्बन्ध

जिस आदमी का अंगूठा कमजोर हो और दिल की रेखा (उंगलियों के नीचे नीचे जाने वाली रेखा जिसको प्राचीन सामुद्रिक शास्त्रवेत्ता आयु की रेखा कहते हैं) भी कमजोर हो तो वह व्यक्ति हमेशा हर काम में अधरझूल रहता है। समुद्र की लहरों के समान उसके विचार होते हैं ऐसे आदमी के विचार साधारण होते हैं और अन्त में जिधर दिल का झुकाव होता है वही काम वह कर गुजरता है। वह विचार शक्ति से काम नहीं लेता। किन्तु इस के विपरीत यदि अंगूठा मजबूत हो तो हमेशा उस मनुष्यके विचारों की विजय होती है। अंगूठे और दिमाग की रेखा की उत्तमता यह बतलाती है कि वह हमेशा दिल पर विजय पाता रहेगा।

लालची मनुष्य का अंगूठा

लालची मनुष्य का अंगूठा तर्जनी की तरफ अधिक झुका हुआ रहता है। अंगूठे का झुकाव पीछे को नहीं, अन्दर की तरफ होता है। अंगुलियाँ भी अन्दर की तरफ झुकी रहती हैं और दिल तथा दिमाग की रेखा अधिक पास २ होती हैं। ऐसे आदमियों की सूर्य रेखा (जिसको धन रेखा तथा यश रेखा भी कहते हैं) हाथ के किसी भाग से निकल कर अनामिका अंगुली की तरफ जाती है

खराब दिमाग वाले का अंगूठा

जिस मनुष्य का अंगूठा सूरत में भद्दा हो आकार में छोटा हो, तर्जनी अंगुली की सीध से ऊंचा हो, जड़ में ढीला ढाला हो तो ऐसा मनुष्य

दूसरे की राय से फायदा नहीं उठा सकता, लेन देन में कमीना होता है, उसकी ज्ञान शक्ति कम होती है। यदि अंगूठा बिगड़ जाय तो बाकी हाथ में कई प्रकार की खराबियां आजाती हैं। मामूली आदमियों काश्तकारों और छोटे काम करने वालों के अंगूठे प्रायः भद्दे, बेडोल, छोटे और गुणहीन होते हैं।

व्यर्थ व्यय करने वालों का अंगूठा

हाथ को चौड़ा करने पर यदि किसी मनुष्य की अंगुलियों में अन्तराल हो अर्थात सूर्य के सामने हाथ फैलाने पर अंगुलियों के बीच में होकर धूप आती हो तो जान लेना चाहिये कि वह आदमी धन खर्च करने में विचारवान नहीं है। अगुलियों के फैलाने पर यदि अंगूठा अंगुलियों से बहुत दूर होजाय अर्थात तर्जनी और अंगूठे के बीच में ज्यादा फासला होजाय और साथ ही में अंगूठा पीछे को बहुत झुकता हो तो समझना चाहिये कि वह मनुष्य रुपये की कदर नहीं जानता है।

चापलूस मनुष्य का अंगूठा

चापलूस मनुष्य का अंगूठा छोटा, भद्दा और आधार में कमजोर होता है। अंगूठे का पहिला पोरुवा दूसरे से अधिक छोटा और कुछ नोंकीला होता है। यदि भाग्य रेखा (Fate line) चन्द्र पर्वत (अंगूठे के सामने पोंचे (wrist) के पास चिट्टी अंगुली के नीचे का स्थान) से चली हो तो उस व्यक्ति में चापलूसी का माद्दा अधिक होता है।

ऐसा आदमी खुशामद से अपना काम बनाने में होशियार रहता है। परन्तु ठोस, कड़ा और मजबूत अंगूठे वाला मनुष्य चापलूसी करना पसन्द नहीं करता। वह हिम्मत और दलीलों का बादशाह होता है। ऐसा आदमी अपनी अकड़ाई से हानि भी उठा बैठता है।

गहरे विचार वाले का अंगूठा

ठोस, सुन्दर, मजबूत और मुनासिब आकार का अंगूठा विचार और शक्ति का केन्द्र होता है, बड़े बड़े मामलों में उत्तम नतीजा निकाल लेना उसी का काम होता है ऐसे आदमी विचारों में पाताल की खबर लाते हैं—जंग में स्थिर रहते हैं—विद्या के सागर होते हैं अपने विचार और धुन के पक्के होते हैं—वकीलों डाक्टरों हाकिमों कप्तानों, मल्लाओं और खोजियों आदि के अंगूठे इसी तरह के होते हैं इसके साथ सिर की रेखा का उत्तम होना भी जरूरी है।

चौड़ा अंगूठा

चौड़े अंगूठे वाला आदमी क्रोधी होता है और यदि चौड़ाई के साथ छोटापन भी हो तो जिद्दी होगा परन्तु अपनी जिद को अधिक समय तक निभा नहीं सकेगा, क्रोध का उफान जाते ही जिद का भी अन्त हो जायगा ऐसा आदमी अधिक बुद्धिमान नहीं होता।

अंगूठे के बाबत एक पुस्तक में

लिखा है-

१ बिगड़ गया है अंगुष्ठ का पोर पहला
तो राय दीगरान से बह जायगा वह गैला
(छोटा मुड़ा हुआ कमजोर)

गाय दुम नुकीला है अंगुष्ठ तेरा
दूसरों की राय से काम बनता है तेरा
अंगुष्ठ में अति मुड़ाई है
तो दातारी खूब दिखाई है
मोटो अंगूठो खोटो-सुन्दरता जाती रही
वह शियाना स्वभाव है-नर्माई जाती रही

औरों की बात सुनता नहीं-अपनी ही गाता है
अगर अंगुष्ठ के बगलों में-पतलाई पाता है
अंगुष्ठकी चोखाई हाथकी खोटाईको मिटा देता है
अंगुष्ठमें उत्तमता नहीं तो स्वभावमें स्थिरता नहीं
नाखून नन्हा पौर मोटा
तो वह कातिल है खोटा
अंगुष्ठ ढीला ढाला है
गुण में ढीला ढाला है
(परन्तु मायाचारी का भाव अधिक होता है)
मोटा सा अंगुष्ठ वाला है।
कातिल नेचर वाला है।
(नाखून के पास सुपारी जैसा मोटा)
आप करे या न करे पर राय चोखी देसी।
अगर पोरसानी उत्तम ठोस और बड़ा होसी॥
अगर पोर पहिला में खड़ा होसी।
चापलूसियों की बात से खुश होसी॥
अंगूठो मोटो—गुस्सो मोटो।
अंगूठा पीछे को मुड़ गया।
फिजूल खर्च अभ्यास कर गया॥
पोरसानी छोटा— अपना राय पर स्थिर नहीं।
औरों की राय मानता नहीं।
अंगूठा लम्बा है-जिद का खम्बा है (अति लंबा)
अंगूठा लम्बा नहीं-छोटा नहीं मुनासिब है।
वह अपने उत्तम विचारों का मुसाहिब है॥
बड़ो अंगूठो बातको बनी राखसी।
छोटा अंगूठा स्वभाव की खराबी को बढ़ाता है।
बड़ा अंगूठा स्वभाव की खराबी को घटाता है॥
(अति के लिये यह बात लागू नहीं)
मौके पर होश हवास उड़ाता है
अगर अंगुष्ठ में चपटाई पाता है

मोटे और भद्दे अंगूठे वाला
नहीं होता है ईमानदारी वाला
कवि का अंगूठा पतला होता है
धर्मी का अंगूठा मुड़ा होता है
(नाजुक सरल स्वभाव)

आप ही अपने काबू में नहीं रहता है
क्योंकि उसका पोर पहिला छोटा होता है
वीर का अंगूठा हिलता नहीं
उस को युद्ध में भेजो क्यों नहीं
(War like thumb)

अंगूठा ठोस सुन्दर और सिरे पर गोल होगा
तो वीर होगा वह फौज की अफसरी खूब करेगा
(Long spatulate)

अंगूठा नाजुक लम्बा और पतला है
तो नजाकत के कामों का पुतला है
अंगूठा छोटा है राय देने आया है
अपनी बेवकूफी का तौर दिखाया है
अगम बुद्धि बानिया
अंगुष्ठ बड़ा जानिया
(साधारण समझ कर पतला होता है)
अंगूठे में चपटा पन होता है
तो दलीलों में भी पोच होता है
(Flat thumb

अंगुष्ठ नापन रीत बताऊं
दो तीन का प्रमाण बताऊं

नोट—सिर से आधार तक अंगूठा नापो और कुलके पाँचभाग करो पहिलाभाग अर्थात् प्रथम पोरवा को २ हिस्से दे दो दूसरे पोरवे को ३ भाग दे दो इसमें कमती बढ़ती का छोटा बड़ा कहो।

दूसरा पोर छोटा है अव्वल बड़ा है
कामों में थोड़ा बातों में बड़ा है
बालक पाठशाला में दाखिल होने आया है
अंगुष्ठ की बनावट ने दिमाग को बताया है

नोट—अंगुष्ठ उत्तम ठोस और मुनासिब आकार का हो सिर की रेखा गहरी सीधी (कुछ पीछे की तरफ मुड़ी हो) और कटी फटी टूट न हो छिन्न भिन्न न हो दोनों हाथों में उत्तम हो हाथ का आकार फरा जैसा हो, रंग गुलाबी सा हो बहुत रेखाओं का जाल न हो—फूला हुआ न हो, रेखायें और ग्रहों के स्थान अपनी २ जगह पर हों तो हाथ उत्तम समझा जाता है।

अंगूठे में चिन्ह

अंगुष्ठ के प्रथम पोरवे में अन्दर को एक दो अथवा तीन सीधी खड़ी लकीरों का होना उत्तम है—यह हिम्मत तथा शक्ति को बढ़ाती हैं। परन्तु तीन से अधिक होना ठीक नहीं। क्योंकि हिम्मत को डाँमा-डोल बना देती है। (इन रेखाओं को नाखून के मुकाबिले में देखना) परन्तु यदि इन रेखाओं को कोई पड़ी रेखा काटती है तो हिम्मत और साहस के काम में नाकामयाबी होगी। और यदि खड़ी रेखा न होकर पड़ी रेखायें ही हैं तो भी हिम्मत के कामों में सफलता की बाधक हैं।

अंगुष्ठ में त्रिकोण अथवा और चिन्ह

जहां तीन या अधिक रेखाओं का होना बताया है वहां यदि त्रिकोण हो तो वैज्ञानिक कार्यों में हिम्मतका प्रयोग होगा। और उसमें उसको सफलता मिलेगी। यदि उसी स्थान में वृत्त (Circle) गोल चक्र हो तो लगातार हिम्मत के कामों में सफलता होगी। ख्याति भी मिलेगी। यदि उसी स्थान पर वर्ग (चौकी) हो तो एक ही लाइन पर हिम्मत का लगाव होगा। परन्तु स्वभाव जालिमाना होगा यदि उसी स्थान पर एक ग्रिल का चिन्ह हो (ग्रिल एक निशान है जो अनेक खड़ी और पड़ी रेखाओं से फूस की टट्टी जैसा बनता है जैसे ⊕) तो औरत पति के हाथ से (अगर औरत के हाथ में हो तो) और पति औरत के हाथ से मारा जाता है, इसके लिये हाथ में और और निशानों को देखना भी जरूरी है।

दूसरे पोरवे में रेखायें

दूसरे पोरवे में—बीच में खड़ी रेखाओं का होना दलीली विचार शक्ति लाजिक की पावर को बढ़ाता है। और यदि पड़ी आड़ी लकीरें हों तो झूठी पोच दलीलों की सूचना देता है। फिजूल का बकवादी होता है यदि उसी स्थान पर क्रास (गुणा का चिन्ह ×) हो तो वह दूसरे के प्रभाव में सरलता से आ जाता है।

यदि उस स्थान पर त्रिकोण (Triangle) का निशान होतो उस मनुष्य में वैज्ञानिक ? तात्विक फिलासोफिकल योग्यता अधिक पाई जायगी। यदि उस स्थान पर चौकी (Square) का निशान हो तो उसकी दलीलें अकाट्य होंगी। परन्तु खराब हाथ में ये निशान बुरी हट या जिद को प्रकट करते हैं।

शस्त्र से मृत्यु

यदि किसी मनुष्य के अंगूठे के प्रथम पोरवे से एक सीधी रेखा (जिसके सिर पर एक आड़ी रेखा हो) निकल कर जीवन रेखा को छूती हो तो समझना चाहिये कि उस मनुष्य की तलवार या अन्य शस्त्र से मृत्यु होने की सम्भावना है।

अंगुष्ट विज्ञान का सार

सामुद्रिक शास्त्र में अंगुष्ठ विज्ञान पर बड़ा विचार किया गया है। यद्यपि इस विषय को इस तरह बताया गया है कि साधारण आदमियों की समझ में सरलता से आजाय। किन्तु फिर भी जब तक हस्त विज्ञान के सम्बन्ध में उचित बोध न होजाय तबतक इस विषय के समझने में धोका हो सकता है। साथ ही में यह भी बात है कि प्रत्येक बात के साथ में उसका चित्र भी हो जिससे कि समझने में आसानी होती. किन्तु हम ऐसा नहीं कर सके।

हाथ में अच्छा या बुरा कोई भी निशान हो उसका फल तभी निकाला जा सकता है। जबकि उस विषय में पूरा ज्ञान हो। हस्त विज्ञान शास्त्र-वेत्ता ही इस विषय को भली प्रकार जान सकता है साधारण आदमी केवल पुस्तक या लेख के आधार पर ही सम्भव है गलती खाजाय। अत हमारे इस "अङ्गुष्ठ विज्ञान" नामक लेख को पढ़कर पाठकगण विचार पूर्वक काम लें। इस विद्या को जानने से मनुष्य अपने आपको भली प्रकार जान सकता है। शरीर एक मशीन है- आत्मा उसका चलाने वाला इन्जीनियर है।

हस्तविज्ञान सामुद्रिक शास्त्र उसकी गति को बताने वाली विद्या है। हाथ तथा सारे शरीर के अन्य अनेक चिन्ह उसकी पुस्तक है. इस पुस्तक के पढ़नेसे अपनी आत्मा और शरीरका कुल हाल मालूम हो जाता है।

आत्मा पुण्यरूप है या पाप रूप सुखी है या दुखी अमीर है. या गरीब. ज्ञानी है या मूर्ख. साहसी है या पोच.धर्मात्मा है या अधर्मी. सरल स्वभावी है या क्रूर नेक है या बद, सुस्त है या परिश्रमी इत्यादि अच्छी और बुरी सभी बातें हाथ में अंकित रहती हैं।

अमुकव्यक्ति का कौन सा ग्रह प्रबल है भाग्य कैसा है किस विद्या या कला में वह प्रवीण होगा क्या व्यवसाय करेगा आयु कितनी और कैसी है स्वास्थ्य कैसा रहेगा,लोगों से मेल जोल रहेगा या नहीं, किस अवस्था में क्या हाल होगा, विवाह कब तथा कितने होंगे, सुख रूप होगा या दुख रूप, गार्हस्थ कैसा है, दोस्त और दुश्मनों का क्याहाल रहेगा धर्मध्यान कैसा चलेगा, भोग विलास कैसा होगा,मृत्यु कब और किस प्रकार होगी, बाल्य युवा और वृद्धावस्था किस प्रकार बीतेगी, हाकिम राजा और स्वामी की दृष्टि कैसी होगी,उन की कृपा बनी रहेगी अथवा नहीं, स्त्री पुत्र आदि कुटुम्बियों का कैसाप्रेम रहेगा इत्यादि सब बातें हाथ में अंकित रहती हैं किन्तु केवल अच्छा सामुद्रिक शास्त्र वेत्ता ही इन बातोंको जान सकता है।

हस्त विज्ञान के सम्बन्ध में अमेरिका यूरोप आदि देशों में अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं तथा हो रही हैं उनमें चिन्ह भी खूब रहते हैं उनको पढ़ने तथा मनन करने से यह विद्या आ सकती है दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि हस्त विज्ञान शास्त्र हमारे देश की बपौती होते हुए भी हम को विदेशीय विद्वानों की शरण लेनी पड़ती है इस बात को पाश्चात्य विद्वान भी स्वीकार करते हैं कि हम ने यह विद्या भारत से सीखी है किन्तु आज भारत के कई अशिक्षित मूर्ख तथा लोभी मनुष्यों ने इस को बदनाम कर रखा है वे हाथ देखते हैं और अन्ट सन्ट बता कर लोगों को

लगते हैं। यह ध्यान रखना चाहिए कि यह विद्या केवल इधर उधर की दो चार पुस्तकें पढ़ने से नहीं आ सकती जिस आदमी के हाथ में गुप्त विद्या (Occubscience) के निशान न हों।

संसारमें असंख्य मनुष्य हो गये हैं तथा होंगे, किसी का हाथ किसी से नहीं मिलता अतः हर एक के हाथ को पढ़ कर समाचार बता देना बड़ा कठिन है। परन्तु मुझे याद है कि हाथ की रेखा और निशानों की एक भाषा है और उसका व्याकरण भी है इस व्याकरण को पढ़ कर मनुष्य इस भाषा का विद्वान हो सकता है।

हमारे अनुभव में ऐसा भी आया है कि जिस मनुष्य का अंगूठा मजबूत होता है उसकी इच्छाशक्ति उत्तम तथा प्रबल होती है। यदि वह चाहे तो अपनी खराब रेखाको उत्तम बना सकता है। क्योंकि खराब रेखाका होना पापका निशान है, उसको पुण्य, ध्यान, धर्म से बदला जा सकता है। हमने कई मनुष्यों की बुरी रेखायें उत्तम रेखाओं में बदलाई हैं अतः मनुष्य अपनी इच्छा शक्ति द्वारा प्रत्येक रेखा को मन चाही रेखा में परिवर्तन कर सकता है।

समाप्त

लेखन कला

(ले०—श्री पं० भंवरलाल जी न्यायतीर्थ)

मनोगत भावों को प्रकट करने के लिये हमारे पास दो साधन हैं, एक वचन और दूसरा लेख। पर लेख के द्वारा जितने स्वतंत्रता पूर्वक विचार करके हम हमारे भावों को प्रकट कर सकते हैं उतने वचन द्वारा नहीं। कारण कि प्रत्येक पद लिखने के पूर्व विचार करने का खूब समय मिलता है जब कि व्याख्यान में बिना विशेष विचार ही धारावाहिक रूप से बोलना पड़ता है। वैसे तो व्याख्यान और लेखन कला में कोई विशेष अन्तर नहीं है और दोनों का उद्देश्य भी एक ही है, किन्तु फिर भी यह कहना होगा कि लेखन कला व्याख्यान कला से कठिन है। व्याख्यान देते समय श्रोतागण वक्ता के सामने होते हैं उस समय वक्ता के विचारों को उनके हृदयों में जमा देने के लिये उसके हाथ, पैर, मुँह वगैरह भी काम करते रहते हैं। इशारों से एवं हावभावों से वक्ता तुरंत ही अपने मनोगत विचारों को श्रोताओं के हृदयों में स्थान दिला देता है किन्तु लेख लिखते समय कोई सहायक नहीं होता। पाठकों के अप्रत्यक्ष में न तो कोई लेखक के हाथों के इशारे, न मुँह की बनावट आदि ही उसको सहायता प्रदान कर सकती है उस समय तो लेखक ने जो विचार करके लिख दिया उन्हीं पंक्तियों में ऐसी मोहनी शक्ति होनी चाहिये कि वे पाठकों को अपनी तरफ आकर्षित कर सकें। इसीलिये लेखनकला व्याख्यान कला से कठिन बताई

जाती है। आज हम भी पाठकों को इस लेखनकला से परिचित करा देना चाहते हैं। सबसे पहिले यह जानने की आवश्यकता है कि ऐसे कौनसे कारण हैं जिनकी वजह से हम कई लेखकों को अच्छा बना देते हैं और कइयों को खराब। जब हम इस बात को तनिक ध्यान देकर विचारेंगे तो तुरत मालूम होजाय गा कि भाषा की शुद्धता शैली की उत्तमता, विचारों को क्रमबद्ध रखना आदि बातें ही मनुष्य को उत्तम लेखक बना देती हैं। जो व्यक्ति इन पर अपना अधिकार जमा लेता है वह अच्छा लेखक बन जाता है।

लेख लिखते समय इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि लेख में कहीं भाषा सम्बन्धी अशुद्धि तो नहीं है या कोई वाक्य तो अरोचक नहीं है। क्योंकि लेख चाहे कितना ही विचार करके क्यों न लिखा जाय यदि उसकी भाषा स्पष्ट नहीं है और उसमें कई अशुद्धियां भरी पड़ी हैं तो उस लेख का पाठकों के हृदयों पर कुछ भी असर न होगा इतना ही नहीं किन्तु उस लेखक के प्रति मनुष्यों में अश्रद्धा उत्पन्न होजायगी। इस लिए जहां तक सम्भव हो लेख सर्वसाधारण की बोल चाल की भाषा में लिखना चाहिये। यदि हम किसी रसविशेष का प्रतिपादन कर रहे हों तो हमारे लिए कई पारिभाषिक क्लिष्ट एवं आलंकारिक शब्दों का प्रयोग करना अनिवार्य होगा किन्तु जब हमारा लक्ष्य किसी विषय का बोध कराने का हो तब हमारी भाषा साधारण एवं प्रचलित होनी चाहिए। मेरे कहने का मतलब यह नहीं है कि उपमा, रूपक आदिअलंकारों का प्रयोग नहीं करना चाहिए इनसे तो लेख का गौरव बढ़ता है किन्तु यह बात जरूर है कि इनका प्रयोग ठीक ठीक होना चाहिये। बहुधा ऐसा देखा जाता है कि अलंकारों का प्रयोग न जानने पर भी जो लोग अपने लेखों में जबर्दस्ती इनको ठूँस देते हैं उनका सारा लेख चाहे वह कितना ही सुन्दर, स्पष्ट एवं शुद्ध क्यों न लिखा गया हो, भद्दा हो जाता है। यदि हमारीभाषा शुद्ध एवं स्पष्ट है तो उस समय ठीक २ अलंकारों का प्रयोग करना सोने में सुगन्ध ला देना है किन्तु भाषा के शुद्ध न होने पर उन अलंकारों की वही दशा होगी जो एक कुरूपा एवं अंगहीन स्त्री को सुन्दर आभूषणों से जड़ देने पर होती है। इसलिये अलंकारों का प्रयोग तभी होना चाहिये जब भाषा शुद्ध हो और अलंकारों के प्रयोग का भली प्रकार ज्ञान हो।

जिस प्रकार लेख में भाषा की शुद्धता एवं शैली की उत्तमता आवश्यक है उसी प्रकार विचारों को क्रमबद्ध रखना जरूरी है। जिस समय जिस विषय का प्रतिपादन किया जा रहा हो उस समय उसी विषय की या उससे सम्बन्ध रखने वाली बातें ही आनी चाहिये। यह नहीं कि लेख तो लिख रहे हैं अहिंसा पर और दोष बता रहे हैं लोभके। ऐसाकरने से विषयान्तर हो जाता है और लेख का कोई महत्व नहीं रहता। इस लिये जहां तक सम्भव हो विचारों को कायम रखना चाहिये।

वैसे तो लेख लिखने के लिये उपरोक्त बातों की ही आवश्यकता है किन्तु लेख लिखने के लिये हमारे विचार किस तरह बनें ?किस प्रकार भाषा शुद्ध एवं सुन्दर हो ? कहां कौनसा वाक्य उपयुक्त है और कहाँ कौनसा ? इत्यादि बातों को जानने के लिये हम को अभ्यास, भ्रमण, निरीक्षण अध्ययन अनुभव आदि बातों की आवश्यकता है। बिना इनके लेख लिखना असम्भव है।

माता के उदर से निकलते ही किसी को लेख लिखना तो नहीं आ जाता। इसके लिये तो जब मनुष्यमें विवेक शक्ति उत्पन्न होती है तभी कुछ लिखा जाना सम्भव है। सोचने की बात है कि प्रारम्भ से ही कोई सिद्धहस्त कैसे बन सकता है! हाँ थोड़ा २ अभ्यास करने पर सफल हो सकता है अतः कुछ न कुछ लिखते रहना चाहिए। अच्छा हो यदि हम अपने लिखे हुए को किसी योग्य मनुष्य से ठीक करालें। किन्तु जब ऐसा अवसर न मिले तब किसी न किसी को आदर्श मान कर उसका अनुकरण करना अच्छा होगा। किसी बड़े लेखक के विचारों को जिन को हम समझ सकते हैं अपनी भाषा में परिवर्तन करने की कोशिश करनी चाहिए। इसके लिए कवि अमीर खुसरो का कैसा ज्वलन्त उदाहरण है कि उस का प्रारम्भ काल में कोई गुरु न था किन्तु उसने बैत, गजलें आदि कविताओं का करना प्रारम्भ कर दिया था। यह उस के निरन्तर अभ्यास का ही प्रतिफल था। उसने 'अनवरी' और 'सनाई' की कविता को खास तौर से आदर्श माना था। जिस कवि की कृतियों को पढ़ता था उसी के ढंग पर स्वयं लिखता था। उसने बहुत दिनों तक खाकानि नामक कवि की रचनाशैली का अनुकरण किया।

अभ्यास के साथ २ भ्रमण और निरीक्षण की भी आवश्यकता है। जितना ज्ञान भ्रमण और निरीक्षण से होता है उतना किसी अन्य से नहीं। कारण कि इसमें क्रियात्मक (Practical) ज्ञान होता है। क्रियात्मक ज्ञानसे वस्तु के गुण अवगुण सभी नजर आजाते हैं और इससे अनुभव खूब बढ़ता है। अनुभव ही प्रत्येक कार्य को सफल बनाता है। इसलिये अनुभव बढ़ाने के लिये स्थान २ पर जाना चाहिये और जो पदार्थ हमारे सामने होकर गुजरें उसको सूक्ष्म दृष्टि से देखना चाहिये। संसार के सभी पदार्थ का अवलोकन हमारे लिये उपयोगी है।

जब भ्रमण का अवसर न मिले तो अध्ययन ही लेखनकला सम्बन्धी ज्ञान बढ़ाने का अद्भुत साधन है किन्तु साधारण अध्ययन नहीं। मनो विनोद के लिये किया गया अध्ययन इसमें सहायक नहीं हो सकता। यहां तो मनन की आवश्यकता है। जो कुछ भी पढ़ा जाय मनन पूर्वक। इसमें ध्यान देने की यह बात है कि गन्दा साहित्य का अध्ययन कुछ कार्यकारी नहीं होसकता। जो अच्छे लेखक और कवि गिने जाते हैं उन्हीं की कृतियों का पढ़ना लाभप्रद है। ऐसा साहित्य पढ़ने से हजारों वर्ष पूर्व तक की बातें हमारे सामने आजाती हैं और प्राचीन ऋषि महर्षि विद्वान आदि पुरुषों के विचार हमारे मस्तिष्क में घूमने लग जाते हैं। वर्तमान युग में होने वाले भिन्न २ देशों के भिन्न २ महापुरुषों के विचार हमारे ज्ञान की वृद्धि में खूब सहायक होते हैं। उन महापुरुषों के विचारों को मनन करने से अनुभव बढ़ता है और अनुभव ही लेखनकला के लिये एक बहुत उपयोगी साधन है।

अर्थ शास्त्र के मूलतत्व

(ले०—श्रीमान पं० चैनसुखदास जैन न्यायतीर्थ)

उपकारक और सफल जीवन व्यतीत करनेकेलिये मनुष्य को अर्थ शास्त्र का अध्ययन अवश्य करना चाहिये। पर मानव जीवन की सफलता के लिये केवल अर्थ शास्त्र का ज्ञान ही आवश्यक नहीं है, इसके आवश्यक नियमों का जीवन में उपयोग होना भी जरूरी है साधारण आय वाला व्यक्ति भी यदि अर्थ शास्त्र के नियमों के अनुसार जीवन व्यतीत करना सीख जाय तो वह अधिकांश सांसारिक चिन्ताओं से उन्मुक्त हो कर सुख पूर्वक रह सकता है। किस चीज का कहाँ कैसे और कब उपयोग करना चाहिये अथवा उसकी प्राप्ति के सरल और कठिन उपाय क्या हैं आदि अनेक प्रश्नों का उत्तर हमें अर्थ शास्त्र से प्राप्त होगा। प्राचीन गृहस्थों की—शिक्षा में इस शास्त्र के अध्ययन का मुख्य स्थान था इस बात के सबूत हमें पुराणों में मिलेंगे। बहुत से समझदार इसके नियमोपनियमों का बिना जाने भी जीवन में इनका उपयोग करते हैं, फिर भी इनका जानना आवश्यक है इस लिये जैनदर्शनके पाठकोंको इस सम्बन्ध में कुछ जानकारी प्राप्त हो जाय अतः संक्षेप में कुछ लिखा जाता है।

अर्थ शास्त्र का मतलब है धन के सम्बन्ध में विशद वर्णन (उस के उत्पत्ति उपयोग आदि) करने वाला शास्त्र। अथ उसको कहते हैं जिससे समस्त सांसारिक प्रयोजनों की सिद्धि हो * संसारमें ऐसा कोई कार्य नहीं है जो धन से प्राप्त नहीं किया जासके धन क्या नहीं कर सकता वह बूढ़े को जवान बना सकता है वह मूर्ख को विद्वान के पद पर आसीन करा सकता है। दुराचारियों के राजा को सदाचारियों का शिरोमणि बना सकता है सच बात तो यह है कि यह धन जो कुछ कर सकता है कहां तक कहें। उस का वर्णन शब्दों द्वारा नहीं किया जा सकता। लिखने का आशय यह नहीं है। कि धन से केवल इसी तरह के जघन्य कृत्य ही हो सकते हैं। यदि उसका सदुपयोग किया जाय तो यह अच्छे से अच्छे कामों को भी कर सकता है। मनुष्य की सारी कामनाओं का सार धन है। साधारण मनुष्य देवताओं और संतों द्वारा जो आशीर्वाद † प्राप्त करना चाहता है, उसमें भी मुख्य रूपसे धनकी वासना सम्मिलित रहती है। सांसारिक मनुष्य में चाहे कितने ही गुण क्यों न हों धनके बिना उनकी कोई महत्ता नहीं मानी जाती ‡ धनिक महानुभावों के उच्च महलों के द्वार पर जो विद्वानों की दुर्दशा होती है उसे देख कर धनके उपर्युक्त लक्षण की सत्यार्थता में कोई भी सन्देह नहीं रह जाता। सरस्वती और लक्ष्मी की

---

* यतः सर्व प्रयोजन सिद्धिः सोऽर्थः । नीति वाक्यामृत अर्थ समुद्देश

† नागवतं प्रसयेथा माशरम् मा न परिक्रनम ।
शराक्ष कुत विद्याश्च वंते निष्ठाम्ि भस्मुताः ।

‡ विजन्य नहि जायाति को नोऽपि सविलोगुणः ।

तुलना के समय हमें उसामन लक्ष्मी को प्रदान करना पड़ता है। यद्यपि हमारे इस कथन के अपवाद भी कभी २ मिल सकते हैं। फिर भी यह कहना ही पड़ता है कि सरस्वती लक्ष्मी के समान सुभगा नहीं है। अतः हमें यह मान ही लेना होगा कि यह धन नामका पदार्थ संसार की सर्व श्रेष्ठ वस्तु है। यद्यपि कवियों ने अनेक जगह लक्ष्मी की निंदा करने में कुछ भी कमी नहीं की और इसको सारी बुराइयों का मूल बतलाया है, किन्तु उसका कारण तो केवल कवियों के पास लक्ष्मी का न होना ही है। जब कोई धनी किसी विद्वान का अपमान करदेता है, तब वह विद्वान लक्ष्मी की समालोचना करने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकता है? यदि वस्तुतः संस्कृत कवियों की दृष्टि में लक्ष्मी बुरा पदार्थ होता तो वे कभी उसका नाम श्री, रमा, हरिप्रिया लोकमाता, मा आदि न रखते। इन सुन्दर नामों के अर्थ में लक्ष्मी की महत्ता स्पष्ट रूपसे प्रदर्शित होती है, इसीलिये वे इसे सारे गुणों का आश्रय बतलाते हैं ‡। ऐसे सर्वोपयोगी पदार्थ का उपार्जन उपयोग और रक्षण कैसे होता है यह जानना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है

यदि किसी धन से हमारा कोई भी प्रयोजन सिद्ध न होरहा हो तो उसमें उपयुक्त लक्षण के न जाने से उसे धन नहीं कहा जा सकता। जैसाकि किसी कवि ने कहा है—

यस्य धर्मस्वरूपेनप्रयुज्यते यस्य कामस्य च भूमि-मध्यगम। तत कदर्य परिरक्षितं धनं चौरपार्थिव-गृहेषु भुज्यते। संचितमृतुषु न वै भुज्यते याचित गुणवते न दीयते॥

अर्थात जो धन अपने किसी भी काम में नहीं आता केवल भूमि में गडा हुआ पड़ा रहता है वह कंजूसों का धन है और राजा, चोर आदि ही उसका उपभोग करते हैं। इसलिये अर्थ शास्त्र के अनुसार ऐसे धन वाले को धनी नहीं कहा जा सकता। ऐसा आदमी धन का पात्र नहीं है जो † अर्थानुबंधसे धन का अनुभव करता है वही धन का पात्र कहा जा सकता है। किसी समझदार ने कहा है कि—हमें दुअन्नी को अपनी आँखों के सामने इतना समीप नहीं लेजाना चाहिये जिससे हम रुपये को भी न देख सकें। धन पात्र बनने के लिये मनुष्यों को जान लेना आवश्यक है। प्राचीन संस्कृत साहित्य के नीति-कारों ने अलब्ध लाभ, लब्धपरिरक्षण, और रक्षित वर्द्धन ये तीन * तरह के अर्थानुबंध बतलाये हैं। अर्थानुबंध का मतलब है धन के कारण।

१ अलब्धलाभ—ऐसा कोई संसार में पदार्थ नहीं है

---

‡ यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः
स एव वक्ता स च दर्शनीयः सर्वेगुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति।

† अर्थानुबंध मार्गेण योऽर्थः संसेव्यते सदा
स तेन मुच्यते नैव कदाचिदिति निश्चय —व ग।
सोऽर्थस्य भाजन योऽर्थानुबंधेनार्थमनुभवति॥ नीतिवाक्यामृत

* अलब्धलाभो लब्धपरिरक्षणं रक्षितपरिवर्द्धनं चार्थानुबंध —नीतिवाक्यामृत

१ असाध्यं नास्ति लोके च यस्यार्थ साधनम् परम।
सामादिभिरुपायैश्च तस्मादर्थमुपार्जयेत।

जो प्रयत्न करने पर न प्राप्त हो। प्रयत्न करने पर भी सफलता प्राप्त न होने का कारण प्रयत्न के दोष हैं। हम प्रत्येक असफलता पर गंभीर विवेचना से इस बात के जानने की चेष्टा करें कि हमारे असफल होने का कारण क्या है। ऐसा करने से हमें उसके दोषों का ज्ञान अवश्य होगा। इस अर्थ शास्त्र के प्रकरण में प्राप्त करने योग्य वस्तु केवल धन ही माना जाता है, इस लिए सामादिक उपायों से उसको अवश्य प्राप्त करना चाहिए। यही अलब्धलाभ का अर्थ है इस सम्बन्धमें यदि संतोष किया जाय तो इस शास्त्र के नियमों के प्रतिकूल होगा। क्योंकि संतोषी पुरुष अलब्धलाभ का प्रयत्न क्यों करेगा। इसी लिए एक कवि ने कहा है—

> संपदा सुस्थितं मन्यो भवति स्वल्पयापि यः
> कृतकृत्यो विधिर्मन्ये न वर्द्धयति तस्य ताम्।

अर्थात् जो थोड़ी सी संपत्ति से संतुष्ट हो जाता है, विधाता उसके धन की वृद्धि नहीं करता। मानों वह यह ख्याल करता है कि जब इसको ही धन की चाह नहीं है तो मुझे प्रदान करने की क्या जरूरत है। आध्यात्मिक दृष्टि से यद्यपि संतोष एक प्रशंसनीय गुण है, किन्तु आर्थिक दृष्टि से संतोष कर लेना अर्थ शास्त्र का नियमोल्लङ्घन करना है। इस लिये अलब्ध लाभ नामक अर्थानुबंध की बहुत आवश्यकता है और इसे अर्थ शास्त्र के मूल तत्त्वों में कहा जा सकता है। लब्ध परिरक्षण *—जिस प्रकार धन का उपार्जन करना कठिन है वैसे ही उसकी रक्षा करने में भी बहुत सी कठिनाइयों का अनुभव करना पड़ता है। मनुष्य मात्र की दृष्टि धन पर बनी रहती है और इसी कारण से एक दूसरे के दुश्मन भी हो जाते हैं। औरों की बात जाने दीजिये पिता पुत्र, भाई भाई, आदि भी इस धन के लिये परस्पर लड़कर किस तरह स्वर्ग समान घर को नरक सदृश कलह का स्थान बना देते हैं, ये बातें किसी से छिपी नहीं हैं। इस लिये यह कहना बिलकुल ठीक है अलब्ध लाभ की अपेक्षा भी लब्धपरिरक्षण बहुत कठिन है। मनुष्य का कर्तव्य है कि पाये हुये धन का रक्षा करने करने में हमेशा सतर्क बना रहे।

तीसरा अर्थानुबंध 'रक्षित परिवर्द्धन' है—प्राप्त की हुई वस्तु में यदि वृद्धि न की जाय तो एक न एक दिन उसकी समाप्ति अवश्य होगी, चाहे व्यय कितना ही कम क्यों न हो पर्वत के समान विपुल राशि भी समाप्त हुए बिना नहीं रहती। इस लिये उस में वृद्धि होते रहना आवश्यक है। धनी पुरुष का कर्तव्य है कि उस बढ़े हुए धन का पात्रों में भी आवश्यकतानुसार संविभाग करता रहे। जिनमें अर्थ का संविभाग किया जाय ऐसे पात्रों को अर्थ शास्त्र में तीर्थ कहते हैं यदि किसी के धन से ऐसे तीर्थों का सन्तोषण सत्कार आदि न हो तो वह शहद के छत्ते के समान बिलकुल हो जाता है।

तीर्थों + के दो भेद हैं। एक धर्म समवायी दूसरे कार्य समवायी जो अपने हृदय में जगत् कल्याणकी कामना रखते हैं और इसी लिये अपने जीवन का

---

* [illegible] नन्वेतत्स्यात् स्वार्थसौख्य
आकांक्षि [illegible] तथापि [illegible] मानव [illegible]।

+ [illegible]

परोपकार के लिये उत्सर्ग कर देते हैं वे धर्मसमवायी कहलाते हैं। परोपकारी विद्वान ही प्रधानतया धर्म समवायी हैं। कार्य समवायी वे कहलाते हैं जो हमारे लौकिक कृत्यों में सहायता देते हों। जिन से हमारा बड़े से बड़ा काम भी सिद्ध हो सकता हो ऐसे नोकर सेवकादि लोगोंको ही कार्य समवायी कहना चाहिये। बस रक्षित धन को इन दोनों प्रकार के तीर्थों में ही योजित करना चाहिये। तीर्थों को छोड़ कर अन्यत्र कहीं धन का व्यय करना सांपों को दूध पिलाने के बराबर है। इस समय अधिकांश धनी अर्थशास्त्र के इस आवश्यक नियम पर कुछ भी ध्यान न देकर अपने धन रूपी दुग्ध को बहुत से अपात्र रूपी सांपों को पिला रहे हैं। धन प्राप्ति की महत्ता इसी में है कि उसके द्वारा भलाइयों का पोषण हो। वैसे तो निम्ब और आम दोनों ही के फल फलकी दृष्टि से समान हैं, फिर भी आम को उत्कृष्ट और निम्ब फल को निकृष्ट समझा जाता है। इसका कारण यही है कि आम्रफल के द्वारा कोकिलों जैसे मनोहर पक्षियों का पोषण होता है और निम्ब फल तो केवल दुष्ट काकों के ही काम में आता है। प्रायः धनियों का विवेक अर्थ विनियोग के सम्बन्ध में नष्ट होजाता है इसलिये उन्हें हमेशा इस निम्नलिखित पद्य पर ध्यान देकर ही धन का व्यय करना चाहिये।

यः काकिणीमप्यपथप्रपन्नाम,
समुद्धरेन्निष्कसहस्रतुल्याम् ।
कालेन कोटिष्वपि मुक्तहस्तो,
तं राजसिंहं न जहाति लक्ष्मीः ।

इसका यह अर्थ है कि लक्ष्मी उसके पास रहती है जो कुमार्ग में लगी हुई एक कौड़ी को भी हजार मोहरों के बराबर समझकर उठा लेता है। और भले काम के लिये करोड़ों का भी मोह नहीं करता।

अब संक्षेप में ऐसे लोगों का वर्णन कर इस लेख को समाप्त करते हैं जो अर्थ शास्त्र के नियमों के प्रतिकूल चल कर धन का नाश कर डालते हैं। ऐसे लोगोंके तीन भेद हैं तादात्विक, मूलहर और कदर्य। इन तीनों ही का धन नष्ट होने में देर नहीं लगती।

तादात्विक वह कहलाता है जो कुछ भी संचित न कर जितना कमाता है उतना ही उड़ा डालता है। जिन के चार की आमदनी और साढे चार का खर्च बना रहता है वे धन का संचय कैसे कर सकते हैं। ऐसे आदमियों को विपत्ति के समय दूसरों का मुंह ताकना पड़ता है। यह लोग अपनी आपत्तियों के दिन बड़ी कठिनता से काटते हैं। दुःख के समय पैसा नहीं होने पर कोई किसी को नहीं पूछता क्यों-कि मनुष्य पैसे का दास है पैसा किसी का दास नहीं। बहुत से तादात्विक कभी २ विपत्तियों से शिक्षा ग्रहण कर भविष्य में धन संचय करने के लिये दृढ़ निश्चय कर लेते हैं।

मूलहर—जो अपना पैतृक धन दुरुपयोगकर नष्ट कर देता है उसको द्यूत आदि व्यसनों में लगा कर कंगाल होजाता है और स्वयं कुछ भी उपार्जन नहीं करता वह 'मूलहर' कहलाता है।

नीति वाक्यामृत में लिखा है—"यः पितृपैता-महमर्थमन्यायेन भक्षयति स मूलहरः"—यह मूलहर तादात्विक की अपेक्षा भी जघन्य श्रेणी का मनुष्य है। क्योंकि पहले वाला कुछ उपार्जन कर खर्च करता है पर यह तो अपने पुरखों की लाखों के धन को भी चौपट कर कंगाल बन जाता है। भविष्य की दृष्टि से तो तादात्विक और मूलहर दोनों ही बराबर हैं, क्योंकि दोनों ही का भविष्य अंधकार मय है।

कदर्य—जो धन मौजूद रहने पर भी न अपने लिये खर्च करता है और न अपने अधीनों के लिये। किन्तु जिस का एक मात्र उद्देश्य केवल धन को एकत्रित करना है उस को कदर्य कहते हैं। कदर्य का अर्थ हिन्दी में कंजूस अथवा कृपण है। इसको बहुत से आदमी सूम भी कहते हैं। यह धन का कीड़ा सूम धन के लिये न अपने शरीर की परवाह करता है और न दूसरों के सुखों की। अपने और कुटुम्बियों की आत्मा को मसोस कर भी धन संचय करने का इस का एक मात्र उद्देश्य रहता है। ऐसा आदमी पहले वाले दोनों की अपेक्षा भी बहुत बुरा है। क्योंकि उसका धन राजा, हिस्सेदार और चोर इन तीनों में से किसी एक का होता है। कंजूस मनुष्य एक पैसे के लोभ के वश होकर जिसके प्रतिकार में सैकड़ों रुपये खर्च होजांय इस तरह की विपत्ति को जानबूझ कर बुला लेता है यह आदमी घर में एक पैसे का दीपक न जलावेगा चाहे चलने फिरने वालों के सिर ही क्यों न फट जाँय। इस तरह अर्थशास्त्र की दृष्टि से ये तीनों मनुष्यों के कलङ्क है। क्योंकि इन तीनों ही से लक्ष्मी प्रसन्न नहीं रहती। मनुष्यों में इन को पाषाण जाति के मनुष्य कहने चाहियें।

इन पंक्तियों के लिखने का यही आशय है कि जीवन को सुखी बनाने के लिए हम धन की उपयोगिता को समझें। और इस एक बात को हमेशा ही याद रखें "इदमेव हि पांडित्यं आयादल्पतरो व्ययः" अर्थात बुद्धिमत्ता इसी में है कि आमदनी से कम खर्च किया जाय। यह भी एक अर्थशास्त्र का मूलतत्त्व है। आशा है पाठक इस लेख को पढ़ कर धन का सदुपयोग करना सीखेंगे।

कलियुगी गुरू

साकोरी के सन्त अखण्ड ब्रह्माण्ड नामक महाराजाधिराज उपासनी बाबा के नामसे महाराष्ट्र और गुजरात में प्रसिद्ध है। लाखों आदमी उसके भक्त है। वह नग्न रहता है कभी कमर से एक फटी बांध लेता है तथा अवधूत की तरह रहता है। उस पर एक केस चला तब उसने कोर्ट में कहा कि मैंने भक्तों पर विष्ठा फेंकने, गटरों में लोटने- शरीर को नोंचने और गन्दा पानी पीने का काम किया है। मैं जिस बर्तन में टट्टी जाता था वही मेरी भिक्षा का पात्र था। मेरी नग्न दशा में स्त्रियां आलिंगन करती थीं। कोई स्त्री तो स्वयं मुझे नग्नावस्था में आलिंगन देती थी। मैं जो कहता हूं वही धर्म शास्त्र है। कई स्त्रियाँ और कन्यायें मुझे अर्पण की गई हैं। ऐसे ब्रह्मस्वरूप को कन्यायें अर्पित न की जांय तो फिर किसे की जायगी? करीब १६ वर्ष से २१ वर्ष तक की पांच कन्यायें मुझे अर्पित हुई हैं। तत्वज्ञान होने पर ऐसी स्त्री के साथ सहवास करने वाले ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं। यदि वह स्त्री दूसरों के साथ सम्बन्ध करे तो भी वह ब्रह्मचारिणी ही रहती है। लोगोंका उद्धार करने के लिये ही उनके पास से मैं रुपया लेता हूं और जैसे मल फैंकने का घूरा होता है वैसे ही द्रव्य रूपी मल फैंकने का यह स्थान है। स्त्रियां मुझे साड़ी, चूड़ियां आदि भी पहनाती हैं। गोदावरी मेरे साथ झूला पर बैठकर झूलती है। भक्त लोग मेरे मस्तक पर तथा लिङ्ग पर पुष्प चढ़ाते हैं। स्त्री या पुरुष के गुप्त अङ्गों में अश्लीलता का विचार ही व्यर्थ है। मेरे वैराग्य के दिन गये। जबकि मुझ में पैसा और स्त्रियाँ मिलती हैं तो उनका उपयोग क्यों न किया जाय? इत्यादि। —'वीर'

तीर्थ भूमियां

झगड़े का प्रारम्भ

आज से प्रायः ३६ वर्ष पहले दिगम्बर श्वेताम्बर सम्प्रदाय में तीर्थ क्षेत्र सम्बन्धी कोई भी झगड़ा नहीं था। दोनों सम्प्रदाय के यात्री तीर्थों की वंदना बिना रोक टोक आनंद से करते थे दोनों ही अपने अपने धार्मिक अधिकार समान मानते थे एकाधिकार या छोटे बड़ेपन का कुछ भी प्रश्न नहीं था।

उन ही दिनों में स्व० श्रीमान दानवीर सेठ माणिकचन्द्र जी के लघुभ्राता श्रीमान सेठ नवलचन्द्र जी (वर्तमान सेठ ताराचन्द्र जी के पिता जी) सम्मेदशिखर की यात्रा करने गये थे। टोंकों की वंदना करते समय उन्होंने सीतानाले से कुंथुनाथ की टोंक तक का मार्ग बहुत खराब पाया उसको बनाने का ख्याल उनके हृदय में उत्पन्न हुआ तदनुसार तीर्थक्षेत्र कोठी के प्रमुख प्रबन्धक भट्टारक जी के शिष्य स्व० श्रीमान ब्रह्मचारी हरलाल जी को सीतानाले से कुंथुनाथ की टोंक तक पक्की सीढ़ियाँ बनवाने के लिए कह आये।

तदनुसार ब्र० हरलाल जी की देख रेख में सन १८९८ में सीतानाले से लेकर ५०० सीढ़ियां श्रीमान सेठ नवलचन्द्र जी के द्रव्य से तयार कराई गई। फिर सन् १८९९ में उसके आगे २०५ सीढ़ियां तैयार हुईं जिनको कि श्वेताम्बरों के गुमास्ते गुलाब पांडे और सुन्दरलाल ने रातोंरात तुड़वा दिया। बस झगड़ा यहीं से प्रारंभ हुआ। उसी समय दिगम्बर समाज को पता चला कि सम्मेदशिखर तीर्थक्षेत्र पर श्वेताम्बर समाज अपना एकाधिकार चाहता है। दिगम्बर समाज का समानाधिकार उसको आँखों नहीं सुहाता। वह नहीं चाहता कि सम्मेद शिखर पर्वत पर कोई भी चीज दिगम्बरीय द्रव्य से बनाई जाकर सम्मेदशिखर पर दिगम्बर समाज का किंचमात्र भी स्वामित्व प्रगट होवे।

इस पर फौजदारी रिपोर्ट की गई जिसमें कि अदालत ने श्वेताम्बरों के दोनों नौकरों को अपराधी पाया और उन्हें एक २ सप्ताह का कड़ा दंड मिला। यह सबसे पहला केस है जोकि श्वेताम्बरीय ज्यादती से विवश होकर दायर किया गया था।

उस समय दिगंबर जैन समाज ने तीर्थक्षेत्रों पर अपने धार्मिक अधिकार सुरक्षित रखने के लिये संस्था स्थापित करने की आवश्यकता अनुभव की। तदनुसार दिगम्बर समाज के तत्कालीन नेता स्व० श्रीमान पं० गोपालदास जी बरैया, श्रीमान पं० धन्नालाल जी, श्रीमान सेठ माणिकचन्द्र जी के साथ कई वर्ष इसके लिये प्रयत्न करते रहे। अंत में वि० सं० १९५९ में चौरासी (मथुरा) में महा सभा के अधिवेशन के समय श्री दि० जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी स्थापित हुई। जो कि अब तक तीर्थ क्षेत्रों पर दि० जैन समाज के धार्मिक अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिये यथासाध्य उद्योग करती है।

सम्मेदशिखर के अनेक केस किस तरह कब २ लड़े गये और उनमें लाखों रुपये पानी की तरह बहाये जाकर कौन किसना किसतरह हारा और कौन जीता. राजगृही आदि केस किस तरह लड़े गये इत्यादि बातें जैन समाज को भली भांति मालूम हैं इन को यहां लिखना व्यर्थ समझ कर छोड़ देते हैं। पाठक

महानुभाव इतना समझ लें कि मुकद्दमेबाजी सन १८९९ से प्रारम्भ हुई थी जो अब तक कहीं न कहीं चलती ही रही है। श्वेताम्बरी भाई तीर्थ क्षेत्रों पर दि० जैन समाज के समान धार्मिक अधिकारों को किस बुरे अनुचित ढंगसे कुचलना चाहते हैं इसके दो-तीन उदाहरण यहां पाठक महानुभावों के सामने रख कर हम प्रकृत विषय प्रारंभ करेंगे।

पावापुरी के जल मन्दिर पर दोनों संप्रदायों का समान अधिकार था जोंकि अब भी है इस मन्दिर का पुल इलाहाबाद निवासी एक दिगंबरीय अग्रवाल धनिक ने बनवाया था। इसी जलमन्दिर को अपने एकाधिकार में लाने के लिये श्वेताम्बर समाज को खयाल आया। उसके लिये निम्नलिखित उपाय ग्रहण किये गये।

१- जल मन्दिर की बही पर पहिले "श्री पावापुर जैनक्षेत्र" छपा रहता था तदनुसार दिगम्बर श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदाय दान देकर उक्त नामकी रसीद लिया करते थे, पीछे श्वेताम्बरी भाइयों ने जो रसीद बही छपाई उसपर "श्री जैनश्वेताम्बर क्षेत्र पावापुरी" छपा दिया जिससे यह सिद्ध होसके कि यह तीर्थ क्षेत्र केवल श्वेताम्बर संप्रदाय का है दिगंबर जैन सम्प्रदाय का उस पर कुछ अधिकार नहीं है।

२- पावापुरी क्षेत्र के लिये कोई दिगंबरी भाई कुछ द्रव्य देवे तो उसको रसीद तो उसके नामसे दीजाती थी किन्तु कूपन पर नाम किसी श्वेतांबरी का लिख दिया जाता था जिससे कि भविष्य में यह साबित किया जा सके कि इस क्षेत्र के लिये दि० समाज की ओर से कुछ द्रव्य नहीं आता। अभी केस चलते समय ऐसी अनेक रसीदें पकड़ी गई थीं। श्रीमान ला० अभय कुमार जी (अग्रवाल दि० जैन) शाहाबाद (आरा) ने पावापुरी क्षेत्र के लिये रुपये दान किये उनको तो उसी नामसे रसीद मिली किन्तु कूपन पर 'अभयकुमार सिंह संघी कलकत्ता' लिखा गया।

३—यदि किसी दिगम्बरी भाई ने मंदिर में कोई चीज चढ़ाई जिसपर कि उसका नाम भी अंकित था तो वह नाम मिटा दिया गया जिससे यह साबित न हो सके कि यह उपकरण दिगम्बरी जैन ने भेंट किया है। कुछ वर्ष पहले कोल्हापुर निवासी स्वर्गीय श्रीमान सेठ भूपाल अप्पा जी जिरगे इधर की तीर्थ यात्रा के लिये आये थे उन्होंने रेशमी कपड़े का जिस पर कि जरी की बुनावट थी एक एक चंदोवा पावापुरी जल मंदिर, चंपापुरी (नाथनगर) के मंदिर में चढ़ाया जिन पर कि रेशमी धागों से उनका नाम अंकित था। नाथनगर के मंदिर में वह चांदोवा उसी नाम सहित अभी तक है किन्तु पावापुरी जल मंदिर में वह चांदोवा तो टंगा हुआ है किन्तु उस पर से वह नाम मिटा दिया गया है जो कि रात के समय छाया रूप में चांदोवे पर अब भी दीख पड़ता है।

४—श्रीमान बा० पूरणचन्द्र जी नाहर श्वेताम्बर समाज में इतिहास के एक अच्छे विद्वान हैं आपने 'जैन शिलालेख संग्रह' नामक पुस्तक लिखी है उसमें प्रायः सभी तीर्थ क्षेत्रों के प्रतिमा लेखों शिलालेखों आदि की नकलें विद्यमान हैं। नाहर जी ने उसका प्रथम खंड सन १९१८ में प्रकाशित किया था उस में पावापुरी के उपलब्ध सभी शिलालेख प्रतिमा लेख उल्लिखित थे उस समय पावापुरी जल मंदिर न कोई प्रतिमा थी और न मूल मंडप में चरणचिन्हों के

सिवाय अन्यत्र चरणचिन्ह या चरणपादुकाएं थीं तदनुसार प्रथम खंड में उन किसी का भी उल्लेख नहीं था। फिर जब श्वेताम्बर समाज के हृदय में जल मंदिर पर अपना एकाधिकार जमाने की धुन सवार हुई तो जल मंदिर में एक छोटी सी पीतल की श्वेताम्बर प्रतिमा विराजमान कर दी (जिस पर दि० जैन समाज की निद्राभंग हुई और केस चला कर प्रतिमा को, दरवाजे की चौखट पर उकेरी गयी श्वे० साधुओं की मूर्तियों, शिलालेख को मंदिर से हटवा दिया) श्रीमान नाहर जी ने जो शिलालेख संग्रह का दूसरा खंड सन १९२७ में छपाया उसमें पावापुरी के लेख पुनः छपाये और उसमें उस नवीन मूर्ति के लेख की नकल भी छपादी जिससे दूसरा खंड पढ़ने वालों को यह भ्रम होसकता था कि श्वेता० प्रतिमा यहां बारहवीं या सोलहवीं शताब्दी से विराजमान होगी (प्रतिमा पर १२ वीं या १६ वीं शताब्दी का लेख था) केस चलते समय श्वेतांबर समाज की ओर से नाहर जी के शिलालेख संग्रह का दूसरा खंड अपने पक्ष पुष्ट करने के लिये पेश भी हुआ किन्तु जब दिगंबर समाज की ओर से नाहर जी का प्रथम खण्ड पेश किया गया जिसमें कि उस प्रतिमा का कुछ भी उल्लेख नहीं था। तब कोर्ट ने असलियत को जान कर दूसरे खण्ड के लेख की कलई को समझ लिया।

४-सम्मेद शिखर पर्वत पर जल मन्दिर में दिगंबर श्वेतांबर दोनों प्रतिमाएं पहले विराजमान थीं। २०-२५ वर्ष पहले जिन यात्रियों ने भी वंदना की है उन्हों ने उन दिगम्बरी प्रतिमाओं का जल मन्दिर में दर्शन किया है। हमने भी दर्शन किये थे परन्तु पीछे श्वेताम्बरी लोगों ने मन्दिर से दिगम्बरी मूर्तियों को न जाने कहां गायब कर दिया। जिससे कि मन्दिर पर श्वेतांबरों का ही अधिकार जमा रहे। श्वतांबर समाज के नेता श्रीमान पूरणचन्द्र जी नाहर ने भी लिखा है कि 'सम्मेदशिखर पर जल मन्दिर में दिगंबर श्वेताम्बर प्रतिमाएं विद्यमान थीं किन्तु किसी दुष्ट ने पीछे से दिगंबरीय प्रतिमाओं को वहाँ से गुम कर दिया।

श्वेतांबर समाज की ऐसी मनोवृत्ति ही तीर्थ सम्बन्धी झगड़ों की जड़ है जिससे कि मुकद्दमेबाजी का वृक्ष हरा भरा खड़ा हुआ है और जैन समाज के कठिन परिश्रम से प्राप्त हुए द्रव्य रूपी पसीने को पीता आरहा है सारा संसार हंस रहा है किन्तु श्वे० जैन समाज की मनोवृत्ति में अंतर नहीं आता।

यह एक सरल सीधी कुंजी है जिससे पाठक महानुभाव तीर्थ क्षेत्रों की मुकद्दमेबाजी का निमित्त कारण तथा पुराना इतिहास समझ सके होंगे। अब आगामी अंक से श्री ऋषभदेव (केसरियानाथ) तीर्थ के विषय में कुछ लिखेंगे।

—क्रमशः

—※—

समालोचना

सत्य परीक्षा (सत्यासत्य मीमांसा का उत्तर इसके लेखक तथा प्रकाशक श्री० पं० श्यामलालसिंह जी डीकरी (मेरठ) हैं पृष्ठ संख्या ४८ मूल्य चार आना छपाई कागज साधारण है। दि० जैन त्यागियों को, असमर्थ लोगों तथा विधवा महिलाओं को बिना मूल्य दी जाती है।

प्राप्ति स्वीकार श्रीपार्श्वनाथ दि० जैन विद्यालय उदयपुर (मेवाड़)

दिसम्बर १९३४ (गत १७वें अंक से आगे)

१) श्रीमान कस्तूलाल जी हूमड़ बड़ोदा
॥) .. जसराज जी मूलचन्द जी बड नगर
॥) .. नगीनादास जी भगवानदास जी अंकलेश्वर
२) .. बनारसी दास जी मेवाराम जी पालेज
४) .. ५ंडुरनाथ दत्तोबा जी शेतवाल, गाडौड़
१) श्री मती सरदार बाई पाचका इडोक
४ श्री०ला० भगवानदास जी पाटनी देहली
२) .. केसरलाल जी जयपुर
१) .. सुखनदास जी, अजमेर
१०) .. ज्ञान चंद जी ओंकारलाल जी भींडर
२५) .. मोतीलाल जी किशनलाल जी अंजड़
१) .. मोहनलाल जी लिखमावत भींडर
२ .. धन जी सुन्दर जी गोगा
२) .. छगनलाल जी सुन्दरलाल जी जयपुर
५) .. छगनलाल जी गुलाबचन्द जी मारोठ
१) .. हजारीलाल जी लक्ष्मीचन्द जी अलवर
१) .. विद्याचन्द जी अग्रवाल अजमेर
१) .. सुन्दरलाल जी बाकलीवाल कोटा
२) .. कौनरमल जी ताराचन्द जी सोनी अजमेर
५) .. मार्फत ब्र० प्यारेलाल जी कलकत्ता से

५२॥) मासिक दान

२॥) .. छगनलाल जी महेता उदयपुर
२४) .. धूलचन्द जी दामावत ..
१२) .. सूरजमल जी रंगलाल जी गोहाटी
१२) .. लक्ष्मीनारायन जी सुगनचन्द जी नवादा
२) .. छगनलाल जी जीतमल जी भींडर

१९॥≡) औषधालय

॥) .. हीराचन्द जी बापूचन्द जी उस्मानाबाद
॥) .. मीठालाल जी जैन देहली
३) .. नन्दलाल जी अग्रवाल उदयपुर
३) .. रामलाल जी स्याह उदयपुर
॥) .. धन जी सुन्दर जी हुमड़ गोगा
॥।)॥। .. छगनलाल जी भोजावत उदयपुर
१) .. छोगालाल जी अग्रवाल ..
६) .. पृथ्वीराज जी चितौड़ा उदयपुर
४।=)। .. खेमराम जी भोजावत ..

५॥) कन्या पाठशाला

॥) श्रीमान मीठालाल जी अग्रवाल देहली
५) .. त्रि भुवनदासजी दयालजी भावनगर

१५) आहार दान में श्रीमान माणकचन्द जी संघवी इडोक

५६॥=)॥ भोजन फीस में छात्रों से आये

६) दि० जैन धर्मशाला

॥) .. मीठालाल जी अग्रवाल देहली
॥) .. धनजी सुन्दरजी हुमड़ गोगा
५) .. त्रिभुवनदास जी दयालजी भावनगर

२४५॥।-)॥ मीजान

जनवरी १९३५ ईस्वी

१६१॥) साधारण दान

१) श्रीमान हीरालालजी नाथूलालजी चौकसी सूरत
१) .. सूरजमल जी पोरवाड सीहोर

२ .. चन्दनलालजी गम्भीरमलजी किशनगढ़
२ .. फूलचन्द जी मांगीलाल जी निमाज
१०१) राव सेठ स्वरूपचंदजी हुकमचन्द जी इंदौर
२१) .. परसराम जी दुलीचंद जी इंदौर
५) .. नन्दराम जी नाथूलाल जी इंदौर
१) .. वक्तराम जी हाथीरामजी भींडर
२) .. गोरीलाल जी अजमेरा भीलवाड़ा
४) .. गेंदालाल मोहनलाल जी ऋषभदेव
॥) .. श्यामलाल जी पन्चार राघोगढ़
५) .. केसरीचंदजी घेवरचंदजी कोलियाग्राम
१) .. एक यात्री भाई ह० नाथूलाल जी
१) .. जगदीशप्रसाद जी देहली
२) .. नलादी शंकरलाल जी पन्नालाल जी प्रतापगढ़
१ .. देवीचन्द जी फूलचन्द जी गढ़ी
१) गेन्दमल जी लखमीचन्द जी परतापगढ
२) .. कौशकरणसिंह जी प्रहलादसिंह जी देहली
॥) .. तिलोकचन्दजी गुलाबचन्दजी जलारा
२) .. गंगाराम जी गुलाबचन्द जी धूलिया
३) .. दुलीचन्द जी गुलाबचन्द जी मस्वढ़
१) .. नाथूलाल जी गांधी ऋषभदेव
३) .. शिवनारायनजी छाबड़ा कोर्हीमा
१६१=)मासिकदान
२५॥=) .. लक्ष्मीचन्द जी सोमराम जी कुपिया
११) .. हेड़राय जी मनसुख जी कोठरमा
२४) .. शिवप्रसाद जी कन्हैयालाल जी पलासवाड़ी
२१) आहारदान में श्रीमान सेठ भाई कस्तूरचन्द जी सूरत
४॥।) औषधालय
२॥। श्रीमान छगनलाल जी भोजावत उदयपुर
१) .. फूलचन्द जी मांगी लाल जी निमाज
१) .. चम्पाबाई नागदा कंजड़
१) कन्या पाठशाला—फूलचंद जी मांगीलाल जी निमाज
५२) भोजन फीस में छात्रों के आये

३११॥=)सर्वोदान

उपरोक्त दातारों को कोटिशः धन्यवाद है—अन्य महाशय भी अनुकरण करेंगे।

मार्च १९३४

५) श्रीमान सेठ गणेशलाल जी बिलाला जयपुर
२५) .. कस्तूरचन्द जी मांगीलाल जी नसीराबाद
६) .. चांदमल जी फूलचन्द जी धूलियान
५ .. ऊमचन्द जी पाटनी मु० डिवरूगढ़
५) .. सूरजमल जी मोतीलाल जी खंडवा
१५) .. भूरामल जी बघेरवाल मु० कोटा
६) .. छगनलाल जी नेमिचन्द जी कासलीवाल
२४ .. दयाचन्द जी शुभकरण जी डिबरूगढ़
२४ .. मेघराज जी ऊमचन्द जी ..
१२) धूलालाल जी भवरीलाल जी ..
६) आसूलाल जी हीरालाल जी ..
६) मेघराज जी सूरजमलजी ..
४) मूलचन्द जी बगड़ा र० असाहा
५) रतनलालजी झांझरी इन्दौर
११ मूलचन्द जी छोटेलाल जी ..
४) .. मोहनचन्द जी रामेश्वराम जी देहली
१३) .. वक्तावरमल जी सुन्दरलाल जी छाबड़ा मद्द
२३) .. मोहनलाल जी पहाड्या बालचन्द जी कासलीवाल मनीपुर
३२६) कुल जोड़

उपर्युक्त उदार धार्मिक सज्जनों को अनेक धन्यवाद

भवदीय गुलाबचंद टाया मंत्री
श्री दि० जैन विद्यालय उदयपुर

समाचार

पदक मिला—गतवर्ष दानवीर सेठ माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन परीक्षालय बम्बई ने यह निश्चित किया था कि जो छात्र परीक्षालय की सब विषयोंमें शास्त्रीय परीक्षा. पास करेगा उसे परीक्षालय की ओर से स्वर्ण पदक दिया जायगा। हर्ष है कि यह पदक पहिले-पहिल श्री स्याद्वाद दि० जैन महाविद्यालय काशी के छात्र श्यामलाल को गत शोलापुर महोत्सव में प्रदान किया गया है।

उत्तीर्ण हुए—श्री स्याद्वाद विद्यालय से इस वर्ष गवर्नमेंट संस्कृत कालेज कलकत्ता की दि० जैन न्यायतीर्थ परीक्षा में राजकुमार नं० २ और रामचन्द्र, काव्यतीर्थ में किशोरीलाल और बाबूलाल तथा श्वे० जैन न्यायतीर्थ चन्द्रशेखर छात्र उत्तीर्ण हुए हैं। इनमें से राजकुमार नं० २ और चन्द्रशेखर छात्र प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए हैं।

पन्नालाल चौधरी

सुप०

मान्यवर महोदय!

यहां पर ता० ६ मई से १३ मई १९३४ तक श्री जिन मन्दिर वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव है। इस अवसर पर ता० ११ व १२ मई को जैन विद्यार्थी मण्डल का द्वितीय अधिवेशन होना निश्चित हुआ है। विद्यार्थियों तथा नेताओं को पधारने की कृपा करनी चाहिये।

बलवीरचन्द्र जैन एडवोकेट

मुजफ्फरनगर

श्री पार्श्व० दि० जैन विद्यालय उदयपुर से पं० कन्हैयालाल जी न्यायतीर्थ का अप्रैल माह से अध्यापन संबंधी संबंध छूट गया है।

पृथ्वीराज चिप्लोड़ा

स० मंत्री

भेलसा—यहां पर महावीर जयंती बड़े समारोह के साथ मनाई गई प्रातःकाल प्रभात फेरी होते हुए श्री बड़े मंदिर जी में एकत्रित होकर कलशाभिषेक कर के भगवान महावीर का पूजन बड़े समारोह से किया गया श्री जैन नवयुवक मंडलका द्वितीय वार्षिक अधिवेशन सेठ नाथुलालजीके सभापतित्वमें हुवा जिस में दानवीर श्रीमंत सेठ लक्ष्मीचन्द जी को मान पत्र दिया गया।

जैन नवयुवक मंडल भेलसा

धन्यवाद—श्रीमान ला० नानकचन्द जी मुलतान ने अपने विवाहोपलक्ष्य में जैनदर्शन को पचास रुपये प्रदान किये हैं। आपको धन्यवाद है।

२८ अप्रैल को लखनऊ से २५ मील दूर शाहपुर नामी गाँव में आग लग गई। सारे का सारा गाँव जल गया। २ लड़कियां एक मकान में रह गई थीं छत गिरने से पहिले उन्हें बचा लिया गया। ३० घर निराश्रित हो गये। सारा गाँव अन्नाभाव के कारण भूखा है।

नयी देहली २९ अप्रैल करोल बाग में एक नौजवान चम्पा नामक हिन्दू स्त्री के दो लड़के पैदा हुए हैं जिन के सिरों पर सींग है। बहुत से लोग इन बच्चों को देखने के लिये आ रहे है। यह जोड़े बच्चे कुछ घण्टे हो जाये।

———

REGD. N. L. 3459.

अजितकुमार जैन के प्रबन्ध से अकलंक प्रिंटिंग प्रेस, मुलतान में छपकर प्रकाशित हुआ।

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुख-पत्र

वर्ष २ अंक २१

जैनदर्शन

१६ मई-१९३५ ई० वैशाख सुदी १३ गुरुवार

डोरनकल उत्सव

डोरनकल हैदराबाद दक्खिन में एक कस्बा है। यहां दि० जैनियों के पांच घर है। इनमें श्री मांगामल कन्हैयालाल जी मुख्य हैं। यहां ता० २५-३० अप्रेल तक का रथोत्सव था। यह उत्सव पंचायत के नाम पर था किन्तु फिर भी उसमें उक्त सेठ साहब का ही मुख्य हाथ था।

उत्सव सानन्द समाप्त होगया। बाहर के भी भाई आये थे किन्तु संख्या थोड़ी थी क्योंकि इधर जैन लोग कम है। सब भाइयोंने स्वाध्यायादि के नियम लिये, अपनी शङ्काओं के समाधान किये। इस उत्सव में इधर की जनता को बहुत लाभ हुआ है। फूलमाल भी ८११) में उक्त सेठ साहब ने ही पहिनी थी। दूसरी संस्थाओंको भी दान किया। शास्त्रार्थ संघ को करीब ४०० के सहायता मिली है। ३ लाइफ मेम्बर बने हैं और शेष सहायता स्वरूप प्राप्त हुआ है। इस में संघ के महामन्त्री महोदय के अतिरिक्त महासभा के महोपदेशक पं० विद्यानन्द जी पधारे थे। उत्सव में सम्मिलित होने वालों में सेठ शान्तिलाल जी धर्माधार का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है। आप शान्त स्वाभावी धर्मात्मा हैं। इस प्रान्त में आपका बहुत प्रभाव है। आप भी संघ के आजन्म सदस्य बने हैं।

संवाददाता

धन्यवाद— श्रीमान ला० प्यारेलाल जी सेठी खजांची इम्पीरियलबैंक हाथरस ने अपनी मृत्यु समय जैनदर्शन को ४) रु० प्रदान किये हैं। आपकी आत्मा शांति लाभ करे ऐसी भावना है। —मैनेजर

सम्पादक—
पं० चैनसुखदास जैन न्यायतीर्थ, जयपुर
पं० अजितकुमार शास्त्री मुलतान, पं० कैलाशचन्द शास्त्री बनारस

वार्षिक ३) एक प्रति ≡)

समाचार

लार्ड किचनर कैसे डूबे ?

—महायुद्धके समय ५ जून १९१६ ई० को अचानक हेम्पशायर नामक जहाज के नष्ट होने और ब्रिटेन के सर्वोपरि सैनिक अफसर लार्ड किचनर के समुद्र के गर्भमें समा जाने का रहस्य अब तक किसी की समझ में नहीं आया है। हाल में ही इस विषय में पोलेण्डके कोसशियजको नामक जहाज के कप्तान बोरकोस्की ने बड़ी विचित्र बात सुनायी है।

उन्होंने किसी जर्मन अफसर के कथन के आधार पर प्रकट किया है कि

दोजर्मन जासूस जाली पासपोर्ट लेकर इसी कार्य के लिये लण्डन पहुंच गये थे। उन्हों ने अवसर पा कर उक्त जहाज के दो माझियों को मार डाला और उनके वस्त्र स्वयम् पहन कर हेम्पशायर जहाज पर काम करने लगे। मौका पाकर जहाज के बारूदखानेमें आग लगादी और इसी तरह अपने देश के लिये प्राण देते हुये जर्मनी के सबसे बड़े और शक्तिशाली शत्रुका भी नाश कर दिया।

—लन्दन के एक बगीचे में एक विचित्र मुर्गी रहती है। यह मुर्गी विचित्र इस लिये है—उसके एकके बदले दो सिर हैं और दो चोंच भी हैं। दोनों चोंचों से वह खा सकती है।

—इटली में ऐसे चार ज्वाला मुखी पर्वत हैं, जिनसे कि बोरिक एसिड नामक पदार्थ निकलता है। तीन ज्वाला मुखियों में के पहले में से २३००००; दूसरे में से १७००० और तीसरे में से १००००० किलोग्राम (एक किलोग्राम अर्थात् लगभग २॥ सेर) बोरिक एसिड निकलता है; चौथे ज्वालामुखीमें से १०००००० किलोग्राम बोरिक एसिड निकलता है।

—स्पेन के साहली समुद्र में एक मछली पाई जाती है, जो इस कदर अण्डे देती है कि, अगर उसकी ५ नस्लों के अण्डों को एक जगह जमा किया जाय, तो उनका वजन पृथ्वी के वजन से सात गुना अधिक हो जायगा।

—लन्दन का समाचार है कि लन्दन और नार्थ ईस्टर्न रेलवे के अन्य स्टेशनों के प्लेटफार्मों पर रबर के फर्श लगाने का निश्चय किया गया है, ताकि रात के समय जब मुसाफिर चलें तो सोते हुए मुसाफिरों की नींद में खलल न पड़े।

—बर्लिन की खबर है कि डिपी कस्बे में लोहे के जमाने की एक कब्र खोदी गई है जिसमें एक मुर्दे का अस्थि पिंजर मिला है और पास ही मक्खन पड़ा था यह कब्र २७०० वर्ष की बनाई जाती है।

—टोकियोकी खबर है कि जापान सरकार के हुक्म से विज्ञानशालाओं में एक ऐसी गैस ईजाद की गई है, जो दिन को रात में परिवर्तित कर सकती है। वह समुद्र और पृथ्वी सब जगह धुंवा ही धुंवा फैला सकती है।

—दुनियां में सबसे छोटा हवाई जहाज जर्मनी में बना हुआ है। उसका वजन ११५ पौण्ड है। उसका मूल्य अर्थात् लगभग ३००० रु० है। इस वायुयानका पंखा सरलता से घुमाया जा सकता है। ६ मिनट में यह ३२५० फीट ऊँचा उड़ सकता है। एक घण्टे तक उसे उड़ाने का खर्च लगभग दो रु० होता है। इसकी गति एक घण्टे में ८० मील की है।

—अंग्रेजी में १३ का अंक अच्छा नहीं माना जाता; बल्कि इसे अपशकुन माना जाता है। एक बार केनिंग्स्टन की विवाह दर्ज करने वाली कचहरीमें उपस्थित होते ही एक महिला बोल उठी—इस कमरे में १३ सज्जन उपस्थित हैं, इस कारण मैं विवाह करने से इनकार करती हूँ।

अकलंकदेवाय नमः
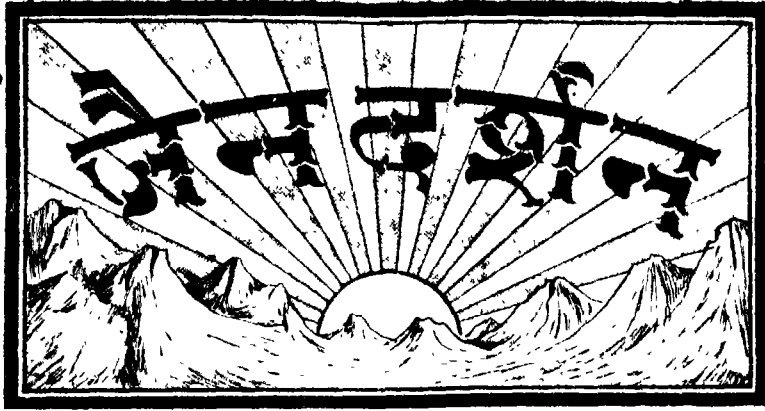
श्री जैनदर्शनमिति प्रथितोग्ररश्मिर्भर्ष्माभवन्निखिलदर्शनपक्षदोषः,
स्याद्वादभानुकलितो बुधचक्रवन्द्यो भिन्दन्तमो विमतिजं विजयाय भूयात्

वर्ष २ | श्री वैशाख सुदी १३—गुरुवार श्री वीर सं० २४६१ | अङ्क २१

साधना

ज्योत्स्ना सी उदासीन।

(१)

दीप शिखा सी ऊर्ध्वगामिनी,
सूर्य प्रभा सी विश्व तापिनी,
चन्द्रकान्त-सी शांति दायिनी
पावन अलख अदीन।

(२)

तीक्ष्ण खड्ग सी निशित धार हो,
अलस मन्द मदमस्त भार हो,
सुख निवृत्ति की पूर्ण हार हो,
तुझे न पाते दीन।

(३)

जीवन का साफल्य हृदय में
रख कर चलती सदा विजय में—
तेरा वास सनातन रहता,
तू केवल स्वाधीन।

(४)

विकट वनों में रह कर जोगी
तुझे खोजते रहते, भोगी—
सदा दूर रहते हैं तुझ से,
साहस बुद्धि विहीन।

(५)

झकोर तू आत्म लालसा,
तुझे भासता जगत आलसा,
आत्म कृत्य में निरालसा तू
रहती है लवलीन।

(६)

आकर पास चली जाती फिर
कभी न रहती योगी थिर थिर
दुखमय जीवन को तू सुखमय
कर देती स्वाधीन।

—चैनसुखदास जैन।

मुख-शुद्धि और उसके साधन।

(ले० श्रीमान पं० श्रीप्रकाश जैन न्यायतीर्थ)

स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए मुख शुद्धि आवश्यक साधन है। जो लोग मुख की शुद्धि पर विशेष ध्यान नहीं देते, उनका स्वास्थ्य सुन्दर नहीं रहता। ऐसे मनुष्यों के अनेक व्याधियाँ पैदा हो सकती हैं, जिनका परिणाम बड़ा ही भयङ्कर होता है। बड़े २ डाक्टर और वैद्यों का कहना है कि अनेक रोग ऐसे हैं जिनका मुख को शुद्ध न रखना ही प्रधान कारण होता है। क्योंकि हम लोग जो कुछ भी खाते हैं, वह मुख के द्वारा हो कर ही उदरस्थ होता है। किसी भी चीज को खा चुकने पर मुंह को साफ न करने से उसका बहुत सा अंश दाँतों की जड़ों में जमा रह जाता है और उसमें कीट पैदा होकर उसे विष-रूप परिणत कर देते हैं। पुनः जब हम कुछ खाते हैं, तब वह नवीन पदार्थ उस दांत आदि स्थानों में लगे हुए पुराने अंश से मिलने लगता है और विकृत बन जाता है। इस भांति मुख को शुद्ध न रखने के कारण हमारे स्वास्थ्य की घातक प्रक्रियाका सहज ही में प्रादुर्भाव हो जाता है। डाक्टरों का मत है कि "रोग के प्रतिशत परमाणु मुख के मार्ग से ही शरीर में प्रवेश पाते हैं।" इसी कारण मुख शुद्धि के महत्व को सूचित करने के लिए ही श्री सोमदेव ने कहा है:—

"संध्यास्वधौतमुखपात्रं ज्येष्ठा देवता नानुगृह्णाति।"

यहां मुख धोने का मतलब सिर्फ मुंह को ऊपर ऊपर से जरा सा जल लेकर धो डालना ही नहीं है किन्तु जिस किसी प्रकार से मुख अच्छी तरह शुद्ध हो सके, ग्रन्थकर्ता ऐसा अभिप्राय सूचित करता है इसी लिए आगे लिखा है:—

"नित्यमदन्तधावनस्य नास्ति मुखशुद्धिः।"

अर्थात जो प्रतिदिन दांतों को धो कर साफ नहीं करता उसके मुख शुद्धि नहीं होती। बात भी यह बिलकुल सत्य है, क्योंकि जब तक दांत अच्छी तरह साफ नहीं किये जाते उनमें थोड़ा बहुत भोज्य पदार्थ का अंश लगा ही रहता है। इस अंश को यदि कई दिन तक लगा ही रहने दिया जाय, तो इस में विषैले सूक्ष्म कीट पैदा हो जाते हैं और दाँतों की जड़ों को काटने लगते हैं। जिस से कि कुछ थोड़े दिनों बाद दांत हिलने लगते हैं और पतनोन्मुख हो जाते हैं। दांतों के असमय में ही गिरने लगने से भोजन अच्छी तरह नहीं चबाया जाता, जिसके परिणाम स्वरूप पचन-क्रिया के बिगड़ जाने से जठर मन्द हो जाता है और शरीर में अनेक रोग घर कर लेते हैं। जिससे मनुष्य कभी भी नीरोग और दीर्घ आयु व्यतीत नहीं करता।

मुख शुद्धि के लिये दांतों को धो लेना ही पर्याप्त नहीं, दांतों के आगे डाढ़ों, मसूड़ों और जीभ पर का मैल भी साफ करना आवश्यक है। इस मैलके साफ न करने से यह सड़ने लगता है और दांतों को भी सड़ाने लगता है। देखने में बहुत बुरा मालूम देता है, जिससे प्रत्येक मनुष्य को घृणा होने लगती है। मैं समझता हूँ, यदि इस मैल को स्वयं रोगी भी देखे

तो उसे भी असह्य प्रतीत हुए बिना न रहेगा। कई मनुष्यों के मुँह से तो यह मैल इतना अधिक सड़ने लगता है, जिससे पास में बैठे हुए व्यक्तियों का मन भी बहुत खिन्न होजाता है। जो लोग मुँह को साफ़ रखते हैं, उनके मुँह से ज़रा भी दुर्गन्ध नहीं आती और उनका मन भी प्रसन्न रहता है। इस लिए चित्त को प्रसन्न रखने के लिए और स्वास्थ्य को सुन्दर बनाने के लिए मुख शुद्धि जैसे आवश्यक कार्य में त्रुटि न होने देना चाहिए। श्री सोमदेव ने लिखा है:—

"न कार्यव्यासङ्गेन शारीरं कर्मोपहन्यात।"

अर्थात्— किसी कार्यान्तर के होने पर भी शारीरिक कर्म में त्रुटि मत करो। ग्रन्थकर्ताने उपर्युक्त वाक्य लिख कर शारीरिक स्वच्छता का अधिक महत्व प्रकट कर दिया है। एक प्रसिद्ध डाक्टर साहिब ने अपने भाषण में कहा था:—

The mouth is the gateway of the body and guards it as a general guards the gate of the fort. अर्थात् मुख शरीर रूपी किले का मुख्य द्वार है। जिस प्रकार एक सुदक्ष सेनापति किले के द्वार की रक्षा करता है उसी प्रकार यह भी हमारे शरीर की रक्षा करता है इससे मुख को स्वच्छ रखने की उपयोगिता अपने आप प्रकट है।

मालूम नहीं वर्तमान का सभ्य समाज जो सभ्यता की घुड़ दौड़ में अपने को बहुत साफ़ सुथरा देखना चाहता है, मुख शुद्धि जैसे आवश्यक कर्तव्य की ओर ध्यान क्यों नहीं देता। इस समय प्रतिशत ७०-८० से भी अधिक व्यक्ति ऐसे मिल सकते हैं, जो मुख शुद्धि के लिहाज से सभ्य नहीं कहे जा सकते। स्कूल और कालेज के विद्यार्थी जो दूसरों को ज़रा सा गन्दा देख कर 'दूर रहो' कहने लगते हैं उनमें मुख शुद्धि के प्रति उपेक्षा भाव और भी अधिक दिखाई पड़ते हैं। न मालूम दुर्गन्धिसे चिढ़ रखने पर भी इन विद्यार्थियों को अपने मुंह के अन्दर की यह दशा कैसे सह्य हो जाती है। अस्तु,

मुख शुद्धि के लिए भारतीय प्रणाली में दातुन का बहुत अधिक महत्व है। प्रारम्भ से ही भारतीय स्त्री और पुरुष मुख शुद्धि के लिए प्रति दिन दातुन करते आए हैं। आज भी मरहट्टे और गुजरातियों में दातुन का बहुत अधिक प्रचार है। स्वास्थ्य वृद्धि के लिए दातुन निः सन्देह उत्तम साधन है। इस लिए प्रति दिन प्रातः काल उठ कर शौच आदि से निवृत्त होते ही दातुन करना आवश्यक है। आयुर्वेद सम्बन्धी ग्रन्थों में अलग अलग वृक्षों की दांतुनों के भिन्न भिन्न लाभ बताए हैं, पर यहां उन सब के विवेचन की आवश्यकता नहीं। दातुन के लाभ बतलाते हुए सुश्रुताचार्य लिखते हैं:—

"तद्दौर्गन्ध्योपदेहौ तु श्लेष्माणं चापकर्षति।
वैशद्यमन्नाभिरुचिं सौमनस्यं करोति च।"

अर्थात्—"दातुन करने से मुँह की बदबू, दांतों का मैल और कफ नाश होता है, उज्वलता अन्न पर रुचि और चित्त में प्रसन्नता होती है।" साधारण तौर पर नीम बंबूल मौलसिरी खैर बड़ आदि में से किसी भी एक की दातुन काम में ली जा सकती है। नीम की दातुन से दांतों में कीड़े नहीं पड़ते और दांतों में दर्द भी नहीं होता बंबूल और मौलसिरी की दातुन से दांतों की जड़ें मज़बूत होती हैं। ऐसे ही अन्य में भी समझना। दातुन के परिमाण के लिए लिखा है:—

"तत्रादौ दन्तधवनं द्वादशाङ्गुलमायतम्" अर्थात् दातुन बारह अंगुल लम्बी करनी चाहिए। पर हमारी समझ मे दांतुन का बारह अंगुल लम्बा होना कोई अनिवार्य नहीं है। हां दातुन साधारणतया इतनी लम्बी अवश्य होनी चाहिए जिससे मुँह आसानी से अच्छी तरह साफ किया जा सके। इस लिए करीब आठ दस अंगुल की दांतुन अवश्य लेनी चाहिए। जिस किसी वृक्ष की भी हो दांतुन न अधिक मोटी हो और न बिलकुल पतली हो, प्रत्युत मध्यम परिमाण वाली दांतुन काम में लेनी चाहिए। यह दांतुन गांठदार और छेद आदि सहित न हो, इसका भी ध्यान रखना चाहिए।

दांतुन को पहले पानी से धोकर धीरे धीरे कुचलकर उसकी महीन ब्रुश जैसी महीन कूँची बना लेना चाहिए और फिर उससे दांतोंको जड़तक धीरे २ रगड़ना चाहिए। जहां तक हो सके दांतुन करते समय इस बातका पूरा ध्यान रखना आवश्यक है कि दांतोंकी जड़ें और सन्धियों (जोड़ों) में मैल अवशिष्ट न रहे। दातुन हरी और ताजा उत्तम होती है। सूखी हुई या बहुत दिनों से पानी में पड़ी हुई दातुन दाँतों को हानि पहुंचाती है। जिनको रोज ताजी दातुन नहीं मिल सकती, उनको भी तीन चार दिन से पुरानी दातुन काम में न लानी चाहिये। क्योंकि सूखी दातुन से दांतों की जड़ और मसूड़ों का छिल सकना संभव है। सूखी दातुन में वह रस भी नहीं रहता जो हरी में रहता है और चित्त को प्रसन्न बनाने के साथ साथ दांतों को भी दृढ़ बनाता है। इस लिये हरी दातुन ही काम में लेनी चाहिये और—

जहां तक हो सके उसके उपयोग में इतनी सावधानी रखनी चाहिए, जिससे दांतों की जड़ और मसूड़ें न छिलने पावें। क्योंकि इनके छिल जाने पर पायोरिया आदि हो जाने की आशंका हो जाती है। दांतों को साफ़ करते समय दिखावट के लिये उन्हें ऊपर-ऊपर से ही सफेद कर लेना ही ठीक नहीं है, मसूड़ों पर का पीलापन और डाढ़ों पर का कालापीलापन भी साफ़ करना चाहिये। जीभ पर जमें हुये मैल को दूर करने के लिये दांतुन कर चुकने पर उसे बीच में से चीर कर दो समभाग करके जीभी बना लेनी चाहिये। अन्य स्थानों पर लगे हुये मैलको दूर न करने पर मुख शुद्धि के लिये दांतों को सफेद निकाल लेना भी व्यर्थ हो जाता है।

जिन्हें सुविधा-पूर्वक दांतुन प्राप्त नहीं हो सकती, उन्हें किसी उत्तम दंत-मञ्जन को काममें लाना चाहिये लेखके अन्तमें लिखे अनुसार मञ्जन घरमें ही बनालेना चाहिये। यदि तैयार न किया जा सके तो बाजार से ले आना भी बुरा नहीं है। पर मञ्जन विश्वस्त होना चाहिये, अप्रामाणिक मञ्जन कुछ भी लाभ नहीं पहुंचाते। आजकल मञ्जनों की खपत देखकर बहुत साधारण मञ्जन सस्ते मूल्य में बिकने लगे हैं जिन में कुछ सुगन्धित द्रव्यों के साथ खड़िया मिट्टी के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। ऐसे मञ्जन कुछ भी लाभ नहीं पहुंचाते। इन बाजारू मञ्जनों की अपेक्षा किसी प्रामाणिक संस्था का टूथ-पाउडर अधिक लाभ पहुँचा सकता है। इस लिये जो मञ्जन लगाने की इच्छा करते हैं, उन्हें कोई विश्वस्त या अनुभूत टूथ-पाउडर खरीद लेना चाहिये। जैसे बंगालकेमिकल कंपनी का 'डेन्टॉनिक'

टूथ पाउडर को काम में लाने वालों को इसका उपयोग विधिपूर्वक करना चाहिये। सेवन की तरकीब बिना जाने अंगुलियों से पाउडर को इधर-उधर लगा

लेने से कोई विशेष लाभ नहीं होता । टूथ-पाउडर काम में लाने वालों को ब्रुश खरीदना आवश्यक है। यह ब्रुश अच्छी होनी चाहिए। बाजार में दो दो पैसे में बिकने वाली ब्रुशें किसी काम की नहीं होतीं इन में अनेक त्रुटियाँ होती हैं, जिनसे जरा सी असावधानीसे बहुत नुकसान सम्भव है। इसलिये उपयोगी शुद्ध ब्रुश खरीदनी चाहिये।

दाँतों को साफ करते समय ब्रुश को केवल ऊपर नीचे ही नहीं फिराना चाहिये, प्रत्युत आगे-पीछे का हिस्सा भी साफ करने की आवश्यक है। यदि बहुत धीरे ब्रुश से मसूड़ों पर भी घिसा जाय तो उत्तम हो, क्योंकि इससे मसूड़ों पर दबाव पड़ेगा, जिससे उनमें कुछ मजबूती आयगी और स्वच्छ भी बन जाँयगे । कई महाशय पाउडर और ब्रुश की सहायता से दाँत साफ करने पर भी उसकी विधि न जानने से उचित लाभ नहीं उठा पाते। इसलिये ब्रुश में थोड़ा सा पाउडर रखकर उपर्युक्त विधिसे सेवन करना चाहिये और ब्रुश को काम में लेते समय मुंह (दांत) को कुछ ऊँचा रखना चाहिये । इससे लाभ यह होता है कि फेन नीचे नहीं गिरने पाते और दांत भी बहुत साफ निकल आते हैं।

मुंह साफ कर चुकने के बाद ब्रुश को अच्छी तरह धोकर रख देना चाहिये और काम में लाने से पूर्व भी धो डालना चाहिये मैल जम जाने पर नवीन नवीन ब्रुश खरीदना चाहिये, मैल वाली ब्रुश से बहुत हानि हो सकती है।

मंजन से दाँत साफ करने वालों को जीभ की सफाई के लिए सोना, चाँदी या तावा की जीभी बनवा लेनी चाहिए और उससे जीभ परका मैल धीरे २ करके उतार डालना चाहिए पर जीभी का उपयोग कठोरता से न हो, अन्यथा जीभ छिल जाने से कष्ट पहुंचने की सम्भावना है।

टुथ पाउडर के अतिरिक्त टूथपेस्ट का भी प्रचार पाया जाता है, पर जहां तक मेरा अनुमान है इस के सेवन से लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होती है। इसलिए टूथपेस्ट का सेवन भूलकर भी न करना चाहिए। अनेक डाक्टरों ने भी टूथपेस्ट का सेवन बुरा बताया है।

जिन लोगों के दाँत प्रारम्भ से साफ नहीं हैं, उन्हें पहले दाँतों पर का मैल साफ करने के लिए प्रयत्न करना आवश्यक है। ऐसे व्यक्तियोंको किसी अनुभवी दन्तचिकित्सक का आश्रय लेना चाहिए। यन्त्र द्वारा या अन्य किसी विधि से डाक्टर या वैद्य के पास साफ न करा कर अपने आप किसी लोह आदि धातु की वस्तु से दाँतों के मैल को खरोच कर उतारने के प्रयत्न में उन पर का कठिन आवरण दूर हो सकता है जिसके उतर जाने पर दांत बहुत रद्दी हो जाते हैं। इस लिए यह काम किसी अनुभवी चिकित्सक से ही कराया जाय तो उत्तम हो। इसके अतिरिक्त एक रेशम की पतली डोरी को दाँतों के बीच में डाल कर इधर उधर खेंच कर के भी दाँत साफ किये जाते हैं, पर यह कोई महत्वपूर्ण नहीं है।

मुख को स्वच्छ रखने के लिए दिन में एक बार सफाई कर लेने मात्र से ही काम नहीं चल सकता । भोजन के बाद भी मुँह को साफ करना आवश्यक है चबाते समय भोजन के बहुत से अंश दाँतों की सन्धियों और जोड़ों में लगे रह जाते हैं, यदि भोजन

के बाद कुल्ला करते समय इन अंशों को सावधानी से साफ न किया जाय तो इनमें कृमि उत्पन्न होकर दाँत एवं स्वास्थ्य दोनों का सर्वनाश कर देते हैं।

इसके अतिरिक्त दिन में सो कर उठने पर या जल आदि किसी भी वस्तु का सेवन करने के पूर्व या जब कभी मुँह में कुछ लबाबसा मालूम पड़े उसी समय एक दो बार थोड़ा २ सा जल मुंह में लेकर कुल्ला कर देना चाहिए। इससे चित्त बहुत प्रसन्न रहता है और स्वास्थ्य को भी लाभ पहुंचता है। जिन लोगों की शारीरिक शक्ति ठीक नहीं है और इसी के कारण जिन की जीभ पर अन्य स्वस्थ मनुष्यों की अपेक्षा मल अधिक मात्रा में एकत्रित होता है, उनके लिए किसी भी वस्तु का सेवन करने के पहले कुल्ला कर लेना असाधारण लाभ पहुंचाता है।

सायंकाल भोजन करने के पश्चात और रात्रि को जो नमकका सेवन करते हैं उन्हें शयनके पूर्व जरा सा नमक लेकर दांतों को माँज डालना चाहिए। यदि यह कार्य प्रति दिन कर लिया जाय तो कीटाणुओं के उत्पन्न होने की आशङ्का न रहे।

मुखशुद्धि के लिये बहुत विस्तार से लिखने की आवश्यकता नहीं, हम ऊपर बहुत लिख भी चुके हैं। जो उपर्युक्त साधनों में से किसी को भी करने में समर्थ नहीं, उन्हें कम से कम पिसा हुआ कोयला और नमक इन दोनों को खूब बारीक पीस कर रख लेना चाहिये और थोड़ा थोड़ा प्रति दिन काम में लेते रहना चाहिए। इससे भी दांत साफ रहेंगे और कीटाणुओं के पैदा होने की अधिक सम्भावना न रहेगी। क्योंकि कोयला दांतों की सड़न को दूर करता है और नमक भी बहुत लाभ पहुंचाता है।

जो महाशय इनमें से किसी भी उपाय को न करना चाहें और स्वास्थ्य को भी सुन्दर रखना चाहें उन्हें प्राकृतिक उपायों का आश्रय लेना चाहिए। अधिक कुचल कर और चबा कर खाने वालों को मुख शुद्धि के लिए अधिक श्रम नहीं करना पड़ता। कुचल कर चबा कर खाये जाने वाले पदार्थों का सेवन करने से दांतों का प्राकृतिक व्यायाम हो जाता है, जिससे दांत सफेद भी रहते हैं और मजबूत भी बनते हैं। पर यह कार्य स्वस्थ मनुष्य ही कर सकता है। जिसे ऐसा भोज्य न पच सके जिसकी मेदा शक्ति कमजोर हो उसके लिए उक्त साधन उपयुक्त नहीं है।

जो मनुष्य अपने मुख की शुद्धि के लिए कुछ भी नहीं करते, उनकी अन्त में बहुत दुर्दशा हो जाती है। दांतों में से रक्त निकलना और मुंह का सड़ने लगना तो उनके लिए सुनिश्चित है ही, इसके अतिरिक्त दांतों में कीड़ पड़ जाने पर उनके शरीर को जो जो भीषण रोग आ घेरते हैं, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। प्रारम्भ में प्रति दिन के जरा से आलस्य से आगे मुख शुद्धि न करने वाले जिन जिन संकटों का अनुभव करते हैं, उसे वे ही जानते हैं।

किसी बड़े रोग के हो जाने पर जब डाक्टर से चिकित्सा कराई जाती है, तब वह कहता है तुम्हारे यह दांत बहुत खराब होगये हैं, इनमें कीडे पडे हुयेहैं तुम इन्हें उतरवा डालो तब चिकित्सा हो सकती है, अन्यथा नहीं। पर उनको तो अपने उन सड़े और गले हुये दांतों का भी इतना मोह होता है, जिसके कारण वे उन्हें उतरवाना पसन्द नहीं करते चाहे बिना चिकित्सा हुये रोग से उनके प्राण ही क्यों न चले जांय मुझे ही क्या सभी समझदार व्यक्तियों को इस पर

आश्चर्य होना चाहिये। मालूम नहीं, ऐसे मनुष्य अपने प्राणांत की सामग्री जुट जाने पर भी व्यर्थ के सौन्दर्य का मोह नहीं छोड़ते। इन पंक्तियों के लेखक ने ऐसे कई स्त्री पुरुषों को देखा है, जिन्हों ने इसी कारण से रोगके बढ़ जाने पर भी अपने दांतों को उतरवाना नहीं चाहा। ऐसे व्यक्तियों का इसी दन्त रोग के कारण निश्चित रूप से असमय में ही प्राणान्त हुए बिना नहीं रहते। क्योंकि दन्तरोग से उत्पन्न होने वाली व्याधियां, जब तक निकम्मे दान्त न उतरवा दिये जांय शान्त नहीं होतीं। क्योंकि उन रोगों की जड़ दांतों के कीट हैं, जब तक दांत न उतरवाये जांय, वे समूल नष्ट कैसे होंगी ?

इसलिये दांतों में कीटों के उत्पन्न होते ही बिना किसी प्रकार का सकोच किये किसी अनुभवी चिकित्सक से उन्हें उतरवा देना चाहिये, सड़े हुए दांतों का मोह करना व्यर्थ है। ऐसे दांतों के रहते हुये इन में लगे हुए कीट अन्य सब अच्छे दांतों को भी धीरे-धीरे नष्ट कर देते हैं, जिससे फिर संभलने में बहुत कठिनाई होती है। अनेक मनुष्य यह विचारा करते हैं, दांतों के उतरवाने में बहुत कष्ट होता है, इससे आँखों की रोशनी आदि भी कमजोर हो जाती है, आदि। पर ये सब शङ्काएं निर्मूल हैं। अनुभवी चिकित्सक के पास दांत उतरवाने से न तो कुछ विशेष कष्ट ही होता है और न आंखों की ज्योति ही न्यून होती है। दांतों के उतरवाने से सौन्दर्य नष्ट हो जाने का प्रश्न भी कोई महत्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि जिनके पास रुपये हैं वे अपने पुराने दांतों से भी सुन्दर नवीन दांत लगवा सकते हैं।

इस लिए पाठकों को विश्वास रखना चाहिए कि मुख शुद्धि में ही शरीर-शुद्धि है, और इसी से स्वास्थ्य स्थिर रह सकता है। एक पाश्चात्य डाक्टर लिखते हैं:— "Take care of your teeth and mouth and your helth will take care of itself." अर्थात्— "आप अपने दांत और अपना मुंह साफ़ रखिए, आप का स्वास्थ्य अपने आप सुधर जायगा।" इस कथन से पाठकों को बहुत कुछ शिक्षा लेनी चाहिये।

ऊपर लिखे हुए मुख-शुद्धि के विधान कुछ कठिन मालूम देते होंगे, पर उन के प्रयोगात्मक रूप बहुत सरल हैं। प्रति दिन मुख-शुद्धि करने वालों को ये कार्य कुछ भी कठिन प्रतीत नहीं होते।

* स्वयं अपने हाथों से दन्त मन्जन बनाने की विधि :—(दन्तशोधक मन्जन) मस्तगी एक तोला, इलायची एक तोला, दाल चीनी एक तोला, कपूर कचरी एक तोला, कपूर चीनी एक तोला, सौंठ एक तोला, काली मिर्च एक तोला कत्था एक तोला, नीला थोथा भुना एक तोला, माजूफल ४ दाना, सफेद जीरा भुना एक तोला, धनियाँ भुना एक तोला, सेंधा नमक दो तोला। इनमें नीला थोथा आग पर रखने से भुन जाता है। जीरा और धनियां किसी बरतन में डाल कर आग पर रखने से भुन जाते हैं। इन तीनों को भूनकर, बाकी सब दवाओं के साथ मिला और कूट पीस कर कपड़ छान कर किसी शीशी आदि में भर कर रख लो और उसमें से थोड़ा सा लेकर प्रतिदिन उपयोग में लाओ।

इसके अतिरिक्त कोई सा भी प्रयोग घर में तैयार किया जा सकता है। हमने यहां घर में बनाने की आवश्यकता एक कारण से प्रकट की है, वह यह कि बाजार में जो कम्पनियों के मंजन, पेस्ट बिकते हैं वे प्रायः जन्तुनाशक (Germicidal) या सड़ावरोधक (Aentiseptic) होते हैं, जिनके सेवन से मसूड़ों को जीवन देने वाले तन्तु अधिकतर नष्ट हो जाते हैं।

विज्ञान के मूल तत्व

(ले०—श्रीमान् बाबू सूरजमल जी जैन)

यह विज्ञान का युग है। इस युग में जो विज्ञान के परीक्षण द्वारा सत्य साबित होता है, उसे अभ्रान्त तत्व माना जाता है, इसी लिए संसार के सब ही लोग अपने २ धर्मों के मूलतत्वों को विज्ञान की कसौटी पर सत्य साबित करने की फिक्र में लगे हुए हैं। कहने का आशय यही है, इस समय विज्ञान इतना अधिक व्यापक हो गया है कि लोग धार्मिक तत्वोंमें भी उसका प्रवेशकरना चाहते हैं। ऐसी बातों को देख कर विज्ञान की सार्वभौमिक विजय प्रत्येक विद्वान को स्वीकार करनी ही पड़ती है। इस लेख में विज्ञान शब्द से हमारा मतलब भौतिक ज्ञान से होगा यह इस लिए कहना पड़ता है कि विज्ञान का वास्तविक अर्थ विशिष्ट ज्ञान होता है, फिर चाहे वह आध्यात्मिक हो या भौतिक।

सब से पहले हमें यह जानना चाहिए कि विज्ञान क्या है, और साथ ही 'विज्ञान का क्या उद्देश्य है' यह भी जानना आवश्यक है। पदार्थों के असली ज्ञान को ही विज्ञान कहते हैं। विज्ञान पहले के स्वीकृत निश्चय को उस समय बदल देने के लिए तैयार रहता है जब कि सत्य परीक्षणों के द्वारा वह पहले वाला निश्चय अन्यथा प्रमाणित कर दिया जाय। इस तरह विज्ञान में असत्य कल्पना की बिलकुल गुंजायश नहीं रहती। इसका उद्देश्य संसार के विभिन्न पदार्थों के ज्ञान को सिलसिलेवार लगाना है। विज्ञान प्रकृति को एक सूत्र में बंधी हुई देखता है। संसार के भिन्न २ पदार्थों तथा उनके द्वारा बने हुए नये पदार्थों की गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न केवल विज्ञान ही करता है। यह ज्ञान के भंडार को दिनों दिन बढ़ाने की कोशिश करता है सारांश में हम यह भी कह सकते हैं कि इसका अंतिम उद्देश्य सर्वज्ञता है। यह बहुज्ञता को ज्ञान की अंतिम सीमा नहीं मानता परन्तु साथ ही वैज्ञानिक यह विचार भी अपने सामने रखता है—

So runs my dream, But what am I?
An infant crying in the night
An infant crying for the light
And with no language but a cry
Lord Tennif Son

अर्थात् यह तो मेरा स्वप्न है, किन्तु मैं क्या हूँ? एक बालक जो रात्रि के अंधकार में प्रकाश के लिये पुकार रहा है। और पुकारना ही जिसकी भाषा है।

वैज्ञानिकों के इस उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये इस विज्ञान वृक्ष की कई टहनियां अथवा शाखायें निकाली गई हैं। उदाहरणार्थ—Astronomy (ज्योतिष शास्त्र) Physics (भौतिक शास्त्र) Chemistry (रसायन शास्त्र) Mineralogy (खनिज शास्त्र) Geology (भूगर्भ शास्त्र) Biology (प्राणि शास्त्र) इत्यादि—

हमारे इस लेख का संबंध प्रधानतया रसायन शास्त्र से है। रसायन मनुष्य का वह प्रयत्न है जिसने उसने संसार के भिन्न २ पदार्थों के, उनकी बनावट के तथा उनके संघर्षणसे होने वाले नये पदार्थोंके ज्ञान को एक सूत्र में बांधा है। रसायन शास्त्र अधिकतर प्रयोगात्मक विज्ञान है।

हरएक युगके दार्शनिकों तथा वैज्ञानिकोंने संसार के बनाने वाले भिन्न २ पदार्थों को Classify वर्गीकरण करनेकी चेष्टा की है। बहुत पुराने दार्शनिक तो संसार को केवल चार तत्वोंसे बना हुआ मानते थे। वे चार तत्व पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि हैं। पृथ्वी ठोस पदार्थों का, जल द्रव पदार्थों का, और वायु गैस रूप पदार्थों का जन्म दाता है। पुराने हिन्दू दार्शनिकों ने एक पांचवां तत्व और माना है, जो शब्द तरंगोंके हलन चलन और उत्पादन में सहायक होता था। यह तत्व अपने गुणों में कुछ २ आजकल के वैज्ञानिक तत्व ईथर (Eather) से समानता रखता है १। पर अब यह चार तत्वों का सिद्धान्त जाता रहा। जब कि जल वायु और पृथ्वी को और भी साधारण तत्वों में विभाजित कर दिया गया। और अग्नि तो केवल Energy का ही एक रूप है। इसको स्वतन्त्र पदार्थ मानने की कोई आवश्यकता नहीं। हां, यह संभव हो सकता है कि पूर्व दार्शनिकों और आधुनिक वैज्ञानिकों के तत्व शब्द की परिभाषा परस्पर में न मिलती हो। जो कुछ भी हो यह सिद्धान्त (four elements theory) अब से दो शताब्दी पहले पूर्ण रूपसे जीवित था और प्रत्येक देशके कवियोंने अपनी २ कविताओं में इसका गान किया है। पर अब तो यह सर्वथा अजीवसा हो गया है।

I must not look upon any body as a true Principle or element which is not perfectly homogeneous but is further resolvable in to any number of distinct substances.—R. Boyb.

१—वायु शब्द तरङ्गों के हलन चलनमें सहायता देती है, न कि ईथर।

अर्थात् मैं इन पदार्थों को तत्व (Clement) नहीं समझता जो homoge neons (स्वयंनिर्मित) नहीं बल्कि और भी साधारण पदार्थों में विभाजित किये जा सकते हैं।

सन् १७८९ के पहले ही लेवोजियर ने तत्व की व्याख्या करते हुये यह लिखा था—

If we apply the term elements or principles to bodies, to express our ideas of the last point which analysis is capable of reaching, we must admit, as elements all substances into which we are able to reduce bodies by decomposition. Not that we are entitled to affirm that these substances which we consider as simple, may not themselves be compounded of two, even if a greater number of more simple principles but since these principles can not be separated or rather since we have not hither to discovered the means of separating them, they are, with regard to us, as simple substances and we ought never to suppose them compounded until experiment and observation have proved them to be so.

अर्थात हम जब पदार्थों को भी साधारण और शुद्ध पदार्थों में विभाजित करते हुए ऐसी हद पर पहुंचते हैं, जब कि हम उनको फिर और भी शुद्ध पदार्थों में विभाजित नहीं कर सकते, तब उनको तत्व (Clements) कह देते हैं। हम इस लिए उन को तत्व नहीं मानते कि उनके और साधारण पदार्थों में टुकड़े नहीं हो सकते, बल्कि इस लिये कि हम अभी किसी तरह टुकड़े नहीं कर सकते। और हमारा ऐसा

मानना ठीक भी है, जब तक कि प्रयोगों द्वारा उनके टुकड़े नहीं किये जा सकें।

संसार के सारे ज्ञात पदार्थों को लग भग ८० तत्वों में विभाजित किया जा सकता है। उदाहरणार्थ वायु को दो गैसों में, तूतिया को तांबे आक्सीजन और गंधक में, पानी को हाइड्रोजन और आक्सीजन में, गंधक के तेजाब को हाइड्रोजन गंधक और आक्सीजनमें, नमकको सोडियम और क्लोरिन में, लोह भस्म को लोह और आक्सीजन में विभक्त किया जा सकता है। अतः उपरोक्त पदार्थ शुद्ध तत्व नहीं माने जा सकते। बल्कि वायु को (जो कि एक मिश्रण है) छोड़ कर सब यौगिक (Compound) हैं। परन्तु अभी तक कोई भी रसायन शास्त्र वेत्ता आक्सीजन को आक्सीजन के सिवाय दूसरे पदार्थों में और गंधक को गंधकके अतिरिक्त अन्य पदार्थों में, तांबे को तांबे के अलावा दूसरे पदार्थों में विभक्त नहीं कर सका। अतः हम इनको तत्व कह सकते हैं। पहले कई पदार्थों को तत्व माना जाता था क्योंकि प्रयोग द्वारा उनको साधारण पदार्थों में विभक्त नहीं कर सके। परन्तु उन पदार्थों के भी इस जमाने में कई टुकड़े हो गए हैं। इस लिए उनको तत्व मानना छोड़ कर उनके बजाय कई दूसरे तत्व स्वीकार कर लिए गये। पुराने रसायन शास्त्रवेत्ताओं ने साधारण धातुओं को स्वर्ण में परिवर्तित करने की बहुत कोशिश की। किन्तु जब कभी भी उन्होंने स्वर्ण रहित पदार्थों के साथ प्रयोग किया, फल उनके पक्ष में नहीं निकला। यद्यपि यह विचार बिलकुल असत्य और मूर्खता पूर्ण नहीं कहा जा सकता किन्तु फिर भी अब तक किसी को भी साधारण धातुओं को स्वर्ण में बदलने की सफलता नहीं मिली।

तमाम संसार के पदार्थ साधारणतः अवस्था में ३ दशाओं में पाये जाते हैं। अर्थात् कोई भी पदार्थ या तो ठोस होगा, नहीं तो द्रव और गैस के रूप में मिलेगा। परन्तु वे विशेष साधनों द्वारा एक दशा से दूसरी दशा में परिवर्तित किये जा सकते हैं। जैसे सोना साधारण रूप में ठोस होता है, परन्तु स्वर्णकार सुहागा इत्यादि के साथ उसको द्रव के रूप में कर लेते हैं। और इसका सूर्य के चारों तरफ गैस के रूप में होना भी अनुमान किया गया है। ऐसे ही हाइड्रोजन साधारण अवस्था में गैस दशा में पाया जाता है। परन्तु इस को भी वैज्ञानिकों ने साधनों द्वारा द्रव तथा ठोस दशा में भी प्राप्त कर लिया है।

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, जिन मूलतत्वों का अभी तक पता लग चुका है संख्या में वे करीब ८० हैं। उनमें अपनी साधारण अवस्था में कुछ ठोस कुछ द्रव तथा कुछ गैस हैं। उन तत्वों में से कुछ के नाम नीचे देकर हम इस लेख को समाप्त करते हैं। Aluminium (अल्यूमिनीयम) Copper (तांबा) Gold (सोना) Silver (चांदी) Iron (लोहा) Helium (हीलियम) Nitrogen (नाइट्रोजन) Mercury (पारा) Oxygen (आक्सीजन) Carbon (कार्बन) Nickel निकिल) Tin (टिन) Sulphur (गंधक) इत्यादि

जिन तत्वों का अभी हाल ही में आविष्कार हुआ है। उनमें से कुछ ये हैं। Argon, Helium, Krypton, Neon, Xenon इत्यादि

—※—

निमित्त ज्ञान के भेद

(ले० श्रीमान पं० भंवरलाल न्यायतीर्थ)

इस संसार में सर्व श्रेष्ठ प्राणी मनुष्य है, इस लिये किसी भी ज्ञान का उपयोग सबसे अधिक उसी की भलाई के लिये होता है। उसकी यही इच्छा बनी रहती है कि वह त्रिकालज्ञ होजाय। कमसे कम भविष्य की घटनाओं को पहिले ही जान लेने की तो उसकी उत्कट इच्छा बनी ही रहती है। मनुष्य की इसी उत्कट इच्छा ने ज्ञान विज्ञान के अनेक विभागों का आविष्कार कर संसार के ज्ञान भंडार को बहुत विस्तृत बना दिया। हां यह सब कहा जा सकता है कि वह अभी तक इतना विस्तृत नहीं होसका है कि उसका विस्तार और आगे न किया जासके। संसार के सुखमें वृद्धि करने के लिए ज्ञान में वृद्धि करना नितान्त आवश्यक है। यही जानकर प्राचीन और अर्वाचीन विद्वानों ने ज्ञान और विज्ञान के अनेक विभागों को प्रादुर्भूत और वृद्धिगत किया और उस ज्ञान को बहुत अधिक महत्व दिया गया जो पहिले से ही भविष्य घटनाओं के पता लगाने की विधि को बतलाने में समर्थ है। मैं इस लेख में उन आठ ज्ञानों का संक्षेप में वर्णन करूंगा जो बाह्य पदार्थों के निमित्त से आगे होने वाले वृत्तान्तों को जान लेते हैं और इसी लिये जिन्हें निमित्त ज्ञान कहा जाता है।

कुछ दिन पहले मैं ने "जैन दर्शन" में हिन्दी के सुयोग्य लेखक श्रीमान मोहनलाल जी बड़जात्या का स्वप्नों के सम्बन्ध में एक लेख पढ़ा था। इसके बाद श्रीमान् मास्टर पांचूलाल जी काला द्वारा लिखित अंगुष्ठ विज्ञान वाले सामुद्रिक विषयक तीन चार लेख भी मेरे देखने में आये। यह स्वप्न ज्ञान और सामुद्रिक तो अष्ट महानिमित्त ज्ञान के भेदों में से हैं, इस लिए मेरी इच्छा हुई कि मैं निमित्त ज्ञान के सम्बन्ध में कुछ संक्षेप वर्णन "जैन दर्शन" के पाठकों के सामने रक्खूँ। यद्यपि मैं कोई सामुद्रिक शास्त्र वेत्ता अथवा निमित्त ज्ञानी नहीं हूँ किन्तु फिर भी मैंने हिन्दी तथा संस्कृत ग्रन्थों में इस सम्बन्ध में जो भी कुछ पढ़ा है उसका सार पाठकों की जानकारी के लिए दे देना उचित समझता हूं।

सर्व प्रथम यह बतला देना उचित होगा कि इस स्वप्न सामुद्रिक शकुन आदि शास्त्रों के सम्बन्ध में लोगों के भिन्न २ मत हैं। कोई तो इन पर बिलकुल ही विश्वास नहीं करते और यहाँ तक कह देते हैं कि यह सब तो बुद्धिमान लोगों ने अपनी आजीविका के लिये एक तरह का व्यापार निकाला है। 'बुद्धि-पौरुषहीनानां जीविका धातृनिर्मिता' आदि चार्वाकका श्लोक यहाँ भी लागू हो सकता है। इस सम्बन्ध में उनकी श्रद्धा गिर जाने के कारण यह हैं कि इन स्वप्न शास्त्र आदि में लिखी हुई बातें ठीक साबित नहीं होतीं और एक कारण यह भी है कि इन विद्याओं को अच्छी तरह जानने वाले लोग अब नहीं रहे इनके सम्बन्ध में प्राचीन विद्वानों ने जो ग्रन्थ लिखे हैं उनमें पारस्परिक अत्यधिक मतभेद होना भी अश्रद्धा का एक कारण हो सकता है। पीछे के ब्राह्मण लोगों ने अपने स्वार्थ के लिये जो अति कर डाली है उसके कारण इस विद्या का वास्तविक

महत्व लोगों के हृदय से हट गया। कुछ भी हो हम एकदम यह नहीं कह सकते कि निमित्त ज्ञान एक अविश्वसनीय वस्तु है। हम लोगों को इसका गहरा अनुभव कर इसकी सत्यता की जाँच करनी चाहिये। अस्तु

निमित्त ज्ञान का अर्थ यह है निमित्तों द्वारा भविष्य घटनाओं को जान लेना। प्रायः पुराणों में ज्योतिष विद्या का ज्ञान रखने वाले लोगों के लिये निमित्त ज्ञानी शब्द का प्रयोग हुआ है। इस लिये भविष्य घटनाओं को वर्णन करने वाला ज्ञान ही निमित्त ज्ञान कहलायगा। जैन शास्त्रों में भी इस ज्ञान का वर्णन आया है। पुराणोंमें तो इसके अनेक उदाहरण मिलेंगे। श्री भट्टाकलंक देव ने अपने राजवार्तिक में ऋद्धियोंका वर्णन करते हुए बुद्धि ऋद्धि के अठारह भेद बतलाये गये हैं। उसमें पन्द्रहवाँ भेद अष्टांगमहानिमित्तज्ञता है, और उस महानिमित्त ज्ञान के आठ भेद बतलाये गये हैं वे यह हैं:—१ अंतरिक्ष २ भौम, ३ अंग, ४ स्वर ५ व्यञ्जन, ६ लक्षण, ७ छिन्न, ८ स्वप्न।

सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारे इनकी गति, संक्रमण, सम्मिलन अथवा किसी भी प्रकार के परिवर्तन से जो भविष्य घटनाओं को जाना जाता है वह अंतरिक्ष निमित्तज्ञान कहलाता है। अंतरिक्ष का अर्थ आकाश है और ये सब ग्रह अथवा उपग्रह आकाश में ही रहते है इस लिये इनके द्वारा होने वाले ज्ञान को अंतरिक्ष कहा जाता है। जन्म कुंडली वर्ष, शताब्दी या सहस्राब्दी का फल इसी ज्ञान के आधार पर बन सकता है, पर अंतरिक्ष ज्ञान की बहुत सी बातें नहीं मिलतीं इस लिये इसपर लोगोंको विश्वास नहीं होता। मनुष्य के जीवन से इन साखों मील दूर रहने वाले ग्रहों का जो स्थूल सम्बन्ध है वह तो हर एक को समझ में आजाता है, पर इनके सूक्ष्म सम्बन्धकी जटिल समस्या ज्योतिर्विद् विद्वान भी नहीं सुलझा सकते। यही ज्योतिष पर अविश्वास होने का कारण है। जब एक साधारण आदमी किसी ज्योतिषी से यह प्रश्न करता है एक ही समय में जन्म लेने वाला चाण्डाल का पुत्र और राज कुमार बराबर क्यों नहीं हो जाता? तो सैकड़ों हाथों की जन्मपत्री बना डालने वाला ज्योतिषी इस प्रश्न का कोई जवाब नहीं देता। जब ग्रहों का प्रभाव सबपर बराबर पड़ता हैं तो उन दोनों में इतना महान अंतर क्यों होना चाहिये? यह प्रश्न इसी युगके नहीं हैं। बहुत प्राचीन काल में ऐसे प्रश्न उठाये जाते थे और ज्योतिषी इसका ठीक समाधान नहीं कर सकते थे। इसके अतिरिक्त पीछे के लोगों ने (जैसा कि हमने पहले कहा है) विज्ञान के इस विभाग में योगिनी, कालराहु, गण आदि को प्रवेश कर इसकी सत्यता को बहुत कुछ छिपा दिया हर एक कामके पहिले मुहूर्त का विचार आवश्यक बतला कर ज्योतिष को भी मानो अन्ध श्रद्धा के शिखर पर बिठला दिया। ज्योतिष ग्रन्थों को देखने से पता चलता है कि उनमें चोरी आदि पाप कार्यों के लिये भी मुहूर्त बतलाये गये हैं। खाना, पीना, उठना, बैठना सोना, कपड़े पहनना, बाल बनवाना, तेल लगाना आदि साधारण दैनिक कृत्यों के लिये भी मुहूर्तों का निर्माण कर इस विद्या को जानने वालों ने दूसरे लोगों को सर्वथा अपने आधीन बना लिया, पर एक विचारक इसको अन्धश्रद्धा के अतिरिक्त और कुछ नहीं मान सकता, जबकि वह यह देखता है कि इन्हीं उल्लिखित कार्यों

को बिना मुहूर्त के करने वाले लोगों की कोई हानि नहीं होती बल्कि इसके विपरीत उन लोगों को कठिनाइयों का अधिक सामना करना पड़ता है जो पद पद पर इन मुहूर्तों के पचड़े में फंस कर अपना समय अधिक बर्बाद कर डालते हैं। मेरे इस लिखने का यह अर्थ नहीं है कि मैं ज्योतिष शास्त्र को सत्य नहीं मानता। मैं केवल यह लिखना चाहता हूँ कि इस व्यर्थ की पराधीनता से हानि के सिवाय लाभ कुछ भी नहीं है। कहा जाता है कि गजनी का मुहम्मद जब इतिहास प्रसिद्ध सोमनाथ के मन्दिर पर आक्रमण करने के लिए आया था तब उसके तत्कालीन रक्षकों ने उसके आक्रमण को रोकने के पहले मुहूर्त के देखने में ही कई दिन लगा दिये थे। इसका नतीजा जो हुआ उसको प्रत्येक इतिहास का पाठक जानता है। यात्रा आदि के मुहूर्तों के सम्बन्ध में तो प्राचीन अंतरिक्ष विद्याके आचार्यों मेंभी मत विभिन्नता मौजूद थी जैसा कि इस श्लोक से प्रतीत होता है:—

* उषः प्रशस्यते गर्गः शकुनश्च बृहस्पतिः
अंगरा च मनोत्साहं विप्रवाक्यं जनार्दनः।

अर्थात् गर्गाचार्य कहते हैं कि यात्रा के लिए सब से प्रशस्त समय प्रातःकाल है इस लिए बिना मुहूर्त के ही उषःकाल में रवाना हो जाना चाहिये। पर बृहस्पति नामक आचार्य इस बात को नहीं मानते वे कहते हैं कि शकुनों को देख कर यात्रा का निश्चय करना चाहिए। अंगिरा ऋषि का तो यह कहना है कि प्रातः काल और शकुन दर्शन यात्रा के लिए आवश्यक नहीं हैं उचित बात तो यह है कि जब हमारे मन में यात्रा करने के लिए उमंग और उत्साह पैदा होगया हो वही यात्रा का अत्युत्तम समय है। उसको टालना उचित नहीं. किन्तु भगवान जनार्दन अर्थात् कृष्ण कह रहे हैं कि ब्राह्मण का वाक्य ही यात्रा के लिए सच्चा मुहूर्त है। इस पद्य का चौथा खंड हमें बता रहा है कि यह रचना ज्योतिषियों के निजी स्वार्थ के कारण से हुई है और इससे ज्योतिष की सत्यता पर अविश्वास पैदा हुए बिना नहीं रहता। विप्रवाक्यको इतना अधिक महत्व दे डालना और उसको स्वयं जनार्दन का मत बतलाना हमारे अभिप्राय को बिलकुल स्पष्ट कर देता है। इसी तरह के पूर्वापर विरोध ज्योतिष ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर देखने को मिलेंगे। केवल एक आयु के सम्बन्ध में ही प्राचीन और अर्वाचीन ज्योतिष के विद्वानों में इतने मत भेद सुने जाते हैं कि उन सब के संग्रह करने के लिए भी बहुत स्थान चाहिए। मेरे लिखने का आशय यह है कि यह *अंतरिक्ष विद्या सत्य तो हो सकती है पर उस की* सत्यता की उपलब्धि के साधन पूर्व काल के समान इस समय मौजूद नहीं हैं. क्योंकि जिस विद्या का अध्ययन केवल आजीविका के लिये ही किया जाता है उसकी गहराई तक पहुंच जाना सम्भव नहीं है। इसलिये उसकी सत्यता पर विश्वास करते हुए भी उसके सम्बन्ध में अन्धश्रद्धालु नहीं बनना चाहिये।

दूसरा भेद भौम नामका निमित्त ज्ञान है। जमीन को सूँघकर अथवा उसकी कोमलता, कठोरता, रूक्षता और चिकणतादि को जान कर यह बतला देना कि

* यद्यपि इस श्लोक में व्याकरण सम्बन्धी दो तीन अशुद्धियां हैं किन्तु हमने जैसे सुना है वैसा ही पाठकों के सामने रख दिया है।

इस स्थान में धन की प्राप्ति होगी अथवा यहां कूप खोदने पर खारा पानी या मीठा पानी मिलेगा, भौम निमित्त ज्ञान कहलाता है। इस ज्ञान वाला आदमी यह भी बतला सकता है कि अमुक ज़मीन में अमुक वस्तु को बोने से हानि होगी या वृद्धि। भौम निमित्त ज्ञान के द्वारा किसी की जय और पराजयका भी निश्चय किया जा सकता है। जमीन के भीतर गड़े हुये सोने चाँदी आदि पदार्थों को भी इस ज्ञान द्वारा जान सकते हैं।

वर्तमान में निमित्त ज्ञानके इस भेद को जानने वाले बहुत कम मिलेंगे। ऐसा जान पड़ता है जैसे भारतीयों की यह प्राचीन विद्या लुप्त होगई हो। पाश्चात्य विद्वानों ने इस सम्बन्ध में बहुत कुछ उन्नति की है और वे ऐसी गुप्त विद्याओं को बड़ी अभिरुचि के साथ पढ़ते हैं। हमारे देहातों में कभी कोई भूला भटका ग्रामीण आदमी देखने को मिल जाता है जो ज़मीन को देखकर यह बतला देता है कि यहां खोदने पर इतने २ फ़ासले पर अमुक चीज़ प्राप्त होगी अथवा पानी खारा होगा या मीठा। ऐसा बतलाने के लिये उन्हें ज़मीन को सूंघना भी पड़ता है। इस तरह की उनकी बातें बहुधा सच्ची निकलती हैं। दुःख है कि प्राचीन संस्कृत विद्वानों ने भी इस विषय में बहुत कम ग्रन्थ लिखे हैं।

तीसरा भेद अंग नाम का निमित्त ज्ञान है इसका सम्बन्ध केवल एक व्यक्ति से ही है क्योंकि व्यक्ति के अंग और उपांगों को देखने अथवा छूने आदि से जो उसके तीनों कालों में होने वाले सुख दुख आदि का ज्ञान लेना है वही अंग नाम का निमित्त ज्ञान कहलाता है। यह ज्ञान सामुद्रिक विद्या का एक भाग है। मनुष्य शरीर के साथ उसके सुख दुःखों का घनिष्ट सम्बन्ध है क्योंकि सुख दुःख का अनुभव करने वाला अमर आत्मा शरीर के साथ एक क्षेत्र स्थित होकर ठहरता है इस लिए शरीरगत अंग और उपांगों की विशेषता से सुख दुख की विशेषताओं का अविनाभाव मान लेना एक तर्क संगत बात है। जिसकी भुजायें लम्बी हों वह स्वामी और छोटी भुजाओं वाला सेवक होता है यह बात जगत प्रसिद्ध है। हृदय शिर, और ललाट यह तीनों अगर बड़े हों तो श्रेष्ठ गिने जाते हैं पर पैरों का बहुत बड़ा होना दरिद्रता का सूचक है आदि बातें अंग नामक निमित्त ज्ञान के द्वारा जानी जाती हैं। इस सम्बन्ध में अवकाश मिला तो हम एक स्वतंत्र लेख "जैन दर्शन" के पाठकों के सामने रखेंगे। अभी स्थान और समयाभाव से इसका स्वरूप मात्र बतलाया है।

चौथा भेद स्वर नामका निमित्त ज्ञान है। अगर किसी के मकान पर अकारण कौआ आकर बोलने लगे तो प्राय औरतें उसको यह कहकर उड़ जाने को कहती हैं कि आज कोई हमारे अतिथि आये तो तुम उड़ जावो। यदि ऐसा कहने पर कौआ उड़ जाय तो मान लिया जाता है कि आज कोई न कोई मेहमान अवश्य आयेगा। किसी के मकान पर आकर उल्लूका बोलना बहुत अशुभ गिना जाता है। बहुत से स्त्री पुरुष तो उसके शब्दों को सुनना ही नहीं चाहते इस लिये अपने कान मूंद लेते हैं। कहा जाता है कि उल्लू अनेक प्रकार की बोलियां बोल लेता है। कभी कभी वह मनुष्य के समान बोलने लगता है। इस विद्या को जानने वाले लोग इसकी विभिन्न प्रकार की बोली से भविष्य के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के नतीजे

निकाला करते हैं। यदि यह प्रति दिन किसी गांव में आकर बोलने लगे तो यह कह दिया जाता है कि वह गांव निकट भविष्य में सूना हो जायगा। एक कोचर नाम का पक्षी होता है। यदि किसी स्थान में वह हमेशा रात्रिको आकर बोलने लगे तो उसका नतीजा यह निकाला जाता है कि उस स्थान में कोई प्लेग या महामारी आवेगी। यह मानी हुई बात है कि भविष्य के जान लेने की शक्ति मनुष्यों की अपेक्षा पशुओं में अधिक है। बहुधा पशु-पक्षियों को आगे होने वाली घटनाओं का आभास पहिले ही मिल जाता है और वे उस आभास को अपने शब्दों द्वारा प्रकट करना चाहते है। उनके उस समय के वे शब्द इतर समय के शब्दों की अपेक्षा बहुत कुछ विभिन्न होते है और इस विशेषता को केवल वही लोग जान सकते हैं जो स्वर नामक निमित्त ज्ञान की जानकारी रखते हो। कहा जाता है कि जहां ज्वालामुखी पहाड़ फूटने वाला होता है वहां के पशू कई महीनों पहिले वहांसे अपनी प्राण रक्षा करने के लिये भाग जाते हैं, पर अभागे मनुष्यों को अन्त समय तक इस बात का पता नहीं लगता। अभिमानी मनुष्य को ऐसे स्थलों पर पशु पक्षियोंके सामने पराजित होना पड़ता है। इस विद्या के जानने वाले बहुत से लोग बिल्ली, कुत्ता, गर्दभ, गीदड़, मोर, आदि पशु पक्षियों की बोलियाँ सुनकर आश्चर्य जनक नतीजे निकाल लेते हैं। स्वर दो तरह के होते हैं। एक अक्षरात्मक और दूसरे अन-क्षरात्मक। दोनों ही तरह के शुभ और अशुभ शब्दों के सुनने से इष्ट वा अनिष्ट फल का निश्चय कर लेना स्वर नामका निमित्त ज्ञान कहलाता है। इस विषय में भी संस्कृत के प्राचीन विद्वानों ने बहुत कम ग्रंथ लिखे होंगे। साधारण लोगों में इस स्वर नामक निमित्त विद्या का थोड़ा बहुत ज्ञान रहता ही है। साधारण लोगों से मतलब शहर में रहने वालों से नहीं अपितु देहात के रहने वालों से है।

अपूर्ण

शिक्षोपयोगी मनोविज्ञान

(ले०-श्रीमान् बा० विद्याप्रकाश जी काला एम० ए० बी० टी०)

हमारा जीवन अनेक प्रकार की घटनाओं से भरा हुआ है। प्रतिक्षण हम किसी न किसी घटना का अनुभव करते ही रहते हैं। हमारी इन्द्रियाँ हर समय कुछ न कुछ नई बात को पैदा किये बिना नहीं रहतीं। कभी हम देखते हैं, कभी हम सुनते हैं, कभी सूँघते हैं और कभी किसी बात को याद करते हैं। किसी वस्तु के देखने से हमें आनन्दानुभव होता है और किसी के देखने से हम दुखी हो जाते हैं, आदि सब प्रकार की विचित्रताओं को पैदा करने वाली शक्ति को दार्शनिक भाषा में चेतना (Consciousness) कहते हैं। स्मृति, विचार, सुख दुख प्रेम भ्रम, और संकल्प आदि,चित्तकी वृत्तियें (State of onsciousness) कहलाती हैं। इन चित्त की वृत्तियों का नियम बद्ध वर्णन और विवेचन ही मनो विज्ञान (Psychology) का विषय है।

हम देखते हैं कि एक बच्चा स्कूल में पहले चुपचाप बैठा हुआ है, फिर थोड़ी ही देर में वह किसी बात *को याद कर वहाँ से यकायक जाने की कोशिश* करता है। एक बाजार में जाकर किसी मदारी के तमाशे देख कर प्रसन्न होता है और थोड़ी देर पश्चात मदारी के किसी दूसरे तमाशे को देख कर डर जाता है। और यहाँ से भी जाने की कोशिश करता है। इस प्रकार वह दिन भर में न मालूम कितने रंग बदलता है। यदि हम उसकी दिन भर की वृत्तियों का हाल लिखने लगें तो शायद एक बहुत बड़ा पोथा बन जाय। इन भिन्न २ समय पर होने वाली भिन्न २ चित्त की वृत्तियों के होने का कारण हमको केवल मनोविज्ञान ही बतला सकता है मनोविज्ञान हमको बतलाता है कि अमुक समय में बच्चे की चित्त वृत्ति ऐसी क्यों हुई और अन्य समय में इससे भिन्न होने का कारण क्या था।

एक समय एक सज्जन किसी अन्य सज्जन को एक रुपया दे रहे थे। इस समय मैं ने विचार किया कि इसने इस को यह रुपया क्यों दिया। इस बात को मालूम करने के लिये मनोविज्ञान के आधार पर मैं ने देने वाले और लेने वालों के चेहरों का बहुत सावधानी से निरीक्षण किया। निरीक्षण करने पर मालूम हुआ कि देने वाले के चेहरे पर कुछ दया और सहानुभूति के भाव हैं। इसी प्रकार दूसरा लेने वाला मनुष्य कुछ गरीबी और अपनी दुःख अवस्था को प्रगट कर रहा है। इस निरीक्षण से मुझे ज्ञात हुवा कि देने वाले ने लेने वाले की दुःखित अवस्थासे द्रवित होकर ऐसा किया है। पूछने पर मेरे इस नि-*रीक्षण का फल सत्य ही निकला। अगर हम* देने वाले के मुख पर गरीबी और डर देखते और लेनेवाले के मुख पर कुछ ऐंठ और उद्दंडता की वृत्ति मालुम करते तो इसका नतीजा मनोविज्ञान के आधार पर कुछ और ही लगाते। मनोविज्ञान इसी प्रकार मनुष्य तथा इतरप्राणियों के बर्तावऔर उनके भिन्न २ समय के भिन्न २ भावों का पता लगा लेता है। मनोविज्ञान के पास ज्ञान की प्राप्ति के दो साधन हैं, मनन (Introspection) और वाह्य निरीक्षण(Extrospection)

मन एक अजीब चीज है। एक आदमी के मन की वृत्ति प्रत्यक्ष बोध द्वारा दूसरा आदमी नहीं जान सकता। परन्तु मन की चंचलता के कारण इसका फोटो तमाम शरीर पर अंकित हो जाता है। इंद्रियोंमें तेजी दौड़ जाती है, और इंद्रियाँ तत्काल ही बाहर के पदार्थों की खबर मन को दे देती हैं। मन एक प्रकार का दो जिह्वा वाला सांप है। इसमें प्रतिक्षण संकल्प विकल्प की लहरें उठा करती हैं। और उनका वेग इतना तीव्र होता है कि एक क्षण में वह सारे ब्रह्माण्ड तक घूम सकता है। जिस प्रकार अन्य इन्द्रियाँ हैं वैसे ही मन भी एक तरह इन्द्रिय ही है। विशेषता यह है कि अन्य इन्द्रियों के आकार चिन्ह आदि प्रकट हैं, परन्तु मनका ऐसा कोई चिन्ह प्रकट दिखलाई नहीं देता। यही कारण है कि दार्शनिकों ने मन को अनिन्द्रिय माना है। सच बात तो यह है, कि मन एक राजा है जो इन्द्रिय रूपी वाहन में बैठ कर कार्य क्षेत्र में उतरता है। जिसका मन बलिष्ठ होता है वह इन्द्रियों को अपने काबू में रख सकता है। किन्तु यदि इन्द्रियां प्रबल हों तो वे मन को दबा देंगी। प्रेम सहानुभूति, कामवासना, ईर्ष्या, द्वेष, आदि कृत्यों पर मन का हाथ रहता है। और इसके प्रतिकूल महत्व शाली विचारणीय कार्यों पर दिमाग का प्रभुत्व माना जाता है। जिस मनुष्य का दिमाग जोरदार है वह आविष्कार और अन्य महत्वशाली कार्य संपादन कर सकेगा। पर जिसका दिमाग कमजोर है, वह ऐसे बड़े २ कार्यों के करने में असमर्थ रहेगा।

मनकी वृत्तियों को जानने के लिये Introspection अर्थात् स्वात्मनिरीक्षण स्वयं करना पड़ता है। यह स्वात्म निरीक्षण ही मनन कहलाता है। यह स्वअध्ययन भिन्न २ समयभिन्न भावोंका विचार करने से सुगमता से हो सकता है एकान्त में ही साधु व व मुनि ध्यानावस्थित होकर अपने चित्त में होने वाली अनेक वृत्तियों का मनन किया करते हैं। और कई बातों का अनुभव इस मनन शक्ति द्वारा ही उन्हें प्राप्त होता है। मनोविज्ञान के लिये यद्यपि मनन Introspection बहुत आवश्यक है। किन्तु इस साधन के प्रयोग में अनेक प्रकार की त्रुटियां हैं। सब से पहली बात तो यह है कि मन एक समय में एक ही कार्य कर सकता है, एक से अधिक नहीं। जिस समय मन में एक वृत्ति उत्पन्न हो रही है, उस समय वही उस वृत्ति का स्वाध्याय नहीं कर सकता। यदि स्वाध्याय में प्रवृत्त होगा तो वृत्ति जाती रहेगी। उदाहरणार्थ—एक मनुष्य क्रोधित हो रहा है, और वह यह जानना चाहता है कि क्रोध के समय मेरी प्रवृत्ति कैसी रहती है तो वह इस प्रकार प्रवृत्ति के स्वाध्याय करने में असफल रहेगा। क्योंकि ज्यों ही वह अपने क्रोध की अवस्था में प्रवृत्ति का स्वाध्याय करना चाहता है त्योंही वह क्रोध की वृत्ति जाती रहती है। वृत्ति एक समय में एक ही तरफ जा सकती है। दूसरी वृत्ति के आते ही पहली वृत्ति नहीं रहती। परन्तु इसी क्रोध की वृत्ति का अगर वह स्वाध्याय करना चाहे तो उसे पश्चात् मनन (Retrospecton) का सहारा लेना होगा। इस पश्चात मनन के द्वारा हम क्रोध की वृत्ति का इस वृत्ति के अंत होने पर स्वाध्याय कर सकते हैं और जान सकते हैं कि जब हम क्रोध में थे उस समय हमारी क्या दशा थी। किन्तु इस पश्चात मनन (Retrospection) में स्मृति (Memory) की आवश्यकता पड़ती है।

मनोविज्ञान वेत्ता काम्ट साहब का कहना है कि जिस प्रकार मनुष्य अपने चक्षुओं को खुद नहीं देख सकता, उसी प्रकार हमारा मास्तिष्क भी अपनी स्वकीय वृत्तियों के देखने में असमर्थ होता है। लेकिन काम्ट साहबका यह कहना सर्वथा गलत है। क्योंकि काम्ट साहब इस बात को भूल गये कि मनुष्य और जानवरों में कई विभिन्नताओं के साथ एक यह भी विभिन्नता है कि मनुष्य स्वात्म निरीक्षण करने की शक्ति रखता है, पर पशु नहीं। काम्ट के कहने का तो यह तात्पर्य हुवा कि जब कभी हम क्रोधित हों तो हमें यह नहीं मालूम होगा कि आया हम क्रोधित हैं क्या ?

हमारा मन चंचल होता है। क्षण २ में वृत्तियें बदलती रहती हैं। अतः हम इन वृत्तियों का मनन करने में असमर्थ होजाते हैं। लेकिन यह त्रुटि भी अगर हम मन को एक तरफ लगाने का अभ्यास करें तो दूर हो सकती है। अभ्यास से हम इस अत्यन्त चंचल मन को भी कुछ समय के लिये एक वृत्ति में ठहरा सकेंगे, और पश्चात् मनन की शक्ति के द्वारा इस वृत्ति के स्वाध्याय करने में भी हमें सफलता मिल सकेगी। तात्पर्य यही है कि इस स्वमनः स्वाध्याय के लिये हमें किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं होती, इसके अतिरिक्त हम इस साधनको किसी भी समय काम में ला सकते हैं और Instrospection अर्थात् स्वकीय चित्त वृत्तियों का स्वाध्याय कर सकते हैं।

अपूर्ण

विरोध परिहार

(ले० पं० राजेन्द्रकुमार जी न्यायतीर्थ)

विरोध ६— पूर्ण ज्ञान का असंख्य विषय मानने में भावस्वरूप हेतु है। वह यह कि एक समय में एक आत्मा एक ही पदार्थ को जान सकता है और जीवन में असंख्यात ही समय होते हैं। इसलिए अधिक से अधिक वह असंख्यात पदार्थ ही जान सकेगा। अगर इस जीवन के संस्कार अगले जन्ममें भी माने जावें तो भी असंख्यात संस्कार ही होंगे। क्योंकि अनन्त जन्म के संस्कारों का एक साथ रहना संभव ही नहीं है, क्योंकि प्रत्येक संस्कार की आदि होती है इसलिए वह किसी भी निश्चित समय में अनन्त कालिक नहीं कहा जा सकता।

परिहार ६—जहां तक एक जीवन के असंख्यात समय मानने की बात है वहां तक यह हमको भी स्वीकार है। इन असंख्यात समयों में से एक आत्मा असंख्यात पदार्थों को जानता है अतः वह यदि असंख्यात पदार्थों के जानने के स्वभाव वाला है तो अनन्त समयोंमें अनन्त पदार्थोंके जाननेसे वह अनन्त पदार्थों के जानने के स्वभाव वाला क्यों नहीं? ऐसी

कोई भी बात उपस्थित नहीं की जा सकती जिससे असंख्यात समयों में असंख्यात पदार्थों के जानने पर भी उसको प्रति समय असंख्यात पदार्थों के जानने के स्वभाव वाला तो मान लिया जाय और अनन्त समयों में अनन्त पदार्थों के जानने पर भी उसको प्रति समय अनन्त पदार्थों के जाननेके स्वभाव वाला न माना जा सके। जिस युक्ति के आधार से दरबारी लाल जी एक आत्मा को असंख्यात पदार्थों के जानने का स्वभाव वाला प्रमाणित कर रहे हैं वही युक्ति आत्माको अनन्त पदार्थों के जानने के स्वभाव वाला प्रमाणित करते हैं। जैसा कि हमारे ऊपर के वक्तव्य से स्पष्ट है।

यहां यदि यह कहा जायगा कि हम असंख्यात समयों में असंख्यात पदार्थों के जानने से असंख्यात पदार्थों के जानने के स्वभाव वाला आत्मा को नहीं मानते किन्तु उन सबके संस्कारों के आधार से। तब भी इतना तो प्रमाणित करना ही होगा कि आत्मा अपने सम्पूर्ण जीवन में जिन २ को जानता है उन २ के संस्कारोंसे वह संस्कारित भी होजाता है। पहिली बात तो यह है कि ऐसा कोई आत्मा नहीं है जिस पर इसका परीक्षण किया गया हो। दूसरे न सम्पूर्ण ज्ञानों का संस्कार ही आत्मा पर हुआ करता है। अवग्रह और ईहा ज्ञानका तो संस्कार हुआ नहीं करता, अवाय में से किसी २ का हुवा करता है जीवन में अधिकतर अवग्रह और ईहा ज्ञानही हुआ करते हैं अतः इस दृष्टि से भी जीवन में असंख्यात संस्कारोंकी बात ठीक नहीं बैठती। तीसरी बात यह है कि यदि असंख्यात जन्मों के संस्कार भी रह सकते हैं तो अनन्त के क्यों नहीं ? " प्रत्येक संस्कार की आदि होती है इस लिए वह किसी भी निश्चित समय में अनन्त कालिक नहीं हो सकता" वाली बात भी युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होती इस प्रकार तो किसी को अनादि और अतएव अनन्त भी प्रमाणित नहीं किया जा सकेगा।

कर्मबन्धन, बीज वृक्ष की सन्तानें और पिता पुत्र भाव आदि अनेक बातें हैं जो अनादि हैं। ऐसा कोई भी समय नहीं जिसको इनके प्रारम्भ का काल कहा जा सके। जब भी आप देखेंगे इनका अस्तित्व ही मिलेगा।

फिर भी व्यक्तिकी दृष्टिसे सबही आदि हैं। इसही प्रकार ज्ञान विशेष की दृष्टि से उसका निश्चित काल मानने पर भी ज्ञान सामान्य की दृष्टि से वह भी अनादि है। यदि किसी ज्ञान विशेष को सदैव नहीं स्वीकार किया जा सकता तो किसी भी समय ज्ञान विशेष का अभाव भी नहीं किया जा सकता। भूत-काल और भविष्यत काल के किसी भी समय विशेष की दृष्टि से क्यों न विचारें आपको उस समय अवश्य किसी न किसी ज्ञान विशेष का अस्तित्व ही मिलेगा। यदि भूतकाल के बीज वृक्ष सन्तान का चित्र लिया जा सके तो वह अनादि बैठेगा इसही प्रकार यदि किसी भी आत्मा के भूतकाल के ज्ञान के संस्कारों को स्वीकार किया जाय तो वह भी अनादि ही प्रमाणित होगा चित्र के सम्बन्ध में यह बात असंभव है, क्योंकि वह किसी विशेष समय और मर्यादित वस्तु में लिया जा सकता था किन्तु ज्ञान के सम्बन्धमें यही बात बिलकुल युक्तिपूर्ण है। ज्ञान के लिये न किसी समय विशेष की ही आवश्यकता है और न सीमित पदार्थान्तर की ही। इसका संस्कार तो इसके सद्भाव

के समय तथा आत्मा पर भी पड़ता है। उपर्युक्त विवेचन से प्रगट है कि दरबारीलाल जी की संस्कार वाली युक्ति भी अनन्त पर ही आकर ठहरती है।

विरोध ७—असंख्यात समयके बाद जीव किसी को न जान सकेगा यह शंका असंख्यात पर बिलकुल विचार न करने का फल है। असंख्यात तो खैर बड़ा परिमाण है परन्तु आत्मामें सिर्फ १०० पदार्थों को जानने की शक्ति होती तो भी वह अनन्त काल तक ज्ञानी बना रहता और सौ की संख्या का अतिक्रमण भी नहीं होता, क्योंकि आत्मा नये२ पदार्थोंको जानता जाता है और पुरानों को भूलता जाता है अधिक से अधिक संस्कार रूप में वह असंख्यात का संग्रह कर सकता है ······ ······सूक्ष्मता की दृष्टि से जो असंख्यात में भी अनन्त का समावेश किया गया है वह भी भ्रम है। समान अविभाग प्रतिच्छेद वाले बहुत से पदार्थों में से अगर हम एक को जान लें तो इससे सबका ज्ञान नहीं हो सकता एक आदमी के देख लेनेसे सब आदमी नहीं दिखजाते हां मनुष्यत्व नामक धर्म का ज्ञान हो सकता है। मनुष्यत्व के प्रत्यक्ष से सब मनुष्यों का प्रत्यक्ष नहीं हो जाता।

परिहार ७—दरबारीलाल जी के इस वक्तव्यको दो अंशों में विभाजित किया जा सकता है एक अंशमें मध्य की बिन्दुओं से पहिली पंक्तियाँ आती हैं और दूसरे अंश में बिन्दुओं के बाद की पंक्तियों का समावेश होता है।

पहिले अंश की असंख्यात संस्कारों की बात का समाधान तो हम अपने परिहार नं० ६ में कर चुके हैं अब रह जाती है आत्माको १०० पदार्थों के जानने का स्वभाव भी मान कर कभी भी ज्ञानकी असमाप्ति की बात। इसके समाधानके हेतु दरबारीलालजी के इस ही वक्तव्य के दूसरे अंश को उपस्थित किया जा सकता है आपने इस में लिखा है "एक आदमी के देख लेने से सब आदमी नहीं दिख जाते इसका भावार्थ इतना ही है कि शेष आदमी उस आदमी से भिन्न हैं अतः उस का ज्ञान होने परभी शेष आदमियों का ज्ञान नहीं होता। एक जाति के अनेक पदार्थ यदि परस्पर में भिन्नता रखते हैं और उन सबके जानने के लिये यदि भिन्न २ ज्ञानों की आवश्यकता है तब यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है कि अनेक जाति के अनेक पदार्थों के परिज्ञान के लिए उतने ही प्रकार के ज्ञान या ज्ञानमें उतनी ही प्रकार शक्ति विशेष स्वीकार न की जावे।

हम अपनी इस ही लेख में इस बात को प्रमाणित कर चुके हैं कि एक ज्ञेय दूसरे ज्ञेय से भिन्न है अतः उन सब के जानने के लिये ज्ञान में उतनी ही प्रकार की शक्तियां स्वीकार करनी पड़ेगी। जिन सौ पदार्थों को आत्मा अभी जानता है दूसरे समय के सौ पदार्थ इनसे भिन्न हैं फिर यह कैसे हो सकता है कि ज्ञान में एक ही सौ शक्तियाँ स्वीकार कर ली जावें। इससे प्रगट है कि भिन्न २ ज्ञेय के जानने के लिए ज्ञान में भिन्न २ शक्ति का स्वीकार करना अनिवार्य है। अतः यदि ज्ञान में असंख्यात पदार्थों के जानने का ही स्वभाव माना जायगा तो फिर उसको इतने समयों के बाद फिर ज्ञान रहित ही मानना पड़ेगा। ज्ञान का आत्मा में कभी भी अभाव नहीं स्वीकार किया जा सकता अतः प्रगट है कि दरबारीलाल जी का उसमें असंख्यात पदार्थों के जानने का स्वभाव बतलाना मिथ्या है।

जिस प्रकार कि दरबारीलाल जी के प्रस्तुत

वक्तव्य के प्रथम अंश का प्रतिवाद उन ही के इस ही वक्तव्य के दूसरे अंश से होता है उस ही प्रकार दूसरे अंश का प्रतिवाद भी पहले अंश से होता है।

ज्ञान में सौ पदार्थों के जानने की शक्ति को स्वीकार कर के तो समस्त पदार्थों का ज्ञान होता रहेगा और कभी भी ज्ञान के अभाव का प्रश्न उपस्थित नहीं किया जा सकेगा किन्तु सूक्ष्मता की दृष्टि से असंख्यात प्रकार के पदार्थों में अनन्त का समन्वय नहीं हो सकेगा यह बात दरबारीलाल जी के ही मास्तिष्क की उपज हो सकती है।

साधारण समझ वाला व्यक्ति भी इसको समझ सकता है कि ज्ञान में यदि सौ पदार्थों के जानने की शक्ति मान कर भी वह अनन्त काल तक अनन्त पदार्थों को जानता रहेगा तो शक्ति की दृष्टि से असंख्यात प्रकार के पदार्थों के जानने के स्वभाव में अनन्त पदार्थों की बात किस प्रकार युक्ति रहित है।

हमारी यह युक्ति अभ्युपगम सिद्धान्त के आधार से है अतः विद्वान पाठक यह न समझें कि हम भी ऐसा ही स्वीकार करते हैं। हम तो ज्ञान में अनन्त शक्ति स्वीकार करते हैं उपर्युक्त विवेचन से प्रगट है कि दरबारीलाल जी के वक्तव्य का दूसरा अंश भी मिथ्या है।

विरोध ८- बहुत से आचार्यों को मैं महान और पूज्य मानता हूँ अपने को उनसे उपकृत भी मानता हूँ परन्तु उन्होंने जो गलतियां की हैं उनका मैं सुधारा न करूं तो मेरा यह कपूतपन होगा मेरे शब्द थे कि "प्राचीन लेखकों ने इस कल्पित सर्वज्ञत्व की सिद्धि के लिए बहुत कोशिश की किन्तु आत्मवंचना के सिवाय इसमें कुछ नहीं है"।

इसका मतलब यह हुआ कि वास्तव में वे सर्वज्ञका मंडन तो नहीं कर सके किन्तु उन ने झूठ मूठ ही आत्मा को संतुष्ट किया। . . .... यहां पर आत्म वंचना शब्द का यह अर्थ नहीं था कि "वे आचार्य सर्वज्ञ नहीं मानते थे और उनने सर्वज्ञ सिद्धि की है।" यह आत्मवंचना नहीं परवंचना है किन्तु इस का यह अर्थ था कि साम्प्रदायिकता आदि के कारण उनके हृदय पर सर्वज्ञता की छाप तो पड़ी थी किन्तु उसका ठीक २ सिद्धि न कर सकने पर भी उतने में संतोष किया था।

परिहार ८- दरबारीलाल जी की ये पंक्तियां उनके उत्कट अभिमान की सूचक हैं। उनने यह समझ लिया है कि जो कुछ भी सत्य ज्ञान है वह उनके पास है और अत एव वह उस ही को निर्णायक मान कर संसार के सम्बन्ध में तुरन्त निर्णय प्रदान कर देते हैं प्राचीन आचार्यों के सम्बन्ध में आत्म वंचना आदि शब्दों का प्रयोग भी आप के इसही निर्णय का फल है।

आपके इस अभिमान की तुलना यदि चक्रवर्ती के अभिमान से की जाय तो कोई उत्युक्ति न होगी। अभिमान का पतन अवश्यंभावी है और यही बात चक्रवर्ती के अभिमान की हुई। आखिर उसको भी विजयार्द्ध पर जाकर अपने अभिमान का त्याग करनाहीपड़ा था।

दरबारीलाल जी का कर्तव्य था कि वह अभी विचारते और फिर भी उनको आचार्यों के वाक्य सुधारणा पूर्ण मिलते तो उनको सीधे शब्दों में लिखते किन्तु उनको तो पैगम्बर बनना है और ऐसा बिना दूसरे धर्म प्रचार को ठेस पहुँचाये नहीं हो सकता।

दरबारीलाल जी को मालूम होना चाहिये कि आप अपने जिस ज्ञान को निर्णायक का स्थान देकर संसार के सम्बन्ध में निर्णय प्रदान कर रहे हैं उसकी सूक्ष्म २ बातों की क्या दशा होती है यह तो अभी भविष्य के गर्भ में है किन्तु अभी तो आपकी साधारण बातें ही यथार्थता से कोसों दूर हैं। जरा आप अपने असिद्ध हेत्वाभास के स्वरूप के वर्णन की तरफ ही दृष्टि दे दीजियेगा और फिर देखियेगा कि आपका यह वर्णन कहां तक युक्ति पूर्ण है। आपही बतलाइये कि यदि असिद्ध हेत्वाभास का यही स्वरूप माना जायगा तब तो फिर सभी पूर्वचर और उत्तरचर हेतु भी असिद्ध हेत्वाभास के दायरे से बाहर न जा सकेंगे।

मेरा यह अभिप्राय कथमपि नहीं था कि मैं प्रस्तुत लेखमाला में इस प्रकार के दृष्टान्त उपस्थित करूं किन्तु इस ही लिये कि दरबारीलाल जी को भी पता चल जाय कि वह अपने जिस ज्ञान को निर्णायक का स्थान देना चाहते हैं वह बात अभी उसके लिये बहुत दूर है।

इसके अतिरिक्त दरबारीलाल जी के पास अन्य क्या युक्ति हो सकती है जिसको वह अपने इस वक्तव्य के समर्थन में उपस्थित कर सकें। उपस्थित की गई युक्तियां हैं या नहीं यह बात अभी भी विचाराधीन है। इन सब बातोंके अतिरिक्त भी इतना तो दरबारीलाल जी को अवश्य देखना था कि प्राचीन लेखकों में कौन २ आते हैं और उनके सम्बन्ध में वे कैसे हल्के शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं। किसी भी दृष्टिसे क्यों न देखें आपको यह अवश्य मानना पड़ेगा कि प्राचीन आचार्यों के सम्बन्ध में आत्मवंचना शब्द का प्रयोग करके दरबारीलाल जी ने अवश्य गल्ती की है और जिसके लिये उनको बिना किसी शर्त के क्षमा मांगना चाहिये।

अपूर्ण

* जो हेतु सिद्ध न हो उसे असिद्ध हेत्वाभास कहते हैं। साध्यसम-भी इसी का नाम है। हेतु दो तरह से असिद्ध होता है। या तो उसके अभाव का निश्चय हो, अथवा सद्भाव में सन्देह हो। जैसे शब्द अनित्य है क्योंकि आंखों से दिखता है। (चाक्षुष है) शब्द आंखोंसे दिख नहीं सकता, इसलिये असिद्ध है। इसको स्वरूपासिद्ध कहते हैं क्योंकि शब्दका 'आंखोंसे दिखना' यह स्वरूप ही असिद्ध है। जब हेतुके सद्भाव में सन्देह होता है तब उसे निश्चयासिद्ध कहते हैं। जैसे धुआं के न दिखने पर भी धुआं की सम्भावना मात्र से अनुमान करना कि यहां अग्नि है क्योंकि धुआं है। न्यायप्रदीप पं० ६२

स्वामी शान्तानन्द जी और जैन सिद्धान्त

(गतांक से आगे)

तदनन्तर स्वामी जी लिखते हैं कि—

"क्या हमारे जैन भाईयों ने कभी इस विषय पर भी विचार किया है कि जीवमें जीवत्व नित्य है या अनित्य। यदि कहो कि जीवमें जीवत्व नित्य है तो जीवत्व की नित्यतावश जीव नित्यजीव ही रहेगा। ईश्वरत्व और सर्वज्ञत्व के अभाववश ईश्वर तथा सर्वज्ञ नहीं होसकता। यदि कहो कि जीव में जीवत्व अनित्य है तो जीवत्व के अनित्य होने से नित्य मान नहीं सकते। यदि कहो कि जीवमें जीवत्व है ही नहीं तो इस दशा में जीव संज्ञा वाला कोई पदार्थ मान ही नहीं सकते।"

स्वामी शान्तानन्द जी समालोचक बनने से पहले यदि जैन सिद्धान्त का थोड़ा सा भी किसी विद्वानसे अध्ययन करलेते तो उन्हें पग २ पर ऐसे प्रश्न करने की आवश्यकता न होती।

जीवके जीवत्वभाव से जैन सिद्धान्त ने कभी इन्कार नहीं किया अतः अन्तिम शंका निर्मूल है। रही पहिली दो शंकाएं, उनका समाधान यह है कि

प्राणों द्वारा जीवित रहने का नाम 'जीवत्व' है। प्राणों के दो भेद हैं—द्रव्यप्राण तथा भावप्राण। शरीर, इन्द्रियां, सांस, आयु आदि 'द्रव्य प्राण' हैं जो कि केवल संसारी जीवों में पाये जाते हैं। ये द्रव्य-प्राण कर्माश्रित हैं अत एव कर्म उदयसे प्राप्त एक शरीर जब तक रहता है तब तक उसके द्रव्य प्राण विद्यमान रहते हैं और जब आयु समाप्त होकर जीव को वह शरीर छोड़ कर परलोक यात्रा करनी पड़ती है तब वे द्रव्यप्राण नष्ट हो जाते हैं। प्राप्त हुए अन्य शरीरानुसार अन्य द्रव्य प्राण मिल जाते हैं। इसी द्रव्यप्राण छोड़ने, ग्रहण करनेको 'मृत्यु, जन्म' शब्दसे भी कहते हैं। इस द्रव्य प्राण द्वारा माना हुआ जीवत्व अनित्य माना जाता है क्योंकि एक ही शरीर सदा विद्यमान नहीं रहता। इस अपेक्षा से जीवत्व अनित्य कहा जा सकता है।

ज्ञान दर्शन आदि जीव के भावप्राण हैं जीव का वास्तविक जीवत्व इन भावप्राणों से ही माना जाता है। भावप्राण जीव के सदा विद्यमान रहते हैं उनका कभी नाश नहीं होता इस कारण भावप्राणों की अपेक्षा जीव का जीवत्व 'नित्य' है।

सर्वज्ञ परमात्मा में भी ज्ञान आदि भावप्राण विद्यमान हैं (यह दूसरी बात है कि संसारी जीवों की अपेक्षा उनका ज्ञान बहुत विशाल -अनंत होता है) अतः वे संसारी जीवों की अपेक्षा विशिष्ट यानी शुद्ध, निरंजन, निर्विकार, कृतकृत्य जीव होते हैं) इस कारण सर्वज्ञ परमात्मा में भी जीवत्व होता है।

जगत में जड़, चेतन (जिनको दूसरे शब्दों में जीव, अजीव कहते हैं) ये दो ही तरह के पदार्थ हैं सर्वज्ञ परमात्मा जड़ या अजीव पदार्थ नहीं किन्तु अनुपम चैतन्य शक्ति का भंडार है अतः वह जीव है। जीव का अर्थ 'जीने मरने वाला' केवल सांसारिक दशा में द्रव्यप्राणोंकी अपेक्षा है। भावप्राणोंकी अपेक्षा जीव चाहे वह संसारी हो अथवा मुक्त, सदा अजर, अमर, अविनाशी है, न वह कभी जन्म लेता है और न कभी मरता है।

तदनुसार स्वामी जी लिखते हैं

"यदि कहो कि बंध और मोक्ष जीव का स्वरूप नहीं किन्तु अवस्था हैं जैसा कि पं० अजित-कुमार जी भी प्रश्न नं० ३ के उत्तर में लिखते हैं कि 'इस कारण उनकी वह मुक्त दशा' यहां शब्द 'मुक्त दशा' विचारणीय है ऐसा मानोगे तो बस फैसला हुआ क्योंकि वैदिक सिद्धान्तानुकूल आर्यसमाज यही तो मानता है कि जीव न स्वभाव सेमुक्त है और न बद्ध है किन्तु बन्धन और मोक्ष दोनों नैमित्तिक हैं तिस कारण दोनों ही नित्य नहीं"

स्वामी शान्तानन्द जी सन्यासी है उन्हें सत्यव्रत का सम्मान करके सत्य बात ही लिखनी चाहिये। उन्होंने हमारे जिस वाक्य का अधूरा उल्लेख किया है आप अगर उसको पूरा लिख देते तो आपकी कलई खुल जाती। वहां पर लिखा हुआ है कि "इस कारण उसकी वह मुक्त दशा अनन्त होती है"। स्वामी जी 'अनन्त' शब्द को छिपा गये। तब ही उन्होंने निरा धार कल्पना से उलटा अभिप्राय निकाल लिया। 'मुक्त दशा अनन्त है' इसका स्पष्ट अर्थ है कि 'मोक्ष नित्य होती है'। इस कारण स्वामी जी का फैसला उल्टा है।

शान्तानन्द जी वैदिक सिद्धान्तानुकूल मुक्ति को 'अनित्य' बतलाते हैं यहां पर आप यदि उस वैदिक सिद्धान्त की स्पष्ट व्याख्या भी कर देते तो विचार करने के लिये अच्छा अवसर मिल जाता। वैदिक सिद्धान्त यदि स्वामी दयानन्द जी कृत पोने दो वेदों का निरुक्त आदि से विरुद्ध भाष्य ही है तब तो मोक्ष को अनित्य बतलाना कुछ ठीक है क्योंकि ऋग्वेद के (प्रथम मंडल २४ सूक्त, १-२ मंत्र) 'कस्यनूनं' इत्यादि मन्त्रों का निराधार अर्थ करके स्वामी दयानन्दजी ने मुक्ति से पुनरागमन बतला कर मुक्ति को अनित्य बतलाया है। परन्तु उन दोनों मन्त्रों में मुक्त जीव का कहीं भी नाम उल्लेख नहीं है 'मुक्ति के सुख भुगाकर' इतना वाक्य स्वामी जी ने अपने पास से जोड़ लिया है क्या इसी प्रमाणहीन मंत्रार्थ का नाम वैदिक सिद्धान्त है?

ऐतरेय ब्राह्मण में (जिस को कि स्वा० दयानन्द जी भी प्रामाणिक मानते हैं) उन्हीं मंत्रों का अर्थ नरमेध यज्ञ के समय अजीगर्त द्वारा शुनःशेप के प्राण नाश की तयारी के समय देवताओं की स्तुति रूप किया गया है। स्वामी शान्तानन्द जी उसको जरा सत्यहृदय से देखने का कष्ट उठावें तो उन्हें उक्त मंत्रों का अर्थ समझते देर न लगेगी।

वैदिकयंत्रालय अजमेर से सं० १९६० में प्रकाशित निरुक्त के १४३ वे पृष्ठ पर लिखा है कि

"अथ ये हिंसामुत्सृज्य विद्यामाश्रित्य महत्तप-स्तेपिरे ज्ञानोक्तानि वा कर्माणि कुर्वन्ति ते मानसः पुरुषो भूत्वा ब्रह्मलोकमभिसंभवन्ति ते न पुनरावर्तन्ते।"

इसका अर्थ प्रसिद्ध आर्यसमाजी पंडित राजाराम जीने सन १९१४ में लाहोरसे प्रकाशित निरुक्त ५८८ वें पृष्ठ पर यों किया है—

"जो हिंसा को त्याग विद्या का आश्रय ले बड़ा तप तपते है वा ज्ञानकांडोक्त कर्म करते हैं वह······ मानस पुरुष ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है वह फिर नहीं लौटते हैं।"

स्वयं स्वामी दयानंद ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में अनेक जगह मोक्ष से पुनरागमन का निषेध करते हैं नमूने के तौर पर १४१ वें पृष्ठ को पढ़ देखिये वहां लिखा है—

"उसी परमेश्वर में सत्यनिश्चय से मोक्ष सुख

को प्राप्त हो के जन्म मरण आदि आने जाने से छूटके आनंद में सदा रहते हैं।"

बतलाइये शान्तानंद जी ! अब आपका वैदिक सिद्धान्त मोक्ष को नित्य कहता है या अनित्य ? और स्वा० दयानंद जी का कौनसा लिखना सत्य है और कौनसा असत्य ?

आप जब वैदिक मतानुयायी कपिल के सांख्य दर्शन को तथा गौतमाचार्य के न्यायदर्शन को ध्यान से पढ़ेंगे तब आपको मुक्ति का स्वरूप और वैदिक सिद्धान्त का पता चलेगा। न तो केवल सत्यार्थ प्रकाश वैदिक सिद्धान्त है जिसको देख कर आपने दार्शनिक ज्ञान की समाप्ति समझ रक्खी है और न "आर्य समाज के सौ प्रश्नों का उत्तर" ट्रेक्ट ही जैन सिद्धान्त है, और न उस ट्रेक्ट में मुक्ति को अनित्य लिखा है।

अतः स्वामी शान्तानन्द जी का मुक्ति को अनित्य समझना निराधार है तथा वैदिक सिद्धान्त के भी प्रतिकूल है। क्रमशः।

कलंक का टीका किसके सिर पर

[ले०- श्रीमान् पं० भवरलाल जी न्यायतीर्थ]

खण्डेलवाल जैन हितेच्छु के गत १२ वें अंकमें पं० इंद्रलाल जी शास्त्री ने' जयपुर की महापाठशाला का भविष्य खतरे में' शीर्षक लेख प्रकाशित किया है। इस तरह के निस्सार लेख शास्त्री जी जब कभी प्रकाशित करते ही रहते हैं। इस सम्बन्ध में आपके कई लेख पहले भी प्रकाशित हुए हैं। लेखों के पढ़ने से प्रत्येक समझदार आदमी समझ सकता है कि यह पाठशाला की हित की दृष्टि से नहीं लिखे गए। अगर इन शास्त्री जी को पाठशाला के हित की चिंता होती तो उसकी आर्थिक हानि करनेके लिये साक्षात या परम्परा अथवा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कभी भी प्रयत्न न करते। क्या शास्त्री जी महाराज शपथ पूर्वक कह सकते हैं कि जो जयपुर के राजकीय कोष से पचास रुपये मासिक सहायता सदासे पाठशाला को मिलती आरही थी उसके रुकवाने में आपका हाथ नहीं है क्या लोगों के घरपर जाकर आपने पाठशाला के सम्बन्ध बातें बना कर स्थानीय भाइयों को चन्दा देने से नहीं रोका ? ध्रौव्य कोष से सूद की रकम प्राप्त न हो जाय इसके लिये क्या आपने कोई प्रयत्न नहीं किया ? यदि इन सब प्रश्नों का सच्चे हृदय से जवाब दें तो आप को तत्काल ही कह देना पड़ेगा कि इस अनुचित काम में आपका सबसे बड़ा सहयोग था। विनाश करने में क्या लगता है आपकी ताकत का अन्दाजा तो तब लगता जब कोई नवीन विद्यालय खोल कर चलाते। मकान को ढाह देने में अधिक शक्ति और समय की आवश्यकता नहीं पर उसके निर्माण में तो अधिकाधिक शक्ति की आवश्यकता होती है। स्टेट की सहायता रुकवा देना तो इतना सरल है जितना कि किसी अत्यन्त निर्बल आदमी को अंधेरे में धक्का

दे देना। यह तो दूसरों के घरों में आग लगा कर तमाशा देखने के बराबर है। जिस करोड़ों रुपये के कपड़ेके निर्माण करनेमें (हाथोंसे) कई वर्ष चाहिये यदि उसे कोई जला कर खाक करना चाहे तो उसके लिये अधिक से अधिक एक दिन पर्याप्त होगा। एक तो लोग ऐसे ही चन्दा देना नहीं चाहते फिर उन्हें घर घर जाकर रोका जाय तब तो फिर देने ही क्यों लगे क्या आपने अपने कुछ भोले भाइयों का सहयोग मिला कर यह सब काम नहीं किये? क्या शपथ पूर्वक उत्तर देंगे? पर हर्ष की बात है कि यह सब कुछ होने पर भी वर्तमान प्रबन्ध कारिणी कमेटी के सम्माननीय सदस्यों ने अपना अमूल्य समय लगाकर पाठशाला के लिये चार सौ रुपये मासिक का चन्दा एकत्रित किया और सन्तोष पूर्वक काम चलाया। ऐसी हालत में जब कि विनाशकारी शक्तियां भी पीछे पीछे काम कर रही थीं। स्थानीय भाइयों ने भी दिल खोलकर चन्दा दिया: नहीं तो दो वर्ष तक अन्य सब प्रकार की सहायता रुक जाने पर ऐसे सुन्दर ढंग से कैसे काम चल सकता था। लोगों को यह कह कर भड़काया गया कि पाठशाला से संस्कृत हटा दी गई केवल अंग्रेजी की पढ़ाई ही रक्खी गई है किन्तु समझदार लोगों ने ऐसी प्रमाणहीन बातों को न माना और चन्दा देते ही रहे। हाथ कंगण को आरसी की क्या आवश्यकता है जिन्हे शक हुआ उन्हों ने स्वयं आकर पाठशाला को देख लिया और सन्तोष प्रकट किया। यह कोई बाहर के लोग थोड़े ही थे जो यहां आकर सत्यासत्य का निर्णय न कर सकते। *हाँ कुछ भोले लोग यहां भी मौजूद हैं जिन्हें धर्म के नाम पर स्वार्थी लोग बहका कर अपना* मतलब बना लिया करते हैं। पाठशालाका मन्त्री कौन है? उसमें कैसी पढ़ाई होती है? उसकी व्यवस्था पहिले की अपेक्षा कितनी अच्छी है? आदि बातें सूर्य के प्रकाश के समान स्पष्ट हैं। स्टेट की आय रुकवा देना तो एक साधारण बात है। जिन पुण्यात्माओं ने यह आय रुकवाने के लिये डाइरेक्टर आफिस में अर्जी दी उन्होंने इस मामले को दलबन्दी के रूपमें पेश किया इसलिये अधिकारियों ने तब तक के लिये सहायता को रोक दिया कि जब तक कोई पार्टी अपना कानूनी हक हासिल न करले। बस इस आज्ञा को मालूम कर पाठशाला के विरोधी लोग बहुत प्रसन्न हुये। पर क्या शास्त्रीजी महाराज बतलाने की कृपा करेंगे कि जयपुर में जो पारस्परिक मत भेद है वह क्या पाठशाला के सम्बन्ध में है? इस तरह मतभेद तो प्रत्येक शिक्षित समाजमें मिलेगा। मतभेद का बहाना बनाकर शिक्षामन्दिरों जैसी उपयोगी संस्थाओं को धराशायी करदेना क्या किसी भी विवेकी का काम है? धन्य है उन पुण्यात्माओं को जिन्होंने प्रयत्न कर सरकार से यह सहायता दिलाना प्रारंभ किया था पर जिन पाठशालाके शुभ चिन्तकों ने इस एड को रुकवाने में प्रकट या अप्रकट रूप से सहायता की, ऐसे लोगोंके सिर पर कलंकका टीका लगाया जाय या केसरका! शास्त्री जी इसका जबाब दें। पाठशाला के हितचिन्ता के गीत गा गाकर भी जिन भले मानसों ऐसे जघन्य कृत्यों में सहायता दी है उन लोगों पर हमें दया आती है। एकाएक यह बात किसी भी समझदार के समझ में नहीं आती कि मनुष्य इतना गिरकर अपनी हितकारिणी संस्थाओं के निर्बल पैरों पर कुठाराघात करने के लिये *कटिबद्ध हो जाता है।*

यदि आज पाठशाला का भविष्य खतरे में है तो

इसका उत्तर दायित्व उन्हीं लोगों पर है जिन्हों ने छिपे या खुले रूप से इसको आर्थिक हानि पहुँचाने में सहयोग दिया है और क्या ऐसे लोगोंमें आप नहीं हैं? और यदि हैं तो इस पाप का भागी कौन होगा? और यह कलंक का टीका क्या आपके सिर पर न लगेगा? यदि वर्तमान प्रबन्ध कारिणी कमेटी के सदस्य गत दोवर्ष पाठशालाका कार्य ठीक चला लेने के बाद भविष्य में इस कार्य में सहयोग न देकर मौनावलम्बन धारण कर लें अथवा पाठशाला का किसी अन्य रूप में परिवर्तन कर डालें यानी उसे मिडिल स्कूल बना दें तो इस कलंक का टीका भी (यदि आप इसे कलंक समझें तो) आप ही लोगों के सिर पर लगेगा; क्योंकि प्रबन्ध कारिणी कमेटी के सदस्यों को ये आर्थिक हानि पहुंचाने की चेष्टा करने वाले लोग विवश कर रहे हैं। जो एड संस्कृत के लिये मिल रही थी उसे आप लोगों ने बन्द करवा दिया अंग्रेजी के लिये तो इससे भी अधिक सरकारी सहायता प्राप्त हो सकती है (शिक्षा विभाग के नियमानुसार)। यह व्यवस्था जिन लोगों ने पैदा की है वे ही लोग पाठशाला के परम शत्रु हैं।

पाठशाला में राजवार्तिक, गोम्मटसार, सर्वार्थ सिद्धि, अष्टसहस्री, प्रमेयकमल, मार्तण्ड, तत्वार्थश्लोक वार्तिक, सप्तभंगीतरंगिणी, प्रमेयरत्नमाला, आप्त-परीक्षा, रत्नकरंड श्रावकाचार, तत्वार्थ सूत्र, भक्तामर आदि धार्मिक संस्कृत प्राकृत ग्रन्थों की पढ़ाई पहिले की अपेक्षा अधिकाधिक रूप से चालू रहने पर भी लोगों को यह कहकर भड़काना कि संस्कृत हटा दी गई कैसी धार्मिकता है सो आप ही जानें। अगर आप अथवा आपके साथी संस्कृत के सच्चे पक्षपाती होते तो ऐसी हरकतें कभी न करते पर आपका संस्कृत प्रेम तो दिखावटी है स्वार्थ से भरा है। क्या आपने अपने बड़े लड़के को अंग्रेजी नहीं पढ़ाई? क्या उसे कभी संस्कृत की भी शिक्षा दी है?

दुःख की बात है कि जिस पाठशाला में आप अपने लड़कों को पढने के लिये भेजें उसके सम्बन्ध में आपके ऐसे विचार हों। क्या आपका लड़का 'सुबोध' यहां से गत वर्ष प्रवेशिका पास नहीं हुआ और इस वर्ष केवल इंग्लिश मिडिल में नहीं बैठा? आपका कर्तव्य तो यह था कि पाठशाला को हानि पहुंचाने वालों को समझाते उनके भ्रम को दूर करते और इस तरह अपनी जननी के प्रति अपनी कृतज्ञता आदर्श उपस्थित करते पाठशालाके विरुद्ध काम करनेवाले पं० नानूलालजी शास्त्री, गोमतीलाल भौंसा आदि कई महानुभावों के लड़के क्या इस विद्यालय से शिक्षा प्राप्त नहीं करते। कम से कम इन अपनी सन्तानों का खयाल करके तो पाठशाला पर रहम खाते।

मैं गौरव के साथ कह सकता हूं कि मैं संस्कृत का सबसे अधिक पक्षपाती और प्रेमी हूँ हमारे न्याय और धर्म ग्रंथों को पढ़कर जो मुझे लेश मात्र अनुभव हुआ है उससे मेरे जीवन में मुझे आनन्द प्राप्त होगा। इस समय अंग्रेजी शिक्षा के समान संस्कृत शिक्षा की भी अत्यन्त आवश्यकता है। संस्कृत ग्रंथों के अध्ययन के बिना जीवन में धार्मिकता नहीं आ सकती। इस लिये मैं आप से भी अधिक संस्कृत का प्रेमी हूँ। प्रारम्भ में ही हितेच्छु में पाठशाला के सम्बन्धमें आप के लेख पढ़ कर मुझे बहुत रंज होता था क्योंकि यह लेख प्रायः असत्यसे भरे रहते थे। आपके गतांक का लेख पढ़कर तो मुझे आश्चर्य और रंज दोनों हुए मैंने कई बार आपके लेखों का जवाब देने के लिये

विचार किया पर मैंने माननीय श्रद्धास्पद पं० चैन-सुखदास जी न्यायतीर्थ ऐसे विषयों पर लेखनी उठाने के लिये सदा विरुद्ध रहे हैं पर अबकी बार तो यह स्पष्ट विचार आपके लेख के जवाब में लिखने ही पड़े हैं। आशा है मेरी इन पंक्तियों पर आप गंभीर हृदय से विचार करेंगे। और भविष्य में ऐसा काय करेंगे जिससे इस महापाठशाला को किसी तरहकी हानि न पहुंचे हमें तो यह चाहिये कि हम और आप सब मिल कर ऐसा प्रयत्न करें जिस से यह हमारी छोटी सी पाठशाला एक बड़ा भारी संस्कृत कलेज बन जाय अंत में वर्तमान प्रबन्धकारिणी कमेटी के सम्माननीय सदस्यों से भी यह निवेदन करता हूँ कि वे पाठशाला की उन्नति के लिये पहिले से भी अधिक दृढ़ चित्त हों और इस पारस्परिक वैमनस्य को दूर करने के लिये पं० इन्द्रलाल जी आदि कुछ शिक्षित महाशयों को कमेटी के मेम्बर बनालें जिससे यह झगड़ा शान्त हो जावे।

—※—

सामयिक-चर्चा

अशान्ति के बादल

पवित्र तीर्थ क्षेत्र शान्ति के स्थल माने जाते हैं विशेष कर जैन क्षेत्र तो इसबातके लिये प्रसिद्ध हैं, क्योंकि वहाँ महंत, पंडे, पुजारी, गुंडे लोगों की मुसीबतें यात्रियों को नहीं भुगतनी पड़तीं किन्तु जब से कुछ तीर्थ क्षेत्रों पर दिगम्बर श्वेताम्बर समाज के झगड़े प्रारम्भ हुए तब से उन शान्ति स्थलों पर अशान्ति का नृत्य होने लगा है। दोनों सम्प्रदाय लाखों रुपये व्यर्थ बरबाद करके भी उन तीर्थों पर शान्ति स्थापन नहीं कर पाये हैं।

इन झगड़ों का प्रारम्भ श्वेताम्बर समाज की ओर से होता है किसी भी तीर्थ का कोई भी झगड़ा ऐसा नहीं मिलेगा जो दिगम्बर समाज के कारण उठ खड़ा हुआ हो।

श्री सम्मेद शिखर क्षेत्र के सम्बन्ध में एक नहीं। अनेक झगड़े ३४-३६ वर्ष से होते हुए चले आ रहे हैं कई तो प्रिवी कौंसिल तक भी गये उनमें दोनों ओर का लगभग २५-३० लाख रुपया बरबाद हो चुका होगा किन्तु अभी हमारे श्वेताम्बर समाज को सन्तोष नहीं हुआ है। इसी कारण उसकी मनोवृत्ति ऐसी जान पड़ती है कि निकट भविष्य में सम्मेदशिखर पर नया केस चालू होवे। अनुमान इस तरह होता है—

प्रिवी कौंसिल से यह निर्णय हुआ है कि "२१ टोंकों पर दोनों संप्रदायों का समान अधिकार है अतः उनकी मरम्मत होते समय प्राचीन चरणचिन्हों में कुछ भी रद्दोबदल न होना चाहिये।" किन्तु टूटी हुई ६ टोंकों के स्थान पर अभी जो ६ नवीन टोंकें श्वेताम्बर समाज की ओर से बनाई गई हैं उनके चरणचिन्ह दूसरे ढंग से बैठाये गये हैं और वे नवीन लेखों से भर दिये हैं। इस तरह से श्वेताम्बर समाज इस मरम्मत द्वारा टोंकों को श्वेताम्बरीयता में रंगने का उद्योग

कर रहा है। जो कि सर्वथा अनुचित है।

श्वेताम्बर समाज को वर्तमान समय में उपयोगी शिक्षा ग्रहण कर इस झगड़े की जड़ निर्मूल कर देनी चाहिये क्योंकि पारस्परिक सांप्रदायिक झगड़े खड़े करने में न तो धर्म साधन है और न यश लाभ ही है जैन समाज इन झगड़ों से काफी बदनाम होचुका है और पर्याप्त अपनी बरबादी कर चुका है। यदि द्रव्य अधिक मात्रा में एकत्र होगया हो तो उसको विद्या प्रचार तथा धार्मिक प्रचार में लगाइये। केवल धन ही विजय का कारण नहीं होता।

संभवतः एक प्रसिद्ध विद्वान श्वेताम्बर साधुकी निगरानी में यह नवीन टोंक निर्माण का कार्य चल रहा है जोकि अपने आपको श्वेताम्बर दिगम्बर सम्प्रदाय के पारस्परिक प्रेमका पणनीय हामी बतलाते हैं। यदि यह सच है तब तो और भी अधिक दुःख की बात है। साधुओं को चाहिये कि झगड़ों के विगत इतिहास और आधुनिक समय की प्रगति को ध्यान से देखकर झगड़े को निर्मूल करदें।

दिगम्बर समाजको जहां अपनी ओर से कोई भी नवीन झगड़ा आरम्भ नहीं करना चाहिये वहीं तीर्थ भूमियोंपर अपना धार्मिक अधिकार भी सुरक्षित रखना चाहिए अत्याचारी होना पाप है किन्तु अन्याय अत्याचार का सहना महा पाप है। अतः समाज को धैर्यके साथ किन्तु सावधानी से परिस्थिति का निरीक्षण करना चाहिए और अपने नेताओं पर विश्वास करके उनके आदेश की प्रतीक्षा करनीचाहिये। संभवतः श्वेताम्बर समाज दिगम्बर समाज के समुचित एतराजों का सौजन्य से अनुभव करके अशान्ति की जड़ काट देगा।

यदि श्वेताम्बर समाज ने ऐसा न किया तो विवश होकर दिगम्बर समाज को वही कुछ करना पड़ेगा जो कि उसने पूर्व समय में किया था उसके लिये दि० समाज को तयार करना चाहिये। दि० रूप में जन्म लिया था और दि० रूप में ही परलोक यात्राकरनी है। अन्यायी का अन्याय दूर करने में भी यदि दि० होना पड़े तो उसे भी सहर्ष अपना नाचाहिये और अपने श्वे० भाइयों के हृदय में यह बात अंकित कर देनी चाहिये कि दि० समाज वह गुड़ नहीं है जिसको चींटे हजम कर जायंगे जिनेन्द्रदेव की भक्ति तथा जैन धर्म का संस्कार हमारे श्वे० भाइयों के हृदय में वह सुजनभाव उत्पन्न करेकि यह अशान्ति का काला बादल बहुत शीघ्र अपने आप उड़ जावे।

भा० तीर्थ क्षेत्र कमेटी तथा बंगाल विहार प्रा० तीर्थ क्षेत्र कमेटी तथा दोनों दिगम्बरीय कोठियों के मैनेजर महानुभावों को सचेष्ट होकर उचित कार्यवाही करनी चाहिये तथा समय समय पर आवश्यक समाचार जनता के समक्ष प्रगट करते रहना चाहिये।

आशा है उपर्युक्त शब्द उभय सम्प्रदाय के कर्ण-छिद्रों से प्रविष्ट होकर हृदय पटल पर जा पहुंचेंगे और भविष्य घटना का काला चित्र अंकित कर देंगे।

ललकार स्वीकार

जैन जगत के (जिसका कि नाम बदल कर, अब सत्यसंदेश हो गया है) संपादक श्रीमान पं० दरबारी लाल जी ने जैनजगत पत्र में "जैन धर्म का मर्म" शीर्षक लेखमाला द्वारा "सर्वज्ञता की असिद्धि, तीर्थंकरोंकी असर्वज्ञता, मुक्ति से पुनरागमन, जैन धर्म का उदय भगवान पार्श्वनाथ से हुआ है, रतिकर्म का इच्छुक किसी स्त्री के साथ विषय भोग करने से ब्रह्मचर्यव्रत भंग नहीं होता" इत्यादि अपने कल्पित

सिद्धान्त प्रकाशित किये हैं तथा 'सत्यसमाज' नामसे एक समाज स्थापित की है। स्वामी दयानन्द जी की तरह आप एक और नवीन धर्म की नींव डालना चाहते हैं। (आपने जैन जगत में अपने कल्पित सिद्धान्तों के विरुद्ध शास्त्रार्थ करने का अभिमान सूचक चैलेञ्ज दिया था। उस चैलेञ्ज को श्रीमान पं० मक्खनलाल जी न्यायालंकार मुरेना ने श्रीमान बा० हर्षचन्द्र जी वकील बनारस की प्रेरणा पाकर स्वीकार किया है। स्वीकारता देते हुए आपने ५० - ६० दि० जैन नेताओं के नाम भी लिखे हैं कि उनकी उपस्थिति में किसी केन्द्रस्थान पर यह शास्त्रार्थ होना चाहिये जिससे शास्त्रार्थ का कुछ फल भी प्राप्त हो।

हमारी समझ में श्रीमान पं० मक्खनलाल जी का वक्तव्य समुचित है। तदनुसार यह शास्त्रार्थ भारत वर्ष की राजधानी देहली में होना उपयुक्त रहेगा जैन मित्र मंडल को इसकी योजना करनी चाहिये। पं० दरबारीलाल जी भी जिन महानुभावों की उपस्थिति चाहें उनको भी सम्मिलित करके यह कार्य अवश्य हो जाना चाहिये। इससे जैन समाज को अच्छा लाभ होगा।

अजितकुमार

द्वेषका बहाना

मनुष्य को जब किसी बात का उचित युक्तियुक्त समाधान नहीं दीख पड़ता और उत्तर दिये बिना भी नहीं रहा जाता तब सामने वाले व्यक्ति पर कोई द्वेष भाव आदिका बोझ डालकर अपना मन सन्तुष्ट करने की सूझती है। यही बात खामगांव निवासी श्रीमान श्वे० यति बालचन्द्र जी की है वे आगमों के अनुचित विधानों का सन्तोषजनक समाधान तो करतेनहीं किन्तु मुझपर तथा श्रीमान पं० अजितकुमार शास्त्री पर द्वेष भाव का बहाना लगाते हैं।

अभी श्वेताम्बर जैन के २१ वें अंक में आपने यही अभिप्राय जाहिर किया है। हम यति जी से पूछते हैं कि आचारांग सूत्र में 'मंसं वा मच्छं वा' इत्यादि सूत्र का 'मांस, मत्स्य' अर्थ श्वे० टीकाकार शीलांगाचार्य ने किया है जिसके लिये गुजराती टीकाकार भी स्पष्ट रूप से निम्नलिखित वाक्य लिखता है।

" वखते अतिप्रमादि गृद्ध होवाथी मद्यमांस खावा चाटे माहे ते लीधा छे एम टीकाकार लिखे छे। "

पृ० २०६

" टीकाकार बाह्य परिभोगादि माटे अनिवार्य कारणयोगे मूलपाठना शब्दोनो अर्थ मत्स्य मांस अपवादमार्गे करे छे"। पृ० २०६

तथा अन्य भी—

" यद्यपि मधुमद्यमांसवर्जनं यावज्जीवं अस्त्येव तथापि अत्यन्तापवाददशायां बाह्यपरिभोगाद्यर्थं कदाचिद् ग्रहणेपि. चातुर्मास्यां सर्वथा निषेधः।

कल्पसूत्र पृ० १५७

" पुत्तं पिया समारब्भ आहारेज्ज अंश जए भुंजमाणो यमे हाऽी कम्मुणा णोवलिप्पई।" २८।

सूयगडंग

इत्यादि श्वेताम्बरीय ग्रंथों के वाक्य क्या पं० अजितकुमार जी लिख आये हैं या मैंने लिख दिये हैं अथवा इन वाक्योंका अर्थ सेब, अनार आदि बनस्पति परक होता है सो लिखिये।

"श्वेताम्बर मतप्राचीनता ट्रेक्ट के लेखक सरदार-शहर निवासी श्रीमान ला० गणपतिराय जी वकील

(शेष अगले पृष्ठ पर देखें)

तत्वार्थाधिगमभाष्य पर विचार

'जैनदर्शन' के २० वें अङ्क में उक्त शीर्षक से एक लेख प्रकाशित हुआ है, लेखक ने कुछ प्रमाणों के आधार पर तत्वार्थाधिगमभाष्य का रचना काल अमृतचन्द्र सूरि से पीछे बतलाया है और अमृतचन्द्र सूरिका समय वि०स० ९६२ लिखा है। वे प्रमाण इस प्रकार हैं :-

१- तत्वार्थाधिगमभाष्य में अनेक स्थलों पर श्री अकलंकदेव विरचित राजवार्तिक का और आचार्य पूज्यपाद विरचित सर्वार्थसिद्धि का पद्य ज्यों का त्यों पाया जाता है।

२- दशवें अध्याय के अन्त में जो ३२ कारिकाएं लिखी गई हैं वह ज्यों की त्यों श्री अमृतचन्द्र सूरि विरचित तत्वार्थसार ग्रंथ के आठवें अध्याय से उठा कर रख दी गई हैं तत्वार्थसार की ये कारिकाएं तत्वार्थराजवार्तिक के अन्त में 'उक्तं च' कहकर ही की गई हैं।

इन प्रमाणों की निस्सारता को देखकर हमें यह जान पड़ता है कि लेखक ने इस लेख के लिखने में बहुत उतावली से काम लिया है वरना ऐसी मोटी ऐतिहासिक भूल हो सकना कठिन था यदि तत्वार्थाधिगम भाष्य की कारिकाओं को अमृतचन्द्र सूरि की माना जाये तो राजवार्तिक के कर्ता अकलंकदेव का समय वि० स० ९६२ से भी बाद में मानना पड़ेगा जो इतिहास से किसी भी तरह प्रमाणित नहीं होता। तत्वार्थाधिगम भाष्य, सर्वार्थसिद्धि और राजवार्तिक में कुछ बातें सदृश पाई जाती हैं किन्तु उन बातों को किसने किससे लिया ? यह प्रश्न हल नहीं हो सकता है इस को हल करने के लिये तीनों ग्रंथों का तुलनात्मक अध्ययन करने की आवश्यकता है।

तत्वार्थाधिगम भाष्य स्वोपज्ञ है या नहीं ? इस विषय में आज भी मतभेद बना हुआ है। पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार जैसे इतिहासज्ञ अभी उसे स्वोपज्ञ मानने को तैयार नहीं हैं। किन्तु वह इतना अर्वाचीन नहीं है जितना कि लेखक का अनुमान है। पाठकोंको मालूम होगा कि दि० श्वे० सूत्र पाठों में भी बहुत अन्तर है, यदि दि० सूत्र पाठ को उमास्वामी कृत मान लिया जाय तो यह मानना पड़ेगा ही कि श्वे० सूत्र पाठ पीछे से तैयार किया गया है। किसने किया ? इस प्रश्न का उत्तर थोड़ा सा भी समझदार व्यक्ति यही देगा कि जिस ने भाष्य बनाया उसी ने सूत्र पाठ भी तैयार किया, जैसा कि पं० सुखलाल जी तत्वार्थसूत्र के गुजराती अनुवाद की भूमिका में

को आप श्वे० न बतलाकर दि० बतलाते हैं सो हर्ष है जरा श्वेताम्बर जैन के संपादक जी से भी पूछ लेना। कहीं आपको यह भी संदेह न हो जाय कि मांस परक अर्थ करने वाले आचारांगसूत्र आदि ग्रंथों के टीकाकार भी दिगम्बरीय थे ?

वीरेन्द्र जैन

इसके विपरीत, श्वे० सूत्र को उमास्वातिकृत मानकर पूज्यपाद को दि० सूत्र पाठ का आविष्कर्ता मानते हैं। अतः यदि श्वे० सूत्र पाठ और उसका भाष्य दोनों एक ही व्यक्ति के दिमाग की उपज है तो मैं यह निस्संकोच कह सकता हूँ कि भाष्य राजवार्तिक के पहले बन चुका था क्योंकि अकलंकदेव ने कई स्थानों पर श्वे० सम्मत सूत्र पाठ की आलोचना की है।

अब रही अमृतचन्द्र सूरि के 'तत्त्वार्थसार' की। उसके विषय में मेरा इतना ही निवेदन है कि वह एक संग्रह ग्रन्थ है। अमृतचन्द्र जी को तत्त्वार्थ के विषय में जो कुछ मिल सका उसका संग्रह उन्होंने 'तत्त्वार्थसार' में कर दिया। इससे हम देखते हैं कि अनेक प्राकृत गाथाओं को संस्कृत छाया श्लोक रूप में निबद्ध करके तत्त्वार्थसार में दे दी गई है। दूसरों की रचनाओं को अपनी रचना में सम्मिलित करने के उदाहरण अनेक ग्रन्थों में मौजूद हैं किन्तु ऐसा करने में दृष्टि भेद अवश्य रहा है किसी आचार्य ने दूसरे आचार्यों की रचना को प्रामाणिक समझ कर अपने में शामिल कर लिया है किसी ने खण्डन के लिये और किसी ने नवीन ग्रन्थ रच डालने की धुन में नकल कर डाली है। आचार्य अमृतचन्द्र ने पहिली दृष्टि से ही काम लिया है जो उनकी गुणग्राहकता का परिचायक है।

लेखक के उक्त प्रमाणों की समीक्षा करने के बाद एक बात अवशेष रह जाती है। लेखक लिखते हैं कि 'द्रव्यानुयोग तर्कणा' नामक श्वे० ग्रन्थ में दि० सूत्र पाठ का ही उल्लेख किया गया है अतः भाष्य द्रव्यानुयोग तर्कणा के बाद का है। यह बात भी मुझे विशेष जोरदार नहीं जान पड़ती श्वे० सूत्र पाठ के रहते हुए भी उदार लेखक दूसरे पाठ का उल्लेख कर सकता है, यह भी संभव है कि उसे दि० सूत्र पाठ विशेष प्रामाणिक जान पड़ा हो। इसके लिये मैं एक ताजा उदाहरण उपस्थित करता हूँ। स्थानकवासी सम्प्रदाय के आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज ने तत्त्वार्थ सूत्र का एक उम्दा संस्करण प्रकाशित किया है और अपने आगम ग्रन्थों के प्रमाण देकर यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि तत्त्वार्थसूत्र की रचना आगम ग्रन्थों के आधार पर ही की गई है। इस संस्करण में महाराज ने दि० सूत्रपाठ को ही स्थान दिया है। अतः इन दलीलों के आधार पर तत्त्वार्थ भाष्य की समस्या हल नहीं हो सकती इसके लिये विशेष प्रयत्न और परिश्रम की आवश्यकता है। हम पं० सुखलालजी से अनुरोध करेंगे कि वे इस दिशा में खूब परिश्रम करें जब यह प्रश्न खड़ा हुआ है तो इसका समाधान हो जाना ही आवश्यक है। आशा है अन्य विद्वान भी इस चर्चा पर विशेष ऊहापोह करके अपना अभिमत प्रकट करेंगे।
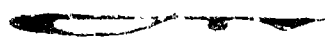
समाचार

—मुरेना, बनारस, सहारनपुर, इन्दौर आदि स्थानों के दि० जैन विद्यालयों की ओर से श्रीमान सेठ० राव जी सखाराम दोशी सोलापुर को इनकी सुवर्णजयंती के समय एक मानपत्र भेंट किया गया और 'जिनवाणी भूषण' की पदवी प्रदान की गई।

—श्री पार्श्व० विद्यालय उदयपुर के छात्रों को, स्थानीय बालाश्रम के वार्षिकोत्सव के समय अनेक स्कूलों के छात्रों के विविध भाँति के खेल (टगऑफवार कबड्डी गेम प्रभृति) हुए, जिसमें उक्त विद्यालय के छात्रों को टगऑफवार तथा कबड्डी में फर्स्ट आने के कारण बालाश्रम की तरफ से २ शील्ड पारितोषक में मिले।

—चित्रकूट के महंत की बनी हुई दस, लव की औष ध मंत्री जीवदया सभा १४१ सराफ बाजार बम्बई से बिना मूल्य प्राप्त होती है।

श्री सम्मेदशिखर पर श्वे० ने जो अभी ६ पुरानी टोंकों की मरम्मत करके नई टोंकोंमें नये तरहके चरण चिन्ह बैठाये हैं तथा उन पर नये लेख भर दिये हैं।

—नागपुर निवासी सिं० मुन्नालाल जीके पुत्रको— मलचन्द्र जी की बरात सिं० दुलीचन्द्र जी के यहाँ चौरई गई दूल्हा घोड़े पर सवार था उस समय उसके ऊपर मशाल से एक चिनगारी गिरी जिससे उसके कपड़ों में आग लग गई और वह अस्पताल जाकर मर गया।

—हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस में सारा पठनक्रम हिन्दी भाषा के माध्यम द्वारा पढ़ने का विचार चल रहा है किन्तु इस समय हिन्दी भाषामें एम० ए० तक समस्त विषयों की पाठ्य पुस्तकें नहीं हैं। एफ० ए० की पाठ्य पुस्तकें हिन्दी में तयार कराने के लिये घनश्यामदास बिड़लाने पचास हजार रुपये हिन्दू विश्वविद्यालय को प्रदान किये हैं।

—हिन्दू महासभा कानपुर में एक प्रस्ताव द्वारा उन हिंदुओंकी निन्दा की है जो जैन रथयात्रामें रुकावट डाला करते हैं। इस रुकावट उठाने के लिये एक कमेटी भी बनाई गई है।

—एक इतनी तेज अग्नि का आविष्कार हुआ है जो लोहे, सोने, चांदी आदि धातुओं को तुरंत गला देती है।

—बनारस से १५ मील दूरी पर खोज हो रही है अनुमान है कि वहां पृथ्वीके नीचे प्राचीन काशी नगर दबा हुआ पड़ा है।

—श्री० पार्श्व० दि० जैन विद्यालय उदयपुर से, गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज कलकत्ता की न्याय प्रथमा में ३ तथा न्याय मध्यमा में १ यह ४ छात्र बैठे थे; वे सभी सैकिण्ड डिविजन में उत्तीर्ण हुए। तथा श्री० पं० सुन्दरलाल जी शास्त्री प्रा० न्याय तीर्थ "काव्य प्रथमा" में फर्स्ट तथा "काव्य मध्यमा" में सैकिण्ड डिविजनमें उत्तीर्ण हुये।

विनीत—मन्त्री श्री पार्श्व० दि० उदयपुर

—मुलतान दंगे के विषय में अनेक स्थानों से यहाँ पत्र आये हैं उनसे निवेदन है कि यहां पर मुसलमानों ने साजिश करके धोखेसे दो आदमी और दो बच्चे मार दिये थे जिससे हिन्दुओं में जोश फैला था यदि उस जोश को हिन्दू नेता तथा अफसर शान्त न करते तो संभव था कि बदले के रूप में हिन्दुओं से भी ऐसी नरहत्यायें हो जातीं जैसा कि पिछले दंगों में होता रहा है। खुफिया पुलिस ने बहुत शीघ्र मुसलमान गुंडों का पता लगा लिया और इस समय १० - १२ मुसलमान सेशन सुपुर्द हो गये हैं। सरकारी गवाह तथा आँखोंदेखे गवाह द्वारा उनका अपराध प्रमाणित हो चुका है। नगर में शान्ति है।

REGD .N. L. 3459.

श्री चम्पावती जैन पुस्तकमाला की उपयोगी

प्रचार योग्य पुस्तकें

यदि आप जैनधर्म का अध्ययन प्रचार और खंडनात्मक साहित्य का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं तो कृपया निम्न लिखित पुस्तकों को अवश्य खरीदिये—

१ जैनधर्म परिचय —जैनधर्म क्या है ? सरलतया इसमें समझाया गया है। पृ० सं० ५० मूल्य -)

२ जैनधर्म नास्तिक मत नहीं है ? — जैनधर्म को नास्तिक बतलाने वालों के प्रत्येक आक्षेप का उत्तर मि० हर्बर्ट वारन (लन्डन) ने बड़ी योग्यता पूर्वक इसमें दिया है। पृ० सं० ३० मू० -)

३ क्या आर्य समाजी वेदानुयायी हैं ? पृ० सं० ४४ मू० -)

४ वेद मीमांसा — पृ० सं० ६४ मू० =)

५ अहिंसा — पृ० सं० ५२ मू० -)॥

६ भगवान ऋषभदेव की उत्पत्ति असम्भव नहीं है। —आर्य समाज के 'ऋषभदेव की उत्पत्ति असम्भव है' ट्रैक्ट का उत्तर बड़ी योग्यता पूर्वक इसमें दिया गया है। पृ० सं० ८४ मू० ।)

७ वेद समालोचना पृ० सं० १२४ मू० ।=)

८ आर्य समाज की गप्पाष्टक मू०)॥

९ सत्यार्थ दर्पण— योग्यता के साथ सत्यार्थप्रकाश के १२ वें समुल्लास का युक्तियुक्त खण्डन इसमें किया गया है। पृ० सं० २४० मू० ॥)

१० आर्यसमाज के १०० प्रश्नों का उत्तर। पृ० संख्या १० मू० =)

११ वेद क्या भगवद्वाणी है ? —वेदों पर एक अजैन विद्वान का युक्तिपूर्ण विचार। ,, -)

१२ आर्यसमाज की डबल गप्पाष्टक ,, -)

१३ दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि— जैनधर्म और दि० जैनमत का प्राचीन इतिहास प्रामाणिक सरल और औजपूर्ण लेखनी के साथ विस्तृत रूप से लिखा गया है जिसमें रंगीन तथा सादे अनेक चित्र हैं। ऐसी पुस्तक जैन समाज में अभीतक प्रकाशित नहीं हुई। प्रत्येक पुस्तकालय और भण्डार में इसका होना अत्यन्त उपयोगी है ऐसे अपूर्व सचित्र ऐतिहासिक ग्रन्थ की एक प्रति अवश्य मगावें। पृ० ३५० मू० १)

१४ आर्यसमाज के ५० प्रश्नों का उत्तर ,, =)

१५ जैन धर्म सन्देश-मनुष्यमात्र को पठनीय है ,, -)

१६ आर्य भ्रमोन्मूलन (जैन भ्रमोन्मूलन का मुंह तोड़ जवाब) ,, -

१७ लोकमान्य तिलकका जैनधर्म पर व्याख्यान। द्वि० एडीशन ,,)॥

१८ पानीपत शास्त्रार्थ भाग १ जो आर्यसमाज से लिखित रूप में हुआ। इस सदी के सम्पूर्ण शास्त्रार्थों में सर्वोत्तम है। ईश्वर जगत्कर्ता है इस को युक्तियों द्वारा असिद्ध किया है पृ० २०० मू० ।=)

१९ पानीपत शास्त्रार्थ भाग २ इसमें 'जैन तीर्थङ्कर सर्वज्ञ हैं' यह सिद्ध किया गया है। ,, ,, ।=)

सब प्रकार के पत्र व्यवहार का पता—

मैनेजर—दि० जैन शास्त्रार्थ संघ, अम्बाला-छावनी।

अजितकुमार जैन के प्रबन्ध से "अकलंक प्रिन्टिङ्ग प्रेस, मुलतान में छपकर प्रकाशित हुआ।

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैनशास्त्रार्थ संघ का पाक्षिक मुख-पत्र

जैन दर्शन

अंक २२

वर्ष २

सम्पादक—

पं० चैनसुखदास जैन न्यायतीर्थ, जयपुर।

पं० अजितकुमार शास्त्री मुलतान।

पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री बनारस।

वार्षिक ३) एकप्रति ≡)

जेष्ठ वदी ३० शनिवार
१ जून — १९३५ ई०

नवीन नियम और पठनक्रम

श्री दा० सेठ माणिकचन्द्र दि० जैन परीक्षालय बंबई इस समय दि० जैन समाज का उन्नत आदर्श परीक्षालय है इस उन्नति का श्रेय उसके मंत्री श्रीमान सेठ राव जी सखाराम दोशी सोलापुर को है। अभी आपकी स्वर्ण जयन्ती के समय सोलापुर में विद्वानों का अच्छा जमाव हुआ था उसमें परीक्षालयके पठनक्रम, नियमावली पर ऊहा-पोह होकर कई महत्वपूर्ण सुधार हुये हैं। जिनको इसी वर्ष से काममें लाया जायगा।

नवीन नियमावली अनुसार मुरैना, बनारस आदि २० केन्द्र स्थान परीक्षा के लिये नियत हुये हैं। बालबोध, प्रवेशिका, विशारद, शास्त्री परीक्षा देने वालोंसे प्रत्येक खड की क्रमशः ।), ।=), ।।) और १) फीस ली जावेगी। पूर्ण शास्त्री परीक्षा पास कर लेने पर तीन वर्ष पीछे परीक्षार्थी उपाधि परीक्षा भी दे सकेगा। सिद्धान्तालंकार, न्यायालंकार, साहित्यालंकार और व्याकरणालंकार ये चार उपाधियाँ निश्चित हुई हैं। वैद्यक विषयक भी शास्त्री परीक्षा हुआ करेगी।

समाचार

—भारत वर्ष के नये वाइसराय संभवतः लार्ड लिनलिथगो बनाये जावेंगे।

नबाब रामपुर के अधिकार कम करके राज्य के प्रबन्ध के लिये एक अंग्रेज एडमिनिस्ट्रेटर नियत हुआ है। उसने व्यर्थव्यय हटाने के खयाल से नबाब के १७ हाथी, २५ घोड़े और ३४ बैल ७ मई के दिन नीलाम कर दिये।

—भारतवर्ष में इस समय लगभग ५ करोड़ आदमी बेकार हैं।

—संसारके सभी हवाईजहाजोंसे बड़ा रूसका हवाई जहाज सवा दो हजार फुट ऊंचे आकाश में उड़ते हुए जल कर नष्ट होगया ४० आदमी भी जल मरे। इस हवाई जहाज में होटल, सिनेमा, प्रेस आदि मनोरंजन के उपयोगी सामान मौजूद थे।

—हैदराबाद (दक्खिन) का मौलाना सिद्दीक नामक एक मुसल्मान अफगानिस्तानी पठानों की सहायता से दक्षिणप्रान्त के 'तुर्पा और तिरुपति' नामक स्थानों पर बने हुए वेंकटरमण के विशाल मन्दिरों को लूटना तोड़ना चाहता है उसका खयाल है कि इस मन्दिरों अपार धन गढ़ा हुआ है। अपने मनोरथ को सफल बनाने के लिए वह अफगानिस्तान गया हुआ है। यद्यपि इस जमाने में यह कार्य कठिन है किन्तु दक्षिणी हिन्दुओं को सगठित एवं सावधान रहना चाहिये।

—उदयपुर की पा० दि० जैन संस्थाओं से गत अप्रेल माह में निम्न प्रकार लाभ लिया गया।

पार्श्व० वि० में ५६ तथा बोर्डिङ्ग हाउस में ४६ कन्यापाठशाला में ३० कन्याएं तथा धर्मशालामें २०० यात्री ठहरे। एवं औषधालय से १५४६ जैन अजैन स्त्री पुरुषों बच्चों ने स्वास्थ्य लाभ किया।

खतौली में जैन मिडिल स्कूल

—खतौली दि० जैनसमाज ने पूज्यवर न्यायाचार्य पं० गणेश प्रसाद जी वर्णी और पूज्य बा० भागीरथ जी वर्णी के सदुपदेश से श्री कुन्दकुन्द विद्यालय खोलने के लिये एक बिल्डिंग १५०००) पन्द्रह हजार रुपये में खरीदी थी जो करीब १०००००) एक लाख रुपये की लागत की है और विद्यालय के लिये हर प्रकार से बहुत ही उपयोगी और सुन्दर बिल्डिंग है। उसमें अभीतक प्राइमरी पाठशाला दर्जे ४ तक चल रही है। अब दोनों पूज्य वर्णी जी की कृपा से यह निश्चय हुआ है कि जोलाई सन १९३५ से उसको अंग्रेजी मिडिल स्कूल तक कर दिया जावे उसमें धार्मिक शिक्षा अनिवार्य होगी और स्कूल को रिको-ग्नाइज कराकर शीघ्र हाईस्कूल बना दिया जावेगा। हमको उसके लिये ट्रेन्ड मास्टरों व धर्माध्यापक की आवश्यकता है जो विद्वान आना चाहें वे अपनी योग्यता का परिचय और कमसे कम वेतन की स्वीकारता सहित प्रार्थना पत्र नीचे लिखे पते पर भेजने की कृपा करें विद्यार्थियों के लिये भी अपूर्व अवसर है प्रवेश होने के लिये प्रार्थना पत्र भेजें।

गोकुलचन्द बाबूलाल जैन खतौली

—धर्माध्यापन बंद- श्रीमान स्वर्गीय सेठ किशोरी लाल जी पाटनी ने आनंदपुर काल्में एक मकान बना कर दि० जैन विद्यालय स्थापित किया था जिस में धर्माध्यापक भी रहता था किन्तु इस समय मैनेजर ढूंढिया जैन हैं उन्हों ने सेठानी जी को बातों में लगा कर धर्मशास्त्र की शिक्षा बंद करा दी है। समाज हितैषी महानुभावों को इधर ध्यान देना चाहिये।

—रायचमल जैन

अकलंकदेवाय नम
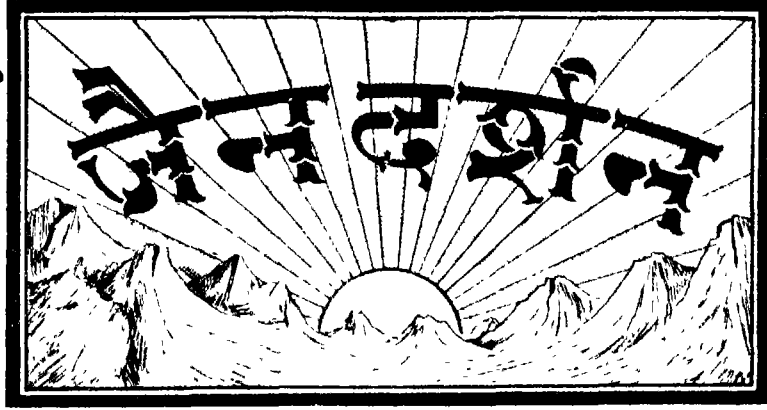
श्री जैनदर्शनमिति प्रथितोऽत्र रश्मिर्मर्मप्रभञ्जि निखिलदर्शनपक्षदोष .
स्याद्वादभानुकलितो बुधचक्रवन्द्यो भिन्द्यात्तमो विमतिजं विजयाय भूयात्

वर्ष २ | श्री ज्येष्ठ वदी ३०—शनिवार श्री वीर सं० २४६१ | अङ्क २२

कर्म-वीर

(१)

कहाँ क्या कहता है संसार
नहीं सुनते हो कुछ भी बात
कर्णयुग को उंगली से मूंद
चले जाते हो तुम दिन रात

(२)

विपति की चट्टानों को तोड़
विषम पथ को कर सम औ स्वच्छ
चले जाते हो सिंह समान
बनाकर अपना सुन्दर गच्छ

(३)

सफलता के आधार समर्थ
व्यर्थ आडम्बर का कर त्याग
विघ्न बाधाओं के तुम बीच
खड़े रहते हो निशिदिन जाग

(४)

मृत्यु की नहीं कभी परवाह
नहीं है स्वार्थानल की दाह
ख्याति औ पूजा का मिष्टान्न
नहीं चखने की रखते चाह

(५)

वाम विधि प्रेरित विघ्न महान्
बाँध दल आते तेरे बीच
देख पैनी तेरी तलवार
किन्तु भग जाते वे सब नीच

(६)

वीर बन वीरासन पर बैठ
वासनाओं का कर बलिदान
रूढ़ि के शासन का कर नाश
जिला देते हो सकल जहान

चैनसुखदास जैन

राजा और उसके कर्तव्य

(ले० श्रीमान पं० मिलापचन्द्र जी न्यायतीर्थ)

अंग्रेजी में एक कहावत है कि " Necessity is the mother of Invention " अर्थात 'आवश्यकता आविष्कार की जननी है' । दूसरे शब्दोंमें इसे यों भी कह सकते हैं कि किसी भी कार्य की सृष्टि किसी कारण को लेकर ही होती है बिना किसी खास आवश्यकता के किसी कार्य की सृष्टि नहीं होती । अब हमें जानना यह है कि प्राणियों को क्या ऐसी आवश्यकता आ पड़ी थी जिससे कि उन्हें विवश हो राजत्व की सृष्टि करनी पड़ी । क्या राजा की सृष्टि के बिना हमारा काम नहीं चल सकता था, जिससे कि हमने किसी एक पुरुष विशेष को इतने अधिकार प्रदान किये उसकी तन, मन एवं धन से सेवा और सुश्रूषा करना अपना परम कर्तव्य समझा, इतना ही नहीं अपितु उसे अपने पिता तुल्य समझ कर उसके सुखमें सुख एवं उसके दुःखमें अपना दुख समझते हुए सतत उसके कल्याण की कामना की । यदि वस्तुतः देखा जाय तो वह भी एक मनुष्य ही है और हम भी मनुष्य हीं, फिर भी क्या कारण है कि हम एक किसी पुरुष विशेष के लिये इतने चिन्तित हों, उसके लिये इतनी सुख सामग्री जुटाएं, एवं सदा उसकी कल्याण कामना करते रहें । यह ही नहीं हिन्दू शास्त्र तो हमें राजाको ईश्वरका अंश प्रतिपादन करते हैं । अब यह बात है तो निःसन्देह राजा की सृष्टि में कोई बड़ा भारी रहस्य अन्तर्गत है, नहीं तो कौन ऐसा मूर्ख होगा जो अपने सुखों पर लात रखकर किसी एक पुरुष को ऐसा गौरवान्वित एवं शक्ति सम्पन्न होने दे ।

संसार में सभी तरह के प्राणी होते हैं । किसी की चित्तवृत्ति कैसी है तो किसी की कैसी । कोई बिल्कुल ही भोलाभाला एवं निर्दोष है तो कोई महान् उद्दण्ड और आततायी है, कोई सज्जन है तो कोई दुर्जन कोई महान दयालु और सदाचारी है तो कोई महान् कठोर हृदय एवं दुराचारी है । कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य संसार न तो बिलकुल सदाचारी ही है और न बिलकुल दुराचारी ही; किन्तु सदाचारी एवं दुराचारी दोनों तरह के मनुष्यों का सम्मिश्रण है । सज्जन और दुर्जन तो आपस में दूध में पानी की तरह मिले हुये हैं उनका अलग २ करना सम्भव नहीं । और तो जाने दीजिये एक पिता की सन्तानों में ही कोई दुर्जन है तो कोई सज्जन; ऐसी हालतमें सज्जनों की रक्षा एवं दुर्जनों के दमन के लिये किसी एक प्रबल शक्ति की आवश्यकता हो ही जाती है इसी उपदेश को लेकर राजत्व की नींव डाली गई है, यदि दुनियां में सज्जन और दुर्जन ये दो तरह के प्राणी नहीं होते तो कोई आवश्यकता नहीं थी कि राजत्व की सृष्टि की जाती परन्तु सज्जन और दुर्जन तो अनादि काल से होते आये हैं एवं होते रहेंगे तो फिर क्या यह उचित है कि उन्हें अपनी २ कृतियों का फल न मिले ? दुर्जनों का तो स्वभाव है कि चाहे जितना ही सुख दिया जाय पर वे अपनी दुष्टता नहीं छोड़ते, वे तो सदा लोक के प्रतिकूल ही चलते हैं । जैसा कि महा कवि वाग्भट्ट ने कहा है

"एकः प्रकृत्या जगतोनुकूलः प्रकाशमन्यः प्रतिकूलयेव"

अर्थात्-सज्जन स्वभाव से ही जगत के अनुकूल

दुर्जन जगत के प्रतिकूल होते हैं। ऐसी अवस्था में यह प्रधान कर्तव्य हो जाता है कि किसी एक प्रबल शक्ति का चुनाव हो जिससे कि दोषियों के दोषों का पर्यालोचन किया जाकर दोषानुकूल उन्हें दण्ड किया जाय, ताकि जनता उन उदाहरणों को देख कर बुरे कामों से बचे और अपने आपको सुपथ में लगावे।

जब सब मनुष्य स्वच्छन्द होते हैं, उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं होता तो उनका नैतिक अधःपतन हो जाना बहुत सम्भव है। उदाहरणार्थ एक बालक है यदि उस पर किसी तरह का आतङ्क नहीं, यदि वह स्वच्छन्द अपने आप पर छोड़ दिया जाता है तो वह निस्सन्देह दुर्गुणों का शिकार हो जाता है। यदि कोई लड़का होनहार हो तो बात दूसरी है पर प्रायः यही देखा जाता है कि थोड़ी बहुत उचित रूपमें नियन्त्रणा हर एकके लिये आवश्यक होती ही है। यदि कुछ भी नियन्त्रणा न हो तो मनुष्य सदाचारी एवं योग्य नहीं हो सकता। नीति का वाक्य है कि--

नियतविषयवर्ती प्रायशो दण्डयोगा--
ज्जगति परवशेस्मिन् दुर्लभः साधुवृत्तः

अर्थात् "भयबिन प्रीति न होत गुसाईं" यह कहावत अक्षरशः सत्य है। यह केवल भय ही है जिससे कि हरेक प्राणी अपने अपने कर्तव्य में तत्पर होता है।

बस इसी उद्देश्य को लेकर कि जनता का नैतिक अधःपतन न हो जाय—उसमें अराजकता न फैल जाय राजत्व की सृष्टि की गई है। नैतिक अधःपतन हो जाना कितना बुरा है यह किसी से छिपा नहीं। प्रत्येक पुरुष जानता है कि यदि किसी व्यक्ति का नैतिक जीवन खराब है तो उसमें चाहे सैंकड़ों ही अच्छे २ गुण विद्यमान क्यों नहीं हों, जीवन कभी एक आदर्श जीवन नहीं कहला सकता—नैतिक जीवन ही आदर्श जीवन है। इस नैतिक अधःपतन को रोकने के लिये राजत्व की बड़ी भारी आवश्यकता है। यदि राजा न हो तो प्रजा का सुव्यवस्थित होना सम्भव नहीं। अच्छे राजा की प्रजा ही अच्छी और सुयोग्य होती है। जैसा कि कहा भी है---

यदि न स्यान्नरपतिः सम्यग्नेता ततः प्रजा
अकर्णधारा जलधौ विप्लवेतेह नौरिव॥

अर्थात्-जिस प्रकार समुद्रमें बिना मल्लाह के नाव नष्ट होने से नहीं बच सकती उसी प्रकार बिना किसी राजा के प्रजा सुयोग्य नहीं होसकती। चाहे प्रजा कितनी ही समृद्धिशालिनी क्यों न हो पर यदि वह राजा हीन है तो वह कभी भी शान्तिसे जीवन व्यतीत नहीं कर सकती। ऐसा ही महाकवि बाणभट्ट ने लिखा है---

अस्वामिकाः प्रकृतयः समृद्धाः निस्तरितुं न शक्नुवंति"।

वस्तुतः राजा प्रजा के लिये बहुत उपकारी है। ऐसे तो हम मेघों को अपना सबसे बड़ा उपकारी मानते हैं परन्तु राजा तो इससे भी बढ़कर है। मेघों के रुष्ट होने पर भी प्रजा थोड़े दिन अमन चैन से रह सकती है। पर राजा के क्रुद्ध होने पर तो उसी समय सारे ऐशो आराम गायब होजाते हैं। तात्पर्य यह है कि प्रजा की उन्नति या अवनति राजाके योग्य अथवा अयोग्य होने पर ही निर्भर है। कहावत भी है

Like master like man

अर्थात् 'यथा राजा तथा प्रजा'। यदि राजा योग्य है, यदि वह समझता है कि जनता जनार्दन के प्रति मेरा क्या कर्तव्य है, किस लिये जनता ने मुझे अपना स्वामी चुना है, तो वह यथाशक्ति जनता के उन्नति

के साधन जुटाता हुआ अपने कर्तव्य को अदा करता है परन्तु इसके प्रतिकूल यदि वह जनता के प्रति अपने कर्तव्य को भूल जाता है केवल यह समझ कर के कि मैं ईश्वर का अंश हूँ, जैसा जचता है वैसा करता हूँ प्रजा के हिताहित का विचार नहीं करता तो वह राजा के पद को ही लज्जास्पद नहीं बनाता किन्तु सदाचार के नियमों का भी विध्वंस कर डालता है। वस्तुतः राजा कहलाने का अधिकारी ही नहीं है जो प्रजा का अपनी संतानकी तरह पालन करता हुआ उसकी उन्नति में कारण होता है क्योंकि राजा शब्द का अर्थ है जो अच्छी तरह सुशोभित हो परन्तु कोई अच्छी तरह सुशोभित तभी हो सकता है जब कि वह उस कर्तव्य को पैरा करता है जिसके लिए कि उसकी उत्पत्ति हुई है। राजा की उत्पत्ति भोग विलासों में पड़कर व्यर्थ जीवन बिताने के लिये नहीं अपितु एक बड़े भारी उद्देश्य को लेकर है। राजा का जीवन कई बातों के उत्तरदायित्व के पुटों से बना है। सारे देश की उन्नति या अवनति का भार उस पर निर्भर रहता है। यह नहीं सोच लेना चाहिये कि चलो राजकुल में उत्पन्न हुए हैं तो इसी लिये कि खूब मौज की बंसरी बजे। क्या राजकुलमें भी जन्म लेकर हम सेवा ही करते रहेंगे? नहीं, राजकुलमें जन्मलेना तो जिम्मेदारियों का गट्ठर सिर पर रखना है। राजकुल में जन्म लेना तो और कुलों में जन्म लेने की अपेक्षा बहुत विपदास्पद है। साधारण कुल में जन्म लेने वाले के माता-पिता या गुरु परिजन वगैरह की ही रक्षा की जिम्मेदारी होती है परन्तु राजा का बाना पहिन लेने पर तो माता पिता व गुरु परिजन वगैरह की रक्षा का तो भार अपने पर रहता ही है परन्तु इसके अलावा सबसे बड़ा जिम्मेदारी का भार प्रजा की रक्षा का होता है। उसे अपने परिजन की तरह अपनी सारी प्रजा की भी रक्षा करनी पड़ती है! सारांश यह है कि और जन साधारण माता पिता, सामाजिक तथा धार्मिक ऋणों के अलावा राजा के सबसे जबरदस्त प्रजा ऋण और होता है। जो राजा बुद्धिमत्ता पूर्वक इस ऋण को जहां तक अदा करता है वह उसी हदतक सुयोग्य और सफल शासक माना जाता है। आज हम जो थोड़े ही राजाओं के विषय में सुनते हैं—इसका क्या कारण है? क्या आजतक इतने इने गिने ही राजा हुये हैं? नहीं, होने को तो हजारों राजा होचुके पर सुने वे ही जाते हैं जो सुने जाने योग्य थे। जिन्होंने प्रजा की सेवा करना अपना कर्तव्य समझ कर प्रजा का हित किया वे ही सुने जाते हैं और भविष्य में भी सुने जायेंगे। आज जो हम अशोक को सबसे बड़ा राजा कहते हैं तो क्यों-उसमें क्या विशेषता थी? क्या उसका राज्य बड़ा था इसलिये हम उसकी प्रशंसा करते नहीं अघाते या कोई वह बड़ा भारी विजेता था जिससे कि हम आज उसकी इतनी गुण-गाथा बयान करते हैं। नहीं, अशोक आज इसलिये आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता कि वह एक बडे राज्य का स्वामी था या वह कोई बड़ा विजेता या बुद्धिमान न्यायी राजा था। उसकी प्रशंसा का खास कारण है तो एक प्रजाहित। अशोक ने जितना प्रजाहित में भाग लिया उतना आजतक और किसी अन्य राजाने नहीं। यदि देखा जाय तो वह एक बड़ा सम्राट था चाहता तो कौन से ऐशोआराम उसके लिये असम्भव थे। यदि वह चाहता तो वह भी संसार की सैर कर सकता था, अच्छे से अच्छे भोग विलास की सामग्री जुटा सकता

था। बड़े भारी आमोद प्रमोद में सुख से पलंग पर लेटा हुआ स्वर्ग-सुखका आनन्द लूट सकता था, पर नहीं, उसने इन कामों में अपना हित नहीं समझा। उसने अपने कर्तव्य पालन में ही सच्चा सुख समझा। आमोद प्रमोदों को तिलाञ्जली दे दी एवं प्रजा हित के लिये तन, मन और धन से मैदान में उतर गया। उसने प्रजाहित के लिये क्या २ किया यह गिनानेकी जरूरत नहीं--इतिहास इसका साक्षी है। हमको तो उसकी प्रजाहितैषिता का अनुमान तात्कालिक प्रजा के भावों पर ही करना चाहिये। प्रजा उसको अपना परम पिता मानती थी, उसके इङ्गित पर मर मिटने को तय्यार रहती थी, वहां इससे ज्यादा अशोक की प्रजा हितैषिता के सम्बन्ध में और क्या कहा जा सकता है। इन्हीं कारणों से अशोक एक बड़ा भारी सफल और सुयोग्य सम्राट गिना जाता है। प्रजा के पक्ष में तो अब भी यह कहा जा सकता है कि जो भाव प्रजा के अशोक के प्रति थे वे अब भी आधुनिक राजा के प्रति हैं परन्तु अफसोस, जो अशोक ने किया उसका शतांश भी हम आधुनिक राजाओं में नहीं पाते।

मानव समाज में राजा की उत्पत्ति चिरकाल से है यहां तक कि हमारे हिन्दुशास्त्र तो सतयुग में भी राजाओं का अस्तित्व बखान करते हैं। अब प्रश्न तो यह रह जाता है कि राजा का प्रजा के प्रति क्या कर्तव्य है। इस विषय का समुचित उत्तर कविकालिदास एक ही श्लोक में दे डालते हैं। वे कहते हैं कि-

प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्म हेतवः

अर्थात् राजा को प्रजा की उसी तरह पालना करनी चाहिए। जिस प्रकार एक पिता अपने पुत्र की करता है। जिस प्रकार पिता पुत्र को नियन्त्रणा में रखता हुआ उसको शिक्षा देता, है उसे सन्मार्ग में चलने को बाध्य करता है, उसके दुःखों को दूर करता है एवं खानपानादिक से उसे सुखी रखता है उसी प्रकार राजा अपनी प्रजा को शिक्षा दे' सन्मार्ग चलावे' उसका दुःख निवारण करे एवं उसे सुखी और समृद्ध बनाने की चेष्टा करे। बच्चों को भूखों मरते एवं अत्यन्त दयनीय दशा में छोड़ कर पिता यदि आप बड़े २ महलों में रहता हुआ नाच गानमें मशगूल रहे तो जिस प्रकार वह लोक में निन्दा का पात्र होता है उसी प्रकार यदि राजा प्रजा के हित की उपेक्षा करता हुआ केवल अपने ही अमन चैन की फिक्र में रहता है तो वह भी निन्दा ही का पात्र है, प्रशंसा का नहीं। क्योंकि एक मात्र प्रजा का हित करना ही राजा का कर्तव्य है। कहा भी है--

सते मा विनशेद्वीर प्रजानां क्षेम लक्षणः
यास्मन्विनष्टे नृपति रैश्वर्याद् व्यरोपति ॥

अर्थात् यदि कोई राजा अपना ऐश्वर्य बनाए रखना चाहता है तो उसका कर्तव्य हो जाता है कि प्रजा को कुशल क्षेम पूर्वक रक्खे। और भी कहा है--

राजक्समाच्चमात्येभ्य श्चोरादिभ्य प्रजा नृपः
रक्षन्यथा बलिं गृह्णन्निह प्रत्येत्यमोदते ॥

अर्थात् जो राजा अपनी प्रजा को दुष्ट चोर और लुटेरों के चंगुलमें फंसने से बचाता है एवं यथायोग्य कर उगाहता है, वह ऐहिक और पारलौकिक सुखों को प्राप्त करता है।

राजा को शासन को सुव्यवस्थित रखने के लिये धन की आवश्यकता पड़ती है प्रजा उसे अदा करनेमें पीछे नहीं हटती वह सहर्ष उसे धन देती है पर अफसोस उस धन का सदुपयोग नहीं होता वह प्रजा हित के लिये व्यय न होकर केवल राजा की शोभा सामग्री में व्यतीत होता है। पर प्रजा इसलिये कड़ी मिहनत से कमाये हुये धन को राजा को अर्पण नहीं करती वह अपने हित के लिये ही इतनी कुर्बानी करती है। जब यह बात है तो राजा का कर्तव्य हो जाता है कि वह उस धनको उसकी भलाईमें ही व्यतीत करे। कवि कालिदास ने रघुवंश में लिखा है

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः ॥

अर्थात् जिस प्रकार सूर्य जो समुद्र से जल लेता है सो इसलिये नहीं कि अपनी प्यास बुझाये किन्तु इस लिये कि वर्षा के रूप में उसे पीछे हजार गुना लौटाए, उसी प्रकार राजा का कर्तव्य होजाता है कि वह जो धन टैक्स या कर रूप में उगाहे उसे प्रजा की भलाई के लिये ही व्यतीत करदे।

शास्त्रकारों का मत है कि--

प्रजापालनाय राज्ञा दण्डः प्रणीयते न धनार्थम्।

सुलतान और ङ्गजेबको हम चाहे जैसा बादशाह कहें पर जब हम उसके चरित्र की तरफ ध्यान देते हैं तो हमें उसे सफल और सुयोग्य शासक ही कहना पड़ता है। वास्तव में उसके जीवन की सादगी, मितव्ययिता और सच्चरित्रता प्रशंसनीय है। वह राज्य के धन को अपने आराम के लिये खर्च करना पाप समझता था इसीलिये वह सम्राट होने पर भी टोपियों से या कुरान की नकल कर, गुजारा करता था। कर्तव्यनिष्ठ ऐसा था। कि सदैव कहा करता था कि प्रजा के सुख के लिए निरन्तर परिश्रम करना राजा का परम कर्तव्य है।

श्री प्रोफेसर बेस्टेबिल 'कर' की परिभाषा करते हुए लिखते हैंकि--"कर सार्वजनिक कार्यों के लिये व्यक्तियों याव्यक्ति समूहों सेअनिवार्य रूपमें लिया हुआ धन है" वस्तुतः कर सार्वजनिक कार्यों में खर्च किये जाने कोही है किसी व्यक्ति विशेष या जाति विशेष अथवा समाज विशेष के स्वार्थ साधन के लिए नहीं। पर खेद है कि वर्तमान में आवश्यकता से अधिक कर लेते पर भी प्रजा हित का कोई खयाल नहीं किया जाता।

कर जो लगाया जाना चाहिये वह भी प्रजा की स्थिति को देख कर ही, न कि अपनी इच्छा पूर्वक। कर ऐसा ही हो जिससे देने वाले का तो विशेष नुकसान नहीं हो वरं राज्य का भी काम न रुका रहे इस तरह नहीं कि आम खाने के लिये वृक्ष से आम न तोड़ वृक्ष ही काट डाला जाय। कहा भी है --

ऊधश्छिन्द्यात्तु यो धेन्वाः क्षीरार्थीन लभेत्पयः
एवंराष्ट्रमयोगेन पीडितं न विवर्धते।

अर्थात् यदि कोई चाहे कि मुझे दूध भी मिला करे और गाय की भी हानि न हो तो उसे चाहिये कि जो कुछ गाय दूध दे उसी में सब्र रक्खे। इसके विरुद्ध गायों के थन काट लेने से तो दूध नहीं मिल सकता। इसी प्रकार यदि अन्याय पूर्वक कर लिया जायगा तो वह राष्ट्र ज्यादा दिन नहीं पनप सकता।

शास्त्र कारों के मत से उपज का छठा हिस्सा ही कर रूप में लेनाउचित है विशेष नहीं क्योंकि नीति का वाक्य है कि "विपदन्ता ह्यविनीतसम्पदः"

अर्थात् अन्याय से उपार्जन किया हुआ धन विपत्तियों से घिरा होता है।

इन बातों के अलावा यदि कोई राजा चाहता है कि मैं सदा सुखी रहूँ तो उसका कर्तव्य हो जाता है कि कामक्रोधादि षड् वर्ग का यथासंभव त्याग करने का प्रयत्न करे। कहा भी है—

> कामः क्रोधस्तथा मोहो लोभो मानो मदस्तथा
> षड्वर्गमुत्सृजेदेनमस्मिंस्त्यक्ते सुखी नृप

बस अब ज्यादा न कह कर केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि जिस प्रकार पिता अपने पुत्र के प्रति पेश आता है उसी प्रकार राजा को अपनी प्रजा की तरफ पेश आना चाहिये। ऐसा करते हुए ही उसका राजापन सार्थक हो सकता है अन्यथा नहीं। हम तो सदा यही आलाप गाया करते हैं और गाया करेंगे कि—

> राजा सत्यं च धर्मश्च राजा कुलवतां कुलम्
> राजा माता पिता चैव राजा हितकरो नृणाम्।

किन्तु यह हमारी आशा सफल होती है या नहीं यह हम नहीं जानते। यह तो शासकों के हृदय ही जानते हैं।

जैनधर्म का उदयकाल सबसे पुरातन है

(ले० श्री युत योगेन्द्रकुमार जैन हिन्दी रत्न)

विचार विनिमय आधुनिक संसार का खास मन्तव्य है। यह है भी आवश्यक, खासकर भारत वासियों के लिये तो आवश्यक ही नहीं, किन्तु उपयोगी भी है। जिन में सोलहवीं शताब्दी की साम्प्रदायिकता अबभी अपना प्रभुत्व जमाये हुए है दुर्भाग्य से भारत और उसके निवासी इस गणना में हैं। इस नव जीवन की लहर में भी दुराग्रही साम्प्रदायिकता का नाश इस युग में भी नहीं हो पाया है। और इस पर भी तुर्रा यह है कि लोग अपने २ मन्तव्यों को ही नितान्त सत्य और सर्वथा निष्पक्ष हो कर सत्य को प्रकट करने का दंभ भर रहे हैं। यदि ऐसे व्यक्ति अपने पक्षपात का चश्मा आंखों से उठा कर सत्य का निर्णय उस विषय के संपूर्ण साहित्य की परीक्षा द्वारा करें तो, इसमें शक नहीं है कि वे सत्यमार्ग के पाने में असफल न होंगे। किन्तु मनचले लोग इस क्रिया से कोसों दूर रहते हैं। और वह दूसरों के मान्य सिद्धान्तों का उपहास उड़ाने में अपनी बड़ाई समझते हैं। क्या वे सभ्य संसार की दृष्टि में अच्छे हैं? कदापि नहीं।

इसी प्रकार का एक नमूना हमारे सम्मुख "आर्य मित्र" के विगत अंक (ता० ११ अप्रेल १९३५) के शंका समाधान स्तम्भ में महाशय जियालाल जी वर्मा आगरा का लेख मेरे इस कथन की सत्यता का द्योतक है। वैसे तो इसी स्तम्भमें कई महिनों से दो पुस्तकों की समीक्षा प्रकाशित होरही है मगर वह अभीतक अपूर्ण है। इसी कारण उसका उत्तर नहीं दिया गया

है, पूर्ण होने पर समाधान किया जायगा विचारशील पाठक तब तक धैर्य रखें।

वर्मा जी ने इस लेख में यह सिद्ध करने की असफल चेष्टा की है कि जैनधर्म नवीन धर्म है और वह २३०० वर्ष से प्रचलित है तथा बौद्ध धर्म की शाखा है। जिसका सारांश आपके ही शब्दों में इस प्रकार है—

"१- जब से जैन स्तूप इत्यादिक हैं तभी से जैन धर्म है, अर्थात् लगभग २४०० वर्ष से है।

२-इससे पुराने स्तूप इत्यादिक न मिलने से यह प्रकट होता है कि जैनमत इससे पूर्व नहीं था।

३ यदि था तो जैनाचार्य पहिले स्तूप इत्यादि बनवाने का ज्ञान नहीं रखते थे। यह उन्होंने बौद्धोंसे सीखा, इसीलिये वे बौद्धोंकी शाखा कहलाये आदि।"

अब विचारणीय यह है कि क्या यह बात वर्मा जी ने सत्य लिखी है, या गलत

वैसे तो जैनियोंकी मान्यता है कि जैनधर्म स्वतंत्र और अनादि काल से चला आ रहा है, विश्व में यही एक सच्चा धर्म है और यह कहीं न कहीं किसी रूपमें हर समय विद्यमान रहता है यह बात है भी ठीक। अवसर्पिणी काल में जैनधर्म के आदि प्रवर्तक भ० ऋषभदेव थे इसी कारण उनका नाम आदिनाथ पड़ा क्योंकि यह प्रथम तीर्थंकर थे जिनका कि समय इतिहास की सीमा से बहुत दूर है। भ० ऋषभदेव ने इस युग के प्रारम्भमें जैनधर्म का प्रचार किया था। इस बात की पुष्टि जैन शास्त्र ही नहीं अपितु जैनेतर ग्रन्थ भी करते हैं, उदाहरण के लिये कुछ प्रमाण दिये जा रहे है पाठक ध्यान से पढ़ें और विचार करें।

वेद १ पुराण २ आदि मान्य ग्रन्थों में स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक प्रमाण भी उपलब्ध हैं, पाश्चात्य विद्वान डा० फुहरर (Dr Fuhrer) ने मथुरा के कंकाली टीले से प्राप्त शिलालेखों के आधार से यह सिद्ध किया है कि "पूर्व समय में जैन लोग ऋषभदेव की मूर्तियां बनाते थे। देखो उल्लेख एपीग्राफिया इंडिका (Epigraphia Indica Volume I and 2) राजा कनिष्क हुविष्क और वासुदेव सम्बन्ध इनलेखों पर है जो दो हजार वर्ष पुराने हैं। और तो क्या वर्मा जी के गुरु महाराज स्वा० दयानन्द जी ने स्वयं प्रथम एडीशन सत्यार्थ० में लिखा है कि "जैन धर्म के प्रतिपादक भगवान ऋषभदेव थे।

इससे स्पष्ट है कि भगवान ऋषभदेवका अस्तित्व ऐतिहासिक सीमासे बहुत बाहर है। उन्हींको आदि-नाथ भी कहते है, इन्ही से लेकर आजतक धाराप्रवाह से जैनधर्म चला आ रहा है। आज से २४६१ वर्ष पूर्व अन्तिम चौबीसवें भ० महावीर तीर्थंकर के पश्चात इन्द्रभूति गौतम आदि यतिवरों ने ग्रन्थरत्न अपनी स्मृति में सुरक्षित रक्खे इसके बाद अंत तक

---

१ ऋषभमा समानानां सपत्नानां विषासहिं।
हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपितं गवाम् ॥१॥ ऋग्वेद अ० ८, ८, म० २४।

२ भागवत में ऋषभदेव को अष्टम अवतार मानकर जैनधर्म का प्रवर्तक बताया है। अष्टमे मेरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रमः। दर्शयन् वर्त्म धीराणां सर्वाश्रम नमस्कृतः ॥१३॥ प्र० स्कन्धः तृ० अध्याय। मार्कण्डेयपुराण अ० ५० पृ० १५०, कूर्मपुराण अ० ४१ पृ० ६१। अग्निपुराण अ० १० पृ० ६२। महापुराण पृ० अ० ३३ पृ० २२। गरुड़पुराण अ० १ पृ० १ आदि में— वर्णन है।

३ जैनदर्शन वर्ष २ अंक १८ पृ० ७४ पर "देहली शास्त्रार्थ"

यतिवरोंकी स्मृतिके—आधार से ही ई० प्रथम शताब्दी से भी पहले उनके कथानक विभिन्न आचार्यों द्वारा साहित्यके भिन्न २ अङ्गोंमें रच लिये गये। किन्तु इससे पूर्व प्राचीन समय के शिलालेख स्तूप आदि थोड़े मिले हैं। कारण यह है कि कुछ तो जैनियों की उपेक्षा के कारण नष्ट भ्रष्ट हो गये और कुछ अभी तक बिना खोजके ही पृथ्वीके भीतर दबे हुये हैं। फिर भी अभी हालमें जो खुदाई हुई हैं उनमें से जो सामग्री प्राप्त हुई है। उससे जैनधर्म की प्राचीनता अधिक पुरातन सिद्ध होती है।

अभी ता० २७ मार्च १९३५ के दैनिक पत्र अर्जुनमें "भारत और बेबिलोनका सम्बन्ध यानी डा० प्राणनाथ विद्यालंकारकी महत्व पूर्ण खोज" इस शीर्षक का लेख छपा है इसमें डा० साहिब ने एक ताम्रपत्र जो कि उन्हें काठियावाड़से प्राप्त हुआ था उसका रहस्योद्घाटन किया है। यह ताम्र पत्र बेबिलोन के सम्राट नेबुचरनेज़र प्रथम (ई० सन् ११४० वर्ष पूर्व) का था और इस पर " नेमि राजा " नाम खुदा हुआ था इससे आपने ई० सन से ११४० वर्ष पूर्व जैनधर्मकी प्राचीनता सिद्ध की है। और यह नेमि राजा अर्थात भ० नेमिनाथ * जैनियों के २२ तीर्थंकर श्री कृष्ण के समकालीन थे। आज भी इनके स्मृति चिन्ह गिरनार पर्वत पर (चरण चिन्ह) और गुफा मौजूद है। इसके अतिरिक्त मोहनजोदारू में पाँच हजार वर्ष पूर्व की श्री, ह्री, धृति कीर्ति, आदि नाम और कुछ सीलों पर 'जिनेश या जिनेश्वर' शब्द स्पष्ट मिले हैं। (Indian Historical owterly—Val VII No 2 supplement) इस से भी जैन धर्म पांच हजार वर्ष पूर्व सिद्ध होता है। क्यों कि ये सीलें ५ हजार वर्ष पुरानी निश्चित की गई हैं।

अब आपके तीसरे आक्षेप पर विचार करना है इसमें आपने जैन धर्म को बौद्ध धर्म की शाखा बतलाया है सो मिथ्या है, जैन धर्म बौद्ध धर्म की शाखा है यह इतना ही गलत है जितना कि दिन को रात्रि कहना। बौद्ध शास्त्रों में यह साफ तौर से वर्णन है कि भ० महावीर जैनियों के चौबीसवें तीर्थंकर थे। महावग्ग दीघनिकाय आदि ग्रन्थों में श्रावक जैनी "निग्रन्थ "शब्दोंका व्यवहार देखा जाता है। इसी बात को डा० जैकोबी (Jacobi ने अपनी पुस्तक (Sacred Books of the Fest Volume XLV) नाम की पुस्तक में लिखा है कि निग्रन्थ शब्दका अर्थ 'जिन जैन' है, तथा धम्मपद की निम्न गाथा में उसभ शब्द भी इसी बात का द्योतक है।

उसभं पवरं वीरं महेसिं विजितावितं।
अनेजं नहातकं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मण।४२२

उसभ शब्द भ० ऋषभदेवके लिये प्रयुक्त किया है। बौद्धाचार्य आर्य देव अपने " सतशास्त्र " में भी जैनधर्म के संस्थापक भ० ऋषभको बतलाते हैं। † इस के सिवाय कुछ विद्वानों का मत है कि बौद्धमत जैनमतसे निकला है मिसेज स्टीवेन्सन कहती हैं कि महावीर ने ही बुद्ध को गुरूपदेश दिया था।

जैनधर्म की प्राचीनता के सम्बन्ध में भारतीय व पाश्चात्यविद्वानों का मत देखिये—श्री० बालगंगाधर

* यजुर्वेद अ० ९ मंत्र २५ में इस का वर्णन है। भगवान महावीर पृ० २०

† वीर वर्ष ४ पृ० ३४३ पर देखो

तिलक " मराठी केसरी " पत्रमें १३ दि० सन् १६०४ में लिखते हैं " ग्रन्थों तथा सामाजिक व्याख्यानों से जाना जाता है कि जैनधर्म अनादि धर्म है, यह विषय निर्विवाद तथा मतभेद रहित है। सुतरां इस विषयमें इतिहास के दृढ़ सुबूत हैं। मेजर जनरल जे० सी० फरलांग एफ० आर० एस० ई० आदि सन् १८६७ में अपनी पुस्तक में—It is impossible find a begining for Jainism (Intro P. 13) Jainism thus appears an earliest faith of India (Intro P. 15) अर्थात "जैनधर्मके प्रारम्भ का पता पाना असम्भव है। इस तरह भारत का सबसे पुराना धर्म यह जैनधर्म मालूम होता है" सारांश यह है कि शिलालेखों से वेद, पुराण, महाभारत, रामायण, विद्वानों के मत से स्पष्ट है कि जैनधर्म वैदिकधर्म से अति प्राचीन और सच्चा और स्वतंत्रधर्म है इस बात पर आक्षेप करना भारी भूल करना है।

आगे चल कर आपने जैनधर्मको नास्तिक लिखा है जो इसी प्रकार है कि जैसे कोई स्वा० दयानन्द को मुसलमान बतलावे * । फिर आपने जो दिव्य वाणी की है, इसकी परीक्षा तो आपके इसी लेख में हो गई है आपने इस लेख में जैनधर्म को २३०० वर्ष से और दूसरी जगह २४०० वर्ष से, और तीसरी जगह २५०० वर्ष से बतलाया है अब आप ही बतलावें कि आपका कौनसा कथन सत्य है यमी जी आपकी ऐसी वाणी तो आपकी आर्य मंदिर में ही शोभा देगी।

आपने बड़े बलपूर्वक लिखा है कि "आपके प्राचीन शास्त्रों का नाम हमारी किसी प्राचीन पुस्तक में लिखा बतलावें" सो महाशय जी आपतो सिवाय वेद के और किसी शास्त्र को प्रामाणिक मानते ही नहीं, उस में ही अगर कहीं पकड़े जावें तो झट कह देते हैं कि हम तो पौने दो वेद मानते हैं † क्योंकि इतने का ही भाष्य स्वामी जी ने किया है। कहिये अब आपको किसका प्रमाण दिया जावे? अब लीजिये रामायण बा० कॉ० स० १४ श्लो० १२, महाभारत शांतिपर्व अ० २३८ पृष्ठ ११५ पर और तो क्या स्वयं वेद में (ऋषभं मा० ऋग्वेद ८-२४) इस मंत्र का अर्थ आचार्य विरूपाक्ष वाडिया एम० ए० वेद तीर्थ ने जैन तीर्थंकरों के सम्बन्ध में किया है।

विनोद

एक साहूकार ने गाड़ी वाले से कहा—

"स्टेशन तक का क्या लोगे?" गाड़ी वाले ने कहा "चार आने, सरकार!" साहूकार ने रुपए की थैली दिखलाते हुए पूछा। और इस बोझे का?

"कुछ नहीं, हुजूर!" "अच्छा, रुपये की थैलियों को ले चलो-मैं गाड़ी के साथ-२ पैदल चलूंगा

* [illegible] सम्पादकी पुस्तक माला में प्रकाशित पुस्तक की पढ़ें।

† स्वा० दयानन्द जी ने एक बार शास्त्रार्थ में कह दिया है।

आर्यमित्र का विषवृक्ष

अहिंसावाद पर आक्षेप

हिन्दू जाति की अवनतदशा तथा उसकी दयनीय निर्बलता को देख कर हिन्दू जाति के अनेक हितैषी महानुभाव हिन्दूजाति को बलवान बनाने वाले कारणों की खोज कर रहे हैं साथ ही वे उन कारणों को भी ढूंढ रहे हैं जिनके निमित्त से हिन्दू समाज बलहीन हो रहा है तथा दिनोदिन होता जा रहा है। यह एक हिन्दू जाति के लिये शुभचिन्ह हैं क्योंकि जो जाति अपनी दुर्दशाका अनुभव कर उसके मिटाने के साधन खोजने लगती है वह अवश्य निकट भविष्य में उन्नत हो जाती है—

किन्तु इस विषय में गहरी खोज करके असल कारणों के ढूंढ निकालने वाले विद्वान बहुत कम दिखाई पड़ते हैं अधिकतर ऐसे लोग दृष्टिगोचर होते हैं जो अपने संकुचित दृष्टिकोण से, इतिहास की अनभिज्ञता से तथा भारतीय विभिन्न धार्मिक सिद्धान्तों की अजानकारी से इस विषय में असत्य मोटी भूल करके जनता का असीम अपकार कर बैठते हैं। इसके लिये पाठक महानुभावों के समक्ष एक ताज़ा उदाहरण रक्खा जाता है

आगरे से प्रकाशित होने वाले १४ मार्च के आर्य मित्र में 'विषवृक्ष का विस्तार' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है लेखक पं० शान्तिस्वरूप जी शास्त्री विद्यालंकार हैं। इस लेख में भारतवर्ष का पतन कराने के" अवतार वाद, अद्वैतवाद, वर्णव्यवस्था, मूर्तिपूजा तथा जैन बौद्ध सम्प्रदाय" ये पांच कारण बतलाये हैं और उन को विषवृक्ष की शाखाओं के नाम से उल्लेख किया है। यहाँ पर हम विद्वान लेखक के पांचवें मंतव्य पर कुछ प्रकाश डालते हैं।

लेखक के आक्षेप जनक निम्न लिखित वाक्य हैं-

"पंचम शाखा इस विषवृक्ष की जैन एवं बौद्ध सम्प्रदाय है। इन दोनों सम्प्रदायों ने अनुचित अहिंसा वाद का प्रचुर प्रचार करके मनुष्यों को अत्यन्त अकर्मण्य, आलसी और पुरुषार्थहीन कर दिया है स्वर्गीय लाला लाजपतिराय जी ने तो एक बार यहां तक कह दिया था कि भारत में हिजड़ापन फैलाने का उत्तर दाता जैन सम्प्रदाय है। वैदिक अहिंसावाद जैनमतके अहिंसावादसे सर्वथा प्रतिकूल है। जैन मत छोटे छोटे कीड़े मकोड़ों की मृत्यु से बचने के लिये कूपनिर्माण आदि सार्वजनिक हित संपादक कार्योंको भी निषिद्ध ठहराता है। धन्य है ऐसे अहिंसा वाद को जहाँ खटमलों की रक्षाकी जाय और नररत्न की उपेक्षा की जाय।"

विद्वान लेखक हिन्दू जाति के पतन के कारणों पर प्रकाश डालने सरीखे विशाल कार्य को करने चले हैं किन्तु उनने स्वयं अपने आपको गाढ़े अंधकार के भीतर छिपा रक्खा है। उनको अभी तक भारत वर्ष का तथा जैन जाति का साधारण इतिहास भी मालूम नहीं और न उन्हें अपने पड़ोसी जैनसमाज के धार्मिक सिद्धान्त का ही कुछबोध है यही कारण है कि आप अन्य साधारण पुरुषों के समान पर्वत सरीखी मोटी भूल कर गये हैं। वे तथा उनके इतर सहयोगी हमारा यह लेख पढ़ कर अपनी भूल का संशोधन करें।

जैन जाति का इतिहास वह वीर पुरुषोंका उज्वल इतिहास है जिससे भारतवर्ष का मस्तक उन्नत रहा

है तथा भविष्य में भी इतिहास वेत्ताओं के मस्तिष्क में यह बात अंकित रहेगी।

वर्तमान जैनधर्म का इतिहास भगवान ऋषभदेव से प्रारंभ होता है जिनका कि जमाना करोड़ों वर्ष पहले का है इसके निर्णायक साधन आज भी पाये जाते हैं जिनसे कि इतिहासवेत्ता यह बात प्रमाणित करते हैं कि भगवान ऋषभदेव की मान्यता न तो नवीन है और न निराधार ही है। ये भगवान ऋषभ देव जैन इतिहासानुसार प्रथम तीर्थंकर थे। उन्हों ने जहां साधु अवस्था में धार्मिक मार्ग का द्वार खोला था वहीं अपनी गृहस्थ दशामें राज नीति शिक्षाका भी प्रारम्भ किया था। उन्हों ने अपने भरत, बाहुबली आदि पुत्रों को शस्त्र विद्या, राजनीति, आदि सिखलाई थी। यही कारण था कि उनका बड़ा पुत्र 'भरत' दिग्विजय करके सार्वभौम, प्रथम चक्रवर्ती सम्राट् हुआ और बाहुबली प्रख्यात शूरवीर हुआ।

सोलहवें, सत्रहवें और अठारहवें तीर्थंकर श्री शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ ने भी अपने गृहस्थ जीवन में दिग्विजय कर के विशाल साम्राज्य प्राप्त कर चक्रवर्ती नाम पाया था।

यह बात तो उस जमाने की है जिस समय वर्तमान इतिहास की पहुंच नहीं है किन्तु जिस जमाने का इतिहास स्वच्छ शीशे के समान चमक रहा है उस जमाने का यदि कोई भारतीय आदर्श सम्राट हुआ है तो वह जैनधर्म का अनुयायी राजा चन्द्रगुप्त ही हुआ है (चन्द्रगुप्त सम्राट के जैन होने में जिनको संदेह हो वे मैसूर के उपलब्ध पुरातत्त्व का अवलोकन करें) चन्द्रगुप्त श्री भद्रबाहु जैन आचार्य का शिष्य था और अन्त समय में जैन साधु जीवन व्यतीत करता हुआ ही स्वर्गवासी हुआ। अहिंसा धर्म के उपासक जैन राजा चन्द्रगुप्त ने ही सैक्यूलस सरीखे दुर्जय विदेशीको बुरी तरह मार भगाया था और अफगानिस्तान को भारतवर्ष में मिला कर वहां भारतीय विजय पताका फहराई थी तथा भारतवर्ष में निष्कंटक एक छत्र शासन किया था।

उसका पुत्र बिन्दुसार राजा भी जैन ही था। तथा उसका पौत्र सम्राट् अशोक अपनी २६ वर्ष की अवस्था तक जैन धर्म का उपासक रह कर भारत का एक छत्र राजा बना रहा उसके बाद वह बौद्ध धर्मानुयायी हुआ।

उसके बाद कलिंग देश का महामेघवाहन राजा खारवेल जैन धर्मानुयायी ही था जिसने १६ वर्ष की अवस्था में राज सिंहासन पाकर दिग्विजय की थी और अनेक युद्धों में शूरवीरता से आदर्श विजय पाई थी।

मैसूर प्रान्त के गंगवंशीय शासक राजा जैन ही थे जिन्होंने ईसवी की दूसरी तीसरी शताब्दी से दशवीं ग्यारहवीं शताब्दी तक राज किया। कलचुरि परमार, राठौड़ आदि राजपूत वंशों में अनेक शूरवीर राजा जैन धर्मानुयायी हुए है जो भारतीय वीरों में गणनीय माने जाते हैं। चामुण्डराय अमोघवर्ष कुमारपाल आदि की वीरतापूर्ण जीवनियां मुर्दादिलोंमें भी वीरता फूंक देती हैं।

इतना ही नहीं किन्तु अनेक जैन रानियां ऐसी हुई हैं। जिन्हों ने राज्य किया है तथा युद्धों में विजय पाई है।

इस दशा में जैन धर्म को या उस के अहिंसा धर्म को भारतवर्ष के अधःपतन का कारण बताना अथवा निर्बलता की शाखा बतलाना कितनी अज्ञानता है

भारतवर्ष जब तक जिन जिन प्रदेशों में जैन राजाओं के शासन में रहा तब तक वहां किसी विदेशी का प्रवेश नहीं हो पाया। भारतवर्ष के पतन का कारण पृथ्वीराज जयचन्द्र की आपसी फूट तथा पृथ्वीराज की राजनैतिक त्रुटि थी।

आर्यसमाजी विद्वानों को पता होना चाहिये कि जहां जैनधर्म परम अहिंसाका उपदेश देता है वहां उसको आचरणमें लाने के ११ दर्जे भी निर्दिष्ट करता है इन ही ११ दर्जों में अहिंसा धर्म का वह दर्जा भी है जिसमें रहकर जैनवीर शत्रु से अपने धर्म की या अपने देश की रक्षा के लिये विकट घोर संग्राम भी कर सकता है जैसा कि अनेक जैन राजाओंने किया।

जैनियों का अहिंसा धर्म मार खा लेना नहीं सिखाता किन्तु वीरता पूर्वक शत्रु से निर्बल जीव की रक्षा करना सिखाता है। 'खटमल मार देना' शायद आर्यसमाजी भाइयों ने वीरता समझ रक्खी है ऐसी वीरता का जैनधर्म और उसका सिद्धान्त बेशक निषेध करता है। जैन धर्मका उपदेश है कि क्षुद्र जीव चाहे तुमको कष्ट भी दें उनके ऊपर हाथ न उठाओ किन्तु उस दुष्ट को उचित शिक्षा दो जो बलहीन पर अथवा धर्म, देश पर आक्रमण करता है।

फिर हमारे आर्यसमाजी विद्वान बतलाने का कष्ट करें कि जैनधर्म का अहिंसा सिद्धान्त मनुष्य को हीजड़ा पन सिखलाता है या वीरता का पाठ पढ़ाता है।

कुँआ खुदवाना आदि सार्वजनिक हितकार्यों का निषेध जैन ग्रन्थों में है यह भी लेखक का भ्रम है उन्हें पता नहीं कि जैन लोग कुएं धर्मशालाएं, बाग बगीचे आदि बनवाते हैं या नहीं। जैन क्या कूँओं का पानी न पीकर आकाश का पानी पीते हैं? भारतवर्ष में क्या हजारों कुए जैनियों ने नहीं खुदवाये?

जिस जैन ने गृहस्थ जीवन से विरक्त होकर गृहकार्य छोड़ दिये हैं कुएं खुदवानाउस पुरुष के लिये निषिद्ध है: न कि गृहकार्य करने वाले जैन के लिये।

इस तरह विद्वान लेखक ने अपनी अनभिज्ञता से जैन धर्म के साथ भारी अन्याय किया है जिसकी उन्हें शुद्ध हृदय से क्षमा मांगनी चाहिये।

आपका यह लिखना सर्वथा सत्य है कि—

"वैदिक अहिंसावाद जैन मत के अहिंसावाद से सर्वथा प्रतिकूल है।"

क्योंकि वैदिक अहिंसा तो यज्ञ समय जीवित बकरे आदि पशुओं को अग्नि में स्वाहा कर देने की सम्मति देती है जैसा कि अभी तक सनातनी लोग कहीं कहीं किया भी करते हैं तथा स्वा० दयानन्द जी भी सत्यार्थ प्रकाश (प्रथम संस्करण) में बन्ध्या गाय का हवन करना लिख गये थे। ऐसी वैदिक अहिंसा से जैन अहिंसावाद सर्वथा प्रतिकूल है इसी वैदिक अहिंसा ने भारत वर्ष में वह घोर अत्याचार फैलाया था कि जिसको सुनते विचारते हृदय सिहर उठता है। यदि उस पापमयी अहिंसा को भगवान महावीर तथा उनके अनुयायी जैनवीर न रोकते तो भारतवर्ष आर्य देश कदापि न रहता।

जैन अहिंसावाद अणुव्रती गृहस्थ जैन को जहां निरपराध जीव की संकल्पी (इरादतन) हिंसा का निषेध करता है वहीं अन्यायी को उस के अन्याय का उचित दंड देने से रोकता भी नहीं है यदि अहिंसा का आदर्श अनुकरणीय रूप हो सकता है तो वह यही जैन अहिंसा का रूप हो सकता है।

लेखक महानुभाव ने स्व० ला० लाजपतराय जी के कथन का हवाला देकर जैन अहिंसावाद पर कायरता का धब्बा लगाना चाहा है किन्तु आपको मालूम होना चाहिये कि स्व० लाला जी के समक्ष जिस समय जैन वीरों के ऐतिहासिक उद्धरण पेश किये गये थे। उस समय लाला जी ने अपनी भूल स्वीकार कर ली थी तथा उसका संशोधन करने का वचन भी दिया था।

इस तरह श्रीमान पं० शान्तिस्वरूप जी जैनियों के जिस अहिन्सावादको विषवृक्ष की शाखा समझ रहे हैं वह अमृत का प्रवाह बहाने वाला स्रोत है। देश धर्म तथा समाजका उद्धार इसी अहिंसावादसे हो सकता है। आशा है विद्वान लेखक जैन अहिन्सावाद का गंभीर अध्ययन करके अपनी भूल सुधारेंगे।

—अजितकुमार जैन

विरोध परिहार

(ले०- श्रीमान पं० राजेन्द्रकुमार जैन न्यायतीर्थ)

विरोध ९— "मेरा कहना है कि अनुमेयत्व और प्रत्यक्षत्व की व्याप्ति असिद्ध है। मेरा यह कहना नहीं कि व्याप्ति के लिये स्थान ही नहीं है। यदि हम सब पदार्थों को साध्य बनालें तो भी व्याप्ति के लिये स्थान रहेगा। पक्षके भीतर जितना भाग सिद्ध है वह दृष्टान्त है। यहाँ व्याप्ति ग्रहण होसकता है और जितना भाग असिद्ध है वह साध्य है। पक्षका एकांश सिद्ध होने पर भी पूर्णांश असिद्ध होसकता है"।

परिहार ९— व्याप्तिपूर्वक अनुमान होता है। व्याप्ति के निश्चित होजाने पर अनुमान की उत्पत्ति होती है। पक्ष आदि की कल्पना अनुमान काल की बात है। अतः इसमें या इसके अंश विशेष में व्याप्ति-ग्रहण की बात ठीक नहीं। यदि इस विवाद को भी छोड़ दिया जाय और आक्षेपककी बातको ही स्वीकार कर लिया जाय तब भी उसका प्रस्तुत दूषण ठीक नहीं बैठता। प्रस्तुत पक्ष अर्थात् जगत के सम्पूर्ण पदार्थों में भी दो अंश हैं। एक अंश में अनुमान विषयता के साथ प्रत्यक्ष विषयता की व्याप्ति निश्चित है स्थूल, वर्तमान और सम्बन्द्ध पदार्थों में इस प्रकार के नियम स्वीकार करने में किसी को भी बाधा नहीं होसकती अतः यहाँ व्याप्ति का निश्चय कर लिया जायगा और फिर इसके ही आधार से सूक्ष्मादि पदार्थों में भी इसकी सिद्धि होजायगी। इस प्रकार भी व्याप्ति का निश्चय और जगत के सम्पूर्ण पदार्थों में प्रत्यक्षविषयता की बात बिलकुल ठीक बैठ जाती है।

विरोध १०— आचार्यसमन्तभद्र के शब्दों को मैंने जिन शब्दों में रक्खा है वह सरलता के लिये न कि झूठा दोष देने के लिये। जिस दोष की आपने वहां कल्पना की है वह न तो मैंने दिया है और न वहां दिया जा सकता है। जिस शैली को मैंने अपनाया है वह आचार्य को भी स्वीकृत है। आचार्य सूक्ष्मादि

को पक्ष बनाकर उपसंहार में सूक्ष्मादिक संस्थिति नहीं कहते किन्तु सर्वज्ञ संस्थिति कहते हैं...... खेद है कि आक्षेपक ने न्याय की इस साधारण बात का भी ध्यान न रक्खा।

परिहार १०—प्राचीन आचार्योंके समय में सर्वज्ञ स्वीकार न करने वाले दार्शनिकों में मीमांसक सम्प्रदाय का मुख्य स्थान रहा है। मीमांसक सर्वज्ञ न मान कर भी स्थूल, वर्तमान और सम्बन्धित पदार्थों को प्रत्यक्ष का विषय स्वीकार करता है उसको तो केवल सूक्ष्म व्यवहित और असंबन्धित पदार्थों की ओर विशेष कर पुण्य पाप की प्रत्यक्षविषयता में ही विवाद रहा है किसी को भी इन पदार्थों का प्रत्यक्ष करने वाला प्रमाणित करदेना ही मीमांसक के प्रति सर्वज्ञ सिद्धि है अतः आचार्य समन्तभद्र ने सूक्ष्मादिको पक्ष बना कर भी उपसंहार में "सर्वज्ञ संस्थिति" शब्द का प्रयोग किया है तथा उनको ऐसा ही करना भी चाहिये था किन्तु आक्षेपक की परिस्थिति आचार्य समन्तभद्र की परिस्थिति से भिन्न है। इनको तो आचार्य समन्तभद्र के कथन पर विचार करना है। अतः इनका तो यह अनिवार्य कर्तव्य था कि वह उक्त आचार्य के अनुमान को उनके ही शब्दों में रखते और उस पर विचार करते। आक्षेपक ने ऐसा क्यों किया है? इसका उत्तर हम अपनी लेखमाला में ही देचुके हैं। और वह यही है कि उक्त आचार्य के अनुमान में दोष बताने को। यदि आचार्य समन्तभद्र के अनुमान को उनके ही शब्दों में रक्खा जाता तो दोष को स्थान ही नहीं रह जाता। आक्षेपक ने अपने ऊपर से इस दोष को हटाने की भी चेष्टा की है किन्तु वह उनका असफल प्रयत्न है। इस पर विशेष विचार हम नं० १२ परिहार में करेंगे। आक्षेपक ने आ[illegible] के प्रस्तुत अनुमान में असिद्ध दोष की ही चर्चा चलाई थी तथा उस है. के सम्बन्ध में मैंने विचार किया है। अब यदि आक्षेपक का यह कहना है कि विवादस्थ दोष प्रस्तुत अनुमान में नहीं दिया जा सकता तो बड़ी प्रसन्नता की बात है। अब रह जाती है आक्षेपक के द्वारा अकल्पित दोष के सम्बन्ध में 'मेरी कल्पना'। इसको आक्षेपक ने केवल प्रतिज्ञा के रूपमें ही लिखा है। उनका कर्तव्य था कि बतलाते कि इस प्रकार के किस दोषका मैंने निराकरण किया है। आशा है आक्षेपक इस बात का आगे ध्यान रक्खेंगे।

"आक्षेपक ने न्याय की इस साधारण बातका भी ध्यान नहीं रक्खा" आक्षेपक की यह बात तो बिलकुल उनके ही लिये उपयुक्त है। जो व्यक्ति पूर्व पक्ष के भावको बिगाड़ कर फिर उसके खण्डन की चेष्टा करता है उनके लिये इस प्रकार के वाक्यका प्रयोग किसी भी प्रकार अनुपयुक्त नहीं।

विरोध ११—"प्रत्यक्ष का विषय न होनेसे पदार्थ के *अस्तित्वनाश की बात निरर्थक है मेरा यह कहना* नहीं है कि विश्व का कोई प्रत्यक्ष नहीं कर सकता इसलिये विश्व है ही नहीं। मेरा तो कहना सिर्फ इतना ही है कि प्रत्यक्षका विषय नहीं हो सकता इस लिये अप्रत्यक्ष है। अभाव की बात लाना व्यर्थ है। वायु का रूप प्रत्यक्ष से नहीं जाना जा सकता इस लिये हम उसका अभाव भले ही न माने परन्तु वह अप्रत्यक्ष है इतना तो कह सकते हैं। बस यही बात चुम्बक शक्ति के विषय में है। मैं उसका अभाव नहीं कहता सिर्फ उसे अप्रत्यक्ष कहता हूँ इसी से यहाँ मतलब है।

यद्यपि जो वस्तु हमारे प्रत्यक्ष का विषय नहीं

उसमें प्रत्यक्षविषयता नहीं है यह नहीं कहा जासकता किन्तु उसमें प्रत्यक्षविषयता है यह भी तो निश्चयपूर्वक नहीं कहा जासकता, क्यों कि जो विषय हमारे प्रत्यक्ष का विषय नहीं है वह दूसरे के प्रत्यक्ष का विषय होना ही चाहिये यह भी नियम नहीं है । इसलिये यहां सन्देह तो है ही। और जो संदिग्ध है वह असिद्ध है। यहां मेरा कहना भी सिर्फ इतना ही था कि यह व्याप्ति असिद्ध है जब व्याप्ति असिद्ध है तब उसके आधार पर अनुमान कैसे खड़ा किया जा सकता है."

परिहार ११—आक्षेपक ने अपने इस वक्तव्य में परस्पर विरोधी दो बातों का विधान किया । एक प्रत्यक्ष के अभाव में किसी को अप्रत्यक्ष कहना और दूसरी प्रत्यक्ष के न मानने पर भी उसमें प्रत्यक्ष-विषय के अभाव को न मानना। आक्षेपक की ही दूसरी बात से उनकी पहिली बात का निराकरण हो जाता है अतः उसपर कुछ भी टीका टिप्पणी करना हम आवश्यक नहीं समझते।

वायु के रूप को हम प्रत्यक्ष से नहीं जानते किन्तु "रूपवान् वायु स्पर्शवत्वात्" इस अनुमान से जानते है अतः वायु को रूपवान ही माना जाता है । यही बात चुम्बक की शक्ति के सम्बन्ध में है। चुम्बक की शक्ति की प्रत्यक्ष विषयता को हम प्रत्यक्ष से नहीं जानते किन्तु फिर भी वह हमारे अनुमान के बाहर नहीं है। अनुमान से तो हम उसको जानते ही हैं। चुम्बक की आकर्षण शक्ति में प्रत्यक्ष विषयता है अनुमान विषयता होने से।चुम्बक की शक्ति की अनुमान विषयता के सम्बन्ध में तो विरोध को गुंजायश ही नहीं है। इससे प्रगट हैकि चुम्बक केआकर्षण शक्ति में प्रत्यक्षविषयता के निषेध पक्ष की तरह विधिपक्ष असिद्ध नहीं है।

विरोध १२- अगर प्रत्येक व्यभिचारस्थल को पक्षान्तरगत मान लिया जायगा तब तो व्यभिचारी नामक हेत्वाभास कहीं भी न रहेगा। जिस समय ईश्वर कर्तृत्ववादी पृथ्वी पर्वत आदि को बुद्धिमत्कर्तृक मानता है और उसके लिए व्याप्ति बनाता है कि जो २ कार्य हैं वह सब बुद्धिमत्कर्तृक हैं इसके उत्तर में जैन लोग व्यभिचार देते हुए कहते हैं कि विद्युत वगैरह कार्य हैं परन्तु बुद्धिमत्कर्तृक नहीं हैं। इस पर वह कह सकता है कि वह भी बुद्धिमत्कर्तृक है। इस प्रकार जितने भी व्यभिचारस्थल बताये जांयगे वह सबको पक्षान्तर्गत करता जायगा। कल कोई यह कहे कि अयोगोलकमें धूम है अग्नि होने से। इस पर आप व्यभिचार देते जावो वह उसे पक्षान्तर्गत करता जावे तब तो हो चुका। इस लिये पक्षान्तर्गतता की दुहाई से ही काम नहीं चलता है। जब तक अन्यथानुपपत्ति का निर्णय ठीक ढंग से न किया जाय। प्रत्यक्षत्व के बिना अनुमेयत्व क्यों नहीं बन सकता जब तक इस बात को प्रमाण सिद्ध न किया जाय अथवा संदिग्ध व्यभिचार स्थलों का जब तक पूर्ण अभाव न होजाय तब तक यह व्याप्ति असिद्ध ही मानी जायगी।

परिहार १२—किसी के सम्बन्ध में किसी भी हेत्वाभास के उद्भावन से पूर्व इस बात का निर्णय भी हो जाना आवश्यक है कि उसके सम्बन्ध में उस हेत्वाभास का लक्षण भी घटित होता है या नहीं! दरबारीलाल जी ने यदि ऐसा किया होता तो आपको उपर्युक्त वाक्य लिखने का कष्ट न उठाना पड़ता जो हेतु विपक्ष में भी रहता है उसको व्यभिचारी या अनेकान्तिक हेत्वाभास कहते हैंजब तक कि किसी के

सम्बन्ध में यह बात प्रमाणित न हो जावे तब तक उसके सम्बन्ध में व्यभिचार की बात ही निरर्थक है। आक्षेपक ने एक भी विपक्षस्थान नहीं बतलाया जहां कि अनुमेयत्व की शंका भी की जा सके अतः इसके सम्बन्ध में व्यभिचार की बात तो बिलकुल निरर्थक है। अब रह जाती है पक्षान्तर्गत से व्यभिचार देने की बात या व्यभिचारस्थल को पक्षान्तर्गत बनाने की चर्चा पहिली बात के संबन्ध में तो हम इतना ही लिख देना पर्याप्त समझते हैं कि दरबारीलाल जी को अपने इस भाव के समर्थन में किसी के भी प्रमाण वाक्य को तो उपस्थित करना था जिसने आपके इस मत का उल्लेख किया हो। संभव है दरबारीलाल जी की यह धारणा हो कि उनको इस हेत्वाभास के स्वरूप में भी संशोधन करना है अतः उन्होंने ऐसा न किया हो यदि बात ऐसी है तो कम से कम वह अपने न्याय प्रदीप को स्मरण कर लेते। इसमें भी व्यभिचारी हेत्वाभास की वही परिभाषा मानी है जिसका हम ऊपर उल्लेख कर आये हैं।

जैनलोग भी पक्षान्तर्गत वस्तुओं से ही व्यभिचार दोष का उद्भावन करते आये हैं। इसके समर्थन में आपने यदि कुछ उल्लेख भी उपस्थित किए होते तो उन पर विशेष विचार किया जा सकता था। अभी तो इतना ही कहा जा सकता है कि व्यभिचार का उद्भावन विपक्ष में भी रहने से ही होसकता है। जिसने भी इसके प्रतिकूल विवेचन किया है उसका वह कथन युक्तियुक्त स्वीकार नहीं किया जासकता।

किसीको भी पक्षान्तर्गत किया नहीं जाया करता किन्तु वह पक्षान्तर्गत हुआ करता है। किसी के पक्षान्तर्गत होने और उसके पक्षान्तर्गत करने में महान अन्तर है। जहांकि पक्षान्तर्गत होने में पक्षमें परिवर्तन नहीं होता वहीं पक्षान्तर्गत करने में पक्षमें अन्तर करना पड़ता है। उदाहरण के तौर पर आक्षेपक ने ही "अयोगोलक में धूम है आगके होनेसे" अनुमान को लेलीजियेगा। प्रस्तुत अनुमानमें अयोगोलक पक्ष है यदि आगहेतु के व्यभिचारस्थल निर्धूम अग्नि के अङ्गार को भी इसमें सम्मिलित करेंगे। तब फिर यह उतना ही नहीं रहेगा किन्तु उन दोनों का समुदायात्मक बन जायगा। इसही प्रकार जितने भी व्यभिचार स्थलों को इसमें सम्मिलित करते जाओ उतना ही इसका रूप भी बढ़ता जायगा। यह तो हुई पक्षान्तर्गत करने की बात; पक्षान्तर्गत होने की बात इससे बिलकुल भिन्न है। विवादस्थ अनुमान को ही लेलीजियेगा। सूक्ष्म, अन्तरित और दूरार्थ इसमें पक्ष हैं। अनुमेयत्व हेतु है। अब यदि चुम्बक की आकर्षण शक्ति से इसको व्यभिचारी बतलाया जाता है तो अनुमान समर्थक की तरफ से कहाजाता है कि चुम्बक की उक्त शक्ति तो पक्षान्तर्गत है। उससे व्यभिचार की कल्पना ठीक नहीं। चुम्बक की आकर्षण शक्ति सूक्ष्म है अतः पक्षान्तर्गत है। सूक्ष्म होनेसे यहतो पक्षमें सम्मिलित ही थी अतः इसके अन्तर्गत मानने में पक्षमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं करना पड़ता।

इससे प्रगट है कि पक्षान्तर्गत करने के उदाहरण से पक्षान्तर्गत होने में बाधा उपस्थित करना ठीक नहीं।

इनसब विचारोंको स्थगित करके यदि आक्षेपककी ही बातको मान लिया जाय तब भी इसमें आपको आपत्ति भी क्यों होनी चाहिये? एक वादी किसी अनुमानका प्रयोग करता है और उसके सम्बन्ध में जितने भी व्यभिचार स्थलों को बतलाया जाता है

वह उन सबको पक्षमें सम्मिलित करलेता है। इस प्रकार यदि उसके अनुमान में व्यभिचार दोष का उद्भावन नहीं किया जा सकता तो इसमें हमारे आक्षेपक को चिन्ताकी क्या जरूरत है? अनेक विशेषणों के प्रयोग करने पर भी यदि अनुमान निर्दोष नहीं बन पाया है और व्यभिचारोद्भावनको उसमें स्थान नहीं है तो दूसरे हेत्वाभास तो हैं आप उसके सम्बन्ध में उनका उद्भावन कर सकते हैं यह क्या जरूरी है कि उसको व्यभिचार दोष से ही सदोष घोषित किया जावे। इस तरह सैकड़ों सदोष हेतु मिलेंगे जिनमें व्यभिचार की गन्ध भी नहीं है किन्तु फिर भी वे सदोषी हैं।

उपर्युक्त विवेचन को यदि संक्षेप से कहना चाहें तो यों कह सकते हैं कि हेतु में व्यभिचार दोष का उद्भावन उसके विपक्षमें भी रहनेसे किया जासकता है। पक्षान्तर्गतमें व्यभिचार दोषका उद्भावन नितान्त भ्रमपूर्ण है। चुम्बक-आकर्षण शक्ति पक्षान्तगत होनेसे उसमें व्यभिचार दोष की उद्भावना भ्रमपूर्ण है। इस के सम्बन्ध में हमने अपनी लेखमाला में निम्नलिखित शब्द भी लिखे थे।

"यदि पक्षान्तर्भूत पदार्थों से ही व्यभिचार की कल्पना की जायगी तो कोई भी अनुमान नहीं बन सकेगा। 'पर्वत में अग्नि है धूम होने से रसोई घरकी तरह' इस प्रसिद्ध अनुमान को ही लीजियेगा। यहां भी धूमसाधन को पर्वतसे व्यभिचार दिया जासकेगा क्योंकि पर्वत में धूम की तरह अग्नि तो दीखती नहीं है यही बात दूसरे अनुमानों के सम्बन्ध में है हमारी बात का प्रतिपादन आचार्य विद्यानन्द आदि ने आप्तपरीक्षादिक में किया है।"

आक्षेपक इसके सम्बन्ध में मौन धारण कर चुके हैं। यदि अनुमान की स्थिति रहेगी तबतो व्यभिचार दोष का उद्भावन भी उपर्युक्त प्रकारसे ही स्वीकार करना पड़ेगा। इससे प्रगट है कि आचार्य समन्तभद्र के अनुमान में आक्षेपकका व्यभिचारदोष का उद्भावन मिथ्या है।

न हि पक्षाकृतैरेव व्यभिचारोद्भावनं सर्वस्यानुमानस्य व्यभिचारित्वप्रसङ्गात् हेतोर्व्यभिचारोऽत्र दृष्टान्तादिभिः सूक्ष्मं वोपलम्भा-भावादंस्तैपापक्षीकृतत्वात् ।

--आप्तपरीक्षा

साम्प्रदायिकता

(ले०—श्री० पं० आनन्दीलाल जी न्यायतीर्थ)

(१)

संसृति-तल के रंग मंच पर,
ओ उन्मादिनि ? तेरा गान।
सुनकर, जनता कर लेती है-
अहम्मन्यता का सम्मान।

(२)

सत्य-तत्व का गला घोंटकर,
यह मानव फूला जाता।
पक्षपात के दावा नल में,
जीवन-सार जला जाता।

(३)

मनुज-जगत में चलती है जब,
सम्प्रदाय की खैंचा तान।
होता है वहां पूर्ण रीति से—
दुराचारियों का सम्मान॥

(४)

विविध मतान्तर तेरा जीवन,
सत्य-तत्व के है प्रतिकूल।
ओ हतभागिनि ? मानव हित क्यों,
बो - देती जगती में शूल।

(५)

निर्णय नहीं वहां पर कुछ भी,
जहं पर तेरा पूर्ण विकास।
सम्प्रदाय के अविरल झगड़े,
करते हैं भारत का नाश।

(६)

कपिल कणाद पतंजलि गौतम,
जिनके थे ऊँचे सिद्धान्त।
मानिनि ? तेरी कृपादृष्टि से,
पतित हुए, बनकर आक्रान्त।

(७)

दर्शन जगमें निखिल तत्व का,
निर्णायक अन्तिम होता।
गन्ध हृदय में तेरा है तो,
क्या वह भी सुख से सोता।

(८)

मत पिशाचिनी ? तू ने जग में,
कितने मत फैलाये हैं।
भू मंडल में ढोंग बता कर,
कितने जन भरमाये हैं।

(९)

सार्वभौम का एक धर्म फिर,
वसुधा तल पर होने दे।
ज्ञान दिवाकर की किरणों से,
जग आलोकित करने दे।

(१०)

षट दर्शन का सत्य धर्म में,
सूक्ष्म समन्वय होने दे
आर्य देश में बन्धु प्रेम से,
हमको आज विचरने दे।

शिक्षोपयोगी मनोविज्ञान

गतांक से आगे

दूसरा साधन Extrospection (परान्वीक्षण) का है। दूसरे के शारीरिक कार्यों को ध्यान पूर्वक देखना परान्वीक्षण कहलाता है। परान्वीक्षण का शब्दार्थ दूसरों का निरीक्षण करना है। जैसे २ चित्त में विचार उत्पन्न होते हैं। उनही के अनुसार हमारे शरीर पर भी प्रभाव पड़ता रहता है। भिन्न २ वृत्तियों के अनुसार शरीर भिन्न २ प्रकार के भाव दिखलाता है दिन भर में मनुष्य के भावों में जो अनेक प्रकार के परिवर्तन होते रहते हैं उन्हीं के अनुसार ही उसके शरीर व चहरे पर भी प्रभाव पड़ता है। कभी वह आनंदित मालूम होता है तो कभी दुखी, कभी वह प्रसन्न या कभी उदास प्रतीत होता है। कभी वह क्रोधित या कभी मायाचारी दीखता है।

उसके बाहरी हावभावों से ही हम उसके विचारों का अंदाजा लगाते हैं कि अमुक पुरुष इस समय दुखी है, या अमुक पुरुष इस समय क्रोधित हो रहा है। हमारे गालों पर की झुर्रियां, सूखे हुये होठ, धँसी हुई आखें और चिपके हुये गाल हमारे दुख से भरे हुये विचारों को बतलाते हैं। लाल मुख, लाल चक्षु, व कांपते हुये शरीर को देख कर हम क्रोध का अनुमान लगा लेते हैं। थोड़े दिन की बात है कि एक महाजन के कोई संतान जिन्दा नहीं रहती थी। वह एक दिन किसी साधु के पास गया, और उससे अपने दुख निवारण करनेका उपाय पूछा। साधुने कहा कि तुम्हारा लड़का जिन्दा रह सकता है, मगर तुम किसी दूसरे व्यक्ति के लड़के के खूनकी धारासे अपने हाथोंका प्रक्षालन करो। महाजन को अपने दुख निवारण का यह उपाय समुचित जान पड़ा। उसने अपने घर पर आकर अपने नौकर को हजार रुपये का लोभ देकर उसके दूसरे लड़केको मारनेके लिये तैयार कर लिया निश्चित दिवस पर लड़का लाया गया, तथा महाजन और महाजन की स्त्री ने उसकी धारासे चीरना प्रारंभ किया। लड़के का पिता उस मारे हुये लड़के के शव को किसी जंगल में गाढ़ कर आने के पश्चात भय के कारण बीमार हो गया। डाक्टर के सामने जब वह चिकित्साके लिये लाया गया तो बुद्धिमान डाक्टर ने उसकी शारीरिक चेष्टाओं से उसके पाप का फौरन पता लगा लिया।

मुन्सिफ व अन्य राज्यके कर्मचारीगण भी अपना फैसला देते समय Extrospection के साधन का बहुत कुछ उपयोग करते हैं, और अपराधी का पता सिर्फ उसके चहरे की चेष्टाओं से ही लगाते हैं। मनुष्य के चाल चलन का पता भी इस परान्वीक्षणात्मक पद्धति (Extrpective method) से ही लगाया जाता है। किसी मनुष्य की बातचीत से व उसके चहरे की बनावट से ही हम फौरन सदाचारी व असदाचारीपन का पता लगा सकते हैं। मनोविज्ञान वेत्ता अपने अन्वीक्षणों द्वारा साधु व मुनियों की सत्यता व ढोंगीपन को फौरन मालुम कर लेते हैं। इस तरह मनोविज्ञान के लिये यद्यपि दूसरे की शारीरिक चेष्टाओं को देखकर उसके भावों का पता लगा लेना एक बहुत साधारण बात है। किन्तु इस साधन में कई त्रुटियां हैं। सबसे पहली बात तो यह

है कि स्व देशानुसार दूसरे के कार्यों से उनके अंतःस्थित कारणों का अनुमान करते हैं। हम समझते हैं कि जैसा निर्माण हमारे शरीर और मन का है या जैसा स्वभाव हमारे मन व शरीर का है वैसा ही स्वभाव और बनावट दूसरोंके मन और शरीरकी भी है। किन्तु यह बात सर्वांशमें ठीक नहीं कही जा सकती। कभी २ एक ही कार्य भिन्न २ भावों से प्रगट किया जाता है। खुशी के भाव हम रोने से और हंसने से प्रगट कर सकते है। शरीर का कांपना क्रोध और भय दोनों ही को बतलाता है। इस साधन का उपयोग हम उन ही मनुष्यों के साथ अच्छी तरह कर सकते हैं जिनके रीति रिवाज रहन सहन के तरीके हम अच्छी तरह जानते हैं। एक मद्रासी के लिये एक पंजाबी के विचारों को उसकी शारीरिक चेष्टाओं से समझना बहुत मुश्किल होगा। दर असल एक बच्चे, जानवर, गंवार और पागलके विचारों का पता उसके बाहिरी हावभावों से लगना बहुत कठिन है। क्योंकि इन की शारीरिक क्रियायें हमारी शारीरिक क्रियाओं से बिलकुल भिन्न तरह की होती हैं। फिर भी चतुर मनोविज्ञान वेत्ता अपने गंभीर अभ्यास के कारण अपने से सर्वथा भिन्न मनुष्यों के विचारों का पता लगाने में भी समर्थ हो जाते है।

पक्षपात के कारण भी मनुष्य दूसरे के सच्चे विचारों को मालूम करने में अशक्त रहता है। मनुष्य अपने से खिलाफ पार्टी के मनुष्य के विचारों को अपने विचारों से खराब ही समझता है। कभी २ मायाचारी और ढोंगी लोग अपने कार्यों को इस प्रकार करते हैं कि दूसरे मनुष्य उनके सच्चे विचारों को जाननेमें गलती कर जाते हैं। चापलूस आदमी ऊपरी हृदय से किसी व्यक्ति की चापलूसी करता रहता है लेकिन उसके विचार उसकी बात चीत और बाहिरी भावों से समान नहीं होते। बहुत से मनुष्य किसी से अपना स्वार्थ सिद्ध करने के हेतु उसके सामने अपने आपको कुछ और ही प्रकार का बना लेते हैं किन्तु वास्तव में उनके विचार उस व्यक्ति के प्रति वैसे नहीं होते जैसे वे दिखलाना चाहते हैं। आधुनिक संसारमें सभ्यता इसीमें समझी जाती है कि मनुष्य इस बातकी कोशिश करे कि दूसरे व्यक्ति उसके विचारों को न जानने पावें। आधुनिक समय का सभ्य पुरुष हमेशा इस बात का उद्योग करता है कि वह दूसरों के सामने इस प्रकार से रहे कि उसके सच्चे भाव प्रकट ही न होने पावें।

मनुष्यों में ढोंगीपन दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। भोले लोग ऐसे लोगों के चंगुल में फंस कर अपना सर्वनाश तक कर डालते हैं। पाठक जानते ही हैं साधु और संत लोग अपने ढोंगीपन से मूढ़ स्त्रियों और पुरुषों को चंगुल में फंसाकर हजारों रुपये ऐंठ लेते हैं! कुछ पुरुष तो ढोंगीपन का बाना पहनने में इतने सिद्ध हस्त होते हैं, कि बड़े से बड़े चतुर मनुष्यों को भी धोका देने में समर्थ हो जाते हैं। होशियार मनोविज्ञान वेत्ता ऐसे पुरुषोंके ढोंगीपन और पाखण्ड का फौरन ही पता लगा कर इनके हृद्गत भावों को मालूम कर लेते है।

आधुनिक मनोविज्ञान की प्रयोगशाला

अन्यान्य ज्ञान विज्ञानों के समान मनोविज्ञान ने भी इस समय बहुत कुछ उन्नति की है। आधुनिक युग में मनोविज्ञान के स्वाध्याय के लिये अनेक प्रयोगशालायें स्थापित हैं। ऐसी एक प्रयोग शाला कलकत्ते के विश्वविद्यालय में भी है।

इसमें स्वान्वीक्षणात्मक (Introspective) परान्वीक्षणात्मक (Extrospective) साधनों द्वारा अनेक प्रकार की परीक्षाएँ की जाती हैं। प्रत्येक मनुष्य, बच्चा या स्त्री की इस प्रयोगशाला में मनोविज्ञान पद्धति से परीक्षा की जा सकती है। ऐसी प्रयोगशालाओं में मनुष्य की बात चीत व हावभावों से उसके विचारों का पता लगाया जाता है। यहाँ पर पढ़ने वाले विविध पुरुषों स्त्रियों या बच्चों के रहन सहन वातावरणादि का पता आसानी से लगा लेते हैं। बुद्धि परीक्षण (Intellegente test) के द्वारा बच्चे के दिमाग के झुकाव व बुद्धि के विषय में भी इन ही प्रयोगशालाओं द्वारा पता लगाया जाता है। आदमी के पागल होने का कारण व दिमाग की खराबियों का पता भी इस प्रकार की प्रयोगशालाओं से चल सकता है।

मस्तिष्क

कुछ मनुष्यों का दिमाग बहुत तंग और कमजोर होता है। वे गूढ़ बातों को सोचने में असमर्थ होते हैं उनके दिमाग से कोई नया आविष्कार नहीं हो सकता वे सर्वथा दूसरे के विचारों का इन्तजार किया करते हैं और जैसे दूसरों के विचार होते हैं वैसे ही अपने विचार भी बना लेते है। उनकी कोई स्वतन्त्र राय नहीं होती। जिस तरह शंख दूसरे के बजाने से बजता है उसी प्रकार वे भी दूसरों की फूंकसे कार्य करते हैं। उनको छोटी २ बातें खूब याद रहती हैं पर बड़ी और महत्वशाली बातें उनकी सूझ में आती ही नहीं और यदि किसी प्रकार आ भी जावें तो वे सांगोपांग नहीं होतीं और कुछ दिनों बाद मस्तिष्क से निकल जाती हैं परन्तु ठोस दिमाग वालों का छोटी २ बातों पर ध्यान नहीं जाता और यदि चला भी जाय तो वे ऐसी बातों को तत्काल भूल जाते हैं। उनके विचार गहराई में गोते लगाते रहते हैं। ऐसे लोग चाहे जिस विभाग में कार्य करते हों, नतीजा निकालनेकी चिंतामें संलग्न रहते हैं और अन्त में फलको निकाल ही लेते हैं। ऐसे दिमागवाले एक ही विषय पर उसके अनेक पहलुओं से विचार करते हुए महीनों बिता देते हैं। जिस समय वे पूर्ण रूपसे किसी विषय के फलकी प्राप्ति में तल्लीन होते हैं उस समय उन्हें यह ज्ञान नहीं रहता कि संसार में क्या होरहा है। पं० टोडरमल जी दिगम्बर जैन समाज के सुप्रसिद्ध स्वर्गीय विद्वान जब गोम्मटसार ग्रंथराज की टीका रचना में लगे हुये थे उस समय उन्हे अपने शरीर व खानपान आदि का भी कुछ खयाल न था। यह उनकी लोकोत्तर तल्लीनता थी। उनकी पूजनीय माता ने उनकी बाहरी चेष्टाओं से इस प्रकार की तन्मयता का पता लगा लिया। परीक्षा के लिये माता जी ने उसी दिन से भोजन में नमक डालना बंद कर दिया। पं० जी प्रतिदिन भोजन करके चले जाते पर उन्हें कई महीनों तक इस बातका पता न लगा कि भोजन में नमक नहीं है। किन्तु जब वे अपना ग्रन्थ पूरा कर चुके तो उस दिन भोजन करते समय अपनी माता से पूछा कि आज भोजन में नमक क्यों नहीं है ? माता प्रश्न को सुनकर समझ गई कि मेरे पुत्र का स्वीकृत कार्य आज समाप्त हुआ है और कहने लगी कि बेटा! भोजन में नमक तो मैं कई दिनों से नहीं डाल रही हूँ: किन्तु तुमको इसका अनुभव आज ही हुआ है शायद आज तुम्हारा ग्रंथ पूर्ण हो गया है। सर आईजिक न्यूटन एक गणित के

प्रश्न को हल करने में इतने तल्लीन थे कि उन के सामने से एक फौज का जलूस निकल गया फिर भी उनकी तन्मयता भंग न हुई। जब वे अपना कार्य कर चुके और लोगों ने फौज का वर्णन किया तो न्यूटन को अपनी इस अनभिज्ञता पर बहुत आश्चर्य हुआ। सुप्रसिद्ध डाक्टर गणेशचन्द्र की पीठ पर जब एक बार भयङ्कर अदीठ हो गया था तो उनके मित्र डाक्टरों ने उन्हें ओपरेशन कराने की सलाह दी। वे मान गए, किन्तु जब ओपरेशन के समय उन्हें क्लोरोफार्म सूँघनेके लिये कहा गया तो उन्होंने कहा कि इसके सूंघने की क्या आवश्यकता है? जाओ मेरे पुस्तकालय से अमुक पुस्तक ले आवो जब मैं उस का अध्ययन करते २ तन्मय होजाऊं उस समय आपरेशन कर लेना। पहले तो डाक्टरों ने ऐसा करने से इनकार किया पर जब गणेशचन्द्र जी ने अपना आग्रह न छोड़ा तो डाक्टरों को ऐसा ही करना पड़ा। सारांश यह है कि जब वे अपने अध्ययन में तल्लीन होगए तब बिना क्लोरोफार्म सुंघाये ही अत्यन्त शान्ति के साथ उनके अदीठ का आपरेशन कर लिया गया। यह उनकी लोकोत्तर एकाग्रता का नमूना था। इसी तरह और भी अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। पाश्चात्य देशों में जो आश्चर्य कारक आविष्कार और बडे २ अन्वेषण होते हैं वे सब इसही प्रकार की तल्लीनता पर निर्भर हैं।
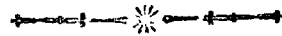
डबल गप्पाष्टक और श्रीराम जी

(ले० श्रीमान पं० सुरेशचन्द्र जैन न्यायतीर्थ)

करीब चार वर्षका समय हुआ जब पं० अजितकुमार जी शास्त्री ने आर्य समाजियों की गप्पाष्टक शीर्षक एक पुस्तिका लिखी थी। जनता ने इसको बहुत पसन्द किया और उक्त शास्त्री जी से इसके बढ़ाने की प्रार्थना भी की। शास्त्री जी ने जनता के अनुराग को देखते हुये इसको डबल कर दिया और आर्य समाज की गप्पाष्टक के नाम पर इसका नाम भी आर्यसमाज की डबल गप्पाष्टक कर दिया। इसको भी प्रकाशित हुये करीब ढाई वर्षका समय होचुका है। प्रकाशित होते ही इसकी बहुतसी प्रतियां विचारार्थ विद्वान आर्यसमाजियों के पास भेट स्वरूप भेजी जाचुकी हैं। इतने पर भी किसी समाजी विद्वान ने इसका उत्तर प्रकाशित नहीं किया है। अब कासगंज निवासी श्रीरामजी मैदान में आये हैं और उन्होंने इसका असफल प्रयत्न किया है। श्रीराम जी तो अभी बालक हैं और उनकी योग्यता भी अधिक नहीं है किन्तु यदि कोई महान से महान समाजी विद्वान भी इसके उत्तर की चेष्टा करता तब भी इसका समाधान होना असंभव था। फिर भी हम श्रीरामजी के कथन पर एक सरसरी दृष्टि डालना जरूरी समझते हैं। आपके वक्तव्य को तीन भागोंमें विभाजित किया जासकता है। एक असभ्य एवं

असम्बन्धित शब्द, दूसरे जैनधर्म पर निराधार आक्षेप और गप्पों के समाधान स्वरूप वाक्य।

समाधान के पहले प्रकार के सम्बन्ध में तो हम को इतना ही लिखना है कि जब तक आर्यसमाज स्वामी दयानन्द के आदर्श पर पानी नहीं फेरेगा तब तक उससे ऐसी बुराइयाँ दूर नहीं होसकतीं। स्वामी जी स्वयं ऐसे व्यक्तित्व के महापुरुष हुये हैं जो उन्होंने दूसरों पर कटु एवं असभ्यशब्दों की वर्षा की है फिर इनके भक्त बनने वाले श्रीराम जी से ऐसी बातों की संभावना क्यों न हो। कुछ भी सही यह सब स्वामी जी, आर्यसमाज और उनके अनुयायियों के लिये ही शोभास्पद रहे। हमतो ऐसी बातों को घृणा की दृष्टि से ही देखते हैं अतः इन पर कुछ लिखना समय को व्यर्थ खोना होगा ! इस प्रकार की बातों का यही हमारी तरफ से समाधान है।

श्रीराम जी के वक्तव्य के दूसरे अंश के सम्बन्ध में हमको केवल इतना ही लिखना है कि प्रथम तो यहां पर जैन धर्म पर आक्षेपों की आवश्यकता ही नहीं थी यहाँ तो आर्य समाज की गप्पों के ही उत्तर देने थे। पहले अपनी झोंपड़ी की आग बुझा लेते तब ही दूसरों के मकान को जलाने की चेष्टा करते। यदि जैन धर्म पर आक्षेप ही करने थे तो कम से कम उसकी मान्यता को तो समझ लेते। पहली गप्प के प्रकरण में आक्षेपक ने जैन धर्म के सम्बन्ध में दो आक्षेप किये है। एक भगवान महावीर के गर्भपरिवर्तन का और दूसरा भ० ऋषभदेव का अपनी बहिन के साथ विवाह करने का। इनके सम्बन्ध में हम को इतना ही कहना है कि आक्षेपक की ये दोनों ही बातें मिथ्या हैं। हम इन दोनों ही बातों को नहीं मानते। हमारे किसी भी शास्त्र में इनका वर्णन नहीं है।

आक्षेपक ने इन दोनों आक्षेपों के सम्बन्ध में भगवती सूत्र की तरफ संकेत किया है। इसके सम्बन्ध में पहिली बात तो यह है कि हम उक्त सूत्र को अपना शास्त्र ही स्वीकार नहीं करते। दूसरे उस को भी कम से कम आँख खोल कर तो देखलेना था।

आक्षेपक ने अपने वक्तव्य के तीसरे अंशमें आर्यसमाज की पहली गप्प के समाधानकी चेष्टा की है। आर्य समाज की पहली गप्प गप्पलेखक के शब्दों में निम्न प्रकार है।

"स्वामी दयानन्द जी सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश के आठवें समुल्लास पृष्ठ २३४-५ में लिखा है कि "ईश्वर ने मनुष्य युवावस्था में तिब्बत पर बिना माता पिता के उत्पन्न किये" आदमी क्या हुए पानी की बूँदें होगईं जो कि टप टप तिब्बत पर पड़े और आते २ जवान भी हो गये। लेकिन स्वा० जी इसी सत्यार्थ प्रकाश के २२६ वें पृष्ठ पर लिखते हैं कि मेरे माता पिता न थे ऐसे ही मैं उत्पन्न हुआ हूँ ऐसी असंभव बात पागल लोगों की हैं। पता नहीं इन दोनों में से कौनसी बात बुद्धिमानी की है और कौन सी पागलपन की है। शायद आज कल भी आर्य मन्दिरों में ऐसे बिना माता से उत्पन्न हुए मनुष्यों को आर्य समाज का ईश्वर उतारता रहता है। वाह स्वामी जी आप ने तो गपोड़ियों को भी मात कर दिया।

लेखक ने इस गप्प के समाधान में तीन बातें लिखी हैं। एक यह है कि जहां बिना माता पिता के मनुष्यों की उत्पत्ति का वर्णन है वहां आदि सृष्टि की

दृष्टि से है। आदि सृष्टि अमैथुनी होती है। "मेरे माता पिता नहीं थे मैं वैसे ही उत्पन्न हो गया हूँ यह मूर्खों की बात है" यह वर्णन मैथुनी सृष्टि की दृष्टि से है। अतः स्वामी जी के कथन में विरोध को कोई स्थान नहीं है, दूसरी यह कि अथर्ववेद में अमैथुनी सृष्टि का वर्णन मिलता है और तीसरी यह कि आज भी बिना माता पिता के कीड़ों की उत्पत्ति होती है।

आर्यसमाज का एक को अमैथुनी और दूसरी को मैथुनी स्वीकार करना भले ही उसके लिये मूल्य की बात हो किन्तु दूसरों की दृष्टि से तो इसका कुछ भी मूल्य नहीं है। दूसरे व्यक्ति आर्यसमाज की इस मान्यता को सत्य स्वीकार नहीं करते अतः उनकी दृष्टि से इस रहस्य को प्रतिज्ञा के रूप में लिखना न लिखने जैसा ही है।

अथर्व वेद की प्रमाणता की भी यही बात है। प्रतिवादी उसको प्रमाण नहीं मानता। उसकी दृष्टि से आर्यसमाज के प्रतिज्ञा वाक्यों और अथर्ववेद के मंत्रों में प्रमाणता की दृष्टि से कुछ भी अन्तर नहीं है।

दूसरे अथर्व के इन मंत्रों से अमैथुनी सृष्टि की सिद्धि भी नहीं होती. विद्वान पाठक इस बात को भलीभांति जान सकें अतः यहाँ इन मंत्रों के आर्य भाष्यकार के ही हिन्दी अर्थ को उद्धृत किये देते हैं।

भा०—हे राजन इस विशाल विस्तार वाली सुखप्रद अति महान विस्तृत सब की माता उत्पन्न करने वाली सर्वाधार भूमि को तू प्राप्त हो दक्षिणा या शक्ति से सम्पन्न अर्थ सम्पत्ति या कार्य को अधिक बलपूर्वक करने की शक्तियों से सम्पन्न पुरुष के लिये यह पृथ्वी भी कठिन न होकर ऊनके समान अति कोमल है वह सब मार्ग में तेरे आगे से तुझको पालन करे।

अथर्व १८-३-४९ जयदेव भाष्य

भा० हे भूमि ? तू उन्नतिको प्राप्त हो। ऊपर उठ। अपने ऊपर के निवासी प्रजा और राजा को पीड़ित मत कर इस उत्तम राजा के लिये उत्तम रीति से प्राप्त करने योग्य एवं उत्तम उपहार के समान और उत्तम रीति से उपसर्पण करने वाली उसके शरण में आने वाली होकर रह। हे सर्वाश्रय भूमे! जिस प्रकार माता पुत्र को प्रेम से अपना दूध पिलाती है उसी प्रकार तू उस राजा को सुखप्रद अन्नों से पूर्ण कर और सब प्रकार आच्छादित कर सुरक्षित कर। यहां पृथ्वी से पृथ्वी और उसमें निवास करने वाली प्रजा दोनों का ग्रहण करना चाहिये

अथर्व १८-३-५० जयदेव भाष्य

भा०—ऊपर उठ शरीर वाली, खूब पुलकित शरीर अर्थात् खूब औषधि और कृषि आदि से सम्पन्न पृथ्वी उत्तम रीति से विराजमान रहे हजारों लोग परस्पर मिलकर पास इसपर अपना बसेरा करें वे गृह घृत आदि पुष्टिकारक पदार्थोंको देने वाले सुखकारक और इस स्वामी के लिये सब प्रकार से इस लोक में शरणप्रद हों।

अथर्व १८-३-५१ जयदेव भाष्य

भा० हे राजन! तेरे निमित्त पृथ्वी को उन्नत करता हूँ और हे राजन तेरे इर्दगिर्द तेरे आश्रय पर तेरी रक्षा में इस लोक समाज को बसता हुआ मैं पीड़ित न होऊं राष्ट्र के पालक लोग इस आश्रयभूत राज्य के भार को उठाने वाली धुरा को स्वयं धारण करते हैं हे पुरुष! इस कार्य नियामक नियन्ता शक्तियों को नियामक व्यवस्थापक या शिल्पी तेरे लिये आश्रय-स्थान पुरी इमारतों को बनावें।

अथर्व १८-३-५२ जयदेव भाष्य

समझदार पाठक अब समझ गये होंगे कि लेखकका इन मंत्रों के आधार से अमैथुनी सृष्टि को सिद्ध करने का प्रयास कितना बेसुरा आलाप है।

लेखक ने मंत्रों का अर्थ न लिखकर केवल भावार्थ ही लिखा है। भावार्थ अर्थ के अनुसार ही हुआ करता है या अर्थ से ही निकलता है। आक्षेपक का प्रस्तुत भावार्थ मंत्रार्थ के अनुकूल नहीं है अतः प्रथम तो उसको मंत्रों का भावार्थ ही स्वीकार नहीं किया जा सकता, यदि थोड़ी देर के लिये अभ्युपगम सिद्धान्त से इसको भावार्थ भी स्वीकार करलें तब भी इससे अमैथुनी सृष्टि का समर्थन नहीं होता। विवादस्थ मंत्रों का भावार्थ आक्षेपक ने निम्नलिखित शब्दों में लिखा है

" जीव अपने कर्मानुसार शरीर धारण करने के लिये कल्याण कारिणी भूमिमाता को प्राप्त होते हैं। पृथ्वी का ऊपरी तल जीवों के शरीर धारण करानेके लिये उनके समान कोमल होजाता है। पृथ्वी जीवों की आरम्भ सृष्टि में रक्षा करती है (२) पृथ्वी जीव गर्भ धारण करने के लिए पुलकित हो जाती है जिस से जीव गर्भ बढ़ सके। जीव की आवश्यक्ताओं को पृथ्वी पूरा करती है और गर्भ के पूरा होने ही उसे बाहर उभारने में योग्य होती है। जिस प्रकार माता बालक का दुग्धादि से पालन करती है भूमि भी जीवों का औषधियों से पालन पोषण करती है।

भूमि कुछ काल तक उफनी रहती है और असंख्य जीव गर्भ परस्पर आश्रित रहते हैं और वह गर्भ गृहरूपी कोष जीव को स्वाभाविक ही पोषण के लिये रस देते हैं। (४) जीवों के गर्भ जलमयभूभाग से ऊपर उठे हुए भूभाग पर स्थिर होते हैं जीवों को वहाँ कोई कष्ट नहीं होता। पूर्व उस भाग को धारण करता है तथा गर्भ बनाता है।"

विवादस्थ मंत्रों में से किसी के भी भावार्थ से यह बात प्रगट नहीं होती कि आदि सृष्टि में मनुष्य बिना माता पिता के उत्पन्न हुए थे और बाद को इन ही की उत्पत्ति माता पिता से हुई है। उपर्युक्त भावार्थ में स्पष्ट की तो बात ही निराली है वहाँ तो इस भाव के समर्थक अस्पष्ट शब्दों का भी अभाव है।

वैदिक साहित्य का सृष्टि रचना का वर्णन तो इतना ऊटपटांग है कि उसको तर्क पर तौलना आत्म घात करना है। पाठकों के मनो विनोदार्थ यहाँ हम उनमें से एक का उल्लेख कर देते हैं।

"पहिले पहल पुरुषाकार केवल एक ही आत्मा था उसने अपने आपको देखा उसने ब्रह्म कहा और उसका नाम अहं कहने से अहम हो गया। उस अहं को अकेले में मजा नहीं आया। क्योंकि दुनियां में किसी भी अकेले को मजा नहीं आता उसने दूसरे की इच्छा की और उसका शरीर इतना स्थूल होगया कि जिससे एक स्त्री और एक पुरुष निकले अतः इतने शरीर को दो भागों में विभाजित किया। एक का नाम स्त्री और दूसरे का पुरुष रक्खा गया। इन दोनों में से सम्पूर्ण स्त्री पुरुष उत्पन्न हुए। स्त्री ने देखा कि उसने मुझे अपने शरीर से उत्पन्न करके मुझ से विषय भोग किया है इस लिये वह लज्जित हुई और मारे रंज के गाय बन कर छिप गई। मगर पुरुष ने भी उसका पीछा नहीं छोड़ा वह भी फौरन बैल बन गया। इनके संयोग में से गाय बैल हुए। फिर वही स्त्री घोड़ी बनी तो पुरुष घोड़ा बना वह गधी बनी तो

वह गधा बना इत्यादि " शतपथ १४ - ४ - २ - ११० क्या ऐसी बातें भी तर्क द्वारा सिद्ध की जा सकती हैं। क्या आर्य समाज को इसही सृष्टि रचना का गौरव है। क्या यही सृष्टि रचना वैज्ञानिक है? यदि आर्य समाज इस ही को वैज्ञानिक सत्य समझता है तब तो यों कहना चाहिये कि "हम तो डूबे हैं साथ में तुम को भी ले डूबे"। सृष्टिवाद स्वयं तो डूबा ही था साथ में विज्ञान को भी ले चला। बलिहारी ऐसे सृष्टिवाद की।

अमैथुनी सृष्टि के समर्थन में आक्षेपक की तीसरी बात कीड़े मकोड़ों की उत्पत्तिकी है। इससे आप का यह मतलब है कि जिस प्रकार बिना माता पिता के आज इन की उत्पत्ति होती है उसही प्रकार जगत की आदि में मनुष्यों की। आक्षेपक ने यदि थोड़ी सी भी समझदारी से काम लिया होता तो उनको यह कष्ट न करना पड़ता। आक्षेपकको मालूम होना चाहिये कि इनकी उत्पत्ति सदैव अमैथुनी ही होती है ऐसा कोई भी समय नहीं जब कि ये मैथुनिक शरीरसे अमैथुनिक शरीर और इनके उत्पत्ति क्रम में अन्तर है अतः एक के आधार से दूसरे को वैसा प्रमाणित नहीं किया जा सकता। यदि आक्षेपक की इस बात को बदल दिया जाय और यह कहा जाय कि जगत की आदि में कीड़े मकोड़ों की उत्पत्ति मैथुनी होती थी जैसे आज कल मनुष्योंकी होती है तो क्या आक्षेपक इसके सामने मस्तक झुकाने को तय्यार है। यदि नहीं तो क्यों? परमात्मा ने सृष्टि की आदि में कीड़े मकोड़ों की अमैथुनी सृष्टि की थी और आज भी वैसे ही करता है किन्तु मनुष्यों की रचना का क्रम उसने क्यों बदला? जब जीव कर्म के अनुसार ही जन्म लेता है जैसा कि आक्षेपक ने अथर्व के भावार्थ में लिखा है। तो फिर वे कर्म आर्य समाज के कल्पित प्रलय काल में चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष तक कहां सोते रहते हैं और ईश्वर का सृष्टि कर्तृत्व गुण इसमे क्यों निकम्मा हो जाता है? यदि ऐसा नहीं है तो इतने समय सृष्टि की रचना क्यों नहीं होती? यह सब बातें गप्प ही हैं इनको तर्क की कसोटी पर चढ़ाना भोलापन है अतः प्रगट है कि कीड़े मकोड़ों की अमैथुनी सृष्टि से मनुष्यों की अमैथुनी सृष्टि सिद्ध नहीं हो सकती।

जब कि मनुष्यों की उत्पत्ति में मैथुनी और अमैथुनीका भेद युक्तिसंगत नहीं है तब इस हीके आधार से स्वा० दयानंद का दो प्रकार का कथन किस प्रकार सत्य माना जा सकता है। अतः कहना ही पड़ता है कि बिना माता पिता के एक दम जवान मनुष्यों की उत्पत्ति का वर्णन कोरी गप्प है और यदि इसही को स्वामी दयानन्द जी के शब्दोंमें कहना चाहें तो यों कह सकते हैं कि "मेरे माता पिता न थे ऐसे ही मैं उत्पन्न हुआ हूँ ऐसी असंभव बात पागल लोगों की है"।

उपर्युक्त विवचनसे प्रगट है कि लाख प्रयत्न क्यों न करो गप्पको अगप्प सिद्ध नहीं किया जा सकता। गप्प तो गप्प ही रहेगी।

संघ पर छींटे

व्यक्तिगत वैमनस्यका बदला लेनेको कतिपय अदूरदर्शी लोग अपना मलिन हृदय शांत करने के लिये उपयोगी सार्वजनिक संस्थाओं पर ऊटपटांग आक्षेप करउन संस्थाओंके प्रति समाजका दुर्भाव उत्पन्न करने का निंद्य प्रयत्न करते हैं। पत्रोंके सम्पादक, प्रकाशक बिना कुछ आगा-पीछा देखे पार्टी बंदी की आड़ में वैसे विषैले लेख प्रकाशित करदेते हैं। इस तरह पार्टी बन्दी के शिकार उन पत्रों ने यह परिस्थिति उत्पन्न करदी है कि विद्यालयों सरीखी उपयोगी संस्थाओं को हानि पहुंचाने वाले लेख उनमें बिना किसी विवेक के छपते रहते हैं।

यदि एक पत्र सम्पादक कारणवश श्रीमान पं० माणिकचन्द्र जी से मनमुटाव रखता है तो वह अपने पत्र में सहारनपुर विद्यालयकी बुराई वाले लेख छाप देता है। यदि किसी का बिगाड़ पं० खूबचन्द्र जी शास्त्री या पं० मक्खनलाल जी से है तो वह अपने पत्र में मुरैना विद्यालय के विरुद्ध आगत लेखों को सहर्ष स्थान दे डालेगा। किसी कारण वश यदि किसी सम्पादक या प्रकाशक का वैमनस्य पं राजेन्द्र कुमारजी या पं० कैलाशचन्द्र जी के साथ है तो वह इस ताकमें रहता है कि शास्त्रार्थ संघ की या स्याद्वाद विद्यालय की मुझे कुछ शिकायत लेख मिले। अवसर पाते ही झट वह ऐसा कर बैठता है। फल यह होता है कि समाजका विश्वास उपयोगी सार्वजनिक संस्थाओं से उठता चला जारहा है जिसका कटुक फल उन व्यक्तियों को नहीं किन्तु समाज को चखना पड़ता है।

अभी १४ अप्रैल के (२२ वें अङ्क) जैनगजट में 'स्याद्वाद विद्यालय' शीर्षक लेख विजयकीर्ति शास्त्री के नाम से प्रकाशित हुआ है उसमें शास्त्रार्थ संघ और स्याद्वादविद्यालय पर ऊटपटांग आक्षेप किये गये हैं। जैनगजट के सञ्चालक यदि सामाजिक हित को ध्यानमें रखकर छापनेसे पहले उन संस्थाओं के कार्य कर्ताओंसे उन आक्षेपोंका समाधान कराते तो कितना अच्छा रहता किन्तु उन्होंने अपना कर्तव्य पालन नहीं किया। अस्तु।

लेख पर लेखक का नाम 'विजयकीर्तिशास्त्री' लिखा हुआ है। किन्तु जैनदर्शन के इसी अंक में अन्यत्र छपी हुई स्याद्वाद विद्यालय की सूचना के अनुसार पं० विजयकीर्ति जी अपने आपको इस लेख का लेखक होना स्वीकार नहीं करते। इस परसे मालूम यह पड़ता है कि किसी कारणवश स्याद्वाद विद्यालय से रुष्ट हुये किसी विद्यार्थी की यह कृति है। पं० कैलाशचन्द्र जी का सम्बन्ध शास्त्रार्थ संघ तथा विद्यालय से है। इसलिये मनचले आक्षेपक ने दोनों संस्थाओं पर आक्रमण कर दिया है। भ्रम निवारण के लिये हम यहां शास्त्रार्थ संघ पर किये आक्षेपोंका संक्षिप्त उत्तर दिये देते हैं।

शास्त्रार्थ संघपर निम्नलिखित आक्षेप किये गये हैं

१- संघके शास्त्रार्थ कर्ताओं की आर्य समाज के शास्त्रार्थ करने वालों के साथ कुछ संधि है जिसके बल पर अम्बाला के इर्द गिर्द ही शास्त्रार्थ हुआ करता है। शेष भारत में टाल मटोल हुआ करती है।

२- इसी संघके बल पर सेकिण्ड और इण्टर क्लास में सफर करने का सौभाग्य भी प्राप्त होता रहता है।

३- क्वींस कालेजमें जैन कोर्स भर्ती कराने में किन्हीं और व्यक्तियों का हाथ था जिसमें इन्होंने अपनी तारीफ छपवाई है।

४- जैनदर्शन के स्याद्वाद अङ्कमें पं० कैलाशचंद्र जी का लेख पहिले नम्बर पर है और पं० माणिक चंद्र जी का छटवें नम्बर पर।

इन आक्षेपों का उत्तर इस प्रकार है -

१- जैन शास्त्रार्थ संघकी ओरसे शास्त्रार्थ करने वाले विद्वानों को शास्त्रार्थ करने का कुछ फीस नहीं मिलती और न वे शास्त्रार्थ करने का जैन समाज से कुछ वेतन पाते हैं जो स्वार्थ साधन के लिये उन्होंने आर्यसमाजी विद्वानों से संधि की हो। शास्त्रार्थके लिये आर्यसमाज या अन्य कोई जहाँ कहीं भी (वह स्थान चाहे अम्बाले के इर्द गिर्द हो या दूर) जैन समाजको ललकारता है और वहांका जैन समाज शास्त्रार्थसंघकी सेवा चाहता है तो शास्त्रार्थसंघके विद्वान वहां जाकर शास्त्रार्थ करते हैं। इस प्रकार शास्त्रार्थ तथा शंका समाधान देहली, पानीपत खतौली, केकड़ी (राजपूताना) गया (बिहार) ज्वालापुर आदि अम्बाला के पास तथा सैकड़ों हजारों मील दूरके अनेक स्थानों पर होचुके हैं।

२- संघका कोई भी कार्यकर्ता इण्टर, सेकिंड क्लासमें सफर नहीं करता यदि कभी बहुत शीघ्र पहुँचने के खयाल से मेलगाड़ी से सफर भी करना पड़ा हो (जैसे एक बार २४ घंटे के भीतर शास्त्रार्थ करने के लिये ग्वालियर पहुँचने के लिये बम्बई मेल में पं० राजेन्द्रकुमार जी को जाना पड़ा था तो दूसरी बात है क्योंकि उसमें थर्ड क्लास होता ही नहीं। लेखक कितना उदार नजर आता है जिसको इण्टर, सेकिण्ड क्लास का सफर भी बड़ी भारी अनोखी चीज दीख पड़ती है।

३- क्वींस कालेज में जैन कोर्स प्रविष्ट कराने के लिये शास्त्रार्थसंघ को पर्याप्त पत्र व्यवहार करना पड़ा था तथा संघ के सञ्चालकों को अनेक बार क्वींस कालेज के अधिकारियों से मिलना पड़ा था। तब यह कार्य हुआ। लेखक जरा उस व्यक्ति का नाम तो प्रगट करता जिसके प्रयत्न से यह कोर्स भर्ती हुआ।

४-प्रेसके भूतों के कारण स्याद्वाद अंक के लेखों में क्रम भंग हुआ था। जयपुरसे जो लेखों का क्रम लगा कर भेजा था वह यहां कुछ भंग होगया था किन्तु इसका दर्द लेखक को इसीलिये हुआ कि स्याद्वाद विद्यालय के कारण लेखक पं० कैलाशचन्द्र जी के साथ कुछ वैमनस्य रखता है।

उत्तरदायित्वशून्य लेख का विशेष उत्तर देना व्यर्थ है।

अजितकुमार जैन।

नवयौवन का अदम्य जोश

रघुवीरशरण जी के उद्गार

नवयौवन पुरुषों तथा स्त्रियों में एक विचित्र, उत्कट जोश उत्पन्न करता है उस जोश में अदम्यता का भाव अधिक होता है और विवेक, सहनशीलता तथा

नम्रता का भाव बहुत कम प्रायः नहीं के बराबर होता है जिन्होंने नवयौवन को पार कर लिया है उन्हें इस बात का अनुभव भले प्रकार होगा। इसी कारण २५ वर्ष तक की आयु पच्चीसी के नाम से पुकारी जाती है।

अमरोहा निवासी श्रीमान बा० रघुवीरशरण जी जो कि इस समय कालेज के विद्यार्थी हैं इसी नवयौवन में विचर रहे हैं आपको जोश अधिक और धैर्य सहनशीलता कम है यही कारण है कि आपकी लेखनी बेलगाम घोड़े की तरह दौड़ती है लिखते समय उसे उचित अनुचित का ध्यान जरा भी नहीं रहता। उदाहरण के तौर पर हम आपकी दो बातें उपस्थित करते हैं।

१—सत्य संदेश के गत ११वें अंक में आपका गिरजाघरदर्शन" शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है उसमें आपने मेरठ के ईसाइयों के गिरजाघर के दर्शन कर के गिरजाघर के गुणगान किये हैं और यह प्रगट किया है कि गिरजाघर धर्मालय है और जैन मंदिर अधर्मालय हैं। आपके शब्द ये हैं

"हमारे मंदिर अधर्मालय हैं वहाँ क्या नहीं होता सब कुछ होता है; लड़ाई झगड़ा होता है कषायों का अखाड़ा जमता है, वहाँ पाप होते हैं बुरी आदतों का नंगा नाच होता है ब्याह शादी आदि की हर प्रकार की घरेलू व सामाजिक चर्चा होती रहती है। वहां आँखें लड़ती हैं, व्यभिचार होता है, दुर्वासनाओं की तृप्ति होती है पाप का घड़ा भरा जाता है, असभ्यता मूर्खता व धृष्टता का वहां सदा अड्डा जमा रहता है। इस भय से कि कहीं मंदिरों की पाप लीला लिखने से मेरी लेखनी अपवित्र व अश्लील न हो जाय मात्र इतना ही और लिखना काफी समझता हूं कि मंदिर में प्रत्येक प्रकार का अधर्म होता है। मेरे हृदय को जो शान्ति और आनंद चर्च में आकर मिला मन्दिर में उसका पता भी नहीं मिलता।"

रघुवीरशरण जी कितने भारी विवेकशील, धर्म अधर्म के परीक्षक हैं तथा कितने अधिक सत्यप्रिय हैं यह सब कुछ उनके लेखांश से पता चल जाता है। जैसा कुछ उन्होंने लिखा है उसके अनुसार वे धर्म प्राप्ति के लिए ईसाइयों के गिरजाघर ही जाते रहते होंगे। उन्होंने धर्म का रहस्य कितना अच्छा समझा है धर्मालय के मर्म से वे कितने परिचित हैं और आधे घंटे में ही धार्मिक रहस्य को किस तरह निर्णय कर लेते हैं और कितना आप में धैर्य, विवेक और मर्मज्ञता है इसका परिचय आपके इसी लेख से हो जाता है।

आपके उक्त लेखसे पता चलता है कि उन्हें अभी पूज्य अपूज्य, देव कुदेव, धर्मायतन अधर्मायतन का साधारण मर्म भी जानना बाकी है वे जितने जल्दी फैसला करते हैं उतना उस पर गहरा विचार नहीं करते। जैन मंदिर सरीखे पवित्र धर्म स्थान को अपने दूषित दृष्टि कोण से देखकर निन्द्य शब्दों का प्रयोग करना कितनी भारी भूल और पाप है। मनुष्य अपनी जिस दृष्टि से जिस पदार्थ को देखना चाहे उसको वहां वैसा ही नजर आता है। आँखों का लड़ना व्यभिचार असत्य भाषण आदि दुष्कर्म जैन मंदिरों में धार्मिक व्यक्ति को कभी दृष्टिगोचर नहीं होते हां, यदि कोई अपनी पापवासनाकी निगाह से मन्दिर का निरीक्षण करे तो वह जो कुछ भी वहाँ देखे थोड़ा है। कुछ यह भी है कि निष्पक्षपात या परीक्षक कहलाने की इच्छा भी पराई पत्तल के भात को मीठा कहलाया करती है।

२—सत्य समाज के सदस्यों के विषय में पं० राजेन्द्रकुमार जी ने लिखते हुए अपनी लेखमाला में यह लिखा था—

"सम्मति तो कभी २ निराधार भी हो जाया करती है दृष्टान्त के लिये यों समझियेगा कि भाई रघुवीरशरण जी अमरोहा ने दर्शन और जगत का लेखमाला के और सत्यसमाज के संबन्ध में अपनी सम्मति जगतमें प्रकाशित कराई है क्या आप समझते हैं कि वह सम्मति साधार है या दोनों लेखमालाओं को तुलनात्मक ढंग से पढ़ने के बाद लिखी गई है। भाई रघुवीरशरण जी मेरे बन्धुओं में एक हैं मैं उनके स्वभाव से भलीभांति परिचित हूं अतः मैं इस बात को दृढ़ता के साथ कह सकता हूँ कि आपने अपनी सम्मति निर्धारित करने से पूर्व दोनों लेखमालाओं को तुलनात्मक ढंग से नहीं बांचा है।"

इसके उत्तर में रघुवीरशरण जीने जैन जगतके ६ वें अंक में जो लेख छपाया है उसमें व्यावहारिक सभ्यता को बुरी तरह फटकार दिया है पं० राजेन्द्र-कुमार जी के उक्त लेखांश का उत्तर रघुवीरशरण जी सहनशीलता के साथ सभ्यता से दे सकते थे किन्तु आपने अपने समाधान में पं० राजेन्द्रकुमार जी पर "समाज के भय के कारण समाज कीहां में हां मिला कर ही अपनी उदरपूर्ति करना" क्षुद्रकृत्य, उथली मनोवृत्ति, कुचेष्टा, नग्न परिचय आदि शब्दोंसे बौछार करके सभ्यता प्रगट की है। पाठक महानुभाव पं० राजेन्द्रकुमार जी तथा रघुवीरशरण जीके शब्द प्रयोग को देख कर इस बात का स्वयं निर्णय कर लें।

रघुवीरशरण जी पं० राजेन्द्रकुमार जी की जिस बात से असीम जोश में आ गये हैं हम तो उससे भी चार कदम आगे बढ़ कर कहना चाहते हैं कि सत्य समाज की प्रगति दिखलाने के लिये सदस्यों के झूठे नाम भी प्रकाशित होते हैं। रघुवीरशरण जी बतलावें कि कानपुर निवासी तीस वर्ष की आयु के कृष्ण-कुमार नामक ब्राह्मण को जो सदस्य प्रकाशित किया गया है वह क्या सचमुच है?

तथा पं० दरबारीलाल जी और पं० राजेन्द्रकुमार जी की लेखमालाओं में 'अनुमेयत्व हेतु' आदि का प्रकरण ऐसा है जो काफी न्याय विषयक अध्ययन के बिना झटपट यों ही समझ में नहीं आ सकता जिससे झट तुलनात्मक निर्णय दे दिया जावे।

सारांश यह है कि रघुवीरशरण जी को अपने नवयौवनी जोश पर काबू रख कर परिस्थिति का अध्ययन करना चाहिये। उतावली, अधैर्य का संपर्क जोश के लिये हानिकारक है।

संपादक

चन्द्रप्रकाश का असत्य प्रलाप

अजमेर से चन्द्रप्रकाश नाम का एक मासिक पत्र निकलना शुरू हुआ है। अभी तक उसके कुल आठ अंक निकले हैं। पत्र के संचालकों का कर्तव्य था कि वे उसको इस योग्य बनाते जिससे वह पत्र समझा जा सकता। यह सब तो दूर की बात है उसने तो अभी से अपने को झगड़ों में फंसा दिया है। इसके प्रकाशक डा० गुलाबचंद जी पाटणी ने इसके आठवें अंक में चौधरी धर्मचन्द जी के आधार से हम पर झूठे आक्षेप किये हैं। आपका कहना है कि हम छूता-छूत के भेद को मिटाना चाहते हैं।

समाजहित की दृष्टिसे किसी भी बातको लिखना बुरा नहीं किन्तु ऐसा करने से पूर्व उसके सम्बन्ध में

यथेष्ठ विचार कर लेना चाहिये। डा० गुलाबचंद जी पाटणी हमको भलीभांति जानते हैं। हमारे विचार भी आपसे अपरिचित नहीं हैं। जिस समय दिगम्बर मुनियोंके विहारके सम्बन्धमें आप कुछ बातें स्वीकार कर आये थे और इस पर समाजके प्रतिष्ठित विद्वानों ने आपपर लानतें डाली थीं उस समय आपने हमको जो पत्र लिखा था उसे आपको भूल नहीं जाना चाहिये। यदि आपको उसका स्मरण न हो तो अब करलें अन्यथा आवश्यकतानुसार समाज के साथ ही साथ हम आपको भी उसका स्मरण करावेंगे।

डाक्टर साहब ! यह एक ऐसा विषय है जिसके सम्बन्ध में हम अनेकबार अपना अभिमत प्रगट कर चुके हैं। समाज जितना आपके विचारों को जानता है उससे कहीं अधिक हमारे विचारोंसे परिचित है। आपको यदि हमपर आक्षेप ही करना था तो कम से कम ऐसे विषय को लेकर करते जिसके सम्बन्ध में समाज को हमारे विचार मालूम नहीं हैं या कम मालूम हैं। हमारी तो बात ही क्या है संघ में तो एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसके विचार छूताछूत लोप के अनुकूल हों। संघ अपने इन विचारों की घोषणा अपने मुखपत्र दर्शन के पहिले अंक में ही करचुका है किन्तु डाक्टर साहब को यह सब तो तब मालूम होता जबकि वह समाचार पत्रों को देखना भी अपना कर्तव्य समझते।

अब रह जाती है डॉ० धर्मचन्द्र जी की बात इसके सम्बन्ध में डाक्टर साहब ने लिखा है कि "यदि यह बात गलत थी तो उन्हें इसका खुलासा कर देना चाहिये"।

डाक्टर साहब ने दर्शन को देखने का कष्ट नहीं

सम्पादकीय टिप्पणियां

श्रुतपंचमी

भगवान महावीरका दिव्य उपदेश उनके मुक्त हो जाने पर लगभग चार सौ वर्ष तक गुरु शिष्य परम्परा मे मौखिक चलता रहा तदनंतर स्मृतिकी निर्बलता देखकर श्री धरसेनाचार्य ने वीर वाणी को लिपिबद्ध करना उचित समझा तदनुसार उन्हों ने वेणाक नदी के किनारे ठहरे हुए मुनि संघमें से पुष्पदंत भूतबली नामक दो तीक्ष्ण बुद्धि शिष्यों को पास बुलाकर उन्हें उपस्थित जैन सिद्धान्त पढ़ाया। उन दोनों साधुओंने विक्रम संवत से पहले मौखिक जैन सिद्धान्त को जेठ सुदी पंचमी के शुभ दिन लिपिबद्ध किया तभी से शास्त्र रचना की परिपाटी चल पड़ी और जैन ऋषियों ने अपना उपयोगी समय भविष्य जैन जनता का उपकार करने के लिये शास्त्र लिखने में लगाया जिस से कि आज हमको अगणित ग्रंथरत्न स्वाध्याय के लिये प्राप्त हो रहे हैं।

जैन समाज आज उन सुरभित पुष्पोंको अलमारीमें बंद करके न स्वयं लाभ उठा रहा है और न अजैन जनता को लाभ उठाने देता है। श्रुतपंचमी का उत्सव हमको नागौर आदि स्थानों के भंडारों को खुलवाकर सफल करना चाहिये।

उठाया अन्यथा आपको मालूम हो जाना चाहिये कि जब २ भी यह प्रश्न उपस्थित हुआ है संघ ने तब २ ही अपना अभिमत प्रकाशित कर दिया है। पिछली बातों को तो जाने दीजियेगा अभी भी दर्शन के १६वें अंकमें इसका स्पष्टीकरण कर दिया गया है। इससे

(शेष टाइटल के तीसरे पेज में)

समाचार

श्री स्याद्वाद महाविद्यालय काशी।

—जैनगजट अंक २२ तारीख २४ अप्रेल १९३५ में पृष्ठ ६ पर "स्याद्वाद विद्यालय" शीर्षक एक लेख "विजयकीर्ति शास्त्री" के नाम से प्रकाशित हुआ है। इसमें लिखे हुये सब संवाद झूठे मानहानि कारक तथा केवल विद्यालय को बदनाम करने के लिये प्रकाशित किये गये हैं। और जब तक उस लेख की जिम्मेदारी कोई न ले उसका विशेष प्रतिवाद करना भी उसको आवश्यकता से अधिक महत्व देना है। क्योंकि विजयकीर्ति शास्त्री के पत्र से मालूम होता है कि उन्होंने वह लेख नहीं लिखा है। जैन-गजट के सम्पादक तथा प्रकाशक को भी बिना अच्छी तरह समझे बूझे इस तरह के समाचार प्रकाशित करना उचित नहीं है।

हर्षचंद्र जैन
बी० ए० एल० एल० बी०
उप-अधिष्ठाता।

—असत्य समाचार—२८ अप्रैल के अर्जुनमें जो यह समाचार प्रकाशित हुआ था कि सिरई जी के मंदिरपर परवारों ने सशस्त्र होकर चढ़ाई कर दी और गोलियां चलाकर पुजारियों को धमकाया। यह समाचार सर्वथा असत्य है किसी स्वार्थी मनचले ने छपाया है। इस विषय में श्रीमान जयराम जी बीना (इटावा) का एक लेख आया है यदि स्थान मिला तो दर्शन के अग्रिम अंक में उसे प्रकाशित कर दिया जायगा।

आवश्यकता—श्री दि० जैन जम्बू विद्यालय सहारनपुर के लिये योग्य सदाचारी १० छात्रों की आवश्यकता है जिन छात्रों को प्रविष्ट होना हो वे प्रवेश फार्म मंगाकर उसको भरकर १० जून तक भेज दें।

—श्री पन्नालाल दि० जैन विद्यालय फीरोजाबाद को हिन्दी तीसरी क्लास पास १५—२० छात्रों की आवश्यकता है।

मुफ्त—चेचक की औषध जिनको आवश्यक हो वे नीचे लिखे पते से मंगा लेवें।

कविराज फूलचन्द्र जैन
सेमरा (आगरा)

—ललितपुर के सवाईसिंगई बिहारीलाल जी का का १४ मई को स्वर्गवास हो गया है उनके पुत्र खुशालचन्द्र जी जहां हों शीघ्र ललितपुर पहुंचें।

शोक

बंबई निवासी श्रीमान मान्यवर सेठ चुन्नीलाल जी हेमचन्द्र जरीवाले का ७१ वर्ष की आयु समाप्त कर स्वर्गवास हो गया है। आप एक धार्मिक सत्पुरुष थे। आपका जीवन सौभाग्यशाली जीवन रहा आपके ४—५ सुपुत्र हैं तथा पौत्र पौत्री आदि से अच्छा परिवार है। द्वितीय पुत्र श्रीमान बा० रतनचन्द्र जी बी० ए०, भा० दि० जैन तीर्थ कमेटी का महामंत्रित्व संचालन करते हैं। श्री जिनेन्द्र भक्ति आपको शान्तिलाभ करे ऐसी भावना है।

—संपादक

(३२ वें पेज का शेषांश)

पाठक समझ गये होंगे कि डाक्टर साहब ने हम पर आक्षेप करने में कितनी सत्यप्रियतासे काम लिया है। आशा है अभी न सही किन्तु आगाड़ी तो आप इसका अवश्य ध्यान रक्खेंगे।

निवेदक—
राजेन्द्रकुमार

REGD .N. L. 3459.

अजितकुमार जैन के प्रबन्ध से "अकलंक प्रिन्टिङ्ग प्रेस, मुलतान में छपकर प्रकाशित हुआ।

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर
जैनशास्त्रार्थ संघ का
पाक्षिक मुख-पत्र

जैन दर्शन

अंक २३

वर्ष २

सम्पादक—

पं० चैनसुखदास जैन न्यायतीर्थ,
जयपुर।

पं० अजितकुमार शास्त्री मुलतान।

पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री बनारस।

वार्षिक ३) एकप्रति ≡)

ज्येष्ठ सुदी १५ रविवार
१६ जून-१९३५ ई०

धन्यवाद

श्रीमान ला० तिलोकचन्द्र जी (मुलतान) के सुपुत्र प्रेमचन्द्र का विवाह संस्कार जैनविधि अनुसार हुआ। आपने इस अवसर पर ५) जैनदर्शन के सहायतार्थ प्रदान किये एतदर्थ आपको धन्यवाद है। —व्यवस्थापक

हर्ष और शोक

क्वेटा में श्रीमान ला० पद्मचन्द्र जी जैन व्यापार करते थे। आपकी वहां पर बिसातखाने की दो दूकानें थीं। व्यापारी मंडल में आप आदरणीय समझे जाते थे गत ३० मई की रात को जो भयानक भूचाल आया था उसमें आपका समस्त परिवार मकान के गिरने से छत के तले दब गया। किन्तु उनका लघु पुत्र चि० जयकुमार बाहर निकल आया था उसी की सहायता से समस्त परिवार जीवित बाहर निकल आया। पद्मचन्द्र जी घायल होगये थे उन्होंने 'मोक्षमार्ग-प्रकाश' ग्रन्थ सुनने की इच्छा प्रगट की। किन्तु वह तो मकान के मलबे में अन्दर दब गया था। परन्तु अचानक ५-७ मिनट पीछे चौकी पर रक्खा हुआ वह ग्रन्थ अपने आप बाहर आगया। जिसको उन्होंने कुछ देर प्रेम से सुना।

पद्मचन्द्र जी उस भयानक विपत्ति से तो बच गये परन्तु फिर बीमार होगये और तीन दिन पश्चात समाधिमरण पूर्वक स्वर्ग यात्रा कर गये। अब उनका समस्त परिवार अपनी सारी सम्पत्ति भूकम्प के हवाले करके खाली हाथ मुल्तान आगया है।

जैन समाचार

संघ के नवीन सभापति

कुछ दिनों से संघ की कार्यकारिणी में सभापति का स्थान खाली था। अब कार्यकारिणी द्वारा राय-साहिब ला० नेमिदास जी जैन शिमला इस पद के लिये चुने गये हैं। हर्ष की बात है कि आपने भी यह सेवाभाव स्वीकार कर लिया है।

प्रधान मंत्री—

भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ, अम्बाला छावनी।

रायबहादुर व रायसाहब

—ता० ३० जून को सम्राट की खुशी में सेठ कन्हैयालाल भंडारी को रायबहादुर व ला० जोगी दास वकील करनाल को रायसाहिब का पद मिला है।

—भा० दि० जैन विद्यालय फिरोजाबाद के प्रचारक पं० रामस्वरूप जी तथा पण्डित हरिप्रसाद जी ने ता० २३ से ३१ मई तक नगला सिकन्दर, मुहम्मदी, आलमपुर, आदि गांवों में भिन्न २ भ्रमण किया। फल स्वरूप सम्पूर्ण पञ्चायतों ने इस विद्यालय के प्रति सहानुभूति बताई है करीब २० नये छात्र आने वाले हैं। पद्मावती पुरवाल भाइयों ने विवाहादि के समय १०) सैकड़ा सहायता देना स्वीकार किया है। —मंत्री

श्री दि० जैन पाठशाला जयपुर का राज्यकीय धार्मिक परीक्षा फल

सदा की भांति इस वर्ष भी श्री दि० जैन महा पाठशाला से जयपुर राज्यकीय परीक्षाओं में आठ छात्र (जैन दर्शन शास्त्री में एक, जैनदर्शनोपाध्यायमें दो और शास्त्र प्रवेशिका में पाँच) सम्मिलित हुये। उनमें सात छात्र उत्तीर्ण हुये।

जैन दर्शन शास्त्री में घासीलाल जी सोनी(श्रीप्रकाश)
जैन दर्शनोपाध्यायमें छिगनलाल सेठी
शास्त्र प्रवेशिका में—सागरमल छोलिया
" प्यारेलाल बाकलीवाल
" बाबूलाल गेंडाका
" पूनमचन्द छाबड़ा
" गुलाबचन्द गोधा

शेष विद्यार्थियों की परीक्षा का विवरण रिपोर्ट सालाना में प्रकाशित होगा।

कस्तूरचन्द्र साह
मंत्री श्री दिगम्बर जैन महा पाठशाला जयपुर

जैन अध्यापिका की आवश्यकता

श्री १०५ धर्मवती जैन कन्या पाठशाला सिकन्द्राबाद यू: पी के वास्ते एक धार्मिक शिक्षा देने वाली अध्यापिका जो कन्याओं को सीना बुनना आदि काम भी सिखाये शीघ्र दरख्वास्त आनी चाहिये निम्न पते पर दरख्वास्त में सनद की बाबत भी तहरीर हो अध्यापिका जी अपना पता ठीक लिखें सूचना शीघ्र दें वेतन २०) रु० माहवार रहने को मकान तक दे सकते हैं। —उत्तराभिलाषी

मन्त्री—ला० बालस्वरूप जी जैन कन्या पाठशाला सिकन्द्राबाद (बुलन्द शहर) स्टेशन दनकौर E.I.R. यू: पी.

छात्र, छात्राओं को सूचना

श्री गुलाबबाई जैन महिलाश्रम तथा शिखरचन्द जी जैन विद्यालय के लिए १० छात्र १० छात्राओं की आवश्यकता है प्रार्थना पत्र शीघ्र भेजें। विशेष महिलाश्रम में इस वर्ष ६ छात्राओं ने प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रवेशिका परीक्षा में तथा मुंबई में सागार धर्मामृत में परीक्षा दी है तथा विद्यालय में इस वर्ष से आयुर्वेदिक तथा मुनीमी का शिक्षण अनिवार्य रूप से प्रवेशिका परीक्षा में उत्तीर्ण छात्रों को प्रारम्भ कर दिया जावेगा और बाल बोध के छात्रों के लिए टेलरिंग क्लास पुनः प्रारम्भ करने का विचार कर रहे हैं।

सिवनी, सी. पी. — बिरधीचन्द्र मन्त्री

अकलङ्कदेवाय नमः

श्री जैनदर्शनमिति प्रथितोग्ररश्मिर्भ्भ्रीभवन्निखिलदर्शनपक्षदोषः
स्याद्वादभानुकलितो बुधचक्रवन्द्यो भिन्द्यात्तमो विमतिजं विजयाय भूयात्

वर्ष २ | श्री ज्येष्ठ सुदी १५—रविवार श्री वीर सं० २४६१ | अङ्क २३

संयत जीवन

अहो शान्ति का रत्नागार।

(१)

सद् विवेक तटिनी के तट पर—
पारिजात सम, जीवन पट पर-
बन सुन्दर प्रतिबिम्ब सदा तन
करता है पावन परिवर्तन
मानव जीवन का तू सार।
अहो शान्ति का रत्नागार।

(२)

कान्ति विवर्तन निर्मित तन तू
शुद्ध सत्व सम्राट सदन तू
क्षोभ हीन जगती पर रहता
विश्वाक्रमण सदा तू सहता
विषय वासनाओं से तेरी
कभी न होती हार।

(३)

प्रलय निलय में सदन बनाकर
संहृति में उत्पाद सजा कर
ध्रुवता को निज लक्ष्य बनाता
विश्व प्रेम का गाना गाता
स्वार्थ तुच्छता हृदय कलुषता
का करके संहार।

(३)

संयम के सर्वोच्च शिखर पर
अचलासन को लगा, शिशिरकर
की किरणों को कर लज्जित तू
शान्ति प्रभा से बन सज्जित तू
स्वात्मस्थित चिन्मय हो जाता
सारा भार उतार।

—चैनसुखदास जैन

निमित्त ज्ञान के भेद

ले०— श्री० पं० भवरलाल जी जैन न्यायतीर्थ
(पूर्व प्रकाशित से आगे)

पांचवां भेद 'व्यञ्जन' है। शरीर पर तिल, मसा, लहसन आदि चिन्हों को देख कर जो फल बतलाया जाता है वह व्यञ्जन विद्या कहलाती है। यह विद्या भी एक शरीर से ही सम्बन्ध रखती है। मस्तक, मुख ग्रीवा आदि स्थानों पर ये चिन्ह होते हैं। इस सम्बन्ध में कई शरीरशास्त्र के विद्वानों का यह भी कहना है कि ये उपर्युक्त चिन्ह तो शरीर विकार मात्र हैं इन से भविष्य फल के जान लेने का क्या सम्बन्ध है? पर इस विद्या के जानने वाले लोग तिल आदि चिन्हों को देखकर जो बातें बतलाते हैं वे बहुधा सच्ची निकलती हैं। हाँ यदि ये चिन्ह शरीर पर बहुत अधिक संख्या में हों तो उनका कोई फल नहीं होता। मैंने ऐसे कई मनुष्यों को देखा है जिनके शरीर पर हजारों की संख्या में तिल थे। निःसन्देह ऐसे संख्या हीन तिल आदि लक्षण भविष्य के सूचक नहीं हो सकते। व्यञ्जन विद्या के अनुसार यदि दाहिनी जंघा पर तिल हो तो शत्रु माना जाता है। दाहिने हाथ की हथेली के बीच का तिल भी अच्छा माना गया है। यही बात लहसन मसों के सम्बन्ध में भी कही जाती है।

छठा भेद 'लक्षण' है। हाथ की रेखा आदि देख कर फल बतलाने को लक्षण नामक निमित्त ज्ञान कहते हैं। रेखाओं के अतिरिक्त हाथ पर वृक्ष साँथिया कलशादिक के चिन्ह भी होते हैं। इस विद्या को हस्त विज्ञान अथवा सामुद्रिक भी कहते हैं। इस समय पाश्चात्य विद्वान इस विषय में बड़े बड़े ग्रन्थ लिख रहे हैं। एक "कैरो" नामक विद्वान ने इस सम्बन्ध में कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं। भारतीय और पाश्चात्य सामुद्रिक में बहुत कुछ मत भेद है। हथेली की जिस रेखा को भारतीय सामुद्रिकोंने आयु की रेखा बतलाया है उसी को पाश्चात्य विद्वान Heart line अर्थात् हृदय रेखा कहते हैं। इस से मनुष्य के प्रेम आकर्षण आदि की शक्ति का पता लगता है। इसी तरह माता पिता की रेखाओं तथा बुद्धि रेखा आदि के सम्बन्ध में भी मत भेद है। प्राचीन सामुद्रिक विद्या विशारदों ने पुरुषका दाहिना और स्त्री का बायां हाथ देखना बताया है, परन्तु इस समय के विद्वान इस बातको नहीं मानते। वे स्त्री अथवा पुरुष के दोनों ही हाथोंको आवश्यकतानुसार देखना जरूरी समझते हैं। इस सामुद्रिक शास्त्र की बहुत सी बातें सच निकलती हैं पर लोगों का कहना है कि गर्भावस्था में बच्चे की मुट्ठी बंधी हुई रहने के कारण जो रेखाएं पड़ जाती हैं उनका जीवनकी घटनाओं के साथ क्या सम्बन्ध है? इस प्रश्नके उत्तर में सामुद्रिक विद्वान जो कहते हैं उससे वास्तविक संतोष नहीं होता। पर यह बात मान लेना ही पड़ेगी कि मनुष्य शरीर का हस्त एक प्रधान अंग है क्योंकि मनुष्य अपने प्रत्येक कार्य हाथ से करता है रेखायें चाहे कैसे ही क्यों न बनी हों उनका जीवन की घटनाओं के साथ कोई सम्बन्ध अवश्य होगा। इस सामुद्रिक विद्या के सम्बन्ध में एक दो प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ मेरे देखने में आये हैं पर दुःख है कि उनमें वर्तमान

पाश्चात्य विद्वानों के ग्रन्थों के समान रेखाओं पर विशद विवेचन नहीं मिलता। वृक्ष सांथिया कलश आदि चिन्ह तो किसी भी हाथ पर दिखाई नहीं देते केवल रेखायें ही दिखती हैं। विद्वानों ने हाथों पर इन चिन्हों को नहीं माना। हाथ के अंगूठे के बीच में जो यवाकार १ चिन्ह होता है उसको सभी विद्वानों ने शुभ माना है ऐसे ही अन्य कई बातोंमें मतैक्य और मतभेद पाया जाता है। इस विद्याका थोड़ा बहुत ज्ञान हर एक स्त्री पुरुष को हो तो अच्छा है। बहुत से धूर्त स्त्री, बच्चों और भोले पुरुषों के हाथ देखकर पैसे पेंठ लेते हैं। कुछ इधर उधर की झूठी सच्ची बातें मिलाकर अपना मतलब गाँठना ही उन का ध्येय होता है। ऐसे लोगों से बचना चाहिये।

सातवां भेद 'छिन्न' है। छिन्न का अर्थ कटा हुआ है। वस्त्र, शस्त्र छत्र, जूता, भोजन और शयनादि वस्तुओं को देव, मनुष्य राक्षसादि कृत विभाग के द्वारा वा शस्त्र और मूषिकादि द्वारा छिदना देख कर त्रिकाल सम्बन्धी सुख दुःख, हित अहित आदि का ज्ञान लेना छिन्न नाम का निमित्त ज्ञान है। कई वृद्ध स्त्रियां चूहों के द्वारा कटे हुए वस्त्रों को देखकर भविष्य की घटनाओं के सम्बन्ध में संकेत कर दिया करती हैं। कभी कभी ऐसे संकेत सच भी निकल जाते हैं। इस विद्या का प्रतिपादन करने वाला कोई ग्रन्थ हमारे देखनेमें नहीं आया। शायद इस विषय पर बहुत कम ग्रन्थ लिखे गये हैं। चूहे आदि के द्वारा वस्त्रादि के कटने का जीवन की घटनाओं के साथ क्या सम्बन्ध है? यह बात यकायक समझ में नहीं आती। पर यदि कोई सम्बन्ध न होता तो इसको निमित्त ज्ञान कैसे कहा जाता। इस विषय पर अभी पाश्चात्य विद्वानोंका ध्यान नहीं गया है और भारतीय विद्वान भी कदाचित् इस सम्बन्ध में अधिक नहीं जानते। जैनों के विद्यानुवाद नामक पूर्व में इस विषय का वर्णन होना सम्भव है।

आठवां भेद स्वप्न है। जब बाह्य इन्द्रियां अपना काम करना बन्द कर देती हैं और मन भी बाहर से सम्बन्ध तोड़ कर अन्दर हृदय में निश्चल ठहरता है उस समय पूर्वानुभूत पदार्थों के संस्कार के वश से जो प्रत्यक्षाकार ज्ञान होता है वह स्वप्न कहलाता है। स्वप्नों के द्वारा भावि घटनाओं को जान लेना स्वप्न नामक निमित्त ज्ञान कहलाता है। पर यह याद रखना चाहिये कि सभी स्वप्न भविष्य घटनाओं के द्योतक नहीं होते। अधिकांश स्वप्न तो बिलकुल झूठे होते हैं।

स्वप्न तीन कारणों से उत्पन्न होते हैं—संस्कार के वेगसे, धातु दोष से और अदृष्ट (पुण्य पाप) से। इस तरह कारण की अपेक्षा से स्वप्नों के संस्कार जन्य, धातु दोष जन्य और अदृष्ट जन्य तीन भेद हो जाते हैं। जब कोई कामासक्त व क्रोधी पुरुष कामिनी व शत्रु का तीव्र वेग से चिन्तवन करता हुआ सो जाता है तो वह उस की जागृत अवस्था का चिन्तवन शयनावस्था में प्रत्यक्षाकार हो जाता है। चिन्ता का वह पहले वाला क्रम छूटता नहीं वैसे ही बना रहता है। एक युद्ध भूमि स्थित योद्धा को प्रायः युद्ध के ही स्वप्न आवेंगे। कभी २ बहुत से योद्धा सोते

---

१ अंगुष्ठोदरमध्यस्तु यवो यस्य विराजते।
उत्पन्नभक्ष्यभोगी स्यात्स नरः सुखमेधते।

अर्थात्—जिसके अंगूठे के बीचमें जौ का चिन्ह होता है वह अपने हाथों से धनोपार्जन कर सुख को प्राप्त होता है।

हुये यकायक उठ कर लड़ने के लिए तैय्यार हो जाते हैं और शत्रुओं को ललकारने लगते हैं। ऐसे स्वप्न मिथ्याज्ञान हैं। सत्यता के साथ इनका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। कामी पुरुष स्वप्नमें अपनी प्रेमिकाओं को देखकर अधीर हो उठता है। ऐसे ही भय, शोक हास्य, जुगुप्सा, रति, अरति आदि वासनाओं के सम्बन्ध से जो स्वप्न उत्पन्न होते हैं वे संस्कार जन्य स्वप्न कहलाते हैं।

धातु के दोष से उत्पन्न होने वाले स्वप्न धातु-जन्य कहलाते हैं। मनुष्य में तीन तरह की प्रकृतियां होती हैं वात प्रकृति, पित्त प्रकृति और कफ प्रकृति। कफ प्रकृति वाला पुरुष स्वप्न में नदी, समुद्र और बर्फ के पर्वतों को देखता है। वात प्रकृति वाला आकाश में उड़ना आदि देखता है और पित्त प्रकृति वाला पुरुष अग्निप्रवेश, सोने के पर्वत, पानी, फूल अन्न, भोजन और रत्नों को स्वप्न में देखता है। इस प्रकृति वाला हरे, पीले और लाल रंग वाली वस्तुओं को अधिक देखा करता है। तमाम रात बाग बगीचों और फुवारों की सैर करता है। पहाड़ पर चढ़ना, वृक्षों के शिखर पर जा बैठना, मकान के ठीक ऊपर जाकर गिर जाना, कूदना, फांदना सवारी पर चढ़ कर हवा खाने को जाना आदि सब बातें वायु-प्रकृति वाला देखता है। ये सब स्वप्न असत्य होते हैं: क्योंकि वात पित्त कफ के विकार ही इन स्वप्नों के कारण हैं। ऐसे स्वप्नों पर हमें बिलकुल विश्वास नहीं करना चाहिये। स्वप्न का तीसरा भेद अदृष्ट जन्य है। उपर्युक्त दोनों कारणों के न होने पर भी जो स्वप्न आते हैं वे अदृष्टजन्य कहलायेंगे। भगवान तीर्थंकर की माता को जो स्वप्न आते हैं वे अदृष्ट जन्य होते हैं। भरत चक्रवर्ती और राजा चन्द्रगुप्त को जो स्वप्न आये थे वे अदृष्ट जन्य थे। केवल ऐसे स्वप्नों का ही भविष्य घटनाओं से सम्बन्ध रहता है। तीर्थंकर भगवान के पिता इन स्वप्नों को सुन कर तत्काल कह देते हैं कि तुम्हारे गर्भ में तीर्थंकर का जीव आया है। ऐसे ही चक्रवर्ती, नारायण, प्रति नारायण बलभद्र, कामदेव आदि की माताओं को भी उनके पुत्रोत्पत्ति के सूचक अदृष्टजन्य स्वप्न आया करते हैं। वर्तमान में भी बहुतसी माताओं को सन्तानोत्पत्ति के द्योतक स्वप्न आया करते हैं। बहुत से स्वप्न ऐसे भी हैं जिस से मनुष्य को मृत्यु की सूचना मिल जाती है। एक बार एक आदमी ने रात्रि के अन्तिम प्रहर में अपने को ऊंट पर चढ़ कर दक्षिण दिशा में जाते हुए देखा था। इस का फल यह हुआ कि वह आदमी छह महीने के भीतर ही मर गया। स्वप्न में भैंसा गधा, सूअर आदि पर चढ़ कर दक्षिण दिशा में स्वयं अपने आप को जाते हुए देखना अशुभ माना जाता है। स्वप्नों का पूरा वर्णन करनेके लिए एक विस्तृत लेख की आवश्यकता है इस लिए हम इस के सम्बन्ध में कुछ आवश्यक बातों का उल्लेख कर इस लेख को समाप्त करते हैं।

१- स्वप्न वह सच्चा होता है जो अदृष्टके प्रभाव से आया हो वह चाहे शुभहो अथवा अशुभ।

२- रात्रिके प्रथम प्रहरमें देखा हुआ स्वप्न बारह महीने में फल देता है, दूसरे में देखा हुआ नौ महीने में, तीसरे में देखा हुआ छह महीने में और चौथे पहर में देखा हुआ स्वप्न तीन महीने में फल देता है। किन्तु दो घड़ी रात बाकी रहने पर देखा हुआ स्वप्न दस दिन में और सूर्योदय के समय देखा हुआ उसी दिन फल देता है।

३- दिन में सोते हुए मनुष्य को जो स्वप्न आता है वह प्रायः असत्य ही होता है अर्थात उस का कुछ फल नहीं होता।

४- सुनी हुई और देखी हुई वस्तु का जो स्वप्न आता है वह भी असत्य होता है। शोक और चिन्ता के कारण आया हुआ स्वप्न भी सच्चा नहीं होता।

५- शुभ स्वप्न देख लेने पर यदि आंख खुल जावे तो फिर न सोना चाहिये, किन्तु यदि बुरा स्वप्न देखने के बाद निद्रा भंग हो जावे और रात अधिक बाकी हो तो फिर सो जाना चाहिये।

६- पहले अच्छा स्वप्न देखा हो और फिर बुरा तो अच्छे स्वप्न का फल मारा जायगा और बुरे स्वप्न का फल मिलेगा; क्योंकि बुरा स्वप्न पीछे आया है। इसी प्रकार यदि पहले स्वप्न बुरा स्वप्न देखा हो और फिर अच्छा तो फिर देखे हुए अच्छे स्वप्न का ही फल मिलेगा।

यह स्वप्नों के सम्बन्ध में कुछ खास खास बातें लिखी गई हैं। इन्हें याद रखने से स्वप्न विज्ञान की सत्यताओं को जानने में हमें कुछ सहायता मिल सकती है। यह बात भी याद रखना चाहिये कि यदि हमें बुरा स्वप्न आया हो तो उसके लिये चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है। मनुष्य अपने दृढ़ विचारों और बलवती इच्छाशक्ति से स्वप्नों के फल को बदल भी सकता है। जो आदमी आलसी, परिश्रम हीन व अपवित्र रहते है उन्हें बहुधा अधिक स्वप्न आया करते हैं। स्वप्न गहरी नींद न आने का नतीजा है इस लिये मनुष्य को परिश्रमी बनने के साथ साथ साफ और स्वच्छ भी रहना चाहिये जिससे रात्रि के समय व्यर्थ स्वप्न न आवें।

कहीं कहीं निमित्त के इन आठ भेदों में छिन्न नामक भेद न गिनाकर 'उत्पात' १ नामक भेद को गिनाया है। उल्कापात आदि आकस्मिक घटनाओं से सम्बन्ध रखने वाली विद्या को उत्पात विद्या कहते हैं। इस तरह संक्षेप से निमित्त ज्ञान के आठ भेदों को "दर्शन" के पाठकों के समक्ष उपस्थित किया है। यदि कभी समय और साधन मिला तो विस्तार से इसके प्रत्येक भेद पर विचार करेंगे।

---

१ अंगं स्वप्नं स्वरं चैव भौमं व्यञ्जनलक्षणे।
उत्पातमन्तरिक्षं च निमित्तं स्मृतमष्टधा॥

शिक्षोपयोगी मनोविज्ञान

(ले० श्रीमान बाबू विद्याप्रकाश जी काला एम, ए, बी, टी,)

पूर्व प्रकाशित से आगे

मस्तिष्क की बनावट

मस्तिष्क के चार भाग होते हैं—वृहत् मस्तिष्क Cerebrum लघु मस्तिष्क Cerebellum सुषुम्ना-शीर्षक Medulla oblongate और सेतु (Pons). सुषुम्ना शीर्षक सुषुम्नाका ऊपरी मोटा भाग समझना चाहिये जो कि सुषुम्ना को मस्तिष्क से मिलाता है। लघु मस्तिष्क उसके ऊपर के भाग को कहते हैं जो कि वृहत् मस्तिष्क के नीचे होता है। इसके बीच में एक गहरी दरार होती है जो कि इसे दो दाहिने और बायें भाग में बांटती है। इसका सारा धरातल खिंचा हुआ नहीं होता, उसमें बहुतसे परत रहते हैं। सेतु (Pons) उन नाड़ी सूत्रों से बना हुआ होता है जो कि लघु मस्तिष्क के दोनों भागों को मिलाते हैं। वृहत मस्तिष्क का मुख्य और सबसे बड़ा भाग होता है। यह वह बड़ा लोंदा है जोकि सबसे ऊपर खोपड़ी के भीतर रक्खा रहता है। इसके दो भाग होते हैं, एक दाहिना और दूसरा बांयाँ। इसके सारे धरातल में बहुत से परत होते हैं। परतों के सिवाय सारे धरातल में दरारें होती हैं। जैसे सुषुम्ना में सफेद और भूरे दो प्रकार के मसाले पाये जाते हैं उसी प्रकार मस्तिष्क में भी ये दो मसाले होते हैं। सुषुम्ना का भूरा मसाला मस्तिष्क तक फैलता हुआ पहुंच जाता है। सुषुम्ना शीर्षक में भूरा मसाला सुषुम्ना से बहुत अधिक होता है। वृहत मस्तिष्क का सारा धरातल भूरे मसाले से ढका हुआ रहता है। केवल ऊपर की सतह ही नहीं बल्कि सारी दरारें और परत इससे ढके रहते हैं। मस्तिष्क के ऊपर एक वेष्टन (चादर) होता है। इस चादर को वल्क (Cortese) कहते हैं। इस भूरे मसाले यानी वल्क चादर पर सारे सैल्स बिछे रहते हैं और उनमें से निकले हुये पुछल्लों से मिल कर सैल्स बिछे रहते हैं। और उनमें से निकले हुये पुछल्लों से मिल कर सैल्स का एक जाल सा बन जाता है, मस्तिष्क का सबसे उच्च कार्य इन्हीं वात कोष्ठों की आज्ञा से होता होता है। इन सैल्स की गणना करना कठिन है। मनुष्य के मस्तिष्क पर करीब २ तीन अरब सैल्स् होते हैं। मस्तिष्क पर इतनी दरारें हैं कि अगर उस चादर वल्क को खोल कर फैलाया जाये तो इस का क्षेत्र फल बड़ा होगा। अधिक दरारें होने ही के कारण इतने अधिक सैल्स् इसके अन्दर रहते हैं। जितना चतुर प्राणी होता है उतनी ही अधिक दरारें उसके मस्तिष्क पर होती हैं। बंदर और बन मानुष पर बहुत कम दरारें होती है। बंदर का मस्तिष्क मनुष्य के मस्तिष्क से छोटा भी होता है।

लघु मस्तिष्क Cerebellum

लघु मस्तिष्क देखने में बहुत बड़ा मालुम होता है और इस लिये इसका कार्य भी महान् होना चाहिये। इसके पूरे कार्य के बारे में अभी कोई निश्चय नहीं है। पर यह अवश्य कहना पड़ेगा कि इसका कार्य शरीर को साधना है। लघु मस्तिष्क पर फोड़ा आदि होने पर मनुष्य प्रायः लड़खड़ाता हुआ ही चलता है।

बृहत् मस्तिष्क Cerebrum.

उच्च कोटि के कार्य बृहत् मस्तिष्क के जरिये होते हैं। बृहत् मस्तिष्क ही उनको करने की आज्ञा है। सुनना, सूँघना देखना, स्वाद का पता लगाना इन सब कार्यों को करने के लियेबृहत् मस्तिष्क ही आज्ञा देता है। इन सब के वास्ते आज्ञा देने के लिये बल्क एर केन्द्र मौजूद है। अगर बृहत् मस्तिष्क में किसी भी प्रकार की खराबी आ जाती है तो मनुष्य अपने कार्यों को निर्विघ्नता पूर्वक नहीं कर सकता। बल्क के पृथक् २ कार्यों के लिये नियत हैं।

बच्चों का मस्तिष्क

बच्चों और बड़ों के मस्तिष्क की बनावट में फरक होता है बच्चे का सिर कुल शरीर की तुलना में सयाने पुरुष के सिर से बड़ा होता है। यदि केवल सिर का ही मुकाबला किया जाय तो आदमी का सिर बच्चेके सिरसे बड़ा निकलेगा। परन्तु यदि शरीर के लिहाज से देखा जाय तो बच्चे का सिर बड़ा मानना होगा। यही हाल मस्तिष्क का है। बचपन में मस्तिष्क बड़ी जल्दी बढ़ता है। पहले ६ महीने में कुल वृद्धि का $\frac{1}{2}$ भाग बढ़ता है फिर दूसरा $\frac{1}{3}$ भाग ३ वर्ष की आयु तक बढ़ जाता है और बाकी ८ अथवा ६ वर्ष तक पूरा होता है। बच्चे के बढ़ने के साथ मस्तिष्क केवल बड़ा ही नहीं होता किन्तु उसकी बनावट में भी कुछ अन्तर पड़ता जाता है। वातकोष्ठ की संख्या में वृद्धि नहीं होती। वे तो बचपन में उतने ही रहते हैं जितने बड़े होने पर। परन्तु बचपन में उनसे पुच्छले बहुत थोड़े ही निकले होते हैं और एक कोष्ठ के पुच्छले दूसरे से कम मिले रहते हैं। उनसे निकले पुच्छले बहुत होते हैं और एक दूसरे से मिलकर एक जालसा बना लेते हैं। जो कुछ बच्चा सीखता है उन सबसे पुच्छलों में वृद्धि होती जाती है। दौड़ना बोलना, लिखना, पढ़ना आदि नई बातों को सीखते रहना ही पुच्छलों का बढ़ाना है। और ज्यों २ नई बातें बच्चा सीखता जाता है-वैसे ही पुच्छलों का जाल अधिकाधिक बनता जाता है।

ज्यों २ आदमी क्रिया करता जाता है वैसे ही उसके मस्तिष्क की वृद्धि होती जाती है। बहुत थोड़े अन्तर के साथ बन्दर और मनुष्य के हाथों की बनावट एकसा है। आदमी अपने हाथों के जरिये बहुत बड़ा काम कर सकता—लेकिन बन्दर नहीं कर सकता। इसका यही कारण है कि मनुष्य के मस्तिष्क पर के कोष्ठ में से नये २ पुच्छले निकल सकते हैं और एक दूसरे से मिलकर आपस में असर डाल सकते हैं किंतु बन्दर के मस्तिष्क में यह नहीं होसकता।

चिन्तन शक्ति मापक यंत्र

वायुचालकों में जितने भी गुण होने चाहिये उनमें तत्काल सोचने की शक्ति सबसे प्रमुख है। इसलिये इस बात की परीक्षा करने के लिये अमेरिका में एक ऐसी मशीन का आविष्कार किया गया है। जिससे तुरन्त पता चल जाता है कि किस चालक (Pilot) में सोचने की शक्ति कितनी तीव्र है। चालक को एक यन्त्र पर लगी हुई कुर्सी पर बैठा दिया जाता है और सामने के शीशे पर वायुयानों के उड़ने की अनेक अवस्थायें रङ्गीन रोश नयों में प्रदर्शित की जाती हैं। विभिन्न अवस्थाओं को देखते समय चालक के मस्तिष्क में प्रतिक्रिया होती चलती है और यह प्रतिक्रिया स्वतः चलित क्रोनोग्राम

Chronograph) से लिख आती है। इसी से शक्ति की परीक्षा होजाती है।

मानसिक विचार और स्वास्थ्य

मनुष्य के मानसिक विचारों का उसके स्वास्थ्य और सौन्दर्य पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। शरीर से स्वस्थ होता हुआ भी प्राणी अगर मनसे स्वस्थ न हुआ और बराबर मानसिक पीड़ा पाता रहा तो वह अपना समस्त स्वास्थ्य खोकर कुरूप बन जायगा।

हमारे गालों पर की झुर्रियां, सूखे हुए होठ, धंसी हुई आंखे और चिपके हुये गालों के लिये अधिकाँशतः हमारे मानसिक विचार ही जिम्मेदार हैं। ऐसे बहुत से प्राणी हैं जो शरीर से पूर्ण स्वस्थ रहते हुये भी केवल मानसिक अस्वस्थता के कारण तन्मयता पूर्वक कार्य में नहीं लग सकते। उनकी आकृति बिगड़ जाती है। चेहरे पर सदैव हवाइयाँ उड़ती रहती हैं। आंखें धंसी और भौंहें खिची सी रहती हैं और इन सबका परिणाम यह होता है कि आदमी कुरूप होजाता है।

मानसिक विचारों का पाचन क्रिया पर भी बड़ा प्रभाव पड़ता है, अक्सर देखागया है कि जो लोग बराबर मानसिक चिंता में पड़े रहते हैं उनमें स्वाभाविक दुर्बलता आजाती है और बराबर बदहजमी की शिकायत बनी रहती है। अतएव सर्वांग सुन्दर और स्वस्थ बनने के लिये मानसिक विचारों को सुन्दर और स्वस्थ बनाने की बड़ी भारी जरूरत है।

बच्चों में शुद्ध और सुन्दर विचार पैदा करने के लिये अध्यापक को सर्वदा कोशिश करते रहना चाहिये। सुन्दर विचारों की पुस्तकें ही उनको अध्ययन करने के लिये दी जावें और जहां तक हो उनको ऐसे ही वातावरण में बैठने दिया जावे—कि जिससे उन के विचार सर्वदा शुद्ध और सुन्दर हों। लड़ाकू बदमाश, गुण्डे आदि पुरुषों की संगति से उनको हमेशा रोकते रहना बच्चों के हितैषी माता पिता व गुरु का कर्तव्य है। बच्चों को सर्वदा किसी न किसी प्रकार के कार्य में तल्लीन रखने से ही हम उनके विचारों को शुद्ध रख सकते हैं। कहावत मशहूर है कि An idle mind is a devets workshop सुस्त दिमाग बदमाशीका कारण होता है नये २ खेलों का आयोजन व उन खेलों से बच्चों को दिलचस्पी दिलाना अध्यापक का मुख्य कर्तव्य है। मैं ने देखा है कि बहुत से बच्चे जिनकोके खेलने व कार्य करने के साधन नहीं जुटे हैं वे पूर्ण बुद्धिमान व तन्दुरुस्त होने पर भी अपने भविष्य को सिर्फ सुस्ती की वजह से मानसिक विचारों से गन्दगी पैदा करने के कारण बिगाड़ बैठे हैं। और उनका जीवन हमेशा के लिये खराब हो गया है।

मनके तीन मुख्य व्यापार (Functions)

हमारे चित्त की वृत्तियां तीन विभागों में विभक्त की जाती जा सकती हैं। इन वृत्तियों को मनके तीन मुख्य व्यापार (Functions) कहतेहैं। इनके नाम हैं १ विकार (Feeling) २ ज्ञान (Cognition) और ३ संकल्प (Willing) है। वास्तविक मानसिक जीवन में ज्ञान विकार और संकल्प एक दूसरे से अलग नहीं। प्रत्येक मानसिक क्रिया में तीनों विद्यमान होते हैं—कभी कोई अधिक और कभी कोई न्यून—यथा राम एक लाइब्रेरी में खड़ा हुआ है और उसके सामने बहु संख्या में किताबें आलमारी में सजी पड़ी हैं। उसकी नजर H. G. wellsकी बनाई हुई एक किताब पर पड़ती है राम जानता है कि एच० जी० वेल्स एक शिक्षा पर लिखने वाले लेखक हैं। पर उस पुस्तक

देखकर लाईब्रेरियनके पास जाता है और पढ़नेके लिये किताब मांगता है—पुस्तक को घर पर लाता है और उसका अध्ययन करने लगता है। इस उदाहरण में मनके तीनों ही व्यापार (Functions) मौजूद है। किताब का जानना कि यह एच० जा० वेल्सकी बनाई हुई है—यह मन का व्यापार ज्ञान (Cognition) हुआ—पुस्तक को देखकर आनन्द का अनुभव करना विकार के व्यापार का होना है—पुस्तक को घर पर लाना अध्ययन करना संकल्प (Conation) है।

मनके प्रत्येक कार्यमें यह तीनों व्यापार मौजूद रहते हैं। लेकिन किसी किसी कार्य में यह एक दूसरे से ऐसे लगे हुये रहते हैं कि उनका अलहदा करना मुश्किल होता है। ऐसा भी देखा गया है कि किसी २ कार्य में सिर्फ एक ही व्यापार (Function) दृष्टि गोचर होता है बच्चा काली बिल्ली को देख कर भग रहा है। इस मन के कार्य में भी तीनों ही व्यापार मौजूद हैं। काली बिल्ली को देख कर पहिचानना ज्ञान (Cognition) का व्यापार है देख कर डरका अनुभव करना विकार (Affection) का व्यापार हुआ डर कर भग जाना संकल्प (Conation) हुआ। इस ही प्रकार प्रत्येक कार्यमें यह तीनों व्यापार ज्ञान विकार और संकल्प मौजूद रहते हैं। जबतक किसी बातका ज्ञान (Cognition) नहीं होता है तब तक विकार या रुचि (Affection) नहीं होती—और रुचि हुये बगैर प्रयत्न या संकल्प (Conation) नहीं होता। प्रयत्न के बिना ज्ञान नहीं और ज्ञान के बिना प्रयत्न नहीं। जब तक हमको एक विषय का अनुभव नहीं कि यहवस्तु सुखदायक है या दुःख दायक तब तक उसकी प्राप्ति और परिहार की इच्छा नहीं होती और इच्छा न होने से प्रयत्न नहीं होता। यद्यपि ये तीनों मन की क्रियाएं एक साथ रहती हैं तथापि वैज्ञानिक व्याख्या के लिये तीनों व्यापारों का वर्णन अलग २ किया जायगा सबसे पहले विकार (Affection or feeling) का वर्णन होगा।

विरोध परिहार

(ले०—पं० राजेन्द्रकुमार जैन न्यायतीर्थ)

आक्षेप १३—"प्रत्यक्षज्ञान और प्रत्यक्ष विषयता का साहचर्य सम्बन्ध नहीं यह कहना ठीक नहीं। ये परस्पर सापेक्ष हैं। एक के बिना दूसरा हो ही नहीं सकता, जिसे प्रत्यक्ष जानता है वही तो प्रत्यक्ष विषय कहलाता है। जहाँ प्रत्यक्ष नहीं वहां प्रत्यक्ष विषय कैसे बन जायगा? हां पदार्थ रहेगा किन्तु बिना किसी प्रत्यक्ष के वह प्रत्यक्षविषय न कहला सकेगा, इस लिये जब तक अनुमान और प्रत्यक्ष की व्याप्ति न बन सके तब तक अनुमान विषयता और प्रत्यक्ष विषयता की व्याप्ति कैसे बन सकती है? जब प्रत्यक्षके अभावमें अनुमान का होना आक्षेपकको स्वीकार है तब प्रत्यक्ष विषयता के अभाव में अनुमान विषयता हो सकती है यह भी स्वीकार करना पड़ेगा। इस लिये किसी के द्वारा अनुमेय हो इससे वह न तो अनुमान करने वाले के प्रत्यक्षका विषय सिद्ध हो सकता है, न दूसरे के प्रत्यक्ष का विषय; जिससे वह किसीके भी प्रत्यक्ष का विषय सिद्ध किया जा सके।"

परिहार १३—किसी को अनुमान से जानना ही उसकी अनुमान विषयता या अनुमेयत्व नहीं है किन्तु उसका अनुमान से जानसकना ही उसकी अनुमान विषयता या अनुमेयत्व है। वायु के रूप को या पर्वतीय अग्नि को हम भले ही अनुमान से नहीं जान रहे हैं किन्तु फिर भी ये अनुमेय हैं। इनको अभी अनुमान से न जानने पर भी कालान्तर में ये ही अनुमान से जाने जाते हैं। 'अनुमातुम योग्यं अनुमेयम्' अर्थात् जो अनुमान के योग्य है या यों कहिये कि जिनके सम्बन्ध में अनुमान हो सकता है वही अनुमेय है। किसी के सम्बन्ध में अनुमान का हो सकना और उसके संबंध में अनुमान का होना इनमें महान अन्तर है। पहिला उसप्रकार की योग्यता का सूचक है और दूसरा वैसी अवस्था का। पाठक समझगये होंगे कि सिर्फ वे ही पदार्थ अनुमेय नहीं हैं जिनके सम्बन्धमें अनुमान ज्ञान किया जा रहा है किन्तु वे भी अनुमेय हैं जिनको अनुमान से जाना भी जा सकता है चाहे अभी उनके सम्बन्धमें अनुमान किया जारहा हो, या न किया जा रहा हो।

जिसको अनुमान से जाना जा रहा है वही यदि अनुमेय होता तब तो किसी प्रकार अनुमान और अनुमेय या अनुमानविषयता में साहचर्य सम्बन्ध स्वीकार भी किया जा सकता था किन्तु अनुमेय या अनुमान विषयता में तो उन पदार्थों का भी समावेश है जो कि अनुमान से जाने भी जा सकते हैं तथा इस के लिये यह कोई जरूरी बात नहीं कि वे अभी अनुमान से जाने ही जा रहे हों। इससे प्रगट है कि अनुमान और अनुमेय में आक्षेपक का साहचर्य नियम बतलाना नितान्त भ्रम पूर्ण है।

यहीबात प्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष विषयताके सम्बन्धमें है। प्रत्यक्ष से जाने जाने वाले या जाने जा सकने वाले सभी पदार्थ प्रत्यक्ष विषयता की सीमा से बाहर नहीं हैं। अतः अनुमान और अनुमान विषयता के

समान प्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष विषयता में भी साहचर्य सम्बन्ध युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता।

प्रत्यक्ष और प्रत्यक्षविषयता इस ही प्रकार अनुमान और अनुमानविषयता में यदि साहचर्य सम्बन्ध होता तब तो प्रत्यक्ष और अनुमानके असमानकालभावित्व से प्रत्यक्ष विषयता और अनुमान विषयता के सम्बन्ध में भी यह बात उठाई जा सकती है किन्तु ऐसा है नहीं। इसको हम अभी ही स्पष्ट कर चुके हैं अतः इसके आधारसे भी प्रस्तुत व्याप्ति को त्रुटिपूर्ण स्वीकार नहीं किया जा सकता।

विरोध १४— पर्वत में अग्नि है, क्योंकि मेरे रसोई घर में धुवाँ निकल रहा है यहां पर व्यधिकरण होने से ही यह अनुमान ठीक नहीं माना जाता। यदि व्यधिकरण दोष न माना जाय तब तो जहां चाहें उसी वस्तुकी सिद्धि कीजायगी। इस प्रकार अनुमान कीउपयोगिता ही नष्ट होजायगी हाँ साध्य और साधन का जुदे २ स्थान पर रहना ही व्यधिकरण दोष नहीं है किन्तु जहां पर जुदा २ आधार होने से हेतु असिद्ध होता हो, उसकी व्याप्ति नष्ट होती हो वहीं पर यह दोष है। जैसा कि इस समाधान के प्रारम्भ में दिया है। आचार्य समन्तभद्र तथा अन्य आचार्यों के इस अनुमान में यह दोष भी है क्योंकि वे पदार्थ में जिस व्यक्ति की अपेक्षा से अनुमेयता मानते हैं उसी से प्रत्यक्षता नहीं मानते। ऊपर कहा जा चुका है कि विषयी के बिना विषय नहीं हो सकता। जब अनुमान और प्रत्यक्ष में वैयधिकरण है तब अनुमानविषयता और प्रत्यक्ष विषयता में भी यह दोष अवश्य है।

परिहार १४—हमने निम्नलिखित पंक्तियां लिखी थीं जिनके सम्बन्ध में आक्षेपक ने उपर्युक्त वाक्य लिखे हैं—"व्यधिकरण के सम्बन्ध में बात यह है कि प्रथम तो व्यधिकरण कोई दूषण ही नहीं। दूसरे यहां व्यधिकरण है भी नहीं। अनुमानविषयता किसी अन्य पदार्थ में होती और प्रत्यक्षविषयता किसी अन्य में तब तो व्यधिकरण की संभावना थी किन्तु यहां तो जिसमें प्रत्यक्षविषयता है उसीमें अनुमान विषयता है।

अब विचारणीय यह है कि क्या 'व्यधिकरण' दोष है? यदि हां, तो क्या वह प्रस्तुत व्याप्तिके सम्बन्ध में घटित होता है?

व्यधिकरण दूषण है या नहीं इस बात के निर्णय के लिये हमको दूर जाने की जरूरत नहीं। आक्षेपक के प्रस्तुत वक्तव्य के ही निम्नलिखित शब्द यथेष्ट हैं—

"साध्य और साधन का जुदे २ स्थान पर रहना ही व्यधिकरण दोष नहीं है किन्तु जहां पर जुदा २ आधार होने से हेतु असिद्ध हो, उसकी व्याप्ति नष्ट होती हो वहीं यह दोष है"।

आक्षेपक की प्रथम तो व्यधिकरण की उपर्युक्त परिभाषा ही भ्रमपूर्ण है। व्यधिकरण की यह परिभाषा किसी भी प्रसिद्ध दार्शनिक ने स्वीकार नहीं की है। व्यधिकरण को दोष मानने वाले और न मानने वाले दोनों ही प्रकार के दार्शनिकों ने साध्य और साधनका भिन्नाधिकरणवृत्तित्व ही व्यधिकरण माना है। आक्षेपक को जब व्यधिकरण की प्रचलित परिभाषा के अनुसार उसकी सदोषता में सन्देह हुआ तब उन्हों ने उसके "व्याप्ति नष्ट होती हो" यह विशेषण लगा दिया है। अतः उनकी यह केवल कल्पना मात्र है।

दूसरे यदि व्याप्ति का नाश ही दोष है तब तो यह भिन्नाधिकरणकी तरह अभिन्नाधिकरणमें भी तदवस्थ है। जिस प्रकार साध्य और साधन के भिन्नाधिकरण होने पर व्याप्तिनाश का नाम दूषण है उस ही प्रकार

अभिन्नाधिकरण की अवस्था में भी । इस ही प्रकार साध्य और साधन चाहे भिन्नाधिकरण हों या अभिन्नाधिकरण यदि व्याप्ति ठीक है तो सब काम ठीक है। इससे प्रगट है कि व्याप्ति की सदोषता या निर्दोषताके लिये साध्य और साधन का भिन्नाधिकरणवृत्तित्व और अभिन्नाधिकरणवृत्तित्व बिलकुल अप्रयोजनीभूत हैं। अतः व्यधिकरण को दूषण बतलाना युक्तियुक्त नहीं है।

पर्वत में अग्नि है क्योंकि मेरे रसोई घर में धुआं निकल रहा है यहां पर व्यधिकरण होने से ही यह अनुमान ठीक नहीं माना जाता" आक्षेपक का यह कहना भी नितान्त मिथ्या है। प्रस्तुत अनुमान में साध्य और साधन का भिन्नाधिकरणवृत्तित्व ही दूषणरूप नहीं है। यदि ऐसा ही होता तब तो मुहूर्त के बाद शकट नक्षत्र का उदय होगा क्योंकि अभी कृत्तिकाका उदय है इस अनुमान को भी सदोषी मानना पड़ता। साध्य और साधन का भिन्नाधिकरणवृत्तित्व तो इस अनुमान में भी है। अतः स्पष्ट है कि प्रस्तुत अनुमानमेंभी साध्य और साधनका भिन्नाधिकरणवृत्तित्व ही दूषण नहीं है किन्तु व्याप्तिका सदोषत्व ही। लेखक स्वयं भी इस को स्वीकार कर चुके हैं अतः इसके सम्बन्ध में विशेष विवेचन की आवश्यकता नहीं यदि व्यधिकरणको दोष न माना जावेगा तब तो जब चाहे जिस चाहे वस्तु की सिद्धि की जा सकेगी। इस प्रकार अनुमान की उपयोगिता ही नष्ट हो जायगी आक्षेपक के इन शब्दों को ही उनके इस वाक्य के सम्बन्ध में उपस्थित किया जा सकता है और वह निम्न प्रकार से—

यदि व्यधिकरण को दोष माना जावेगा तब तो पूर्वचर और उत्तरचर हेतुओं को भी सदोष करना पड़ेगा। इस प्रकार अनुमान की उपयोगिता ही नष्ट हो जावेगी। आक्षेपक ने अपने इन शब्दों का प्रयोग प्रतिज्ञा के रूप में एवं अस्पष्ट रूप से किया है यदि उन्होंने अपने इस ही भाव को स्पष्ट रूप से और सयुक्तिक ढंग से रक्खा होता तब तो इसके संबन्ध में और भी विशेष विचार किया जा सकता। उपर्युक्त विवेचन से प्रगट है कि व्यधिकरण को दूषण बतलाना युक्तियुक्त नहीं।

अभ्युपगमसिद्धान्त से इसको दूषण स्वीकार कर लेने पर भी यह प्रस्तुत व्याप्ति में घटित नहीं होता। इसका समाधान हम अपनी पहली लेख माला में कर चुके हैं तथा उसके आवश्यक अंश को हम इस ही लेख में उद्धृत कर चुके हैं।

आक्षेपक का इसके सम्बन्ध में अब यह कहना कि प्रत्यक्ष विषयता किसी एक की दृष्टि से है और अनुमानविषयता किसी अन्य की दृष्टि से; भी कुछ भी मतलब नहीं रखता। साध्य और साधन की भिन्नाधिकरणवृत्तित्व पर विचार करते समय केवल इतना ही देखना जरूरी है कि उनका भिन्नाधिकरणवृत्तित्व है या नहीं। यहां पर इस बात का देखना नितान्त अनुपयोगी है कि उनका साक्षात्कार कौन २ कर रहा है। इस विषय में यदि आक्षेपक की ही बात को मान लिया जाय और यही स्वीकार कर लिया जाय कि विवादस्थ अनुमान में अनुमानविषयता किसी एक के अनुमान की दृष्टि से है और प्रत्यक्षविषयता किसी अन्य के प्रत्यक्ष की दृष्टि से; तब भी तो यह प्रमाणित नहीं होता कि ये दोनों भिन्न२ अधिकरणमें रहती है। इस से तो केवल ज्ञाताओं में ही भेद डाला जा सकता है। अतः स्पष्ट है कि व्यधिकरण के सम्बन्ध में आक्षेपक का यह कथन भी युक्तियुक्त नहीं है।

अनुमान और प्रत्यक्ष के वैयधिकरण का प्रत्यक्ष-विषयता और अनुमान विषयता की व्याप्ति पर कुछ भी प्रभाव नहीं है इसका समर्थन हम परिहार नं० १३ में कर चुके हैं। अतः इसके सम्बन्ध में अब यहाँ लिखने की जरूरत नहीं है इन सब बातों के आधार से यह स्पष्ट है कि आचार्य समन्तभद्र के अनुमान में दरबारीलाल जी की दूसरी आपत्ति भी मिथ्या है।

विरोध १५—सब प्राणी समान हैं तो जितना एक जान सकेगा उतना दूसरा जान सकेगा। जिसे एक जानेगा उसे ही दूसरा न जानेगा सब प्राणी समान हैं एक नहीं।

परिहार १५—सब जीवों को समान तथा उनकी ज्ञान शक्ति को बराबर स्वीकार कर लेने पर तो यह बात अवश्य स्वीकार करनी पड़ेगी कि जिसको एक जानता है उस ही को दूसरा भी जान सकता है। या यों कहिये कि उसका जानना भी उसके ज्ञान की शक्ति के बाहर की बात नहीं है। उदाहरण के तौर पर यों समझिये कि तीन व्यक्ति हैं। इनमें से एक वैज्ञानिक दूसरा औपन्यासिक और तीसरा गणितज्ञ है। अपने २ विषय के ये तीनों ही असाधारण पण्डित हैं। वैज्ञानिक गणित और उपन्यास लेखनकला का असाधारण पंडित नहीं है। इस ही प्रकार अन्य दो भी अपने विषय से इतर विषयों के। ये तीनों ही ज्ञान की शक्ति की दृष्टि से समान हैं अतः हर एक में उसके विषय के अतिरिक्त अन्य दोनों विषयों के असाधारण पांडित्य का शक्ति भी माननी पड़ेगी। यह बात संसार के समस्त जीवों में घटित कर लेनी चाहिये। समानता के इस तर्क से जगत के प्रत्येक प्राणी का जगत के सम्पूर्ण पदार्थों के जानने की शक्ति वाला होना बिलकुल स्पष्ट है। इसका विशेष विवेचन हम अपने परिहार नं०४ में कर चुके हैं।

विरोध १६—अनेक अनुमान मिल कर भी सब पदार्थों को नहीं जान सकते यह बात युक्ति अनुभव तथा जैन शास्त्रों से भी सिद्ध है। अनुमान जिस ज्ञान का टुकड़ा है जब उसी में सब को जानने की शक्ति नहीं तब अनुमान कैसे जान सकता है। अनुमान कितने ही एकत्रित हो जांय परन्तु वे सब मति श्रुत के विषय के बाहर तो नहीं पहुंच सकते नय भी सब मिल कर सिर्फ श्रुत ज्ञान की जगह भर सकते हैं न कि प्रमाण मात्र की। नय श्रुत ज्ञान के विकल्प हैं।

परिहार १६—आक्षेपक ने हमारे पूर्व वक्तव्य पर विशेष ध्यान नहीं दिया। हम बतला चुके हैं कि मतिश्रुत ज्ञान का विषय अनन्त पदार्थ नहीं हैं यह कथन एक प्रति ज्ञान या श्रुत ज्ञान की दृष्टि से है। यदि जगत के समस्त प्राणियों की दृष्टि से इसही बात का विवेचन किया जाय तब यही बात असंगत ठहरती है। उनकी दृष्टि से तो मति और श्रुत ज्ञान के विषय अनंतपदार्थ ही ठहरते हैं। यही बात एक अनुमान और समस्त अनुमानोंकी दृष्टि भेदकी है। प्रस्तुत अनुमानमें विचारणीय बात अनुमान विषयता है। यह एक अनुमान या समस्त अनुमान किसी भी दृष्टिसे स्वीकार की जासकती है। यहां यह बात नितान्त अनुपयोगी है कि यह अनुमान विषयता अमुक अनुमानकी ही दृष्टि से आनी चाहिये।

मति ज्ञान और श्रुत ज्ञान का विषय भी इतना विशाल है कि इसमें किसी भी ज्ञेय का समावेश किया जासकता है। अवधि, मनपर्यय और केवल ज्ञान के ज्ञेय भी इनकी सीमाके बाहर नहीं हैं। जिससमय उक्त तीनों ज्ञान धारी अपने २ ज्ञानों के ज्ञेयों को

शब्द द्वारा प्रतिपादन करते हैं तब यह ही श्रोता के लिये श्रुत ज्ञान के विषय बन जाते हैं। अवधिज्ञानी किसी के भवान्तरों को और मनःपर्यय ज्ञानी दूसरे की मन की बात को भले ही इन ज्ञानों के द्वारा प्रत्यक्ष जानता हो किन्तु श्रुत ज्ञानी इनके शब्दों के द्वारा इनही बातों को अपने श्रुत ज्ञान से ही जान लेता है। यही बात प्रत्यक्ष ज्ञानों के अन्य ज्ञेयों के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिये।

इससे स्पष्ट है कि जगत के किसी भी पदार्थ को श्रुत ज्ञान या अनुमानकी सीमाके बाहर बतलाना युक्तियुक्त नहीं। उपर्युक्त विवेचन से प्रगट है कि आचार्य समन्तभद्र के अनुमान के सम्बन्ध में दरबारीलाल जी के चारों ही आक्षेप निःसार हैं।

'आँख का वैज्ञानिक विश्लेषण'

(ले० श्रीमान बाबू सूरजमल जी जैन)

वैसे तो संसार का प्रत्येक पदार्थ साधारणतया अपने २ स्थानपर विशेषता रखता है किन्तु कई पदार्थ ऐसे भी हैं जिनके बिना हमारा जीवन स्वयं अपने और पर के लिये भी भार स्वरूप बन जाता है। प्राणी के शरीर में ऐसे पदार्थों में एक 'आंख' भी है।

संसार के सब धर्मशास्त्रियों ने मनुष्य को पंचेन्द्रिय माना है। इस पंचेन्द्रिय मनुष्य को सबसे अधिक जिस इंद्रिय की आवश्यकता है वह आँख है। चक्षु के द्वारा होने वाला प्रत्यक्ष प्रमाण अधिक से अधिक विश्वसनीय माना जाता है। प्रायः संसार के सारे व्यवहार भी इसी इन्द्रिय द्वारा सम्पन्न होते हैं। अंधे मनुष्य की पराधीनता को देख कर हम चक्षु-इन्द्रिय की महत्ता और अनुपमता का पता लगा सकते हैं। सृष्टि का मनोमोहिक सौन्दर्य आँखों के बिना कैसे देखा जा सकता है। सारांश में आँख के लिये हमें यह कहना चाहिये कि प्राणी जीवन में आंख एक प्रकाशमान दीपक और अनमोल रत्न है।

साधारण मनुष्य आँखों की इस विशेषता का अनुभव तो करता है पर इनके निर्माणमें जो वैज्ञानिक विशेषताएं हैं उनका ज्ञान हर एक आदमी को होना संभव नहीं। वैज्ञानिक विद्वान ही जान सकते हैं कि आँख क्या वस्तु है और उसके निर्माणकी विशेषताएं क्या हैं। इन बातों का जान लेना न केवल विद्वान के लिये ही अपितु सर्व साधारण के लिये भी परमोपयोगी है, क्योंकि हमारा ध्येय आँखों की रक्षा करना है और यह बातें जान लेने से नेत्रों के संरक्षण में बहुत कुछ सहायता मिलती है। इन्हीं सब बातों को विचार कर पाठकों के लिये हम आँखों का वैज्ञानिक विश्लेषण बतला रहे हैं।

आंख साधारणतया विचार करने से एक गोलाकार कोठरी (Chamber) सी है जिसके सामनेकी तरफ एक वृत्ताकार खिड़की है प्रकाश बाहर के पदार्थों

से किरणों के रूप में इसी खिड़की के द्वारा आंखों में प्रवेश करता है। इस कोठरी (Chamber) के पिछले भाग में अन्दर की तरफ उन पदार्थों का असली प्रतिबिम्ब बन जाता है।

जैनों को छोड़ कर भारतके अन्य प्राचीन दार्शनिकों ने यह माना है कि आंख पदार्थों पर अपनी किरणें फैंकती है तब हम उनको जानते हैं। उनका कहना यह है कि आँख एक तेजोमय वस्तु है। जिस तरह से अन्य तेज वाले पदार्थों की किरणें होती हैं वैसे आँखों में भी किरणें हैं या आंखों को तैजस न माना जावे तो पदार्थों का ज्ञान कैसे होगा। जिस तरह अन्य इन्द्रियां पदार्थ को छू कर उसे जानती हैं वैसे ही आँख भी अपनी किरणों द्वारा पदार्थ को छूती है। गौतम कणाद, व्यास, जैमिनी आदि सब जैनेतर प्राचीन दार्शनिकों का यह मत है।

इस सम्बन्ध में जैनों का कहना यह है कि न आँखें पदार्थ पर किरणें फैंकती हैं और न पदार्थ आखों पर, क्योंकि आखें अप्राप्यकारी हैं अर्थात् वे पदार्थ से छूकर उसका ज्ञान नहीं करातीं। जैन विद्वान आँखोंमें कोई किरण भी नहीं मानते। गौतम, कणादके समान इन्होंने आंखोंको प्राप्यकारी नहीं माना। इस सम्बन्ध में जैनों के दार्शनिक ग्रन्थों में बहुत कुछ वाद विवाद किया गया है।

इन दोनों प्राचीन मान्यताओं के अतिरिक्त तीसरी कोई बात हमारे देखने में नहीं आई। वर्तमान विज्ञान इन दोनों ही मान्यताओं को नहीं मानता। इसके अनुसार जैसा कि हमने पहले कहा है पदार्थ आँखों पर प्रकाश फैंकते हैं और तब आंखें पदार्थ को जानती हैं। अस्तु।

आंखोंकी बाहरी सतह जो हमको सफेद सी दिखाई देती है यह Sclerotic (स्कलीरोटिक) कहलाती है यह एक घनी नसों से बनी हुई मांसपेशी है। आंखों का यह गोलाकार भाग करीब ⅚ वां हिस्सा अपारदर्शक ‡ (Opaque) है। सामने के भाग में यह ही Sclerotic (स्कलीरोटिक) पारदर्शक रूप (Transparent) परिणत हो जाता है जिसको कि Cornea (कोरनिया) † कहते हैं। Cornea (कोरनिया) Saclerotic (स्कलीरोटिक) की अपेक्षा ज्यादा उभरी हुआ है। ठीक Sclerotic (स्कलीरोटिक) के अन्दर की तरफ मांस तन्तुओं का ढकनसा है जिसके अन्दर की सतह में काली २ Cells फैली हुई हैं इसको Choroid (कोरायड) कहते हैं। जहाँ पर Sclerotic (स्कलीरोटिक) Cornea (कोरनिया) में परिणत होता है वहां ही पर Choroid (कोरायड) भी एक डियाफ्राम (Diaphragm) में बदल जाता है जिसे Iris (ईरिस) कहते हैं इसके मध्यमें एक वृत्ताकार छिद्र है जिसको Pupil (पुपिल) कहते हैं।

ठीक इस Iris (इरिस) के पीछे एक पारदर्शक कांच की शकल का पदार्थ है जिसको Crystalline lens (स्फटिक कांच) कहते हैं यह आंख की दीवारों से बिना सिकुड़ने वाली नसों से जोड़ा गया है वह Suspensory legament कहलाता है इस प्रकार आंख कांच (lens) और (Suspansry ligament) (सस्पेन्सरी लिगामिन्ट) से दो भागों में विभाजित की जाती है आगे का भाग जो (Cornea) कोरनिया और (lens) के बीच में है जल के समान द्रव पदार्थ से

---

† अपारदर्शक से मतलब यह है कि उस पदार्थ के अन्दर होकर प्रकाश की किरणें नहीं जा सकती हैं।

‡ कोरनिया आंख का वह गोलाकार बड़ा हिस्सा है कि जो काले रंग का है।

भरा हुआ है जिसके अन्दर थोड़ा साधारण नमक भी घुला हुआ है इसको (Aquous humour) अकस ह्यमर कहते हैं। पीछे के भाग में Vitreous humour नामक पदार्थ भरा हुआ है आँख की अंदर की सतह एक पारदर्शक झिल्ली (Membrane) से ढकी हुई है जिसके अन्दर एक प्रकार की नसों का जालसा और रक्त कुँडिया फैली हुईहैं इसको Retina रेटिना कहते हैं यह ही प्रकाश की किरणों के लिये चेतन हैं।

यहाँ तक यह बतला दिया गया है कि आंखों के विभिन्न भाग, उनके नाम व स्थान क्या हैं। अब यह बतलाया जाता है कि उनके क्या काम हैं :—

(Cornea) कोरनिया (Apuous humour) (अकस ह्यमर) Crystalline lens Viterous humour (विट्रयस हमर यह आँखों का उपर्युक्त भाग बनाते हैं। इनका काम बाहरी पदार्थों का असली] प्रति बिम्ब (Real Image) रेटिना (Ratena) पर बनाना है क्योंकि प्रतिबिम्ब (Image) असली (Real) है बीच में और कोई प्रति बिम्ब नहीं बनता हैं अतः यह प्रतिबिम्ब उल्टा (Invested) होता है (Iris) इरिस अनावश्यक प्रकाश को अन्दर आने से रोकता है रेटिना (Retina) प्रकाश के प्रभाव से नसों का उस पदार्थ के सदृश प्रतिबिम्ब बना देता है यह दिमाग (Brain) में नसों द्वारा पहुँच जाता है यह सीधा होता है। इस प्रकार पदार्थों को हम देखते हैं (Choroid) कोरायड की सतह अनावश्यक प्रकाश की किरणों को सोख लेती है इस प्रकार यह स्पष्ट प्रतिबिम्ब बनवाने में सहायक होती है।

आंखें नजदीक के और दूर के पदार्थों को साफ देख लेती हैं अर्थात दोनोंही तरफ के पदार्थों का प्रति- बिम्ब Retina (रेटिना) पर ही बनता है जब दूर के पदार्थों का प्रति बिम्ब (Image) Retina (रेटिना) पर बनता है तो पास के पदार्थों को इसके पीछे होना चाहिये परन्तु ऐसा नहीं होता है अतः आंख का कांच (lence) अपनी Tocal length को बदलनेकी शक्ति रखता है इस परिवर्तन को Accomodation (आकोमोडेशन) कहते हैं।

अब हम कमजोर आंखों (Defective eyes) का हाल बतलाते हुये इस लेख को यहाँ ही समाप्त करते हैं।

कमजोर आखें चार प्रकार की होती हैं।

Myopia:-इस प्रकार की आंखोंमें दूरके पदार्थों का समानान्तर किरणों द्वारा रेटिना (Retina) पर न बन कर उसके सामने प्रतिबिम्ब बनता है फलतः ऐसी आंखें दूर के पदार्थों को बहुत भद्दा और टेढ़ा देखती हैं। ऐसी आँखों वाला व्यक्ति साधारणतया दूर के पदार्थों को देखते समय अपनी आंखों को लगभग बन्द करके देखता है वह पास के पदार्थों को अच्छी तरह देखता है।

इसके विपरीत Hypermetropia में दूर के पदार्थों का प्रतिबिम्ब (Image) समानान्तर किरणों द्वारा रेटिना (Retina) के पीछे बनता है ऐसी आँखों वाला मनुष्य न तो पास के और न दूर के पदार्थों को बिना चश्मे की सहायता के साफ देख सकता है।

Astigmation :- इसमें भिन्न २ समतलों में भिन्न प्रभाव होता है ऐसा आदमी उदाहरण स्वरूप बराबर टहनियों को स्पष्ट रूप से देखता है परन्तु *खड़ी हुई शाखाओं को वह अस्पष्ट या बिल्कुल ही नहीं देखता है।*

आर्यसमाजियों की डबल गप्पाष्टक और श्रीराम आर्य

दूसरी गप्प की समालोचना की प्रत्यालोचना

दूसरी गप्प, गप्पलेखक के शब्दों में निम्न प्रकार है—

"हे मनुष्यो ....कोई विशेष पत्ती वा सारस चूतड़ों से पवन और सूर्य जांघों से प्राण और उदान परिपूर्ण चलने वाले प्राणियों से चाल तथा निचोड़ और स्थूल पदार्थों से बल को सिद्ध करना चाहिये"। यजुर्वेद अ० २५ मंत्र ६ दयानन्दभाष्य

प्रस्तुत मंत्र के उद्धृत वाक्यों की समालोचना करते हुये गप्पलेखक ने निम्नलिखित शब्द लिखे हैं—

"इस गप्प में स्वामी जी ने और भी कमाल कर दिखाया है संसार को प्रकाश देने वाले सूर्य की आपने जांघों से सिद्धि बतला दी सूर्य सरीखा विशाल पदार्थ न जाने किस महाशय की जांघों से सिद्ध हो सकता है? हमारे आर्यसमाजी भाई स्वामी जी की इस विलक्षण ऊटपटांग फिलासफी से अवश्य जानकार होंगे। वे अगर इस तरह सूर्य को जांघों से सिद्ध करने लगें तो कम से कम उनके घरों में तो कभी अन्धेरा न हो सकेगा। जहां अन्धेरा हुआ कि झट जांघों से सूर्य सिद्ध कर लिया। जांघें क्या हुई विशाल बिजली घर हो गया आशा है। स्वामी जीकी इस गप्प से प्रकाश करने के लिये बिजली गैस तेल आदि की जरूरत दूर हो जायगी"।

महाशय श्रीराम का कहना है कि यजुर्वेद के विवादस्थ मंत्रकी बात गप्प नहीं किन्तु एक वैज्ञानिक सत्य है। आपने इसके सम्बन्ध में आर्यमित्र अंक ३८ वर्ष ३७ में निम्नलिखित शब्द लिखे हैं—"आयुर्वेद का एक प्रयोग है कि यदि किसी व्यक्ति को सर्प डस ले तो मुर्गी की गुदा आस पास के बालों को उखाड़ कर उस स्थान को काटे हुए स्थान पर लगा दो। मुर्गी उसी गुदा के स्थानसे सारे विष को खींच लेती है और रोगी चंगा हो जाता है। इस प्रयोग में मुर्गी स्वयं तो मर जाती है परन्तु रोगी बच जाता है। वेद ने मुर्गी के स्थान पर सारस को इसी प्रकार प्रयोग में लाने की आज्ञा दी है। .... सूर्य सिद्धि का अर्थ यहां पर सूर्यकी विद्युत एवं आकर्षणशक्ति से है जो कि सारस की जांघों में विद्यमान होती है। जांघों तथा चूतड़ों के बालों के उखाड़ देने से वहां पर खून का दौरा वेग से होने लगता है। तथा वहां की गर्मी बढ़ जाती है। इस प्रकार ये दोनों सूर्य शक्तियां जाग्रत हो जाती हैं। इस प्रकार यहां पर सूर्यसिद्धि का यही तात्पर्य है कि सारस को सूर्य की इन शक्तियों को जाग्रत करके इस प्रकार काम में लावो"।

अब विचारणीय यह है कि क्या उपर्युक्त गप्प के संबन्ध में महाशय श्री राम का कथन युक्तियुक्त है। इस बात के निर्णय केलिये निम्न लिखित बातों पर प्रकाश डालने की आवश्यकता है—

१—क्या महाशय श्री राम का उपर्युक्त कथन

Aphapia :- इसमें Crystalline lens आंखों से हटा दिया जाता है।

चश्मा लगाने का उद्देश पदार्थों के प्रतिबिम्ब को Retina (रेटिना) पर बनाने का है और भिन्न २ मनुष्यों के लिये भिन्न focarl length के lens काम में लिये जाते हैं।

ठीक है। यदि हां तो उसका गप्प लेखक के कथन पर क्या प्रभाव है।

महाशय श्री राम ने अपने कथन में जितनी भी बातें लिखी हैं वे सब प्रतिज्ञा के ही रूप में लिखी हैं। जब तक आप इनका युक्तियों के द्वारा समर्थन नहीं कर देते तब तक ये सब बातें केवल आप के ही लिये प्रयोजनभूत हो सकती हैं। जहां आपने लिखा है कि "आयुर्वेद का एक प्रयोग है" आदि वहीं आप अपने इस कथन के सम्बन्ध में यदि उस विषय के माननीय शास्त्रों के उल्लेख भी उपस्थित कर देते तो आपकी यह बात विचार कोटि में आ सकती थी। अभी तक तो यह केवल आप का ही लिखना है। इस ही प्रकार

वैद ने मुर्गी के स्थानपर सारसको इसी प्रकार प्रयोग में लाने की आज़ादी है

आपका लिखना भी आधार एवं युक्ति विहीन है। महाशय श्रीराम का कर्तव्य था कि यदि उनको लिखने की चाह थी तो वे कम से कम वेदों के हिन्दी भाषान्तर को तो देख लेते। लिखते हुये तो आप उपर्युक्त वाक्य को लिख गये हैं किन्तु अब यही वाक्य आप के गले पड़ गया है। यदि महाशय श्रीराम में दम है तो युक्ति की बात तो दूर की है उस का उपस्थित करना तो उनके लिये एक असंभव बात है वह इसके समर्थन में किसी वेद मन्त्र के ही भाष्य को उपस्थित कर दें।

श्रीराम जी के इस वाक्य समूह के सम्बन्ध में इतना ही लिखना ठीक होगा कि यह सब तब ही विचारकोटि में लाये जा सकते हैं जब कि आप युक्ति एवं प्रमाणों से इनका समर्थन करदें। अब तक तो ये मूल्य की दृष्टि से न लिखने के ही समान हैं।

ऐसी अवस्था में जबकि महाशय श्रीराम के लिखने की कुछ स्थिति ही नहीं है इसही के आधारसे विवादस्थ विषय पर विचारको आगे चलाना आवश्यक नहीं किन्तु फिर भी पाठक आपके लेख की योग्यता और भी समझ लें अतः यहां हम कुछ और विचार करना भी अनावश्यक नहीं समझते।

विचार के लिये यदि अभ्युपगम सिद्धान्त से आपके लेख को मान भी लिया जाय तब भी इस से प्रस्तुत गप्प मिथ्या सिद्ध नहीं होती।

गप्प सूचक मंत्र में जांघों के द्वारा सूर्यसिद्धि का प्रतिपादन किया है किन्तु श्रीराम जी बहुत लिखने पर भी चूतड़ों के द्वारा इस बात को बतला रहे हैं। जांघ और चूतड़ में भारी अन्तर है। शरीर के जिस भाग का नाम जांघ है उस का नाम चूतड़ नहीं और शरीर के जिस भाग को चूतड़ कहते हैं उस को जाँघ नहीं कहते। शरीरमें जांघ की समाप्ति पर चूतड़ का प्रारम्भ होता है। अतः सिद्ध कुछ करना था और श्रीरामजी लिखगये कुछ।

दूसरी बात यह है कि विवादस्थ मंत्र में सूर्य से तात्पर्य आकर्षण शक्ति से है। इसके समर्थन में आप के पास क्या प्रमाण है? श्रीराम जी को मालूम होजाना चाहिये कि यह वैदिक शब्दके अर्थ के स्पष्टीकरण का प्रश्न है अतः आपको इसके सम्बन्ध में वैदिक कोष का ही प्रमाण उपस्थित करना चाहिये साथ हीसाथ यह भी प्रमाणित करना चाहिये कि विवादस्थ मंत्र में सूर्य शब्द का अमुक अर्थ है यह बात आप किस आधार से कह रहे हैं?

जांघ शब्द का मतलब चूतड़ शब्द से जोड़ देना और सूर्य शब्द का वाच्यार्थ आकर्षणशक्तिसे जोड़देना निराधार एवं ऊटपटांग है।

आपकी मान्यता के अनुसार वेद मंत्रों का अर्थ विद्वान ऋषियों को मालूम हुआ करता है* महाशय श्रीराम आर्य ऋषि नहीं हैं अतः वह बतलावें कि उन्होंने किस ऋषि के आधार से यह बात लिखी है। यहां हम इतना नोट कर देना अनावश्यक नहीं समझते कि विवादस्थ प्रश्न के सम्बन्ध में श्रीरामजी को मंत्रार्थ द्रष्टा ऋषि का प्रमाण उपस्थित करना चाहिये। यह बात इसलिये लिखी गई है कि कहीं आप स्वामी दयानन्द जी के वाक्य को लिखकर ऋषिवाक्य लिख देनेका कष्ट न करें। स्वामी जी मंत्रार्थ द्रष्टा नहीं थे यह स्वयं वह स्वीकार कर चुके हैं। स्वामी जी यदि स्वयं मन्त्रार्थके साक्षात्कर्ता होते तो उनको प्राचीन वेदभाष्यों के अनुसरण की आवश्यकता न पड़ती+।

उपर्युक्त विवेचनसे प्रकट है कि प्रथम तो महाशय श्रीरामका कथन प्रामाणिक नहीं और यदि अभ्युपगम सिद्धान्त से उसको भी स्वीकार कर लिया जाय तब उससे आंखों में सूर्य की सिद्धि की बात प्रमाणित नहीं होती। ऐसी परिस्थिति में यही कहना पड़ता है कि आर्यसमाज की गप्प नं० २ गप्प ही है उसको अगप्प कहना भूल है।

* धर्मात्मा योगी महर्षि लोग जब २ जिस २ के अर्थ की जानने की इच्छा करके ध्यानावस्थित हो परमेश्वर के स्वरूप में समाधिस्थ हुये तब २ परमात्मा ने अभीष्ट मंत्रों के अर्थ जनाये। जब बहुतों के आत्माओं में वेदार्थ प्रकाश हुआ तब ऋषि मुनियों ने वह अर्थ और ऋषि मुनियों के इतिहास पूर्वक ग्रंथ बनाये। उनका नाम ब्राह्मण अर्थात ब्रह्म जो वेद उसका व्याख्यान ग्रन्थ होने से ब्राह्मण नाम हुआ। —सत्यार्थ प्रकाश, सप्तम समुल्लास पेज २०४

× प्रश्न— क्यों जी जो तुम यह वेदों का भाष्य बनाते हो सो पूर्व आचार्यों के भाष्य के समान बनाते हो या नवीन? जो पूर्व रचित भाष्यों के समान है तबतो बनाना व्यर्थ है क्योंकि वे तो पहिले से ही बने बनाये हैं और जो नया बनातेहो तो उसको कोई भी न मानेगा क्योंकि जो बिना प्रमाणके केवल अपनी ही कल्पना से बनाना है यह बात कब ठीक होसकती है।

उत्तर— यह भाष्य प्राचीन आचार्यों के भाष्यों के अनुकूल बनाया जाता है परन्तु जो रावण उवट सायण और महीधर आदि ने भाष्य बनाये हैं वे सब मूल मंत्र और ऋषिकृत व्याख्यानों से विरुद्ध हैं मैं वैसा भाष्य नहीं बनाता क्योंकि उन्होंने वेदों की सत्यार्थता और अपूर्वता कुछ भी नहीं जानी। और जो यह मेरा भाष्य बनता है सो तो वेद वेदाङ्ग ऐतरेय शतपथ ब्राह्मणादि ग्रंथों के अनुसार होता है। क्योंकि जो २ वेदों के सनातन व्याख्यान हैं उनके प्रमाणों से युक्त बनाया जाता है यही इसमें अपूर्वता है।

—ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पेज ३२२

नव दर्शनसंग्रह

ले०—पं० राजेन्द्रकुमार जैन, न्यायतीर्थ

हर एक समय एक भिन्न ही प्रकार के साहित्य का निर्माण हुआ है। किसी समय पुराण साहित्यका निर्माण हुआ है तो किसी समय वार्तिक साहित्य का! यही बात सूत्रसाहित्य, स्मृतिसाहित्य और दर्शनसाहित्य की है। वर्तमान युग भी ऐसा ही है; किन्तु इसमें और प्राचीन युगों में थोड़ा सा अन्तर है। प्राचीन समय में शास्त्ररचनाएं संस्कृत और प्राकृत में हुई हैं; किन्तु अब हिन्दी में हो रही है। काशी-विश्वविद्यालय की इन्टर की पाठ्य पुस्तकोंको हिन्दी में तैयार करने की योजना भी इसी प्रगति का फल है। गत वर्ष महामहोपाध्याय पं० गिरधर शर्मा ने भी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को दर्शनपरिषद् के सभापति के आसन से हिन्दी में दर्शनशास्त्रके मौलिक साहित्य की आवश्यकता को स्वीकार किया है। इन सब बातोंका तात्पर्य केवल इतना ही है कि इस युगमें मौलिक हिन्दी साहित्य की आवश्यकता एक सर्वतंत्र बात है। जब से हिन्दीका प्रचार बढ़ा है, तभीसे इसमें भिन्न-भिन्न विषयों पर पुस्तकें भी लिखी गई हैं। इसी का यह फल है कि आज हिन्दी में भौतिक विज्ञान, (Physics), रसायन विज्ञान (Chemistry) और दर्शन-जैसे विषयों पर भी थोड़ी-बहुत सामग्री मिल जाती है।

हिन्दीका यह साहित्य एक मौलिक साहित्य होना चाहिये। इसमें भाषा और भाव दोनों ही की प्रौढ़ता की आवश्यकता है। इनमें से यदि एक का भी अभाव रहेगा तो उससे हिन्दी-साहित्य की कमी की पूर्ति नहीं हो सकती, प्रत्युत यह तो उसके लिये भारभूत हो जायगा। किन्तु इस प्रकार की पुस्तकों की रचनाएं भी अवश्यंभावी हैं। जब किसी का चढ़ता हुआ समय आता है, तब अनेक व्यक्ति उसके लिये प्रयत्न करते हैं इनमें से कुछ नवशिक्षित, कुछ अर्द्ध-शिक्षित और कुछ उस विषय के विद्यार्थी भी होते हैं, तथा इन्हीं की कृपा से अच्छी भाषा या भाव अथवा दोनोंसे विहीन पुस्तकोंकी रचना हो जाया करती है। हिन्दी-साहित्य के किसी भी अंग में आज इस प्रकार की पुस्तकों का अभाव नहीं है। इसमें गौरव-योग्य पुस्तकों की तरह भारभूत पुस्तकोंका निर्माण भी कम नहीं हुआ है।

ऐसी परिस्थिति में हिन्दी प्रेमियों का कर्तव्य है कि वे अपने थोड़ेसे समय को इधर भी व्यय करें और इस बात का प्रयत्न करें कि भविष्य में इस प्रकार की पुस्तकों की रचना न होने पावे। यह कार्य इनकी कड़ी आलोचना के द्वारा हो सकता है। यदि इनकी आलोचनाएं हो जायेंगी तो इनके लेखकों को प्रोत्साहन न होगा, तथा इस प्रकार के अन्य लेखकों के लिये भी यह चेतावनी लाभप्रद होगी।

हिन्दी-साहित्य के प्रेमियों ने अपना ध्यान इधर नहीं दिया हो, ऐसा नहीं है। अनेक योग्य समझे जाने वाले लेखकों की कृतियों की आलोचनाएं भी बड़ी कड़ी दृष्टि से की गई हैं, और उनका फल भी हुआ है। किन्तु अभी इसमें प्रगति की आवश्यकता है। आज हम भी एक ऐसी ही सेवा को लेकर पाठकों के समक्ष उपस्थित हुए हैं। हमारे प्रस्तुत लेख का विषय प्रो० राजाराम जी का नव दर्शन-संग्रह है।

श्रीराजाराम जी दयानन्द-कालेज, लाहौर के एक प्रतिष्ठित अध्यापक हैं। आप हिन्दीके लेखक,अनुवादक भी हैं। आपने कई पुस्तकों का निर्माण और कई की हिन्दी टीकाएं की हैं। नव दर्शन-संग्रह भी आपकी उन्हीं रचनाओं में से है। यह कब प्रकाशित हुआ, इसका निश्चित परिचय प्रस्तुत पुस्तक से तो नहीं मिलता; पर पुस्तक पर उसने प्रकाशन का समय २७ अक्टूबर,१९११ ई० लिखा है, जिसके आने में अभी करीब १५ वर्ष शेष हैं।

नामके अनुसार लेखक ने इसमें चार्वाक, बौद्ध आर्हत्, वैशेषिक, न्याय, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त का वर्णन किया है। पुस्तक लिखने से पूर्व लेखकने यदि अपना यथेष्टसमय और शक्ति दार्शनिक मान्यताओं के गंभीर अध्ययन में लगाई होती तो आपकी यह रचना हिन्दी-साहित्यके लिये अवश्य एक गौरवयोग्य वस्तु होती। आपकी प्रस्तुत पुस्तकसे ऐसा प्रतीत नहीं होता। आपने अपनी इस पुस्तक में प्रायः सभी दर्शनों के वर्णन में थोड़ी बहुत भूलें की हैं यहां हम कुछ दर्शनों के सम्बन्धमें उनका उल्लेख करेंगे—

आर्हतदर्शन

इसके संबंध में आपने अनेक बातें लिखी हैं। इन में से अधिकतर त्रुटिपूर्ण हैं। दृष्टान्त के लिये हम निम्न-लिखित बातें उपस्थित करते हैं—

(१) जीव के भेद
(२) धर्म और अधर्म द्रव्य
(३) आकाश
(४) कर्मों का स्वरूप
(५) मोक्ष
(६) और सप्तभंगी

जीव के भेदों को गिनाते हुए आपने लिखा है 'जीवास्तिकाय तीन प्रकारका है। बद्ध मुक्त और नित्य सिद्ध। इनमें से आर्हत मुनि नित्य सिद्ध हैं।"

आर्हत दर्शन की यह मान्यता नहीं है। उसने जीवों को तीन भेदों में विभाजित नहीं किया। इसकी मान्यता के अनुसार नित्यसिद्ध कोई भी जीव नहीं है। इस में जीव के दो ही भेद किये हैं। आर्हतदर्शन की प्रसिद्ध पुस्तक तत्वार्थसूत्र, जो कि ईसवी सन् की दूसरी शताब्दी की रचना है, स्पष्ट रूप से जीव के दो ही भेद बतलाती है।

इससे आगे धर्म और अधर्म की व्याख्या करते हुए आप लिखते हैं—"मनुष्य जो शुभ करता है; उसका जो अन्दर संस्कार है, वह धर्म है। मनुष्य की प्रवृत्ति शास्त्र के अनुसार होने से धर्मास्तिकाय का अनुमान होता है। जीव ऊपर जानेके स्वभाव वालाहै। उसकी शरीर में स्थिति से अधर्मास्तिकाय का अनुमान होता है।"

आर्हत दर्शन के अन्य जैनेतर लेखकों ने भी प्रायः ऐसी त्रुटियाँकी हैं। यह सब आर्हतदर्शन का अध्ययन किये बिना ही एक दूसरे के अनुसरण के बल पर लेखनी चला देने का फल है। इस दर्शन का अभि-प्राय प्रस्तुत धर्म और अधर्म से पुण्य और पाप से नहीं है, किन्तु इन नामों के दो मूलतत्वों से है गमन के साधारण कारण को धर्म और स्थिति के साधा-रण कारण को अधर्म द्रव्य कहते हैं।

आकाश के भेदों के सम्बन्ध में विद्वान् लेखक ने निम्नलिखित शब्द लिखे हैं—

"ऊपर स्थितलोक के अन्तर्वर्ती जो आकाश है, वह लोकाकाश है और उसके ऊपर जो मोक्ष का स्थान है, वह अलोकाकाश है, क्योंकि वहाँ लोक नहीं है।"

आर्हत दर्शन ने लोकाकाश और अलोकाकाश का

यह स्वरूप नहीं माना। इसके अनुसार तो वह स्थान भी, जहां मुक्त जीव रहते हैं, लोकाकाश है। इस के अनुसार अलोकाकाश से तात्पर्य तो आकाश के उस भाग से है, जहां आकाश के अतिरिक्त अन्य द्रव्य नहीं पाये जाते। इसी प्रकार लोकाकाश से तात्पर्य आकाशके उस भागसे है, जहां आकाश के अतिरिक्त अन्य द्रव्य भी पाये जाते हैं। कर्मों के स्वरूप के सम्बन्ध में लेखक लिखता है कि "ज्ञान से वस्तु की सिद्धि नहीं होती, यह भ्रान्ति ज्ञानावरणी कर्म है। आर्हत दर्शन के अभ्यास से मुक्ति नहीं होती, यह भ्रान्ति दर्शनावरणी है।"

प्रोफेसर लेखकने आर्हत दर्शनकी साधारणसे साधारण पुस्तक के दर्शन भी कर लिये होते, तो आपसे ऐसी २ साधारण त्रुटियाँ न होतीं। आर्हत दर्शन भ्रान्ति को ज्ञानावरणी या दर्शनावरणी नहीं मानता उसकी मान्यता के अनुसार तो ये पुद्गल (Matter) के अवस्थाविशेष हैं। भ्रान्ति और पुद्गलकी अवस्थाविशेषमें महान अन्तर है। जहां पहला स्वरूप है, वहाँ दूसरी ज्ञान की अवस्था-विशेष है। पुद्गल की अवस्थाएं, जो ज्ञान और दर्शन को प्रकट नहीं होने देतीं, क्रमशः ज्ञानावरणी और दर्शनावरणी कहलाती हैं। अतः लेखक का यह कथन भी मिथ्या है।

मोक्षस्थानका वर्णन करतेहुए आपने लिखाहै कि "जीव का स्वरूप ऊपर जाने का है। वह धर्म और अधर्म अस्तिकाय से बंधा हुआ यहाँ ठहरा हुआ है। इससे छूटकर लगातार ऊपर ही जाना यह मोक्ष है"। आर्हत मोक्ष के सम्बन्धमें विद्वान लेखक का उपर्युक्त विवेचन अवश्य दयनीय है। आत्मा से सम्पूर्ण कर्म-बन्धन का छूट जाना आर्हत दर्शन मोक्ष मानता है। इसकी मान्यता के अनुसार मुक्त जीव सदैव ऊपर नहीं जाते। इसने तो इसका स्पष्ट रूप से प्रतिवाद किया है।

सप्तभंगी के सम्बन्धमें आप लिखते हैं -"हरएक वस्तु अस्तित्व नास्तित्वादि विरुद्ध धर्मों वाली है जैसे घट का एक स्वरूप घट का अस्तित्व है, दूसरा प्राप्यत्व है। अब यदि जैसे स्वरूप में विद्यमान है, इसी प्रकार यदि प्राप्यत्व रूप से भी विद्यमान है तो उस की प्राप्ति के लिये यत्न क्यों? इस लिये घटत्वादि रूप से कथंचित् है पर प्राप्यत्वादि रूप से कथंचित नहीं है।"

जैन दर्शन की मान्यता के अनुसार वस्तु अनेक-धर्मात्मक है। इन्हीं धर्मों में से कुछ ऐसे भी है, जो परस्पर विरुद्ध से प्रतीत होते हैं। जैसे मुक्तात्मा का मुक्तामुक्तरूप। जब आत्मा कर्मबन्धनसे मुक्त हो जाता है, उसी समय वह ज्ञानादि गुणों से अमुक्त भी रहता है, अतः उसको मुक्तामुक्त कह दिया जाता है इस प्रकार के धर्मों के आधारसे वस्तु के सात प्रकार के धर्मों के कथन का नाम सप्तभंगी है।

लेखक ने जब आर्हत दर्शनकी साधारण बातोंके वर्णन में ही त्रुटियां की हैं, तब सप्तभंगी-जैसे गहन विषय के सम्बन्ध में उनका होना तो अनिवार्य था॥ यह सब विद्वान लेखक के इस दर्शन के अध्ययन के बिना ही लेखनी उठाने का फल है। लेखक ने इस दर्शन की अन्य बातों के वर्णन में भी त्रुटियाँ की हैं। किन्तु अब हम उनका उल्लेख न कर वैशेषिक दर्शन पर आते हैं।

वैशेषिक दर्शन

इस दर्शन के स्वरूप को बतलाते समय भी लेखक ने त्रुटियां की हैं। इन में से कुछ का यहां उल्लेख कर देना हम आवश्यक समझते हैं —

(१) अन्यन्ताभाव
(२) आत्मा
(३) गुरुत्व और द्रवत्व गुण

अन्यन्ताभाव का स्वरूप बतलाते हुये लेखक ने लिखा है कि "यहाँ घट नहीं है, यहां पट नहीं है इत्यादिरूप से जो इस स्थान में घट आदि के संसर्ग का प्रतिषेध है, वह अन्यन्ताभाव है।" संसर्ग-संबंध का प्रतिषेध ही अत्यंताभाव नहीं, अपितु त्रैकालिक संसर्ग का प्रतिषेध अत्यंताभाव है। संसर्ग के प्रतिषेध और त्रैकालिक संसर्ग के प्रतिषेध में महान् अन्तर है। संसर्ग का प्रतिषेध तो प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव में भी होता है। किसी भी स्थान विशेष पर घट और पट का अभाव कालत्रय से सम्बन्धित नहीं है माना कि किसी स्थान विशेष पर अभी घट और पट का अभाव है, किन्तु कालान्तर में इनको वहां लाया भी जा सकता है। अतः ऐसा अभाव त्रैकालिक अभाव नहीं कहला सकता।

स्थान विशेष पर घट और पट का अभाव दो अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है। एक यह कि अभी तक वहाँ घट उत्पन्न नहीं हुआ है, या स्थानान्तर से उसको वहां नहीं लाया गया है, और दूसरा यह कि वहाँ इससे पूर्व तो घट था, किन्तु कुछ ही पूर्व वह फूट गया या उसको स्थानान्तर ले जाया गया है। इन दोनों ही अवस्थाओं में इनको क्रमशः प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव कहा जा सकता है।

अन्यन्ताभाव और अन्योन्याभाव तो एक पदार्थ में दूसरे पदार्थ के स्वरूप के अभाव से सम्बंध रखते हैं। जहाँ यह अभाव कालान्तर में बदला भी जा सकता है वहां इसको अन्योन्याभाव समझना चाहिये और जहाँ यह कालत्रय से सम्बन्धित है, वहाँ यह अन्यन्ताभाव है। इसको यों समझियेगा कि एक तो घट में पट का अभाव है, और दूसरा जड़ में चैतन्य का। कभी ऐसा भी समय आ सकता है कि प्रस्तुत घटरूप परमाणु ही पट का रूप धारण कर ले; किन्तु यह बात जड़ और चैतन्य के सम्बन्ध में असंभव है। अतः पहला अभाव अन्योन्याभाव है और दूसरा अन्यन्ताभाव। इसी को यदि दूसरे शब्दों में कहना चाहें, तो यों कह सकते हैं कि एक ही पदार्थ का भिन्न-भिन्न दो अवस्थाओं में अन्योन्याभाव होता है; और अन्यन्ताभाव दो स्वतंत्र पदार्थों में। अतः स्पष्ट है कि लेखक का अन्यन्ताभाव का स्वरूप उनकी निजी कल्पना ही हो सकती है, न कि वैशेषिक दर्शन की मान्यता।

जीवात्मा को आपने अणु लिखा है। इसके संबंध में आपने सारथी का एक दृष्टान्त भी दिया है। इसमें आपका यही मन्तव्य मालूम पड़ता है कि जैसे सारथी रथ के एक भाग-विशेष में रहता हुआ भी उसको चलाता है, उसी प्रकार शरीरवर्ती अणुआत्मा भी।

किसी के भाग-विशेष में रहने वाला भी उसको गति दे सकता है या नहीं, इस बात के निर्णय की यहां आवश्यकता नहीं। यहां तो केवल इतना ही देखना है कि आपका यह कथन वैशेषिक दर्शन के अनुकूल है या प्रतिकूल। वैशेषिक दर्शनकार महर्षि कणाद ने आत्मा को आकाश की तरह ही सर्वव्यापक लिखा है। [१] अतः आपका आत्मसंबंधी विवेचन भी आपका ही

१ विभवान्महानाकाशस्तथा चात्मा। वैशेषिक दर्शन अ०७,आ०१ सू०२२

निजी कल्पित कहा जा सकता है।

गुणों के विवेचन में भी आपने त्रुटियां की हैं। गुरुत्व और द्रवत्वका लक्षण करते हुये आपने लिखा है कि "गिरने का निमित्त गुरुत्व है और बहने का निमित्त द्रवत्व।" गुरुत्व और द्रवत्व के सम्बन्ध में वैशेषिक दर्शन की यह मान्यता नहीं है। यह केवल गिरने या केवल बहने के ही निमित्त को गुरुत्व और द्रवत्व नहीं मानता ; किन्तु आद्यपतन और आद्यबहन के असमवायिकारण को गुरुत्व और द्रवत्व मानता है। [१] पतन और आद्यपतन तथा वहन और आद्यबहन में महान अन्तर है। इसी प्रकार निमित्त और असमवायि कारण भी एक नहीं हैं। गेंद का गिर कर फिर भी पतन है, किन्तु फिर भी वैशेषिक दर्शन इसमें गुरुत्व को कारण नहीं मानता। ऐसी परिस्थिति में यह निःसन्देह है कि गुरुत्व और द्रवत्व के सम्बन्ध में वैशेषिक दर्शन की मान्यता के वर्णन में लेखक ने भूल की है।

लेखक के वैशेषिक दर्शन के वर्णनमें शब्दन्यूनता और अर्थन्यूनता का भी अभाव नहीं है। संशय का प्रतिपादन करते हुये आपने लिखा है कि "एक निश्चय न होना संशय है······संशय होता तब है जब उसका सामान्य धर्म तो दीखे और विशेषधर्म न दीखे। जैसे ऊंचाई, जो वृक्ष और मनुष्य का सामान्य धर्म है, यह दीखती है और खोड आदि, जो वृक्ष का विशेष धर्म है वह नहीं दीखता।"

उद्धृत शब्दसमूह के पहले अंश में लेखकने संशय का लक्षण किया है और दूसरे में उसके कारण का दिग्दर्शन। लेखक ने लक्षण में शब्दों की और कारण में अर्थ की न्यूनता की है। केवल एक का निश्चय न होना संशय नहीं, किन्तु किसी एक वस्तु में उभयकोटिस्पर्शी ज्ञान का नाम संशय है। अतः यहां इतने शब्दों को और भी जोड़ना था कि एक पदार्थ में एक का निश्चय न होना, किन्तु उभयकोटिस्पर्शी ज्ञान होना संशय है।

इसी प्रकार केवल सामान्य प्रत्यक्ष और विशेषाप्रत्यक्ष से ही संशय नहीं होता, किन्तु उसके लिये किसी अन्य बात की भी आवश्यकता है। यह उभयविशेष स्मृति है [२]। लेखक ने संशय के कारण को बतलाते हुये इसको न लिखकर अर्थलाघव किया है, अतः दोनों ही अवस्थाओं में उनका कथन त्रुटिपूर्ण है

हमारा विचार था कि हम लेखकके अन्य दर्शनों के विवेचन की भी समीक्षा करें ; किन्तु लेखके बढ़ जाने के भय से हम ऐसा नहीं कर सके। अब हम लेखक के दार्शनिक साहित्य के इतिहास पर कुछ शब्द लिखकर अपने लेख को समाप्त करेंगे।

वेदान्त-दर्शन के इतिहास पर प्रकाश डालते हुये आपने लिखा है कि "इस दर्शन के प्रवर्तक भगवान् वेदव्यास हैं। उनके नाम पर इसको वैयासिक दर्शन भी कहते हैं और वेद का अन्तिम तात्पर्य बतलाने से वेदान्त दर्शन कहते हैं।"

वैदिक साहित्यमें दो व्यास हुये हैं। एकवेदव्यास और दूसरे बादरायण व्यास। इनमेंसे पहलेका समय महाभारतकालीन है और दूसरे का बौद्धकाल के बाद का। वेदान्तदर्शन के रचयिता बादरायण व्यास हैं,न

१ आद्यपतनासमवायिकारणं गुरुत्वम्। स्यन्दनासमवायिकारणं ···। ···संग्रह

२ सामान्यप्रत्यक्षाद्विशेषाप्रत्यक्षादुभयविशेषस्मृतेश्च संशयः। वैशेषिकदर्शन २। २। १७।

कि वेदव्यास । इसमें बौद्ध मान्यताओं का उल्लेख एवं उनका खंडन मिलता है, अतः उसको बौद्धकालसे प्राचीन किसी भी प्रकार स्वीकार नहीं किया जा सकता ।

अन्य दर्शनों के इतिहास के सम्बन्धमें भी आपने ऐतिहासिक दृष्टि से ठीक-ठीक उल्लेख नहीं किया ।

उपर्युक्त बातों से स्पष्ट है कि प्रो० राजारामजीका नवदर्शन भाषा, भाव और ऐतिहासिक दृष्टि से त्रुटि पूर्ण है । आशा है, यदि इसका दूसरा संस्करण होगा तो उक्त प्रोफेसर साहब इसमें इन सब बातोंकाध्यान रखते हुये उचित संशोधन करने का कष्ट उठावेंगे ।

तीर्थ भूमियां

श्री ऋषभदेव धुलेव (केशरियानाथ जी)

अतिशय क्षेत्रों में 'श्री ऋषभदेव धुलेव' की तीर्थ-भूमि भी प्रसिद्ध है इसको 'केशरियानाथ' भी कहते हैं । यहाँ पर कृष्ण वर्ण श्री ऋषभनाथ भगवान की लगभग ३ फीट ऊंची प्राचीन मूर्ति है जिसकोकि अजैन पंडे तथा भील आदि भी पूजते हैं । भील भगवान ऋषभदेव को 'कालिया बाबा' कहते हैं और भगवान पर चढ़ाये गये केसरको घोलकर पी लेने पर कदापि असत्य नहीं बोलते । सत्य बोलने में चाहे उन्हें कैसी भी आपत्ति का सामना क्यों न करना पड़े ।

इस तीर्थ क्षेत्र के दि० श्वे० दोनों सम्प्रदाय पुजारी हैं आजसे कुछ वर्ष पहले इसी तीर्थ मंदिर के भीतर दि० समाज का धार्मिक अधिकार पददलित करने के लिये श्वे० भाइयों की ओर से वह खूनी होली खेली गई थी जिसका काला इतिहास तबतक बना रहेगा जब तक कि यह क्षेत्र विद्यमान रहेगा ।

उदयपुर राज्य में उदयपुर से ४० मील दूर दक्षिण दिशामें 'धुलेव' नामक एक कोट से घिरा हुआ एक कस्बा है । खैरवाड़ा (अंग्रेजी छावनी का स्थान) सड़क से एक मील दूर नदी के दूसरे पार यह कस्बा बसा हुआ है पासमें छोटी पहाड़ियां हैं । इस कस्बे में प्रारंभ से ही दि० जैन रहते आये हैं । इस समय भी उन लोगों के वहाँ १५० घर हैं । श्वे० जैनों का निवास यहाँ शुरू से नहीं था । इस समय श्वे० ओसवालों के २-३ घर हैं जोकि दुकान करने के लिये पीछे से यहां आ बसे हैं ।

यह कस्बा श्री ऋषभदेव मंदिर के कारण तीर्थक्षेत्र बना हुआ है । इसके सिवाय यहां और कोई ऐसी वस्तु नहीं जो दूरवर्ती मनुष्यों को अपनी ओर आकर्षित कर सके ।

मेवाड़ राज्य का यह प्रदेश ईडर राज्य से मिला हुआ है । ईडर में काष्ठासंघी भट्टारकों की प्राचीन गद्दी है ईडर के उन गद्दीनशीन भट्टारकोंकी पूज्यता इधर मेवाड़ में भी उसी तरह रही जिस तरह ईडर में थी । अतएव भट्टारक समय समय पर मेवाड़ राज्य के इस प्रदेश में विहार किया करते थे ।

धुलेव लगभग पौने छहसौ वर्ष पहले एक प्राचीन मंदिर था । वह बहुत पुराना होजाने के

कारण जीर्ण शीर्ण होगया था। उस समय वहांपर श्री धर्मकीर्ति भट्टारक पधारे। उन्होंने धुलेव के इस जीर्ण मन्दिर के स्थान पर नवीन मन्दिर बनाने का लोगों को उपदेश दिया। भट्टारक जी का सदुपदेश सहर्ष स्वीकार करके वि० सं० १४३१ में सेठ हरदान के परिवार ने उस मंदिर का जीर्णोद्धार किया और अपने न्यायोपार्जित द्रव्य से मंदिर (मूल मंडप) तैयार कराया। उस समय का बनवाया हुआ वह मनोहर मूल मंडप अभी तक विद्यमान है। तथा इस बातको प्रमाणित करने वाला एक शिला लेख मूल मंडप के द्वार पर खेला मंडप में बाँई ओर दीवाल में लगाहुआ है। जिसकी १४ पंक्तियाँ हैं। ५६५ वर्ष बीत जानेके कारण उसमें कुछ अक्षर बिगड़ गये हैं तथा कुछ पलस्तर वाले चूने में दब गये हैं। शिला लेख की प्रतिलिपि निम्न प्रकार है—

...... श्री आदिनाथ प्रणम्य ...

लोका श्री स्वामिता केचन विम्नकार्या

न मोक्षमार्ग नमादिनाथं प्रणमामि नि-

मादिन्य संवत् १४३१ वर्षे वैशाख सुदि अक्षय

तिथौ बुध दिना गुरावद्येहा वार्पा कृपल

मरि मनोदरा लंकृति खड़वाला पत्तने। राजश्री

विजयराज पालयति सति उदयराज सेल था०

श्रीमज्जिनेन्द्राय धनलप्र दंचूली वागड़ पतिपात्राश्री

· ष्ठा संघे भट्टारक श्री धर्मकीर्ति गुरोपदेशेनावा

ये साध बीजा सुत हरदान भार्या हारू तदपत्योः सु

पुंजा कोनाभ्यां श्री ऋ भेश्वर प्रासादस्य जीर्णोद्धार

श्री नाभिराज वरवंश कृतावतार कल्पद्रुमा ·

महासिघनेसुः। यस्मिन् सुरअगणाः कि ·

··भोज सपूगादि जिनेश्वरो व ॥१॥ श्री शुभम् सुभं

शिलालेखों के खोदने वाले प्रायः अपढ़ या शुद्ध भाषा लिखने की योग्यता न रखने वाले शिल्पी हुआ करते हैं अतः शिलालेखों की भाषा प्रायः अशुद्ध हुआ करती है उस अशुद्धि दोष से उपर्युक्त शिलालेख भी मुक्त नहीं है। अस्तु शिलालेख का भाव यह है।

विक्रम संवत १४३१ वैशाख सुदी तृतीया (अक्षय तृतीया) बुधवार के दिन काष्ठा संघी भट्टारक धर्म कीर्ति के उपदेश से सेठ बीजा के पुत्र हरदान, उनकी धर्म पत्नी हारू, उनके पुत्र पुंजा, कोताने श्री ऋषभ-नाथ के मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया।

शिलालेख के प्रारम्भ में लघु स्वयंभूस्तोत्र का प्रथम श्लोक दिया गया है जिसके कुछ शब्द मिट गये हैं। श्लोक का पूर्णरूप यह है।

'येन स्वयंबोधमयेन लोका आश्वासिता केचन वित्तकार्ये प्रबोधिता केचन मोक्षमार्गे तमादिनाथं प्रणमामि नित्यम्. शिलालेख का अंतिम श्लोक भी किसी ग्रंथका है।'

ये धर्मकीर्ति भट्टारक बागड़ प्रान्त में ईडर की गद्दी के उस समय भट्टारक थे यह बात झालरापाटन सरस्वती भवन में विद्यमान 'मूलाचार' ग्रंथ की प्रशस्ति से सिद्ध होती है उक्त सरस्वती भवन के व्यवस्थापक श्रीमान पं० पन्नालाल जी सोनी ने अन्य शिलालेखों के उल्लिखित भट्टारकों का तथा इन धर्म कीर्ति का नामोल्लेख भिन्न २ ग्रंथों की प्रशस्तियों से मिला कर यह सिद्ध किया है कि वे भट्टारक उस समय के गद्दीनशीन भट्टारक थे और उनकी गद्दी ईडर में थी।

उक्त शिलालेख से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि श्री ऋषभनाथ की प्रतिमा यहां पर पहले से थी। दूसरी बात यह भी सिद्ध हो जाती है मंदिर का रूप जो इस समय विद्यमान है उसका मूलनिर्माण काष्ठा-

संघी दिगम्बरी भट्टारक के भक्त सेठ ने ही किया।

इसके बाद मूलमंडप से आगे का भाग खेलामंडप तथा नवचौकी वि० सं० १५७२ में बना। इसका शिलालेख खेलामंडप में दायीं ओर दीवाल में लगा हुआ है। इस शिलालेख के भी कई शब्द मिट गये हैं शिलालेख की प्रतिलिपि इस तरह है।

१ .. ..

२ मयेन लोका आस्वाशिता के........ ....

३ .... आदिनाथं प्रणमामि नित्य विक्रमादित्य

४ संवत १५७२ वर्षे वईसाख सुदि ५ वा सोमे भट्टारिक श्री जसकी

५ तिराज श्री कला भार्या सोनबाई विजीराज इन्द्राः धुलविग्राम्य

६ (प्रति) श्री ऋषभनाथ प्राणम्यः। कड़ीआ कोहिआ भार्या भरमी

७ तस्य पुत्र हीसा भार्या हीसलदे तस्य पुत्र कान्हा देवरा रंगा

८ भ्रात वेणदास भार्या लाछी भ्रात सोवा भार्या पाँची सुत

९ नाथो नरपाल श्री काष्ठासंघे बीजन्यातः काशलू गोत्रे

१० (रा) कड़ीआ हीसा मंडपः नवचुकीय ॐसनो बड़ पुत्तला

११ सहत टंकासि ८०० इठड़ी कध्यः। श्री ऋषभ जी······ .. ..

१२ श्री नाभिराज कुल पुत्र

इस शिलालेख आदि में भी पहले शिला लेखके समान लघुस्वयंभूस्तोत्र का प्रथम श्लोक लिखा गया है जिस का कुछ भाग पढ़ा जाता है और कुछ मिट गया है। अतएव स्पष्टतौर से पढ़ने में नहीं आता।

सारांश यह है

वि० संवत १५७२ वैशाखसुदी ५सोमवार के दिन भट्टारक श्री जसकीर्ति तथा राजश्री कल्ला की भार्या सोनबाई विजैराम इन्द्र (?) धुलेव ग्राम में विराजमान श्री भगवान ऋषभदेव को प्रणाम करते हैं। कड़िया कोठिया की पत्नी भरमी, उसका पुत्र हीसा, उसकी पत्नी हीसलदे, उसके पुत्र कान्हा, देवरा रंगा, और भाई वेणदास उसकी पत्नी लाछी, उसका भाई शोभा, उसकी पत्नी पांचीबाई, उनके पुत्र नाथा, नरपाल इन सब के साथ काशलू गोत्रीय, काष्ठासंघानुयायी कड़िया हीसा ने मंडप (खेलामंडप) और नव चौकी बनवाई।

११ वीं पंक्ति में "टंकासि ८००. इठड़ी कध्य." लिखा हुआ है इसका भाव कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि "इस काममें ८०० रुपये या ८०० मुहर खर्च की"

इस प्रकार मूलनायक श्री ऋषभदेव की प्रतिमा जहां विराजमान है वह मंदिर काष्ठासंघी भट्टारकोंके भक्तों ने तयार कराया।

इस मूलमंदिर की दाहिनी ओर एक मंदिर बना हुआहैजिसकी मूलनायक प्रतिमा भगवान ऋषभदेवकी है किन्तु लोग उसको "नेमिनाथका मंदिर" कहते हैं। उसके द्वार पर दीवाल में एक शिला लेख लगा हुआ है उसकी नकल इस तरह है—

१—स्वस्ति श्री संवत १७५३ वर्षे साके १६१६ प्रवर्तमाने सर्वजित नाम संवत्सरे—

२—मासोत्तम वैशाख मासे शुक्लपक्षे १३ तिथौ

शुक्रवासरे श्री काष्ठासंघेला—

३—डवागडगच्छे लोहाचार्यान्वये तदनुक्रमेणभट्टारक श्री प्रतापकीर्त्याम्ना—

४—ये श्री काष्ठासंघे नंदीतटगच्छे विद्यागणे भट्टारक श्रीराम सेनान्वये तदनुक्र—

५—मेण भट्टारक श्री भूषण तत्पट्टे भट्टारक श्री चन्द्रकीर्ति तत्पट्टे श्री रा—

६—जकीर्ति तत्पट्टे भट्टारक श्री लक्ष्मीसेन तत्पट्टे भट्टारक श्री चन्द्रभूषण तत्पट्टे—

७—कमल मधुक रामान भट्टारक श्री सुरेन्द्रकीर्ति विराजमाने। प्रतिष्ठित बघेरवा—

८—लज्ञातो गोवालगोत्रे संघवी श्री आल्हाभार्या कुडाई तयो पुत्र भोजमा भार्या अंबाई सि—

९—घवी भीमा द्विये भार्या पदमाई वीजी हरषाई तयो सिंहपती बापु भार्या जमबाई द्वितीय पु—

१०—त्रादू भार्या पुतलाई तनगच्छे वपुजी परिवार सिंहपती भोजा द्वितीये भ्राता पदाजी तत्सर्व—

११—संघपती भोजा भार्या पदमाई तयो पुत्र चत्वारि प्रथम भीम सा भार्या गांडनीय पुत्र आदु—

१२—भार्या गोमाई त्रितीय पुत्र अर्जुन भार्या मकाई तयो पुत्र सिघवी तवनासाह भार्या द्वि प्रथम—

१३ मरुदेवी वीजी गोताई तीजी दुग चतुर्थ पुत्र सिंहवी सितल भार्या हीराई तयो पुत्र प्रथ—

१४ म पुत्र भोजा भार्या जीवाई द्वितीय पुत्र सिंघवी भीमा भार्या प्रथम कालाइ पुत्र सीतला द्वि—

१५ तीय भार्या देवकु इत्यादि समस्त कुटम्बवर्ग-संयुक्त श्री वृषभदेव सासमर्तिन मंडति

१६ प्रतिष्ठा महोत्सव कृत्वा श्री वृषभदेवस्य नित्यं प्रणमति ॥श्रीरस्तु॥ ॥शुभं भूयात॥ ॥श्री॥

१७ ......ब्रव प्रत्यास श्री धर्मप्रभ तत्सीष्य विजयप्रभलिखितं ग सीं० वाल्या ....

इस शिलालेख का भाव यह है—

वि० सं० १५५३ शक संवत १६१६ वैशाख सुदी १३ शुक्रवार के दिन काष्ठासंघ के लाडवागडगच्छ के श्री लोहाचार्य की परम्परा में क्रमानुसार भट्टारक प्रताप कीर्ति की आम्नाय में काष्ठासंघ नन्दीतटगच्छ, विद्यागण के भट्टारक श्री रामसेन की परम्परा में क्रम प्राप्त भट्टारक श्री भूषण उसके पट्टधारक भट्टारक इन्द्र भूषण उनके पट्टधारक भट्टारक सुरेन्द्रकीर्तिके विराज-रहने पर बघेरवाल जातीय, गोवाल गोत्रीय संघवी आल्हा उसकी पत्नी कुडाई उसका पुत्र भोजा उसकी पत्नी अंबाई, संघवी भीमा उसकी दो पत्नियाँ पद्माई और हरषाई, उनके पुत्र संघपति बापू उसकी भार्या जंबाई उनका पुत्र संघवी भोजा उसकी स्त्री पद्माई, उनके चार पुत्र, प्रथम पुत्र भीमा सा उसकी पत्नी ग ——, द्वितीय पुत्र आदु ? उसकी स्त्री गोमाई, तीसरा पुत्र अर्जुन उसकी स्त्री मकाई, उसका पुत्र तवना शाह उसकी दो पत्नियां मरुदेवी, गोताई, चौथा पुत्र संघवी शीतल उसकी भार्या हीराई उनके दो पुत्र भोजा जिसकी स्त्री जावाई, दूसरा सिंघवी भीमा उसकी दो स्त्रियां कालाई जिसका पुत्र सीतल दूसरी स्त्री देवकु इत्यादि समस्त परिवार के साथ मंदिर निर्माण करा कर प्रतिष्ठा की।

इस प्रकार यह ऋषभनाथ का मंदिर जो कि नेमिनाथ मंदिरके नामसे प्रसिद्ध है काष्ठासंघी भट्टारकोंके भक्तबघेरवाल जातीय सेठने वि० सं० १५५३ में तयार कराया। अपूर्ण

क्वेटा भूकम्प

मूर्ख मोही मनुष्य मोह ममता में लीन होकर अपने आत्मिक सुधार और भविष्य का कुछ भी ध्यान नहीं रखता, धन सम्पत्ति पर अपना अमिट अधिकार मानकर अभिमान से फूला नहीं समाता किन्तु दुर्भाग्य की जोरदार टक्कर यकायक जब इस के मान का पददलन कर देती है तब इस को कुछ क्षणिक होश आता है।

गतवर्ष बिहार में १५ जनवरी को जो भयानक भूचाल आया था उस की भीषण कथा अभी भारत-निवासियों के कानों में गूँज रही थी कि अभी ३० मई की रात को प्रचंड भूकंप ने भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर बसे हुये क्वेटा नगर के उन्नत मस्तकको जमीनमें मिलादिया। यह भूकंप बिहार से अनेक बातों में बढ़ा चढ़ा था। यह १३० मील लम्बे २० मील चौड़े क्षेत्र में आया। लोग जिस समय रात को मीठी नींद में आनंद से सो रहे थे उस समय तीन बज कर ५ मिनट पर एक मिनट के भीतर भूकम्प ने सर्व नाश कर दिया लोगों को आत्मरक्षा का जरा भी अवसर न मिला जो लोग सोते समय अपने आपको लक्षाधीश या बड़ा अफसर अथवा धन जन सम्पन्न सुखी मान कर निद्रा की गोद में आराम कर रहे थे वे सवेरा होने से भी पहले खाक में मिल गये जो किसी तरह बचे भी वे नंगे भिखारी हीन होकर बचे। रात का लक्षाधीश सवेरे अपनी भूख मिटाने के लिये सूखी रोटी माँगने लगा।

क्वेटा एक नवीन सुन्दर, समृद्ध, सभ्य शिक्षित जनता पूर्ण नगर था इसकी जन संख्या लगभग ४५ हजार थी अंग्रेज सरकारने अफगानिस्तान के मार्ग से भारत वर्ष पर होने वाले आक्रमणसे बेखटकेरहने के उद्देश से अफगानिस्तान युद्ध से लौट कर सन १८८४ में यह स्थान अपनी सुदृढ़ छावनी के लिये उपयुक्त समझा तदनुसार लोगों को स्वल्प मूल्य पर जमीन बेच कर इस क्षेत्र को आबाद कर क्वेटा नगर सब तरह सुन्दर संपन्न बनाया। यहांपर डेरागाजीखानके लगभग आठ हजार मनुष्य थे जिसमें इससमय केवल ४०० बचे हुए अनुमान किये जाते हैं। क्वेटा के पास कलातकी जन संख्या ३००० और मस्तुँग की ७००० थी इस प्रकार इस ५६ हजार की आबादी में केवल १५ हजार स्त्री पुरुष बचे हुये अनुमान किये गये हैं लगभग १०० गाँव भी नष्ट हो गये हैं।

क्वेटा छावनी की फौज को अधिक हानि नहीं पहुंची इसी कारण क्वेटा की बची खुची सम्पत्ति का बचाव होगया अन्यथा पास के लुटेरे पठान पता नहीं क्या करते जो लूट के खयाल से आस पास से आ गये थे उन को सैनिकों ने मार भगाया।

इस भूकम्प में लगभग ४०० अंग्रेज जिन में कि अनेक अफसर भी थे मारे गये। क्वेटा में सरकारी नौकर अधिकतर हिन्दू थे वे बहुत से मारे गये एक रायसाहिब सेठ का परिवार ४६ स्त्री पुरुषों का था जिनमें से कोई भी नहीं बचा। देहली के एक व्यक्ति के पास क्वेटा में दो लाख रुपये थे वह ६ पैसे लेकर वापिस लौटा है। एक लक्षाधीश परिवारके २१ स्त्री पुरुष थे जिनमें केवल एक युवती स्त्री बची वह भी रात के समय नंगी सो रही थी इस कारण भूकंप के बाद उसने मुर्दा लाश से कपड़े उतार कर अपना

शरीर ढांपा। एक ७ मास की अकेली लड़की जीवित निकली। एक परिवार में पति, पुत्र, युवती दो लड़कियां आदि सब मर गये केवल जवान माता घायल अवस्था में एक महीने की पुत्री के साथ बची लड़की को जरा भी चोट नहीं आई थी। ४-५ सेर सोने के अतिरिक्त ५० हजार रुपये अन्य संपत्ति उसी मलबे के ढेर में दबी रह गई। इस तरह की करुणाजनक हजारों सत्य कथाएं हैं।

भूकम्प पीड़ितों से भरी हुई स्पेशल रेलगाड़ियाँ क्वेटा से लाहौर के लिये मुलतान होकर जाती रही हैं। मुलतान स्टेशन पर स्थानीय हिन्दू संस्थाओं की ओर से क्वेटा पीड़ितों की सेवा का पर्याप्त प्रबन्ध है। उनकी सेवा करने का अवसर हमको भी मिला जिस से उन अभागे पीडितों की दयनीय दशा का बहुत कुछ अनुभव हुआ। पत्थरदिल मनुष्य भी उन पीड़ितों की करुणाजनक दशा देखकर अपने आंसू नहीं रोक सकता।

अनेक भाग्यशाली परिवार ऐसे भी रहे जिनके समस्त प्राणी जीवित निकल आये। उनमें से एक परिवार मुलतान निवासी ला० पद्मचन्द्र जी जैन गोलवछा का है। पद्मचन्द्र जी व्यापार के लिये २-३ वर्ष से क्वेटा गये थे वहां पर इनकी विसातखाने की दो दुकानें थीं। इनका परिवार ऊपरी मंजिल में रहता था। जिस समय भूचाल आया तो सब से पहले अनेक चोटें खा कर खिड़की के रास्ते पद्मचन्द्र जी निकले किन्तु घायल होने के कारण किसी और को न निकाल सके। फिर उनका छोटा पुत्र चि० जय-कुमार (१२ वर्ष) अपने आप अपने ऊपर का मलवा हटाकर बाहर आया उसने अपने बड़े भाई माणिकचन्द्र को बाहर निकाला। तदनंतर दोनों भाइयों ने अन्य सब को निकाला। इस तरह परिवारके समस्त (१३) प्राणी काल के गाल से बाहर आ गये। परन्तु पद्म-चन्द्र जी को दूसरे दिन निमोनिया हो गया जो कि घातक सिद्ध हुआ और उनके प्राण लेकर ही रहा। पद्मचन्द्र जी ने समाधिमरण से 'अर्हंत' करते हुवे परलोकयात्रा की। पद्मचन्द्र जी एक चतुर नीतिज्ञ, कर्मण्य व्यक्ति थे। उनकी मृत्यु से मुलतानादि, जैन समाज की बहुत भारी हानि हुई है।

भूकम्प पीड़ितों की सेवा का कार्य पंजाब की अनेक संस्थाओं ने किया है। मुलतानकी सेवासमिति ने क्वेटा पहुंचकर पीड़ितों की आदर्श सेवा की है। जैन स्वयं सेवकों ने भी मुलतान स्टेशन पर रातदिन अन्य हिन्दू सेवकोंके साथ प्रशंसनीय कार्य किया है।

भूकम्प का ज्ञान पशु पक्षियों को पहले ही से हो जाता है तदनुसार भूकम्प से दो दिन पहले पक्षी क्वेटा से उड़ कर कहीं चले गये थे। भूकम्प आने से कुछ समय पहले एक पालतू कुत्ते ने भौंक भौंक कर उस परिवार को जगा दिया जिससे समस्त परिवार भूकम्प की दुर्घटना से बच गया।

क्वेटा के नीचे ज्वालामुखी पर्वत का अनुमान किया गया है उसीके कारण यह भूकम्प हुआ। अंग्रेज सरकार नवीन क्वेटा अवश्य शीघ्र बसावेगी ऐसा अनुमान है, क्वेटा भूकंप फंड में ब्रिटिश पार्लिमेन्ट ने ५० हजार पोण्ड, भारत सरकार ने ५ लाख रुपये पंजाब सरकार ने एक लाख रुपये दिये हैं। देशी राज्य तथा दानी महानुभाव भी दान कर रहे हैं।

—अजितकुमार

-※-

प्राप्ति स्वीकार और समालोचना

जैन-भारती—लेखक पं० गुणभद्र जैन 'कविरत्न' प्रकाशक दुलीचंद पन्नार मालिक जिनवाणी प्रकाशक कार्यालय, १६१/२ हरीसन रोड, कलकत्ता, मूल्य सवा रुपया।

बहुत दिन हुये, हिन्दी संसार के सुप्रसिद्ध कवि मैथिलीशरण गुप्त ने भारत भारती नाम से एक काव्य ग्रंथ रचा था। उस समय इस ग्रन्थ की बहुत ख्याति थी। यदि कहा जाय कि भारत भारती की बदौलत ही गुप्त जी का इतना अभ्युत्थान हुआ तो कोई अत्युक्ति न होगी। पं० गुण भद्र जी ने भी जैन भारती रचकर उस दिशामें अपना पैर बढ़ाया है यद्यपि आपकी कविता को हिन्दी संसार में वह स्थान प्राप्त नहीं होता फिर भी जैन हिन्दी संसार के लिये वह एक अजीब चीज है। अस्तु

यह पुस्तक तीन खण्डों में विभाजित है भूत वर्तमान और भविष्य। भूत में जैनों की अतीत दशा का वर्णन है, वर्तमान में वर्तमान का और भविष्य खंड में उन्नति की आशा दिखलाते हुए कुछ उपाय बतलाये गये हैं। यद्यपि पुस्तक बहुत सरल और लेखक की प्रथम कृति समझ कर उसके दोषों और कमियों को भुलाया भी जा सकता है फिर भी हम चाहते हैं कि यह सर्वाङ्ग सुन्दर बने और द्वितीय संस्करण में कुछ सुधार कर दिया जाये इस लिये कुछ बातों की ओर लेखक महोदय का ध्यान आकर्षित करते हैं—

इस पुस्तकमें सब से बड़ी कमी यह है कि विषयों का विभाग सिलसिले वार नहीं है। भोगभूमि के बाद ही आदर्श पुरुषों और स्त्रियों का वर्णन किया गया है पुरुष और स्त्रियों का उल्लेख भी किसी क्रम को लेकर नहीं किया गया। सम्यग्दर्शन के आठ अंगों में से निःशंकित अंग का वर्णन क्यों नहीं किया गया पता नहीं? श्रुतज्ञान में केवल दृष्टिवाद के कुछ भेदों को गिनाया है जो खटकता है यदि गिनाना ही था तो सब अंग और पूर्वों का उल्लेख करना चाहिये था। हमारे शास्त्रों में धवला आदि सिद्धान्त ग्रन्थों का नाम अवश्य आना चाहिये। प्रातःकाल के वर्णन में घण्टी बजने का उल्लेख शायद आधुनिक रीति को ले कर लिख दिया है जो अतीत खण्ड में खटकता है।

वर्तमान खण्ड के महाराज खारवेल के शिलालेख को २५०० वर्ष पुराना बतलाया गया है। इसी अकलंक देव को भट्टारक बना डाला है संभवतः भट्टाकलंक से लेखक ने भट्टारक समझ लिया है यह विद्वानों की एक पदवी थी। भट्टारकों को पापी और भ्रष्ट आदि लिखना सभ्यता की दृष्टि से उचित नहीं जान पड़ता।

कविता में कहीं २ ऐसे शब्द आगये हैं जो मुझे कानों में पत्थर के समान करकते हैं जैसे 'अंक का परिकाय' 'तकदीर का ही खोर है' आदि।

कहीं २ अर्थ विपर्यास भी हो जाता है जैसे—

श्री सोमदेवाचार्य कृत है 'नीति वाक्यामृत' बड़ा
हर एक जिसका श्लोक सुन्दर नीतिरत्नों से जड़ा॥
यह 'रत्नमाला' विश्व में मणिमाल जा सकती कही

यहाँ बीच की पंक्ति का सम्बन्ध 'रत्नमाला' से जोड़ा गया है किन्तु शब्दों की महिमा से वह 'नीति-वाक्यामृत' के साथ लगता है। अस्तु, अब हम लेखक

की उत्तम कविता का नमूना पाठकों की भेंट करते हैं—

आधुनिक जैनी

हा ! जैन कहनेमें हमें आती अधिकतर लाज है।
ऐसी अवस्था कब हुई जैसी अवस्था आज है ॥
यों जैन कहते हैं किसे ? पूछे कभी यदि दूसरा।
बस पंडितों से पूछिये मुख से निकलती है गिरा ॥

सम्पादक

भाषा न आती शुद्ध लिखना पत्र सम्पादक बने।
बस पूर्णतः वे जाति में संक्लेश उत्पादक बने ॥

उपदेशक

जो यत्न करने पर कभी उपदेश मिलता था नहीं।
अह, आज तो उपदेश, बिन यत्न मिलता सब कहीं।
उपदेशकों का आज कल देखो भरा बाजार है।
अब तो टकों पर शीघ्र उपदेशक यहां तैयार है।
सब खर्च मिलता है सभा से सैर करने के लिये।
फिर क्यों न हों तैयार जन उपदेश देने के लिये ॥
बस रट लिये दो चार भाषण देखकर अखबार में।
देते फिरेंगे घूमकर उसको सकल संसार में ॥

सोला

मैली कुचैली धोतियों को अगर यदि छू ले कहीं।
तब तो रसोई के जरा भी काम की रहती नहीं ॥
भोजन भवन की धोतियों में मैल रहता है कुवा।
सोला बिना पर छू न सकतीं वे रसोई का तवा ॥

पुस्तक जितनी उत्तम है कागज छपाई और जिल्द भी उसी के अनुरूप है, प्रत्येक जैनी को इसकी एक प्रति खरीद कर अवश्य पढ़ना चाहिये। इस पुस्तक में एक यह भी विशेषता है कि यह समाजकी दलबन्दियों से दूर रह कर लिखी गई है अतः लेखक इसके लिये बधाई के पात्र हैं।

यति बालचन्द्र जी

अपने प्राचीन महान आचार्यों की भूल खोजी

श्वेताम्बर जैन सिद्धान्त ग्रंथों में स्त्रियों को १४ पूर्व के ज्ञान न होने का निषेध किया है इस बातका समर्थन तो प्राचीन महान श्वे० जैन आचार्यों ने किया है किन्तु निषेध नहीं किया परन्तु खामगांव निवासी श्रीमान यति बालचन्द्र जी ने २० मई के श्वे० जैनमें इस सिद्धान्त को श्रीहुर्षाचार्य की अन्धपरम्परा बतला कर असत्य बतलाया है। उनके कतिपय शब्द इस प्रकार हैं-

"स्त्री और पुरुष को संसार में समान अधिकार हैं परन्तु पुरुषों ने स्त्रियों के गले में गुलामी की जंजीर डालकर उनको सदा के लिये पुरुष के अधीन रखने के हेतु से अधिक विद्या पढ़ाई जाती नहीं थी। यदि पढ़ाई जाती तो १४ पूर्व का ज्ञान संपादन करने की उनमें शक्ति अवश्य रही हुई है। . . . .
अतएव स्त्रियों में १४ पूर्वका ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति नहीं है यह कहना अन्धपरम्परा है। स्त्री हुषा-चार्य ने स्त्रियों की उन्नति का मार्ग रोक रक्खा है।"

जैन समाज को विशेष करके श्वे० जैन समाजको यति जी का आभारी होना चाहिए जो उन्होंने अपने पुरातन महान आचार्यों की पक्षपात पूर्ण मोटी भूल खोज निकाली है। इस विषय में विशेष न लिखकर यति जी से मैं नीचे लिखी बातों का उत्तर चाहता हूँ जोकि स्त्री पुरुषों के समान अधिकार पर प्रकाश डालेगी।

१-स्त्रियों को १४ पूर्वका ज्ञान नहीं होता यदि प्राचीन श्वे० आचार्यों का सिद्धान्त जिनवाणी समझा जावे अथवा स्त्रियोंको १४ पूर्वका ज्ञान हो सकता है

यह आपका कथन जिनवाणी माना जाय ? यदि आपका कथन जिनवाणी है तो क्यों ?

२- समानाधिकार होने पर भी मल्लिकुमारीका तीर्थङ्कर होना श्वे० ग्रंथोंमें अछेरा क्यों बतलाया है ?

३- समानाधिकार की अवस्था में सरागतपस्या का फल स्त्रियोंको १२ स्वर्गसे ऊपर पहुँच कर अह-मिन्द्र होना क्यों नहीं प्राप्त होता ।

४- प्रवचन सारोद्धार, कर्मग्रंथ आदि श्वे० ग्रन्थों के अनुसार स्त्रियों को अपर्याप्त अवस्था में सम्यक्त्व क्यों नहीं होता ? तथा कल्पातीत देव स्त्रीपर्याय नहीं पाते ऐसा श्वे० सिद्धान्त सत्य है या असत्य ?

५- चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण, प्रतिनारायण आदि लोकमाननीय पद तथा सप्तमनरक स्त्री को क्यों नहीं प्राप्त होता ?

६- स्त्रियाँ पुरुष के समान सर्वोत्कृष्ट साधु जिन कल्पी (नग्न) हो सकती हैं ?

७- समानाधिकार होने पर क्या कोई स्त्री भी स्त्री पुरुषों को शिक्षा दीक्षा देने वाली आचार्य या यति हुई है ?

इससे आपके समानाधिकार वाली बातका खुलासा होजायगा । शेष फिर—वीरेन्द्र जैन

—※—

समाचार

—मुलतान में गत मास में जो दो हिन्दू पुरुषों और एक बच्चे की कायरतापूर्ण हत्या हुई थी उसका फैसला हो गया। ३ आदमी भागे हुये हैं उनके नाम वारंट निकले हुये हैं जो अपराधी पकड़े हुये थे उनमें से दो को फांसी का दंड, दोको सात सात वर्ष कड़ी सजा मिली है । ४ बरी कर दिये हैं ।

—क्वेटा में मलबे के नीचे दबे हुये एक स्त्री के बच्चा पैदा हुआ दोनों जीवित निकले हैं ।

—करांची के सेठ तोलाराम जीके विषयमें क्वेटा भूकम्प से मर जाने के समाचार जानकर उसके घर मृत्युशोक मनाया गया मृत्यु के पीछे होने वाले सामाजिक नियम पूर्ण किये गये किन्तु उसके पीछे खबर मिली कि वे अन्दर से जीवित निकले हैं । यही बात एक अमृतसर के सिक्ख सरदार के विषय में हुई ।

—भूकम्प पीड़ित लोगों की गाड़ी क्वेटा से लाहौर को आ रही थी उनमें से एक आदमी सोते से डरा उसने गाड़ी को हिलते देखकर समझा कि भूचाल आ गया है ऐसा समझ कर मुलतान स्टेशन से ३-४ मील दूरी पर चलती गाड़ी से कूद पड़ा वहाँ जा कर इसको बहुत खोजा गया किन्तु उसका कुछ पता न चला ।

—इंगलैंड के प्रधान मंत्री रैमजे मैकडानोल्ड ने अपने पदसे त्यागपत्र दे दिया है अब इनके स्थान पर मि० बाल्डविन नियुक्त किये गये हैं ।

—क्वेटा भूकम्प से पीड़ित महिलाओं के लिये करांची में एक सेठ ने एक लाख रुपया प्रदान करके एक विधवाश्रम खोला है ।

—जयपुर महाराज ने ६० लाख की लागत से जयपुर में वायु प्रासाद नामक एक नया राज महल बनाने की घोषणा लन्दन में कर दी है । यह महल ताज महलकी टक्कर का होगा और इसके फर्नीचर आदि सामान जयपुर नरेश लन्दन में खरीद रहे हैं ।

मिट्टी के तेल का फुव्वारा ।

—फारिस की खाड़ी के पास अललहसार में कुछ मजदूर मिट्टी खोदने का काम कर रहे थे कि अचानक मिट्टी के तेल का एक फुव्वारा जमीन में से बड़ी तेजी के साथ फूट निकला जिसने वहां की तमाम नीची जमीन को भर दिया । इससे वहां बड़ी खुशी मनाई जा रही है ।

REGD. N. L. 3459.

अजितकुमार जैन के प्रबन्धसे "अकलंकप्रिंटिंग प्रेस, मुलतान में छपकर प्रकाशित हुआ।

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर
जैनशास्त्रार्थ संघ का
पाक्षिक मुख-पत्र

जैन दर्शन

अंक २४

वर्ष २

सम्पादक --

पं० चैनसुखदास न्यायतीर्थ,
जयपुर।

पं० अजितकुमार शास्त्री मुलतान।

पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री बनारस।

वार्षिक ३) एकप्रति ≈)

आषाढ़ सुदी १ सोमवार
१ जोलाई --१९३५ ई०

स्वागत

लगभग १९ २० वर्ष पहिले स्वर्गीय श्रीमान बा० देवकुमारजी आराने श्रीमान बा० पद्मराज जी रानीवाले की संपादकतामें 'जैन सिद्धान्त भास्कर' नामक एक ऐतिहासिक त्रैमासिक पत्र प्रकाशित किया था जोकि एक वर्ष तक प्रकाशित होकर फिर अस्त होगया अब उसी भास्कर का उदय उक्त बा० जी के सुपुत्र श्रीमान बा० निर्मलकुमार जी तथा श्रीमान बा० चक्रेश्वर कुमार जी बी० एस० सी०, बी० एल० के उद्योगसे उसी त्रैमासिक रूपमें हुआ है। जैनदर्शन अपने प्रिय सहयोगी का सहर्ष स्वागत करता है।

भास्कर के संपादक मंडलमें जैनसमाज के आशास्पद श्रीमान प्रोफेसर हीरालालजी एम० ए०, प्रोफेसर ए० एन० उपाध्ये एम-ए० बा० कामता प्रसाद जी तथा पं० के० भुजबली जी शास्त्री का शुभनाम विद्यमान है। प्रकाशन 'जैन सिद्धान्त भवन आरा' से हुआ है। मुख पृष्ठ पर उक्त भवन का बाहरी चित्र है। भवन के पीछे पर्वतमाला, सूर्य उदय दिखलाया है।

इस पहली किरण में एक कल्पितचित्र तथा अनेक असल फोटो चित्र हैं। ६ लेख हिन्दी में और पांच अंग्रेजी में हैं। लेखोंका संकलन तथा कागज, छपाई आदि उत्तम है। आशा है दि० जैन समाज के गौरवमय इतिहासका भास्कर की किरणों से संसार में प्रकाश होगा। वार्षिक मूल्य ४) है।

---अजितकुमार

अकलंकदेवाय नमः

श्री जैनदर्शनमिति प्रथितोग्ररश्मिर्भूयादभवन्निखिलदर्शनपक्षदोषः,
स्याद्वादभानुकलितो बुधचक्रवन्द्यो भिन्दन्तमो विमतिजं विजयाय भूयात्

वर्ष २ | श्री आषाढ़ सुदी १—सोमवार श्री वीर सं० २४६१ | अङ्क २४

जैन-दर्शन

तृषितों की तू अमृत धारा,
निराश्रयों का प्रबल सहारा,
विश्व गगन का उज्वल तारा,
जग भर में सब से भी न्यारा ।
तेरी सुखद छत्रच्छाया का, जो लेता आधार,
जन्म-मरण से शीघ्र मुक्त हो, सहता नहीं जगभार॥१॥

स्याद्वाद का मंत्र सुनाया,
निर्भयता का पाठ पढ़ाया ।
हिंसा को जग से भगवाया,
जीवित हमें मनुष्य बनाया ।
तेरे उपकारों का जब जब, आता हृदय विचार,
तब तब रोमाञ्चित तन होता, बहती दृग-जलधार ॥२॥

दुर्भावों प्रति भाव नहीं है,
मकड़ी जैसा दाव नहीं है ।
खोटा लेश प्रभाव नहीं है,
मिथ्या कोई स्वभाव नहीं है ।
प्रबल प्रमाण युक्ति मय तेरे, हैं सारे सिद्धान्त ।
सत्य देखते, जो विचारते, छोड़ पक्ष एकान्त ॥३॥

लेखक—गुणभद्र जैन,
अध्यापक—जैन आश्रम

भूकम्प

मनुष्य यदि मृत्यु पर विजय पा लेता तो पता नहीं उसका अभिमान कहांतक जा पहुंचता। साधारण सा बल, विभूति अधिकार पाकर मनुष्य का दिमाग अभिमान के नशे में गर्क होजाता है वह अपने बल, वैभव, अधिकार को अपनी अक्षय निधि मानकर समस्त संसार को तुच्छ समझता है किन्तु प्रकृति (दैवी चक्र) किसी न किसी मार्गसे अभिमानी पुरुष का गर्व चूर चूर करके मिट्टी में मिला देता है। उस टक्कर से मूर्ख पुरुष का दिमाग कुछ समय के लिये ठिकाने आता है परन्तु फिर वह भूल जाता है।

अभिमानी का मानमर्दन होने के चोर, डाकू, अग्नि, जल, राजविप्लव, प्लेग, हैजा, आदि अनेक साधन हैं, किन्तु उन सबसे बलवान साधन भूकम्प' है। प्लेग आदिसे मनुष्य जातिकी कुछ प्राण हानि तो होती है किन्तु उससे जनता की रक्षा भी होजाती है। प्लेग फैलने में प्लेग से आक्रान्त मनुष्य के मरने में कुछ समय लगता है, उससे आर्थिक हानि नहीं होने पाती, पानी की बाढ़ और आग में भी बहुत कुछ बचाव होजाता है, मनुष्य का बुद्धिबल वहां थोड़ा बहुत सफलता पालेता है किन्तु भूकम्प से जो सामूहिक विनाश होता है उससे बचना शक्ति से बाहर की बात है वहां तो पूर्व सञ्चित भाग्य ही रक्षा कर सकता है। जिस नगर को आग १० २० दिनमें भस्म करे उस नगर को भूकम्प एक मिनट में जमीन पर लिटा दे और उसमें रहने वाले एक भी प्राणी को जीवित न छोड़े।

भूकम्प उन स्थानों पर अधिकतर आते है जिनके समीप ज्वालामुखी (अग्नि उगलने वाले) पहाड़ होते हैं या जिन स्थानों के नीचे गंधक आदि भड़क उठने वाले पदार्थों की खानें होती हैं। ज्वालामुखी पहाड़ में जब भयानक विस्फोट होता है तब एकतो पृथ्वी जोरसे हिलती है दूसरे उनसे लावा, राख या पत्थर आदि बाहर निकलते हैं अनेक धातुओं का गलकर बनाहुआ यह गर्म लावा बहकर जहां पहुँचता है वहाँ मकान, प्राणि आदि कुछ भी नहीं बचता। इसी तरह जब ज्वालामुखी पहाड़ों से पत्थर उछल २ कर बरसते हैं तब वे आसपास मीलों तक मैदान साफ कर देते हैं।

इटली देश के 'पम्पिआई' नामक नगर का विनाश वेस्युवियस नामक ज्वालामुखी पर्वत से ही हुआ। पम्पिआई नगर एक सुन्दर, समृद्ध नगर था। वह समुद्र के किनारे पर्वत की ढलान पर बसा हुआ था। गर्मी के दिनों में आराम और विनोद करने के लिये इटली के धनिक विलास प्रिय मनुष्य वहां आया करते थे। जिस समय वेस्युवियस पर्वत ने अग्निवर्षा शुरू की वह समय ग्रीष्म ऋतु का ही था। २५ अगस्त सन ७९ के दिन शामको लगभग ४ बजे के समय अग्नि उगलना शुरू किया था जोकि तीन चार दिन तक उगलता रहा उस अग्नि या गर्म राख की वर्षा से जन हानि अधिक नहीं हुई थी क्योंकि जोरदार भूकम्प नहीं आया था इस कारण मकान खडे रहे थे। वहां तो प्रायः वेही मनुष्य मरे जोकि रोगी, वृद्ध, भागनेमें असमर्थ थे। अथवा धनका लोभ जिन्हें अपने खजाने की ओर खींच लेगया किन्तु पहाड़ से गर्म राख इतनी अधिक बरसी कि सारा नगर उसमें ऐसा दब गया कि

फिर खोज करने वालों को पता ही न चला कि पम्पिआई शहर कहां था।

उस स्थान का पता सन १७१३ में कुआँ खोदते समय लगा। सावधानी से खुदाई होने पर शहर बाहर निकल आया है उसके मकानों में वे भी नर-कंकाल प्राप्त हुए हैं जो मुहरों की थैलियों से चिपके हुये थे।

सन ५२६ में रायटा के भूकम्प से ढाई लाख आदमी मृत्यु के मुँहमें चले गये थे। अभी १३ वर्ष पहिले जापान में जो भयानक भूकम्प आया था उस से जापान की राजधानी टोकियो नगर तबाह होगया था। इस भूकम्प से मकान गिरे, आग लगी तथा समुद्र का पानी ऊंचा नीचा हुआ। लगभग २० पद्म रुपये की हानि हुई। किन्तु जापान में ज्वालामुखी पर्वतों की अधिकता होने से भूकम्प प्रायः आते ही रहते हैं इस कारण भूकम्प पीड़ा के सहन करने का साहसी जापानी लोगों को अभ्यास होगया है। इस से तथा जापान सरकार की पूर्ण सहायता प्राप्त कर लेने के कारण टोकियो नगर इस समय पहले भी अधिक उन्नत रूप में है।

भूकम्प के पहले इस नगर में २२ लाख मनुष्य रहते थे। किन्तु अब वहां ५५ लाख मनुष्य रहते हैं। आठ दस वर्ष के भीतर जापान सरकार ने ६० पद्म रुपया खर्च करके अपनी राजधानी के मकान ऐसे बनवा दिये हैं कि जो न तो भूकम्प से गिर सकते हैं और न अग्नि से जल सकते हैं।

भारतवर्ष में भी गत २०० वर्षो में लगभग बड़े ६ भूकम्प आचुके हैं। अभी गत वर्ष बिहार में जो भूकम्प आया था वह जमीन के भीतर एकत्र हुई गैसके पृथ्वीतल को फाड़ कर निकलने के कारण आया था जिसमें अनेक स्थानों पर जमीनें फटीं। अन्दर से बालू, पानी कीचड़ आदि निकली तथा जो कुछ हुआ वह सब किसी को मालूम है। उसी भूकम्पमें कलकत्तेका एक ३मंजला मकान जो झुकाहुआ था वह सीधा होगया और एक जगह जहां गर्मियों में भी २५-३० फीट पानी का गहरा खड्डा होनेसे नाव चलती थी, २३-२४ फीट ऊंची जमीन होगई।

अभी ३० मई को रातको कोयटामें जो भयानक भूकम्प हुआ जिसमें सारा शहर जमीन पर सोगया उसकी सूचना कोयटा निवासी लोगों को ४-५ वर्ष पहिले ही मिल गई थी। उस समय भी जमीन हिलती रहती थी जिससे लोग कोयटा छोड़कर भागते रहते थे। इस कारण वहां दो आने सेर अंगूर होगये थे। रेलगाड़ी उस समय १० मील प्रति घंटे की रफ्तार से चलती थी। परन्तु कुछ दिनों में जब जमीन का हलन चलन बंद हो गया तब लोग फिर आ गये और उस अनिष्ट सूचना को एक दम भूल गये।

कोयटा एक शीत प्रधान नगर था आजकल गर्मी के दिनों में भी वहाँ पर लोग रात को रजाई ओढ़ कर मकानों के भीतर सोते थे। इसी कारण इन दिनों में वहां बहुत से लोग बाहर से सैर करने के लिये तथा गर्मी के दिन बिताने के लिये आये हुये थे। तदनुसार इस भूकम्प के समय भी वहाँ बाहर के अनेक मनुष्य थे। यह भूकम्प रात के समय ३ बजकर ७ मिनटपर आया। गहरी नींद सोते रहनेके कारण लोगों को कुछ पता न चला अतः वे बचने के लिये मकानों से बाहर दौड़ कर न जा सके।

इस भूकम्प से जनता की जो अपार धन जन हानि हुई है उसका तो अनुमान लगाना अभी कठिन

है उसका तो जब हिसाब लगेगा तभी पता चलेगा किन्तु रेलवे की लगभग ५० लाख रुपये की हानि हुई है और सरकार ने अपनी हानि का अन्दाजा ५ करोड़ रुपये के करीब लगाया है। जन हानि सब में अधिक कोयटा में रहने वाले डेरागाजीखान के मनुष्यों की हुई है। वे आठ हजार में से करीब सात हजार मारे गये हैं। भूकम्प पीड़ितों की कोयटा में पहुँच कर सब से अधिक सेवा मुलतान की सेवा समिति ने की है।

आने वाला भूकम्प का भयानक भाई

पश्चिम दिशा में जिस भयानक भूकम्प के आने की आशा की है उसका नाम 'महायुद्ध' होगा। यह होने वाला महा युद्ध यूरोप का सर्वनाश कर देगा। और करेगा भी भूकम्प की तरह थोड़े से समय में।

सन १९१४ के महायुद्ध के पीछे यूरोपियन विद्वानों के दिमाग इस बात की खोज में लगे हुये हैं कि चार वर्ष के युद्ध में बहुत थोड़े मनुष्य मरे इससे कई गुणे मनुष्य बहुत थोड़े समय में मर जाने चाहियें इस अभिलाषा को सफल बनाने के लिये यूरोप का प्रत्येक देश तोप, जहाज, वायुयान, गैस आदि प्राणनाशक सामान तयार कर रहा है।

जर्मनी का शासन सूत्र जब से हिटलर के हाथ में आया है तब से जर्मनी युद्ध के लिये असाधारण तयारी में लग गया है और यदि समाचार पत्रों के लिखे अनुसार उसकी तयारी में अत्युक्ति या असत्य का अंश नहीं तो वह थोड़े से समय में अपने शत्रु देश का सर्वनाश कर सकता है उसने जहां प्रत्येक युवक को सैनिक शिक्षा का मार्ग खोला वहीं भयानक प्राणघातक सामग्री भी तयार की है। निम्नलिखित सामान का जर्मनी ने अविष्कार किया है—

१—"ऑल पियर्सिंग बुलेट" ऐसी गोलियाँ जो कि ६ इंच मोटे लोहे या इस्पात को भी पार कर जाँयगी। यह गोलियां ४ लाख अस्सी हजार प्रति दिन जर्मनी तयार करता है।

२—'जेड्रे'—ऐसी तीव्र किरण रूप तीव्र ज्वाला जिसके प्रयोग से तोपें तुरंत गल जावें हवाई जहाज, टैंक तुरंत पिघल कर टुकड़े टुकड़े हो जावें, पुल नष्ट हो जावें। बख्तरदार मोटरें तुरंत पिघल जावें।

३ रोटेटिव- घूमने वाली ऐसी बंदूक जो एक मिनट में एक हजार गोलियाँ बरसा सकती है। ऐसी बंदूकें प्रति दिन दो हजार तयार हो रही हैं।

४—मशीनगन— ये ऐसी नयी, हलकी मशीनगनें बनीं हैं जिनका वजन केवल ६ सेर होगा जिन में से प्रति मिनट दूर तक ६०० गोलियाँ छोड़ी जा सकेंगी।

५—स्ट्रॉटोस्फर राकेट—यह एक ऐसा भयानक अस्त्र होगा जो दोसौ मील दूर तक (प्राणघातक जहरीली और आग लगाने वाली गैस) छोड़ा जासकेगा जिस से बड़े २ नगर और सेनाएं दम घुट कर मर जावेंगी। पक्षी भी जीवित न रह सकेंगे।

ऐसी तयारियाँ यूरोप के अन्य देश भी कर रहे हैं इससे प्रतीत होता है कि यूरोप उस भयानक भूचाल का ग्रास बनेगा जैसा कि अभी तक कोई नहीं बना उसकी सभ्यता उसी का सर्वनाश करेगी।

—अजितकुमार जैन

तीर्थ भूमियां

श्री ऋषभदेव–धुलेव (केसरियानाथ)

[गतांक से आगे]

श्री ऋषभदेव (धुलेव) तीर्थक्षेत्र के "मूलमंडप खेला मंडप, नव चौकी तथा आदिनाथ मंदिर" (नेमिनाथ मंदिर) ये चार भाग काष्ठासंघी गद्दी-नशीन भट्टारकों के शिष्यों ने भिन्न भिन्न समय में तैयार कराये यह बात पूर्वलिखित तीन शिलालेख प्रमाणित कर चुके हैं। अब आगे चलिये—

आदिनाथ मंदिर जो कि "नेमिनाथ मंदिर" के नाम से प्रसिद्ध है उससे आगे देवकुलिकाएं प्रारंभ होती हैं देवकुलिकाओं में घुसते ही दीवाल पर एक शिला-लेख लगा हुआ है जिसकी प्रतिलिपि इस प्रकार है—

१—संवत् १७५४ वर्षे पोषमासे कृष्णपक्षे पंचम्यां

२—बुधे श्री काष्ठासंघे नदीतटगच्छे विद्यागणे भ

३—ट्टारक श्री रामसेनान्वये तदनुक्रमेण भट्टा

४—रक श्री राजकीर्ति तत्पट्टे भ० लक्ष्मीसेन तत्पट्टे

५—भ० श्री इन्द्रभूषण तत्पट्टे भ० सुरेन्द्रकीर्त्यु ·पदेशा

६—त हुंबड ज्ञातौ वृद्धशाखायां विश्वेश्वर गोत्रे साहा

७-आल्हा वंश सेठ भूपत भार्या रुपादे तयोःसुत

८-सेठ कहान जी भार्या कसनबाई द्वितीय भार्याहं

९-साबाई सुत सेठ सुं (ब) ल संघ भार्या सा-हिबदे द्वितीय

१०—भार्या रूपा सेठ हरू इत्यादि सपरिवार स संप्रश्री

११—हरबाई तेन लघु प्रासादे का··············

१२—···सेठजीका सु० ज० सकरण म० रामकीर्ति

भावार्थ—विक्रम सं० १७५४ पौष वदी १२ बुध वार श्री काष्ठासंघ नदीतटगच्छ और विद्यागण के भट्टारक श्रीरामसेन की परम्परा में भट्टारक श्री राज-कीर्ति उनके पट्टधर भट्टारक श्री लक्ष्मीसेन उनके पट्टधर भट्टारक श्री इन्द्रभूषण उनके पट्टधर भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति के उपदेश से हूमड़ जातीय, वृद्ध शाखा वाले, विश्वेश्वर गोत्री साह आल्हा के वंशज सेठ भूपत उनकी पत्नी रूपादे, उनके पुत्र सेठ कहान जी पत्नी किसनबाई, दूसरी पत्नी हंसाबाई, उनका पुत्र सेठ सुँ (ब) ल सिंह उसकी पत्नियाँ साहिबदे और रूपा इत्यादि परिवार सहित सेठ हरू, हरबाई ने लघुप्रासाद (छोटा मंदिर) बनाया।

इस प्रकार देवकुलिकाओं का निर्माण भी काष्ठा संघी भट्टारकों की प्रेरणा से उनके भक्त सेठ ने कराया।

मंदिर का एक प्रमुख भाग "पत्थर का कोट" है जो कि किले के कोट के समान है उस कोट में उत्तर दिशा की दीवाल में एक शिलालेख जड़ा हुआ है जिस की प्रतिलिपि निम्नलिखित है।

१—ॐ० श्री आदीस्वरजी पादिना नाम माहा छे सकल जिने स्वर पद नमि सुरस्वतिमाय। श्री गुरुना पद अनुसरि करो बुधि उ

२—पाय। आदि जिनेस्वर मंदिर दिसै दुर्गउतंग

चन्द्रकीर्ति सूरि वतिहा किधो मनतणे रंग। देडारग देस मेवाड़ में उदीआपुर सुँजाग, राजक

३—रे तिहां राजवी भिमसिंह राजाँन। हिन्दूपत पातसामलो समोवड अर्क प्रताप, गुण गंभीर साय समो कल्पतरू सम साख। संवत १८६३

४—में असाढ़ सुदि ३, गुरुवारे मुहूर्तज कर्यो भली तरे पुजा कीध। मूलसंघ गछ सरस्वति बला-त्कार गणधार, कुँदकुंद सूरि वर भलो स आमन्व

५—यतेह उधार। तह अनुक्रमे सूरिवर भलो सकलकीर्ति गछ ...... पाटे गुरु सोभतो भुवनकीर्ति समुपाय। ज्ञानभूषण पाटे प्रगट वि

६—जयकीर्ति सुरि दश, सुभचन्द्र सुरीवर सत्रा, सुमति कीर्ति गुणकीर्ति गुरु गुपातिलो वादिभूषण तस पाट, रामकीर्ति पट सोभतो राच्यो

७—धर्मनो टाठ। पद्मनंदि पाटे सुजश देवेन्द्र कीर्ति गुणाधार, खेमकीर्ति पट उज्वलो नरेन्द्रकीर्ति पटे गुरु नेमिचन्द्र

८—भवतार। चन्द्रकिर्ति चन्द्र सनो रामकीर्ति सुखकार, यश कीर्ति सूरी जी सद उदयो पुन्य अंकुर करी प्रतिष्ठा दुर्ग तण यश व्यापयो भरपुर। बा

९—गाड देश सोहमणं सागलपुर वर ग्राम, संघपति साह रत्नीया मणि सुंदर सेनि नाम। गंधी धन जी करण जी कसन जी सुत आग कमले

१०—स्वर गोत्रज तणु य सब धारग बान। भार्या आणंदे कुँवर जे सुत मागकचंद, जेह भार्या कसनबाई निरमली माणिक देवी जी, तेह सुत वजेचंद जा

११—णिये पुण्यवंत गुणवंत। बालमदे भार्या भली शीलवंति सुसंत। सुत नवलचंद जनमीयोपुत्री हंसी जाण, पुण्यवंत प्रत पोषणु गुणकला

१२—निधान। चन्द्रकीर्ति गुरु उज्वला कराचो दुर्ग उतंग, यशकीर्ति गुरु निर्मलो करि प्रतिष्ठा मन रंग। गाँधीवजेसंद जी बली गुरु आज्ञा प्रन्निपास,

१३—जश लीधो अति उज्वलो जशकीर्ति तणु प्रताप। भट्टारक जी श्री नयरत्न सूरिस्वर जी। साहा जी धर्मचन्द जी, पंडित जी किशन जी पंडित मो

१४—तीचंद जी॥ रावत जी जौतसिंघ जी॥ भंडारी जी कुबेर जी हूबड़ ज्ञातीये वृद्ध शाखायं गाँधि वजेचंद जी सुत नवलचंद जी चार जीवीत

१५—जोसी भागचन्द्रेण लयाकृतं घुलेव नगरे ॥ श्रीरस्तु॥ कल्याणमस्तु॥ शुभं भवतु॥

१६—सोरठा जोतसी दोलतराम जी॥

१७—भट कृपासंकर जी"

भावार्थ—समस्त जिनेन्द्र देवों को, सरस्वति माता को और गुरुके चरणों को नमस्कार कर अपनी बुद्धि अनुसार कविता बनाता हूँ। श्री ऋषभनाथ का ऊंचा कोट जो दिखाई देता है उसको चन्द्रकीर्ति सूरि ने बनाने का विचार किया। मेवाड़ प्रान्त में उदयपुर अच्छा राज्य है वहां के शासक भीमसिंह हैं हिन्दू राजाओं में भीमसिंह का प्रताप सूर्य के समान है, वे समुद्र सरीखे गुणों से गंभीर हैं और कल्पवृक्ष समान दानी हैं। वि० सं० १८६३ आषाढ़ सुदी ३ गुरुवार के दिन मुहूर्त करके अच्छी तरह पूजा की। मूलसंघ, सरस्वतीगच्छ, बलात्कार गण के कुँदकुँद आचार्य सर्वश्रेष्ठ थे। उनकी आम्नाय में अनुक्रम से पट्टधर भट्टारक सकलकीर्ति हुये उनके पट्टधर भुवन कीर्ति और उनके पट्टधर ज्ञानभूषण भट्टारक हुये। उनके पट्टधर भट्टारक क्रम से विजय कीर्ति, शुभचन्द्र सुमतिकीर्ति, गुणकीर्ति, रामकीर्ति, पद्मनंदि, देवेन्द्र

कीर्ति, खेमकीर्ति, नरेन्द्रकीर्ति, विजयकीर्ति, नेमिचन्द्र चन्द्रकीर्ति, रामकीर्ति और यशकीर्ति हुये। भट्टारक यशकीर्ति ने पुण्यका अंकुर उगाकर कोटके पूर्ण होने पर प्रतिष्ठा कराई। बागड़ प्रान्त में सागलपुर एक ग्राम है वहाँ के संघपति कमलेश्वर गोत्री, गाँधी साह जोरगी मणिसुँदर सेन थे उनके पुत्र धन जी, करगा जी और किसन जी हुये। उनकी (किसनजी ?) की पत्नी आनंद कुंवर उनका पुत्र माणिकचन्द्र हुये उनकी ३ पत्नियाँ थीं किसनबाई, निर्मली और माणिक देवी। माणिकचन्द्र के पुत्र विजयचन्द्र हुये जो कि गुणवान, पुण्यवान सज्जन थे। उनकी सुशील पत्नी बालमदे है उससे नबलचन्द्र नामक पुत्र और हन्मी नामक पुत्री उत्पन्न हुई। चन्द्रकीर्ति भट्टारक ने कोट बनवाया और यशकीर्ति भट्टारक ने उसकी प्रतिष्ठा की। यशकीर्ति भट्टारक के प्रतापसे गाँधी विजयचंद्र ने गुरुआज्ञा का पालन कर यशको बढ़ाया। (प्रतिष्ठा के समय विद्यमान) भट्टारक श्री नयरत्नसूरि धर्मचंद जी, पंडित किशन जी, पंडित मोती चंद जी, रावत जोतसिंह जी, भंडारी कुबेर जी, हूमड़ जातीय वृद्ध-शाखावालेगांधी विजयचन्द्र जी तत्पुत्र नवलचन्द्र जी चिरंजीवी हो। यति भागचन्द्र ने धुलेब नगर में लिखा।

इस लेख से यह प्रमाणित होता है कि मंदिर का कोट मूलसंघी भट्टारक चन्द्रकीर्ति की प्रेरणा से बनना प्रारम्भ हुआ और जब बन कर समाप्त हुआ उस समय यशकीर्ति भट्टारक ने उस की प्रतिष्ठाकी भट्टारक जी के भक्त सेठ विजयचन्द्र गांधी के द्रव्य से कोट का निर्माण हुआ।

इस प्रकार उपर्युक्त ५ शिलालेखों से यह सिद्ध होता है कि मंदिर काष्ठासंघी, मूलसंघी भट्टारकों के अधिकार में रहा (नवचौकी के दांयीं, बायीं, ओर काष्ठा संघी तथा मूलसंघी भट्टारकों के बैठने की गद्दी अब तक बनी हुई हैं) उन्होंने ही प्रेरणा करके अपने धनिक भक्तों से मंदिर के भिन्न २ भाग भिन्न २ समय में बनवा कर तैयार कराये। मूलसंघ, काष्ठासंघ, दिगम्बर सम्प्रदाय के ही अन्तर्गत हैं। अतः स्पष्ट है कि मंदिर का समस्त भाग दिगम्बर सम्प्रदाय का तैयार कराया हुआ है।

अन्य ऐतिहासिक साधन

प्रसंगवश यहां पर उस ऐतिहासिक सामग्री का दिग्दर्शन कराना भी आवश्यक प्रतीत होता है जिस से कि यह तीर्थ मंदिर दिगम्बरीय सिद्ध होता है।

मूलनायक प्रतिमा

जिस प्राचीन एवं अतिशययुक्त प्रतिमा के कारण यह मंदिर तीर्थ स्थान बना हुआ है वह प्रतिमा नग्न दिगम्बर है। न उस पर नेत्र जड़ने के चिन्ह हैं, न कंदोरा बना हुआ है और न पैरों के नीचे श्वेताम्बरी प्रतिमाओंके समान कपड़े का ही कोई चिन्ह है। अतः मूलनायक श्री भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा दिगम्बर है।

२—प्रतिमा के नीचे १६ स्वप्न खुदे हुए हैं जो कि दिगम्बर सम्प्रदाय की मान्यता के अनुकूल हैं श्वेताम्बर सम्प्रदाय तीर्थंकर की माता को १४ स्वप्न देखना मानता है 'सिंहासन तथा धरणीन्द्र का भवन ये दो स्वप्न श्वेताम्बर सम्प्रदाय में नहीं माने गये हैं किन्तु अन्य १४ स्वप्नों के साथ ही ये दो स्वप्न भी वहाँ बने हुए हैं। ये १६ स्वप्न प्रतिमा के नीचे प्रतिमा वाले पत्थर पर ही उकेरे हुए हैं उनके ऊपर पीतल का पत्र जड़ा हुआ है। जिन स्वप्न चित्रों का कहीं कहीं वह पतला पत्र छूट गया है वहाँ प्रतिमा

का काला पत्थर दीख पड़ता है।

३— जब से मंदिर बना है तभी से मूलनायक प्रतिमा के आगे दोनों ओर तथा ऊपरकी ओर पीतल की चौबीसी विराजमान है जिसमें दो नग्न खड्गासन मूर्तियां भी हैं जो कि मूलनायक के बांयी ओर विद्यमान है।

ये तीनों बातें प्रमाणित करती है कि मूलनायक भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा दिगम्बर है।

हाथी

मंदिर में प्रवेश करने के लिये जो ८-६ सीढ़ियों का जीना बना हुआ है उस जीने की छत पर मूलनायक प्रतिमा के सामने एक काले संगमर्मर का बना हुआ हाथी खड़ा है जिस पर हाथी वाहक (फीलवान) और उसके हौदे में एक स्त्री बैठी हुई है जिस के एक हाथ में माला है दूसरे हाथ में कलश है। संभवतः मंदिरके किसी भागके बनाने वाले भक्त सेठ सेठानी है। जैसे कि भगवान के भक्त स्त्री पुरुष हाथ में माला और भगवान को अभिषेक कराने के लिये कलश लेकर मंदिर में आते है (श्वेताम्बरी भाई इस को मरुदेवी माता कहते हैं सो निराधार है वह कलश और माला लेकर न तो उनके ग्रंथों के लिख अनुसार भगवान ऋषभदेव के सामने गई थी क्योंकि भगवान ऋषभदेव उसके औरस पुत्र थे जबकि उक्त मूर्ति भक्त स्त्री की हो सकती है और न उनके ग्रंथों में हाथी की पीठ पर मरुदेवी के बैठ कर जाने का ही उल्लेख है। कल्पसूत्र में हाथी के कंधे पर मरुदेवी का बैठना लिखा है जोकि यहां है नहीं) अस्तु। इस हाथी के हौदे पर जो लेख खुदा हुआ है उसका कुछ अंश श्वेताम्बरी लोगों ने खुरच डाला है जो बचा हुआ है उसकी नकल इस तरह है—

११—" सं० १५११ वर्षे वैशाख सुदी ३ सोमे श्री मूलसंघे सरस्वती गच्छे बलात्कारगणे श्री

२ भट्टारक श्री

३ श्री गुरुपदेशात उदयपुर धारा

ज्ञातीय

४ .. ... खायदाड गोत्र"

भावार्थ वि० सं० १५११ वैशाख सुदी ३ सोमवार के दिन मूलसंघ, सरस्वतीगच्छ बलात्कारगण में श्री भट्टारक श्री · गुरु उपदेश से उदयपुर ... धारा जातीय · खायदाड गोत्र।

हाथी के इस मूल लेख से सिद्ध होता है कि यह हाथी मूलसंघ आम्नाय वाले किसी सेठ ने बनवाया है।

चरणचिन्ह

उस हाथी के दोनों ओर ३—४ फीट ऊंचे थंभों पर सफेद संगमर्मर के चरणचिन्ह उकेरे हुए हैं। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में चरणपादु का (चरण का सीधा भाग जिसके ऊपर टाँग का कटा हुआ भाग मालूम हो सके उस पर तलवे की रेखाएं नहीं होतीं उंगलियों पर नाखूनों के चिन्ह दीख पड़ते हैं) प्रतिष्ठित किये जाते हैं जैसे कि सर्वत्र उनके मंदिरों में हैं किन्तु दिगम्बर सम्प्रदाय में चरणचिन्ह (तलवे का उकेरा हुआ चिन्ह जिस पर चरण के नीचे की रेखाएं दीख पड़ती हैं नाखून नहीं दिखाई देते) विराजमान किये जाते हैं।

मंदिर में वहां दोनों ओर चरणचिन्ह ही हैं क्योंकि कहीं भी उंगली पर नाखून का निशान दीखता है अतः ये चरणचिन्ह भी दिगम्बर सम्प्रदाय द्वारा प्रतिष्ठित सिद्ध होते हैं।

उसमें से बायीं ओर के चरणचिन्हों पर जो लेख

है उसमें मूलसंघ, सरस्वतीगच्छ आदि लिखा हुआ है।

इस तरह ये चरणचिन्ह दिगम्बरीय प्रमाणित होते हैं।

बावन जिनालय के बाहर प्रत्येक पाषाणस्तम्भ पर खड्गासन नग्न मूर्ति बनी हुई है जिससे साफ सिद्ध होता है कि बावन जिनालयों का निर्माण दि० सेठों ने किया है।

प्रसंगवश यहाँ दुख से लिखना पड़ता है कि जिस समय इस मंदिर का प्रबंध एक मात्र श्वेताम्बर मेम्बरों की कमेटी के हाथ में रहा तब उनके कर्मचारियों ने मन्दिर में जहां श्वेताम्बरीय प्रतिमाओं का विराजमान करना, मूलनायक प्रतिमा को आँगी पहनाना आदि कार्य किये वहीं उन्होंने अनेक खड्गासन नग्न मूर्तियों का लिंग छेदन करके उनको श्वेताम्बरी रूप देना चाहा जिसमें कि वे पूर्णरूप से असफल रहे इस काले कृत्य में एक निन्दनीय कार्य उन्होंने यह किया कि ५-६ खड्गासन नग्न मूर्तियों का लिंग छेदन करके उसके स्थान पर स्त्री योनि का चिन्ह बना दिया।

मंदिर का बाहरी भाग

मूलमंदिर के बाहर तथा ५२ जिनालयों के बाहर शिखर के नीचे दीवाल में तीनों तरफ नग्न खड्गासन तथा भट्टारक की मूर्तियां बनी हुई हैं। पार्श्वनाथ मंदिर के बाहर सामने दीवाल में नग्न खड्गासन ७ मूर्तियां पत्थर पर बनी हुई हैं। यह बात भी मंदिर की दिगम्बरीयता सिद्ध करती है।

इस मंदिर का निर्माण ठीक इसी प्रकार हुआ है जैसा कि ईडर के दिगम्बर जैन मंदिर का है। हाथी बावन जिनालय, मूलमंडप, खेलामंडप, नवचौकी आदि समस्त भाग ईडर के मंदिरके अनुरूप हैं जिससे सिद्ध होता है दोनों मंदिरों का निर्माण एक मस्तिष्क की उपज है। है भी ऐसा; क्योंकि ईडरके भट्टारकों ने ही प्रायः इस मंदिर का निर्माण कराया है।

इसके सिवाय धुलेव से आस पास की दि० जैन पंचायतों के पास भट्टारक जी के पत्र, ईडर के पुराने उपलब्ध बही खाते आदि और भी अनेक साधन हैं जिनसे यह बात अच्छी तरह पुष्ट हो जाती है कि श्री ऋषभदेव (धुलेव) उर्फ केसरियानाथ एक दिगम्बरीय तीर्थ क्षेत्र है। लेख विस्तृत हो जाने से उसका उल्लेख यहाँ नहीं करते। ....अपूर्ण

विवाह या व्यापार ?

(ले०—श्रीयुतपं० कैलाशचन्द्र शास्त्री नहटौर)

पुरातन भारत में विवाह का क्षेत्र जितना विस्तृत था मनुष्यों के हृदय उससे कम विस्तृत न थे। वे हृदय से अति उदार होते थे। उनकी दृष्टि में राव और रंक का भेद न था। वे गुणों के प्रेमी और पारखी होते थे—किसी भी अतिथि के गुणों से उसके कुल, शील की पहचान कर लेते थे और यदि जांच में अतिथि योग्य प्रमाणित होता था तो उसके गुणों पर मुग्ध होकर अपनी प्रिय कन्या तक को उसकी भेंट कर देते थे। अतिथि भी योग्य कन्या का पाणि ग्रहण करने में कभी आनाकानी न करता था, यही कारण था जो उस समय आने जाने का मार्ग आज कल की तरह सुविधाजनक न होते हुये भी गरीबों तक की कन्याएं आसानी से विवाही जाती थीं। यह परिपाटी आज से २० वर्ष पहले तक बराबर चालू थी-यही कारण है जो आज भी अनेक गरीब घरोंमें लखपतियों की कन्याएं वधू के आसन को सुशोभित करती हैं। उस समय के मनुष्य कितने सरल और उदार होते थे—यह बतलाने के लिये मैं एक उदाहरण उपस्थित करता हूं जो मैंने एक वृद्धा के मुखसे सुना था। एक लखपति ने अपनी लड़की का रिस्ता एक अत्यन्त दरिद्र घरमें करना तय किया—बात चीत पक्की होगई। लड़की वाले के गांव से लड़के वालेका गांव १०-१२ कोस पर था। एक बार दोनों घराने एक मेले में गये-बैलगाड़ियों का रास्ता था, मेले में पहुँचते २ सन्ध्या होगई। घटनावश दोनोंकी गाड़ियां पास २ ही ठहरीं सब लोग अपना अपना भोजन निकाल कर खाने लगे। अचानक लड़की की मां की दृष्टि लड़के वालों के भोजन पर जा पड़ी। गरीबों का भोजन ही क्या था-ज्वारके परांठे और वह भी तेलके। लखपतियोंके पेटमें खलबली मचगई रिस्ता करने का विचार छोड़ दिया। उस वृद्धा का कहना था कि यदि उनका भोजन इतना गिरा हुआ न होता तो रिस्ता अवश्य हो जाता क्योंकि उस घराने की गरीबी सबको मालूम थी।

किन्तु तबसे अबके जमाने में जमीन आसमानका अन्तर पड़ गया है। आने जानेका मार्ग जितना सुविधा जनक हुआ-रिस्ता करने में उससे अधिक असुविधाएं खड़ी होगई। आजसे कुछ वर्ष पूर्व लड़कियां बिका करती थीं—गरीब बेचते थे और अमीर खरीदते थे, किन्तु अब लड़के बिकते हैं और लड़की वाले खरीदते हैं। कन्या-विक्रय का स्थान अब वर विक्रय ने लेलिया है। कन्या-विक्रय में वरपक्ष कन्या पक्ष दोनों नफेमें रहते थे--कन्या के पिता को कन्या की एवज में रुपयों की थैली मिल जाती थी और बूढे वरको वधू! किन्तु इस नये रोजगार में वरपक्ष का हर तरह से लाभ है—उसे कन्या भी मिलती है और साथमें हजारों का दहेज भी। इतने पर भी वह लड़का अपने मां बाप का ही रहता है। वे पुत्रवधू के स्वर्गवास हो जाने पर उसे फिर नीलाम पर चढ़ा देते हैं और नीलाम के धन—दहेज के साथ नीलामी चीज को भी घर लौटा लेते हैं। व्यापार की मंदी के इस जमाने में उत्तर प्रान्त के अहिंसक अग्रवाल बनियों ने कैसा उम्दा रोजगार ढूँढ निकाला है—खासी आमदनी और

इनकम टैक्स का पैसा भी नहीं। सब ओर से नफ़ा ही नफ़ा है। यदि इस व्यापार से जाति रसातल को जाती है तो जाने दो. धर्म डूबता है डूबने दो, कौम के खुशहाल घराने जमीन जायदाद बेचकर दर २ के भिकारी बनते हैं तो बनने दो, मां-बाप की चिन्ता दूर करने के लिये यदि लड़कियां जहर खा कर मर जाती हैं तो मरने दो, यदि अर्थ की चिन्ता से उन्हें विधर्मियों के साथ विवाहा जाता है तो विवाहा जाने दो—जाति और धर्म के इन दुश्मनों को उन बातों से क्या काम—पैसे के लालच ने उनकी विचारशक्ति को कुँठित कर दिया है। इस व्यापार को चलाने में स्त्रियों का खास हाथ रहता है—आज कल सौदा पक्का करना इन्हीं के हाथ में है। विवाह के पहले कन्या देखने के लिये इनकी फौज कन्या के घर पर धावा बोल देती है—नाते-रिश्ते की बहुत सी औरतें अपने अण्डे बच्चों के साथ इस लश्कर में शामिल की जाती हैं, इस लश्कर के प्रत्येक मेम्बर को खासा नजराना लड़की वाले की ओर से मिलता है, लड़की यदि बदसूरत भी हो रिश्वत की रकम करारी होने से सौदा पट जाता है और यदि दक्षिणामें कुछ कमी हुई तो खूबसूरत लड़की भी 'नापास' करदी जाती है—आज 'सर्वे गुणाः कांचन माश्रयन्ति' का बोल बाला है। दिगम्बर गुरुओं के चरणों में साष्टांग प्रणाम करने वाले जैन गृहस्थों का यह परिग्रह-प्रेम देखकर अपरिग्रही आत्माओंको अवश्य शान्तिलाभ होगा! इस वीभत्स प्रथा ने आज समाज में तहलका मचा दिया है—जिस के पास जाकर बैठिये वह यही रोना रोता है कुछ चलते पुर्जे-लोग अब बरपक्ष को धोखा भी देने लगे हैं। इनके दो ताजे उदाहरण सुनिये—एक विवाह में मोटर देना तय हुआ था। जब बारात आई कन्यापक्ष ने एक मंगनी का मोटर दरवाजे पर खड़ा कर दिया। बरपक्ष ने समझा यह मोटर उन्हें दिया जावेगा। शान्ति पूर्वक इधर भांवरें पड़ीं उधर मोटर विदा हुआ। बरात-विदा के समय जब बरपक्ष ने मोटर मांगा तो कन्या के पिता ने एक तश्तरी में बच्चों का का मोटरकार रख कर समधी साहब की सेवा में उपस्थित कर दिया—खूब मजा आया और बड़ी देर की 'तू' 'तू' के बाद समधी जी खिसियाने होकर लड़की विदा कराकर चल दिये। दूसरी घटना इससे भी मजेदार है—एक विवाह के सौदे में जब बरके पिता ने बहुत लम्बी चौड़ी मांग पेश की तो चालाक कन्यापक्ष ने उनसे अनुरोध किया कि, हुजूर आपकी मांगें हम जरूर पूरी करेंगे किन्तु वे इतनी ज्यादा हैं कि हम उन्हें याद नहीं रख सकते। मेहरबानी करके उनकी एक फेहरिस्त (सूची) तैयार कर दीजिये और उसपर हमारे और आपके दोनोंके दस्तखत हो जाने चाहिये जिससे फिर किसी को कहने का मौका न मिले। बरपक्ष ने प्रसन्नता पूर्वक एक सूची तैयार करदी और बाकायदा सब कार्यवाही होगई। जब बारात आई कन्यापक्ष ने पहिले दिन खूब खातिरदारी की, रात को पाणिग्रहण संस्कार भी हो गया। सुबह को लिखित सूची के अनुसार ठंडाई भेज दी गई। ११ बज गये—सब बराती लोग भोजन की प्रतीक्षा कर रहे थे, जब बारह बज गये और भोजन के लिये एक भी बुलौआ नहीं आया तो बरपक्ष ने एक आदमी भेजा। आदमी से मालूम हुआ कि आज तो भट्टी में आग भी नहीं सुलगी। मामला क्या है? यह जानने के लिये बरात के कुछ खास २ लोग कन्यापक्ष के घर पहुंचे। वहां सब लोग खा-पीकर सोये हुये थे।

जगानेपर बात चीत हुई ! कन्या के पिताने फेहरिस्त सामने रखदी और कहा—'इसमें तो खाने-पीने की कोई बात नहीं है, हमारा आपका जो तय हुआ था उसके मुताबिक ही सब कारवाई की गई है और की जायेगी। यह तो सौदा है—रिश्तेदारी नहीं है अतः इसमें मैं कोई रिआयत नहीं कर सकता'। लड़के वाल सन्न रहगया—तमाम बिरादरी इकट्ठी होगई, अन्त में लड़के वाले के बहुत हाथ पैर जोड़ने पर लड़की वाले ने सन्ध्या को खाना दिया।

इन घटनाओं से अग्रवाल जैनियों की वैवाहिक लूट-मार का अन्दाजा लगाया जा सकता है। आज कल के बर-वाले लुटेरे होते जाते हैं अतः कन्यापक्ष को भी उनके साथ वही बर्ताव करना पड़ेगा जो कि डाकुओं के साथ किया जाता है। किन्तु मैं कन्यापक्ष से भी एक बात अवश्य कहूंगा—पुत्री पुत्र और सभी के होते हैं—किसी के कमती किसी के अधिक, अतः आज जो कन्यापक्ष है कल को उसे बरपक्ष भी बनना पड़ेगा। आज जो लुटता है लूटने वालों को बुरा कहता है कल वह स्वयं लुटेरा बन कर दूसरों को लूटने की ताक में रहता है। ऐसी दशा में जब समय पड़ने पर सब लुटेरे बन जाते हैं तब कन्यापक्ष बरपक्ष को कैसे दोषी बनाना चाहता है। यदि कन्यापक्ष वाले कन्या वालों की मुसीबत का अन्दाजा लगा कर लुटेरे न बनने का प्रतिज्ञा स्वयं लेलें और अपने पुत्रोंके विवाह में कोई सौदा न करें तो अग्रवाल समाज के सिर पर मौत की तरह मंडराने वाली यह मुसीबत कुछ ही समय में दूर हो जाय। कन्या के विवाह के समय मुसीबतों के शिकार बनने वालो। आंखे खोलो और उससे कुछ सीख लो वरना तुम्हारा रोना धोना बेकार है उससे किसी का भी दिल न पसीजेगा। तुम प्रतिज्ञा करो कि हम किसी की बेटी लेते समय कोई मोल भाव न करेंगे।

समाज सुधारकों से भी कुछ कहना अनुचित न होगा—उनका ध्यान इस ओर गया है जरूर, किन्तु अभी 'मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों २ दवा की' उनके कार्य का कुछ भी असर दिखाई नहीं दिया। लुटेरों की लूट बढ़ती ही जाती है। इसके कई कारण हैं। उनमें से एक में आपको बतलाता हूँ। समाज सुधारकों में कुछ रंगे स्यार भी मिले हुये हैं जो प्लेट फार्म पर तो दहेज की लूटमार को बुरा बतलाते हैं और स्वयं लड़कों का सौदा करते फिरते हैं। ऐसे ही रंगे स्यार एक दूसरे लीडर की दास्तान मुझे एक जिन मन्दिर में सुनने को मिली। एक सभ्य शिक्षित और सम्पन्न व्यक्ति ने, जिनसे मैं परिचित नहीं था। मुझ से पूछा, आप क्या ... . वकील को जानते हैं ? " अच्छी तरह " मैंने उत्तर दिया। केवल ऊपर से ही जानते हैं या अन्दर से भी सभ्य ने पूछा। इस प्रश्न को सुनकर मैं चकरा गया और उत्सुकता पूर्ण नेत्रों से उनके मुखको देखने लगा। वे बोले— "महाराज जी ! आपने उन्हें ऊपर से ही देखा भाला है। इन हजरत की करतूत मैं आपको सुनाता हूं। इनके लड़के के साथ मैं अपनी लड़की का रिस्ता करना चाहता था। इन्होंने लड़की को स्वयं देखने की इच्छा प्रकट की। मैंने इन्हें अपनी लड़की अच्छी तरह दिखादी। लड़की भी पसन्द आगई इसके बाद आपने मुझसे पूछा, "विवाहमें आप कितना खर्च कर सकेंगे?" मैंने उत्तर दिया—पाँच-सात हजार। तब वकील सा० मुँह बनाकर बोले "हमारा आपका रिस्ता नहीं होसकता, यदि पन्द्रह हजार खर्च कर सकें तो बातें कीजिए'। मैं उनका

उत्तर सुनकर अवाक् रह गया। रिश्ते की बातें बन्द होगईं।" सभ्य व्यक्ति की इस आप बीतीको सुनकर मुझे भी दंग रह जाना पड़ा। सुधारक व्यक्तियों के लीडरों की यह दशा है। अतः यदि वे सच्चे दिल से समाज की इस बुराई को दूर करना चाहते हैं तो उन्हें आत्मशोधन करके इस मार्ग पर पैर बढ़ाना चाहिये। सभा-सोसाइटियों में प्रस्ताव पास कर लेने मात्रसे यह संक्रामक रोग दूर न होगा। इसके लिये बिजनौर, सहारनपुर, मुजफ्फर नगर, मेरठ, देहरादून, अम्बाला और देहली जिले के प्रतिष्ठित व्यक्तियों को एकत्र करके एक कमेटी कायम करना चाहिये और एक 'दस्तरूल अमल' बनाकर उसके मुताबिक रस्मोरिवाज करना चाहिये। किसी भी व्यक्ति की 'रू रियायत' न कीजाय। सब जिलों में लेन देन वाली शादी का 'सोशल बायकाट' किया जावे। यदि उक्त सातों जिलों का अच्छा संगठन होजाये और समाज दिलोजान से उसमें सहयोग करे तो यह महामारी कभी नहीं टिक सकेगी।

धनिकों से— यह महामारी धनिकों के ही घरसे शुरू हुई है। अतः इनके दिमागों की सफाई करनेसे ही इसका नाश किया जासकेगा। व्यापारकी मन्दी और कानूनी हमलों ने साहूकारी और जमींदारी दोनोंका ही सफाया कर देना शुरू करदिया है। जैन धनिकों के ये ही दो आमदनी के जरिये हैं। आमदनी दिन पर दिन घटती जाती है और फिजूल खर्चियाँ बढ़ती जाती हैं धनिक कर्जदार बनते जाते हैं। जब तक गाड़ी चलती है जैसे तैसे चलाई जाती है अन्त में एक दिन बधिया बैठ जाती है। उत्तर प्रान्त के धनिकों की ऊपरी शान बान के अन्दर क्या २ छिपा हुआ है यह भुक्तभोगी ही जानते हैं। ऐसी दशा में उनका न सम्हलना उनके पतन का ही कारण होगा। उनकी देखा देखी अब यह हवा मध्यम परिस्थिति के लोगों में भी फैल गई है। अब वे भी 'मोटर' मांगने लगे हैं।

ड्राइवरके बराबर तो दुकानसे आमद नहीं, किन्तु मोटर जरूर लेंगे। विवाह के बाद दो हजार की मोटर चाहे हजार में बेचनी पड़े किन्तु नवाबजादे तो 'मोटर' ही लेंगे। इन मोटरों की मांगों ने परेशान कर रक्खा है। अतः अब इन मोटरकारों और उनके मांगने वालों का मुँह काला करो तभी तुम 'सुर्खरुइ' हो सकोगे। अपनी कन्या के विवाह में मोटर सोटर देकर लड़के के विवाहमें मांगने से क्या यह अच्छा नहीं है कि न लो और न दो। क्या अपनी चीज से संतोष नहीं होता। पहले अपना रुपया खराब करते हो और फिर दूसरोंका खराब कराते हो इसी तरह तमाम समाज का रुपया अब मोटरों, टोपियों, ग्रामोफोनों साइकिलों तथा अन्य व्यर्थ के खेल खिलौनों के खरीदने में प्रतिवर्ष पानी की तरह बहाया जायेगा तब समाज में दरिद्रता का दौर दौरा क्यों न होगा। याद रक्खो रुपया कमाने के दिन चले गये अब खाने के दिन हैं। जो लोग अपनी कमाई हुई पूँजी को देख भाल कर खर्च करेंगे वे टुकड़े के मुहताज न बन सकेंगे, किन्तु जो खर दिमाग दुनिया की बदलती हुई हालत की ओर से आंख मोड़ कर वाजिद अली शाह के बड़े भाई बनने की धुन में रहेंगे उनकी नवाबी चार दिनों की चान्दनी की तरह चमक कर हमेशा के लिये गुम हो जायगी। याद रक्खो—तुम्हारा दहेज का धन लेने वाले को साहूकार नहीं बनाता हाँ देने वाले को गरीब जरूर बना देता है यदि दहेज के धन से कोई साहू-

कार बना हो तो बतलाइये। अतः हे गाँठके पूरे धनिको! अधनिको! और अपनेको धनिक समझने वालो! आंख के अंधे मत बनो, तुम्हारे सामने गहरी खाइयां खुदी हुई हैं जो तुम्हारी बची खुची 'इज्जत' 'आबरू' के साथ तुम्हारे खानदान को, अस्मत को अपने पेट में रख लेना चाहती हैं। अब भी समय है चेतो। क्वारे युवको! सुसराल की भीख की ओर टकटकी लगा कर मत देखो उस भीख में तुम्हारी जीवन-सहचरी के माता पिता के हृदय का खून मिला हुआ है। यदि तुम उसके लोभ में डूबे तो तुम्हारी भावी सन्तान तुम्हें 'मुफ्तखोर' कह कर तुम्हारा उपहास करेगी। अतः जैन समाज के नौनिहालो! भारत की वीर भूमि में जन्म ले कर 'बाजारू सौदा' मत बनो और प्रतिज्ञा करो कि हम एक रुपया और नारियल लेकर सुशील कन्या का पाणि ग्रहण करेंगे तुम्हारे इस त्याग से जैन समाज के ऊपर मंडराने वाली विपत्तिके बादल छिन्न भिन्न हो जायेंगे सैकड़ों धनिक कहे जाने वालोंकी इज्जत बच जायगी विदेशी वस्तुओं के खरीदने में बाहिर जाने वाला लाखों रुपया जैन कौम की जेब में रह जायगा और भारत भूमि का मुख उज्वल होगा। समाज के लिये क्या तुम इतना त्याग कर सकोगे?

❀ ❀ ❀

आदर्श भारत

(१)

गौरव पूर्ण मनोहरता का,
नग्न नृत्य जहं हो अविराम।
भीति शून्य क्रांत तत्परताका,
स्वागत हो जहं आठों याम।

(२)

तर्क सूय के प्रखर ताप से,
रूढि राक्षसी गल गल कर।
नाम शेष हो जाती हैं जहं,
ऋद्धि सिद्धि रहतीं मिलकर।

(३)

देवासुर संग्राम क्षेत्र में, बने विजेता देव महान।
असुर वृत्तियां आत्म क्षेत्र में, कभी न पावें कुछ सन्मान॥

(४)

दुःख मुक्त हो नारी जाति,
युवगण वीर बने विक्रान्त।
पशु पक्षी मानव सब मिलकर,
जहां बितावें जीवन शांत।

(५)

सहानुभूति परस्पर सबमें,
सभी अवस्थाओं में हो।
आत्मब्रह्म की व्यापकता का,
जहं सज्ज्ञान सभी में हो।

(६)

ऐसा भारत ही भारत है, मुकुट रत्न सब देशों का,
कर सकता है वह क्षण भरमें, नाम शेष सब क्लेशोंका।

—चैनसुखदास जैन

तत्वार्थाधिगमभाष्य पर विचार

(ले०—श्रीयुत पं० उत्तमचन्द्र जी न्यायतीर्थ)

जैन सम्प्रदाय में तत्वार्थसूत्र एक महत्वपूर्ण सूत्र ग्रंथ है जैनसिद्धान्त इस सूत्र ग्रंथ में उसी प्रकार रख दिया गया है जिस तरह 'परीक्षामुख' ग्रंथ में न्याय विषय भर दिया गया है। तत्वार्थसूत्र की मान्यता दिगम्बर श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों में है। नाम में तथा कुछ सूत्रों में कुछ अन्तर है। शेष सब भाग प्रायः एक सरीखा है। दिगम्बर सम्प्रदाय में इस ग्रंथ का नाम तत्वार्थसूत्र तथा मोक्षशास्त्र है श्वेताम्बर सम्प्रदाय में इस सूत्र ग्रंथ को तत्वार्थाधिगम नाम कहते हैं।

उभय संप्रदाय इस ग्रंथ को अपनाने के लिये हेतु उपस्थित करते हैं। श्वेताम्बर सम्प्रदाय की ओर से प्रधान हेतु उसका भाष्य उपस्थित किया जाता है क्योंकि तत्वार्थाधिगम भाष्य से कुछ श्वेताम्बरीय मान्यतायें सिद्ध होती हैं। तत्वार्थाधिगम भाष्य स्वयं सूत्रकार श्री उमास्वाति आचार्य का स्वोपज्ञ बतलाया जाता है। यदि यह बात सत्य प्रमाणित हो जाय तो निःसन्देह उमास्वाति आचार्य को श्वेताम्बर सम्प्रदाय का विद्वान मानना पड़ेगा। किन्तु यह विषय अभी विवादग्रस्त तथा संदिग्ध है। इतिहास खोजी विद्वान अभी तत्वार्थाधिगम भाष्य को सूत्रकार उमास्वाति विरचित मानने के लिये तयार नहीं। अपनी मान्यता को प्रामाणिकता का रूप देने के लिये पिछले समय में कुछ लोग अपनी कृति पर किसी महान आचार्य विद्वान का नाम जोड़ देते थे यह बात कतिपय ग्रन्थों से सिद्ध हुई है तदनुसार "उमास्वामी आचार्य के पीछे होने वाले किसी श्वेताम्बरीय विद्वान ने तत्वार्थसूत्र पर संक्षिप्त टीका रचकर उसको उमास्वाति का स्वोपज्ञ भाष्य नाम से प्रचलित कर दिया।" ऐसा अनेक विद्वानों का मत है।

आदरणीय पत्र जैनदर्शन के १६ वें अंक में इस विषय पर मैं ने भी अपने विचार प्रगट किये थे। मेरा लेख जैन दर्शन के माननीय संपादकों ने यथास्थान प्रकाशित कर दिया उसका मैं आभार मानता हूँ। जैनदर्शनके सुयोग्य विद्वान संपादक, स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस के अध्यापक श्रीमान पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री का जैनदर्शनके गत २१ वें अंक में 'तत्वार्थाधिगम पर विचार' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ था जिसमें आपने मेरे पूर्व प्रकाशित लेख की युक्तियों को सारहीन सिद्ध करने का प्रयास किया था। अस्तु, तत्वार्थाधिगम भाष्य सूत्रकार उमास्वाति आचार्य का स्वोपज्ञ नहीं है इस विषय में मैंने तीन युक्तियां उपस्थित की थीं।

१—तत्वार्थाधिगम भाष्य में अनेक जगह अकलंकदेव विरचित राजवार्तिक की तथा श्री पूज्यपाद आचार्य विरचित सर्वार्थसिद्धि की गद्य ज्यों की त्यों पाई जाती है। अतः भाष्यकार कोई विद्वान श्री अकलंक देव के पीछे हुआ है स्वयं उमास्वाति आचार्य नहीं हैं।

२—द्रव्यानुयोगतर्कणा नामक श्वे० ग्रन्थ में दिगम्बरीय तत्वार्थसूत्र के प्रथम अध्याय का अंतिम सूत्र उल्लिखित है। यदि उस समय तत्वार्थाधिगम भाष्य विद्यमान होता तो द्रव्यानुयोगतर्कणा में उसके सूत्र का उल्लेख आता क्योंकि यह सूत्र दोनों संप्रदायों

के मान्य तत्वार्थसूत्र में भिन्न भिन्न रूप से है ।

३—तत्वार्थाधिगम भाष्य के दशवें अध्याय के अंत में भाष्य में जो ३२ कारिकाएं लिखी गई हैं वे श्री अमृतचन्द्र सूरि विरचित तत्वार्थसार ग्रन्थ के आठवें अधिकार में ज्यों की त्यों पाई जाती हैं जो कि प्रकरण अनुसार वहाँ तो ठीक जंचती हैं किन्तु तत्वार्थाधिगम भाष्य में अप्रासंगिक एवं पिष्टपेषण, या पुनरुक्त दोष द्योतक प्रतीत होती हैं जिससे कि यह प्रगट होता है कि कारिकाएं वास्तव में तत्वार्थ सार की ही हैं—तत्वार्थाधिगम भाष्यकार ने ये कारिकाएं तत्वार्थसार से लेकर रखदी हैं। अतः यह भाष्य श्री अमृतचन्द्र सूरि से पीछे का बना हुआ है।

मेरी इन तीनों युक्तियों के प्रतिवाद में विद्वान संपादक महोदय ने जो कुछ लिखा वह पाठकों ने अवलोकन किया ही है। प्रथम युक्ति के विषय में संपादक जी ने लिखा है—

"तत्वार्थाधिगम भाष्य, सर्वार्थसिद्धि और राज-वार्तिक में कुछ बातें सदृश पाई जाती हैं किन्तु किन बातों को किससे किसने लिया ? यह प्रश्न हल नहीं हो सकता है इसको हल करने के लिये तीनों ग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन करने की आवश्यकता है।"

संपादक जी के उक्त वाक्य से मैं अपनी प्रथम युक्ति को यदि अकाट्य नहीं पाता तो हवा में उड़ने योग्य हलकी भी नहीं समझता हूँ क्योंकि विद्वान सम्पादक ने जहाँ मेरी युक्तिको सत्य नहीं बतलाया वहीं उसको आपने असत्य भी नहीं ठहराया।

मेरी दूसरी युक्ति के विषय में संपादक जी का लिखना है कि "यह बात भी मुझे विशेष जोरदार नहीं जान पड़ती श्वे० सूत्र पाठ के रहते हुये भी उदार लेखक दूसरे पाठ का उल्लेख कर सकता है।"

शास्त्री जी के इस कथन से मेरी युक्ति सारहीन नहीं किन्तु वह विशेष जोरदार नहीं है क्योंकि घटना मेरी युक्तिके अनुकूल भी हो सकती है और प्रतिकूल भी। अस्तु

तीसरी युक्तिके विषयमें संपादक जीने मेरे अभि-प्राय पर जरा थोड़ा ध्यान दिया है मेरे लिखने का अभिप्राय यह नहीं था और न है कि अकलंकदेव ने तत्वार्थसार की ३२ कारिकाएं स्वयं 'उक्तंच' करके राजवार्तिक में लिखी हैं मेरा अभिप्राय तो वही है जैसा राजवार्तिक की टिप्पणी में लिखा है कि ये कारिकाएं श्री अकलंकदेव ने राजवार्तिक में नहीं लिखीं किन्तु किसी अन्य विद्वान ने 'उक्तंच' लिख कर वहाँ जोड़ दी हैं।

यदि श्रीमान पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री उन कारिकाओं को तत्वार्थसार में किसी अन्य ग्रंथ से उद्धृत की हुई अनुमान करते हैं तो उन्हें उस ग्रंथ का का प्रमाण पेश करना चाहिये अन्यथा यों ही निराधार आनुमानिक कल्पना से श्री अमृतचन्द्र सूरि सरीखे विद्वान आचार्य को परकृति को उड़ा कर अपनी छाप लगाने वाला बतलाना उनका अपमान है। पुरुषार्थ सिद्धयुपाय सरीखेग्रन्थरत्न" का रचयिता विद्वान ऐसा कदापि नहीं कर सकता। अस्तु।

ये ३२ कारिकाएं तत्वार्थसार की हैं यह बात तबतक असत्य नहीं कही जा सकती जब तक कि उसके विरुद्ध अकाट्य प्रमाण न हो। यदि कुछ देर के लिये ये कारिकाएं तत्वार्थसार ग्रंथ की मौलिक न मानी जायें तो भी वे सूत्रकार उमास्वाति आचार्य की तो किसी प्रकार नहीं मानी जासकतीं क्योंकि जो उन्हों ने अपने सूत्रोंमें लिखा है उसको पुनः कारिका-ओं में वे क्योंकर लिख कर पुनरुक्त तथा पिष्टपेषण

स्वा० शान्तानंद जी और जैन सिद्धान्त

(पूर्व प्रकाशित से आगे)

फिर ७ वें पृष्ठ पर स्वामी जी लिखते हैं कि—

"यहाँ हमको इस वाक्य पर कुछ विचार करना है कि स्वाभावतः सब जीव शुद्ध हैं पं० राजेन्द्रकुमार जी का यह लिखना भी असत्य है क्योंकि अभव्य जीव तो अनादि काल से अब तक अशुद्ध हैं और अनन्त काल तक अशुद्ध ही रहेंगे। .... पं० अजित कुमार जी की सम्मति से केवल भव्य शुद्ध हैं सो भी अनादिकाल से लेकर वर्तमान काल तक तो वह भी अशुद्ध हैं भविष्य में शुद्ध होंगे।"

यद्यपि शान्तानंद जी की इस बात का उत्तर दर्शन के २० वें अंक में आ गया है किन्तु फिर भी यहाँ कुछ और लिख देना अनावश्यक प्रतीत नहीं होता।

जैन सिद्धान्त से परिचय पाने के लिये स्वामी शान्तानंद जी को जैन धर्म के नयवाद का अध्ययन अवश्य करना चाहिये। जैन धर्म का नयवाद पदार्थ ज्ञान की कुंजी है।

"स्वभाव की अपेक्षा सब जीव समान और शुद्ध हैं" पंडित राजेन्द्रकुमार जी का यह लिखना द्रव्यार्थिकनय की दृष्टि से अथवा शुद्ध निश्चयनयकी अपेक्षा से है क्योंकि समस्त जीवोंका वास्तविक रूप विचारा जाय तो वह रूप समान और शुद्ध है। जिसको कि पं० राजेन्द्रकुमार जी ने " स्वभाव की अपेक्षा से " वाक्यांश द्वारा प्रगट कर दिया है स्वामी जी को अपनी विचार शक्ति इस वाक्य पर केन्द्रित करनी थी जिसको कि आप आंखभोमल कर गये। इस तरह "स्वभाव की अपेक्षा से समस्त जीवों की समानता और शुद्धता बतलाने में पं०राजेन्द्रकुमार और अजित कुमार का कुछ मत भेद नहीं है जो मत भेद समझे वह भूल के झूले में झूल रहा है।

पर्यायार्थिक नय की निगाह से जीवों में परस्पर भेद है संसारी जीव अपनी अशुद्ध दशा की अपेक्षा कर्म-बन्धन के कारण अशुद्ध हैं और सिद्ध जीव कर्मबंधन न रहने के कारण शुद्ध हैं। यही बात पं० राजेन्द्र-कुमार जी ने "स्वभाव की अपेक्षा सर्व जीव समान और शुद्ध हैं" इस वाक्य के आगे लिखी है कि "परन्तु अनादिकाल के कर्मरूप पुद्गलों के संबन्ध से अशुद्ध हो रहे हैं" स्वामी जी यदि राजेन्द्रकुमार जी के इस वाक्य को भी अपने शान्तमन से विचार जाते तो उन्हें भ्रम में पड़ने का जरा भी अवसर न मिलता

स्वामी जी ने इसके आगे यह शंका की है कि संसारी जीव अनादि काल से कर्मबन्ध के कारण अशुद्ध रहा है और इस समय भी अशुद्ध है। तो वह भविष्य में शुद्ध हो सकेगा यह बात असंभव है इस बात को उभयमान्य दृष्टान्त द्वारा सिद्ध करना चाहिये।

इसका समाधान यह है कि जीवद्रव्य और कर्म रूप पुद्गलद्रव्य दो भिन्न जातीय द्रव्य हैं। उन का संबन्ध संयोग सम्बंध है संयोग सम्बंध अनित्य भी होता है तदनुसार अनादि कालीन कर्मबंधन जीव से अलग हो सकता है और उस दशा में जीव शुद्ध हो सकता है इसमें असंभव बात कुछ भी नहीं है।

दृष्टान्त पूर्ण रूप से तो कहीं भी कोई भी नहीं पाया जाता क्योंकि जिस बात के लिये दृष्टान्त

उपस्थित किया जाता है उसकी सारी बातें दृष्टान्त में नहीं मिला करती हैं। पहाड़ में धुंआ उड़ता देखकर वहां आग का अनुमान किया जावे और उसकी पुष्टि के लिये रसोईघर बतलाया जावे तो वहां यह तर्क नहीं उठाई जाती कि रसोई घर में पहाड़ की तरह पत्थरों की चट्टानें, पेड़ तथा जंगली जानवर कहां हैं?

इसी तरह स्वामी शान्तानंद जीने जो खानके मिट्टी मिले हुए सोने के दृष्टान्त में कुतर्क उठाई है वह तर्कशास्त्र के प्रतिकूल है। यदि स्वामी जी सोने के दृष्टान्त से इस बात को नहीं समझ सके तो उन्हें नीचे लिखे दृष्टान्त से समझने का प्रयत्न करना चाहिये।

अनादि कालीन गर्म स्रोत का पानी सदा से (अनादिकाल से) गर्म रहा आया है और वर्तमान में भी वह गर्म है किन्तु भविष्य में उसका पानी यदि ठंडे जलाशय में पहुंच जावे तो वह अनादि कालीन गर्मजल भविष्य में ठंडा हो जावेगा। यह दृष्टान्त एक ऐसा दृष्टान्त है जिसको सब कोई समझ सकता है।

इसी प्रकार जो जीव अनादि कालीन कर्मबंधन के कारण अशुद्ध रहे हैं और इस समय भी अशुद्ध हैं किन्तु भविष्य में अपनी तपस्या के द्वारा उस बंधन का सर्वनाश कर देंगे इसमें क्या अयुक्त या असंभव बात है जिसको कि शान्तानंद जी की विचार शक्ति नहीं छूती।

इसके आगे स्वामी शान्तानंद जी ने मूर्तिपूजा की चर्चा छेड़ी है जिसमें आपने पहले पहल यह लिखा है कि---

"चाहे आप मानें या न मानें हमको तो ऐसा मालूम होता है कि पंडित राजेन्द्रकुमार जी के आत्मा में यह मूर्ति पूजा का खेल मनुष्य के प्रति कल्याण दायक प्रतीत (न) हुआ इसी कारण इस गैर जरूरी विषय को सिद्धान्तान्तर्गत नहीं रक्खा।"

स्वामी शान्तानंद जी अपने आपको चाहे कुछ समझें किन्तु वे हैं बहुत भोले। पं० राजेन्द्रकुमार जी ने अपने छोटे से पैम्फलेट के भीतर जैनसिद्धान्त की कुछ एक बातों को सूचना तौर पर बतलाया तो वे समझ बैठे कि पं० राजेन्द्रकुमार जी मूर्तिपूजा को उपयोगी नहीं मानते भोले भाले स्वामी जी! मूर्तिपूजा जैनधर्मानुयायीके आचरणका एक अंश है पंडित राजेन्द्रकुमार जी ने अपने पेम्फलेट में आचरण विषय में कुछ नहीं लिखा है वहां तो उन्हों ने केवल जैन फिलासफी की कुछ एक बातें लिखी हैं इस पर से मूर्तिपूजा की अनुपयोगिता पं० राजेन्द्रकुमार जी द्वारा किस तरह सिद्ध होती है। यह अभिप्राय तो तब प्रगट होता जब कि जैनियों के आचरण करने वाली बातों का उस पैम्फलेट में उल्लेख करते और केवल मूर्तिपूजा को छोड़ देते।

मूर्तिपूजा क्यों अनिवार्य तौरसे उपयोगी है और समस्त संसार तथा आर्यसमाज भी मूर्तिपूजा का कितना भारी हामी है इत्यादि बातें स्पष्ट रूप से आगामी लेख में प्रगट करेंगे।

—अपूर्ण

—※—

१६ वें पेज का शेषांश

करते।

अतः मेरी सम्मति में तो तत्वार्थाधिगमभाष्यका रचयिता विद्वान दशवीं शताब्दी या उससे भी पीछे का है।

विद्वान महानुभाव इस विषय पर अपने विचार प्रगट करें इसी कारण ये चार पंक्तियाँ मैं ने लिखी हैं।

हम सुखी कैसे होसकते हैं?

(ले०—जैनदर्शन शास्त्री श्री प्रकाश जैन न्यायतीर्थ)

इस विशाल संसार क्षेत्र में सुख का साम्राज्य अधिक विस्तृत नहीं है। इसके विपरीत दुःख का जैसा प्राबल्य है, वह सर्वविदित है। उसके प्रकट करने की आवश्यकता नहीं। आज दुःख ने इतना उग्र रूप धारण कर रक्खा है जिसका प्रत्यक्ष करने के लिये कहीं जाने और आने की आवश्यकता नहीं बिना कहीं गये-आप ही वह अपना परिचय दे रहा है। या यों कहना चाहिये कि उसका परिचय तो, जब से हमने इस संसार में जन्म लिया, उसी दिन हो चुका है और अब दिन प्रतिदिन उससे हमारा सम्बंध और भी अधिक बढ़ता जा रहा है। आप लोग विचारिये-हम स्वयं दुखी हैं या नहीं। यदि हां, तो फिर संसार का भी यही हाल है। सारे संसारी प्राणियों की हृदय-वेदना का दृश्य वास्तव में हृदय-द्रावक और मर्म-भेदी है। सबके अन्तरङ्ग से 'त्राहि माम्' 'त्राहि माम्' का करुणार्द्र स्वर निकल रहा है। चाहे इस शब्द की आवाज हमें बाहर सुनाई न दे, पर सब की अन्तर्वेदनाएं एक सी हैं। आप हर किसी से सच-सच पूछिये-क्या धनी और क्या निर्धन क्या पढ़ा लिखा और क्या निरक्षर सब एक यही उत्तर देंगे कि हम बहुत दुःखी हैं और दुःखाग्नि से सन्तप्त हो रहे हैं. यदि किसी प्रकार कुछ सुखका स्वप्न दिखलाईदे तो हमारा यह मनुष्य जीवन सफल हो। अस्तु,

इस सम्बंध में अधिक विचार करना हमारा विषय नहीं। यहां तक तो हमने यह बतलाया है कि सब प्राणी दुःख से सन्तप्त हैं और सुख चाहते हैं। अब हमारे हित की कामना से विचारणीय यह है कि वह सुख हमें कैसे मिल सकता है। हम सुखी कैसे बन सकते हैं?

बहुत से विद्वान् यह कहते हैं कि यदि तुम्हें सुखी बनना है और दुःखों से छुटकारा पाना है तो दुख को बिलकुल भूल जाओ, उसकी ओर से आंखें बन्द कर लो, और फिर कभी उसका स्मरण मत करो, विपत्ति आजाने परभी उसकी ओर ध्यान न दो पर मुझे इस से कोई विशेष लाभ दिखाई नहीं देता, प्रथम तो हम लोगों की चिन्ताएं इतनी अधिक रहती हैं जिस के कारण हम सदा दुःखी रहते हैं और किसी दुःख को भूल ही नहीं सकते। यदि कदाचित् किसी दुःख को भूलने के लिये कुछ प्रयास भी करते हैं तो वह भी सफल नहीं होता। एक दुःख को भूलने की कोशिश करने के पहले ही हमें दूसरा दुःख अपना शिकार बना लेता है, कैसी विकट समस्या है? ऐसी हालत में दुःखों को भूलने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि दुःखों को भूल जाने से दुःख कम नहीं होते। दुःखों से हमेशा के लिये छुट्टी पाने, औरदुखों का परिपाक भोगते हुए भी सुखी बने रहने के लिये इस बात की आवश्यकता हैकि दुखों को अच्छी तरह समझा जाय। सुख और दुख का मार्मिक विश्लेषण करके यह निश्चय किया जाय कि सुख क्या वस्तु है और दुःख क्या चीज है? दुःख को दूर करने के लिये दुःख क्यों आया? और अब उस का निराकरण कैसे किया जा सकता है? इस बात पर ध्यान देने की बहुत अधिक आवश्यकता है। और

जरूरत है इस बात के समझने की कि वह हमारे लिये क्या लाया है हमें क्या पाठ पढ़ाता है और हमें क्या शिक्षा देने आया है।

हथकड़ी पड़े हुए हाथोंको देख कर क्रोध करना महा मूर्खता है। रोना चिल्लाना और गिड़गिड़ाना बेवकूफों का काम है। ऐसा करने से वह दुःख कभी भी शान्त नहीं हो सकता ? ऐसे मौके पर, हथकड़ियां कैसे पड़ीं और क्यों पड़ीं ?

इन कारणों पर विचार करके अपने दुःख को शान्त कर लेना ही बुद्धिमत्ता का परिचायक है।

संसार हम लोगों के लिये एक प्रयोगशाला है। इसमें प्रकृति दत्त अवसरों पर जिज्ञासु भाव से हमें शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये और अपना अनुभव बढ़ाना चाहिये। थोड़ा सा भी ध्यान देने से मालूम हो सकता है कि दुःख अनन्त नहीं है, उसकी भी सीमा है। यदि दुःखों को हम प्रकृति-दत्त सामयिक शिक्षा भी कहें, तो सम्भवतः कुछ अनुचित न होगा। चाहें तो इन शिक्षाओं से हम बेहद लाभ उठा सकते हैं। हमेशा के लिये सुखी बन सकते हैं। दुःख के ठीक ठीक कारण का स्मरण कर लेने पर मनुष्य को अधिक दुःखी होने की आवश्यकता नहीं, वाड़े तो वह उसका अतिशीघ्र इलाज कर सकता है और दुख को सुख बना सकता है।

सुख और दुःख भावना मात्र होती है। जिन कार्यों का फल हमारी इच्छाओं के अनुकूल होता है, उन्हें हम सुख मान लेते हैं। और जिन कार्यों का फल हमारी मन्शाओं के प्रतिकूल होता है-हम जैसा चाहते है, वैसा नहीं होता है, तब हम उसे दुःख कहने लगते हैं। विश्व का कोई भी परमाणु स्वयं न सुख देने वाला है और न वह दुःख पहुंचाने की ही शक्ति रखता है। हां! वह हमारी भावनाओंके अनुकूल हमें सुखी और दुःखी अवश्य बना सकता है। इसीलिये किसी ने लिखा है—

"हे मनुष्य, तू संसार को दुखोंका घर क्यों कहता है ? संसार तो बहुत ही रमणीय और स्वच्छ है। पर तुझे यह अत्यत कष्टप्रद प्रतीत होता है, इसका यदि ठीक कारण वर्णन करें, तो हम कह सकते हैं। कि तू स्वयं बुरा है।

यहां संसार का मतलब है, संसार के सम्पूर्ण पदार्थ। अब वे सुख और दुःख कहां देते हैं ? जहर या विष दुःख देने वाला समझा जाता है, पर मौका पड़ने पर वही मरते हुये को जिला भी तो देता है। इसके विपरीत मात्रा से अधिक परिमाण में ग्रहण किया हुआ अमृत तुल्य पदार्थ भी तो जहर का काम करता देखा गया है। इस लिये किस पदार्थ को हम सुख-प्रद कहें और किसे हानिकर ? ठीक तो यह है कि दुनियां में ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है, जो बिना किसी प्रकार हमारी भूल हुये, सावधान रहते हुये, कभी भी दुःख पहुंचावे।

अतः यह सुनिश्चित है कि हमारे उपयोग करने में असावधानी से—भ्रम से या अज्ञानता से कोई भी पदार्थ हमें कष्ट पहुंचाता है और दुःखी बना देता है। उपयोग की क्रिया में भेद होने के कारण वही पदार्थ जो एक व्यक्ति को कष्ट-प्रद हुआ है वही दूसरे को सुख पहुंचाता देखा जाता है। अन्यथा एक ही पदार्थ के फल में यह विषम अन्तर कैसे हो सकता है ? किसी ने लिखा है—

"मनुष्य! दुनियां तेरी ही परछाई है। तू जो गुण बाहर देखना चाहता है, उसे पहले अपने भीतर देख"

वास्तव में यह बात बिलकुल ठीक है। यदि हम

दया चाहते हैं, तो स्वयं दया करें। सत्य चाहते हैं, तो स्वयं सच्चे बनें। इसी प्रकार यदि हम लोग सुख चाहते हैं, तो स्वयं दूसरों को सुख पहुंचावें। जिन कारणों से हमें दुःख मिल रहा है, उनके मूल पर विचार करें और उद्विग्न न हो करके उसके कारणों से बचें। ऐसा करने पर यह निश्चित है कि हम सुखी बन जायेंगे।

हम लोगों के लिये ऊपर की बात का कहना जितना सरल है, करना उससे लाखों गुना कठिन है, चाहे यह क्रिया बहुत कठिन न हो। इसका कारण यह है कि—

हम लोग सुख पाने की चिन्ता करते हैं और सुखी बनने के लिये उत्सुक भी रहते हैं पर सुखका अनुभव कभी नहीं करते मानों ऐसे कार्यों से हम सुख का उपहास करते हैं। हमने सुखका स्वागत करना नहीं सीखा। किसी ने लिखा है—

"मनुष्य अपनी अवस्था के सुधारने के लिये तो चिन्ता करता है। किन्तु अपना सुधार नहीं करना चाहता। सुखके उपायों पर विचार करते समय हमें उपरोक्त कथन से बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। स्वयं सच्चे बने बिना अन्य लोगों से अपने प्रति सत्य बर्ताव की आशा करना बिना बीज बोए ही पेड़ से हवा खाने की इच्छा करने से अधिक महत्व नहीं रखता।

अब हम अपने प्रकृत विषय पर आते हैं। हमें बताना यह है कि हम लोगों के लिये सुख प्राप्तिका मार्ग क्या है? या हम सुखी कैसे बनें?

सुखी बनने के लिये सर्व प्रथम आवश्यक यह है कि जिन कारणों से हमें दुःख होरहा है, उनका प्रतिकार सोचें।

सर्व साधारण के लिये दुःखोत्पत्ति के तीन प्रकार हैं—अनिष्ट-संयोग, इष्ट वियोग और निदान। इन तीन कारणों के अतिरिक्त और कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिनसे हम लोगों को दुःख होता हो। अब विचारणीय यह है कि इन तीनों कारणों को दूर कैसे किया जाय जिससे सुख पैदा हो— पं० दौलतराम जी ने कहा है—

"आतम को हित है सुख सो सुख आकुलता बिन कहिये"। अर्थात्–आकुलता के रहते हुये हम सुखी नहीं बन सकते। आकुलता के नाश होजाने पर दुःखों की भी इति श्री होजाती है और तब हम निराकुल या सुखी बन जाते हैं। आकुलता ही तो दुःख है। इष्ट-वियोग, अनिष्ट संयोग और निदान जन्य दुःख में भी आकुलता ही प्रधान कारण है। निराकुल पुरुष को यह दुःख नहीं होते। सबसे पहले अनिष्ट-संयोग को ही लेलीजिए। अनिष्ट पदार्थ का संयोग ही तब होता है जब उसके प्रारम्भ में आकुलता रहती है कोईभी व्यक्ति अपने हाथों में बेड़ी पकड़ना नहीं चाहता। इसलिये किसी के हाथमें बेड़ी पड़ना अनिष्ट संयोग है। पर बेड़ी पड़ने का भी तो कोई कारण है। कोई चोरी करेगा, जुवा खेलेगा, सट्टा करेगा, किसी स्त्रीका अपहरण करेगा या और कोई लोक विरुद्ध किसीको धोका आदि देने का कार्य करेगा, तबही तो उसके हाथ में बेड़ियां पड़ेंगी। बस, यही दुःखका कारण है आकुलता को उत्पन्न करता है और सुखका सर्वनाश कर देता है।

ऐसे ही इष्ट वियोगको ले लीजिएगा। जिस पदार्थ को हमने सुखप्रद मान रक्खा था और जो आजतक हमारे आनन्द का कारण बना हुआ था, उसके नष्ट होजाने पर हम लोगों को बहुत दुःख होने लगता है।

इससे भी हमलोगोंके अज्ञान से आकुलता पैदा होती है, जिसके कारण हमारे सारे सुख का क्रम छिन्न-भिन्न होजाता है। यदि हम लोगों में यह समझ हो कि जिस पदार्थ की जैसी हालत आगे होने वाली है वह होकर रहेगी। हमारे दुःखी बनने से उसमें परिवर्तन नहीं होसकता। व्यर्थ ही हम उसके कारण अपने परिणामों को मलिन क्यों बनावें, तो मैं समझता हूँ इसके कारण पैदा होने वाली आकुलता न हो और इससे उत्पन्न होने वाले दुःख से हमारा छुटकारा होजाय।

अब अवशिष्ट रह जाता है निदान-जन्य दुःख। इससे हम लोगों की बहुत हानि होती है। जिनसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं रहता, ऐसे भी अनेकों बन्धों का निकृष्ट परिपाक कर्मों के कारण हमें आगे चलकर चुपचाप सहना अनिवार्य होजाता है। इससे हमारे दुःखों की सन्तति बहुत लम्बी होजाती है और हम अपने उद्देश्य से गिर जाते हैं। इसके कारण हम अपने कर्तव्यों को भूल जाते हैं और हमारा सब तरह से पतन होजाता है। कहा भी है

"विवेक भ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः।"

इसीलिए जो सुखी बनना चाहते हैं। उन्हें दुःखों को भूल जाने की आवश्यकता नहीं, प्रत्युत उनके अन्तर्हित रहस्य को निराकुल हो कर भली भांति समझ लेने की आवश्यकता है जिससे उन कारणोंसे आगे दुःख समुपस्थित न हों।

यहां तक तो हम सुख प्राप्ति के उपायों का तात्विक विवेचन कर चुके। इस सूक्ष्म विश्लेषण के पश्चात अब यदि व्यावहारिक उपायों का आश्रय लेकर कुछ अन्य सुख प्राप्तिके उपायों पर विचार करना अनुचित न होगा।

व्यवहार की मुख्यता से यदि हम विचार करें तो कह सकते हैं कि इस संसार में सबसे बड़ा दुःख चिन्ता है। यह चिन्ता छोटे से लेकर बड़े तक सबके पीछे लगी हुई है जिसके यह नहीं है, वही संसारमें सुखी है उसे ही हमें महाभाग्यवान और पुण्यात्मा कहना चाहिये। पर इस चिन्ता से पीछा छुड़ाना सर्व साधारण के लिये कोई सरल काम नहीं है। यह चिन्ता जिन्दों को भी जला डालती है उनके शरीरमें हड्डियों के अतिरिक्त और कुछ बाकी नहीं रखती। चिता मुर्दों को जलाया करती है, पर चिन्ता जिन्दों पर भी हाथ साफ करने में कोई बाकी नहीं रखती।

वक्तव्य बहुत बढ़ गया है, इसलिये इस सम्बन्ध में अब अधिक विचार न करके अन्त में चिन्ताकी उत्पत्ति के कुछ कारणों पर प्रकाश डालकर मैं अपने निबन्धको पूर्ण करूंगा।

चिन्ताओं की उत्पत्ति का प्रधान कारण है आवश्यकताओं की वृद्धि। आज हम लोगों की आवश्यकताएं इतनी अधिक बढ़ गई हैं जिन पर विचार करने से आश्चर्य होता है। इस पराधीनता के साम्राज्य में और बेकारी के दिनों में आवश्यकताओं का बढ़जाना एक बड़ा भारी पाप है और दुःखोंका कारण है। इसमें भी रोजगार न मिलने की हालतमें यदि आवश्यकताएं बढ़ी रहती हैं तो हमारा दुःख और भी बढ़ जाता है। इन आवश्यकताओं का क्षेत्र एक ही नहीं है आज प्रत्येक विषय में हम लोगों की आवश्यकताएं दिन दूनी और रात चौगुनी होती जा रही है मैं ऐसे अनेक शिक्षित बी० ए० और एम० ए० महानुभावों से परिचित हूं जो वर्षों से बेकार बैठे हैं और महीनोंसे किसी कामको मिल जाने की कोशिश

में संलग्न हैं। वे ४०)रु० की नौकरी की चाहमें हैं पर महीने में उन्हें १० रु० के कपड़े ही पहनने को चाहिये। आश्चर्य है, ऐसी हालत में इस मातृभूमिका कैसे उद्धार होगा और हम लोग सुखी कैसे बनेंगे? अस्तु, फिजूल खर्चियां हमारी आवश्यकताएं हैं और उनकी वृद्धि ही हम लोगोंके दुःख का कारण हैं। इन आवश्यकताओं की वृद्धि के कारण हम अपने को बन्धनों में फंसा लेते हैं और फिर उनसे छुटकारा पाना हमारे लिये अशक्य होजाता है। जब रुपये पैसे की सुलभता रहती है तब आवश्यकताएं सहज हीं में बढ़ जाया करती हैं या बढ़ा ली जा सकती हैं। पर जब पैसा नहीं होता और आवश्यकताएं बढ़ी रहती हैं तब बहुत दुःख भोगना पड़ता है। अस्तु;

इन सबसे छुटकारा पाने के लिये हमेशा यह ध्यान रखना चाहिये—'फिजूल खर्ची बुरी है। प्रत्येक क्षेत्र में इससे बचना आवश्यक है। कम खर्ची से ही हमारी चिन्ताएं मिटेंगी और सुख मिलेगा'।

विरोध परिहार

(ले०—श्रीमान पं० राजेन्द्रकुमार जी जैन न्यायतीर्थ)

विरोध—१३—यदि जैनाचार्यों का यह कहना नहीं है तो उनका यह खंडन नहीं कहलायगा। मुझे किसी खास आचार्य या कृति का खण्डन नहीं करना है किन्तु जिस किसी का भी यह वक्तव्य हो उसका खंडन करना है। आज कल ऐसे बहुत से अर्द्ध दग्ध लोग हैं जो ऐसी कुयुक्तियों से ही सर्वज्ञ सिद्धि मान बैठते हैं। दूर जाने की जरूरत नहीं है अभी ता० १-११-३३ के जैन मित्र में एक ब्रह्मचारी कहलाने वाले भाई ने इसी ढंग की युक्ति का उपयोग करके सर्वज्ञसिद्धि करना चाही है। किसी बात का मैं खंडन करता हूं वह अगर जैनाचार्यों का नहीं है तो इससे यही सिद्ध हुआ कि वह बात जैनाचार्यों की नहीं है परन्तु इससे उसका खंडन असत्य नहीं हो जाता। युक्त्याभासों की आलोचना में मैं ने साफ लिख दिया है कि सर्वज्ञ के विकृत रूप को सिद्ध करने के लिये प्राचीन और नवीन लेखकों ने अनेक युक्त्याभासों का प्रयोग किया है। सत्य की खोज के लिये उन पर एक दृष्टि डाल लेना आवश्यक है। मतलब यह है कि आजकल के लेखकों की कुयुक्तियों का भी खंडन करना था इस लिये यह खंडन किया .... बृहत् सर्वज्ञसिद्धि में अनन्त वीर्य ने भी इसी ढंग के विचार प्रगट किये हैं।

परिहार—१३—जब कि दरबारीलाल जी यह स्वीकार कर लेते हैं कि उन्हों ने द्वितीय युक्त्याभास के खंडन में जैनाचार्यों के अभिमत का खंडन नहीं किया है तब इसके सम्बन्ध में कुछ कहने की

* श्री दिगम्बर जैन महापाठशाला जयपुर के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर पठित।

जरूरत नहीं रह जाती। यहां हम इतना स्पष्ट करदेना आवश्यक समझते हैं कि आक्षेपक का यह कहना कि उन्हों ने यह खंडन आजकल के लेखकों की युक्तियों के प्रतिवाद के लिये किया है मिथ्या है। यह तो उनको तब कहना पड़ता है जब कि वह अपने प्रस्तुत खंडन का जैनाचार्यों के पूर्वपक्ष के साथ सम्बन्ध में घटित नहीं कर सके हैं या उनको उनका खंडन बिलकुल मिथ्या प्रतीत हो चुका है। यदि बात ऐसी न होती तो आपको यद्वा तद्वा बातें लिखने की आवश्यकता न होती। आपने जैनमित्र १-११ ३४ के एक लेख का उल्लेख किया है। आक्षेपक ने मित्रके इस लेख का उल्लेख करते हुवे इस बात का ध्यान नहीं रक्खा कि उनका यह खंडन अप्रेल सन ३३ अर्थात् मित्र के इस लेख में करीब १॥ वर्ष पूर्व का है। ऐसी अवस्था में यह तो किसी भी प्रकार माना नहीं जा सकता कि आपने प्रस्तुत लेख को सामने रखकर यह खंडन लिखा है।

अन्य किसी लेखको आप उपस्थित कर नहीं सके हैं ऐसी अवस्था में यही कहना होगा कि आक्षेपक ने प्रस्तुत खंडन जैनाचार्य के ही वक्तव्य को सामने रख कर लिखा था किन्तु अब जब कि आप उसको उसके सम्बंध में समुचित नहीं पा रहे हैं तब आपने नवीन लेखक शब्द का आधुनिक लेखक अर्थ करके इस को आज कल के लेखकों के कथन के सम्बंध में घटित करने की चेष्टा की है। किन्तु आप अपने इस प्रयास में भी असफल ही प्रमाणित हुए हैं। किसी का भी खंडन क्यों न सही जब तक वह उसके वास्तविक भाव के अनुसार नहीं किया गया है या उसका आधार ह नहीं है तब तक उसको मिथ्या ही कहना होगा अतः प्रगट है कि दरबारीलाल जी कायुक्त्या- भास द्वितीय के खंडन के रूप में लिखा गया वक्तव्य मिथ्या है।

बृहतसर्वज्ञसिद्धि नाम के अपने लेख में अनन्त-वीर्य ने सर्वज्ञत्व के सम्बंध में अवश्य अनेक दृष्टियों से विचार किया है किन्तु प्रत्यक्ष से सर्वज्ञाभाव मानने के पक्षमें सर्वज्ञ का ही सद्भाव हो जायगा यह बात उन्हीं उन पंक्तियों में नहीं है जिनका आक्षेपक ने उल्लेख किया है। दूसरे यह बात तो आक्षेपक के लिए भी आक्षेपयोग्य नहीं है अन्यथा उन्होंने हमारे इस कथन पर स्वयं आक्षेप किया होता अतः इस दृष्टि से भी अनन्तवीर्य के कथन के सम्बंध में यहां विचार करना उपयोगी नहीं है।

विरोध—१४—आक्षेपक को भ्रम हो गया है कि मैं ने अमुक पुस्तकें रख कर सर्वज्ञ खंडन किया है। इस लिये वे बार बार यह दुहाई दिया करते हैं कि यह कथन आचार्यों का नहीं है आदि परन्तु उन्हें समझना चाहिये कि मैं यहां किसी ग्रन्थ या आचार्य का खंडन करने नहीं बैठा हूं, किन्तु सर्वज्ञ की सिद्धि के विषय में जो २ बातें कहीं गई हैं कही जाती हैं और कही जा सकती हैं उनका खंडन करने बैठा हूँ। तीसरा युक्त्याभास जिसका कि मैं ने खंडन किया है एक निर्बल युक्ति है आपको इसके समझने में भूल हुई है कि यह मार्तण्ड के अभाव प्रमाण वाले उद्धरण का परिवर्तित रूप है।

परिहार—१४—दरबारीलाल जी ने युक्तियों में युक्त्याभास वाले अपने सर्वज्ञत्व मीमांसा के प्रकरण को प्रारम्भ करते हुए निम्नलिखित शब्द लिखे हैं—"सर्वज्ञता के विकृतरूप को सिद्ध करने के लिये प्राचीन, नवीन लेखकोंने अनेक युक्त्याभासों

युक्त्याभासों का प्रयोग किया है सत्य की खोज के लिये उन पर एक दृष्टि डाल लेना आवश्यक है।"

दरबारीलालजी की इस प्रतिज्ञासे इतना तो अवश्य मानना ही पड़ेगा कि उन्हों ने इस प्रकरण में उन ही युक्तियों पर विचार किया है जो कि सर्वज्ञत्व के समर्थन में प्राचीन या नवीन लेखकों द्वारा उपस्थित की जा चुकी थीं अब जब कि उनको अपना खंडन निराधार प्रतीत होने लगा है या जिसको उन्होंने जिसके सम्बन्ध में उपस्थित किया था वह उसके उपयुक्त नहीं हुआ है। तब आप लिखते हैं कि " मैं यहां किसी मनुष्य या आचार्य का खंडन करने नहीं बैठा हूं किन्तु सर्वज्ञसिद्धि के विषय में जो २ बातें कही जाती हैं या कही जा सकती हैं उनका खंडन करने बैठा हूं "।

दरबारीलाल जी को यदि संभवित युक्तियों का ही खंडन करना अभीष्ट था तब उनको प्राचीन और नवीन लेखकों के खंडन की प्रतिज्ञा की जरूरत नहीं थी। अतः प्रगट है कि खंडन करते समय तो दरबारी-लालजीका ध्यान अवश्य किसी लेखकी तरफ ही रहा है किन्तु अब जब कि उसके सम्बन्ध में उनका खंडन युक्तियुक्त प्रमाणित नहीं हो सकता है तब उनको ऐसा लिखना पड़ा है। इन सब बातों को छोड़ भी दिया जाय और दरबारीलाल जी की ही बातों को मान लिया जाय तब भी यह तो अवश्य मानना ही चाहिये कि सर्वज्ञाभाव के समर्थन में अभाव प्रमाण का अवलम्बन ठीक नहीं तथा मार्तण्ड का यह कथन खंडन की सीमा से बाहर है।

विरोध—१५—प्रश्न यह है कि क्या सर्वज्ञ के अस्तित्व के बिना अभाव प्रमाण की प्रवृत्ति नहीं हो सकती ? यदि ऐसा होता तब तो खर विषाण के अस्तित्व के बिना खर विषाण में भी अभाव प्रमाण की प्रवृत्ति न होनी चाहिये इस प्रकार किसी भी वस्तु का अभाव सिद्ध न किया जा सकेगा। फिर तो खरविषाण, खपुष्प, बन्ध्यापुत्र आदि सभी वस्तुएं सिद्ध हो जायंगी। यद्यपि जैन न्याय में अभाव प्रमाण नहीं माना है किन्तु यहां तो अभाव प्रमाणको मानकर ही उसका उल्लेख हुआ है। इसी लिये मैं ने भी मान कर उसका उल्लेख किया है।

परिहार — १५—आक्षेपक ने उपर्युक्त वाक्य हमारे निम्नलिखित वाक्यों के सम्बन्ध में लिखे हैं। "यदि अभाव प्रमाण से सर्वज्ञ का अभाव प्रमाणित किया जायगा तो सर्वज्ञ का अस्तित्व ही सिद्ध हो जायगा, क्योंकि बिना सर्वज्ञ के अस्तित्व के इसके विषय में अभाव प्रमाण की प्रवृत्ति नहीं हो सकती,

किसी पदार्थका अभावज्ञान मानसिक ज्ञान है। यह तब होसकता है जब कि उस पदार्थका ज्ञान हो जहां कि किसी भी पदार्थका अभाव करना है साथही उस पदार्थ का जिसका अभाव करना है स्मरण होना भी अनिवार्य है। ऐसी अवस्था में मानसिक अभाव ज्ञान होता है। सर्वज्ञ का अभाव कालत्रय और लोकत्रय में करना है अतः इनका ज्ञान और सर्वज्ञ के स्मरण हुए बिना सर्वज्ञ के सम्बंध में अभाव प्रमाण कैसे हो सकता है। तथा इस प्रकारकी परिस्थिति बिना सर्व-ज्ञ के हो नहीं सकती अतः यदि अभाव प्रमाण से सर्वज्ञ का अभाव किया जायगा तो वह अभाव के स्थान पर उसके भाव को ही प्रमाणित कर देगा।

दरबारीलाल जी ने हमारी इन पंक्तियों की परि-स्थिति पर विचार नहीं किया अन्यथा उनको प्रस्तुत

दूषण के उद्भावन का कष्ट न उठाना पड़ता अभाव या किसी भी अन्य प्रमाण से सर्वज्ञका अभाव मीमांसक बतलाता है। जैन लोग तो इन प्रमाणों का प्रयोग सर्वज्ञ के सद्भाव में ही करते हैं। अतः निषेधपरक जितने भी प्रमाण मिलेंगे वे सब मीमांसक या उस जैसे विचार रखने वाले ही दार्शनिक के समझने चाहिये।

प्रस्तुत वक्तव्य भी उस ही की दृष्टि से है। मीमांसक जिस परिस्थिति में अभाव प्रमाण की उत्पत्ति मानता है वह एक ऐसी परिस्थिति है कि यदि उससे सर्वज्ञ के अभाव को प्रमाणित करने की चेष्टा की जायगी तो वह सर्वज्ञ के अभाव के स्थान पर उसके भाव को ही प्रमाणित करेगा इसका स्पष्ट वर्णन हमारे ऊपर उद्धृत वाक्यों में मौजूद है। अतः यह जो कुछ भी कहा गया है वह मीमांसक के प्रति उसके ही मान्य सिद्धान्त के अनुसार किया गया है। इसका उत्तरदायित्व भी उस ही पर है। जैन दार्शनिकों ने तो धर्मी को विकल्पसिद्ध मान कर फिर उसके सम्बंध में भावाभाव के निर्णय का विधान किया है। अतः दरबारीलाल जी के प्रस्तुत दूषण का हम पर कुछ भी प्रभाव नहीं है। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि अभाव प्रमाण से सर्वज्ञ का अभाव बतलाने में आचार्योंने जो सर्वज्ञ सद्भाव का उसको उपालम्भ दिया है वह अक्षरशः सत्य है।

दिगम्बर जैन महापाठशाला जयपुर का पचासवां वार्षिक महोत्सव

श्री दिगम्बर जैन महापाठशाला का वार्षिक अधिवेशन मिती असाढ़ कृष्णा ५, ६, और ७ तदनुसार तारीख २१, २२, और २३ जून को श्री पाठशाला भवन और बड़े दिवान जी के मन्दिर में अत्यन्त आनन्द के साथ मनाया गया। पञ्चमीके दिन २ बजे से ५ बजे तक बड़े दिवान जी के मन्दिर में सब ने मिलकर श्री सरस्वती की पूजन की। और इसी दिन रात्रि को श्रीमान सेठ गोपीचन्द्र जी साहब ठोल्या के सभापतित्व में व्याख्यान सभा हुई। जिसमें विद्यालय से शिक्षा प्राप्त चार उच्च कक्षा के छात्रों ने वैज्ञानिक आविष्कारों से हानियां व लाभ इस विषय पर वाद विवाद किया जिनमें प्रथम नम्बर श्रीमान पं० मिलापचन्द्र जी न्यायतीर्थ तथा द्वितीय नम्बर जैनदर्शन शास्त्री पं० कैलाशचन्द्र जी न्यायतीर्थ रहे।

दूसरे दिन रात्रिको श्रीमान मुन्शी नेमिचन्द्रजी मथुरा वाले के सभापतित्व में " हम सुखी कैसे बनें ? इस विषय पर निबन्ध पढ़े गये। जिनमें प्रथम नम्बर जैन दर्शन शास्त्री पं० श्री प्रकाश न्यायतीर्थ तथा द्वितीय नम्बर पं० मिलापचन्द जी न्यायतीर्थ रहे। सप्तमी के दिन प्रातःकाल ८ बजे से ११ बजे तक श्री पाठशाला भवन में श्रीमान मुन्शी प्यारेलाल जी साहब रिटायर्ड मेम्बर कौंसिल आफ स्टेट जयपुर के नेतृत्व में अधिवेशन मनाया गया। सर्व प्रथम सरस्वती पूजन के पश्चात पं० कस्तूरचन्द जी सा० मंत्री प्रबन्ध कारिणी समिति ने पाठशाला का वार्षिक विवरण, आय, व्यय हिसाब आदि पढ़कर सुनाया। आज की सभा में जयपुर जैन समाज के सभी गण्य मान्य सज्जन उपस्थित थे। जिन में कुछ के नाम यह हैं—श्रीमान मुन्शी प्यारेलाल जी साहब, श्री० सेठ गोपीचन्द जी ठोल्या, बख्सी गुलाबचन्द जी साहब, दारोगा मोतीलाल जी साहब, सेठ जमनालाल जी सोह, सेठ झूमर लाल जी गोदीका, मुन्शी सूर्यनारायण जी वकील सेठ भर्याचन्द जी गंगवाल, सेठ सर्वसुखदास जी खजांची, सेठ मूलचन्द जी काला बी० ए०, सेठ रामचन्द्र जी खिन्दूका, बाबू सुगनलाल जी गोधा, बख्सी केसरलाल जी सा०, सेठ केसरीचन्द जी बिनायक्या, मुन्शी नेमीचन्द जी मथुरा वाले, गुलाबचन्द जी वकील पंड्या आदि आदि। लोगों को यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि पाठशाला का परीक्षा फल इस वर्ष बहुत अच्छा रहा है। जयपुर राजकीय संस्कृत परीक्षा में आठ छात्रों में से सात छात्र पास हुये। इस वर्ष आमदनी रुपये ५५३६।-) और खर्च ३६८०॥-) रुपये का हुआ। रिपोर्ट सुनाने के बाद आगामी वर्ष के कार्य संचालनार्थ नवीन प्रबन्ध कारिणी समिति के कार्य कर्ताओं और सदस्यों का निर्वाचन हुआ। सदस्यों की संख्या पहिलेकी अपेक्षा बढ़ा कर ६५ कर दी गई। तदनन्तर श्रीमान सभापति महोदय तथा मुन्शी सूर्यनारायण जी वकील ने सार गर्भित भाषण दिया और कहा कि पाठशाला की उन्नत दशा को देखकर हमें बहुत प्रसन्नता होती है। सारे समाज के भाइयों को पाठशाला को और भी उन्नत बनाने के लिये तन, मन, धन से सहायता करनी चाहिये और उन लोगों को विवेक से काम लेना चाहिये जो पाठशालाको आर्थिक हानि पहुँचाने की चेष्टा कर रहे हैं। इसके बाद श्रीमान् सभापति महोदय ने उत्तीर्ण छात्रों को अपने कर कमलों द्वारा पारितोषिक वितीर्ण किया। अन्त में श्रीमान मुन्शी सूर्यनारायण जी वकील ने सब को धन्यवाद दिया। और मोदक वितीर्ण कर महावीर की जय ध्वनि के साथ सभा विसर्जित की गई।

—भंवरलाल जैन न्यायतीर्थ

जयपुर।

❋ ❋ ❋

सनातन जैन नामधारी सभा का दमोह में असफल अधिवेशन

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा द्वारा गये हुए डेपुटेशन की अपूर्व सफलता

हमें दमोह के एक बंधु द्वारा दमोह में सनातन जैन नामधारी सभा का अधिवेशन १२-१३ जून को होने के समाचार मिले साथ ही यह समाचार मिले कि अधिवेशन दिगम्बर जैन धर्मशाला में होगा हमें यह जानकर आश्चर्य और दुःख हुआ और दि० जैन पंचायत के मुख्य मुख्य नेताओं को पत्र लिखे

समय बहुत निकट था किसी प्रकार के आन्दोलन करने या विरोध के लिये विद्वानों को भेजने के लिए समय नहीं था और धर्मशाला पहले ही दी जा चुकी थी।

तथापि, सिवनी के वर्तमान सभा के नवयुवकों में इस बात को सुन कर असंतोष हुआ और श्रीमान सेठ विरधीचन्द जी (सुपुत्र रा० ब० सेठ पूरनसाह जी) से न रहा गया और धार्मिक उत्साह की प्रेरणा से दमोह जाने के लिये हम से अपनी इच्छा प्रगट की और पं० सुमेरचंद जी दिवाकर B. A. L. L. B. से अपने विचार प्रगट किये और उनसे चलने की प्रेरणा की उन्हों ने भी सहर्षोत्साह पूर्वक स्वीकारता दे दी और तैयार हो गये सिवनी तथा जबलपुर के निम्नलिखित सज्जनों का डेपुटेशन श्री भा० द० दि० जैन महासभा की ओर से एकत्र हुआ ता० १२ की रात्री को ही दमोह पहुँच गया।

१— श्रीमंत सेठ विरधीचंद जी सिवनी २ पं० सुमेरचन्द जी दिवाकर B. A. L. L. B. ३- बाबू सुमेरचन्दजी कौरात B. A. L. L. B. ४-श्री गुलाब चन्दजी पिडरई वाले ५- श्री बाबू दशरथलाल जी ६-- श्री हुकमचन्द जी छावड़ा ७— श्री सि० मुन्नालालजी बापूलाल जी जबलपुर ८-- श्री स० सि० बेनीप्रसाद जी ९-श्री बाबू फूलचंद जी वकील १०-श्री बाबू हुकम चन्द जी वकील ११-श्री स० सि० हुकमचन्दजी १२ श्री सि० हीरालाल जी जवेरा।

हमारा तार पहुँचने पर कटनी से श्रीमान पं० जगमोहनलाल जी पहुंच गये थे और खुरई से पं० महेन्द्रकुमार जी जैन अध्यापक स्याद्वाद महा-विद्यालय काशी भी पहुँच गये थे वहां जाकर डेपुटेशन ने मुख्य २ नेताओं से मिलकर जोर के साथ अपने पक्ष का समर्थन और विपक्षियों का विरोध किया दमोहकी धार्मिक पंचायत ने डेपुटेशन के साथ सहयोग दे कर धार्मिक पक्ष की सर्व प्रकार सहायता कर सफलता प्राप्त की।

अधिवेशन के लिये धर्मशाला तो पहले सनातन जैन नामधारी सभा के उद्देश जाने बिना धर्मशाला के सभापति द्वारा दी जा चुकी थी और १२ ता० को रात्रि में पहली बैठक भी हो चुकी थी किन्तु डेपुटेशन पहुंचनेके बाद ज्यों ही धार्मिक जनता को सनातन जैन सभा के उद्देश्य मालूम होगये और शीतल प्रसाद की कूट नीति का परिचय अधिवेशन में होने वाले प्रस्तावों से जनता को होता गया जनता एक दम भड़क उठी और इस धर्म घातक सभाके प्रस्तावों का एक स्वर से विरोध किया डेपुटेशन में गये हुए सब ही सज्जनों ने अपने २ प्रभावशाली भाषण द्वारा सनातन जैन नामधारी सभा और शीतलप्रसाद जी के कार्य धर्मघातक प्रमाणित किये और शीतल-प्रसाद जी को उनके हाथ धार्मिक प्रमाणित करने का चैलेंज दिया किन्तु उन्होंने कुछ नहीं किया जनता के तरफ से प्रस्तावों का जोरदार विरोध होने पर जब कार्यमें गड़बड़ी होने लगी तो श्री पूनमचन्द जी रांका ने स्पष्ट शब्दों में घोषित किया कि यह प्रस्ताव केवल सनातन सभा के सदस्यों के ओर से ही स्वीकृत समझे जायगे अन्य उपस्थित जनता से इसका संबंध नहीं तब जनता विपक्षियों की कमजोरी अच्छी तरह समझ गई शीतलप्रसाद जी की कूट नीति का भंडा फोड़ होगया और अपना संबंध उक्त प्रस्तावों से न जान कर चुप रहा श्री पूनमचन्द जी रांका की चातुर्यता से उन्होंने जैसे तैसे अपने अनुयायी २० - २५ सदस्यों की उपस्थिति में अपना काम निपटाया और

वार्षिक-समाप्ति

चाहे कोई चले या न चले किन्तु कालचक्र तो सदा प्रति समय अव्याहतगति से चलता रहता है। संसार में ऐसी कोई ऐसी बलवती शक्ति नहीं जो उसकी इस धकमी चाल में रंचमात्र भी रुकावट या अन्तर डाल सके। साथही यह कालचक्र सारे संसारके चर अचर पदार्थ मालोको भी स्थिर नहीं बैठने देता। तदनुसार जैन समाज का मूल्यवान रत्न और भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघका दुलारा 'जैनदर्शन' भी कालचक्र की द्रुतगति के साथ अपना द्वितीय वर्ष पूरा कर बैठा।

यह द्वितीय वर्ष दर्शन का मंगलमय रहा। अनेक शुभलाभ उसे प्राप्त हुये। सबसे प्रथम तो श्रीमान कविरत्न पं० चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ जयपुर सम्पादन विभाग में आये। दूसरे 'स्याद्वाद' नामक एक विशेषांक प्रगट हुआ जोकि एक अपूर्व वस्तु है। तीसरे- प्रथम वर्ष से चार पृष्ठ अधिक बढ़े। चौथे अनेक उत्तम, उपयोगी, सारपूर्ण पठनीय लेखों ने इसका शरीर आकर्षक बनाया। पांचवें युक्त प्रांत से विहार करके पंजाब भूमि में आया 'चैतन्य प्रेस बिजनौर' में का उगाहुआ पौदा 'अकलंक प्रेस मुलतान' की पुष्पवाटिकामें आगया।

लेखोंका संकलन गत वर्ष की अपेक्षा इस वर्ष अच्छा रहा है इसके लिये जैनदर्शन कार्यालयकी ओरसे श्रीमान पं० श्री प्रकाश जी, पं० भंवरलालजी पं० जगमोहनलाल जी काला, पं० के० भुजवली जी, पं० मिलापचन्द्र जी, अनुपमकुमारी जी, पं० विष्णुकुमार जी, श्री मोहनलालजी, पं० मंगलसेन जी, पं० नाथूराम जी डोंगरीय, मा० पांचूलाल जी काला बा० विद्याप्रकाश जी काला, प० वीरेन्द्रकुमार जी आदि सुलेखक महानुभावों को धन्यवाद है जिन्होंने अपना अमूल्य समय जैन दर्शन की सेवाके लिये समर्पण किया।

पाठक महानुभावोंने दर्शनको प्रेमसे अपनाया। इसके लिये वे भी धन्यवादके पात्र हैं।

जैनदर्शन का सम्पादन प्रकाशन धार्मिक प्रचार और सामाजिक अभ्युदय के लिये होता है। दलबन्दी से दूर रहकर सेवा करना ही जैनदर्शनका अभीष्ट अभिमत है। अतः अभ्युदय प्रेमी पाठकों को दर्शन हृदयसे अपनाना चाहिये।

अबकी बार जैनदर्शन अपने तीसरे वर्ष में प्रेमी पाठकों के लिये अद्भुत लेखों को लेकर विशेष सज-धज के साथ प्रकाशित होगा! —अजितकुमार

महा शोक

नजीमाबाद निवासी श्रीमान रायबहादुर साहु जुगमन्दरदास जी रईस २६ जून को मंसूरी शैलमे स्वर्गारोहण कर गये। साहू जी दि० जैन समाज के पुराने प्रख्यात कार्यकर्ता थे अनेक संस्थाओं का सभापतित्व आपने बड़ी योग्यता के साथ निबाहा था। आपके वियोग से दि० जैन समाज को असीम क्षति हुई है। *आपका आत्मा शान्ति लाभ करे ऐसी भावना है।*

श्रीमान पं० वासुदेव जा उपाध्याय भी ऐहिक लीला समाप्त कर परलोकयात्रा करगये हैं आप क्रिया कांड के गणनीय विद्वान थे सौजन्य पूर्ण आपका जीवन था। आपके वियोग से समाज को बहुत हानि हुई है परमात्मभक्ति आपको शान्ति लाभ करावे।

लेख—सूची

जैनदर्शन में इस वर्ष निम्नलिखित लेख प्रकाशित हुये हैं।

REGD. N. L. 3459.

श्री चम्पावती जैन पुस्तकमाला की उपयोगी

प्रचार योग्य पुस्तकें

यदि आप जैनधर्म का अध्ययन प्रचार और खंडनात्मक साहित्य का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं तो कृपया निम्न लिखित पुस्तकों को अवश्य खरीदिये—

१ जैनधर्म-परिचय —जैनधर्म क्या है ? सरलतया इसमें समझाया गया है। पृ० सं० ५० मूल्य -)

२ जैनधर्म नास्तिक मत नहीं है ? — जैनधर्म को नास्तिक बतलाने वालों के प्रत्येक आक्षेप का उत्तर मि० हर्बर्ट वारन (लन्डन) ने बड़ी योग्यता पूर्वक इसमें दिया है। पृ० सं० ३० मू० -)

३ क्या आर्यसमाजी वेदानुयायी हैं ? पृ० सं० ४४ मू० -)

४ वेद मीमांसा — पृ० सं० ६४ मू० =)

५ अहिंसा — पृ० सं० ५२ मू० -)॥

६ भगवान ऋषभदेव की उत्पत्ति असम्भव नहीं है। —आर्य समाज के 'ऋषभदेव की उत्पत्ति असम्भव है' ट्रैक्ट का उत्तर बड़ी योग्यता पूर्वक इसमें दिया गया है। पृ० सं० ८४ मू० ।)

७ वेद समालोचना पृ० सं० १२४ मू० ।=)

८ आर्य समाज की गप्पाष्टक मू०)॥

९ सत्यार्थ दर्पण— योग्यता के साथ सत्यार्थप्रकाश के १२ वें समुल्लास का युक्तियुक्त खण्डन इसमें किया गया है। पृ० सं० २४० मू० ॥)

१० आर्यसमाज के १०० प्रश्नों का उत्तर। पृ० संख्या ६० मू० =)

११ वेद क्या भगवद्वाणी है ? —वेदों पर एक अजैन विद्वान का युक्तिपूर्ण विचार। ,, -)

१२ आर्यसमाज की डबल गप्पाष्टक ,, -)

१३ दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि— जैनधर्म और दि० जैनमत का प्राचीन इतिहास प्रामाणिक सरल और जीवित लेखनी के साथ विस्तृत रूप में लिखा गया है जिसमें रंगीन तथा सादे अनेक चित्र हैं। ऐसी पुस्तक जैन समाज में अभीतक प्रकाशित नहीं हुई। प्रत्येक पुस्तकालय और भण्डार में इसका होना अत्यंत उपयोगी है ऐसे अपूर्व सचित्र ऐतिहासिक ग्रन्थ की एक प्रति अवश्य मगावें। पृ० ३५० मू० १)

१४ आर्यसमाज के ५० प्रश्नों का उत्तर ,, =)

१५ जैन धर्म सन्देश-मनुष्यमात्र को पठनीय है ,, -)

१६ आर्य भ्रमोन्मूलन (जैन भ्रमोन्मूलन का मुंह तोड़ जवाब) ,, [illegible]

१७ लोकमान्य तिलकका जैनधर्म पर व्याख्यान। द्वि० संस्करण ,,)॥

१८ पानीपत शास्त्रार्थ भाग १ जो आर्यसमाज से लिखित रूप में हुआ। इस सदी के सम्पूर्ण शास्त्रार्थों में सर्वोत्तम है। ईश्वर जगत्कर्ता है इस को युक्तियों द्वारा असिद्ध किया है पृ० २०० मू० [illegible]

१९ पानीपत शास्त्रार्थ भाग २ इसमें "जैन तीर्थङ्कर सर्वज्ञ हैं" यह सिद्ध किया गया है। ,, ,, [illegible]

सब प्रकार के पत्र व्यवहार का पता—

मैनेजर—दि० जैन शास्त्रार्थ संघ, अम्बाला छावनी।

अजितकुमार जैन के प्रबन्धसे "अकलंकप्रिंटिङ्ग प्रेस, मुलतान में छपकर प्रकाशित हुआ।